नमोऽत्थु णं समणस्स भगवओ णायपुत्तमहावीरस्स

अर्थागम

(हिन्दी)

दूसरा खण्ड ५ वां भगवतीसूत्र

सम्पादक—

'पुप्फभिक्खू

नमोऽत्थु णं समणस्स भगवओ णायपुत्तमहावीरस्स

अर्थागम

एकादशांग

द्वितीय खण्ड

(श्री भगवतीसूत्र)

विविध टिप्पण-परिशिष्टादि-समलंकृत

सम्पादक

जैन धर्मोपदेष्टा पंडित रत्न

१०८ मुनि श्री फूलचन्द जी महाराज 'पुप्फभिक्खू'

❁

प्रकाशक

श्री प्यारेलाल ओमप्रकाश जैन

C/o श्री प्यारेलाल ओमप्रकाश, नया बांस, देहली-६.

अध्यक्ष—श्री सूत्रागमप्रकाशकसमिति 'अनेकान्तविहार'

सूत्रागम स्ट्रीट, S.S. जैन बाजार, गुड़गांव-छावनी (हरियाना).

नमोऽत्थु णं समणस्स भगवओ णायपुत्तमहावीरस्स

ARTHĀGAMA

VOLUME II
(Containing Bhagawati Sutra)

Critically edited by

MUNI SHRĪ PHŪLCHAND JI MAHĀRĀJ

Published by

SHRĪ PYARE LĀL OM PRAKĀSH JAIN
President of

SHRĪ SŪTRĀGAMA PRAKĀSHAKA SAMITI
'Anekant Vihar'
Sutragama Street, S. S. Jain Bazar, Gurgaon Cantt (Haryana).

V.E. 2028 — 1971 A.D.

First Edition] — 1000 Copies — [Price Rs. 32-00

समप्पणं

जो जम्मिओ सुज्जउरम्मि रम्मे, कुलम्मि सीमानसुहे विसाले ।
हरीउरे भव्वचओरचंदो, सो एरिसो आसि फईरचंदो ॥१॥

होत्था सुओ वीर जी दफ्तरिस्स, जो विस्सुओ आसि जगम्मि सव्वे ।
कल्लाणकंदो य महामुणिंदो, सो एरिसो आसि फईरचंदो ॥२॥

जो तीसवासाइं गिहे वसित्ता, विरत्तचित्तो जग्गाह दिक्खं ।
गुरुस्स रामलालस्स पासे, सो एरिसो आसि फईरचंदो ॥३॥

जो नाथुरामस्स परंपराए, जोईधरो आसि मुणी महप्पा ।
जो वाइरुक्खाण महागइंदो, सो एरिसो आसि फईरचंदो ॥४॥

जो उज्जुओ आसि महातवस्सी, सज्झायझाणम्मि सया पयत्तो ।
जस्सासि हत्थम्मि अणेग सिद्धी, सो एरिसो आसि फईरचंदो ॥५॥

'सुत्तागमे' सुद्धकयं च जेणं, सधारणाववहाराणुसारं ।
जो सव्वसाहूण जहा सुरिंदो, सो एरिसो आसि फईरचंदो ॥६॥

इयगुणगणजुत्तं, कामकोहेहि मुत्तं,
दंसियवरमग्गं, अन्नयरजइणवग्गं ।
सुयसिद्धंतणाणिं, संतिखंतीण खाणिं,
अणुसरिय जिणंदं, तं मुणिंदं नमामि ॥७॥

तस्स पुणीयसमरणे, भगवइजुत्तं तु बीयखण्डमिणं ।
नामेण पुप्फभिक्खू, तस्सिस्सोऽहं समप्पेमि ॥८॥

समर्पण

जिनका हरीपुरा सूरतमें विशाल शुभ श्रीमाल कुल में जन्म हुआ, जो सर्व जगविश्रुत श्री वीर जी···के सुपुत्र थे, जिन्होंने पूज्य श्री नाथूराम जी की परंपरा में सद्गुरुदेव श्री रामलाल जी से आर्हती दीक्षा ग्रहण की, जो सतत स्वाध्याय ध्यानमें निरत रहते थे, जिनके अपार अनुग्रहसे मैं इस योग्य हुआ, जिनकी धारणाव्यवहारानुसार यह प्रकाशन है। उन्हीं आगमानुरागी-उग्रविहारी-परमोपकारी-शांतस्वभावी-भव्योद्धारक-महर्षिप्रवर-स्थविरपदविभूषित-ज्ञातपुत्रमहावीरजैनसंघानुयायी-स्वर्गीय-परमपूज्य १०८ श्री जैनमुनि फकीरचंद्र जी महाराज की पावन स्मृतिमें श्रद्धान्वित होकर श्रीभगवतीसूत्रयुक्त यह अर्थागम का द्वितीय खण्ड समर्पण करता हूं।

पुप्फभिक्खू

प्रकाशकीय

यद्यपि इस भौतिकवादी युगमें विज्ञानके व्यवहारोपयोगी आविष्कारों से मनुष्यने विज्ञानके क्षेत्रमें पर्याप्त प्रगति की है परन्तु उतना ही वह आध्यात्मिकता व नैतिकताके क्षेत्रमें पिछड़ गया है। साथ ही साथ शस्त्रों की होड़ लगी हुई है। यद्यपि प्रत्येक मनुष्य शांति चाहता है, शांति का राग अलापता है। परन्तु बाह्य साधनों से, शस्त्रोंके बूते किए गए युद्धोंसे कभी शांति प्राप्त नहीं हो सकती। शांति का निवास तो आध्यात्मिकता में है भौतिकतामें नहीं और हमारे आगम-शास्त्र आध्यात्मिकतासे भरपूर हैं। उनके योजनाबद्ध प्रसारके लिए ज्ञातपुत्र-महावीर-जैनसंघानुयायी उग्रविहारी जैन धर्मोपदेष्टा पं० रत्न मुनि १०८ श्री फूलचन्द जी महाराजकी पुनीत प्रेरणासे श्री सूत्रागमप्रकाशकसमिति की स्थापना हुई।❁ और समितिने सूत्रागम, अर्थागम व तदुभयागमकी पद्धतिसे प्रकाशन का कार्य अपने हाथमें लिया व सुत्तागमे '३२ सूत्र मूल पाठ' दो खण्डोंमें प्रकाशित किया। जिसकी देश व विदेशके विद्वानोंने भूरि भूरि प्रशंसा की है व प्रशंसापत्र व सम्मतियां१ भेजी हैं। प्रत्येक सूत्र मूलपाठ रूपसे अलग अलग भी छपे।

अब तक समिति की ओर से अर्थागममें भी अलग अलग कई सूत्र आचाराङ्गादि प्रकाशित हो चुके हैं। आज से लगभग चार वर्ष पूर्व 'सुत्तागमे' की तरह अर्थागमके प्रकाशन की योजना बनी परन्तु कारणवश इसके प्रकाशनमें विलम्ब हुआ।२ पुस्तक का आकार बढ़ जाने से इसके तीन खण्ड करने पड़े। प्रस्तुत खण्ड में सम्पूर्ण श्री भगवती सूत्र है। जिसकी महत्ता सर्वविदित है।

इसका सारा श्रेय जैनधर्मोपदेष्टा पं० रत्न श्री फूलचन्द जी म० 'पुप्फभिक्खू' जी को है। जिन्होंने स्वास्थ्य ठीक न होते हुए भी अपना अमूल्य समय देकर इस ग्रन्थराज का सम्पादन किया है। आपकी विद्वत्ता वक्तृत्व और प्रभाव सर्वविदित है। आपने बंगाल-बिहार-कश्मीर-सिंधु आदि अगम्य क्षेत्रोंमें जैन धर्म ३का व्यापक

❁स्थापना-कारण व समिति-परिचयके लिए 'अर्थागम-प्रथम खण्ड' देखें।

१. सम्मतियोंके लिए देखिए 'सुत्तागमे पर लोकमत' अर्थागम प्रथम खण्ड।

२. देखिए 'प्रकाशकीय' अर्थागम प्रथम खण्ड।

प्रचार किया है। इनके अतिरिक्त सेवाभावी मुनि श्री सुमित्रदेव जी म० निशाकर का भी हम आभार मानते हैं जिन्होंने गुरुसेवामें व्यवधान न देते हुए प्रस्तुत खण्ड का विद्वत्तापूर्ण 'निदर्शन' लिखा व प्रूफ संशोधनादिमें पूर्ण सहयोग दिया।

साथ ही पं० जगप्रसाद जी त्रिपाठी का भी हम धन्यवाद करते हैं जिन्होंने प्रेस कापी तैयार करने व प्रूफसंशोधनादिमें पूर्ण योग दिया। इनके अतिरिक्त प्रेसके व्यवस्थापक व कर्मचारीगण भी धन्यवादके पात्र हैं जिनके सहयोगसे यह महाग्रंथ इतने थोड़े समयमें हम आपके सम्मुख प्रस्तुत कर सके। इसके अतिरिक्त इस प्रकाशनमें जिन जिन महानुभावों ने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूपमें सहयोग दिया है, हम उनके भी आभारी हैं। जिन जिन महानुभावोंने सुत्तागमेके सम्बन्ध में अपनी शुभ सम्मतियां भेजी हैं उनके भी हम अनुगृहीत हैं। आपसे प्रार्थना है कि आप समितिसे प्रकाशित आगमोंका स्वाध्याय करें व हमें सहयोग देकर हमारा उत्साह बढ़ाएं।

निवेदक
प्रधान–लाला प्यारेलाल ओमप्रकाश जैन
मंत्री–बाबू रामलाल जैन तहसीलदार

---

३. जैनधर्मके दस नियमोंके लिए देखिए 'अर्थागम प्रथम खण्ड।'

अब तक के साथी

स्तम्भ—श्री विजयकुमार चुनीलाल फूलपगर, पूना। लाला प्यारेलाल जैन दूगड़, अम्बरनाथ। श्री रतनचन्द भीखमदास बांठिया, पनवेल। मास्टर दुर्गाप्रसाद जैन, गुड़गावां। जैन संघ दोंडायचा। जैनसंघ माटुंगा।

संरक्षक—श्री मोहनलाल धनराज कर्णावट, कोयालीकर पूना। श्री फूल-चन्द मेहता, ब्यावर। श्री नाथालाल पारख, माटुंगा। श्री चुनीलाल जसराज मुणोत, पनवेल। श्री छबीलदास त्रिभुवनदास, रंगून। श्री जुगराज श्रीश्रीमाल, येवला।

सहायक—श्रीमती लीलादेवी चुनीलाल फूलपगर, पूना। श्रीमती पतासी-बाई धनराज कर्णावट, पूना। D. हिम्मतलाल एण्ड कं० बम्बई। श्री वीरचन्द हर्षचन्द मंडलेचा, श्रीचांदमल माणिकलाल मंडलेचा, येवला। श्री व० स्था० जैन संघ धरनगांव, हिंगोना। श्री धन जी भाई मूलचन्द दफ्तरी, वडाला। लाला सुमेरचन्द लक्ष्मीचन्द चन्द्रभान बम्बई, देहली। श्री शिवलाल गुलाबचंद, माटुंगा। श्री मणिलाल लक्ष्मीचन्द वोरा, दादर। श्री चिमनलाल सुखलाल गांधी, शिव-साइन। लाला कस्तूरीलाल वंशीलाल जैन, जम्मू-तवी। श्री अमरनाथ, न्यादरमल जैन, कटरा गौरीशङ्कर-देहली।

सदस्य—श्री धनराज दगड़ूराम संचेती, पूना। श्री फूलचन्द उत्तमचन्द कर्णावट, पूना। श्रीमती शांतादेवी फूलचन्द कर्णावट, पूना। श्री रूपचन्द दगड़ूराम मुथा, पूना। श्री चन्द्रभान रूपचन्द कर्णावट, पूना। श्री माणकचन्द राजमल बाफना, वड़गांव-पूना। श्री मणिलाल केशव जी खेनाणी, बम्बई। श्री रामलाल जैन, गुड़गावां। श्री पानाचंद डाह्याभाई, माटुंगा। श्री अमृतलाल अविचल महता, माटुंगा। डाक्टर चुनीलाल दाम जी वैद्य, बम्बई। श्री वेल जी कर्मचन्द कोठारी, बम्बई। श्री कान्तिलाल जे० गांधी, बम्बई। श्री नरभेराम मोरार जी मेहता, अम्बरनाथ। श्री भाईचन्द लाखानी, बम्बई। श्री केसरमल हजारीमल धाड़ीवाल, कोपरगांव। जैन संघ सोनई। मणिलाल रूपचन्द गांधी, बम्बई। त्रिकम जी लाधाजी, जुन्नरदेव। जैन संघ शाहादा। बख्तावरमल चान्दमल भंसाली, खेतिया। श्री धनराज रामचन्द पगारिया, हिंगोना। श्री कीमतराय जैन, B.A. दादर। श्री खींवराज आनन्दराम बांठिया, पनवेल। वेरसी नरसी, अंबोऊ-कच्छ। श्री शोभाचन्द घूमरमल बाफणा, घोड़नदी। श्री रविचन्द सुखलाल शाह, बम्बई। श्री भाण जी पालण छेड़ा, डोंबीवली। श्री रामलाल तिलकराज जैन, जम्मू। श्री बशेशरदयाल आनन्दस्वरूप जैन, गुड़गांवा- कैण्ट (हरियाना)। लाला जानकी-दास जैन, सोनीपत। लाला ज्योतिप्रसाद जैन, सोनीपत। लाला तुलसीराम परस-राम जैन खत्री, रोपड़। मास्टर लखमीचन्द-पाटोदी। बाबू बद्रीप्रसाद जैन, पोलीस इं० जम्मू-तवी। श्री शांतिलाल, तारदेव-बम्बई।

प्रस्तुत प्रकाशन में सहायक

	१. श्री सूत्रागमप्रकाशकसमिति	३०००)
स्तम्भ–	२. श्रीमती प्रकाशदेवी अग्रवाल (अपने पति स्वर्गीय श्री अमरनाथ अग्रवाल की पुण्य स्मृति में) हौज़ खास देहली।	२०००)
सहायक–	३. भगत हुकमचंद जैन, चावड़ी बाज़ार दिल्ली।	५००)
	४. प्रकाशचन्द जी जैन फर्म लाला कश्मीरीलाल महावीर-प्रसाद जैन गुणा वाले हाल शक्तिनगर देहली।	५००)
सदस्य–	५. मास्टर लखमीचन्द जैन पटौदी वाले हाल बहादुरगढ़ रोड देहली।	२५१)
	६. श्रीमती शर्बती देवी जैन डिप्टीगंज, देहली।	२५१)
	७. सेठ शीतलप्रसाद जैन, मेरठ।	२५१)
	८. सेठ हरिकिशनलाल अग्रवाल, मेरठ।	२५१)
	९. श्री प्रेमनाथ जी जैन, मेरठ।	२५१)
	१०. लाला प्यारेलाल ओमप्रकाश जैन, नयाबांस देहली	२५१)
	११. मिट्ठनलाल कालूराम जी जैन, पटौदी वाले, शांतिनगर दिल्ली।	२५०)
	१२. सेठ हरीराम पृथ्वीचन्द जैन, गली नत्थनसिंह पहाड़ी धीरज देहली।	२५०)
	१३. लाला रामचन्द होशियारसिंह जैन हिसार वाले हाल गुड़गांवा।	२५०)

अन्य सेवा प्रदायक

१. सेठ आनन्दराज जी सुराणा, चांदनी चौक देहली (टाइप सेवा)।

२. टेकचन्द जी जैन, रूपनगर दिल्ली (टाइप सेवा)।

३. लाला फूलकुमार जी अग्रवाल, नई सड़क देहली। (२० रिम कागज सेवा)

४. लाला मूलचन्द जी जैन, नया बांस देहली। (१० रिम कागज सेवा)

५. बाबू सुमतप्रकाश जी जैन कासन वाले। (५ रिम कागज सेवा)

सूयणा

एसो भगवइविवाहपण्णत्तिजुयत्थागमवीयंसो अम्हाण धम्मायरियाण गंधवहुव्व सव्वठाणसेच्छाचारीण णेगदेसापडिवद्धविहारीण दव्वओ उवहिणा भावओ कसायलहुयाण पुण्णपावसुब्भिदुब्भिगंधदंसाविराण केणवि अरुद्धाण संवेगवेरग्गसीयलवीइविसयकसायतावनासगाण भाणुव्व णाणकिरणेहि सम्मत्त-धम्मपगासगाण अणाइमिच्छत्तंधयारपणासगाण भव्वजणपउमवोहगाण तवतेयपदित्ताण सगुणतेयपासंडिगहणक्खत्ततारातेअलोवगाण तिरयणगुणसहस्सकिरणचउतित्थसोहियाण जलरुहंव कामचिक्खल्लभोगजलालित्ताण उवएससीयल-सुयंधभव्वपंथिसंतिसुहदायाराण वेसरूवजससुगंधरेहिराण उत्तमपुरिसदरिसण-सुज्जोदयवियसियाण तित्थयरआणरविसम्मुहठियाण धम्मसुक्कझाणदुगहिय-यसुद्धाण वसुहव्व सहिण्हूण खमाविणयअज्जवमद्दववेरग्गाइरयणधणधण्णपुण्णाण णाणधम्मवीउप्पत्तिकारणभूयाण सव्वपाणभूयजीवसत्ताधारभूयाण सग्गीयाण अज्जपरमपुज्जवंदणिज्जाण४ सिरि १०८ सिरिफकीरचंदमहारायाण धारणावव-हाराणुसारमत्थि। जइ दिट्ठिमुद्दणदोसाओ अक्खरजोजगदोसेण वा कत्थ वि कावि असुद्धी होज्जा सोहित्ता पढिज्जाह। इइ निवेएइ

गुरुकमधुअगाओ-पुप्फभिक्खू

सूचना

यह प्रकाशन मेरे धर्मगुरु धर्माचार्य १०८ परमपूज्य श्री फकीरचन्द्र जी महाराज (स्वर्गीय) के धारणा व्यवहार के अनुसार है, दृष्टि अथवा मुद्रणादि दोष से यदि कहीं कोई अशुद्धि रह गई हो तो सुधार कर पढ़ें, अपने मौलिक विचार व सम्मतियां समिति को भेजें।

गुरुचरणचंचरीक-पुप्फभिक्खू

निदर्शन[1]

समस्त जगत के प्राणी आत्मोत्थान की अभिलाषा करते हैं, यह आवश्यक भी है। क्यों कि भगवान् ने फर्माया है 'दुल्लहे खलु माणुसे भवे, अर्थात् मनुष्य-जन्म मिलना अत्यन्त कठिन है। चारों गतियों में मनुष्य गति ही सर्वश्रेष्ठ है क्यों कि इसी गति से जीव मुक्त हो सकता है। मनुष्य भव मिलने पर भी आर्य क्षेत्र मिलना अत्यन्त कठिन है। बहुत से ऐसे देश हैं जहां के लोग यह जानते ही नहीं कि धर्म किस चिड़िया का नाम है। आर्य क्षेत्र की प्राप्ति होने पर भी उत्तम कुल मिलना मुश्किल है। उत्तम कुल प्राप्त होने पर भी पांचों इन्द्रियों की प्रतिपूर्णता अर्थात् स्वस्थ शरीर मिलना कठिन है क्यों कि 'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्' अर्थात् स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क व स्वस्थ मस्तिष्क में ही स्वस्थ विचार पनप सकते हैं। इसीलिए तो भगवान् ने कहा कि—'जरा जाव न पीलेइ, वाही जाव न वड्ढई। जाविंदिया न हायंति, ताव धम्मं समायरे ॥ अर्थात् जब तक बुढ़ापा नहीं आता, व्याधियां नहीं घेरतीं, इन्द्रियों का बल क्षीण नहीं होता तब तक मनुष्य को आत्म-कल्याण कर लेना चाहिए। सर्वांग सुन्दर होने पर भी शास्त्र-श्रवण दुर्लभ है। क्यों कि श्रवण ही मोक्ष का सोपान है। कहा भी है—सवणे णाणे विण्णाणे,पच्चक्खाणे य संजमे। अणण्हए तवे चेव, वोदाणे अकिरिया सिद्धी ॥ अर्थात् सुनने से ही ज्ञान होता है। ज्ञान से विज्ञान अर्थात् हिताहित-स्वपर-स्वभाव-विभाव का बोध होता है। तत्पश्चात् जीव प्रत्याख्यान अर्थात् बुराईका त्याग करता है, संयम को अपनाता है। संयम से संवर होता है, अर्थात् कर्मोका आगमन रुक जाता है। तप के द्वारा कर्मक्षय व अक्रियभाव तत्पश्चात् मोक्ष प्राप्त होता है।

शास्त्र सुनने के अनन्तर भी उस पर श्रद्धा करना बहुत कठिन है। शास्त्रों में कहा है "तमेव सच्चं नीसंकं जं जिणेहिं पवेइयं" अर्थात् सर्वज्ञ भगवन्तों ने जो कुछ कहा है, वह परम सत्य है। यही वास्तविकता भी है। सम्यग्दर्शन-दृढ़श्रद्धान होना आवश्यक है, इसी लिए 'सम्यग्दर्शनज्ञानचरित्राणि मोक्षमार्गः' में सम्यग्-दर्शन को प्रथम स्थान दिया गया है। श्रद्धा होने पर भी उस पर आचरण करना कठिनतम है। जिसने मनुष्य जन्म पाकर भी आत्महित न किया उसका जीवन ही व्यर्थ है। आत्महित के लिए ही लोग प्रवचन-श्रवण-स्वाध्याय-तप-जप संयमादि कार्योंमें प्रवृत्त होते हैं, परन्तु धर्मक्रिया भी ज्ञान के बिना संपन्न नहीं हो सकती।

---

1. सम्पादकीय बृहत्प्रस्तावना के लिए देखिए 'अर्थागम खण्ड १'।

इसीलिए तो कहा है "हयं नाणं कियाहीणं, हया अन्नाणओ किया।" अर्थात् क्रियाशून्य ज्ञान निरर्थक है और ज्ञानरहित क्रिया व्यर्थ है। इसीलिए तो भगवान् ने फर्माया है कि 'पढमं णाणं, तओ दया' अर्थात् पहले ज्ञान है पीछे क्रिया।

कहा भी है—नाणं मोहमहंधयारलहरीसंहारसूरुग्गमो,
नाणं दिट्ठअदिट्ठइट्ठघडणो संकप्पकप्पद्दुमो।
नाणं दुज्जयकम्मकुंजरघडापंचत्तपंचाणणो,
नाणं जीवअजीववत्थुविसरस्सालोयणे लोयणं॥

अर्थात् ज्ञान मोह महान्धकार के नष्ट करने में सूर्यके समान है। मनोवांछित वस्तु को प्राप्त कराने में कल्पवृक्ष के सदृश है। कर्मरूपी हाथीको पछाड़ने में सिंह के जैसा है। जीवाजीवादि पदार्थों के अवलोकन के लिए नेत्ररूप है।

वह ज्ञान पांच प्रकार का है-मतिज्ञान-बुद्धि, श्रुतज्ञान-शास्त्रों का ज्ञान, अवधिज्ञान-अमुक क्षेत्र तक रूपी पदार्थों का ज्ञान, मनःपर्यवज्ञान—दूसरेकी मनकी बातों को जान लेना, केवलज्ञान जिसे सम्पूर्णज्ञान व ब्रह्म ज्ञान कहते हैं। इसमें हस्तामलकवत् सभी पदार्थ ज्ञात व दृष्टिगोचर होते है। इन पांचों ज्ञानों में भव्य जीवों का उपकारक होने के कारण श्रुतज्ञानका विशिष्ट स्थान है। श्रुत-सिद्धान्त-सूत्र-शास्त्र-आगम ये सब पर्यायवाची शब्द हैं। आगम तीन प्रकार का है-सूत्रागम, अर्थागम, तदुभयागम। यह उत्तम जिज्ञासु मुमुक्षुओं व गुणग्राहक सज्जनों के लिए अनुपम ज्ञानसाधन है।

चित्तकी चंचलताको रोकने का सर्वोत्तम उपाय स्वाध्याय है। इसीलिए श्रमण भगवान् ज्ञातपुत्र महावीर स्वामीने चारों कालोंमें स्वाध्याय करने की आज्ञा दी है और फर्माया है 'सज्झाएणं जीवो णाणावरणिज्जं कम्मं खवेइ।' आज तक जितने सूत्र प्रकाशित हुए हैं उनमें भार बहुत है। साधु-साध्वी गण उन्हें विहारमें साथ नहीं रख सकते। प्रत्येक स्थान पर पुस्तकालय नहीं होता कि मुनिगण जब जिस सूत्रकी स्वाध्याय करना चाहें वे उसे प्राप्त कर सकें। इसी उद्देश्य को लक्ष्य में रख कर पूज्य गुरुदेवने दो जिल्दोंमें बत्तीसों सूत्रोंका शुद्ध मूल-पाठ 'सुत्तागमे' के रूपमें सम्पादित किया व सूत्रागमप्रकाशकसमिति द्वारा प्रकाशित हुआ। जिसके संबंधमें देश व विदेशके अनेक विद्वानोंने अपनी शुभ सम्मतियां❀ प्रेषित की हैं। अर्थागम ११ अंगोंको भी उसी प्रकार एक जिल्दमें प्रकाशित करनेकी योजना थी। परन्तु ग्रन्थ का आकार बढ़ जाने से प्रस्तुत प्रकाशनके तीन खण्ड करने पड़े।

यह जो महाग्रन्थ आपके करकमलोंमें विद्यमान है यह अर्थागम-एकादशांग का द्वितीय खण्ड है। इसमें सम्पूर्ण भगवती सूत्रका हिन्दी अनुवाद है। वर्तमान

❀सम्मतियोंके लिए देखिए 'अर्थागम खण्ड १।'

युगमें हिन्दी की महत्ता किसीसे छिपी नहीं। हिन्दी भारतकी राष्ट्रभाषा है और करोड़ों लोग इसे बोलते व लिखते पढ़ते हैं। इसीलिए पूज्य गुरुदेवने अर्थागम का संपादन कार्य प्रारंभ किया ताकि सर्व साधारण जैन शास्त्रोंका लाभ उठा सके।

भगवतीसूत्र हमारे अंगसूत्रोंमें या यों कहिए सभी सूत्रोंमें सबसे बड़ा है। इसे व्याख्याप्रज्ञप्ति भी कहते हैं। यदि इसे ज्ञानका सागर कहा जाय तो भी कोई अतिशयोक्ति नहीं। कोई ऐसा विषय नहीं जो इससे अछूता रह गया हो। चारों अनुयोग अर्थात् चरित्र, द्रव्य, गणित, आचार, तथा खगोल-ज्योतिष, भूगोल, गणित, रसायनशास्त्र, प्राणिविज्ञान, पदार्थ, इतिहास जो ढंढ़ना हो इसमें मिलेगा। भगवती सूत्रमें मुख्य रूपसे गौतम स्वामी द्वारा भगवान् महावीरसे पूछे गए ३६००० प्रश्नोंके उत्तर हैं। इनके अतिरिक्त रोह अनगार, अग्निभूति, वायु-भूति, माकन्दिपुत्र, अन्यतीर्थी, तत्कालीन श्रावक-श्राविकाओंके प्रश्न व भगवान् महावीर द्वारा प्रदत्त उत्तर भी हैं। कहीं कहीं पुनरुक्ति भी दिखाई देगी, परन्तु प्रश्न को समझानेसे पहले उसकी पृष्ठभूमि तो बतानी ही पड़ती है।

भगवती सूत्रमें विषयोंकी व्याख्या आचारांग-स्थानांग आदि की तरह से निश्चितानुक्रमसे नहीं है। परन्तु जब भी गौतम स्वामीके मनमें जिज्ञासा हुई, उन्होंने भगवान्से प्रश्न पूछे व भगवान् ने उनका उचित समाधान किया। संकलन-कर्ताओंने उसी प्रकार उन प्रश्नोत्तरोंको लिपिबद्ध कर दिया।

अथवा इसमें प्रतिपादित विषयोंका हम इस प्रकार विभाजन कर सकते हैं—

१. प्रथमा(चरिता)नुयोग—रोह अनगार, स्कंदक, तामली तापस, शिव-राजर्षि, महाबल, ऋषभदत्त देवानन्दा, जमालि, गांगेय अनगार, अतिमुक्तकुमार श्रमण, गोशालक, उदायन, मृगावती जयंती श्राविका, सोमिल ब्राह्मण आदि के चरित्र।

२. द्रव्यानुयोग—षड्द्रव्य-पदार्थ-वर्णन।

३. गणितानुयोग—इसे सिद्धान्तोंका अंकगणित भी कहा जा सकता है। एकसंयोगी, द्विकसंयोगी आदि भांगे, प्रवेशनक राशि इत्यादि।

४. चरणकरणानुयोग—साधु-साध्वियोंके आचार-नियम आदि, सुसाधु-असाधुके लक्षण। इसके अतिरिक्त सैद्धान्तिक, पारलौकिक, भौगोलिक, ज्योतिष-संबंधी व विविध कुतूहलोत्पादक प्रश्नोत्तर भी हैं।

भगवतीसूत्रका अधिकांश भाग स्वर्ग-नर्कके वर्णनसे भरा पड़ा है। वैदिक धर्म वाले हिन्दू लोग तथा बौद्ध भी स्वर्ग नर्क मानते हैं। वर्तमान युग में बहुतसे लोग कहते हैं स्वर्ग-नर्क है ही नहीं और यह कोरी कल्पना है। परन्तु सर्वज्ञोंने स्वर्ग-नर्कको सबसे अधिक महत्व दिया है। इसमें भी गुप्त रहस्य है। यदि हम आत्माको मानते हैं, तो हमें स्वर्ग-नर्क भी मानने ही होंगे। नर्क स्वर्ग न मानने पर आत्मा, कर्म, मोक्ष आदि सभी सिद्धान्तों कि इति हो जाती है। जैन धर्म की मान्यताएं ही समाप्त हो जाती हैं, और वास्तवमें नर्क-स्वर्ग हैं, इनसे

इन्कार नहीं किया जा सकता× । भगवती सूत्रका विषय बड़ा गहन है । जिसने अन्य सूत्रों, कर्मग्रन्थों, थोकड़ों—बोल संग्रहों आदि का अभ्यास किया हो वही इसका पूरा लाभ उठा सकता है । यद्यपि तात्त्विक विषय नीरस प्रतीत होता है, तथापि उसका आनन्द वर्णनातीत है ।

प्रस्तुत प्रकाशन की विशेषताएं—(१) कठिन शब्दोंके विशेषार्थ टिप्पणमें दे दिए गए हैं ताकि पाठकगण सरलतापूर्वक समझ सकें ।

(२) पुनरुक्तिसे बचनेके लिए········चिन्ह का प्रयोग किया गया है अर्थात् पहले जैसा समझें ।

(३) स्पष्टीकरण टिप्पण व कोष्ठकमें दे दिए गए हैं ।

(४) पाठशुद्धिका पूरा पूरा लक्ष्य रक्खा गया है ।

(५) इसका सम्पादन शुद्ध प्रतियोंके आधार पर किया गया है ।

(६) पाठान्तर भी यथास्थान दे दिए गए हैं ।

(७) अन्तमें १ अकारादि अनुक्रमणिका व शुद्धिपत्र भी दे दिया गया है ।

प्रस्तुत प्रकाशनकी योजना आजसे लगभग चार वर्ष पूर्व बनी । परन्तु कारण-वश २ इसमें विलम्ब हुआ । गुरुदेव का स्वास्थ्य अब भी पूर्णरूपसे ठीक नहीं है, फिर भी लेखन, संशोधनमें लगे ही रहते हैं । आंखका आपरेशन हुआ । डाक्टरों ने पढ़ने लिखनेकी मनाई की । परन्तु आपने सम्पादन कार्यमें व्यवधान न आने दिया, आपका गुणानुवाद जितना किया जाय थोड़ा है । आपकी प्रबल पुनीत प्रेरणा का ही प्रभाव है कि प्रस्तुत प्रकाशन द्रुतगतिसे इस रूपमें प्रकाशित हो सका ।

इसके अतिरिक्त जिन जिन महानुभावोंके प्रकाशनोंसे सहायता ली गई है तथा जिन जिन धर्मप्रेमियों ने प्रत्यक्ष व परोक्ष रूपसे इस प्रकाशनमें सहायता देकर जिनवाणीकी सेवा की है । वे सब धन्यवादके पात्र हैं ।

गुरुदेव के अस्वस्थ होनेके कारण प्रूफसंशोधनादि का अधिकांश भार मेरे व त्रिपाठी जी पर रहा । अतएव यदि कहीं कोई त्रुटि रह गई हो तो वह हमारी समझी जाय । सुज्ञगण सुधार कर पढ़ें क्योंकि 'संत हंस पय गुन गहहिं परिहरि वारि विकार' अर्थात् सज्जन लोग हंसकी तरह दूध रूपी गुणको ग्रहण करते हैं व जलरूपी दोष को छोड़ देते हैं ।

अलमतिविस्तरेण
गुरुपदकमलभ्रमर
सुमित्तभिक्खू

दीपावली
प्रकाश भवन, १२,१३ माडलबस्ती
रानी झांसी मार्ग, नई दिल्ली ५.

× विशेष जिज्ञासु समिति द्वारा प्रकाशित 'राजप्रश्नीय सूत्र' देखें ।
१ पारिभाषिक शब्दकोषके लिए प्रथम खण्ड देखें ।
२ देखिए प्रकाशकीय प्रथम खण्ड ।

युगमें हिन्दी की महत्ता किसीसे छिपी नहीं। हिन्दी भारतकी राष्ट्रभाषा है और करोड़ों लोग इसे बोलते व लिखते पढ़ते हैं। इसीलिए पूज्य गुरुदेवने अर्थागम का संपादन कार्य प्रारंभ किया ताकि सर्व साधारण जैन शास्त्रोंका लाभ उठा सके।

भगवतीसूत्र हमारे अंगसूत्रोंमें या यों कहिए सभी सूत्रोंमें सबसे बड़ा है। इसे व्याख्याप्रज्ञप्ति भी कहते हैं। यदि इसे ज्ञानका सागर कहा जाय तो भी कोई अतिशयोक्ति नहीं। कोई ऐसा विषय नहीं जो इससे अछूता रह गया हो। चारों अनुयोग अर्थात् चरित्र, द्रव्य, गणित, आचार, तथा खगोल-ज्योतिष, भूगोल, गणित, रसायनशास्त्र, प्राणिविज्ञान, पदार्थ, इतिहास जो ढंढ़ना हो इसमें मिलेगा। भगवती सूत्रमें मुख्य रूपसे गौतम स्वामी द्वारा भगवान् महावीरसे पूछे गए ३६००० प्रश्नोंके उत्तर हैं। इनके अतिरिक्त रोह अनगार, अग्निभूति, वायु-भूति, माकन्दिपुत्र, अन्यतीर्थी, तत्कालीन श्रावक-श्राविकाओंके प्रश्न व भगवान् महावीर द्वारा प्रदत्त उत्तर भी हैं। कहीं कहीं पुनरुक्ति भी दिखाई देगी, परन्तु प्रश्न को समझानेसे पहले उसकी पृष्ठभूमि तो बतानी ही पड़ती है।

भगवती सूत्रमें विषयोंकी व्याख्या आचारांग-स्थानांग आदि की तरह से निश्चितानुक्रमसे नहीं है। परन्तु जब भी गौतम स्वामीके मनमें जिज्ञासा हुई, उन्होंने भगवान्से प्रश्न पूछे व भगवान् ने उनका उचित समाधान किया। संकलन-कर्ताओंने उसी प्रकार उन प्रश्नोत्तरोंको लिपिबद्ध कर दिया।

अथवा इसमें प्रतिपादित विषयोंका हम इस प्रकार विभाजन कर सकते हैं—

१. प्रथमा(चरिता)नुयोग—रोह अनगार, स्कंदक, तामली तापस, शिव-राजर्षि, महाबल, ऋषभदत्त देवानन्दा, जमालि, गांगेय अनगार, अतिमुक्तकुमार श्रमण, गोशालक, उदायन, मृगावती जयंती श्राविका, सोमिल ब्राह्मण आदि के चरित्र।

२. द्रव्यानुयोग—षड्द्रव्य-पदार्थ-वर्णन।

३. गणितानुयोग—इसे सिद्धान्तोंका अंकगणित भी कहा जा सकता है। एकसंयोगी, द्विकसंयोगी आदि भांगे, प्रवेशनक राशि इत्यादि।

४. चरणकरणानुयोग—साधु-साध्वियोंके आचार-नियम आदि, सुसाधु-असाधुके लक्षण। इसके अतिरिक्त सैद्धान्तिक, पारलौकिक, भौगोलिक, ज्योतिष-संबंधी व विविध कुतूहलोत्पादक प्रश्नोत्तर भी हैं।

भगवतीसूत्रका अधिकांश भाग स्वर्ग-नर्कके वर्णनसे भरा पड़ा है। वैदिक धर्म वाले हिन्दू लोग तथा बौद्ध भी स्वर्ग नर्क मानते हैं। वर्तमान युग में बहुतसे लोग कहते हैं स्वर्ग-नर्क है ही नहीं और यह कोरी कल्पना है। परन्तु सर्वज्ञोंने स्वर्ग-नर्कको सबसे अधिक महत्व दिया है। इसमें भी गुप्त रहस्य है। यदि हम आत्माको मानते हैं, तो हमें स्वर्ग-नर्क भी मानने ही होंगे। नर्क स्वर्ग न मानने पर आत्मा, कर्म, मोक्ष आदि सभी सिद्धान्तों कि इति हो जाती है। जैन धर्म की मान्यताएं ही समाप्त हो जाती हैं, और वास्तवमें नर्क-स्वर्ग हैं, इनसे

इन्कार नहीं किया जा सकता× । भगवती सूत्रका विषय बड़ा गहन है । जिसने अन्य सूत्रों, कर्मग्रन्थों, थोकड़ों—बोल संग्रहों आदि का अभ्यास किया हो वही इसका पूरा लाभ उठा सकता है । यद्यपि तात्विक विषय नीरस प्रतीत होता है, तथापि उसका आनन्द वर्णनातीत है ।

प्रस्तुत प्रकाशन की विशेषताएं—(१) कठिन शब्दोंके विशेषार्थ टिप्पणमें दे दिए गए हैं ताकि पाठकगण सरलतापूर्वक समझ सकें ।

(२) पुनरुक्तिसे बचनेके लिए········चिन्ह का प्रयोग किया गया है अर्थात् पहले जैसा समझें ।

(३) स्पष्टीकरण टिप्पण व कोष्ठकमें दे दिए गए हैं ।

(४) पाठशुद्धिका पूरा पूरा लक्ष्य रक्खा गया है ।

(५) इसका सम्पादन शुद्ध प्रतियोंके आधार पर किया गया है ।

(६) पाठान्तर भी यथास्थान दे दिए गए हैं ।

(७) अन्तमें १ अकारादि अनुक्रमणिका व शुद्धिपत्र भी दे दिया गया है ।

प्रस्तुत प्रकाशनकी योजना आजसे लगभग चार वर्ष पूर्व बनी । परन्तु कारण-वश २ इसमें विलम्ब हुआ । गुरुदेव का स्वास्थ्य अब भी पूर्णरूपमे ठीक नहीं है, फिर भी लेखन, संशोधनमें लगे ही रहते हैं । आंखका आपरेशन हुआ । डाक्टरों ने पढ़ने लिखनेकी मनाई की । परन्तु आपने सम्पादन कार्यमें व्यवधान न आने दिया, आपका गुणानुवाद जितना किया जाय थोड़ा है । आपकी प्रबल पुनीत प्रेरणा का ही प्रभाव है कि प्रस्तुत प्रकाशन द्रुतगतिसे इस रूपमें प्रकाशित हो सका ।

इसके अतिरिक्त जिन जिन महानुभावोंके प्रकाशनोंसे सहायता ली गई है तथा जिन जिन धर्मप्रेमियों ने प्रत्यक्ष व परोक्ष रूपसे इस प्रकाशनमें सहायता देकर जिनवाणीकी सेवा की है । वे सब धन्यवादके पात्र हैं ।

गुरुदेव के अस्वस्थ होनेके कारण प्रूफसंशोधनादि का अधिकांश भार मेरे व त्रिपाठी जी पर रहा । अतएव यदि कहीं कोई त्रुटि रह गई हो तो वह हमारी समझी जाय । सुज्ञगण सुधार कर पढ़ें क्योंकि 'संत हंस पय गुन गहहिं परिहरि वारि विकार' अर्थात् सज्जन लोग हंसकी तरह दूध रूपी गुणको ग्रहण करते हैं व जलरूपी दोष को छोड़ देते हैं ।

अलमतिविस्तरेण
गुरुपदकमलभ्रमर
सुमित्तभिक्खू

दीपावली
प्रकाश भवन, १२,१३ माडलबस्ती
रानी झांसी मार्ग, नई दिल्ली ५.

×विशेष जिज्ञासु समिति द्वारा प्रकाशित 'राजप्रश्नीय सूत्र' देखें ।

१ पारिभाषिक शब्दकोषके लिए प्रथम खण्ड देखें ।

२ देखिए प्रकाशकीय प्रथम खण्ड ।

भगवती सूत्र-विषयानुक्रमणिका

अर्थागम-द्वितीय खण्ड

परिशिष्ट नं० १

अकारादि अनुक्रमणिका

अर्थागम-द्वितीय खण्ड

परिशिष्ट नं० १

अकारादि अनुक्रमणिका

परिशिष्ट नं० २

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	अशुद्ध	शुद्ध
५१०	उद्वर्तना	उद्वर्तना
५१५	कहन	कहना
५२५	प्रकर	प्रकार
५२६	वदते	वेदते
५३०	अर्थागम	अर्थागम
५३३	हुंण्ड	हुण्ड
५४२	गभ विचार	गर्भ विचार
५४४	वंघे	वंधे
५४७	पाछे से	पीछे से
५४८	अशेशी	अशैलेशी
५४६	का	कहा
५५४	वन्धन	वन्धन
५६१	कृतागला	कृतांगला
५६६	सूर्य	सूर्य
५७१	महावोर स्वामो	महावीर स्वामी
५७८	धम का	धर्म का
५८२	दर्शनीय	दर्शनीय
५८६	धमारितकाय	धर्मास्तिकाय
५६१	वर्णन	वर्णन
५६८	आर्य	आर्य
६०१	निर्वतनिक	निर्वर्तनिक
६०२	सिंधाड़े	सिंघाड़े
६०७	सौधर्म	सौधर्म
६१४	वीचो	बीचो-
६२२	हो	ही
६२६	देंखता	देखता
६३४	पर्यु पासना	पर्युपासना
६४६	प्रश्नोत्र	प्रश्नोत्तर
६५८	धनुधर	धनुर्धर
६६६	टकड़ा	टुकड़ा
६६७	भगवन्	भगवन् !
६६६	आदेश	क्षेत्रादेश
६६१	वर्ण	वर्ण
६६६	हें	हों
७०१	सा थ	साथ
७४१	संस्थान	संस्थान
७४२	शरी'	शरीर
७४६	अथव ।	अथवा
७५२	गर्भज	गर्भज
७५४	वर्पधर	वर्पधर
७५६	हें	हैं
७७४	टुवड़े	टुकड़े
७७७	कोष्ठोपगत	कोष्ठोपगत
८००	गौतम	गौतम !
,,	करन से	करने से
८१५	नैरयिक भवो से	नैरयिक भवों से
८३१	नरयिकों	नैरयिकों
८४०	अ ोक	अनेक
८४२	वेभव	वैभव
८५१	गोशोर्प	गोशीर्ष
८५४	किंचित्	किंचित्
८५६	नही	नहीं
८६०	श्वासोच्छ्वास	श्वासोच्छ्वास
८६१	देवां की	देवों की
८६४	गथे	गये

पृष्ठ	अशुद्ध	शुद्ध
८६८	द्रव्यार्थिक	द्रव्यार्थिक
८७९	अन्तमु हूर्त	अन्तमु हूर्त
८८३	सेन्यादिक	सैन्यादिक
८८४	मगवती	भगवती
८८९	क्षत्रलोक	क्षेत्रलोक
८९०	त्यादि	इत्यादि
८९६	मैं	मैंने
८९९	यावत्	यावत्
९०४	कर	करने
९०५	दवों की	देवों की
९१०	उ ०१	उ० १
९११	कह्	कहने
९१४	जीवों	जीवों
९१७	वि भाग	विभाग
९३८	नरव	नरदेव
९४०	भवनपति.	भवनपति,
९५४	मगवती	भगवती
९५५	भगवता	भगवती
९६०	गहग	ग्रहण
९६८	प्रकार हैं	प्रकार है
९९९	उद्ध त	उद्धृत
१०००	वर्षाऋतु	वर्षा ऋतु
,,	मंखप	मंखपने
१००८	व ने	वने
१०१२	पंज्ञी	संज्ञी
१०१४	नहीं हैं	नहीं है
१०१६	लिय	लिये
१०२२	कह र	कह कर
१०३३	भगवता	भगवती
१०३६	अवैतन्यकृत	अचैतन्यकृत
१०४५	उदारकीर्ति	उदारकीर्ति
१०४८	एकेन्द्रियोंकें	एकेन्द्रियों के
,,	सौधम	सौधर्म
१०५४	धर्माधर्मी	धर्माधर्मी
१०५९	पाच	पांच
१०६९	पृथ्व्नीकाय	पृथ्वीकाय
१०७३	हो े	होने
१०७४	द्विप्रेशिक	द्विप्रदेशिक
१०७८	उ ०८	उ० ८
१०८४	स्पर्श	स्पर्श
१०८७	दण्डकयी	दण्डकीय
११२०	थिति	स्थिति
११३१	त था	तथा
११४२	जसै	जैसे
११४४	ज्योतिषीकोपपातादिज्यो-	तिषिको०
११५०	याग	योग
११५१	ह गौतम	हे गौतम !
११७०	स र्वाश	सर्वांश
११७१	नका	उनका
,,	ष्कंप	सकंप निष्कंप
११८६	हौं	हों
११९१	पूर्वकोटी	पूर्वकोटी
१२००	गौतम	गौतम !
१२०१	विभंगज्ञानो	विभंगज्ञानी
१२१३	अ र्थाम	अर्थागम
१२१९	१२१९	उपपात
१२२०	जाने	जानें
१२३०	तेजस्कायिवों	तेजस्कायिकों
१२३२	उत्पन्न	उत्पन्न
१२४०	तने	कितने
१२४५	छठां	छठा
१२४६	याअसंख्याता	या असंख्याता
१२५१	चेन्द्रिय	पंचेन्द्रिय
१२५६	ि अथगम	अर्थागम

नमोत्थु णं समणस्स भगवओ णायपुत्तमहावीरस्स

अर्थागम

श्री भगवती सूत्र

मंगलाचरण

अरिहन्त भगवान्‌को नमस्कार, सिद्ध भगवान्‌को नमस्कार, आचार्य महाराजको नमस्कार, उपाध्याय महाराजको नमस्कार, लोकमें सब साधुओंको नमस्कार ॥१॥ ब्राह्मीलिपि-कर्त्ताको नमस्कार ॥२॥ श्रुत (ज्ञान) को नमस्कार ॥३॥ प्रथमशतक–संग्रहगाथार्थ—राजगृह नगरमें चलन, दुःख, कांक्षाप्रदोप, प्रकृति, पृथ्वियाँ, जितने, नैरयिक, वाल, गुरुक और चलनादि।

प्रथम शतक प्रथम उद्देशक

उस काल उस समयमें राजगृह नामका नगर था। उसका वर्णन कर देना चाहिए। उस राजगृह नगरके वाहर उत्तर-पूर्व दिशाभाग अर्थात् ईशान कोणमें गुणशिलक नामका उद्यान था। श्रेणिक राजा था। चेलना नामकी रानी थी ॥४॥

उस काल उस समय श्रमण भगवान् महावीर आदिकर-श्रुतकी आदि करने वाले, तीर्थङ्कर-प्रवचन तथा चतुर्विध संघ रूप तीर्थको स्थापित करने वाले, स्वयं तत्त्वोंके ज्ञाता, पुरुषोंमें उत्तम, पुरुषोंमें सिंहके समान, पुरुषोंमें उत्तम कमलके समान, पुरुषोंमें उत्तमगन्धहस्तीके समान, लोकोंमें उत्तम, लोकनाथ, लोकहितकर, लोकमें दीपकके समान, लोकमें प्रद्योत करने वाले, अभयदाता, चक्षुदाता——ज्ञान रूप नेत्रोंके देने वाले, मार्गदाता—मोक्ष रूप मार्गके देने वाले, शरण-दाता-वाधारहित स्थान अर्थात् निर्वाणके देने वाले, समकितके देने वाले, धर्म-दाता, धर्मोपदेशके देने वाले, धर्मनायक, धर्मरूप रथके सारथी, धर्मके विषयमें उत्तम चातुरन्त चक्रवर्तीके समान, अप्रतिहत उत्तम ज्ञान और दर्शनके धारण करने वाले, छद्मस्थतासे निवृत्त, रागद्वेषके जीतने वाले, ज्ञायक—सकल तत्त्वोंके जानने वाले, वुद्ध, वोधक-तत्त्वोंका वोध कराने वाले, मुक्त—बाह्याभ्यन्तर ग्रन्थिसे मुक्त, ग्रन्थिसे मुक्त कराने वाले, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, इन गुणोंसे युक्त श्रमण भगवान् महावीर स्वामी, कल्याण, अचल, रोगरहित, अनन्त, अक्षय, बाधा-पीड़ा

रहित, पुनरावृत्ति रहित, सिद्धिगति नामक स्थानको प्राप्त करनेकी इच्छा वाले, विचरते थे। यावत् समवसरण तकका वर्णन जान लेना चाहिए ॥५॥ उस समय परिषद् वन्दन और धर्मश्रवणके लिए निकली। भगवान्ने धर्म कहा। परिषद् वापिस चली गई ॥६॥

उस काल उस समयमें श्रमण भगवान् महावीरके सबसे बड़े प्रथम शिष्य इन्द्रभूति अनगार थे। उनका गोत्र गौतम था। उनका शरीर सात हाथ ऊँचा था। उनका संस्थान समचतुरस्र-समचौरस था। उनका संहनन-वज्र-ऋषभ-नाराच था। कसौटी पर खींची हुई सोनेकी रेखाके समान तथा कमलकी केशरके समान वे गौर वर्ण थे। वे उग्र तपस्वी, दीप्त तपस्वी, तप्त तपस्वी, महातपस्वी, उदार, कर्मशत्रुओंके लिए घोर, घोर गुण वाले, घोर तपस्वी, घोर ब्रह्मचर्यके पालन करने वाले, अतएव शरीर-संस्कारके त्यागी थे। दूर २ तक फैलने वाली विपुल तेजोलेश्याको उन्होंने अपने शरीरमें संक्षिप्त कर रक्खा था। वे चौदहँ पूर्वके ज्ञाता थे। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्यय, इन चार ज्ञानों के धारक थे और सर्वाक्षर सन्निपाती थे। वे श्रमण भगवान् महावीर स्वामीके न बहुत दूर और न बहुत नजदीक, ऊर्ध्वजानु और अधःशिर होकर अर्थात् दोनों घुटनोंको खड़े करके एवं शिरको कुछ नीचेकी तरफ झुकाकर ध्यानरूपी कोष्ठकमें प्रविष्ट होकर संयम और तपसे अपनी आत्माको भावित करते हुए विचरते थे ॥७॥

तब जात श्रद्धा वाले, जात-संशय, जात-कुतूहल, उत्पन्न श्रद्धा वाले, उत्पन्न संशय वाले, उत्पन्न कुतूहल वाले, संजात श्रद्धा वाले, संजात संशय वाले, संजात कुतूहल वाले, समुत्पन्न श्रद्धा वाले, समुत्पन्न संशय वाले, समुत्पन्न कुतूहल वाले, भगवान् गौतम स्वामी उत्थान द्वारा खड़े हुए, उत्थान द्वारा खड़े होकर जहाँ पर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी थे वहाँ गए, जाकर भगवान् महावीर स्वामीको तीन बार दक्षिणकी तरफसे प्रदक्षिणा की और वंदना नमस्कार किया, वंदना नमस्कार करके बहुत नजदीक नहीं और बहुत दूर भी नहीं किन्तु यथोचित स्थान पर रहकर शुश्रूषा करते हुए भगवान्के वचनोंको सुननेकी इच्छा करते हुए नमस्कार करते हुए भगवान्के सन्मुख विनयपूर्वक दोनों हाथ जोड़कर पर्युपासना करते हुए इस प्रकार बोले—भगवन्! जो चल रहा है वह चला, जो उदीरा जा रहा है वह उदीरा गया, जो वेदा जा रहा है वह वेदा गया, जो गिर रहा है वह गिरा, जो छिद रहा है वह छिदा, जो भिद रहा है वह भिदा, जो जल रहा है वह जला, जो मर रहा है वह मरा और जो निर्जर रहा है वह निर्जरा, क्या इस प्रकार कहा जा सकता है? हाँ, गौतम! जो चल रहा है वह चला यावत् जो निर्जर रहा है वह निर्जरा, इस प्रकार कहा जा सकता है। भगवन्!

ये नौ पद क्या एक अर्थ वाले, नाना प्रकारके घोष वाले और नाना प्रकारके व्यञ्जन वाले हैं ? अथवा नाना अर्थ वाले, नाना घोष वाले और विविध प्रकार के व्यञ्जन वाले हैं ? गौतम ! चलमान चलित, उदीर्यमाण उदीरित, वेद्यमान वेदित, प्रहीयमाण प्रहीण, ये चार पद उत्पन्न पक्षकी अपेक्षासे एकार्थक हैं, नाना घोष वाले हैं और नाना व्यञ्जन वाले हैं। छिद्यमान छिन्न, भिद्यमान भिन्न, दह्यमान दग्ध, म्रियमाण मृत और निर्जीर्यमाण निर्जीर्ण, ये पांच पद विगत पक्ष की अपेक्षा नाना अर्थ वाले, नाना घोष वाले और नाना व्यञ्जन वाले हैं ।।८।।

भगवन् ! नैरयिकोंकी स्थिति कितने काल की कही गई है ? गौतम ! जघन्य दस हजार वर्षकी और उत्कृष्ट तेंतीस सागरोपमकी स्थिति कही गई है। भगवन् ! नैरयिक कितने कालमें श्वास लेते हैं और कितने काल में श्वास छोड़ते हैं ? कितने कालमें उच्छ्वास लेते हैं और कितने कालमें निःश्वास छोड़ते हैं। गौतम ! पन्नवणा सूत्रके उच्छ्वास पदके अनुसार समझना चाहिए। भगवन् ! क्या नैरयिक जीव आहारार्थी हैं ? गौतम ! पन्नवणा सूत्रके अट्ठाइसवें आहार पदके पहले उद्देशेकी तरह जानना चाहिए। नैरयिक जीवोंकी स्थिति, उच्छ्वासों तथा आहार संबन्धी कथन करना चाहिए। नैरयिक क्या आहार करते हैं ? क्या वे समस्त प्रदेशोंसे आहार करते हैं ? वे कितने भागका आहार करते हैं ? क्या वे समस्त आहारक द्रव्यों का आहार करते हैं ? और वे आहार के द्रव्योंको किस रूप में वारम्वार परिणमाते हैं ?···।। १ ।। ९ ।।

भगवन् ! क्या नारकी जीवोंके पहले आहार किये हुए पुद्गल परिणत हुए हैं ? क्या आहार किये हुए तथा वर्तमानमें आहार किये जाते हुए पुद्गल परिणत हुए हैं ? क्या जो पुद्गल आहार नहीं किये गये हैं वे और जो आगे आहाररूपमें ग्रहण किये जावेंगे वे परिणत हुए हैं ? क्या जो पुद्गल आहाररूपसे ग्रहण नहीं किये गये हैं और आगे भी आहार रूपसे ग्रहण नहीं किये जावेंगे वे पुद्गल परिणत हुए हैं ? गौतम ! (१) नारकी जीवोंके पहले आहार किये हुए पुद्गल परिणत हुए हैं। (२) आहार किये हुए पुद्गल परिणत हुए हैं और आहार किये जाते हुए पुद्गल परिणत होते हैं। (३) अनाहारित अर्थात् जो पुद्गल आहाररूपसे ग्रहण नहीं किये गये हैं वे परिणत नहीं हुए हैं और जो पुद्गल आगे आहार रूप से ग्रहण किये जावेंगे वे परिणत होंगे। (४) अनाहारित-जो पुद्गल आहार रूपसे ग्रहण नहीं किये गए हैं वे परिणत नहीं हुए हैं और जो पुद्गल आगे आहाररूपसे ग्रहण नहीं किये जायेंगे वे परिणत नहीं होंगे ।।१०।।

भगवन् ! क्या नारकी जीवों के पहले आहार किये हुए पुद्गल चित अर्थात् चयको प्राप्त हुए हैं ? इत्यादि रूपसे प्रश्न करना चाहिए, जिस प्रकार 'परिणत'का कहा उसी प्रकार चित, उपचित, उदीरित, वेदित और निर्जीर्णको

भी कह देना चाहिए। परिणत, चित, उपचित, उदीरित, वेदित और निर्जीण इस एक २ पदमें पुद्गल विषयक चार-चार प्रकारके प्रश्नोत्तर होते हैं ॥१॥११॥

भगवन् ! नैरयिक जीवों द्वारा कितने प्रकारके पुद्गल भेदे जाते हैं ? गौतम ! कर्म द्रव्य वर्गणाकी अपेक्षा दो प्रकारके पुद्गल भेदे जाते हैं। वे इस प्रकार हैं–अणु और बादर। भगवन् ! नैरयिक जीव कितने प्रकारके पुद्गलोंका चय करते हैं ? गौतम ! आहार द्रव्य वर्गणाकी अपेक्षा से दो प्रकारके पुद्गलोंका चय करते हैं। वे इस प्रकार हैं–अणु और बादर। इसी तरहसे दो प्रकारके पुद्गलोंका उपचय भी करते हैं। भगवन् ! नैरयिक जीव कितने प्रकार के पुद्गलों की उदीरणा करते हैं ? गौतम ! कर्म-द्रव्य-वर्गणाकी अपेक्षासे दो प्रकारके पुद्गलोंकी उदीरणा करते हैं। वे इस प्रकार हैं-अणु और बादर। शेष पद भी इसी प्रकार कहने चाहिएं-वेदते हैं और निर्जरा करते हैं। उद्वर्तना अपवर्तना की, उद्वर्तना अपवर्तना करते हैं, उद्वर्तना अपवर्तना करेंगे। संक्रमण किया, संक्रमण करते हैं, संक्रमण करेंगे। निधत्त किया, निधत्त करते हैं, निधत्त करेंगे। निकाचित किया, निकाचित करते हैं, निकाचित करेंगे। इन सब पदोंमें भी कर्म-द्रव्य-वर्गणाकी अपेक्षासे अणु और बादर पुद्गलोंका कथन करना चाहिए।

गाथार्थ–भिदे, चयको प्राप्त हुए, उपचयको प्राप्त हुए, उदीरणाको प्राप्त हुए, वेदे गये और निर्जीर्ण हुए। उद्वर्तन अपवर्तन, संक्रमण, निधत्तन और निकाचन, इन चार-पदोंमें भूत, भविष्य और वर्तमान ये तीनों काल कहने चाहिएं ॥१॥१२॥

भगवन् ! नारकी जीव जिन पुद्गलोंको तैजस कार्मण रूप में ग्रहण करते हैं, क्या उन्हें अतीत काल समयमें ग्रहण करते हैं ? या वर्तमान काल समयमें ग्रहण करते हैं ? या भविष्य काल समयमें ग्रहण करते हैं ? गौतम ! अतीत काल समयमें ग्रहण नहीं करते, वर्तमान काल समयमें ग्रहण करते हैं, भविष्य काल समयमें ग्रहण नहीं करते।

भगवन् ! नारकी जीव तैजस कार्मण रूपमें ग्रहण किये हुए जिन पुद्गलोंकी उदीरणा करते हैं, तब क्या अतीत काल समय में ग्रहण किये हुए पुद्गलोंकी उदीरणा करते हैं ? या वर्तमान काल समयमें ग्रहण किये जाने वाले पुद्गलों की उदीरणा करते हैं ? या आगे ग्रहण किये जाने वाले भविष्यकालीन पुद्गलोंकी उदीरणा करते हैं ? गौतम ! अतीत काल समयमें ग्रहण किये हुए पुद्गलोंकी उदीरणा करते हैं, वर्तमान-काल-समय में ग्रहण किये जाते हुए पुद्गलोंकी उदीरणा नहीं करते और आगे ग्रहण किये जाने वाले पुद्गलों की भी उदीरणा नहीं करते। जिस प्रकार उदीरणा को कहा है उसी प्रकार वेदना और निर्जराको भी कह देना चाहिए ॥१३॥

भगवन् ! क्या नारकी जीव जीव-प्रदेशसे चलित कर्मको बांधते हैं या अचलित कर्मको बांधते हैं ? गौतम ! चलित कर्मको नहीं बांधते, अचलित कर्मको बांधते हैं। हे भगवन् ! क्या नारकी जीव जीव-प्रदेशसे चलित कर्मकी उदीरणा करते हैं अथवा अचलित कर्मकी उदीरणा करते हैं ? हे गौतम ! नारकी जीव चलित कर्मकी उदीरणा नहीं करते, किन्तु अचलित कर्मकी उदीरणा करते हैं। इसी प्रकार वेदन करते हैं, अपवर्तन करते हैं, निधत्त करते हैं और निकाचित करते हैं। इन सब पदों में 'अचलित' कहना चाहिए, चलित नहीं।

भगवन् ! क्या नारकी जीव जीव-प्रदेशसे चलित कर्मकी निर्जरा करते हैं? या अचलित कर्मकी निर्जरा करते हैं ? गौतम ! नारकी जीव जीव-प्रदेशसे चलित कर्मकी निर्जरा करते हैं, किन्तु अचलित कर्मकी निर्जरा नहीं करते। गाथा—बन्ध, उदय, वेदन, अपवर्तन, संक्रमण, निधत्तन और निकाचनके विषयमें अचलित कर्म समझना चाहिए और निर्जराके विषय में चलित कर्म समझना चाहिए ॥१॥१४॥

भगवन् ! असुरकुमारोंकी स्थिति कितनी है ? गौतम ! जघन्य दस हजार वर्षकी और उत्कृष्ट एक सागरोपम से कुछ अधिककी है। भगवन् ! असुरकुमार कितने समयमें श्वास लेते हैं और कितने समयमें निःश्वास छोड़ते हैं ? गौतम ! जघन्य सात स्तोक रूप कालमें और उत्कृष्ट एक पक्षसे कुछ अधिक कालमें श्वास लेते हैं और छोड़ते हैं। भगवन् ! क्या असुरकुमार आहारके अभिलाषी होते हैं ? हाँ, गौतम ! असुरकुमार आहारके अभिलाषी होते हैं।

भगवन् ! असुरकुमारोंको कितने कालमें आहारकी अभिलाषा होती है ? गौतम ! असुरकुमारोंका आहार दो प्रकारका कहा गया है—आभोगनिर्वर्तित और अनाभोगनिर्वर्तित। अनाभोगनिर्वर्तित अर्थात् अनिच्छापूर्वक होने वाले आहारकी अभिलाषा उन्हें निरन्तर प्रतिसमय हुआ करती है। आभोगनिर्वर्तित अर्थात् इच्छापूर्वक होने वाले आहार की अभिलाषा उन्हें जघन्य चतुर्थभक्तसे अर्थात् एक अहोरात्रसे और उत्कृष्ट एक हजार वर्षसे कुछ अधिक कालमें होती है।

भगवन् ! असुरकुमार किन द्रव्योंका आहार करते हैं ? गौतम ! द्रव्यकी अपेक्षा अनन्तप्रदेशी पुद्गलोंका आहार करते हैं। क्षेत्र, काल, भावकी अपेक्षा जैसा पन्नवणा सूत्रके अट्ठाइसवें पदमें कहा है वैसा ही यहाँ समझना चाहिए। भगवन् ! असुरकुमारों द्वारा आहार किये हुए पुद्गल किस रूपमें बार बार परिणत होते हैं ? गौतम ! श्रोत्रेन्द्रियरूपमें यावत् स्पर्शनेन्द्रियपने, सुरूपपने, सुवर्णपने, इष्टपने, इच्छितपने, मनोहरपने, ऊर्ध्वपने और सुखपने बार बार परिणत होते हैं। किन्तु अधःपने और दुःखपने परिणत नहीं होते। भगवन् ! क्या असुरकुमारों द्वारा पहले आहार किये हुए पुद्गल परिणत हुए ? गौतम ! असुरकुमार

के अभिलापसे अर्थात् नारकीके स्थान पर असुरकुमार शब्दका प्रयोग करते हुए यह सारा वर्णन नारकियोंके समान ही समझना चाहिए। यावत् अचलित कर्मकी निर्जरा नहीं करते।

भगवन्! नागकुमार देवोंकी स्थिति कितनी है? गौतम! जघन्य दस हजार वर्षकी और उत्कृष्ट कुछ कम दो पल्योपम की है। भगवन्! नागकुमार देव कितने समय में श्वासोच्छ्वास लेते हैं? गौतम! जघन्य सात स्तोकमें और उत्कृष्ट मुहूर्त पृथक्त्वमें अर्थात् दो मुहूर्तसे लेकर नवमुहूर्तके भीतर श्वास लेते हैं और निःश्वास छोड़ते हैं। भगवन्! क्या नागकुमार आहारार्थी हैं? हां, गौतम! आहारार्थी हैं।

भगवन्! कितने समयके बाद नागकुमार देवोंको आहारकी अभिलाषा उत्पन्न होती है? गौतम! नागकुमार देवोंका आहार दो प्रकार का है—आभोगनिर्वर्तित और अनाभोगनिर्वर्तित। अनाभोगनिर्वर्तित आहारकी अभिलाषा प्रतिसमय निरन्तर उत्पन्न होती है। और आभोगनिर्वर्तित आहारकी अभिलाषा जघन्य एक अहोरात्रके बाद और उत्कृष्ट दिवसपृथक्त्व अर्थात् दो दिन से लेकर नव दिन तकका समय बीतनेके बाद होती है। शेष सारा वर्णन असुरकुमारोंकी तरह समझना चाहिए यावत् अचलित कर्मकी निर्जरा नहीं करते। इसी प्रकार सुवर्णकुमारोंसे लेकर स्तनितकुमारों तक समझना चाहिए।

भगवन्! पृथ्वीकायके जीवोंकी स्थिति कितनी है? गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्तकी और उत्कृष्ट बाईस हजार वर्षकी है। भगवन्! पृथ्वीकायके जीव कितने कालमें श्वासोच्छ्वास लेते हैं? गौतम! विमात्रासे श्वासोच्छ्वास लेते हैं अर्थात् इनके श्वासोच्छ्वासका समय स्थितिके अनुसार नियत नहीं है। भगवन्! क्या पृथ्वीकायके जीव आहारके अभिलापी हैं? हां, गौतम! आहारके अभिलापी हैं।

भगवन्! पृथ्वीकायके जीवोंको कितने समयमें आहारकी अभिलापा उत्पन्न होती है? गौतम! प्रतिसमय निरन्तर आहारकी अभिलापा उत्पन्न होती है। भगवन्! पृथ्वीकायके जीव किसका आहार करते हैं? गौतम! द्रव्यसे अनन्त प्रदेश वाले द्रव्यका आहार करते हैं। इत्यादि वर्णन नारकी जीवोंके समान जानना चाहिए। पृथ्वीकायके जीव व्याघात न हो तो छहों दिशाओंसे आहार लेते हैं। व्याघात हो तो कदाचित् तीन दिशाओंसे, कदाचित् चार दिशाओंसे और कदाचित् पांच दिशाओंसे आहार लेते हैं। वर्णकी अपेक्षा पांचों वर्णके द्रव्य का आहार करते हैं। गन्धकी अपेक्षा दोनों गन्ध वाले, रसकी अपेक्षा पांचों रस वाले और स्पर्शकी अपेक्षा आठों स्पर्श वाले द्रव्यका आहार करते हैं। शेष सब वर्णन पहलेके समान समझना चाहिए।

भगवन् ! पृथ्वीकायके जीव कितने भागका आहार करते हैं और कितने भागका स्पर्श करते हैं—आस्वादन करते हैं ? गौतम ! असंख्यातवें भागका आहार करते हैं और अनन्तवें भागका स्पर्श करते हैं—आस्वादन करते हैं। भगवन् ! उनके आहार किये हुए पुद्गल किस रूपमें वार वार परिणत होते हैं ? गौतम ! स्पर्शनेन्द्रियके रूपमें विमात्रासे अर्थात् इष्ट अनिष्ट आदि विविध प्रकारसे वार वार परिणत होते हैं। शेष सब नारकी जीवोंके समान समझना चाहिए। यावत् चलित कर्मकी निर्जरा करते हैं, किन्तु अचलित कर्मकी निर्जरा नहीं करते । इसी प्रकार अप्काय, तेउकाय, वायुकाय और वनस्पतिकायके जीवोंके विषयमें समझना चाहिए, किन्तु इतना फर्क है कि इन सबकी स्थिति अलग अलग है, अतः जिसकी जितनी स्थिति हो उसकी उतनी स्थिति कह देनी चाहिए और इन सबका उच्छ्वास भी विमात्रासे जानना चाहिए ।

……वेइन्द्रिय जीवोंकी स्थिति कह देनी चाहिए। उनका श्वासोच्छ्वास विमात्रा से कहना चाहिए। भगवन् ! वेइन्द्रिय जीवोंको कितने कालमें आहार की अभिलापा होती है ? गौतम ! वेइन्द्रिय जीवोंका आहार दो प्रकार का है। उनमें से अनाभोगनिर्वतित आहार तो पहलेके समान समझना चाहिए। आभोग-निर्वर्तित आहारकी अभिलापा विमात्रासे असंख्यात समय वाले अन्तर्मुहूर्त्तमें होती है। वाकी उसी प्रकार जानना चाहिए यावत् अनन्तवाँ भाग आस्वादन करते हैं।

हे भगवन् ! वेइन्द्रिय जीव जिन पुद्गलोंको आहार रूपसे ग्रहण करते हैं, क्या वे उन सव पुद्गलोंको खा जाते हैं अथवा उन सवको नहीं खाते ? हे गौतम ! वेइन्द्रिय जीवों का आहार दो प्रकार का कहा गया है—रोमाहार और प्रक्षेपाहार। जिन पुद्गलों को रोमाहार द्वारा ग्रहण करते हैं, उन सव को सम्पूर्णपने खा जाते हैं। जिन पुद्गलों को प्रक्षेपाहार रूपसे ग्रहण करते हैं, उन पुद्गलोंमें से असंख्यातवां भाग खाया जाता है और अनेक हजारों भाग आस्वादन किये विना और स्पर्श किये विना विध्वंसको प्राप्त हो जाते हैं।

भगवन् ! इनके विना आस्वादन किये हुए और विना स्पर्श किए हुए पुद्गलोंमें से कौनसे पुद्गल किन पुद्गलोंसे अल्प, वहुत, तुल्य या विशेपाधिक हैं ? गौतम ! आस्वादनमें नहीं आये हुए पुद्गल सवसे थोड़े हैं, स्पर्शमें नहीं आये हुए पुद्गल उनसे अनन्तगुणा हैं। भगवन् ! वेइन्द्रिय जीव जिन पुद्गलों को आहार रूपसे ग्रहण करते हैं वे पुद्गल उनके किस रूप में वारम्वार परिणत होते हैं ? गौतम ! वे पुद्गल उनको विविधतापूर्वक जिव्हेन्द्रियपने और स्पर्शनेन्द्रियपने वार-वार परिणत होते हैं। भगवन् ! क्या वेइन्द्रिय जीवोंको पहले

के अभिलापसे अर्थात् नारकीके स्थान पर असुरकुमार शब्दका प्रयोग करते हुए यह सारा वर्णन नारकियोंके समान ही समझना चाहिए। यावत् अचलित कर्मकी निर्जरा नहीं करते।

भगवन्! नागकुमार देवोंकी स्थिति कितनी है? गौतम! जघन्य दस हजार वर्षकी और उत्कृष्ट कुछ कम दो पल्योपम की है। भगवन्! नागकुमार देव कितने समय में श्वासोच्छ्वास लेते हैं? गौतम! जघन्य सात स्तोकमें और उत्कृष्ट मुहूर्त पृथक्त्वमें अर्थात् दो मुहूर्त्तसे लेकर नवमुहूर्त्तके भीतर श्वास लेते हैं और निःश्वास छोड़ते हैं। भगवन्! क्या नागकुमार आहारार्थी हैं? हां, गौतम! आहारार्थी हैं।

भगवन्! कितने समयके बाद नागकुमार देवोंको आहारकी अभिलाषा उत्पन्न होती है? गौतम! नागकुमार देवोंका आहार दो प्रकार का है—आभोगनिर्वर्तित और अनाभोगनिर्वर्तित। अनाभोगनिर्वर्तित आहारकी अभिलाषा प्रतिसमय निरन्तर उत्पन्न होती है। और आभोगनिर्वर्तित आहारकी अभिलाषा जघन्य एक अहोरात्रके बाद और उत्कृष्ट दिवसपृथक्त्व अर्थात् दो दिन से लेकर नव दिन तकका समय बीतनेके बाद होती है। शेष सारा वर्णन असुरकुमारोंकी तरह समझना चाहिए यावत् अचलित कर्मकी निर्जरा नहीं करते। इसी प्रकार सुवर्णकुमारोंसे लेकर स्तनितकुमारों तक समझना चाहिए।

भगवन्! पृथ्वीकायके जीवोंकी स्थिति कितनी है? गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्तकी और उत्कृष्ट बाईस हजार वर्षकी है। भगवन्! पृथ्वीकायके जीव कितने कालमें श्वासोच्छ्वास लेते हैं? गौतम! विमात्रासे श्वासोच्छ्वास लेते हैं अर्थात् इनके श्वासोच्छ्वासका समय स्थितिके अनुसार नियत नहीं है। भगवन्! क्या पृथ्वीकायके जीव आहारके अभिलाषी हैं? हां, गौतम! आहारके अभिलाषी हैं।

भगवन्! पृथ्वीकायके जीवोंको कितने समयमें आहारकी अभिलाषा उत्पन्न होती है? गौतम! प्रतिसमय निरन्तर आहारकी अभिलाषा उत्पन्न होती है। भगवन्! पृथ्वीकायके जीव किसका आहार करते हैं? गौतम! द्रव्यसे अनन्त प्रदेश वाले द्रव्यका आहार करते हैं। इत्यादि वर्णन नारकी जीवोंके समान जानना चाहिए। पृथ्वीकायके जीव व्याघात न हो तो छहों दिशाओंसे आहार लेते हैं। व्याघात हो तो कदाचित् तीन दिशाओंसे, कदाचित् चार दिशाओंसे और कदाचित् पांच दिशाओंसे आहार लेते हैं। वर्णकी अपेक्षा पांचों वर्णके द्रव्य का आहार करते हैं। गन्धकी अपेक्षा दोनों गन्ध वाले, रसकी अपेक्षा पांचों रस वाले और स्पर्शकी अपेक्षा आठों स्पर्श वाले द्रव्यका आहार करते हैं। शेष सब वर्णन पहलेके समान समझना चाहिए।

भगवन् ! पृथ्वीकायके जीव कितने भागका आहार करते हैं और कितने भागका स्पर्श करते हैं—आस्वादन करते हैं ? गौतम ! असंख्यातवें भागका आहार करते हैं और अनन्तवें भागका स्पर्श करते हैं—आस्वादन करते हैं। भगवन् ! उनके आहार किये हुए पुद्गल किस रूपमें वार वार परिणत होते हैं ? गौतम ! स्पर्शनेन्द्रियके रूपमें विमात्रासे अर्थात् इष्ट अनिष्ट आदि विविध प्रकारसे वार वार परिणत होते हैं। शेष सब नारकी जीवोंके समान समझना चाहिए। यावत् चलित कर्मकी निर्जरा करते हैं, किन्तु अचलित कर्मकी निर्जरा नहीं करते। इसी प्रकार अप्काय, तेउकाय, वायुकाय और वनस्पतिकायके जीवोंके विषयमें समझना चाहिए, किन्तु इतना फर्क है कि इन सबकी स्थिति अलग अलग है, अत: जिसकी जितनी स्थिति हो उसकी उतनी स्थिति कह देनी चाहिए और इन सबका उच्छ्वास भी विमात्रासे जानना चाहिए।

……बेइन्द्रिय जीवोंकी स्थिति कह देनी चाहिए। उनका श्वासोच्छ्वास विमात्रा से कहना चाहिए। भगवन् ! बेइन्द्रिय जीवोंको कितने कालमें आहार की अभिलाषा होती है ? गौतम ! बेइन्द्रिय जीवोंका आहार दो प्रकार का है। उनमें से अनाभोगनिर्वर्तित आहार तो पहलेके समान समझना चाहिए। आभोग-निर्वर्तित आहारकी अभिलाषा विमात्रासे असंख्यात समय वाले अन्तर्मुहूर्त्तमें होती है। बाकी उसी प्रकार जानना चाहिए यावत् अनन्तवाँ भाग आस्वादन करते हैं।

हे भगवन् ! बेइन्द्रिय जीव जिन पुद्गलोंको आहार रूपसे ग्रहण करते हैं, क्या वे उन सब पुद्गलोंको खा जाते हैं अथवा उन सबको नहीं खाते ? हे गौतम ! बेइन्द्रिय जीवों का आहार दो प्रकार का कहा गया है—रोमाहार और प्रक्षेपाहार। जिन पुद्गलों को रोमाहार द्वारा ग्रहण करते हैं, उन सब को सम्पूर्णपने खा जाते हैं। जिन पुद्गलों को प्रक्षेपाहार रूपसे ग्रहण करते हैं, उन पुद्गलोंमें से असंख्यातवां भाग खाया जाता है और अनेक हजारों भाग आस्वादन किये विना और स्पर्श किये बिना विध्वंसको प्राप्त हो जाते हैं।

भगवन् ! इनके विना आस्वादन किये हुए और विना स्पर्श किए हुए पुद्गलोंमें से कौनसे पुद्गल किन पुद्गलोंसे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं ? गौतम ! आस्वादनमें नहीं आये हुए पुद्गल सबसे थोड़े हैं, स्पर्शमें नहीं आये हुए पुद्गल उनसे अनन्तगुणा हैं। भगवन् ! बेइन्द्रिय जीव जिन पुद्गलों को आहार रूपसे ग्रहण करते हैं, वे पुद्गल उनके किस रूप में बारम्बार परिणत होते हैं ? गौतम ! वे पुद्गल उनको विविधतापूर्वक जिव्हेन्द्रियपने और स्पर्श-नेन्द्रियपने वार-वार परिणत होते हैं। भगवन् ! क्या बेइन्द्रिय जीवोंको पहले

आहार किये हुए पुद्गल परिणत हुए हैं ? गौतम ! यह पहलेकी तरह समझना चाहिए । यावत् अचलित कर्मकी निर्जरा नहीं करते, वहां तक कह देना चाहिए ।

तेइन्द्रिय और चौइन्द्रिय जीवोंकी स्थितिमें भेद है । शेष सब पहलेकी तरह है। यावत् अनेक हजारों भाग बिना सूंघे, बिना चखे और बिना स्पर्शे ही नष्ट हो जाते हैं। भगवन् ! इनके बिना सूंघे हुए, बिना चखे हुए और बिना स्पर्श किये हुए पुद्गलोंमें कौन किससे थोड़ा, बहुत, अल्प या विशेषाधिक है ? ऐसा प्रश्न करना चाहिए। गौतम ! बिना सूंघे हुए पुद्गल सबसे थोड़े हैं, बिना चखे हुए पुद्गल उनसे अनन्तगुणा हैं, और बिना स्पर्श किये हुए पुद्गल उनसे अनन्तगुणा हैं। तेइन्द्रिय जीवों द्वारा खाया हुआ आहार घ्राणेन्द्रिय, जिव्हेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय के रूपमें विमात्रासे बार-बार परिणत होता है। चौइन्द्रिय जीवों द्वारा खाया हुआ आहार चक्षुइन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, जिव्हेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय रूपमें विमात्रासे बारम्बार परिणत होता है।

पञ्चेन्द्रिय तिर्यंचोंकी स्थिति कहकर उनका उच्छ्वास विमात्रा–विविध प्रकारसे कहना चाहिए। उनके अनाभोगनिर्वर्तित आहार निरन्तर प्रतिसमय होता है। आभोगनिर्वर्तित आहार जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट षष्ठभक्त अर्थात् दो दिन बीत जाने पर होता है। शेष वर्णन चतुरिन्द्रिय जीवोंके समान समझना चाहिए यावत् वे अचलित कर्मकी निर्जरा नहीं करते। मनुष्योंके सम्बन्ध में भी ऐसा ही जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि उनका आभोगनिर्वर्तित आहार जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट अष्टम भक्त (तीन रात दिन) बीतने पर होता है। पञ्चेन्द्रियों द्वारा गृहीत आहार श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय रूपमें विमात्रासे परिणत होता है। शेष सब पहलेकी तरह समझना चाहिए। यावत् वे अचलित कर्मकी निर्जरा नहीं करते।

वाणव्यन्तर देवोंकी स्थितिमें भेद है। बाकी सारा वर्णन नागकुमारोंकी तरह समझना चाहिए। ज्योतिषी देवोंके सम्बन्धमें भी इसी तरह जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि उनका उच्छ्वास जघन्य मुहूर्त्त पृथक्त्व और उत्कृष्ट भी मुहूर्त्त पृथक्त्वके बाद होता है। उनका आहार जघन्यसे दिवसपृथक्त्व और उत्कृष्ट भी दिवसपृथक्त्वके बाद होता है। शेष सारा वर्णन पहलेके समान समझना चाहिए। वैमानिक देवोंकी औघिक स्थिति कह देनी चाहिए। उनका उच्छ्वास जघन्यसे मुहूर्त्त पृथक्त्व और उत्कृष्ट तेतीस पक्षके पश्चात् होता है। उनका आभोगनिर्वर्तित आहार जघन्य दिवस पृथक्त्वके बाद और उत्कृष्ट तेतीस हजार वर्षके बाद होता है। वे चलित कर्मकी निर्जरा करते हैं। इत्यादि शेष सब वर्णन पहलेके समान समझना चाहिए ॥१५॥

हे भगवन् ! क्या जीव आत्मारम्भी हैं, परारम्भी हैं, तदुभयारम्भी हैं या अनारम्भी हैं ? हे गौतम ! कितनेक जीव आत्मारम्भी भी हैं, परारम्भी भी हैं और तदुभयारम्भी भी हैं,किन्तु अनारम्भी नहीं हैं,तथा कितनेक जीव आत्मारम्भी नहीं हैं, परारम्भी नहीं हैं और तदुभयारम्भी भी नहीं हैं, किन्तु अनारम्भी हैं। भगवन् ! आप इस प्रकार किस कारणसे कहते हैं कि—'कितनेक जीव आत्मारम्भी भी हैं' इत्यादि पूर्वोक्त प्रश्न फिर से उच्चारण करना चाहिए। गौतम ! जीव दो प्रकारके कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं—संसारसमापन्नक और असंसारसमापन्नक। उनमेंसे जो जीव असंसारसमापन्नक हैं वे सिद्ध भगवान् हैं, वे आत्मारम्भी, परारम्भी और तदुभयारम्भी नहीं हैं, किन्तु अनारम्भी हैं। जो संसारसमापन्नक हैं, वे दो प्रकारके कहे गये हैं, यथा—संयत और असंयत। इनमेंसे जो संयत हैं, वे दो प्रकारके कहे गये हैं, यथा—प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत। जो अप्रमत्तसंयत हैं, वे आत्मारम्भी, परारम्भी और तदुभयारम्भी नहीं हैं, किन्तु अनारम्भी हैं। जो प्रमत्तसंयत हैं, वे शुभ योग की अपेक्षा आत्मारम्भी, परारम्भी और तदुभयारम्भी नहीं हैं, किन्तु अनारम्भी हैं और अशुभ योगकी अपेक्षा आत्मारम्भी भी हैं, परारम्भी भी हैं और तदुभयारम्भी भी हैं, किंतु अनारम्भी नहीं हैं। जो असंयत हैं, वे अविरतिकी अपेक्षासे आत्मारम्भी भी हैं, परारम्भी भी हैं और तदुभयारम्भी भी हैं, किंतु अनारम्भी नहीं हैं। इसलिए हे गौतम ! इस कारणसे ऐसा कहा जाता है कि 'कितनेक जीव आत्मारम्भी भी हैं यावत् कितनेक जीव अनारम्भी भी हैं।

हे भगवन् ! क्या नैरयिक जीव आत्मारम्भी हैं, परारम्भी हैं, तदुभयारम्भी हैं या अनारम्भी हैं ? हे गौतम ! नैरयिक जीव आत्मारम्भी भी हैं, परारम्भी भी हैं, तदुभयारम्भी भी हैं, किन्तु अनारम्भी नहीं हैं। हे भगवन् ! आप इस प्रकार किस कारण से कहते हैं ? हे गौतम ! अविरतिकी अपेक्षा ऐसा कहा जाता है कि नैरयिक जीव आत्मारंभी भी हैं, परारंभी भी हैं,तदुभयारम्भी भी हैं, किन्तु अनारम्भी नहीं हैं। इस प्रकार असुरकुमारका भी जान लेना चाहिए यावत् पञ्चेन्द्रिय तिर्यंच तक जानें। मनुष्य पूर्वोक्त सामान्य जीवोंकी तरह जानें, किन्तु विशेषता यह है कि इन जीवोंमें सिद्धोंको नहीं कहना चाहिए। वाणव्यंतरोंसे लगाकर वैमानिक देवों तक नैरयिकोंकी तरह कहना चाहिए। लेश्या वाले जीव सामान्य जीवोंकी तरह कहने चाहिएँ। कृष्णलेश्या वाले, नीललेश्या वाले और कापोतलेश्या वाले औधिक जीवोंकी तरह कहने चाहिएँ, किन्तु इतना अन्तर है कि यहां पर प्रमत्त और अप्रमत्त नहीं कहने चाहिएँ। क्योंकि इन लेश्यावाले सब प्रमत्त ही होते हैं। तेजोलेश्या वाले, पद्मलेश्या वाले और शुक्ललेश्या वाले जीव सामान्य जीवोंकी तरह कहने चाहिएं, किन्तु इतना अन्तर है कि सिद्ध जीव नहीं कहने चाहिएं।।१६।।

भगवन् ! क्या ज्ञान इहभविक है, परभविक है या तदुभयभविक है ? गौतम ! ज्ञान इहभविक भी है, परभविक भी है और तदुभयभविक भी है। इसी तरह दर्शन भी जान लेना चाहिए। भगवन् ! क्या चारित्र इहभविक है, परभविक है, या तदुभयभविक है ? गौतम ! चारित्र इहभविक है, किन्तु परभविक और तदुभयभविक नहीं है। इसी प्रकार तप और संयमके विषयमें भी जानें ॥१७॥

भगवन् ! क्या असंवृत अनगार सिद्ध होता है ? बुद्ध —केवलज्ञानी होता है ? मुक्त होता है ? निर्वाण प्राप्त करता है ? सब दुःखोंका अन्त करता है ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। भगवन् ! किस कारणसे यावत् वह सब दुःखों का अन्त नहीं करता ? गौतम ! असंवृत अनगार आयुकर्मको छोड़कर शिथिल बन्धनसे बांधी हुई सात कर्म प्रकृतियोंको गाढ़रूपसे बांधना प्रारम्भ करता है, अल्पकालकी स्थिति वाली प्रकृतियोंको दीर्घकाल की स्थिति वाली करता है, मन्द अनुभाग वाली प्रकृतियोंको तीव्र अनुभाग वाली करता है,अल्पप्रदेश वाली प्रकृतियों को वहुत प्रदेश वाली करता है। आयुकर्मको कदाचित् बाँधता है और कदाचित् नहीं भी बाँधता है। असातावेदनीय कर्मका बारम्बार उपार्जन करता है तथा अनादि अनन्त, दीर्घ मार्ग वाले, चतुर्गतिरूप संसाररूपी अरण्यमें बारम्बार पर्यटन करता है। इस कारण…गौतम! असंवृत अनगार सिद्ध नहीं होता यावत् सर्वदुःखों का अन्त नहीं करता।

भगवन् ! क्या संवृत अनगार सिद्ध होता है, यावत् सब दुःखोंका अन्त करता है ? हां, गौतम ! सिद्ध होता है यावत् सब दुःखों का अन्त कर देता है। भगवन् ! ऐसा आप किस कारणसे कहते हैं ? गौतम ! संवृत अनगार आयुकर्म को छोड़कर शेष सात कर्मोंकी प्रकृतियोंको जो गाढ़ बन्धनसे बँधी हुई हों उन्हें शिथिल बन्ध वाली करता है, दीर्घकालीन स्थिति वाली प्रकृतियोंको अल्पकालीन स्थिति वाली बनाता है,तीव्र फल देने वाली प्रकृतियोंको अल्प प्रदेश वाली बनाता है। आयुष्यकर्मका बन्ध नहीं करता तथा असाता वेदनीय कर्मका बार-बार उपचय नहीं करता । इसलिए अनादि अनन्त, लम्बे मार्ग वाले, चातुरन्तक—चार प्रकारकी गति वाले संसाररूपी वन का उल्लंघन कर जाता है। इसलिए …गौतम ! संवृत अनगार सिद्ध होता है यावत् सब दुःखोंका अन्त कर देता है ॥१८॥

भगवन् ! असंयत, अविरत और पापकर्मका हनन तथा त्याग न करने वाला जीव इस लोकसे चव कर—मर कर क्या परलोकमें देव होता है ? गौतम ! कोई एक जीव देव होता है और कोई जीव देव नहीं होता। भगवन् ! इस लोकसे चव कर परलोकमें कोई जीव देव होता है और कोई जीव देव नहीं होता, इसका क्या कारण है ? गौतम ! जो जीव ग्राम, आकर, नगर,

निगम, राजधानी, खेट, कर्बट, मडम्ब, द्रोणमुख, पत्तन, आश्रम, सन्निवेश आदि स्थानोंमें अकाम तृषासे, अकाम क्षुधासे, अकाम ब्रह्मचर्यसे, अकाम शीत आतप तथा डांस मच्छरोंके काटनेके दुःखको सहन करनेसे, अकाम अस्नान, पसीना, जल्ल, मैल तथा पङ्क—कीचड़से होने वाले परिदाहसे थोड़े समय तक या बहुत समय तक अपनी आत्माको क्लेशित करते हैं, अपनी आत्माको क्लेशित करके मृत्युके समय मर कर वाणव्यन्तर देवलोकोंके किसी देवलोकमें देवरूपसे उत्पन्न होते हैं।

भगवन् ! उन वाणव्यन्तर देवोंके देवलोक किस प्रकारके कहे गए हैं ? गौतम ! जैसे इस मनुष्यलोक में सदा फूला हुआ, मयूरित्त-पुष्प विशेष वाला—मौर वाला, लवकित—कोंपलों वाला, फूलोंके गुच्छों वाला, लता समूह वाला, पत्तोंके गुच्छों वाला, यमल—समान श्रेणीके वृक्षों वाला, युगल वृक्षों वाला, फल-फूलके भारसे झुका हुआ, फल-फूलके भारसे झुकनेकी शुरुआत वाला, विभिन्न प्रकारकी बालों और मंजरियों रूपी मुकुटोंको धारण करने वाला इत्यादि विशेषणोंसे विशिष्ट अशोक वन, सप्तपर्ण वन, चम्पक वन, आम्रवन, तिलक वृक्षोंका वन, तूम्बेकी लताओंका वन, बड़वृक्षोंका वन, छत्रौघ वन, अशन वृक्षों का वन, सण वृक्षोंका वन, अलसीके पौधोंका वन, कुसुम्ब वृक्षोंका वन, सिद्धार्थ-सफेद सरसोंका वन, बन्धुजीवक अर्थात् दुपहरियाके वृक्षोंका वन शोभासे अत्यन्त शोभित होता है। इसी प्रकार वाणव्यन्तर देवोंके देवलोक जघन्य दस हजार वर्ष की स्थिति वाले और उत्कृष्ट एक पल्योपमकी स्थिति वाले बहुतसे वाणव्यन्तर देवों और उनकी देवियोंसे व्याप्त, विशेष व्याप्त, उपस्तीर्ण—एक दूसरेके ऊपर आच्छादित, परस्पर मिले हुए, प्रकट अर्थात् प्रकाश वाले, अत्यन्त अवगाढ़ शोभा से अत्यन्त सुशोभित रहते हैं। हे गौतम ! वाणव्यन्तर देवोंके देवलोक इस प्रकार कहे गए हैं। इस कारण हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि—असंयत जीव यावत् देव होता है।

भगवान् गौतम स्वामीने कहा कि—भगवन्! जैसा आप फ़रमाते हैं, वैसा ही है। ऐसा कहकर गौतम स्वामीने श्रमण भगवान् महावीर स्वामीको वन्दना नमस्कार किया। वन्दना नमस्कार करके संयम और तपसे आत्माको भावित करते हुए विचरने लगे ॥१६॥

॥ प्रथम शतकका पहला उद्देशक समाप्त ॥

———

शतक १ उद्देशक २

राजगृह नगरमें समवसरण हुआ। परिषद् निकली। यावत् ऐसा बोले—भगवन्! क्या जीव स्वयंकृत दुःख भोगता है? गौतम! कुछ भोगता है और कुछ नहीं भोगता।...आप किस कारणसे ऐसा फरमाते हैं कि-कुछ भोगता है और कुछ नहीं भोगता? गौतम! जीव उदीर्ण अर्थात् उदयमें आये हुए दुःख (कर्म) को भोगता है और अनुदीर्ण–उदयमें नहीं आये हुए दुःख(कर्म)को नहीं भोगता। इसलिए कहा गया है कि—कुछ भोगता है और कुछ नहीं भोगता। इसी प्रकार वैमानिक तक चौवीसों (सभी)दण्डकोंमें समझ लेना चाहिए।

भगवन्! क्या जीव स्वयंकृत दुःखको भोगते हैं? गौतम! कुछ...कर्मको भोगते हैं और कुछ ..कर्मको नहीं भोगते। भगवन्! इसका क्या कारण है? गौतम! उदीर्ण कर्मको भोगते हैं, अनुदीर्णको नहीं भोगते। इस कारण ऐसा कहा गया है कि–कुछको भोगते हैं और कुछको नहीं भोगते। इसी प्रकार यावत् वैमानिक तक चौवीसों (सभी) दण्डकोंमें समझ लेना चाहिए।

भगवन्! क्या जीव स्वयंकृत आयुको भोगता है? गौतम! जीव कुछ आयुको भोगता है और कुछको नहीं भोगता। जैसे दुःख–कर्मके विषयमें दो दण्डक–आलापक कहे हैं उसी प्रकार आयुष्यके सम्बन्ध में भी एकवचन आश्रयी और वहुवचन आश्रयी दो दण्डक–आलापक कह देने चाहिएं। एकवचन से यावत् वैमानिकों तक कहना और वहुवचनसे भी उसी प्रकार वैमानिकों तक चौवीसों दण्डकोंमें कह देना चाहिए ॥२०॥

भगवन्! क्या सभी नारकी जीव समान आहार वाले, समान शरीर वाले, तथा समान उच्छ्वास निःश्वास वाले हैं? गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है अर्थात् ऐसी वात नहीं है।

भगवन्! आप इस प्रकार किस कारणसे कहते हैं कि–सभी नारकी जीव समान आहार वाले, समान शरीर वाले और समान उच्छ्वास निःश्वास वाले नहीं हैं? गौतम! नारकी जीव दो प्रकार के हैं–महाशरीरी अर्थात् बड़े शरीर वाले और अल्पशरीरी अर्थात् छोटे शरीर वाले। इनमें जो बड़े शरीर वाले हैं वे वहुत पुद्गलोंका आहार करते हैं, वहुत पुद्गलोंको परिणमाते हैं, वहुत पुद्गलों को उच्छ्वास रूपसे ग्रहण करते हैं और वहुत पुद्गलोंको निःश्वास रूपसे छोड़ते हैं। वार-वार आहार करते हैं, वार-वार परिणमाते हैं, वार-वार उच्छ्वास लेते हैं और निःश्वास छोड़ते हैं। उनमें जो छोटे शरीर वाले हैं, वे थोड़े पुद्गलोंका आहार करते हैं, थोड़े पुद्गलों को परिणमाते हैं, थोड़े पुद्गलोंको उच्छ्वासरूपसे ग्रहण करते हैं, थोड़े पुद्गलोंको निःश्वास रूपसे छोड़ते हैं। कदाचित् आहार करते हैं, कदाचित् परिणमाते हैं, कदाचित् उच्छ्वास लेते हैं और निःश्वास

छोड़ते हैं। इसलिए हे गौतम ! इस हेतुसे ऐसा कहा जाता है कि–सब नारकी जीव समान आहार वाले, समान शरीर वाले और समान उच्छ्वास निःश्वास वाले नहीं हैं।

भगवन् ! क्या सब नारकी समान कर्म वाले हैं ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। भगवन् ! किस कारण से ? गौतम ! नारकी जीव दो प्रकारके कहे गए हैं, यथा–पूर्वोपपन्नक–पहले उत्पन्न हुए और पश्चादुपपन्नक–पीछे उत्पन्न हुए। इनमें जो नैरयिक पूर्वोपपन्नक हैं वे अल्प कर्म वाले हैं, और जो पश्चादुपपन्नक हैं वे महाकर्म वाले हैं। इसलिए हे गौतम ! इस कारणसे ऐसा कहा जाता है कि–सब नारकी समान कर्म वाले नहीं हैं।

भगवन् ! क्या सब नारकी समान वर्ण वाले हैं ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। भगवन् ! किस कारण से ? गौतम ! नारकी जीव दो प्रकारके हैं। पूर्वोपपन्नक और पश्चादुपपन्नक। इनमें जो पूर्वोपपन्नक हैं वे विशुद्ध वर्ण वाले हैं, और जो पश्चादुपपन्नक हैं वे अविशुद्ध वर्ण वाले हैं। इसलिए हे गौतम ! ऐसा कहा गया है कि सब नारकी समान वर्ण वाले नहीं हैं।

भगवन् ! क्या सब नारकी समान लेश्या वाले हैं ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। भगवन् ! किस कारण से ? गौतम ! नारकी जीव दो प्रकारके हैं। यथा–पूर्वोपपन्नक और पश्चादुपपन्नक। इनमें जो पूर्वोपपन्नक हैं वे विशुद्ध लेश्या वाले हैं, और जो पश्चादुपपन्नक हैं, वे अविशुद्ध लेश्या वाले हैं। इसलिए हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि–सब नारकी समान लेश्या वाले नहीं हैं।

भगवन् ! क्या सब नारकी समान वेदना वाले हैं ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। भगवन् ! इसका क्या कारण है ? गौतम ! नारकी जीव दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा—संज्ञिभूत और असंज्ञिभूत। इनमें जो संज्ञिभूत हैं वे महावेदना वाले हैं और जो असंज्ञिभूत हैं वे अल्पवेदना वाले हैं। इस कारणसे हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि सब नारकी समान वेदना वाले नहीं हैं।

भगवन् ! क्या सब नारकी समान क्रिया वाले हैं ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। भगवन् ! किस कारण से ? गौतम ! नारकी जीव तीन प्रकार के हैं। यथा–सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि–मिश्रदृष्टि। इनमें जो सम्यग्दृष्टि हैं उनके चार क्रिया कही गई हैं–आरम्भिकी, पारिग्रहिकी, मायाप्रत्यया और अप्रत्याख्यान क्रिया। मिथ्यादृष्टिके पाँच क्रिया होती हैं–आरम्भिकी यावत् मिथ्यादर्शनप्रत्यया। इसी तरह सम्यग्मिथ्यादृष्टिके भी पांच क्रियाएँ होती हैं। इस कारणसे हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि—सब नारकी समान क्रिया वाले नहीं हैं।

भगवन् ! क्या सब नारकी समान आयुष्य वाले हैं और समोपपन्नक-एक

साथ उत्पन्न होने वाले हैं ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। भगवन् ! किस कारणसे ? गौतम ! नारकी जीव चार प्रकारके हैं। यथा—१ समायुष्क समोपपन्नक–समान आयु वाले और एक साथ उत्पन्न हुए। २ समायुष्क विषमोपपन्नक–समान आयु वाले और पहले पीछे उत्पन्न हुए। ३ विषमायुष्क समोपपन्नक–विषम आयु वाले और एक साथ उत्पन्न हुए। ४ विषमायुष्क विषमोपपन्नक–विषम आयु वाले और पहले पीछे उत्पन्न हुए। इस कारण हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि—सब नारकी जीव समायुष्क समोपपन्नक अर्थात् समान आयु वाले और एक साथ उत्पन्न हुए नहीं हैं।

भगवन् ! क्या सब असुरकुमार समान आहार वाले और समान शरीर वाले हैं ? गौतम ! असुरकुमारोंका वर्णन नारकी जीवोंके समान कहना चाहिए। विशेषता यह है कि-असुरकुमारोंके कर्म, वर्ण और लेश्या नारकी जीवोंसे विपरीत कहना चाहिए अर्थात् पूर्वोपपन्नक (पूर्वोत्पन्न) असुरकुमार महाकर्म वाले, अविशुद्ध वर्ण वाले और अविशुद्ध लेश्या वाले हैं और पश्चादुपपन्नक (बाद में उत्पन्न होने वाले) प्रशस्त हैं। शेष पहले के समान समझना चाहिए। इसी तरह स्तनितकुमारों तक समझना चाहिए।

पृथ्वीकायके जीवोंका आहार, कर्म, वर्ण और लेश्या नैरयिकोंके समान समझना चाहिए। भगवन् ! क्या सब पृथ्वीकायिक जीव समान वेदना वाले हैं ? हाँ, गौतम ! समान वेदना वाले हैं। भगवन् ! किस कारण से ? गौतम ! सब पृथ्वीकायिक जीव असंज्ञी हैं और असंज्ञिभूत वेदनाको अनिर्धारित रूपसे वेदते हैं। इस कारण वे सब समान वेदना वाले हैं। भगवन् ! क्या सब पृथ्वीकायिक जीव समान क्रिया वाले हैं ? हाँ, गौतम ! सब समान क्रिया वाले हैं। भगवन् ! किस कारण से ? गौतम ! सब पृथ्वीकायिक जीव मायी और मिथ्यादृष्टि हैं। इसलिए उन्हें नियमसे पांचों क्रियाएँ लगती हैं। वे पांच क्रियाएँ ये हैं–आरम्भिकी यावत् मिथ्यादर्शनप्रत्यया। इस कारण हे गौतम ! ऐसा कहा गया है कि–सब पृथ्वीकायिक जीव समान क्रिया वाले हैं। जैसे नारकी जीवों में समायुष्क समोपपन्नक आदि चार भंग कहे हैं वैसे ही पृथ्वीकायिक जीवों में भी कहना चाहिए।

जिस प्रकार पृथ्वीकायिक जीवोंका वर्णन किया गया है उसी प्रकार अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चौरिन्द्रिय जीवोंका समझना चाहिए। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनि वाले जीवों का कथन नारकियोंके समान है, केवल क्रियाओं में भिन्नता है। भगवन् ! क्या सब पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनि वाले जीव समान क्रिया वाले हैं ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। भगवन् ! किस कारण से ? गौतम ! पञ्चेन्द्रिय

तिर्यञ्च योनि वाले जीव तीन प्रकार के हैं—सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि (मिश्रदृष्टि)। उनमें जो सम्यग्दृष्टि हैं वे दो प्रकार के हैं—असंयत और संयतासंयत। उनमें जो संयतासंयत हैं उन्हें तीन क्रियाएँ लगती हैं। वे इस प्रकार हैं—आरम्भिकी, पारिग्रहिकी और मायाप्रत्यया। उनमें जो असंयत हैं उन्हें अप्रत्याख्यानी क्रिया सहित चार क्रियाएँ लगती हैं। उनमें जो मिथ्यादृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि हैं उन्हें पांच क्रियाएँ लगती हैं।

मनुष्यों का वर्णन नारकियोंके समान समझना चाहिए। उनमें इतना अन्तर है कि—जो महाशरीरवाले हैं, वे बहुतर पुद्गलोंका आहार करते हैं और वे कभी कभी आहार करते हैं। जो अल्पशरीरी हैं, वे अल्पतर पुद्गलोंका आहार करते हैं और बार-बार आहार करते हैं। शेष सब वेदना पर्यन्त नारकियोंके समान समझना चाहिए।

भगवन्! क्या सब मनुष्य समान क्रिया वाले हैं? गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है। भगवन्! किस कारण से? गौतम! मनुष्य तीन प्रकार के हैं—सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि। उनमें जो सम्यग्दृष्टि हैं वे तीन प्रकार के कहे गये हैं—संयत, संयतासंयत और असंयत। इनमें से संयत दो प्रकारके कहे गये हैं—सरागसंयत और वीतरागसंयत। इनमें जो वीतरागसंयत हैं, वे क्रियारहित हैं। सरागसंयत के दो भेद हैं—प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत। अप्रमत्तसंयत को एक मायावत्तिया क्रिया लगती है। प्रमत्तसंयत को दो क्रियाएँ लगती हैं—आरम्भिकी और मायाप्रत्यया। संयतासंयतको तीन क्रियाएँ लगती हैं—आरम्भिकी, पारिग्रहिकी और मायाप्रत्यया। असंयत मनुष्य को चार क्रियाएँ लगतीं हैं—आरम्भिकी, पारिग्रहिकी, मायाप्रत्यया और अप्रत्याख्यानप्रत्यया। मिथ्यादृष्टि मनुष्य को पाँच क्रियाएँ लगती हैं—आरम्भिकी, पारिग्रहिकी, मायाप्रत्यया, अप्रत्याख्यानप्रत्यया और मिथ्यादर्शनप्रत्यया। सम्यग्मिथ्यादृष्टि (मिश्रदृष्टि) मनुष्यको भी ये पाँचों क्रियाएँ लगती हैं।

यहाँ वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक, ये सब असुरकुमारोंके समान कहने चाहिएँ। इनकी वेदनामें भिन्नता है। ज्योतिषी और वैमानिकोंमें जो मायी-मिथ्यादृष्टिरूपसे उत्पन्न हुए हैं, वे अल्प वेदना वाले हैं और जो अमायी-सम्यग्दृष्टिरूपसे उत्पन्न हुए हैं वे महावेदनावाले होते हैं—ऐसा कहना चाहिए।

भगवन्! क्या लेश्या वाले सब नैरयिक समान आहार वाले हैं? गौतम! औधिक—सामान्य, सलेश्य और शुक्ललेश्या वाले, इन तीनोंका एक गम-पाठ कहना चाहिए। कृष्णलेश्या वालोंका और नीललेश्या वालोंका एक

समान पाठ कहना चाहिए, परन्तु उनकी वेदनामें इस प्रकार भेद है—मायी मिथ्यादृष्टि उपपन्नक और अमायी-समदृष्टि उपपन्नक कहने चाहिएं तथा कृष्ण-लेश्या और नीललेश्यामें मनुष्योंके सराग-संयत, वीतरागसंयत, प्रमत्त-संयत और अप्रमत्तसंयत ऐसे भेद नहीं करने चाहियें। क्योंकि कृष्ण और नीललेश्या वाले वीतराग संयत नहीं होते, किन्तु सराग-संयत ही होते हैं, अप्रमत्त संयत नहीं होते किन्तु प्रमत्त संयत ही होते हैं। कापोतलेश्यामें भी यही पाठ कहना चाहिए, किन्तु भेद यह है कि कापोतलेश्या वाले नैरयिकों को औघिक दण्डक के समान कहना चाहिए। तेजोलेश्या और पद्मलेश्या वालों को औघिक दण्डक के ही समान कहना चाहिए, विशेषता यह है कि मनुष्यों को सराग और वीतराग नहीं कहना चाहिए, क्योंकि वे सराग ही होते हैं।

गाथा—कर्म और आयुष्य उदीर्ण हो तो वेदते हैं। आहार, कर्म, वर्ण, लेश्या, वेदना, क्रिया और आयुष्य, इन सबकी समानताके सम्बन्धमें पहले कहे अनुसार ही समझना चाहिए ॥१॥२१॥

भगवन्! कितनी लेश्याएँ कही गई हैं? गौतम! छह लेश्याएँ कही गई हैं। वे इस प्रकार हैं—कृष्ण, नील, कापोत, तेजो, पद्म और शुक्ल। यहां पन्नवणा सूत्र के लेश्या पद का दूसरा उद्देशक कहना चाहिए। वह ऋद्धि की वक्तव्यता तक कहना चाहिए ॥२२॥

भगवन्! अतीत कालमें आदिष्ट-नारक आदि विशेषण विशिष्ट जीवोंका संसार संस्थान काल कितने प्रकारका कहा गया है? गौतम! संसार संस्थान काल चार प्रकारका कहा गया है, वह इस प्रकार है—नैरयिक संसार संस्थान काल, तिर्यंच संसार संस्थान काल, मनुष्य संसार संस्थान काल और देव संसार संस्थान काल। भगवन्! नैरयिक संसार संस्थान काल कितने प्रकारका कहा गया है? गौतम! तीन प्रकारका कहा गया है, वह इस प्रकार है—शून्यकाल, अशून्यकाल, मिश्रकाल।

भगवन्! तिर्यंच संसार संस्थान काल कितने प्रकारका कहा गया है? गौतम! दो प्रकारका कहा गया है— अशून्यकाल और मिश्रकाल। मनुष्यों और देवोंके संसार संस्थान कालका कथन नारकियोंके समान समझना चाहिए।

भगवन्! नैरयिक संसार संस्थान कालके जो तीन भेद हैं—शून्यकाल, अशून्यकाल और मिश्रकाल। इनमें कौन किससे कम, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक है? गौतम! सबसे कम अशून्यकाल है, उससे मिश्रकाल अनन्तगुणा है, उससे शून्यकाल अनन्तगुणा है। तिर्यंच संसार संस्थान कालके दो भेद हैं, उनमें सबसे कम अशून्यकाल है, उससे मिश्रकाल अनन्तगुणा है। मनुष्य और देवोंके

संसार संस्थान कालका अल्पवहुत्व (न्यूनाधिकता) नैरयिकोंके संसार संस्थान कालके अल्प बहुत्वके समान ही समझना चाहिए।

भगवन्! नैरयिक, तिर्यंच, मनुष्य और देव, इन चारोंके संसार संस्थान कालोंमें कौन किससे कम, ज्यादा, तुल्य या विशेषाधिक है? गौतम! मनुष्य संसार संस्थान काल सबसे थोड़ा है, उससे नैरयिक संसार संस्थान काल असंख्यातगुणा है, उससे देव······और उससे तिर्यंच संसार संस्थान काल अनन्त गुणा है ॥२३॥

भगवन्! क्या जीव अन्तक्रिया करता है? गौतम! कोई जीव करता है और कोई नहीं करता। यहाँ प्रज्ञापना सूत्रका अन्तक्रिया पद समझ लेना चाहिए ॥२४॥

भगवन्! असंयत भव्य-द्रव्य-देव, अखण्डित संयम वाला, खण्डित संयम वाला, अखंडित संयमासंयम—देशविरति वाला, खण्डित संयमासंयम वाला, असंज्ञी, तापस, कान्दर्पिक, चरक, परिव्राजक, किल्विषिक, तिर्यंच, आजीवक, आभियोगिक, श्रद्धा-भ्रष्ट वेशधारी, ये सब यदि देवलोकमें उत्पन्न हों, तो कौन कहाँ उत्पन्न हो सकता है? गौतम! असंयत भव्य-द्रव्य देवोंका जघन्य भवनवासियोंमें और उत्कृष्ट ऊपरके ग्रैवेयकोंमें उत्पाद (उत्पत्ति) कहा गया है। अखण्डित संयम वालोंका जघन्य सौधर्म कल्पमें और उत्कृष्ट सर्वार्थसिद्ध विमानमें, खण्डित संयम वालोंका जघन्य भवनवासियोंमें और उत्कृष्ट सौधर्म कल्पमें, अखण्डित संयमासंयम वालोंका जघन्य सौधर्म कल्पमें और उत्कृष्ट अच्युत कल्पमें, खण्डित संयमासंयम वालोंका जघन्य भवनवासियोंमें और उत्कृष्ट ज्योतिषी देवोंमें, असंज्ञी जीवोंका जघन्य भवनवासियोंमें और उत्कृष्ट वाणव्यन्तर देवोंमें, और शेषका उत्पाद जघन्य भवनवासियोंमें होता है और उत्कृष्ट अब बताया जाता है। तापसोंका ज्योतिष्कोंमें, कान्दर्पिकोंका सौधर्म कल्पमें, चरक परिव्राजकोंका ब्रह्मलोक कल्पमें, किल्विषिकोंका लान्तक कल्पमें, तिर्यंचोंका सहस्रार कल्पमें, आजीविकोंका तथा आभियोगिकोंका अच्युत कल्पमें और श्रद्धा-भ्रष्ट वेशधारियोंका ऊपरके ग्रैवेयकमें उत्पाद होता है ॥२५॥

भगवन्! असंज्ञीका आयुष्य कितने प्रकारका कहा गया है? गौतम! असंज्ञीका आयुष्य चार प्रकारका कहा गया है। वह इस प्रकार है—नैरयिक असंज्ञी आयुष्य, तिर्यंच असंज्ञी आयुष्य, मनुष्य असंज्ञी आयुष्य और देव असंज्ञी आयुष्य। भगवन्! क्या असंज्ञी जीव नरककी आयु उपार्जन करता है? तिर्यंचकी, मनुष्यकी और देवकी आयु उपार्जन करता है? गौतम! असंज्ञी जीव नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देवकी आयु भी उपार्जन करता है। नरककी आयु उपार्जन करता हुआ असंज्ञी जीव जघन्य दस हजार वर्षकी और उत्कृष्ट पल्योपमके

असंख्यातवें भागकी उपार्जन करता है। तिर्यञ्चकी आयु उपार्जन करता हुआ असंज्ञी जीव जघन्य अन्तर्मुहूर्तकी और उत्कृष्ट पल्योपमके असंख्यातवें भागकी उपार्जन करता है। मनुष्यकी आयु भी इतनी ही उपार्जन करता है और देवकी आयु नरककी आयुके समान उपार्जन करता है।

भगवन्! नरक असंज्ञी आयुष्य, तिर्यञ्च असंज्ञी आयुष्य, मनुष्य असंज्ञी आयुष्य और देव असंज्ञी आयुष्य, इनमें कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक है? गौतम! देव असंज्ञी आयुष्य सबसे कम है। उसको अपेक्षा मनुष्य असंज्ञी आयुष्य असंख्यातगुणा है, उससे तिर्यञ्च अ० आ० असंख्यात गुणा है और उससे नरक असंज्ञी आयुष्य असंख्यातगुणा है। हे भगवन्! जैसा आप फरमाते हैं वह इसी प्रकार है। ऐसा कहकर गौतम स्वामी तप संयमसे अपनी आत्माको भावित करते हुए विचरते हैं ॥२६॥

॥ प्रथम शतकका द्वितीय उद्देशक समाप्त ॥

—०—

शतक १ उद्देशक ३ कांक्षा-मोहनीय

भगवन्! क्या जीवोंका कांक्षामोहनीय कर्म कृत-क्रिया-निष्पादित अर्थात् किया हुआ है? हाँ, गौतम! कृत है। भगवन्! क्या वह देशसे देशकृत है, देशसे सर्वकृत है, सर्वसे देशकृत है या सर्वसे सर्वकृत है? गौतम! वह देशसे देशकृत नहीं है, देशसे सर्वकृत नहीं है, सर्वसे देशकृत नहीं है, सर्वसे सर्वकृत है। भगवन्! क्या नैरयिकों का कांक्षामोहनीय कर्म कृत है? हाँ, गौतम! कृत है यावत् सर्वसे सर्वकृत है। इसी तरह यावत् चौबीसों दण्डकोंमें वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिए ॥२७॥

भगवन्! क्या जीवोंने कांक्षामोहनीय कर्म उपार्जन किया है? हाँ, गौतम! किया है। भगवन्! क्या देशसे देशकृत है? इत्यादि पूर्वोक्त प्रश्न करना चाहिए। गौतम! सर्वसे सर्वकृत है। इस प्रकार यावत् वैमानिकों तक चौबीसों दण्डकोंमें कहना चाहिए। इसी प्रकार करते हैं और करेंगे, इन दोनोंका कथन भी यावत् वैमानिकों तक कहना चाहिए। इसी प्रकार चय किया, चय करते हैं, चय करेंगे। उपचय किया, उपचय करते हैं, उपचय करेंगे। उदीरणा की, उदीरणा करते हैं, उदीरणा करेंगे। वेदन किया, वेदन करते हैं, वेदन करेंगे। निर्जीर्ण किया, निर्जीर्ण करते हैं, निर्जीर्ण करेंगे। इन सब पदोंका कथन करना चाहिए।

गाथा—कृत, चित, उपचित, उदीरित, वेदित और निर्जीर्ण इतने अभिलाप यहाँ कहना। इनमेंसे कृत, चित, उपचितमें एक २ के चार २ भेद हैं, अर्थात् सामान्य क्रिया, भूतकालकी क्रिया, वर्तमान कालकी क्रिया और भविष्य कालकी

क्रिया। पिछले तीन पदोंमें सिर्फ तीन काल सम्बन्धी क्रिया कहनी चाहिए ॥१॥२८॥

भगवन् ! क्या जीव कांक्षामोहनीय कर्मका वेदन करते हैं ? हाँ, गौतम ! वेदन करते हैं। भगवन् ! जीव कांक्षामोहनीय कर्मको किस प्रकार वेदते हैं ? गौतम ! अमुक २ कारणोंसे जीव शंकायुक्त, कांक्षायुक्त, विचिकित्सायुक्त, भेद-समापन्न और कलुषसमापन्न होकर कांक्षामोहनीय कर्मको वेदते हैं ॥२६॥

भगवन् ! क्या वही सत्य और निःशंक है जो जिन भगवान्ने निरूपण किया है ? हाँ, गौतम ! वही सत्य और निःशंक है जो जिन भगवान्ने निरूपण किया है ॥३०॥

भगवन् ! वही सत्य और निःशंक है जो जिन भगवान्ने निरूपण किया है, इस प्रकार मनमें निश्चय करता हुआ, इसी प्रकार आचरण करता हुआ, रहता हुआ, संवर करता हुआ, जिन आज्ञाका आराधक होता है ? हाँ, गौतम ! इस प्रकार मनमें निश्चय करता हुआ यावत् आज्ञाका आराधक होता है ॥३१॥

भगवन् ! क्या अस्तित्व, अस्तित्वमें परिणत होता है और नास्तित्व, नास्तित्वमें परिणत होता है ? हाँ, गौतम ! अस्तित्व, अस्तित्वमें परिणत होता है और नास्तित्व, नास्तित्वमें परिणत होता है। भगवन् ! अस्तित्व, अस्तित्वमें परिणत होता है और नास्तित्व, नास्तित्वमें परिणत होता है, सो क्या वह प्रयोगसे अर्थात् जीवके व्यापारसे या स्वभावसे परिणत होता है ? गौतम ! प्रयोगसे और स्वभावसे, दोनों तरहसे परिणत होता है।

भगवन् ! जैसे आपके मतमें अस्तित्व, अस्तित्वमें परिणत होता है तो क्या उसी प्रकार नास्तित्व, नास्तित्वमें परिणत होता है ? और जैसे आपके मतमें नास्तित्व, नास्तित्वमें परिणत होता है, तो क्या उसी प्रकार अस्तित्व, अस्तित्वमें परिणत होता है ? गौतम ! जैसे मेरे मतमें अस्तित्व, अस्तित्वमें परिणत होता है, उसी प्रकार नास्तित्व, नास्तित्वमें परिणत होता है और जिस प्रकार मेरे मतमें नास्तित्व, नास्तित्वमें परिणत होता है, उसी प्रकार अस्तित्व, अस्तित्वमें परिणत होता है। भगवन् ! क्या अस्तित्व, अस्तित्वमें गमनीय है ? गौतम ! जैसे 'परिणत' पदके आलापक कहे हैं, उसी प्रकार यहाँ 'गमनीय' पदके साथ भी दो आलापक कहने चाहिएँ। यावत् मेरे मतमें अस्तित्व, अस्तित्वमें गमनीय है ॥३२॥

भगवन् ! जैसे आपके मतमें (स्वात्मामें) गमनीय है, क्या उसी प्रकार परात्मामें भी गमनीय है ? जैसे आपके मतमें 'अत्रगमनीय' है उसी प्रकार 'इह गमनीय' भी है ? गौतम ! जैसे मेरे मतमें अत्र गमनीय है यावत् उसी प्रकार 'इह गमनीय' भी है ॥३३॥

असंख्यातवें भागकी उपार्जन करता है। तिर्यंचकी आयु उपार्जन करता हुआ असंज्ञी जीव जघन्य अन्तर्मुहूर्त्तकी और उत्कृष्ट पल्योपमके असंख्यातवें भागकी उपार्जन करता है। मनुष्यकी आयु भी इतनी ही उपार्जन करता है और देवकी आयु नरककी आयुके समान उपार्जन करता है।

भगवन्! नरक असंज्ञी आयुष्य, तिर्यंच असंज्ञी आयुष्य, मनुष्य असंज्ञी आयुष्य और देव असंज्ञी आयुष्य, इनमें कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक है? गौतम! देव असंज्ञी आयुष्य सबसे कम है। उसकी अपेक्षा मनुष्य असंज्ञी आयुष्य असंख्यातगुणा है, उससे तिर्यंच अ० आ० असंख्यात गुणा है और उससे नरक असंज्ञी आयुष्य असंख्यातगुणा है। हे भगवन्! जैसा आप फरमाते हैं वह इसी प्रकार है। ऐसा कहकर गौतम स्वामी तप संयमसे अपनी आत्माको भावित करते हुए विचरते हैं॥२६॥

॥ प्रथम शतकका द्वितीय उद्देशक समाप्त ॥

—०—

शतक १ उद्देशक ३ कांक्षा-मोहनीय

भगवन्! क्या जीवोंका कांक्षामोहनीय कर्म कृत-क्रिया-निष्पादित अर्थात् किया हुआ है? हाँ, गौतम! कृत है। भगवन्! क्या वह देशसे देशकृत है, देशसे सर्वकृत है, सर्वसे देशकृत है या सर्वसे सर्वकृत है? गौतम! वह देशसे देशकृत नहीं हैं, देशसे सर्वकृत नहीं है, सर्वसे देशकृत नहीं है, सर्वसे सर्वकृत है। भगवन्! क्या नैरयिकों का कांक्षामोहनीय कर्म कृत है? हाँ, गौतम! कृत है यावत् सर्वसे सर्वकृत है। इसी तरह यावत् चौवीसों दण्डकोंमें वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिए॥२७॥

भगवन्! क्या जीवोंने कांक्षामोहनीय कर्म उपार्जन किया है? हां, गौतम! किया है। भगवन्! क्या देशसे देशकृत है? इत्यादि पूर्वोक्त प्रश्न करना चाहिए। गौतम! सर्वसे सर्वकृत है। इस प्रकार यावत् वैमानिकों तक चौवीसों दण्डकोंमें कहना चाहिए। इसी प्रकार करते हैं और करेंगे, इन दोनोंका कथन भी यावत् वैमानिकों तक कहना चाहिए। इसी प्रकार चय किया, चय करते हैं, चय करेंगे। उपचय किया, उपचय करते हैं, उपचय करेंगे। उदीरणा की, उदीरणा करते हैं, उदीरणा करेंगे। वेदन किया, वेदन करते हैं, वेदन करेंगे। निर्जीर्ण किया, निर्जीर्ण करते हैं, निर्जीर्ण करेंगे। इन सब पदोंका कथन करना चाहिए।

गाथा-कृत, चित, उपचित, उदीरित, वेदित और निर्जीर्ण इतने अभिलाप यहाँ कहना। इनमेंसे कृत, चित, उपचितमें एक २ के चार २ भेद हैं, अर्थात् सामान्य क्रिया, भूतकालकी क्रिया, वर्त्तमान कालकी क्रिया और भविष्य कालकी

क्रिया। पिछले तीन पदोंमें सिर्फ तीन काल सम्बन्धी क्रिया कहनी चाहिए ॥१॥२८॥

भगवन् ! क्या जीव कांक्षामोहनीय कर्मका वेदन करते हैं ? हाँ, गौतम ! वेदन करते हैं। भगवन् ! जीव कांक्षामोहनीय कर्मको किस प्रकार वेदते हैं ? गौतम ! अमुक २ कारणोंसे जीव शंकायुक्त, कांक्षायुक्त, विचिकित्सायुक्त, भेद-समापन्न और कलुषसमापन्न होकर कांक्षामोहनीय कर्मको वेदते हैं ॥२९॥

भगवन् ! क्या वही सत्य और निःशंक है जो जिन भगवान्ने निरूपण किया है ? हाँ, गौतम ! वही सत्य और निःशंक है जो जिन भगवान्ने निरूपण किया है ॥३०॥

भगवन् ! वही सत्य और निःशंक है जो जिन भगवान्ने निरूपण किया है, इस प्रकार मनमें निश्चय करता हुआ, इसी प्रकार आचरण करता हुआ, रहता हुआ, संवर करता हुआ, जिन आज्ञाका आराधक होता है ? हाँ, गौतम ! इस प्रकार मनमें निश्चय करता हुआ यावत् आज्ञाका आराधक होता है ॥३१॥

भगवन् ! क्या अस्तित्व, अस्तित्वमें परिणत होता है और नास्तित्व, नास्तित्वमें परिणत होता है ? हाँ, गौतम ! अस्तित्व, अस्तित्वमें परिणत होता है और नास्तित्व, नास्तित्वमें परिणत होता है। भगवन् ! अस्तित्व, अस्तित्वमें परिणत होता है और नास्तित्व, नास्तित्वमें परिणत होता है, सो क्या वह प्रयोगसे अर्थात् जीवके व्यापारसे या स्वभावसे परिणत होता है ? गौतम ! प्रयोगसे और स्वभावसे, दोनों तरहसे परिणत होता है।

भगवन् ! जैसे आपके मतमें अस्तित्व, अस्तित्वमें परिणत होता है तो क्या उसी प्रकार नास्तित्व, नास्तित्वमें परिणत होता है ? और जैसे आपके मतमें नास्तित्व, नास्तित्वमें परिणत होता है, तो क्या उसी प्रकार अस्तित्व, अस्तित्वमें परिणत होता है ? गौतम ! जैसे मेरे मतमें अस्तित्व, अस्तित्वमें परिणत होता है, उसी प्रकार नास्तित्व, नास्तित्वमें परिणत होता है और जिस प्रकार मेरे मतमें नास्तित्व, नास्तित्वमें परिणत होता है, उसी प्रकार अस्तित्व, अस्तित्वमें परिणत होता है। भगवन् ! क्या अस्तित्व, अस्तित्वमें गमनीय है ? गौतम ! जैसे 'परिणत' पदके आलापक कहे हैं, उसी प्रकार यहाँ 'गमनीय' पदके साथ भी दो आलापक कहने चाहिएँ। यावत् मेरे मतमें अस्तित्व, अस्तित्वमें गमनीय है ॥३२॥

भगवन् ! जैसे आपके मतमें (स्वात्मामें) गमनीय है, क्या उसी प्रकार परात्मामें भी गमनीय है ? जैसे आपके मतमें 'अन्नगमनीय' है उसी प्रकार 'इह गमनीय' भी है ? गौतम ! जैसे मेरे मतमें अन्न गमनीय है यावत् उसी प्रकार 'इह गमनीय' भी है ॥३३॥

भगवन् ! क्या जीव कांक्षामोहनीय कर्म बांधते हैं ? हाँ, गौतम ! बांधते हैं। भगवन् ! जीव कांक्षामोहनीय कर्म किस प्रकार बांधते हैं ? गौतम ! प्रमाद के कारण और योगके निमित्तसे जीव कांक्षामोहनीय कर्म बांधते हैं। भगवन् ! प्रमाद किससे उत्पन्न होता है ? गौतम ! प्रमाद योग से उत्पन्न होता है। भगवन् ! योग किससे उत्पन्न होता है ? गौतम ! योग वीर्य से उत्पन्न होता है। भगवन् ! वीर्य किससे उत्पन्न होता है ? गौतम ! वीर्य शरीर से उत्पन्न होता है। भगवन् ! शरीर किससे उत्पन्न होता है ? गौतम ! शरीर जीव से उत्पन्न होता है और जीव उत्थान, कर्म, वल, वीर्य और पुरुषकार पराक्रमसे यह करता है ।।३४।।

भगवन् ! क्या जीव अपनी आत्मा से ही उदीरणा करता है ? अपनी आत्मा से ही उसकी गर्हा करता है ? और अपनी आत्मा से ही उसका संवर करता है ? हाँ, गौतम ! जीव अपनी आत्मासे ही उदीरणा, गर्हा और संवर करता है। भगवन् ! जीव अपनी आत्मा से ही उदीरणा, गर्हा और संवर करता है तो क्या उदीर्ण (उदय में आये हुए) की उदीरणा करता है ? अनुदीर्ण (उदय में नहीं आये हुए) की उदीरणा करता है ? या अनुदीर्ण उदीरणाभविक (उदय में नहीं आया हुआ किन्तु उदीरणा के योग्य) की उदीरणा करता है ? या उदयानन्तर पश्चात् कृत कर्मकी उदीरणा करता है ? गौतम ! उदीर्ण की उदीरणा नहीं करता, अनुदीर्ण की भी उदीरणा नहीं करता, तथा उदयानन्तर पश्चात्कृत की भी उदीरणा नहीं करता, किन्तु अनुदीर्ण उदीरणा-भविक कर्मकी उदीरणा करता है।

भगवन् ! जीव अनुदीर्ण उदीरणा-भविककी उदीरणा करता है, तो क्या उत्थानसे, कर्मसे, वलसे, वीर्यसे, और पुरुषकार पराक्रमसे उदीरणा करता है ? या अनुत्थानसे, अकर्मसे, अवलसे, अवीर्यसे और अपुरुषकार पराक्रमसे उदीरणा करता है ? गौतम ! अनुदीर्ण उदीरणा-भविक कर्मकी उदीरणा उत्थानसे, कर्मसे, वलसे, वीर्यसे और पुरुषकार पराक्रमसे करता है, किन्तु अनुत्थानसे, अकर्मसे, अवलसे, अवीर्यसे और अपुरुषकार पराक्रमसे उदीरणा नहीं करता। इसलिए उत्थान, कर्म, वल, वीर्य और पुरुषकार पराक्रम हैं।

भगवन् ! क्या वह अपनी आत्मा से ही उपशम, गर्हा और संवर करता है ? हाँ, गौतम ! यहाँ भी उसी प्रकार 'पूर्ववत्' कहना चाहिए। विशेषता यह है कि अनुदीर्ण (उदय में नहीं आये हुए) का उपशम करता है। शेष तीन विकल्पों का निषेध करना चाहिए। भगवन् ! जीव अनुदीर्ण कर्म का उपशम करता है, तो क्या उत्थानसे यावत् पुरुषकार पराक्रम से करता है ? या अनुत्थानसे यावत् अपुरुषकार पराक्रमसे करता है ? गौतम ! पूर्ववत् जानना। यावत् पुरुषकार पराक्रमसे उपशम करता है।

भगवन् ! क्या जीव अपनी आत्मासे ही वेदन करता है और गर्हा करता है ? हाँ,गौतम ! यहाँ भी पूर्वोक्त समस्त परिपाटी समझनी चाहिए। विशेषता यह है कि—उदीर्ण को वेदता है, अनुदीर्ण को नहीं वेदता। इस प्रकार यावत् पुरुषकार पराक्रमसे वेदता है, अनुत्थानादिसे नहीं वेदता।

भगवन् ! क्या जीव अपनी आत्मासे ही निर्जरा करता है और गर्हा करता है ? गौतम ! यहाँ भी समस्त परिपाटी पूर्ववत् समझनी चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि उदयानन्तर पश्चात्कृत कर्मको निर्जरा करता है। इस प्रकार यावत् पुरुषकार पराक्रमसे निर्जरा और गर्हा करता है। इसलिए उत्थान यावत् पुरुषकार पराक्रम हैं ॥३५॥

भगवन् ! क्या नैरयिक जीव कांक्षामोहनीय कर्म वेदते हैं ? हाँ, गौतम ! वेदते हैं। जैसे सामान्य जीव कहे वैसे ही नैरयिक भी समझने चाहिएं। इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमारों तक जानना चाहिए।

भगवन् ! क्या पृथ्वीकायके जीव कांक्षामोहनीय कर्म वेदते हैं ? हाँ, गौतम ! वेदते हैं। भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीव कांक्षामोहनीय कर्म किस प्रकार वेदते हैं ? गौतम ! उन जीवोंको ऐसा तर्क, संज्ञा, प्रज्ञा, मन या वचन नहीं होता कि 'हम कांक्षामोहनीयकर्म को वेदते हैं,' किन्तु वे उसे वेदते हैं। भगवन् ! वह सत्य और निःशंक है जो जिन भगवन्तों नें प्ररूपित किया है ? गौतम ! यह सब पहले के समान समझना चाहिए। अर्थात् जो जिन भगवन्तोंने प्ररूपित किया है वह सत्य और निःशंक है। यावत् पुरुषकार पराक्रम से निर्जरा होती है। इस प्रकार चौरिन्द्रिय जीवों तक जानना चाहिए। जैसे सामान्य जीव कहे हैं वैसे ही पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनि वाले यावत् वैमानिक तक कहना चाहिए॥३६॥

भगवन्! क्या श्रमण निर्ग्रन्थ भी कांक्षामोहनीय कर्म वेदते हैं ? हाँ,गौतम ! वदते हैं। भगवन् ! श्रमण निर्गन्थ कांक्षामोहनीय कर्म किस प्रकार वेदते हैं ? गौतम ! उन कारणों से ज्ञानान्तर, दर्शनान्तर, चारित्रान्तर, लिंगान्तर, प्रवचनान्तर, प्रावचनिकान्तर, कल्पान्तर, मार्गान्तर, मतान्तर, भंगान्तर, नयान्तर, नियमान्तर और प्रमाणान्तर के द्वारा शंका वाले, कांक्षा वाले, विचिकित्सा वाले, भेदसमापन्न और कलुषसमापन्न होकर, इस प्रकार श्रमण निर्ग्रन्थ भी काँक्षामोहनीय कर्मको वेदते हैं। भगवन् ! क्या वही सत्य और असंदिग्ध है जो जिन भगवन्तों ने प्ररूपित किया है ? हाँ, गौतम ! वही सत्य है, असंदिग्ध है, जो जिन भगवन्तोंने प्ररूपित किया है। यावत् पुरुषकार पराक्रमसे निर्जरा होती है। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है।··· भगवन् ! यही सत्य है ···॥३७॥

॥प्रथम शतक का तृतीय उद्देशक समाप्त॥

शतक १ उद्देशक ४—कर्मप्रकृतियां

भगवन् ! कर्मप्रकृतियाँ कितनी कही गई हैं ? गौतम ! कर्मप्रकृतियाँ आठ कही हैं । यहां पर पन्नवणा सूत्र के कर्मप्रकृति नामक तेईसवें पदका पहला उद्देशक यावत् अनुभाग तक कहना चाहिए । गाथा—१. कितनी कर्मप्रकृतियां हैं ? २. जीव किस प्रकार बंध करता है ? ३. कितने स्थानोंसे कर्मप्रकृतियोंको बांधता है ? ४. कितनी प्रकृतियोंको वेदता है ? ५. किस प्रकृतिका कितने प्रकारका अनुभाग (रस) है ? ॥१॥३८॥

भगवन् ! जब मोहनीय कर्म उदयमें आया हुआ हो तब क्या जीव उपस्थान—परलोककी क्रिया करता है ? हाँ, गौतम ! उपस्थान करता है । भगवन् ! क्या जीव वीर्य से उपस्थान करता है, या अवीर्य से ? गौतम ! जीव वीर्य से उपस्थान करता है, अवीर्यसे नहीं । भगवन् ! यदि वीर्यसे उपस्थान करता है, तो क्या बालवीर्यसे करता है, या पण्डितवीर्यसे अथवा बालपण्डित वीर्यसे ? गौतम ! बालवीर्यसे ही उपस्थान करता है, किन्तु पण्डितवीर्य और बालपण्डित वीर्यसे उपस्थान नहीं करता । भगवन् ! उपार्जन किया हुआ मोहनीय कर्म जब उदयमें आया हो, तो क्या जीव अपक्रमण करता है अर्थात् उत्तम गुणस्थानकसे हीन गुणस्थानकमें जाता है ? हां, गौतम ! अपक्रमण करता है । भगवन् ! क्या जीव बालवीर्यसे अपक्रमण करता है ? या पण्डितवीर्यसे अथवा बालपण्डितवीर्यसे ? ···बालवीर्यसे अपक्रमण होता है और कदाचित् बालपण्डित-वीर्यसे भी अपक्रमण होता है, किन्तु पण्डित वीर्यसे नहीं होता । जैसे 'उदयमें आये हुए' पदके साथ दो आलापक कहे हैं, उसी प्रकार 'उपशान्त' पदके साथ भी दो आलापक कहने चाहिएँ । विशेषता यह है कि यहाँ पण्डितवीर्यसे उपस्थान होता है और बालपण्डितवीर्यसे अपक्रमण होता है । भगवन् ! क्या अपक्रमण आत्मासे होता है, या अनात्मासे ? गौतम ! अपक्रमण आत्मासे होता है, अनात्मासे नहीं । भगवन् ! मोहनीय कर्मको वेदता हुआ यह इस प्रकार क्यों होता है ? गौतम ! पहले उसे इस प्रकार रुचता है और अब उसे इस प्रकार नहीं रुचता । इस कारण यह इस प्रकार होता है ॥३९॥

भगवन् ! जो पापकर्म किया है, क्या उसे भोगे विना नारकी, तिर्यञ्च, मनुष्य और देवका मोक्ष नहीं होता ? हां, गौतम ! किये हुए कर्मको भोगे विना नारकी, तिर्यञ्च, मनुष्य और देवका मोक्ष नहीं होता । भगवन् ! आप ऐसा किस कारणसे कहते हैं कि कृतकर्मों को भोगे विना नारकी यावत् देव किसीका भी मोक्ष नहीं होता ? गौतम ! यह निश्चित है कि—मैंने कर्मके दो भेद बताये हैं । वे इस प्रकार हैं—१ प्रदेशकर्म और २ अनुभाग कर्म । इनमें जो प्रदेश कर्म है वह अवश्य भोगना पड़ता है और जो अनुभाग कर्म है, वह कुछ वेदा जाता है

और कुछ नहीं भी वेदा जाता । यह अरिहन्त भगवान् द्वारा ज्ञात है, स्मृत है और विज्ञात है कि—यह जीव इस कर्मको आभ्युपगमिक (स्वेच्छासे स्वीकृत) वेदनासे वेदेगा और यह जीव इस कर्मको औपक्रमिक (अनिच्छापूर्वक) वेदना से वेदेगा। बांधे हुए कर्मके अनुसार, निकरणोंके अनुसार, जैसा जैसा भगवान्ने देखा है वैसे वैसे वह विपरिणाम पायेगा। अतः गौतम ! इस कारणसे मैं ऐसा कहता हूं कि किये हुए कर्मोंको भोगे बिना नारकी, तिर्यंच, मनुष्य या देव किसी का भी मोक्ष नहीं है ॥४०॥

भगवन् ! क्या यह पुद्गल अतीत अनन्त शाश्वत कालमें था—ऐसा कहा जा सकता है ? हाँ, गौतम ! यह शाश्वत—पुद्गल परिमाण रहित अतीतकालमें था—ऐसा कहा जा सकता है। भगवन् ! क्या यह पुद्गल वर्तमान शाश्वतकाल में है ? ऐसा कहा जा सकता है ? हाँ, गौतम ! ऐसा कहा जा सकता है (पहले उत्तरके समान ही उच्चारण करना चाहिए) । भगवन् ! क्या यह पुद्गल अनन्त और शाश्वत भविष्य कालमें रहेगा—ऐसा कहा जा सकता है ? हाँ,गौतम ! ऐसा कहा जा सकता है (पहलेके उत्तरके समान ही उच्चारण करना चाहिए) । इसी प्रकार स्कन्धके साथ तीन आलापक और जीव के साथ भी तीन आलापक कहने चाहिएँ ॥४१॥

भगवन् ! क्या बीते हुए अनन्त शाश्वत कालमें छद्मस्थ मनुष्य केवल संयमसे, केवल संवरसे, केवल ब्रह्मचर्यवाससे और केवल प्रवचन-मातासे सिद्ध हुआ है, बुद्ध हुआ है, यावत् समस्त दुःखोंका नाश करने वाला हुआ है ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। भगवन् ! किस कारणसे आप ऐसा फरमाते हैं ? गौतम ! जो कोई जीव कर्मों का अन्त करने वाले और चरमशरीरी हुए हैं, वे सब उत्पन्न-ज्ञान-दर्शनधारी, अरिहन्त; जिन और केवली होकर फिर सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हुए हैं, निर्वाणको प्राप्त हुए हैं और उन्होंने समस्त दुःखोंका नाश किया है, वैसे केवली ही मुक्त होते हैं और होंगे। इस कारण से हे गौतम ! ऐसा कहा है कि यावत् समस्त दुःखोंका अन्त किया। वर्तमान कालमें भी इसी प्रकार जानना। विशेष यह है कि 'सिद्ध होते—हैं' ऐसा कहना चाहिए। तथा भविष्य कालमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए, किन्तु विशेष यह है कि 'सिद्ध होंगे' ऐसा कहना चाहिए। जैसा छद्मस्थके विषयमें कहा है वैसा ही आधोवधिक और परमाधोवधिकके विषय में समझना चाहिए और उसके तीन आलापक कहने चाहिएँ।

भगवन् ! क्या बीते हुए अनन्त शाश्वत् कालमें केवली मनुष्य ने यावत् समस्त दुःखोंका अन्त किया है ? गौतम ! वह सिद्ध हुआ यावत् उसने सब दुःखों

का अन्त किया। यहां छद्मस्थके समान तीन आलापक कहने चाहिएं। विशेष यह है कि सिद्ध हुआ, सिद्ध होता है और सिद्ध होगा, इस प्रकारके तीन आलापक कहने चाहिएँ। भगवन्! बीते हुए अनन्त शाश्वत कालमें, वर्तमान शाश्वत कालमें और अनन्त शाश्वत भविष्यत्कालमें जिन अन्तकरों ने, चरम शरीर वालोंने सब दुःखोंका नाश किया है, करते हैं और करेंगे, क्या वे सब उत्पन्न ज्ञान-दर्शनधारी, अरिहन्त, जिन और केवली होकर फिर सिद्ध होते हैं यावत् सब दुःखोंका नाश करेंगे? हाँ, गौतम! बीते हुए अनन्त शाश्वत काल में यावत् सब दुःखोंका अन्त करेंगे। भगवन्! क्या वे उत्पन्न ज्ञान-दर्शनधारी, अरिहन्त, जिन केवली 'अलमस्तु' अर्थात् पूर्ण हैं, ऐसा कहना चाहिए? हाँ, गौतम! वे उत्पन्न ज्ञान-दर्शनधारी, अरिहन्त, जिन, केवली पूर्ण हैं—ऐसा कहना चाहिए। हे भगवन्! ऐसा ही है।······॥४२॥

॥ प्रथम शतकका चतुर्थ उद्देशक समाप्त ॥

—०—

शतक १ उद्देशक ५—नरकावास

भगवन्! पृथ्वियां कितनी कही गई हैं? गौतम! पृथ्वियां सात हैं। वे इस प्रकार हैं—रत्नप्रभा यावत् तमस्तमाप्रभा। भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी में कितने लाख नरकावास—अर्थात् नैरयिकोंके रहनेके स्थान कहे गये हैं? गौतम! इस रत्नप्रभा पृथ्वीमें तीस लाख नरकावास कहे गये हैं। सब पृथ्वियों में नरकावासोंकी संख्या बतलाने वाली गाथा का अर्थ इस प्रकार है—पहली पृथ्वीमें तीस लाख, दूसरीमें पच्चीस लाख, तीसरीमें पन्द्रह लाख, चौथीमें दस लाख, पाँचवींमें तीन लाख, छठीमें पाँच कम एक लाख और सातवीं पृथ्वीमें सिर्फ पांच नरकावास कहे गये हैं। भगवन्! असुरकुमारोंके कितने लाख आवास कहे गये हैं? गौतम! वे इस प्रकार···हैं—असुरकुमारोंके चौंसठ लाख, नागकुमारोंके चौरासी लाख, सुवर्णकुमारोंके बहत्तर लाख, वायुकुमारोंके छयानवें लाख आवास कहे गये हैं और द्वीपकुमार—दिक्कुमार (दिशाकुमार), उदधिकुमार—विद्युतकुमार, स्तनितकुमार और अग्निकुमार, इन छह युगलिकोंके छिहत्तर छिहत्तर लाख आवास कहे गये हैं।

भगवन्! पृथ्वीकायिक जीवोंके कितने लाख आवास कहे गये हैं? गौतम! पृथ्वीकायिक जीवों के असंख्यात लाख आवास कहे गये हैं और इसी प्रकार यावत् ज्योतिष्क देवोंके असंख्यात लाख विमानावास कहे गये हैं। भगवान्! सौधर्मकल्पमें कितने विमानावास कहे गये हैं? गौतम! वहाँ बत्तीस लाख विमानावास कहे गये हैं। इस प्रकार—क्रमशः बत्तीस

लाख, अट्ठाइस लाख, बारह लाख, आठ लाख, चार लाख, पचास हजार, चालीस हजार विमानावास जानें। सहस्रार कल्पमें छह हजार विमानावास हैं। आणत और प्राणत कल्पमें चार सौ, आरण और अच्युतमें तीन सौ, इस तरह चारोंमें मिल कर सात सौ विमान हैं। अधस्तन (निचले) ग्रैवेयकत्रिकमें एक सौ ग्यारह, मध्यतन (बीच के) ग्रैवेयकत्रिकमें एक सौ सात और उपरितन (ऊपर के) ग्रैवेयकत्रिकमें एक सौ विमानावास हैं। अनुत्तर विमान पाँच ही हैं ।।४३।।

संग्रहगाथाका अर्थ इस प्रकार है—नरकावासादिमें स्थिति, अवगाहना, शरीर, संहनन, संस्थान, लेश्या, दृष्टि, ज्ञान, योग और उपयोग, इन दस बातों का विचार करना है। भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वीके तीस लाख नरकावासों में के एक एक नरकावासमें रहने वाले नारक जीवोंके कितने स्थिति स्थान कहे गये हैं ? अर्थात् एक एक नरकावासके नारकियों की कितनी कितनी उम्र है ? गौतम ! उनके असंख्य स्थिति स्थान कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं—जघन्य स्थिति दस हजार वर्षकी है, वह एक समय अधिक, दो समय अधिक, इस प्रकार यावत् असंख्यात समय अधिक जघन्यस्थिति तथा उसके योग्य उत्कृष्ट स्थिति (ये सब मिलकर असंख्यात स्थिति-स्थान होते हैं)।

भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वीके तीस लाख नरकावासों में के एक एक नरकावासमें जघन्य (कम से कम) स्थितिमें वर्तमान नारकी क्या क्रोधोपयुक्त हैं ? मानोपयुक्त हैं ? मायोपयुक्त हैं ? या लोभोपयुक्त हैं ? गौतम ! वे सभी क्रोधोपयुक्त होते हैं। अथवा बहुत क्रोधी और एक मानी होते हैं। अथवा बहुत क्रोधी और बहुत मानी होते हैं। अथवा बहुत क्रोधी और एक मायी होते हैं। बहुत क्रोधी और बहुत मायी होते हैं। अथवा बहुत क्रोधी और एक लोभी होते हैं। अथवा बहुत क्रोधी और बहुत लोभी होते हैं।

अथवा—बहुत क्रोधी, एक मानी और एक मायी होते हैं। अथवा बहुत क्रोधी, एक मानी और बहुत मायी होते हैं। अथवा बहुत क्रोधी, बहुत मानी और एक मायी होते हैं। अथवा बहुत क्रोधी, बहुत मानी और बहुत मायी होते हैं। इसी तरह क्रोध, मान और लोभके चार भंग कहने चाहिएँ। इसी तरह क्रोध, माया और लोभके चार भंग कहने चाहिएँ। फिर क्रोध, मान, माया और लोभ, ये चार संयोगी आठ भंग कहने चाहियें। इस तरह क्रोधको नहीं छोड़ते हुए ये सत्ताइस भंग बनते हैं।

हे भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वीके तीस लाख नरकावासों में के एक एक नरकावासमें एक समय अधिक जघन्य स्थितिमें वर्त्तमान नारकी क्या क्रोधोपयुक्त हैं ? मानोपयुक्त हैं ? मायोपयुक्त हैं ? या लोभोपयुक्त हैं ? हे गौतम !

कभी एक क्रोधोपयुक्त। कभी एक मानोपयुक्त। कभी एक मायोपयुक्त। कभी एक लोभोपयुक्त। कभी बहुत क्रोधोपयुक्त। कभी बहुत मानोपयुक्त। कभी बहुत मायोपयुक्त। कभी बहुत लोभोपयुक्त होते हैं। अथवा एक क्रोधोपयुक्त और एक मानोपयुक्त। अथवा एक क्रोधोपयुक्त और बहुत मानोपयुक्त। अथवा बहुत क्रोधोपयुक्त और एक मानोपयुक्त। अथवा बहुत क्रोधोपयुक्त और बहुत मानोपयुक्त। इत्यादि प्रकारसे अस्सी भंग समझने चाहिएँ। इसी प्रकार यावत् संख्येय समयाधिक स्थिति वाले नारकियोंके लिए समझना चाहिए। असंख्येय समयाधिक स्थिति वालोंमें तथा उसके योग्य उत्कृष्ट स्थिति वाले नैरयिकोंमें सत्ताइस भंग कहने चाहिएँ ॥४४॥

भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के तीस लाख नरकावासोंमें के एक एक नरकावासमें रहने वाले नारकियोंके अवगाहनास्थान कितने कहे गये हैं? गौतम! उनके अवगाहनास्थान असंख्यात कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं—जघन्य अवगाहना (अंगुलके असंख्यातवें भाग), एक प्रदेशाधिक जघन्य अवगाहना, दो प्रदेश अधिक जघन्य अवगाहना, यावत् असंख्यात प्रदेश अधिक जघन्य अवगाहना तथा उसके योग्य उत्कृष्ट अवगाहना। भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वीके तीस लाख नरकावासोंमें के एक एक नरकावासमें जघन्य अवगाहना वाले नैरयिक क्या क्रोधोपयुक्त हैं? मानोपयुक्त हैं?- मायोपयुक्त हैं? या लोभोपयुक्त हैं? गौतम! जघन्य अवगाहना वालों में अस्सी भंग कहने चाहिएँ यावत् संख्यात प्रदेश अधिक जघन्य अवगाहना वालोंमें भी अस्सी भंग कहने चाहिएँ। असंख्यात प्रदेश अधिक जघन्य अवगाहनामें वर्तने वाले और उसके योग्य उत्कृष्ट अवगाहनामें वर्तने वाले, इन दोनों प्रकारके नारकियों में सत्ताइस भंग कहने चाहिएँ।

भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वीके तीस लाख नरकावासोंमें के एक एक नरकावासमें बसने वाले नारकी जीवोंके कितने शरीर हैं? गौतम! उनके तीन शरीर कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं—वैक्रिय, तैजस् और कार्मण। इस रत्नप्रभा पृथ्वी के तीस लाख नरकावासोंमें के प्रत्येक नरकावासमें बसने वाले वैक्रिय शरीर वाले नारकी क्या क्रोधोपयुक्त हैं?.....गौतम! सत्ताइस भंग कहने चाहिएँ। और इसी प्रकार शेष दोनों शरीरों (तैजस् और कार्मण) सहित तीनोंके सम्बन्ध में भी यही कहना चाहिए।

भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वीके तीस लाख नरकावासोंमें के प्रत्येक नरकावासमें बसने वाले नैरयिकोंके शरीरों का कौनसा संहनन है? गौतम! उनका शरीर संहनन रहित है अर्थात् उनमें छह संहननोंमें का संहनन नहीं होता। उनके शरीरमें हड्डी, शिरा (नस) और स्नायु नहीं होती। जो पुद्गल अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय, अशुभ, अमनोज्ञ और अमनोहर हैं, वे पुद्गल नारकियों के

शरीर संघात रूप में परिणत होते हैं। भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वीके तीस लाख नरकावासोंमें के प्रत्येक नरकावासमें रहने वाले और छह संहननोंमें से जिनके एक भी संहनन नहीं है, वे नैरयिक क्या क्रोधोपयुक्त हैं ? मानोपयुक्त हैं ? मायोपयुक्त हैं ? या लोभोपयुक्त हैं ? गौतम ! यहाँ सत्ताइस भंग कहने चाहिएँ।

भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वीके तीस लाख नरकावासोंमें के प्रत्येक नरकावासमें रहने वाले नैरयिकोंके शरीर किस संस्थान वाले हैं ? गौतम ! उन नारकियोंका शरीर दो प्रकारका कहा गया है। यथा--भवधारणीय (जीवन पर्यन्त रहनेवाला) और उत्तरवैक्रिय। उनमें जो भवधारणीय शरीर हैं, वे हुण्डसंस्थान वाले ...हैं और जो शरीर उत्तर वैक्रिय रूप हैं, वे भी हुंण्ड संस्थान वाले कहे गये हैं। इस रत्नप्रभा पृथ्वी के तीस लाख नरकावासोंमें के प्रत्येक नरकावासमें वसने वाले हुण्ड संस्थानमें वर्तमान नैरयिक क्या क्रोधोपयुक्त हैं ? मानोपयुक्त हैं ? मायोपयुक्त हैं ? या लोभोपयुक्त हैं ? गौतम ! यहाँ सत्ताइस भंग कहने चाहिएँ।

भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वीमें वसने वाले नैरयिकोंमें कितनी लेश्याएँ हैं ? गौतम ! एक कापोत लेश्या...है। भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वीमें वसने वाले कापोतलेश्या वाले नारकी जीव क्या क्रोधोपयुक्त हैं ? मानोपयुक्त हैं ? मायोपयुक्त हैं ? या लोभोपयुक्त हैं ? गौतम ! इनमें सत्ताइस भंग कहने चाहिएँ ॥४५॥

भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी में वसने वाले नारकी क्या सम्यग्दृष्टि हैं ? मिथ्यादृष्टि हैं ? या सम्यग्मिथ्यादृष्टि (मिश्रदृष्टि) हैं ? गौतम ! तीनों प्रकार के हैं। भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी में बसने वाले सम्यग्दृष्टि नारकी जीव क्या क्रोधोपयुक्त हैं ? मानोपयुक्त हैं ? मायोपयुक्त हैं ? लोभोपयुक्त हैं ? गौतम ! सत्ताइस भंग कहने चाहिएँ। इसी तरह मिथ्यादृष्टि में भी कहना चाहिए। सम्यग्मिथ्यादृष्टि में अस्सी भंग कहने चाहिएँ।

भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी में बसने वाले नारकी जीव क्या ज्ञानी हैं ? या अज्ञानी हैं ? गौतम ! उनमें ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी। जो ज्ञानी हैं उनमें नियमपूर्वक तीन ज्ञान होते हैं और जो अज्ञानी हैं उनमें तीन अज्ञान भजना (विकल्प) से होते हैं। भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी में बसने वाले और आभिनिवोधिक ज्ञान में वर्तने वाले नारकी जीव क्या क्रोधोपयुक्त हैं ? मानोपयुक्त हैं ? मायोपयुक्त हैं ? या लोभोपयुक्त हैं ? गौतम ! यहाँ सत्ताइस भंग कहने चाहिएँ और इसी प्रकार तीन ज्ञान और तीन अज्ञान में कहना चाहिए।

भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी में वसने वाले नारकी जीव क्या मनयोगी हैं ?

वचनयोगी हैं ? या काययोगी हैं ? गौतम ! वे प्रत्येक तीनों प्रकारके हैं अर्थात् सभी नारकी जीव मन, वचन और काया, इन तीनों योगों वाले हैं। भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वीमें वसने वाले और मनयोग में वर्तने वाले नारकी जीव क्या क्रोधोपयुक्त हैं ? मानोपयुक्त हैं ? मायोपयुक्त हैं ? या लोभोपयुक्त हैं ? गौतम ! सत्ताइस भंग कहने चाहिएँ और इसी प्रकार वचनयोगी और काययोगीमें भी कहना चाहिये।

भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वीमें रहने वाले नारकी जीव क्या साकारोपयोगसे युक्त हैं ? या अनाकारोपयोगसे युक्त हैं ? गौतम ! साकारोपयोगयुक्त भी हैं और अनाकारोपयोगयुक्त भी हैं। भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वीमें वसने वाले और साकारोपयोगमें वर्तने वाले नारकी जीव क्या क्रोधोपयुक्त हैं ? मानोपयुक्त हैं ? मायोपयुक्त हैं या लोभोपयुक्त हैं ? गौतम ! इनमें सत्ताइस भंग कहने चाहिएँ। इसी प्रकार अनाकारोपयोगयुक्तमें भी कहना चाहिए।

रत्नप्रभामें कहा उसी तरहसे सातों पृथ्वियोंके विषयमें कहना चाहिए। लेश्याओंमें विशेषता है। वह इस प्रकार है—पहली और दूसरी नरकमें कापोत लेश्या है। तीसरी में मिश्र अर्थात् कापोत और नील, ये दो लेश्याएं हैं। चौथीमें नील लेश्या है। पांचवींमें मिश्र अर्थात् नील और कृष्ण, ये दो लेश्याएं हैं। छठीमें कृष्ण लेश्या है और सातवींमें परम कृष्ण लेश्या है ॥१॥४६॥

भगवन् ! चौंसठ लाख असुरकुमारावासोंमें के एक २ असुरकुमारावासमें वसने वाले असुरकुमारोंके कितने स्थिति स्थान कहे गये हैं ? गौतम ! उनके स्थिति स्थान असंख्यात कहे गए हैं, वे इस प्रकार हैं—जघन्य स्थिति, एक समय अधिक जघन्य स्थिति, इत्यादि वर्णन नारकियोंके समान जानना चाहिए। विशेषता यह है कि इनमें जहाँ सत्ताइस भंग आते हैं वहाँ प्रतिलोम—उल्टे समझना चाहिए। वे इस प्रकार हैं—समस्त असुरकुमार लोभोपयुक्त होते हैं। अथवा बहुतसे लोभोपयुक्त और एक मायोपयुक्त होता है। अथवा बहुतसे लोभोपयुक्त और बहुतसे मायोपयुक्त होते हैं। इत्यादि रूपसे जानना चाहिए। इसी प्रकार स्तनितकुमारों तक जानना चाहिए। विशेषता यह है कि संहनन संस्थान लेश्या आदिमें भिन्नता जाननी चाहिए ॥४७॥

भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीवोंके असंख्यात लाख आवासोंमें से एक २ आवासमें वसने वाले पृथ्वीकायिकोंके कितने स्थितिस्थान कहे गए हैं? गौतम ! उनके असंख्य स्थितिस्थान कहे गए हैं। यथा—उनकी जघन्य स्थिति, एक समय अधिक जघन्य स्थिति, दो समय अधिक जघन्य स्थितिं, इत्यादि यावत् उसके योग्य उत्कृष्ट स्थिति। भगवन् ! पृथ्वीकायिकोंके असंख्यात लाख आवासोंमें से एक २ आवासमें वसने वाले और जघन्य स्थितिमें वर्तमान पृथ्वीकायिक क्या

क्रोधोपयुक्त हैं ? मानोपयुक्त हैं ? मायोपयुक्त हैं ? या लोभोपयुक्त हैं ? गौतम ! वे क्रोधोपयुक्त भी हैं, मानोपयुक्त भी हैं, मायोपयुक्त भी हैं और लोभोपयुक्त भी हैं। इस प्रकार पृथ्वीकायिकोंके सव स्थानोंमें अभंगक है। विशेप यह कि तेजोलेश्यामें अस्सी भंग कहने चाहिएं। इसी प्रकार अप्कायके लिए भी जानना चाहिए। तेउकाय और वायुकायके सव स्थानोंमें अभंगक है। वनस्पतिकायिकको पृथ्वीकायिकके समान समझना चाहिए ॥४८॥

जिन स्थानोंमें नैरयिक जीवोंके अस्सी भंग कहे गए हैं, उन स्थानोंमें वेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चौइन्द्रिय जीवोंके भी अस्सी भंग होते हैं। विशेपता यह है कि सम्यक्त्व, आभिनिवोधिक ज्ञान (मतिज्ञान) और श्रुतज्ञान, इन तीन स्थानोंमें भी वेइन्द्रियादि जीवोंके अस्सी भंग होते हैं, यह वात नैरयिक जीवोंसे अधिक है। तथा जिन स्थानोंमें नारकी जीवोंमें सत्ताइस भंग कहे गए हैं, उन सभी स्थानोंमें यहाँ अभंगक है अर्थात् कोई भंग नहीं होते हैं।

जैसा नारकी जीवोंके विषयमें कहा गया है, वैसा ही पञ्चेन्द्रिय तिर्यंच योनि वाले जीवोंके विषयमें भी समझना चाहिए। विशेषता यह है कि नारकी जीवोंके सम्बन्धमें जिन २ स्थानोंमें सत्ताइस भंग कहे गए हैं, उन २ स्थानोंमें यहाँ अभंगक कहना चाहिए और जिन स्थानोंमें अस्सी भंग कहे गए हैं, उन स्थानोंमें पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनि वाले जीवोंमें भी अस्सी भंग कहने चाहिएँ। नारकी जीवोंमें जिन जिन स्थानोंमें अस्सी भंग कहे गये हैं, उन उन स्थानोंमें मनुष्योंमें भी अस्सी भंग कहने चाहिएँ। नारकी जीवोंमें जिन जिन स्थानोंमें सत्ताइस भंग कहे गए हैं उन उन स्थानोंमें मनुष्योंमें अभंगक कहना चाहिए। विशेषता यह है कि मनुष्योंमें जघन्य स्थितिमें और आहारक शरीरमें अस्सी भंग कहने चाहिएँ। वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देवोंका कथन भवनपति देवोंके समान समझना चाहिए, विशेषता यह है कि—जिसकी जो भिन्नता है वह जाननी चाहिए, यावत् अनुत्तर विमान तक कहना चाहिए। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है······। ऐसा कह कर यावत् गौतम स्वामी विचरते हैं ॥४९॥

॥ प्रथम शतकका पांचवां उद्देशक समाप्त ॥

—०—

शतक १ उद्देशक ६

भगवन् ! जितने अवकाशान्तरसे अर्थात् जितनी दूरीसे उगता हुआ सूर्य शीघ्र आंखोंसे देखा जाता है, क्या उतनी ही दूरीसे अस्त होता हुआ सूर्य भी शीघ्र दिखाई देता है ? हाँ, गौतम ! जितनी दूरीसे उगता हुआ सूर्य शीघ्र दिखाई देता है, उतनी ही दूरीसे अस्त होता हुआ सूर्य भी शीघ्र आँखोंसे दिखाई देता है।

भगवन् ! उगता हुआ सूर्य अपने ताप द्वारा जितने क्षेत्र को सब प्रकार चारों ओर से सभी दिशाओं और विदिशाओंमें प्रकाशित करता है, उद्योतित करता है, तपाता है और खूब तपाता है। क्या उतने ही क्षेत्रको अस्त होता हुआ सूर्य भी अपने ताप द्वारा सभी दिशाओं और सभी विदिशाओं को प्रकाशित करता है? उद्योतित करता है? तपाता है? खूब उष्ण करता है? हां, गौतम ! उगता हुआ सूर्य जितने क्षेत्र को प्रकाशित करता है, उतने ही क्षेत्रको अस्त होता हुआ सूर्य भी अपने ताप द्वारा प्रकाशित करता है यावत् खूब उष्ण करता है। भगवन् ! सूर्य जिस क्षेत्रको प्रकाशित करता है, क्या वह क्षेत्र सूर्यसे स्पृष्ट -स्पर्श किया हुआ होता है या अस्पृष्ट होता है? गौतम ! वह क्षेत्र सूर्य से स्पृष्ट होता है और यावत् उस क्षेत्र को छहों दिशाओं में प्रकाशित करता है, उद्योतित करता है, तपाता है और खूब तपाता है। यावत् नियमपूर्वक छहों दिशाओं में खूब तपाता है। भगवन् ! सूर्य स्पर्श करने के काल—समय से सूर्य के साथ सम्बन्ध रखने वाले जितने क्षेत्र को सब दिशाओं में सूर्य स्पर्श करता है, क्या वह क्षेत्र 'स्पृष्ट' कहा जा सकता है? हाँ, गौतम ! सर्व यावत् 'वह स्पृष्ट है' ऐसा कहा जा सकता है। भगवन् ! सूर्य स्पृष्ट क्षेत्र का स्पर्श करता है ? या अस्पृष्ट क्षेत्र का स्पर्श करता है? गौतम ! सूर्य स्पृष्ट क्षेत्र का स्पर्श करता है, यावत् नियमपूर्व छहों दिशाओं में स्पर्श करता है ॥५०॥

भगवन् ! क्या लोकका अन्त (किनारा) अलोकके अन्तको स्पर्श करता है? क्या अलोकका अन्त लोकके अन्त को स्पर्श करता है? गौतम ! लोकका अन्त अलोकके अन्तको और अलोकका अन्त लोकके अन्त को स्पर्श करता है। भगवन् ! जो स्पर्श किया जा रहा है क्या वह स्पृष्ट है ? या अस्पृष्ट है ? गौतम ! यावत् छहों दिशाओंमें स्पृष्ट होता है। भगवन् ! क्या द्वीपका अन्त (किनारा) समुद्रके अन्त को और समुद्रका अन्त द्वीपके अन्त को स्पर्श करता है?. हाँ, गौतम ! यावत् नियमसे छहों दिशाओंको स्पर्श करता है। भगवन् ! क्या इसी प्रकार इसी अभिलापसे पानीका किनारा पोत (नौका—जहाज) के किनारे को स्पर्श करता है? क्या छेदका किनारा वस्त्रके किनारेको स्पर्श करता है? और क्या छायाका किनारा आतप (धूप)के किनारे को स्पर्श करता है? हां, गौतम ! यावत् नियमपूर्वक छहों दिशाओंको स्पर्श करता है ॥५१॥

भगवन् ! क्या जीवों द्वारा प्राणातिपात क्रिया की जाती है? हाँ, गौतम ! की जाती है। भगवन् ! की जाने वाली वह क्रिया क्या स्पृष्ट है ? या अस्पृष्ट है? गौतम ! यावत् व्याघात न हो, तो छहों दिशाओंको और व्याघात हो तो कदाचित् तीन दिशाओंको, कदाचित् चार दिशाओंको और कदाचित् पांच दिशाओंको स्पर्श करती है। भगवन् ! की जाने वाली क्रिया क्या 'कृत' है ? या

'अकृत' है ? गौतम ! वह क्रिया कृत है, अकृत नहीं। भगवन् ! की जाने वाली क्रिया क्या आत्मकृत है ? या परकृत है ? या तदुभयकृत है ? गौतम ! वह आत्मकृत है, किन्तु परकृत या उभय कृत नहीं है। भगवन् ! जो क्रिया की जाती है क्या वह अनुक्रमपूर्वक कृत है या विना अनुक्रम से कृत है ? गौतम ! वह अनुक्रमपूर्वक कृत है, किन्तु विना अनुक्रमकृत नहीं है। जो क्रिया की जा रही है तथा की जायगी वह सब अनुक्रमपूर्वक कृत है, किन्तु विना अनुक्रमपूर्वक कृत नहीं है। ऐसा कहना चाहिए। भगवन् ! क्या नैरयिकों द्वारा प्राणातिपात क्रिया की जाती है ? हां, गौतम! की जाती है। भगवन् ! नैरयिकों द्वारा जो क्रिया की जाती है, क्या वह स्पृष्ट है ? या अस्पृष्ट है ? गौतम ! वह क्रिया यावत् नियमपूर्वक छहों दिशाओं में की जाती है। भगवन् ! जो क्रिया की जाती है, क्या वह कृत है ? या अकृत है ? गौतम ! वह पहलेकी तरह जानना चाहिये यावत् वह अनुक्रमपूर्वक कृत है, किन्तु अननुक्रमपूर्वक कृत नहीं है। ऐसा कहना चाहिए। नैरयिकों के समान एकेन्द्रियको छोड़ कर यावत् वैमानिक तक सब दण्डकोंमें कहना चाहिए। एकेन्द्रियोंका कथन औधिक जीवोंकी तरह कहना चाहिए। प्राणातिपातके समान मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह, क्रोध यावत् मिथ्या-दर्शन-शल्य तक अठारहों पापोंके विषयमें कहना चाहिए। इस तरह अठारह पापस्थानोंका कथन चौवीसों दण्डकोंमें कहना चाहिए। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है। "भगवन् ! यह इसी प्रकार है। ऐसा कह कर भगवान् गौतम, श्रमण भगवान् महावीर स्वामीको वन्दना नमस्कार करके यावत् विचरते हैं ॥५२॥

उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर स्वामीके शिष्य रोह नामक अनगार थे। वे स्वभावसे भद्र, स्वभाव से कोमल, स्वभावसे विनीत, स्वभाव से शान्त, अल्प क्रोध, मान, माया और लोभ वाले, अत्यन्त निरभिमानी, गुरु के समीप रहने वाले, किसी को कष्ट न पहुंचाने वाले और गुरुभक्त थे। वे रोह अनगार ऊर्ध्वजानु और नीचे की तरफ शिर झुकाये हुए ध्यान रूपी कोठे में प्रविष्ट, संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए, श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के समीप विचरते थे। तत्पश्चात् वे रोह अनगार जातश्रद्ध आदि होकर यावत् भगवान् की पर्युपासना करते हुए इस प्रकार बोले—

भगवन् ! क्या पहले लोक है और पीछे अलोक है ? या पहले अलोक है और पीछे लोक है ? रोह ! लोक और अलोक पहले भी है और पीछे भी है। ये दोनों ही शाश्वत भाव हैं। हे रोह ! इन दोनोंमें 'यह पहला और यह पिछला' ऐसा क्रम नहीं है। भगवन् ! क्या पहले जीव और पीछे अजीव है ? या पहले अजीव और पीछे जीव है ? रोह ! जैसा लोक और अलोकके विषयमें कहा है

वैसा ही जीव और अजीवके सम्बन्धमें समझना चाहिए। इसी प्रकार भवसिद्धिक और अभवसिद्धिक, सिद्धि और असिद्धि तथा सिद्ध और संसारी के विषयमें भी जानना चाहिए। भगवन् ! क्या पहले अण्डा और पीछे मुर्गी है ? या पहले मुर्गी और पीछे अण्डा है ? रोह ! वह अण्डा कहाँसे आया ? हे भगवन् ! वह मुर्गीसे आया। हे रोह ! वह मुर्गी कहाँ से आई ? भगवन् ! मुर्गी अण्डेसे हुई। इसी प्रकार हे रोह ! मुर्गी और अण्डा पहले भी है और पीछे भी है। यों दोनों शाश्वत भाव हैं। रोह ! इन दोनोंमें पहले और पीछेका क्रम नहीं है।

भगवन् ! क्या पहले लोकान्त है और पीछे अलोकान्त है ? या पहले अलोकान्त है और पीछे लोकान्त है ? रोह ! लोकान्त और अलोकान्त, इन दोनोंमें यावत् कोई क्रम नहीं है। हे भगवन् ! क्या पहले लोकान्त है और पीछे सातवां अवकाशान्तर है ? या पहले सातवाँ अवकाशान्तर है और पीछे लोकान्त है ? हे रोह ! लोकान्त और सातवाँ अवकाशान्तर, ये दोनों पहले भी हैं और पीछे भी हैं। इस प्रकार यावत् हे रोह ! इन दोनोंमें पहले पीछे का क्रम नहीं है। इसी प्रकार लोकान्त और सातवां तनुवात, इसी प्रकार घनवात, घनोदधि और सातवीं पृथ्वीके लिए समझना चाहिए। इस प्रकार प्रत्येकके साथ लोकान्तको निम्नलिखित स्थानोंके साथ जोड़ना चाहिए—

अवकाशान्तर, वात, घनोदधि, पृथ्वी, द्वीप, सागर, वर्ष (क्षेत्र), नारकी आदि जीव, चौवीस दण्डक, अस्तिकाय, समय, कर्म, लेश्या, दृष्टि, दर्शन, ज्ञान, संज्ञा, शरीर, योग, उपयोग, द्रव्य, प्रदेश, पर्याय और काल, क्या पहले हैं और लोकान्त पीछे है ? भगवन् ! क्या लोकान्त पहले और सर्वाद्धा (सर्व काल) पीछे है ? रोह ! जैसे लोकान्तके साथ सभी स्थानोंका संयोग किया, उसी प्रकार इस सम्बन्धमें भी जानना चाहिए। और इसी प्रकार इन स्थानोंको भी अलोकान्तके साथ जोड़ना चाहिए।

भगवन् ! क्या पहले सातवाँ अवकाशान्तर है और पीछे सातवां तनुवात है ? रोह ! इसी प्रकार सातवें अवकाशान्तरको पूर्वोक्त सबके साथ जोड़ना चाहिए। इसी प्रकार सर्वाद्धा तक समझना चाहिए। भगवन् ! क्या पहले सातवां तनुवात है ? और पीछे सातवां घनवात है ? रोह ! यह भी उसी प्रकार जानना चाहिए, यावत् सर्वाद्धा तक। इस प्रकार एक-एक का संयोग करते हुए और जो जो नीचे का हो उसे छोड़ते हुए पूर्ववत् समझना चाहिए। यावत् अतीत और अनागतकाल और फिर सर्वाद्धा, यावत् रोह ! इनमें कोई क्रम नहीं है। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है। ऐसा कह कर रोह अनगार तप संयम से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे ॥५३॥

हे भगवन् ! ऐसा कहकर गौतम स्वामीने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से यावत् इस प्रकार कहा—भगवन् ! लोक की स्थिति कितने प्रकारकी कही गई है ? गौतम ! लोककी स्थिति आठ प्रकारकी कही गई है। वह इस प्रकार है—आकाशके आधार पर वायु टिका हुआ है। वायुके आधार पर उदधि है। उदधिके आधार पर पृथ्वी है। त्रस और स्थावर जीव पृथ्वीके आधार पर हैं। जीवोंके आधार पर अजीव हैं, कर्मके आधार पर जीव (सकर्मक) हैं। अजीवों नें जीवोंको संग्रह कर रक्खा है और जीवोंको कर्मोने संग्रह कर रक्खा है। हे भगवन् ! इस प्रकार कहने का क्या कारण है कि—लोककी स्थिति आठ प्रकार की है और यावत् जीवोंको कर्मोंने संग्रह कर रक्खा है ? हे गौतम ! जैसे कोई पुरुष चमड़ेकी मशकको वायुसे फुलावे। फिर उस मशकका मुख बांध दे। फिर मशकके बीचके भागमें गांठ बांधे। फिर मशकका मुँह खोल दे और उसके भीतर की हवा निकाल दे। फिर उस मशकके ऊपरके खाली भागमें पानी भरे। फिर मशक का मुंह बन्द कर दे। फिर उस मशकके बीचकी गांठ खोल दे, तो गौतम ! वह भरा हुआ पानी उस हवाके ऊपर ही ऊपर के भागमें रहेगा ? हाँ, भगवन ! रहेगा। इसलिए हे गौतम ! मैं कहता हूं कि यावत् कर्मोंने जीवोंका संग्रह कर रक्खा है।

अथवा—गौतम ! कोई पुरुष उस चमड़ेकी मशकको हवासे फुलाकर अपनी कमर पर बाँध ले। फिर वह पुरुष अथाह, दुस्तर और पुरुष परिमाणसे अधिक अर्थात् जिसमें पुरुष मस्तक तक डूब जाय, उससे भी अधिक पानीमें प्रवेश करे, तो हे गौतम ! क्या वह पुरुष पानीकी ऊपरी सतह पर ही रहेगा ? हां, भगवन् ! रहेगा। हे गौतम ! इस प्रकार लोककी स्थिति आठ प्रकारकी कही गई है, यावत् कर्मोंने जीवोंको संगृहीत कर रक्खा है ॥५४॥

भगवन् ! क्या जीव और पुद्गल परस्पर संबद्ध हैं ? परस्पर गाढ़ संबद्ध हैं ? परस्पर एक दूसरेमें मिले हुए हैं ? परस्पर स्नेह (चिकनाई) से प्रतिबद्ध हैं ? और परस्पर घटित होकर रहे हुए हैं ? हां, गौतम ! रहे हुए हैं। भगवन् ! ऐसा आप किस कारणसे कहते हैं कि—यावत् जीव और पुद्गल इस प्रकार रहे हुए हैं ? गौतम ! जैसे कोई एक तालाब है। वह पानीसे भरा हुआ है, पानीसे लबालब भरा हुआ है, पानीसे छलक रहा है, पानीसे बढ़ रहा है, और वह पानीसे भरे हुए घड़ेके समान परिपूर्ण है। उस तालाबमें कोई पुरुष एक ऐसी बड़ी नाव, जिसमें सौ छोटे छेद हों और सौ बड़े छेद हों उसे डाल दे तो, हे गौतम ! वह नाव, छेदों द्वारा पानीसे भरती हुई, खूब भरती हुई, छलकती हुई, पानीसे बढ़ती हुई, क्या भरे हुए घड़ेके समान हो जायगी ? हाँ, भगवन् ! हो जायगी। इसलिए हे गौतम ! मैं कहता हूं—यावत् जीव और पुद्गल परस्पर घटित होकर रहे हुए हैं ॥५५॥

भगवन् ! क्या सूक्ष्म स्नेहकाय सदा परिमित पड़ता है ? हां, गौतम ! पड़ता है। हे भगवन् ! क्या वह सूक्ष्म स्नेहकाय ऊपर पड़ता है ? नीचे पड़ता है ? या तिरछा पड़ता है ? हे गौतम ! वह ऊपर भी पड़ता है, नीचे भी पड़ता है और तिरछा भी पड़ता है। भगवन् ! क्या वह सूक्ष्म स्नेहकाय स्थूल जलकायकी भांति परस्पर समायुक्त होकर बहुत समय तक रहता है ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। क्योंकि वह सूक्ष्म स्नेहकाय शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है। ऐसा कह कर गौतम स्वामी तप संयमसे आत्माको भावित करते हुए विचरते हैं ।।५६।।

।। प्रथम शतक का छठा उद्देशक समाप्त ।।

शतक १ उद्देशक ७

भगवन् ! नैरयिक जीवोंमें उत्पन्न होता हुआ नारकी जीव क्या एक भागसे एक भागको आश्रित करके उत्पन्न होता है ? या एक भागसे सर्व भागको आश्रित करके उत्पन्न होता है ? या सर्व भागसे एक भागको आश्रित करके उत्पन्न होता है ? या सर्व भागसे सर्व भागोंका आश्रय करके उत्पन्न होता है ? गौतम ! नारकी जीव एक भागसे एक भागको आश्रित करके उत्पन्न नहीं होता, एक भागसे सर्व भागको आश्रित करके उत्पन्न नहीं होता और सर्व भागसे एक भागको आश्रित करके भी उत्पन्न नहीं होता, किन्तु सर्व भागसे सर्व भागको आश्रित करके उत्पन्न होता है। नारकी जीवके समान वैमानिकों तक इसी प्रकार समझना चाहिए ।।५७।।

भगवन् ! नैरयिक जीवोंमें उत्पन्न होता हुआ नारकी जीव क्या एक भाग से एक भागको आश्रित करके आहार करता है ? या एक भागसे सर्व भागको आश्रित करके आहार करता है ? या सर्व भागसे एक भागको आश्रित करके आहार करता है ? अथवा सर्व भागसे सर्व भागको आश्रित करके आहार करता है ? गौतम ! नारकियोंमें उत्पन्न होता हुआ नारकी जीव एक भागसे एक भागको आश्रित करके आहार नहीं करता, एक भागसे सर्व भागको आश्रित करके आहार नहीं करता, किन्तु सर्व भागसे एक भागको आश्रित करके आहार करता है, या सर्व भागोंसे सर्व भागोंको आश्रित करके आहार करता है।

भगवन् ! नारकियोंमें से उद्वर्तता हुआ-निकलता हुआ नारकी जीव क्या एक भागसे एक भागको आश्रित करके निकलता है ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न करना चाहिये। गौतम ! जैसे—उत्पन्न होते हुए के विषयमें कहा है वैसा ही उद्वर्तनके विषयमें दण्डक कहना चाहिये।···भगवन् ! नारकियोंमें से उद्वर्तता हुआ नारकी

जीव क्या एक भागसे एक भागको आश्रित करके आहार करता है ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न करना चाहिये। हे गौतम ! पहलेकी तरह जानना चाहिये यावत् सर्व भागोंसे एक भागको आश्रित करके आहार करता है, या सर्व भागोंसे सर्व भागोंको आश्रित करके आहार करता है। इसी प्रकार यावत् वैमानिकों तक जानना चाहिये।

भगवन् ! नारकियोंमें उत्पन्न हुआ नारकी जीव क्या एक भागसे एक भागको आश्रित करके उत्पन्न हुआ है ? इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न करना चाहिये। गौतम ! यह कथन भी उसी प्रकार......यावत् सर्व भागसे सर्व भागको आश्रित करके उत्पन्न हुआ है। जिस प्रकार उत्पद्यमान (उत्पन्न होता हुआ) और उद्वर्तमान (उद्वर्तता हुआ=निकलता हुआ) के विषयमें चार दण्डक कहे, वैसे ही उत्पन्न और उद्वृत्तके विषयमें भी चार दण्डक कहने चाहिएँ। 'सर्व भागसे सर्व भागको आश्रित करके उत्पन्न' 'सर्व भागसे एक भागको आश्रित करके आहार, और सर्व भागसे सर्व भागको आश्रित करके आहार'—इन शब्दों द्वारा उत्पन्न और उद्वृत्तके विषयमें भी समझें।

भगवन् ! नारकियोंमें उत्पन्न होता हुआ नारकी जीव क्या अर्द्ध भागसे अर्द्ध भागको आश्रित करके उत्पन्न होता है ? या अर्द्ध भागसे सर्व भागको आश्रित करके उत्पन्न होता है ? या सर्व भागसे अर्द्ध भागको आश्रित करके उत्पन्न होता है ? या सर्व भागसे सर्व भागको आश्रित करके उत्पन्न होता है ? गौतम ! जैसे—पहले वालोंके साथ आठ दण्डक कहे हैं, उसी प्रकार अर्द्धके साथ भी आठ दण्डक कहने चाहिएँ। विशेषता इतनी है कि—जहाँ 'एक भागसे एक भागको आश्रित करके उत्पन्न होता है' ऐसा पाठ आया है वहाँ पर 'अर्द्ध भागसे अर्द्ध भागको आश्रित करके उत्पन्न होता है' ऐसा पाठ बोलना चाहिये। बस यही भिन्नता है। ये सब मिलकर सोलह दण्डक होते हैं ॥५८॥

भगवन् ! क्या जीव विग्रहगति समापन्न—विग्रहगतिको प्राप्त है, या अविग्रह गति समापन्न—अविग्रह गतिको प्राप्त है ? गौतम ! जीव कभी विग्रह गतिको प्राप्त है और कभी अविग्रह गतिको प्राप्त है। इसी प्रकार वैमानिक तक जानें। भगवन् ! क्या बहुत जीव विग्रह गतिको प्राप्त हैं या अविग्रह गतिको प्राप्त हैं ? गौतम ! बहुत जीव विग्रह गतिको भी प्राप्त हैं और अविग्रह गतिको भी प्राप्त हैं। भगवन् ! क्या नारकी जीव विग्रह गतिको प्राप्त हैं या अविग्रह गतिको प्राप्त हैं ? गौतम ! (१) सभी अविग्रह गतिको प्राप्त हैं। (२) अथवा बहुतसे अविग्रह गतिको प्राप्त हैं और कोई एक विग्रह गतिको प्राप्त है। (३) अथवा बहुतसे अविग्रह गतिको प्राप्त हैं और बहुतसे विग्रह गतिको प्राप्त हैं।

इसी प्रकार सब जगह तीन तीन भंग समझने चाहिएँ। सिर्फ जीव (सामान्य जीव) और एकेन्द्रियमें तीन भंग नहीं कहने चाहिएँ ॥५६॥

भगवन् ! महाऋद्धि वाला, महाद्युति वाला, महाबल वाला, महायशस्वी, महासामर्थ्य वाला, मरण कालमें च्यवने वाला महेश नामक देव अथवा महासौख्य वाला देव लज्जाके कारण, घृणाके कारण, परीषहके कारण, कुछ समय तक आहार नहीं करता, फिर आहार करता है, और ग्रहण किया हुआ आहार परिणत भी होता है, अन्तमें उस देवकी वहाँकी आयु समाप्त हो जाती है। इसलिए वह देव जहां उत्पन्न होता है वहांकी आयु भोगता है। तो भगवन् ! वह कौनसा आयु समझना चाहिये ? तिर्यचका आयु समझना चाहिये या मनुष्य का आयु समझना चाहिये ? गौतम ! उस महाऋद्धि वाले देवका यावत् च्यवन (मृत्यु) के बाद तिर्यचका आयु अथवा मनुष्यका आयु समझना चाहिये ॥६०–१॥

भगवन् ! गर्भमें उत्पन्न होता हुआ जीव क्या इन्द्रिय वाला उत्पन्न होता है, या बिना इन्द्रियका उत्पन्न होता है ? गौतम ! इन्द्रिय वाला भी उत्पन्न होता है और बिना इन्द्रियका भी उत्पन्न होता है। भगवन् ! किस कारणसे ? गौतम ! द्रव्येन्द्रियोंकी अपेक्षा बिना इन्द्रियोंका उत्पन्न होता है और भावेन्द्रियों की अपेक्षा इन्द्रियों सहित उत्पन्न होता है। इसलिये हे गौतम ! ऐसा कहा गया है। भगवन् ! गर्भमें उपजता हुआ जीव क्या शरीर सहित उत्पन्न होता है, या शरीर रहित उत्पन्न होता है ? गौतम ! शरीर सहित भी उत्पन्न होता है और शरीर रहित भी उत्पन्न होता है। भगवन् ! सो किस कारणसे ? गौतम ! औदारिक, वैक्रिय और आहारक शरीरोंकी अपेक्षा शरीर रहित उत्पन्न होता है और तैजस कार्मण शरीरकी अपेक्षा शरीर सहित उत्पन्न होता है। इस कारण हे गौतम ! ऐसा कहा है।

भगवन् ! जीव गर्भमें उत्पन्न होते ही सर्व प्रथम क्या आहार करता है ? गौतम ! आपसमें एक दूसरेसे मिला हुआ माताका आर्तव और पिताका वीर्य जो कलुष और किल्विष है, उसका जीव गर्भमें उत्पन्न होते ही आहार करता है। भगवन् ! गर्भमें गया हुआ जीव क्या खाता है ? गौतम ! गर्भमें गया हुआ (उत्पन्न हुआ) जीव माता द्वारा खाए हुए अनेक प्रकारके रस विकारोंके एक भागके साथ माताका आर्तव खाता है। भगवन् ! क्या गर्भमें गये हुए जीवके मल, मूत्र, कफ, नाकका मैल, वमन और पित्त होता है ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, गर्भमें रहे हुए जीवके मल मूत्रादि नहीं होते हैं।

भगवन् ! ऐसा आप किस कारणसे कहते हैं ? गौतम ! गर्भमें जाने पर जीव जो आहार खाता है, जिस आहारका चय करता है, उस आहारको श्रोतके रूपमें यावत् स्पर्शनेन्द्रियके रूपमें, हड्डीके रूपमें, मज्जाके रूपमें, बालके रूपमें,

दाढ़ीके रूपमें, रोमोंके रूपमें और नखोंके रूपमें परिणत करता है। इसलिये हे गौतम ! गर्भमें गये हुए जीवके मल मूत्रादि नहीं होते हैं। भगवन् ! क्या गर्भमें उत्पन्न हुआ जीव मुख द्वारा कवलाहार (ग्रास रूप आहार) करनेमें समर्थ है ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है—ऐसा नहीं हो सकता। भगवन् ! यह किस कारण से ? गौतम ! गर्भमें गया हुआ जीव सर्व आत्म (सारे शरीर) से आहार करता है, सर्व आत्मसे परिणमाता है, सर्व आत्मसे उच्छ्वास लेता है, सर्व आत्मसे निःश्वास लेता है, वार बार आहार करता है, वार वार परिणमाता है, वार वार उच्छ्वास लेता है, बार बार निःश्वास लेता है, कदाचित् आहार करता है, कदाचित् परिणमाता है, कदाचित् उच्छ्वास लेता है, कदाचित् निःश्वास लेता है, तथा पुत्र जीवको रस पहुंचानेमें कारणभूत और माताके रस लेनेमें कारणभूत जो 'मातृजीवरसहरणी' नामकी नाड़ी है, वह माताके जीवके साथ संवद्ध है और पुत्रके जीवके साथ स्पृष्ट-जुड़ी हुई है, उस नाड़ी द्वारा पुत्रका जीव आहार लेता है और आहारको परिणमाता है। एक दूसरी और नाड़ी है जो पुत्रके जीवके साथ संवद्ध है और माताके जीवसे स्पृष्ट-जुड़ी हुई होती है, उससे पुत्रका जीव आहारका चय करता है, और उपचय करता है। हे गौतम ! इस कारण गर्भमें गया हुआ जीव मुख द्वारा कवलाहार लेनेमें समर्थ नहीं है ॥६०-२॥

हे भगवन् ! माताके कितने अंग कहे गये हैं ? हे गौतम ! माता के तीन अंग कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं—मांस, रक्त, और मस्तकका भेजा (भेज्जक)। हे भगवन् ! पिताके कितने अंग कहे गये हैं ? हे गौतम ! पिताके तीन अंग कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं—हड्डी, मज्जा और केश, दाढ़ी, रोम तथा नख। भगवन् ! माता-पिता के अंग सन्तानके शरीर में कितने काल तक रहते हैं ? गौतम ! सन्तान का भवधारणीय शरीर जितने समय तक रहता है उतने समय तक वे अंग रहते हैं और जब भवधारणीय शरीर समय समय पर हीन होता हुआ अन्तमें नष्ट हो जाता है, तब माता-पिताके अंग भी नष्ट हो जाते हैं ॥६१॥

भगवन् ! क्या गर्भ में रहा हुआ जीव नरक में उत्पन्न होता है ? गौतम ! कोई उत्पन्न होता है और कोई नहीं होता। भगवन् ! इसका क्या कारण है ? गौतम ! गर्भमें रहा हुआ संज्ञी पञ्चेन्द्रिय और सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त जीव, वीर्य-लब्धि द्वारा, वैक्रिय-लब्धि द्वारा, शत्रु की सेना को आई हुई सुनकर, अवधारण करके अपने आत्मप्रदेशोंको गर्भसे बाहर निकालता है, बाहर निकालकर वैक्रिय समुद्घातसे समवहत होकर चतुरंगिणी सेना की विक्रिया करके उस सेनासे शत्रुकी सेनाके साथ युद्ध करता है। वह अर्थ (धन) का कामी, राज्यका कामी, भोगका कामी, कामका कामी, अर्थमें लंपट, राज्यमें लंपट, भोग-में लंपट तथा काममें लंपट, अर्थ का प्यासा, राज्य का प्यासा, भोग का प्यासा,

और काम का प्यासा, उन्हींमें चित्त वाला, उन्हींमें मनवाला, उन्हींमें आत्म परिणाम वाला, उन्हींमें अध्यवसित, उन्हींमें प्रयत्न वाला, उन्हींमें सावधानता वाला, उन्हींके लिए क्रिया करने वाला और उन्हींके संस्कारवाला जीव, यदि उसी समय मृत्युको प्राप्त हो, तो नरकमें उत्पन्न होता है। इसलिए० गौतम! कोई जीव नरक में जाता है और कोई नहीं जाता।

भगवन्! क्या गर्भमें रहा हुआ जीव देवलोकमें जाता है? गौतम! कोई जीव जाता है और कोई नहीं जाता। भगवन्! इसका क्या कारण है? गौतम! गर्भमें रहा हुआ संज्ञी पञ्चेन्द्रिय और सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त (पूर्ण) जीव तथारूपके श्रमण या माहणके पास एक भी धार्मिक आर्य वचन सुनकर, हृदयमें धारण करके तुरन्त ही संवेगसे धर्ममें श्रद्धालु बनकर, धर्मके तीव्र अनुराग में रक्त होकर, वह धर्मका कामी, पुण्यका कामी, स्वर्गका कामी, मोक्षका कामी, धर्ममें आसक्त, पुण्यमें आसक्त, स्वर्गमें- आसक्त, मोक्षमें आसक्त, धर्मका प्यासा पुण्यका प्यासा, स्वर्गका प्यासा, मोक्षका प्यासा, उसीमें चित्त वाला, उसीमें मन वाला, उसीमें आत्म परिणाम वाला,·········अध्यवसित,······तीव्र प्रयत्नवाला, उसीमें सावधानता वाला, उसीके लिए क्रिया करने वाला और उसी संस्कार वाला जीव, यदि ऐसे समयमें मृत्युको प्राप्त हो, तो देवलोकमें उत्पन्न होता है। इसलिए·····गौतम! कोई जीव देवलोकमें जाता है और कोई नहीं जाता है।

भगवन्! गर्भमें रहा हुआ जीव क्या उत्तानक–चित लेटा हुआ होता है? या करवट वाला होता है? आमके समान कुबड़ा होता है? खड़ा होता है? बैठा होता है, या पड़ा हुआ—सोता हुआ होता है? तथा जब माता सोती हुई हो तो वह भी सोता है? जब माता जागती हो तो जागता है, माताके सुखी होने पर सुखी होता है और माताके दुःखी होने पर दुःखी होता है? हां, गौतम! गर्भमें रहा हुआ जीव यावत् जब माता दुःखी हो तो दुःखी होता है। यदि वह गर्भका जीव मस्तक द्वारा या पैरों द्वारा बाहर आवे तब तो ठीक तरह आता है। यदि टेढ़ा (आड़ा) होकर आवे तो मर जाता है। यदि उस जीवके कर्म अशुभरूपमें बंधे हों, स्पृष्ट हों, निधत्त हों, कृत हों, प्रस्थापित हों, अभिनिविष्ट हों, अभिसमन्वागत हों, उदीर्ण हों और उपशान्त न हों, तो वह जीव कुरूप, कुवर्ण (खराब वर्ण वाला) खराब गन्ध वाला, खराब रस वाला, खराब स्पर्श वाला, अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय, अशुभ, अमनोज्ञ, अमनाम—अमनोहर, हीन स्वर वाला, दीन स्वर वाला, अनिष्ट स्वर वाला, अकान्त स्वर वाला, अप्रिय स्वर वाला, अशुभ स्वर वाला, अमनोज्ञ स्वर वाला, अमनोहर स्वर वाला, अनादेय वचन वाला होता है और

यदि उस जीवके कर्म अशुभ रूपमें न बंधे हुए हों तो उसके उपर्युक्त सब बातें प्रशस्त होती हैं, यावत् वह आदेय वचन वाला होता है। हे भगवन्! यह इसी प्रकार है।...भगवन्! यह इसी प्रकार है...॥६२॥

॥ प्रथम शतकका सातवां उद्देशक समाप्त ॥

—०—

शतक १ उद्देशक ८

राजगृह नगरमें श्रमण भगवान् महावीर स्वामीका समवसरण हुआ और यावत् इस प्रकार प्रश्नोत्तर हुए—भगवन्! क्या एकान्त-बाल मिथ्यादृष्टि मनुष्य नरककी आयु बाँधता है? या तिर्यञ्चकी आयु बांधता है? या मनुष्यकी आयु बांधता है? या देवकी आयु बाँधता है? क्या नरककी आयु बांध कर नारकियोंमें उत्पन्न होता है? क्या तिर्यञ्चोंकी आयु बांध कर तिर्यञ्चोंमें उत्पन्न होता है? मनुष्यकी आयु बांध कर मनुष्यमें उत्पन्न होता है? या देवकी आयु बांध कर देवलोकमें उत्पन्न होता है? गौतम! एकान्त-बाल मनुष्य नरककी भी आयु बांधता है, तिर्यञ्चकी भी आयु बांधता है, और देवकी भी आयु बाँधता है। नरकायु बाँध कर नैरयिकोंमें उत्पन्न होता है। तिर्यञ्चायु बाँध कर तिर्यञ्चोंमें उत्पन्न होता है। मनुष्यायु बाँध कर मनुष्योंमें उत्पन्न होता है और देवायु बाँध कर देवलोकमें उत्पन्न होता है॥६३॥ भगवन्! क्या एकान्त-पण्डित मनुष्य नरकायु बाँधता है? यावत् देवायु बांधता है? और यावत् देवायु बाँध कर देवलोकमें उत्पन्न होता है? गौतम! एकान्त-पण्डित मनुष्य कदाचित् आयु बाँधता है और कदाचित् आयु नहीं बाँधता। यदि आयु बाँधता है तो देवायु बांधता है, किन्तु नरकायु, तिर्यञ्चायु और मनुष्यायु नहीं बाँधता। वह नरकायु न बाँधनेसे नैरयिकोंमें उत्पन्न नहीं होता, इसी प्रकार तिर्यञ्चायु न बाँधनेसे तिर्यञ्चोंमें उत्पन्न नहीं होता और मनुष्यायु न बाँधनेसे मनुष्योंमें भी उत्पन्न नहीं होता, किन्तु देवायु बाँध कर देवोंमें उत्पन्न होता है। भगवन्! इसका क्या कारण है कि यावत् देवायु बांध कर देवोंमें उत्पन्न होता है? गौतम! एकान्त पण्डित मनुष्यकी केवल दो गतियाँ कही गई हैं। वे इस प्रकार हैं—अन्तक्रिया और कल्पोपपत्तिका। इस कारण गौतम! एकान्त पण्डित मनुष्य देवायु बांध कर देवोंमें उत्पन्न होता है। भगवन्! क्या बाल-पण्डित मनुष्य नरकायु बांधता है, यावत् देवायु बांधता है? और यावत् देवायु बांध कर देवलोकमें उत्पन्न होता है? गौतम! वह नरकायु नहीं बांधता और यावत् देवायु बांध कर देवोंमें उत्पन्न

और काम का प्यासा, उन्हींमें चित्त वाला, उन्हींमें मनवाला, उन्हींमें आत्म परिणाम वाला, उन्हींमें अध्यवसित, उन्हींमें प्रयत्न वाला, उन्हींमें सावधानता वाला, उन्हींके लिए क्रिया करने वाला और उन्हींके संस्कारवाला जीव, यदि उसी समय मृत्युको प्राप्त हो, तो नरकमें उत्पन्न होता है। इसलिए० गौतम! कोई जीव नरक में जाता है और कोई नहीं जाता।

भगवन्! क्या गर्भमें रहा हुआ जीव देवलोकमें जाता है? गौतम! कोई जीव जाता है और कोई नहीं जाता। भगवन्! इसका क्या कारण है? गौतम! गर्भमें रहा हुआ संज्ञी पञ्चेन्द्रिय और सब पर्याप्तियोंसे पर्याप्त (पूर्ण) जीव तथारूपके श्रमण या माहणके पास एक भी धार्मिक आर्य वचन सुनकर, हृदयमें धारण करके तुरन्त ही संवेगसे धर्ममें श्रद्धालु बनकर, धर्मके तीव्र अनुराग में रक्त होकर, वह धर्मका कामी, पुण्यका कामी, स्वर्गका कामी, मोक्षका कामी, धर्ममें आसक्त, पुण्यमें आसक्त, स्वर्गमें- आसक्त, मोक्षमें आसक्त, धर्मका प्यासा पुण्यका प्यासा, स्वर्गका प्यासा, मोक्षका प्यासा, उसीमें चित्त वाला, उसीमें मन वाला, उसीमें आत्म परिणाम वाला,.........अध्यवसित,......तीव्र प्रयत्नवाला, उसीमें सावधानता वाला, उसीके लिए क्रिया करने वाला और उसी संस्कार वाला जीव, यदि ऐसे समयमें मृत्युको प्राप्त हो, तो देवलोकमें उत्पन्न होता है। इसलिए......गौतम! कोई जीव देवलोकमें जाता है और कोई नहीं जाता है।

भगवन्! गर्भमें रहा हुआ जीव क्या उत्तानक–चित लेटा हुआ होता है? या करवट वाला होता है? आमके समान कुबड़ा होता है? खड़ा होता है? बैठा होता है, या पड़ा हुआ—सोता हुआ होता है? तथा जब माता सोती हुई हो तो वह भी सोता है? जब माता जागती हो तो जागता है, माताके सुखी होने पर सुखी होता है और माताके दुःखी होने पर दुःखी होता है? हां, गौतम! गर्भमें रहा हुआ जीव यावत् जब माता दुःखी हो तो दुःखी होता है। यदि वह गर्भका जीव मस्तक द्वारा या पैरों द्वारा बाहर आवे तब तो ठीक तरह आता है। यदि टेढ़ा (आड़ा) होकर आवे तो मर जाता है। यदि उस जीवके कर्म अशुभरूपमें बंधे हों, स्पृष्ट हों, निधत्त हों, कृत हों, प्रस्थापित हों, अभिनिविष्ट हों, अभिसमन्वागत हों, उदीर्ण हों और उपशान्त न हों, तो वह जीव कुरूप, कुवर्ण (खराब वर्ण वाला) खराब गन्ध वाला, खराब रस वाला, खराब स्पर्श वाला, अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय, अशुभ, अमनोज्ञ, अमनाम—अमनोहर, हीन स्वर वाला, दीन स्वर वाला, अनिष्ट स्वर वाला, अकान्त स्वर वाला, अप्रिय स्वर वाला, अशुभ स्वर वाला, अमनोज्ञ स्वर वाला, अमनोहर स्वर वाला, अनादेय वचन वाला होता है, और

यदि उस जीवके कर्म अशुभ रूपमें न बंधे हुए हों तो उसके उपर्युक्त सब बातें प्रशस्त होती हैं, यावत् वह आदेय वचन वाला होता है। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है।...भगवन्! यह इसी प्रकार है...॥६२॥

॥ प्रथम शतकका सातवां उद्देशक समाप्त ॥

—०—

शतक १ उद्देशक ८

राजगृह नगरमें श्रमण भगवान् महावीर स्वामीका समवसरण हुआ और यावत् इस प्रकार प्रश्नोत्तर हुए—भगवन् ! क्या एकान्त-बाल मिथ्यादृष्टि मनुष्य नरककी आयु बाँधता है ? या तिर्यञ्चकी आयु बांधता है ? या मनुष्यकी आयु बांधता है ? या देवकी आयु बाँधता है ? क्या नरककी आयु बांध कर नारकियोंमें उत्पन्न होता है ? क्या तिर्यञ्चोंकी आयु बांध कर तिर्यञ्चोंमें उत्पन्न होता है ? मनुष्यकी आयु बांध कर मनुष्यमें उत्पन्न होता है ? या देवकी आयु बांध कर देवलोकमें उत्पन्न होता है ? गौतम ! एकान्त-बाल मनुष्य नरककी भी आयु बांधता है, तिर्यञ्चकी भी आयु बांधता है, और देवकी भी आयु बाँधता है। नरकायु बाँध कर नैरयिकोंमें उत्पन्न होता है। तिर्यञ्चायु बाँध कर तिर्यञ्चों में उत्पन्न होता है। मनुष्यायु बाँध कर मनुष्योंमें उत्पन्न होता है और देवायु बाँध कर देवलोकमें उत्पन्न होता है ॥६३॥ भगवन् ! क्या एकान्त-पण्डित मनुष्य नरकायु बाँधता है ? यावत् देवायु बांधता है ? और यावत् देवायु बाँध कर देवलोकमें उत्पन्न होता है ? गौतम ! एकान्त-पण्डित मनुष्य कदाचित् आयु बाँधता है और कदाचित् आयु नहीं बाँधता । यदि आयु बाँधता है तो देवायु बांधता है, किन्तु नरकायु, तिर्यञ्चायु और मनुष्यायु नहीं बाँधता । वह नरकायु न बाँधनेसे नैरयिकोंमें उत्पन्न नहीं होता, इसी प्रकार तिर्यञ्चायु न बाँधनेसे तिर्यञ्चोंमें उत्पन्न नहीं होता और मनुष्यायु न बाँधनेसे मनुष्योंमें भी उत्पन्न नहीं होता, किन्तु देवायु बाँध कर देवोंमें उत्पन्न होता है। भगवन् ! इसका क्या कारण है कि यावत् देवायु बांध कर देवोंमें उत्पन्न होता है ? गौतम ! एकान्त पण्डित मनुष्यकी केवल दो गतियाँ कही गई हैं। वे इस प्रकार हैं—अन्तक्रिया और कल्पोपपत्तिका। इस कारण गौतम! एकान्त पण्डित मनुष्य देवायु बांध कर देवोंमें उत्पन्न होता है। भगवन् ! क्या बाल-पण्डित मनुष्य नरकायु बांधता है, यावत् देवायु बांधता है ? और यावत् देवायु बांध कर देवलोकमें उत्पन्न होता है ? गौतम ! वह नरकायु नहीं बांधता और यावत् देवायु बांध कर देवोंमें उत्पन्न

होता है। भगवन्! इसका क्या कारण है कि—वाल-पण्डित मनुष्य यावत् देवायु बांध कर देवोंमें उत्पन्न होता है? गौतम! बाल-पण्डित मनुष्य तथारूप श्रमण माहणके पाससे एक भी धार्मिक आर्य वचन सुनकर, धारण करके एक देशसे विरत होता है और एक देशसे विरत नहीं होता। एक देशसे प्रत्याख्यान करता है और एक देशसे प्रत्याख्यान नहीं करता। इसलिए० गौतम! देशविरति और देशप्रत्याख्यानके कारण वह नरकायु, तिर्यञ्चायु और मनुष्यायुका बन्ध नहीं करता और यावत् देवायु बाँध कर देवोंमें उत्पन्न होता है। इसीलिए० गौतम! पूर्वोक्त कथन किया गया है ॥६४॥

भगवन्! मृगोंसे आजीविका चलाने वाला, मृगोंका शिकारी, और मृगोंके शिकारमें तल्लीन कोई पुरुष, मृगको मारने के लिए कच्छमें, द्रहमें, जलाशयमें, घास आदि के समूहमें, वलयमें (गोलाकार अर्थात् नदी आदि के पानीसे टेढ़े मेढ़े स्थानमें), अन्धकार वाले प्रदेशमें, गहनमें (वृक्ष, वेल, आदिके समुदायमें) पर्वतके एक भागवर्ती वनमें, पर्वतमें, पर्वतवाले प्रदेशमें, वनमें और अनेक जाति के वृक्षोंवाले वनमें जाकर 'ये मृग हैं', ऐसा सोच कर किसी मृगको मारनेके लिए कूटपाश रचे अर्थात् गड्ढा बनावे या जाल फैलावे, तो भगवन्! वह पुरुष कितनी क्रियाओं वाला कहा गया है? अर्थात् उसे कितनी क्रिया लगती हैं? गौतम! वह पुरुष कच्छमें यावत् जाल फैलावे तो कदाचित् तीन क्रिया वाला, कदाचित् चार क्रिया वाला और कदाचित् पांच क्रिया वाला होता है।

भगवन्! ऐसा किस कारणसे कहा जाता है कि—वह पुरुष कदाचित् तीन क्रिया वाला, कदाचित् चार क्रिया वाला और कदाचित् पांच क्रिया वाला होता है? गौतम! जब तक वह पुरुष जालको धारण करता है और मृगोंको बांधता नहीं है तथा मृगोंको मारता नहीं है, तब तक वह पुरुष-कायिकी, आधिकरणिकी और प्राद्वेषिकी, इन तीन क्रियाओंसे स्पृष्ट है अर्थात् तीन क्रिया वाला होता है। जब तक वह जालको धारण किये हुए है और मृगोंको बांधता है, किन्तु मारता नहीं, तब तक वह पुरुष-कायिकी, आधिकरणिकी, प्राद्वेषिकी और पारितापनिकी, इन चार क्रियाओंसे स्पृष्ट है। जब वह पुरुष जालको धारण किये हुए है, मृगोंको बांधता है और मारता है, तब वह—कायिकी, आधिकरणिकी, प्राद्वेषिकी, पारितापनिकी और प्राणातिपातिकी इन पांच क्रियाओंसे स्पृष्ट है, अर्थात् पांच क्रिया वाला है। इस कारण…गौतम! वह पुरुष कदाचित् तीन क्रिया वाला, कदाचित् चार क्रिया वाला और कदाचित् पांच क्रिया वाला है ॥६५॥

भगवन्! कच्छमें यावत् वनविदुर्ग (अनेक जातिके वृक्षों वाले वन) में कोई पुरुष घासके तिनके इकट्ठे करके उनमें आग डाले तो वह पुरुष कितनी क्रिया वाला होता है? गौतम! वह पुरुष कदाचित् तीन क्रिया वाला, कदाचित्

चार क्रिया वाला और कदाचित् पांच क्रिया वाला होता है। भगवन्! इसका क्या कारण है? गौतम! जब तक वह पुरुष तिनके इकट्ठे करता है, तब तक वह तीन क्रिया वाला होता है। जब वह तिनके इकट्ठे कर लेता है और उनमें आग डालता है, किन्तु जलाता नहीं, तब तक वह चार क्रिया वाला होता है। और जब वह तिनके इकट्ठे करता है, आग डालता है और जलाता है तब वह पुरुष कायिकी आदि पांच क्रिया वाला होता है। इसलिए० गौतम! वह कदाचित् तीन क्रिया वाला, कदाचित् चार क्रिया वाला और कदाचित् पांच क्रिया वाला होता है ।।६६।।

भगवन्! मृगोंसे आजीविका चलाने वाला, मृगोंका शिकारी और मृगोंके शिकारमें तल्लीन कोई पुरुष मृगोंको मारने के लिए कच्छमें यावत् वनविदुर्गमें जाकर 'ये मृग हैं' ऐसा सोचकर मृगको मारने के लिए बाण फेंकता है, तो वह पुरुष कितनी क्रिया वाला होता है अर्थात् उसे कितनी क्रिया लगती हैं? गौतम! वह पुरुष कदाचित् तीन क्रिया वाला, कदाचित् चार क्रिया वाला और कदाचित् पांच क्रिया वाला होता है। भगवन्! इसका क्या कारण है? गौतम! जब तक वह पुरुष बाण फेंकता है, परन्तु मृग को वेधता नहीं तथा मृग को मारता नहीं, तब तक वह पुरुष तीन क्रिया वाला होता है। जब वह बाण फेंकता है और मृगको बेधता है परन्तु मृगको मारता नहीं, तब तक वह चार क्रिया वाला होता है। जब वह बाण फेंकता है, मृग को वेधता है, और मृग को मारता है, तब वह पुरुष पांच क्रिया वाला होता है। इसलिए० गौतम! वह पुरुष कदाचित् तीन क्रिया वाला, कदाचित् चार क्रिया वाला और कदाचित् पांच क्रिया वाला होता है ।।६७।।

भगवन्! कोई पुरुष कच्छमें यावत् किसी मृगका वध करने के लिए कान तक लम्बे किये हुए बाणको प्रयत्नपूर्वक खींच कर खड़ा हो और दूसरा कोई पुरुष पीछे से आकर उस खड़े हुए पुरुष का मस्तक अपने हाथ से तलवार द्वारा काट डाले। वह बाण पहले के खिंचावसे उछल कर उस मृग को वेध डाले, तो भगवन्! क्या वह पुरुष मृगके वैरसे स्पृष्ट है या पुरुषके वैरसे स्पृष्ट है? गौतम! जो पुरुष मृगको मारता है वह मृगके वैर से स्पृष्ट है और जो पुरुष पुरुषको मारता है वह पुरुष के वैर से स्पृष्ट है। भगवन्! इसका क्या कारण है कि यावत् वह पुरुष पुरुषके वैरसे स्पृष्ट है? गौतम! यह निश्चित है कि 'कज्जमाणे कडे' अर्थात् जो किया जा रहा है वह 'किया हुआ' कहलाता है। जो मारा जा रहा है वह 'मारा हुआ' कहलाता है। जो जलाया जा रहा है वह 'जलाया हुआ' कहलाता है और जो फेंका जा रहा है वह 'फेंका हुआ' कहलाता है? हाँ, भगवन्! जो किया जा रहा है वह किया हुआ कहलाता

है और यावत् जो फेंका जा रहा है वह फेंका हुआ कहलाता है।

गौतम ! इसी कारण से जो मृगको मारता है वह मृगके वैरसे स्पृष्ट कहलाता है, और यदि मरने वाला छह मासके भीतर मरे, तो मारने वाला कायिकी आदि यावत् पांच क्रियाओंसे स्पृष्ट कहलाता है और यदि मरने वाला छह मास के बाद मरे, तो मारने वाला पुरुष कायिकी यावत् पारितापनिकी, इन चार क्रियाओं से स्पृष्ट कहलाता है ॥६८॥

भगवन् ! कोई पुरुष किसी पुरुषको वरछीसे मारे अथवा अपने हाथसे तलवार द्वारा उस पुरुषका मस्तक काट डाले, तो वह पुरुष कितनी क्रिया वाला होता है ? गौतम ! जब वह पुरुष उसे वरछी द्वारा मारता है, अथवा अपने हाथ से तलवार द्वारा उस पुरुषका मस्तक काटता है, तब वह पुरुष कायिकी, आधिकरणिकी यावत् प्राणातिपातिकी, इन पांचों क्रियाओं से स्पृष्ट होता है, और आसन्नवधक एवं दूसरे के प्राणोंकी परवाह न करने वाला वह पुरुष, पुरुष-वैरसे स्पृष्ट होता है ॥६९॥

भगवन् ! एक सरीखे, सरीखी चमड़ी वाले, सरीखी उम्र वाले, सरीखे उपकरण (शस्त्र) आदि वाले कोई दो पुरुष आपसमें एक दूसरेके साथ संग्राम करें, तो उनमेंसे एक पुरुष जीतता है और एक पुरुष हारता है। हे भगवन् ! ऐसा क्यों होता है ? गौतम ! जो पुरुष सवीर्य (वीर्य वाला) होता है वह जीतता है और जो वीर्यहीन होता है वह हारता है। भगवन् ! इसका क्या कारण है कि यावत् वीर्यहीन हारता है ? गौतम ! जिसने वीर्य व्याघातक कर्म नहीं बांधे हैं, नहीं स्पर्श किये हैं यावत् नहीं प्राप्त किये हैं, और उसके वे कर्म उदय में नहीं आये हैं, परन्तु उपशान्त हैं, वह पुरुष जीतता है। जिसने वीर्य व्याघातक कर्म बांधे हैं, स्पर्श किये हैं यावत् उसके वे कर्म उदय में आये हैं परन्तु उपशान्त नहीं हैं, वह पुरुष पराजित होता है। इसलिए हे गौतम ! इस कारण ऐसा कहा है कि वीर्य वाला पुरुष जीतता है और वीर्यहीन पुरुष हारता है ॥७०॥

भगवन् ! क्या जीव सवीर्य (वीर्य वाले) हैं ? या अवीर्य (वीर्य रहित) हैं ? गौतम ! जीव सवीर्य भी हैं और अवीर्य भी हैं। भगवन् ! इसका क्या कारण है ? गौतम ! जीव दो प्रकार के हैं—संसारसमापन्नक (संसारी) और असंसारसमापन्नक (सिद्ध)। इनमें जो असंसारसमापन्नक हैं, वे सिद्ध जीव हैं, वे अवीर्य (वीर्य रहित) हैं। जो जीव संसारसमापन्नक हैं, वे दो प्रकार के हैं—शैलेशी-प्रतिपन्न और अशैलेशी-प्रतिपन्न। इनमें जो शैलेशी-प्रतिपन्न हैं वे लब्धि-वीर्य की अपेक्षा सवीर्य हैं और करणवीर्य की अपेक्षा अवीर्य हैं। जो अशैलेशी-

प्रतिपन्न हैं, वे लब्धिवीर्य से सवीर्य हैं, किन्तु करणवीर्यसे सवीर्य भी हैं और अवीर्य भी हैं। इसलिए० गौतम ! ऐसा क.ा गया है कि–जीव सवीर्य भी हैं और अवीर्य भी हैं।

भगवन् ! क्या नारकी जीव सवीर्य हैं या अवीर्य हैं ? गौतम ! नारकी जीव लब्धिवीर्य से सवीर्य हैं और करणवीर्य से सवीर्य भी हैं और अवीर्य भी हैं। भगवन् ! इसका क्या कारण है ? गौतम ! जिन नारकियोंमें उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषकार पराक्रम है, वे नारकी जीव लब्धिवीर्य और करणवीर्यसे भी सवीर्य हैं और जो नारकी जीव उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषकार पराक्रम से रहित हैं, वे लब्धिवीर्य से सवीर्य हैं और करणवीर्य से अवीर्य हैं। इसलिए० गौतम ! इस कारण से पूर्वोक्त कथन किया गया है।

जिस प्रकार नारकी जीवोंका कथन किया गया है, उसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनि तकके जीवोंके लिए समझ लेना चाहिए। मनुष्यों के विषय में सामान्य जीवों के समान समझना चाहिए, विशेषता यह है कि सिद्धोंको छोड़ देना चाहिए। वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देवों का कथन नारकी जीवोंके समान समझना चाहिए। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है।····भगवन् ! यह इसी प्रकार है। ऐसा कह कर गौतम स्वामी विचरते हैं ।।७१।।

—०—

शतक १ उद्देशक ६

भगवन् ! जीव किस प्रकार गुरुत्व—भारीपनको प्राप्त होते हैं ? गौतम ! प्राणातिपातसे, मृषावादसे, अदत्तादानसे, मैथुनसे, परिग्रहसे, क्रोधसे, मानसे, मायासे, लोभसे, प्रेम (राग) से, द्वेषसे, कलहसे, अभ्याख्यानसे, पैशुन्य (चुगली) से, अरतिरतिसे, परपरिवादसे, मायामृषावादसे और मिथ्यादर्शन-शल्यसे, इन अठारह पापोंका सेवन करनेसे जीव शीघ्र गुरुत्वको प्राप्त होते हैं।

भगवन् ! जीव किस प्रकार लघुत्वको प्राप्त होते हैं ? गौतम ! प्राणा-तिपातके त्यागसे यावत् मिथ्यादर्शनशल्य के त्यागसे जीव शीघ्र लघुत्वको प्राप्त होते हैं। इस प्रकार जीव प्राणातिपात आदि पापोंका सेवन करने से संसारको बढ़ाते हैं, लम्बे कालका करते हैं, और बार-बार भव भ्रमण करते हैं, तथा प्राणातिपात आदि पापोंका त्याग करनेसे जीव संसारको घटाते हैं, अल्पकालीन करते हैं और संसार लांघ जाते हैं। इनमें से चार (हल्कापन···) प्रशस्त हैं और चार (भारीपन···) अप्रशस्त हैं ।।७२।।

भगवन् ! क्या सातवां अवकाशान्तर गुरु है ? या लघु है ? या गुरु-लघु है ? या अगुरुलघु है ? गौतम ! वह गुरु नहीं है, लघु नहीं है, गुरुलघु

नहीं है, किन्तु अगुरुलघु है। भगवन्! क्या सातवां तनुवात गुरु है? या लघु है? या गुरुलघु है? अथवा अगुरुलघु है? गौतम! वह गुरु नहीं है, लघु नहीं है, किन्तु गुरुलघु है, अगुरुलघु नहीं। इसी प्रकार सातवां घनवात, सातवां घनोदधि, और सातवीं पृथ्वीके विषयमें भी कहना चाहिए। जैसा सातवें अवकाशान्तरके विषय में कहा है वैसा ही सब अवकाशान्तरों के विषय में जानना चाहिए। तनुवातके विषयमें जैसा कहा है उसी प्रकार सभी घनवात, घनोदधि, पृथ्वी, द्वीप, समुद्र और क्षेत्रोंके विषयमें भी जानना चाहिए।

......क्या नारकी जीव गुरु हैं? या लघु हैं? या गुरुलघु हैं? या अगुरुलघु हैं? गौतम! गुरु नहीं हैं, लघु नहीं हैं, किन्तु गुरुलघु हैं और अगुरुलघु भी हैं। भगवन्! इसका क्या कारण है? गौतम! नारकी जीव वैक्रिय और तैजस् शरीरकी अपेक्षा गुरु नहीं हैं, अगुरुलघु भी नहीं हैं, किन्तु गुरुलघु हैं। नारकी जीव, जीव और कर्मकी अपेक्षा गुरु नहीं हैं, लघु नहीं हैं, गुरुलघु नहीं हैं, किन्तु अगुरुलघु हैं। इसलिए० गौतम! पूर्वोक्त कथन किया गया है। इसी प्रकार वैमानिकों तक जानना चाहिए, किन्तु विशेष यह है कि शरीरोंमें भिन्नता है। धर्मास्तिकाय यावत् जीवास्तिकाय चौथे पदसे जानना चाहिए अर्थात् इन्हें अगुरुलघु समझना चाहिए।

हे भगवन्! क्या पुद्‌गलास्तिकाय गुरु है? या लघु है? या गुरुलघु है? या अगुरुलघु है? गौतम! पुद्‌गलास्तिकाय गुरु नहीं है, लघु नहीं है, किंतु गुरुलघु भी है और अगुरुलघु भी है। भगवन्! इसका क्या कारण है? गौतम! गुरुलघु द्रव्योंकी अपेक्षा पुद्‌गलास्तिकाय गुरु नहीं है, लघु नहीं है, अगुरुलघु नहीं है, किन्तु गुरुलघु है। अगुरुलघु द्रव्योंकी अपेक्षा पुद्‌गलास्तिकाय गुरु नहीं है, लघु नहीं है, गुरुलघु नहीं है, किन्तु अगुरुलघु है। समयोंको और कर्मोंको चौथे पदसे जानना चाहिए अर्थात् समय और कर्म अगुरुलघु हैं।

भगवन्! क्या कृष्णलेश्या गुरु है? या लघु है? या गुरुलघु है? या अगुरुलघु है? गौतम! कृष्णलेश्या गुरु नहीं है, लघु नहीं है, किन्तु गुरुलघु भी है और अगुरुलघु भी है। भगवन्! इसका क्या कारण है? गौतम! द्रव्य लेश्याकी अपेक्षा तीसरे पदसे जानना चाहिए अर्थात् द्रव्य लेश्याकी अपेक्षा से कृष्णलेश्या गुरुलघु है। भावलेश्याकी अपेक्षासे चौथे पदसे जानना चाहिए अर्थात् भावलेश्याकी अपेक्षा कृष्णलेश्या अगुरुलघु है। इसी प्रकार शुक्ललेश्या तक जानना चाहिए।

दृष्टि, दर्शन, ज्ञान, अज्ञान और संज्ञाको चौथे पदसे (अगुरुलघु) जानना चाहिए। औदारिक, वैक्रिय, आहारक और तैजस् इन चार शरीरोंको तीसरे पदसे (गुरुलघु) जानना चाहिए। कार्मण शरीर अगुरुलघु है। मनयोग और

वचन योग चतुर्थपद (अगुरुलघु) हैं। काययोग तृतीयपद (गुरुलघु) है। साकारोपयोग और अनाकारोपयोग चतुर्थपद (अगुरुलघु) हैं। सर्व द्रव्य, सर्व प्रदेश और सर्व पर्याय, पुद्गलास्तिकायके समान समझने चाहिएं। अतीत काल, अनागत (भविष्य) काल और सर्वकाल चौथे पदसे अर्थात् अगुरुलघु जानना चाहिए ।।७३।।

भगवन्! क्या लाघव, अल्प इच्छा, अमूर्च्छा, अनासक्ति और अप्रतिबद्धता, ये श्रमण निर्ग्रन्थोंके लिए प्रशस्त हैं? हाँ, गौतम! लाघव यावत् अप्रतिबद्धता प्रशस्त हैं। भगवन्! क्रोधरहितता, मानरहितता, मायारहितता और निर्लोभता, ये सब क्या श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए प्रशस्त हैं? हाँ, गौतम! क्रोध रहितता यावत् निर्लोभता, ये सब श्रमण निर्ग्रन्थोंके लिए प्रशस्त हैं।

भगवन्! क्या कांक्षाप्रदोष क्षीण होने पर श्रमण निर्ग्रन्थ, अन्तकर और अन्तिमशरीरी होता है? अथवा पूर्वकी अवस्थामें वहुत मोह वाला होकर विहार करे और फिर संवर वाला होकर काल करे, तो क्या सिद्ध, बुद्ध, मुक्त होता है यावत् सब दुःखोंका अन्त करता है? हाँ, गौतम! कांक्षाप्रदोष नष्ट हो जाने पर यावत् सब दुःखोंका अन्त करता है ।।७४।।

हे भगवन्! अन्यतीर्थिक इस प्रकार कहते हैं, इस प्रकार विशेष रूपसे कहते हैं, इस प्रकार जतलाते हैं और इस प्रकार प्ररूपणा करते हैं कि एक जीव एक समयमें दो आयुष्य करता है। वह इस प्रकार कि—इस भवका आयुष्य और परभवका आयुष्य। जिस समय इस भवका आयुष्य करता है, उस समय परभवका आयुष्य करता है और जिस समय परभवका आयुष्य करता है उस समय इस भवका आयुष्य करता है। इस भवका आयुष्य करनेसे परभवका आयुष्य करता है और परभवका आयुष्य करनेसे इस भवका आयुष्य करता है। इस प्रकार एक जीव एक समयमें दो आयुष्य करता है—इस भवका आयुष्य और परभवका आयुष्य। भगवन्! क्या यह इसी प्रकार है? गौतम! अन्यतीर्थिक जो इस प्रकार कहते हैं यावत् इस भवका आयुष्य और परभवका आयुष्य। उन्होंने जो ऐसा कहा है वह मिथ्या कहा है।·········मैं इस प्रकार कहता हूं यावत् प्ररूपणा करता हूं कि एक जीव एक समयमें एक आयुष्य करता है और वह इस भवका आयुष्य करता है अथवा परभवका आयुष्य करता है। जिस समय इस भवका आयुष्य करता है, उस समय परभवका आयुष्य नहीं करता और जिस समय परभवका आयुष्य करता है उस समय इस भवका आयुष्य नहीं करता। इस भवका आयुष्य करनेसे परभवका आयुष्य नहीं करता और परभवका आयुष्य करनेसे इस भवका आयुष्य नहीं करता। इस प्रकार एक जीव एक समय में एक आयुष्य करता है—इस भवका आयुष्य, अथवा परभवका आयुष्य।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है । ··· भगवन् ! यह इसी प्रकार है । ऐसा कहकर भगवान् गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ॥७५॥

उस काल उस समयमें पार्श्वापत्य अर्थात् भगवान् पार्श्वनाथके सान्तानिक–शिष्यानुशिष्य कालास्यवेषिपुत्र नामक अनगार जहां स्थविर भगवान् थे वहां गये । वहाँ जाकर उन स्थविर भगवन्तोंसे इस प्रकार कहा कि—हे स्थविरो ! आप सामायिकको नहीं जानते, सामायिकके अर्थको नहीं जानते । आप प्रत्याख्यानको नहीं जानते, आप प्रत्याख्यानके अर्थको नहीं जानते । आप संयमको नहीं जानते, आप संयमके अर्थको नहीं जानते । आप संवरको नहीं जानते, संवरके अर्थको नहीं जानते । आप विवेकको नहीं जानते, आप विवेकके अर्थको नहीं जानते । आप व्युत्सर्गको नहीं जानते और व्युत्सर्गके अर्थको नहीं जानते । तब स्थविर भगवन्तोंने कालास्यवेषिपुत्र अनगारसे इस प्रकार कहा कि–हे आर्य ! हम सामायिकको जानते हैं, सामायिकके अर्थको जानते हैं, यावत् हम व्युत्सर्गको जानते हैं और व्युत्सर्गके अर्थको जानते हैं ।

तब कालास्यवेषिपुत्र अनगारने स्थविर भगवन्तोंसे इस प्रकार कहा कि—आर्यो ! यदि आप सामायिकको और सामायिकके अर्थको यावत् व्युत्सर्ग और व्युत्सर्गके अर्थको जानते हैं, तो बताइये कि सामायिक क्या है ? सामायिकका अर्थ क्या है ? यावत् व्युत्सर्ग क्या है और व्युत्सर्गका अर्थ क्या है ? तब स्थविर भगवन्तोंने कालास्यवेषिपुत्र अनगारसे इस प्रकार कहा कि—आर्य ! हमारी आत्मा सामायिक है, हमारी आत्मा सामायिकका अर्थ है यावत् हमारी आत्मा व्युत्सर्ग है और हमारी आत्मा ही व्युत्सर्गका अर्थ है ।

तब कालास्यवेषिपुत्र अनगारने उन स्थविर भगवन्तोंसे इस प्रकार कहा कि—हे आर्यो ! यदि आत्मा ही सामायिक है, आत्मा ही सामायिकका अर्थ है और इसी प्रकार यावत् आत्मा ही व्युत्सर्ग है एवं आत्मा ही व्युत्सर्गका अर्थ है, तो आप क्रोध, मान, माया और लोभका त्याग करके क्रोध आदिकी निन्दा गर्हा किस लिये करते हैं ? हे कालास्यवेषिपुत्र ! संयमके लिये हम क्रोध आदिकी निन्दा करते हैं । तो भगवन् ! क्या गर्हा संयम है ? या अगर्हा संयम है ? हे कालास्यवेषि-पुत्र ! गर्हा संयम है, अगर्हा संयम नहीं है । गर्हा सब दोषोंको दूर करती है । आत्मा सर्व मिथ्यात्वको जान कर गर्हा द्वारा सब दोषोंका नाश करती है । इस प्रकार हमारी आत्मा संयममें पुष्ट होती है और इस प्रकार हमारी आत्मा संयम में उपस्थित होती है ।

स्थविर भगवन्तोंका उत्तर सुनकर वे कालास्यवेषिपुत्र अनगार बोधको प्राप्त हुए और तब उन्होंने स्थविर भगवन्तोंको वन्दना नमस्कार किया । फिर कालास्यवेषिपुत्र अनगारने इस प्रकार कहा कि—भगवन् ! इन पूर्वोक्त पदोंको

न जाननेसे, पहले सुने हुए न होनेसे, बोध न होनेसे, अभिगम (ज्ञान) न होनेसे, दृष्ट न होनेसे, विचार न होनेसे, सुने हुए न होनेसे, विशेष रूपसे न जाननेसे, कहे हुए न होनेसे, अनिर्णीत होनेसे, उद्धृत न होनेसे और ये पद धारण किये हुए न होनेसे, इस अर्थमें श्रद्धा नहीं थी, प्रतीति नहीं थी, रुचि नहीं थी, किन्तु हे भगवन् ! अब इनको जान लेनेसे, सुन लेनेसे, बोध होनेसे, अभिगम होनेसे, दृष्ट होनेसे, चिन्तित होनेसे, श्रुत होनेसे, विशेष जान लेनेसे, कथित होनेसे, निर्णीत होनेसे, उद्धृत होनेसे और इन पदोंका अवधारण करनेसे, इस अर्थमें श्रद्धा करता हूं, प्रतीति करता हूं, रुचि करता हूं। भगवन् ! आप जो यह कहते हैं वह यथार्थ है, वह इसी प्रकार है।

तब उन स्थविर भगवन्तोंने कालास्यवेषिपुत्र अनगारसे इस प्रकार कहा कि—आर्य ! हम जैसा कहते हैं वैसी ही श्रद्धा रक्खो, प्रतीति रक्खो, रुचि रक्खो।

तब कालास्यवेषिपुत्र अनगारने उन स्थविर भगवन्तोंको वन्दना की, नमस्कार किया। तत्पश्चात् वे इस प्रकार बोले—भगवन् ! मैंने पहले चार महाव्रत वाला धर्म स्वीकार कर रक्खा है, अब मैं आपके पास प्रतिक्रमण सहित पांच महाव्रत वाला धर्म स्वीकार करके विचरनेकी इच्छा करता हूं। तब स्थविर भगवन्त बोले—हे देवानुप्रिय ! जैसे सुख हो वैसे करो, विलम्ब न करो।

तब कालास्यवेषिपुत्र अनगारने स्थविर भगवन्तोंको वन्दना की, नमस्कार किया और चार महाव्रत धर्मसे प्रतिक्रमण सहित पांच महाव्रत रूप धर्म स्वीकार करके विचरने लगे। इसके बाद कालास्यवेषिपुत्र अनगारने बहुत वर्षों तक श्रमण पर्यायका पालन किया और जिस प्रयोजनके लिये जिनकल्प भाव, स्थविरकल्प भाव, मुण्डभाव, स्नान न करना, दतौन न करना, छत्र न रखना, जूते न पहनना, जमीन पर सोना, पाट पर सोना, काष्ठ पर सोना, केश लोच करना, ब्रह्मचर्य पालन करना, भिक्षाके लिये गृहस्थोंके घर जाना, लाभ और अलाभ सहना अर्थात् अभीष्ट भिक्षा मिल जाने पर हर्षित न होना और भिक्षा न मिलने पर खेदित न होना, इन्द्रियोंके लिये कांटेके समान चुभने वाले कठोर शब्दादिको सहन करना, अनुकूल और प्रतिकूल परीषहोंको सहन करना, इन सब बातोंका उन्होंने सम्यक्-रूपसे पालन किया, अभीष्ट प्रयोजनका सम्यक् रूपसे आराधन किया। अन्तिम श्वासोच्छ्वास द्वारा सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हुए, परिनिवृत्त हुए और सब दुःखोंसे रहित हुए ॥७६॥

'भगवन्' ऐसा कह कर भगवान् गौतमने श्रमण भगवान् महावीर स्वामीको वन्दना नमस्कार किया। वन्दना नमस्कार करके इस प्रकार बोले—भगवन् ! सेठ, दरिद्र, कृपण और क्षत्रिय (राजा) क्या इन सबके अप्रत्याख्यान क्रिया

समान होती है ? हां, गौतम ! सेठ यावत् क्षत्रिय इन सबके अप्रत्याख्यान क्रिया समान होती है। भगवन् ! इसका क्या कारण है ? गौतम ! अविरतिकी अपेक्षा ऐसा कहा गया है कि—सेठ, दरिद्र, कृपण और क्षत्रिय इन सबके अप्रत्याख्यान क्रिया समान होती है ॥७७॥

भगवन् ! आधाकर्म दोपयुक्त आहारादि भोगता हुआ श्रमण निर्ग्रन्थ क्या बांधता है ? क्या करता है ? किसका चय करता है और किसका उपचय करता है ? गौतम ! आधाकर्म दोप युक्त आहारादि भोगता हुआ श्रमण निर्ग्रन्थ आयु कर्मको छोड़कर शेष सात कर्मोंकी शिथिल बंधी हुई कर्म-प्रकृतियों को दृढ़ बन्धनसे बंधी हुई करता है, यावत् संसारमें बार-बार परिभ्रमण करता रहता है। भगवन् ! इसका क्या कारण है कि यावत् वह संसारमें बार-बार परिभ्रमण करता है ? गौतम ! आधाकर्म दोषयुक्त आहारादिको भोगता हुआ श्रमण निर्ग्रन्थ अपने आत्मधर्मका उल्लंघन करता है। अपने आत्मधर्मका उल्लंघन करता हुआ पृथ्वीकायके जीवों की अपेक्षा (परवाह) नहीं करता और त्रसकायके जीवोंकी चिन्ता (परवाह) नहीं करता और जिन जीवोंके शरीरोंका वह भोग करता है, उन जीवोंकी भी चिन्ता नहीं करता। इस कारण० गौतम ! ऐसा कहा गया है कि आधाकर्म दोपयुक्त आहारादि भोगता हुआ श्रमण निर्ग्रन्थ आयु कर्म को छोड़कर शेप सात कर्मोंकी शिथिल बांधी हुई प्रकृतियोंको मजबूत बांधता है यावत् संसारमें बार-बार परिभ्रमण करता रहता है।

भगवन् ! प्रासुक और एषणीय आहारादि भोगने वाला श्रमण निर्ग्रन्थ क्या बांधता है ? और यावत् किसका उपचय करता है ? गौतम ! प्रासुक एषणीय आहारादि भोगने वाला श्रमण निर्ग्रन्थ आयु कर्मको छोड़कर शेष सात कर्मोंकी दृढ़ बन्धनसे बंधी हुई प्रकृतियों को ढीली करता है। उसे संवृत अनगार के समान समझना चाहिए। विशेषता यह है कि आयुकर्मको कदाचित् बांधता है और कदाचित् नहीं बाँधता। शेष उसी प्रकार समझना चाहिए। यावत् संसार को पार कर जाता है। भगवन् ! इसका क्या कारण है कि यावत् संसारको पार कर जाता है ? गौतम ! प्रासुक एषणीय आहारादि भोगने वाला श्रमण निर्ग्रन्थ अपने आत्म-धर्मका उल्लंघन नहीं करता। अपने आत्मधर्म का उल्लंघन न करता हुआ वह श्रमण निर्ग्रन्थ पृथ्वीकायके जीवोंका जीवन चाहता है यावत् त्रसकाय…और जिन जीवोंका शरीर उसके भोगमें आता है उनका भी जीवन चाहता है। इस कारणसे० गौतम ! वह यावत् संसारको पार कर जाता है ॥७८॥

भगवन् ! क्या अस्थिर पदार्थ बदलता है और स्थिर पदार्थ नहीं बदलता ? क्या अस्थिर पदार्थ भंग होता है और स्थिर पदार्थ भंग नहीं होता ? क्या बालक शाश्वत है और बालकपन अशाश्वत है ? क्या पण्डित शाश्वत है और

पण्डितपन अशाश्वत है ? हां, गौतम ! अस्थिर पदार्थ वदलता है यावत् पण्डित-पन अशाश्वत है । हे भगवन्! यह इसी प्रकार है ।···भगवन् ! यह इसी प्रकार है । ऐसा कह कर यावत् गौतम स्वामी विचरते हैं ।।७६।।

।। प्रथम शतकका नववां उद्देशक समाप्त ।।

—०—

शतक १ उद्देशक १०

भगवन् ! अन्यतीर्थिक इस प्रकार कहते हैं यावत् इस प्रकार प्ररूपणा करते हैं कि—जो चल रहा है वह चला नहीं कहलाता और यावत् जो निर्जर रहा है वह निर्जीर्ण नहीं कहलाता । दो परमाणु पुद्गल एक साथ नहीं चिपकते । दो परमाणु पुद्गल एक साथ क्यों नहीं चिपकते ? इसका कारण यह है कि दो परमाणु पुद्गलोंमें चिकनापन नहीं है । इसलिए दो परमाणु पुद्गल एक साथ नहीं चिपकते । तीन परमाणु पुद्गल एक दूसरेके साथ चिपकते हैं । तीन परमाणु पुद्गल आपसमें क्यों चिपकते हैं ? इसका कारण यह है कि तीन परमाणु पुद्गलोंमें चिकनापन होता है । इसलिए तीन परमाणु पुद्गल आपस में चिपकते हैं । यदि तीन परमाणु पुद्गलों के विभाग किये जायँ, तो दो भाग भी हो सकते हैं और तीन भाग भी हो सकते हैं । यदि तीन परमाणु पुद्गलोंके दो भाग किये जायँ, तो एक तरफ डेढ़ परमाणु होता है और दूसरी तरफ भी डेढ़ परमाणु हो जाता है । यदि तीन परमाणु पुद्गलोंके तीन भाग किये जायँ तो एक एक करके तीन परमाणु अलग अलग हो जाते हैं । इसी तरह यावत् चार परमाणु पुद्गलोंके विषयमें भी समझना चाहिए ।

पांच परमाणु पुद्गल आपसमें चिपक जाते हैं और वे दुःखरूप (कर्म रूप) में परिणत होते हैं । वह दुःख (कर्म) शाश्वत है और सदा भली भांति उपचय को प्राप्त होता है और अपचयको प्राप्त होता है । बोलने से पहले जो भाषा (भाषाके पुद्गल) है, वह भाषा है । बोलते समय की भाषा अभाषा है और बोलनेका समय व्यतीत हो जाने के बाद की भाषा भाषा है । यह जो बोलने से पहलेकी भाषा, भाषा है और बोलते समय की भाषा, अभाषा है तथा बोलनेके समय के बाद की भाषा, भाषा है, सो क्या बोलते हुए पुरुषकी भाषा है या न बोलते हुए पुरुष की भाषा है ?···न बोलते हुए पुरुषकी वह भाषा है, बोलते हुए पुरुष की वह भाषा नहीं है । वह जो पूर्वकी क्रिया है वह दुःखरूप है, वर्तमानमें जो क्रिया की जाती है वह क्रिया दुःख रूप नहीं है और करनेका समय बीत जानेके बाद की 'कृतक्रिया' दुःख रूप है । वह जो पूर्वकी क्रिया है वह दुःख का कारण है । की जाती हुई क्रिया दुःख का कारण नहीं है और करने के समय

के बादकी क्रिया दुःखका कारण है, तो क्या वह करनेसे दुःखका कारण है ? या नहीं करनेसे दुःखका कारण है ?…'नहीं करने से वह दुःखका कारण है, करने से दुःखका कारण नहीं है'—ऐसा कहना चाहिए। अकृत्य दुःख है, अस्पृश्य दुःख है और अक्रियमाणकृत दुःख है उसे न करके प्राण, भूत, जीव, सत्त्व वेदना भोगते हैं—ऐसा कहना चाहिए।

गौतम स्वामी पूछते हैं कि—भगवन्! अन्यतीर्थिकोंकी उपरोक्त मान्यता किस प्रकार है? गौतम! अन्यतीर्थिक जो इस प्रकार कहते हैं यावत् वेदना वेदते हैं—ऐसा कहना चाहिए, इत्यादि बातें जो उन्होंने कही हैं वे मिथ्या है। गौतम! मैं ऐसा कहता हूं कि—'चलमाणे चलिए जाव णिज्जरिज्जमाणे णिज्जिण्णे' अर्थात् 'जो चल रहा है वह चला' कहलाता है यावत् जो निर्जर रहा है वह निर्जीर्ण कहलाता है। दो परमाणु पुद्गल आपस में चिपकते हैं। दो परमाणु पुद्गल आपस में चिपकते हैं इसका क्या कारण है ? इसका कारण यह है कि—दो परमाणु पुद्गलोंमें चिकनापन है, इसलिए दो परमाणु पुद्गल परस्पर चिपट जाते हैं। उन दो परमाणु पुद्गलोंके दो भाग हो सकते हैं। यदि दो परमाणु पुद्गलोंके दो भाग किये जायँ, तो एक तरफ एक परमाणु और एक तरफ एक परमाणु होता है।

तीन परमाणु पुद्गल परस्पर चिपट जाते हैं। तीन परमाणु पुद्गल परस्पर क्यों चिपट जाते हैं ? इसका कारण क्या है ? इसका कारण यह है कि तीन परमाणु पुद्गलों में चिकनापन है। इस कारण तीन परमाणु पुद्गल परस्पर चिपट जाते हैं। उन तीन परमाणु पुद्गलोंमें के दो भाग भी हो सकते हैं और तीन भाग भी हो सकते हैं। दो भाग करने पर एक तरफ एक परमाणु और एक तरफ दो प्रदेश वाला एक स्कन्ध होता है। तीन भाग करने पर एक एक करके तीन परमाणु हो जाते हैं। इसी प्रकार यावत् चार परमाणु पुद्गलके विषयमें भी समझना चाहिए। परन्तु तीन परमाणुके डेढ़ डेढ़ नहीं हो सकते हैं।

पांच परमाणु पुद्गल परस्पर में चिपट जाते हैं और परस्पर चिपट कर एक स्कन्ध रूप बन जाते हैं। वह स्कन्ध अशाश्वत है और हमेशा उपचय तथा अपचय पाता है, अर्थात् वह बढ़ता भी है और घटता भी है।

बोलने से पहले की भाषा अभाषा है, बोलते समय की भाषा भाषा है और बोलने के बादकी भाषा अभाषा है। वह जो पहले की भाषा अभाषा है। बोलते समय की भाषा भाषा है, और बोलने के बादकी भाषा अभाषा है, सो क्या बोलते वाले पुरुष की भाषा है, या अनबोलते पुरुष की भाषा है ?… वह बोलने वाले पुरुष की भाषा है, किन्तु अनबोलते पुरुष की भाषा नहीं है।

करने से पहले की क्रिया दुःख का कारण नहीं है, उसे भाषा के समान ही

समझना चाहिए। यावत् वह क्रिया करने से दुःख का कारण है, नहीं करने से दुःख का कारण नहीं है। ऐसा कहना चाहिए। कृत्य दुःख है, स्पृश्य दुःख है, क्रियमाणकृत दुःख है, उसे कर करके प्राण, भूत, जीव, सत्त्व वेदना भोगते हैं। ऐसा कहना चाहिए ॥८०॥

भगवन्! अन्यतीर्थिक इस प्रकार कहते हैं यावत् प्ररूपणा करते हैं कि—एक जीव एक समय में दो क्रियाएँ करता है। वह इस प्रकार—ऐर्यापथिकी और साम्परायिकी। जिस समय जीव ऐर्यापथिकी क्रिया करता है, उस समय साम्परायिकी क्रिया करता है और जिस समय साम्परायिकी क्रिया करता है उस समय ईर्यापथिकी क्रिया करता है। साम्परायिकी क्रिया करने से ऐर्यापथिकी क्रिया करता है इत्यादि। इस प्रकार एक जीव एक समय में दो क्रियाएँ करता है, एक ऐर्यापथिकी और दूसरी साम्परायिकी।…भगवन् क्या यह इसी प्रकार है? गौतम! जो अन्यतीर्थिक ऐसा कहते हैं यावत् उन्होंने ऐसा जो कहा है सो मिथ्या कहा है।…गौतम! मैं इस प्रकार कहता हूं कि एक जीव एक समयमें एक क्रिया करता है। यहां परतीर्थिकों का तथा स्वसिद्धान्त का वक्तव्य कहना चाहिए यावत् ऐर्यापथिकी अथवा साम्परायिकी क्रिया करता है ॥८१॥

भगवन्! नरक गति कितने समय तक उपपात से विरहित रहती है? गौतम! जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट बारह मुहूर्त्त तक नरकगति उपपात से रहित रहती है। इसी प्रकार यहां सारा उत्क्रान्ति पद कहना चाहिए। हे भगवन्! यह ऐसा ही है।…यह ऐसा ही है। ऐसा कह कर यावत् गौतम स्वामी विचरते हैं ॥८२॥

॥ प्रथम शतक का दसवां उद्देशक समाप्त ॥

॥ प्रथम शतक समाप्त ॥

शतक २ उद्देशक १

संग्रह गाथा—दूसरे शतकमें दस उद्देशक हैं। उनमें क्रमशः इस प्रकार विषय हैं—(१) श्वासोच्छ्वास और स्कन्दक अनगार (२) समुद्घात (३) पृथ्वी (४) इन्द्रियां (५) अन्यतीर्थिक (६) भाषा (७) देव (८) चमरचंचा राजधानी (९) समय क्षेत्रका स्वरूप (१०) अस्तिकाय का विवेचन ॥१॥८३॥

उस काल उस समय में राजगृह नगर था। उसका वर्णन करना चाहिए। वहां श्रमण भगवान् महावीर स्वामी पधारे। उनका धर्मोपदेश सुननेके लिए परिषद् निकली। भगवान् ने धर्मोपदेश दिया। धर्मोपदेश सुनकर परिषद् वापिस

लौट गई। उस काल उस समयमें श्रमण भगवान् महावीर स्वामीके ज्येष्ठ अन्तेवासी इन्द्रभूति अनगार भगवानकी पर्युपासना करते हुए इस प्रकार बोले— भगवन्! ये जो बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय जीव हैं, वे जो बाह्य और आभ्यन्तर श्वासोच्छ्वास लेते हैं उनको हम जानते और देखते हैं, किन्तु भगवन्! पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय और वनस्पतिकायके आभ्यन्तर और बाह्य श्वासोच्छ्वासको हम नहीं जानते और नहीं देखते। तो क्या भगवन्! ये पृथ्वीकायादि आभ्यन्तर और बाह्य श्वासोच्छ्वास लेते और छोड़ते हैं? हाँ, गौतम! ये पृथ्वीकायादि एकेन्द्रिय जीव भी आभ्यन्तर और बाह्य श्वासोच्छ्वास लेते और छोड़ते हैं ॥८४॥

भगवन्! ये पृथ्वीकायादि एकेन्द्रिय जीव किस प्रकारके द्रव्योंको बाह्य और आभ्यन्तर श्वासोच्छ्वासके रूपमें ग्रहण करते और छोड़ते हैं? गौतम! द्रव्य की अपेक्षा अनन्त प्रदेश वाले द्रव्योंको, क्षेत्रकी अपेक्षा असंख्य प्रदेशोंमें रहे हुए द्रव्यों को, कालकी अपेक्षा किसी भी स्थिति वाले द्रव्योंको और भावकी अपेक्षा—वर्ण वाले, गन्ध वाले, रस वाले और स्पर्श वाले द्रव्योंको बाह्य और आभ्यन्तर श्वासोच्छ्वासके रूपमें ग्रहण करते और छोड़ते हैं।

भगवन्! वे पृथ्वीकायादि एकेन्द्रिय जीव भावकी अपेक्षा वर्ण वाले द्रव्यों को बाह्य और आभ्यन्तर श्वासोच्छ्वासके रूपमें ग्रहण करते हैं और छोड़ते हैं, तो क्या वे द्रव्य एक वर्ण वाले हैं? गौतम! जैसा कि—पण्णवणा सूत्रके अट्ठाइसवें आहारपद में कथन किया है वैसा ही यहां कहना चाहिए। यावत् वे पांच दिशाओं की ओरसे श्वासोच्छ्वासके पुद्गलोंको ग्रहण करते हैं।

हे भगवन्! नैरयिक किस प्रकारके पुद्गलोंको बाह्य और आभ्यन्तर श्वासोच्छ्वासके रूपमें ग्रहण करते हैं और छोड़ते हैं?...गौतम! इस विषय में पहले कहा, वैसा ही समझना चाहिए यावत् वे नियमा (नियम से--निश्चित रूपसे) छह दिशाके पुद्गलोंको बाह्य और आभ्यन्तर श्वासोच्छ्वासके रूपमें ग्रहण करते और छोड़ते हैं।

जीव सामान्य और एकेन्द्रियोंके सम्बन्धमें ऐसा कहना चाहिए कि यदि व्याघात न हो तो वे सब दिशाओंसे बाह्य और आभ्यन्तर श्वासोच्छ्वासके लिए पुद्गलोंको लेते हैं। यदि व्याघात हो तो कदाचित् तीन दिशासे, कदाचित् चार दिशासे और कदाचित् पांच दिशासे श्वासोच्छ्वासके पुद्गलोंको ग्रहण करते हैं। बाकी सब जीव नियमा छह दिशासे श्वासोच्छ्वासके पुद्गलोंको लेते हैं ॥८५॥

भगवन्! क्या वायुकाय, वायुकाय को ही बाह्य और आभ्यन्तर श्वासोच्छ्वासके रूपमें ग्रहण करता है और छोड़ता है? हां, गौतम! वायुकाय, वायुकाय को ही बाह्य और आभ्यन्तर श्वासोच्छ्वासके रूपमें ग्रहण करता है और

छोड़ता है। भगवन् ! क्या वायुकाय, वायुकाय में ही अनेक लाखों बार मरकर फिर वहीं (वायुकाय में ही) उत्पन्न होता है। हाँ, गौतम ! …होता है।

भगवन् ! क्या वायुकाय स्वजातिके अथवा परजातिके जीवोंके साथ स्पृष्ट होकर मरण पाता है अथवा बिना स्पृष्ट हुए ही मरण पाता है ? गौतम ! वायुकाय स्वजातिके अथवा परजातिके जीवोंके साथ स्पृष्ट होकर मरणको प्राप्त होता है, किन्तु बिना स्पृष्ट हुए मरणको प्राप्त नहीं होता। भगवन् ! जब वायुकाय मरता है, तो क्या शरीर सहित निकलता है या शरीर रहित ? गौतम ! वह कथञ्चित् सशरीरी निकलता है और कथञ्चित् अशरीरी निकलता है। भगवन् ! ऐसा आप किस कारणसे कहते हैं—कि वायुकाय का जीव जब निकलता है तब वह कथञ्चित् सशरीरी निकलता है और कथञ्चित् अशरीरी निकलता है ? गौतम ! वायुकायके चार शरीर होते हैं। वे इस प्रकार हैं—औदारिक, वैक्रिय, तैजस और कार्मण। इनमें से औदारिक और वैक्रियको छोड़कर दूसरे भवमें जाता है, इस अपेक्षासे वह अशरीरी जाता है, और तेजस और कार्मण शरीरको वह साथ लेकर जाता है। इस अपेक्षा से वह सशरीरी जाता है। इसलिए० गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि—वायुकाय मरकर दूसरे भवमें कथञ्चित् (किसी अपेक्षासे) सशरीरी जाता है और कथञ्चित् अशरीरी जाता है ॥८६॥

भगवन् ! जिसने संसारका निरोध नहीं किया है, संसारके प्रपंचोंका निरोध नहीं किया है, जिसका संसार क्षीण नहीं हुआ है, जिसका संसार वेदनीय कर्म क्षीण नहीं हुआ है, जिसका संसार व्युच्छिन्न नहीं हुआ है, जिसका संसार वेदनीय व्युच्छिन्न नहीं हुआ है, जो निष्ठितार्थ—प्रयोजन सिद्ध नहीं हुआ है, *जिसका कार्य समाप्त नहीं हुआ है, ऐसा प्रासुक-भोजी अनगार क्या फिर मनुष्य-*भव आदि भावोंको प्राप्त होता है ? गौतम ! पूर्वोक्त स्वरूप वाला निर्ग्रन्थ फिर मनुष्यभव आदि भावोंको प्राप्त होता है ॥८७॥

पूर्वोक्त निर्ग्रन्थके जीवको किस शब्दसे कहना चाहिए ? गौतम ! उसे कदाचित् 'प्राण' कहना चाहिए, कदाचित् 'भूत' कहना चाहिए, कदाचित् 'जीव' कहना चाहिए, कदाचित् 'सत्त्व' कहना चाहिए, कदाचित् 'विज्ञ' कहना चाहिए, कदाचित् 'वेद' कहना चाहिए और कदाचित् 'प्राण, भूत, जीव, सत्त्व, विज्ञ और वेद' कहना चाहिए। भगवन् ! उसे 'प्राण' कहना चाहिए यावत् 'वेद' कहना चाहिए, इसका क्या कारण है ? गौतम ! पूर्वोक्त निर्ग्रन्थका जीव बाह्य और आभ्यन्तर श्वासोच्छ्वास लेता है और छोड़ता है, इसलिये उसे 'प्राण' कहना चाहिए। वह भूत कालमें था, वर्तमानमें है और भविष्य कालमें रहेगा, इसलिये उसे 'भूत' कहना चाहिए। वह जीता है, जीवत्व और आयुष्य कर्मका अनुभव

करता है, इसलिये उसे 'जीव' कहना चाहिए। वह शुभ और अशुभ कर्मोंसे संबद्ध है, इसलिये उसे 'सत्त्व' कहना चाहिए। वह तिक्त (तीखा), कड़ुआ, कषैला, खट्टा और मीठा इन रसोंको जानता है, इसलिये उसे 'विज्ञ' कहना चाहिए। वह सुख दुःखको वेदता है–अनुभव करता है, इसलिये उसे 'वेद' कहना चाहिए। इसलिये० गौतम ! पूर्वोक्त निर्ग्रन्थका जीव 'प्राण यावत् वेद' कहलाता है ॥८८॥

हे भगवन् ! जिसने संसारका निरोध किया है, जिसने संसारके प्रपंचका निरोध किया है, यावत् जिसका कार्य समाप्त हुआ है, ऐसा प्रासुक-भोजी अनगार क्या फिर मनुष्यभव आदि भावोंको प्राप्त नहीं होता है ? हाँ, गौतम ! पूर्वोक्त स्वरूप वाला········अनगार फिर मनुष्यभव आदि भावोंको प्राप्त नहीं होता है। भगवन् ! पूर्वोक्त स्वरूप वाले निर्ग्रन्थके जीवको किस शब्द से कहना चाहिए ? गौतम ! पूर्वोक्त स्वरूप वाले निर्ग्रन्थका जीव 'सिद्ध' कह-लाता है, 'बुद्ध' कहलाता है, 'मुक्त' कहलाता है, 'पारगत-संसारके पार पहुंचा हुआ' कहलाता है, 'परंपरागत-अनुक्रमसे संसारके पार पहुंचा हुआ' कहलाता है। वह 'सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, परिनिर्वृत, अन्तकृत, सर्वदुःखप्रहीण' कहलाता है। हे भगवन्! यह इसी प्रकार है,···भगवन् ! यह इसी प्रकार है, ऐसा कहकर गौतम स्वामी श्रमण भगवान महावीर स्वामीको वन्दना नमस्कार करके तप और संयम से अपनी आत्माको भावित करते हुए विचरते हैं ॥८९॥

एक समय श्रमण भगवान महावीर स्वामीने राजगृह नगरके गुणशील उद्यानसे विहार किया। वहांसे विहार कर वे जनपदमें विचरने लगे। उस काल उस समयमें कृतांगला नामकी नगरी थी। उसका वर्णन करना चाहिए। उस कृतां-गला नगरीके बाहर उत्तर और पूर्व दिशाके बीचमें अर्थात् ईशान कोणमें 'छत्र-पलाशक' नामका उद्यान था। उसका वर्णन करना चाहिए। वहाँ किसी समय उत्पन्न हुए केवलज्ञान केवलदर्शनके धारक श्रमण भगवान महावीर स्वामी पधारे। यावत् भगवानका समवसरण हुआ। परिषद् (जनता) धर्मोपदेश सुननेके लिए गई।

उस कृतांगला नगरीके पासमें श्रावस्ती नामकी नगरी थी। उस श्रावस्ती नगरीका वर्णन करना चाहिए। उस श्रावस्ती नगरीमें कात्यायन गोत्री, गर्दभाल नामक परिव्राजकका शिष्य 'स्कन्दक' नामका परिव्राजक (तापस) रहता था। वह ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इन चार वेदों, पांचवां इतिहास, छठा निघण्टु नामका कोष, इन सबका अंगोपांग सहित रहस्यका जानकार था। वह इनका 'सारक' (स्मारक) अर्थात् इनको पढ़ाने वाला था,- इसलिये इनका प्रव-र्त्तक था, अथवा जो कोई वेदादिको भूल जाता था उसको पुनः याद कराता था,

इसलिये वह उनका 'स्मारक' था। वह 'वारक' था अर्थात् जो कोई दूसरे लोग वेदादिका अशुद्ध उच्चारण करते थे, तो उनको रोकता था, इसलिये वह 'वारक' था। वह 'धारक' था अर्थात् पढ़े हुए वेदादिको नहीं भूलने वाला था, अपितु उनका अच्छी तरह धारण करने वाला था। वह वेदादिका 'पारक'-पारंगत था। छह अंगोंका ज्ञाता था। षष्ठितन्त्र (कापिलीय शास्त्र) में विशारद (पण्डित) था। वह गणित शास्त्र, शिक्षा शास्त्र, आचार शास्त्र, व्याकरण शास्त्र, छन्द शास्त्र, व्युत्पत्ति शास्त्र, ज्योतिष शास्त्र इन सब शास्त्रोंमें तथा दूसरे बहुतसे ब्राह्मण और परिव्राजक सम्बन्धी नीति शास्त्रोंमें और दर्शन शास्त्रोंमें बड़ा चतुर था।

उसी श्रावस्ती नगरीमें वैशालिक श्रावक अर्थात् भगवान् महावीर स्वामीके वचनोंको सुननेमें रसिक पिंगल नामका निर्ग्रन्थ (जैन) था। एक समय वह वैशालिक श्रावक पिंगल नामका निर्ग्रन्थ कात्यायन गोत्री स्कन्दक तापसके पास आया और उसने आक्षेपपूर्वक स्कन्दक परिव्राजकसे इस प्रकार पूछा कि—हे मागध! (मगध देशमें जन्मे हुए) १ क्या लोक सान्त (अन्त वाला) है? या अनन्त (अन्त रहित) है? २ क्या जीव सान्त है? या अनन्त है? ३ क्या सिद्धि सान्त है? या अनन्त है? ४ क्या सिद्ध सान्त हैं? या अनन्त हैं? ५ किस मरणसे मरता हुआ जीव संसार बढ़ाता है और किस मरणसे मरता हुआ जीव संसार घटाता है?

वैशालिक श्रावक पिंगलक निर्ग्रन्थने ये प्रश्न स्कन्दक परिव्राजकसे एक बार, दो बार, तीन बार पूछे, किन्तु स्कन्दक परिव्राजक इन प्रश्नोंका कुछ भी उत्तर नहीं दे सका और मौन रहा। उसके मनमें शंका उत्पन्न हुई कि—इन प्रश्नोंका उत्तर यह है अथवा दूसरा है? उसके मनमें कांक्षा उत्पन्न हुई कि—मैं इन प्रश्नोंका उत्तर कैसे दूँ? मुझे इन प्रश्नोंका उत्तर कैसे आवे? उसके मनमें विचिकित्सा उत्पन्न हुई कि—मैं जो उत्तर दूँ उससे प्रश्न करने वालेको संतोष होगा या नहीं? उसकी बुद्धिमें भेद उत्पन्न हुआ कि—अब मैं क्या करूँ? उसके मनमें क्लेश (खिन्नता) उत्पन्न हुआ कि इस विषयमें मैं कुछ भी नहीं जानता हूं। जब स्कन्दक परिव्राजक कुछ भी उत्तर नहीं दे सका तब पिंगलक निर्ग्रन्थ वहांसे चला गया।

उस समय श्रावस्ती नगरीमें जहां तीन मार्ग, चार मार्ग और बहुत मार्ग मिलते हैं, वहां लोग परस्पर इस प्रकार बातें करते हैं—कि श्रमण भगवान् महावीर स्वामी कृतांगला नगरीके बाहर छत्रपलाश उद्यानमें पधारे हैं। लोग भगवान्‌को वन्दना करनेके लिए जाने लगे। बहुत-से लोगोंके मुंहसे भगवान महावीर

स्वामीके आगमनकी बात सुनकर कात्यायन गोत्री उस स्कन्दक तापसके मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ कि श्रमण भगवान महावीर स्वामी कृतांगला नगरीके बाहर छत्रपलाशक नामक उद्यानमें तप संयमसे अपनी आत्माको भावित करते हुए विचरते हैं। इसलिये मैं उनके पास जाऊँ, उन्हें वन्दना नमस्कार करूँ, सत्कार सन्मान दूँ, कल्याणरूप, मंगलरूप, दैवरूप और ज्ञानरूप भगवान् महावीर स्वामीकी पर्युपासना करूँ, यह सब करके मैं उनसे अर्थ, हेतु, प्रश्न, कारण, व्याकरण आदि पूछूं ? यह मेरे लिये कल्याणकारी है। ऐसा विचार कर स्कन्दक तापस जहां परिव्राजकोंका मठ था वहां आया। वहां आकर त्रिदण्ड, कुण्डी, रुद्राक्षकी माला, करोटिका (एक प्रकारका मिट्टीका बर्तन), आसन, केशरिका (बर्तनोंको साफ करनेके लिए कपड़ा), त्रिगड़ी, अंकुशक, अंगूठी, गणेत्रिका, छत्र, पगरखी, पादुका (खड़ाऊँ), इन तापसके उपकरणोंको लेकर परिव्राजकोंके मठसे निकला। निकल कर त्रिदण्ड, कुण्डी, रुद्राक्षकी माला, करोटिका, भृशिका (आसन विशेष), केशरिका, त्रिगड़ी, अंकुश, अंगूठी और गणेत्रिका इनको हाथमें लेकर छत्र और पगरखीसे युक्त होकर तथा गेरुए वस्त्र पहनकर श्रावस्ती नगरी के मध्यमें होकर श्रमण भगवान् महावीर स्वामीके पास जानेके लिए कृतांगला नगरीके छत्रपलाशक उद्यानकी तरफ रवाना हुआ।

इधर श्रमण भगवान् महावीर स्वामीने अपने ज्येष्ठ शिष्य श्री इन्द्रभूति अनगारसे इस प्रकार कहा कि—गौतम ! आज तू अपने पूर्वके साथीको देखेगा। तब गौतम स्वामीने पूछा कि भगवन् ! मैं आज अपने किस पूर्व साथीको देखूँगा ? तब भगवान्ने फरमाया कि—गौतम ! तू आज अपने 'स्कन्दक परिव्राजक' को देखेगा। तब गौतम स्वामीने पूछा—हे भगवन् ! मैं उसे कब, किस तरहसे और कितने समय बाद देखूँगा ? भगवान्ने फरमाया कि—हे गौतम ! उस काल उस समय में श्रावस्ती नगरी थी। वहां गर्दभाली का शिष्य कात्यायन गोत्री स्कन्दक नाम का परिव्राजक रहता था। इसका पूरा विवरण पहलेके अनुसार जान लेना चाहिए। यावत् वह अपने स्थानसे रवाना होकर मेरे पास आ रहा है। बहुत-सा मार्ग पार कर निकट पहुंच गया है। मार्ग में चल रहा है। गौतम ! तू आज ही उसे देखेगा।

गौतम स्वामीने पूछा—भगवन् ! वह किस लिए आता है ? भगवान्ने फरमाया कि—गौतम ! पिंगलक निर्ग्रन्थ ने उससे पांच प्रश्न पूछे थे। वह उनका उत्तर नहीं दे सका। उसके मनमें शंका कांक्षा आदि उत्पन्न हुई। इसलिए उन प्रश्नोंका उत्तर पूछनेके लिये वह मेरे पास आ रहा है।

फिर गौतम स्वामी ने वन्दना नमस्कार करके पूछा कि—भगवन् ! क्या स्कन्दक आपके पास दीक्षा लेगा ? भगवान्ने फरमाया कि हां, गौतम ! वह

मेरे पास दीक्षा लेगा। जब श्रमण भगवान् महावीर स्वामी गौतम स्वामीसे इस प्रकार कह ही रहे थे कि इतनेमें कात्यायन गोत्री स्कन्दक परिव्राजक उस प्रदेशमें आया।

इसके बाद कात्यायनगोत्री स्कन्दक परिव्राजकको पास आया हुआ देख कर गौतम स्वामी अपने आसन से उठे और स्कन्दक परिव्राजकके सामने गये। फिर स्कन्दक परिव्राजकसे कहा कि—हे स्कन्दक! स्वागत है, सुस्वागत है, तुम्हारा आना अच्छा हुआ, तुम्हारा आना भला हुआ। फिर गौतम स्वामी ने कहा कि—हे स्कन्दक! श्रावस्ती नगरीमें वैशालिक श्रावक पिंगलक निर्ग्रन्थ ने तुमसे पांच प्रश्न पूछे। तुम उनका उत्तर नहीं दे सके। तुम्हारे मनमें शंका कांक्षा आदि उत्पन्न हुए। तुम उन प्रश्नोंके उत्तर पूछनेके लिए यहां भगवान्के पास आये हो। हे स्कन्दक! क्या यह बात सत्य है? स्कन्दकने कहा—हां, गौतम! यह बात सत्य है। परन्तु हे गौतम! मुझे यह बतलाओ कि—कौन ऐसा ज्ञानी या तपस्वी पुरुष है, जिसने मेरे मनकी गुप्त बात तुमसे कह दी? और तुम मेरे मनकी गुप्त बात जान गए। तब गौतम स्वामीने कहा कि—स्कन्दक! धर्माचार्य, धर्मोपदेशक श्रमण भगवान् महावीर स्वामी उत्पन्न ज्ञान दर्शनके धारक हैं, अरिहन्त हैं, जिन हैं, केवली हैं, भूत, भविष्यत् और वर्तमान कालके ज्ञाता हैं, सर्वज्ञ सर्वदर्शी हैं। उन्होंने तुम्हारे मनमें रही हुई गुप्त बात मुझसे कही है। अतः हे स्कन्दक! मैं तुम्हारे मनकी गुप्त बात जानता हूं।

इसके बाद कात्यायनगोत्री स्कन्दक परिव्राजकने गौतम स्वामीसे इस प्रकार कहा कि—गौतम! तुम्हारे धर्माचार्य धर्मोपदेशक श्रमण भगवान् महावीर स्वामीके पास चलें, उन्हें वन्दना नमस्कार करें यावत् उनकी पर्युपासना करें? तब गौतम स्वामी ने कहा कि—हे देवानुप्रिय! जैसा तुम्हें सुख हो, वैसा करो, किन्तु इस कार्य में विलम्ब मत करो।

इसके अनन्तर गौतम स्वामी स्कन्दक परिव्राजकके साथ जहां श्रमण भगवान् महावीर स्वामी थे वहां जाने लगे। उस समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी व्यावृत्तभोजी (प्रतिदिन भोजन करने वाले) थे। इसलिए उनका शरीर उदार (प्रधान), कल्याणरूप, धन्यरूप, मंगलरूप, बिना अलंकारके ही शोभित, उत्तम लक्षण व्यञ्जन और गुणोंसे युक्त था, और अत्यन्त शोभित हो रहा था। अतः उन्हें देखकर स्कन्दक परिव्राजकको अत्यन्त हर्ष हुआ, संतोष हुआ, आनन्द हुआ। इस प्रकार संतुष्ट, आनन्दित और हर्षित होता हुआ स्कन्दक परिव्राजक श्रमण भगवान् महावीर स्वामीको तीन बार वन्दना नमस्कार कर पर्युपासना करने लगा।

श्रमण भगवान महावीर स्वामीने स्कन्दक परिव्राजकसे कहा कि—हे

स्वामीके आगमनकी बात सुनकर कात्यायन गोत्री उस स्कन्दक तापसके मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ कि श्रमण भगवान महावीर स्वामी कृतांगला नगरीके बाहर छत्रपलाशक नामक उद्यानमें तप संयमसे अपनी आत्माको भावित करते हुए विचरते हैं। इसलिये मैं उनके पास जाऊँ, उन्हें वन्दना नमस्कार करूँ, सत्कार सन्मान दूँ, कल्याणरूप, मंगलरूप, देवरूप और ज्ञानरूप भगवान् महावीर स्वामीकी पर्युपासना करूँ, यह सब करके मैं उनसे अर्थ, हेतु, प्रश्न, कारण, व्याकरण आदि पूछूं ? यह मेरे लिये कल्याणकारी है। ऐसा विचार कर स्कन्दक तापस जहां परिव्राजकोंका मठ था वहां आया। वहां आकर त्रिदण्ड, कुण्डी, रुद्राक्षकी माला, करोटिका (एक प्रकारका मिट्टीका बर्तन), आसन, केशरिका (बर्तनोंको साफ करनेके लिए कपड़ा), त्रिगड़ी, अंकुशक, अंगूठी, गणेत्रिका, छत्र, पगरखी, पादुका (खड़ाऊँ), इन तापसके उपकरणोंको लेकर परिव्राजकोंके मठसे निकला। निकल कर त्रिदण्ड, कुण्डी, रुद्राक्षकी माला, करोटिका, भृशिका (आसन विशेष), केशरिका, त्रिगड़ी, अंकुश, अंगूठी और गणेत्रिका इनको हाथमें लेकर छत्र और पगरखीसे युक्त होकर तथा गेरुए वस्त्र पहनकर श्रावस्ती नगरी के मध्यमें होकर श्रमण भगवान् महावीर स्वामीके पास जानेके लिए कृतांगला नगरीके छत्रपलाशक उद्यानकी तरफ रवाना हुआ।

इधर श्रमण भगवान् महावीर स्वामीने अपने ज्येष्ठ शिष्य श्री इन्द्रभूति अनगारसे इस प्रकार कहा कि—गौतम ! आज तू अपने पूर्वके साथीको देखेगा। तब गौतम स्वामीने पूछा कि भगवन् ! मैं आज अपने किस पूर्व साथीको देखूँगा ? तब भगवान्ने फरमाया कि—गौतम ! तू आज अपने 'स्कन्दक परि-व्राजक' को देखेगा। तब गौतम स्वामीने पूछा—हे भगवन् ! मैं उसे कब, किस तरहसे और कितने समय बाद देखूँगा ? भगवान्ने फरमाया कि—हे गौतम ! उस काल उस समय में श्रावस्ती नगरी थी। वहां गर्दभाली का शिष्य कात्यायन गोत्री स्कन्दक नाम का परिव्राजक रहता था। इसका पूरा विवरण पहलेके अनुसार जान लेना चाहिए। यावत् वह अपने स्थानसे रवाना होकर मेरे पास आ रहा है। बहुत-सा मार्ग पार कर निकट पहुंच गया है। मार्ग में चल रहा है। गौतम ! तू आज ही उसे देखेगा।

गौतम स्वामीने पूछा—भगवन् ! वह किस लिए आता है ? भगवान्ने फरमाया कि—गौतम ! पिंगलक निर्ग्रन्थ ने उससे पांच प्रश्न पूछे थे। वह उनका उत्तर नहीं दे सका। उसके मनमें शंका कांक्षा आदि उत्पन्न हुई। इसलिए उन प्रश्नोंका उत्तर पूछनेके लिये वह मेरे पास आ रहा है।

फिर गौतम स्वामी ने वन्दना नमस्कार करके पूछा कि—भगवन् ! क्या स्कन्दक आपके पास दीक्षा लेगा ? भगवान्ने फरमाया कि हाँ, गौतम ! वह

मेरे पास दीक्षा लेगा। जब श्रमण भगवान् महावीर स्वामी गौतम स्वामीसे इस प्रकार कह ही रहे थे कि इतनेमें कात्यायन गोत्री स्कन्दक परिव्राजक उस प्रदेशमें आया।

इसके बाद कात्यायनगोत्री स्कन्दक परिव्राजकको पास आया हुआ देख कर गौतम स्वामी अपने आसन से उठे और स्कन्दक परिव्राजकके सामने गये। फिर स्कन्दक परिव्राजकसे कहा कि—हे स्कन्दक ! स्वागत है, सुस्वागत है, तुम्हारा आना अच्छा हुआ, तुम्हारा आना भला हुआ। फिर गौतम स्वामी ने कहा कि—हे स्कन्दक ! श्रावस्ती नगरीमें वैशालिक श्रावक पिंगलक निर्ग्रन्थ ने तुमसे पांच प्रश्न पूछे। तुम उनका उत्तर नहीं दे सके। तुम्हारे मनमें शंका कांक्षा आदि उत्पन्न हुए। तुम उन प्रश्नोंके उत्तर पूछनेके लिए यहां भगवान्के पास आये हो। हे स्कन्दक ! क्या यह बात सत्य है ? स्कन्दकने कहा—हां, गौतम ! यह बात सत्य है। परन्तु हे गौतम ! मुझे यह बतलाओ कि—कौन ऐसा ज्ञानी या तपस्वी पुरुष है, जिसने मेरे मनकी गुप्त बात तुमसे कह दी ? और तुम मेरे मनकी गुप्त बात जान गए। तब गौतम स्वामीने कहा कि—स्कन्दक ! धर्माचार्य, धर्मोपदेशक श्रमण भगवान् महावीर स्वामी उत्पन्न ज्ञान दर्शनके धारक हैं, अरिहन्त हैं, जिन हैं, केवली हैं, भूत, भविष्यत् और वर्तमान कालके ज्ञाता हैं, सर्वज्ञ सर्वदर्शी हैं। उन्होंने तुम्हारे मनमें रही हुई गुप्त बात मुझसे कही है। अतः हे स्कन्दक ! मैं तुम्हारे मनकी गुप्त बात जानता हूं।

इसके बाद कात्यायनगोत्री स्कन्दक परिव्राजकने गौतम स्वामीसे इस प्रकार कहा कि—गौतम ! तुम्हारे धर्माचार्य धर्मोपदेशक श्रमण भगवान् महावीर स्वामीके पास चलें, उन्हें वन्दना नमस्कार करें यावत् उनकी पर्युपासना करें ? तब गौतम स्वामी ने कहा कि—हे देवानुप्रिय ! जैसा तुम्हें सुख हो, वैसा करो, किन्तु इस कार्य में विलम्ब मत करो।

इसके अनन्तर गौतम स्वामी स्कन्दक परिव्राजकके साथ जहां श्रमण भगवान् महावीर स्वामी थे वहां जाने लगे। उस समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी व्यावृत्तभोजी (प्रतिदिन भोजन करने वाले) थे। इसलिए उनका शरीर उदार (प्रधान), कल्याणरूप, धन्यरूप, मंगलरूप, बिना अलंकारके ही शोभित, उत्तम लक्षण व्यञ्जन और गुणोंसे युक्त था, और अत्यन्त शोभित हो रहा था। अतः उन्हें देखकर स्कन्दक परिव्राजकको अत्यन्त हर्ष हुआ, संतोष हुआ, आनन्द हुआ। इस प्रकार संतुष्ट, आनन्दित और हर्षित होता हुआ स्कन्दक परिव्राजक श्रमण भगवान् महावीर स्वामीको तीन बार वन्दना नमस्कार कर पर्युपासना करने लगा।

श्रमण भगवान महावीर स्वामीने स्कन्दक परिव्राजकसे कहा कि—हे

स्कन्दक ! श्रावस्ती नगरीमें वैशालिक श्रावक पिंगलक नामके निर्ग्रन्थने तुमसे पांच प्रश्न (लोक सान्त है ? या अनन्त है ? आदि) पूछे। तुम उनका उत्तर नहीं दे सके। अत: उन प्रश्नोंका उत्तर पूछनेके लिए तुम मेरे पास आये हो। हे स्कन्दक ! क्या यह बात सत्य है ? स्कन्दक ने कहा—हां, भगवन् ! यह बात सत्य है।

तब भगवान्‌ने फरमाया कि—हे स्कन्दक ! लोकके विषयमें तुम्हारे मनमें जो यह संकल्प था कि क्या लोक अन्त सहित है ? या अंत रहित है ? इस विषयमें मैंने चार प्रकारका लोक बतलाया है—१ द्रव्यलोक, २ क्षेत्रलोक, ३ काललोक और ४ भावलोक। १ द्रव्यसे लोक एक है, अन्त सहित है। २ क्षेत्रसे लोक असंख्यात कोड़ाकोड़ी योजनका लम्बा चौड़ा है। असंख्य कोड़ाकोड़ी योजनकी परिधि है। अन्त सहित है। ३ कालसे लोक भूतकालमें था, वर्तमान कालमें है और भविष्यत् कालमें रहेगा। ऐसा कोई काल न था, न है और न होगा, जिसमें लोक न हो। लोक था, है, और रहेगा। लोक ध्रुव है, नियत, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित और नित्य है, अन्त रहित है। ४ भाव से लोक अनन्त वर्ण पर्याय रूप है, अनन्त गन्ध, रस, स्पर्श पर्याय रूप है, अनन्त संस्थान पर्यव रूप है, अनन्त गुरुलघु पर्याय रूप है, अनन्त अगुरुलघु पर्याय रूप है, अन्त रहित है। इस प्रकार हे स्कन्दक ! द्रव्यलोक अन्त सहित है, क्षेत्रलोक अन्त सहित है, काललोक अन्त रहित है और भावलोक अन्त रहित है। इस प्रकार लोक अंत सहित भी है और अंत रहित भी है।

हे स्कन्दक ! जीवके विषयमें तुम्हारे मनमें यह विकल्प हुआ था कि जीव सान्त है, या अनन्त है ? स्कन्दक ! मैंने जीवके चार भेद कहे हैं—१ द्रव्य जीव, २ क्षेत्र जीव, ३ काल जीव और ४ भाव जीव। १ द्रव्य से—जीव एक है, अन्त सहित है। २ क्षेत्रसे—जीव असंख्यात प्रदेश वाला है, असंख्यात आकाश प्रदेश अवगाहन किये हैं, अन्त सहित है। ३ कालसे—जीव नित्य है अर्थात् ऐसा कोई समय नहीं था, न है और न होगा कि जब जीव न रहा हो, यावत् जीव नित्य है, अन्त रहित है। ४ भावसे—जीवके अनन्त ज्ञान पर्याय हैं, अनन्त दर्शन पर्याय हैं, अनन्त चारित्र पर्याय हैं, अनन्त अगुरुलघु पर्याय हैं, अन्त रहित है। इस प्रकार द्रव्य-जीव और क्षेत्र-जीव अन्त सहित है तथा काल-जीव और भाव-जीव अन्त रहित है। इसलिए हे स्कन्दक ! जीव अन्त सहित भी है और अन्त रहित भी है।

स्कन्दक ! सिद्धि (सिद्धशिला) के विषयमें तुम्हारे मनमें जो विकल्प था उसका समाधान इस प्रकार है—हे स्कन्दक ! मैंने सिद्धिके चार भेद कहे हैं—द्रव्य-सिद्धि, क्षेत्रसिद्धि, कालसिद्धि और भावसिद्धि। १ द्रव्यसे सिद्धि एक है और अन्त सहित है। २ क्षेत्र से सिद्धि ४५ लाख योजन की लम्बी चौड़ी है।

१४२-३०२४६ योजन झाझेरी परिधि है, यह भी अन्त सहित है। ३ काल से सिद्धि नित्य है, अन्त रहित है। भावसे सिद्धि अनन्त वर्ण पर्यायवाली है, अनन्त गन्ध, रस और स्पर्श पर्याय वाली है। अनन्त गुरुलघु पर्याय रूप है, और अनन्त अगुरुलघु पर्याय रूप है, अन्त रहित है। द्रव्य-सिद्धि और क्षेत्र-सिद्धि अन्त वाली है तथा काल-सिद्धि और भाव-सिद्धि अन्त रहित है। इसलिए स्कन्दक ! सिद्धि अन्त सहित भी है और अन्त रहित भी है।

स्कन्दक ! सिद्ध विषयक शंकाका समाधान इस प्रकार है—हे स्कन्दक ! मैंने सिद्ध के चार भेद कहे हैं—१ द्रव्यसिद्ध, २ क्षेत्रसिद्ध, ३ कालसिद्ध और ४ भावसिद्ध। १ द्रव्यसे—सिद्ध एक है, अन्त सहित है। २ क्षेत्रसे—सिद्ध असंख्यात प्रदेश वाले हैं, असंख्यात आकाश प्रदेश अवगाहन किये हैं, अंत सहित हैं। ३ काल से सिद्ध आदि सहित हैं और अंत रहित हैं। ४ भावसे सिद्ध—अनंत ज्ञान पर्याय रूप हैं, अनंत दर्शन पर्याय रूप हैं, यावत् अनंत अगुरुलघु पर्यायरूप हैं, अंत रहित हैं। अर्थात् द्रव्यसे और क्षेत्रसे सिद्ध अंत वाले हैं तथा कालसे और भावसे सिद्ध अंत रहित हैं। इसलिए स्कंदक ! सिद्ध अंत सहित भी हैं और अंत रहित भी हैं।

स्कन्दक ! तुम्हें इस प्रकारका विचार उत्पन्न हुआ था कि कौनसे मरणसे मरता हुआ जीव संसारको बढ़ाता है और कौनसे मरणसे मरता हुआ जीव संसार को घटाता है। स्कन्दक ! इसका उत्तर यह है कि—मरण दो प्रकार का बतलाया गया है—१ बालमरण और २ पण्डितमरण। इनमें से बालमरण बारह प्रकारका कहा गया है—१ वलन्मरण, २ वसट्टमरण—वशार्त मरण, ३ अन्तःशल्य मरण, ४ तद्भव मरण, ५ गिरि-पतन मरण, ६ तरु-पतन मरण, ७ जल-प्रवेश मरण, ८ ज्वलन-प्रवेश मरण, ९ विष-भक्षण मरण, १० सत्थोवाडण (शस्त्रावपाटन) मरण, ११ वेहानस मरण, १२ गिद्ध-पिट्ठ (गृध्रपृष्ठ) मरण। इन बारह प्रकारके मरणसे मरता हुआ जीव नरकके अनन्त भव बढ़ाता है, वह नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव, इन चार गति रूप अनादि अनन्त संसार रूप कान्तार (वन) में बारम्बार परिभ्रमण करता है। अर्थात् इन बारह प्रकारके बालमरण द्वारा मरता हुआ जीव अपने संसार भ्रमणको बढ़ाता है।

स्कन्दक ! पण्डितमरणके दो भेद हैं—१. पादपोपगमन और २. भक्त-प्रत्याख्यान। पादपोपगमनके दो भेद हैं—निर्हारिम और अनिर्हारिम। यह दोनों प्रकारका पादपोपगमन मरण, नियमा (नियमसे—निश्चित रूपसे) अप्रतिकर्म होता है। भक्तप्रत्याख्यान मरणके भी दो भेद हैं—निर्हारिम और अनिर्हारिम। यह दोनों प्रकारका भक्तप्रत्याख्यान मरण सप्रतिकर्म होता है। हे स्कन्दक ! इन दोनों प्रकारके पण्डितमरणोंसे मरता हुआ जीव नरकादिके अनन्त भवोंको

प्राप्त नहीं करता यावत् संसार रूपी अटवीको उल्लंघन कर जाता है। इन दोनों प्रकारके पण्डितमरणसे मरते हुए जीवका संसार घटता है ॥६०॥

भगवान्के उपर्युक्त वचनोंको सुनकर स्कन्दक परिव्राजकको बोध हो गया। उसने श्रमण भगवान् महावीर स्वामीको वन्दना नमस्कार करके कहा कि —'भगवन्! मैं आपके पास केवलि-प्ररूपित धर्म सुनना चाहता हूं।' भगवान् ने कहा कि—'देवानुप्रिय! तुम्हें सुख हो वैसा करो, किन्तु धर्म कार्य में विलम्ब मत करो।' इसके पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर स्वामीने कात्यायन गोत्री स्कन्दक परिव्राजकको और उस बहुत बड़ी परिषद्को धर्मकथा कही। (यहाँ धर्मकथा का वर्णन करना चाहिए) श्रमण भगवान् महावीर स्वामी द्वारा फरमाई हुई धर्मकथाको सुनकर एवं हृदयमें धारण करके स्कन्दक परिव्राजक को बड़ा हर्ष—सन्तोष हुआ एवं उसका हृदय हर्षसे विकसित हो गया। तदनन्तर खड़े होकर और भगवान् की तीन बार प्रदक्षिणा करके स्कन्दक परिव्राजकने इस प्रकार कहा कि—"भगवन्! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचनों पर श्रद्धा, प्रतीति और रुचि करता हूं एवं निर्ग्रन्थ प्रवचनोंको मैं स्वीकार करता हूं। भगवन्! ये निर्ग्रन्थ प्रवचन इसी प्रकार हैं, सत्य हैं, सन्देह रहित हैं, इष्ट हैं, प्रतीष्ट हैं, इष्टप्रतीष्ट हैं, भगवन्! जैसा आप फरमाते हैं वैसा ही है।" ऐसा कह कर स्कन्दक परिव्राजकने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना नमस्कार किया, वन्दना नमस्कार करके उत्तर-पूर्व दिशा—भाग (ईशान कोण) में जाकर त्रिदण्ड कुण्डिका यावत् गेरुए वस्त्र आदि परिव्राजकके भण्डोपकरणों को एकान्त में छोड़ दिया। फिर जहां श्रमण भगवान् महावीर स्वामी विराजते थे वहां आकर भगवान्को तीन बार प्रदक्षिणा करके इस प्रकार बोले—

भगवन्! जरा (बुढ़ापा) और मरण रूपी अग्निसे यह लोक आदीप्त प्रदीप्त है (जल रहा है)। जैसे किसी गृहस्थके घरमें आग लग गई हो, तो वह उसमें से बहुमूल्य और अल्प भारके सामानको सबसे पहले बाहर निकालकर एकान्त में जाता है और यह सोचता है कि अग्निसे बचाकर बाहर निकाला हुआ यह सामान भविष्य में आगे पीछे मेरे लिए हितरूप, सुखरूप, कुशलरूप, और कल्याणरूप होगा। इसी तरह भगवन्! मेरी आत्मा भी एक भाण्ड (वर्तन) रूप है। यह मुझे इष्ट, कान्त, प्रिय, सुन्दर, मनोज्ञ, विश्वस्त, सम्मत, अनुमत, बहुमत और रत्नोंके करंडिये (पिटारे) समान है, इसीलिए ठण्ड, गर्मी, भूख, प्यास, चोर, सिंह, सर्प, डांस, मच्छर, वात, पित्त, कफ और सन्निपात आदि अनेक प्रकारके रोग और आतङ्क (तत्काल प्राण हरण करने वाले रोग) एवं परीषह उपसर्गोंसे मैं इसकी बराबर रक्षा करता हूं। रक्षित किया हुआ यह आत्मा मुझे परलोकमें हित-रूप, सुखरूप, कुशलरूप एवं परम्परासे कल्याणरूप होगा। इसलिए भगवन्! मैं

आपके पास प्रव्रज्या ग्रहण करना चाहता हूं। आप स्वयं मुझे प्रव्रजित करें, मुण्डित करें, आप स्वयं मुझे प्रतिलेखनादि क्रियाएँ सिखायें, सूत्र और अर्थोंको पढ़ायें। भगवन् ! मैं चाहता हूं कि—आप मुझे ज्ञानादि आचार, गोचर (भिक्षाटन), विनय, विनय का फल, चरण करण अर्थात् चारित्र (व्रतादि) और पिण्ड विशुद्धि संयमयात्रा और संयमयात्राके निर्वाहार्थ आहारादि ग्रहण रूप धर्म कहें।

इसके अनन्तर श्रमण भगवान् महावीर स्वामीने स्वयमेव कात्यायनगोत्री स्कन्दक परिव्राजकको प्रव्रजित किया यावत् स्वयमेव धर्मकी शिक्षा दी कि—देवानुप्रिय ! इस तरह से चलना चाहिए, इस तरह से खड़ा रहना चाहिए, इस तरह बैठना चाहिए, इस तरह सोना चाहिए, इस तरह खाना चाहिए, इस तरह बोलना चाहिए। इस तरह सावधानतापूर्वक प्राण, भूत, जीव, सत्त्व के विषयमें संयमपूर्वक वर्ताव करना चाहिए। इस विषयमें थोड़ा सा भी प्रमाद नहीं करना चाहिए।

कात्यायनगोत्री स्कन्दक मुनिने श्रमण भगवान् महावीर स्वामीके इस धार्मिक उपदेशको अच्छी तरहसे स्वीकार किया और भगवान् की आज्ञा के अनुसार ही स्कन्दक मुनि चलना, खड़े रहना, बैठना, सोना, खाना, बोलना आदि क्रिया करने लगे तथा प्राण, भूत, जीव, सत्त्व के प्रति दयापूर्वक वर्ताव करने लगे और इन विषयोंमें सर्वथा अप्रमत्त रहने लगे।

अब वे कात्यायनगोत्री स्कन्दजी अनगार बन गये। वे ईर्यासमिति, भाषासमिति, एषणासमिति, आदानभाण्डमात्रनिक्षेपणासमिति और उच्चारप्रस्रवणखेलजल्लसिंघाण-परिस्थापनिकासमिति, एवं मनःसमिति, वचनसमिति, कायासमिति, इन आठों समितियोंका सावधानतापूर्वक पालन करने लगे। मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति से गुप्त रहने लगे अर्थात् मन, वचन, काया को वशमें रखने लगे। वे सबको वशमें रखने वाले, इन्द्रियोंको वशमें रखने वाले, गुप्तब्रह्मचारी, त्यागी, लज्जावान् (संयमवान्-सरल), धन्य (धर्म-धनवान्), क्षमावान्, जितेन्द्रिय, व्रतोंके शोधक, किसी प्रकारका निदान (नियाणा) न करने वाले, आकांक्षा रहित, उतावल रहित, संयमसे बाहर चित्तको न रखने वाले, श्रेष्ठ साधु व्रतोंमें लीन और दान्त ऐसे स्कन्दक मुनि, इन निर्ग्रन्थ प्रवचनोंको आगे (सामने) रख कर विचरण करने लगे अर्थात् वे इन निर्ग्रन्थ प्रवचनोंको सन्मुख रखते हुए इन्हींके अनुसार सब क्रियाएँ करने लगे ॥९१॥

इसके पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर स्वामी कृतांगला नगरीके छत्रपलाशक उद्यानसे निकले और बाहर जनपद (देश) में विचरण करने लगे। इसके अनन्तर स्कन्दक अनगारने श्रमण भगवान् महावीर स्वामीके तथारूप स्थविरोंके पास सामायिकादि ग्यारह अंगोंको सीखा, सीख कर भगवान्के पास

आकर वन्दना नमस्कार करके इस प्रकार बोले कि—यदि आपकी आज्ञा हो, तो मैं मासिकी भिक्षुप्रतिमाको धारण करना चाहता हूं। भगवान् ने फरमाया कि—'देवानुप्रिय ! जिस तरह तुम्हें सुख हो वैसा करो, किन्तु विलम्ब मत करो।' भगवान्‌की आज्ञा प्राप्त कर स्कन्दक मुनि बड़े हर्षित हुए यावत् भगवान्‌को वन्दना नमस्कार करके मासिकी भिक्षुप्रतिमा अंगीकार की। इसके पश्चात् स्कन्दक मुनिने मासिकी भिक्षुप्रतिमाको सूत्रके अनुसार, आचारके अनुसार, मार्ग के अनुसार, यथातत्त्व और अच्छी तरह कायासे स्पर्श किया, पालन किया, शोभित किया, समाप्त किया, पूर्ण किया, कीर्तन किया, अनुपालन किया, आज्ञापूर्वक आराधन किया, यावत् कायासे सम्यक् प्रकारसे स्पर्श करके यावत् आराधन करके श्रमण भगवान् महावीर स्वामीके पास आये और वन्दना नमस्कार करके इस प्रकार बोले कि—'भगवन् ! आपकी आज्ञा हो, तो मैं द्विमासिकी भिक्षुप्रतिमा अंगीकार करना चाहता हूं।' भगवान्‌ने फरमाया कि—'देवानुप्रिय ! जैसे सुख हो वैसे करो, किन्तु विलम्ब मत करो।' फिर स्कन्दक मुनिने द्विमासिकी भिक्षुप्रतिमाको अंगीकार कर यावत् पूर्ण किया। इसी तरह त्रिमासिकी, चतुर्मासिकी, पंचमासिकी, छहमासिकी, सप्तमासिकी, प्रथम सात दिन रात, द्वितीय सात दिन रात, तृतीय सात दिन रात, अहोरात्रिकी, एकरात्रिकी—इस प्रकार बारह भिक्षुप्रतिमाओंका यथाविधि पालन किया। इनका यथाविधि पालन करके श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास आकर वन्दना नमस्कार करके इस प्रकार बोले कि—भगवन् ! आपकी आज्ञा हो, तो मैं 'गुणरत्नसंवत्सर' नामक तप करना चाहता हूं। भगवान् ने फरमाया कि—देवानुप्रिय ! जैसे तुम्हें सुख हो वैसे करो, किन्तु विलम्ब मत करो।

इसके बाद स्कन्दक अनगार भगवान्‌की आज्ञा लेकर यावत् उन्हें वन्दना नमस्कार करके गुणरत्न संवत्सर तप करने लगे। गुणरत्नसंवत्सर तपकी विधि इस प्रकार है—पहले महीने में निरन्तर उपवास करना, दिन के समय उत्कटुक आसनसे बैठ कर सूर्यके सामने मुख करके आतापना भूमिमें सूर्यकी आतापना लेना और रात्रि के समय वीरासनसे बैठकर अप्रावृत (वस्त्र रहित) होकर शीत सहन करना। इसी तरह दूसरे मास में निरन्तर बेले-बेले पारणा करना, दिनमें उत्कटुक आसनसे बैठकर सूर्यके सामने मुख करके आतापना (भूमिमें सूर्य की आतापना) लेना, रात्रि में अप्रावृत होकर वीरासनसे बैठकर शीत सहन करना। इसी प्रकार तीसरे मासमें उपर्युक्त विधिके अनुसार निरन्तर तेले तेले पारणा करना। इसी विधिके अनुसार चौथे मास में निरन्तर चौले चौले (चार चार उपवाससे) पारणा करना। पांचवें मास में पचौले पचौले (पांच पांच उपवाससे) पारणा करना। छठे मासमें निरन्तर छह-छह उपवास करना। सातवें

मासमें निरन्तर सात-सात उपवास करना। आठवें मासमें निरन्तर आठ-आठ उपवास करना। नौवें मास में निरन्तर नौ-नौ उपवास करना। दसवें मासमें निरन्तर दस-दस उपवास करना। ग्यारहवें मासमें निरन्तर ग्यारह-ग्यारह उपवास करना। बारहवें मासमें निरन्तर बारह-बारह उपवास करना। तेरहवें मासमें निरन्तर तेरह-तेरह उपवास करना। चौदहवें मासमें निरन्तर चौदह-चौदह उपवास करना। पन्द्रहवें मासमें निरन्तर पन्द्रह-पन्द्रह उपवास करना और सोलहवें मासमें निरन्तर सोलह सोलह उपवास करना। इन सभीमें दिनमें उत्कटुक आसन से बैठकर सूर्य के सामने मुंह करके आतापना भूमिमें आतापना लेना, रात्रिके समय अप्रावृत (वस्त्र रहित) होकर वीरासनसे बैठकर शीत सहन करना।

स्कन्दक मुनिनें उपर्युक्त विधिके अनुसार गुणरत्न-संवत्सर नामक तपकी सूत्रानुसार कल्पानुसार यावत् आराधना की। इसके अनन्तर श्रमण भगवान् महावीर स्वामीको वन्दना नमस्कार किया और फिर अनेक उपवास, बेला, तेला, चौला, पचौला, मासखमण, अर्द्ध मासखमण आदि विविध प्रकारके तपसे आत्मा को भावित करते हुए विचरनें लगे।

इसके पश्चात् वे स्कन्दक अनगार पूर्वोक्त प्रकारके उदार, विपुल, प्रदत्त, प्रगृहीत, कल्याणरूप, धन्यरूप, मंगलरूप, शोभायुक्त, उत्तम उदग्र-उत्तरोत्तर वृद्धियुक्त, उदात्त-उज्जवल, सुन्दर, उदार और महान् प्रभाववाले तपसे शुष्क हो गये, रूक्ष हो गये, मांस रहित हो गये, उनके शरीर की हड्डियाँ चमड़े से ढंकी हुई रह गई। चलते समय हड्डियाँ खड़खड़ करने लगीं। वे कृश—दुबले हो गये। उनको नाड़ियां सामनें दिखाई देनें लगीं। अब वे केवल अपनें आत्मबल से ही गमन करते थे, खड़े रहते थे, तथा वे इस प्रकारके दुर्बल हो गये कि भाषा बोल कर, भाषा बोलते समय और भाषा बोलनें के पहले, 'मैं भाषा बोलूंगा' ऐसा विचार करनें मात्र से वे ग्लानिको प्राप्त होते थे, उन्हें कष्ट होता था। जैसे सूखी लकड़ियोंसे भरी हुई गाड़ी, पत्तोंसे भरी हुई गाड़ी, पत्ते, तिल और सूखे सामानसे भरी हुई गाड़ी, एरण्डकी लकड़ियोंसे भरी हुई गाड़ी, कोयलेसे भरी हुई गाड़ी, ये सब गाड़ियाँ धूपमें अच्छी तरह सुखाकर जब चलती हैं, तो खड़ खड़ आवाज करती हुई चलती हैं और आवाज करती हुई खड़ी रहती हैं। इसी प्रकार जब स्कन्दक अनगार चलते, तो उनकी हड्डियां खड़ खड़ आवाज करतीं और खड़े रहते हुए भी खड़ खड़ आवाज करतीं। यद्यपि वे शरीरसे दुर्बल हो गये थे, तथापि वे तपसे पुष्ट थे। उनका मांस और खून क्षीण हो (सूख) गये थे। राखके ढेरमें दबी हुई अग्निकी तरह वे तप द्वारा, तेज द्वारा और तप तेजकी शोभा द्वारा अतीव शोभित हो रहे थे ॥६२॥

उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी राजगृह नगरमें पधारे, समवसरणकी रचना हुई यावत् जनता भगवान्का धर्मोपदेश सुनकर वापिस चली गई। इसके पश्चात् किसी एक दिन रात्रिके पिछले पहरमें धर्म जागरणा जागते हुए स्कन्दक अनगारके मनमें ऐसा विचार-अध्यवसाय पैदा हुआ कि—मैं पूर्वोक्त प्रकारके उदार तप द्वारा शुष्क, रूक्ष एवं कृश हो गया हूं। मेरा शारीरिक बल क्षीण हो गया है, केवल मैं आत्मबलसे चलता हूं और खड़ा रहता हूं। बोलनेके बाद, बोलते हुए और बोलनेके पूर्व भी मुझे ग्लानि–खेद होता है यावत् पूर्वोक्त गाड़ियोंकी भांति ही चलते और खड़े रहते हुए मेरी हड्डियोंसे खड़-खड़ आवाज होती है। अतः जब तक मुझमें उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषकार पराक्रम है और जब तक मेरे धर्माचार्य धर्मोपदेशक तीर्थंकर श्रमण भगवान महावीर स्वामी गन्धहस्तीकी तरह विचरते हैं, तब तक मेरे लिए यह श्रेय–कल्याणकारी है कि इस रात्रिके व्यतीत हो जाने पर कल प्रातःकाल कमलोंको विकसित करने वाले, रक्त अशोकके समान प्रकाशयुक्त केसूड़ाके फूल, तोतेकी चोंच, चिरमठीके अर्द्ध भाग जैसा लाल, कमलोंके वनोंको विकसित करने वाले, हजार किरणोंको धारण करने वाले, तेजसे जाज्वल्यमान ऐसे सूर्यके उदय हो जाने पर मैं श्रमण भगवान् महावीर स्वामीके पास जाकर उनको वन्दना नमस्कार करके पर्युपासना करूँगा और भगवान्की आज्ञा लेकर स्वयमेव पांच महाव्रतोंको आरोपण करके, साधु साध्वियोंको खमा कर तथारूप कडाई (कृतादि–कृतयोगी अर्थात् सेवा करनेमें समर्थ) स्थविरों के साथ विपुलगिरि (विपुल पर्वत) पर धीरे धीरे चढ़ कर मेघसमूहके समान वर्ण वाली (काली) देवोंके उतरनेके स्थान रूप पृथ्वी-शिलापट्टकी प्रतिलेखना करके, उस पर डाभ का संथारा बिछा कर, अपनी आत्माको संलेखना झोसणासे युक्त करके, आहार पानीका सर्वथा त्याग करके, पादपोपगमन (कटी हुई वृक्षकी टहनी के समान स्थिर रहना) संथारा करके, मृत्युकी आकांक्षा न करते हुए स्थिर रहना मेरे लिए श्रेष्ठ है। इस प्रकार विचार करके प्रातःकाल होने पर यावत् सूर्योदय होने पर स्कन्दक अनगार श्रमण भगवान् महावीर स्वामीकी सेवामें आकर उन्हें वन्दना नमस्कार करके यावत् पर्युपासना करने लगे।

इसके पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर स्वामीने स्कन्दक मुनिसे इस प्रकार कहा कि—हे स्कन्दक! रात्रिके पिछले पहरमें धर्म जागरणा करते हुए तुम्हें ऐसा विचार उत्पन्न हुआ कि इस उदार तपसे मेरा शरीर अब कृश हो गया है यावत् अब मैं संलेखना संथारा करके मृत्युकी वांछा न करते हुए स्थिर रहूं। ऐसा विचार कर प्रातःकाल सूर्योदय होने पर तुम मेरे पास आये हो। स्कन्दक! क्या यह बात सत्य है? स्कन्दक मुनिने कहा कि—भगवन्! आप फरमाते हैं वह बात

सत्य है। तब भगवान्ने फरमाया—देवानुप्रिय ! जिस तरह तुम्हें सुख हो वैसा करो, किन्तु विलम्ब मत करो ॥६३॥

भगवान्की आज्ञा प्राप्त हो जाने पर स्कन्दक मुनिको बड़ा हर्ष एवं संतोष हुआ। फिर खड़े होकर श्रमण भगवान् महावीर स्वामीको तीन बार प्रदक्षिणा और वन्दना नमस्कार करके स्वयमेव पांच महाव्रतोंका आरोपण किया। फिर साधु साध्वियोंको खमा कर तथारूप योग्य कडाई स्थविरोंके साथ धीरे धीरे विपुल पर्वत पर चढ़े। फिर मेघके समूह सरीखे प्रकाश वाली (काली) और देवोंके आगमनके स्थानरूप पृथ्वीशिलापट्टकी प्रतिलेखना करके एवं उच्चार-पासवण भूमि (बड़ीनीत लघुनीतकी भूमि) की प्रतिलेखना करके पृथ्वीशिलापट्ट पर डाभका संथारा बिछा कर, पूर्वदिशाकी ओर मुख करके, पर्यंकासनसे बैठ कर, दसों नख सहित दोनों हाथोंको शिर पर रख कर (दोनों हाथ जोड़ कर) इस प्रकार बोले—अरिहन्त भगवान् यावत् जो मोक्षको प्राप्त हो चुके हैं, उन्हें नमस्कार हो, तथा अविचल शाश्वत सिद्ध-स्थानको प्राप्त करनेकी इच्छा वाले श्रमण भगवान् महावीर स्वामीको नमस्कार हो। वहां रहे हुए श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को यहां रहा हुआ मैं वन्दना करता हूं। वहां रहे हुए···यहां पर रहे हुए मुझे देखें। ऐसा कह कर भगवान्को वन्दना नमस्कार किया। वन्दना नमस्कार करके इस प्रकार बोले—मैंने पहले श्रमण भगवान् महावीर स्वामीके पास यावज्जीवनके लिए सर्व प्राणातिपातका त्याग किया था, यावत् मिथ्यादर्शनशल्य तक अठारहों पापोंका त्याग किया था। इस समय भी श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास यावज्जीवन के लिए सर्व-प्राणातिपातसे लेकर मिथ्यादर्शनशल्य तक अठारहों पापोंका त्याग करता हूं, और यावज्जीवनके लिए अशन, पान, खादिम और स्वादिम, इन चारों प्रकारके आहारका त्याग करता हूं, तथा यह मेरा शरीर जो कि मुझे इष्ट,कान्त, प्रिय है, जिसकी मैंने बाधा—पीड़ा, रोग परीषह उपसर्ग आदिसे रक्षा की है, ऐसे शरीरको भी चरम (अन्तिम) श्वासोच्छ्वास तक वोसिराता (त्यागता) हूं। ऐसे कह कर संलेखना संथारा करके, भक्त पानका सर्वथा त्याग करके, पादपोपगमन संथारा करके, काल (मृत्यु)की आकांक्षा न करते हुए स्थिर रहे।

इसके पश्चात् स्कन्दक अनगार, जिन्होंने कि श्रमण भगवान् महावीर स्वामीके तथारूप श्रमणोंके पास ग्यारह अंगोंका ज्ञान पढ़ा था, वे बराबर बारह वर्ष तक श्रमण पर्यायका पालन करके, एक मासकी संलेखनासे अपनी आत्माको संलिखित (सेवित -युक्त) करके, साठ भक्त अनशन करके, आलोचना और प्रतिक्रमण करके, समाधिको प्राप्त करके वे कालधर्मको प्राप्त हो गये ॥६४॥

इसके पश्चात् उन स्थविर मुनियोंने स्कन्दक मुनिको कालधर्म प्राप्त

हुआ जानकर उनके परिनिर्वाण सम्बन्धी (मृत्यु सम्वन्धी) कायोत्सर्ग किया। फिर उनके वस्त्र और पात्रोंको लेकर वे विपुल पर्वतसे धीरे-धीरे नीचे उतरे, उतर कर जहां श्रमण भगवान् महावीर स्वामी विराजे हुए थे, वहां आये। भगवान् को वन्दना नमस्कार करके उन स्थविर मुनियोंने इस प्रकार कहा— भगवन् ! आपके शिष्य स्कन्दक अनगार जो कि प्रकृति के भद्र, विनयी, शान्त, अल्प क्रोध, मान, माया, लोभ वाले, कोमलता, और नम्रताके गुणोंसे युक्त, इन्द्रियोंको वशमें रखने वाले, भद्र और विनीत थे। वे आपकी आज्ञा लेकर स्वयमेव पांच महाव्रतोंका आरोपण करके, साधु-साध्वियोंको खमा कर हमारे साथ विपुल पर्वत पर गये थे यावत् वे संथारा करके कालधर्मको प्राप्त हो गये हैं। ये उनके उपकरण (वस्त्र, पात्र) हैं।

इसके वाद गौतम स्वामीने श्रमण भगवान् महावीर स्वामीको वन्दना नमस्कार करके इस प्रकार पूछा कि—भगवन् ! आपके शिष्य स्कन्दक अनगार कालके अवसर पर काल करके कहां गये और कहां उत्पन्न हुए हैं ? गौतमादि को सम्बोधित करके श्रमण भगवान महावीर स्वामीने फरमाया कि—गौतम ! मेरा शिष्य स्कन्दक अनगार, मेरी अनुमति लेकर, स्वयमेव पांच महाव्रतोंका आरोपण करके यावत् संलेखना संथारा करके, समाधिको प्राप्त होकर कालके समयमें काल करके अच्युतकल्पमें देव रूपसे उत्पन्न हुआ है। वहां कितनेक देवों की स्थिति वाइस सागरोपमकी है। तदनुसार स्कन्दक देवकी स्थिति भी वाइस सागरोपमकी है।

इसके बाद गौतम स्वामीने पूछा—हे भगवन् ! वहांकी आयु, भव और स्थितिका क्षय होने पर स्कन्दक देव कहां जाएँगे और कहां उत्पन्न होंगे ? भगवान्ने फरमाया—गौतम ! स्कन्दक देव वहांकी आयु, भव और स्थितिका क्षय होने पर महाविदेह क्षेत्रमें जन्म लेकर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त होंगे, परिनिर्वाणको प्राप्त करेंगे और सभी दुःखोंका अन्त करेंगे ॥६५॥

॥ स्कन्दक चरित्र समाप्त ॥

॥ दूसरे शतकका प्रथम उद्देशक समाप्त ॥

———

शतक २ उद्देशक २

समुद्घात वर्णन

भगवन् ! समुद्‌घात कितने कहे गए हैं ? गौतम ! समुद्‌घात सात कहे गए हैं। यथा—वेदना समुद्‌घात, कषाय समुद्‌घात, मारणान्तिक समुद्‌घात, वैक्रिय समुद्‌घात, तैजस् समुद्‌घात, आहारक समुद्‌घात, केवली समुद्‌घात।

यहां पर प्रज्ञापना सूत्रका छत्तीसवां समुद्घात पद कहना चाहिए, किन्तु उसमें आये हुए छद्मस्थ समुद्घातका वर्णन यहां नहीं कहना चाहिए। इस तरह वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिए। कषाय समुद्घात और अल्पबहुत्व कहना चाहिए। भगवन्! क्या भावितात्मा अनगारके केवली समुद्घात यावत् शाश्वत अनागत-काल पर्यन्त रहती है? गोतम! यहां पर भी ऊपर कहे अनुसार समुद्घात पद जान लेना चाहिए ॥६६॥

॥ दूसरे शतकका दूसरा उद्देशक समाप्त ॥

शतक २ उद्देशक ३

पृथ्वियाँ

हे भगवन्! पृथ्वियां कितनी कही गई हैं? हे गौतम! जीवाभिगम सूत्रमें जो नैरयिकोंका दूसरा उद्देशक कहा है, उसमे पृथ्वियों सम्बन्धी जो वर्णन आया है, वह यहां जान लेना चाहिए। वहां संस्थान, मोटाई आदिका जो वर्णन है, वह सारा यहां कहना चाहिए। हे भगवन्! क्या सब जीव उत्पन्नपूर्व हैं अर्थात् सब जीव पहले नरकोंमें उत्पन्न हुए हैं? हां गौतम! सब जीव रत्नप्रभा आदि नरकोंमें अनेक वार अथवा अनन्तवार पहले उत्पन्न हो चुके हैं। यहां जीवाभिगम सूत्रका पृथ्वी उद्देशक कहना चाहिए ॥६७॥

॥ दूसरे शतकका तीसरा (पृथ्वी) उद्देशक समाप्त ॥

शतक २ उद्देशक ४

इन्द्रियाँ

भगवन्! इन्द्रियां कितनी कही गई हैं? गौतम! इन्द्रियां पांच कही गई हैं। यहां पर प्रज्ञापना सूत्रका इन्द्रिय सम्बन्धी पन्द्रहवें पदका प्रथम उद्देशक कहना चाहिए। उसमें इन्द्रियोंका संस्थान, बाहल्य (मोटाई), चौड़ाई यावत् अलोक तकका विवेचन वाला सम्पूर्ण इन्द्रिय उद्देशक कहना चाहिए ॥६८॥

दूसरे शतकका चौथा (इन्द्रिय) उद्देशक समाप्त ॥

शतक २ उद्देशक ५

भगवन्! अन्यतीर्थिक इस प्रकार कहते हैं, भाषण करते हैं, बतलाते हैं, प्ररूपणा करते हैं कि कोई भी निर्ग्रन्थ (मुनि) मर कर देव होता है। वह देव दूसरे देवोंके साथ और दूसरे देवोंकी देवियोंके साथ परिचारणा (विषयसेवन) नहीं करता है। इसी प्रकार वह अपनी देवियोंको भी वश करके उनके साथ भी

परिचारणा नहीं करता, किन्तु वह देव वैक्रियसे अपने ही दो रूप वनाता है, जिसमें एक रूप देवका बनाता है और एक रूप देवी का बनाता है। इस प्रकार दो रूप बना कर वह देव उस वैक्रिय-कृत (कृत्रिम) देवीके साथ परिचारणा करता है। इस प्रकार एक जीव एक ही समय में स्त्रीवेद और पुरुषवेद, इन दो वेदोंका अनुभव करता है। हे भगवन्! क्या यह अन्यतीर्थिकों का कथन सत्य है? हे गौतम! अन्यतीर्थिकोंका उपर्युक्त कथन (कि एक ही जीव एक समयमें दो वेदोंका अनुभव करता है) मिथ्या है।

गौतम! मैं इस प्रकार कहता हूं, भाषण करता हूं, बतलाता हूं, प्ररूपणा करता हूं कि कोई एक निर्ग्रन्थ जो मरकर किसी देवलोकमें जो कि महाऋद्धि युक्त यावत् महाप्रभाव युक्त, दूर जानेकी शक्ति युक्त और लम्बी आयुष्य युक्त होते हैं, उनमें से किसी एक देवलोकमें महाऋद्धि युक्त, दसों दिशाओं को प्रकाशित करने वाला, अतिरूपसम्पन्न, देव होता है। वह देव दूसरे देवोंके साथमें और दूसरे देवोंकी देवियोंके साथमें, उनको अपने वशमें करके परिचारणा (विषय सेवन) करता है, और इसी प्रकार अपनी देवियों को वशमें करके उनके साथ परिचारणा करता है। परन्तु स्वयं दो रूप वनाकर परिचारणा नहीं करता, क्योंकि एक जीव एक समयमें स्त्रीवेद और पुरुषवेद, इन दोनों वेदोंमें से किसी एक वेदका ही अनुभव करता है। जिस समय स्त्रीवेदको अनुभव करता है उस समय पुरुषवेदको नहीं वेदता और जिस समय पुरुषवेदको वेदता है उस समय स्त्रीवेद को नहीं वेदता। क्योंकि स्त्रीवेदके उदयसे पुरुषवेदको नहीं वेदता और पुरुष-वेदके उदयसे स्त्रीवेदको नहीं वेदता। इसलिए एक जीव एक समय में स्त्रीवेद और पुरुषवेद इन दोनों वेदोंमें से किसी एक ही वेद को वेदता है। जब स्त्रीवेदका उदय होता है तब स्त्री पुरुष की इच्छा करती है, और जब पुरुषवेद का उदय होता है तव पुरुष स्त्री की इच्छा करता है, अर्थात् अपने अपने वेदके उदयसे पुरुष और स्त्री परस्पर एक दूसरेकी इच्छा करते हैं। स्त्री पुरुषकी इच्छा करती है और पुरुष स्त्री की इच्छा करता है ॥९९॥

भगवन्! उदकगर्भ (पानी का गर्भ) कितने समय तक उदकगर्भरूपमें रहता है? गौतम! जन्धय एक समय और उत्कृष्ट छह मास तक उदकगर्भ उदकगर्भरूपमें रहता है। भगवन्! तिर्यग्योनि-गर्भ कितने समय तक 'तिर्यग्योनि-गर्भ' रूप में रहता है? गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट आठ वर्ष तक तिर्यग्-योनि-गर्भ तिर्यग्योनिगर्भरूप में रहता है। भगवन्! मानुषी-गर्भ कितने समय तक मानुषी-गर्भरूप में रहता है? गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट बारह वर्ष तक मानुषीगर्भ मानुषीगर्भरूपमें रहता है ॥१००॥

भगवन्! कायभवस्थ कितने समय तक कायभवस्थ रूप में रहता है?

गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट चौवीस वर्ष तक कायभवस्थ कायभवस्थ रूप में रहता है ॥१०१॥

भगवन् ! मानुषी और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चिनी सम्बन्धी योनिगत बीज (वीर्य) कितने समय तक योनिभूत रूपमें रहता है ? गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट बारह मुहूर्त तक 'योनिभूत' रूप में रहता है ॥१०२॥

भगवन् ! एक जीव एक भवमें कितने जीवोंका पुत्र हो सकता है ? गौतम ! एक जीव एकभवमें जघन्य एक जीव का, या दो जीव का, अथवा तीन जीवका और उत्कृष्ट शतपृथक्त्व (दो सौ से लेकर नौ-सौ तक) जीवोंका पुत्र हो सकता है ॥१०३॥

भगवन् ! एक भवमें एक जीवके कितने पुत्र हो सकते हैं ? गौतम ! जघन्य एक या दो अथवा तीन और उत्कृष्ट लक्ष पृथक्त्व (दो लाखसे लेकर नौ लाख तक) पुत्र हो सकते हैं। भगवन् ! इसका क्या कारण है ? गौतम ! स्त्री और पुरुष की कर्मकृत (कामोत्तेजित) योनिमें 'मैथुनवृत्तिक' नामका संयोग उत्पन्न होता है। जिससे पुरुषका वीर्य और स्त्रीका रक्त, इन दोनोंका सम्बन्ध होता है। उसमें जघन्य एक, या दो या तीन और उत्कृष्ट लक्ष पृथक्त्व (दो लाख से लेकर नौ लाख तक) जीव पुत्र रूपमें उत्पन्न होते हैं इसलिए···॥१०४॥

भगवन् ! मैथुन सेवन करते हुए जीवके किस प्रकार का असंयम होता है ? गौतम ! जिस प्रकार कोई पुरुष, तपी हुई सलाई डालकर, रुई की नली या बूर नामक वनस्पतिकी नलीको जला डालता है, उस तरहका असंयम मैथुन सेवन करते हुए जीवके होता है। भगवन् ! यह इसी प्रकार है, यह इसी प्रकार है, ऐसा कह कर यावत् गौतमस्वामी विचरते हैं ॥१०५॥

इसके अनन्तर किसी समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी राजगृह नगरके गुणशीलक वगीचेसे निकलकर बाहर जनपदमें विचरने लगे। उस काल उस समय में तुंगिया (तुंगिका)× नाम की नगरी थी। उसका वर्णन करना चाहिए। तुंगिया नगरीके बाहर उत्तर और पूर्व दिशामें अर्थात् ईशानकोणमें पुष्पवती नामका वगीचा था। उसका वर्णन करना चाहिए। उस तुंगिया नगरीमें बहुतसे श्रमणोपासक (श्रावक) रहते थे। वे श्रमणोपासक आढ्य (विशाल सम्पत्ति वाले) और दीप्त (देदीप्यमान) थे। उनके रहनेके घर विशाल और बहुत ऊँचे थे। उनके पास शयन, आसन, गाड़ी, बैल आदि बहुत थे। उनके पास धन, सोना चांदी आदि बहुत था। वे आयोग प्रयोग द्वारा अर्थात्

×बनारस (काशी से) ८० कोस दूर पाटलीपुत्र (पटना) शहर है। वहां से दस कोस दूर तुंगिया नाम की नगरी है। (श्री सम्मेतशिखर रास)

व्यवसाय द्वारा दुगुना तिगुना धनोपार्जन करने की कलामें तथा अन्य कलाओंमें कुशल थे। उनके घर अनेक जन भोजन करते थे,इसलिए उनके घर बहुत खान-पान तैयार होता था। उनके घर अनेक दास दासी तथा गाय, भैंस, भेड़, बकरियां आदि थे। वे बहुत जनके अपरिभूत थे अर्थात् कोई भी उनका पराभव नहीं कर सकता था।

वे जीव और अजीवके स्वरूपको भली प्रकारसे जानते थे। पुण्य पापके विषयमें उनका पूरा ध्यान था। आस्रव, संवर, निर्जरा, क्रिया, अधिकरण, बन्ध और मोक्षके विषयमें वे कुशल थे अर्थात् इनमें कौन हेय है और कौन उपादेय है, इस बात को वे भली प्रकार जानते थे। वे किसी भी कार्य में दूसरों की सहायता की आशा नहीं रखते थे। वे निर्ग्रन्थ प्रवचनोंमें ऐसे दृढ़ थे कि देव, असुर, नाग, ज्योतिष्क, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किम्पुरुष, गरुड़ (सुवर्णकुमार), गन्धर्व, महोरग आदि कोई भी देव, दानव उन्हें निर्ग्रन्थ-प्रवचन से डिगाने में समर्थ नहीं थे। उन्हें निर्ग्रन्थ-प्रवचनों में किसी भी प्रकार की शंका, कांक्षा, विचिकित्सा नहीं थी। उन्होंने निर्ग्रन्थ प्रवचनोंका अर्थ भली प्रकार जाना था। शास्त्रों के अर्थ को भली प्रकार ग्रहण किया था। शास्त्रोंके अर्थोंमें जहाँ सन्देह था उनको पूछ कर अच्छी तरह निर्णय किया था। उन्होंने शास्त्रोंके अर्थोंको और उनके रहस्योंको निर्णयपूर्वक जाना था। निर्ग्रन्थ प्रवचनों पर उनका प्रेम (हड्डी और हड्डी की मज्जा) रग रगमें व्याप्त हो गया था। इसीलिए वे कहते थे कि—हे आयुष्मन् बन्धुओ! "यह निर्ग्रन्थ-प्रवचन ही अर्थ है, यही परमार्थ है, शेष सब अनर्थ है।" वे इतने उदार थे कि उनके घरों में दरवाजोंके पीछे रहने वाली अर्गला (आगल-भोगल) हमेशा ऊंची रहती थी। उनके दरवाजे हरेक याचक के लिए सदा खुले रहते थे। वे शीलव्रत (ब्रह्मचर्यव्रत) में ऐसे दृढ़ थे कि वे पर घरमें प्रवेश करते और यहाँ तक कि राजा के अन्तःपुरमें भी चले जाते, तो भी किसीको अप्रीति एवं अविश्वास उत्पन्न नहीं होता था। वे शीलव्रत, गुणव्रत, विरमण व्रत और प्रत्याख्यानोंका पालन करते थे। चौदस, अष्टमी, अमावस्या और पूर्णिमा, इस प्रकार एक मासमें वे छह पौषधोपवास करते थे। वे श्रमण निर्ग्रन्थोंको उनके कल्पानुसार प्रासुक एषणीय अशन, पान, खादिम, स्वादिम, वस्त्र, पात्र, कम्बल, रजोहरण, पीठ, फलक, शय्या, संस्तारक, औषध और भेषज, आदिका दान देते थे। यथा प्रतिगृहीत—अपनी शक्ति अनुसार ग्रहण किये हुए तप द्वारा अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरते थे ॥१०६॥

उस काल उस समयमें भगवान् पार्श्वनाथ के शिष्यानुशिष्य स्थविर भगवान् जो कि जातिसम्पन्न, कुलसम्पन्न, बलसम्पन्न, रूपसम्पन्न, विनयसम्पन्न, ज्ञान-सम्पन्न, दर्शनसम्पन्न, चारित्रसम्पन्न, लज्जासम्पन्न, लाघवसम्पन्न, नम्रतायुक्त,

ओजस्वी, तेजस्वी, प्रतापी और यशस्वी थे। उन्होंने क्रोध, मान, माया, लोभ, निद्रा, इन्द्रियाँ और परीषहोंको जीत लिया था। वे जीवन की आशा और मरण के भयसे रहित थे यावत् वे कुत्रिकापणभूत थे अर्थात् जैसे—कुत्रिकापणमें जो चाहिए वह वस्तु मिल सकती है, उसी प्रकार उनसे भी जैसा चाहिए वैसा वोध मिल सकता था एवं उनमें सव गुण मिल सकते थे। वे वहुश्रुत और वहु परिवार वाले थे। वे पांच सौ साधुओं के साथ सुखपूर्वक विहार करते हुए अनुक्रमसे विचरते हुए ग्रामानुग्राम जाते हुए तुंगिया नगरीके वाहर ईशान कोणमें स्थित पुष्पवती उद्यान में पधारे और यथाप्रतिरूप अवग्रह को लेकर संयम और तप से आत्माको भावित करते हुए विचरने लगे ॥१०७॥

उन स्थविर भगवन्तों के पधारनें की बात तुंगिया नगरी के शृंगाटक (सिंघाड़े के आकार त्रिकोण) मार्ग में, तीन मार्ग मिलते हैं ऐसे रास्तों में, चार मार्ग मिलते हैं ऐसे रास्तों में और वहुत मार्ग मिलते हैं ऐसे रास्तों में—सव जगह फैल गई। जनता उनको वन्दन करने के लिए जाने लगी। जव यह वात तुंगिया नगरी में रहने वाले उन श्रावकों को मालूम हुई, तो वे वड़े प्रसन्न हुए, हर्षित हुए और परस्पर एक दूसरेको बुला कर इस प्रकार कहने लगे कि—हे देवानुप्रियो! भगवान् पार्श्वनाथ के शिष्यानुशिष्य स्थविर भगवन्त जो कि जातिसम्पन्न आदि विशेषण विशिष्ट हैं, वे यहाँ पधारे हैं और संयम और तपसे आत्मा को भावित करते हुए विचरते हैं।

देवानुप्रियो! तथारूप स्थविर भगवन्तोंके नाम गोत्र को सुनने से भी महाफल होता है, तो उनके सामने जाना, वन्दना करना, नमस्कार करना, कुशल समाचार पूछना और उनकी सेवा करना यावत् उनसे प्रश्न पूछकर अर्थोंको ग्रहण करना, इत्यादि वातोंके फल का तो कहना ही क्या? इन वातोंसे कल्याण हो, इसमें कहना ही क्या? इसलिए हे देवानुप्रियो! हम सव स्थविर भगवन्तों के पास चलें और उन्हें वन्दना नमस्कार करें यावत् उनकी पर्युपासना करें। यह कार्य अपनें लिए इस भव में और परभव में हितरूप होगा यावत् परम्परा से कल्याणरूप होगा। इस प्रकार बातचीत करके वे श्रमणोपासक अपने अपने घर गये। घर जाकर स्नान किया और सभा आदिमें जाने योग्य मंगल रूप शुद्ध वस्त्रों को सुन्दर ढंग से पहना। फिर अपने अपने घर से निकल कर वे सब एक जगह इकट्ठे हुए।

फिर एक जगह एकत्रित होकर पैदल चलते हुए वे तुंगिया नगरीके वीचोवीच होकर पुष्पवती उद्यानमें आये। स्थविर भगवन्तोंको देखते ही उन्होंने पांच प्रकारके अभिगम किये। वे इस प्रकार हैं—१ सचित्त द्रव्य जैसे फूल, ताम्बूल

आदिका त्याग करना। २ अचित्त द्रव्य—जैसे वस्त्र आदिको मर्यादित (संकुचित) करना। ३ एक पटके (विना सिले हुए) दुपट्टे का उत्तरासंग करना। ४ मुनिराजके दृष्टिगोचर होते ही दोनों हाथ जोड़कर मस्तक पर लगाना। ५ मनको एकाग्र करना। इस प्रकार पांच अभिगम करके वे श्रमणोपासक स्थविर भगवन्तोंके पास जाकर तीन वार प्रदक्षिणा करके यावत् मन वचन काया रूप तीन प्रकार की सेवा से पर्युपासना करने लगे ॥१०८॥

इसके वाद उन स्थविर भगवन्तोंने उन श्रमणोपासकोंको तथा उस वड़ी परिषद्को केशीश्रमणकी तरह चार महाव्रत वाले धमका उपदेश दिया। यावत् उन श्रमणोपासकोंने अपनी श्रमणोपासकता द्वारा उन स्थविर भगवन्तोंकी आज्ञा का आराधन किया यावत् धर्मकथा पूर्ण हुई।

स्थविर भगवन्तोंके पास धर्मोपदेश सुनकर एवं हृदयमें धारण करके वे श्रमणोपासक बड़े हर्षित हुए, सन्तुष्ट हुए यावत् विकसित हृदय वाले हुए। इसके वाद उन श्रमणोपासकोंने स्थविर भगवन्तोंकी तीन वार प्रदक्षिणा करके मन, वचन और काया रूप तीन प्रकारकी पर्युपासनासे पर्युपासना करते हुए इस प्रकार पूछा—भगवन्! संयमका क्या फल है? तपका क्या फल है? उन स्थविर भगवन्तोंने इस प्रकार उत्तर दिया कि—आर्यो! संयमका फल अनास्रव (आस्रव रहित–संवर) है और तपका फल व्यवदान (कर्मोंको काटना एवं कर्म रूपी कीचड़से मलिन आत्माको शुद्ध करना) है।

स्थविर भगवन्तोंके उत्तरको सुनकर श्रमणोपासकोंने इस प्रकार पूछा कि–भगवन्! यदि संयमका फल अनास्रव है और तपका फल व्यवदान है, तो देव देवलोकमें किस कारणसे उत्पन्न होते हैं? श्रमणोपासकोंके प्रश्नको सुनकर उन स्थविर भगवन्तोंमें से कालिकपुत्र नामक स्थविरने इस प्रकार उत्तर दिया—हे आर्यो! पूर्व तपके कारण देवता देवलोकमें उत्पन्न होते हैं। उनमें से मेहिल (मेंधिल) नामक स्थविरने इस प्रकार कहा कि—आर्यो! पूर्व संयमके कारण देवता देवलोकमें उत्पन्न होते हैं। उनमें से आनन्दरक्षित नामक स्थविरने इस प्रकार कहा कि—हे आर्यो! कर्मिताके कारण अर्थात् पूर्व कर्मोंके कारण देवता देवलोकमें उत्पन्न होते हैं। उनमें से काश्यप नामक स्थविरने इस प्रकार कहा कि —आर्यो! संगीपनके कारण अर्थात् द्रव्यादिमें राग भावके कारण देवता देव-लोकमें उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार आर्यो! पूर्व तपसे, संयमसे, कर्मोंसे और सराग संयमसे देवता देवलोकमें उत्पन्न होते हैं। आर्यो! यह वात सत्य है, इस-लिए कही है, किन्तु अपने अभिमानके कारण हमने यह वात नहीं कही है।

स्थविर भगवन्तोंके द्वारा दिये गए उत्तरोंको सुनकर वे श्रमणोपासक बड़े हर्षित एवं सन्तुष्ट हुए। फिर स्थविर भगवन्तोंको वन्दना नमस्कार करके और

दूसरे प्रश्न पूछे एवं उनके अर्थोंको ग्रहण किया। फिर तीन बार प्रदक्षिणा करके उन स्थविर भगवन्तोंको वन्दना नमस्कार किया। फिर स्थविर भगवन्तोंके पाससे एवं उस पुष्पवती उद्यानसे निकल कर अपने अपने स्थान पर गये। इधर वे स्थविर भगवन्त भी किसी एक दिन उस तुंगिया नगरीके पुष्पवती उद्यानसे निकल कर बाहर जनपदमें विचरने लगे ॥१०९॥

उस काल उस समयमें राजगृह नामका नगर था। वहां श्रमण भगवान् महावीर स्वामी पधारे। परिषद् वन्दना करनेके लिए गई और यावत् धर्मोपदेश सुनकर वापिस लौट गई। उस काल उस समयमें श्रमण भगवान महावीर स्वामी के ज्येष्ठ अन्तेवासी इन्द्रभूति नामक अनगार थे। यावत् वे विपुल तेजोलेश्याको अपने शरीरमें संक्षिप्त करके रखने वाले थे। वे निरन्तर छट्ठछट्ठका तप करते हुए अर्थात् निरन्तर बेले बेलेकी तपस्या करते हुए संयम और तपसे आत्माको भावित करते हुए विचरते थे।

इसके बाद बेलेके पारणेके दिन इन्द्रभूति अनगारने अर्थात् भगवान् गौतम स्वामीने पहली पौरिसीमें स्वाध्याय किया, दूसरी पौरिसीमें ध्यान किया, तीसरी पौरिसीमें शारीरिक शीघ्रता रहित, मानसिक चपलता रहित, आकुलता और उत्सुकता रहित होकर मुखवस्त्रिकाकी पडिलेहना की, फिर पात्रोंकी और वस्त्रोंकी पडिलेहना की। फिर पात्रोंका परिमार्जन किया, परिमार्जन करके पात्रोंको लेकर जहां श्रमण भगवान महावीर स्वामी विराजे हुए थे वहां आये। वहां आकर भगवानको वन्दना नमस्कार करके इस प्रकार निवेदन किया कि—भगवन्! आज मेरे बेलेके पारणेका दिन है सो आपकी आज्ञा होने पर मैं राज-गृह नगरमें ऊँच, नीच और मध्यम कुलोंमें भिक्षाकी विधिके अनुसार भिक्षा लेने के लिये जाना चाहता हूं? श्रमण भगवान् महावीर स्वामीने गौतम स्वामीसे इस प्रकार कहा कि—देवानुप्रिय! जिस प्रकार तुम्हें सुख हो उस प्रकार करो, विलम्ब न करो।

भगवान्की आज्ञा हो जाने पर गौतम स्वामी भगवान्के पाससे गुणशीलक उद्यानसे निकले, निकलकर शारीरिक शीघ्रता और मानसिक चपलता रहित एवं आकुलता व उत्सुकता रहित गौतम स्वामी युग (धूसरा) प्रमाण भूमिको देखते हुए ईर्यासमितिपूर्वक राजगृह नगरमें आये, वहां ऊँच, नीच और मध्यम कुलोंमें भिक्षा की विधि अनुसार भिक्षा लेनेके लिए फिरने लगे।

राजगृह नगरमें भिक्षाके लिए फिरते हुए गौतम स्वामीने बहुतसे मनुष्योंके मुखसे इस प्रकार सुना—"देवानुप्रियो! तुंगिया नगरीके बाहर पुष्पवती नामक उद्यानमें भगवान् पार्श्वनाथके शिष्यानुशिष्य स्थविर भगवन्त पधारे हुए हैं। उनसे तुंगिया नगरीके श्रावकोंने इस प्रकार प्रश्न पूछा कि—भगवन्! संयमका

क्या फल है और तपका क्या फल है ? तब उन स्थविर भगवन्तोंने उन श्रमणोपासकोंको इस प्रकार उत्तर दिया कि—देवानुप्रियो ! संयमका फल अनास्रव है और तपका फल व्यवदान (कर्मोंकी निर्जरा) है। (सारा वर्णन पहलेकी तरह कहना चाहिए)। यावत् पूर्वतप, पूर्वसंयम, कर्मीपन और संगीपनसे देवता देवलोकोंमें उत्पन्न होते हैं। यह बात सत्य है, इसलिये कही है, किन्तु हमने अपने अभिमानके वश नहीं कही है। यह बात कैसे मानी जा सकती है ?" इस तरह लोगोंके मुखसे गौतम स्वामीने सुना। यह बात सुनकर गौतम स्वामीके मनमें श्रद्धा-जिज्ञासा उत्पन्न हुई यावत् उस बातके प्रति उन्हें कुतूहल उत्पन्न हुआ।

इसके बाद गौतम स्वामी भिक्षाकी विधिके अनुसार भिक्षा लेकर राजगृह नगरसे बाहर निकले। ईर्यासमितिपूर्वक चलते हुए गौतम स्वामी गुणशीलक उद्यानमें श्रमण भगवान् महावीर स्वामीकी सेवामें उपस्थित हुए। उपस्थित होकर गमनागमन सम्बन्धी (ईर्या पथका) प्रतिक्रमण किया, भिक्षा लेनेमें लगे हुए दोषोंका आलोचन किया। फिर लाया हुआ आहार पानी श्रमण भगवान् महावीर स्वामीको दिखलाया। तत्पश्चात् गौतम स्वामीने भगवान्‌से इस प्रकार निवेदन किया कि—भगवन् ! मैं आपकी आज्ञा लेकर राजगृह नगरमें ऊँच नीच मध्यम कुलोंमें भिक्षाकी विधिके अनुसार भिक्षा लेनेके लिये फिर रहा था। उस समय बहुतसे मनुष्योंके मुखसे इस प्रकार सुना कि—देवानुप्रियो ! तुंगिया नगरीके बाहर पुष्पवती उद्यानमें भगवान् पार्श्वनाथके शिष्यानुशिष्य स्थविर भगवन्त पधारे हुए हैं। उनसे वहांके श्रावकोंने इस प्रकार प्रश्न पूछा कि—भगवन् ! संयमका क्या फल है और तपका क्या फल है ? (यहां सारा वर्णन पहलेकी तरह कहना चाहिये) यावत् यह बात सत्य है इसलिये कही है, किन्तु हमने अपने अभिमानके वश नहीं कही है। इत्यादि।

गौतमस्वामीने श्रमण भगवान् महावीर स्वामीसे पूछा कि–भगवन् ! क्या वे स्थविर भगवन्त श्रमणोपासकोंको ऐसा उत्तर देनेमें समर्थ हैं, या असमर्थ हैं ? भगवन् ! क्या वे स्थविर भगवन्त उन श्रमणोपासकों को ऐसा उत्तर देने में अभ्यासी (अभ्यास वाले) हैं, या अनभ्यासी हैं ? भगवन् ! क्या वे स्थविर भगवन्त उन श्रमणोपासकों को ऐसा उत्तर देने में उपयोग वाले हैं, या उपयोग वाले नहीं हैं ? भगवन् ! क्या वे स्थविर भगवन्त उन श्रमणोपासकों को ऐसा उत्तर देने में विशेषज्ञानी हैं, या सामान्यज्ञानी हैं ? कि पूर्वतप, पूर्वसंयम, कर्मिपन और संगीपन, इन कारणों से देवता देवलोकमें उत्पन्न होते हैं।

श्रमण भगवान् महावीर स्वामीने कहा—गौतम ! वे स्थविर भगवन्त उन श्रमणोपासकोंको ऐसा उत्तर देने में समर्थ हैं, किन्तु असमर्थ नहीं, अभ्यासी हैं अनभ्यासी नहीं, उपयोग वाले हैं, अनुपयोग वाले नहीं, विशेपज्ञानी हैं, सामान्य

ज्ञानी नहीं। यह बात सच्ची है, इसलिए उन स्थविरोंने कही है, अपने अभिमान के वश नहीं कही है। गौतम ! मैं भी इस प्रकार कहता हूं, भाषण करता हूं, वतलाता हूं, प्ररूपणा करता हूं कि—पूर्व तप, पूर्व संयम, कर्मिपन और संगीपन, इन कारणों से देवता देवलोकों में उत्पन्न होते हैं। इसलिए उन स्थविर भगवन्तों ने यथार्थ कहा है। यह बात सत्य है, इसलिए उन्होंने कही है, किन्तु अपने अभिमान के कारण नहीं कही है ॥११०॥

गौतमस्वामी पूछते हैं कि—भगवन् ! तथारूप श्रमण या माहणकी पर्युपासना करने वाले मनुष्य को उसकी पर्युपासना (सेवा) का क्या फल मिलता है ? गौतम ! तथारूप श्रमण या माहणकी पर्युपासना करने वालेको सत्शास्त्र श्रवण रूप फल मिलता है।

भगवन् ! श्रवण का क्या फल है ? गौतम ! श्रवण का फल ज्ञान है, अर्थात् सुनने से ज्ञान होता है। भगवन् ! ज्ञान का क्या फल है ? गौतम ! ज्ञान का फल विज्ञान है, अर्थात् साधारण ज्ञान होने पर विशेषज्ञान होता है। भगवन् ! विज्ञान का क्या फल है ? गौतम ! विज्ञान का फल प्रत्याख्यान है, अर्थात् विशेष ज्ञान होने पर हेय पदार्थों का प्रत्याख्यान होता है। भगवन् ! प्रत्याख्यान का क्या फल है ? गौतम ! प्रत्याख्यान का फल संयम है, अर्थात् प्रत्याख्यान होने पर सर्वसावद्य त्याग रूप संयम प्राप्त होता है। भगवन् ! संयम का क्या फल है ? गौतम ! संयम का फल अनास्रवत्व है अर्थात् संयम प्राप्त होने पर फिर नवीन कर्मोंका बन्ध नहीं होता। भगवन् ! अनास्रवत्व का क्या फल है ? गौतम ! अनास्रवत्व का फल तप है। हे भगवन् ! तप का क्या फल है ? हे गौतम ! तप का फल व्यवदान है अर्थात् कर्मों की निर्जरा करना है एवं कर्ममैल को साफ करना है। भगवन् ! व्यवदान का क्या फल है ? गौतम ! व्यवदान का फल अक्रियता (निष्क्रियता) है। भगवन् ! अक्रियपन (निष्क्रियपन) का क्या फल है ? गौतम ! अक्रियपन का फल सिद्धि है अर्थात् अक्रियपन प्राप्त होने पर अन्त में सिद्धि (मोक्ष) प्राप्त होता है।

गाथा का अर्थ—१ पर्युपासना (सेवा) का फल श्रवण, २ श्रवण का फल ज्ञान, ३ ज्ञानका फल विज्ञान, ४ विज्ञानका फल प्रत्याख्यान, ५ प्रत्याख्यानका फल संयम, ६ संयम का फल अनास्रवपन, ७ अनास्रवपन का फल तप, ८ तपका फल व्यवदान, ९ व्यवदानका फल अक्रियपन, १० अक्रियपनका फल सिद्धि (मोक्ष) ॥१॥१११॥

भगवन् ! अन्यतीर्थिक इस प्रकार कहते हैं, भाषण करते हैं, बतलाते हैं, प्ररूपणा करते हैं कि—राजगृह नगरके बाहर वैभार पर्वतके नीचे एक बड़ा पानी का ह्रद—कुण्ड है। उसकी लम्बाई चौड़ाई अनेक योजन हैं, उसका अगला भाग

अनेक प्रकारके वृक्षोंसे सुशोभित है, सुन्दर है यावत् प्रतिरूप है अर्थात् दर्शकोंकी आंखों को सन्तुष्ट करने वाला है। उस द्रहमें अनेक उदार मेघ संस्वेदित हैं—उत्पन्न होते हैं, सम्मूच्छित होते हैं—उसमें गिरते हैं और वरसते हैं। तदुपरान्त अर्थात् कुण्ड भर जाने पर उसमें से सदा परिमित गरम जल झरता रहता है। हे भगवन्! क्या यह बात ठीक है, अर्थात् क्या अन्यतीर्थिकोंका यह कथन सत्य है?

—गौतम! अन्यतीर्थिक जो इस प्रकार कहते हैं, भाषण करते हैं, बतलाते हैं प्ररूपणा करते हैं वह मिथ्या है। हे गौतम! मैं इस तरहसे कहता हूं, भाषण करता हूं, बतलाता हूं, प्ररूपणा करता हूं कि—राजगृह नगर के बाहर वैभार पर्वतके पास 'महातपोपतीरप्रभव' नामका एक प्रस्रवण-झरना है। उसकी लम्बाई चौड़ाई पांच सौ धनुष है, उसका अगला भाग अनेक प्रकार के वृक्षों से सुशोभित है, वह सश्रीक-शोभायुक्त है, वह प्रासादीय-प्रसन्नता पैदा करने वाला है, दर्शनीय—देखने योग्य है, अभिरूप-रमणीय है, प्रतिरूप—प्रत्येक दर्शककी आंखों को संतोष देने वाला है। उस झरनेमें अनेक उष्ण योनि वाले जीव और पुद्गल, अप्कायरूप से उत्पन्न होते हैं, नष्ट होते हैं, चवते हैं, उपचय को प्राप्त होते हैं। तदुपरान्त उस झरनेमें से हमेशा परिमित गरम पानी झरता रहता है। गौतम! वह 'महातपोपतीरप्रभव' नाम का झरना है, और यह 'महातपोपतीर' नामक झरने का अर्थ है। 'सेवं भंते! सेवं भंते!' हे भगवन्! यह इसी प्रकार है।···भगवन्! यह इसी प्रकार है'—ऐसा कह कर गौतमस्वामी श्रमण भगवान्···को वन्दना नमस्कार···॥११२॥

॥ दूसरे शतक का पाँचवां उद्देशक समाप्त ॥

शतक २ उद्देशक ६—भाषा विषयक मान्यता

भगवन्! क्या भाषा अवधारिणी है? ऐसा मैं मान लूँ? गौतम! उपर्युक्त प्रश्नके उत्तरमें प्रज्ञापना सूत्रके ग्यारहवें भाषापदका सारा वर्णन करना चाहिए ॥११३॥

॥ दूसरे शतकका छठा उद्देशक समाप्त ॥

—०—

शतक २ उद्देशक ७—देवों के प्रकार

भगवन्! देव कितने प्रकारके हैं? गौतम! देव चार प्रकारके हैं। यथा—१ भवनपति २ वाणव्यन्तर ३ ज्योतिषी और ४ वैमानिक। भगवन्! भवनवासी देवोंके स्थान कहां पर कहे गये हैं? गौतम! भवनवासी देवों के स्थान

रत्नप्रभा पृथ्वीके नीचे हैं। इत्यादि सारा वर्णन प्रज्ञापना सूत्रके दूसरे स्थानपदमें कहे अनुसार जान लेना चाहिए, किन्तु विशेषता यह है कि—भवनवासियोंके भवन कहने चाहिएँ।उनका उपपात लोकके असंख्यातवें भागमें होता है। यह सारा वर्णन सिद्धगण्डिका पर्यन्त पूरा कहना चाहिए। कल्पोंका प्रतिष्ठान, मोटाई, ऊँचाई और संस्थान आदि सारा वर्णन जीवाभिगमसूत्रके वैमानिक उद्देशक की तरह कहना चाहिए ॥११४॥

॥ दूसरे शतकका सातवां उद्देशक समाप्त ॥

—०—

शतक २ उद्देशक ८—चमरचंचा राजधानी

भगवन्! असुरकुमारोंके इन्द्र, असुरकुमारोंके राजा चमरकी सुधर्मा-सभा कहाँ पर है? गौतम! जम्बूद्वीप नामक द्वीपके मध्यमें रहे हुए मन्दर (मेरु) पर्वतसे दक्षिण दिशामें तिरछे असंख्यात द्वीप और समुद्रोंको उल्लंघन करनेके पश्चात् अरुणवर नामका द्वीप आता है। उस द्वीपकी वेदिकाके बाहरी किनारेसे आगे बढ़ने पर अरुणोदय नामका समुद्र आता है। इस अरुणोदय समुद्रमें बयालीस हजार योजन जाने के बाद उस जगह असुरकुमारोंके इन्द्र, असुरकुमारोंके राजा चमरका तिगिच्छकूट नामक उत्पात पर्वत आता है। उसकी ऊँचाई १७२१ योजन है, उसका उद्वेध (जमीन में गहराई) ४३० योजन और एक कोस है। इस पर्वतका नाप गोस्तुभ नामके आवास पर्वतके नापकी तरह जानना चाहिए। विशेषता यह है कि गोस्तुभ पर्वतके ऊपरके भाग का जो नाप है वह नाप यहां बीचके भाग का समझना चाहिए। अर्थात् तिगिच्छक कूट पर्वतका विष्कम्भ मूल में १०२२ योजन है। बीचका विष्कम्भ ४२४ योजन है और ऊपरका विष्कम्भ ७२३ योजन है। उसका परिक्षेप मूलमें ३२३२ योजन और कुछ विशेषोन है। बीचका परिक्षेप १३४१ योजन तथा कुछ विशेषोन है। ऊपरका परिक्षेप २२८६ योजन तथा कुछ विशेषाधिक है। वह मूलमें विस्तृत है, बीचमें संकड़ा है और ऊपर फिर विस्तृत है। उसके बीच का भाग उत्तम वज्र जैसा है, बड़े मुकुन्दके आकार जैसा है। वह पर्वत सम्पूर्ण रत्नमय है, सुन्दर है यावत् प्रतिरूप है। वह पर्वत पद्मवर वेदिकासे और एक वनखण्डसे चारों तरफ से घिरा हुआ है। (यहां वेदिका और वनखण्डका वर्णन करना चाहिए)।

उस तिगिच्छकूट नामक उत्पातपर्वतका ऊपरी भाग ऊबड़ खाबड़ रहित बिल्कुल सम है। वह बड़ा ही मनोहर है। (उसका वर्णन भी यहाँ कहना चाहिए)। उसके बहुसम रमणीय ऊपरी भागके ठीक बीचोबीच एक बड़ा प्रासादावतंसक (महल) है। उस प्रासादावतंसक की ऊंचाई २५० योजन है।

उसका विष्कम्भ १२५ योजन है। (यहां उस प्रासादावतंसक—महल का वर्णन कहना चाहिए तथा उस महलके ऊपरके भागका वर्णन करना चाहिए)। आठ योजन की मणिपीठिका है। (यहां चमरके सिंहासनका परिवार सहित वर्णन कहना चाहिए)। तिगिच्छकूटके दक्षिणकी तरफ अरुणोदय समुद्रमें छह सौ करोड़ पचपन करोड़ पेंतीस लाख और पचास हजार योजन तिच्र्छा जाने के वाद नीचे रत्नप्रभाका चालीस हजार योजन भाग अवगाहन करनेके पश्चात् इस जगह असुरकुमारोंके इन्द्र, असुरकुमारोंके राजा चमरकी चमरचंचा नामकी राजधानी आती है।

उस राजधानीका आयाम और विष्कम्भ (लम्बाई और चौड़ाई) एक लाख योजन है। वह राजधानी जम्बूद्वीप जितनी है। उसका किला १५० योजन ऊंचा है। उस किलेके मूलका विष्कम्भ पचास योजन है। उसके ऊपरके भाग का विष्कम्भ साढ़े तेरह योजन है। उसके कपिशीर्षक (कंगूरों) की लंबाई आधा योजन है और विष्कम्भ एक कोस है। कपिशीर्षक (कंगूरों) की ऊँचाई आधे योजन से कुछ कम है। उसके एक एक वाहुमें पांच पांच सौ दरवाजे हैं। उनकी ऊंचाई २५० योजन है। विष्कम्भ ऊंचाईसे आधा है अर्थात् १२५ योजन है। उवरियल (घर के पीठवन्ध जैसा भाग) का आयाम और विष्कम्भ (लम्बाई और चौड़ाई) सोलह हजार योजन है। उसका परिक्षेप (घेरा) ५०५९७ योजनसे कुछ विशेषोन है। यहां सर्व प्रमाण वैमानिक के प्रमाणसे आधा समझना चाहिए। सुधर्मा सभा, उसके वाद उपपात सभा, ह्रद, अभिषेक और अलङ्कार, यह सारा वर्णन विजयकी तरह कहना चाहिए। गाथा का अर्थ इस प्रकार है—उपपात, संकल्प, अभिषेक, विभूषणा, व्यवसाय तथा चमर का परिवार और उसकी ऋद्धिसम्पन्नता ॥११५॥

॥ दूसरे शतक का आठवां उद्देशक समाप्त ॥

शतक २ उद्देशक ९ समयक्षेत्र

भगवन्! समयक्षेत्र किसको कहते हैं? गौतम! अढ़ाई द्वीप और दो समुद्र, यह समयक्षेत्र कहलाता है। इनमें जो यह जम्बूद्वीप नामक द्वीप है, यह सव द्वीप समुद्रोंके बीचोंबीच है। इस प्रकार जीवाभिगम सूत्रमें कहा हुआ सारा वर्णन यहाँ कहना चाहिए यावत् आभ्यन्तर पुष्कराद्ध तक कहना चाहिए, किन्तु उसमें से ज्योतिषियों का वर्णन यहाँ नहीं कहना चाहिए ॥११६॥

॥ दूसरे शतक का नौवां उद्देशक समाप्त ॥

—

शतक २ उद्देशक १० पंचास्तिकाय वर्णन

भगवन् ! अस्तिकाय कितने कहे गये हैं ? गौतम ! अस्तिकाय पाँच......, यथा—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय। भगवन् ! धर्मास्तिकायमें कितने वर्ण, कितने गन्ध, कितने रस और कितने स्पर्श हैं ? गौतम ! धर्मास्तिकायमें वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श नहीं है अर्थात् धर्मास्तिकाय अरूपी है, अजीव है, शाश्वत है। यह अवस्थित लोक द्रव्य है। संक्षेप से धर्मास्तिकाय पांच प्रकार का कहा है—द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और गुणसे। द्रव्य की अपेक्षा धर्मास्तिकाय एक द्रव्य है। क्षेत्र की अपेक्षा धर्मास्तिकाय लोक प्रमाण है। काल की अपेक्षा धर्मास्तिकाय कभी नहीं था—ऐसा नहीं, कभी नहीं है—ऐसा नहीं, कभी नहीं रहेगा—ऐसा भी नहीं, किन्तु वह था, है और रहेगा, यावत् वह नित्य है। भावकी अपेक्षा धर्मास्तिकाय में वर्ण नहीं, गन्ध नहीं, रस नहीं, स्पर्श नहीं। गुणकी अपेक्षा गतिगुण वाला है।

जिस तरह धर्मास्तिकायका कथन किया है उसी तरह अधर्मास्तिकायके विषयमें भी कहना चाहिए, किन्तु इतना अन्तर है कि अधर्मास्तिकाय गुणकी अपेक्षा स्थितिगुण वाला है। आकाशास्तिकायके विषय में भी इसी प्रकार कहना चाहिए, किन्तु इतना अन्तर है कि आकाशास्तिकाय क्षेत्रकी अपेक्षा लोकालोक प्रमाण (अनन्त) है और गुणकी अपेक्षा अवगाहना गुण वाला है।

भगवन् ! जीवास्तिकायमें कितने वर्ण, कितने गन्ध, कितने रस और कितने स्पर्श हैं ? गौतम ! जीवास्तिकायमें वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श नहीं है। वह अरूपी है, जीव है, शाश्वत है और अवस्थित लोकद्रव्य है। संक्षेप में जीवास्तिकायके पांच भेद कहे गए हैं—द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और गुणकी अपेक्षा। द्रव्य की अपेक्षा जीवास्तिकाय अनन्त जीव द्रव्यरूप है। क्षेत्रकी अपेक्षा लोक प्रमाण है। कालकी अपेक्षा वह कभी नहीं था—ऐसा नहीं, यावत् वह नित्य है। भावकी अपेक्षा जीवास्तिकायमें वर्ण नहीं, गन्ध नहीं, रस नहीं और स्पर्श नहीं है। गुणकी अपेक्षा उपयोग गुण वाला है।

भगवन् ! पुद्गलास्तिकायमें कितने वर्ण, कितने गन्ध, कितने रस और कितने स्पर्श हैं ? गौतम ! पुद्गलास्तिकायमें पांच वर्ण हैं, पांच रस हैं, दो गन्ध हैं, आठ स्पर्श हैं। वह रूपी है, अजीव है, शाश्वत है और अवस्थित लोक द्रव्य है। संक्षेपसे उसके पांच भेद कहे गए हैं—द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और गुण की अपेक्षा। द्रव्य की अपेक्षा पुद्गलास्तिकाय अनन्त द्रव्यरूप है। क्षेत्र की अपेक्षा लोक प्रमाण है। कालकी अपेक्षा वह कभी नहीं था—ऐसा नहीं यावत् नित्य है।

भावकी अपेक्षा वह वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श वाला है। गुण की अपेक्षा ग्रहण गुण वाला है ॥११७॥

भगवन् ! क्या धर्मास्तिकाय का एक प्रदेश धर्मास्तिकाय कहलाता है ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं अर्थात् धर्मास्तिकायका एक प्रदेश धर्मास्तिकाय नहीं कहलाता। इसी तरह से दो प्रदेश, तीन प्रदेश, चार प्रदेश, पांच प्रदेश, छह प्रदेश, सात प्रदेश, आठ प्रदेश, नौ प्रदेश, दस प्रदेश और संख्यात प्रदेश भी धर्मास्तिकाय नहीं कहलाते। भगवन् ! क्या धर्मास्तिकाय के असंख्यात प्रदेश धर्मास्तिकाय कहलाते हैं ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं, अर्थात् धर्मास्तिकाय के असंख्यात प्रदेश धर्मास्तिकाय नहीं कहलाते। भगवन् ! एक प्रदेशसे कम धर्मास्तिकायको क्या धर्मास्तिकाय कहते हैं ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं अर्थात् एक प्रदेशोन धर्मास्तिकायको धर्मास्तिकाय नहीं कहते।

भगवन् ! इसका क्या कारण है कि धर्मास्तिकाय के एक प्रदेशको यावत् जहाँ तक एक भी प्रदेश कम हो वहां तक धर्मास्तिकाय नहीं कहना चाहिए ? गौतम ! यह बतलाओ कि चक्रका खण्ड (भाग-टुकड़ा) 'चक्र' कहलाता है, या सम्पूर्ण चक्र चक्र कहलाता है ? भगवन् ! चक्रका खण्ड चक्र नहीं कहलाता, किन्तु सम्पूर्ण चक्र चक्र कहलाता है। इसी प्रकार छत्र, चर्म, दण्ड, वस्त्र, शस्त्र और मोदक के विषयमें भी जानना चाहिए अर्थात् ये सब छत्रादि सम्पूर्ण हों, तो छत्रादि कहलाते हैं, किन्तु इनके खण्ड छत्रादि नहीं कहलाते, इसलिए गौतम ! ऐसा कहा गया है कि धर्मास्तिकायका एक प्रदेश यावत् जब तक एक प्रदेश भी कम हो तब तक उसे धर्मास्तिकाय नहीं कहते।

तो फिर भगवन् ! धर्मास्तिकाय किसे कहते हैं ? गौतम ! धर्मास्तिकाय के असंख्यात प्रदेश हैं, वे सब कृत्स्न (पूरे), प्रतिपूर्ण, निरवशेष (जिनमें से एक भी बाकी नहीं बचा हो), एक ग्रहण-गृहीत अर्थात् एक शब्दसे कहने योग्य हों तब उन असंख्यात प्रदेशोंको 'धर्मास्तिकाय' कहते हैं। इसी तरह अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय और पुद्गलास्तिकायके विषय में भी जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि आकाशास्तिकाय जीवास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय, इन तीन द्रव्यों के अनन्त प्रदेश कहने चाहिएँ। बाकी सारा वर्णन पहलेकी तरह समझना चाहिये ॥११८॥

भगवन् ! उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषकार पराक्रम वाला जीव आत्मभावसे जीवत्वको दिखलाता है, क्या ऐसा कहना चाहिए ? हाँ, गौतम ! उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषकार पराक्रम वाला जीव आत्मभावसे जीवत्व को दिखलाता है, प्रकाशित करता है, ऐसा कहना चाहिए। भगवन् ! ऐसा कहने का क्या कारण है ? गौतम ! जीव आभिनिबोधिक ज्ञानके अनन्त पर्याय, श्रुत-

ज्ञानके अनन्त पर्याय, अवधिज्ञान के अनन्त पर्याय, मन:पर्यय ज्ञान के अनन्त पर्याय, केवलज्ञान के अनन्त पर्याय, मतिअज्ञान के अनन्त पर्याय, श्रुतअज्ञान के अनन्त पर्याय, विभंगज्ञान (अवधिअज्ञान) के अनन्त पर्याय, चक्षुदर्शनके अनन्त०, अचक्षुदर्शनके अनन्त पर्याय, अवधिदर्शनके अनन्त पर्याय और केवलदर्शनके अनन्त पर्याय, इन सब के उपयोगको प्राप्त करता है, क्योंकि जीवका उपयोग लक्षण है। इस कारणसे हे गौतम ! ऐसा कहा गया है कि उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषकार पराक्रम वाला जीव आत्मभावसे जीवत्व को दिखलाता है—प्रकाशित करता है ॥११९॥

भगवन् ! आकाश कितने प्रकार का कहा गया है ? गौतम ! आकाश के दो भेद हैं। यथा—लोकाकाश और अलोकाकाश। भगवन् ! क्या लोकाकाश में जीव हैं ? जीव के देश हैं ? जीवके प्रदेश हैं ? क्या अजीव हैं ? अजीव के देश हैं ? अजीवके प्रदेश हैं ? गौतम ! लोकाकाश में जीव भी हैं, जीवके देश भी हैं, जीव के प्रदेश भी हैं। अजीव भी हैं, अजीव के देश भी हैं, अजीव के प्रदेश भी हैं। जो जीव हैं, वे नियमा (निश्चित रूप से) एकेन्द्रिय हैं, बेइन्द्रिय हैं, तेइन्द्रिय हैं, चौइन्द्रिय हैं, पञ्चेन्द्रिय हैं और अनिन्द्रिय हैं। जो जीव के देश हैं, वे नियमा एकेन्द्रियके देश हैं यावत् अनिन्द्रियके देश हैं। जो जीवके प्रदेश हैं, वे नियमा एकेन्द्रियके प्रदेश हैं यावत् अनिन्द्रियके प्रदेश हैं। जो अजीव हैं वे दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा—रूपी और अरूपी। जो रूपी हैं, उनके चार भेद कहे गये हैं। यथा—स्कन्ध, स्कन्धदेश, स्कन्धप्रदेश और परमाणु-पुद्गल। जो अरूपी हैं, उनके पांच भेद कहे गये हैं। यथा—धर्मास्तिकाय है, धर्मास्तिकाय का देश नहीं, धर्मास्तिकाय के प्रदेश हैं। अधर्मास्तिकाय है, अधर्मास्तिकाय का देश नहीं, अधर्मास्तिकायके प्रदेश और अद्धासमय हैं ॥१२०॥

भगवन् ! क्या अलोकाकाशमें जीव हैं ? इत्यादि पहले की तरह प्रश्न। गौतम ! अलोकाकाशमें जीव नहीं हैं यावत् अजीवके प्रदेश भी नहीं हैं। वह एक अजीव द्रव्य देश है, अगुरुलघु है, तथा अनन्त अगुरुलघु गुणोंसे संयुक्त है और अनन्तभाग कम सर्व आकाश रूप है ॥१२१॥

हे भगवन् ! धर्मास्तिकाय कितना बड़ा कहा गया है ? हे गौतम ! धर्मास्तिकाय लोक रूप है, लोक मात्र है, लोक प्रमाण है, लोक स्पृष्ट है और लोक को स्पर्श करके रहा हुआ है। इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय, लोकाकाश, जीवास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय के विषय में भी जानना चाहिए। इन पांचों के विषय में एक समान अभिलाप (पाठ) है ॥१२२॥

हे भगवन् ! अधोलोक धर्मास्तिकाय के कितने भाग को स्पर्श करता है ? हे गौतम ! अधोलोक धर्मास्तिकाय के आधे से कुछ अधिक भाग को स्पर्श

करता है। हे भगवन् ! तिर्यग्लोक धर्मास्तिकाय के कितने भागको स्पर्श करता है ?···गौतम ! तिर्यग्लोक धर्मास्तिकाय के असंख्येय भागको स्पर्श करता है। हे भगवन् ! ऊर्ध्वलोक धर्मास्तिकायके कितने भागको स्पर्श करता है ? हे गौतम ! ऊर्ध्वलोक धर्मास्तिकाय के देशोन अर्ध भागको स्पर्श करता है ॥१२३॥

हे भगवन् ! यह रत्नप्रभा पृथ्वी क्या धर्मास्तिकाय के संख्यात भागको स्पर्श करती है या असंख्यात भाग···, या संख्यात भागों··, या असंख्यात भागों ······, या सम्पूर्णको स्पर्श करती है ? हे गौतम ! यह र० पृथ्वी धर्मास्तिकायके संख्यात भागको स्पर्श नहीं करती, किन्तु असंख्येय भागको स्पर्श करती है। संख्येय भागों को, असंख्येय भागों को और सम्पूर्ण धर्मास्तिकाय को स्पर्श नहीं करती।

हे भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वीका घनोदधि धर्मास्तिकायके कितने भाग को स्पर्श करता है ? क्या संख्येय भाग को स्पर्श करता है ? इत्यादि प्रश्न ? हे गौतम ! जिस प्रकार रत्नप्रभा पृथ्वी के लिए कहा है उसी प्रकार रत्नप्रभा पृथ्वी के घनोदधि के विषय में भी कहना चाहिए और उसी तरह घनवात और तनुवात के विषय में भी कहना चाहिए।

हे भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी का अवकाशान्तर क्या धर्मास्तिकाय के संख्येय भाग को स्पर्श करता है, या असंख्येय भाग को स्पर्श करता है, यावत् सम्पूर्ण धर्मास्तिकायको स्पर्श करता है ? हे गौतम ! इस रत्नप्रभा पृथ्वीका अवकाशान्तर धर्मास्तिकाय के संख्येय भागको स्पर्श करता है, किन्तु असंख्येय भाग को, संख्येय भागों को, असंख्येय भागों को और सम्पूर्ण धर्मास्तिकायको स्पर्श नहीं करता। इसी तरह सब अवकाशान्तरों के विषय में कहना चाहिए। जिस तरह रत्नप्रभा के विषय में कहा, उसी तरह सातवीं पृथ्वी तक कहना चाहिए। जम्बूद्वीपादि द्वीप और लवणसमुद्रादिक समुद्र, सौधर्मकल्प यावत् ईषत्प्राग्भारा-पृथ्वी, ये सब धर्मास्तिकाय के असंख्येय भाग को स्पर्श करते हैं। बाकी भागों की स्पर्शना का निषेध करना चाहिए। जिस तरह धर्मास्तिकाय की स्पर्शना कही, उसी तरह अधर्मास्तिकाय और लोकाकाशास्तिकाय की स्पर्शना भी कहनी चाहिए।

गाथा का अर्थ इस प्रकार है—पृथ्वी, घनोदधि, घनवात, तनुवात, कल्प, ग्रैवेयक, अनुत्तर और सिद्धि तथा सात अवकाशान्तर, इनमें से अवकाशान्तर तो धर्मास्तिकाय के संख्येय भाग को स्पर्श करते हैं और शेष सब धर्मास्तिकाय के असंख्येय भाग को स्पर्श करते हैं ॥१॥१२४॥

॥ दूसरे शतक का दसवां उद्देशक समाप्त ॥

द्वितीय शतक समाप्त

शतक ३ उद्देशक १ चमरेन्द्र की ऋद्धि

[गाथा—तीसरे शतकमें दस उद्देशक हैं। उनमें से पहले उद्देशक में चमर की विकुर्वणा, दूसरे उद्देशक में उत्पात, तीसरे में क्रिया, चौथे में देव द्वारा विकुर्वित यान को साधु जानता है? पांचवें में साधु द्वारा स्त्री आदि के रूपोंकी विकुर्वणा, छठे में नगर सम्बन्धी वर्णन, सातवें में लोकपाल, आठवें में अधिपति, नववें में इन्द्रियों संबंधी वर्णन और दसवें में चमरेन्द्र की सभा संबंधी वर्णन है।]

उस काल उस समय में 'मोका' नाम की नगरी थी। उसका वर्णन करना चाहिए। उस नगरीके बाहर उत्तर-पूर्वके दिशाभाग में अर्थात् ईशान कोण में नन्दन नामका उद्यान था। वह वर्णन करने योग्य था। उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी वहां पधारे। भगवान् के आगमन को सुन कर परिषद् दर्शनार्थ निकली। भगवान् का धर्मोपदेश सुन कर परिषद् वापिस चली गई।

उस काल उस समयमें श्रमण भगवान् महावीर स्वामीके दूसरे अन्तेवासी अग्निभूति अनगार, जिनका गौतम गोत्र था, सात हाथ ऊँचा शरीर था, यावत् पर्युपासना करते हुए इस प्रकार बोले—हे भगवन्! असुरेन्द्र असुरराज चमर कितनी बड़ी ऋद्धि वाला है? कितनी बड़ी कान्ति वाला है? कितना बलशाली है? कितनी बड़ी कीर्ति वाला है? कितने महान् सुखों वाला है? कितने महान् प्रभाव वाला है? वह कितनी विकुर्वणा कर सकता है?—

हे गौतम! असुरेन्द्र असुरराज चमर महाऋद्धि वाला है यावत् महाप्रभाव वाला है। चौंतीस लाख भवनावास, चौंसठ हजार सामानिक देव और तेंतीस त्रायस्त्रिंशक, इन सब पर वह अधिपतिपना (सत्ताधीशपना) करता हुआ विचरता है। अर्थात् वह चमर ऐसी बड़ी ऋद्धि वाला है यावत् ऐसे महाप्रभाव वाला है। उसके वैक्रिय करने की शक्ति इस प्रकार है—हे गौतम! विकुर्वणा करने के लिए असुरेन्द्र असुरराज चमर वैक्रिय समुद्घात द्वारा समवहत होता है, समवहत होकर संख्यात योजन का लम्बा दण्ड निकालता है। उसके द्वारा रत्नों के यावत् रिष्टरत्नों के स्थूल पुद्गलों को झटक देता है (गिरा देता है—झड़का देता है) तथा सूक्ष्म पुद्गलोंको ग्रहण करता है। दूसरी बार फिर वैक्रिय समुद्घात द्वारा समवहत होता है। हे गौतम! जैसे कोई युवा पुरुष युवती स्त्री के हाथ को दृढ़ता के साथ पकड़ कर चलता है, तो वे दोनों संलग्न मालूम होते हैं अथवा जैसे गाड़ी के पहिये की धुरी में आरा संलग्न सुसंबद्ध एवं आयुक्त होते हैं। इसी प्रकार असुरेन्द्र असुरराज चमर बहुत असुरकुमार देवों द्वारा तथा असुरकुमार देवियों द्वारा इस सम्पूर्ण जम्बूद्वीपको आकीर्ण कर सकता है एवं

करता है। हे भगवन् ! तिर्यग्लोक धर्मास्तिकाय के कितने भागको स्पर्श करता है ?···गौतम ! तिर्यग्लोक धर्मास्तिकाय के असंख्येय भागको स्पर्श करता है। हे भगवन् ! ऊर्ध्वलोक धर्मास्तिकायके कितने भागको स्पर्श करता है ? हे गौतम ! ऊर्ध्वलोक धर्मास्तिकाय के देशोन अर्ध भागको स्पर्श करता है ।।१२३।।

हे भगवन् ! यह रत्नप्रभा पृथ्वी क्या धर्मास्तिकाय के संख्यात भागको स्पर्श करती है या असंख्यात भाग···, या संख्यात भागों··, या असंख्यात भागों ······, या सम्पूर्णको स्पर्श करती है ? हे गौतम ! यह र० पृथ्वी धर्मास्तिकायके संख्यात भागको स्पर्श नहीं करती, किन्तु असंख्येय भागको स्पर्श करती है। संख्येय भागों को, असंख्येय भागों को और सम्पूर्ण धर्मास्तिकाय को स्पर्श नहीं करती।

हे भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वीका घनोदधि धर्मास्तिकायके कितने भाग को स्पर्श करता है ? क्या संख्येय भाग को स्पर्श करता है ? इत्यादि प्रश्न ? हे गौतम ! जिस प्रकार रत्नप्रभा पृथ्वी के लिए कहा है उसी प्रकार रत्नप्रभा पृथ्वी के घनोदधि के विषय में भी कहना चाहिए और उसी तरह घनवात और तनुवात के विषय में भी कहना चाहिए।

हे भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी का अवकाशान्तर क्या धर्मास्तिकाय के संख्येय भाग को स्पर्श करता है, या असंख्येय भाग को स्पर्श करता है, यावत् सम्पूर्ण धर्मास्तिकायको स्पर्श करता है ? हे गौतम ! इस रत्नप्रभा पृथ्वीका अवकाशान्तर धर्मास्तिकाय के संख्येय भागको स्पर्श करता है, किन्तु असंख्येय भाग को, संख्येय भागों को, असंख्येय भागों को और सम्पूर्ण धर्मास्तिकायको स्पर्श नहीं करता। इसी तरह सव अवकाशान्तरों के विषय में कहना चाहिए। जिस तरह रत्नप्रभा के विषय में कहा, उसी तरह सातवीं पृथ्वी तक कहना चाहिए। जम्बूद्वीपादि द्वीप और लवणसमुद्रादिक समुद्र, सौधर्मकल्प यावत् ईषत्प्राग्भारा-पृथ्वी, ये सव धर्मास्तिकाय के असंख्येय भाग को स्पर्श करते हैं। बाकी भागों की स्पर्शना का निषेध करना चाहिए। जिस तरह धर्मास्तिकाय की स्पर्शना कही, उसी तरह अधर्मास्तिकाय और लोकाकाशास्तिकाय की स्पर्शना भी कहनी चाहिए।

गाथा का अर्थ इस प्रकार है—पृथ्वी, घनोदधि, घनवात, तनुवात, कल्प, ग्रैवेयक, अनुत्तर और सिद्धि तथा सात अवकाशान्तर, इनमें से अवकाशान्तर तो धर्मास्तिकाय के संख्येय भाग को स्पर्श करते हैं और शेप सव धर्मास्तिकाय के असंख्येय भाग को स्पर्श करते हैं ।।१।।१२४।।

।। दूसरे शतक का दसवां उद्देशक समाप्त ।।

द्वितीय शतक समाप्त

भगवन् ! असुरेन्द्र असुरराज चमरके सामानिक देव ऐसी महाऋद्धि वाले हैं यावत् इतनी विकुर्वणा करनेमें समर्थ हैं, तो भगवन् ! असुरेन्द्र असुरराज चमरके त्रायस्त्रिशक देव कितनी वड़ी ऋद्धि वाले हैं ? गौतम ! जैसा सामानिक देवोंके लिए कथन किया, वैसा ही त्रायस्त्रिशक देवों के लिए भी कहना चाहिए। लोकपाल देवोंके लिए भी इसी तरह कहना चाहिए। किन्तु इतना अन्तर है कि अपने द्वारा वैक्रिय किये हुए असुरकुमार देव और देवियोंके रूपोंसे वे संख्येय द्वीप समुद्रोंको भर सकते हैं। यह उनका विषय है, विषयमात्र है, परन्तु उन्होंने कभी ऐसा किया नहीं, करते नहीं और करेंगे भी नहीं।

भगवन् ! असुरेन्द्र असुरराज चमरके लोकपाल ऐसी महाऋद्धि वाले हैं यावत् वे इतना वैक्रिय करनेकी शक्ति वाले हैं, तो असुरेन्द्र असुरराज चमरकी अग्रमहिषियां (पटरानी देवियां) कितनी वड़ी ऋद्धि वाली हैं यावत् विकुर्वणा करने की कितनी शक्ति है ? गौतम ! असुरेन्द्र असुरराज चमर की अग्रमहिषियां महाऋद्धि वाली हैं यावत् महाप्रभाव वाली हैं। वे अपने अपने भवनों पर, अपने अपने एक एक हजार सामानिक देवों पर, अपनी अपनी सखी महत्तरिका देवियों पर और अपनी अपनी परिषदाओं पर अधिपतित्व भोगती हुई विचरती हैं यावत् वे अग्रमहिषियां ऐसी महाऋद्धि वाली हैं। इस विषय में शेष वर्णन लोकपालों के समान कहना चाहिए ॥१२६॥

'...भगवन् ! यह इसी प्रकार है। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है' ऐसा कह कर द्वितीय गौतम अग्निभूति अनगार श्रमण भगवान् महावीर स्वामीको वन्दना नमस्कार कर जहाँ तृतीय गौतम वायुभूति अनगार थे वहाँ गये। वहां जाकर अग्निभूति अनगार ने वायुभूति अनगार से इस प्रकार कहा—गौतम ! असुरेन्द्र असुरराज चमर ऐसी महाऋद्धि वाला है। इत्यादि सारा वर्णन (चमरेन्द्र सामानिक, त्रायस्त्रिशक, लोकपाल और पटरानी देवियों तक का सारा वर्णन, अपृष्ट व्याकरणके रूपमें अर्थात् प्रश्न पूछे विना ही उत्तरके रूपमें)कहना चाहिए।

इसके वाद अग्निभूति अनगार द्वारा कथित, भाषित, प्रज्ञापित और प्ररूपित उपर्युक्त बात पर तृतीय गौतम वायुभूति अनगार को श्रद्धा, प्रतीति (विश्वास) और रुचि नहीं हुई। इस वात पर श्रद्धा, प्रतीति और रुचि न करते हुए वे तृतीय गौतम वायुभूति अनगार, अपनी उत्थान शक्ति द्वारा उठे, उठकर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास आये और यावत् उनकी पर्युपासना करते हुए इस प्रकार वोले—भगवन् ! द्वितीय गौतम अग्निभूति अनगारने मुझसे इस प्रकार कहा, विशेष रूपसे कहा, वतलाया और प्ररूपित किया कि—'असुरेन्द्र असुरराज चमर ऐसी वड़ी ऋद्धि वाला है यावत् ऐसे महान प्रभाव वाला है, कि वहां चौंतीस लाख भवनावासों पर स्वामित्व करता हुआ विचरता है (यहां

व्यतिकीर्ण, उपस्तीर्ण, संस्तीर्ण, स्पृष्ट और गाढ़ावगाढ़ कर सकता है अर्थात् ठसाठस भर सकता है।

फिर हे गौतम ! असुरेन्द्र असुरराज चमर बहुत असुरकुमार देवों और देवियों द्वारा इस तिर्च्छे लोकके असंख्य द्वीप और समुद्रों तकके स्थलको आकीर्ण, व्यतिकीर्ण, उपस्तीर्ण, संस्तीर्ण, स्पृष्ट और गाढ़ावगाढ़ कर सकता है अर्थात् चमर इतने रूपों की विकुर्वणा कर सकता है कि असंख्य द्वीप समुद्रों तक के स्थल को भर सकता है। हे गौतम ! असुरेन्द्र असुरराज चमरकी ऐसी शक्ति है—विषय है—विषयमात्र है, परन्तु चमरेन्द्र ने ऐसा किया नहीं, करता नहीं और करेगा भी नहीं ॥१२५॥

भगवन् ! असुरेन्द्र असुरराज चमर ऐसी बड़ी ऋद्धि वाला है यावत् इतनी विकुर्वणा कर सकता है, तो भगवन् ! असुरेन्द्र असुरराज चमरके सामानिक देवोंकी कितनी बड़ी ऋद्धि है यावत् उनकी विकुर्वणा शक्ति कितनी है ? गौतम ! असुरेन्द्र असुरराज चमरके सामानिक देव महा ऋद्धि वाले यावत् महाप्रभाव वाले हैं। वे अपने अपने भवनों पर, अपने अपने सामानिक देवों पर और अपनी अपनी अग्रमहिषियों (पटरानियों) पर अधिपतित्व (सत्ताधीशपना) करते हुए यावत् दिव्य भोग भोगते हुए विचरते हैं। ये इस प्रकारकी महाऋद्धि वाले हैं। इनकी विकुर्वणा करनेकी शक्ति इस प्रकार है—

गौतम ! विकुर्वणा करनेके लिए असुरेन्द्र असुरराज चमरका एक एक सामानिक देव वैक्रिय समुद्घात द्वारा समवहत होता है और यावत् दूसरी बार भी वैक्रिय समुद्घात द्वारा समवहत होता है। गौतम! जैसे कोई युवा पुरुष युवती स्त्रीके हाथ को दृढ़ताके साथ पकड़ कर चलता है, तो वे दोनों संलग्न मालूम होते हैं, अथवा जैसे गाड़ी के पहियेकी धुरीमें आरा संलग्न, सुसंबद्ध एवं आयुक्त होते हैं, इसी प्रकार असुरेन्द्र असुरराज चमरके सामानिक देव बहुत असुरकुमार देवों द्वारा तथा असुरकुमार देवियों द्वारा इस सम्पूर्ण जम्बूद्वीपको आकीर्ण, व्यतिकीर्ण, उपस्तीर्ण, संस्तीर्ण, स्पृष्ट और गाढ़ावगाढ़ कर सकते हैं अर्थात् ठसाठस भर सकते हैं।

फिर गौतम ! असुरेन्द्र असुरराज चमरका एक एक सामानिक देव बहुत असुरकुमार देवों और देवियों द्वारा इस तिर्च्छे लोकके असंख्य द्वीप और समुद्रों तकके स्थल को आकीर्ण, व्यतिकीर्ण, उपस्तीर्ण, संस्तीर्ण, स्पृष्ट और गाढ़ावगाढ़ कर सकता है, अर्थात् इतने रूपोंकी विकुर्वणा कर सकता है कि असंख्य द्वीप समुद्रों तक के स्थल को ठसाठस भर सकता है। हे गौतम ! उन सामानिक देवों की ऐसी शक्ति है, विषय है, विषयमात्र है, परन्तु सम्प्राप्ति द्वारा उन्होंने ऐसा कभी किया नहीं, करते नहीं और करेंगे भी नहीं।

भगवन् ! असुरेन्द्र असुरराज चमरके सामानिक देव ऐसी महाऋद्धि वाले हैं यावत् इतनी विकुर्वणा करनेमें समर्थ हैं, तो भगवन् ! असुरेन्द्र असुरराज चमरके त्रायस्त्रिंशक देव कितनी बड़ी ऋद्धि वाले हैं ? गौतम ! जैसा सामानिक देवोंके लिए कथन किया, वैसा ही त्रायस्त्रिंशक देवों के लिए भी कहना चाहिए। लोकपाल देवोंके लिए भी इसी तरह कहना चाहिए। किन्तु इतना अन्तर है कि अपने द्वारा वैक्रिय किये हुए असुरकुमार देव और देवियोंके रूपोंसे वे संख्येय द्वीप समुद्रोंको भर सकते हैं। यह उनका विषय है, विषयमात्र है, परन्तु उन्होंने कभी ऐसा किया नहीं, करते नहीं और करेंगे भी नहीं।

भगवन् ! असुरेन्द्र असुरराज चमरके लोकपाल ऐसी महाऋद्धि वाले हैं यावत् वे इतना वैक्रिय करनेकी शक्ति वाले हैं, तो असुरेन्द्र असुरराज चमरकी अग्रमहिषियाँ (पटरानी देवियां) कितनी बड़ी ऋद्धि वाली हैं यावत् विकुर्वणा करने की कितनी शक्ति है ? गौतम ! असुरेन्द्र असुरराज चमर की अग्रमहिषियां महाऋद्धि वाली हैं यावत् महाप्रभाव वाली हैं। वे अपने अपने भवनों पर, अपने अपने एक एक हजार सामानिक देवों पर, अपनी अपनी सखी महत्तरिका देवियों पर और अपनी अपनी परिषदाओं पर अधिपतित्व भोगती हुई विचरती हैं यावत् वे अग्रमहिषियां ऐसी महाऋद्धि वाली हैं। इस विषय में शेष वर्णन लोकपालों के समान कहना चाहिए ॥१२६॥

'...भगवन् ! यह इसी प्रकार है। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है' ऐसा कह कर द्वितीय गौतम अग्निभूति अनगार श्रमण भगवान् महावीर स्वामीको वन्दना नमस्कार कर जहाँ तृतीय गौतम वायुभूति अनगार थे वहाँ गये। वहां जाकर अग्निभूति अनगार ने वायुभूति अनगार से इस प्रकार कहा—गौतम ! असुरेन्द्र असुरराज चमर ऐसी महाऋद्धि वाला है। इत्यादि सारा वर्णन (चमरेन्द्र सामानिक, त्रायस्त्रिंशक, लोकपाल और पटरानी देवियों तक का सारा वर्णन, अपृष्ट व्याकरणके रूपमें अर्थात् प्रश्न पूछे विना ही उत्तरके रूपमें) कहना चाहिए।

इसके बाद अग्निभूति अनगार द्वारा कथित, भाषित, प्रज्ञापित और प्ररूपित उपर्युक्त बात पर तृतीय गौतम वायुभूति अनगार को श्रद्धा, प्रतीति (विश्वास) और रुचि नहीं हुई। इस बात पर श्रद्धा, प्रतीति और रुचि न करते हुए वे तृतीय गौतम वायुभूति अनगार, अपनी उत्थान शक्ति द्वारा उठे, उठकर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास आये और यावत् उनकी पर्युपासना करते हुए इस प्रकार बोले—भगवन् ! द्वितीय गौतम अग्निभूति अनगारने मुझसे इस प्रकार कहा, विशेष रूपसे कहा, बतलाया और प्ररूपित किया कि—'असुरेन्द्र असुरराज चमर ऐसी बड़ी ऋद्धि वाला है यावत् ऐसे महान प्रभाव वाला है, कि वहां चौंतीस लाख भवनावासों पर स्वामित्व करता हुआ विचरता है (यहां

उसकी अग्रमहिषियों तक का पूरा वर्णन कहना चाहिए)। तो भगवन् ! यह बात किस प्रकार है ?—

गौतम ! आदि इस प्रकार सम्बोधित करके श्रमण भगवान महावीर स्वामीने तीसरे गौतम वायुभूति अनगारसे इस प्रकार कहा—गौतम ! द्वितीय गौतम अग्निभूति अनगारने जो तुमसे इस प्रकार कहा, भाषित किया, वतलाया और प्ररूपित किया कि—गौतम ! असुरेन्द्र असुरराज चमर ऐसी महाऋद्धि वाला है इत्यादि (उसकी अग्रमहिषियों तक का सारा वर्णन यहां कहना चाहिए)। गौतम ! यह वात सच्ची है। गौतम ! मैं भी इसी तरह कहता हूं, भाषण करता हूं, वतलाता हूं और प्ररूपित करता हूं कि असुरेन्द्र असुरराज चमर ऐसी महा-ऋद्धि वाला है इत्यादि उसकी अग्रमहिषियों पर्यन्त सारा वर्णनरूप द्वितीय गम (आलापक) यहां कहना चाहिए। इसलिए गौतम ! द्वितीय गौतम अग्निभूति द्वारा कही हुई वात सत्य है।

सेवं भंते ! सेवं भंते !! हे भगवन् ! जैसा आप फरमाते हैं वह इसी प्रकार है।…भगवन् ! जैसा आप फरमाते हैं वह इसी प्रकार है। ऐसा कह कर तृतीय गौतम वायुभूति अनगारने श्रमण भगवान महावीर स्वामी को वन्दना नमस्कार किया। वन्दना नमस्कार करके जहां द्वितीय गौतम अग्निभूति अनगार थे वहां आये, वहां आकर उन्हें वन्दना नमस्कार किया, वन्दना नमस्कार करके पूर्वोक्त वात के लिए अर्थात् उनकी कही हुई वात नहीं मानी थी, इसके लिए उनसे वार-वार विनयपूर्वक क्षमा याचना की ॥१२७॥

इसके अनन्तर वे तीसरे गौतम वायुभूति अनगार दूसरे गौतम अग्निभूति अनगारके साथ जहां श्रमण भगवान् महावीर स्वामी विराजे हुए थे वहां आये। वहां आकर उन्होंने…वन्दना नमस्कार किया, वन्दना नमस्कार करके उनकी पर्यु-पासना करते हुए इस प्रकार बोले कि—भगवन् ! यदि असुरेन्द्र असुरराज चमर ऐसी वड़ी ऋद्धि वाला है यावत् इतनी विकुर्वणा करनेकी शक्ति वाला है, तो भगवन् ! वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज वलि कितनी वड़ी ऋद्धि वाला है ? यावत् वह कितनी विकुर्वणा करनेकी शक्ति वाला है ?

गौतम ! वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज वलि महा ऋद्धि वाला है यावत् महा-नुभाग है। वह तीस लाख भवनोंका तथा साठ हजार सामानिक देवोंका अधि-पति है। जिस प्रकार चमरके सम्बन्धमें वर्णन किया गया है उसी तरह वलिके विषयमें भी जानना चाहिए। विशेषता यह है कि वलि अपनी विकुर्वणा शक्तिसे सातिरेक जम्बूद्वीपको अर्थात् जम्बूद्वीपसे कुछ अधिक स्थलको भर देता है। शेष सारा वर्णन उसी तरहसे है। अन्तर यह है कि भवन और सामानिक देवोंके विषयमें भिन्नता है। सेवं भन्ते ! सेवं भन्ते !! …भगवन् ! यह इसी प्रकार है।

...भगवन्! यह इसी प्रकार है। ऐसा कहकर यावत् तृतीय गौतम वायुभूति अनगार विचरते हैं।

इसके अनन्तर दूसरे गौतम अग्निभूति अनगारने श्रमण भगवान् महावीर स्वामीको वन्दना नमस्कार किया, वन्दना नमस्कार करके वे इस प्रकार बोले—भगवन्! यदि वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज वलि ऐसी महा ऋद्धि वाला है यावत् इतनी वैक्रिय शक्ति वाला है, तो नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज धरण कितनी बड़ी ऋद्धि वाला है यावत् कितनी वैक्रिय शक्ति वाला है? गौतम! वह नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज धरण महा ऋद्धि वाला है यावत् वह ४४ लाख भवनावासों पर, छह हजार सामानिक देवों पर, तेंतीस त्रायस्त्रिंशक देवों पर, चार लोकपालों पर, परिवार सहित छह अग्रमहिषियों पर, तीन सभाओं पर, सात सेनाओं पर, सात सेनाधिपतियों पर और चौवीस हजार आत्मरक्षक देवों पर तथा दूसरों पर स्वामित्व भोगता हुआ यावत् विचरता है। उसकी विकुर्वणा शक्ति इतनी है कि युवती-युवाके दृष्टान्तसे (जैसे वे दोनों संलग्न दिखाई देते हैं उसी तरहसे) यावत् वह अपने द्वारा वैक्रियकृत बहुतसे नागकुमार देवोंसे तथा नागकुमार देवियोंसे सम्पूर्ण जम्बूद्वीपको ठसाठस भरनेमें समर्थ है और तिर्छे संख्यात् द्वीप समुद्रों जितने स्थलको भरनेकी शक्ति वाला है। संख्यात द्वीप समुद्र जितने स्थलको भरनेकी मात्र शक्ति है, मात्र विषय है, किन्तु ऐसा उसने कभी किया नहीं, करता नहीं और भविष्यत् कालमें करेगा भी नहीं। इनके सामानिक देव, त्रायस्त्रिंशक देव, लोकपाल और अग्रमहिषियोंके लिए चमरेन्द्रकी तरह कथन करना चाहिए, विशेषता यह है कि इनकी विकुर्वणा शक्तिके लिए संख्यात द्वीप समुद्रोंका ही कहना चाहिए। इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमारों तक सब भवनवासी देवोंके विषयमें कहना चाहिए। इसी तरह वाणव्यन्तर और ज्योतिषी देवोंके विषयमें कहना चाहिए। विशेष यह है कि दक्षिण दिशाके सब इन्द्रोंके विषयमें द्वितीय गौतम अग्निभूति अनगारने पूछा है और उत्तर दिशाके सब इन्द्रोंके विषयमें तृतीय गौतम श्री वायुभूति अनगारने पूछा है।

भगवन्! ऐसा कहकर द्वितीय गौतम भगवान् अग्निभूति अनगारने श्रमण भगवान् महावीर स्वामीको वन्दना नमस्कार किया, वन्दना नमस्कार करके वे इस प्रकार बोले—भगवन्! यदि ज्योतिषेन्द्र ज्योतिषराज ऐसी महा ऋद्धि वाला है और इतना वैक्रिय करनेकी शक्ति वाला है, तो देवेन्द्र देवराज शक्र कितनी बड़ी ऋद्धि वाला है और कितना वैक्रिय करनेकी शक्ति वाला है? गौतम! देवेन्द्र देवराज शक्र महती ऋद्धि वाला है यावत् महा प्रभावशाली है। वह वहां बत्तीस लाख विमानावासों पर तथा चौरासी हजार सामानिक देवों पर

यावत् तीन लाख छत्तीस हजार आत्मरक्षक देवों पर एवं दूसरे बहुतसे देवों पर स्वामित्व भोगता हुआ विचरता है। अर्थात शक्रेन्द्र ऐसी बड़ी ऋद्धि वाला है। उसकी वैक्रिय शक्तिके सम्बन्धमें चमरेन्द्रकी तरह जानना चाहिए, किन्तु विशेषता यह है कि—वह अपने वैक्रियकृत रूपोंसे सम्पूर्ण दो जम्बूद्वीप जितने स्थलको भरनेमें समर्थ है। तिर्छे असंख्यात द्वीप समुद्रों जितने स्थलको भरनेकी शक्ति है, किन्तु यह तो उसका विषय मात्र है, केवल शक्ति रूप है अर्थात् बिना क्रिया की शक्ति है, किन्तु सम्प्राप्ति द्वारा अर्थात् साक्षात् क्रिया द्वारा उन्होंने कभी ऐसा वैक्रिय किया नहीं, करते नहीं और भविष्यत्कालमें करेंगे भी नहीं ॥१२८॥

भगवन् ! यदि देवेन्द्र देवराज शक्र ऐसी महान ऋद्धि वाला है, यावत् इतना वैक्रिय करनेकी शक्ति वाला है, तो आपका शिष्य 'तिष्यक' नामक अनगार जो प्रकृतिसे भद्र यावत् विनीत, निरन्तर छठ छठ तप द्वारा अर्थात् निरन्तर बेले बेले पारणा करनेसे अपनी आत्माको भावित करता हुआ, सम्पूर्ण आठ वर्ष तक साधु पर्यायका पालन करके, मासिक संलेखनाके द्वारा अपनी आत्माको संयुक्त करके तथा साठ भक्त अनशनका छेदन कर (पालन कर), आलोचना और प्रतिक्रमण करके, समाधिको प्राप्त होकर, कालके समयमें काल करके सौधर्म देवलोकमें गया है। वह वहां अपने विमानमें उपपात सभाके देव-शयनीयमें (देवोंके बिछौनेमें) देवदूष्य (देववस्त्र) से ढँके हुए अंगुलके असंख्यात भाग जितनी अवगाहनामें देवेन्द्र देवराज शक्रके सामानिक देव रूपसे उत्पन्न हुआ है।

तत्पश्चात् तत्काल उत्पन्न हुआ वह तिष्यक देव, पांच प्रकारकी पर्याप्तियोंसे पर्याप्तत्वको प्राप्त हुआ अर्थात् आहारपर्याप्ति, शरीरपर्याप्ति, इन्द्रियपर्याप्ति, आनप्राणपर्याप्ति(श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति) और भाषामनःपर्याप्ति, इन पांच पर्याप्तियोंसे उसने अपने शरीरकी रचना पूर्ण की। जब वह तिष्यक देव पांचों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त बन गया, तब सामानिक परिषद्के देवोंने दोनों हाथोंको जोड़ कर एवं दसों अंगुलियोंके दसों नखोंको इकट्ठे करके मस्तक पर अंजलि करके जय विजय शब्दों द्वारा बधाई दी। इसके बाद वे इस प्रकार बोले कि—अहो ! आप देवानुप्रियको यह दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देव-कान्ति और दिव्य देव-प्रभाव मिला है, प्राप्त हुआ है और सम्मुख आया है। हे देवानुप्रिय ! जैसी दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देवकान्ति और दिव्य देवप्रभाव आप देवानुप्रियको मिला है, प्राप्त हुआ है, सम्मुख आया है, वैसी ही दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देवकान्ति और दिव्य देवप्रभाव, देवेन्द्र देव० शक्रको भी मिला है, प्राप्त हुआ है और सम्मुख आया है। जैसी दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देवकान्ति और दिव्य देवप्रभाव, देवेन्द्र देवराज शक्रको मिला है, प्राप्त हुआ है और सम्मुख आया है, वैसी ही दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देवकान्ति और दिव्य देवप्रभाव आप देवानुप्रियको मिला है, प्राप्त हुआ है और सम्मुख आया है।

(तब अग्निभूति अनगार भगवान् से पूछते हैं) भगवन् ! तिष्यक देव कितनी महाऋद्धि वाला है और कितनी वैक्रिय शक्ति वाला है ? ···वह तिष्यक देव महाऋद्धि वाला है यावत् महाप्रभाव वाला है। वह अपने विमान पर, चार हजार सामानिक देवों पर, परिवार सहित चार अग्रमहिषियों पर, ३ सभाओं पर, ७ सेनाओं पर, सात सेनाधिपतियों पर, सोलह हजार आत्मरक्षक देवों पर और दूसरे बहुतसे वैमानिक देवों पर तथा देवियों पर सत्ताधीशपना भोगता हुआ यावत् विचरता है। वह तिष्यक देव ऐसी महाऋद्धि वाला है यावत् इतना वैक्रिय करनेकी शक्ति वाला है। युवति-युवाके दृष्टान्तानुसार एवं आरों युक्त नाभिके दृष्टान्तानुसार वह शक्रेन्द्र जितनी विकुर्वणा करनेकी शक्ति वाला है। गौतम ! तिष्यक देवकी जो विकुर्वणा शक्ति कही है, वह उसका सिर्फ विषय है, किन्तु सम्प्राप्ति द्वारा कभी उसने इतनी विकुर्वणा की नहीं, करता भी नहीं और भविष्यत्कालमें करेगा भी नहीं।

भगवन् ! यदि तिष्यक देव इतनी महाऋद्धि वाला है यावत् इतनी विकुर्वणा करनेकी शक्ति वाला है, तो देवेन्द्र देवराज शक्रके दूसरे सब सामानिक देव कितनी महाऋद्धि वाले हैं, यावत् कितनी विकुर्वणा शक्ति वाले हैं ? गौतम ! जिस तरह तिष्यक देवका कहा, उसी तरह शक्रेन्द्रके सब सामानिक देवोंका जानना चाहिए। किन्तु गौतम ! यह विकुर्वणा शक्ति उनका विषयमात्र है, परन्तु सम्प्राप्ति द्वारा उन्होंने कभी इतनी विकुर्वणा की नहीं, करते नहीं और भविष्यत्कालमें भी करेंगे नहीं। शक्रेन्द्रके त्रायस्त्रिंशक, लोकपाल और अग्रमहिषियोंके विषयमें चमरेन्द्रकी तरह कहना चाहिए, किन्तु इतनी विशेषता है कि ये अपने वैक्रियकृत रूपोंसे सम्पूर्ण दो जम्बूद्वीपको भरनेमें समर्थ हैं। बाकी सारा वर्णन चमरेन्द्रकी तरह कहना चाहिए। सेवं भंते ! सेवं भंते ! ! ···भगवन् ! यह इसी प्रकार है, हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, ऐसा कह कर द्वितीय गौतम अग्निभूति अनगार यावत् विचरते हैं ॥१२९॥

भगवन् ! ऐसा कहकर तृतीय गौतम गणधर भगवान् वायुभूति अनगार श्रमण भगवान् महावीर स्वामीको वन्दना नमस्कार करके इस प्रकार बोले—हे भगवन् ! यदि देवेन्द्र देवराज शक्र यावत् ऐसी महा ऋद्धि वाला है यावत् इतनी विकुर्वणा करनेकी शक्ति वाला है, तो देवेन्द्र देवराज ईशान कितनी महाऋद्धि वाला है यावत् कितना वैक्रिय करने की शक्ति वाला हैं ? गौतम ! जैसा शक्रेन्द्र के विषय में कहा, वैसा ही सारा वर्णन ईशानेन्द्रके लिए जानना चाहिए। विशेषता यह है कि वह अपने वैक्रियकृत रूपोंसे सम्पूर्ण दो जम्बूद्वीपसे कुछ अधिक स्थलको भर देता है। बाकी सारा वर्णन पहलेकी तरह जानना चाहिए ॥१३०॥

भगवन् ! यदि देवेन्द्र देवराज ईशान ऐसी महा ऋद्धि वाला है, यावत्

यावत् तीन लाख छत्तीस हजार आत्मरक्षक देवों पर एवं दूसरे बहुतसे देवों पर स्वामित्व भोगता हुआ विचरता है। अर्थात शक्रेन्द्र ऐसी बड़ी ऋद्धि वाला है। उसकी वैक्रिय शक्तिके सम्बन्धमें चमरेन्द्रकी तरह जानना चाहिए, किन्तु विशेषता यह है कि—वह अपने वैक्रियकृत रूपोंसे सम्पूर्ण दो जम्बूद्वीप जितने स्थलको भरनेमें समर्थ है। तिर्छे असंख्यात द्वीप समुद्रों जितने स्थलको भरनेकी शक्ति है, किन्तु यह तो उसका विषय मात्र है, केवल शक्ति रूप है अर्थात् विना क्रिया की शक्ति है, किन्तु सम्प्राप्ति द्वारा अर्थात् साक्षात् क्रिया द्वारा उन्होंने कभी ऐसा वैक्रिय किया नहीं, करते नहीं और भविष्यत्कालमें करेंगे भी नहीं ॥१२८॥

भगवन् ! यदि देवेन्द्र देवराज शक्र ऐसी महान ऋद्धि वाला है, यावत् इतना वैक्रिय करनेकी शक्ति वाला है, तो आपका शिष्य 'तिष्यक' नामक अनगार जो प्रकृतिसे भद्र यावत् विनीत, निरन्तर छठ छठ तप द्वारा अर्थात् निरन्तर बेले बेले पारणा करनेसे अपनी आत्माको भावित करता हुआ, सम्पूर्ण आठ वर्ष तक साधु पर्यायका पालन करके, मासिक संलेखनाके द्वारा अपनी आत्माको संयुक्त करके तथा साठ भक्त अनशनका छेदन कर (पालन कर), आलोचना और प्रतिक्रमण करके, समाधिको प्राप्त होकर, कालके समयमें काल करके सौधर्म देवलोकमें गया है। वह वहां अपने विमानमें उपपात सभाके देव-शयनीयमें (देवोंके बिछौनेमें) देवदूष्य (देववस्त्र) से ढँके हुए अंगुलके असंख्यात भाग जितनी अवगाहनामें देवेन्द्र देवराज शक्रके सामानिक देव रूपसे उत्पन्न हुआ है।

तत्पश्चात् तत्काल उत्पन्न हुआ वह तिष्यक देव, पांच प्रकारकी पर्याप्तियोंसे पर्याप्तत्वको प्राप्त हुआ अर्थात् आहारपर्याप्ति, शरीरपर्याप्ति, इन्द्रियपर्याप्ति, आनप्राणपर्याप्ति(श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति) और भाषामन:पर्याप्ति, इन पांच पर्याप्तियोंसे उसने अपने शरीरकी रचना पूर्ण की। जब वह तिष्यक देव पांचों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त बन गया, तब सामानिक परिषद्के देवोंने दोनों हाथोंको जोड़ कर एवं दसों अंगुलियोंके दसों नखोंको इकट्ठे करके मस्तक पर अंजलि करके जय विजय शब्दों द्वारा बधाई दी। इसके बाद वे इस प्रकार बोले कि—अहो ! आप देवानुप्रियको यह दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देव-कान्ति और दिव्य देव-प्रभाव मिला है, प्राप्त हुआ है और सम्मुख आया है। हे देवानुप्रिय ! जैसी दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देवकान्ति और दिव्य देवप्रभाव आप देवानुप्रियको मिला है, प्राप्त हुआ है, सम्मुख आया है, वैसी ही दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देवकान्ति और दिव्य देवप्रभाव, देवेन्द्र देव० शक्रको भी मिला है, प्राप्त हुआ है और सम्मुख आया है। जैसी दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देवकान्ति और दिव्य देवप्रभाव, देवेन्द्र देवराज शक्रको मिला है, प्राप्त हुआ है और सम्मुख आया है, वैसी ही दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देवकान्ति और दिव्य देवप्रभाव आप देवानुप्रियको मिला है, प्राप्त हुआ है और सम्मुख आया है।

(तब अग्निभूति अनगार भगवान् से पूछते हैं) भगवन् ! तिष्यक देव कितनी महाऋद्धि वाला है और कितनी वैक्रिय शक्ति वाला है ? ...वह तिष्यक देव महाऋद्धि वाला है यावत् महाप्रभाव वाला है । वह अपने विमान पर, चार हजार सामानिक देवों पर, परिवार सहित चार अग्रमहिषियों पर, ३ सभाओं पर, ७ सेनाओं पर, सात सेनाधिपतियों पर, सोलह हजार आत्मरक्षक देवों पर और दूसरे बहुतसे वैमानिक देवों पर तथा देवियों पर सत्ताधीशपना भोगता हुआ यावत् विचरता है । वह तिष्यक देव ऐसी महाऋद्धि वाला है यावत् इतना वैक्रिय करनेकी शक्ति वाला है । युवति-युवाके दृष्टान्तानुसार एवं आरों युक्त नाभिके दृष्टान्तानुसार वह शक्रेन्द्र जितनी विकुर्वणा करनेकी शक्ति वाला है । गौतम ! तिष्यक देवकी जो विकुर्वणा शक्ति कही है, वह उसका सिर्फ विषय है, किन्तु सम्प्राप्ति द्वारा कभी उसने इतनी विकुर्वणा की नहीं, करता भी नहीं और भविष्यत्कालमें करेगा भी नहीं ।

भगवन् ! यदि तिष्यक देव इतनी महाऋद्धि वाला है यावत् इतनी विकुर्वणा करनेकी शक्ति वाला है, तो देवेन्द्र देवराज शक्रके दूसरे सब सामानिक देव कितनी महाऋद्धि वाले हैं, यावत् कितनी विकुर्वणा शक्ति वाले हैं ? गौतम ! जिस तरह तिष्यक देवका कहा, उसी तरह शक्रेन्द्रके सब सामानिक देवोंका जानना चाहिए । किन्तु गौतम ! यह विकुर्वणा शक्ति उनका विषयमात्र है, परन्तु सम्प्राप्ति द्वारा उन्होंने कभी इतनी विकुर्वणा की नहीं, करते नहीं और भविष्यत्कालमें भी करेंगे नहीं । शक्रेन्द्रके त्रायस्त्रिंशक, लोकपाल और अग्रमहिषियोंके विषयमें चमरेन्द्रकी तरह कहना चाहिए, किन्तु इतनी विशेषता है कि ये अपने वैक्रियकृत रूपोंसे सम्पूर्ण दो जम्बूद्वीपको भरनेमें समर्थ हैं । बाकी सारा वर्णन चमरेन्द्रकी तरह कहना चाहिए । सेवं भंते ! सेवं भंते ! ! ...भगवन् ! यह इसी प्रकार है, हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, ऐसा कह कर द्वितीय गौतम अग्निभूति अनगार यावत् विचरते हैं ।।१२९।।

भगवन् ! ऐसा कहकर तृतीय गौतम गणधर भगवान् वायुभूति अनगार श्रमण भगवान् महावीर स्वामीको वन्दना नमस्कार करके इस प्रकार बोले—हे भगवन् ! यदि देवेन्द्र देवराज शक्र यावत् ऐसी महा ऋद्धि वाला है यावत् इतनी विकुर्वणा करनेकी शक्ति वाला है, तो देवेन्द्र देवराज ईशान कितनी महाऋद्धि वाला है यावत् कितना वैक्रिय करने की शक्ति वाला है ? गौतम ! जैसा शक्रेन्द्र के विषय में कहा, वैसा ही सारा वर्णन ईशानेन्द्रके लिए जानना चाहिए । विशेषता यह है कि वह अपने वैक्रियकृत रूपोंसे सम्पूर्ण दो जम्बूद्वीपसे कुछ अधिक स्थलको भर देता है । बाकी सारा वर्णन पहलेकी तरह जानना चाहिए ।।१३०।।

भगवन् ! यदि देवेन्द्र देवराज ईशान ऐसी महा ऋद्धि वाला है, यावत्

इतना वैक्रिय करनेकी शक्ति वाला है, तो प्रकृतिसे भद्र यावत् विनीत तथा निरन्तर अट्ठम यानी तेले तेलेकी तपस्या और पारणेमें आयम्बिल ऐसी कठोर तपस्यासे अपनी आत्माको भावित करने वाला, दोनों हाथ ऊंचे रखकर सूर्यकी तरफ मुंह करके आतापना—भूमिमें आतापना लेने वाला, आपका अन्तेवासी—शिष्य कुरुदत्तपुत्र नामक अनगार पूरे छह महीने तक श्रमण पर्यायका पालन करके, पन्द्रह दिनकी संलेखनासे अपनी आत्माको संयुक्त करके, तीस भक्त तक अनशनका छेदन करके, आलोचना और प्रतिक्रमण करके, समाधिपूर्वक कालके अवसर पर काल करके, ईशान कल्पमें अपने विमानमें ईशानेन्द्रके सामानिक देवरूपमें उत्पन्न हुआ है। इत्यादि सारा वर्णन जैसा तिष्यक देवके लिए कहा है, वह सारा वर्णन कुरुदत्तपुत्र देवके विषय में भी जानना चाहिए, तो भगवन्! वह कुरुदत्तपुत्र देव कितनी महाऋद्धि वाला यावत् कितना वैक्रिय करनेकी शक्ति वाला है?—

गौतम! इस सम्बन्ध में सब पहले की भांति जान लेना चाहिए। विशेषता यह है कि कुरुदत्तपुत्र देव अपने वैक्रियकृत रूपोंसे सम्पूर्ण दो जम्बूद्वीप से कुछ अधिक स्थलको भरनेमें समर्थ है, इसी तरह दूसरे सामानिक देव, त्रायस्त्रिंशक देव, लोकपाल और अग्रमहिषियोंके विषयमें भी जानना चाहिए।··· गौतम! देवेन्द्र देवराज ईशानकी अग्रमहिषियोंकी यह विकुर्वणा शक्ति है, वह केवल विषय है, विषय मात्र है, परन्तु सम्प्राप्ति द्वारा कभी इतना वैक्रिय किया नहीं, करती नहीं और भविष्यत् काल में करेंगी भी नहीं ॥१३१॥

इसी तरह सनत्कुमार आदि देवलोकोंके विषयमें भी समझना चाहिए, किन्तु विशेषता इस प्रकार है—सनत्कुमार देवलोकके देवमें सम्पूर्ण चार जम्बूद्वीप जितने स्थलको भरने और तिर्छे असंख्यात द्वीप समुद्रों जितने स्थलको भरनेकी शक्ति है। इसी तरह सामानिक देव, त्रायस्त्रिंशक देव, लोकपाल और अग्रमहिषियां, ये सब असंख्यात द्वीप समुद्र जितने स्थलको भरनेकी शक्ति वाले हैं। सनत्कुमारसे आगे सब लोकपाल असंख्येय द्वीप समुद्र जितने स्थलको भरनेकी शक्ति वाले हैं। इसी तरह माहेन्द्र नामक चौथे देवलोकमें भी समझना चाहिए, किन्तु इतनी विशेपता है कि ये सम्पूर्ण चार जंबूद्वीपसे कुछ अधिक स्थलको भरनेमें समर्थ हैं। इसी तरह ब्रह्मलोक नामक पांचवें देवलोकमें भी जानना चाहिए, किन्तु इतनी विशेषता है कि वे संपूर्ण आठ जम्बूद्वीप जितने स्थलको भरनेमें समर्थ हैं। इसी प्रकार लान्तक नामक छठे देवलोकमें भी जानना चाहिए, किन्तु इतनी विशेपता है कि ये सम्पूर्ण आठ जम्बूद्वीपसे कुछ अधिक स्थलको भरनेमें समर्थ हैं। इसी भांति महाशुक्र नामक सातवें देवलोकके विषयमें भी जानना चाहिए, किन्तु इतनी विशेपता है कि ये सम्पूर्ण सोलह जम्बूद्वीप जितने क्षेत्रको भरनेमें समर्थ हैं।

इसी तरह सहस्रार नामक आठवें देवलोकके···सोलह जंबूद्वीपसे अधिक क्षेत्रको···। इसी भांति प्राणत देवलोकके विषयमें भी कहना चाहिए, किन्तु इतनी विशेषता है कि ये सम्पूर्ण बत्तीस जम्बूद्वीप जितने क्षेत्रको भरनेमें समर्थ हैं। इसी तरह अच्युत देवलोकके विषयमें भी जानना चाहिए, किन्तु इतनी विशेषता है कि ये सम्पूर्ण बत्तीस जम्बूद्वीपसे कुछ अधिक क्षेत्रको भरनेमें समर्थ हैं, शेष सारा वर्णन पहलेकी तरह कहना चाहिए। सेवं भंते! सेवं भंते!! ······भगवन्! यह इसी प्रकार है···। ऐसा कहकर तृतीय गौतम वायुभूति अनगार श्रमण भगवान् महावीर स्वामीको वन्दना नमस्कार कर यावत् विचरने लगे ॥१३२॥

इसके पश्चात् एक समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी 'मोका' नगरीके उद्यान से बाहर निकल कर जनपद (देश) में विचरने लगे। उस काल उस समय में 'राजगृह' नामक नगर था। (वर्णन करने योग्य)। भगवान् वहां पधारे यावत् परिषद् भगवान्‌की पर्युपासना करने लगी।

उस काल उस समयमें देवेन्द्र देवराज शूलपाणि—(हाथमें शूल धारण करने वाला) वृषभवाहन—बैल पर सवारी करने वाला, लोकके उत्तरार्द्धका स्वामी, अट्ठाइस लाख विमानों का अधिपति, आकाशके समान रजरहित निर्मल वस्त्रोंको धारण करने वाला, मालासे सुशोभित मुकुट को शिर पर धारण करने वाला, नवीन सोनेके सुन्दर विचित्र और चञ्चल कुण्डलोंसे सुशोभित मुख वाला यावत् दसों-दिशाओंको प्रकाशित करता हुआ ईशानेन्द्र ईशानकल्पके ईशानावतंसक विमानमें (राजप्रश्नीय सूत्र में कहे अनुसार) यावत् दिव्य देवऋद्धि का अनुभव करता हुआ विचरता है। वह भगवान्‌के दर्शन करने के लिये आया और यावत् जिस दिशासे आया था उसी दिशा में वापिस चला गया।

इसके पश्चात् भगवन्! इस प्रकार सम्बोधित करके गौतम स्वामीने श्रमण भगवान् महावीर स्वामीको वन्दना नमस्कार करके इस प्रकार पूछा कि—भगवन्! अहो!! देवेन्द्र देवराज ईशान ऐसी महाऋद्धि वाला है। भगवन्! ईशानेन्द्रकी वह दिव्य देवऋद्धि कहाँ गई और कहाँ प्रविष्ट हुई? गौतम! वह दिव्य देवऋद्धि शरीरमें गई और शरीरमें ही प्रविष्ट हुई।

भगवन्! वह दिव्य देवऋद्धि शरीरमें गई और शरीरमें प्रविष्ट हुई, ऐसा किस कारणसे कहा जाता है? गौतम! जैसे कोई कूडागार (कूटाकार) शाला हो, जो कि दोनों तरफ से लिपी हुई हो, गुप्तद्वार वाली हो, पवन रहित हो, पवनके प्रवेशसे रहित गम्भीर हो। ऐसी कूटाकारशालाका दृष्टान्त यहाँ कहना चाहिए।

भगवन्! देवेन्द्र देवराज ईशानको वह दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देवकान्ति और दिव्य देवप्रभाव किस प्रकार लब्ध हुआ, प्राप्त हुआ और अभिसमन्वागत हुआ (सम्मुख आया)? यह ईशानेन्द्र पूर्वभव में कौन था? उसका नाम और

गोत्र क्या था ? वह किस ग्राम, नगर यावत् सन्निवेश में रहता था ? उसने क्या सुना ? क्या दिया ? क्या खाया ? क्या किया ? क्या आचरण किया ? किस तथारूप श्रमण या माहनके पास एक भी आर्य और धार्मिक वचन सुना था एवं हृदयमें धारण किया था, जिससे कि देवेन्द्र देवराज ईशानको यह दिव्य देव-ऋद्धि यावत् मिली है, प्राप्त हुई और सम्मुख आई है ?

गौतम ! उस काल उस समय में इसी जम्बूद्वीपके भरत क्षेत्रमें ताम्र-लिप्ति नाम की नगरी थी। उस नगरीका वर्णन करना चाहिए। उस ताम्रलिप्ति नगरी में तामली नाम का मौर्यपुत्र (मौर्यवंश में उत्पन्न) गृहपति रहता था। वह तामली गृहपति धनाढ्य और दीप्ति वाला था, यावत् वह बहुतसे मनुष्यों द्वारा अपराभवनीय (नहीं दबने वाला) था। किसी एक समयमें उस मौर्यपुत्र तामली गृहपतिको रात्रिके पिछले भागमें कुटुम्बजागरण करते हुए ऐसा विचार उत्पन्न हुआ कि मेरे द्वारा पूर्वकृत सुआ-चरित, सुपराक्रमयुक्त, शुभ और कल्याणरूप कर्मोका कल्याणफलरूप प्रभाव अभी तक विद्यमान है, जिसके कारण मेरे घर में हिरण्य (चाँदी) बढ़ता है, सुवर्ण बढ़ता है, रोकड़ रुपया रूप धन बढ़ता है, धान्य बढ़ता है, एवं मैं पुत्रों द्वारा, पशुओं द्वारा और पुष्कल धन, कनक, रत्न, मणि, मोती, शंख, चन्द्रकान्त आदि मणि, प्रवाल आदि द्वारा वृद्धिको प्राप्त हो रहा हूं।—

पूर्वकृत, सुआचरित, यावत् पुराने कर्मोका नाश हो रहा है, इस बात को देखता हुआ भी यदि मैं उपेक्षा करता रहूं अर्थात् भविष्यत्कालीन लाभ की तरफ उदासीन बना रहूं, तो यह मेरे लिये ठीक नहीं है। किन्तु जब तक मैं सोने चाँदी आदि द्वारा वृद्धि को प्राप्त हो रहा हूं और जब तक मेरे मित्र, ज्ञातिजन, कुटुम्बीजन, दास, दासी आदि मेरा आदर करते हैं, मुझे स्वामीरूप से मानते हैं, मेरा सत्कार, सन्मान करते हैं और मुझे कल्याणरूप, मंगलरूप, देवरूप, ज्ञानरूप, मान कर विनयपूर्वक मेरी सेवा करते हैं, तब तक मुझे अपना कल्याण कर लेना चाहिये। यही मेरे लिये श्रेयस्कर है। अतः कल प्रकाशवाली रात्रि होने पर अर्थात् प्रातःकाल का प्रकाश होने पर सूर्योदयके पश्चात् मैं स्वयं ही अपने हाथ से लकड़ीका पात्र बनाऊं और पर्याप्त अशन, पान, खादिम, स्वादिमरूप चार प्रकार का आहार तैयार करके अपने मित्र, ज्ञातिजन, स्वजन सम्बन्धी और दास दासी आदि सबको निमन्त्रित करके उनको सम्मानपूर्वक अशनादि चारों प्रकार का आहार जिमाकर, वस्त्र सुगंधित पदार्थ, माला और आभूषण आदि द्वारा उनका सत्कार सम्मान करके, उन मित्र ज्ञातिजनादि के समक्ष अपने बड़े पुत्रको कुटुम्ब में स्थापित करके अर्थात् उसे कुटुम्बका भार सौंपकर और उन सब लोगों को पूछकर मैं स्वयं लकड़ी का पात्र लेकर एवं मुण्डित होकर 'प्राणामा' नामकी

प्रव्रज्या अंगीकार करूं और प्रव्रज्या ग्रहण करते ही इस प्रकारका अभिग्रह धारण करूं कि–मैं यावज्जीवन निरन्तर छठ छठ अर्थात् वेले वेले तपस्या करूं और सूर्य के सम्मुख दोनों हाथ ऊंचे करके आतापनाभूमिमें आतापना लूं और वेले की तपस्याके पारणेके दिन आतापनाकी भूमि से नीचे उतर कर लकड़ी का पात्र हाथमें लेकर ताम्रलिप्ति नगरी में ऊंच, नीच और मध्यम कुलोंसे भिक्षाकी विधि द्वारा शुद्ध ओदन अर्थात् केवल पकाये हुए चावल लाऊं और उनको पानी से इक्कीस वार धोकर फिर खाऊं, इस प्रकार उस तामली गृहपतिने विचार किया।

फिर प्रातःकाल होने पर सूर्योदय के पश्चात् उसने स्वयं लकड़ी का पात्र बनाकर पर्याप्त अशन, पान, खादिम, स्वादिमरूप चारों प्रकार का आहार तैयार करवाया, फिर स्नान करके शुद्ध उत्तम० वस्त्र पहने और अल्पभार और महामूल्य वाले आभूषणोंसे अपने शरीरको अलंकृत किया, फिर भोजनके समय वह तामली गृहपति भोजन मण्डप में आकर उत्तम आसन पर सुखपूर्वक वैठा। इसके अनन्तर मित्र, ज्ञातिजन, स्वजन, सगे सम्बन्धी और दास दासीके साथ उस चारों प्रकार के आहार का स्वाद लेता हुआ, विशेष स्वाद लेता हुआ, परस्पर देता हुआ अर्थात् जिमाता हुआ और स्वयं जीमता हुआ वह तामली गृहपति विचरने लगा। जीमने के पश्चात् उसने हाथ धोये और चुल्लू किया। अर्थात् मुख साफ करके शुद्ध हुआ। फिर उन सब स्वजन सम्बन्धी आदिका वस्त्र, सुगंधित पदार्थ और माला आदिसे सत्कार-सम्मान करके उनके समक्ष अपने ज्येष्ठ पुत्र को कुटुम्ब में स्थापित किया अर्थात् कुटुम्बका भार सौंपा। फिर उन सब स्वजनादि को और ज्येष्ठ पुत्र को पूछकर. उस तामली गृहपति ने मुण्डित होकर 'प्राणामा' नामकी प्रव्रज्या अंगीकार की।

जिस समय तामली गृहपतिने 'प्राणामा' नाम की प्रव्रज्या अंगीकार की उसी समय उसने इस प्रकारका अभिग्रह धारण किया—यावज्जीवन मैं वेले वेले की तपस्या करूँगा, यावत् पूर्व कथितानुसार भिक्षाकी विधि द्वारा केवल ओदन (पकाये हुए चावल) लाकर उन्हें इक्कीस बार पानीसे धोकर उनका आहार करूँगा। इस प्रकार अभिग्रह धारण करके यावज्जीवन निरन्तर वेले वेले की तपस्यापूर्वक दोनों हाथ ऊँचे रखकर सूर्यके सामने आतापना लेता हुआ वह तामली तापस विचरने लगा। वेलेके पारणेके दिन आतापना-भूमि से नीचे उतर कर स्वयं लकड़ीका पात्र लेकर ताम्रलिप्ति नगरीमें ऊंच, नीच और मध्यम कुलों में भिक्षाकी विधिपूर्वक भिक्षाके लिए फिरता था। भिक्षामें केवल ओदन चावल लाता था और उन्हें इक्कीस बार पानीसे धोकर भोजन करता था।

भगवन् ! तामली तापस द्वारा ली हुई प्रव्रज्या का नाम 'प्राणामा' किस कारण से कहा जाता है ? गौतम ! जिस व्यक्ति ने 'प्राणामा' प्रव्रज्या ली हो,

गोत्र क्या था ? वह किस ग्राम, नगर यावत् सन्निवेश में रहता था ? उसने क्या सुना ? क्या दिया ? क्या खाया ? क्या किया ? क्या आचरण किया ? किस तथारूप श्रमण या माहनके पास एक भी आर्य और धार्मिक वचन सुना था एवं हृदयमें धारण किया था, जिससे कि देवेन्द्र देवराज ईशानको यह दिव्य देव-ऋद्धि यावत् मिली है, प्राप्त हुई और सम्मुख आई है ?

गौतम ! उस काल उस समय में इसी जम्बूद्वीपके भरत क्षेत्रमें ताम्र-लिप्ति नाम की नगरी थी। उस नगरीका वर्णन करना चाहिए। उस ताम्रलिप्ति नगरी में तामली नाम का मौर्यपुत्र (मौर्यवंश में उत्पन्न) गृहपति रहता था। वह तामली गृहपति धनाढ्य और दीप्ति वाला था, यावत् वह बहुतसे मनुष्यों द्वारा अपराभवनीय (नहीं दबने वाला) था। किसी एक समयमें उस मौर्यपुत्र तामली गृहपतिको रात्रिके पिछले भागमें कुटुम्बजागरण करते हुए ऐसा विचार उत्पन्न हुआ कि मेरे द्वारा पूर्वकृत सुआ-चरित, सुपराक्रमयुक्त, शुभ और कल्याणरूप कर्मोका कल्याणफलरूप प्रभाव अभी तक विद्यमान है, जिसके कारण मेरे घर में हिरण्य (चाँदी) बढ़ता है, सुवर्ण बढ़ता है, रोकड़ रुपया रूप धन बढ़ता है, धान्य बढ़ता है, एवं मैं पुत्रों द्वारा, पशुओं द्वारा और पुष्कल धन, कनक, रत्न, मणि, मोती, शंख, चन्द्रकान्त आदि मणि, प्रवाल आदि द्वारा वृद्धिको प्राप्त हो रहा हूं।—

पूर्वकृत, सुआचरित, यावत् पुराने कर्मोका नाश हो रहा है, इस बात को देखता हुआ भी यदि मैं उपेक्षा करता रहूं अर्थात् भविष्यतकालीन लाभ की तरफ उदासीन बना रहूं, तो यह मेरे लिये ठीक नहीं है। किन्तु जब तक मैं सोने चाँदी आदि द्वारा वृद्धि को प्राप्त हो रहा हूं और जब तक मेरे मित्र, ज्ञातिजन, कुटुम्बीजन, दास, दासी आदि मेरा आदर करते हैं, मुझे स्वामीरूप से मानते हैं, मेरा सत्कार, सन्मान करते हैं और मुझे कल्याणरूप, मंगलरूप, देवरूप, ज्ञानरूप, मान कर विनयपूर्वक मेरी सेवा करते हैं, तब तक मुझे अपना कल्याण कर लेना चाहिये। यही मेरे लिये श्रेयस्कर है। अतः कल प्रकाशवाली रात्रि होने पर अर्थात् प्रातःकाल का प्रकाश होने पर सूर्योदयके पश्चात् मैं स्वयं ही अपने हाथ से लकड़ीका पात्र बनाऊं और पर्याप्त अशन, पान, खादिम, स्वादिमरूप चार प्रकार का आहार तैयार करके अपने मित्र, ज्ञातिजन, स्वजन सम्बन्धी और दास दासी आदि सबको निमन्त्रित करके उनको सम्मानपूर्वक अशनादि चारों प्रकार का आहार जिमाकर, वस्त्र सुगंधित पदार्थ, माला और आभूषण आदि द्वारा उनका सत्कार सम्मान करके, उन मित्र ज्ञातिजनादि के समक्ष अपने बड़े पुत्रको कुटुम्ब में स्थापित करके अर्थात् उसे कुटुम्बका भार सौंपकर और उन सब लोगों को पूछकर मैं स्वयं लकड़ी का पात्र लेकर एवं मुण्डित होकर 'प्राणामा' नामकी

प्रव्रज्या अंगीकार करूं और प्रव्रज्या ग्रहण करते ही इस प्रकारका अभिग्रह धारण करूं कि—मैं यावज्जीवन निरन्तर छठ छठ अर्थात् बेले बेले तपस्या करूं और सूर्य के सम्मुख दोनों हाथ ऊंचे करके आतापनाभूमिमें आतापना लूं और बेले की तपस्याके पारणेके दिन आतापनाकी भूमि से नीचे उतर कर लकड़ी का पात्र हाथमें लेकर ताम्रलिप्ति नगरी में ऊंच, नीच और मध्यम कुलोंसे भिक्षाकी विधि द्वारा शुद्ध ओदन अर्थात् केवल पकाये हुए चावल लाऊं और उनको पानी से इक्कीस वार धोकर फिर खाऊं, इस प्रकार उस तामली गृहपतिने विचार किया।

फिर प्रातःकाल होने पर सूर्योदय के पश्चात् उसने स्वयं लकड़ी का पात्र बनाकर पर्याप्त अशन, पान, खादिम, स्वादिमरूप चारों प्रकार का आहार तैयार करवाया, फिर स्नान करके शुद्ध उत्तम० वस्त्र पहने और अल्पभार और महामूल्य वाले आभूषणोंसे अपने शरीरको अलंकृत किया, फिर भोजनके समय वह तामली गृहपति भोजन मण्डप में आकर उत्तम आसन पर सुखपूर्वक बैठा। इसके अनन्तर मित्र, ज्ञातिजन, स्वजन, सगे सम्बन्धी और दास दासीके साथ उस चारों प्रकार के आहार का स्वाद लेता हुआ, विशेष स्वाद लेता हुआ, परस्पर देता हुआ अर्थात् जिमाता हुआ और स्वयं जीमता हुआ वह तामली गृहपति विचरने लगा। जीमने के पश्चात् उसने हाथ धोये और चुल्लू किया। अर्थात् मुख साफ करके शुद्ध हुआ। फिर उन सब स्वजन सम्बन्धी आदिका वस्त्र, सुगंधित पदार्थ और माला आदिसे सत्कार-सम्मान करके उनके समक्ष अपने ज्येष्ठ पुत्र को कुटुम्ब में स्थापित किया अर्थात् कुटुम्बका भार सौंपा। फिर उन सब स्वजनादि को और ज्येष्ठ पुत्र को पूछकर उस तामली गृहपति ने मुण्डित होकर 'प्राणामा' नामकी प्रव्रज्या अंगीकार की।

जिस समय तामली गृहपतिने 'प्राणामा' नाम की प्रव्रज्या अंगीकार की उसी समय उसने इस प्रकारका अभिग्रह धारण किया—यावज्जीवन मैं बेले बेले की तपस्या करूँगा, यावत् पूर्व कथितानुसार भिक्षाकी विधि द्वारा केवल ओदन (पकाये हुए चावल) लाकर उन्हें इक्कीस बार पानीसे धोकर उनका आहार करूँगा। इस प्रकार अभिग्रह धारण करके यावज्जीवन निरन्तर बेले बेले की तपस्यापूर्वक दोनों हाथ ऊँचे रखकर सूर्यके सामने आतापना लेता हुआ वह तामली तापस विचरने लगा। बेलेके पारणेके दिन आतापना-भूमि से नीचे उतर कर स्वयं लकड़ीका पात्र लेकर ताम्रलिप्ति नगरीमें ऊंच, नीच और मध्यम कुलों में भिक्षाकी विधिपूर्वक भिक्षाके लिए फिरता था। भिक्षामें केवल ओदन चावल लाता था और उन्हें इक्कीस बार पानीसे धोकर भोजन करता था।

भगवन्! तामली तापस द्वारा ली हुई प्रव्रज्या का नाम 'प्राणामा' किस कारण से कहा जाता है? गौतम! जिस व्यक्ति ने 'प्राणामा' प्रव्रज्या ली हो,

वह जिसको जहां देखता है उसे वहीं प्रणाम करता है अर्थात् इन्द्र, स्कन्द (कार्तिकेय), रुद्र, वैश्रमण (उत्तर दिशा के लोकपाल—कुवेर), शान्त रूपवाली चण्डिका, रौद्र रूपवाली चण्डिका अर्थात् महिषासुरको पीटती चण्डिका, राजा, युवराज, तलवर, माडम्बिक, कौटुम्बिक, सार्थवाह, कौआ, कुत्ता, चाण्डाल, इत्यादि सवको प्रणाम करता है। इनमें से उच्च व्यक्तिको देखकर उच्च रीतिसे प्रणाम करता है और नीचको देखकर नीची रीतिसे प्रणाम करता है अर्थात् जिस को जिस रूपमें देखता है उसको उसी रूप में प्रणाम करता है। इस कारण गौतम ! इस प्रव्रज्या का नाम 'प्राणामा' प्रव्रज्या है ॥१३३॥

इसके पश्चात् वह मौर्यपुत्र तामली तापस उस उदार, विपुल, प्रदत्त और प्रगृहीत वाल तप द्वारा शुष्क (सूखा) वन गया, रूक्ष वन गया यावत् इतना दुवला हो गया कि उसकी नाड़ियां बाहर दिखाई देने लग गई। इसके पश्चात् एक दिन पिछली रात्रिके समय अनित्य जागरणा जागते हुए तामली वाल तपस्वी को इस प्रकारका विचार उत्पन्न हुआ कि मैं इस उदार, विपुल यावत् उदग्र, उदात्त, उत्तम और महा प्रभावशाली तपःकर्म के द्वारा शुष्क और रूक्ष हो गया हूं यावत् मेरा शरीर इतना कृश हो गया है कि नाड़ियां बाहर दिखाई देने लग गई हैं। इस लिये जब तक मुझमें उत्थान, कर्म, वल, वीर्य और पुरुषकारपराक्रम है, तब तक मेरे लिए यह श्रेयस्कर है कि कल प्रातःकाल यावत् सूर्योदय होने पर मैं ताम्रलिप्ति नगरी में जाऊँ। वहां पर दृष्टभाषित (देखकर जिनके साथ बातचीत की गई हो), पा० जन, गृहस्थ, पूर्व परिचित (गृहस्थावस्था के परिचित), पश्चात् परिचित (तपस्वी होनेके वाद परिचयमें आये हुए) और मेरी जितनी दीक्षा पर्यायवाले तापसोंको पूछकर, ताम्रलिप्ति नगरीके बीचोबीच से निकल कर, पादुका (खड़ाऊँ) तथा कुण्डी आदि उपकरणों को और लकड़ीके पात्रको एकान्तमें रखकर, ताम्रलिप्ति नगरीके उत्तरपूर्वके दिशा-भागमें अर्थात ईशान कोणमें 'निर्वर्तनिक' (एक परिमित क्षेत्र अथवा अपने शरीर परिमाण स्थान) मण्डल को साफ करके संलेखना तपके द्वारा आत्माको सेवित कर आहारपानी का सर्वथा त्याग करके पादपोपगमन संथारा करूँ एवं मृत्युकी चाहना नहीं करता हुआ शान्त-चित्तसे स्थिर रहूं। यह मेरे लिये श्रेयस्कर है। ऐसा विचार कर यावत् सूर्योदय होने पर यावत पूर्व कथितानुसार पूछकर उस तामली वाल-तपस्वीने अपने उपकरणोंको एकान्त में रखकर यावत् आहार पानी का त्याग करके पादपोपगमन नामका अनशन कर दिया।

उस काल उस समय में वलिचंचा (उत्तर दिशा के असुरेन्द्र असुर-राज चमरकी राजधानी) इन्द्र और पुरोहितसे रहित थी। तव वलिचंचा राजधानीमें रहने वाले वहुतसे असुरकुमार देव और देवियोंने उस तामली वाल

तपस्वीको अवधिज्ञान द्वारा देखा। देख कर उन्होंने परस्पर एक दूसरे को आमन्त्रित कर इस प्रकार कहा—देवानुप्रियो ! इस समय वलिचंचा राजधानी इन्द्र और पुरोहितसे रहित है। देवानुप्रियो ! हम सब इन्द्राधीन और इन्द्राधिष्ठित हैं, अपना सारा कार्य इन्द्रकी आधीनता में होता है। हे देवानुप्रियो ! यह तामली बाल तपस्वी ताम्रलिप्ति नगरीके बाहर ईशानकोणमें निर्वर्तनिक मण्डलको साफ करके संलेखना द्वारा अपनी आत्माको संयुक्त करके आहार पानीका त्याग कर और पादपोपगमन अनशनको स्वीकार करके रहा हुआ है। तो अपने लिये यह श्रेयस्कर है कि अपनी इस वलिचंचा राजधानीमें इन्द्ररूपसे आनेके लिए इस तामली बाल तपस्वीको संकल्प करावें। ऐसा विचार करके तथा परस्पर एक दूसरेकी बातको मान्य करके वे सब असुरकुमार वलिचंचा राजधानीके बीचोबीचसे निकल कर रुचकेन्द्र उत्पात पर्वत पर आये। वहाँ आकर वैक्रिय समुद्घात द्वारा समवहत होकर यावत् उत्तर वैक्रिय रूप बनाकर उत्कृष्ट, त्वरित, चपल, चण्ड, जयवती, निपुण, श्रम रहित, सिंह सदृश, शीघ्र, उद्धूत और दिव्य देवगति द्वारा तिर्छे असंख्येय द्वीप समुद्रोंके बीचोबीच होते हुए इस जम्बूद्वीपके भरत क्षेत्रकी ताम्रलिप्ती नगरीके बाहर जहां मौर्यपुत्र तामली बाल तपस्वी था, वहां आये। वहां आकर ऊपर आकाश में तामली बाल तपस्वीके ठीक सामने खड़े हुए। खड़े होकर दिव्य देव ऋद्धि, दिव्य देवकान्ति, दिव्य देवप्रभाव और बत्तीस प्रकार के दिव्य नाटक बतलाये। फिर तामली बाल तपस्वीकी तीन बार प्रदक्षिणा करके वन्दना नमस्कार किया।

वन्दना नमस्कार करके वे इस प्रकार बोले—देवानुप्रिय ! हम बलिचंचा राजधानीमें रहने वाले बहुतसे असुरकुमार देव और देवियां आपको वन्दना नमस्कार करते हैं, यावत् आपकी पर्युपासना करते हैं। देवानुप्रिय ! अभी हमारी बलिचंचा राजधानी इन्द्र और पुरोहितसे रहित है। देवानुप्रिय ! हम सब इन्द्राधीन और इन्द्राधिष्ठित रहने वाले हैं। हमारा सारा कार्य इन्द्राधीन होता है। इसलिए देवानुप्रिय ! आप बलिचंचा राजधानीका आदर करो, उसका स्वामित्व स्वीकार करो, उसका मन में स्मरण करो, उसके लिए निश्चय करो, निदान (नियाणा) करो और बलिचंचा राजधानीका स्वामी बननेका संकल्प करो। देवानुप्रिय ! यदि आप हमारे कथनानुसार करेंगे, तो यहां कालके अवसर काल करके आप बलिचंचा राजधानीमें उत्पन्न होंगे और वहां उत्पन्न होकर हमारे इन्द्र बनेंगे, तथा हमारे साथ दिव्य भोग भोगते हुए आनन्दका अनुभव करेंगे।

जब बलिचंचा राजधानीमें रहने वाले बहुतसे असुरकुमार देव और देवियोंने उस तामली बाल-तपस्वीको पूर्वोक्त प्रकारसे कहा, तो उसने उनकी बातका आदर नहीं किया, स्वीकार नहीं किया, परन्तु मौन रहा। तब वे बलिचंचा राजधानीमें रहने वाले बहुतसे असुरकुमार देव और देवियोंने उस तामली बाल-तपस्वी की फिर तीन बार प्रदक्षिणा करके दूसरी बार, तीसरी बार इसी प्रकार कहा कि आप हमारे स्वामी बनने का संकल्प करें, इत्यादि। किन्तु उस तामली बाल-तपस्वीने उनकी बातका कुछ भी उत्तर नहीं दिया और मौन रहा। इसके पश्चात् जब तामली बालतपस्वीके द्वारा उस बलिचंचा राजधानीमें रहने वाले बहुतसे असुरकुमार देव और देवियों का अनादर हुआ और उनकी बात मान्य नहीं हुई, तब वे देव और देवियाँ जिस दिशा से आये थे, उसी दिशा में वापिस चले गये ॥१३४॥

उस काल उस समयमें ईशान देवलोक इन्द्र और पुरोहित रहित था। वह तामली बालतपस्वी पूरे साठ हजार वर्ष तक तापस पर्याय का पालन करके दो महीने की संलेखनासे आत्मा को संयुक्त करके एक सौ बीस भक्त अनशनका छेदन करके और काल के अवसर काल करके ईशान देवलोक के ईशानावतंसक विमान की उपपात सभा की देवशय्या—जो कि देववस्त्रसे ढकी हुई है, उसमें अंगुल के असंख्येय भाग जितनी अवगाहनामें ईशान देवलोक के इन्द्रके विरहकाल (अनुपस्थिति) में ईशानेन्द्र रूप से उत्पन्न हुआ। तत्काल उत्पन्न हुआ वह देवेन्द्र देवराज ईशान पांच प्रकारकी पर्याप्तियों से पर्याप्त बना। अर्थात् १ आहार पर्याप्ति २ शरीर पर्याप्ति ३ इन्द्रिय पर्याप्ति ४ श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति और ५ भाषामनःपर्याप्ति (देवों के भाषा और मनःपर्याप्ति शामिल बंधती है अतः) इन पांच पर्याप्तियोंसे पर्याप्त बना।

इसके पश्चात् बलिचंचा राजधानी में रहने वाले बहुत से असुरकुमार देव और देवियों ने जब यह जाना कि तामली बाल-तपस्वी काल धर्म को प्राप्त हो गया है और ईशान देवलोक में देवेन्द्र रूपसे उत्पन्न हुआ है, तब उनको बड़ा क्रोध एवं कोप उत्पन्न हुआ। क्रोधके वश अत्यन्त कुपित हुए। तत्पश्चात् वे सब बलिचंचा राजधानी के बीचोबीच निकले यावत् उत्कृष्ट देवगति के द्वारा इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र की ताम्रलिप्ति नगरी के बाहर जहां तामली बाल-तपस्वी का मृत शरीर था वहां आये। फिर तामली बाल-तपस्वी के मृत शरीर के बाएं पैर को रस्सी से बांधा। और उसके मुखमें तीन बार थूका। फिर ताम्रलिप्ति नगरी के सिंघाड़े के आकार के तीन मार्गों में, चार मार्गों के चौक में एवं महा मार्गों में अर्थात् ताम्रलिप्ति नगरी के सभी प्रकार के मार्गोंमें उसके मृत शरीर को घसीटने लगे और महाध्वनि द्वारा उद्घोषणा करते हुए इस प्रकार

कहने लगे कि "स्वयमेव तपस्वी का वेप पहन कर 'प्राणामा' प्रव्रज्या अंगीकार करने वाला यह तामली बाल-तपस्वी हमारे सामने क्या है ? तथा ईशान देवलोक में उत्पन्न हुआ देवेन्द्र देवराज ईशान भी हमारे सामने क्या है ?" इस प्रकार कह कर उस तामली बाल तपस्वीके मृत शरीर की अवहेलना, निन्दा, खिसा, गर्हा, अपमान, तर्जना, ताड़ना, कदर्थना और भर्त्सना की और अपनी इच्छानुसार आड़ा टेढ़ा घसीटा। ऐसा करके उसके शरीरको एकान्त में डाल दिया और जिस दिशासे आये थे उसी दिशा में वापिस चले गये ॥१३५॥

इसके पश्चात् ईशान देवलोक में रहने वाले बहुत से वैमानिक देव और देवियोंने इस प्रकार देखा कि बलिचञ्चा राजधानी में रहने वाले बहुत से असुरकुमार देव और देवियाँ तामली बालतपस्वी के मृत शरीर की अवहेलना, निन्दा, खिसनादि कर रहे हैं और यावत् उस मृतकलेवर को अपनी इच्छानुसार इधर उधर घसीट रहे हैं। इस प्रकार देखने से उन देव और देवियों को बड़ा क्रोध आया। क्रोध से मिसमिसाट करते हुए वे देवेन्द्र देवराज ईशान के पास आकर दोनों हाथ जोड़कर मस्तक पर अञ्जलि करके इन्द्र को जय विजय शब्दों से बधाई देकर फिर वे इस प्रकार बोले—"देवानुप्रिय ! बलिचञ्चा राजधानी में रहने वाले बहुत से असुरकुमार देव और देवियां आप देवानुप्रिय को काल धर्म प्राप्त हुए एवं ईशानकल्प में इन्द्ररूप से उत्पन्न हुए देखकर बहुत कुपित हुए हैं, यावत् आपके वहांके मृत शरीरको अपनी इच्छानुसार इधर उधर घसीटकर एकांत में डाल दिया है और वे जिस दिशासे आये थे उसी दिशामें वापिस चले गये हैं। जब देवेन्द्र देवराज ईशान ने ईशान कल्पमें रहने वाले बहुतसे वैमानिक देव और देवियोंसे इस बातको सुना तब वह बड़ा कुपित हुआ और क्रोधसे मिसमिसाट करता हुआ देवशय्या में रहा हुआ ही वह ईशानेन्द्र ललाट में तीन सल डालकर एवं भृकुटी चढ़ाकर बलिचंचा राजधानी की ओर एकटक दृष्टि से देखने लगा। इस प्रकार क्रोध से देखने पर उसके दिव्यप्रभावसे बलिचंचा राजधानी अंगार, अग्नि के कण, राख एवं तप्त हुई बालू रेत के समान अत्यन्त तप्त हो गई।

बलिचंचा राजधानी को तपी हुई जानकर वे असुरकुमार देव और देवियाँ अत्यन्त भयभीत हुए, त्रस्त हुए, उद्विग्न हुए और भय के मारे चारों तरफ इधर उधर दौड़ने लगे, भागने लगे और एक दूसरे के पीछे छिपने लगे। जब असुरकुमार देव और देवियों को पता लगा कि ईशानेन्द्र के कुपित होने से यह हमारी राजधानी इस प्रकार तप गई है, तब वे सब ईशानेन्द्रकी उस दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देवकान्ति, दिव्य देवप्रभाव और दिव्य तेजोलेश्याको सहन नहीं करते हुए, देवेन्द्र देवराज ईशान के ठीक सामने ऊपर की ओर मुख करके दोनों हाथ जोड़ कर, मस्तक पर अञ्जलि करके ईशानेन्द्र को जय विजय शब्दों द्वारा बधाई देकर

इस प्रकार निवेदन······कि "देवानुप्रिय ! आपको जो दिव्य देवऋद्धि यावत् देवप्रभाव मिला है, प्राप्त हुआ है, सम्मुख आया है, उसको हमने देखा। देवानुप्रिय ! हम अपनी भूल के लिये आप से क्षमा चाहते हैं। आप क्षमा प्रदान करें। आप क्षमा करने योग्य हैं। हम फिर कभी इस प्रकार की भूल नहीं करेंगे। इस प्रकार उन्होंने ईशानेन्द्रसे अपने अपराध के लिये विनयपूर्वक क्षमा माँगी। उनके क्षमा माँगने पर ईशानेन्द्रने उस दिव्य देवऋद्धि यावत् अपनी छोड़ी हुई तेजोलेश्या को वापिस खींच लिया। गौतम ! तब से बलिचंचा राजधानी में रहने वाले असुरकुमार देव और देवियाँ, देवेन्द्र देवराज ईशान का आदर करते हैं यावत् उसकी पर्युपासना करते हैं, और तभी से उनकी आज्ञा, सेवा, आदेश और निर्देशमें रहते हैं। हे गौतम ! देवेन्द्र देवराज ईशानको वह दिव्य देवऋद्धि यावत् इस प्रकार मिली है।

भगवन् ! देवेन्द्र देवराज ईशानकी स्थिति कितने कालकी कही गई है ? गौतम ! देवेन्द्र देवराज ईशानकी स्थिति दो सागरोपमसे कुछ अधिककी कही गई है। भगवन् ! देवेन्द्र देवराज ईशान उस देवलोककी आयु पूर्ण होने पर यावत् कहां जाएगा और कहां उत्पन्न होगा ? गौतम ! वह महाविदेह क्षेत्रमें जन्म लेकर सिद्ध होगा यावत् समस्त दुःखोंका अन्त करेगा ॥१३६॥

भगवन् ! क्या देवेन्द्र देवराज शक्रके विमानोंसे देवेन्द्र देवराज ईशानके विमान कुछ (थोड़े से) ऊँचे हैं, कुछ उन्नत हैं ? क्या देवेन्द्र देवराज ईशानके विमानोंसे देवेन्द्र देवराज शक्रके विमान कुछ नीचे हैं ? कुछ निम्न हैं ? हां, गौतम ! यह इसी तरहसे है। यहां ऊपरका सूत्रपाठ उत्तर रूपसे समझना चाहिए। अर्थात् शक्रेन्द्रके विमानोंसे ईशानेन्द्रके विमान कुछ थोड़ेसे ऊँचे हैं, कुछ थोड़ेसे उन्नत हैं और ईशानेन्द्रके विमानोंसे शक्रेन्द्रके विमान कुछ थोड़ेसे नीचे हैं, कुछ थोड़े निम्न हैं। भगवन् ! इसका क्या कारण है ? गौतम ! जैसे—हथेलीका एक भाग कुछ ऊँचा और उन्नत होता है और एक भाग कुछ नीचा और निम्न होता है। इसी तरह शक्रेन्द्र और ईशानेन्द्रके विमानोंके विषयमें जानना चाहिए। इसी कारणसे पूर्वोक्त प्रकारसे कहा जाता है ॥१३७॥

भगवन् ! क्या देवेन्द्र देवराज शक्र, देवेन्द्र देवराज ईशानके पास आनेमें समर्थ है ? हां गौतम ! शक्रेन्द्र ईशानेन्द्रके पास आनेमें समर्थ है। भगवन् ! जब शक्रेन्द्र ईशानेन्द्रके पास आता है, तो क्या ईशानेन्द्रका आदर करता हुआ आता है, या अनादर करता हुआ आता है ? गौतम ! जब शक्रेन्द्र ईशानेन्द्रके पास आता है, तब वह उसका आदर करता हुआ आता है, किन्तु अनादर करता हुआ नहीं आता। भगवन् ! देवेन्द्र देवराज ईशान, देवेन्द्र देवराज शक्रके पास आनेमें समर्थ है ? हां, गौतम ! ईशानेन्द्र शक्रेन्द्रके पास आनेमें समर्थ है। भगवन् ! जब

ईशानेन्द्र शक्रेन्द्रके पास आता है, तो क्या वह शक्रेन्द्रका आदर करता हुआ आता है, या अनादर करता हुआ आता है ? गौतम ! जब ईशानेन्द्र शक्रेन्द्रके पास आता है, तब आदर करता हुआ भी आ सकता है और अनादर करता हुआ भी आ सकता है।

भगवन् ! क्या देवेन्द्र देवराज शक्र, देवेन्द्र देवराज ईशानके सपक्ष (चारों तरफ) सप्रतिदिश (सब तरफ) देखने में समर्थ है ? गौतम ! जिस तरहसे पास आने के सम्बन्धमें दो आलापक कहे हैं, उसी प्रकार देखने के सम्बन्धमें भी दो आलापक कहने चाहिएं। भगवन् ! क्या देवेन्द्र देवराज शक्र, देवेन्द्र देवराज ईशानके साथ आलाप संलाप--बातचीत करने में समर्थ है ? हां, गौतम ! वह आलाप-संलाप--बातचीत करने में समर्थ है। जिस तरह पास आनेके सम्बन्धमें दो आलापक कहे हैं, उसी रीतिसे आलाप-संलापके विषयमें भी दो आलापक कहने चाहिएँ।

भगवन् ! उन देवेन्द्र देवराज शक्र और देवेन्द्र देवराज ईशानके बीचमें परस्पर कोई कृत्य (प्रयोजन) करणीय (विधेयकार्य) होता है ? हां, गौतम ! होता है। भगवन् ! जब उन्हें कृत्य और करणीय होते हैं, तब वे किस प्रकार व्यवहार करते हैं ? गौतम ! जब देवेन्द्र देवराज शक्रको कार्य होता है, तब वह देवेन्द्र देवराज ईशानके पास आता है और जब देवेन्द्र देवराज ईशानको कार्य होता है, तब वह देवेन्द्र देवराज शक्रके पास आता है। उनके परस्पर सम्बोधित करनेका तरीका यह है--ईशानेन्द्र पुकारता है कि--"हे दक्षिण लोकार्द्धपति देवेन्द्र देवराज शक्र !" शक्रेन्द्र पुकारता है कि--"हे उत्तर लोकार्द्धपति देवेन्द्र देवराज ईशान ! (यहां 'इति' शब्द कार्यको सूचित करनेके लिए है और 'भो' शब्द आमन्त्रणवाची है। 'इति भो ! इति भो' यह उनके परस्पर सम्बोधित करनेका तरीका है।) इस प्रकार सम्बोधित करके वे परस्पर अपना कार्य करते रहते हैं॥१३८॥

क्या देवेन्द्र देवराज शक्र और देवेन्द्र देवराज ईशान, इन दोनोंमें परस्पर विवाद भी होता हैं ? हां, गौतम ! उन दोनों इन्द्रोंके बीचमें विवाद भी होता है। भगवन् ! जब उन दोनों इन्द्रोंके बीचमें विवाद हो जाता है, तब वे क्या करते हैं ? गौतम ! जब शक्रेन्द्र और ईशानेन्द्र, इन दोनोंके बीचमें विवाद हो जाता है, तब वे दोनों देवेन्द्र देवराज सनत्कुमारका मनमें स्मरण करते हैं। उनके स्मरण करते ही सनत्कुमारेन्द्र उनके पास आता है। वह आकर जो कहता है उसको वे दोनों इन्द्र मान्य करते हैं। वे दोनों इन्द्र उसकी आज्ञा, सेवा, आदेश और निर्देशमें रहते हैं ॥१३९॥

भगवन् ! क्या देवेन्द्र देवराज सनत्कुमार भवसिद्धिक है, या अभवसिद्धिक है ? सम्यग्दृष्टि है, या मिथ्यादृष्टि है ? परित्त संसारी (परिमित संसारी) है, या अनन्त संसारी है ? सुलभबोधि है, या दुर्लभबोधि है ? आराधक है, या विराधक है ? चरम है, या अचरम है ? गौतम ! देवेन्द्र देवराज सनत्कुमार भवसिद्धिक है, अभवसिद्धिक नहीं । इसी तरह वह सम्यग्दृष्टि है, मिथ्यादृष्टि नहीं, परित्तसंसारी है, अनन्त संसारी नहीं, सुलभबोधि है, दुर्लभबोधि नहीं, आराधक है, विराधक नहीं, चरम है, अचरम नहीं । अर्थात् इस सम्बन्धमें सब प्रशस्त पद ग्रहण करने चाहिएं ।

भगवन् ! इसका क्या कारण है ? गौतम ! देवेन्द्र देवराज सनत्कुमार बहुत साधु, बहुत साध्वी, बहुत श्रावक, बहुत श्राविका, इन सबका हितकामी (हितेच्छु-हित चाहने वाला), सुखकामी (सुखेच्छु-सुख चाहने वाला), पथ्यकामी (पथ्येच्छु-पथ्यका चाहने वाला), अनुकम्पक (अनुकम्पा करने वाला), निःश्रेयस-कामी (निःश्रेयस् अर्थात् कल्याण चाहने वाला) है । हित, सुख और निःश्रेयस्का कामी (चाहने वाला) है । इस कारण हे गौतम ! सनत्कुमार देवेन्द्र देवराज भवसिद्धिक है यावत् चरम है, किन्तु अचरम नहीं है । भगवन् ! देवेन्द्र देवराज सनत्कुमारकी स्थिति कितने कालकी कही गई है ? गौतम ! सनत्कुमार देवेन्द्रकी स्थिति सात सागरोपमकी कही गई है । भगवन् ! सनत्कुमार देवेन्द्रकी आयु पूर्ण होने पर वह वहांसे चव कर यावत् कहां उत्पन्न होगा ? गौतम ! सनत्कुमार वहांसे चव कर महाविदेह क्षेत्रमें जन्म लेकर सिद्ध होगा यावत् सब दुःखोंका अन्त करेगा । सेवं भंते ! सेवं भंते !! भगवन् ! यह इसी प्रकार है । ·········

शतक ३ उद्देशक २

उस काल उस समय में राजगृह नामका नगर था यावत् परिषद् पर्युपासना करने लगी। उस काल उस समयमें चौंसठ हजार सामानिक देवोंसे परिवृत्त (घिरे हुए) और चमर नामक सिंहासन पर बैठे हुए चमरेन्द्रने भगवान्को देख कर यावत् नाट्य-विधि बतलाकर जिस दिशासे आया था, उसी दिशा में वापिस चला गया। भगवन् ! ऐसा कह कर गौतम स्वामीने श्रमण भगवान् महावीर स्वामीको वन्दना नमस्कार करके इस प्रकार पूछा कि भगवन् ! क्या असुरकुमार देव इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नीचे रहते हैं ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है अर्थात् असुरकुमार देव इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नीचे नहीं रहते, यावत् सातवीं पृथ्वी के नीचे भी नहीं रहते। इसी तरह सौधर्म देवलोक के नीचे यावत् दूसरे सभी देव-लोकों के नीचे भी असुरकुमार देव नहीं रहते।

भगवन् ! क्या ईषत्प्राग्भारा पृथ्वीके नीचे असुरकुमार देव रहते हैं ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं अर्थात् ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी के नीचे भी असुरकुमार देव नहीं रहते। भगवन् ! तब ऐसा कौनसा प्रसिद्ध स्थान है जहाँ असुरकुमार देव निवास करते हैं ? गौतम ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी की मोटाई एक लाख अस्सी हजार योजन की है। इसके बीचमें असुरकुमार देव रहते हैं। (यहाँ पर असुरकुमार सम्बन्धी सारी वक्तव्यता कहनी चाहिए। यावत् वे दिव्य भोग भोगते हुए विचरते हैं।)

भगवन् ! क्या असुरकुमारों का सामर्थ्य अपने स्थान से नीचे जाने का है ? हाँ, गौतम ! उनमें अपने स्थान से नीचे जाने का सामर्थ्य है। भगवन् ! वे असुरकुमार अपने स्थानसे कितने नीचे जा सकते हैं ? गौतम ! असुरकुमार सातवीं पृथ्वी तक नीचे जाने की शक्ति वाले हैं, परन्तु वे वहां तक कभी गये नहीं, जाते नहीं और जायेंगे भी नहीं, किन्तु तीसरी पृथ्वी तक गये हैं, जाते हैं और जाएँगे। भगवन् ! असुरकुमार देव तीसरी पृथ्वी तक गये, जाते हैं और जायेंगे, इसका क्या कारण है ? गौतम ! असुरकुमार देव अपने पूर्व शत्रु को दुःख देनेके लिए और पूर्व मित्रका दुःख-दूर कर सुखी बनाने के लिए तीसरी पृथ्वी तक गये हैं, जाते हैं, और जायेंगे।

हे भगवन् ! क्या असुरकुमार देव तिरछी गति करने में समर्थ हैं ? हां, गौतम ! असुरकुमार देव, तिरछी गति करने में समर्थ हैं। भगवन् ! असुरकुमार देव अपने स्थान से कितनी दूर तक तिरछी गति करनेमें समर्थ हैं ? गौतम ! असुरकुमार देव अपने स्थान से यावत् असंख्य द्वीप समुद्रों तक तिरछी गति करने में समर्थ हैं, किन्तु वे नन्दीश्वर द्वीप तक गये हैं, जाते हैं और जाएँगे।

भगवन् ! असुरकुमार देव नन्दीश्वर द्वीप तक गये हैं, जाते हैं और जायेंगे। इसका क्या कारण है ? गौतम ! अरिहंत भगवंतों के जन्म महोत्सवमें, निष्क्रमण (दीक्षा) महोत्सव में, केवलज्ञानोत्पत्ति महोत्सवमें और परिनिर्वाण महोत्सवमें असुरकुमार देव नन्दीश्वर द्वीप में गये हैं, जाते हैं और जायेंगे। अरिहन्त भगवन्तोंके जन्ममहोत्सव आदि असुरकुमार देवों के नन्दीश्वर द्वीप जाने में कारण हैं।

भगवन् ! क्या असुरकुमार देव अपने स्थान से ऊर्ध्व (ऊँची) गति करने में समर्थ हैं ? हां, गौतम ! वे अपने स्थान से ऊर्ध्व गति करने में समर्थ हैं। भगवन् ! असुरकुमार देव अपने स्थानसे कितने ऊँचे जाने में समर्थ हैं ? गौतम ! असुरकुमार देव अपने स्थान से यावत् अच्युत कल्प तक ऊपर जानेमें समर्थ हैं। यह उनकी ऊंचे जानेकी शक्तिमात्र है, किन्तु वे वहां तक कभी गये नहीं, किन्तु सौधर्मकल्प तक वे गये हैं, जाते हैं और जाएँगे।

भगवन् ! असुरकुमार देव ऊपर सौधर्म देवलोक तक गये हैं, जाते हैं और जायेंगे, इसका क्या कारण है ? गौतम ! असुरकुमार देवों का उन वैमानिक देवों के साथ भवप्रत्ययिक वैर (जन्म से ही वैरानुबन्ध) है, इसलिए वैक्रियरूप बनाते हुए तथा दूसरोंकी देवियोंके साथ भोग भोगते हुए वे असुरकुमार देव उन आत्मरक्षक देवोंको त्रास पहुंचाते हैं तथा यथोचित छोटे छोटे रत्नों को लेकर (चुरा कर) एकान्त स्थानमें भाग जाते हैं। भगवन् ! क्या उन वैमानिक देवों के पास यथोचित छोटे छोटे रत्न होते हैं ? हाँ, गौतम ! उन वैमानिक देवों के पास यथोचित छोटे छोटे रत्न होते हैं। भगवन् ! जब वे असुरकुमार देव वैमानिक देवोंके छोटे छोटे रत्न चुरा कर ले जाते हैं, तो वैमानिक देव उनका क्या करते हैं ? गौतम ! जब असुरकुमार देव वैमानिक देवोंके रत्न चुरा कर भाग जाते हैं, तब वे वैमानिक देव असुरकुमारोंको शारीरिक पीड़ा पहुंचाते हैं, अर्थात् प्रहारोंके द्वारा उनको पीटते हैं।

भगवन् ! ऊपर (सौधर्म देवलोक में) गये हुए वे असुरकुमार देव क्या वहां रही हुई अप्सराओं के साथ दिव्य और भोगने योग्य भोग भोगने में समर्थ हैं ? अर्थात् वहाँ भोग, भोग सकते हैं ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, अर्थात् वे वहां उन अप्सराओं के साथ दिव्य और भोगने योग्य भोग नहीं भोग सकते, किन्तु वे वहां से वापिस लौटते हैं और अपने स्थान पर आते हैं। यदि कदाचित् वे अप्सराएँ उनका आदर करें और उन्हें स्वामी रूपसे स्वीकार करें, तो वे असुरकुमार देव उन वैमानिक अप्सराओंके साथ दिव्य और भोगने योग्य भोग, भोग सकते हैं। परन्तु यदि वे अप्सराएँ उनका आदर नहीं करें और उन्हें स्वामी रूप से स्वीकार न करें, तो वे असुरकुमार देव उन वैमानिक अप्सराओं के साथ दिव्य

और भोगने योग्य भोग नहीं भोग सकते । गौतम ! इस कारण से असुरकुमार देव सौधर्म कल्प तक गये हैं, जाते हैं और जाएँगे ॥१४१॥

भगवन् ! कितने समय में अर्थात् कितना समय बीतने पर असुरकुमार देव उत्पतित होते हैं, अर्थात् सौधर्म कल्प तक ऊपर जाते हैं ? गये हैं और जाएँगे ? गौतम ! अनन्त उत्सर्पिणी और अनन्त अवसर्पिणी व्यतीत होने के पश्चात् लोक में आश्चर्यजनक यह समाचार सुना जाता है कि असुरकुमार देव ऊपर जाते हैं यावत् सौधर्म कल्प तक जाते हैं।

भगवन् ! असुरकुमार देव किस की निश्रा (आश्रय) लेकर सौधर्म कल्प तक ऊपर जाते हैं ? गौतम ! जिस प्रकार शवर, बब्बर, ढंकण, भुत्तुअ, पण्हय और पुलिंद जाति के मनुष्य किसी घने जंगल, खाई, जलदुर्ग, गुफा या सघन वृक्ष-पुंज का आश्रय लेकर, एक सुव्यवस्थित विशाल अश्ववाहिनी, गजवाहिनी, पदाति और धनुर्धारी मनुष्यों की सेना, इन सब सेनाओं को पराजित करने का साहस करते हैं, इसी प्रकार असुरकुमार देव भी अरिहंत तथा भावितात्मा अनगारोंकी निश्रा (शरण) लेकर सौधर्म कल्प तक ऊपर जाते हैं, किन्तु वे बिना आश्रय के ऊपर नहीं जा सकते।

भगवन् ! क्या सभी असुरकुमार देव सौधर्म कल्प तक ऊपर जाते हैं ? गौतम ? यह अर्थ समर्थ नहीं है अर्थात् सभी असुरकुमार देव ऊपर नहीं जाते, किन्तु महाऋद्धि वाले असुरकुमार देव ही यावत् सौधर्म कल्प तक ऊपर जाते हैं। भगवन् ! क्या यह असुरेन्द्र असुरराज चमर भी पहले किसी समय ऊपर यावत् सौधर्म कल्प तक गया था ? हाँ, गौतम ! गया था। भगवन् ! आश्चर्य है कि असुरेन्द्र असुरराज चमर ऐसी महाऋद्धि वाला है, ऐसी महाद्युति वाला है, तो भगवन् ! वह दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देवकान्ति, दिव्य देव प्रभाव कहां गया ? कहां प्रविष्ट हुआ ? गौतम ! पूर्व कथितानुसार यहां पर भी कूटाकारशाला का दृष्टान्त समझना चाहिए। यावत् वह दिव्य देवप्रभाव, कूटाकारशाला के दृष्टान्तानुसार चमरेन्द्र के शरीर में गया और शरीरमें ही प्रविष्ट हो गया ॥१४२॥

भगवन् ! असुरेन्द्र असुरराज चमर को वह दिव्य देवऋद्धि यावत् किस प्रकार लब्ध हुई—मिली, प्राप्त हुई और अभिसमन्वागत हुई—सम्मुख आई ? गौतम ! उस काल उस समयमें इस जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्र में विन्ध्याचल पर्वत की तलहटी में 'बेभेल' नामक सन्निवेश था। वहां 'पूरण' नाम का एक गृहपति रहता था। वह आढ्य और दीप्त था। (उसका सब वर्णन तामली की तरह जानना चाहिए।) उसने भी समय आने पर किसी समय तामली के समान विचार कर

कुटुंब का सारा भार अपने ज्येष्ठ पुत्रको संभला दिया। फिर चार खण्ड वाला लकड़ी का पात्र लेकर, मुण्डित होकर 'दानामा' नामक प्रव्रज्या अंगीकार की। (यहां सारा वर्णन पहले की तरह समझना चाहिए,) यावत् वेलेके पारणेके दिन वह आतापना—भूमि से नीचे उतरा। स्वयं लकड़ी का चार खण्ड वाला पात्र लेकर 'वेभेल' नाम के सन्निवेश में ऊँच नीच और मध्यमकुलों में भिक्षा की विधि से भिक्षा के लिये फिरा और भिक्षा के चार विभाग किये। पहले खण्ड में जो भिक्षा आवे वह मार्गमें मिलने वाले पथिकों को बांट दी जाय, किन्तु उसमें से स्वयं कुछ नहीं खाना। दूसरे खण्ड में जो भिक्षा आवे वह कौए और कुत्तों को खिला दी जाय। तीसरे खण्ड में जो भिक्षा आवे वह मछलियों और कछुओं को खिला दी जाय, और चौथे खण्ड में जो भिक्षा आवे उसका स्वयं आहार करना। पारणे के दिन मिली हुई भिक्षा का इस प्रकार विभाग करके वह पूरण वाल तपस्वी विचरता था।

वह पूरण वाल तपस्वी उस उदार, विपुल प्रदत्त और प्रगृहीत बाल तप कर्म के द्वारा शुष्क रूक्ष हो गया (यहां सब वर्णन पहले की तरह जानना चाहिए)। वह भी वेभेल सन्निवेशके बीचोबीच होकर निकला, निकल कर पादुका (खड़ाऊँ) और कुण्डी आदि उपकरणों को तथा चार खण्ड वाले लकड़ी के पात्र को एकान्त में रख दिया। फिर वेभेल सन्निवेश के अग्निकोण में अर्द्ध निर्वर्तनिक मण्डल को साफ किया। फिर संलेखना झूषणासे अपनी आत्मा को युक्त करके, आहार पानी का त्याग करके उस पूरण वाल-तपस्वीने 'पादपोपगमन' अनशन स्वीकार किया।

(अब श्रमण भगवान् महावीर स्वामी अपनी आपवीती कहते हैं) —गौतम! उस काल उस समयमें मैं छद्मस्थ अवस्थामें था। मुझे दीक्षा लिये ग्यारह वर्ष हुए थे। उस समय मैं निरन्तर छट्ठ छट्ठ अर्थात् वेले वेलेकी तपस्या करता हुआ, तप संयमसे आत्माको भावित करता हुआ, पूर्वानुपूर्वीसे विचरता हुआ, ग्रामानुग्राम चलता हुआ सुंसुमारपुर नगरके अशोक वनखण्ड उद्यानमें अशोक वृक्षके नीचे पृथ्वीशिलापट्टके पास आया। वहाँ आकर मैं उस उत्तम अशोक वृक्षके नीचे पृथ्वीशिलापट्टकके ऊपर अट्ठम अर्थात् तेलेकी तपस्या स्वीकार करके, दोनों पांव कुछ संकुचित करके, हाथोंको नीचेकी तरफ लम्बा करके, सिर्फ एक पुद्गल पर दृष्टि स्थिर करके, आंखोंकी पलकें न झपकाते हुए, शरीरके अग्रभागको कुछ झुकाकर, सर्व इन्द्रियोंको गुप्त करके एकरात्रिकी महाप्रतिमाको अंगीकार कर ध्यानस्थ रहा।

उस काल उस समयमें चमरचञ्चा राजधानी इन्द्र और पुरोहित रहित थी। वह 'पूरण' नामका वाल-तपस्वी पूरे बारह वर्ष तक तापस पर्यायका पालन करके, एक मासकी संलेखनासे आत्माको सेवित करके, साठ भक्त तक अनशन

रखकर कालके अवसर काल करके चमरचञ्चा राजधानीकी उपपातसभामें इन्द्रके रूपसे उत्पन्न हुआ।

तत्काल उत्पन्न हुआ वह असुरेन्द्र असुरराज चमर पांच प्रकारकी पर्याप्तियोंसे पर्याप्त बना। वे पांच पर्याप्तियां इस प्रकार हैं—आहारपर्याप्ति, शरीर-पर्याप्ति, इन्द्रियपर्याप्ति, श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति और भाषा-मन.पर्याप्ति (देवोंके भाषापर्याप्ति और मनःपर्याप्ति शामिल बंधती है)। जब असुरेन्द्र असुरराज चमर उपर्युक्त पांच पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो गया, तब स्वाभाविक अवधिज्ञानके द्वारा सौधर्मकल्प तक ऊपर देखा। सौधर्मकल्पमें देवेन्द्र देवराज मघवा, पाकशासन, शतक्रतु, सहस्राक्ष, वज्रपाणि, पुरन्दर, शक्रको यावत् दस दिशाओंको उद्योतित एवं प्रकाशित करते हुए सौधर्म कल्पमें सौधर्मावतंसक नामक विमानमें शक्र नामके सिंहासन पर बैठकर यावत् दिव्य भोग भोगते हुए देखा। देखकर उस चमरेन्द्रके मनमें इस प्रकारका आध्यात्मिक, चिंतित प्रार्थित मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ कि—अरे! यह अप्रार्थितप्रार्थक अर्थात् मरणकी इच्छा करने वाला कुलक्षणी ह्री श्री परिवर्जित अर्थात् लज्जा और शोभासे रहित, हीन पूर्ण (अपूर्ण) चतुर्दशीका जन्मा हुआ यह कौन है? मुझे यह देवऋद्धि, दिव्य देवकान्ति और देवप्रभाव मिला है, प्राप्त हुआ है, सम्मुख आया है, ऐसा होते हुए भी मेरे सिर पर बिना किसी हिचकिचाहटके दिव्य भोग भोगता हुआ विचरता है। ऐसा विचार कर चमरेन्द्रने सामानिक सभामें उत्पन्न हुए देवोंको बुलाकर इस प्रकार कहा कि—देवानुप्रियो! यह अप्रार्थित-प्रार्थक (मरणका इच्छुक) भोग भोगने वाला कौन है? चमरेन्द्रका प्रश्न सुनकर हृष्टतुष्ट बने हुए उन सामानिक देवोंने दोनों हाथ जोड़ कर शिरसावर्तपूर्वक मस्तक पर अञ्जलि करके चमरेन्द्रको जय विजय शब्दोंसे बधाई दी। फिर वे इस प्रकार बोले कि—देवानुप्रिय! यह देवेन्द्र देवराज शक्र यावत् भोग भोगता है।

सामानिक देवोंके उत्तरको सुनकर, अवधारण करके असुरेन्द्र असुरराज चमर, आशुरक्त हुआ अर्थात् क्रुद्ध हुआ, रुष्ट हुआ अर्थात् रोषमें भरा, कुपित हुआ, चण्ड बना अर्थात् भयङ्कर आकृति वाला बना और क्रोधके आवेशमें दांत पीसने लगा। फिर उसने सामानिक सभामें उत्पन्न हुए देवोंसे इस प्रकार कहा—"देवानुप्रियो! देवेन्द्र देवराज शक्र कोई दूसरा है और असुरेन्द्र असुरराज चमर कोई दूसरा है। देवेन्द्र देवराज शक्र जो महाऋद्धि वाला है, वह कोई दूसरा है और असुरेन्द्र असुरराज चमर जो अल्प ऋद्धि वाला है, वह कोई दूसरा है। हे देवानुप्रियो! मैं स्वयं देवेन्द्र देवराज शक्रको उसकी शोभासे भ्रष्ट करना चाहता हूं" ऐसा कह कर वह चमर गर्म हुआ और उस अस्वाभाविक गर्मीको प्राप्त कर वह अत्यन्त कुपित हुआ। इसके अनन्तर उस असुरेन्द्र असुरराज चमर

वह चमरेन्द्र, कहीं गर्जना करता हुआ, कहीं बिजलीकी तरह चमकता हुआ, कहीं वर्षाके सदृश बरसता हुआ, कहीं पर धूलिकी वर्षा करता हुआ, कहीं पर अंधकार करता हुआ वह चमर ऊपर जाने लगा। जाते हुए उसने वाणव्यन्तर देवोंको त्रासित किया, ज्योतिषी देवोंके दो विभाग कर दिये और आत्मरक्षक देवोंको भगा दिया। ऐसा करता हुआ वह चमरेन्द्र परिघ रत्नको फिराता हुआ (घुमाता हुआ) शोभित करता हुआ, उस उत्कृष्ट गति द्वारा यावत् तिरछे असंख्येय द्वीप समुद्रोंके बीचोबीच होकर निकला। निकल कर सौधर्म कल्पके सौधर्मावतंसक विमानकी सुधर्मा सभामें पहुंचा। वहां पहुंच कर उसने अपना एक पैर पद्मवर-वेदिकाके ऊपर रक्खा और दूसरा पैर सुधर्मा सभामें रक्खा। महान् हुंकार शब्द करते हुए उसने अपने परिघ रत्न द्वारा इन्द्रकीलको तीन वार पीटा। फिर उसने चिल्ला कर कहा कि—"वह देवेन्द्र देवराज शक्र कहां है? वे चौरासी हजार सामानिक देव कहां हैं? वे तीन लाख छत्तीस हजार आत्मरक्षक देव कहां हैं? तथा वे करोड़ों अप्सराएँ कहां हैं? आज मैं उनका (सबका) हनन करता हूं। जो अप्सराएँ अब तक मेरे वशमें नहीं थीं, वे आज मेरे वशमें हो जावें।" ऐसा करके चमरेन्द्रने इस प्रकारके अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय, अशुभ, असुन्दर, अमनोम (अमनोहर) और अमनोज्ञ शब्द कहे।

इसके पश्चात् देवेन्द्र देवराज शक्रने चमरेन्द्रके उपर्युक्त अनिष्ट यावत् अमनोज्ञ एवं अश्रुतपूर्व (पहले कभी नहीं सुने ऐसे) कर्णकटु शब्दोंको सुना, अवधारण किया, सुनकर और अवधारण करके अत्यन्त कुपित हुआ यावत् कोपसे धमधमायमान हुआ (मिसमिसाट करने लगा) ललाटमें तीन सल डाल कर एवं भृकुटि तान कर शक्रेन्द्रने चमरेन्द्रसे इस प्रकार कहा—"हं भो! अप्रार्थितप्रार्थक-जिसकी कोई इच्छा नहीं करता, ऐसे मरणकी इच्छा करने वाला यावत् हीन पूर्ण (अपूर्ण) चतुर्दशीका जन्मा हुआ असुरेन्द्र असुरराज चमर! आज तू नहीं है अर्थात् आज तेरा कल्याण नहीं है, आज तेरी खैर नहीं है, सुख नहीं है।" ऐसा कहकर सिंहासन पर बैठे हुए ही शक्रेन्द्रने अपना वज्र उठाया—उस जाज्वल्यमान, स्फुटित, तड़तड़ाट करते हुए हजारों उल्कापातको छोड़ते हुए, हजारों अग्नि ज्वालाओंको छोड़ते हुए, हजारों अंगारोंको बिखेरते हुए, हजारों स्फुलिंगों (शोलों) से आंखों को चुंधिया देने वाले, अग्निसे भी अत्यधिक दीप्ति वाले, अत्यन्त वेगवान्, किंशुक (टेसू) के फूलके समान लाल, महाभयावह भयंकर वज्रको चमरेन्द्रके वधके लिए छोड़ा। इस प्रकार के जाज्वल्यमान यावत् भयंकर वज्रको चमरेन्द्रने अपने सामने आता हुआ देखा। देखते ही वह विचारमें पड़ गया कि 'यह क्या है?' तत्पश्चात् वह बार-बार स्पृहा करने लगा कि—'ऐसा शस्त्र मेरे पास होता तो कैसा अच्छा होता?' यह विचार कर जिसके मुकुटका छोगा (तुर्रा) भग्न

हो गया है ऐसा तथा आलंब वाले हाथके आभूषण वाला वह चमरेन्द्र, ऊपर पैर और नीचे शिर करके, कांख (कक्षा) में आये हुए पसीनेकी तरह पसीना टपकाता हुआ वह उत्कृष्ट गति द्वारा यावत् तिरछे असंख्येय द्वीप समुद्रोंके बीचोबीच होता हुआ जम्बूद्वीपके भरत क्षेत्रके सुंसुमारपुर नगरके अशोक वनखण्ड उद्यानमें उत्तम अशोक वृक्षके नीचे पृथ्वीशिलापट्ट पर जहाँ मैं (श्री महावीर स्वामी) था, वहां आया। भयभीत बना हुआ, भयसे कातर स्वर वाला—'हे भगवन् ! आप मेरे लिए शरण हैं'। ऐसा कह कर वह चमरेन्द्र मेरे दोनों पैरों के बीचमें गिर पड़ा अर्थात् छिप गया ॥१४३॥

उसी समय देवेन्द्र देवराज शक्रको इस प्रकारका विचार उत्पन्न हुआ कि 'असुरेन्द्र असुरराज चमरका इतना सामर्थ्य, इतनी शक्ति और इतना विषय नहीं है कि वह अरिहन्त भगवान् या किसी भावितात्मा अनगारका आश्रय लिये विना स्वयं अपने आप सौधर्म कल्प तक ऊँचा आ सके। इसलिए यदि यह चमरेन्द्र किसी अरिहन्त भगवान् या भावितात्मा अनगार का आश्रय लेकर यहाँ आया है, तो उन महापुरुषोंकी आशातना मेरे द्वारा फेंके हुए वज्रसे होगी। यदि ऐसा हुआ, तो मुझे महान् दुःखरूप होगा।' ऐसा विचार कर शक्रेन्द्रने अवधिज्ञानका प्रयोग किया और उससे मुझे (श्री महावीर स्वामीको) देखा। मुझे देखते ही उसके मुखसे ये शब्द निकल पड़े कि—"हा ! हा !! मैं मारा गया।" ऐसा कह कर वह शक्रेन्द्र अपने वज्र को पकड़नेके लिये उत्कृष्ट तीव्र गतिसे वज्रके पीछे चला। वह शक्रेन्द्र असंख्येय द्वीप समुद्रोंके बीचोबीच होता हुआ यावत् उस उत्तम अशोकवृक्षके नीचे जहाँ मैं था उस ओर आया और मेरे से मात्र चार अंगुल दूर रहे हुए वज्र को पकड़ लिया ॥१४४॥

हे गौतम ! जिस समय शक्रेन्द्र ने वज्रको पकड़ा उस समय उसने अपनी मुट्ठीको इतनी तेजी से बन्द किया कि उस मुट्ठीकी वायुसे मेरे केशाग्र हिलने लगे। इसके पश्चात् देवेन्द्र देवराज शक्रने वज्रको लेकर मेरी तीन बार प्रदक्षिणा की और मुझे वन्दना नमस्कार करके इस प्रकार कहा कि—"हे भगवन् ! आपका आश्रय लेकर असुरेन्द्र असुरराज चमर मुझे मेरी शोभासे भ्रष्ट करनेके लिए आया था। इससे कुपित होकर मैंने उसे मारने के लिए वज्र फेंका। इसके अनन्तर मुझे इस प्रकारका विचार उत्पन्न हुआ कि असुरेन्द्र असुरराज चमर स्वयं अपनी शक्तिसे इतना ऊपर नहीं आ सकता है।' (इत्यादि कह कर शक्रेन्द्रने पूर्वोक्त सारी बात कह सुनाई)

फिर शक्रेंद्र ने कहा कि 'भगवन् ! पुनः अवधिज्ञानके द्वारा मैंने आपको देखा। ...देखते ही मेरे मुखसे ये शब्द निकल पड़े कि—"हा ! हा !! मैं मारा गया"—'ऐसा विचार कर उत्कृष्ट दिव्य देवगति द्वारा जहां आप देवानुप्रिय

विराजते हैं, वहां आया और आपसे चार अंगुल दूर रहे हुए वज्र को पकड़ लिया। वज्र को लेने के लिए मैं यहाँ आया हूं, समवसृत हुआ हूं, सम्प्राप्त हुआ हूं, उपसम्पन्न होकर विचरण कर रहा हूं। भगवन् ! मैं अपने अपराधके लिए क्षमा माँगता हूं। आप क्षमा करें। आप क्षमा करनेके योग्य हैं। मैं ऐसा अपराध फिर नहीं करूँगा।" ऐसा कह कर मुझे वन्दना नमस्कार करके शक्रेन्द्र उत्तरपूर्वके दिग्विभाग (ईशानकोण) में चला गया। वहां जाकर शक्रेन्द्रने अपने वांएं पैरसे तीन बार भूमि को पीटा। फिर उसने असुरेन्द्र असुरराज चमर को इस प्रकार कहा--"हे असुरेन्द्र असुरराज चमर ! तू आज श्रमण भगवान् महावीर स्वामीके प्रभावसे बच गया है। अब तुझे मेरे से जरा भी भय नहीं है।" ऐसा कह कर वह शक्रेन्द्र जिस दिशासे आया था, उसी दिशामें वापिस चला गया ॥१४५॥

भगवन् ! ऐसा कह कर भगवान् गौतम स्वामीने श्रमण भगवान् महावीर स्वामीको वन्दना नमस्कार किया और इस प्रकार कहा—'भगवन् ! देव महा ऋद्धि वाला है, महा कान्ति वाला यावत् महा प्रभाव वाला है, तो क्या वह किसी पुद्गलको पहले फेंक कर फिर उसके पीछे जाकर उसको पकड़ने में समर्थ है ? हां गौतम ! पकड़ने में समर्थ है। भगवन् ! देव पहले फेंके हुए पुद्गलको उसके पीछे जा कर ग्रहण कर सकता है, इसका क्या कारण है ? गौतम ! जब पुद्गल फेंका जाता है, तब पहले उसकी गति शीघ्र होती है और पीछे उसकी गति मन्द हो जाती है। महाऋद्धि वाला देव पहले भी और पीछे भी शीघ्र और शीघ्र गति वाला होता है, त्वरित और त्वरित गति वाला होता है। इसलिए देव फेंके हुए पुद्गलके पीछे जाकर उसे पकड़ सकता है।

भगवन् ! महा ऋद्धि वाला देव यावत् पीछे जाकर पुद्गलको पकड़ सकता है, तो देवेन्द्र देवराज शक्र अपने हाथसे असुरेन्द्र असुरराज चमर को क्यों नहीं पकड़ सका ? गौतम ! असुरकुमार देवोंका नीचे जानेका विषय शीघ्र शीघ्र तथा त्वरित त्वरित होता है। ऊंचे जानेका विषय अल्प अल्प तथा मन्द मन्द होता है। वैमानिक देवोंका ऊंचा जानेका विपय शीघ्र शीघ्र तथा त्वरित त्वरित होता है और नीचे जाने का विपय अल्प अल्प तथा मन्द मन्द होता है। एक समयमें देवेन्द्र देवराज शक्र जितना क्षेत्र ऊपर जा सकता है, उतना क्षेत्र ऊपर जाने में वज्रको दो समय लगते हैं और उतना ही क्षेत्र ऊपर जानेमें चमरेन्द्रको तीन स य लगते हैं। अर्थात् देवेन्द्र देवराज शक्र का ऊर्ध्वलोक कण्डक (ऊंचा जाने का काल मान) सबसे थोड़ा है और अधोलोक कण्डक (नीचे जानेका काल मान) उसकी अपेक्षा संख्येय गुणा है। एक समय में असुरेन्द्र असुरराज चमर जितना क्षेत्र नीचे जा सकता है, उतना क्षेत्र नीचे जानेमें शक्रेन्द्रको दो समय लगते हैं और उतना ही क्षेत्र नीचे जानेमें वज्रको तीन समय लगते हैं; अर्थात् असुरेन्द्र

असुरराज चमरका अधोलोक कण्डक (नीचे जानेका काल मान) सबसे थोड़ा है और ऊर्ध्वलोक कण्डक (ऊंचा जाने का काल मान) उससे संख्येय गुणा है। गौतम ! इस कारणसे देवेन्द्र देवराज शक्र अपने हाथसे असुरेन्द्र असुरराज चमर को पकड़नेमें समर्थ नहीं हो सका।

भगवन् ! देवेन्द्र देवराज शक्रका ऊर्ध्वगति विषय, अधोगति विषय और तिर्यग्गति विषय, इन सबमें कौनसा विषय किस विषयसे अल्प है, बहुत है, तुल्य (समान) है और विशेषाधिक है ? गौतम ! एक समयमें देवेन्द्र देवराज शक्र सबसे कम क्षेत्र नीचे जाता है, उससे तिर्च्छा संख्येय भाग जाता है और उससे संख्येय भाग ऊपर जाता है। भगवन् ! असुरेन्द्र असुरराज चमरका ऊर्ध्व गति विषय, अधोगति विषय और तिर्यग्गति विषय, इन सबमें कौनसा विषय, किस विषय से अल्प, बहुत, तुल्य और विशेषाधिक है ? गौतम ! असुरेन्द्र असुरराज चमर एक समयमें जितना भाग (क्षेत्र) ऊपर जाता है, उससे तिर्च्छा संख्येय भाग जाता है और उससे नीचे संख्येय भाग जाता है। वज्र सम्बन्धी गति का विषय शक्रेन्द्रकी तरह जानना चाहिए, किन्तु इतनी विशेषता है कि गतिका विषय विशेषाधिक कहना चाहिए।

भगवन् ! देवेन्द्र देवराज शक्रका नीचे जानेका काल और ऊपर जानेका काल इन दोनों कालोंमें से कौनसा काल, किस काल से अल्प है, बहुत है, तुल्य है या विशेषाधिक है ? गौतम ! देवेन्द्र देवराज शक्र का ऊपर जानेका काल सब से थोड़ा है और नीचे जानेका काल संख्येय गुणा है। चमरेन्द्रका कथन भी शक्रेन्द्र के समान ही जानना चाहिए, किन्तु इतनी विशेपता है कि चमरेन्द्रका नीचे जाने का काल सबसे थोड़ा है और ऊपर जानेका काल संख्येय गुणा है। भगवन् ! वज्र का नीचे जानेका काल और ऊपर जाने का काल, इन दोनों कालोंमें से कौनसा काल अल्प यावत् विशेपाधिक है ? गौतम ! वज्रका ऊपर जानेका काल सबसे थोड़ा है, नीचे जानेका काल उससे विशेपाधिक है।

भगवन् ! वज्र, वज्राधिपति (शक्रेन्द्र) और चमरेन्द्र, इन सबका नीचे जानेका काल और ऊपर जानेका काल, इन दोनों कालोंमें से कौनसा काल किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेपाधिक है ? गौतम ! शक्रेन्द्र का ऊपर जानेका काल और चमरेन्द्र का नीचे जाने का काल, ये दोनों तुल्य हैं और सबसे थोड़े हैं। शक्रेन्द्र का नीचे जानेका काल और वज्रका ऊपर जानेका काल, ये दोनों काल तुल्य हैं और संख्येय गुणा हैं। चमरेन्द्रका ऊपर जाने का काल और वज्रका नीचे जाने का काल, ये दोनों काल परस्पर तुल्य हैं और विशेपाधिक हैं ॥१४६॥

इसके अनन्तर वज्रके भयसे मुक्त बना हुआ, देवेन्द्र देवराज शक्र द्वारा महान् अपमानसे अपमानित बना हुआ, नष्ट मानसिक संकल्प वाला, चिन्ता और

शोक समुद्रमें प्रविष्ट, मुखको हथेली पर रक्खे हुए, दृष्टिको नीची झुकाकर आर्त्तध्यान करता हुआ असुरेन्द्र असुरराज चमर, चमरचञ्चा नामक राजधानी में, सुधर्मा सभामें, चमर नामक सिंहासन पर बैठकर विचार करता है। इसके पश्चात् नष्ट मानसिक संकल्पवाले यावत् विचारमें पड़े हुए असुरेन्द्र असुरराज चमरको देखकर सामानिक सभामें उत्पन्न हुए देवोंने हाथ जोड़कर इस प्रकार कहा कि–'देवानुप्रिय ! आज आप इस तरह आर्त्तध्यान करते हुए क्या विचार करते हैं ?' तब असुरेन्द्र असुरराज चमरने उन सामानिक सभामें उत्पन्न हुए देवोंसे इस प्रकार कहा कि—'देवानुप्रियो ! मैंने अपने आप अकेले ही श्रमण भगवान् महावीर स्वामीका आश्रय लेकर देवेन्द्र देवराज शक्रको उसकी शोभासे भ्रष्ट करनेका विचार किया था। तदनुसार मैं सुधर्मा सभामें गया था। तब शक्रेन्द्रने अत्यन्त कुपित होकर मुझे मारनेके लिए मेरे पीछे वज्र फैंका। परन्तु हे देवानुप्रियो ! श्रमण भगवान् महावीर स्वामीका भला हो कि जिनके प्रभावसे मैं अक्लिष्ट रहा हूं, अव्यथित (व्यथा–पीड़ा रहित) रहा हूं तथा परिताप पाये बिना यहाँ आया हूं, यहां समवसृत हुआ हूं, यहां सम्प्राप्त हुआ हूं, यहाँ उपसम्पन्न होकर विचरता हूं।—

देवानुप्रियो ! हम सब चलें और श्रमण भगवान् महावीर स्वामीको वन्दना नमस्कार करें यावत् उनकी पर्युपासना करें।' (भगवान् महावीर स्वामी फरमाते हैं कि—गौतम !) ऐसा कह कर वह चमरेन्द्र चौंसठ हजार सामानिक देवोंके साथ यावत् सर्व ऋद्धि पूर्वक, यावत् उस उत्तम अशोक वृक्षके नीचे, जहाँ मैं था वहां आया। मुझे तीन बार प्रदक्षिणा करके यावत् वन्दना नमस्कार करके इस प्रकार बोला—"हे भगवन् ! आपका आश्रय लेकर मैं स्वयं अपने आप अकेला ही देवेन्द्र देवराज शक्रको उसकी शोभासे भ्रष्ट करनेके लिए सौधर्मकल्प में गया था, यावत् आप देवानुप्रिय का भला हो कि जिनके प्रभावसे मैं क्लेश पाये बिना यावत् विचरता हूं। हे देवानुप्रिय ! मैं उसके लिए आपसे क्षमा मांगता हूं," यावत् ऐसा कह कर वह ईशानकोण में चला गया, यावत् उसने बत्तीस प्रकारकी नाटक विधि बतलाई। फिर वह जिस दिशासे आया था उसी दिशामें चला गया। गौतम ! उस असुरेन्द्र असुरराज चमर को वह दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देवकान्ति और दिव्य देव-प्रभाव इस प्रकार मिला है, प्राप्त हुआ है, सम्मुख आया है। चमरेन्द्रकी स्थिति एक सागरोपमकी है। वहांसे चव कर महाविदेह क्षेत्रमें जन्म लेकर सिद्ध होगा, यावत् सब दुःखोंका अन्त करेगा ॥१४७॥

भगवन् ! असुरकुमार देव यावत् सौधर्मकल्प तक ऊपर जाते हैं, इसका

क्या कारण है ? गौतम ! अधुनोत्पन्न अर्थात् तत्काल उत्पन्न हुए तथा चरम भवस्थ अर्थात् च्यवनकी तैयारी वाले देवोंको इस प्रकारका आध्यात्मिक यावत् संकल्प उत्पन्न होता है कि अहो ! हमें यह दिव्य देवऋद्धि यावत् मिली है, प्राप्त हुई है, सम्मुख आई है । जैसी दिव्य देवऋद्धि यावत् हमें मिली है, यावत् सम्मुख आई है, वैसी ही दिव्य देवऋद्धि यावत् देवेन्द्र देवराज शक्रको मिली है यावत् सम्मुख आई है, और जैसी दिव्य देवऋद्धि देवेन्द्र देवराज शक्रको मिली है यावत् सम्मुख आई है, वैसी ही दिव्य देवऋद्धि यावत् हमें भी मिली है यावत् सम्मुख आई है । तो हम जावें और देवेन्द्र देवराज शक्रके सामने प्रकट होवें और देवेन्द्र देवराज शक्र द्वारा प्राप्त उस दिव्य देवऋद्धिको हम देखें तथा देवेन्द्र देवराज शक्र भी हमारे द्वारा प्राप्त दिव्य देवऋद्धिको देखें । देवेन्द्र देवराज शक्र द्वारा प्राप्त दिव्य देवऋद्धिको हम जानें तथा हमारे द्वारा प्राप्त दिव्य देवऋद्धि को देवेन्द्र देवराज शक्र जानें । इस कारणसे हे गौतम ! असुरकुमार देव यावत् सौधर्मकल्प तक ऊपर जाते हैं । सेवं भंते ! सेवं भंते ! ! अर्थात् हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है······॥१४८॥ चमरेन्द्र सम्बन्धी वृत्तान्त सम्पूर्ण ॥

॥ तृतीय शतक का द्वितीय उद्देशक समाप्त ॥

शतक ३ उद्देशक ३

उस काल उस समयमें राजगृह नामका नगर था, यावत् परिषद् धर्मकथा सुन कर वापिस चली गई । उस काल उस समयमें भगवान्के अन्तेवासी मण्डित-पुत्र नामक अनगार (भगवान्के छठे गणधर) प्रकृति भद्र अर्थात् भद्र स्वभाववाले थे, यावत् पर्युपासना करते हुए वे इस प्रकार बोले—भगवन् ! क्रियाएँ कितनी कही गई हैं ? मण्डितपुत्र ! क्रियाएँ पाँच कही गई हैं । वे इस प्रकार हैं— कायिकी, आधिकरणिकी, प्राद्वेषिकी, पारितापनिकी और प्राणातिपातिकी क्रिया । भगवन् ! कायिकी क्रिया कितने प्रकार की कही गई है ? मण्डितपुत्र ! कायिकी क्रिया दो प्रकारकी कही गई है । यथा—१ अनुपरत-काय क्रिया और २ दुष्प्रयुक्त-काय क्रिया ।

भगवन् ! आधिकरणिकी क्रिया कितने प्रकारकी कही गई है ? मण्डित-पुत्र ! आधिकरणिकी क्रिया दो प्रकारकी कही गई है । यथा— १ संयो-जनाधिकरण क्रिया और २ निर्वर्तनाधिकरण क्रिया । भगवन् ! प्राद्वेषिकी क्रिया कितने प्रकारकी कही गई है ? मण्डितपुत्र ! प्राद्वेषिकी क्रिया दो प्रकारकी कही गई है । यथा—१ जीव प्राद्वेषिकी क्रिया और २ अजीव प्राद्वेषिकी क्रिया ।

भगवन् ! पारितापनिकी क्रिया कितने प्रकारकी कही गई है ? मण्डितपुत्र ! पारितापनिकी क्रिया दो प्रकारकी कही गई है यथा—१ स्वहस्त पारितापनिकी और २ परहस्त पारितापनिकी । भगवन् ! प्राणातिपात क्रिया कितने प्रकारकी कही गई है । मण्डितपुत्र ! प्राणातिपातक्रिया दो प्रकारकी कही गई है । यथा—१ स्वहस्त प्राणातिपात क्रिया और २ परहस्त प्राणातिपात क्रिया ।।१४९।।

भगवन् ! क्या पहले क्रिया होती है और पीछे वेदना होती है ? अथवा पहले वेदना होती है और पीछे क्रिया होती है ? मण्डितपुत्र ! पहले क्रिया होती है और पीछे वेदना होती है,परन्तु पहले वेदना और पीछे क्रिया होती है, यह बात नहीं है ।।१५०।।

भगवन् ! क्या श्रमण निर्ग्रन्थोंके क्रिया होती है ? मण्डितपुत्र ! होती है । भगवन् ! श्रमण निर्ग्रन्थोंको क्रिया किस प्रकार होती है ? अर्थात् श्रमण निर्ग्रन्थ किस प्रकार क्रिया करते हैं ? मण्डितपुत्र ! प्रमादके कारण और योग निमित्त (शरीरादिकी प्रवृत्ति) से श्रमण निर्ग्रन्थोंको क्रिया होती है ।।१५१।।

भगवन् ! क्या जीव सदा समित रूप से—परिमाणपूर्वक कांपता है ? विविध प्रकार से कांपता है ? चलता है अर्थात् एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाता है ? स्पन्दन क्रिया करता है अर्थात् थोड़ा चलता है ? घटित होता है अर्थात् सब दिशाओं में जाता है ? क्षोभ को प्राप्त होता है ? उदीरता है अर्थात् प्रबलतापूर्वक प्रेरणा करता है ? और उन-उन भावों में परिणमता है ? हां, मण्डितपुत्र ! जीव सदा परिमित रूप से काँपता है, यावत् उन-उन भावों में परिणमता है । भगवन् ! जब तक जीव परिमित रूप से कांपता है, यावत् उन-उन भावों में परिणमता है तब तक क्या. उस जीवकी अन्तिम समय में (मरण समय में) अन्तक्रिया (मुक्ति) होती है ? मण्डितपुत्र ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, क्योंकि सक्रिय जीव की अन्त क्रिया नहीं होती ।

भगवन् ! जब तक जीव परिमित रूपसे कांपता है यावत् तब तक उसकी अन्तक्रिया नहीं होती ऐसा कहने का क्या कारण है ? मण्डितपुत्र ! जब तक जीव सदा परिमित रूपसे कांपता है, यावत् उन-उन भावों में परिणमता है तब तक वह जीव आरम्भ करता है, संरम्भ करता है, समारम्भ करता है, आरम्भ में प्रवर्तता है, संरम्भ में प्रवर्तता है, समारम्भ में प्रवर्तता है, आरम्भ, संरम्भ, समारम्भ करता हुआ, आरम्भ, संरम्भ, समारम्भमें प्रवर्तता हुआ जीव, बहुतसे प्राण, भूत, जीव और सत्त्वोंको दुःख पहुंचानेमें,शोक करानेमें,झुरानेमें,टपटप आंसू गिराने में,पिटवानेमें, त्रास उपजानेमें और परिताप करानेमें प्रवृत्त होता है,निमित्त कारण बनता है। इसलिए मण्डितपुत्र ! इस कारणसे ऐसा कहा जाता है कि जब तक

जीव सदा परिमित रूप से कांपता है, यावत् उन उन भावों में परिणमता है, तब तक वह जीव मरण समयमें अन्तक्रिया नहीं कर सकता।

भगवन् ! क्या जीव सदा समित रूपसे नहीं कांपता यावत् उन-उन भावोंमें परिणत नहीं होता ? मण्डितपुत्र ! हां, जीव सदा समित नहीं कांपता यावत् उन-उन भावों को नहीं परिणमता अर्थात् जीव निष्क्रिय होता है। भगवन् ! जब तक वह जीव सदा समित नहीं कांपता यावत् उन-उन भावोंको नहीं परिणमता तब तक उस जीवकी मरण समय में अन्तक्रिया (मुक्ति) होती है ? हां, मण्डितपुत्र ! ऐसे जीवकी अन्तक्रिया (मुक्ति) होती है। भगवन् ! ऐसे जीव की यावत् मुक्ति होती है, इसका क्या कारण है ? मण्डितपुत्र ! जब वह जीव सदा समित नहीं कांपता यावत् उन-उन भावों में नहीं परिणमता, तब वह जीव आरम्भ नहीं करता, संरम्भ नहीं करता, समारम्भ नहीं करता, आरम्भ, संरम्भ, समारम्भमें प्रवृत्त नहीं होता, आरम्भ, संरम्भ, समारम्भ, नहीं करता हुआ तथा आरम्भ,संरम्भ, समारम्भमें नहीं प्रवर्तता हुआ जीव बहुत से प्राण, भूत, जीव और सत्वोंको दुःख पहुंचाने में यावत् परिताप उपजाने में निमित्त नहीं बनता।

जैसे कोई पुरुष सूखे घासके पूले को अग्निमें डाले, तो क्या मण्डितपुत्र ! वह सूखे घासका पूला अग्नि में डालते ही जल जाता है ? हाँ, भगवन् ! वह जल जाता है। जैसे कोई पुरुष पानीकी बूँदको तपे हुए लोह कडाह पर डाले, तो क्या मण्डितपुत्र ! तपे हुए लोह कडाह पर डाली हुई वह जलबिन्दु तुरन्त नष्ट हो जाती है ? हां, भगवन् ! वह तुरन्त नष्ट हो जाती है। कोई एक सरोवर— जो पानीसे परिपूर्ण हो, पूर्ण भरा हुआ हो, लबालब भरा हुआ हो, बढ़ते हुए पानी के कारण उससे पानी छलक रहा हो, पानी से भरे हुए घड़े के समान वह सर्वत्र पानीसे व्याप्त हो। उस सरोवरमें कोई पुरुष सैंकड़ों छोटे छिद्रों वाली तथा सैंकड़ों बड़े छिद्रों वाली एक बड़ी नौकाको डाल दे, तो क्या मण्डितपुत्र ! वह नाव उन छिद्रों द्वारा पानीसे भराती हुई पानी से परिपूर्ण भर जाती है ? वह पानीसे लबालब भर जाती है ? उससे पानी छलकने लगता है ? तथा पानी से भरे हुए घड़ेकी तरह सर्वत्र पानीसे व्याप्त हो जाती है ? हां, भगवन् ! वह पूर्वोक्त प्रकारसे भर जाती है। मण्डितपुत्र ! कोई पुरुष उस नावके समस्त छिद्रों को बन्द कर दे, तथा नावमें भरे हुए पानी को उलीच दे, तो क्या वह तुरन्त पानी के ऊपर आ जाती है ? हां, भगवन् ! वह तुरन्त पानी के ऊपर आ जाती है।

मण्डितपुत्र ! इसी तरह अपनी आत्मा द्वारा आत्मसंवृत, ईर्यासमिति आदि पांच समितियों से समित, मनोगुप्ति आदि तीन गुप्तियोंसे गुप्त, ब्रह्मचारी तथा उपयोगपूर्वक गमन करने वाले, सावधानीपूर्वक ठहरने वाले, सावधानता

सहित बैठने वाले, सावधानतापूर्वक सोने वाले तथा सावधानतापूर्वक वस्त्र, पात्र, कम्बल, रजोहरण आदि को उठाने वाले अनगारको अक्षिनिमेष (आंख की पलक टमकारने) मात्र समय में विमात्रापूर्वक सूक्ष्म ईर्यापथिकी क्रिया लगती है। वह प्रथम समयमें बद्ध-स्पृष्ट, दूसरे समय में वेदित और तीसरे समयमें निर्जीर्ण हो जाती है। अर्थात् बद्ध-स्पृष्ट, उदीरित, वेदित और निर्जीर्ण हुई वह क्रिया भविष्यत्कालमें अकर्म रूप हो जाती है। इसलिए हे मण्डितपुत्र ! जब वह जीव सदा समित नहीं कांपता, यावत् उन उन भावों को नहीं परिणमता, तब मरणके समयमें उसकी अन्तक्रिया (मुक्ति) हो जाती है। इस कारण से ऐसा कहा गया है ॥१५२॥

भगवन् ! प्रमत्त-संयमका पालन करते हुए प्रमत्त-संयमीका सब काल कितना होता है ? मण्डितपुत्र ! एक जीव की अपेक्षा जघन्य एक समय और उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि, इतना प्रमत्त-संयमका काल होता है। अनेक जीवोंकी अपेक्षा सर्वाद्धा (सब काल) प्रमत्त-संयमका काल होता है। भगवन् ! अप्रमत्त-संयमका पालन करते हुए अप्रमत्त-संयमी का सब मिल कर अप्रमत्त-संयम काल कितना होता है ? मण्डितपुत्र ! एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि, इतना अप्रमत्त-संयमका काल होता है। अनेक जीवों की अपेक्षा सर्वाद्धा (सर्व काल) अप्रमत्त-संयमका काल है। सेवं भंते ! ...... भगवन् ! यह इसी प्रकार है।...ऐसा कह कर भगवान् मण्डितपुत्र अनगार ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामीको वन्दना नमस्कार किया, वन्दना नमस्कार करके संयम और तपसे अपनी आत्माको भावित करते हुए विचरने लगे ॥१५३॥

भगवन् ! ऐसा कहकर भगवान् गौतमने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना नमस्कार किया। वन्दना नमस्कार करके इस प्रकार कहा—भगवन्! लवण समुद्र चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या और पूर्णिमाके दिन कैसे अधिक बढ़ता है और कैसे अधिक घटता है ? गौतम ! जैसा जीवाभिगम सूत्रमें लवण समुद्रके संबंधमें कहा है वैसा यहाँ पर भी जान लेना चाहिए, यावत् 'लोकस्थिति, लोकानुभाव' इस शब्द तक कहना चाहिए। सेवं भंते ! सेवं भंते ! ! ...भगवन्! यह इसी प्रकार है... । ऐसा कहकर यावत् गौतम स्वामी विचरते हैं ॥१५४॥

॥ क्रिया समाप्त ॥ तृतीय शतक का तृतीय उद्देशक समाप्त ॥

—o—

शतक ३ उद्देशक ४—अनगार की वैक्रिय शक्ति

भगवन् ! क्या भावितात्मा अनगार वैक्रिय समुद्घातसे समवहत होकर यान रूपसे जाते हुए देव को जानते और देखते हैं ? गौतम ! कोई तो देवको देखते हैं, किन्तु यानको नहीं देखते ; कोई यानको देखते हैं, किन्तु देव को नहीं

देखते ; कोई देवको भी देखते हैं और यानको भी देखते हैं और कोई देवको भी नहीं देखते और यानको भी नहीं देखते । भगवन् ! क्या भावितात्मा अनगार वैक्रिय समुद्घातसे समवहत यान रूपसे जाती हुई देवीको जानते और देखते हैं ? गौतम ! जैसा देवके विषयमें कहा वैसा ही देवीके विषयमें भी जानना चाहिए । भगवन् ! क्या भावितात्मा अनगार वैक्रिय समुद्घातसे समवहत यान रूपसे जाते हुए देवी सहित देवको जानते और देखते हैं ? गौतम ! कोई तो देवी सहित देवको देखते हैं, परन्तु यानको नहीं देखते हैं । इत्यादि चार भंग कहने चाहिएं ।

भगवन् ! क्या भावितात्मा अनगार वृक्षके आन्तरिक भाग को देखते हैं या बाहरी भागको देखते हैं ? गौतम ! यहाँ भी पूर्वोक्त प्रकारसे चार भंग कहने चाहिएं । इसी तरह क्या मूलको देखते हैं ? क्या कन्दको देखते हैं ? गौतम ! पहले की तरह चार भंग कहने चाहिएं । क्या मूलको देखते हैं ? क्या स्कन्धको देखते हैं ? गौतम ! यहाँ भी चार भंग कहने चाहिएं । इस तरह मूलके साथ बीज तक संयुक्त करके कहना चाहिए । इसी प्रकार कन्दके साथ यावत् बीज तक कहना चाहिए । इसी तरह यावत् पुष्पका बीज तक संयोग करके कहना चाहिए । भगवन् ! क्या भावितात्मा अनगार वृक्षके फलको देखते हैं; या बीजको देखते हैं ? गौतम ! यहाँ भी पूर्वोक्त प्रकारसे चार भंग कहने चाहिएं ।।१५५।।

भगवन् ! क्या वायुकाय एक बड़ा स्त्री रूप, पुरुष रूप, हस्तिरूप, यान रूप और इसी तरह युग्य (रिक्शागाड़ी) गिल्ली (अम्बारी) थिल्ली (घोड़े का पलाण) शिविका (शिखरके आकारसे ढका हुआ एक प्रकारका वाहन–पालखी) स्यन्दमानिका (म्याना) इन सबके रूपोंकी विकुर्वणा कर सकती है ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, अर्थात् वायुकाय उपर्युक्त रूपोंकी विकुर्वणा नहीं कर सकती । किन्तु विकुर्वणा करती हुई वायुकाय एक बड़ी पताकाके आकार जैसे रूपकी विकुर्वणा करती है । भगवन् ! क्या वायुकाय एक बड़ी पताकाके आकार जैसे रूपकी विकुर्वणा करके अनेक योजन तक गति कर सकती है ? हाँ, गौतम ! वायुकाय ऐसा कर सकती है । भगवन् ! क्या वह वायुकाय आत्मऋद्धिसे गति करती है, या परऋद्धिसे गति करती है ? गौतम ! वह वायुकाय आत्मऋद्धिसे गति करती है, किन्तु परऋद्धिसे गति नहीं करती । इसी तरहसे वह आत्मकर्मसे और आत्मप्रयोगसे भी गति करती है । इस तरह कहना चाहिए ।

भगवन् ! क्या वह वायुकाय उच्छ्रित-पताका (उठी हुई ध्वजा) के आकारसे गति करती है ? या पतित-पताका (पड़ी हुई ध्वजा) के आकारसे गति करती है ? गौतम ! वह उच्छ्रित-पताका और पतित-पताका, इन दोनों गति करती है ? गौतम ! वह उच्छ्रित-पताका और पतित-पताका, इन दोनों आकारसे गति करती है । भगवन् ! क्या वायुकाय एक दिशामें एक पताकाके

समान रूप बनाकर गति करती है, या दो दिशाओंमें दो पताकाके समान रूप बनाकर गति करती है ? गौतम ! वह वायुकाय एक दिशामें एक पताकाके आकार रूप बनाकर गति करती है, किन्तु दो दिशाओंमें दो पताकाके आकार वाला रूप बनाकर गति नहीं करती । भगवन् ! तो क्या वह वायुकाय पताका है ? गौतम ! वह वायुकाय पताका नहीं है, किन्तु वायुकाय है ॥१५६॥

भगवन् ! क्या बलाहक (मेघ) एक बड़ा स्त्रीरूप यावत् स्यन्दमानिका रूप में परिणत होने में समर्थ है । हां, गौतम ! बलाहक···समर्थ है । हे भगवन् ! क्या बलाहक एक बड़ा स्त्रीरूप बनकर अनेक योजन तक जा सकता है ? हां, गौतम ! वह जा सकता है । भगवन् ! क्या वह बलाहक आत्मऋद्धिसे गति करता है, या परऋद्धिसे गति करता है ? गौतम ! वह आत्मऋद्धिसे गति नहीं करता, किन्तु परऋद्धिसे गति करता है । इसी तरह आत्मकर्म (आत्म क्रिया) से और आत्मप्रयोगसे गति नहीं करता, परन्तु परकर्म और पर-प्रयोग से गति करता है । वह उच्छ्रित-पताका (ऊंची ध्वजा—हवासे उड़ती हुई ध्वजा) और पतित-पताका (हवासे नहीं उड़ती हुई ध्वजा—गिरी हुई ध्वजा) दोनोंके आकार रूपसे गति करता है ।

भगवन् ! क्या वह बलाहक स्त्री है ? गौतम ! वह बलाहक स्त्री नहीं है, परन्तु बलाहक (मेघ) है । जिस प्रकार स्त्री के सम्बन्धमें कहा, उसी तरह पुरुष, घोड़ा, हाथीके विषयमें भी कहना चाहिये । अर्थात् वह बलाहक घोड़ा और हाथी नहीं हैं, किन्तु बलाहक (मेघ) है । भगवन् ! क्या वह बलाहक एक बड़ा यान (शकट—गाड़ी) का रूप बनकर अनेक योजन तक जा सकता है ? गौतम ! जैसे स्त्रीरूपके सम्बन्धमें कहा उसी तरह यानके सम्बन्धमें भी कहना चाहिये । परन्तु इतनी विशेषता है कि वह यान (गाड़ी) के एक तरफ चक्र (पहिया) रखकर भी चल सकता है और दोनों तरफ चक्र रखकर भी चल सकता है । इसी तरह युग्य (रिक्शा गाड़ी) गिल्ली (अम्बारी) थिल्लि (घोड़े का पलाण) शिविका (पालखी) स्यन्दमानिका (म्याना) के रूपोंके सम्बन्धमें भी जानना चाहिये ॥१५७॥

भगवन् ! जो जीव नैरयिकोंमें उत्पन्न होने योग्य है । वह कैसी लेश्या-वालोंमें उत्पन्न होता है ? गौतम ! जीव जैसी लेश्याके द्रव्योंको ग्रहण करके काल करता है वैसी ही लेश्यावालोंमें वह उत्पन्न होता है । वे इस प्रकार हैं—कृष्ण लेश्या, नील लेश्या और कापोत लेश्या । इस तरह जिसकी जो लेश्या हो उसकी वह लेश्या कहनी चाहिए । यावत् व्यन्तर देवों तक कहना चाहिए ।

भगवन् ! जो जीव ज्योतिषी देवोंमें उत्पन्न होने योग्य होता है वह कैसी लेश्यावालोंमें उत्पन्न होता है ? गौतम ! जो जीव जैसी लेश्याके द्रव्योंको

ग्रहण करके काल करता है वह वैसी ही लेश्यावालोंमें उत्पन्न होता है। यथा—एक तेजोलेश्या। भगवन्! जो जीव वैमानिक देवोंमें उत्पन्न होने योग्य होता है, वह कैसी लेश्यावालोंमें उत्पन्न होता है? गौतम! जो जीव जैसी लेश्याके द्रव्योंको ग्रहण करके काल करता है, वह वैसी ही लेश्या वालोंमें उत्पन्न होता है। यथा—तेजो लेश्या, पद्म लेश्या और शुक्ल लेश्या ॥१५८॥

भगवन्! क्या भावितात्मा अनगार बाहरके पुद्गलोंको ग्रहण किये विना वैभार पर्वतको उल्लंघ सकता है और प्रलंघ सकता है? गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है। भगवन्! क्या भावितात्मा अनगार बाहरके पुद्गलोंको ग्रहण करके वैभार पर्वतको उल्लंघ सकता है और प्रलंघ सकता है? हाँ, गौतम! वह वैसा कर सकता है। भगवन्! क्या भावितात्मा अनगार बाहरके पुद्गलोंको ग्रहण किये विना ही राजगृह नगरमें जितने रूप हैं, उतने रूपोंकी विकुर्वणा करके और वैभार पर्वतमें प्रवेश करके सम पर्वतको विषम कर सकता है? अथवा विषम पर्वतको सम कर सकता है? गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है अर्थात् वह बाहर के पुद्गलोंको ग्रहण किये विना ऐसा नहीं कर सकता।

इसी प्रकार दूसरा आलापक भी कहना चाहिए, किन्तु इतनी विशेषता है कि वह बाहरके पुद्गलोंको ग्रहण करके पूर्वोक्त प्रकारसे कर सकता है।

भगवन्! क्या मायी (प्रमत्त) मनुष्य विकुर्वणा करता है? या अमायी (अप्रमत्त)० विकुर्वणा करता है? गौतम! मायी (प्रमत्त) मनुष्य विकुर्वणा करता है, किन्तु अमायी (अप्रमत्त) मनुष्य विकुर्वणा नहीं करता। भगवन्! मायी मनुष्य विकुर्वणा करता है और अमायी मनुष्य विकुर्वणा नहीं करता, इसका क्या कारण है?—

गौतम! मायी मनुष्य प्रणीत (सरस) पान भोजन करता है। इस प्रकार बार बार प्रणीत पान भोजन करके वमन करता है। उस प्रणीत पान भोजन द्वारा उसकी हड्डियाँ और हड्डियोंमें रही हुई मज्जा, घन (गाढ़) होती है। उसका रक्त और मांस प्रतनु होता है। उस भोजनके जो यथा-बादर पुद्गल होते हैं, उनका उस-उस रूपमें परिणमन होता है। यथा—श्रोत्रेन्द्रिय रूपमें यावत् स्पर्शनेन्द्रिय रूपमें (परिणमन होता है)। तथा हड्डियाँ, हड्डियोंकी मज्जा, केश, श्मश्रु, रोम, नख, वीर्य और रक्त रूपमें परिणमते हैं। अमायी मनुष्य तो रूक्ष (रूखा, सूखा) पान भोजन करता है और ऐसा भोजन करके वह वमन नहीं करता। उस रूखे सूखे भोजन द्वारा उसकी हड्डियाँ और हड्डियोंकी मज्जा प्रतनु (पतली) होती है और उसका रक्त और मांस घन (गाढ़ा) होता है। उस आहारके जो यथाबादर पुद्गल होते हैं, उनका परिणमन उच्चार (विष्ठा)

प्रस्रवण (मूत्र) यावत् रक्त रूपसे होता है। इस कारणसे वह अमायी मनुष्य विकुर्वणा नहीं करता।

मायी मनुष्य अपनी की हुई प्रवृत्तिकी आलोचना और प्रतिक्रमण किए बिना यदि काल कर जाय तो उसके आराधना नहीं होती, किन्तु अपनी की हुई प्रवृत्तिका पश्चात्ताप करनेसे अमायी बना हुआ वह मनुष्य यदि आलोचना और प्रतिक्रमण करके काल करता है, तो उसके आराधना होती है। सेवं भंते! सेवं भंते!! हे भगवन्! यह इसी.........ऐसा कह कर यावत् गौतम स्वामी विचरते हैं ॥१५९॥

॥ तीसरे शतक का चौथा उद्देशक समाप्त ॥

—०—

शतक ३ उद्देशक ५

भगवन्! क्या भावितात्मा अनगार बाहर के पुद्गल ग्रहण किये बिना एक बड़ा स्त्रीरूप यावत् स्यन्दमानिका रूपकी विकुर्वणा कर सकता है? गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है। अर्थात् वह ऐसा नहीं कर सकता। हे भगवन्! क्या भावितात्मा अनगार बाहरके पुद्गलोंको ग्रहण करके एक बड़ा स्त्रीरूप यावत् स्यन्दमानिका रूपकी विकुर्वणा कर सकता है? हाँ, गौतम! वह वैसा कर सकता है। भगवन्! भावितात्मा अनगार कितने स्त्री रूपोंकी विकुर्वणा कर सकता है? गौतम! युवति-युवाके दृष्टान्तसे तथा आराओंसे युक्त पहियेकी धुरीके दृष्टान्तसे भावितात्मा अनगार वैक्रियसमुद्घातसे समवहत होकर सम्पूर्ण एक जम्बूद्वीपको बहुतसे स्त्रीरूपों द्वारा आकीर्ण व्यतिकीर्ण यावत् कर सकता है अर्थात् ठसाठस भर सकता है। हे गौतम! भावितात्मा अनगार का यह मात्र विषय है, परन्तु इतना वैक्रिय कभी किया नहीं, करता नहीं और करेगा भी नहीं। इस प्रकार क्रमपूर्वक यावत् स्यन्दमानिका सम्बन्धी रूप बनाने तक कहना चाहिए।

भगवन्! जैसे कोई पुरुष हाथमें तलवार और ढाल अथवा म्यान लेकर जाता है, क्या उसी प्रकार कोई भावितात्मा अनगार भी उस पुरुषकी तरह किसी कार्य के लिए स्वयं आकाश में ऊंचे उड़ सकता है? हाँ, गौतम! उड़ सकता है। भगवन्! भावितात्मा अनगार तलवार और ढाल लिए हुए पुरुषके समान कितने रूप बना सकता है? गौतम! युवति–युवाके दृष्टान्तसे यावत् सम्पूर्ण एक जम्बूद्वीप को ठसाठस भर सकता है, किन्तु कभी इतने वैक्रिय रूप बनाये नहीं, बनाता नहीं और बनावेगा भी नहीं।

भगवन् ! जैसे कोई पुरुष हाथमें एक पताका लेकर गमन करता है, क्या उसी तरहसे भावितात्मा अनगार भी हाथमें पताका लिये हुए पुरुषके समान रूप बनाकर स्वयं ऊपर आकाश में उड़ सकता है ? हां, गौतम ! उड़ सकता है। भगवन् ! भावितात्मा अनगार हाथमें पताका लेकर गमन करने वाले पुरुषके समान कितने रूप बना सकता है ? गौतम ! पहले कहा वैसे ही जानना चाहिए अर्थात् वह ऐसे रूपोंसे सम्पूर्ण एक जम्बूद्वीपको ठसाठस भर सकता है, यावत् परन्तु कभी इतने रूप बनाये नहीं, बनाता नहीं और बनायेगा भी नहीं। इसी तरह दोनों तरफ पताका लिये हुए पुरुषके रूपके सम्बन्धमें कहना चाहिए।

भगवन् ! जैसे कोई पुरुष एक तरफ जनेऊ (यज्ञोपवीत) पहन कर गमन करता है। क्या उसी प्रकार भावितात्मा अनगार भी एक ओर जनेऊ (यज्ञोपवीत) पहने हुए पुरुषकी तरह रूप बनाकर ऊपर आकाशमें उड़ सकता है ? हाँ, गौतम ! उड़ सकता है। भगवन् ! भावितात्मा अनगार एक तरफ जनेऊ धारण करने वाले पुरुषके समान कितने रूप बना सकता है ? गौतम ! पहले कहे अनुसार जानना चाहिए अर्थात् वह ऐसे रूपोंसे सम्पूर्ण एक जम्बूद्वीपको ठसाठस भर देता है, यावत् परन्तु कभी इतने रूप बनाये नहीं, बनाता नहीं और बनावेगा भी नहीं।

भगवन् ! जैसे कोई पुरुष एक ओर पलोथी लगाकर बैठे, इसी तरह क्या भावितात्मा अनगार भी उस पुरुषके समान रूप बनाकर स्वयं आकाशमें उड़ सकता है ? गौतम ! पहले कहे अनुसार जानना चाहिए। यावत् इतने रूप कभी बनाये नहीं, बनाता नहीं और बनावेगा भी नहीं। इसी तरह दोनों तरफ पलोथी लगाने वाले पुरुषके रूपके सम्बन्धमें भी जानना चाहिये। भगवन् ! जैसे कोई पुरुष एक तरफ पर्यङ्कासन करके बैठे, उसी तरह भावितात्मा अनगार भी उस पुरुषके समान रूप बनाकर स्वयं आकाशमें उड़ सकता है ? गौतम ! पहले कहे अनुसार जानना चाहिये, यावत् इतने रूप कभी बनाये नहीं, बनाता नहीं और बनावेगा भी नहीं। इसी तरह दोनों ओर पर्यङ्कासन करके बैठे हुए पुरुषके रूपके सम्बन्धमें भी जानना चाहिये।

भगवन् ! क्या भावितात्मा अनगार बाहरके पुद्गलोंको ग्रहण किये बिना घोड़ा, हाथी, सिंह, व्याघ्र, वृक (भेड़िया), द्वीपी (गेंडा), रीछ, तरच्छ (चीता) और पराशर (शरभ-अष्टापद) आदिके रूप बना सकता है ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, अर्थात् बाहरके पुद्गलोंको ग्रहण किये बिना उपर्युक्त रूप नहीं बना सकता।

भगवन् ! क्या भावितात्मा अनगार बाहरके पुद्गलोंको ग्रहण करके उपर्युक्त रूप बना सकता है ? गौतम ! बाहरके पुद्गलोंको ग्रहण करके वह

भावितात्मा अनगार उपर्युक्त रूपोंको बना सकता है। भगवन्! क्या भावितात्मा अनगार एक महान् अश्वका रूप बनाकर अनेक योजन तक जा सकता है? हाँ, गौतम! वह वैसा कर सकता है। भगवन्! क्या वह भावितात्मा अनगार आत्मऋद्धिसे जाता है, या परऋद्धिसे जाता है? गौतम! आत्मऋद्धिसे जाता है, किन्तु परऋद्धिसे नहीं। इसी तरह आत्म-कर्म (आत्म-क्रिया) और आत्म-प्रयोगसे जाता है, किन्तु पर-कर्म और पर-प्रयोगसे नहीं जाता। वह सीधा (खड़ा) भी जा सकता है और इससे विपरीत (गिरा हुआ) भी जा सकता है।

भगवन्! इस तरह का रूप बनाया हुआ वह भावितात्मा अनगार क्या अश्व कहलाता है? गौतम! वह अनगार है, परन्तु अश्व नहीं। इसी प्रकार यावत् पराशर (शरभ-अष्टापद) तकके रूपोंके सम्बन्धमें भी कहना चाहिये।

भगवन्! क्या मायी अनगार विकुर्वणा करता है, या अमायी अनगार विकुर्वणा करता है? गौतम! मायी अनगार विकुर्वणा करता है, किन्तु अमायी अनगार विकुर्वणा नहीं करता। भगवन्! पूर्वोक्त प्रकारसे विकुर्वणा करनेके पश्चात् उस सम्बन्धी आलोचना और प्रतिक्रमण किये बिना यदि वह विकुर्वणा करने वाला मायी अनगार काल करे तो कहां उत्पन्न होता है? गौतम! वह अनगार किसी एक प्रकारके आभियोगिक देवलोकोंमें देवरूपसे उत्पन्न होता है। भगवन्! पूर्वोक्त प्रकारकी विकुर्वणा सम्बन्धी आलोचना और प्रतिक्रमण करके जो अमायी साधु काल करे तो कहां उत्पन्न होता है? गौतम! वह अनगार किसी एक प्रकारके अनाभियोगिक देवलोकोंमें देवरूपसे उत्पन्न होता है। ···भगवन्! यह इसी प्रकार है।·········। गाथाका अर्थ इस प्रकार है—स्त्री, तलवार, पताका, जनेऊ, पलोथी और पर्यङ्कासन, इन सब रूपोंके अभियोग और विकुर्वणा संबन्धी वर्णन इस उद्देशकमें है। तथा इस प्रकार मायी अनगार करता है। यह बात भी बतलाई गई है ॥१॥१६०॥

॥ तीसरे शतकका पांचवां उद्देशक समाप्त ॥

—०—

शतक ३ उद्देशक ६

भगवन्! राजगृह नगरमें रहा हुआ मिथ्यादृष्टि और मायी भावितात्मा अनगार वीर्यलब्धिसे, वैक्रियलब्धिसे और विभंगज्ञान—लब्धिसे वाराणसी नगरी की विकुर्वणा करके क्या तद्गत रूपोंको जानता और देखता है? हां, गौतम! वह उन रूपोंको जानता और देखता है। भगवन्! क्या वह तथाभाव (यथा रूप) से जानता देखता है, या अन्यथाभाव (विपरीत रूप) से जानता देखता

भगवन् ! जैसे कोई पुरुष हाथमें एक पताका लेकर गमन करता है, क्या उसी तरहसे भावितात्मा अनगार भी हाथमें पताका लिये हुए पुरुषके समान रूप बनाकर स्वयं ऊपर आकाश में उड़ सकता है ? हां, गौतम ! उड़ सकता है। भगवन् ! भावितात्मा अनगार हाथमें पताका लेकर गमन करने वाले पुरुषके समान कितनें रूप बना सकता है ? गौतम ! पहले कहा वैसे ही जानना चाहिए अर्थात् वह ऐसे रूपोंसे सम्पूर्ण एक जम्बूद्वीपको ठसाठस भर सकता है, यावत् परन्तु कभी इतनें रूप बनाये नहीं, बनाता नहीं और बनायेगा भी नहीं। इसी तरह दोनों तरफ पताका लिये हुए पुरुषके रूपके सम्बन्धमें कहना चाहिए।

भगवन् ! जैसे कोई पुरुष एक तरफ जनेऊ (यज्ञोपवीत) पहन कर गमन करता है। क्या उसी प्रकार भावितात्मा अनगार भी एक ओर जनेऊ (यज्ञोपवीत) पहने हुए पुरुषकी तरह रूप बनाकर ऊपर आकाशमें उड़ सकता है ? हाँ, गौतम ! उड़ सकता है। भगवन् ! भावितात्मा अनगार एक तरफ जनेऊ धारण करनें वाले पुरुषके समान कितनें रूप बना सकता है ? गौतम ! पहले कहे अनुसार जानना चाहिए अर्थात् वह ऐसे रूपोंसे सम्पूर्ण एक जम्बूद्वीपको ठसाठस भर देता है, यावत् परन्तु कभी इतने रूप बनाये नहीं, बनाता नहीं और बनावेगा भी नहीं।

भगवन् ! जैसे कोई पुरुष एक ओर पलोथी लगाकर बैठे, इसी तरह क्या भावितात्मा अनगार भी उस पुरुषके समान रूप बनाकर स्वयं आकाशमें उड़ सकता है ? गौतम ! पहले कहे अनुसार जानना चाहिए। यावत् इतनें रूप कभी बनाये नहीं, बनाता नहीं और बनावेगा भी नहीं। इसी तरह दोनों तरफ पलोथी लगानें वाले पुरुषके रूपके सम्बन्धमें भी जानना चाहिये। भगवन् ! जैसें कोई पुरुष एक तरफ पर्यङ्कासन करके बैठे, उसी तरह भावितात्मा अनगार भी उस पुरुषके समान रूप बनाकर स्वयं आकाशमें उड़ सकता है ? गौतम ! पहले कहे अनुसार जानना चाहिये, यावत् इतने रूप कभी बनाये नहीं, बनाता नहीं और बनावेगा भी नहीं। इसी तरह दोनों ओर पर्यङ्कासन करके बैठे हुए पुरुषके रूपके सम्बन्धमें भी जानना चाहिये।

भगवन् ! क्या भावितात्मा अनगार बाहरके पुद्गलोंको ग्रहण किये बिना घोड़ा, हाथी, सिंह, व्याघ्र, वृक (भेड़िया), द्वीपी (गेंडा), रीछ, तरच्छ (चीता) और पराशर (शरभ-अष्टापद) आदिके रूप बना सकता है ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, अर्थात् बाहरके पुद्गलोंको ग्रहण किये बिना उपर्युक्त रूप नहीं बना सकता।

भगवन् ! क्या भावितात्मा अनगार बाहरके पुद्गलोंको ग्रहण करके उपर्युक्त रूप बना सकता है ? गौतम ! बाहरके पुद्गलोंको ग्रहण करके वह

भावितात्मा अनगार उपर्युक्त रूपोंको बना सकता है। भगवन् ! क्या भावितात्मा अनगार एक महान् अश्वका रूप बनाकर अनेक योजन तक जा सकता है ? हाँ, गौतम ! वह वैसा कर सकता है। भगवन् ! क्या वह भावितात्मा अनगार आत्मऋद्धिसे जाता है, या परऋद्धिसे जाता है ? गौतम ! आत्मऋद्धि से जाता है, किन्तु परऋद्धिसे नहीं। इसी तरह आत्म-कर्म (आत्म-क्रिया) और आत्म-प्रयोगसे जाता है, किन्तु पर-कर्म और पर-प्रयोगसे नहीं जाता। वह सीधा (खड़ा) भी जा सकता है और इससे विपरीत (गिरा हुआ) भी जा सकता है।

भगवन् ! इस तरह का रूप बनाया हुआ वह भावितात्मा अनगार क्या अश्व कहलाता है ? गौतम ! वह अनगार है, परन्तु अश्व नहीं। इसी प्रकार यावत् पराशर (शरभ-अष्टापद) तकके रूपोंके सम्बन्धमें भी कहना चाहिये।

भगवन् ! क्या मायी अनगार विकुर्वणा करता है, या अमायी अनगार विकुर्वणा करता है ? गौतम ! मायी अनगार विकुर्वणा करता है, किन्तु अमायी अनगार विकुर्वणा नहीं करता। भगवन् ! पूर्वोक्त प्रकारसे विकुर्वणा करनेके पश्चात् उस सम्बन्धी आलोचना और प्रतिक्रमण किये बिना यदि वह विकुर्वणा करने वाला मायी अनगार काल करे तो कहां उत्पन्न होता है ? गौतम ! वह अनगार किसी एक प्रकारके आभियोगिक देवलोकोंमें देवरूपसे उत्पन्न होता है। भगवन् ! पूर्वोक्त प्रकारकी विकुर्वणा सम्बन्धी आलोचना और प्रतिक्रमण करके जो अमायी साधु काल करे तो कहां उत्पन्न होता है ? गौतम ! वह अनगार किसी एक प्रकारके अनाभियोगिक देवलोकोंमें देवरूपसे उत्पन्न होता है। ...भगवन् ! यह इसी प्रकार है। ....। गाथाका अर्थ इस प्रकार है—स्त्री, तलवार, पताका, जनेऊ, पलोथी और पर्यङ्कासन, इन सब रूपोंके अभियोग और विकुर्वणा संबन्धी वर्णन इस उद्देशकमें है। तथा इस प्रकार मायी अनगार करता है। यह बात भी बतलाई गई है ॥१॥१६०॥

॥ तीसरे शतकका पांचवां उद्देशक समाप्त ॥

—०—

शतक ३ उद्देशक ६

भगवन् ! राजगृह नगरमें रहा हुआ मिथ्यादृष्टि और मायी भावितात्मा अनगार वीर्यलब्धिसे, वैक्रियलब्धिसे और विभंगज्ञान-लब्धिसे वाराणसी नगरी की विकुर्वणा करके क्या तद्गत रूपोंको जानता और देखता है ? हां, गौतम ! वह उन रूपोंको जानता और देखता है। भगवन् ! क्या वह तथाभाव (यथार्थ रूप) से जानता देखता है, या अन्यथाभाव (विपरीत रूप) से जानता देखता

है ? गौतम ! वह तथाभावसे नहीं जानता और नहीं देखता, किन्तु अन्यथा-भावसे जानता और देखता है।

भगवन् ! ऐसा किस कारणसे कहा जाता है कि वह तथाभावसे नहीं जानता और नहीं देखता, किन्तु अन्यथाभावसे जानता और देखता है ? गौतम ! उस साधुके मनमें इस प्रकार विचार होता है कि वाराणसीमें रहे हुए मैंने राज-गृह नगरकी विकुर्वणा की है और विकुर्वणा करके तद्‌गत अर्थात् वाराणसीके रूपोंको जानता और देखता हूं, इस प्रकार उसका दर्शन विपरीत होता है। इस कारणसे ऐसा कहा जाता है कि वह तथाभावसे नहीं जानता नहीं देखता, किन्तु अन्यथाभावसे जानता देखता है।

भगवन् ! क्या वाराणसीमें रहा हुआ मायी मिथ्यादृष्टि भावितात्मा अनगार यावत् राजगृह नगरकी विकुर्वणा करके वाराणसीके रूपोंको जानता और देखता है ? गौतम ! हां, वह उन रूपोंको जानता और देखता है। यावत् उस साधुके मनमें इस प्रकारका विचार होता है कि राजगृहमें रहा हुआ मैं वाराणसी नगरीकी विकुर्वणा करके राजगृहके रूपोंको जानता हूं और देखता हूं। इस प्रकार उसका दर्शन विपरीत होता है। इस कारणसे यावत् वह अन्यथा-भावसे जानता है और देखता है।

भगवन् ! क्या मायी मिथ्यादृष्टि भावितात्मा अनगार अपनी वीर्यलब्धिसे वैक्रिय लब्धिसे और विभंगज्ञान लब्धिसे वाराणसी नगरी और राजगृह नगरके वीचमें एक बड़े जनपद वर्ग (देश समूह) की विकुर्वणा करके उस (वाराणसी नगरी और राजगृह नगरके वीचमें) बड़े जनपद वर्गको जानता है और देखता है ? हां, गौतम ! वह उस जनपद वर्गको जानता और देखता है। भगवन् ! क्या वह उस जनपद वर्गको तथाभावसे जानता और देखता है अथवा अन्यथा-भावसे जानता और देखता है ? गौतम ! वह उस जनपद वर्गको तथाभावसे नहीं जानता और नहीं देखता, किन्तु अन्यथाभावसे जानता और देखता है।

भगवन् ! वह उनको अन्यथाभावसे जानता और देखता है, इसका क्या कारण है ? गौतम ! उस साधुके मनमें इस प्रकारका विचार होता है कि यह वाराणसी नगरी है और यह राजगृह नगर है तथा इन दोनोंके वीचमें यह एक बड़ा जनपद वर्ग है। परन्तु मेरी वीर्य लब्धि, वैक्रिय लब्धि और विभंगज्ञान लब्धि नहीं है। मुझे मिली हुई, प्राप्त हुई और सम्मुख आई हुई ऋद्धि, द्युति, यश, वल, वीर्य और पुरुषकार पराक्रम नहीं है। इस प्रकार उस साधुका दर्शन विपरीत होता है। इस कारणसे यावत् वह अन्यथाभावसे जानता और देखता है।

भगवन् ! क्या वाराणसी नगरीमें रहा हुआ अमायी सम्यग्दृष्टि भावितात्मा अनगार अपनी वीर्य लब्धिसे, वैक्रिय लब्धिसे और अवधिज्ञान लब्धिसे राजगृह नगरकी विकुर्वणा करके वाराणसीके रूपोंको जानता और देखता है ? गौतम ! हां, वह उन रूपोंको जानता और देखता है। भगवन् ! क्या वह उन रूपोंको तथाभावसे जानता और देखता है ? अथवा अन्यथाभावसे जानता और देखता है ? गौतम ! वह उन रूपोंको तथाभावसे जानता और देखता है, किन्तु अन्यथाभावसे नहीं जानता और नहीं देखता।

भगवन् ! इसका क्या कारण है ? गौतम ! उस साधुके मनमें इस प्रकार का विचार होता है कि वाराणसी नगरीमें रहा हुआ मैं राजगृह नगरकी विकुर्वणा करके वाराणसीके रूपोंको जानता और देखता हूं। उसका दर्शन अविपरीत (सम्यक्) होता है। इस कारणसे वह तथाभावसे जानता और देखता है–ऐसा कहा जाता है। दूसरा आलापक भी इसी तरह कहना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि उसमें वाराणसी नगरीकी विकुर्वणा और राजगृह नगरमें रहे रूपोंका देखना जानना कहना चाहिए।

भगवन् ! क्या अमायी सम्यग्दृष्टि भावितात्मा अनगार अपनी वीर्य लब्धि से, वैक्रिय लब्धिसे और अवधिज्ञान लब्धिसे, राजगृह नगर और वाराणसी नगरी के वीचमें एक वड़े जनपद वर्गकी विकुर्वणा करके उस (राजगृह नगर और वाराणसी नगरीके वीचमें) एक वड़े जनपद वर्गको जानता और देखता है ? हां, गौतम ! वह उस जनपद वर्गको जानता और देखता है। भगवन् ! क्या वह उस जनपद वर्गको तथाभावसे जानता और देखता है, अथवा अन्यथाभावसे जानता और देखता है ? गौतम ! वह उस जनपद वर्गको तथाभावसे जानता और देखता है, किन्तु अन्यथाभावसे नहीं जानता और नहीं देखता।

भगवन् ! इसका क्या कारण है ? गौतम ! उस साधुके मनमें इस प्रकार का विचार होता है कि न तो यह राजगृह नगर है और न यह वाराणसी नगरी है, तथा न यह इन दोनोंके बीचमें एक वड़ा जनपद वर्ग है, किन्तु यह मेरी वीर्य-लब्धि है, वैक्रिय लब्धि है, यह मुझे मिली हुई, प्राप्त हुई और सम्मुख आई हुई ऋद्धि, द्युति, यश, बल, वीर्य और पुरुषकार पराक्रम है। उसका दर्शन अविपरीत होता है। इस कारणसे हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि वह साधु तथाभावसे जानता और देखता है, परन्तु अन्यथाभावसे नहीं जानता और नहीं देखता।

भगवन् ! क्या भावितात्मा अनगार बाहरके पुद्गलोंको ग्रहण किए विना एक वड़े ग्राम, नगर यावत् सन्निवेशके रूपोंकी विकुर्वणा कर सकता है ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। इसी प्रकार दूसरा आलापक भी कहना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि वाहरके पुद्गलोंको ग्रहण करके वह साधु उस प्रकारके

रूपोंकी विकुर्वणा कर सकता है। भगवन्! वह भावितात्मा अनगार कितने ग्राम रूपोंकी विकुर्वणा कर सकता है? गौतम! युवति-युवाके दृष्टान्तसे पहले कहे अनुसार सारा वर्णन जान लेना चाहिए। अर्थात् वह इस प्रकारके रूपोंसे सम्पूर्ण एक जम्बूद्वीपको ठसाठस भर सकता है। यावत् असंख्यातको भरनेकी शक्ति है। यह उसका मात्र विषय सामर्थ्य है। इसी तरहसे यावत् सन्निवेश रूपों पर्यन्त कहना चाहिए ॥१६१॥

भगवन्! असुरेन्द्र असुरराज चमरके कितने हजार आत्मरक्षक देव हैं? गौतम! असुरेन्द्र असुरराज चमरके २५६००० (दो लाख छप्पन हजार) आत्म-रक्षक देव हैं। यहां आत्मरक्षक देवोंका वर्णन समझना चाहिए और जिस इन्द्रके जितने आत्मरक्षक देव हैं। उन सबका वर्णन करना चाहिए।···भगवन्! यह इसी प्रकार है। ············ऐसा कह कर यावत् गौतम स्वामी विचरते हैं ॥१६२॥

॥ तीसरे शतकका छठा उद्देशक समाप्त ॥

शतक ३ उद्देशक ७—लोकपाल सोमदेव

राजगृह नगर में यावत् पर्युपासना करते हुए गौतम स्वामी ने इस प्रकार पूछा कि—भगवन्! देवेन्द्र देवराज शक्रके कितने लोकपाल कहे गये हैं? गौतम! उसके चार लोकपाल कहे गये हैं। यथा—सोम, यम, वरुण और वैश्र-मण। भगवन्! इन चार लोकपालों के कितने विमान कहे गये हैं? गौतम! इन चार लोकपालों के चार विमान कहे गये हैं। यथा—सन्ध्याप्रभ, वरशिष्ट, स्वयंज्वल और वल्गु। भगवन्! देवेन्द्र देवराज शक्रके लोकपाल सोम नामक महाराजका सन्ध्याप्रभ नामका महाविमान कहाँ है? गौतम! जम्बूद्वीप नाम-वाले द्वीपके मेरु पर्वत से दक्षिण दिशा में इस रत्नप्रभा पृथ्वी के बहुसम रमणीय भूमिभाग से ऊपर चन्द्र, सूर्य, ग्रहगण, नक्षत्र और तारागण आते हैं। उनसे बहुत योजन ऊपर यावत् पांच अवतंसक हैं। यथा—अशोकावतंसक, सप्तपर्णावतंसक, चंपकावतंसक, आम्रावतंसक और बीचमें सौधर्मावतंसक है। उस सौधर्मावतंसक महाविमानके पूर्वमें, सौधर्म कल्पसे असंख्य योजन दूर जानेके अनन्तर वहाँ पर देवेन्द्र देवराज शक्रके लोकपाल सोम नामक महाराजका सन्ध्याप्रभ नामका महा-विमान आता है। उसकी लम्बाई चौड़ाई साढ़े बारह लाख योजन की है। उसका परिक्षेप (परिधि) उनतालीस लाख बावन हजार आठ सौ अड़तालीस (३९५२८४८) योजनसे कुछ अधिक है। इस विषय में सूर्याभदेव के विमान की वक्तव्यताकी तरह सारी वक्तव्यता अभिषेक तक कहनी चाहिए, इतना फर्क है कि वहाँ सूर्याभ देव के स्थान पर 'सोम देव' कहना चाहिए। सन्ध्याप्रभ महा-

विमानके सपक्ष सप्रतिदेश अर्थात् ठीक बरावर नीचे असंख्य योजन जाने पर देवेन्द्र देवराज शक्रके लोकपाल सोम महाराज की सोमा नाम की राजधानी है। उस राजधानीकी लम्बाई और चौड़ाई एक लाख योजन की है। वह राजधानी जम्बूद्वीप जितनी है। इस राजधानी के किले आदिका परिमाण वैमानिक देवोंके किले आदिके परिमाणसे आधा कहना चाहिए। इस भाँति यावत् घरके पीठवन्ध तक कहना चाहिए। घरके पीठवन्धका आयाम और विष्कम्भ अर्थात् लम्बाई चौड़ाई सोलह हजार योजन है। उसका परिक्षेप (परिधि) पचास हजार पांच सौ सत्तानवें (५०५९७) योजनसे कुछ अधिक है। प्रासादों की चार परिपाटी कहनी चाहिए, शेष नहीं।

देवेन्द्र देवराज शक्रके लोकपाल सोम महाराज की आज्ञा में, उपपात (समीपता) में, कहनेमें और निर्देशमें ये देव रहते हैं, यथा–सोमकायिक, सोमदेवकायिक, विद्युतकुमार, विद्युत्कुमारियाँ, अग्निकुमार, अग्निकुमारियाँ, वायुकुमार, वायुकुमारियाँ, चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, तारारूप और इसी प्रकारके दूसरे भी सब उसके भक्त देव, उसके पक्ष के देव और उसकी अधीनता में रहने वाले, ये सब देव उसकी आज्ञा में, उपपात में, कहने में और निर्देश में रहते हैं।

इस जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत की दक्षिण दिशा में जो ये कार्य होते हैं। यथा–ग्रहदण्ड, ग्रहमूसल, ग्रहगर्जित इसी तरह ग्रहयुद्ध, ग्रहशृंगाटक, ग्रहापसव्य, अभ्रवृक्ष, सन्ध्या, गन्धर्वनगर, उल्कापात, दिग्दाह, गर्जित, विद्युत्, धूल की वृष्टि, यूप, यक्षोद्दीप्त, धूमिका, महिका, रजउद्‌घात, चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण, चन्द्रपरिवेष, सूर्यपरिवेष, प्रतिचन्द्र, प्रतिसूर्य, इन्द्रधनुष, उदकमत्स्य, कपिहसित, अमोघ, पूर्वदिशाके पवन, पश्चिम दिशा के पवन, यावत् संवर्त्तक पवन, ग्रामदाह, यावत् सन्निवेश-दाह, प्राणक्षय, जनक्षय, धनक्षय, कुलक्षय, यावत् व्यसनभूत, अनार्य (पाप रूप) तथा उस प्रकारके दूसरे भी सब कार्य देवेन्द्र देवराज शक्रके लोकपाल सोम महाराजसे अज्ञात (नहीं जाने हुए) अदृष्ट (नहीं देखे हुए) अश्रुत (नहीं सुने हुए) अस्मृत (स्मरण नहीं किये हुए) तथा अविज्ञात (विशेष रूपसे न जाने हुए) नहीं होते हैं। अथवा ये सब कार्य सोमकायिक देवोंसे भी अज्ञात आदि नहीं होते हैं। देवेन्द्र देवराज शक्रके लोकपाल सोम महाराजको यह देव, अपत्य रूप से अभिमत हैं। यथा–अंगारक (मंगल), विकोलिक, लोहिताक्ष, शनैश्चर, चन्द्र, सूर्य, शुक्र, बुध, बृहस्पति और राहु। देवेन्द्र देवराज शक्रके लोकपाल सोम-महाराजकी स्थिति तीन भाग सहित एक पल्योपम की है। और उसके अपत्य रूपसे अभिमत देवोंकी स्थिति एक पल्योपमकी होती है। इस प्रकार सोम महाराज महाऋद्धि यावत् महाप्रभाव वाला है ॥१६३॥

भगवन्! देवेन्द्र देवराज शक्रके लोकपाल यम महाराजका वरशिष्ट नाम

का महाविमान कहाँ है ? गौतम ! सौधर्मावतंसक नामके महाविमानसे दक्षिणमें सौधर्मकल्पमें असंख्य हजार योजन आगे जाने पर देवेन्द्र देवराज शक्रके लोकपाल यम महाराजा का वरशिष्ट नामका महान् विमान है। उसकी लम्बाई चौड़ाई साढ़े बारह लाख योजन है, इत्यादि सारा वर्णन सोम महाराजाके सन्ध्याप्रभ महाविमान की तरह कहना चाहिये, यावत् अभिषेक तक। राजधानी और प्रासादोंकी पंक्तियों के विषय में भी उसी तरह कहना चाहिये। देवेन्द्र देवराज शक्रके लोकपाल यम महाराजकी आज्ञामें यावत् ये देव रहते हैं–यमकायिक, यमदेव-कायिक, प्रेतकायिक, प्रेतदेव-कायिक, असुरकुमार, असुरकुमारियाँ, कन्दर्प, नरकपाल, अभियोग और इसी प्रकार के वे सब देव जो यम महाराज की भक्ति, पक्ष और अधीनता रखते हैं, ये सब यम महाराज की आज्ञा में यावत् रहते हैं।

इस जम्बूद्वीप के मेरु पर्वतसे दक्षिण में जो ये कार्य होते हैं–डिम्ब (विघ्न), डमर (उपद्रव), कलह, बोल, खार (पारस्परिक मत्सरता), महायुद्ध, महासंग्राम, महाशस्त्र-निपतन, इसी तरह महापुरुषों की मृत्यु, महारुधिरका निपतन, दुर्भूत, (दुष्टजन) कुलरोग, मण्डलरोग, नगररोग, शिर दर्द, नेत्र वेदना, कर्ण वेदना, नख वेदना, दन्त वेदना, इन्द्र ग्रह, स्कन्द ग्रह, कुमार ग्रह, यक्ष ग्रह, एकान्तर ज्वर, द्विअन्तर ज्वर, त्रिअन्तर ज्वर, चतुरन्तर (चौथिया ज्वर), उद्वेग, खांसी, श्वास (दम), बलनाशक ज्वर, दाह ज्वर, कच्छ-कोह (शरीर के कक्षादि भागोंका सड़ जाना), अजीर्ण, पाण्डुरोग, हरसरोग, भगन्दर, हृदयशूल, मस्तकशूल, योनिशूल, पार्श्वशूल, कुक्षिशूल, ग्राममारी, नगरमारी, खेट, कर्बट, द्रोणमुख, मडम्ब, पट्टण, आश्रम, संबाध और सन्निवेश इन सब की मारी (मृगी रोग), प्राणक्षय, जनक्षय, कुलक्षय, व्यसनभूत, अनार्य (पापरूप) और इसी प्रकार के दूसरे सब कार्य देवेन्द्र देवराज शक्रके लोकपाल यम महाराजा से अथवा यमकायिक देवोंसे अज्ञात आदि नहीं हैं ॥१६४॥

देवेन्द्र देवराज शक्रके लोकपाल यम महाराजाके ये देव अपत्य रूपसे अभिमत हैं–अम्ब, अम्बरिष, श्याम, शबल, रुद्र, उपरुद्र, काल, महाकाल, असिपत्र, धनुष, कुम्भ, बालू, वैतरणी, खरस्वर और महाघोष–ये पन्द्रह हैं। देवेन्द्र देवराज शक्रके लोकपाल यम महाराजा की स्थिति तीन भाग सहित एक पल्योपम की है और उसके अपत्य रूपसे अभिमत देवोंकी स्थिति एक पल्योपमकी है। यम महाराजा ऐसी महाऋद्धि वाला और महा प्रभाव वाला है ॥ १६५॥

भगवन् ! देवेन्द्र देवराज शक्रके लोकपाल वरुण महाराजका स्वयंज्वल नामका महाविमान कहाँ है ? गौतम ! सौधर्मावतंसक विमानसे पश्चिममें, सौधर्म-कल्पसे असंख्य योजन दूर जाने पर वरुण महाराजका स्वयंज्वल नामका महाविमान आता है। इसका सारा वर्णन सोम महाराजके महाविमानकी तरह

जानना चाहिए। इसी तरह विमान, राजधानी यावत् प्रासादावतंसकों के विषयमें भी जानना चाहिए। केवल नामोंमें अन्तर है। देवेन्द्र देवराज शक्रके लोकपाल वरुण महाराजकी आज्ञामें यावत् ये देव रहते हैं—वरुणकायिक, वरुणदेवकायिक, नागकुमार, नागकुमारियां, उदधिकुमार, उदधिकुमारियां, स्तनितकुमार, स्तनितकुमारियां और इसी प्रकारके उसकी भक्ति और पक्ष रखने वाले तथा अधीनस्थ देव उनकी आज्ञामें यावत् रहते हैं।

इस जम्बूद्वीपके मेरु पर्वतसे दक्षिण दिशामें जो ये कार्य उत्पन्न होते हैं। यथा—अतिवृष्टि, मन्दवृष्टि, सुवृष्टि, दुर्वृष्टि, उदकोद्भेद (पहाड़ आदिसे निकलने वाला झरना), उदकोत्पील (तालाब आदिमें पानीका समूह), अपवाह (पानी का थोड़ा बहना), प्रवाह (पानी का प्रवाह), ग्रामवाह (ग्रामका बह-जाना) यावत् सन्निवेशवाह (सन्निवेश का बह जाना), प्राण-क्षय और इसी प्रकार के दूसरे सब कार्य वरुण महाराजसे अथवा वरुणकायिक देवोंसे अज्ञात आदि नहीं हैं।

देवेन्द्र देवराज शक्रके लोकपाल वरुण महाराज के ये देव अपत्य रूपसे अभिमत हैं—कर्कोटक, कर्दमक, अञ्जन, शंखपालक, पुण्ड्र, पलाश, मोद, जय, दधिमुख, अयंपुल और कातरिक। देवेन्द्र देवराज शक्रके लोकपाल वरुण महाराजकी स्थिति देशोन दो पल्योपम की है और उसके अपत्य रूपसे अभिमत देवों की स्थिति एक पल्योपम की है। वरुण महाराज ऐसा महाऋद्धि वाला और महा प्रभाव वाला है॥१६६॥

भगवन्! देवेन्द्र देवराज शक्रके लोकपाल वैश्रमण महाराजका वल्गु नामका महाविमान कहाँ है? गौतम! सौधर्मावतंसक नामके महाविमानसे उत्तरमें है। इसका सारा वर्णन सोम महाराजके महाविमानके समान जानना चाहिए यावत् राजधानी और प्रासादावतंसक तकका वर्णन उसी तरह जानना चाहिए। देवेन्द्र देवराज शक्रके लोकपाल वैश्रमण महाराजकी आज्ञामें, उपपात में, वचनमें और निर्देशमें ये देव रहते हैं। यथा—वैश्रमणकायिक, वैश्रमणदेवकायिक, सुवर्णकुमार, सुवर्णकुमारियां, द्वीपकुमार, द्वीपकुमारियां, दिक्कुमार, दिक्कुमारियां, वाणव्यन्तर, वाणव्यन्तरदेवियां तथा इसी प्रकार वे सब देव जो उसकी भक्ति पक्ष और अधीनता रखते हैं, वे सब उसकी आज्ञा आदिमें रहते हैं।

इस जम्बूद्वीपके मेरु पर्वतसे दक्षिणमें जो ये कार्य होते हैं। यथा—लोहकी खानें, रांगेकी खानें, ताम्बेकी खानें, शीशेकी खानें, हिरण्य (चांदी), सुवर्ण, रत्न और वज्रकी खानें, वसुधारा, हिरण्य, सुवर्ण, रत्न, वज्र, गहना, पत्र, पुष्प,

फल, बीज, माला, वर्ण, चूर्ण, गन्ध और वस्त्र इन सबकी वर्षा। तथा कम या अधिक हिरण्य······यावत् वस्त्र, भाजन और क्षीर की वृष्टि, सुकाल, दुष्काल, अल्पमूल्य (सस्ता), महामूल्य (महंगा), भिक्षाकी समृद्धि, भिक्षाकी हानि, खरीदना, वेचना, सन्निधि (घी गुड़ादिका संचय), सन्निचय (अनाजका संचय), निधियाँ, निधान, चिरपुरातन (बहुत पुराने) जिनके स्वामी नष्ट हो गये हैं ऐसे खजाने, जिनकी सार संभाल करने वाले नहीं हैं ऐसे खजाने, प्रहीण मार्ग और नष्ट गोत्र वाले खजाने, स्वामी रहित खजाने, जिनके स्वामियोंके नाम और गोत्र तथा घर नाम-शेष हो गये हैं ऐसे खजाने, शृंगाटक (सिंघाड़ेके आकार वाले) मार्गों में, त्रिक, चतुष्क, चत्वर, चतुर्मुख, महापथ, सामान्य मार्ग, नगरके गन्दे नाले, श्मशान, पर्वतगृह, पर्वत गुफा, शान्तिगृह, पर्वतको खोदकर बनाये गए घर, सभास्थान, निवासगृह आदि स्थानोंमें गाड़कर रक्खा हुआ धन, ये सब पदार्थ देवेन्द्र देवराज शक्रके लोकपाल वैश्रमण महाराजसे तथा वैश्रमण-कायिक देवोंसे अज्ञात, अदृष्ट, अश्रुत, अस्मृत और अविज्ञात नहीं हैं।

देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल वैश्रमण महाराज के ये देव अपत्य रूपसे अभिमत हैं। यथा—पूर्णभद्र, मणिभद्र, शालिभद्र, सुमनोभद्र, चक्र, रक्ष, पूर्णरक्ष, सद्वान्, सर्वयश, सर्वकाय, समृद्ध, अमोघ और असंग।

देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल वैश्रमण महाराजकी स्थिति दो पल्योपम है और उसके अपत्य रूपसे अभिमत देवों की स्थिति एक पल्योपम की है। इस प्रकार वैश्रमण महाराज महा ऋद्धि वाला और महा प्रभाव वाला है। हे भगवन्! यह इसी प्रकार है। हे······॥१६७॥

॥ तीसरे शतक का सातवां उद्देशक समाप्त ॥

शतक ३ उद्देशक ८

राजगृह नगरमें यावत् पर्युपासना करते हुए गौतम स्वामीने इस प्रकार पूछा—भगवन्! असुरकुमार देवों पर कितने देव अधिपतिपना करते हुए यावत् विचरते हैं? गौतम! असुरकुमार देवों पर अधिपतित्व भोगते हुए यावत् दस देव विचरते हैं। वे इस प्रकार हैं—असुरेन्द्र असुरराज चमर, सोम, यम, वरुण, वैश्रमण, वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बलि, सोम, यम, वरुण और वैश्रमण। भगवन्! नागकुमारदेवों पर कितने देव अधिपतित्व करते हुए यावत् विचरते हैं। गौतम! नागकुमार देवों पर आधिपतित्व करते हुए यावत् दस देव विचरते हैं। वे इस प्रकार हैं—नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज धरण, कालवाल, कोलवाल, शैलपाल, शंखपाल, नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज भूतानन्द, कालवाल, कोलवाल, शंखपाल और शैलपाल।

जिस प्रकार नागकुमारोंके इन्द्रोंके सम्बन्धमें वक्तव्यता कही गई है उसी प्रकार इन देवोंके सम्बन्धमें भी समझना चाहिए। सुवर्णकुमार देवों पर–वेणुदेव, वेणुदालि, चित्र, विचित्र, चित्रपक्ष और विचित्रपक्ष। विद्युतकुमारोंके ऊपर हरिकान्त, हरिसह, प्रभ, सुप्रभ, प्रभाकान्त और सुप्रभाकान्त। अग्निकुमार देवों पर–अग्निसिंह, अग्निमाणव, तेजस्, तेजःसिंह, तेजकांत और तेजप्रभ। द्वीपकुमार देवों पर–पूर्ण, विशिष्ट, रूप, रूपांश, रूपकान्त और रूपप्रभ। उदधिकुमार देवों पर—जलकान्त, जलप्रभ, जल, जलरूप, जलकान्त और जलप्रभ। दिशाकुमार देवों पर–अमितगति, अमितवाहन, त्वरितगति, क्षिप्रगति, सिंहगति और सिंहविक्रमगति। वायुकुमार देवों पर–वेलम्ब, प्रभंजन, काल, महाकाल, अंजन और अरिष्ट। स्तनितकुमार देवों पर–घोष, महाघोष, आवर्त, व्यावर्त, नन्दिकावर्त और महानन्दिकावर्त। इन सबका कथन असुरकुमारोंकी तरह कहना चाहिए। दक्षिण भवनपतिके इन्द्रोंके प्रथम लोकपालोंके नाम इस प्रकार हैं—सोम, कालवाल, चित्र, प्रभ, तेजस्, रूप, जल, त्वरितगति, काल और आयुक्त।

भगवन्! पिशाचकुमारों पर अधिपतिपना करते हुए कितनें देव विचरते हैं? गौतम! उन पर अधिपतित्व भोगते हुए दो दो देव हैं। यथा–काल और महाकाल। सुरूप और प्रतिरूप। पूर्णभद्र और मणिभद्र। भीम और महाभीम। किन्नर और किम्पुरुष। सत्पुरुष और महापुरुष। अतिकाय और महाकाय। गीतरति और गीतयश। ये सब वाणव्यन्तर देवोंके इन्द्र हैं। ज्योतिषी देवों पर अधिपतित्व भोगते हुए दो देव यावत् विचरते हैं। यथा–चन्द्र और सूर्य।

भगवन्! सौधर्म और ईशान देवलोकमें अधिपतित्व भोगते हुए यावत् कितनें देव विचरते हैं? गौतम! उन पर अधिपतित्व भोगते हुए यावत् दस देव हैं। यथा—देवेन्द्र देवराज शक्र, सोम, यम, वरुण, वैश्रमण और देवेन्द्र देवराज ईशान, सोम, यम, वरुण, वैश्रमण। यह सारी वक्तव्यता सब देवलोकोंमें कहनी चाहिए और जिसमें जो इन्द्र है वह कहना चाहिए। हे भगवन्! यह इसी प्रकार है।······॥१६८॥

॥ तीसरे शतक का आठवाँ उद्देशक समाप्त॥

—०—

शतक ३ उद्देशक ९—इन्द्रियों के विषय

राजगृह नगर में यावत् गौतम स्वामी इस प्रकार बोले— भगवन्! इन्द्रियों के विषय कितनें प्रकार के कहे गए हैं? गौतम! इन्द्रियोंके

फल, बीज, माला, वर्ण, चूर्ण, गन्ध और वस्त्र इन सबकी वर्षा। तथा कम या अधिक हिरण्य……यावत् वस्त्र, भाजन और क्षीर की वृष्टि, सुकाल, दुष्काल, अल्पमूल्य (सस्ता), महामूल्य (महंगा), भिक्षाकी समृद्धि, भिक्षाकी हानि, खरीदना, बेचना, सन्निधि (घी गुड़ादिका संचय), सन्निचय (अनाजका संचय), निधियाँ, निधान, चिरपुरातन (बहुत पुराने) जिनके स्वामी नष्ट हो गये हैं ऐसे खजाने, जिनकी सार संभाल करने वाले नहीं हैं ऐसे खजाने, प्रहीण मार्ग और नष्ट गोत्र वाले खजाने, स्वामी रहित खजाने, जिनके स्वामियोंके नाम और गोत्र तथा घर नाम-शेष हो गये हैं ऐसे खजाने, शृंगाटक (सिंघाड़ेके आकार वाले) मार्गों में, त्रिक, चतुष्क, चत्वर, चतुर्मुख, महापथ, सामान्य मार्ग, नगरके गन्दे नाले, श्मशान, पर्वतगृह, पर्वत गुफा, शान्तिगृह, पर्वतको खोदकर बनाये गए घर, सभास्थान, निवासगृह आदि स्थानोंमें गाड़कर रक्खा हुआ धन, ये सब पदार्थ देवेन्द्र देवराज शक्रके लोकपाल वैश्रमण महाराजसे तथा वैश्रमण-कायिक देवोंसे अज्ञात, अदृष्ट, अश्रुत, अस्मृत और अविज्ञात नहीं हैं।

देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल वैश्रमण महाराज के ये देव अपत्य रूपसे अभिमत हैं। यथा—पूर्णभद्र, मणिभद्र, शालिभद्र, सुमनोभद्र, चक्र, रक्ष, पूर्णरक्ष, सद्-वान्, सर्वयश, सर्वकाय, समृद्ध, अमोघ और असंग।

देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल वैश्रमण महाराजकी स्थिति दो पल्योपम है और उसके अपत्य रूपसे अभिमत देवों की स्थिति एक पल्योपम की है। इस प्रकार वैश्रमण महाराज महा ऋद्धि वाला और महा प्रभाव वाला है। हे भगवन्! यह इसी प्रकार है। हे……॥१६७॥

॥ तीसरे शतक का सातवां उद्देशक समाप्त ॥

शतक ३ उद्देशक ८

राजगृह नगरमें यावत् पर्युपासना करते हुए गौतम स्वामीने इस प्रकार पूछा—भगवन्! असुरकुमार देवों पर कितने देव अधिपतिपना करते हुए यावत् विचरते हैं? गौतम! असुरकुमार देवों पर अधिपतित्व भोगते हुए यावत् दस देव विचरते हैं। वे इस प्रकार हैं—असुरेन्द्र असुरराज चमर, सोम, यम, वरुण, वैश्रमण, वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बलि, सोम, यम, वरुण और वैश्रमण। भगवन्! नागकुमारदेवों पर कितने देव अधिपतित्व करते हुए यावत् विचरते हैं। गौतम! नागकुमार देवों पर आधिपतित्व करते हुए यावत् दस देव विचरते हैं। वे इस प्रकार हैं—नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज धरण, कालवाल, कोलवाल, शैलपाल, शंखपाल, नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज भूतानन्द, कालवाल, कोलवाल, शंखपाल और शैलपाल।

जिस प्रकार नागकुमारोंके इन्द्रोंके सम्बन्धमें वक्तव्यता कही गई है उसी प्रकार इन देवोंके सम्बन्धमें भी समझना चाहिए। सुवर्णकुमार देवों पर–वेणुदेव, वेणुदालि, चित्र, विचित्र, चित्रपक्ष और विचित्रपक्ष। विद्युतकुमारोंके ऊपर हरिकान्त, हरिसह, प्रभ, सुप्रभ, प्रभाकान्त और सुप्रभाकान्त। अग्निकुमार देवों पर–अग्निसिंह, अग्निमाणव, तेजस्, तेज:सिंह, तेजकांत और तेजप्रभ। द्वीपकुमार देवों पर–पूर्ण, विशिष्ट, रूप, रूपांश, रूपकान्त और रूपप्रभ। उदधिकुमार देवों पर—जलकान्त, जलप्रभ, जल, जलरूप, जलकान्त और जलप्रभ। दिशाकुमार देवों पर–अमितगति, अमितवाहन, त्वरितगति, क्षिप्रगति, सिंहगति और सिंहविक्रमगति। वायुकुमार देवों पर–वेलम्ब, प्रभंजन, काल, महाकाल, अंजन और अरिष्ट। स्तनितकुमार देवों पर–घोष, महाघोष, आवर्त, व्यावर्त, नन्दिकावर्त और महानन्दिकावर्त। इन सबका कथन असुरकुमारोंकी तरह कहना चाहिए। दक्षिण भवनपतिके इन्द्रोंके प्रथम लोकपालोंके नाम इस प्रकार हैं—सोम, कालवाल, चित्र, प्रभ, तेजस्, रूप, जल, त्वरितगति, काल और आयुक्त।

भगवन्! पिशाचकुमारों पर अधिपतिपना करते हुए कितने देव विचरते हैं? गौतम! उन पर अधिपतित्व भोगते हुए दो दो देव हैं। यथा–काल और महाकाल। सुरूप और प्रतिरूप। पूर्णभद्र और मणिभद्र। भीम और महाभीम। किन्नर और किम्पुरुष। सत्पुरुष और महापुरुष। अतिकाय और महाकाय। गीतरति और गीतयश। ये सब वाणव्यन्तर देवोंके इन्द्र हैं। ज्योतिषी देवों पर अधिपतित्व भोगते हुए दो देव यावत् विचरते हैं। यथा–चन्द्र और सूर्य।

भगवन्! सौधर्म और ईशान देवलोकमें अधिपतित्व भोगते हुए यावत् कितने देव विचरते हैं? गौतम! उन पर अधिपतित्व भोगते हुए यावत् दस देव हैं। यथा—देवेन्द्र देवराज शक्र, सोम, यम, वरुण, वैश्रमण और देवेन्द्र देवराज ईशान, सोम, यम, वरुण, वैश्रमण। यह सारी वक्तव्यता सब देवलोकोंमें कहनी चाहिए और जिसमें जो इन्द्र है वह कहना चाहिए। हे भगवन्! यह इसी प्रकार है।······॥१६८॥

॥ तीसरे शतक का आठवाँ उद्देशक समाप्त ॥

—०—

शतक ३ उद्देशक ९—इन्द्रियों के विषय

राजगृह नगर में यावत् गौतम स्वामी इस प्रकार बोले—
इन्द्रियों के विषय कितने प्रकार के कहे गए हैं? गौतम! इन्द्रियों

विषय पांच प्रकारके कहे गये हैं। यथा-श्रोत्रेन्द्रियका विषय, इत्यादि। इस सम्बन्धमें जीवाभिगम सूत्र में कहा हुआ ज्योतिष्क उद्देशक सम्पूर्ण कहना चाहिए ॥१६९॥

॥ तीसरे शतक का नौवां उद्देशक समाप्त ॥

—o—

शतक ३ उद्देशक १०—इन्द्र की परिषद्

राजगृह नगरमें यावत् गौतम स्वामी इस प्रकार बोले—भगवन् ! असुरेन्द्र असुरराज चमरके कितनी परिषदाएँ (सभाएँ) ···हैं ? गौतम ! उसके तीन परिषदाएँ कही गई हैं। यथा—शमिका (अथवा—शमिता) चण्डा और जाता। इस प्रकार क्रमपूर्वक यावत् अच्युत कल्प तक कहना चाहिए। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है···ऐसा कह कर यावत् गौतमस्वामी विचरते हैं ॥१७०॥

॥ तीसरे शतक का दशवां उद्देशक समाप्त ॥

॥ तीसरा शतक समाप्त ॥

—o—

शतक ४ उद्देशक १-४

गाथा का अर्थ—इस चौथे शतकमें दस उद्देशक हैं। इनमें से पहलेके चार उद्देशकोंमें विमान-सम्बन्धी कथन किया गया है। पाँचवेंसे लेकर आठवें उद्देशक तकके चार उद्देशकोंमें राजधानियोंका वर्णन है। नवमें उद्देशकमें नैरयिकों का वर्णन है, और दसवें उद्देशकमें लेश्या सम्बन्धी वर्णन है। इस प्रकार इस शतक में दस उद्देशक हैं। राजगृह नगरमें यावत् गौतम स्वामी इस प्रकार बोले—भगवन् ! देवेन्द्र देवराज ईशानके कितने लोकपाल हैं ? गौतम ! उसके चार लोकपाल हैं। यथा—सोम, यम, वैश्रमण और वरुण। भगवन् ! इन लोकपालों के कितने विमान···हैं ? गौतम ! उनके चार विमान कहे गये हैं। यथा—सुमन, सर्वतोभद्र, वल्गु और सुवल्गु। भगवन् ! देवेन्द्र देवराज ईशानके लोकपाल सोम महाराजका सुमन नामक महाविमान कहाँ है ? गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीपके मेरुपर्वतके उत्तरमें इस रत्नप्रभा पृथ्वीके समतलसे यावत् ईशान नामक कल्प (देवलोक) है। उसमें यावत् पांच अवतंसक हैं। यथा—अंकावतंसक, स्फटिकावतंसक, रत्नावतंसक और जातरूपावतंसक। इन चारों अवतंसकोंके बीचमें ईशानावतंसक है। उस ईशानावतंसक महाविमानसे पूर्वमें तिर्छे असंख्येय हजार योजन जाने पर देवेन्द्र देवराज ईशानके लोकपाल सोम महाराजका 'सुमन' नाम का महाविमान है। उसका आयाम और विष्कम्भ अर्थात् लम्बाई और चौड़ाई

साढ़े बारह लाख योजन है। इसकी सारी वक्तव्यता तीसरे शतकमें शक्रेन्द्रके लोकपाल सोमके महाविमानकी वक्तव्यताके अनुसार कहनी चाहिए।

एक लोकपालके विमानकी वक्तव्यता जहां पूरी होती है वहां एक उद्देशक की समाप्ति होती है। इस प्रकार चार लोकपालोंके चार विमानों की वक्तव्यतामें चार उद्देशक पूर्ण होते हैं। परन्तु इनकी स्थितिमें अन्तर है। वह इस प्रकार है—सोम और यम महाराजाकी स्थिति त्रिभाग न्यून दो दो पल्योपम की है, वैश्रमणकी स्थिति दो पल्योपमकी है और वरुणकी स्थिति त्रिभाग सहित दो पल्योपम की है। अपत्य रूप देवोंकी स्थिति एक पल्योपम की है ॥१॥१७१॥

॥ चौथे शतकका पहला यावत् चौथा उद्देशक समाप्त ॥

—०—

शतक ४ उद्देशक ५-८—लोकपालों की राजधानियां

राजधानियोंके विषयमें ऐसा समझना चाहिए कि जहां एक एक राजधानीका वर्णन समाप्त होता है वहां एक एक उद्देशक पूर्ण हुआ समझना चाहिए। इस तरहसे चारों राजधानियोंके वर्णनमें चार उद्देशक पूर्ण होते हैं। इस तरह पांचवेंसे लेकर आठवें उद्देशक तक चार उद्देशक पूर्ण हुए, यावत् वरुण महाराज ऐसी महाऋद्धि वाला है ॥१७२॥

॥ चौथे शतक का पांचवां यावत् आठवां उद्देशक समाप्त ॥

—०—

शतक ४ उद्देशक ९—नैरयिक ही नरक में जाता है।

भगवन्! क्या जो नैरयिक है, वह नैरयिकोंमें उत्पन्न होता है? या जो अनैरयिक है वह नैरयिकोंमें उत्पन्न होता है? गौतम! प्रज्ञापना सूत्र के लेश्यापदका तीसरा उद्देशक यहाँ कहना चाहिए और वह ज्ञानोंके वर्णन तक कहना चाहिए ॥१७३॥

॥ चौथे शतक का नववां उद्देशक समाप्त ॥

—०—

शतक ४ उद्देशक १०—लेश्या का परिवर्तन

भगवन्! क्या कृष्ण-लेश्या नील-लेश्याका संयोग प्राप्त करके तद्रूप और तद्वर्णसे परिणमती है? गौतम! प्रज्ञापना सूत्रमें कहे हुए लेश्या-पदका चौथा उद्देशक यहां कहना चाहिए और वह यावत् 'परिणाम' इत्यादि द्वार गाथा तक कहना चाहिए। गाथा का अर्थ इस प्रकार है—परिणाम, वर्ण, रस, गन्ध शुद्ध, अप्रशस्त, संक्लिष्ट, उष्ण, गति, परिणाम, प्रदेश, अवगाहना, वर्गणा, स्थान

और अल्पबहुत्व। ये सारी बातें लेश्याओं के विषयमें कहनी चाहिएँ। भगवन् ! यह इसी प्रकार है।..........ऐसा कहकर यावत् गौतम स्वामी विचरते हैं ॥१७४॥

॥ चौथे शतक का दशवां उद्देशक समाप्त ॥

॥ चौथा शतक समाप्त ॥

—०—

शतक ५—उद्देशक १

पांचवां शतक प्रारम्भ होता है। इसमें दस उद्देशक हैं। प्रथम उद्देशकमें सूर्य सम्बन्धी प्रश्नोत्तर हैं। ये प्रश्नोत्तर चंपानगरीमें हुए थे। दूसरे उद्देशकमें वायु सम्बन्धी वर्णन है। तीसरे उद्देशकमें जालग्रन्थिका उदाहरण देकर वर्णन किया गया है। चौथे उद्देशकमें शब्द सम्बन्धी प्रश्नोत्तर है। पांचवें उद्देशकमें छद्मस्थ सम्बन्धी वर्णन है। छट्ठे उद्देशकमें आयुष्य सम्बन्धी, सातवें उद्देशकमें पुद्गलों के कंपन सम्बन्धी, आठवें उद्देशकमें निर्ग्रन्थि-पुत्र अनगार सम्बन्धी, नवमें उद्देशकमें राजगृह सम्बन्धी और दसवें उद्देशकमें चन्द्र सम्बन्धी वर्णन है, यह वर्णन चम्पा नगरी में किया गया था। इस प्रकार पांचवें शतकके ये दस उद्देशक हैं।

उस काल उस समयमें चंपा नाम की नगरी थी—वर्णन करने योग्य—समृद्ध। उस चंपा नगरी के बाहर पूर्णभद्र नामका उद्यान था। वह वर्णन करने योग्य था। वहाँ श्रमण भगवान् महावीर स्वामी पधारे, यावत् परिषदा भगवान् को वन्दन करने के लिये और धर्मोपदेश सुनने के लिये गई और यावत् परिषदा वापिस लौट गई। उस काल उस समयमें श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के ज्येष्ठ अन्तेवासी गौतमगोत्री इन्द्रभूति अनगार थे, यावत् उन्होंने इस प्रकार पूछा—हे भगवन् ! क्या जम्बूद्वीप नामक द्वीपमें सूर्य ईशान कोणमें उदय होकर अग्नि कोणमें अस्त होते हैं ? क्या अग्निकोणमें उदय होकर नैऋत्य कोण में अस्त होते हैं ? क्या नैऋत्य कोण में उदय होकर वायव्य कोण में अस्त होते हैं ? क्या वायव्य कोणमें उदय होकर ईशान कोणमें अस्त होते हैं ? हाँ, गौतम ! सूर्य इसी तरह उदय और अस्त होते हैं। जम्बूद्वीपमें सूर्य उत्तर-पूर्व अर्थात् ईशान कोणमें उदय होकर यावत् ईशान कोणमें अस्त होते हैं ॥१७५॥

भगवन् ! जब जम्बूद्वीप के दक्षिणार्द्ध में दिन होता है तब उत्तरार्द्ध में भी दिन होता है ? और जब उत्तरार्द्ध में दिन होता है तब जम्बूद्वीपके मेरु पर्वतसे पूर्व पश्चिममें रात्रि होती है ? हाँ, गौतम ! यह इसी तरह होता है। अर्थात् जब जम्बूद्वीपके दक्षिणार्द्ध में दिन होता है तब यावत् रात्रि होती है। भगवन् ! क्या

जम्बूद्वीपके मेरु पर्वतसे पूर्वमें जब दिन होता है तब पश्चिम में भी दिन होता है ? और जब पश्चिममें दिन होता है तब जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत से उत्तर दक्षिण दिशा में रात्रि होती है ? हाँ, गौतम ! यह इसी तरह होता है। अर्थात् जब जम्बूद्वीपके मेरु पर्वतसे पूर्वमें दिन होता है तब यावत् रात्रि होती है।

भगवन् ! क्या जम्बूद्वीपके दक्षिणार्द्ध में जब उत्कृष्ट अठारह मुहूर्तका दिन होता है तब उत्तरार्द्ध में भी उत्कृष्ट अठारह मुहूर्तका दिन होता है और जब उत्तरार्द्ध में उत्कृष्ट अठारह मुहूर्तका दिन होता है तब जम्बूद्वीपमें मेरु पर्वत से पूर्व पश्चिममें जघन्य बारह मुहूर्तकी रात्रि होती है ? हां, गौतम ! यह इसी तरह होती है। अर्थात् जम्बूद्वीपमें यावत् बारह मुहूर्तकी रात्रि होती हैं।

भगवन् ! क्या जम्बूद्वीपके मेरु पर्वतसे पूर्वमें जब उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त का दिन होता है तब जम्बूद्वीप के पश्चिममें भी उत्कृष्ट अठारह मुहूर्तका दिन होता है ? और जब पश्चिममें उत्कृष्ट अठारह मुहूर्तका दिन होता है तब जम्बूद्वीपके उत्तरार्द्ध में जघन्य बारह मुहूर्तकी रात्रि होती है ? हाँ, गौतम इसी तरह होता है।

भगवन् ! क्या जम्बूद्वीपमें दक्षिणार्द्ध में जब अठारह मुहूर्तानन्तर (अठारह मुहूर्त से कुछ कम) दिन होता है तब उत्तरार्द्ध में अठारह मुहूर्तानन्तर दिन होता है ? और जब उत्तरार्द्ध में अठारह मुहूर्तानन्तर दिन होता है तब जम्बूद्वीपके मेरु पर्वतसे पूर्व पश्चिम दिशामें सातिरेक (कुछ अधिक) बारह मुहूर्तकी रात्रि होती है ? हां, गौतम ! यह इसी तरह होती है।

भगवन् ! क्या जम्बूद्वीपके मेरु पर्वतसे पूर्वमें जब अठारह मुहूर्तानन्तर दिन होता है तब पश्चिममें अठारह मुहूर्तानन्तर दिन होता है ? और जब पश्चिममें अठारह मुहूर्तानन्तर दिन होता है तब जम्बूद्वीपमें मेरु पर्वतसे उत्तर दक्षिण में सातिरेक बारह मुहूर्त रात्रि होती है ? हाँ, गौतम ! यह इसी प्रकार होता है ?

इस क्रमसे दिन का परिमाण घटाना चाहिये और रात्रिका परिमाण बढ़ाना चाहिये। जब सत्तरह मुहूर्तका दिन होता है तब तेरह मुहूर्तकी रात्रि होती है। जब सत्तरह मुहूर्तानन्तर दिन होता है तब सातिरेक तेरह मुहूर्त रात्रि होती है। जब सोलह मुहूर्त का दिन होता है तब चौदह मुहूर्त की रात्रि होती है। जब सोलह मुहूर्तानन्तर दिन होता है तब सातिरेक चौदह मुहूर्त की रात्रि होती है। जब पन्द्रह मुहूर्त का दिन होता है तब पन्द्रह मुहूर्तकी रात्रि होती है। जब पन्द्रह मुहूर्तानन्तर दिन होता है तब सातिरेक पन्द्रह मुहूर्त की रात्रि होती है। जब चौदह मुहूर्त का दिन होता है तब सोलह मुहूर्तकी रात्रि होती है। जब चौदह मुहूर्तानन्तर दिन होता है तब सातिरेक सोलह मुहूर्तकी रात्रि होती है। जब तेरह मुहूर्तका दिन होता है तब सत्तरह मुहूर्तकी रात्रि होती है।

जब तेरह मुहूर्तानन्तर दिन होता है तब सातिरेक सत्तरह मुहूर्त रात्रि होती है।

हे भगवन्! क्या जम्बूद्वीप में दक्षिणार्द्ध में जब जघन्य बारह मुहूर्त का दिन होता है तब उत्तरार्द्ध में भी उसी तरह होता है? और जब उत्तरार्द्ध में भी उसी प्रकार होता है तब जम्बूद्वीपके मेरु पर्वतसे पूर्व पश्चिम में उत्कृष्ट अठारह मुहूर्तकी रात्रि होती है? हां, गौतम! यह इसी भांति होती है। इस प्रकार सब कहना चाहिये यावत् रात्रि होती है। भगवन्! क्या जम्बूद्वीपके मेरु पर्वतसे पूर्वमें जब जघन्य बारह मुहूर्तका दिन होता है तब क्या पश्चिममें भी इसी तरह होता है और जब पश्चिम में भी इसी तरह होता है तब जम्बूद्वीपके उत्तर दक्षिणमें उत्कृष्ट अठारह मुहूर्त की रात्रि होती है? हाँ, गौतम! यह इसी रीतिसे होती है ॥१७६॥

हे भगवन्! जब जम्बूद्वीप के दक्षिणार्द्धमें वर्षा ऋतु का प्रथम समय होता है तब उत्तरार्द्धमें भी वर्षा ऋतुका प्रथम समय होता है और जब उत्तरार्द्धमें वर्षा ऋतुका प्रथम समय होता है तब जम्बूद्वीपमें मेरु पर्वतके पूर्व पश्चिममें वर्षा ऋतु का प्रथम समय अनन्तरपुरस्कृत समय में होता है, अर्थात् जिस समय दक्षिणार्द्धमें वर्षाऋतु प्रारम्भ होती है उसी समयके पश्चात् तुरन्त दूसरे समय में मेरु पर्वतसे पूर्व पश्चिममें वर्षा ऋतु प्रारम्भ होती है? हाँ, गौतम! इसी तरह होता है, अर्थात् जब जम्बूद्वीप के दक्षिणार्द्धमें वर्षा ऋतु का प्रथम समय होता है तब उसी तरह यावत् होता है।

भगवन्! जब जम्बूद्वीपमें मेरु पर्वतके पूर्व में वर्षा ऋतु का प्रथम समय होता है तब पश्चिम में भी वर्षा ऋतुका प्रथम समय होता है और जब पश्चिम में वर्षा ऋतुका प्रथम समय होता है तब यावत् मेरु पर्वतके उत्तरदक्षिणमें वर्षा ऋतुका प्रथम समय–अनन्तरपश्चात्कृत समयमें होता है, अर्थात् मेरु पर्वतसे पश्चिममें वर्षा ऋतु प्रारम्भ होनेके प्रथम समय पहले एक समयमें वहां मेरु पर्वतसे उत्तर दक्षिणमें वर्षा ऋतु प्रारम्भ होती है? हाँ, गौतम! इसी प्रकार होता है, अर्थात् जब जम्बूद्वीपमें मेरु पर्वतसे पूर्वमें वर्षा ऋतु प्रारम्भ होती है, उससे पहले एक समय में उत्तर दक्षिणमें वर्षा ऋतु प्रारम्भ होती है। इस तरह यावत् सारा कथन कहना चाहिए। जिस प्रकार वर्षा ऋतु के प्रथम समय के विषयमें कहा गया है, उसी तरह वर्षा ऋतु के प्रारम्भ की प्रथम आवलिकाके विषय में भी कहना चाहिए। इसी तरह आनपान, स्तोक, लव, मुहूर्त, अहोरात्र, पक्ष, मास, ऋतु इन सब के सम्बन्ध में भी समय की तरह कहना चाहिए।

भगवन्! जब जम्बूद्वीपके दक्षिणार्द्धमें हेमन्त ऋतुका प्रथम समय होता है तब उत्तरार्द्धमें भी हेमन्त ऋतुका प्रथम समय होता है और जब उत्तरार्द्धमें इस तरह होता है तब जम्बूद्वीपके मेरु पर्वतसे पूर्व पश्चिममें हेमन्त ऋतुका प्रथम

समय अनन्तर पुरस्कृत समयमें होता है ? इत्यादि । गौतम ! इस विषयक सारा वर्णन वर्षा ऋतुके वर्णनके समान जान लेना चाहिए। इसी प्रकार ग्रीष्म ऋतुका भी वर्णन समझ लेना चाहिए । हेमन्त ऋतु और ग्रीष्म ऋतुके प्रथम समयके समान उनकी प्रथम आवलिका यावत् ऋतु पर्यन्त सारा वर्णन कहना चाहिए। इस प्रकार वर्षा ऋतु, हेमन्त ऋतु और ग्रीष्म ऋतु, इन तीनोंका समान वर्णन है। अतः इन तीनोंके तीस आलापक होते हैं ।

भगवन् ! जब जम्बूद्वीपमें मेरु पर्वतके दक्षिणार्द्धमें प्रथम 'अयन' होता है तब उत्तरार्द्धमें भी प्रथम अयन होता है ? गौतम ! जिस प्रकार 'समय' के विषय में कहा उसी प्रकार 'अयन' के विषयमें भी कहना चाहिए। यावत् उसके प्रथम समय अनन्तर पश्चात्कृत समयमें होता है। इत्यादि सारा वर्णन कहना चाहिए। जिस प्रकार 'अयन' के विषयमें कहा उसी प्रकार संवत्सर, युग, वर्षशत, वर्षसहस्र, वर्षशतसहस्र, पूर्वांग, पूर्व, त्रुटितांग, त्रुटित, अटटांग, अटट, अववांग, अवव, हूहूकांग, हूहूक, उत्पलांग, उत्पल, पद्मांग, पद्म, नलिनांग, नलिन, अर्थनूपुरांग, अर्थनूपुर, अयुतांग, अयुत, नयुतांग, नयुत, प्रयुतांग, प्रयुत, चूलिकांग, चूलिका, शीर्षप्रहेलिकांग, शीर्षप्रहेलिका, पल्योपम और सागरोपम । इन सबके सम्बन्धमें भी पूर्वोक्त प्रकारसे समझना चाहिए ।

भगवन् ! जब जम्बूद्वीपके दक्षिणार्द्धमें प्रथम अवसर्पिणी होती है तब क्या उत्तरार्द्धमें भी प्रथम अवसर्पिणी होती है और जब उत्तरार्द्धमें प्रथम अवसर्पिणी होती है तब क्या जम्बूद्वीपमें मेरु पर्वतसे पूर्व पश्चिममें अवसर्पिणी नहीं होती, उत्सर्पिणी नहीं होती, किन्तु हे दीर्घजीविन् श्रमण ! वहां अवस्थित काल होता है ? हां, गौतम ! इसी भांति होता है। यावत् पहलेके सदृश सारा वर्णन कहना चाहिए । जिस प्रकार अवसर्पिणीके विषयमें कहा है उसी तरह उत्सर्पिणी के विषयमें भी कहना चाहिए ।।१७७।।

भगवन् ! क्या लवणसमुद्रमें सूर्य ईशानकोणमें उदय होकर अग्निकोणमें जाते हैं ? इत्यादि सारा प्रश्न पूछना चाहिए। गौतम ! जिस प्रकार जम्बूद्वीपमें सूर्योंके सम्बन्धमें वक्तव्यता कही गई है, वह सम्पूर्ण वक्तव्यता लवण-समुद्रके सम्बन्धमें भी कहनी चाहिए। इतनी विशेषता है कि इस वक्तव्यतामें पाठका उच्चारण इस प्रकार करना चाहिए—"हे भगवन् ! जब लवण-समुद्रके दक्षिणार्द्धमें दिन होता है, इत्यादि सारा कथन उसी प्रकार कहना चाहिए यावत् तब लवणसमुद्रमें पूर्व पश्चिममें रात्रि होती है। इस अभिलाप द्वारा सारा वर्णन जान लेना चाहिए। भगवन् ! जब लवणसमुद्रके दक्षिणार्द्धमें प्रथम अवसर्पिणी होती है तब उत्तरार्द्धमें प्रथम अवसर्पिणी होती है ? और जब उत्तरार्द्ध में प्रथम

अवसर्पिणी होती है तब लवणसमुद्रके पूर्व पश्चिममें अवसर्पिणी नहीं होती, उत्सर्पिणी नही होती, परन्तु वहां अवस्थित काल होता है ? हां, गौतम ! यह इसी तरह होता है यावत् अवस्थित काल होता है ।

भगवन् ! क्या धातकीखण्डद्वीपमें सूर्य ईशानकोणमें उदय होकर अग्निकोणमें अस्त होते हैं ? इत्यादि प्रश्न । गौतम ! जिस प्रकारकी वक्तव्यता जम्बूद्वीपके सम्बन्धमें कही गई है, उसी प्रकारको सारी वक्तव्यता धातकीखण्डके सम्बन्धमें भी कहनी चाहिए, परन्तु विशेषता यह है कि पाठका उच्चारण करते समय सब आलापक इस प्रकार कहने चाहिएँ—भगवन् ! जब धातकीखण्डके दक्षिणार्द्धमें दिन होता है तब उत्तरार्द्धमें भी दिन होता है और जब उत्तरार्द्धमें दिन होता है तब धातकीखण्ड द्वीपमें मेरु पर्वतसे पूर्व पश्चिममें रात्रि होती है ? हां, गौतम ! यह इसी रीतिसे होता है यावत् रात्रि होती है ।

भगवन् ! जब धातकीखण्ड द्वीपमें मेरु पर्वतसे पूर्वमें दिन होता है तब पश्चिममें भी दिन होता है और जब पश्चिममें दिन होता है तब धातकीखण्ड द्वीपमें मेरु पर्वतसे उत्तर दक्षिणमें रात्रि होती है ? हां, गौतम ! यह इसी प्रकार होता है और इसी अभिलापसे जानना चाहिए । यावत् (रात्रि होती है) भगवन् ! जब दक्षिणार्द्धमें प्रथम अवसर्पिणी होती है तब उत्तरार्द्धमें भी प्रथम अवसर्पिणी होती है और जब उत्तरार्द्धमें प्रथम अवसर्पिणी होती है तब धातकीखण्ड द्वीपमें मेरु पर्वतसे पूर्व पश्चिममें अवसर्पिणी नहीं होती, उत्सर्पिणी नहीं होती, परन्तु अवस्थित काल होता है ? हां, गौतम ! यह इसी प्रकार होता है यावत् अवस्थित काल होता है । जिस प्रकार लवणसमुद्रके विषयमें कहा गया है उसी प्रकार कालोदधिके विषयमें भी कहना चाहिए । इसमें इतनी विशेषता है कि 'लवणसमुद्र' के स्थान पर 'कालोदधि' का नाम कहना चाहिए ।

भगवन् ! आभ्यन्तर पुष्करार्द्धमें सूर्य ईशानकोणमें उदय होकर अग्निकोणमें अस्त होते हैं ? इत्यादि प्रश्न ? गौतम ! जिस प्रकार धातकीखण्ड द्वीपकी वक्तव्यता कही गई उसी तरह आभ्यन्तर पुष्करार्द्धके विषयमें भी कहनी चाहिए, किन्तु इतनी विशेषता है कि 'धातकीखण्ड द्वीप' के स्थान पर 'आभ्यन्तर पुष्करार्द्ध' का नाम कहना चाहिए यावत् आभ्यन्तर पुष्करार्द्धमें मेरु पर्वतसे पूर्व पश्चिममें अवसर्पिणी नहीं होती, उत्सर्पिणी नहीं होती, किन्तु अवस्थित काल होता है । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है । ·········ऐसा कह कर यावत् गौतम स्वामी विचरते हैं ॥१७८॥

॥ पांचवें शतकका पहला उद्देशक समाप्त ॥

—०—

शतक ५ उद्देशक २

राजगृह नगरमें यावत् इस प्रकार बोले कि—भगवन् ! क्या ईषत्पुरोवात, पथ्यवात, मन्दवात और महावात वहती हैं (चलती हैं) ? हां, गौतम ! उपरोक्त वायु वहती हैं । भगवन् ! क्या पूर्व दिशामें ईषत्पुरोवात, पथ्यवात, मन्दवात और महावात वहती हैं ? हां, गौतम ! उपरोक्त वायु पूर्व दिशामें वहती हैं । इसी तरह पश्चिममें, दक्षिणमें, उत्तरमें, ईशानकोणमें, अग्निकोणमें, नैऋत्यकोणमें और वायव्यकोणमें उपरोक्त वायु वहती हैं । भगवन् ! जब पूर्वमें ईषत्पुरोवात, पथ्यवात, मन्दवात और महावात वहती हैं तब पश्चिममें भी ईषत्पुरोवात आदि वायु वहती हैं और जब पश्चिममें ईषत्पुरोवात आदि वायु वहती हैं तब क्या पूर्वमें भी ये वायु वहती हैं ? गौतम ! जब पूर्वमें ईषत्पुरोवात आदि वायु वहती हैं तब वे सब पश्चिममें भी वहती हैं और जब पश्चिममें ईषत्पुरोवात आदि वायु वहती हैं तब पूर्वमें भी वे सब वायु वहती हैं । इसी प्रकार सब दिशाओंमें और विदिशाओंमें भी कहना चाहिए ।

भगवन् ! क्या ईषत्पुरोवात आदि वायु, द्वीप में भी होती हैं ? हाँ, गौतम होती हैं । भगवन् ! क्या ईषत्पुरोवात आदि वायु, समुद्रमें भी होती हैं ? हाँ, गौतम होती हैं । भगवन् ! जब द्वीप की ईषत्पुरोवात आदि वायु वहती हैं तब क्या समुद्र की भी ईषत्पुरोवात आदि वायु वहती हैं ? और जब समुद्रकी ईषत्पुरोवात आदि वायु बहती हैं तब द्वीपकी भी ये सब वायु वहती हैं ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है ।

भगवन् ! इसका क्या कारण है कि जब द्वीपकी ईषत्पुरोवात आदि वायु बहती हों तब समुद्रकी ईषत्पुरोवात आदि वायु नहीं बहतीं ? और जब समुद्र की ईषत्पुरोवात आदि वायु बहती हों तब द्वीपकी ईषत्पुरोवात आदि वायु नहीं बहतीं ? गौतम ! वे सब वायु परस्पर व्यत्यय रूपसे (एक दूसरे के साथ नहीं, परन्तु पृथक्-पृथक्) वहती हैं । जब द्वीपकी ईषत्पुरोवात आदि वायु वहती हैं तब समुद्रकी नहीं वहती और जब समुद्रकी ईषत्पुरोवात आदि वायु वहती हैं तब द्वीपकी नहीं वहती । इस प्रकार यह वायु परस्पर विपर्यय रूपसे वहती हैं और इस प्रकार यह वायु लवण समुद्रकी वेलाका उल्लंघन नहीं करती । इस कारण यावत् पूर्वोक्त रूपसे वायु बहती हैं ।

भगवन् ! क्या ईषत्पुरोवात, पथ्यवात, मन्दवात और महावात हैं ? हाँ, गौतम हैं । भगवन् ! ईषत्पुरोवात आदि वायु कब वहती हैं ? गौतम ! जब वायुकाय अपने स्वभावपूर्वक गति करती है तब ईषत्पुरोवात आदि वायु वहती हैं । भगवन् ! क्या ईषत्पुरोवात आदि वायु हैं ? हां, गौतम हैं । भगवन् ! ईषत्पुरोवात आदि वायु कब वहती हैं ? गौतम ! जब वायुकाय उत्तर क्रिया पूर्वक

अवसर्पिणी होती है तब लवणसमुद्रके पूर्व पश्चिममें अवसर्पिणी नहीं होती, उत्सर्पिणी नहीं होती, परन्तु वहां अवस्थित काल होता है ? हां, गौतम ! यह इसी तरह होता है यावत् अवस्थित काल होता है ।

भगवन् ! क्या धातकीखण्डद्वीपमें सूर्य ईशानकोणमें उदय होकर अग्निकोणमें अस्त होते हैं ? इत्यादि प्रश्न । गौतम ! जिस प्रकारकी वक्तव्यता जम्बूद्वीपके सम्बन्धमें कही गई है, उसी प्रकारकी सारी वक्तव्यता धातकीखण्डके सम्बन्धमें भी कहनी चाहिए, परन्तु विशेषता यह है कि पाठका उच्चारण करते समय सब आलापक इस प्रकार कहने चाहिएँ—भगवन् ! जब धातकीखण्डके दक्षिणार्द्धमें दिन होता है तब उत्तरार्द्धमें भी दिन होता है और जब उत्तरार्द्धमें दिन होता है तब धातकीखण्ड द्वीपमें मेरु पर्वतसे पूर्व पश्चिममें रात्रि होती है ? हां, गौतम ! यह इसी रीतिसे होता है यावत् रात्रि होती है ।

भगवन् ! जब धातकीखण्ड द्वीपमें मेरु पर्वतसे पूर्वमें दिन होता है तब पश्चिममें भी दिन होता है और जब पश्चिममें दिन होता है तब धातकीखण्ड द्वीपमें मेरु पर्वतसे उत्तर दक्षिणमें रात्रि होती है ? हां, गौतम ! यह इसी प्रकार होता है और इसी अभिलापसे जानना चाहिए । यावत् (रात्रि होती है) भगवन् ! जब दक्षिणार्द्धमें प्रथम अवसर्पिणी होती है तब उत्तरार्द्धमें भी प्रथम अवसर्पिणी होती है और जब उत्तरार्द्धमें प्रथम अवसर्पिणी होती है तब धातकीखण्ड द्वीपमें मेरु पर्वतसे पूर्व पश्चिममें अवसर्पिणी नहीं होती, उत्सर्पिणी नहीं होती, परन्तु अवस्थित काल होता है ? हां, गौतम ! यह इसी प्रकार होता है यावत् अवस्थित काल होता है । जिस प्रकार लवणसमुद्रके विषयमें कहा गया है उसी प्रकार कालोदधिके विषयमें भी कहना चाहिए । इसमें इतनी विशेषता है कि 'लवणसमुद्र' के स्थान पर 'कालोदधि' का नाम कहना चाहिए ।

भगवन् ! आभ्यन्तर पुष्करार्द्धमें सूर्य ईशानकोणमें उदय होकर अग्निकोणमें अस्त होते हैं ? इत्यादि प्रश्न ? गौतम ! जिस प्रकार धातकीखण्ड द्वीपकी वक्तव्यता कही गई उसी तरह आभ्यन्तर पुष्करार्द्धके विषयमें भी कहनी चाहिए, किन्तु इतनी विशेषता है कि 'धातकीखण्ड द्वीप' के स्थान पर 'आभ्यन्तर पुष्करार्द्ध' का नाम कहना चाहिए यावत् आभ्यन्तर पुष्करार्द्धमें मेरु पर्वतसे पूर्व पश्चिममें अवसर्पिणी नहीं होती, उत्सर्पिणी नहीं होती, किन्तु अवस्थित काल होता है । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है । ....ऐसा कह कर यावत् गौतम स्वामी विचरते हैं ।।१७८।।

।। पांचवें शतकका पहला उद्देशक समाप्त ।।

—०—

शतक ५ उद्देशक २

राजगृह नगरमें यावत् इस प्रकार बोले कि—भगवन् ! क्या ईपत्पुरोवात, पथ्यवात, मन्दवात और महावात वहती हैं (चलती हैं) ? हां, गौतम ! उपरोक्त वायु वहती हैं। भगवन् ! क्या पूर्व दिशामें ईषत्पुरोवात, पथ्यवात, मन्दवात और महावात वहती हैं ? हां, गौतम ! उपरोक्त वायु पूर्व दिशामें वहती हैं। इसी तरह पश्चिममें, दक्षिणमें, उत्तरमें, ईशानकोणमें, अग्निकोणमें, नैऋत्यकोणमें और वायव्यकोणमें उपरोक्त वायु वहती हैं। भगवन् ! जब पूर्वमें ईपत्पुरोवात, पथ्यवात, मन्दवात और महावात वहती हैं तब पश्चिममें भी ईषत्पुरोवात आदि वायु वहती हैं और जब पश्चिममें ईषत्पुरोवात आदि वायु वहती हैं तब क्या पूर्वमें भी ये वायु वहती हैं ? गौतम ! जब पूर्वमें ईषत्पुरोवात आदि वायु वहती हैं तब वे सब पश्चिममें भी वहती हैं और जब पश्चिममें ईषत्पुरोवात आदि वायु वहती हैं तब पूर्वमें भी वे सब वायु वहती हैं। इसी प्रकार सब दिशाओंमें और विदिशाओंमें भी कहना चाहिए ।

भगवन् ! क्या ईषत्पुरोवात आदि वायु, द्वीप में भी होती हैं ? हाँ, गौतम होती हैं। भगवन् ! क्या ईपत्पुरोवात आदि वायु, समुद्रमें भी होती हैं ? हाँ, गौतम होती हैं। भगवन् ! जब द्वीप की ईषत्पुरोवात आदि वायु वहती हैं तब क्या समुद्र की भी ईषत्पुरोवात आदि वायु वहती हैं ? और जब समुद्रकी ईषत्पुरोवात आदि वायु बहती हैं तब द्वीपकी भी ये सब वायु वहती हैं ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

भगवन् ! इसका क्या कारण है कि जब द्वीपकी ईषत्पुरोवात आदि वायु वहती हों तब समुद्रकी ईषत्पुरोवात आदि वायु नहीं वहतीं ? और जब समुद्र की ईषत्पुरोवात आदि वायु वहती हों तब द्वीपकी ईषत्पुरोवात आदि वायु नहीं बहतीं ? गौतम ! वे सब वायु परस्पर व्यत्यय रूपसे (एक दूसरे के साथ नहीं, परन्तु पृथक्-पृथक्) वहती हैं। जब द्वीपकी ईषत्पुरोवात आदि वायु वहती हैं तब समुद्रकी नहीं वहती और जब समुद्रकी ईषत्पुरोवात आदि वायु वहती हैं तब द्वीपकी नहीं वहती। इस प्रकार यह वायु परस्पर विपर्यय रूपसे वहती हैं और इस प्रकार यह वायु लवण समुद्रकी वेलाका उल्लंघन नहीं करती। इस कारण यावत् पूर्वोक्त रूपसे वायु बहती हैं।

भगवन् ! क्या ईपत्पुरोवात, पथ्यवात, मन्दवात और महावात हैं ? हाँ, गौतम हैं। भगवन् ! ईषत्पुरोवात आदि वायु कव वहती हैं ? गौतम ! जब वायुकाय अपने स्वभावपूर्वक गति करती है तब ईपत्पुरोवात आदि वायु वहती हैं। भगवन् ! क्या ईपत्पुरोवाल आदि वायु हैं ? हां, गौतम हैं। भगवन् ! ईपत्पुरोवात आदि वायु कव वहती हैं ? गौतम ! जब वायुकाय उत्तर क्रिया पूर्वक

अर्थात् वैक्रिय शरीर बनाकर गति करती है तब ईषत्पुरोवात आदि वायु बहती हैं।

भगवन्! क्या ईषत्पुरोवात आदि वायु हैं? हां, गौतम हैं। भगवन्! ईषत्पुरोवात आदि वायु कब बहती हैं? गौतम! जब वायुकुमार देव और वायुकुमार देवियां अपने लिए दूसरोंके लिये अथवा उभयके लिये (अपने और दूसरे दोनों के लिए) वायुकायकी उदीरणा करते हैं, तब ईषत्पुरोवात आदि वायु बहती हैं। भगवन्! क्या वायुकाय, वायुकायको ही श्वास रूपमें ग्रहण करती है और निःश्वास रूपमें छोड़ती है? गौतम! इस सम्बन्धमें स्कन्दक परिव्राजकके उद्देशकमें कहे अनुसार जानना चाहिए, यावत् (१) अनेक लाख बार मरकर, (२) स्पृष्ट होकर, (३) मरती है और (४) शरीर सहित निकलती है। इस प्रकार चार आलापक कहने चाहियें ॥१७९॥

भगवन्! ओदन (चावल), कुल्माष—उड़द और सुरा—मदिरा, इन द्रव्योंका शरीर किन जीवोंका कहलाता है? गौतम! ओदन, कुल्माष और मदिरामें जो घन—कठिन द्रव्य है, वह पूर्वभाव-प्रज्ञापनाकी अपेक्षा वनस्पति जीवों के शरीर हैं। जब वे ओदन आदि द्रव्य शस्त्रातीत (ऊखल मूसल आदि द्वारा पूर्व पर्यायसे अतिक्रांत) हो जाते हैं, शस्त्र परिणत (शस्त्र लगनेसे नये आकारके धारक) हो जाते हैं, अग्नि-ध्यामित (अग्निसे जलाये जाने पर काले वर्णके बने हुए), अग्नि-झूषित (अग्निमें जल जानेसे पूर्व स्वभावसे रहित बने हुए), अग्नि-सेवित और अग्नि-परिणामित (अग्नि में जल जाने पर नवीन आकारको धारण किये हुए) हो जाते हैं, तब वे द्रव्य अग्निके शरीर कहलाते हैं। तथा सुरा (मदिरा) में जो प्रवाही पदार्थ है वह पूर्वभाव प्रज्ञापनाकी अपेक्षा अप्काय जीवों के शरीर हैं। जब वह प्रवाही पदार्थ शस्त्रातीत यावत् अग्नि-परिणामित हो जाते हैं, तब अग्निकायके शरीर हैं, इस प्रकार कहे जाते हैं।

भगवन्! लोह, तांबा, त्रपुप्—कलई, सीसा, उपल (कोयला) और कसट्टिका (लोह का काट—मैल), ये सब द्रव्य किन जीवोंके शरीर कहलाते हैं? गौतम! लोह, तांबा, कलई, सीसा, कोयला और काट, ये सब पूर्व-भाव-प्रज्ञापना की अपेक्षा पृथ्वीकाय जीवोंके शरीर कहलाते हैं और पीछे शस्त्रातीत यावत् शस्त्र-परिणामित होने पर अग्निजीवोंके शरीर कहलाते हैं।

भगवन्! हड्डी, अग्नि द्वारा ज्वलित हड्डी, चमड़ा, अग्नि ज्वलित चमड़ा, रोम, अग्नि ज्वलित रोम, सींग, अग्नि ज्वलित सींग, खुर, अग्नि ज्वलित खुर, नख, अग्नि ज्वलित नख, ये सब किन जीवोंके शरीर कहलाते हैं। गौतम! हड्डी, चर्म, रोम, सींग, खुर और नख, ये सब त्रस जीवोंके शरीर कहलाते हैं और जली हुई हड्डी, जला हुआ चमड़ा, जले हुए रोम और जले हुए सींग,

खुर, नख, ये सब पूर्वभाव-प्रज्ञापनाकी अपेक्षा त्रस जीवोंके शरीर कहलाते हैं, और पीछे शस्त्रातीत आदि हो जाने पर–'अग्निजीवों के शरीर' कहलाते हैं।

भगवन् ! अंगार, राख, भूसा और गोवर (छाणा), ये सब किन जीवों के शरीर कहलाते हैं ? गौतम ! अंगार, राख, भूसा और गोवर (छाणा), ये सब पूर्वभाव-प्रज्ञापना की अपेक्षा एकेन्द्रिय जीवों के शरीर हैं और यावत् यथा-संभव पंचेन्द्रिय जीवोंके शरीर भी कहलाते हैं, शस्त्रातीत आदि हो जाने पर यावत् 'अग्नि जीवोंके शरीर' कहलाते हैं ।।१८०।।

भगवन् ! लवण समुद्रका चक्रवाल विष्कम्भ (सब जगहकी चौड़ाई) कितना कहा गया है ? गौतम ! पहले कहे अनुसार जान लेना चाहिए, यावत् लोकस्थिति लोकानुभाव तक कहना चाहिए। सेवं भंते ! सेवं भंते ! ! ···भगवन् ! यह इसी प्रकार है···। ऐसा कह कर यावत् गौतम स्वामी विचरते हैं ।।१८१।।

।। पांचवें शतक का दूसरा उद्देशक समाप्त ।।

शतक ५ उद्देशक ३

भगवन् ! अन्य-तीर्थिक इस प्रकार कहते हैं, भाषण करते हैं, बतलाते हैं, प्ररूपणा करते हैं, कि जैसे कोई एक जाल हो, उस जालमें क्रमपूर्वक गांठें दी हुई हों बिना अन्तर एक के बाद एक गांठें दी हुई हों, परम्परा गूंथी हुई हों, परस्पर गूंथी हुई हों, ऐसी वह जालग्रंथि विस्तारपने, परस्पर भारपने, परस्पर विस्तार और भारपने, परस्पर समुदायपने रहती है, अर्थात् जैसे जाल एक है, परन्तु उसमें अनेक गांठें परस्पर संलग्न रहती हैं, वैसे ही क्रमपूर्वक लाखों जन्मों से सम्बन्धित बहुतसे आयुष्य बहुतसे जीवोंके साथ परस्पर क्रमशः गुम्फित हैं। यावत् संलग्न रहे हुए हैं। इस कारण उन जीवोंमें का एक जीव भी एक समय में दो आयुष्यको वेदता है अर्थात् दो आयुष्यका अनुभव करता है। यथा–एक ही जीव इस भवका आयुष्य वेदता है और वही जीव परभवका भी आयुष्य वेदता है। जिस समय इस भवका आयुष्य वेदता है उसी समय परभवका भी आयुष्य वेदता है, यावत् भगवन् ! यह किस तरह है ?—

गौतम ! अन्यतीर्थियोंने जो यह कहा है कि यावत् 'एक ही जीव, एक ही समयमें इस भवका और परभवका आयुष्य दोनोंको वेदता है—' वह मिथ्या है। गौतम ! मैं इस तरह कहता हूं यावत् प्ररूपणा करता हूं कि जैसे कोई एक जाल हो और वह यावत् अन्योन्य समुदायत्वमें रहता है, इसी प्रकार क्रमपूर्वक अनेक जन्मोंसे सम्बन्धित अनेक आयुष्य एक एक जीवके साथ शृंखला (सांकल) की कड़ीके समान परस्पर क्रमशः गुम्फित होते हैं। इसलिए एक जीव एक समय

में एक आयुष्यको वेदता है। यथा—इस भवका आयुष्य, अथवा परभवका आयुष्य। परन्तु जिस समय इस भव का आयुष्य वेदता है उस समय वह परभवका आयुष्य नहीं वेदता और जिस समय वह परभवका आयुष्य वेदता है उस समय इस भवका आयुष्य नहीं वेदता। इस भवका आयुष्य वेदनेसे परभवका आयुष्य नहीं वेदा जाता। और परभवका आयुष्य वेदनेसे इस भवका आयुष्य नहीं वेदा जाता। इस प्रकार एक जीव एक समयमें एक आयुष्यको वेदता है—इस भवका आयुष्य अथवा परभवका आयुष्य ॥१८२॥

भगवन्! जो जीव नरकमें उत्पन्न होने वाला है, क्या वह जीव यहींसे आयुष्य सहित होकर नरकमें जाता है अथवा आयुष्य रहित होकर नरकमें जाता है? गौतम! जो जीव नरकमें उत्पन्न होने वाला है, वह यहींसे आयुष्य सहित होकर नरकमें जाता है, परन्तु आयुष्य रहित होकर नरकमें नहीं जाता। भगवन्! उस जीव ने वह आयुष्य कहां बांधा? और उस आयुष्य सम्बन्धी आचरण कहां किया है? गौतम! उस जीवने वह आयुष्य पूर्व-भवमें बांधा है और उस आयुष्य संवन्धी आचरण भी पूर्वभवमें ही किया है। जिस प्रकार यह बात नैरयिकके लिए कही गई है। उसी प्रकार यावत् वैमानिक तक सभी दण्डकों में कहनी चाहिए।

भगवन्! जो जीव जिस योनिमें उत्पन्न होने योग्य होता है, क्या वह जीव उस योनिसंवन्धी आयुष्य बांधता है? यथा—नरकयोनिमें उत्पन्न होने योग्य जीव क्या नरक योनिका आयुष्य बांधता है यावत् देवगतिमें उत्पन्न होने योग्य जीव क्या देव योनिका आयुष्य बांधता है? हां, गौतम! ऐसा ही करता है, अर्थात् जो जीव जिस योनिमें उत्पन्न होने योग्य होता है वह जीव उस योनि संवन्धी आयुष्य बांधता है। नरकमें उत्पन्न होने योग्य जीव नरक योनिका आयुष्य बांधता है। तिर्यंच योनिमें उत्पन्न होने योग्य जीव तिर्यच योनिका आयुष्य बांधता है। मनुष्य योनिमें उत्पन्न होने योग्य जीव मनुष्य योनिका आयुष्य बांधता है और देवयोनिमें उत्पन्न होने योग्य जीव देवयोनिका आयुष्य बांधता है। जो जीव नरकका आयुष्य बांधता है वह सात प्रकारकी नरकोंमें से किसी एक प्रकारकी नरकका आयुष्य बांधता है। यथा—रत्नप्रभा पृथ्वीका आयुष्य अथवा यावत् अधः सप्तम पृथ्वी (सातवीं नरक) का आयुष्य बांधता है। जो जीव तिर्यंच योनिका आयुष्य बांधता है? वह पांच प्रकारके तिर्यंचोंमें से किसी एक तिर्यंच संवन्धी आयुष्य बांधता है। यथा एकेंद्रिय तिर्यंचका आयुष्य इत्यादि। इस संवंधी सारा विस्तार यहां कहना चाहिये। जो जीव मनुष्य संवंधी आयुष्य बांधता है वह दो प्रकारके मनुष्योंमें से किसी एक प्रकारके मनुष्य संवंधी आयुष्यको बांधता है। सम्मूच्छिम मनुष्यका अ मनुष्यका।-

जो जीव देव संबंधी आयुष्य बांधता है वह चार प्रकारके देवोंमें से किसी एक प्रकारके देवका आयुष्य बांधता है। यथा–भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक। इनमें से किसी एक प्रकारके देवका आयुष्य बांधता है। हे भगवन्! यह इसी प्रकार है…। ऐसा कह कर यावत् गौतम स्वामी विचरते हैं ॥१८३॥

॥ पांचवें शतक का तीसरा उद्देशक समाप्त ॥

शतक ५ उद्देशक ४

भगवन्! क्या छद्मस्थ मनुष्य बजाये जाते हुए वादिन्त्रके शब्दोंको सुनता है? यथा–शंखके शब्द, रणशृंग (एक प्रकारका वाजा) के शब्द, शंखिका (छोटे शंख) के शब्द, खरमुही (काहली नामक वाजा) के शब्द, पोता (बड़ी काहली) के शब्द, परिपरिता (परिपरिका–सूअर के मुख से मढ़े हुए मुख वाला एक प्रकार का वाजा), पणव (ढोल) के शब्द, पटह (ढोलकी) के शब्द, भंभा (ढक्का–छोटी भेरी) के शब्द, होरम्भ (एक प्रकार का वाजा) के शब्द, भेरी के शब्द, झल्लरी (झालर) के शब्द, दुंदुभिके शब्द, तत शब्द (तांत वाला वाजा–वीणा आदिके शब्द), वितत शब्द (ढोल आदि विस्तृत वाजेके शब्द), घन शब्द (ठोस वाजेके शब्द–कांस्य और ताल आदि वाजेके शब्द), शुषिर शब्द (पोले वाजे के शब्द, वंशी–वांसुरी आदि के शब्द) इत्यादि वाजोंके शब्दों को क्या छद्मस्थ मनुष्य सुनता है? हाँ, गौतम! छद्मस्थ मनुष्य बजाये जाते हुए शंख यावत् शुषिर (वांसुरी) आदि सभी वाजोंके शब्दोंको सुनता है।

भगवन्! क्या वह छद्मस्थ मनुष्य स्पृष्ट (कानके साथ स्पर्श किए हुए) शब्दोंको सुनता है, अथवा अस्पृष्ट (कानके साथ स्पर्श नहीं किए हुए) शब्दोंको सुनता है? गौतम! छद्मस्थ मनुष्य स्पृष्ट शब्दोंको सुनता है, किन्तु अस्पृष्ट शब्दोंको नहीं सुनता। यावत् नियमसे छह दिशासे आये हुए स्पृष्ट शब्दोंको सुनता है। भगवन्! क्या छद्मस्थ मनुष्य आरगत (आराद्गत–इन्द्रिय विषयके समीप रहे हुए) शब्दोंको सुनता है, अथवा पारगत (इन्द्रिय विषयसे दूर रहे हुए) शब्दोंको सुनता है? गौतम! छद्मस्थ मनुष्य आरगत शब्दोंको सुनता है, किन्तु पारगत शब्दों को नहीं सुनता।

भगवन्! जिस प्रकार छद्मस्थ मनुष्य आरगत शब्दोंको सुनता है और पारगत शब्दोंको नहीं सुनता, तो क्या उसी प्रकार केवली मनुष्य भी आरगत शब्दोंको सुनता है और पारगत शब्दोंको नहीं सुनता?

गौतम! केवली मनुष्य तो आरगत शब्दोंको और पारगत शब्दोंको तथा दूर, निकट, अत्यन्त दूर और अत्यन्त निकट, इत्यादि सभी प्रकारके शब्दोंको

जानते और देखते हैं। भगवन् ! केवली भगवान् आरगत शब्दोंको पारगत शब्दों को यावत् सब प्रकारके शब्दोंको जानते हैं और देखते हैं, इसका क्या कारण है? गौतम ! केवली भगवान् पूर्व दिशाकी मित वस्तुको भी जानते देखते हैं और अमितवस्तुको भी जानते देखते हैं। इसी प्रकार दक्षिण दिशा, पश्चिम दिशा, उत्तर दिशा, ऊर्ध्व दिशा और अधो दिशाकी मित वस्तुको भी और अमितवस्तुको भी जानते हैं और देखते हैं। केवली भगवान् सब जानते हैं और सब देखते हैं। केवली भगवान् सर्वतः (सभी ओर) जानते और देखते हैं। केवली भगवान् सभी कालमें सभी भावों (पदार्थों) को जानते और देखते हैं। केवली भगवान् के अनन्त ज्ञान और अनन्तदर्शन होता है। केवली भगवान्का ज्ञान और दर्शन निरावरण होता है, अर्थात् उनके ज्ञान और दर्शन पर किसी प्रकारका आवरण नहीं होता। इसलिए गौतम ! ऐसा कहा गया है कि—केवली भगवान् आरगत और पारगत शब्दोंको यावत् सभी प्रकारके शब्दोंको जानते और देखते हैं ॥१८४॥

भगवन् ! क्या छद्मस्थ मनुष्य हंसता है और उत्सुक होता है अर्थात् किसी पदार्थको लेनेके लिए उतावला होता है ? गौतम ! हाँ, छद्मस्थ मनुष्य हंसता है और उत्सुक होता है। भगवन् ! जिस तरह छद्मस्थ मनुष्य हंसता है और उत्सुक होता है, क्या उसी तरह केवली भी हंसता है और उत्सुक होता है ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, अर्थात् केवलज्ञानी मनुष्य न तो हंसता है और न उत्सुक होता है। भगवन् ! केवली मनुष्य न हंसता है और न उत्सुक होता है, इसका क्या कारण है ? गौतम ! जीव चारित्र-मोहनीय कर्मके उदय से हंसते और उत्सुक होते हैं, किन्तु केवली भगवान्के चारित्र-मोहनीय कर्म नहीं है अर्थात् चारित्र-मोहनीय कर्मका क्षय हो चुका है। इसलिए छद्मस्थ मनुष्यकी तरह केवली भगवान् हंसते नहीं हैं और न उत्सुक ही होते हैं। भगवन् ! हंसता हुआ अथवा उत्सुक होता हुआ जीव कितने प्रकारके कर्म बांधता है ? गौतम ! हंसता हुआ अथवा उत्सुक होता हुआ जीव सात प्रकारके कर्मोको बांधता है अथवा आठ प्रकारके कर्मोंको बांधता है। इसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त चौबीसों दण्डकोंमें कहना चाहिए। जब उपरोक्त प्रश्न बहुत जीवोंकी अपेक्षा पूछा जाय, तब उसके उत्तरमें समुच्चय जीव और एकेंद्रिय को छोड़कर कर्म बन्ध सम्बन्धी तीन भांगे कहने चाहिएं।

भगवन् ! क्या छद्मस्थ मनुष्य नींद लेता है और प्रचला नामक निद्रा लेता है, अर्थात् खड़े खड़े नींद लेता है ? गौतम ! हां, छद्मस्थ मनुष्य नींद लेता है और खड़ा खड़ा भी नींद लेता है। जिस प्रकार हंसने और उत्सुकताके विषय में छद्मस्थ और केवली मनुष्यके सम्बन्धमें प्रश्नोत्तर बतलाये गये हैं उसी प्रकार

निद्रा और प्रचलाके विषयमें छद्मस्थ और केवली मनुष्यके सम्बन्धमें प्रश्नोत्तर जान लेने चाहिएँ। परन्तु इतनी विशेषता है कि छद्मस्थ मनुष्य दर्शनावरणीय कर्मके उदयसे नींद लेता है और खड़ा खड़ा नींद लेता है, परन्तु केवलीके दर्शनावरणीय कर्म नहीं है, अर्थात् केवलीके दर्शनावरणीय कर्म का सर्वथा क्षय हो चुका है। इसलिए वह निद्रा नहीं लेता और प्रचला भी नहीं लेता। भगवन् ! नींद लेता हुआ और प्रचला लेता हुआ जीव कितनी कर्म प्रकृतियोंका बन्ध करता है ? गौतम ! निद्रा अथवा प्रचला लेता हुआ जीव सात कर्मों की प्रकृतियोंका अथवा आठ कर्मोंकी प्रकृतियोंका बन्ध करता है। इस भांति एक वचनकी अपेक्षा वैमानिक पर्यन्त चौवीसों दण्डकोंमें कहना चाहिए। जब उपरोक्त प्रश्न बहुवचन आश्री अर्थात् बहुत जीवोंकी अपेक्षा पूछा जाय तब उसके उत्तरमें जीव और एकेन्द्रियको छोड़कर कर्मबन्ध सम्बन्धी तीन भांगे कहने चाहिएँ ॥१८५॥

भगवन् ! इन्द्र का सम्बन्धी शक्रदूत हरिणैगमेषी देव जब स्त्रीके गर्भका संहरण करता है तब क्या वह एक गर्भाशय से गर्भ को उठा कर दूसरे गर्भाशय में रखता है ? या गर्भ को लेकर योनि द्वारा दूसरी स्त्री के उदर में रखता है ? या योनि से गर्भको बाहर निकाल कर दूसरी स्त्री के गर्भाशय में रखता है ? या योनि द्वारा गर्भ को पेट में से बाहर निकाल कर वापिस दूसरी स्त्री के पेट में उसकी योनि द्वारा रखता है ? गौतम ! वह हरिणैगमेषी देव एक स्त्री के गर्भाशय में से गर्भ को लेकर दूसरी स्त्री के गर्भाशय में नहीं रखता, गर्भाशय से लेकर योनि द्वारा गर्भ को दूसरी स्त्री के पेट में नहीं रखता, योनि द्वारा गर्भ को बाहर निकाल कर वापिस योनि द्वारा गर्भ को पेट में नहीं रखता, परन्तु अपने हाथ द्वारा गर्भ को स्पर्श करके उस गर्भ को कुछ भी पीड़ा न पहुंचाते हुए योनि द्वारा बाहर निकाल कर दूसरी स्त्रीके गर्भाशय में रखता है।

भगवन् ! क्या शक्र का दूत हरिणैगमेषी देव स्त्री के गर्भ को नखाग्र द्वारा या रोम कूप (छिद्र) द्वारा गर्भाशय में रखने में या गर्भाशय से निकालने में समर्थ है ? हाँ, गौतम ! हरिणैगमेषी देव उपरोक्त कार्य करने में समर्थ है। ऐसा करते हुए वह देव उस गर्भ को थोड़ी या बहुत कुछ भी—किञ्चित् मात्र भी पीड़ा नहीं पहुंचाता। वह उस गर्भ का छविच्छेद (छेदन भेदन) करता है और फिर बहुत सूक्ष्म करके अन्दर रखता है अथवा इसी तरह अन्दर से बाहर निकालता है ॥१८६॥

उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के शिष्य अतिमुक्तक नाम के कुमार श्रमण थे। वे प्रकृति से भद्र यावत् विनीत थे। वे अति-

मुक्तक कुमार श्रमण किसी दिन महावर्षा बरसने पर अपना रजोहरण कांख (बगल) में लेकर तथा पात्र लेकर बाहर भूमिका (बड़ी शंका के निवारण के लिये) गये। जाते हुए अतिमुक्तक कुमार श्रमण ने मार्ग में बहते हुए पानी के एक छोटे नाले को देखा। उसे देखकर उन्होंने उस नालेकी मिट्टीकी पाल बांधी। इसके बाद जिस प्रकार नाविक अपनी नाव को पानी में छोड़ता है, उसी तरह उन्होंने भी अपने पात्र को उस पानी में छोड़ा, और 'यह मेरी नाव है, यह मेरी नाव है'—ऐसा कहकर पात्र को पानी में तिराते हुए क्रीड़ा करने लगे। अतिमुक्तक कुमार श्रमण को ऐसा करते हुए देखकर स्थविर मुनि उसे कुछ कहे बिना ही चले आये, और श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास आकर उन्होंने इस प्रकार पूछा—

हे भगवन्! आपका शिष्य अतिमुक्तक कुमार श्रमण कितने भव करने के बाद सिद्ध होगा? यावत् सब दुःखों का अन्त करेगा? श्रमण भगवान् महावीर स्वामी उन स्थविर मुनियों को सम्बोधित करके कहने लगे—हे आर्यो! प्रकृति से भद्र यावत् प्रकृति से विनीत मेरा अन्तेवासी (शिष्य) अतिमुक्तक कुमार इसी भव से सिद्ध होगा। यावत् सभी दुःखों का अन्त करेगा। इसलिए हे आर्यो! तुम अतिमुक्तक कुमार श्रमण की हीलना, निन्दा, खिंसना, गर्हा और अपमान मत करो। किन्तु हे देवानुप्रियो! तुम अग्लान भाव से अतिमुक्तक कुमार श्रमण को स्वीकार करो। उसकी सहायता करो और आहार पानी के द्वारा विनयपूर्वक वैयावच्च करो। क्योंकि अतिमुक्तक कुमार श्रमण अन्तिमशरीरी है और इसी भव में सब कर्मों का क्षय करने वाला है। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी द्वारा उपरोक्त वृत्तान्त सुनकर उन स्थविर मुनियों ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना नमस्कार किया। फिर वे स्थविर मुनि अतिमुक्तक कुमार श्रमण को अग्लान भाव से स्वीकार कर यावत् उसकी वैयावच्च करने लगे ॥१८७॥

उस काल उस समय में महाशुक्र नाम के देवलोक से, महासर्ग नाम के महाविमान से, महाऋद्धि वाले यावत् महाभाग्यशाली दो देव श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास प्रादुर्भूत हुए (आये)। उन देवों ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को मन से ही वन्दना नमस्कार किया और मन से ही यह प्रश्न पूछा—भगवन्! आपके कितने सौ शिष्य सिद्ध होंगे यावत् समस्त दुःखों का अन्त करेंगे? इसके पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने उन देवों के प्रश्न का उत्तर मन द्वारा ही दिया कि "हे देवानुप्रियो! मेरे सात सौ शिष्य सिद्ध होंगे। यावत् सभी दुःखों का अन्त करेंगे।" इस प्रकार मन द्वारा पूछे हुए प्रश्न का उत्तर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने उन देवों को मन द्वारा ही दिया। जिससे वे देव हर्षित, संतुष्ट यावत् प्रसन्नहृदय वाले हुए। फिर उन्होंने

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना नमस्कार किया। वन्दना नमस्कार करके मन से ही उनकी शुश्रूषा और नमन करते हुए सम्मुख होकर यावत् पर्युपासना करने लगे।

उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के ज्येष्ठ अन्तेवासी इन्द्रभूति नामक अनगार यावत् उत्कटुक आसन से बैठे हुए भगवान् की सेवामें रहते थे। वे ध्यान कर रहे थे। चालू ध्यान की समाप्ति हो जाने पर और दूसरा ध्यान प्रारम्भ करने से पहले उनके मन में इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ कि 'भगवान् की सेवा में महाऋद्धिसम्पन्न यावत् महाप्रभावशाली दो देव आये हैं। मैं उन देवों को नहीं जानता हूं कि वे कौनसे स्वर्ग से और कौन से विमान से यहाँ आये हैं और किस कारण से आये हैं। इसलिये मैं श्रमण भगवान् महावीर स्वामी की सेवा में जाकर उन्हें वन्दना नमस्कार करूं यावत् उनकी पर्युपासना करूं। तत्पश्चात् पूर्वोक्त प्रश्न पूछूं। इस प्रकार विचार करके गौतम स्वामी अपने स्थान से उठे और श्रमण भगवान् महावीर स्वामी की सेवामें आकर यावत् उनकी सेवा करने लगे। इसके पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर स्वामीने गौतमादि अनगारों को सम्बोधित कर इस प्रकार कहा—"गौतम ! एक ध्यान को समाप्त कर दूसरा ध्यान प्रारम्भ करने के पहले तुम्हारे मन में इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ कि 'मैं देवों सम्बन्धी हकीकत जानने के लिये श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास जाऊँ', इत्यादि यावत् इसी कारण तुम मेरे पास यहां शीघ्र आये हो, यह बात ठीक है ?" गौतम स्वामी ने कहा—'हां, भगवन् ! यह बिलकुल ठीक है।' इसके पश्चात् भगवान् महावीर स्वामीने कहा कि 'हे गौतम ! तुम अपनी शंका के निवारण के लिये उन्हीं देवों के पास जाओ। वे देव ही तुम्हें बतावेंगे।'

इसके पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर स्वामी द्वारा इस प्रकार की आज्ञा मिलने पर गौतम स्वामी ने भगवान् को वन्दना नमस्कार किया। फिर वे उन देवों की तरफ जाने लगे। गौतम स्वामी को अपनी ओर आते हुए देखकर वे देव हर्षित यावत् प्रसन्नहृदय वाले हुए और शीघ्र ही खड़े होकर उनके सामने गये और जहां गौतम स्वामी थे, वहां पहुंचे। फिर उन्हें वन्दना नमस्कार करके देवों ने इस प्रकार कहा—'हे भगवन् ! हम महाशुक्र नामक देवलोक के महासर्ग नामक विमान से यहाँ आये हैं। और श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना नमस्कार करके इस प्रकार पूछा—'हे भगवन् ! आपके कितने सौ शिष्य सिद्ध होंगे। यावत् सर्व दुःखों का अन्त करेंगे ?' इस प्रकार हमने मन से प्रश्न पूछा, तो श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने मन से ही हमारे प्रश्न का उत्तर दिया कि—'हे देवानुप्रियो ! मेरे सात सौ शिष्य सिद्ध होंगे यावत् सब दुःखों का अन्त

करेंगे। इस प्रकार मन द्वारा पूछे हुए प्रश्न का उत्तर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी की तरफ से मन द्वारा प्राप्त कर हम बहुत हर्षित यावत् प्रसन्न मनवाले हुए हैं। अतएव श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना नमस्कार कर यावत् उनकी पर्युपासना कर रहे हैं।' इस प्रकार कह कर उन देवों ने गौतम स्वामी को वन्दना नमस्कार किया। फिर वे देव जिस दिशा से आये थे उसी दिशा में वापिस चले गये ॥१८८॥

'हे भगवन्!' इस प्रकार सम्बोधित करके भगवान् गौतम स्वामी ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना नमस्कार करके यावत् इस प्रकार पूछा—भगवन्! क्या देवों को 'संयत' कहना चाहिये? हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है। देवों को संयत कहना असत्य वचन है। हे भगवन्! क्या देवों को 'असंयत' कहना चाहिये? हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है। क्योंकि 'देव असंयत हैं' यह वचन निष्ठुर वचन है। हे भगवन्! क्या देवों को 'संयतासंयत' कहना चाहिये? हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है। क्योंकि देवोंको संयतासंयत कहना असद्भूत (असत्य) वचन है। हे भगवन्! तो फिर देवों को क्या कहना चाहिये? हे गौतम! देवों को 'नोसंयत' कहना चाहिये ॥१८९॥

हे भगवन्! देव कौन सी भाषा बोलते हैं? अथवा देवों द्वारा बोली जाती हुई कौन सी भाषा विशिष्टरूप होती है? हे गौतम! देव अर्धमागधी भाषा में बोलते हैं और बोली जाती हुई यह अर्धमागधी भाषा विशिष्टरूप होती है ॥१९०॥

हे भगवन्! क्या केवली भगवान् अन्तकर को अथवा अन्तिमशरीरी को जानते और देखते हैं? हाँ, गौतम! जानते और देखते हैं। हे भगवन्! जिस प्रकार केवली भगवान् अन्तकर (कर्मों का अन्त करने वाले) को अथवा अन्तिम-शरीरी को जानते और देखते हैं उसी प्रकार छद्मस्थ मनुष्य भी अन्तकर को अथवा अन्तिमशरीरी को जानता और देखता है? हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं, किन्तु छद्मस्थ मनुष्य भी किसी के पास से सुनकर अथवा प्रमाण द्वारा अन्त-कर और अन्तिमशरीरी को जानता और देखता है। हे भगवन्! वह किसके पास सुनकर यावत् जानता और देखता है? हे गौतम! केवली, केवली के श्रावक, केवली की श्राविका, केवली के उपासक, केवली की उपासिका, केवली-पाक्षिक (स्वयंबुद्ध), केवली-पाक्षिक के श्रावक, केवली-पाक्षिक की श्राविका, केवली-पाक्षिक के उपासक और केवली-पाक्षिक की उपासिका, इनमें से किसी के पास सुनकर छद्मस्थ मनुष्य यावत् जानता और देखता है ॥१९१॥

हे भगवन्! प्रमाण कितने हैं? हे गौतम! प्रमाण चार प्रकार का कहा गया है। यथा-प्रत्यक्ष, अनुमान, औपम्य (उपमान) और आगम। प्रमाण के विषय में जिस प्रकार अनुयोगद्वार सूत्र में कहा गया है उसी प्रकार यहाँ भी कहना

चाहिये, यावत् नोआत्मागम, नोअनन्तरागम और परम्परागम तक कहना चाहिये ॥१६२॥

हे भगवन् ! क्या केवली भगवान् चरम-कर्म (अंतिम कर्म) अथवा चरम-निर्जरा को जानते देखते हैं ? हां, गौतम ! जानते और देखते हैं। जिस प्रकार 'अंतकर' का आलापक कहा उसी तरह 'चरमकर्म' का भी पूरा आलापक कहना चाहिए ॥१६३॥

हे भगवन् ! क्या केवली भगवान् प्रकृष्ट मन और प्रकृष्ट वचन धारण करते हैं ? हाँ, गौतम ! धारण करते हैं। हे भगवन् ! केवली भगवान् जिस प्रकृष्ट वचन को धारण करते हैं, क्या उसको वैमानिक देव जानते और देखते हैं ? हे गौतम ! कितनेक देव जानते देखते हैं और कितनेक देव नहीं जानते और नहीं देखते। हे भगवन् ! कितनेक देव जानते देखते हैं और कितनेक देव नहीं जानते नहीं देखते, इसका क्या कारण है ? हे गौतम ! वैमानिक देव दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा-मायी मिथ्यादृष्टिपने उत्पन्न हुए और अमायी सम्यग-दृष्टिपने उत्पन्न हुए। इनमें से जो मायीमिथ्यादृष्टिपने उत्पन्न हुए हैं वे नहीं जानते नहीं देखते, किन्तु जो अमायी सम्यग्दृष्टिपने उत्पन्न हुए हैं वे जानते और देखते हैं [···ऐसा कहनेका क्या कारण है ? गौतम ! अमायी सम्यग्दृष्टि देव दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा-अनन्तरोपपन्नक और परंपरोपपन्नक। इनमें जो अनन्तरोपपन्नक हैं वे नहीं जानते और नहीं देखते और जो परम्परोपपन्नक हैं वे जानते और देखते हैं। भगवन् ! 'परम्परोपपन्नक देव जानते और देखते हैं'—ऐसा कहने का क्या कारण है ? गौतम ! परम्परोपपन्नक देव दो प्रकार के कहे गये हैं—पर्याप्त और अपर्याप्त। जो पर्याप्त हैं वे जानते और देखते हैं और जो अपर्याप्त हैं वे नहीं जानते और नहीं देखते।] इसी तरह अनन्त-रोपपन्नक और परम्परोपपन्नक तथा अपर्याप्त और पर्याप्त एवं उपयोगयुक्त और उपयोगरहित, इस प्रकारके वैमानिक देव हैं। इनमें जो उपयोगयुक्त हैं वे जानते और देखते हैं। इसलिये ऐसा कहा गया है कि कितनेक वैमानिक देव जानते और देखते हैं, तथा कितनेक नहीं जानते और नहीं देखते ॥१६४॥

हे भगवन् ! क्या अनुत्तरौपपातिक (अनुत्तर विमानोंमें उत्पन्न हुए) देव अपने स्थान पर रहे हुए ही यहां रहे हुए केवलीके साथ आलाप और संलाप करनेमें समर्थ हैं ? हां, गौतम ! समर्थ हैं। हे भगवन् ! इसका क्या कारण है ? हे गौतम ! अपने स्थान पर रहे हुए ही अनुत्तरौपपातिक देव जिस अर्थ, हेतु, प्रश्न, कारण और व्याकरणको पूछते हैं, उस अर्थ, हेतु, प्रश्न, कारण और व्याक-रणका उत्तर यहां रहे हुए केवली भगवान् देते हैं। इस कारणसे उपरोक्त बात कही गई है। हे भगवन् ! यहां रहे हुए केवली भगवान् जिस अर्थ यावत् व्याक-

रणका उत्तर देते हैं, क्या उस उत्तरको वहां रहे हुए अनुत्तरौपपातिक देव जानते और देखते हैं ? हां, गौतम ! वे जानते और देखते हैं। हे भगवन् ! इसका क्या कारण है ? हे गौतम ! उन देवोंको अनन्त मनोद्रव्य-वर्गणा लब्ध (मिली) है, प्राप्त है, अभिसमन्वागत है अर्थात् सम्मुख प्राप्त हुई है। इस कारणसे यहां रहे हुए केवली महाराज द्वारा कथित अर्थ आदिको वे वहां रहे हुए ही जानते और देखते हैं ॥१९५॥

हे भगवन् ! क्या अनुत्तरौपपातिक देव उदीर्ण मोह वाले हैं, उपशान्त मोह वाले हैं, या क्षीण मोह वाले हैं ? हे गौतम ! वे उदीर्ण मोह वाले नहीं हैं और क्षीण मोह वाले भी नहीं हैं, परन्तु उपशान्त मोह वाले हैं। अर्थात् उनके वेद-मोहका उत्कट उदय नहीं है ॥१९६॥

हे भगवन् ! क्या केवली भगवान् आदानों (इन्द्रियों) द्वारा जानते और देखते हैं ? हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। हे भगवन् ! इसका क्या कारण है कि केवली भगवान् इन्द्रियों द्वारा नहीं जानते और नहीं देखते ? हे गौतम ! केवली भगवान् पूर्व दिशामें मित भी जानते देखते हैं और अमित भी जानते देखते हैं। यावत् केवली भगवान्का दर्शन आवरण रहित है। इसलिए वे इन्द्रियों द्वारा नहीं जानते और नहीं देखते ॥१९७॥

हे भगवन् ! केवली भगवान् इस समयमें जिन आकाश प्रदेशों पर अपने हाथ, पैर, बाहु और ऊरु (जंघा) को अवगाहित करके रहते हैं, क्या भविष्यत्कालमें भी उन्हीं आकाश प्रदेशों पर अपने हाथ आदिको अवगाहित करके रह सकते हैं ? हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। हे भगवन् ! इसका क्या कारण है ? हे गौतम ! केवली भगवान्के वीर्यप्रधान योग वाला जीव द्रव्य होता है। इससे उनके हाथ आदि अंग चलायमान होते हैं। हाथ आदि अंगोंके चलित होते रहनेसे वर्तमान समयमें जिन आकाश प्रदेशोंको अवगाहित कर रक्खा है, उन्हीं आकाश प्रदेशों पर भविष्यत्कालमें केवली भगवान् हाथ आदिको अवगाहित नहीं कर सकते। इसलिए यह कहा गया है कि केवली भगवान् जिस समयमें जिन आकाश प्रदेशों पर हाथ पांव आदिको अवगाहित कर रहते हैं, उस समयके अनन्तर आगामी समयमें उन्हीं आकाश प्रदेशोंको अवगाहित नहीं कर सकते ॥१९८॥

भगवन् ! क्या चौदह-पूर्वधारी (श्रुत केवली) एक घड़ेमें से हजार घड़े, एक कपड़ेमें से हजार कपड़े, एक कट (चटाई) में से हजार कट, एक रथमें से हजार रथ, एक छत्रमें से हजार छत्र और एक दण्डमें से हजार दण्ड करके दिखलानेमें समर्थ हैं ? हां, गौतम ! समर्थ हैं। हे भगवन् ! चौदहपूर्वी ऐसा दिखलानेमें कैसे समर्थ हैं ? हे गौतम ! चौदहपूर्वधारी श्रुतकेवलीने उत्करिका भेद

द्वारा भिन्न अनन्त द्रव्योंको लब्ध किया है, प्राप्त किया है और अभिसमन्वागत किया है, इस कारणसे वह उपरोक्त प्रकारसे एक घड़ेसे हजार घड़े आदि दिखलानेमें समर्थ है। हे भगवन्! यह इसी तरह है। ....ऐसा कह कर यावत् गौतम स्वामी विचरते हैं ॥१९९॥

॥ पांचवें शतकका चौथा उद्देशक समाप्त ॥

शतक ५ उद्देशक ५

हे भगवन्! क्या छद्मस्थ मनुष्य शाश्वत अनन्त भूतकालमें केवल संयम द्वारा सिद्ध हुआ है? जिस प्रकार पहले शतकके चौथे उद्देशक में कहा है। वैसा ही आलापक यहां भी कहना चाहिए यावत् 'अलमस्तु' तक कहना चाहिए ॥२००॥

हे भगवन्! अन्यतीर्थिक ऐसा कहते हैं यावत् प्ररूपणा करते हैं कि सर्व प्राण, सर्व भूत, सर्व जीव और सर्व सत्त्व, एवंभूत (जिस प्रकार कर्म बांधा है उसी प्रकार) वेदना वेदते हैं, तो हे भगवन्! यह किस तरह है? हे गौतम! अन्यतीर्थिक जो इस प्रकार कहते हैं यावत् प्ररूपणा करते हैं कि 'सर्व प्राण, भूत, जीव और सत्त्व, एवंभूत वेदना वेदते हैं', यह उनका कथन मिथ्या है। हे गौतम! मैं तो इस प्रकार कहता हूं यावत् प्ररूपणा करता हूं कि कितने ही प्राण, भूत, जीव और सत्त्व, एवंभूत वेदना वेदते हैं और कितने ही प्राण, भूत, जीव और सत्त्व अनेवंभूत (जिस प्रकार कर्म बांधा है उससे भिन्न प्रकारसे) वेदना वेदते हैं।

हे भगवन्! इसका क्या कारण है? हे गौतम! जो प्राण, भूत, जीव और सत्त्व अपने किए हुए कर्मोंके अनुसार अर्थात् जिस प्रकार कर्म किये हैं उसी प्रकार वेदना वेदते हैं, वे प्राण, भूत, जीव, सत्त्व, एवंभूत वेदना वेदते हैं। और जो प्राण, भूत, जीव और सत्त्व अपने किये हुए कर्मोंके अनुसार वेदना नहीं वेदते अर्थात् जिस प्रकार कर्म किये हैं उस प्रकारसे नहीं, किन्तु भिन्न प्रकारसे वेदना वेदते हैं, वे प्राण, भूत, जीव और सत्त्व अनेवंभूत वेदना वेदते हैं। इसलिए ऐसा कहा गया है कि कितने ही प्राण, भूत, जीव और सत्त्व, एवंभूत वेदना वेदते हैं और कितने ही अनेवंभूत वेदना वेदते हैं।

हे भगवन्! क्या नैरयिक एवंभूत वेदना वेदते हैं अथवा अनेवंभूत वेदना वेदते हैं? हे गौतम! नैरयिक एवंभूत वेदना भी वेदते हैं और अनेवंभूत वेदना भी वेदते हैं। हे भगवन्! इसका क्या कारण है? हे गौतम! जो नैरयिक अपने किये हुए कर्मोंके अनुसार वेदना वेदते हैं, वे एवंभूत वेदना वेदते हैं और जो नैरयिक अपने किये हुए कर्मोंके अनुसार वेदना नहीं भोगते किन्तु भिन्न प्रकारसे भोगते

हैं, वे अनेवंभूत वेदना वेदते हैं। इसी प्रकार यावत् वैमानिक पर्यन्त सभी संसारी जीवोंके विषयमें कहना चाहिए ॥२०१॥

हे भगवन्! इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में इस अवसर्पिणी काल में कितने कुलकर हुए हैं? हे गौतम! सात कुलकर हुए हैं। इसी तरह तीर्थङ्करों की माता, पिता, पहली शिष्याएं, चक्रवर्ती की माताएँ, स्त्रीरत्न, बलदेव, वासुदेव, वासुदेवों के माता-पिता, प्रतिवासुदेव आदि का कथन जिस प्रकार समवायांग सूत्र में किया गया है, उसी प्रकार यहां भी कहना चाहिए ॥२०२॥

॥ पांचवें शतक का पांचवां उद्देशक समाप्त ॥

शतक ५ उद्देशक ६

हे भगवन्! जीव अल्पायु फल वाले कर्म कैसे बांधते हैं? हे गौतम! तीन कारणों से जीव अल्पायु फल वाले कर्म बांधते हैं। यथा—प्राणियों की हिंसा करने से, झूठ बोलने से और तथारूप (साधु के अनुरूप क्रिया और वेश आदिसे युक्त दान के पात्र) श्रमण (साधु) माहण को अप्रासुक, अनेषणीय (अकल्पनीय) अशन, पान, खादिम, स्वादिम देने से जीव अल्पायु फल वाले कर्म बांधते हैं। भगवन्! जीव दीर्घायु फल वाले कर्म किन कारणोंसे बांधते हैं? हे गौतम! तीन कारणों से जीव दीर्घायु फल वाले कर्म बांधते हैं। यथा—प्राणियोंकी हिंसा न करने से, झूठ नहीं बोलने से और तथारूप श्रमण माहण को प्रासुक एषणीय अशन पान खादिम और स्वादिम वहराने से। इन तीन कारणों से जीव दीर्घायु फल वाले कर्म बांधते हैं।

हे भगवन्! जीव अशुभ दीर्घायु फल वाले कर्म किन कारणों से बांधते हैं? हे गौतम! तीन कारणों से जीव अशुभ दीर्घायु फल वाले कर्म बांधते हैं। यथा—प्राणियों की हिंसा करके, झूठ बोल कर और तथारूप श्रमण माहण की जाति प्रकाश द्वारा हीलना, मन द्वारा निन्दा, खिसना (लोगों के समक्ष निन्दा—बुराई) और गर्हा (उनके समक्ष निन्दा) द्वारा उनका अपमान करके, अमनोज्ञ और अप्रीतिकर (खराब) अशन, पान, खादिम और स्वादिम वहराने से जीव अशुभ दीर्घायु फल वाले कर्म बांधते हैं। हे भगवन्! जीव शुभ दीर्घायु फल वाले कर्म किन कारणों से बांधते हैं? हे गौतम! तीन कारणों से जीव शुभ दीर्घ आयु फल वाले कर्म बांधते हैं। यथा—प्राणियों की हिंसा नहीं करने से, झूठ नहीं बोलने से, तथारूप श्रमण माहण को वन्दना नमस्कार यावत् पर्युपासना करके किसी प्रकार के मनोज्ञ और प्रीतिकारक अशन, पान, खादिम और स्वादिम वहराने से। इन तीन कारणों से जीव शुभ दीर्घायु फल वाले कर्म बांधते हैं ॥२०३॥

हो तो जिस प्रकार अनुपनीत भाण्ड के विषय में पहला आलापक कहा है उस प्रकार समझना चाहिए। पहला और चौथा आलापक समान है तथा दूसरा और तीसरा आलापक समान है।

हे भगवन्! क्या तत्काल प्रज्वलित हुई अग्निकाय महाकर्मयुक्त, महाक्रियायुक्त, महाआश्रवयुक्त और महावेदनायुक्त होती है? और इसके वाद समय समय कम होती हुई—बुझती हुई, अन्तिम क्षणमें अंगार रूप, मुर्मुर रूप और भस्म रूप हो जाती है? इसके वाद क्या वह अग्निकाय अल्प कर्म युक्त, अल्प क्रिया युक्त, अल्प आश्रव युक्त और अल्प वेदना युक्त होती है? हां, गौतम! पूर्वोक्त प्रकारसे वह अग्निकाय महाकर्मयुक्त यावत् अल्प वेदना युक्त होती है ॥२०४॥

हे भगवन्! कोई पुरुष धनुषको ग्रहण करे, धनुषको ग्रहण करके वाण को ग्रहण करे, ··· करके धनुपसे वाण फेंकने वाले आसनसे वैठे, वैठकर फ़ेंके जाने वाले वाणको कान तक खींचे, खींच कर ऊंचे आकाशमें वाण फ़ेंके। ऊंचे आकाशमें फेंका हुआ वह वाण वहां जिन प्राण, भूत, जीव और सत्त्वोंका अभिहनन करे, उनके शरीरको संकुचित करे, उन्हें श्लिष्ट करे, उन्हें परस्पर संहत करे, उनका स्पर्श करे, उनको चारों तरफसे पीड़ा पहुंचावे, उन्हें क्लान्त करे अर्थात् मारणान्तिक समुद्घात तक ले जावे, उन्हें एक स्थानसे दूसरे स्थान तक ले जावे और उन्हें जीवितसे रहित कर देवे, तो हे भगवन्! उस पुरुषको कितनी क्रियाएं लगती हैं? हे गौतम! यावत् वह पुरुप धनुषको ग्रहण करता है यावत् वाणको फेंकता है तावत् वह पुरुष कायिकी, आधिकरणिकी, प्राद्वेषिकी, पारितापनिकी और प्राणातिपातिकी—इन पांच क्रियाओंसे स्पृष्ट होता है। जिन जीवोंके शरीरसे वह धनुप वना है, वे जीव भी पांच क्रियाओं से स्पृष्ट होते हैं। इस तरह धनुःपृष्ठ (धनुष की पीठ) पांच क्रिया से स्पृष्ट होती है, जीवा (डोरी) पांच क्रिया से स्पृष्ट होती है, ण्हारू (स्नायु) पांच क्रिया से स्पृष्ट होती है, वाण पांच क्रिया से स्पृष्ट होता है, शर, पत्र, फल और ण्हारू पाँच क्रिया से स्पृष्ट होता है ॥२०५॥

हे भगवन्! जव वह वाण अपनी गुरुता, भारीपन और गुरुतासंभारता द्वारा स्वाभाविक रूप से नीचे गिरता है, तव ऊपर से नीचे गिरता हुआ वह वाण वीच मार्ग में प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों को यावत् जीवित रहित करता है, तव उस वाण फेंकने वाले पुरुप को कितनी क्रियाएँ लगती हैं? हे गौतम! जव वह वाण अपनी गुरुता आदि द्वारा नीचे गिरता हुआ यावत् जीवोंको जीवन रहित करता है तव वह पुरुप कायिकी आदि चार क्रियाओं से स्पृष्ट होता है और जिन जीवों के शरीर से धनुप वना है वे जीव भी चार क्रिया से स्पृष्ट होते हैं।

धनु:पृष्ठ चार क्रिया से, डोरी चार क्रिया से, ण्हारू चार क्रिया से, बाण पाँच क्रिया से, शर, पत्र, फल और ण्हारू पांच क्रियाओं से स्पृष्ट होते हैं। नीचे पड़ते हुए बाण के अवग्रह में जो जीव आते हैं वे जीव भी कायिकी आदि पांच क्रियाओं से स्पृष्ट होते हैं ।।२०६।।

हे भगवन् ! अन्यतीर्थिक इस प्रकार कहते हैं यावत् प्ररूपणा करते हैं कि युवती-युवक के दृष्टान्त से अथवा आरायुक्त चक्र की नाभि के दृष्टान्त से यावत् चार सौ पांच सौ योजन तक यह मनुष्यलोक मनुष्यों से ठसाठस भरा हुआ है, हे भगवन् ! यह किस तरह है ? हे गौतम ! अन्यतीर्थियों का उपरोक्त कथन मिथ्या है। हे गौतम ! मैं इस प्रकार कहता हूं यावत् प्ररूपणा करता हूं—कि चार सौ पाँच सौ योजन तक नरकलोक नैरयिक जीवों से ठसाठस भरा हुआ है ।।२०७।।

हे भगवन् ! क्या नैरयिक जीव एकत्व (एक रूप) की विकुर्वणा करने में समर्थ हैं ? अथवा बहुत्व (बहुत रूपों) की विकुर्वणा करने में समर्थ हैं ? इस विषय में जिस प्रकार जीवाभिगम सूत्र में आलापक कहा है उसी तरह 'दुरहियासं' शब्द तक आलापक कहना चाहिये ।।२०८।।

'आधाकर्म—अनवद्य—निष्पाप है'—इस प्रकार जो साधु मनमें समझता हो, वह यदि आधाकर्म-स्थान विषयक आलोचना और प्रतिक्रमण किये बिना ही कालकर जाय, तो उसके आराधना नहीं होती। और आधाकर्म-स्थान विषयक आलोचना और प्रतिक्रमण करके काल करे, तो उसके आराधना होती है। इसी तरह क्रीतकृत (साधुके लिये खरीद कर लाया हुआ), स्थापित (साधुके लिये स्थापित करके रक्खा हुआ), रचित (साधुके लिए बिखरे हुए भूके को लड्डू के रूपमें बांधा हुआ), कान्तारभक्त (जंगलमें भिक्षुओं–भिखारी लोगोंके निर्वाहके लिये तैयार किया हुआ आहार आदि), दुर्भिक्ष-भक्त (दुष्कालके समय भिखारी लोगोंके निर्वाहके लिये तैयार किया हुआ आहार आदि), वार्दलिकाभक्त (दुर्दिन अर्थात् वर्षाके समय भिखारियोंके लिये तैयार किया हुआ आहार आदि), ग्लान-भक्त (रोगियोंके लिये तैयार किया हुआ आहारादि), शय्यातरपिण्ड (जिस मकानमें उतरे हैं, उस गृहस्थके घरसे आहार आदि लेना), राजपिण्ड (राजाके लिये तैयार किया गया, जिसका विभाग दूसरोंको मिलता हो वह आहार आदि लेना), इन सब प्रकारके आहार आदिके विषयमें जैसा आधाकर्मके सम्बन्धमें कहा है, वैसा ही जान लेना चाहिए।

"आधाकर्म आहार आदि अनवद्य–निष्पाप है"—इस प्रकार जो बहुतसे मनुष्योंके बीचमें कहता है और स्वयं भी आधाकर्म आहारादिका सेवन करता है। उस स्थानकी आलोचना और प्रतिक्रमण किये बिना क्या उसके आराधना

कदाचित् बहुत देश कंपते हैं और एक देश नहीं कंपता। भगवन्! क्या चतुष्प्रदेशी स्कन्ध कंपता है? गौतम! १ कदाचित् कंपता है, २ कदाचित् नहीं कंपता, ३ कदाचित् एक देश कंपता है और एक देश नहीं कंपता। ४ कदाचित् एक-देश कंपता है, बहुत देश नहीं कंपते। ५ कदाचित् बहुत देश कंपते हैं और एक देश नहीं कंपता। ६ कदाचित् बहुत देश कंपते हैं और बहुत देश नहीं कंपते। जिस प्रकार चतुष्प्रदेशी स्कन्ध के विषयमें कहा गया है, उसी प्रकार पंच-प्रदेशी स्कन्धसे लेकर यावत् अनन्त प्रदेशी स्कन्ध तक प्रत्येक स्कन्ध के लिए कहना चाहिए ।।२१२।।

भगवन्! क्या परमाणु पुद्गल तलवार की धार या क्षुर-धार (उस्तरे की धार) पर रह सकता है? हाँ, गौतम! रह सकता है। भगवन्! उस धार पर रहा हुआ परमाणु पुद्गल क्या छिन्न-भिन्न होता है? गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है। परमाणु पुद्गल पर शस्त्रका आक्रमण नहीं हो सकता। इसी तरह यावत् असंख्य प्रदेशी स्कन्ध तक समझ लेना चाहिए। अर्थात् एक परमाणु यावत् असंख्य प्रदेशी स्कन्ध शस्त्र द्वारा छिन्न-भिन्न नहीं होता। भगवन्! क्या अनन्त प्रदेशी स्कन्ध तलवार की धार पर या क्षुर-धार पर रह सकता है? हां, गौतम! रह सकता है। तलवारकी धार पर या क्षुरकी धार पर रहा हुआ अनन्त प्रदेशी स्कन्ध छिन्न-भिन्न होता है? गौतम! कोई अनन्त प्रदेशी स्कन्ध छिन्न-भिन्न होता है और कोई नहीं होता।

जिस प्रकार छेदन भेदनके विषयमें प्रश्नोत्तर किये गये हैं। उसी तरह 'अग्निकायके बीचमें प्रवेश करता है'—इसी प्रकारके प्रश्नोत्तर एक परमाणु पुद्गल से लेकर अनन्त प्रदेशी स्कन्ध तक कहने चाहिएँ, किन्तु अन्तर इतना है कि जहाँ उसमें सम्भावित छेदन भेदनका कथन किया है, वहां 'जलता है' इस प्रकार कहना चाहिए। इसी तरह 'पुष्कर-सम्वर्तक नामक महामेघके मध्यमें प्रवेश करता है'—यह प्रश्नोत्तर भी कहने चाहिएं। किन्तु वहां सम्भावित छेदन भेदन के स्थान पर 'गीला होता है—भीगता है' कहना चाहिए। इसी तरह 'गंगा महा-नदी के प्रतिस्रोत—प्रवाह में वह परमाणु पुद्गल आता है और प्रतिस्खलित होता है।' और 'उदकावर्त या उदकबिन्दुमें प्रवेश करता है और वहां वह पर-माणु पुद्गलादि विनष्ट होता है'। इस प्रकार प्रश्नोत्तर कहने चाहिएँ ।।२१३।।

भगवन्! क्या परमाणु पुद्गल सार्ध, समध्य और सप्रदेश है? अथवा अनर्द्ध, अमध्य और अप्रदेश है? गौतम! परमाणु पुद्गल अनर्द्ध है, अमध्य है और अप्रदेश है, परन्तु सार्ध नहीं, समध्य नहीं और सप्रदेश भी नहीं है। भगवन्! क्या द्विप्रदेशी स्कन्ध सार्ध, समध्य और सप्रदेश है? अथवा अनर्द्ध, अमध्य और अप्रदेश है? गौतम! द्विप्रदेशी स्कन्ध सार्ध है, सप्रदेश है और

होती है ? गौतम ! यह भी उसी प्रकार जानना चाहिए, यावत् राजपिण्ड तक इसी प्रकार जानना चाहिए। अर्थात् आधाकर्म यावत् राजपिण्ड पर्यन्त दूषित आहारादिका सेवन करने वालेको उसकी आलोचना और प्रतिक्रमण किये बिना आराधना नहीं होती। आधाकर्म आहारादि 'अनवद्य (निष्पाप) है'—ऐसा कह कर जो साधु परस्पर देता है। भगवन् ! क्या उसके आराधना है ? गौतम ! यह भी पूर्वोक्त प्रकारसे जानना चाहिए, यावत् राजपिण्ड तक इसी प्रकार जानना चाहिए। अर्थात् उसके आराधना नहीं है।

'आधाकर्म आहारादि अनवद्य-निष्पाप है'-इस प्रकार जो बहुतसे मनुष्योंके बीचमें प्ररूपणा करता है। भगवन् ! क्या उसकी आराधना है ? यावत् राजपिण्ड तक पूर्वोक्त प्रकारसे जानना चाहिए ॥२०६॥

भगवन् ! अपने विषयमें शिष्य वर्गको अग्लान (खेदरहित) भावसे स्वीकार करने वाले और अग्लान भावसे सहायता करने वाले आचार्य और उपाध्याय कितने भव ग्रहण करके सिद्ध होते हैं, यावत् सभी दुःखोंका अन्त करते हैं ? गौतम ! कितने ही आचार्य उपाध्याय उसी भवसे सिद्ध होते हैं और कितनेक दो भव ग्रहण करके सिद्ध होते हैं, किन्तु तीसरे भवका उल्लंघन नहीं करते ॥२१०॥

भगवन् ! जो दूसरेको अलीकवचन, असद्भूत वचन और अभ्याख्यान वचन कहता है, वह किस प्रकारके कर्म बांधता है ? गौतम ! जो दूसरेको अलीक वचन, असद्भूत वचन और अभ्याख्यान वचन कहता है, वह उसी प्रकारके कर्मों को बांधता है और वह जिस योनिमें जाता है, वहां उन कर्मोंको वेदता है और वेदनेके पश्चात् उनकी निर्जरा करता है। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है···॥२११॥

॥ पांचवें शतक का छठा उद्देशक समाप्त ॥

शतक ५ उद्देशक ७

भगवन् ! क्या परमाणु पुद्गल कंपता है ? विशेष कंपता है ? यावत् उन-उन भावोंको परिणमता है ? गौतम ! कदाचित् कंपता है, विशेष कंपता है और यावत् उन उन भावोंको परिणमता है। कदाचित् नहीं कंपता, यावत् उन उन भावोंको नहीं परिणमता। भगवन् ! क्या द्विप्रदेशी स्कंध कंपता है, यावत् परिणमता है। गौतम ! कदाचित् कंपता है, यावत् परिणमता है। कदाचित् नहीं कंपता, यावत् नहीं परिणमता। कदाचित् एक देश (भाग) कंपता है, एक देश नहीं कंपता। भगवन् ! क्या त्रिप्रदेशी स्कन्ध कंपता है ? गौतम ! क० कंपता है, क० नहीं कंपता। कदाचित् एक देश कंपता है और एक देश नहीं कंपता। कदाचित् एक देश कंपता है और बहुत देश नहीं कंपते।

कदाचित् बहुत देश कंपते हैं और एक देश नहीं कंपता। भगवन्! क्या चतुष्प्रदेशी स्कन्ध कंपता है? गौतम! १ कदाचित् कंपता है, २ कदाचित् नहीं कंपता, ३ कदाचित् एक देश कंपता है और एक देश नहीं कंपता। ४ कदाचित् एक-देश कंपता है, बहुत देश नहीं कंपते। ५ कदाचित् बहुत देश कंपते हैं और एक देश नहीं कंपता। ६ कदाचित् बहुत देश कंपते हैं और बहुत देश नहीं कंपते। जिस प्रकार चतुष्प्रदेशी स्कन्ध के विषयमें कहा गया है, उसी प्रकार पंच-प्रदेशी स्कन्धसे लेकर यावत् अनन्त प्रदेशी स्कन्ध तक प्रत्येक स्कन्ध के लिए कहना चाहिए ॥२१२॥

भगवन्! क्या परमाणु पुद्गल तलवार की धार या क्षुर-धार (उस्तरे की धार) पर रह सकता है? हाँ, गौतम! रह सकता है। भगवन्! उस धार पर रहा हुआ परमाणु पुद्गल क्या छिन्न-भिन्न होता है? गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है। परमाणु पुद्गल पर शस्त्रका आक्रमण नहीं हो सकता। इसी तरह यावत् असंख्य प्रदेशी स्कन्ध तक समझ लेना चाहिए। अर्थात् एक परमाणु यावत् असंख्य प्रदेशी स्कन्ध शस्त्र द्वारा छिन्न-भिन्न नहीं होता। भगवन्! क्या अनन्त प्रदेशी स्कन्ध तलवार की धार पर या क्षुर-धार पर रह सकता है? हां, गौतम! रह सकता है। तलवारकी धार पर या क्षुरकी धार पर रहा हुआ अनन्त प्रदेशी स्कन्ध छिन्न-भिन्न होता है? गौतम! कोई अनन्त प्रदेशी स्कन्ध छिन्न-भिन्न होता है और कोई नहीं होता।

जिस प्रकार छेदन भेदनके विषयमें प्रश्नोत्तर किये गये हैं। उसी तरह 'अग्निकायके बीचमें प्रवेश करता है'—इसी प्रकारके प्रश्नोत्तर एक परमाणु पुद्गल से लेकर अनन्त प्रदेशी स्कन्ध तक कहने चाहिएँ, किन्तु अन्तर इतना है कि जहाँ उसमें सम्भावित छेदन भेदनका कथन किया है, वहां 'जलता है' इस प्रकार कहना चाहिए। इसी तरह 'पुष्कर-सम्वर्तक नामक महामेघके मध्यमें प्रवेश करता है'—यह प्रश्नोत्तर भी कहने चाहिएं। किन्तु वहां सम्भावित छेदन भेदन के स्थान पर 'गीला होता है—भीगता है' कहना चाहिए। इसी तरह 'गंगा महा-नदी के प्रतिस्रोत—प्रवाह में वह परमाणु पुद्गल आता है और प्रतिस्खलित होता है।' और 'उदकावर्त या उदकबिन्दुमें प्रवेश करता है और वहां वह पर-माणु पुद्गलादि विनष्ट होता है'। इस प्रकार प्रश्नोत्तर कहने चाहिएँ ॥२१३॥

भगवन्! क्या परमाणु पुद्गल सार्ध, समध्य और सप्रदेश है? अथवा अनर्द्ध, अमध्य और अप्रदेश है? गौतम! परमाणु पुद्गल अनर्द्ध है, अमध्य है और अप्रदेश है, परन्तु सार्ध नहीं, समध्य नहीं और सप्रदेश भी नहीं है। भगवन्! क्या द्विप्रदेशी स्कन्ध सार्ध, समध्य और सप्रदेश है? अथवा अनर्द्ध, अमध्य और अप्रदेश है? गौतम! द्विप्रदेशी स्कन्ध सार्ध है, सप्रदेश है और

अमध्य है, किन्तु अनर्द्ध नहीं है, समध्य नहीं है और अप्रदेश भी नहीं है।

भगवन् ! क्या त्रिप्रदेशी स्कन्ध सार्ध, समध्य और सप्रदेश है ? अथवा अनर्द्ध, अमध्य और अप्रदेश है ? गौतम ! त्रिप्रदेशी स्कन्ध अनर्द्ध है, समध्य है और सप्रदेशी है। किन्तु सार्ध नहीं है, अमध्य नहीं है और अप्रदेश नहीं है। जिस प्रकार द्विप्रदेशी स्कन्धके विषयमें सार्ध आदि विभाग बतलाये गये हैं, उसी तरह समसंख्या (दो की संख्या) वाले स्कन्धोंके विषयमें कहना चाहिये। जिस प्रकार त्रिप्रदेशी स्कन्धके विषयमें कहा गया है, उसी तरह विषम संख्या (एकी संख्या) वाले स्कन्धोंके विषयमें कहना चाहिये।

भगवन् ! क्या संख्यातप्रदेशी स्कन्ध सार्ध, समध्य और सप्रदेश है, अथवा अनर्द्ध, अमध्य और अप्रदेश है ? गौतम ! कदाचित् सार्ध होता है, अमध्य होता है और सप्रदेश होता है। कदाचित् अनर्द्ध होता है, समध्य होता है और सप्रदेश होता है। जिस प्रकार संख्यात प्रदेशी स्कन्धके विषयमें कहा गया है, उसी प्रकार असंख्यात प्रदेशी स्कन्ध और अनन्तप्रदेशी स्कन्धके विषयमें भी जान लेना चाहिये॥२१४॥

भगवन् ! क्या परमाणु पुद्गल, परमाणु पुद्गलको स्पर्श करता हुआ १ एक देशसे एक देशको स्पर्श करता है ? अर्थात् एक भागसे एक भागको स्पर्श करता है ? २ अथवा एक देशसे बहुत देशोंको स्पर्श करता है ? ३ अथवा एक देशसे सबको स्पर्श करता है ? ४ अथवा बहुत देशोंसे एक देशको स्पर्श करता है ? ५ अथवा बहुत देशोंसे बहुत देशोंको स्पर्श करता है ? ६ अथवा बहुत देशों से सभीको स्पर्श करता है ? ७ अथवा सर्व से एक देशको स्पर्श करता है ? ८ अथवा सर्वसे बहुत देशोंको स्पर्श करता है ? ९ अथवा सर्वसे सर्वको स्पर्श करता है ?—

गौतम ! १ एक देशसे एक देशको स्पर्श नहीं करता, २ एक देशसे बहुत देशोंको स्पर्श नहीं करता, ३ एक देशसे सर्वको स्पर्श नहीं करता, ४ बहुत देशोंसे एक देशको स्पर्श नहीं करता, ५ बहुत देशोंसे बहुत देशोंको स्पर्श नहीं करता, ६ बहुत देशोंसे सर्वको स्पर्श नहीं करता, ७ सर्वसे एक देशको स्पर्श नहीं करता, ८ सर्वसे बहुत देशोंको स्पर्श नहीं करता, किन्तु ९ सर्वसे सर्वको स्पर्श करता है। द्विप्रदेशी स्कन्धको स्पर्श करता हुआ परमाणु पुद्गल सातवें और नववें इन दो विकल्पोंसे स्पर्श करता है। त्रिप्रदेशी स्कन्धको स्पर्श करता हुआ परमाणु पुद्गल उपरोक्त नौ विकल्पों में से अन्तिम तीन विकल्पों (सातवें, आठवें और नौवें) से स्पर्श करता है। अर्थात् सर्वसे एक देशको स्पर्श करता है। सर्वसे बहुत देशों को स्पर्श करता है और सर्वसे सर्वको स्पर्श करता है। जिस प्रकार एक परमाणु पुद्गल द्वारा त्रिप्रदेशी स्कन्धको स्पर्श करनेका कहा, उसी तरह चतुष्प्रदेशी

स्कन्धको, पंच प्रदेशी स्कन्धको, यावत् अनन्त प्रदेशी स्कन्धको करने का कहना चाहिये।

भगवन्! द्विप्रदेशी स्कन्ध परमाणु पुद्गलको स्पर्श करता हुआ किस प्रकार स्पर्श करता है? गौतम! तीसरे और नववें विकल्प द्वारा स्पर्श करता है। इसी प्रकार द्विप्रदेशी स्कन्ध, द्विप्रदेशी स्कन्धको पहले, तीसरे, सातवें और नववें विकल्प द्वारा स्पर्श करता है। द्विप्रदेशी स्कन्ध त्रिप्रदेशी स्कन्धको पहले, दूसरे, तीसरे, सातवें, आठवें और नववें विकल्प द्वारा स्पर्श करता है। इसमें बीचके चौथे, पांचवें और छठे विकल्पको छोड़ देना चाहिए। जिस प्रकार द्विप्रदेशी स्कन्ध द्वारा त्रिप्रदेशी स्कन्धकी स्पर्शना कही गई है, उसी प्रकार—चतुष्प्रदेशी स्कन्ध, पंच प्रदेशी स्कन्ध, यावत् अनन्त प्रदेशी स्कन्धकी स्पर्शना भी कहनी चाहिये।

भगवन्! परमाणु पुद्गलको स्पर्श करता हुआ त्रिप्रदेशी स्कन्ध किस प्रकार स्पर्श करता है? गौतम! उपरोक्त तीसरे, छठे और नववें विकल्प द्वारा स्पर्श करता है। त्रिप्रदेशी स्कन्ध द्विप्रदेशी स्कन्धको पहले, तीसरे, चौथे, छठे, सातवें और नववें विकल्प द्वारा स्पर्श करता है। त्रिप्रदेशी स्कन्धको उपरोक्त विकल्पोंसे स्पर्श करता है। जिस प्रकार त्रिप्रदेशी स्कन्ध द्वारा त्रिप्रदेशी स्कन्ध की स्पर्शना कही गई है, उसी प्रकार त्रिप्रदेशी द्वारा चतुष्प्रदेशी, पंच प्रदेशी यावत् अनन्त प्रदेशी स्कन्ध तक की स्पर्शना कहनी चाहिये। जिस प्रकार त्रिप्रदेशी स्कन्ध द्वारा स्पर्शना कही गई है, उसी तरह यावत् अनन्त प्रदेशी स्कन्ध द्वारा स्पर्शना कहनी चाहिये ॥२१५॥

भगवन्! परमाणु पुद्गल कालकी अपेक्षा कितने काल तक रहता है? गौतम! परमाणु पुद्गल जघन्य एक समय तक रहता है और उत्कृष्ट असंख्य काल तक रहता है। इसी प्रकार यावत् अनन्त प्रदेशी स्कन्ध तक कहना चाहिए। हे भगवन्! एक आकाश प्रदेशावगाढ़ (एक आकाश प्रदेश पर स्थित) पुद्गल स्वस्थान पर या दूसरे स्थान पर कितने काल तक सकम्प रहता है? गौतम! एक प्रदेशावगाढ़ पुद्गल जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट आवलिका के असंख्येय भाग तक सकम्प रहता है। इसी प्रकार यावत् असंख्येय प्रदेशावगाढ़ तक कहना चाहिए। हे भगवन्! एक प्रदेशावगाढ़ पुद्गल कितने काल तक निष्कम्प रहता है? हे गौतम! जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट असंख्येय काल तक निष्कम्प रहता है। इसी प्रकार यावत् असंख्येय प्रदेशावगाढ़ तक कहना चाहिए।

भगवन्! एक गुण काला पुद्गल कब तक रहता है? गौतम! जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट असंख्येय काल तक रहता है। इसी प्रकार यावत्

अनन्तगुण काला पुद्गल तक कहना चाहिए। इसी प्रकार वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श यावत् अनन्तगुण रूक्ष पुद्गल तक कहना चाहिए। इसी प्रकार सूक्ष्म परिणत पुद्गल और बादर परिणत पुद्गलके विषयमें भी कहना चाहिए। भगवन्! शब्द परिणत पुद्गल कितने काल तक रहता है? गौतम! जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट आवलिका के असंख्येय भाग तक रहता है। जिस प्रकार एक गुण काले पुद्गल के विषय में कहा है उसी तरह अशब्द परिणत पुद्गल के विषय में कहना चाहिए।

हे भगवन्! परमाणु पुद्गल का अन्तर कितने कालका होता है। अर्थात् जो पुद्गल परमाणु रूप है वह परमाणुपन को छोड़कर स्कन्धादि रूप में परिणत हो जाय, तो वह कितने काल बाद पुनः परमाणुपन को प्राप्त कर सकता है? गौतम! जघन्य एक समय और उत्कृष्ट असंख्येय काल का अन्तर होता है। भगवन्! द्विप्रदेशी स्कन्ध का अन्तर कितने कालका होता है? गौतम! जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अनन्तकालका अन्तर होता है। इसी तरह यावत् अनन्त प्रदेशी स्कन्ध तक कहना चाहिये।

भगवन्! एक प्रदेशावगाढ़ सकंप पुद्गल का अन्तर कितने कालका होता है, अर्थात् एक आकाश प्रदेशमें स्थिति सकंप पुद्गल अपना कंपन बन्द करे, तो फिर उसे वापिस कंपन करनेमें कितना समय लगता है। गौतम! जघन्य एक समय और उत्कृष्ट असंख्येय कालका अन्तर होता है। इसी तरह यावत् असंख्य प्रदेशावगाढ़ स्कन्ध तक कहना चाहिये। भगवन्! एक प्रदेशावगाढ़ निष्कंप पुद्गल का अन्तर कितने कालका होता है? अर्थात् निष्कंप पुद्गल अपनी निष्कंपता छोड़कर फिर वापिस कितने काल बाद निष्कंपता प्राप्त कर सकता है? गौतम! जघन्य एक समय और उत्कृष्ट आवलिका का असंख्येय भाग का अन्तर होता है। इसी तरह यावत् असंख्य प्रदेशावगाढ़ स्कन्ध तक समझ लेना चाहिये। वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, सूक्ष्मपरिणत और बादर परिणत के लिये जो उनका स्थिति काल कहा गया है, वही उनका अन्तर काल समझना चाहिये।

भगवन्! शब्द परिणत पुद्गल का अन्तर कितने कालका होता है? गौतम! जघन्य एक समय और उत्कृष्ट असंख्येय कालका अन्तर होता है। भगवन्! अशब्द परिणत पुद्गल का अन्तर कितने काल का होता है? गौतम! जघन्य एक समय और उत्कृष्ट आवलिका के असंख्येय भाग का अन्तर होता है ॥२१६॥

भगवन्! इन द्रव्यस्थानायु, क्षेत्रस्थानायु, अवगाहनास्थानायु और भावस्थानायु, इन सबमें कौन किससे कम, ज्यादा, तुल्य और विशेषाधिक हैं? गौतम! सबसे थोड़ा क्षेत्रस्थानायु है, उससे अवगाहनास्थानायु असंख्य गुणा है,

उससे द्रव्यस्थानायु असंख्य गुणा है और उससे भावस्थानायु असंख्य गुणा है। गाथार्थ-क्षेत्र, अवगाहना, द्रव्य और भाव स्थानायु, इनका अल्पवहुत्व कहना चाहिये। इनमें क्षेत्रस्थानायु सबसे अल्प है और बाकी तीन स्थान क्रमशः असंख्य गुणा है ॥१॥२१७॥

भगवन् ! क्या नैरयिक आरम्भ और परिग्रह सहित हैं, या अनारम्भ और अपरिग्रही हैं ? गौतम ! नैरयिक आरम्भ और परिग्रह सहित हैं, किन्तु अनारम्भी और अपरिग्रही नहीं हैं। भगवन् ! किस कारण से वे आरम्भ और परिग्रह सहित हैं, किन्तु अनारम्भी और अपरिग्रही नहीं हैं ? गौतम ! नैरयिक पृथ्वीकाय यावत् त्रसकाय का समारम्भ करते हैं। उन्होंने शरीर परिगृहीत किये हैं, कर्म परिगृहीत किये हैं, सचित्त अचित्त और मिश्र द्रव्य परिगृहीत किये हैं। इसलिए नैरयिक आरम्भ सहित हैं, परिग्रह सहित हैं, किन्तु अनारम्भी और अपरिग्रही नहीं हैं।

भगवन् ! क्या असुरकुमार आरम्भ और परिग्रह सहित हैं या अनारम्भी और अपरिग्रही हैं ? गौतम ! असुरकुमार आरम्भ और परिग्रह सहित हैं, किन्तु अनारम्भी और अपरिग्रही नहीं हैं। भगवन् ! इसका क्या कारण है ? गौतम ! असुरकुमार पृथ्वीकाय यावत् त्रसकाय का समारंभ (वध) करते हैं। उन्होंने शरीर परिगृहीत किये हैं, कर्म परिगृहीत किये हैं, भवन परिगृहीत किये हैं, देव, देवी, मनुष्य, मनुष्यिनी, तिर्यञ्च, तिर्यञ्चिनी ये सब परिगृहीत किये हैं। आसन, शयन, भाण्ड (मिट्टीके वर्तन), मात्रक (कांसी के वर्तन) और उपकरण (लोहे की कड़ाही, कड़छी आदि) परिगृहीत किये हैं। सचित्त, अचित्त और मिश्र द्रव्य परिगृहीत किये हैं। इसलिये वे आरंभ और परिग्रह सहित हैं किन्तु अनारंभी और अपरिग्रही नहीं हैं। इसी प्रकार स्तनितकुमारों तक कहना चाहिये। जिस प्रकार नैरयिकोंके लिये कहा है उसी प्रकार एकेन्द्रियों के विषय में भी कहना चाहिये।

भगवन् ! क्या बेइन्द्रिय जीव आरंभ और परिग्रह सहित हैं अथवा अनारंभी और अपरिग्रही हैं ? गौतम ! बेइन्द्रिय जीव आरंभ और परिग्रह सहित हैं, अनारंभी और अपरिग्रही नहीं हैं। क्योंकि उन्होंने यावत् शरीर परिगृहीत किये हैं और बाह्य भाण्ड (वर्तन), मात्रक, उपकरण, परिगृहीत किये हैं। इसी तरह चौइन्द्रिय तक कहना चाहिए। भगवन् ! क्या पंचेन्द्रिय तिर्यचयोनिक जीव आरंभ और परिग्रह सहित हैं अथवा अनारंभी और अपरिग्रही हैं ? गौतम ! पंचेन्द्रिय तिर्यचयोनिक जीव आरंभ और परिग्रह सहित हैं, किन्तु अनारम्भी और अपरिग्रही नहीं हैं, क्योंकि उन्होंने शरीर यावत् कर्म परिगृहीत किये हैं।

उन्होंने टंक (पर्वतका छेदा हुआ टुकड़ा), कूट (शिखर अथवा हाथी बांधनेका स्थान), शैल (मुण्ड पर्वत), शिखरी (शिखर वाले पर्वत), प्राग्भार (थोड़े झुके हुए पर्वतके हिस्से) परिगृहीत किये हैं। उन्होंने जल, स्थल, बिल, गुफा, लयन (पहाड़में खोदकर बनाये हुए घर) परिगृहीत किये हैं। उन्होंने उज्झर (पर्वतसे गिरने वाला पानीका झरना), निर्झर (पानीका टपकना), चिल्लल (कीचड़ मिश्रित जल स्थान), पल्लल (आनन्ददायक जल स्थान), वप्रिण (क्यारा वाला जल स्थान अथवा तट वाला प्रदेश) परिगृहीत किये हैं। उन्होंने अगड़ (कूआ), तड़ाग (तालाब), द्रह (जलाशय), नदी, वापी (चतुष्कोण बावड़ी), पुष्करिणी (गोल बावड़ी अथवा कमलों युक्त बावड़ी), दीर्घिका (हौज अथवा लम्बी बावड़ी), गुञ्जालिका (टेढ़ी बावड़ी), सरोवर, सरपंक्ति (सरोवर श्रेणी), सरसरपंक्ति (एक तालावसे दूसरे तालावमें पानी जानेका नाला), बिलपंक्ति (बिलश्रेणी) परिगृहीत किये हैं। आराम (दम्पति आदिके क्रीड़ा करनेका स्थान—माधवी लता मण्डप), उद्यान (सार्वजनिक बगीचा), कानन (गांवके पासका वन), वन (गांव से दूरके वन), वनखण्ड (जहां एक जातिके वृक्ष हों ऐसे वन), वनराजि (वृक्षोंकी पंक्ति), ये सब परिगृहीत किये हैं। देवकुल (मन्दिर), आश्रम (तापसादिका आश्रम), प्रपा (प्याऊ), स्तूंभ (खम्भा), खाई (ऊपर चौड़ी और नीचे संकड़ी खोदी हुई खाई), परिखा (ऊपर और नीचे समान खोदी हुई खाई) ये सब परिगृहीत किए हैं। प्राकार (किला), अट्टालक (किले पर बना हुआ एक प्रकारका मकान अथवा झरोखा), चरिका (घर और किलेके बीचमें हाथी आदिके जानेका मार्ग), द्वार (खिड़की) और गोपुर (नगरका दरवाजा) ये सब परिगृहीत किये हैं। प्रासाद (राज-भवन), घर (सामान्य घर), सरण (झोंपड़ा), लयन (गुहागृह—पर्वत खोद कर बनाया हुआ घर), आपण (दूकान) ये सब परिगृहीत किये हैं। शृंगाटक (सिंघाड़े के आकारका मार्ग—त्रिकोण मार्ग), त्रिक (जहां तीन मार्ग मिलते हैं ऐसा स्थान), चतुष्क (जहां चार मार्ग मिलते हैं ऐसा स्थान), चत्वर (जहां सब मार्ग मिलते हैं ऐसा स्थान अर्थात् चौक), चतुर्मुख (चार दरवाजे वाला मकान), महापथ (महामार्ग—राजमार्ग), ये सब परिगृहीत किये हैं। शकट (गाड़ी), रथ, यान (सवारी), युग्य (जम्पान—दो हाथ प्रमाण एक प्रकार की पालकी अथवा रिक्शागाड़ी), गिल्ली (अम्बाड़ी), थिल्ली (घोड़े का पलान), शिविका (पालकी या डोली), स्यन्दमानिका (म्याना सुख पालकी) ये सब परिगृहीत किये हैं। लोही (लोहेका एक बर्तन विशेष), लोहकटाह (लोहे की कड़ाही), कडुच्छक (कड़छी), ये सब परिगृहीत किये हैं। भवन परिगृहीत किये हैं। देव, देवी, मनुष्य, मनुष्यिनी (स्त्री), तिर्यंचयोनिक, तिर्यञ्चिनी, आसन, शयन, खण्ड (टकड़ा), भाण्ड (बर्तन), सचित्त, अचित्त और मिश्र द्रव्य

परिगृहीत किये हैं। इस कारणसे पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीव आरंभ और परिग्रह सहित हैं। किन्तु अनारंभी और अपरिग्रही नहीं हैं। जिस प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवोंके विषयमें कहा, उसी प्रकार मनुष्योंके लिए भी कहना चाहिए। जिस प्रकार भवनपति देवोंके विषयमें कहा, उसी प्रकार वाण-व्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देवोंके विषयमें भी कहना चाहिए ॥२१८॥

पांच हेतु कहे गये हैं। यथा—हेतुको जानता है, हेतुको देखता है, हेतुको श्रद्धता है, हेतुको अच्छी तरह प्राप्त करता है और हेतुयुक्त छद्मस्थ मरण मरता है। पांच हेतु कहे गये हैं। यथा—हेतु से जानता है, यावत् हेतु से छद्मस्थ मरण मरता है। पांच हेतु······—हेतु को नहीं जानता है, यावत् हेतुयुक्त अज्ञान मरण मरता है। पांच हेतु कहे गए हैं यथा—हेतुसे नहीं जानता है, यावत् हेतुसे अज्ञान मरण मरता है। पांच अहेतु कहे गये हैं। यथा—अहेतुको जानता है, यावत् अहेतुयुक्त केवलिमरण मरता है। पांच अहेतु कहे गए हैं। यथा—अहेतुसे जानता है यावत् अहेतुसे केवलिमरण मरता है। पांच अहेतु······ यथा—अहेतुको नहीं जानता है, यावत् अहेतुयुक्त छद्मस्थमरण मरता है। पाँच अहेतु कहे गए हैं। यथा—अहेतुसे नहीं जानता है, यावत् अहेतुसे छद्मस्थमरण मरता है। हे भगवन् यह इसी प्रकार है······॥२१६॥

॥ पांचवें शतक का सातवां उद्देशक समाप्त ॥

शतक ५ उद्देशक ८

उस काल उस समयमें श्रमण भगवान् महावीर स्वामी पधारे। परिषद् दर्शनके लिए गई, यावत् धर्मोपदेश श्रवण कर वापिस लौट गई। उस काल उस समयमें श्रमण भगवान् महावीर स्वामीके अन्तेवासी नारदपुत्र नामके अनगार थे। वे प्रकृतिसे भद्र थे, यावत् विचरते थे। उस काल उस समयमें श्रमण भगवान् महा-वीर स्वामीके अन्तेवासी निर्ग्रंथीपुत्र नामक अनगार थे। वे प्रकृतिसे भद्र थे यावत् विचरते थे। किसी समय निर्ग्रंथीपुत्र अनगार, नारदपुत्र अनगारके पास आये और निर्ग्रंथीपुत्र ने नारदपुत्र अनगारसे इस प्रकार पूछा—

आर्य! क्या तुम्हारे मतानुसार सब पुद्गल सार्द्ध, समध्य और सप्रदेश हैं? अथवा अनर्द्ध, अमध्य और अप्रदेश हैं? हे 'आर्य'! इस प्रकार से सम्बोधित कर नारदपुत्र अनगार ने निर्ग्रंथीपुत्र अनगारसे इस प्रकार कहा—मेरे मतानुसार सब पुद्गल सार्द्ध, समध्य और सप्रदेश हैं, किन्तु अनर्द्ध, अमध्य और अप्रदेश नहीं हैं। इसके पश्चात् निर्ग्रंथीपुत्र अनगार ने नारदपुत्र अनगारसे इस प्रकार कहा कि आर्य! यदि आपके मतानुसार सब पुद्गल सार्द्ध, समध्य और सप्रदेश

हैं किन्तु अनर्द्ध, अमध्य और अप्रदेश नहीं हैं, तो हे आर्य ! क्या द्रव्यादेश (द्रव्य की अपेक्षा) से सब पुद्‌गल सार्द्ध, समध्य और सप्रदेश हैं ? तथा अनर्द्ध, अमध्य और अप्रदेश नहीं हैं ? हे आर्य ! क्या क्षेत्रादेश, कालादेश और भावादेशकी अपेक्षासे भी सभी पुद्‌गल इसी तरह हैं ? तब नारदपुत्र अनगारने निर्ग्रंथीपुत्र अनगारसे कहा कि आर्य ! मेरी धारणानुसार द्रव्यादेशसे भी सब पुद्‌गल सार्द्ध, समध्य और सप्रदेश हैं, किन्तु अनर्द्ध, अमध्य और अप्रदेश नहीं हैं। इसी प्रकार क्षेत्रादेश, कालादेश और भावादेशकी अपेक्षासे भी हैं।

तब निर्ग्रंथीपुत्र अनगारने नारदपुत्र अनगारसे इस प्रकार कहा कि हे आर्य ! यदि द्रव्यादेशसे सभी पुद्‌गल सार्द्ध, समध्य और सप्रदेश हैं, किन्तु अनर्द्ध, अमध्य और अप्रदेश नहीं हैं, तब तो आपके मतानुसार परमाणु पुद्‌गल भी सार्द्ध, समध्य और सप्रदेश होना चाहिए, किन्तु अनर्द्ध, अमध्य और अप्रदेश नहीं होना चाहिए। हे आर्य ! यदि क्षेत्रादेशसे भी सभी पुद्‌गल सार्द्ध, समध्य और सप्रदेश हैं, तो एक प्रदेशावगाढ़ पुद्‌गल भी सार्द्ध, समध्य और सप्रदेश होना चाहिए। आर्य ! यदि कालादेशसे भी सभी पुद्‌गल सार्द्ध, समध्य और सप्रदेश हैं, तो एक समयकी स्थिति वाला पुद्‌गल भी सार्द्ध, समध्य और सप्रदेश होना चाहिए। आर्य ! यदि भावादेशसे भी सभी पुद्‌गल सार्द्ध, समध्य और सप्रदेश हैं, तो एक गुण वाला पुद्‌गल भी सार्द्ध, समध्य और सप्रदेश होना चाहिए। यदि आपके मतानुसार ऐसा न हो, तो जो आप यह कहते हैं कि द्रव्यादेश, क्षेत्रादेश, कालादेश और भावादेशसे भी सभी पुद्‌गल सार्द्ध, समध्य और सप्रदेश हैं, किन्तु अनर्द्ध, अमध्य और अप्रदेश नहीं हैं, तो आपका कथन मिथ्या ठहरेगा ?
इसके पश्चात् नारदपुत्र अनगारने निर्ग्रंथीपुत्र अनगारसे इस प्रकार कहा कि— देवानुप्रिय ! मैं इस अर्थ को नहीं जानता हूं और न देखता हूं। देवानुप्रिय ! यदि इस अर्थको कहनेमें आपको ग्लानि (कष्ट) नहीं हो, तो मैं आप देवानुप्रिय के पास इस अर्थ को सुनकर और जानकर अवधारण करना चाहता हूं ? इसके बाद निर्ग्रंथीपुत्र अनगार ने नारदपुत्र अनगार से इस प्रकार कहा कि—आर्य ! मेरी धारणानुसार द्रव्यादेशसे भी सभी पुद्‌गल सप्रदेश भी हैं और अप्रदेश भी हैं। वे पुद्‌गल अनन्त हैं। क्षेत्रादेश, कालादेश और भावादेश से भी इसी प्रकार जानना चाहिए। द्रव्यादेशसे जो पुद्‌गल अप्रदेश हैं, वे क्षेत्रादेशसे नियमा (निश्चित रूपसे) अप्रदेश हैं। कालादेश से कदाचित् सप्रदेश और कदाचित् अप्रदेश होते हैं और भावादेशसे भी कदाचित् सप्रदेश और कदाचित् अप्रदेश होते हैं। क्षेत्रादेशसे जो पुद्‌गल अप्रदेश होते हैं वे द्रव्यादेशसे कदाचित् सप्रदेश और कदाचित् अप्रदेश होते हैं। कालादेश से और भावादेशसे भी भजना (विकल्प) से जानना चाहिए। जिस प्रकार अप्रदेशी पुद्‌गल के विषय में 'क्षेत्रादेश' का कथन किया है, उसी

प्रकार कालादेश और भावादेश का भी कथन करना चाहिए। जो पुद्गल द्रव्यादेशसे सप्रदेश होता है, वह क्षेत्रादेशसे कदाचित् सप्रदेश और कदाचित् अप्रदेश होता है। इसी तरह कालादेश और भावादेश से भी जान लेना चाहिए। जो पुद्गल क्षेत्रादेश से सप्रदेश होता है, वह द्रव्यादेश से नियमा सप्रदेश होता है। कालादेशसे और भावादेशसे भजना (विकल्प) से होता है। जिस प्रकार सप्रदेशी पुद्गल के विषय में द्रव्यादेश का कथन किया, उसी प्रकार कालादेश और भावादेश का भी कथन करना चाहिए।

भगवन्! द्रव्यादेशसे, क्षेत्रादेशसे, कालादेशसे और भावादेशसे सप्रदेश पुद्गलोंमें कौन किससे कम, ज्यादा, तुल्य और विशेषाधिक हैं? नारदपुत्र! भावादेशसे अप्रदेश पुद्गल सबसे थोड़े हैं। उनसे कालादेश की अपेक्षा अप्रदेश पुद्गल असंख्य गुणा हैं। उनसे द्रव्यादेश की अपेक्षा अप्रदेश पुद्गल असंख्य गुणा हैं। उनसे क्षेत्रादेश की अपेक्षा अप्रदेश पुद्गल असंख्यगुणा हैं। उनसे क्षेत्रादेशसे सप्रदेश पुद्गल असंख्यगुणा हैं। उनसे द्रव्यादेश की अपेक्षा सप्रदेश पुद्गल विशेषाधिक हैं। उनसे कालादेश की अपेक्षा सप्रदेश पुद्गल विशेषाधिक हैं। और उनसे भावादेश की अपेक्षा सप्रदेश पुद्गल विशेषाधिक हैं। इसके अनन्तर नारदपुत्र अनगार ने निर्ग्रंथीपुत्र अनगार को वन्दना नमस्कार किया। वन्दना नमस्कार करके अपनी कही हुई मिथ्या बात के लिये उनसे विनयपूर्वक बारंबार क्षमायाचना की। क्षमायाचना करके संयम और तप द्वारा अपनी आत्माको भावित करते हुए यावत् विचरने लगे ॥२२०॥

भगवान् गौतम स्वामीने श्रमण भगवान् महावीर स्वामीसे इस प्रकार पूछा—भगवन्! क्या जीव बढ़ते हैं? घटते हैं? या अवस्थित रहते हैं? गौतम! जीव बढ़ते नहीं हैं, घटते नहीं हैं, किन्तु अवस्थित रहते हैं। भगवन्! क्या नैरयिक जीव बढ़ते हैं? घटते हैं? या अवस्थित रहते हैं? गौतम! नैरयिक बढ़ते भी हैं, घटते भी हैं और अवस्थित भी रहते हैं। जिस प्रकार नैरयिकोंके विषयमें कहा है उसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त चौबीसों दण्डकोंके जीवों के लिए कहना चाहिए। भगवन्! क्या सिद्ध भगवान् बढ़ते हैं, घटते हैं या अवस्थित रहते हैं? गौतम! सिद्ध भगवान् बढ़ते हैं, घटते नहीं, अवस्थित भी रहते हैं।

भगवन्! जीव कितने काल तक अवस्थित रहते हैं? गौतम! सर्वाद्धा अर्थात् सब काल जीव अवस्थित रहते हैं। भगवन्! नैरयिक कितने काल तक बढ़ते हैं? गौतम! नैरयिक जीव जघन्य एक समय और उत्कृष्ट आवलिकाके असंख्य भाग तक बढ़ते हैं। जिस प्रकार बढ़ने का काल कहा है उसी प्रकार घटने का काल भी कहना चाहिए। भगवन्! नैरयिक जीव कितने काल तक

अवस्थित रहते हैं ? गौतम नैरयिक जीव जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट चौवीस मुहूर्त्त तक अवस्थित रहते हैं। इसी प्रकार सातों पृथ्वियों में बढ़ते हैं, घटते हैं। किन्तु अवस्थितों में इस प्रकार भिन्नता है—रत्नप्रभा पृथ्वी में ४८ मुहूर्त्त, शर्कराप्रभा में चौदह अहोरात्रि, वालुकाप्रभामें एक मास, पंकप्रभामें दो मास, धूमप्रभामें चार मास, तमःप्रभामें आठ मास और तमस्तमःप्रभा में बारह मास का अवस्थान काल है। जिस प्रकार नैरयिक जीवोंके विषयमें कहा है उसी प्रकार असुरकुमार बढ़ते हैं, घटते हैं। जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अड़तालीस मुहूर्त्त तक अवस्थित रहते हैं। इसी प्रकार दस ही प्रकार के भवनपति देवोंके विषयमें कहना चाहिए।

एकेंद्रिय जीव बढ़ते भी हैं, घटते भी हैं, और अवस्थित भी रहते हैं। एकेंद्रिय जीवों में हानि-वृद्धि और अवस्थान, इन तीनों का काल जघन्य एक समय और उत्कृष्ट आवलिका का असंख्य भाग समझना चाहिए। बेइन्द्रिय और तेइन्द्रिय भी इसी प्रकार बढ़ते हैं और घटते हैं। अवस्थान में विशेषता इस प्रकार है—जघन्य एक समय और उत्कृष्ट दो अन्तर्मुहूर्त्त तक अवस्थित रहते हैं। इस प्रकार चतुरिन्द्रिय जीवों तक कहना चाहिए। बाकीके जीव कितने काल तक बढ़ते हैं और घटते हैं ? यह पहले की भांति कहना चाहिए। किन्तु 'अवस्थान' के विषय में अन्तर है वह इस प्रकार है—सम्मूच्छिम पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों का अवस्थान काल दो अन्तर्मुहूर्त्त है। गर्भज पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवों का अवस्थान काल चौबीस मुहूर्त्त है। सम्मूच्छिम मनुष्यों का अवस्थान काल अड़तालीस मुहूर्त्त है। गर्भज मनुष्यों का अवस्थान काल चौवीस मुहूर्त है। वाणव्यन्तर, ज्योतिषी, सौधर्म देवलोक और ईशान देवलोक में अवस्थान काल अड़तालीस मुहूर्त्त है। सनत्कुमार देवलोक में अठारह रात्रिदिवस और चालीस मुहूर्त्त अवस्थान काल है। माहेन्द्र देवलोकमें चौवीस रात्रिदिवस और बीस मुहूर्त्त, ब्रह्मलोकमें पैंतालीस रात्रिदिवस, लान्तक देवलोक में ९० रात्रिदिवस, महाशुक्रमें एक सौ साठ रात्रिदिवस, सहस्रार देवलोकमें दो सौ रात्रिदिवस, आणत और प्राणत देवलोक में संख्येय मास, आरण और अच्युत देवलोक में संख्येय वर्षोंका अवस्थान काल है। इसी तरह नवग्रैवेयकके विषय में जान लेना चाहिए। विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित देवों का अवस्थान काल असंख्य हजार वर्षो का है। सर्वार्थसिद्ध विमानवासी देवोंका अवस्थान पल्योपमके संख्यातवें भाग है। तात्पर्य यह है कि जघन्य एक समय और उत्कृष्ट आवलिका के असंख्य भाग तक ये बढ़ते हैं और घटते हैं तथा इनका अवस्थान काल तो ऊपर बतला दिया गया है।

हे भगवन्! सिद्ध भगवान् कितने समय तक बढ़ते हैं ? हे गौतम ! जघन्य एक समय और उत्कृष्ट आठ समय तक सिद्ध भगवान् बढ़ते हैं। भगवन्!

सिद्ध भगवान् कितने काल तक अवस्थित रहते हैं ? गौतम ! जघन्य एक समय और उत्कृष्ट छह मास तक सिद्ध भगवान् अवस्थित रहते हैं।

भगवन् ! क्या जीव सोपचय (उपचय सहित) हैं ? सापचय (अपचय सहित) हैं ? सोपचय सापचय (उपचय और अपचय सहित) हैं या निरुपचय, निरपचय (उपचय और अपचय रहित) हैं ? गौतम ! जीव सोपचय नहीं हैं, सोपचय सापचय नहीं हैं, परन्तु निरुपचय, निरपचय हैं। एकेंद्रिय जीवोंमें तीसरा पद (विकल्प) कहना चाहिये। अर्थात् एकेंद्रिय जीव सोपचयसापचय हैं। शेष सब जीवों में चारों पद कहने चाहियें। भगवन् ! क्या सिद्ध भगवान् सोपचय हैं सापचय हैं, सोपचय सापचय हैं, या निरुपचय निरपचय हैं ? गौतम ! सिद्ध भगवान् सोपचय हैं, सापचय नहीं हैं, सोपचयसापचय भी नहीं हैं, निरुपचयनिरपचय हैं।

भगवन् ! जीव कितने काल तक निरुपचय निरपचय रहते हैं ? गौतम ! सभी काल तक जीव निरुपचय निरपचय रहते हैं। भगवन् ! नैरयिक कितने काल तक सोपचय रहते हैं ? गौतम ! जघन्य एक समय और उत्कृष्ट आवलिका के असंख्य भाग तक नैरयिक सोपचय रहते हैं। भगवन् ! नैरयिक कितने काल तक सापचय रहते हैं ? गौतम ! जितना सोपचय का काल कहा उतना ही सापचय का कहना चाहिये। भगवन् ! नैरयिक कितने काल तक सोपचय-सापचय रहते हैं ? गौतम ! सोपचय का जो काल कहा गया है उतना ही सोपचय-सापचय का कहना चाहिये। भगवन् ! नैरयिक जीव कितने काल तक निरुपचय निरपचय रहते हैं ? गौतम ! जघन्य एक समय और उत्कृष्ट बारह मुहूर्त तक नैरयिक निरुपचय निरपचय रहते हैं। सभी एकेंद्रिय जीव सभी काल सोपचय सापचय रहते हैं। बाकी सभी जीवों में सोपचय, सापचय और सोपचय-सापचय हैं। इन सब का काल जघन्य एक समय और उत्कृष्ट आवलिका का असंख्यातवां भाग है। अवस्थितों (निरुपचय निरपचय) में व्युत्क्रान्ति काल (विरहकाल) के अनुसार कहना चाहिये।

भगवन् ! सिद्ध भगवान् कितने काल तक सोपचय रहते हैं ? गौतम ! जघन्य एक समय और उत्कृष्ट आठ समय तक सिद्ध भगवान् सोपचय रहते हैं। भगवन् ! सिद्ध भगवान् कितने काल तक निरुपचय निरपचय रहते हैं ? गौतम ! जघन्य एक समय और उत्कृष्ट छह मास तक सिद्ध भगवान् निरुपचय निरपचय रहते हैं।···भगवन् ! इसी प्रकार है··· ॥२२१॥

॥ पांचवें शतक का आठवां उद्देशक समाप्त ॥

शतक ५ उद्देशक ९

उस काल उस समय में यावत् गौतम स्वामीने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से इस प्रकार पूछा कि–हे भगवन् ! यह राजगृह नगर क्या कहलाता है ? क्या यह राजगृह नगर पृथ्वी कहलाता है ? जल कहलाता है ? यावत् वनस्पति कहलाता है ? जिस प्रकार एजनोद्देशक में पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चों में परिग्रहकी वक्तव्यता कही है उसी प्रकार यहां भी कहनी चाहिए । अर्थात् क्या राजगृह नगर कूट कहलाता है, शैल कहलाता है ? यावत् सचित्त अचित्त मिश्र द्रव्य राजगृह नगर कहलाता है ? गौतम ! पृथ्वी भी राजगृह नगर कहलाता है, यावत् सचित्त अचित्त मिश्र द्रव्य भी राजगृह नगर कहलाता है ? भगवन् ! इसका क्या कारण है ? गौतम ! पृथ्वी जीव है और अजीव भी है, इसलिए वह राजगृह नगर कहलाती है यावत् सचित्त, अचित्त और मिश्र द्रव्य भी जीव हैं और अजीव हैं, इसलिए वे द्रव्य राजगृह नगर कहलाते हैं । इसलिए पृथ्वी आदि को राजगृह नगर कहते हैं ॥२२२॥

भगवन् ! क्या दिनमें उद्योत और रात्रि में अन्धकार होता है । हाँ, गौतम ! दिन में···होता है । भगवन् ! इसका क्या कारण है ? गौतम ! दिन में शुभ पुद्गल होते हैं, शुभ पुद्गल परिणाम होते हैं । रात्रि में अशुभ पुद्गल होते हैं और अशुभ पुद्गल परिणाम होते हैं । इस कारण से दिनमें उद्योत होता है और रात्रि में अन्धकार होता है ।

भगवन् ! क्या नैरयिक जीवों के प्रकाश होता है या अन्धकार होता है ? गौतम ! नैरयिक जीवों के उद्योत नहीं होता, किन्तु अन्धकार होता है । भगवन् ! इसका क्या कारण है ? गौतम ! नैरयिक जीवों के अशुभ पुद्गल और अशुभ पुद्गल परिणाम होते हैं । इसलिए उनमें उद्योत नहीं, किन्तु अन्धकार होता है ।

भगवन् ! क्या असुरकुमार देवों के उद्योत होता है या अन्धकार होता है ? गौतम ! असुरकुमार देवों के उद्योत है, किन्तु अन्धकार नहीं है । भगवन् ! इसका क्या कारण है ? गौतम ! असुरकुमार देवों के शुभ पुद्गल हैं और शुभ पुद्गल परिणाम हैं, इसलिये उनके उद्योत है, अन्धकार नहीं । इसी प्रकार स्तनितकुमारों तक कहना चाहिये । जिस प्रकार नैरयिक जीवों का कथन किया उसी प्रकार पृथ्वीकायसे लेकर तेइन्द्रिय जीवों तक का कथन करना चाहिये । भगवन् ! चौरिन्द्रिय जीवों के उद्योत है या अन्धकार है ? गौतम ! चौरिन्द्रिय जीवों के उद्योत भी है और अन्धकार भी है । भगवन् ! इसका क्या कारण है ? गौतम ! चौरिन्द्रिय जीवों के शुभ और अशुभ पुद्गल होते हैं तथा शुभ और अशुभ परिणाम होते हैं, इसलिये ऐसा कहा जाता है कि उनमें उद्योत

में संक्षिप्त, ऊपर विशाल, नीचे पल्यङ्काकार, बीचमें उत्तम वज्राकार, ऊपर ऊर्ध्वमृदंगाकार, लोक कहा है। उस प्रकारके शाश्वत, अनादि, अनन्त, परित्त, परिवृत, नीचे विस्तीर्ण, मध्य में संक्षिप्त, ऊपर विशाल, नीचे पल्यङ्काकार स्थित, बीचमें उत्तम वज्राकार और ऊपर ऊर्ध्वमृदंगाकारसंस्थित लोकमें अनन्त जीवघन उत्पन्न हो होकर नष्ट होते हैं, और परित (नियत) असंख्य जीवघन भी उत्पन्न हो होकर नष्ट होते हैं। यह लोक भूत है, उत्पन्न है, विगत है, परिणत है। क्योंकि वह जीवों द्वारा लोकित (निश्चित) होता है, विशेष रूपसे लोकित होता है। जो लोकित (ज्ञात) हो, क्या वह लोक कहलाता है ? हाँ, भगवन् ! वह लोक कहलाता है, तो इस कारण आर्यो ! इस प्रकार कहा जाता है, यावत् असंख्य लोक में इत्यादि पूर्ववत् कहना चाहिये। तब से पार्श्वापत्य स्थविर भगवंत श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को सर्वज्ञ, सर्वदर्शी जानने लगे।

इसके पश्चात् उन स्थविर भगवंतोंने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना नमस्कार किया, वन्दना नमस्कार कर वे इस प्रकार बोले—भगवन् ! हम आपके पास चतुर्याम धर्मसे सप्रतिक्रमण, पंच महाव्रत रूप धर्मको स्वीकार कर विचरना चाहते हैं। भगवान् ने फरमाया—हे देवानुप्रियो ! जिस प्रकार आपको सुख हो वैसा करो, किन्तु प्रतिबन्ध मत करो। इसके पश्चात् वे पार्श्वापत्य स्थविर भगवन्त यावत् सर्व दुःखों से प्रहीण (मुक्त) हुए और कितने ही देवलोकों में उत्पन्न हुए ॥२२५॥

भगवन् ! कितने प्रकारके देवलोक कहे गये हैं ? गौतम ! चार प्रकारके देवलोक कहे गये हैं। यथा—भवनवासी, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक। इनमें भवनवासी दस प्रकार के हैं। वाणव्यन्तर आठ प्रकारके हैं। ज्योतिषी पांच प्रकारके हैं और वैमानिक दो प्रकारके हैं। इस उद्देशक की संग्रह गाथा का अर्थ इस प्रकार है— राजगृह नगर क्या है ? दिन में उद्योत और रात्रिमें अन्धकार होने का क्या कारण है ? समय आदि कालका ज्ञान किन जीवों को होता है और किन जीवों को नहीं होता। रात्रि दिवसके परिमाणके विषयमें श्री पार्श्वापत्य स्थविर भगवंतोंका प्रश्न। देवलोक विषयक प्रश्न। इतने विषय इस नौवें उद्देशक में कहे गये हैं। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ……॥२२६॥

॥ पांचवें शतक का नौवां उद्देशक समाप्त ॥

—०—

शतक ५ उद्देशक १०

उस काल उस समय में चम्पा नामक नगरी थी। जैसे प्रथम उद्देशक कहा है, उसी प्रकार यह उद्देशक भी कहना चाहिए। विशेषता यह है कि यहां 'चन्द्रमा' कहना चाहिए।।२२७।।

।। पांचवें शतक का दसवां उद्देशक समाप्त ।।

।। पांचवां शतक सम्पूर्ण ।।

—०—

शतक ६ उद्देशक १

गाथा—१ वेदना, २ आहार, ३ महाआस्रव, ४ सप्रदेश, ५ तमस्काय, ६ भव्य, ७ शाली, ८ पृथ्वी, ९ कर्म और १० अन्ययूथिक वक्तव्यता। छठे शतक में ये दस उद्देशक हैं।

भगवन् ! जो महावेदना वाला है वह महानिर्जरा वाला है ? और जो महानिर्जरा वाला है वह महावेदना वाला है ? तथा महावेदना वाला और अल्प वेदनावाला इन दोनों में वह जीव उत्तम है जो कि प्रशस्त निर्जरा वाला है ? हां, गौतम ! जैसा ऊपर कहा है वैसा ही है। भगवन् ! क्या छठी और सातवीं पृथ्वीके नैरयिक महावेदना वाले हैं ? हाँ, गौतम ! वे महावेदना वाले हैं। भगवन् ! वे छठी और सातवीं पृथ्वीमें रहने वाले नैरयिक क्या श्रमण निर्ग्रन्थोंकी अपेक्षा महानिर्जरा वाले हैं ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है अर्थात् छठी और सातवीं नरक में रहने वाले नैरयिक श्रमण निर्ग्रन्थों की अपेक्षा महानिर्जरा वाले नहीं हैं।

भगवन् ! तो यह बात किस प्रकार कही जाती है कि जो महावेदना वाला है वह महानिर्जरा वाला है, यावत् प्रशस्त निर्जरा वाला है ? गौतम ! जैसे दो वस्त्र हैं। उनमें से एक कर्दम (कीचड़) के रंग से रंगा हुआ है और दूसरा वस्त्र खञ्जन अथवा गाड़ीके पहिये के कीटके रंगसे रंगा हुआ है। गौतम ! उन दोनों वस्त्रों में से कौनसा वस्त्र दुर्धौततर (मुश्किल से धोने योग्य), दुर्वाम्यतर (जिसके काले धब्बे मुश्किल से उतारे जा सकें) और दुष्प्रतिकर्मतर (जिस पर मुश्किल से चमक आ सके तथा चित्रादि बनाये जा सकें) है, और कौनसा वस्त्र सुधौततर, सुवाम्यतर और सुप्रतिकर्मतर है ? (गौतम स्वामी ने उत्तर दिया) हे भगवन् ! उन दोनों वस्त्रों में से जो कर्दम के रंग से रंगा हुआ है वह दुर्धौततर, दुर्वाम्यतर और दुष्प्रतिकर्मतर है। भगवान् ने फरमाया—हे गौतम ! इसी तरह नैरयिकों के कर्म गाढ़ीकृत अर्थात् गाढ़ बंधे हुए, चिक्कणीकृत (चिकने किये हुए),

में संक्षिप्त, ऊपर विशाल, नीचे पल्यङ्काकार, बीचमें उत्तम वज्राकार, ऊपर ऊर्ध्वमृदंगाकार, लोक कहा है। उस प्रकारके शाश्वत, अनादि, अनन्त, परित्त, परिवृत, नीचे विस्तीर्ण, मध्य में संक्षिप्त, ऊपर विशाल, नीचे पल्यङ्काकार स्थित, बीचमें उत्तम वज्राकार और ऊपर ऊर्ध्वमृदंगाकारसंस्थित लोकमें अनन्त जीवघन उत्पन्न हो होकर नष्ट होते हैं, और परित्त (नियत) असंख्य जीवघन भी उत्पन्न हो होकर नष्ट होते हैं। यह लोक भूत है, उत्पन्न है, विगत है, परिणत है। क्योंकि वह जीवों द्वारा लोकित (निश्चित) होता है, विशेष रूपसे लोकित होता है। जो लोकित (ज्ञात) हो, क्या वह लोक कहलाता है ? हाँ, भगवन् ! वह लोक कहलाता है, तो इस कारण आर्यो ! इस प्रकार कहा जाता है, यावत् असंख्य लोक में इत्यादि पूर्ववत् कहना चाहिये। तब से पाश्वपित्य स्थविर भगवंत श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को सर्वज्ञ, सर्वदर्शी जाननें लगे।

इसके पश्चात् उन स्थविर भगवंतोंनें श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना नमस्कार किया, वन्दना नमस्कार कर वे इस प्रकार बोले—भगवन् ! हम आपके पास चतुर्याम धर्मसे सप्रतिक्रमण, पंच महाव्रत रूप धर्मको स्वीकार कर विचरना चाहते हैं। भगवान् नें फरमाया—हे देवानुप्रियो ! जिस प्रकार आपको सुख हो वैसा करो, किन्तु प्रतिबन्ध मत करो। इसके पश्चात् वे पार्श्वापत्य स्थविर भगवन्त यावत् सर्व दुःखों से प्रहीण (मुक्त) हुए और कितने ही देवलोकों में उत्पन्न हुए ॥२२५॥

भगवन् ! कितनें प्रकारके देवलोक कहे गये हैं ? गौतम ! चार प्रकारके देवलोक कहे गये हैं। यथा—भवनवासी, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक। इनमें भवनवासी दस प्रकार के हैं। वाणव्यन्तर आठ प्रकारके हैं। ज्योतिषी पांच प्रकारके हैं और वैमानिक दो प्रकारके हैं। इस उद्देशक की संग्रह गाथा का अर्थ इस प्रकार है—राजगृह नगर क्या है ? दिन में उद्योत और रात्रिमें अन्धकार होनें का क्या कारण है ? समय आदि कालका ज्ञान किन जीवों को होता है और किन जीवों को नहीं होता। रात्रि दिवसके परिमाणके विषयमें श्री पार्श्वापत्य स्थविर भगवंतोंका प्रश्न। देवलोक विषयक प्रश्न। इतने विषय इस नौवें उद्देशक में कहे गये हैं। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ......॥२२६॥

॥ पांचवें शतक का नौवां उद्देशक समाप्त ॥

—०—

शतक ५ उद्देशक १०

उस काल उस समय में चम्पा नामक नगरी थी। जैसे प्रथम उद्देशक कहा है, उसी प्रकार यह उद्देशक भी कहना चाहिए। विशेषता यह है कि यहां 'चन्द्रमा' कहना चाहिए।।२२७।।

।। पांचवें शतक का दसवां उद्देशक समाप्त ।।

।। पांचवां शतक सम्पूर्ण ।।

—o—

शतक ६ उद्देशक १

गाथा—१ वेदना, २ आहार, ३ महाआस्रव, ४ सप्रदेश, ५ तमस्काय, ६ भव्य, ७ शाली, ८ पृथ्वी, ९ कर्म और १० अन्ययूथिक वक्तव्यता। छठे शतक में ये दस उद्देशक हैं।

भगवन् ! जो महावेदना वाला है वह महानिर्जरा वाला है ? और जो महानिर्जरा वाला है वह महावेदना वाला है ? तथा महावेदना वाला और अल्प वेदनावाला इन दोनों में वह जीव उत्तम है जो कि प्रशस्त निर्जरा वाला है ? हां, गौतम ! जैसा ऊपर कहा है वैसा ही है। भगवन् ! क्या छठी और सातवीं पृथ्वीके नैरयिक महावेदना वाले हैं ? हाँ, गौतम ! वे महावेदना वाले हैं। भगवन् ! वे छठी और सातवीं पृथ्वीमें रहने वाले नैरयिक क्या श्रमण निर्ग्रन्थोंकी अपेक्षा महानिर्जरा वाले हैं ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है अर्थात् छठी और सातवीं नरक में रहने वाले नैरयिक श्रमण निर्ग्रन्थों की अपेक्षा महानिर्जरा वाले नहीं हैं।

भगवन् ! तो यह बात किस प्रकार कही जाती है कि जो महावेदना वाला है वह महानिर्जरा वाला है, यावत् प्रशस्त निर्जरा वाला है ? गौतम ! जैसे दो वस्त्र हैं। उनमें से एक कर्दम (कीचड़) के रंग से रंगा हुआ है और दूसरा वस्त्र खञ्जन अथवा गाड़ीके पहिये के कीटके रंगसे रंगा हुआ है। गौतम ! उन दोनों वस्त्रों में से कौनसा वस्त्र दुर्धौततर (मुश्किल से धोने योग्य), दुर्वाम्यतर (जिसके काले धब्बे मुश्किल से उतारे जा सकें) और दुष्प्रतिकर्मतर (जिस पर मुश्किल से चमक आ सके तथा चित्रादि बनाये जा सकें) है, और कौनसा वस्त्र सुधौततर, सुवाम्यतर और सुप्रतिकर्मतर है ? (गौतम स्वामी ने उत्तर दिया) हे भगवन् ! उन दोनों वस्त्रों में से जो कर्दम के रंग से रंगा हुआ है वह दुर्धौततर, दुर्वाम्यतर और दुष्प्रतिकर्मतर है। भगवान् ने फरमाया—हे गौतम ! इसी तरह नैरयिकों के कर्म गाढ़ीकृत अर्थात् गाढ़ बंधे हुए, चिक्कणीकृत (चिकने किये हुए),

श्लिष्ट किए हुए (निधत्त किये हुए) और खिलीभूत (निकाचित किये हुए) हैं। इसलिये वे संप्रगाढ़ वेदना को वेदते हुए भी महानिर्जरा वाले नहीं हैं और महापर्यवसान वाले भी नहीं हैं।

जैसे कोई पुरुष जोरदार शब्दोंके साथ महाघोषके साथ निरन्तर चोट मारता हुआ, एरणको कूटता हुआ भी उस एरणके स्थूल पुद्गलोंको परिशटित (नष्ट) करनेमें समर्थ नहीं होता। हे गौतम ! इसी प्रकार नैरयिक जीवोंके पाप-कर्म गाढ़ किये हुए हैं, यावत् इसलिए वे महानिर्जरा और महापर्यवसान वाले नहीं हैं। (गौतम स्वामी ने पूर्वोक्त प्रश्नका उत्तर दिया) 'भगवन् ! उन दो वस्त्रों में से जो वस्त्र खञ्जनके रंगसे रंगा हुआ है वह सुधौततर, सुवाम्यतर और सुप्रतिकर्मतर है।

(भगवान् ने फरमाया) गौतम ! इसी प्रकार श्रमण निर्ग्रन्थोंके यथा-बादर (स्थूलतर स्कन्ध रूप) कर्म शिथिलीकृत (मन्द विपाक वाले), निष्ठित-कृत (सत्ता रहित किये हुए), विपरिणामित (विपरिणाम वाले) होते हैं। इस लिए वे शीघ्र ही विध्वस्त हो जाते हैं। जिस किसी वेदनाको वेदते हुए श्रमण निर्ग्रन्थ महानिर्जरा और महापर्यवसान वाले होते हैं।

गौतम ! जैसे कोई पुरुष सूखे घासके पूले को धधकती हुई अग्नि में डाले, तो क्या वह शीघ्र ही जल जाता है ? (गौतम स्वामी ने उत्तर दिया) 'हां, भगवन् ! वह तत्क्षण जल जाता है।' (भगवान्......) हे गौतम ! इसी तरह श्रमण निर्ग्रन्थोंके यथा — बादर (स्थूलतर स्कन्ध रूप) कर्म शीघ्र विध्वस्त हो जाते हैं। इसलिए श्रमण निर्ग्रन्थ महानिर्जरा और महापर्य-वसान वाले होते हैं। अथवा जैसे कोई पुरुष अत्यन्त तपे हुए लोहे के गोले पर पानीकी बिन्दु डाले, तो वह यावत् तत्क्षण विनष्ट हो जाती है। इसी प्रकार हे गौतम ! श्रमण निर्ग्रन्थोंके कर्म शीघ्र विध्वस्त हो जाते हैं। इसलिये ऐसा कहा गया है—जो महावेदना वाला होता है वह महानिर्जरा वाला होता है। यावत् प्रशस्त निर्जरा वाला होता है ॥२२८॥

हे भगवन् ! करण कितने प्रकारके कहे गये हैं ? गौतम ! करण चार प्रकारके कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं—मन-करण, वचन-करण, काय-करण और कर्म-करण। भगवन् ! नैरयिक जीवोंके कितने प्रकारके करण कहे गये हैं ? गौतम ! नैरयिक जीवोंके चार प्रकारके करण कहे गये हैं। यथा—मनकरण, वचनकरण, कायकरण और कर्मकरण। सभी पञ्चेन्द्रिय जीवोंके ये चार प्रकारके करण होते हैं। एकेन्द्रिय जीवोंके दो प्रकारके करण होते हैं। यथा—कायकरण और कर्मकरण। विकलेन्द्रिय जीवोंके तीन प्रकारके करण होते हैं। यथा—वचन-करण, कायकरण और कर्मकरण।

भगवन् ! नैरयिक जीव करणसे असाता वेदना वेदते हैं या अकरणसे ? गौतम नै० जीव करणसे असातावेदना वेदते हैं, परन्तु अकरण से नहीं वेदते। भगवन् ! इसका क्या कारण है ? गौतम ! नैरयिक जीवोंके चार प्रकारके करण कहे गये हैं। यथा—मनकरण, वचनकरण, कायकरण और कर्मकरण। ये चार प्रकारके अशुभ करण होनेसे नैरयिक जीव करण द्वारा असाता वेदना वेदते हैं, परन्तु अकरण द्वारा असाता वेदना नहीं वेदते।

भगवन् ! क्या असुरकुमारदेव करण से साता वेदना वेदते हैं, या अकरण से ? गौतम ! वे करण से सातावेदना वेदते हैं, अकरण से नहीं। भगवन् इसका क्या कारण है ? गौतम ! असुरकुमारोंके चार प्रकारके करण होते हैं। यथा—मनकरण, वचनकरण, कायकरण और कर्मकरण। इनके शुभ करण होने से असुरकुमार देव करण द्वारा साता वेदना वेदते हैं, परन्तु अकरण द्वारा नहीं वेदते। इस प्रकार स्तनितकुमारों तक समझ लेना चाहिये।

भगवन् ! क्या पृथ्वीकायिक जीव करण द्वारा वेदना वेदते हैं, या अकरण द्वारा ? गौतम ! पृथ्वीकायिक जीव करण द्वारा वेदना वेदते हैं, अकरण द्वारा नहीं। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके शुभाशुभ करण होनेसे ये करण द्वारा विमात्रा से (विविध प्रकार से) वेदना वेदते हैं। अर्थात् कदाचित् सुखरूप और कदाचित् दुःखरूप वेदना वेदते हैं, अकरण द्वारा नहीं। औदारिक शरीर वाले सभी जीव, अर्थात् पांच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय, तिर्यंच पञ्चेन्द्रिय और मनुष्य ये सब शुभाशुभ करण द्वारा विमात्रा से वेदना वेदते हैं। अर्थात् कदाचित् सुखरूप और कदाचित् दुःखरूप वेदना वेदते हैं। देव शुभकरण द्वारा साता वेदना वेदते हैं ॥२२९॥

भगवन् ! जीव महावेदना और महानिर्जरा वाले हैं, महावेदना और अल्प निर्जरा वाले हैं, अल्पवेदना वाले और महानिर्जरा वाले हैं अथवा अल्प वेदना वाले और अल्प निर्जरा वाले हैं ? गौतम ! कितने ही जीव महावेदना और महानिर्जरा वाले हैं, कितने ही जीव महावेदना और अल्पनिर्जरा वाले हैं, कितने ही जीव अल्पवेदना और महानिर्जरा वाले हैं और कितने ही जीव अल्प-वेदना और अल्पनिर्जरा वाले हैं।

भगवन् ! इसका क्या कारण है ? गौतम ! प्रतिमा प्रतिपन्न (प्रतिमाको धारण करने वाला) साधु महावेदना वाला और महानिर्जरा वाला है। छठी और सातवीं पृथ्वीमें रहे हुए नैरयिक जीव महावेदना वाले और अल्प निर्जरा वाले हैं। शैलेशी अवस्थाको प्राप्त अनगार अल्पवेदना और महानिर्जरा वाले हैं और अनुत्तरौपपातिक देव अल्पवेदना और अल्प निर्जरा वाले हैं।

संग्रह गाथाका अर्थ इस प्रकार है—महावेदना, कर्दम और खञ्जनके रंगसे रंगे हुए वस्त्र, अधिकरणी (एरण), घासका पूला, लोहका गोला, करण

और महावेदना वाले जीव। इतने विषयोंका वर्णन इस प्रथम उद्देशक में किया गया है। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है।······यावत् गौतम स्वामी विचरते हैं ।।२३०।।

।। छठे शतक का प्रथम उद्देशक समाप्त ।।

शतक ६ उद्देशक २

राजगृह नगरमें यावत् भगवान् ने इस प्रकार फरमाया। यहां प्रज्ञापना सूत्रके २८वें आहारपदका सम्पूर्ण प्रथम उद्देशक कहना चाहिए।···भगवन् ! यह इसी प्रकार है···।।२३१।।

।। छठे शतक का दूसरा उद्देशक समाप्त ।।

शतक ६ उद्देशक ३

गाथार्थ—बहुकर्म, वस्त्रमें प्रयोगसे और स्वाभाविक रूपसे पुद्गल, सादि (आदिसहित) कर्मस्थिति, स्त्री, संयत, सम्यग्दृष्टि, संज्ञी, भव्य, दर्शन, पर्याप्ति, भाषक, परित्त, ज्ञान, योग, उपयोग, आहारक, सूक्ष्म, चरम, बंध और अल्प-बहुत्व, इतने विषयोंका कथन इस उद्देशकमें किया जायेगा।

भगवन् ! क्या महाकर्म वाले, महाक्रिया वाले, महाआस्रव वाले और महावेदना वाले जीवके सर्वतः अर्थात् सभी ओरसे और सभी प्रकारसे पुद्गलोंका बन्ध होता है ? सर्वतः पुद्गलोंका चय होता है ? सर्वतः पुद्गलोंका उपचय होता है ? सदा निरन्तर पुद्गलोंका बन्ध होता है ? सदा निरन्तर पुद्गलोंका चय होता है ? सदा निरन्तर पुद्गलोंका उपचय होता है ? क्या सदा निरन्तर उसकी आत्मा दुरूपपने, दुर्वर्णपने, दुर्गंधपने, दुःरसपने, दुःस्पर्शपने, अनिष्टपने, अकान्त-पने, अप्रियपने, अशुभपने, अमनोज्ञपने, अमनामपने (मनसे भी जिसका स्मरण न किया जा सके), अनीप्सितपने (अनिच्छितपने), अभिध्यितपने (जिसको प्राप्त करने के लिए लोभ भी न हो), जघन्यपने, अनूर्ध्वपने, दुःखपने और असुखपने बारंवार परिणत होती है ? हां, गौतम ! उपर्युक्त रूपसे यावत् परिणमती है।

भगवन् ! इसका क्या कारण है ? गौतम ! जैसे कोई अहत, अपरिभुक्त (जो नहीं पहना गया है), धौत (पहन करके भी धोया हुआ), तन्तुगत (मशीन परसे तुरन्त उतरा हुआ) वस्त्र, अनुक्रमसे काममें लिया जाने पर उसके पुद्गल सर्वतः बंधते हैं, सर्वतः चय होते हैं यावत् कालान्तरमें वह वस्त्र मसोता जैसा मैला और दुर्गन्धयुक्त हो जाता है। इसी प्रकार महाकर्म वाला जीव उपर्युक्त रूपसे यावत् असुखपने बारंवार परिणमता है।

भगवन्! क्या अल्पास्रव वाले, अल्प कर्म वाले, अल्प क्रिया वाले और अल्प वेदना वाले जीवके सर्वत: पुद्गल भेदाते हैं? सर्वत: पुद्गल छेदाते हैं? सर्वत: पुद्गल विध्वंसको प्राप्त होते हैं? सर्वत: पुद्गल समस्त रूपसे विध्वंसको प्राप्त होते हैं? क्या सदा निरन्तर पुद्गल भेदाते हैं? सर्वत: पुद्गल छेदाते हैं? विध्वंसको प्राप्त होते हैं? समस्त रूपसे विध्वंसको प्राप्त होते हैं? क्या उसकी आत्मा सदा निरन्तर सुरूपपने यावत् सुखपने और अदु:खपने बारंबार परिणमती है? (पूर्व सूत्रमें अप्रशस्तका कथन किया है किन्तु यहां सब प्रशस्त पदोंका कथन करना चाहिए) हां, गौतम! उपर्युक्त रूपसे यावत् परिणमती है। भगवन्! इसका क्या कारण है? गौतम! जैसे कोई मलीन, पंकसहित (मैल सहित) और रज सहित वस्त्र हो, वह वस्त्र क्रमसे शुद्ध किया जाने पर और शुद्ध पानीसे धोया जाने पर उस पर लगे हुए पुद्गल सर्वत: भेदाते हैं, छेदाते हैं यावत् परिणामको प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार अल्पक्रिया वाले जीवके विषयमें भी पूर्वोक्त रूपसे कथन करना चाहिए ॥२३२॥

भगवन्! वस्त्रमें पुद्गलोंका उपचय होता है, वह प्रयोगसे (पुरुषके प्रयत्न से) होता है अथवा स्वाभाविक? गौतम! प्रयोगसे भी होता है और स्वाभाविक रूपसे भी होता है। भगवन्! जिस प्रकार प्रयोगसे और स्वाभाविक रूपसे वस्त्रके पुद्गलोंका उपचय होता है, तो क्या उसी प्रकार जीवोंके भी प्रयोगसे और स्व-भावसे कर्म पुद्गलोंका उपचय होता है? गौतम! जीवोंके जो कर्म पुद्गलोंका उपचय होता है, वह प्रयोगसे होता है, किन्तु स्वाभाविक रूपसे नहीं होता है। भगवन्! इसका क्या कारण है? गौतम! जीवोंके तीन प्रकारके प्रयोग कहे गए हैं। यथा—मनप्रयोग, वचनप्रयोग और कायप्रयोग। इन तीन प्रकारके प्रयोगोंसे जीवोंके कर्मोंका उपचय होता है। इसलिए जीवोंके कर्मोका उपचय प्रयोगसे होता है, स्वाभाविक रूपसे नहीं। इस प्रकार सभी पंचेन्द्रिय जीवोंके तीन प्रकारका प्रयोग होता है। पृथ्वीकायिकादि पांच स्थावर जीवोंके एक काय प्रयोगसे होता है। तीन विकलेन्द्रिय जीवोंके वचनप्रयोग और कायप्रयोग, इन दोनों प्रयोगोंसे होते हैं। इस प्रकार सर्व जीवोंके प्रयोग द्वारा कर्मोंका उपचय होता है, किन्तु स्वाभाविक रूपसे नहीं होता। इस प्रकार वैमानिक पर्यन्त सभी जीवोंके विषयमें कहना चाहिए ॥२३३॥

भगवन्! वस्त्रके जो पुद्गलोंका उपचय होता है, क्या वह सादि सान्त है, सादि अनन्त है, अनादि सान्त है या अनादि अनन्त है? गौतम! वस्त्रके पुद्गलोंका जो उपचय होता है, वह सादि सान्त है, परन्तु सादि अनन्त, अनादि सान्त और अनादि अनन्त नहीं है। भगवन्! जिस प्रकार वस्त्रके पुद्गलोपचय सादि सान्त हैं, किन्तु सादि अनन्त, अनादि सान्त और अनादि अनन्त नहीं हैं, उसी

प्रकार जीवोंके कर्मोपचय भी सादि सान्त हैं, सादि अनन्त हैं, अनादि सान्त हैं या अनादि अनन्त हैं ? गौतम ! कितने ही जीवोंके कर्मोपचय सादि सान्त हैं, कितने ही जीवोंके कर्मोपचय अनादि सान्त हैं और कितने ही जीवोंके कर्मोपचय अनादि अनन्त हैं, परन्तु जीवोंके कर्मोपचय सादि अनन्त नहीं हैं। भगवन् ! इसका क्या कारण है ? गौतम ! ईर्यापथिक बंधकी अपेक्षा कर्मोपचय सादि सान्त हैं। भव-सिद्धिक जीवोंके कर्मोपचय अनादि सान्त हैं। अभवसिद्धिक जीवोंके कर्मोपचय अनादि अनन्त हैं। इसलिए हे गौतम ! उपर्युक्त रूपसे कथन किया गया है।

भगवन् ! क्या वस्त्र सादि सान्त है ? इत्यादि पूर्वोक्त रूपसे चार भंग करके प्रश्न करना चाहिए ? गौतम ! वस्त्र सादि सान्त है। बाकी तीन भंगोंका वस्त्रमें निषेध करना चाहिए। भगवन् ! जैसे वस्त्र सादि सान्त है, किन्तु सादि अनन्त नहीं है, अनादि सान्त नहीं है और अनादि अनन्त नहीं है, उसी प्रकार जीवोंके लिए भी प्रश्न करना चाहिए —भगवन् ! क्या जीव सादि सान्त हैं, सादि अनन्त हैं, अनादि सान्त हैं या अनादि अनन्त हैं ? गौतम ! कितने ही जीव सादि सान्त हैं, कितने ही जीव सादि अनन्त हैं, कितने ही जीव अनादि सान्त हैं और कितने ही जीव अनादि अनन्त हैं। भगवन् ! इसका क्या कारण है ? गौतम ! नैरयिक, तिर्यंचयोनिक, मनुष्य और देव, गति आगतिकी अपेक्षा सादि सान्त हैं। सिद्धगतिकी अपेक्षा सिद्ध जीव सादि अनन्त हैं। लब्धिकी अपेक्षा भवसिद्धिक जीव अनादि सान्त हैं। संसारकी अपेक्षा अभवसिद्धिक जीव अनादि अनन्त हैं ॥२३४॥

भगवन् ! कर्म प्रकृतियाँ कितनी हैं ? गौतम ! कर्म प्रकृतियाँ आठ हैं। यथा—ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, यावत् अन्तराय। भगवन् ! ज्ञानावरणीय कर्म की बंध स्थिति कितने काल की कही गई है ? गौतम ! ज्ञानावरणीय कर्म की बंध स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपमकी है। तीन हजार वर्ष का अबाधा काल है। अबाधा काल जितनी स्थिति को कम करने पर शेष कर्म स्थिति-कर्म-निषेक है। इसी प्रकार दर्शनावरणीय कर्मके विषय में भी जानना चाहिये। वेदनीय कर्म की जघन्य स्थिति दो समय की है और उत्कृष्ट स्थिति ज्ञानावरणीय कर्मके समान जाननी चाहिये। मोहनीय कर्म की बंध स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरोपम की है। सात हजार वर्ष का अबाधा काल है। अबाधा कालकी स्थिति को कम करनेसे शेष कर्म स्थिति-कर्म-निषेक काल जानना चाहिये। आयुष्य कर्म की बंध स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पूर्व कोटिके तीसरे भाग अधिक तेतीस सागरोपम की है। इसका कर्म-निषेक काल तेतीस सागरोपम का है। शेष अबाधा काल है। नामकर्म और गोत्रकर्म की बंध स्थिति जघन्य आठ मुहूर्त और उत्कृष्ट बीस

क्रोड़ाक्रोड़ी सागरोपम है। दो हजार वर्ष का अबाधा काल है। उस अबाधा काल की स्थिति को कम करने से शेष कर्मस्थिति-कर्म-निषेक होता है। अन्तराय कर्मका कथन ज्ञानावरणीय कर्मके समान जानना चाहिये ॥२३५॥

भगवन् ! ज्ञानावरणीय कर्म क्या स्त्री बांधती है, पुरुष बांधता है, नपुंसक बांधता है या नोस्त्री-नोपुरुष-नोनपुंसक बांधता है ? गौतम ! ज्ञानावरणीय कर्म को स्त्री भी बांधती है, पुरुष भी बांधता है और नपुंसक भी बांधता है, परन्तु जो नोस्त्री-नोपुरुष-नोनपुंसक होता है-वह कदाचित् बांधता है और कदाचित् नहीं बांधता । इस प्रकार आयुष्य कर्म को छोड़कर शेष सातों कर्म-प्रकृतियों के विषय में समझना चाहिये । भगवन् ! आयुष्य कर्मको क्या स्त्री बांधती है, पुरुष बाँधता है, नपुंसक बांधता है या नोस्त्री-नोपुरुष-नोनपुंसक बांधता है ? गौतम ! आयुष्य कर्म को स्त्री कदाचित् बांधती है और कदाचित् नहीं बांधती, इसी प्रकार पुरुष और नपुंसकके विषय में भी कहना चाहिये । नोस्त्री-नोपुरुष-नोनपुंसक आयुष्य कर्म को नहीं बांधता ।

भगवन् ! ज्ञानावरणीय कर्म को संयत बांधता है, असंयत बांधता है, संयतासंयत बांधता है या नोसंयत-नोअसंयत-नोसंयतासंयत बांधता है ? गौतम ! ज्ञानावरणीय कर्मको संयत कदाचित् बांधता है और कदाचित् नहीं बांधता, किन्तु असंयत बांधता है और संयतासंयत भी बांधता है, परन्तु जो नोसंयत-नोअसंयत-नोसंयतासंयत होता है वह नहीं बांधता । इस प्रकार आयुष्य कर्म को छोड़कर शेष सात कर्म प्रकृतियों के विषय में कहना चाहिये । आयुष्य कर्मके सम्बन्ध में संयत, असंयत और संयतासंयतके लिये भजना समझनी चाहिये । अर्थात् कदाचित् बांधते हैं और कदाचित् नहीं बांधते । नोसंयत-नोअसंयत-नोसंयतासंयत आयुष्य कर्म को नहीं बांधते ।

भगवन् ! ज्ञानावरणीय कर्मको क्या सम्यग्दृष्टि बांधता है, मिथ्यादृष्टि बांधता है या सम्यग्मिथ्यादृष्टि बांधता है ? गौतम ! सम्यग्दृष्टि कदाचित् बांधता है और कदाचित् नहीं बांधता, मिथ्यादृष्टि तो बांधता है और सम्यग्-मिथ्यादृष्टि भी बांधता है । इस प्रकार आयुष्य कर्म के सिवाय शेष सात कर्म प्रकृतियोंके विषयमें समझना चाहिये । आयुष्य कर्मको सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि कदाचित् बांधते हैं और कदाचित् नहीं बांधते । सम्यग्मिथ्यादृष्टि (सम्यग्मिथ्यादृष्टि अवस्था में) नहीं बांधते ।

भगवन् ! ज्ञानावरणीय कर्म को क्या संज्ञी जीव बांधता है, असंज्ञीजीव बांधता है या नोसंज्ञीनोअसंज्ञी जीव बांधता है ? गौतम ! ज्ञानावरणीय कर्मको संज्ञी जीव कदाचित् बांधता है और कदाचित् नहीं बांधता । असंज्ञी जीव

बांधता है। नोसंज्ञीनोअसंज्ञी जीव नहीं बांधता। इस प्रकार वेदनीय और आयुष्य को छोड़कर शेष छह कर्म प्रकृतियों के विषय में कहना चाहिये। वेदनीय कर्मको संज्ञी भी बांधता है और असंज्ञी भी बांधता है, किन्तु नोसंज्ञीनोअसंज्ञी कदाचित् बांधता है और कदाचित् नहीं बांधता। आयुष्य कर्मको संज्ञी जीव और असंज्ञी जीव भजनासे बांधते हैं, अर्थात् कदाचित् बाँधते हैं और कदाचित् नहीं बांधते। नोसंज्ञीनोअसंज्ञी जीव आयुष्य कर्म को नहीं बांधते।

भगवन् ! ज्ञानावरणीय कर्मको क्या भवसिद्धिक बांधता है, अभवसिद्धिक बांधता है या नोभवसिद्धिक-नोअभवसिद्धिक बांधता है ? गौतम ! भवसिद्धिक जीव कदाचित् बांधता है और कदाचित् नहीं बांधता। अभवसिद्धिक बांधता है। नोभवसिद्धिक–नोअभव-सिद्धिक नहीं बांधता। इस प्रकार आयुष्य कर्मके सिवाय शेष सात कर्म प्रकृतियोंके विषयमें कहना चाहिये। आयुष्य कर्म को भवसिद्धिक (भव्य) और अभवसिद्धिक (अभव्य) कदाचित् बांधता है और कदाचित् नहीं बांधता। नोभवसिद्धिक-नोअभवसिद्धिक (सिद्ध) नहीं बांधता।

भगवन् ! ज्ञानावरणीय कर्मको क्या चक्षुदर्शनी बांधता है, अचक्षुदर्शनी बांधता है, अवधिदर्शनी बांधता है या केवलदर्शनी बांधता है ? गौतम ! चक्षु-दर्शनी, अचक्षुदर्शनी और अवधिदर्शनी कदाचित् बांधता है और कदाचित् नहीं बांधता। केवलदर्शनी नहीं बांधता। वेदनीय कर्मके सिवाय शेष सात कर्म प्रकृतियों के विषय में इसी प्रकार कहना चाहिये। वेदनीय कर्मको चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी और अवधिदर्शनी बांधते हैं। केवलदर्शनी कदाचित् बांधते हैं और कदाचित् नहीं बांधते।

भगवन् ! क्या ज्ञानावरणीय कर्मको पर्याप्तक जीव बांधता है, अपर्याप्तक जीव बांधता है, या नोपर्याप्तक-नोअपर्याप्तक जीव बांधता है ? गौतम ! ज्ञाना-वरणीयकर्मको पर्याप्तक जीव कदाचित् बांधता है और कदाचित् नहीं बांधता। अपर्याप्तक जीव बांधता है। नोपर्याप्तक-नोअपर्याप्तक जीव नहीं बाँधता। इस प्रकार आयुष्य कर्म को छोड़कर शेष सात कर्म प्रकृतियोंके विषयमें कहना चाहिये। आयुष्य कर्म को पर्याप्तक जीव और अपर्याप्तक जीव कदाचित् बांधता है और कदाचित् नहीं बांधता। नोपर्याप्तक-नोअपर्याप्तक जीव नहीं बांधता। भगवन् ! क्या ज्ञानावरणीय कर्मको भाषक जीव बांधता है, या अभाषक जीव बांधता है ? गौतम ! ज्ञानावरणीय कर्मको भाषक और अभाषक ये दोनों प्रकारके जीव कदाचित् बांधते हैं और कदाचित् नहीं बांधते। इसी प्रकार वेदनीय कर्मको छोड़कर शेष सात कर्म प्रकृतियोंके विषयमें कहना चाहिये। भाषक जीव वेदनीय कर्म को बांधता है। अभाषक जीव कदाचित् बांधता है और कदाचित् नहीं बांधता।

भगवन् ! क्या परित्त (एक शरीर वाला एक जीव) जीव ज्ञानावरणीय कर्म बांधता है, अपरित्त जीव बांधता है, या नोपरित्त-नोअपरित्त जीव बांधता है ? गौतम ! परित्त जीव ज्ञानावरणीय कर्मको कदाचित् बांधता है और कदाचित् नहीं बांधता । अपरित्त जीव बांधता है। नोपरित्त-नोअपरित्त जीव नहीं बांधता । इस प्रकार आयुष्य कर्मको छोड़कर शेष सात कर्मप्रकृतियोंके विषयमें कहना चाहिये । परित्त और अपरित्त ये दोनों प्रकार के जीव आयुष्यकर्म को कदाचित् बाँधते हैं और कदाचित् नहीं बाँधते । नोपरित्त-नोअपरित्त जीव आयुष्यकर्म नहीं बांधते ।

भगवन् ! क्या आभिनिबोधिक (मति) ज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्यवज्ञानी और केवलज्ञानी ज्ञानावरणीय कर्म बांधते हैं ? गौतम ! आभिनिबोधिक ज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी और मनःपर्यवज्ञानी-ये चार कदाचित् ज्ञानावरणीय कर्मको बांधते हैं और कदाचित् नहीं बाँधते । केवलज्ञानी नहीं बांधते । इसी प्रकार वेदनीय कर्मको छोड़कर शेष सात कर्म प्रकृतियोंके विषयमें कहना चाहिये । आभिनिबोधिक आदि चारों वेदनीय कर्मको बाँधते हैं । केवलज्ञानी कदाचित् बांधते हैं और कदाचित् नहीं बांधते । भगवन् ! क्या मति-अज्ञानी, श्रुत-अज्ञानी और विभंगज्ञानी ज्ञानावरणीय कर्मको बांधते हैं ? गौतम ! आयुष्य कर्मको छोड़कर शेष सात कर्म प्रकृतियोंको बांधते हैं। आयुष्यकर्मको कदाचित् बांधते हैं और कदाचित् नहीं बांधते ।

भगवन् ! क्या मनयोगी, वचनयोगी, काययोगी और अयोगी—ये ज्ञानावरणीय कर्म बांधते हैं ? गौतम ! मनयोगी, वचनयोगी और काययोगी ये तीनों ज्ञानावरणीय कर्म कदाचित् बांधते हैं और कदाचित् नहीं बांधते । अयोगी नहीं बांधते । इसी प्रकार वेदनीयकर्मको छोड़कर शेष सात कर्म प्रकृतियों के विषयमें कहना चाहिये । वेदनीय कर्मको मनयोगी, वचनयोगी और काययोगी बांधते हैं । अयोगी नहीं बांधते । भगवन् ! ज्ञानावरणीय कर्म क्या साकार उपयोग वाले बांधते हैं, या अनाकार उपयोग वाले बांधते हैं ? गौतम ! साकार उपयोग और अनाकार उपयोग—इन दोनों उपयोग वाले जीव आठों कर्म प्रकृतियोंको कदाचित् बांधते हैं और कदाचित् नहीं बांधते । भगवन् ! क्या आहारक जीव ज्ञानावरणीय कर्म बांधते हैं ? या अनाहारक जीव बांधते हैं ? गौतम ! आहारक और अनाहारक ये दोनों प्रकारके जीव ज्ञानावरणीय कर्मको कदाचित् बांधते हैं और कदाचित् नहीं बांधते । इस प्रकार वेदनीय और आयुष्य को छोड़कर शेष छह कर्म प्रकृतियोंके विषय में कहना चाहिये । वेदनीय कर्मको आहारक जीव बांधते हैं तथा अनाहारक जीव कदाचित् बांधते हैं और कदाचित्

नहीं बांधते । आयुष्य कर्मको आहारक जीव कदाचित् बांधते हैं और कदाचित् नहीं बांधते । तथा अनाहारक जीव नहीं बांधते ।

भगवन् ! क्या सूक्ष्मजीव, बादर० और नोसूक्ष्मनोबादर जीव ज्ञा० कर्म बांधते हैं ? गौतम ! सूक्ष्मजीव ज्ञानावरणीय कर्म बांधते हैं। बादरजीव कदाचित् बांधते हैं और कदाचित् नहीं बांधते । नोसूक्ष्मनोबादर जीव नहीं बाँधते । इस प्रकार आयुष्यकर्मको छोड़कर शेष सात कर्मप्रकृतियोंका कथन करना चाहिये । सूक्ष्म जीव और बादर जीव आयुष्यकर्मको कदाचित् बांधते हैं और कदाचित् नहीं बांधते । नोसूक्ष्म-नोबादर जीव नहीं बांधते । भगवन् ! क्या चरम जीव और अचरम जीव ज्ञानावरणीय कर्म बांधते हैं ? गौतम ! चरम और अचरम ये दोनों प्रकार के जीव आठों कर्म प्रकृतियोंको कदाचित् बांधते हैं और कदाचित् नहीं बांधते ॥२३६॥

भगवन् ! स्त्री-वेदक, पुरुष-वेदक, नपुंसक-वेदक और अवेदक, इन जीवों में से कौन किससे अल्प हैं, बहुत हैं, तुल्य हैं और विशेषाधिक हैं ? गौतम ! सब से थोड़े पुरुष-वेदक हैं । उनसे संख्येय गुणा स्त्री-वेदक हैं । उनसे अनन्त गुणा नपुंसकवेदक हैं । पहले कहे हुए सब पदों का अल्पबहुत्व कहना चाहिये । यावत् सब से थोड़े अचरम जीव हैं और उनसे अनन्त गुणा चरम जीव हैं । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ······॥२३७॥

॥ छठे शतकका तीसरा उद्देशक समाप्त ॥

—०—

शतक ६ उद्देशक ४

भगवन् ! कालादेश की अपेक्षा क्या जीव सप्रदेश है या अप्रदेश है ? गौतम ! जीव नियमा (निश्चित रूप से) सप्रदेश है । भगवन् ! कालादेश की अपेक्षा नैरयिक जीव सप्रदेश है अथवा अप्रदेश है ? गौतम ! एक नैरयिक जीव कदाचित् सप्रदेश है और कदाचित् अप्रदेश है । इस प्रकार यावत् सिद्ध जीव पर्यन्त कहना चाहिये । भगवन् ! कालादेश की अपेक्षा क्या जीव (बहुत जीव) सप्रदेश) हैं, या अप्रदेश हैं ? गौतम ! जीव नियमा सप्रदेश हैं । भगवन् ! कालादेश की अपेक्षा क्या नैरयिक जीव (बहुत नैरयिक जीव) सप्रदेश हैं, या अप्रदेश हैं ? गौतम ! इस विषय में नैरयिक जीवोंके तीन भंग हैं । यथा-१ सभी सप्रदेश, २ बहुत सप्रदेश और एक अप्रदेश, ३ बहुत सप्रदेश और बहुत अप्रदेश । इस प्रकार यावत् स्तनितकुमारों तक कहना चाहिये । भगवन् ! क्या पृथ्वीकायिक जीव सप्रदेश हैं, या अप्रदेश हैं ? गौतम ! पृथ्वीकायिक जीव सप्रदेश भी हैं और अप्रदेश भी हैं । इसी प्रकार यावत् वनस्पतिकायिक तक कहना चाहिये ।

जिस प्रकार नैरयिक जीवों का कथन किया गया है । उसी प्रकार सिद्ध

पर्यन्त सभी जीवों का कथन करना चाहिये। आहार द्वार—जीव और एकेन्द्रिय को छोड़कर बाकी सभी आहारक जीवोंके लिये तीन भंग कहने चाहियें। यथा—१ सभी सप्रदेश, २ वहुत सप्रदेश और एक अप्रदेश, ३ वहुत सप्रदेश और वहुत अप्रदेश। अनाहारक जीवोंके लिये एकेंद्रिय को छोड़कर छह भंग कहने चाहियें। यथा—१ सभी सप्रदेश, २ सभी अप्रदेश, ३ एक सप्रदेश और एक अप्रदेश, ४ एक सप्रदेश और बहुत अप्रदेश, ५ वहुत सप्रदेश और एक अप्रदेश, ६ वहुत सप्रदेश और वहुत अप्रदेश। सिद्धोंके लिये तीन भंग कहने चाहियें। भवसिद्धिक (भव्य) और अभवसिद्धिक (अभव्य) जीवों के लिये औधिक जीवोंकी तरह कथन करना चाहिये। नोभवसिद्धिक-नोअभवसिद्धिक जीव और सिद्धोंमें तीन भंग कहने चाहियें। संज्ञी जीवों में जीव आदिमें तीन भंग कहने चाहियें। असंज्ञी जीवोंमें एकेंद्रियको छोड़कर तीन भंग कहने चाहियें। नैरयिक, देव और मनुष्यों में छह भंग कहने चाहियें। नोसंज्ञीनोअसंज्ञी जीव, मनुष्य और सिद्धोंमें तीन भंग कहने चाहियें। सलेश्य (लेश्या वाले) जीवों का कथन औधिक जीवोंके सदृश करना चाहिये। कृष्णलेश्या वाले, नील लेश्या वाले और कापोत लेश्या वाले जीवों का कथन आहारक जीव की तरह करना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि जिसके जो लेश्या हो उसके वह लेश्या कहनी चाहिये। तेजोलेश्या में जीव आदि में तीन भंग कहने चाहियें। किन्तु इतनी विशेषता है कि पृथ्वीकायिक, अप्कायिक और वनस्पतिकायिक जीवोंमें छह भंग कहने चाहियें। पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या में जीव आदिमें तीन भंग कहने चाहियें। अलेश्य (लेश्यारहित) जीव और सिद्धों में तीन भंग कहने चाहियें और अलेश्य मनुष्यों में छह भंग कहने चाहियें। सम्यग्दृष्टि जीवों में, जीव आदिमें तीन भंग कहने चाहियें। विकलेन्द्रियों में छह भंग कहने चाहियें। मिथ्यादृष्टि जीवोंमें एकेंद्रिय को छोड़कर तीन भंग कहने चाहियें।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों में छह भंग कहने चाहियें। संयत जीवोंमें जीव आदि में तीन भंग कहने चाहियें। असंयत जीवोंमें एकेन्द्रिय को छोड़कर तीन भंग कहने चाहियें। संयतासंयत जीवोंमें जीवादि में तीन भंग कहने चाहियें। नोसंयत-नोअसंयत-नोसंयतासंयत जीव और सिद्धों में तीन भंग कहने चाहियें। सकषायी (कषाय वाले) जीवोंमें जीवादि में तीन भंग कहने चाहियें। एकेंद्रियोंमें अभंगक कहना चाहिये। क्रोध कषायी जीवोंमें जीव और एकेंद्रिय को छोड़कर तीन भंग कहने चाहियें। देवों में छह भंग कहने चाहियें। मान कषायी और माया कषायी जीवोंमें जीव और एकेंद्रिय को छोड़कर तीन भंग कहने चाहियें। नैरयिक और देवोंमें छह भंग कहने चाहियें। लोभ कषायी जीवों में जीव और एकेंद्रिय को छोड़कर तीन भंग कहने चाहियें। नैरयिक जीवों में छह भंग कहने चाहियें।

अकषायी जीवोंमें जीव,मनुष्य और सिद्धोंमें तीन भंग कहने चाहियें। औधिक ज्ञान (समुच्चय ज्ञान),आभिनिबोधिकज्ञान और श्रुतज्ञानमें जीवादिकमें तीन भंग कहने चाहियें। विकलेन्द्रियोंमें छह भंग कहने चाहियें। अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान में जीवादि में तीन भंग कहने चाहियें। औधिक अज्ञान (समुच्चय अज्ञान), मतिअज्ञान और श्रुतअज्ञानमें एकेंद्रियको छोड़कर तीन भंग कहने चाहियें। विभंगज्ञानमें जीवादिमें तीन भंग कहने चाहियें।

जिस प्रकार औधिक जीवों का कथन किया उसी प्रकार सयोगी जीवोंका कथन करना चाहिये। मन-योगी, वचन-योगी और काय-योगी में, जीवादि में तीन भंग कहने चाहियें। किन्तु इतनी विशेषता है कि एकेंद्रिय जीव केवल काय-योग वाले ही होते हैं। उनमें अभंग कहना चाहिये। अयोगी जीवों का कथन अलेशी जीवों के समान कहना चाहिये। साकार उपयोग वाले और अनाकार उपयोग वाले जीवोंमें जीव और एकेंद्रिय को छोड़कर तीन भंग कहने चाहियें। सवेदक जीवोंका कथन सकषायी जीवों के समान करना चाहिये। स्त्री-वेदक, पुरुष-वेदक और नपुंसक-वेदक जीवोंमें, जीवादिमें तीन भंग कहने चाहियें। किन्तु इतनी विशेषता है कि नपुंसक-वेदमें एकेंद्रियों के विषय में अभंग कहना चाहिये। अवेदक जीवों का कथन अकषायी जीवोंके समान कहना चाहिये। सशरीरी जीवोंका कथन औधिक जीवोंके समान कहना चाहिये। औदारिक शरीर वाले और वैक्रिय शरीर वाले जीवों के लिये, जीव और एकेन्द्रिय को छोड़कर तीन भंग कहने चाहियें। आहारक शरीर वाले जीवों में जीव और मनुष्य में छह भंग कहने चाहियें। तेजस और कार्मण शरीर वाले जीवोंका कथन औधिक जीवोंके समान कहना चाहिये। अशरीरी जीव और सिद्धोंके लिये तीन भंग कहने चाहियें।

आहार पर्याप्ति, शरीर पर्याप्ति, इन्द्रिय पर्याप्ति और श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति वाले जीवों में जीव और एकेंद्रिय को छोड़कर तीन भंग कहने चाहियें। भाषापर्याप्ति और मनःपर्याप्ति वाले जीवों का कथन संज्ञी जीवोंके समान कहना चाहिये। आहार अपर्याप्ति वाले जीवों का कथन अनाहारक जीवोंके समान कहना चाहिये। शरीर अपर्याप्ति, इन्द्रिय अपर्याप्ति और श्वासोच्छ्वास अप-र्याप्ति वाले जीवों में जीव और एकेंद्रिय को छोड़कर तीन भंग कहने चाहियें। नैरयिक, देव और मनुष्योंमें छह भंग कहने चाहियें। भाषा अपर्याप्ति और मन अपर्याप्ति वाले जीव आदि में तीन भंग कहने चाहियें। नैरयिक, देव और मनुष्यों में छह भंग कहने चाहियें। संग्रह गाथा का अर्थ इस प्रकार है—सप्रदेश, आहारक, भव्य, संज्ञी, लेश्या, दृष्टि, संयत, कषाय, ज्ञान, योग, उपयोग, वेद, शरीर और पर्याप्ति, इन चौदह द्वारों का कथन ऊपर किया गया है ॥१॥२३८॥

भगवन् ! क्या जीव प्रत्याख्यानी हैं, अप्रत्याख्यानी हैं, या प्रत्याख्याना-

प्रत्याख्यानी हैं ? गौतम ! जीव प्रत्याख्यानी भी हैं, अप्रत्याख्यानी भी हैं और प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानी भी हैं। इसी तरह सभी जीवों के विषय में प्रश्न करना चाहिये ? गौतम ! नैरयिक जीव अप्रत्याख्यानी हैं, इसी प्रकार यावत् चतुरिन्द्रिय जीवों तक अप्रत्याख्यानी हैं। इन जीवोंके लिये शेष दो भंगों (प्रत्याख्यानी और प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानी) का निषेध करना चाहिये। पञ्चेंद्रिय तिर्यञ्च प्रत्याख्यानी नहीं हैं, किन्तु अप्रत्याख्यानी हैं और प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानी हैं। मनुष्योंमें तीनों भंग पाये जाते हैं। शेष जीवोंका कथन नैरयिक जीवोंकी तरह कहना चाहिये। भगवन् ! क्या जीव प्रत्याख्यानको जानते हैं, अप्रत्याख्यानको जानते हैं और प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानको जानते हैं ?—

गौतम ! जो जीव पञ्चेन्द्रिय हैं वे तीनों को जानते हैं। शेष जीव प्रत्याख्यानको नहीं जानते । (अप्रत्याख्यानको नहीं जानते और प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानको भी नहीं जानते ।) भगवन् ! क्या जीव प्रत्याख्यान करते हैं ? अप्रत्याख्यान करते हैं ? प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यान करते हैं ? गौतम ! जिस प्रकार औधिक दण्डक कहा है, उसी प्रकार प्रत्याख्यान करने के विषयमें कहना चाहिये।

भगवन् ! क्या जीव प्रत्याख्यानसे निर्वर्तित आयुष्य वाले हैं ? अर्थात् क्या जीवोंका आयुष्य प्रत्याख्यानसे बंधता है, अप्रत्याख्यानसे बंधता है और प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानसे बंधता है ? गौतम ! जीव और वैमानिक देव प्रत्याख्यानसे निर्वर्तित आयुष्य वाले हैं, अप्रत्याख्यान-निर्वर्तित आयुष्यवाले भी हैं और प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानसे निर्वर्तित आयुष्य वाले भी हैं। शेष सभी जीव अप्रत्याख्यानसे निर्वर्तित आयुष्य वाले हैं। संग्रह गाथाका अर्थ इस प्रकार है—प्रत्याख्यान, प्रत्याख्यानको जानना, तीनोंके द्वारा आयुष्यकी निर्वृत्ति, सप्रदेश उद्देशकमें ये चार दण्डक कहे गये हैं। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है······॥२३९॥

॥ छठे शतक का चौथा उद्देशक समाप्त ॥

—०—

शतक ६ उद्देशक ५—तमस्काय

भगवन् ! तमस्काय क्या कहलाती है ? क्या पृथ्वी तमस्काय कहलाती है, या पानी तमस्काय कहलाता है ? गौतम ! पृथ्वी तमस्काय नहीं कहलाती है, किन्तु पानी तमस्काय कहलाता है। भगवन् ! इसका क्या कारण है ? गौतम ! कुछ पृथ्वीकाय ऐसी शुभ है जो देशको (कुछ भागको) प्रकाशित करती है और कुछ पृथ्वीकाय ऐसी है जो देश (भाग) को प्रकाशित नहीं करती। इस कारणसे ऐसा कहा जाता है कि पृथ्वी तमस्काय नहीं कहलाती, किन्तु पानी तमस्काय

कहलाता है। भगवन् ! तमस्काय कहांसे प्रारम्भ होती है और कहां समाप्त होती है ? गौतम ! जम्बूद्वीपके वाहर तिरछे असंख्यात द्वीप समुद्रोंको उल्लंघन करने के पश्चात् अरुणवर नामका द्वीप आता है। उस द्वीप के वाहरकी वेदिका के अन्तसे अरुणोदय समुद्रमें ४२ हजार योजन जाने पर वहाँके उपरितन जलान्त से एक प्रदेशकी श्रेणीरूप तमस्काय उठती है। वहाँ से १७२१ योजन ऊँची जाने के वाद फिर तिरछी विस्तृत होती हुई सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार और माहेन्द्र—इन चार देवलोकोंको आच्छादित करके ऊंची पांचवें ब्रह्मदेवलोकके रिष्टविमान नामक पाथड़े तक पहुंची है और वहीं तमस्कायका अन्त होता है।

भगवन् ! तमस्कायका आकार कैसा है ? गौतम ! तमस्काय नीचे तो मल्लकमूलसंस्थित है, अर्थात् शरावके मूलके आकार है। और ऊपर कुर्कुट पञ्जरक संस्थित—अर्थात् कुर्कुट के पिञ्जरे के आकार वाली है। भगवन् ! तमस्कायका विष्कम्भ और परिक्षेप कितना कहा गया है ? गौतम ! तमस्काय दो प्रकारकी कही गई है। एक तो संख्येय विस्तृत और दूसरी असंख्येय विस्तृत। इनमें जो संख्येय विस्तृत है उस का विष्कम्भ संख्येय हजार योजन है और परिक्षेप असंख्येय हजार योजन है। जो तमस्काय असंख्येय विस्तृत है उसका विष्कम्भ असंख्येय हजार योजन है और परिक्षेप भी असंख्येय हजार योजन है। भगवन् ! तमस्काय कितनी बड़ी है ? गौतम ! सभी द्वीप और समुद्रोंके सर्वाभ्यन्तर अर्थात् बीचोबीच यह जम्बूद्वीप है। यह एक लाख योजनका लम्बा चौड़ा है। इसकी परिधि तीन लाख सोलह हजार दो सौ सत्ताइस योजन तीन कोस एक सौ अट्ठाइस धनुष और साढ़े तेरह अंगुलसे कुछ अधिक है। कोई महाऋद्धि यावत् महानुभाव वाला देव—'यह चला यह चला'—ऐसा करके तीन चुटकी बजावे उतने समयमें सम्पूर्ण जम्बूद्वीपकी इक्कीस बार परिक्मा करके शीघ्र आवे, इस प्रकार की उत्कृष्ट और त्वरा वाली देवगतिसे चलता हुआ देव, यावत् एक दिन, दो दिन, तीन दिन चले यावत् उत्कृष्ट छह महीने तक चले, तो कुछ तमस्काय का उल्लंघन करता है और कुछ तमस्कायको उल्लंघन नहीं कर सकता है। हे गौतम ! तमस्काय इतनी वड़ी है।

भगवन् ! तमस्काय में गृह (घर) हैं ? या गृहापण हैं ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। भगवन् ! क्या तमस्कायमें गांव हैं ? यावत् सन्निवेश हैं ? ……। भगवन् ! क्या तमस्कायमें उदार (बड़े) मेघ संस्वेदको प्राप्त होते हैं, सम्मूर्च्छित होते हैं और वर्षा वरसाते हैं ? हां, गौतम ! ऐसा है। भगवन् ! क्या उसको देव करता है, असुर करता है, या नाग करता है ? गौतम ! देव भी करता है, असुर भी करता है और नाग भी करता है।

भगवन् ! क्या तमस्कायमें वादर स्तनित शब्द (मेघगर्जना) है ? और

क्या बादर विद्युत् (बिजली) है? हाँ, गौतम ! है। भगवन् ! क्या उसको देव करता है, असुर करता है, या नाग करता है? गौतम ! उसे देव भी करता है, असुर भी करता है और नाग भी करता है। भगवन् ! क्या तमस्कायमें बादर पृथ्वीकाय है और बादर अग्निकाय है? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। किन्तु वहाँ विग्रहगति समापन्न बादर पृथ्वी और बादर अग्नि हो सकती है। भगवन् ! क्या तमस्कायमें चन्द्र, सूर्य, ग्रहगण, नक्षत्र और तारा रूप हैं? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, किन्तु चन्द्र सूर्यादि तमस्कायके पास हैं। भगवन् ! क्या तमस्कायमें चन्द्रकी प्रभा या सूर्यकी प्रभा है? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, किन्तु तमस्कायमें कादूषणिका (अपनी आत्माको दूषित करने वाली) प्रभा है। भगवन् ! तमस्कायका वर्ण कैसा कहा गया है? गौतम ! तमस्काय का वर्ण काला, काली कान्ति वाला, गम्भीर, रोंगटे खड़े करने वाला, भीम (भयंकर), उत्त्रासनक (त्रास पैदा करने वाला) और परम कृष्ण है। उस तमस्कायको देखनेके साथ ही कोई देव भी क्षोभको प्राप्त हो जाता है। कदाचित् कोई देव उस तमस्कायमें प्रवेश करता है, तो शीघ्र और त्वरित गतिसे उसे पार कर जाता है।

भगवन् ! तमस्कायके कितने नाम कहे गये हैं? गौतम ! तमस्कायके तेरह नाम कहे गए हैं। यथा—१ तम, २ तमस्काय, ३ अन्धकार, ४ महान्धकार, ५ लोकान्धकार, ६ लोकतमिस्र, ७ देवान्धकार, ८ देवतमिस्र, ९ देवारण्य, १० देवव्यूह, ११ देवपरिघ, १२ देवप्रतिक्षोभ, १३ अरुणोदक समुद्र।

भगवन् ! क्या तमस्काय पृथ्वीका परिणाम है, पानीका परिणाम है, जीवका परिणाम है, या पुद्गलका परिणाम है? गौतम ! तमस्काय पृथ्वीका परिणाम नहीं है, पानीका परिणाम भी है, जीवका परिणाम भी है और पुद्गल का परिणाम भी है। भगवन् ! क्या सभी प्राण, भूत, जीव और सत्त्व, पृथ्वीकाय रूपसे यावत् त्रसकायरूपसे तमस्कायमें पहले उत्पन्न हो चुके हैं? हां, गौतम ! सभी प्राण, भूत, जीव और सत्त्व, तमस्कायमें पृथ्वीकाय रूपसे यावत् त्रसकाय रूपसे अनेक बार अथवा अनन्त बार पहले उत्पन्न हो चुके हैं। किन्तु बादर पृथ्वीकाय रूपसे और बादर अग्निकायरूपसे उत्पन्न नहीं हुए हैं ॥२४०॥

भगवन् ! कृष्णराजियाँ कितनी कही गई हैं? गौतम ! कृष्णराजियाँ आठ कही गई हैं। भगवन् ! ये आठ कृष्णराजियां कहां कही गई हैं? गौतम ! सनत्कुमार और माहेन्द्र नामक तीसरे चौथे देवलोकसे ऊपर और ब्रह्मलोक नामक पांचवें देवलोकके अरिष्ट नामक विमानके तीसरे प्रस्तट (पाथड़े) के नीचे

अखाड़ाके आकार समचतुरस्र संस्थान संस्थित आठ कृष्णराजियाँ हैं। यथा–पूर्वमें दो, पश्चिममें दो, उत्तरमें दो और दक्षिणमें दो, इस तरह चार दिशाओंमें आठ कृष्णराजियाँ हैं। पूर्वाभ्यन्तर अर्थात् पूर्व दिशाकी आभ्यन्तर कृष्णराजिने दक्षिण दिशाकी बाह्य कृष्णराजिको स्पर्शा है। दक्षिण दिशा की आभ्यन्तर कृष्णराजिनें पश्चिम दिशा की बाह्य कृष्णराजि को स्पर्श किया है। पश्चिम दिशा की आभ्यन्तर कृष्णराजिनें उत्तर दिशा की बाह्य कृष्णराजिको स्पर्श किया है और उत्तर दिशा की आभ्यन्तर कृष्णराजिने पूर्व दिशा की बाह्य कृष्णराजि को स्पर्श किया है। पूर्व और पश्चिम दिशा की बाह्य दो कृष्णराजियाँ षडंश (षट्कोण) हैं। उत्तर और दक्षिण दिशा की दो बाह्य कृष्णराजियाँ त्र्यंश (तीन कोणों वाली) हैं। पूर्व और पश्चिम दिशा की दो आभ्यन्तर कृष्णराजियां चतुरंश (चतुष्कोण) हैं। इसी प्रकार उत्तर और दक्षिण दिशा की दो आभ्यन्तर कृष्णराजियां भी चतुष्कोण हैं। कृष्णराजियोंके आकार को बतलाने वाली गाथाका अर्थ इस प्रकार है—पूर्व और पश्चिमकी कृष्णराजि षट्कोण है। दक्षिण और उत्तर की बाह्य कृष्णराजि त्रिकोण है। शेष सब आभ्यन्तर कृष्णराजियाँ चतुष्कोण हैं।

भगवन् ! कृष्णराजियोंका आयाम (लम्बाई), विष्कम्भ (विस्तार-चौड़ाई) और परिक्षेप (परिधि) कितना है ? गौतम ! कृष्णराजियोंका आयाम असंख्य हजार योजन है, विष्कम्भ संख्येय हजार योजन है और परिक्षेप असंख्येय हजार योजन है। भगवन् ! कृष्णराजियाँ कितनी मोटी कही गई हैं।—

गौतम ! तीन चुटकी बजावे उतने समय में इस सम्पूर्ण जम्बूद्वीप की इक्कीस बार परिक्रमा कर आवे—ऐसी शीघ्र गति से कोई देव एक दिन, दो दिन, तीन दिन यावत् अर्द्ध मास तक निरन्तर चले, तो वह देव किसी कृष्णराजि तक पहुंचता है और किसी कृष्णराजि तक नहीं पहुंचता। गौतम ! कृष्णराजियाँ इतनी बड़ी हैं।

भगवन् ! क्या कृष्णराजियोंमें गृह और गृहापण (दुकान) हैं ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं हैं अर्थात् कृष्णराजियोंमें घर और दुकानें नहीं हैं। भगवन् ! क्या कृष्णराजियोंमें ग्रामादि हैं ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है अर्थात् कृष्णराजियों में ग्रामादि नहीं हैं। भगवन् ! क्या कृष्णराजियोंमें महामेघ संस्वेदको प्राप्त होते हैं, सम्मूर्च्छित होते हैं और वर्षा बरसाते हैं ? हाँ, गौतम ! ऐसा होता है। भगवन् ! क्या इनको देव करता है, असुरकुमार करता है, या नागकुमार करता है ? गौतम ! देव करता है, किन्तु असुरकुमार या नागकुमार नहीं करता।

भगवन् ! क्या कृष्णराजियोंमें बादर स्तनित शब्द है ? गौतम ! महामेघों के समान इनका भी कथन करना चाहिए अर्थात् कृष्णराजियोंमें बादर स्तनित

शब्द है और उसे देव करता है, किन्तु असुरकुमार या नागकुमार नहीं करता। भगवन् ! क्या कृष्णराजियोंमें बादर अप्काय, बादर अग्निकाय और बादर वनस्पतिकाय है ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। यह निषेध विग्रहगति समापन्न जीवोंके सिवाय दूसरे जीवों के लिए है।

भगवन् ! क्या कृष्णराजियोंमें चन्द्र, सूर्य, ग्रहगण, नक्षत्र और तारा रूप हैं ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है अर्थात् वहाँ ये नहीं हैं। भगवन् ! क्या कृष्णराजियोंमें चन्द्रप्रभा (चन्द्रमाकी कान्ति) और सूर्यप्रभा (सूर्यकी कान्ति) है ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है अर्थात् वहां ये नहीं हैं। भगवन् ! कृष्णराजियों का वर्ण कैसा है ? गौतम ! कृष्णराजियोंका वर्ण कृष्ण यावत् परम कृष्ण है। तमस्काय की तरह भयंकर होनेसे देव भी क्षोभ को प्राप्त हो जाते हैं, यावत् इसको शीघ्र पार कर जाते हैं।

भगवन् ! कृष्णराजियोंके कितने नाम कहे गये हैं ? गौतम ! कृष्णराजियों के आठ नाम कहे गये हैं। यथा–१ कृष्णराजि, २ मेघराजि, ३ मघा, ४ माघवती, ५ वातपरिघा, ६ वात-परिक्षोभा, ७ देवपरिघा और ८ देवपरिक्षोभा। भगवन् ! क्या कृष्णराजियाँ पृथ्वी का परिणाम है, जल का परिणाम है, जीवका परिणाम है, या पुद्‌गल का परिणाम है ? गौतम ! कृष्णराजियां पृथ्वीका परिणाम है, किन्तु जलका परिणाम नहीं है, तथा जीव का भी परिणाम है और पुद्‌गल का भी परिणाम है। भगवन् ! क्या कृष्णराजियोंमें सभी प्राण, भूत, जीव और सत्त्व पहले उत्पन्न हो चुके हैं ? हाँ, गौतम ! अनेक बार अथवा अनन्त बार उत्पन्न हो चुके हैं, किन्तु बादर अप्कायपने, बादर अग्निकायपने और बादर वनस्पतिकायपने उत्पन्न नहीं हुए हैं ॥२४१॥

इन उपरोक्त आठ कृष्णराजियों के आठ अवकाशान्तरोंमें आठ लोकान्तिक विमान हैं। यथा–१ अर्चि, २ अर्चिमाली, ३ वैरोचन, ४ प्रभंकर, ५ चन्द्राभ, ६ सूर्याभ, ७ शक्राभ और ८ सुप्रतिष्ठाभ। इन सबके बीच में रिष्टाभ विमान है। भगवन् ! अर्चि विमान कहां है ? गोतम ! अर्चिविमान उत्तर और पूर्वके बीच में है। भगवन् ! अर्चिमाली विमान कहां है ? गौतम ! अर्चिमाली विमान पूर्व में है। इसी क्रम से सब विमानों के लिए कहना चाहिए। भगवन् ! रिष्ट विमान कहाँ है ? गौतम ! बहुमध्य भाग में अर्थात् सबके मध्य में रिष्ट विमान है। इन आठ लोकान्तिक विमानोंमें आठ जाति के लोकान्तिक देव रहते हैं। यथा—१ सारस्वत, २ आदित्य, ३ वन्हि, ४ वरुण, ५ गर्दतोय, ६ तुषित, ७ अव्याबाध और ८ आग्नेय। सबके बीच में रिष्ट देव है।

भगवन् ! सारस्वत देव कहां रहते हैं ? गौतम ! सारस्वत जाति के देव अर्चि विमान में रहते हैं। भगवन् ! आदित्य देव कहाँ रहते हैं ? गौतम !

आदित्य देव अर्चिमाली विमान में रहते हैं। इस प्रकार यथानुपूर्वीसे यावत् रिष्ट विमान तक जान लेना चाहिए। भगवन् ! रिष्ट देव कहाँ रहते हैं ? गौतम ! रिष्ट देव रिष्ट विमान में रहते हैं। भगवन् ! सारस्वत और आदित्य इन दो देवोंके कितने देव और कितने सौ देवों का परिवार है ? गौतम ! सारस्वत और आदित्य—इन दो देवों के ७ देवस्वामी और ७०० देवोंका परिवार है। वन्हि और वरुण देव, इन दो देवों के १४ देवस्वामी और १४००० देवों का परिवार है। गर्दतोय और तुषित–इन दो देवों के ७ देवस्वामी और ७००० देवोंका परिवार है। अव्याबाध, आग्नेय और रिष्ट, इन तीन देवों के ९ देवस्वामी और ९०० देवोंका परिवार है। इन देवों के परिवार की संख्या को सूचित करने वाली गाथा का अर्थ इस प्रकार है–प्रथम युगल में ७०० देवोंका परिवार, दूसरे युगल में १४००० देवों का परिवार, तीसरे युगल में ७००० देवों का परिवार और शेष तीन देवों के ९०० देवों का परिवार है।

भगवन् ! लोकान्तिक विमान किसके आधार पर रहे हुए हैं ? गौतम ! लोकान्तिक विमान वायुप्रतिष्ठित हैं अर्थात् वायु के आधार पर रहे हुए हैं। इस तरह जिस प्रकार विमानोंका प्रतिष्ठान, विमानों का बाहुल्य, विमानोंकी ऊंचाई और विमानों का संस्थान आदि का वर्णन जीवाभिगम सूत्र के देवोद्देशकमें ब्रह्म-लोक की वक्तव्यता कही है, उसी प्रकार यहां भी कहनी चाहिए। यावत् हाँ, गौतम ! सभी प्राण, भूत, जीव और सत्त्व यहाँ अनेक बार अथवा अनन्त बार पहले उत्पन्न हो चुके हैं, किन्तु लोकान्तिक विमानोंमें देवरूप से उत्पन्न नहीं हुए हैं।

भगवन् ! लोकान्तिक विमानोंमें कितने काल की स्थिति कही गई है ? गौतम ! लोकान्तिक विमानोंमें आठ सागरोपमकी स्थिति कही गई है। भगवन् ! लोकान्तिक विमानोंसे लोकान्त कितनी दूर है ? गौतम ! लोकान्तिक विमानोंसे असंख्य हजार योजन की दूरी पर लोकान्त है। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है। ......ऐसा कह कर यावत् गौतम स्वामी विचरते हैं ॥२४२॥

॥ छठे शतक का पांचवां उद्देशक समाप्त ॥

शतक ६ उद्देशक ६

हे भगवन् ! कितनी पृथ्वियाँ कही गई हैं ? गौतम ! सात पृथ्वियाँ कही गई हैं। यथा—रत्नप्रभा यावत् तमस्तमःप्रभा। रत्नप्रभा पृथ्वीसे लेकर यावत् अधःसप्तम (तमस्तमःप्रभा) तक जिस पृथ्वी के जितने आवास हों यावत् उतने कहने चाहिएँ। भगवन् ! कितने अनुत्तर विमान कहे गये हैं। गौतम ! पांच

अनुत्तर विमान कहे गये हैं। यथा—विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थसिद्ध विमान ॥२४३॥

भगवन् ! जो जीव मारणान्तिक समुद्घात द्वारा समवहत हुआ है और समवहत होकर इस रत्नप्रभा पृथ्वीके तीस लाख नरकावासों में से किसी एक नरकावास में नैरयिक रूपसे उत्पन्न होनेके योग्य है क्या वह वहां जाकर आहार करता है ? आहारको परिणमाता है ? और शरीर बाँधता है ? गौतम ! कोई जीव वहां जाकर ही आहार करता है, परिणमाता है तथा शरीर बांधता है और कोई एक जीव वहाँ जाकर वापिस लौटता है, वापिस लौटकर यहाँ आता है, यहाँ आकर फिर दूसरी बार मारणान्तिक समुद्घात द्वारा समवहत होता है। समवहत होकर इस रत्नप्रभा पृथ्वी के तीस लाख नरकावासों में से किसी एक नरकावास में नैरयिक रूप से उत्पन्न होता है। इसके बाद आहार ग्रहण करता है, परिणमाता है और शरीर बांधता है। इस प्रकार यावत् अधःसप्तम (तमस्तमः-प्रभा) पृथ्वी तक कहना चाहिये। भगवन् ! जो जीव मारणान्तिक समुद्घातसे समवहत हुआ है और समवहत होकर असुरकुमारों के चौसठ लाख आवासोंमें से किसी एक आवासमें उत्पन्न होनेके योग्य है, क्या वह जीव वहां जाकर ही आहार करता है ? उस आहारको परिणमाता है और शरीर बांधता है ?—

गौतम ! जिस प्रकार नैरयिकोंके विषयमें कहा, उसी प्रकार असुरकुमारों के विषयमें भी कहना चाहिये। यावत् स्तनितकुमारों तक इसी प्रकार कहना चाहिये।

भगवन् ! जो जीव मारणान्तिक समुद्घातसे समवहत हुआ है और समवहत होकर पृथ्वीकायके असंख्यात लाख आवासोंमें से किसी एक आवासमें पृथ्वीकायिक रूपसे उत्पन्न होनेके योग्य है, वह जीव मेरुपर्वतसे पूर्वमें कितनी दूर जाता है और कितनी दूरी को प्राप्त करता है ? गौतम ! वह लोकान्त तक जाता है और लोकान्त को प्राप्त करता है। भगवन् ! क्या उपर्युक्त पृथ्वी-कायिक जीव वहां जाकर ही आहार करता है, परिणमाता है और शरीर बांधता है ? गौतम ! कोई जीव वहां जाकर ही आहार करता है, परिणमाता है और शरीर बांधता है, और कोई जीव वहां जाकर वापिस लौटता है, वापिस लौट कर यहां आता है, यहां आकर फिर दूसरी बार मारणान्तिक समुद्घातसे समवहत होता है, समवहत होकर मेरुपर्वत के पूर्व में अंगुल के असंख्येय भाग मात्र, संख्येय भाग मात्र, वालाग्र, वालाग्र-पृथक्त्व (दो से नव तक वालाग्र), इसी तरह लिक्षा (लीख), यूका (जूं), यव (जौ धान्य), अंगुल यावत् करोड़ योजन, कोटाकोटि योजन, संख्येय हजार योजन और असंख्येय हजार योजन में अथवा एक प्रदेश श्रेणी को छोड़कर लोकान्त में पृथ्वीकाय के असंख्य लाख

आदित्य देव अर्चिमाली विमान में रहते हैं। इस प्रकार यथानुपूर्वीसे यावत् रिष्ट विमान तक जान लेना चाहिए। भगवन् ! रिष्ट देव कहाँ रहते हैं ? गौतम ! रिष्ट देव रिष्ट विमान में रहते हैं। भगवन् ! सारस्वत और आदित्य इन दो देवोंके कितने देव और कितने सौ देवों का परिवार है ? गौतम ! सारस्वत और आदित्य—इन दो देवों के ७ देवस्वामी और ७०० देवोंका परिवार है। वन्हि और वरुण देव, इन दो देवों के १४ देवस्वामी और १४००० देवों का परिवार है। गर्दतोय और तुषित–इन दो देवों के ७ देवस्वामी और ७००० देवोंका परिवार है। अव्यावाध, आग्नेय और रिष्ट, इन तीन देवों के ९ देवस्वामी और ९०० देवोंका परिवार है। इन देवों के परिवार की संख्या को सूचित करने वाली गाथा का अर्थ इस प्रकार है–प्रथम युगल में ७०० देवोंका परिवार, दूसरे युगल में १४००० देवों का परिवार, तीसरे युगल में ७००० देवों का परिवार और शेष तीन देवों के ९०० देवों का परिवार है।

भगवन् ! लोकान्तिक विमान किसके आधार पर रहे हुए हैं ? गौतम ! लोकान्तिक विमान वायुप्रतिष्ठित हैं अर्थात् वायु के आधार पर रहे हुए हैं। इस तरह जिस प्रकार विमानोंका प्रतिष्ठान, विमानों का बाहुल्य, विमानोंकी ऊंचाई और विमानों का संस्थान आदि का वर्णन जीवाभिगम सूत्र के देवोद्देशकमें ब्रह्म-लोक की वक्तव्यता कही है, उसी प्रकार यहां भी कहनी चाहिए। यावत् हां, गौतम ! सभी प्राण, भूत, जीव और सत्त्व यहाँ अनेक वार अथवा अनन्त बार पहले उत्पन्न हो चुके हैं, किन्तु लोकान्तिक विमानोंमें देवरूप से उत्पन्न नहीं हुए हैं।

भगवन् ! लोकान्तिक विमानोंमें कितने काल की स्थिति कही गई है ? गौतम ! लोकान्तिक विमानोंमें आठ सागरोपमकी स्थिति कही गई है। भगवन् ! लोकान्तिक विमानोंसे लोकान्त कितनी दूर है ? गौतम ! लोकान्तिक विमानोंसे असंख्य हजार योजन की दूरी पर लोकान्त है। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है। ······ऐसा कह कर यावत् गौतम स्वामी विचरते हैं ॥२४२॥

॥ छठे शतक का पांचवां उद्देशक समाप्त ॥

शतक ६ उद्देशक ६

हे भगवन् ! कितनी पृथ्वियाँ कही गई हैं ? गौतम ! सात पृथ्वियाँ कही गई हैं। यथा—रत्नप्रभा यावत् तमस्तमःप्रभा। रत्नप्रभा पृथ्वीसे लेकर यावत् अधःसप्तम (तमस्तमःप्रभा) तक जिस पृथ्वी के जितने आवास हों यावत् उतने कहने चाहिएँ। भगवन् ! कितने अनुत्तर विमान कहे गये हैं। गौतम ! पांच

(तुअर), पलिमंथक (गोल चना अथवा काला चना) इत्यादि धान्य पूर्वोक्त रूप से कोठे आदिमें रक्खे हुए हों, तो इन धान्यों की योनि कितने काल तक कायम रहती है? गोतम ! जिस प्रकार शालोके लिये कहा उसी प्रकार इन धान्यों के लिए भी कहना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि यहां उत्कृष्ट पांच वर्ष कहना चाहिए। शेष सारा वर्णन उसी तरह कहना चाहिए। भगवन् ! अलसी, कुसुंभ, कोद्रव, कांगणी, वरटी, राल, सण, सरसों, मूल के वीज, (एक जाति के शाक के वीज) आदि धान्यों की योनि कितने काल तक कायम रहती है ? गौतम ! जिस प्रकार शाली धान्यके लिये कहा, उसी प्रकार इनके लिये भी कहना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनकी योनि उत्कृष्ट सात वर्ष तक कायम रहती है। शेष वर्णन पहलेकी तरह कहना चाहिये ॥२४५॥

भगवन् ! एक एक मुहूर्तके कितने उच्छ्वास कहे गये हैं ? गौतम ! असंख्येय समयके समुदायकी समितिके समागमसे जितना काल होता है, उसे एक 'आवलिका' कहते हैं। संख्येय आवलिकाका एक 'उच्छ्वास' होता है, और संख्येय आवलिकाका एक 'निःश्वास' होता है। हृष्टपुष्ट तथा वृद्धावस्था और व्याधिसे रहित प्राणीका एक उच्छ्वास और एक निःश्वास ये दोनों मिलकर एक 'प्राण' कहलाता है। सात प्राणका एक 'स्तोक' होता है। सात स्तोकका एक 'लव' होता है। ७७लवका एक 'मुहूर्त' होता है। अथवा ३७७३उच्छ्वासका एक 'मुहूर्त' होता है। इस 'मुहूर्त' के अनुसार तीस मुहूर्तका एक 'अहोरात्र' होता है। पन्द्रह अहोरात्रका एक 'पक्ष' होता है। दो पक्षका एक 'मास' होता है। दो मासकी एक 'ऋतु' होती है। तीन ऋतुओंका एक 'अयन' होता है। दो अयनका एक 'संवत्सर' (वर्ष) होता है। पांच वर्ष का एक 'युग' होता है। वीस युगका एक 'वर्षशत' (सौ वर्ष) होता है। दस वर्षशतका एक 'वर्षसहस्र' (एक हजार वर्ष) होता है। सौ वर्षसहस्रों का एक 'वर्षशतसहस्र' (एक लाख वर्ष) होता है। ८४ लाख वर्षों का एक 'पूर्वांग' होता है। ८४ लाख पूर्वांगका एक 'पूर्व' होता है। ८४ लाख पूर्वका एक 'त्रुटितांग' होता है और ८४ लाख त्रुटितांगका एक 'त्रुटित' होता है। इस प्रकार पहले की राशि को ८४ लाख से गुणा करने से उत्तरोत्तर राशियां बनती हैं। वे इस प्रकार हैं—अटटांग, अटट, अववांग, अवव, हूहूकांग, हूहूक, उत्पलांग, उत्पल, पद्मांग, पद्म, नलिनांग, नलिन, अर्थनुपूरांग, अर्थनुपूर, अयुतांग, अयुत, प्रयुतांग, प्रयुत, नयुतांग, नयुत, चूलिकांग, चूलिका, शीर्षप्रहेलिकांग, शीर्षप्रहेलिका। इस संख्या तक गणित है। यह गणितका विषय है। इसके वाद औपमिक काल है, अर्थात् वह उपमाका विषय है, गणितका नहीं।

भगवन् ! औपमिक काल किसे कहते हैं? गौतम ! औपमिक काल दो प्रकारका कहा गया है। यथा—पल्योपम और सागरोपम। भगवन् ! पल्यो-

आवासोंमें से किसी आवास में ,पृथ्वीकायिक रूपसे उत्पन्न होता है और पीछे आहार करता है, परिणमाता है और शरीर बांधता है। जिस प्रकार मेरुपर्वत की पूर्वदिशाके विषयमें कथन किया गया, उसी प्रकारसे दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, ऊर्ध्व और अधोदिशाके विषयमें कहना चाहिये। जिस प्रकार पृथ्वीकायिक जीवों का कथन किया गया है, उसी प्रकार से सभी एकेन्द्रियोंके विषय में कहना चाहिये। एक एक के छह छह आलापक कहने चाहियें।

भगवन् ! जो जीव मारणान्तिक समुद्घातसे समवहत हुआ है और समवहत होकर बेइन्द्रिय जीवोंके असंख्य लाख आवासों में से किसी एक आवास में उत्पन्न होने के योग्य है, क्या वह जीव वहां जाकर ही आहार करता है, परिणमाता है और शरीर बांधता है ? गौतम ! जिस प्रकार नैरयिकोंके लिये कहा गया, उसी प्रकार बेइन्द्रियोंसे लेकर अनुत्तरौपपातिक देवों तक सब जीवों के लिये कथन करना चाहिये। भगवन् ! जो जीव मारणान्तिक समुद्घातसे समवहत हुआ है और समवहत होकर महान्से महान् महाविमानरूप पाँच अनुत्तर विमानोंमें से किसी एक अनुत्तर विमानमें अनुत्तरौपपातिकदेवरूपसे उत्पन्न होनेके योग्य है, क्या वह जीव वहां जाकर ही आहार करता है, परिणमाता है और शरीर बांधता है ? गौतम ! पहले कहा उसी प्रकार कहना चाहिये। यावत् आहार करता है, परिणमाता है और शरीर बाँधता है। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ......। ऐसा कह कर यावत् गौतमस्वामी विचरते हैं ॥२४४॥

॥ छठे शतकका छठा उद्देशक समाप्त ॥

—०—

शतक ६ उद्देशक ७—धान्य की स्थिति

भगवन् ! शाली (कलमादि जाति सम्पन्न चावल), व्रीहि (सामान्य चावल), गोधूम (गेहूं), यव (जौ) और यवयव (विशिष्ट प्रकार का जौ) इत्यादि धान्य कोठे में, बांसके छबड़े में, मंचमें या मालमें डाल कर उनके मुख गोबर आदिसे उल्लिप्त हों, लिप्त हों, ढके हुए हों, मिट्टी आदि से मुख पर छांदण दिये हुए हों, लांछित—चिन्हित किये हुए हों, इस प्रकार सुरक्षित रक्खे हुए उपरोक्त धान्यों की योनि (अंकुरोत्पत्ति की हेतुभूत शक्ति) कितने समय तक रहती है ? गौतम ! उनकी योनि जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट तीन वर्ष तक कायम रहती है। उसके पश्चात् उनकी योनि म्लान हो जाती है, विध्वंस को प्राप्त हो जाती है। इसके बाद वह बीज अबीज हो जाता है। इसके पश्चात् हे श्रमणायुष्मन् ! उस योनिका विच्छेद हो जाता है। भगवन् ! कलाय, मसूर, तिल, मूंग, उदड़, वाल, कुलथ, आलिसंदक (एक प्रकार का चंवला), सतीण

(तुअर), पलिमंथक (गोल चना अथवा काला चना) इत्यादि धान्य पूर्वोक्त रूप से कोठे आदिमें रक्खे हुए हों, तो इन धान्यों की योनि कितने काल तक कायम रहती है? गौतम ! जिस प्रकार शालीके लिये कहा उसी प्रकार इन धान्यों के लिए भी कहना चाहिए। किन्तु इतनी विशेपता है कि यहां उत्कृष्ट पांच वर्प कहना चाहिए। शेष सारा वर्णन उसी तरह कहना चाहिए। भगवन् ! अलसी, कुसुंभ, कोद्रव, कांगणी, वरटी, राल, सण, सरसों, मूल के वीज, (एक जाति के शाक के वीज) आदि धान्यों की योनि कितने काल तक कायम रहती है? गौतम ! जिस प्रकार शाली धान्यके लिये कहा, उसी प्रकार इनके लिये भी कहना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनकी योनि उत्कृष्ट सात वर्ष तक कायम रहती है। शेष वर्णन पहलेकी तरह कहना चाहिये ।।२४५।।

भगवन् ! एक एक मुहूर्तके कितने उच्छ्वास कहे गये हैं ? गौतम ! असंख्येय समयके समुदायकी समितिके समागमसे जितना काल होता है,उसे एक'आवलिका' कहते हैं। संख्येय आवलिकाका एक 'उच्छ्वास' होता है, और संख्येय आवलिकाका एक 'निःश्वास' होता है। हृष्टपुष्ट तथा वृद्धावस्था और व्याधिसे रहित प्राणीका एक उच्छ्वास और एक निःश्वास ये दोनों मिलकर एक 'प्राण' कहलाता है। सात प्राणका एक 'स्तोक' होता है। सात स्तोकका एक 'लव' होता है। ७७लवका एक 'मुहूर्त' होता है। अथवा ३७७३उच्छ्वासका एक 'मुहूर्त' होता है। इस 'मुहूर्त' के अनुसार तीस मुहूर्तका एक 'अहोरात्र' होता है। पन्द्रह अहोरात्रका एक 'पक्ष' होता है। दो पक्षका एक 'मास' होता है। दो मासकी एक 'ऋतु' होती है। तीन ऋतुओंका एक 'अयन' होता है। दो अयनका एक 'संवत्सर' (वर्ष) होता है। पांच वर्प का एक 'युग' होता है। वीस युगका एक 'वर्षशत' (सौ वर्ष) होता है। दस वर्पशतका एक 'वर्षसहस्र' (एक हजार वर्प) होता है। सौ वर्षसहस्रों का एक 'वर्षशतसहस्र' (एक लाख वर्प) होता है। ८४ लाख वर्षों का एक 'पूर्वांग' होता है। ८४ लाख पूर्वांगका एक 'पूर्व' होता है। ८४ लाख पूर्वका एक 'त्रुटितांग' होता है और ८४ लाख त्रुटितांगका एक 'त्रुटित' होता है। इस प्रकार पहले की राशि को ८४ लाख से गुणा करने से उत्तरोत्तर राशियां वनती हैं। वे इस प्रकार हैं—अटटांग, अटट, अववांग, अवव, हूहूकांग, हूहूक, उत्पलांग, उत्पल, पद्मांग, पद्म, नलिनांग, नलिन, अर्थनुपूरांग, अर्थनुपूर, अयुतांग, अयुत, प्रयुतांग, प्रयुत,नयुतांग,नयुत, चूलिकांग, चूलिका, शीर्षप्रहेलिकांग, शीर्षप्रहेलिका। इस संख्या तक गणित है। यह गणितका विपय है। इसके वाद औपमिक काल है, अर्थात् वह उपमाका विषय है, गणितका नहीं।

भगवन् ! औपमिक काल किसे कहते हैं? गौतम ! औपमिक काल दो प्रकारका कहा गया है। यथा—पल्योपम और सागरोपम। भगवन् ! पल्यो-

पम किसे कहते हैं और सागरोपम किसे कहते हैं ? गौतम ! जो सुतीक्ष्ण शस्त्रों के द्वारा भी छेदा भेदा न जा सके ऐसे परम-अणु (परमाणु) को केवली भगवान् सब प्रमाणोंका आदिभूत प्रमाण कहते हैं। ऐसे अनन्त परमाणुओंके समुदायकी समितिके समागमसे एक उच्छ्लक्ष्णश्लक्ष्णिका, श्लक्ष्णश्लक्ष्णिका, ऊर्ध्वरेणु, त्रस-रेणु, रथरेणु, बालाग्र, लिक्षा, यूका, यवमध्य और अंगुल होता है। आठ उच्छ्-लक्ष्णश्लक्ष्णिकाके मिलने से एक श्लक्ष्णश्लक्ष्णिका होती है। आठ श्लक्ष्णश्लक्ष्णिका से एक ऊर्ध्वरेणु, आठ ऊर्ध्वरेणु से एक त्रसरेणु, आठ त्रसरेणु से एक रथरेणु और आठ रथरेणु से देवकुरु उत्तरकुरुके मनुष्योंका एक बालाग्र होता है। देवकुरु उत्तरकुरुके मनुष्योंके आठ बालाग्रोंसे हरिवर्षरम्यकवर्षके मनुष्योंका एक बालाग्र होता है। हरिवर्ष रम्यकवर्षके मनुष्यों के आठ बालाग्रोंसे हैमवत ऐरावतके मनुष्योंका एक बालाग्र होता है। हैमवत ऐरावतके मनुष्योंके आठ बालाग्रोंसे पूर्वविदेहके मनुष्यों का एक बालाग्र होता है। पूर्वविदेह के मनुष्यों के आठ बालाग्रोंसे एक लिक्षा (लीख), आठ लिक्षा से एक यूका (जूं), आठ यूका से एक यवमध्य और आठ यवमध्यसे एक अंगुल होता है। इस प्रकार के छह अंगुल का एक पाद (पैर), बारह अंगुलकी एक वितस्ति (बेंत), चौबीस अंगुलका एक हाथ, अड़तालीस अंगुलकी एक कुक्षी, छियानवें अंगुलका एक दण्ड, धनुष, युग, नालिका, अक्ष अथवा मूसल होता है। दो हजार धनुषका एक गाऊ होता है। चार गाऊका एक योजन होता है। इस योजनके परिमाण से एक योजन लम्बा एक योजन चौड़ा और एक योजन गहरा तिगुणी से अधिक परिधि वाला एक पल्य हो, उस पल्य में देवकुरु उत्तरकुरुके मनुष्योंके एक दिन के उगे हुए, दो दिन के उगे हुए, तीन दिनके उगे हुए और अधिकसे अधिक सात दिनके उगे हुए करोड़ों बालाग्र ठूंसठूंस कर इस प्रकार भरा जाय कि उन बालाग्रों को न अग्नि जला सके और न हवा उड़ा सके। एवं वे बालाग्र न दुर्गन्धित हों, न नष्ट हों और न सड़ सकें। इस तरहसे भर दिया जाय। इसके बाद इस प्रकार बालाग्रों से ठसाठस भरे हुए उस पल्य में से सौ सौ वर्ष में एक एक बालाग्रको निकाला जाय। इस क्रमसे जितने कालमें वह पल्य क्षीण (खाली) हो, नीरज हो, निर्मल हो, निष्ठित हो, निर्लेप हो, अपहरित हो और विशुद्ध हो, उतने काल को एक 'पल्योपम काल' कहते हैं। सागरोपम के प्रमाणको बतलाने वाली गाथाका अर्थ इस प्रकार है—पल्योपमका जो प्रमाण ऊपर बतलाया गया है, वैसे दस कोटाकोटि पल्योपमका एक सागरोपम होता है।

चार कोटाकोटि सागरोपम का एक 'सुषमसुषमा' आरा होता है। तीन कोडाकोडि सागरोपमका एक 'सुषमा' आरा होता है। दो कोटाकोटि सागरोपम का एक 'सुषम-दुःषमा' आरा होता है। बयालीस हजार वर्ष कम एक कोटाकोटि

सागरोपमका एक 'दुःषम-सुषमा' आरा होता है। इक्कीस हजार वर्षका एक 'दुःषम' आरा होता है और इक्कीस हजार वर्षका एक 'दुःषम-दुःषमा' आरा होता है। इसी प्रकार उत्सर्पिणी कालमें इक्कीस हजार वर्षका पहला दुःषम-दुःषमा आरा होता है और इक्कीस हजार वर्षका दूसरा दुःषम आरा होता है। बयालीस हजार वर्ष कम एक कोटाकोटि सागरोपमका तीसरा दुःषम-सुषमा आरा होता है। दो कोटाकोटि सागरोपमका चौथा सुषमदुःषमा आरा होता है। तीन कोटाकोटि सागरोपमका पाँचवां सुषमा आरा होता है। चार कोटाकोटि सागरोपम का छठा सुषमसुषमा आरा होता है। इस प्रकार दस कोटाकोटि सागरोपमका एक 'अवसर्पिणी काल' होता है और दस कोटाकोटि सागरोपमका एक 'उत्सर्पिणी काल' होता है। बीस कोटाकोटि सागरोपमका एक 'अवसर्पिणी उत्सर्पिणी काल चक्र' होता है ॥२४६॥

भगवन्! इस जम्बूद्वीप नामक द्वीपमें उत्तमार्थ प्राप्त इस अवसर्पिणी कालमें सुषमसुषमा नामक आरेमें भरतक्षेत्रके किस प्रकारके आकार भाव प्रत्यवतार अर्थात् आकारोंका और पदार्थोंका आविर्भाव था? गौतम! भूमिभाग बहुत सम होनेसे अत्यन्त रमणीय था। जैसे कि—मुरज अर्थात् तबलेका मुखपट हो वैसा बहुसम भरतक्षेत्रका भूमिभाग था। इस प्रकार उस समयके भरतक्षेत्र के लिए उत्तरकुरुकी वक्तव्यता के समान वक्तव्यता कहनी चाहिए, यावत् बैठते हैं, सोते हैं। उस कालमें भरतक्षेत्रके उन उन देशोंके उन उन स्थलों में उदार—प्रधान उद्दालक यावत् कुश और विकुशसे विशुद्ध वृक्षमूल थे, यावत् छह प्रकारके मनुष्य थे। यथा—१ पद्म गन्ध—पद्म के समान गन्ध वाले, २ मृग गन्ध—कस्तूरीके समान गन्ध वाले, ३ अमम—ममत्व रहित, ४ तेजतली अर्थात् तेजस्वी और रूपवान्, ५ सहा—सहनशील, ६ शनैश्चर अर्थात् उत्सुकता रहित होनेसे मन्द मन्द (धीरे धीरे) गति करने वाले—गज गति वाले। इस तरह छह प्रकारके मनुष्य थे। हे भगवन्! यह इसी प्रकार है···। ऐसा कहकर यावत् गौतमस्वामी विचरते हैं ॥२४७॥

॥ छठे शतक का सातवाँ उद्देशक समाप्त ॥

—०—

शतक ६ उद्देशक ८—पृथ्वियों के नीचे ग्रामादि नहीं हैं

भगवन्! कितनी पृथ्वियां कही गई हैं? गौतम! आठ पृथ्वियां कही गई हैं। यथा—१ रत्नप्रभा, २ शर्कराप्रभा, ३ बालुकाप्रभा, ४ पङ्कप्रभा, ५ धूमप्रभा, ६ तमःप्रभा, ७ महातमःप्रभा और ८ ईषत्प्राग्भारा। भगवन्! क्या

रत्नप्रभापृथ्वीके नीचे गृह (घर) या गृहापण (दूकानें) हैं ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। अर्थात् इस रत्नप्रभा पृथ्वीके नीचे गृह या गृहापण नहीं हैं। भगवन् ! क्या इस रत्नप्रभा पृथ्वीके नीचे ग्राम यावत् सन्निवेश हैं ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। इस रत्नप्रभा पृथ्वीके नीचे ग्राम यावत् सन्निवेश नहीं हैं। भगवन् ! क्या इस रत्नप्रभा पृथ्वीके नीचे महामेघ संस्वेद को प्राप्त होते हैं, सम्मूच्छित होते हैं और वर्षा बरसाते हैं ? हाँ गौतम ! महामेघ संस्वेदको प्राप्त होते हैं, सम्मूच्छित होते हैं और वर्षा बरसाते हैं। यह सब कार्य देव भी करते हैं, असुरकुमार भी करते हैं और नागकुमार भी करते हैं। भगवन् ! क्या इस रत्नप्रभा पृथ्वीके नीचे बादर स्तनित शब्द है ? हां गौतम ! है। इसको देव आदि तीनों करते हैं। भगवन् ! क्या इस रत्नप्रभा पृथ्वीके नीचे बादर अग्निकाय है ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। यह निषेध विग्रह गति समापन्न जीवोंके सिवाय दूसरे जीवोंके लिए समझना चाहिए। भगवन् ! क्या इस रत्नप्रभा पृथ्वीके नीचे चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारारूप हैं ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। भगवन् ! क्या इस रत्नप्रभा पृथ्वीके नीचे चन्द्राभा (चन्द्र का प्रकाश) या सूर्याभा (सूर्य का प्रकाश) है ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। इसी प्रकार दूसरी पृथ्वी के लिए भी कहना चाहिए। इसी तरह तीसरी पृथ्वीके लिये भी कहना चाहिए, किन्तु इतनी विशेषता है कि वहाँ देव भी करते हैं, असुर भी करते हैं, किन्तु नागकुमार नहीं करते। इसी तरह चौथी पृथ्वीके लिये भी कहना चाहिये, किन्तु इतनी विशेषता है कि वहां केवल देव ही करते हैं, किन्तु असुरकुमार और नागकुमार दोनों नहीं करते। इस प्रकार शेष सब नीचे की पृथ्वियोंमें केवल देव ही करते हैं, किन्तु असुरकुमार और नागकुमार दोनों नहीं करते।

भगवन् ! क्या सौधर्म देवलोक कौर ईशान देवलोकके नीचे गृह या गृहापण हैं ? ......नहीं है। अर्थात् वहाँ गृह और गृहापण नहीं हैं। भगवन् ! क्या सौधर्म देवलोक और ईशान देवलोक के नीचे महामेघ हैं ? हाँ, गौतम ! महामेघ हैं। उनको देव भी करते हैं, असुरकुमार भी करते हैं और नागकुमार भी करते हैं। इसी तरह स्तनित शब्द के लिए भी कहना चाहिए। भगवन् ! क्या वहाँ (सौधर्म देवलोक और ईशान देवलोक के नीचे) बादर पृथ्वीकाय और बादर अग्निकाय है ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। यह निषेध विग्रहगति समापन्न जीवोंके सिवाय दूसरे जीवों के लिए जानना चाहिए।

भगवन् ! क्या वहां चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारारूप हैं ? गौतम ! ......नहीं है। भगवन् ! क्या वहां ग्रामादि हैं ? गौतम ! ......नहीं है। भगवन् ! क्या वहां चन्द्राभा और सूर्याभा है ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

इसी प्रकार सनत्कुमार और माहेन्द्र देवलोक तक कहना चाहिए, किन्तु इतनी विशेषता है कि वहाँ केवल देव ही करते हैं। इसी प्रकार ब्रह्मदेवलोक और ब्रह्म-देवलोक से ऊपर सब जगह देव करते हैं। सब जगह बादर अप्काय, बादर अग्नि-काय और बादर वनस्पतिकाय के विषयमें प्रश्न करना चाहिए। शेष सब पहले की तरह कहना चाहिए। गाथा का अर्थ इस प्रकार है—तमस्काय में और पांच देवलोकों तकमें अग्निकाय और पृथ्वीकायके सम्बन्ध में प्रश्न करना चाहिए। रत्नप्रभा आदि पृथ्वियों में अग्निकाय के सम्बन्धमें प्रश्न करना चाहिए। पांचवें देवलोक से ऊपर सब स्थानों में तथा कृष्णराजियोंमें अप्काय, तेउकाय और वनस्पतिकायके सम्बन्ध में प्रश्न करना चाहिये ॥२४८॥

भगवन् ! आयुष्य बन्ध कितने प्रकार का कहा गया है ? गौतम ! आयुष्य बन्ध छह प्रकार का कहा गया है। यथा—१ जातिनामनिधत्तायु, २ गतिनाम-निधत्तायु, ३ स्थितिनामनिधत्तायु, ४ अवगाहनानामनिधत्तायु, ५ प्रदेशनामनिध-त्तायु और ६ अनुभागनामनिधत्तायु। यावत् वैमानिकों तक दण्डक कहना चाहिए। भगवन् ! क्या जीव जातिनामनिधत्त हैं ? यावत् अनुभागनामनिधत्त हैं ? गौतम ! जीव जातिनामनिधत्त भी हैं, यावत् अनुभागनामनिधत्त भी हैं। यह दण्डक यावत् वैमानिक देवों तक कहना चाहिए। भगवन् ! क्या जीव जाति-नामनिधत्तायु हैं, यावत् अनुभागनामनिधत्तायु हैं ? गौतम ! जीव जातिनाम-निधत्तायु भी हैं, यावत् अनुभागनामनिधत्तायु भी हैं। यह दण्डक यावत् वैमानिकों तक कहना चाहिये। इस प्रकार ये बारह दण्डक हुए।

भगवन् ! क्या जीव जातिनामनिधत्त हैं ? जातिनामनिधत्तायु हैं ? जातिनामनियुक्त हैं ? जातिनामनियुक्तायु हैं? जातिगोत्रनिधत्त हैं ? जातिगोत्र-निधत्तायु हैं ? जातिगोत्रनियुक्त हैं ? जातिगोत्रनियुक्तायु हैं ? जातिनामगोत्र-निधत्त हैं ? जातिनामगोत्रनिधत्तायु हैं ? जातिनामगोत्रनियुक्त हैं ? जातिनाम-गोत्रनियुक्तायु हैं ? यावत् अनुभागनामगोत्रनियुक्तायु हैं ? गौतम ! जीव जातिनामनिधत्त भी हैं, यावत् अनुभागनामगोत्रनियुक्तायु भी हैं। यह दण्डक यावत् वैमानिकों तक कहना चाहिये ॥२४९॥

भगवन् ! क्या लवण समुद्र उच्छ्रितोदक (उछलते हुए जल वाला) है, या प्रस्तृतोदक (सम जल वाला) है, या क्षुब्ध जल वाला है, अथवा अक्षुब्ध जल वाला है ? गौतम ! लवणसमुद्र उच्छ्रितोदक अर्थात् उछलते हुए जल वाला है, किन्तु प्रस्तृतोदक—सम जल वाला नहीं है। क्षुब्ध जल वाला है, किन्तु अक्षुब्ध जल वाला नहीं है। यहां से प्रारम्भ करके जिस प्रकार जीवाभिगम सूत्र में कहा है, उसी प्रकार से जान लेना चाहिए, यावत् इस कारण हे गौतम ! बाहर के समुद्र पूर्ण, पूर्ण प्रमाण वाले, छलाछल भरे हुए, छलकते हुए और समभर घटरूप

से अर्थात् परिपूर्ण भरे हुए घड़ेके समान तथा संस्थानसे एक ही तरह के स्वरूप वाले हैं, किन्तु विस्तार की अपेक्षा अनेक प्रकार के स्वरूप वाले हैं। द्विगुण द्विगुण प्रमाण वाले हैं, अर्थात् अपने पूर्ववर्ती द्वीपसे दुगुने प्रमाण वाले हैं। यावत् इस तिर्च्छे लोकमें असंख्य द्वीप समुद्र हैं। सबके अन्त में स्वयम्भूरमण समुद्र है। हे श्रमणायुष्मन्! इस प्रकार द्वीप और समुद्र कहे गये हैं। भगवन्! द्वीपों और समुद्रोंके कितने नाम कहे गये हैं? गौतम! इस लोक में जितने शुभ नाम हैं, शुभ रूप, शुभ गन्ध, शुभ रस और शुभ स्पर्श हैं, उतने ही द्वीप और समुद्रोंके नाम कहे गये हैं। इस प्रकार सब द्वीप समुद्र शुभ नाम वाले हैं। उद्धार परिणाम और सब जीवोंका उत्पाद कहना चाहिए। भगवन्! यह इसी प्रकार है।......ऐसा कह कर यावत् विचरते हैं ॥२५०॥

॥ छठे शतक का आठवां उद्देशक समाप्त ॥

शतक ६ उद्देशक ९

भगवन्! ज्ञानावरणीयकर्म बांधता हुआ जीव कितनी कर्म प्रकृतियों को बांधता है। गौतम! सात प्रकारसे बांधता है, आठ प्रकार से बांधता है और छह प्रकार से बांधता है। यहां प्रज्ञापना सूत्र का बंध उद्देशक कहना चाहिये ॥२५१॥

भगवन्! क्या महर्द्धिक यावत् महानुभाग वाला देव बाहरके पुद्गलोंको ग्रहण किये बिना एक वर्ण वाले और एक आकार वाले स्वशरीर आदिकी विकुर्वणा कर सकता है? गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है। भगवन्! क्या वह देव बाहरके पुद्गलोंको ग्रहण करके उपर्युक्त रूपसे विकुर्वणा कर सकता है? हां, गौतम कर सकता है। भगवन्! क्या वह देव इहगत अर्थात् यहां रहे हुए पुद्गलोंको ग्रहण करके विकुर्वणा करता है? या तत्रगत अर्थात् वहां—देवलोकमें रहे हुए पुद्गलोंको ग्रहण करके विकुर्वणा करता है? या अन्यत्रगत अर्थात् किसी दूसरे स्थान पर रहे हुए पुद्गलोंको ग्रहण करके विकुर्वणा करता है? गौतम! यहां रहे हुए और दूसरे स्थान पर रहे हुए पुद्गलोंको ग्रहण करके विकुर्वणा नहीं करता, किन्तु वहां देवलोक में रहे हुए तथा जहां विकुर्वणा करता है, वहां के पुद्गलोंको ग्रहण करके विकुर्वणा करता है। इस प्रकार इस गम (आलापक) द्वारा विकुर्वणाके चार भंग कहने चाहियें। यथा—१ एक वर्ण वाला एक आकार वाला, २ एक वर्णवाला अनेक आकार वाला, ३ अनेक वर्ण वाला एक आकार वाला और ४ अनेक वर्ण वाला अनेक आकार वाला।

भगवन्! क्या महर्द्धिक यावत् महानुभाग वाला देव बाहरके पुद्गलोंको

ग्रहण किये बिना काले पुद्गलोंको नील पुद्गलपने और नील पुद्गलको काले पुद्गलपने परिणमाने में समर्थ है? गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है। किन्तु बाहरी पुद्गलोंको ग्रहण करके वैसा करनेमें समर्थ है। भगवन्! क्या वह देव इहगत पुद्गलोंको या तत्रगत पुद्गलोंको या अन्यत्रगत पुद्गलोंको ग्रहण करके वैसा करनेमें समर्थ है? गौतम! वह इहगत और अन्यत्रगत पुद्गलोंको ग्रहण करके वैसा नहीं कर सकता, किन्तु तत्रगत पुद्गलोंको ग्रहण करके वैसा करनेमें समर्थ है। इसी प्रकार काले पुद्गलोंको लाल, पीला और शुक्ल परिणमाने में समर्थ है। इसी प्रकार नीले पुद्गलके साथ यावत् शुक्ल, लाल पुद्गलके साथ यावत् शुक्ल, हारिद्र (पीला) के साथ यावत् शुक्ल तक कहना चाहिये। इसी क्रमसे गन्ध, रस और स्पर्शके विषयमें भी कहना चाहिये। यावत् कर्कश स्पर्श वाले पुद्गलको कोमल स्पर्श वाले पुद्गलपने परिणमाने में समर्थ है। इस प्रकार दो दो विरुद्ध गुणोंको अर्थात् गुरु और लघु, शीत और उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष वर्णादि को सर्वत्र परिणमाता है। 'परिणमाने' इस क्रियाके साथ यहां दो दो आलापक कहने चाहियें। यथा—१—पुद्गलोंको ग्रहण करके परिणमाता है। २—पुद्गलोंको ग्रहण नहीं करके नहीं परिणमाता ॥२५२॥

भगवन्! क्या अविशुद्ध लेश्या वाला देव अनुपयोगयुक्त आत्मासे अविशुद्ध लेश्या वाले देवको या देवीको या अन्यतरको अर्थात् देव और देवीमें से किसी एक को जानता और देखता है? गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है। २—इसी तरह अविशुद्ध लेश्या वाला देव अनुपयुक्त आत्मासे विशुद्ध लेश्या वाले देवको देवीको या अन्यतरको जानता है और देखता है? ३—अविशुद्ध लेश्या वाला देव उपयुक्त आत्मा द्वारा अविशुद्ध लेश्या वाले देवको इत्यादि? ४—अविशुद्ध लेश्या वाला देव उपयुक्त आत्मा द्वारा विशुद्ध लेश्या वाले देवको इत्यादि? ५—अविशुद्ध लेश्या वाला देव उपयुक्तानुपयुक्त आत्मा द्वारा अविशुद्ध लेश्या वाले देवको इत्यादि। ६—अविशुद्ध लेश्या वाला देव उपयुक्तानुपयुक्त आत्मा द्वारा विशुद्ध लेश्या वाले देव को इत्यादि। ७—विशुद्ध लेश्या वाला देव अनुपयुक्त आत्मा द्वारा अविशुद्ध लेश्या वाले देवको इत्यादि। ८—विशुद्ध लेश्या वाला देव अनुपयुक्त आत्मा द्वारा विशुद्ध लेश्या वाले देव देवी या अन्यतरको जानता और देखता है? इन आठों प्रश्नोंका उत्तर यह है कि—यह अर्थ समर्थ नहीं है अर्थात् नहीं जानता और नहीं देखता।

भगवन्! क्या विशुद्ध लेश्या वाला देव उपयुक्त आत्मा द्वारा अविशुद्ध लेश्या वाले देव, देवी और अन्यतरको जानता और देखता है? हां गौतम! जानता और देखता है। भगवन्! क्या विशुद्ध लेश्या वाला देव उपयुक्तानुपयुक्त आत्मा द्वारा अविशुद्ध लेश्या वाले देवादिको जानता देखता है? तथा विशुद्ध

से अर्थात् परिपूर्ण भरे हुए घड़ेके समान तथा संस्थानसे एक ही तरह के स्वरूप वाले हैं, किन्तु विस्तार की अपेक्षा अनेक प्रकार के स्वरूप वाले हैं। द्विगुण द्विगुण प्रमाण वाले हैं, अर्थात् अपने पूर्ववर्ती द्वीपसे दुगुने प्रमाण वाले हैं। यावत् इस तिर्च्छे लोकमें असंख्य द्वीप समुद्र हैं। सबके अन्त में स्वयम्भूरमण समुद्र है। हे श्रमणायुष्मन्! इस प्रकार द्वीप और समुद्र कहे गये हैं। भगवन्! द्वीपों और समुद्रोंके कितने नाम कहे गये हैं? गौतम! इस लोक में जितने शुभ नाम हैं, शुभ रूप, शुभ गन्ध, शुभ रस और शुभ स्पर्श हैं, उतने ही द्वीप और समुद्रोंके नाम कहे गये हैं। इस प्रकार सब द्वीप समुद्र शुभ नाम वाले हैं। उद्धार परिणाम और सब जीवोंका उत्पाद कहना चाहिए। भगवन्! यह इसी प्रकार है।......ऐसा कह कर यावत् विचरते हैं ॥२५०॥

॥ छठे शतक का आठवां उद्देशक समाप्त ॥

शतक ६ उद्देशक ९

भगवन्! ज्ञानावरणीयकर्म बांधता हुआ जीव कितनी कर्म प्रकृतियों को बांधता है। गौतम! सात प्रकारसे बांधता है, आठ प्रकार से बांधता है और छह प्रकार से बांधता है। यहां प्रज्ञापना सूत्र का बंध उद्देशक कहना चाहिये ॥२५१॥

भगवन्! क्या महर्द्धिक यावत् महानुभाग वाला देव बाहरके पुद्गलोंको ग्रहण किये बिना एक वर्ण वाले और एक आकार वाले स्वशरीर आदिकी विकुर्वणा कर सकता है? गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है। भगवन्! क्या वह देव बाहरके पुद्गलोंको ग्रहण करके उपर्युक्त रूपसे विकुर्वणा कर सकता है? हां, गौतम कर सकता है। भगवन्! क्या वह देव इहगत अर्थात् यहां रहे हुए पुद्गलोंको ग्रहण करके विकुर्वणा करता है? या तत्रगत अर्थात् वहां—देवलोकमें रहे हुए पुद्गलोंको ग्रहण करके विकुर्वणा करता है? या अन्यत्रगत अर्थात् किसी दूसरे स्थान पर रहे हुए पुद्गलोंको ग्रहण करके विकुर्वणा करता है? गौतम! यहां रहे हुए और दूसरे स्थान पर रहे हुए पुद्गलोंको ग्रहण करके विकुर्वणा नहीं करता, किन्तु वहां देवलोक में रहे हुए तथा जहां विकुर्वणा करता है, वहां के पुद्गलोंको ग्रहण करके विकुर्वणा करता है। इस प्रकार इस गम (आलापक) द्वारा विकुर्वणाके चार भंग कहने चाहियें। यथा—१ एक वर्ण वाला एक आकार वाला, २ एक वर्णवाला अनेक आकार वाला, ३ अनेक वर्ण वाला एक आकार वाला और ४ अनेक वर्ण वाला अनेक आकार वाला।

भगवन्! क्या महर्द्धिक यावत् महानुभाग वाला देव बाहरके पुद्गलोंको

ग्रहण किये बिना काले पुद्गलोंको नील पुद्गलपने और नील पुद्गलको काले पुद्गलपने परिणमाने में समर्थ है ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। किन्तु बाहरी पुद्गलोंको ग्रहण करके वैसा करनेमें समर्थ है। भगवन् ! क्या वह देव इह-गत पुद्गलोंको या तत्रगत पुद्गलोंको या अन्यत्रगत पुद्गलोंको ग्रहण करके वैसा करनेमें समर्थ है ? गौतम ! वह इहगत और अन्यत्रगत पुद्गलोंको ग्रहण करके वैसा नहीं कर सकता, किन्तु तत्रगत पुद्गलोंको ग्रहण करके वैसा करनेमें समर्थ है। इसी प्रकार काले पुद्गलोंको लाल, पीला और शुक्ल परिणमाने में समर्थ है। इसी प्रकार नीले पुद्गलके साथ यावत् शुक्ल, लाल पुद्गलके साथ यावत् शुक्ल, हारिद्र (पीला) के साथ यावत् शुक्ल तक कहना चाहिये। इसी क्रमसे गन्ध, रस और स्पर्शके विषयमें भी कहना चाहिये। यावत् कर्कश स्पर्श वाले पुद्गलको कोमल स्पर्श वाले पुद्गलपने परिणमाने में समर्थ है। इस प्रकार दो दो विरुद्ध गुणोंको अर्थात् गुरु और लघु, शीत और उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष वर्णादि को सर्वत्र परिणमाता है। 'परिणमाने' इस क्रियाके साथ यहां दो दो आलापक कहने चाहियें। यथा—१—पुद्गलोंको ग्रहण करके परिणमाता है। २—पुद्गलोंको ग्रहण नहीं करके नहीं परिणमाता ॥२५२॥

भगवन् ! क्या अविशुद्ध लेश्या वाला देव अनुपयोगयुक्त आत्मासे अविशुद्ध लेश्या वाले देवको या देवीको या अन्यतरको अर्थात् देव और देवीमें से किसी एक को जानता और देखता है ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। २—इसी तरह अविशुद्ध लेश्या वाला देव अनुपयुक्त आत्मासे विशुद्ध लेश्या वाले देवको देवीको या अन्यतरको जानता है और देखता है ? ३—अविशुद्ध लेश्या वाला देव उपयुक्त आत्मा द्वारा अविशुद्ध लेश्या वाले देवको इत्यादि ? ४—अविशुद्ध लेश्या वाला देव उपयुक्त आत्मा द्वारा विशुद्ध लेश्या वाले देवको इत्यादि ? ५—अविशुद्ध लेश्या वाला देव उपयुक्तानुपयुक्त आत्मा द्वारा अविशुद्ध लेश्या वाले देवको इत्यादि। ६—अविशुद्ध लेश्या वाला देव उपयुक्तानुपयुक्त आत्मा द्वारा विशुद्ध लेश्या वाले देव को इत्यादि। ७—विशुद्ध लेश्या वाला देव अनुपयुक्त आत्मा द्वारा अविशुद्ध लेश्या वाले देवको इत्यादि। ८—विशुद्ध लेश्या वाला देव अनुपयुक्त आत्मा द्वारा विशुद्ध लेश्या वाले देव देवी या अन्यतरको जानता और देखता है ? इन आठों प्रश्नोंका उत्तर यह है कि—यह अर्थ समर्थ नहीं है अर्थात् नहीं जानता और नहीं देखता।

भगवन् ! क्या विशुद्ध लेश्या वाला देव उपयुक्त आत्मा द्वारा अविशुद्ध लेश्या वाले देव, देवी और अन्यतरको जानता और देखता है ? हां गौतम ! जानता और देखता है। भगवन् ! क्या विशुद्ध लेश्या वाला देव उपयुक्तानुपयुक्त आत्मा द्वारा अविशुद्ध लेश्या वाले देवादिको जानता देखता है ? तथा विशुद्ध

से अर्थात् परिपूर्ण भरे हुए घड़ेके समान तथा संस्थानसे एक ही तरह के स्वरूप वाले हैं, किन्तु विस्तार की अपेक्षा अनेक प्रकार के स्वरूप वाले हैं। द्विगुण द्विगुण प्रमाण वाले हैं, अर्थात् अपने पूर्ववर्ती द्वीपसे दुगुने प्रमाण वाले हैं। यावत् इस तिर्च्छे लोकमें असंख्य द्वीप समुद्र हैं। सबके अन्त में स्वयम्भूरमण समुद्र है। हे श्रमणायुष्मन्! इस प्रकार द्वीप और समुद्र कहे गये हैं। भगवन्! द्वीपों और समुद्रोंके कितने नाम कहे गये हैं? गौतम! इस लोक में जितने शुभ नाम हैं, शुभ रूप, शुभ गन्ध, शुभ रस और शुभ स्पर्श हैं, उतने ही द्वीप और समुद्रोंके नाम कहे गये हैं। इस प्रकार सब द्वीप समुद्र शुभ नाम वाले हैं। उद्धार परिणाम और सब जीवोंका उत्पाद कहना चाहिए। भगवन्! यह इसी प्रकार है।......ऐसा कह कर यावत् विचरते हैं ॥२५०॥

॥ छठे शतक का आठवां उद्देशक समाप्त ॥

शतक ६ उद्देशक ९

भगवन्! ज्ञानावरणीयकर्म बांधता हुआ जीव कितनी कर्म प्रकृतियों को बांधता है। गौतम! सात प्रकारसे बांधता है, आठ प्रकार से बांधता है और छह प्रकार से बांधता है। यहां प्रज्ञापना सूत्र का बंध उद्देशक कहना चाहिये ॥२५१॥

भगवन्! क्या महर्द्धिक यावत् महानुभाग वाला देव बाहरके पुद्गलोंको ग्रहण किये बिना एक वर्ण वाले और एक आकार वाले स्वशरीर आदिकी विकुर्वणा कर सकता है? गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है। भगवन्! क्या वह देव बाहरके पुद्गलोंको ग्रहण करके उपर्युक्त रूपसे विकुर्वणा कर सकता है? हां, गौतम कर सकता है। भगवन्! क्या वह देव इहगत अर्थात् यहां रहे हुए पुद्गलोंको ग्रहण करके विकुर्वणा करता है? या तत्रगत अर्थात् वहां— देवलोकमें रहे हुए पुद्गलोंको ग्रहण करके विकुर्वणा करता है? या अन्यत्रगत अर्थात् किसी दूसरे स्थान पर रहे हुए पुद्गलोंको ग्रहण करके विकुर्वणा करता है? गौतम! यहां रहे हुए और दूसरे स्थान पर रहे हुए पुद्गलोंको ग्रहण करके विकुर्वणा नहीं करता, किन्तु वहां देवलोक में रहे हुए तथा जहां विकुर्वणा करता है, वहां के पुद्गलोंको ग्रहण करके विकुर्वणा करता है। इस प्रकार इस गम (आलापक) द्वारा विकुर्वणाके चार भंग कहने चाहियें। यथा—१ एक वर्ण वाला एक आकार वाला, २ एक वर्णवाला अनेक आकार वाला, ३ अनेक वर्ण वाला एक आकार वाला और ४ अनेक वर्ण वाला अनेक आकार वाला।

भगवन्! क्या महर्द्धिक यावत् महानुभाग वाला देव बाहरके पुद्गलोंको

ग्रहण किये बिना काले पुद्गलोंको नील पुद्गलपने और नील पुद्गलको काले पुद्गलपने परिणमाने में समर्थ है ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। किन्तु बाहरी पुद्गलोंको ग्रहण करके वैसा करनेमें समर्थ है। भगवन् ! क्या वह देव इहगत पुद्गलोंको या तत्रगत पुद्गलोंको या अन्यत्रगत पुद्गलोंको ग्रहण करके वैसा करनेमें समर्थ है ? गौतम ! वह इहगत और अन्यत्रगत पुद्गलोंको ग्रहण करके वैसा नहीं कर सकता, किन्तु तत्रगत पुद्गलोंको ग्रहण करके वैसा करनेमें समर्थ है। इसी प्रकार काले पुद्गलोंको लाल, पीला और शुक्ल परिणमाने में समर्थ है। इसी प्रकार नीले पुद्गलके साथ यावत् शुक्ल, लाल पुद्गलके साथ यावत् शुक्ल, हारिद्र (पीला) के साथ यावत् शुक्ल तक कहना चाहिये। इसी क्रमसे गन्ध, रस और स्पर्शके विषयमें भी कहना चाहिये। यावत् कर्कश स्पर्श वाले पुद्गलको कोमल स्पर्श वाले पुद्गलपने परिणमाने में समर्थ है। इस प्रकार दो दो विरुद्ध गुणोंका अर्थात् गुरु और लघु, शीत और उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष वर्णादि को सर्वत्र परिणमाता है। 'परिणमाने' इस क्रियाके साथ यहां दो दो आलापक कहने चाहियें। यथा—१—पुद्गलोंको ग्रहण करके परिणमाता है। २—पुद्गलोंको ग्रहण नहीं करके नहीं परिणमाता ॥२५२॥

भगवन् ! क्या अविशुद्ध लेश्या वाला देव अनुपयोगयुक्त आत्मासे अविशुद्ध लेश्या वाले देवको या देवीको या अन्यतरको अर्थात् देव और देवीमें से किसी एक को जानता और देखता है ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। २—इसी तरह अविशुद्ध लेश्या वाला देव अनुपयुक्त आत्मासे विशुद्ध लेश्या वाले देवको देवीको या अन्यतरको जानता है और देखता है ? ३—अविशुद्ध लेश्या वाला देव उपयुक्त आत्मा द्वारा अविशुद्ध लेश्या वाले देवको इत्यादि ? ४—अविशुद्ध लेश्या वाला देव उपयुक्त आत्मा द्वारा विशुद्ध लेश्या वाले देवको इत्यादि ? ५—अविशुद्ध लेश्या वाला देव उपयुक्तानुपयुक्त आत्मा द्वारा अविशुद्ध लेश्या वाले देवको इत्यादि। ६—अविशुद्ध लेश्या वाला देव उपयुक्तानुपयुक्त आत्मा द्वारा विशुद्ध लेश्या वाले देव को इत्यादि। ७—विशुद्ध लेश्या वाला देव अनुपयुक्त आत्मा द्वारा अविशुद्ध लेश्या वाले देवको इत्यादि। ८—विशुद्ध लेश्या वाला देव अनुपयुक्त आत्मा द्वारा विशुद्ध लेश्या वाले देव देवी या अन्यतरको जानता और देखता है ? इन आठों प्रश्नोंका उत्तर यह है कि—यह अर्थ समर्थ नहीं है अर्थात् नहीं जानता और नहीं देखता।

भगवन् ! क्या विशुद्ध लेश्या वाला देव उपयुक्त आत्मा द्वारा अविशुद्ध लेश्या वाले देव, देवी और अन्यतरको जानता और देखता है ? हां गौतम ! जानता और देखता है। भगवन् ! क्या विशुद्ध लेश्या वाला देव उपयुक्तानुपयुक्त आत्मा द्वारा अविशुद्ध लेश्या वाले देवादिको जानता देखता है ? तथा विशुद्ध

लेश्या वाला देव उपयुक्तानुपयुक्त आत्मा द्वारा विशुद्ध लेश्या वाले देवादिको जानता और देखता है ? हां गौतम ! जानता और देखता है । पहले जो आठ भंग कहे गये हैं, उन में नहीं जानता और नहीं देखता । पीछे जो चार भंग कहे गये हैं, उनमें जानता और देखता है । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।...॥२५३॥

॥ छठे शतक का नौवां उद्देशक समाप्त ॥

शतक ६ उद्देशक १०

भगवन् ! अन्यतीर्थिक इस प्रकार कहते हैं, यावत् प्ररूपणा करते हैं कि राजगृह नगरमें जितने जीव हैं, उन सबके दुःख या सुखको बोर गुठली प्रमाण, वाल (एक प्रकारका धान्य) प्रमाण, कलाय (मटर) प्रमाण, चावल प्रमाण, उड़द प्रमाण, मूंग प्रमाण, यूका (जूं) प्रमाण, लिक्षा (लीख) प्रमाण भी बाहर निकाल कर नहीं दिखा सकता है । भगवन् ! यह बात किस प्रकार हो सकती है ? गौतम ! जो अन्यतीर्थिक उपरोक्त रूपसे कहते हैं और प्ररूपणा करते हैं, वे मिथ्या कहते हैं । गौतम ! मैं इस प्रकार कहता हूं यावत् प्ररूपणा करता हूं कि सम्पूर्ण लोकमें रहे हुए सब जीवोंके सुख या दुःखको कोई भी पुरुष उपर्युक्त रूपसे किसी भी प्रमाण में बाहर निकालकर नहीं दिखा सकता ।

भगवन् ! इसका क्या कारण है ? गौतम ! यह जम्बूद्वीप नामका द्वीप एक लाख योजनका लम्बा और एक लाख योजन का चौड़ा है । इसकी परिधि तीन लाख सोलह हजार दो सौ सत्ताइस योजन तीन कोस, १२८ धनुष, १३॥ अंगुलसे कुछ अधिक है । कोई महर्द्धिक यावत् महानुभाग वाला देव एक बड़े विलेपन वाले गन्ध द्रव्यके डिब्बेको लेकर उघाड़े और उघाड़ कर तीन चुटकी बजावे उतने समयमें उपर्युक्त जम्बूद्वीपकी इक्कीस बार परिक्रमा करके वापिस शीघ्र आवे, तो हे गौतम ! उस देवकी इस प्रकार की शीघ्र गतिसे गन्ध-पुद्गलोंके स्पर्शसे यह सम्पूर्ण जम्बूद्वीप स्पृष्ट हुआ या नहीं ? 'हाँ भगवन् ! वह स्पृष्ट हो गया।' गौतम ! कोई पुरुष उन गन्ध पुद्गलोंको बोर की गुठली प्रमाण यावत् लिक्षा प्रमाण भी दिखलानेमें समर्थ है ? 'भगवन् ! यह अर्थ समर्थ नहीं है ।' गौतम ! इसी प्रकार जीवोंके सुख दुःखको बाहर निकाल कर बतलानेमें कोई भी व्यक्ति समर्थ नहीं है ॥२५४॥

भगवन् ! क्या जीव चैतन्य है, या चैतन्य जीव है ? गौतम ! जीव नियमा जीव (चैतन्य) है और जीव (चैतन्य) भी नियमा जीव है । भगवन् ! क्या जीव नैरयिक है, या नैरयिक जीव है ? गौतम ! नैरयिक तो नियमा जीव है और जीव तो नैरयिक भी होता है तथा अनैरयिक भी होता है । भगवन् !

क्या जीव असुरकुमार है, या असुरकुमार जीव है ? गौतम ! असुरकुमार तो नियमा जीव है और जीव तो असुरकुमार भी होता है तथा असुरकुमार नहीं भी होता । इस प्रकार वैमानिक तक सभी दण्डक कहने चाहियें ।

भगवन् ! क्या जो जीता है—प्राण धारण करता है वह जीव कहलाता है, या जो जीव है वह जीता है—प्राण धारण करता है ? गौतम ! जो जीता है–प्राण धारण करता है वह नियमा जीव कहलाता है और जो जीव होता है वह प्राण धारण करता भी है और नहीं भी करता । भगवन् ! जो जीता है वह नैरयिक कहलाता है, या जो नैरयिक होता है वह जीता है–प्राण धारण करता है ? गौतम ! नैरयिक तो नियमा जीता है, किन्तु जो जीता है वह नैरयिक भी होता है और अनैरयिक भी होता है । इस प्रकार यावत् वैमानिक तक सभी दण्डक कहने चाहियें । भगवन् ! जो भवसिद्धिक है वह नैरयिक होता है, या जो नैरयिक होता है वह भवसिद्धिक होता है ? गौतम ! जो भवसिद्धिक होता है वह नैरयिक भी होता है और अनैरयिक भी होता है । तथा जो नैरयिक होता है वह भवसिद्धिक भी होता है और अभवसिद्धिक भी होता है । इस प्रकार वैमानिक पर्यन्त सभी दण्डक कहने चाहियें ॥२५५॥

भगवन् ! अन्यतीर्थिक इस प्रकार कहते हैं, यावत् प्ररूपणा करते हैं कि सभी प्राण, भूत, जीव और सत्त्व, एकान्त दुःख रूप वेदनाको वेदते हैं । भगवन् ! यह किस प्रकार हो सकता है ? गौतम ! अन्यतीर्थिक जो यह कहते हैं और प्ररूपणा करते हैं, वह मिथ्या है । गौतम ! मैं इस प्रकार कहता हूं यावत् प्ररूपणा करता हूं कि कितने ही प्राण, भूत, जीव और सत्त्व, एकान्त दुःख रूप वेदना वेदते हैं और कदाचित् सुख को वेदते हैं । तथा कितने ही प्राण, भूत, जीव और सत्त्व, एकान्त सुख रूप वेदना वेदते हैं और कदाचित् दुःख को वेदते हैं । कितने ही प्राण, भूत, जीव और सत्त्व, विमात्रा (विविध प्रकार) से वेदना वेदते हैं । अर्थात् कदाचित् सुख और कदाचित् दुःख वेदते हैं । भगवन् ! इसका क्या कारण है ? गौतम ! नैरयिक जीव एकान्त दुःख रूप वेदना वेदते हैं और कदाचित् सुख वेदते हैं । भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक ये एकान्त सुख रूप वेदना वेदते हैं और कदाचित् दुःख वेदते हैं । पृथ्वीकाय से लेकर यावत् मनुष्य तक के जीव विमात्रा (विविध प्रकार) से वेदना वेदते हैं । अर्थात् कदाचित् सुख और कदाचित् दुःख वेदते हैं । इस कारण हे गौतम ! उपर्युक्त रूप से कहा गया है ॥२५६॥

भगवन् ! नैरयिक जीव आत्मा द्वारा ग्रहण करके जिन पुद्गलोंका आहार करते हैं, क्या वे आत्मशरीरक्षेत्रावगाढ़ पुद्गलोंको आत्मा द्वारा ग्रहण करके आहार करते हैं ? या अनन्तरक्षेत्रावगाढ़······ ? या परम्पर-

लेश्या वाला देव उपयुक्तानुपयुक्त आत्मा द्वारा विशुद्ध लेश्या वाले देवादिको जानता और देखता है ? हां गौतम ! जानता और देखता है । पहले जो आठ भंग कहे गये हैं, उन में नहीं जानता और नहीं देखता । पीछे जो चार भंग कहे गये हैं,उनमें जानता और देखता है । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।···॥२५३॥

॥ छठे शतक का नौवां उद्देशक समाप्त ॥

शतक ६ उद्देशक १०

भगवन् ! अन्यतीर्थिक इस प्रकार कहते हैं, यावत् प्ररूपणा करते हैं कि राजगृह नगरमें जितने जीव हैं, उन सबके दुःख या सुखको बोर गुठली प्रमाण, वाल (एक प्रकारका धान्य) प्रमाण, कलाय (मटर) प्रमाण, चावल प्रमाण, उड़द प्रमाण, मूंग प्रमाण, यूका (जूं) प्रमाण, लिक्षा (लीख) प्रमाण भी बाहर निकाल कर नहीं दिखा सकता है । भगवन् ! यह बात किस प्रकार हो सकती है ? गौतम ! जो अन्यतीर्थिक उपरोक्त रूपसे कहते हैं और प्ररूपणा करते हैं, वे मिथ्या कहते हैं । गौतम ! मैं इस प्रकार कहता हूं यावत् प्ररूपणा करता हूं कि सम्पूर्ण लोकमें रहे हुए सब जीवोंके सुख या दुःखको कोई भी पुरुष उपर्युक्त रूपसे किसी भी प्रमाण में बाहर निकालकर नहीं दिखा सकता ।

भगवन् ! इसका क्या कारण है ? गौतम ! यह जम्बूद्वीप नामका द्वीप एक लाख योजनका लम्बा और एक लाख योजन का चौड़ा है । इसकी परिधि तीन लाख सोलह हजार दो सौ सत्ताइस योजन तीन कोस, १२८ धनुष, १३॥ अंगुलसे कुछ अधिक है । कोई महर्द्धिक यावत् महानुभाग वाला देव एक बड़े विलेपन वाले गन्ध द्रव्यके डिब्बेको लेकर उघाड़े और उघाड़ कर तीन चुटकी बजावे उतने समयमें उपर्युक्त जम्बूद्वीपकी इक्कीस बार परिक्रमा करके वापिस शीघ्र आवे, तो हे गौतम ! उस देवकी इस प्रकार की शीघ्र गतिसे गन्ध-पुद्गलोंके स्पर्शसे यह सम्पूर्ण जम्बूद्वीप स्पृष्ट हुआ या नहीं ? 'हाँ भगवन् ! वह स्पृष्ट हो गया।' गौतम ! कोई पुरुष उन गन्ध पुद्गलोंको बोर की गुठली प्रमाण यावत् लिक्षा प्रमाण भी दिखलानेमें समर्थ है ? 'भगवन् ! यह अर्थ समर्थ नहीं है ।' गौतम ! इसी प्रकार जीवोंके सुख दुःखको बाहर निकाल कर बतलानेमें कोई भी व्यक्ति समर्थ नहीं है ॥२५४॥

भगवन् ! क्या जीव चैतन्य है, या चैतन्य जीव है ? गौतम ! जीव नियमा जीव (चैतन्य) है और जीव (चैतन्य) भी नियमा जीव है । भगवन् ! क्या जीव नैरयिक है, या नैरयिक जीव है ? गौतम ! नैरयिक तो नियमा जीव है और जीव तो नैरयिक भी होता है तथा अनैरयिक भी होता है । भगवन् !

क्या जीव असुरकुमार है, या असुरकुमार जीव है ? गौतम ! असुरकुमार तो नियमा जीव है और जीव तो असुरकुमार भी होता है तथा असुरकुमार नहीं भी होता । इस प्रकार वैमानिक तक सभी दण्डक कहने चाहियें ।

भगवन् ! क्या जो जीता है—प्राण धारण करता है वह जीव कहलाता है, या जो जीव है वह जीता है—प्राण धारण करता है ? गौतम ! जो जीता है–प्राण धारण करता है वह नियमा जीव कहलाता है और जो जीव होता है वह प्राण धारण करता भी है और नहीं भी करता । भगवन् ! जो जीता है वह नैरयिक कहलाता है, या जो नैरयिक होता है वह जीता है–प्राण धारण करता है ? गौतम ! नैरयिक तो नियमा जीता है, किन्तु जो जीता है वह नैरयिक भी होता है और अनैरयिक भी होता है । इस प्रकार यावत् वैमानिक तक सभी दण्डक कहने चाहियें । भगवन् ! जो भवसिद्धिक है वह नैरयिक होता है, या जो नैरयिक होता है वह भवसिद्धिक होता है ? गौतम ! जो भवसिद्धिक होता है वह नैरयिक भी होता है और अनैरयिक भी होता है । तथा जो नैरयिक होता है वह भवसिद्धिक भी होता है और अभवसिद्धिक भी होता है । इस प्रकार वैमानिक पर्यन्त सभी दण्डक कहने चाहियें ॥२५५॥

भगवन् ! अन्यतीर्थिक इस प्रकार कहते हैं, यावत् प्ररूपणा करते हैं कि सभी प्राण, भूत, जीव और सत्त्व, एकान्त दुःख रूप वेदनाको वेदते हैं । भगवन् ! यह किस प्रकार हो सकता है ? गौतम ! अन्यतीर्थिक जो यह कहते हैं और प्ररूपणा करते हैं, वह मिथ्या है । गौतम ! मैं इस प्रकार कहता हूं यावत् प्ररूपणा करता हूं कि कितने ही प्राण, भूत, जीव और सत्त्व, एकान्त दुःख रूप वेदना वेदते हैं और कदाचित् सुख को वेदते हैं । तथा कितने ही प्राण, भूत, जीव और सत्त्व, एकान्त सुख रूप वेदना वेदते हैं और कदाचित् दुःख को वेदते हैं । कितने ही प्राण, भूत, जीव और सत्त्व, विमात्रा (विविध प्रकार) से वेदना वेदते हैं । अर्थात् कदाचित् सुख और कदाचित् दुःख वेदते हैं । भगवन् ! इसका क्या कारण है ? गौतम ! नैरयिक जीव एकान्त दुःख रूप वेदना वेदते हैं और कदाचित् सुख वेदते हैं । भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक ये एकान्त सुख रूप वेदना वेदते हैं और कदाचित् दुःख वेदते हैं । पृथ्वीकाय से लेकर यावत् मनुष्य तक के जीव विमात्रा (विविध प्रकार) से वेदना वेदते हैं । अर्थात् कदाचित् सुख और कदाचित् दुःख वेदते हैं । इस कारण हे गौतम ! उपर्युक्त रूप से कहा गया है ॥२५६॥

भगवन् ! नैरयिक जीव आत्मा द्वारा ग्रहण करके जिन पुद्गलोंका आहार करते हैं, क्या वे आत्मशरीरक्षेत्रावगाढ़ पुद्गलोंको आत्मा द्वारा ग्रहण करके आहार करते हैं ? या अनन्तरक्षेत्रावगाढ़······ ? या परम्पर-

लेश्या वाला देव उपयुक्तानुपयुक्त आत्मा द्वारा विशुद्ध लेश्या वाले देवादिको जानता और देखता है ? हां गौतम ! जानता और देखता है । पहले जो आठ भंग कहे गये हैं, उन में नहीं जानता और नहीं देखता । पीछे जो चार भंग कहे गये हैं,उनमें जानता और देखता है । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।···॥२५३॥

॥ छठे शतक का नौवां उद्देशक समाप्त ॥

शतक ६ उद्देशक १०

भगवन् ! अन्यतीर्थिक इस प्रकार कहते हैं, यावत् प्ररूपणा करते हैं कि राजगृह नगरमें जितने जीव हैं, उन सबके दुःख या सुखको बोर गुठली प्रमाण, वाल (एक प्रकारका धान्य) प्रमाण, कलाय (मटर) प्रमाण, चावल प्रमाण, उड़द प्रमाण, मूंग प्रमाण, यूका (जूं) प्रमाण, लिक्षा (लीख) प्रमाण भी बाहर निकाल कर नहीं दिखा सकता है । भगवन् ! यह बात किस प्रकार हो सकती है ? गौतम ! जो अन्यतीर्थिक उपरोक्त रूपसे कहते हैं और प्ररूपणा करते हैं, वे मिथ्या कहते हैं । गौतम ! मैं इस प्रकार कहता हूं यावत् प्ररूपणा करता हूं कि सम्पूर्ण लोकमें रहे हुए सब जीवोंके सुख या दुःखको कोई भी पुरुष उपर्युक्त रूपसे किसी भी प्रमाण में बाहर निकालकर नहीं दिखा सकता ।

भगवन् ! इसका क्या कारण है ? गौतम ! यह जम्बूद्वीप नामका द्वीप एक लाख योजनका लम्बा और एक लाख योजन का चौड़ा है । इसकी परिधि तीन लाख सोलह हजार दो सौ सत्ताइस योजन तीन कोस, १२८ धनुष, १३॥ अंगुलसे कुछ अधिक है । कोई महर्द्धिक यावत् महानुभाग वाला देव एक बड़े विलेपन वाले गन्ध द्रव्यके डिब्बेको लेकर उघाड़े और उघाड़ कर तीन चुटकी बजावे उतने समयमें उपर्युक्त जम्बूद्वीपकी इक्कीस बार परिक्रमा करके वापिस शीघ्र आवे, तो हे गौतम ! उस देवकी इस प्रकार की शीघ्र गतिसे गन्ध-पुद्गलोंके स्पर्शसे यह सम्पूर्ण जम्बूद्वीप स्पृष्ट हुआ या नहीं ? 'हाँ भगवन् ! वह स्पृष्ट हो गया।' गौतम ! कोई पुरुष उन गन्ध पुद्गलोंको बोर की गुठली प्रमाण यावत् लिक्षा प्रमाण भी दिखलानेमें समर्थ है ? 'भगवन् ! यह अर्थ समर्थ नहीं है ।' गौतम ! इसी प्रकार जीवोंके सुख दुःखको बाहर निकाल कर बतलानेमें कोई भी व्यक्ति समर्थ नहीं है ॥२५४॥

भगवन् ! क्या जीव चैतन्य है, या चैतन्य जीव है ? गौतम ! जीव नियमा जीव (चैतन्य) है और जीव (चैतन्य) भी नियमा जीव है । भगवन् ! क्या जीव नैरयिक है, या नैरयिक जीव है ? गौतम ! नैरयिक तो नियमा जीव है और जीव तो नैरयिक भी होता है तथा अनैरयिक भी होता है । भगवन् !

क्या जीव असुरकुमार है, या असुरकुमार जीव है ? गौतम ! असुरकुमार तो नियमा जीव है और जीव तो असुरकुमार भी होता है तथा असुरकुमार नहीं भी होता । इस प्रकार वैमानिक तक सभी दण्डक कहने चाहियें ।

भगवन् ! क्या जो जीता है—प्राण धारण करता है वह जीव कहलाता है, या जो जीव है वह जीता है—प्राण धारण करता है ? गौतम ! जो जीता है—प्राण धारण करता है वह नियमा जीव कहलाता है और जो जीव होता है वह प्राण धारण करता भी है और नहीं भी करता । भगवन् ! जो जीता है वह नैरयिक कहलाता है, या जो नैरयिक होता है वह जीता है—प्राण धारण करता है ? गौतम ! नैरयिक तो नियमा जीता है, किन्तु जो जीता है वह नैरयिक भी होता है और अनैरयिक भी होता है । इस प्रकार यावत् वैमानिक तक सभी दण्डक कहने चाहियें । भगवन् ! जो भवसिद्धिक है वह नैरयिक होता है, या जो नैरयिक होता है वह भवसिद्धिक होता है ? गौतम ! जो भवसिद्धिक होता है वह नैरयिक भी होता है और अनैरयिक भी होता है । तथा जो नैरयिक होता है वह भवसिद्धिक भी होता है और अभवसिद्धिक भी होता है । इस प्रकार वैमानिक पर्यन्त सभी दण्डक कहने चाहियें ॥२५५॥

भगवन् ! अन्यतीर्थिक इस प्रकार कहते हैं, यावत् प्ररूपणा करते हैं कि सभी प्राण, भूत, जीव और सत्त्व, एकान्त दुःख रूप वेदनाको वेदते हैं । भगवन् ! यह किस प्रकार हो सकता है ? गौतम ! अन्यतीर्थिक जो यह कहते हैं और प्ररूपणा करते हैं, वह मिथ्या है । गौतम ! मैं इस प्रकार कहता हूं यावत् प्ररूपणा करता हूं कि कितने ही प्राण, भूत, जीव और सत्त्व, एकान्त दुःख रूप वेदना वेदते हैं और कदाचित् सुख को वेदते हैं । तथा कितने ही प्राण, भूत, जीव और सत्त्व, एकान्त सुख रूप वेदना वेदते हैं और कदाचित् दुःख को वेदते हैं । कितने ही प्राण, भूत, जीव और सत्त्व, विमात्रा (विविध प्रकार) से वेदना वेदते हैं । अर्थात् कदाचित् सुख और कदाचित् दुःख वेदते हैं । भगवन् ! इसका क्या कारण है ? गौतम ! नैरयिक जीव एकान्त दुःख रूप वेदना वेदते हैं और कदाचित् सुख वेदते हैं । भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक ये एकान्त सुख रूप वेदना वेदते हैं और कदाचित् दुःख वेदते हैं । पृथ्वीकाय से लेकर यावत् मनुष्य तक के जीव विमात्रा (विविध प्रकार) से वेदना वेदते हैं । अर्थात् कदाचित् सुख और कदाचित् दुःख वेदते हैं । इस कारण हे गौतम ! उपर्युक्त रूप से कहा गया है ॥२५६॥

भगवन् ! नैरयिक जीव आत्मा द्वारा ग्रहण करके जिन पुद्गलोंका आहार करते हैं, क्या वे आत्मशरीरक्षेत्रावगाढ़ पुद्गलोंको आत्मा द्वारा ग्रहण करके आहार करते हैं ? या अनन्तरक्षेत्रावगाढ़ ····· ? या परम्पर-

क्षेत्रावगाढ़ पुद्गलों को आत्मा द्वारा ग्रहण करके आहार करते हैं? गौतम ! आत्म-शरीर-क्षेत्रावगाढ़ पुद्गलोंको आत्मा द्वारा ग्रहण करके आहार करते हैं, परन्तु अनन्तरक्षेत्रावगाढ़ और परम्परक्षेत्रावगाढ़ पुद्गलों को आत्मा द्वारा ग्रहण करके आहार नहीं करते। जिस प्रकार नैरयिकों के लिये कहा, उसी प्रकार यावत् वैमानिक पर्यन्त सभी दण्डकों में कहना चाहिये ॥२५७॥

भगवन् ! क्या केवली भगवान् इन्द्रियों द्वारा जानते हैं और देखते हैं? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। भगवन् ! इसका क्या कारण है? गौतम ! केवली भगवान् पूर्व दिशामें मित (परिमित) को भी जानते हैं और अमित को भी जानते हैं, यावत् केवली का दर्शन निर्वृत्त है। हे गौतम ! इसलिये ऐसा कहा जाता है। गाथा का अर्थ इस प्रकार है—जीवोंका सुख दुःख, जीव, जीव का प्राण-धारण, भव्य, एकान्त दुःख वेदना, आत्मा द्वारा पुद्गलोंका ग्रहण और केवली, इतने विषयोंका विचार इस दसवें उद्देशकमें किया गया है। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है।······ऐसा कह कर यावत् गौतम स्वामी विचरते हैं ॥२५८॥

॥ छठे शतक का दसवां उद्देशक सम्पूर्ण ॥

॥ छठा शतक समाप्त ॥

शतक ७ उद्देशक १

१ आहार, २ विरति, ३ स्थावर, ४ जीव, ५ पक्षी, ६ आयुष्य, ७ अनगार, ८ छद्मस्थ, ९ असंवृत और १० अन्य-तीर्थिक। सातवें शतकमें ये दस उद्देशक हैं ॥१॥

उस काल उस समय में गौतमस्वामीनें इस प्रकार पूछा कि—भगवन् ! परभवमें जाता हुआ जीव किस समयमें अनाहारक (आहार नहीं करने वाला) होता है? गौतम ! परभवमें जाता हुआ जीव प्रथम समयमें कदाचित् आहारक होता है और कदाचित् अनाहारक होता है। दूसरे समयमें कदाचित् आहारक और कदाचित् अनाहारक होता है। तीसरे समयमें भी कदाचित् आहारक और कदाचित् अनाहारक होता है। परन्तु चौथे समयमें नियमा (अवश्य) आहारक होता है। इस प्रकार नैरयिक आदि चौवीसों दण्डकोंमें कहना चाहिए। सामान्य जीव और एकेन्द्रिय चौथे समयमें आहारक होते हैं। इनके सिवाय शेष जीव तीसरे समयमें आहारक होते हैं। भगवन् ! जीव किस समय में सबसे अल्प आहार वाला होता है? गौतम ! उत्पत्तिके प्रथम समयमें और

भव (जीवन) के अन्तिम समयमें जीव सबसे अल्प आहार वाला होता है। इस प्रकार वैमानिक पर्यन्त चौबीसों दण्डकोंमें कहना चाहिए ॥२५६॥

भगवन् ! लोक का संस्थान (आकार) किस प्रकार का कहा गया है ? गौतम ! लोक का संस्थान सुप्रतिष्ठक–शराव (सकोरे) के आकार है। वह नीचे विस्तीर्ण है यावत् ऊपर ऊर्ध्व मृदंगके आकार संस्थित है। इस नीचे विस्तीर्ण यावत् ऊपर ऊर्ध्व मृदंगके आकारवाले लोकमें, उत्पन्न केवलज्ञान-दर्शन को धारण करने वाले अरिहन्त जिन केवली, जीवोंको भी जानते और देखते हैं तथा अजीवोंको भी जानते और देखते हैं। इसके पश्चात् वे सिद्ध होते हैं, यावत् सभी दुःखोंका अन्त करते हैं ॥२६०॥

भगवन् ! श्रमण (साधु) के उपाश्रयमें बैठे हुए सामायिक करने वाले श्रमणोपासक (साधुओंका उपासक–श्रावक) को क्या ऐर्यापथिकी क्रिया लगती है, या साम्परायिकी क्रिया लगती है ? गौतम ! ऐर्यापथिकी क्रिया नहीं लगती, किंतु साम्परायिकी क्रिया लगती है। भगवन् ! इसका क्या कारण है ? गौतम ! श्रमणके उपाश्रयमें बैठे हुए सामायिक करने वाले श्रमणोपासककी आत्मा अधिकरणी (कषायके साधनसे युक्त) है। उसकी आत्मा अधिकरणका निमित्त होनेसे उसे ऐर्यापथिकी क्रिया नहीं लगती, किंतु साम्परायिकी क्रिया लगती है। इस कारण यावत् साम्परायिकी क्रिया लगती है ॥२६१॥

भगवन् ! जिस श्रमणोपासकको पहलेसे ही त्रसजीवोंके वधका प्रत्याख्यान हो और पृथ्वीकायके वधका प्रत्याख्यान न हो, उस श्रमणोपासकके पृथ्वी खोदते हुए त्रसजीवकी हिंसा हो जाय, तो हे भगवन् ! क्या उसके व्रत में अतिचार लगता है ? हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं, क्योंकि उसकी प्रवृत्ति उस त्रस जीवकी हिंसा करनेके लिए नहीं होती। भगवन् ! जिस श्रमणोपासकको पहलेसे ही वनस्पति के वधका प्रत्याख्यान हो और पृथ्वीकायके वधका प्रत्याख्यान न हो, तो पृथ्वीको खोदते हुए उसके हाथसे किसी वृक्षका मूल छिद (कट) जाय, तो क्या उसके व्रतमें अतिचार लगता है ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, क्योंकि वह वनस्पतिके वधके लिए प्रवृत्ति नहीं करता ॥२६२॥

भगवन् ! तथारूप अर्थात् उत्तम श्रमण-माहणको प्रासुक और एषणीय अशन-पान-खादिम-स्वादिम द्वारा प्रतिलाभित करते हुए श्रमणोपासकको क्या लाभ होता है ? गौतम ! तथारूप श्रमण-माहणको यावत् प्रतिलाभित करता हुआ श्रमणोपासक तथारूप श्रमण-माहणको समाधि उत्पन्न करता है। उन्हें समाधि प्राप्त कराने वाला वह श्रमणोपासक स्वयं भी समाधि प्राप्त होता है।

भगवन् ! तथारूप श्रमण-माहणको प्रतिलाभित करता हुआ श्रमणोपासक किसका त्याग करता है ? गौतम ! वह जीवित (जीवन निर्वाहके कारणभूत अन्नादि)का त्याग करता है,दुस्त्यज वस्तुका त्याग करता है,दुष्कर कार्य करता है, दुर्लभ वस्तुका त्याग करता है, बोधि (सम्यग्दर्शन)को प्राप्त करता है। इसके अनन्तर वह सिद्ध होता है, यावत् सभी दुःखोंका अन्त करता है ॥२६३॥

भगवन् ! क्या कर्मरहित जीवकी गति होती है ? हाँ, गौतम ! कर्म-रहित जीवकी गति होती है। भगवन् ! कर्म रहित जीवकी गति किस प्रकार होती है ? गौतम ! निःसंगपनसे, नीरागपन से, गतिपरिणाम से, बन्धनका छेद होने से, निरिन्धन होने से अर्थात् कर्मरूपी ईन्धनसे मुक्त होनेसे और पूर्व-प्रयोगसे कर्मरहित जीवकी गति होती है।

भगवन् ! निःसंगपनसे, नीरागपनसे और गतिपरिणामसे कर्मरहित जीवकी गति किस प्रकार होती है ? गौतम ! जैसे कोई छिद्र रहित और निरुपहत (बिना टूटा हुआ) सूखा तुम्बा हो, उस सूखे हुए तुम्बे पर क्रमपूर्वक अत्यन्त संस्कारयुक्त डाभ और कुश लपेट कर, उस पर मिट्टी का लेप कर दिया जाय और फिर उसे धूप में सुखा दिया जाय। इसके अनन्तर क्रमशः डाभ और कुश लपेटते हुए आठ बार उसके ऊपर मिट्टी का लेप कर दिया जाय। इसके पश्चात् थाह रहित अतरणीय और पुरुष प्रमाणसे अधिक गहरे पानी में उसे डाल दिया जाय, तो हे गौतम ! वह तुम्बा मिट्टी के आठ लेपोंसे भारी हो जाने एवं अधिक वजन वाला हो जानेसे क्या पानीके उपरितल को छोड़कर नीचे पृथ्वीतल पर जा बैठता है ? गौतमस्वामी ने कहा—हाँ भगवन् ! वह तुम्बा नीचे पृथ्वीतल पर जा बैठता है। भगवान् ने पूछा--गौतम ! पानीमें पड़े रहनेके कारण ज्यों-ज्यों उसका लेप गल कर उतरता जाय यावत् उस पर से आठों लेप उतर जायँ, तो क्या वह तुम्बा पृथ्वीतल को छोड़कर पानीके उपरितल पर आ जाता है ? गौतमस्वामीने कहा—हां, भगवन् ! वह पानीके उपरितल पर आ जाता है। भगवान् ने फरमाया—गौतम ! इसी प्रकार निःसंगपन से, नीरागपनसे और गतिपरिणामसे कर्म रहित जीवकी भी गति होती है।

भगवन् ! बन्धनका छेद होनेसे कर्म रहित जीव की गति किस प्रकार होती है ? गौतम ! जैसे कोई मटर की फली, मूंग की फली, उड़द की फली, शेमल की फली और एरण्ड का फल, धूपमें रख कर सुखाया जाय। सूख जाने पर वह फूट जाता है और उसका बीज उछल कर दूर जा पड़ता है। हे गौतम ! इसी प्रकार कर्मरूप बन्धन का छेद हो जाने पर कर्म रहित जीवकी गति होती है। भगवन् ! निरिन्धन (कर्मरूपी इन्धन से रहित) होनेसे कर्मरहित जीवकी गति किस प्रकार होती है ? गौतम ! जिस प्रकार इन्धनसे छूटे हुए धुएँकी गति किसी

प्रकार की रुकावट के बिना—स्वाभाविकरूप से ऊपर की ओर होती है, इसी प्रकार हे गौतम ! कर्मरूप इन्धनसे रहित होनेसे, कर्म रहित जीव की गति होती है। भगवन् ! पूर्व-प्रयोग से कर्म रहित जीव की गति किस प्रकार होती है ? गौतम ! जिस प्रकार धनुष से छूटे हुए बाण की गति किसी भी प्रकार की रुकावटके बिना लक्ष्याभिमुख होती है, इसी प्रकार हे गौतम ! पूर्व प्रयोगसे कर्मरहित जीव की गति होती है। गौतम ! इस प्रकार निःसंगता से, नीरागता से, यावत् पूर्व प्रयोग से कर्म रहित जीव की गति होती है ॥२६४॥

भगवन् ! क्या दुखी जीव दुःख से व्याप्त होता है, या अदुखी (दुःख रहित) जीव दुःख से व्याप्त होता है ? गौतम ! दुखी जीव ही दुःख से व्याप्त होता है, अदुखी जीव दुःखसे व्याप्त नहीं होता। भगवन् ! क्या दुखी नैरयिक दुःख से व्याप्त होता है, या अदुखी नैरयिक दुःखसे व्याप्त होता है ? गौतम ! दुखी नैरयिक दुःखसे व्याप्त होता है, अदुखी नैरयिक दुःख से व्याप्त नहीं होता। इस तरह वैमानिक पर्यन्त चौबीसों दण्डकों में कहना चाहिए। इस तरह पांच दण्डक (आलापक) कहने चाहिएँ। यथा—१ दुखी दुःखसे व्याप्त होता है, २ दुखी दुःखको ग्रहण करता है, ३ दुखी दुःखको उदीरता है (उदीरणा करता है), ४ दुखी दुःख को वेदता है और ५ दुखी दुःख को निर्जरता है ॥२६५॥

भगवन् ! बिना उपयोग गमन करते हुए, खड़े रहते हुए, बैठते हुए, सोते हुए और इसी प्रकार बिना उपयोग के वस्त्र, पात्र, कम्बल और पादप्रोंछन (रजोहरण) ग्रहण करते हुए अनगार को क्या ऐर्यापथिकी क्रिया लगती है या साम्परायिकी क्रिया लगती है ? गौतम ! ऐर्यापथिकी क्रिया नहीं लगती, साम्परायिकी क्रिया लगती है ? भगवन् ! इसका क्या कारण है ? गौतम ! जिस जीव के क्रोध, मान, माया और लोभ व्युच्छिन्न (अनुदित-उदयावस्था में नहीं रहे हैं) हो गये हैं, उसको ऐर्यापथिकी क्रिया लगती है, साम्परायिकी क्रिया नहीं लगती। जिस जीवके क्रोध, मान, माया और लोभ ये चारों व्युच्छिन्न (अनुदित) नहीं हुए, उसको साम्परायिकी क्रिया लगती है, ऐर्यापथिकी क्रिया नहीं लगती। सूत्र (आगम) के अनुसार प्रवृत्ति करने वाले अनगार को ऐर्यापथिकी क्रिया लगती है और सूत्र से विपरीत प्रवृत्ति करने वाले अनगार को साम्परायिकी क्रिया लगती है। उपयोग रहित साधु सूत्र से विपरीत प्रवृत्ति करता है। इसलिए हे गौतम ! उसे साम्परायिकी क्रिया लगती है ॥२६६॥

भगवन् ! अंगार (इंगाल) दोष, धूमदोष और संयोजना दोष से दूषित पान-भोजन (आहार पानी) का क्या अर्थ है ? गौतम ! कोई निर्ग्रन्थ साधु अथवा साध्वी, प्रासुक और एषणीय अशन पान खादिम और स्वादिम रूप आहार को ग्रहण करके उसमें मूर्च्छित, गृद्ध, ग्रथित और आसक्त होकर आहार करता

है, तो हे गौतम ! यह अंगार दोष से दूषित आहार पानी कहलाता है। कोई निर्ग्रन्थ साधु या साध्वी, प्रासुक और एषणीय अशन-पान-खादिम-स्वादिमरूप आहार ग्रहण करके अत्यन्त अप्रीतिपूर्वक, क्रोध से खिन्न होकर आहार करता है, तो हे गौतम ! यह 'धूम' दोषसे दूषित अशन-पान-भोजन कहलाता है, कोई निर्ग्रन्थ साधु या साध्वी, प्रासुक और एषणीय अशन-पान-खादिम-स्वादिमरूप आहार ग्रहण करके उसमें स्वाद उत्पन्न करने के लिए दूसरे पदार्थों के साथ संयोग करके आहार करता है, तो हे गौतम ! यह 'संयोजना' दोषसे दूषित पान-भोजन कहलाता है। हे गौतम ! इस प्रकार अंगार-दोष, धूम-दोष और संयोजना दोष से दूषित पान-भोजन का अर्थ कहा गया है।

भगवन् ! अंगार-दोष, धूम-दोष और संयोजना दोष, इन तीन दोषोंसे रहित पान-भोजन का क्या अर्थ है ? गौतम ! जो कोई निर्ग्रन्थ साधु या साध्वी यावत् आहार पानी को ग्रहण करके मूर्च्छा रहित आहार करता है, तो हे गौतम ! वह अंगार दोष रहित पान-भोजन कहलाता है। जो निर्ग्रन्थ साधु या साध्वी यावत् अशनादि को ग्रहण करके अत्यन्त अप्रीतिपूर्वक यावत् आहार नहीं करता, तो ···गौतम ! यह धूमदोष रहित पान-भोजन कहलाता है। जो कोई निर्ग्रन्थ साधु या साध्वी यावत् अशनादि को ग्रहण करके जैसा मिला है वैसा आहार करता है, किन्तु स्वाद के लिए दूसरे पदार्थों का संयोग नहीं करता, तो० गौतम ! यह संयोजना दोष रहित पान-भोजन कहलाता है। इस प्रकार अंगारदोष, धूमदोष और संयोजनादोष, इन तीन दोषोंसे रहित पान-भोजन का अर्थ है ॥२६७॥

भगवन् ! क्षेत्रातिक्रान्त, कालातिक्रान्त, मार्गातिक्रान्त और प्रमाणातिक्रान्त पान-भोजनका क्या अर्थ है ? गौतम ! जो कोई निर्ग्रन्थ साधु या साध्वी प्रासुक और एषणीय अशन-पान-खादिम और स्वादिम, इन चार प्रकारके आहार को सूर्योदयसे पूर्व ग्रहण करके सूर्योदयके पीछे खाता है, तो० गौतम ! यह—'क्षेत्रातिक्रान्त पान-भोजन' कहलाता है। जो कोई निर्ग्रन्थ साधु या साध्वी यावत् आहारको प्रथम पहरमें ग्रहण करके अन्तिम पहर तक रखकर खाता है, तो··· गौतम ! यह—'कालातिक्रान्त पान-भोजन' कहलाता है। जो कोई निर्ग्रन्थ साधु या साध्वी यावत् आहारको ग्रहण करके आधे योजनकी मर्यादाका उल्लंघन करके खाता है··· यह मार्गातिक्रान्त···। जो··· ग्रहण करके बत्तीस कवल (ग्रास) से अधिक खाता है, तो० गौतम! यह प्रमाणातिक्रान्त पान-भोजन कहलाता है। आठ कवलका आहार करने वाला साधु 'अल्पाहारी' कहलाता है। बारह कवलका आहार करने वाले साधुके 'किञ्चिन्न्यून अर्ध ऊनोदरिका' होती है। सोलह कवलका आहार करने वाले साधुके 'अर्ध ऊनोदरिका' होती है, अर्थात् वह साधु द्विभाग प्राप्त (अर्धाहारी) कहलाता है। चौवीस कवलका आहार करने वाले

साधुके 'ऊनोदरिका' होती है। बत्तीस कवलका आहार करने वाला साधु 'प्रमाण-प्राप्त' (प्रमाणयुक्त) आहार करने वाला कहलाता है। बत्तीस कवलसे एक भी कवल कम आहार करने वाला साधु 'प्रकाम-रस-भोजी' (अत्यन्त मधुरादि रस का भोक्ता) नहीं कहलाता। इस प्रकार क्षेत्रातिक्रान्त, कालातिक्रान्त, मार्गातिक्रान्त और प्रमाणातिक्रान्त पान-भोजनका अर्थ कहा गया है ॥२६८॥

भगवन्! शस्त्रातीत, शस्त्रपरिणामित, एषित, व्येषित, सामुदायिक, भिक्षारूप पान-भोजनका क्या अर्थ है? गौतम! कोई निर्ग्रन्थ साधु या साध्वी जो शस्त्र और मूसलादिसे रहित है, पुष्पमाला और चन्दनके विलेपनसे रहित है, वह कृम्यादि जन्तुरहित, निर्जीव, साधुके लिए स्वयं नहीं बनाया हुआ, एवं दूसरों से न बनवाया हुआ, असंकल्पित, अनाहूत (आमन्त्रण रहित), अक्रीतकृत (नहीं खरीदा हुआ), अनुद्दिष्ट (औद्देशिक आदि दोष रहित), नव-कोटि विशुद्ध, शंकित आदि दस दोष रहित, उद्गम और उत्पादन सम्बन्धी एषणाके दोषोंसे रहित, अंगार दोष रहित, धूम दोष रहित, संयोजना दोष रहित, सुरसुर और चपचप शब्द रहित, बहुत शीघ्रता और बहुत मन्दतासे रहित, आहारके किसी अंशको छोड़े बिना, नीचे न गिराते हुए, गाड़ी की धुरीके अंजन अथवा घाव पर लगाये जाने वाले लेपकी तरह केवल संयमके निर्वाहके लिए और संयमका भार वहन करनेके लिए, जिस प्रकार सर्प बिलमें प्रवेश करता है, उसी प्रकार जो आहार करता है, गौतम! वह शस्त्रातीत, शस्त्रपरिणामित यावत् पान-भोजन का अर्थ है।······भगवन्! यह इसी प्रकार······है ॥२६९॥

॥ सातवें शतक का पहला उद्देशक समाप्त ॥

—०—

शतक ७—उद्देशक २

भगवन्! 'मैंने सभी प्राण, सभी भूत, सभी जीव और सभी सत्त्वोंकी हिंसाका प्रत्याख्यान किया है,' इस प्रकार कहने वालेके सुप्रत्याख्यान होता है या दुष्प्रत्याख्यान होता है? गौतम! 'मैंने सभी प्राण, सभी भूत, सभी जीव और सभी सत्त्वोंकी हिंसाका प्रत्याख्यान किया है'—इस प्रकार बोलने वालेके कदाचित् सुप्रत्याख्यान होता है और कदाचित् दुष्प्रत्याख्यान होता है।

भगवन्! आप ऐसा क्यों कहते हैं कि सभी प्राण यावत् सर्व सत्त्वोंकी हिंसाका त्याग करने वालेके कदाचित् सुप्रत्याख्यान होता है और कदाचित् दुष्प्रत्याख्यान होता है? गौतम! 'मैंने सर्व प्राण यावत् सर्व सत्त्वोंकी हिंसाका प्रत्याख्यान किया है'—इस प्रकार बोलने वाले पुरुषको यदि इस प्रकारका ज्ञान नहीं होता कि 'ये जीव हैं, ये अजीव हैं, ये त्रस हैं, ये स्थावर हैं,' उस पुरुष का प्रत्याख्यान सुप्रत्याख्यान नहीं होता, किन्तु दुष्प्रत्याख्यान होता है। 'मैंने सभी प्राण यावत् सभी

है, तो हे गौतम ! यह अंगार दोष से दूषित आहार पानी कहलाता है। कोई निर्ग्रन्थ साधु या साध्वी, प्रासुक और एषणीय अशन-पान-खादिम-स्वादिमरूप आहार ग्रहण करके अत्यन्त अप्रीतिपूर्वक, क्रोध से खिन्न होकर आहार करता है, तो हे गौतम ! यह 'धूम' दोषसे दूषित अशन-पान-भोजन कहलाता है, कोई निर्ग्रन्थ साधु या साध्वी, प्रासुक और एषणीय अशन-पान-खादिम-स्वादिमरूप आहार ग्रहण करके उसमें स्वाद उत्पन्न करने के लिए दूसरे पदार्थों के साथ संयोग करके आहार करता है, तो हे गौतम ! यह 'संयोजना' दोषसे दूषित पान-भोजन कहलाता है। हे गौतम ! इस प्रकार अंगार-दोष, धूम-दोष और संयोजना दोष से दूषित पान-भोजन का अर्थ कहा गया है।

भगवन् ! अंगार-दोष, धूम-दोष और संयोजना दोष, इन तीन दोषोंसे रहित पान-भोजन का क्या अर्थ है ? गौतम ! जो कोई निर्ग्रन्थ साधु या साध्वी यावत् आहार पानी को ग्रहण करके मूर्च्छा रहित आहार करता है, तो हे गौतम ! वह अंगार दोष रहित पान-भोजन कहलाता है। जो निर्ग्रन्थ साधु या साध्वी यावत् अशनादि को ग्रहण करके अत्यन्त अप्रीतिपूर्वक यावत् आहार नहीं करता, तो ···गौतम ! यह धूमदोष रहित पान-भोजन कहलाता है। जो कोई निर्ग्रन्थ साधु या साध्वी यावत् अशनादि को ग्रहण करके जैसा मिला है वैसा आहार करता है, किन्तु स्वाद के लिए दूसरे पदार्थों का संयोग नहीं करता, तो० गौतम ! यह संयोजना दोष रहित पान-भोजन कहलाता है। इस प्रकार अंगारदोष, धूमदोष और संयोजनादोष, इन तीन दोषोंसे रहित पान-भोजन का अर्थ है ॥२६७॥

भगवन् ! क्षेत्रातिक्रान्त, कालातिक्रान्त, मार्गातिक्रान्त और प्रमाणातिक्रान्त पान-भोजनका क्या अर्थ है ? गौतम ! जो कोई निर्ग्रन्थ साधु या साध्वी प्रासुक और एषणीय अशन-पान-खादिम और स्वादिम, इन चार प्रकारके आहार को सूर्योदयसे पूर्व ग्रहण करके सूर्योदयके पीछे खाता है, तो० गौतम ! यह— 'क्षेत्रातिक्रान्त पान-भोजन' कहलाता है। जो कोई निर्ग्रन्थ साधु या साध्वी यावत् आहारको प्रथम पहरमें ग्रहण करके अन्तिम पहर तक रखकर खाता है, तो··· गौतम ! यह—'कालातिक्रान्त पान-भोजन' कहलाता है। जो कोई निर्ग्रन्थ साधु या साध्वी यावत् आहारको ग्रहण करके आधे योजनकी मर्यादाका उल्लंघन करके खाता है ··· यह मार्गातिक्रान्त·····। जो···· ग्रहण करके बत्तीस कवल (ग्रास) से अधिक खाता है, तो० गौतम! यह प्रमाणातिक्रान्त पान-भोजन कहलाता है। आठ कवलका आहार करने वाला साधु 'अल्पाहारी' कहलाता है। बारह कवलका आहार करने वाले साधुके 'किञ्चिन्न्यून अर्ध ऊनोदरिका' होती है। सोलह कवलका आहार करने वाले साधुके 'अर्ध ऊनोदरिका' होती है, अर्थात् वह साधु द्विभाग प्राप्त (अर्धाहारी) कहलाता है। चौबीस कवलका आहार करने वाले

साधुके 'ऊनोदरिका' होती है। बत्तीस कवलका आहार करने वाला साधु 'प्रमाण-प्राप्त' (प्रमाणयुक्त) आहार करने वाला कहलाता है। बत्तीस कवलसे एक भी कवल कम आहार करने वाला साधु 'प्रकाम-रस-भोजी' (अत्यन्त मधुरादि रस का भोक्ता) नहीं कहलाता। इस प्रकार क्षेत्रातिक्रान्त, कालातिक्रान्त, मार्गाति-क्रान्त और प्रमाणातिक्रान्त पान-भोजनका अर्थ कहा गया है ॥२६८॥

भगवन्! शस्त्रातीत, शस्त्रपरिणामित, एषित, व्येषित, सामुदायिक, भिक्षारूप पान-भोजनका क्या अर्थ है? गौतम! कोई निर्ग्रन्थ साधु या साध्वी जो शस्त्र और मूसलादिसे रहित है, पुष्पमाला और चन्दनके विलेपनसे रहित है, वह कृम्यादि जन्तुरहित, निर्जीव, साधुके लिए स्वयं नहीं बनाया हुआ, एवं दूसरों से न बनवाया हुआ, असंकल्पित, अनाहूत (आमन्त्रण रहित), अक्रीतकृत (नहीं खरीदा हुआ), अनुद्दिष्ट (औद्देशिक आदि दोष रहित), नव-कोटि विशुद्ध, शंकित आदि दस दोष रहित, उद्गम और उत्पादन सम्बन्धी एषणाके दोषोंसे रहित, अंगार दोष रहित, धूम दोष रहित, संयोजना दोष रहित, सुरसुर और चपचप शब्द रहित, बहुत शीघ्रता और बहुत मन्दतासे रहित, आहारके किसी अंशको छोड़े बिना, नीचे न गिराते हुए, गाड़ी की धुरीके अंजन अथवा घाव पर लगाये जाने वाले लेपकी तरह केवल संयमके निर्वाहके लिए और संयमका भार वहन करनेके लिए, जिस प्रकार सर्प बिलमें प्रवेश करता है, उसी प्रकार जो आहार करता है, गौतम! वह शस्त्रातीत, शस्त्रपरिणामित यावत् पान-भोजन का अर्थ है।......भगवन्! यह इसी प्रकार......है ॥२६९॥

॥ सातवें शतक का पहला उद्देशक समाप्त ॥

—०—

शतक ७—उद्देशक २

भगवन्! 'मैंने सभी प्राण, सभी भूत, सभी जीव और सभी सत्त्वोंकी हिंसाका प्रत्याख्यान किया है,' इस प्रकार कहने वालेके सुप्रत्याख्यान होता है या दुष्प्रत्याख्यान होता है? गौतम! 'मैंने सभी प्राण, सभी भूत, सभी जीव और सभी सत्त्वोंकी हिंसाका प्रत्याख्यान किया है'—इस प्रकार बोलने वालेके कदा-चित् सुप्रत्याख्यान होता है और कदाचित् दुष्प्रत्याख्यान होता है।

भगवन्! आप ऐसा क्यों कहते हैं कि सभी प्राण यावत् सर्व सत्त्वोंकी हिंसाका त्याग करने वालेके कदाचित् सुप्रत्याख्यान होता है और कदाचित् दुष्प्रत्याख्यान होता है? गौतम! 'मैंने सर्व प्राण यावत् सर्व सत्त्वोंकी हिंसाका प्रत्याख्यान किया है'—इस प्रकार बोलने वाले पुरुषको यदि इस प्रकारका ज्ञान नहीं होता कि 'ये जीव हैं, ये अजीव हैं, ये त्रस हैं, ये स्थावर हैं,' उस पुरुष का प्रत्याख्यान सुप्रत्या-ख्यान नहीं होता, किन्तु दुष्प्रत्याख्यान होता है। 'मैंने सभी प्राण यावत् सभी

चाहिए। भगवन् ! क्या पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च जीव सर्व-मूलगुणप्रत्याख्यानी हैं, देशमूलगुणप्रत्याख्यानी हैं या अप्रत्याख्यानी हैं ? गौतम ! पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च जीव सर्व-मूलगुणप्रत्याख्यानी नहीं, किन्तु देशमूलगुणप्रत्याख्यानी हैं और अप्रत्याख्यानी हैं। मनुष्यों का कथन औधिक जीवोंके समान करना चाहिये। वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देवोंका कथन नैरयिक जीवोंके समान करना चाहिये। भगवन् ! सर्वमूलगुणप्रत्याख्यानी, देशमूलगुणप्रत्याख्यानी और अप्रत्याख्यानी जीवोंमें कौन किससे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ? गौतम ! सर्व-मूल-गुणप्रत्याख्यानी जीव सबसे थोड़े हैं। देशमूलगुणप्रत्याख्यानी जीव उनसे असंख्य गुणे हैं। और अप्रत्याख्यानी जीव उनसे अनन्त गुणे हैं। इसी प्रकार तीन अर्थात् औधिक जीव, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च और मनुष्यका अल्पवहुत्व प्रथम दण्डकमें कहे अनुसार कहना चाहिये, किन्तु इतनी विशेषता है कि देशमूलगुणप्रत्याख्यानी पंचेन्द्रिय तिर्यंच सवसे थोड़े हैं और अप्रत्याख्यानी पंचेन्द्रिय तिर्यंच उनसे असंख्य गुणे हैं।

भगवन् ! क्या जीव सर्वोत्तरगुण-प्रत्याख्यानी हैं, देशोत्तरगुणप्रत्याख्यानी हैं, या अप्रत्याख्यानी हैं ? गौतम ! जीव सर्वोत्तरगुण-प्रत्याख्यानी आदि तीनों प्रकार के हैं। पंचेन्द्रिय तिर्यंच और मनुष्योंका कथन भी इसी तरह करना चाहिये। शेष वैमानिक पर्यन्त सभी जीव अप्रत्याख्यानी हैं। भगवन् ! सर्वोत्तरगुणप्रत्याख्यानी, देशोत्तरगुणप्रत्याख्यानी और अप्रत्याख्यानी जीवोंमें कौन किससे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ? गौतम ! इन तीनों का अल्प-वहुत्व प्रथम दण्डकमें कहे अनुसार यावत् मनुष्यों तक जान लेना चाहिये।

भगवन् ! क्या जीव संयत हैं, असंयत हैं, संयतासंयत (देश-संयत) हैं ? गौतम ! जीव संयत भी हैं, असंयत भी हैं और संयतासंयत भी हैं। तीनों प्रकारके हैं। इस तरह प्रज्ञापना सूत्रके वत्तीसवें पदमें कहे अनुसार यावत् वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिये और तीनों० अल्पवहुत्व पूर्ववत् कहना चाहिये। भगवन् ! जीव प्रत्याख्यानी हैं, अप्रत्याख्यानी हैं, या प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानी (देश प्रत्याख्यानी) हैं ? गौतम ! जीव प्रत्याख्यानी आदि तीनों प्रकारके हैं। इसी तरह मनुष्य भी तीनों प्रकार के हैं। पंचेन्द्रिय-तिर्यंच-योनिक जीव प्रथम भंग रहित हैं अर्थात् वे प्रत्याख्यानी नहीं हैं, किन्तु अप्रत्याख्यानी और प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानी हैं। शेप वैमानिक पर्यन्त सभी जीव अप्रत्याख्यानी हैं। भगवन् ! प्रत्याख्यानी आदि जीवों में कौन किससे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ? गौतम ! प्रत्याख्यानी जीव सवसे थोड़े हैं, प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानी जीव उनसे असंख्य गुणे हैं और अप्रत्याख्यानी जीव उनसे अनन्त गुणे हैं। पंचेन्द्रियतिर्यंच जीवों में प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानी जीव सवसे थोड़े हैं और अप्रत्याख्यानी उनसे असंख्यातगुणे हैं। मनुष्योंमें प्रत्याख्यानी

मनुष्य सबसे थोड़े हैं। प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानी उनसे संख्यातगुणे हैं और अप्रत्याख्यानी उनसे असंख्य गुणे हैं ॥२७२॥

भगवन्! क्या जीव शाश्वत है या अशाश्वत है? गौतम! जीव कथञ्चित् शाश्वत और कथञ्चित् अशाश्वत है। भगवन्! इसका क्या कारण है कि जीव कथञ्चित् शाश्वत है और कथञ्चित् अशाश्वत है? गौतम! द्रव्य की अपेक्षा जीव शाश्वत है और भाव की अपेक्षा जीव अशाश्वत है। इस कारण ऐसा कहता हूं कि जीव कथञ्चित्···अशाश्वत है। भगवन्! क्या नैरयिक जीव शाश्वत हैं, या अशाश्वत हैं? गौतम! जिस प्रकार जीवोंका कथन किया गया है, उसी प्रकार नैरयिकोंका भी करना चाहिये। इसी तरह वैमानिक पर्यन्त चौबीसों दण्डकोंका कथन करना चाहिये कि जीव कथञ्चित् शाश्वत है और कथञ्चित् अशाश्वत है।···यह इसी प्रकार है।······॥२७३॥

॥ सातवें शतक का दूसरा उद्देशक समाप्त ॥

—o—

शतक ७ उद्देशक ३

भगवन्! वनस्पतिकायिक जीव किस काल में सर्वाल्पाहारी (सबसे थोड़ा आहार करने वाले) होते हैं और किस काल में सर्व-महाहारी (सबसे अधिक आहार करने वाले) होते हैं? गौतम! प्रावृट् ऋतु में अर्थात् श्रावण और भाद्रपद मास में तथा वर्षा ऋतुमें अर्थात् आश्विन और कार्तिक मास में वनस्पतिकायिक जीव सर्व-महाहारी होते हैं। इसके अनन्तर शरद् ऋतुमें, इसके अनन्तर हेमन्त ऋतु में, इसके पश्चात् बसन्त ऋतुमें और इसके बाद ग्रीष्म ऋतुमें अनुक्रमसे अल्पाहारी होते हैं, एवं ग्रीष्म ऋतुमें सर्वाल्पाहारी होते हैं।

भगवन्! यदि ग्रीष्म ऋतु में वनस्पतिकायिक जीव सर्वाल्पाहारी होते हैं, तो बहुतसे वनस्पतिकायिक ग्रीष्म ऋतुमें पानवाले, पुष्पवाले और फलवाले हरे भरे एकदम दीप्तियुक्त एवं वनकी शोभा से सुशोभित कैसे होते हैं? गौतम! ग्रीष्म ऋतुमें बहुत से उष्णयोनि वाले जीव और पुद्गल वनस्पतिकायरूप से उत्पन्न होते हैं, विशेष रूप से उत्पन्न होते हैं, वृद्धिको प्राप्त होते हैं और विशेष रूपसे वृद्धिको प्राप्त होते हैं। इस कारण० गौतम! ग्रीष्म ऋतुमें बहुतसे वनस्पतिकायिक पत्तों वाले, पुष्पों वाले यावत् होते हैं ॥२७४॥

हे भगवन्! क्या वनस्पतिकाय के मूल, मूलके जीवोंसे स्पृष्ट (व्याप्त) होते हैं? कन्द, कन्द के जीवोंसे स्पृष्ट होते हैं? यावत् बीज, बीज के जीवों से

स्पृष्ट होते हैं ? हां गौतम ! मूल, मूल के जीवों से स्पृष्ट होते हैं यावत् वीज, वीजों के जीवों से स्पृष्ट होते हैं। हे भगवन् ! यदि मूल, मूलके जीवोंसे व्याप्त हैं यावत् बीज, बीज के जीवों से व्याप्त हैं, तो वनस्पतिकायिक जीव किस तरह आहार करते हैं और किस तरह परिणमाते हैं ? हे गौतम ! मूल, मूल के जीवों से व्याप्त हैं और वे पृथ्वी के जीवों के साथ संबद्ध हैं, इससे वनस्पतिकायिक जीव आहार करते हैं और परिणमाते हैं। इस तरह यावत् वीज, वीजके जीवों से व्याप्त हैं और वे फल के जीवों के साथ संबद्ध हैं। इससे वे आहार करते और उसको परिणमाते हैं ॥२७५॥

भगवन् ! आलू, मूला, अदरख, हिरीली, सिरीली, सिस्सिरीली, किट्टिका, छिरिया, छीरविदारिका, वज्रकन्द, सूरणकन्द, खेलूडा, आर्द्र भद्रमोथा, पिंडहरिद्रा, रोहिणी, हुथिहू, थिरुगा, मुद्गपर्णी, अश्वपर्णी, सिंहपर्णी, सिहुण्डी, मुसुण्ढी और इसी तरह की दूसरी वनस्पतियाँ क्या अनन्त जीव वाली हैं और विविध जीव वाली हैं ? गौतम ! आलू, मूला यावत् मुसुण्ढी और इसी प्रकार की दूसरी वनस्पतियाँ अनन्त जीव वाली हैं और विविध जीव वाली हैं ॥२७६॥

हे भगवन् ! क्या कृष्णलेश्या वाला नैरयिक कदाचित् अल्पकर्म वाला होता है और नीललेश्या वाला नैरयिक कदाचित् महाकर्म वाला होता है ? हां, गौतम ! होता है। हे भगवन् ! इसका क्या कारण है ? जिससे ऐसा कहा जाता है कि कृष्णलेश्या वाला नैरयिक कदाचित् अल्पकर्म वाला होता है और नीललेश्या वाला नैरयिक कदाचित् महाकर्म वाला होता है ? हे गौतम ! स्थिति की अपेक्षा से ऐसा कहा जाता है कि यावत् महाकर्म वाला होता है। हे भगवन् ! क्या नीललेश्या वाला नैरयिक कदाचित् अल्पकर्म वाला होता है और कापोतलेश्या वाला नैरयिक कदाचित् महाकर्म वाला होता है ? हां, गौतम ! कदाचित् होता है।

हे भगवन् ! ऐसा किस कारण कहते हैं कि नीललेश्या वाला नैरयिक कदाचित् अल्पकर्म वाला होता है और कापोतलेश्या वाला नैरयिक कदाचित् महाकर्म वाला होता है ? हे गौतम ! स्थिति की अपेक्षा ऐसा कहता हूं कि यावत् वह महाकर्म वाला होता है। इसी प्रकार असुरकुमारों के विषय में भी कहना चाहिये, परन्तु उनमें एक तेजोलेश्या अधिक होती है अर्थात् उनमें कृष्ण, नील, कापोत और तेजो, ये चार लेश्याएँ होती हैं। इसी तरह वैमानिक देवों पर्यन्त कहना चाहिये। जिसमें जितनी लेश्या हों उतनी कहनी चाहियें, किन्तु ज्योतिषी दण्डक का कथन नहीं करना चाहिये। यावत् हे भगवन् ! क्या पद्मलेश्या वाला वैमानिक कदाचित् अल्पकर्म वाला होता है और शुक्ललेश्या वाला वैमानिक

कदाचित् महाकर्म वाला होता है ? हां, गौतम ! कदाचित् होता है । हे भगवन् ! इसका क्या कारण है ? शेष सारा कथन नैरयिक की तरह कहना चाहिये यावत् महाकर्म वाला होता है ॥२७७॥

हे भगवन् ! जो वेदना है वह निर्जरा कहलाती है और जो निर्जरा है वह वेदना कहलाती है ? हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है । हे भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहते हैं कि जो वेदना है वह निर्जरा नहीं कहलाती और जो निर्जरा है वह वेदना नहीं कहलाती ? हे गौतम ! कर्म वेदना है और नोकर्म निर्जरा है । इस कारण से ऐसा कहता हूं कि यावत् जो निर्जरा है वह वेदना नहीं कहलाती । हे भगवन् ! क्या नैरयिक जीवों के जो वेदना है वह निर्जरा कहलाती है और जो निर्जरा है वह वेदना कहलाती है ?······नहीं है ।

हे भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहते हैं कि नैरयिक जीवों के जो वेदना है वह निर्जरा नहीं कहलाती और जो निर्जरा है वह वेदना नहीं कहलाती ? हे गौतम ! नैरयिक जीवों के जो वेदना है वह कर्म है और जो निर्जरा है वह नोकर्म है । इसलिए हे गौतम ! मैं ऐसा कहता हूं कि यावत् जो निर्जरा है वह वेदना नहीं कहलाती । इसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त चौवीसों दण्डकों में कहना चाहिये ।

भगवन् ! क्या जिन कर्मों को वेद लिया उनको निर्जीर्ण किया और जिन को निर्जीर्ण किया उनको वेद लिया ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं । भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहते हैं कि जो वेद लिये वे निर्जीर्ण नहीं किये और जो निर्जीर्ण किये वे वेदे नहीं गये ? गौतम ! कर्म वेदा गया और नोकर्म निर्जीर्ण किया गया । इस कारण पूर्वोक्त प्रकार से कहा जाता है । भगवन् ! क्या नैरयिक जीवों ने जिस कर्म को वेदा वह निर्जीर्ण किया गया ? पूर्व कहे अनुसार नैरयिकों के विषय में भी जान लेना चाहिये । यावत् वैमानिक पर्यन्त चौवीसों दण्डकोंमें इसी तरह कहना चाहिये ।

भगवन् ! जिसको वेदते हैं उसकी निर्जरा करते हैं ? और जिसकी निर्जरा करते हैं उसको वेदते हैं ? ·········नहीं । भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहते हैं कि जिसको वेदते हैं उसकी निर्जरा नहीं करते और जिसकी निर्जरा करते हैं उसको वेदते नहीं ? गौतम ! कर्म को वेदते हैं और नोकर्म को निर्जीर्ण करते हैं । इसलिये ऐसा कहता हूं कि यावत् जिसको निर्जीर्ण करते हैं उसको वेदते नहीं । इसी तरह नैरयिकोंके विषयमें जानना चाहिये । यावत् वैमानिक पर्यन्त चौवीसों दण्डकों में इसी तरह जान लेना चाहिये । भगवन् ! जिसको वेदेंगे उसको निर्जरेंगे और जिसको निर्जरेंगे उसको वेदेंगे ?······नहीं । भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहते हैं कि यावत् उसको नहीं वेदेंगे ? गौतम ! कर्म को वेदेंगे और

स्पृष्ट होते हैं ? हाँ गौतम ! मूल, मूल के जीवों से स्पृष्ट होते हैं यावत् बीज, बीजों के जीवों से स्पृष्ट होते हैं। हे भगवन् ! यदि मूल, मूलके जीवोंसे व्याप्त हैं यावत् बीज, बीज के जीवों से व्याप्त हैं, तो वनस्पतिकायिक जीव किस तरह आहार करते हैं और किस तरह परिणमाते हैं ? हे गौतम ! मूल, मूल के जीवों से व्याप्त हैं और वे पृथ्वी के जीवों के साथ संबद्ध हैं, इससे वनस्पतिकायिक जीव आहार करते हैं और परिणमाते हैं। इस तरह यावत् बीज, बीजके जीवों से व्याप्त हैं और वे फल के जीवों के साथ संबद्ध हैं। इससे वे आहार करते और उसको परिणमाते हैं ॥२७५॥

भगवन् ! आलू, मूला, अदरख, हिरीली, सिरीली, सिस्सिरीली, किट्टिका, छिरिया, छीरविदारिका, वज्रकन्द, सूरणकन्द, खेलूडा, आर्द्र भद्रमोथा, पिंडहरिद्रा, रोहिणी, हुथिहू, थिरुगा, मुद्गपर्णी, अश्वपर्णी, सिंहपर्णी, सिहण्डी, मुसुण्ढी और इसी तरह की दूसरी वनस्पतियाँ क्या अनन्त जीव वाली हैं और विविध जीव वाली हैं ? गौतम ! आलू, मूला यावत् मुसुण्ढी और इसी प्रकार की दूसरी वनस्पतियाँ अनन्त जीव वाली हैं और विविध जीव वाली हैं ॥२७६॥

हे भगवन् ! क्या कृष्णलेश्या वाला नैरयिक कदाचित् अल्पकर्म वाला होता है और नीललेश्या वाला नैरयिक कदाचित् महाकर्म वाला होता है ? हां, गौतम ! होता है। हे भगवन् ! इसका क्या कारण है ? जिससे ऐसा कहा जाता है कि कृष्णलेश्या वाला नैरयिक कदाचित् अल्पकर्म वाला होता है और नीललेश्या वाला नैरयिक कदाचित् महाकर्म वाला होता है ? हे गौतम ! स्थिति की अपेक्षा से ऐसा कहा जाता है कि यावत् महाकर्म वाला होता है। हे भगवन् ! क्या नीललेश्या वाला नैरयिक कदाचित् अल्पकर्म वाला होता है और कापोतलेश्या वाला नैरयिक कदाचित् महाकर्म वाला होता है ? हां, गौतम ! कदाचित् होता है।

हे भगवन् ! ऐसा किस कारण कहते हैं कि नीललेश्या वाला नैरयिक कदाचित् अल्पकर्म वाला होता है और कापोतलेश्या वाला नैरयिक कदाचित् महाकर्म वाला होता है ? हे गौतम ! स्थिति की अपेक्षा ऐसा कहता हूं कि यावत् वह महाकर्म वाला होता है। इसी प्रकार असुरकुमारों के विषय में भी कहना चाहिये, परन्तु उनमें एक तेजोलेश्या अधिक होती है अर्थात् उनमें कृष्ण, नील, कापोत और तेजो, ये चार लेश्याएँ होती हैं। इसी तरह वैमानिक देवों पर्यन्त कहना चाहिये। जिसमें जितनी लेश्या हों उतनी कहनी चाहियें, किन्तु ज्योतिषी दण्डक का कथन नहीं करना चाहिये। यावत् हे भगवन् ! क्या पद्मलेश्या वाला वैमानिक कदाचित् अल्पकर्म वाला होता है और शुक्ललेश्या वाला वैमा-

कदाचित् महाकर्म वाला होता है ? हां, गौतम ! कदाचित् होता है। हे भगवन् ! इसका क्या कारण है ? शेष सारा कथन नैरयिक की तरह कहना चाहिये यावत् महाकर्म वाला होता है ॥२७७॥

हे भगवन् ! जो वेदना है वह निर्जरा कहलाती है और जो निर्जरा है वह वेदना कहलाती है ? हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। हे भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहते हैं कि जो वेदना है वह निर्जरा नहीं कहलाती और जो निर्जरा है वह वेदना नहीं कहलाती ? हे गौतम ! कर्म वेदना है और नोकर्म निर्जरा है। इस कारण से ऐसा कहता हूं कि यावत् जो निर्जरा है वह वेदना नहीं कहलाती। हे भगवन् ! क्या नैरयिक जीवों के जो वेदना है वह निर्जरा कहलाती है और जो निर्जरा है वह वेदना कहलाती है ?······नहीं है।

हे भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहते हैं कि नैरयिक जीवों के जो वेदना है वह निर्जरा नहीं कहलाती और जो निर्जरा है वह वेदना नहीं कहलाती ? हे गौतम ! नैरयिक जीवों के जो वेदना है वह कर्म है और जो निर्जरा है वह नोकर्म है। इसलिए हे गौतम ! मैं ऐसा कहता हूं कि यावत् जो निर्जरा है वह वेदना नहीं कहलाती। इसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त चौवीसों दण्डकों में कहना चाहिये।

भगवन् ! क्या जिन कर्मों को वेद लिया उनको निर्जीर्ण किया और जिन को निर्जीर्ण किया उनको वेद लिया ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं। भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहते हैं कि जो वेद लिये वे निर्जीर्ण नहीं किये और जो निर्जीर्ण किये वे वेदे नहीं गये ? गौतम ! कर्म वेदा गया और नोकर्म निर्जीर्ण किया गया। इस कारण पूर्वोक्त प्रकार से कहा जाता है। भगवन् ! क्या नैरयिक जीवों ने जिस कर्म को वेदा वह निर्जीर्ण किया गया ? पूर्व कहे अनुसार नैरयिकों के विषय में भी जान लेना चाहिये। यावत् वैमानिक पर्यन्त चौवीसों दण्डकोंमें इसी तरह कहना चाहिये।

भगवन् ! जिसको वेदते हैं उसकी निर्जरा करते हैं ? और जिसकी निर्जरा करते हैं उसको वेदते हैं ? ·········नहीं। भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहते हैं कि जिसको वेदते हैं उसकी निर्जरा नहीं करते और जिसकी निर्जरा करते हैं उसको वेदते नहीं ? गौतम ! कर्म को वेदते हैं और नोकर्म को निर्जीर्ण करते हैं। इसलिये ऐसा कहता हूं कि यावत् जिसको निर्जीर्ण करते हैं उसको वेदते नहीं। इसी तरह नैरयिकोंके विषयमें जानना चाहिये। यावत् वैमानिक पर्यन्त चौवीसों दण्डकों में इसी तरह जान लेना चाहिये। भगवन् ! जिसको वेदेंगे उसको निर्जरेंगे और जिसको निर्जरेंगे उसको वेदेंगे ?······नहीं। भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहते हैं कि यावत् उसको नहीं वेदेंगे ? गौतम ! कर्म को वेदेंगे और

नोकर्म को निर्जरेंगे। इस कारण यावत् जिसको वेदेंगे उसको नहीं निर्जरेंगे। भगवन् ! क्या जो वेदना का समय है वह निर्जरा का समय है और जो निर्जरा का समय है वह वेदना का समय है ? ......नहीं। भगवन् ! क्या कारण है कि जो वेदना का समय है वह निर्जरा का समय नहीं और जो निर्जरा का समय है वह वेदना का समय नहीं ? गौतम ! जिस समय वेदते हैं उस समय निर्जरते नहीं और जिस समय निर्जरते हैं उस समय वेदते नहीं, अन्य समय में वेदते हैं और अन्य समय में निर्जरते हैं। वेदना का समय दूसरा है और निर्जरा का समय दूसरा है। इस कारण यावत् वेदना का जो समय है वह निर्जरा का समय नहीं। भगवन् ! नैरयिक जीवों के जो वेदना का समय है वह निर्जरा का समय है और जो निर्जरा का समय है वह वेदना का समय है ? ......नहीं। भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहते हैं कि नैरयिकों के जो वेदना का समय है वह निर्जरा का समय नहीं और जो निर्जरा का समय है वह वेदना का समय नहीं ? गौतम ! नैरयिक जीव जिस समय में वेदते हैं उस समय में निर्जरते नहीं और जिस समय में निर्जरते हैं उस समय में वेदते नहीं। अन्य समय में वेदते हैं और अन्य समय में निर्जरते हैं। उनके वेदना का समय दूसरा है और निर्जरा का समय दूसरा है। इस कारण से ऐसा कहता हूं कि यावत् जो निर्जरा का समय है वह वेदना का समय नहीं। इस प्रकार यावत् वैमानिक पर्यन्त चौबीसों दण्डकोंमें जान लेना चाहिये ॥२७८॥

भगवन् ! नैरयिक जीव शाश्वत हैं या अशाश्वत हैं ? गौतम ! कथंचित् शाश्वत हैं और कथंचित् अशाश्वत हैं। भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहते हैं कि नैरयिक जीव कथंचित् शाश्वत हैं और कथंचित् अशाश्वत हैं ? गौतम ! अव्यवच्छित्ति (अव्युच्छित्ति—द्रव्यार्थिक) नय की अपेक्षा शाश्वत हैं और व्यवच्छित्ति (व्युच्छित्ति—पर्यायार्थिक) नय की अपेक्षा अशाश्वत हैं। इस कारण हे गौतम ! ऐसा कहता हूं कि नैरयिक जीव कथंचित् शाश्वत हैं और कथंचित् अशाश्वत हैं, इस प्रकार यावत् वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिये कि वे कथंचित् शाश्वत हैं और कथंचित् अशाश्वत हैं। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है...। ऐसा कहकर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ॥२७९॥

॥ सातवें शतक का तीसरा उद्देशक समाप्त ॥

—०—

शतक ७ उद्देशक ४

राजगृह नगर में गौतम स्वामी ने यावत् इस प्रकार पूछा। हे भगवन् ! संसारसमापन्नक (संसारी) जीव कितने प्रकार के कहे गये हैं ? हे गौतम ! संसार-

समापन्नक जीव छह प्रकार के कहे गये हैं । यथा–पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजसकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक और त्रसकायिक । यह सारा वर्णन जीवाभिगम सूत्र के तिर्यंच के दूसरे उद्देशक में कहे अनुसार सम्यक्त्व क्रिया और मिथ्यात्व क्रिया पर्यन्त कहना चाहिये । संग्रह गाथा का अर्थ इस प्रकार है—जीवों के छह भेद, पृथ्वीकायिक जीवों के छह भेद । पृथ्वीकायिक जीवों की स्थिति, भवस्थिति, सामान्य कायस्थिति, निर्लेपन, अनगार सम्बन्धी वर्णन, सम्यक्त्व क्रिया और मिथ्यात्व क्रिया । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।······ऐसा कहकर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ॥२८०॥

॥ सातवें शतक का चौथा उद्देशक समाप्त ॥

—०—

शतक ७ उद्देशक ५

राजगृह नगर में गौतम स्वामी ने यावत् इस प्रकार पूछा—हे भगवन् ! खेचर पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च जीवों का योनि-संग्रह कितने प्रकार का कहा गया है ? गौतम ! इनका योनि-संग्रह तीन प्रकार का कहा गया है । यथा—अण्डज, पोतज और सम्मूर्च्छिम । ये सारा वर्णन जीवाभिगम सूत्र में कहे अनुसार कहना चाहिये यावत् 'उन विमानों को उल्लंघा नहीं जा सकता । इतने बड़े विमान कहे गये हैं,' यहाँ तक सारा वर्णन कहना चाहिये । संग्रह गाथा का अर्थ इस प्रकार है—योनि-संग्रह, लेश्या, दृष्टि, ज्ञान, योग, उपयोग, उपपात, स्थिति, समुद्घात, च्यवन और जातिकुलकोटि । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।······ऐसा कहकर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ॥२८१॥

॥ सातवें शतक का पांचवां उद्देशक समाप्त ॥

—०—

शतक ७ उद्देशक ६

राजगृह नगर में गौतम स्वामी ने यावत् इस प्रकार पूछा–हे भगवन् ! जो जीव नरक में उत्पन्न होने योग्य है वह जीव इस भव में रहता हुआ नरक का आयुष्य बाँधता है या नरक में उत्पन्न होता हुआ नरक का आयुष्य बांधता है ? या नरक में उत्पन्न होने पर नरक का आयुष्य बांधता है ? हे गौतम ! इस भव में रहा हुआ जीव नरक का आयुष्य बांधता है, परन्तु नरक में उत्पन्न होता हुआ नरक का आयुष्य नहीं बांधता और नरक में उत्पन्न होने के बाद भी नरक का आयुष्य नहीं बांधता । इस प्रकार असुरकुमारों में यावत् वैमानिकों तक में भी जान लेना चाहिए ।

हे भगवन् ! जो जीव नरक में उत्पन्न होने योग्य है, वह इस भवमें रहता हुआ नरक का आयुष्य वेदता है, या वहां उत्पन्न होता हुआ नरक का आयुष्य

वेदता है, अथवा वहां उत्पन्न होने के बाद नरकका आयुष्य वेदता है ? हे गौतम ! इस भव में रहा हुआ जीव नरक के आयुष्य का वेदन नहीं करता, परन्तु नरकमें उत्पन्न होता हुआ और उत्पन्न होने के बाद नरक के आयुष्य का वेदन करता है। इस प्रकार यावत् वैमानिक तक चौबीसों दण्डकों में कहना चाहिये ।

हे भगवन् ! जो जीव नरक में उत्पन्न होने वाला है, वह इस भव में रहा हुआ महावेदना वाला है, या नरक में उत्पन्न होता हुआ महावेदना वाला है, या उत्पन्न होने के बाद महावेदना वाला है ? हे गौतम ! वह जीव इस भव में रहा हुआ कदाचित् महावेदना वाला होता है और कदाचित् अल्प वेदना वाला होता है । नरक में उत्पन्न होता हुआ कदाचित् महावेदना वाला होता है और कदाचित् अल्प वेदना वाला होता है, किन्तु नरक में उत्पन्न होने के बाद एकान्त दुःख रूप वेदना वेदता है । कदाचित् सुखरूप वेदना वेदता है ।

हे भगवन् ! जो जीव असुरकुमारों में उत्पन्न होने वाला है······? हे गौतम ! वह इस भव में रहा हुआ कदाचित् महावेदना वाला होता है और कदाचित् अल्प वेदना वाला होता है, उत्पन्न होता हुआ कदाचित् महा वेदना वाला होता है और कदाचित् अल्प वेदना वाला होता है, परन्तु उत्पन्न होने के बाद वह एकान्त सुख रूप वेदना वेदता है और कदाचित् दुःख रूप वेदना वेदता है । इस प्रकार यावत् स्तनितकुमारों तक कहना चाहिये ।

हे भगवन् ! जो जीव पृथ्वीकाय में उत्पन्न होने वाला है···? हे गौतम ! इस भव में रहा हुआ वह जीव कदाचित् महावेदना वाला होता है और कदाचित् अल्प वेदना वाला होता है । इसी प्रकार उत्पन्न होता हुआ भी कदाचित् महा वेदना वाला और कदाचित् अल्प वेदना वाला होता है, परन्तु उत्पन्न होने के बाद वह विमात्रा (विविध प्रकार से) वेदना वेदता है । इस प्रकार यावत् मनुष्य पर्यन्त कहना चाहिये । जिस प्रकार असुरकुमारों के विषय में कहा है, उसी प्रकार वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देवों के विषय में भी कहना चाहिये ॥२८२॥

हे भगवन् ! जीव आभोगनिर्वतित आयुष्य वाले हैं या अनाभोग निर्वतित आयुष्य वाले हैं ? हे गौतम ! जीव आभोगनिर्वतित आयुष्य वाले नहीं, किन्तु अनाभोगनिर्वर्तित आयुष्य वाले हैं । इस प्रकार नैरयिकों के विषय में भी जानना चाहिये, यावत् वैमानिकपर्यन्त इसी तरह जानना चाहिये ॥२८३॥

हे भगवन् ! क्या जीव कर्कशवेदनीय (अत्यन्त दुःखपूर्वक भोगने योग्य) कर्मों का बन्ध करते हैं ? हां, गौतम ! बांधते हैं । हे भगवन् ! जीव कर्कश-वेदनीय कर्म किस प्रकार बांधते हैं ? हे गौतम ! प्राणातिपात के सेवन से यावत् मिथ्यादर्शनशल्य, इन अठारह पापों के सेवन से जीव कर्कश-वेदनीय कर्म बांधते

हैं। हे भगवन् ! क्या नैरयिक जीव कर्कश-वेदनीय कर्म बांधते हैं ? हां, गौतम ! बांधते हैं । यावत् वैमानिक पर्यन्त इसी तरह कहना चाहिये ।

हे भगवन् ! क्या जीव अकर्कश-वेदनीय (सुखपूर्वक भोगने योग्य) कर्म बांधते हैं ? हां, गौतम ! बाँधते हैं । हे भगवन् ! जीव अकर्कश-वेदनीय (अति सुखपूर्वक भोगने योग्य) कर्म किस प्रकार बांधते हैं ? हे गौतम ! प्राणातिपात विरमण से यावत् परिग्रह विरमण से तथा क्रोध विवेक (क्रोध का त्याग) से यावत् मिथ्यादर्शनशल्य विवेक (त्याग) से जीव अकर्कश-वेदनीय कर्म बांधते हैं । हे भगवन् ! नैरयिक जीव अकर्कश-वेदनीय कर्म बांधते हैं ? हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं । इस तरह यावत् वैमानिकपर्यन्त कहना चाहिये । परन्तु मनुष्योंके विषय में औधिक जीवों की तरह कथन करना चाहिये ॥२८४॥

भगवन् ! जीव साता-वेदनीय कर्मों का बन्ध करते हैं ? हां, गौतम ! करते हैं । भगवन् ! जीव सातावेदनीय कर्म किस प्रकार बांधते हैं ? गौतम ! प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों पर अनुकम्पा करने से, बहुत से प्राणों, भूतों, जीवों और सत्त्वों को दुःख न देने से, उन्हें शोक उत्पन्न न करने से, उन्हें खेदित एवं पीड़ित न करने से, उनको न पीटने से, उनको परिताप (कष्ट) नहीं देने से जीव सातावेदनीय कर्म बांधते हैं । इसी प्रकार नैरयिकों में भी जानना चाहिये, यावत् वैमानिक पर्यन्त इसी तरह कहना चाहिये ।

भगवन् ! जीव असातावेदनीय कर्म बांधते हैं ? हां, गौतम ! बांधते हैं । भगवन् ! जीव असाता-वेदनीय कर्म किस प्रकार बांधते हैं ? गौतम ! दूसरे जीवों को दुःख देने से, दूसरे जीवों को शोक उत्पन्न करने से, दूसरे जीवों को पीड़ित करने से, दूसरे जीवों को पीटने से, दूसरे जीवों को परिताप उत्पन्न करने से, बहुत से प्राण, भूत, जीव सत्त्वों को दुःख देने से, शोक उत्पन्न करने से यावत् परिताप उत्पन्न करने से जीव असाता-वेदनीय कर्म बांधते हैं। इसी प्रकार नैरयिकों में और इसी प्रकार यावत् वैमानिक पर्यन्त जानना चाहिये ॥२८५॥

भगवन् ! इस जम्बूद्वीप नामक द्वीप के भरत क्षेत्र में इस अवसर्पिणी काल का दुषमदुषमनामक छठा आरा जब अत्यन्त उत्कट अवस्था को प्राप्त होगा, तब इस भरतक्षेत्र का आकारभावप्रत्यवतार (आकार और भावों का आविर्भाव) कैसा होगा ? गौतम ! वह काल हाहाभूत अर्थात् मनुष्यों के हाहाकारयुक्त, भंभाभूत अर्थात् पशुओं के दुःखयुक्त आर्त्तनाद से युक्त (जिस काल में पशु भाँ भाँ शब्द करेंगे), कोलाहलभूत (दुःख से पीड़ित पक्षी जिसमें कोलाहल करेंगे) होगा । काल के प्रभाव से अत्यन्त कठोर, धूमिल (धूल से मलीन बने हुए), असह्य, व्याकुल (जीवों को आकुल-व्याकुल कर देने वाली) और भयंकर वायु एवं संवर्तक वायु चलेगी । इस काल में बार-बार चारों तरफ धूल उड़ती हुई होने

से रज से मलीन, अन्धकारयुक्त और प्रकाश-शून्य दिशाएँ होंगी। काल की रूक्षता से चन्द्रमा से अत्यन्त शीतलता गिरेगी और सूर्य अत्यन्त तपेंगे। अरस मेघ अर्थात् खराब रस वाले मेघ, विरस (विरुद्ध रस वाले) मेघ, क्षार मेघ अर्थात् खारे पानी वाले मेघ, तिक्त मेघ अर्थात् तीक्ष्ण पानी वाले मेघ, अग्नि मेघ अर्थात् अग्नि के समान गर्म पानी वाले मेघ, विद्युत्मेघ अर्थात् बिजली सहित मेघ, विष-मेघ अर्थात् विष सरीखे पानी वाले मेघ, अशनिमेघ अर्थात् ओले (गड़े) बरसाने वाले मेघ अथवा वज्र आदि के समान पर्वतादि को तोड़ने वाले मेघ, अपेय अर्थात् नहीं पीने योग्य पानी वाले मेघ, तृषा को शान्त न कर सकने वाले पानीयुक्त मेघ, व्याधि, रोग और वेदना उत्पन्न करने वाले मेघ, मन को अरुचिकर पानी वाले मेघ, प्रचण्ड वायु युक्त तीक्ष्ण धाराओं के साथ बरसेंगे। जिससे भरत क्षेत्र के ग्राम, आकर, नगर, खेट, कर्बट, मडम्ब, द्रोणमुख, पट्टन और आश्रम, इन स्थानों में रहने वाले मनुष्य, चतुष्पद, खग (आकाश में उड़ने वाले पक्षी), ग्राम और जंगलों में चलने वाले त्रस जीव तथा बहुत प्रकार के वृक्ष, गुल्म, लताएँ, बेलें, घास, दूब, पर्वक (गन्ने आदि), शाल्यादि धान्य, प्रवाल और अंकुर आदि तृण वनस्पतियाँ, ये सब विनष्ट हो जायेंगी। वैताढ्य-पर्वत को छोड़कर शेष सभी पर्वत, छोटे पहाड़, टीले, स्थल, रेगिस्तान, आदि सब का विनाश हो जायेगा। गंगा और सिन्धु, इन दो नदियों को छोड़कर शेष नदियाँ, पानी के झरने, गड्ढे, सरोवर, तालाब आदि सब नष्ट हो जायेंगे। दुर्गम और विषम, ऊँचे और नीचे सब स्थान समतल हो जायेंगे। भगवन् ! उस समय में भरत क्षेत्र की भूमि का आकारभावप्रत्यवतार (आकार और भावों का आविर्भाव-स्वरूप) कैसा होगा ? गौतम ! उस समय इस भरतक्षेत्र की भूमि अंगार के समान, मुर्मुर (छाणा की अग्नि) के समान, भस्मीभूत (गर्म राख के समान), तपे हुए लोह के कड़ाहे के समान, ताप द्वारा अग्नि के समान, बहुत धूल वाली, बहुत रज वाली, बहुत कीचड़ वाली, बहुत शैवाल वाली, बहुत चलनि (कर्दम) वाली होगी। जिस पर पृथ्वीस्थित जीवों को चलना बड़ा ही कठिन होगा ॥२८६॥

भगवन् ! उस समय अर्थात् 'दुषमदुषमा' नामक छठे आरे के समय मनुष्यों का आकारभाव-प्रत्यवतार (आकार और भावों का आविर्भाव-स्वरूप) कैसा होगा ? गौतम ! उस समय इस भरतक्षेत्र के मनुष्य, कुरूप, कुवर्ण, कुगन्ध, कुरस और कुस्पर्शयुक्त, अनिष्ट, अमनोज्ञ, अमनाम (मन को नहीं गमने वाले अर्थात् अच्छे नहीं लगने वाले), हीन स्वर, दीन स्वर, अनिष्ट स्वर, अमनोज्ञ स्वर और यावत् अमनाम स्वर युक्त, अनादेय और अप्रीतियुक्त वचन वाले, निर्लज्ज, कूट, कपट, कलह, वध, बन्ध और वैर में आसक्त, मर्यादा का उल्लंघन करने में अग्रणी, अकार्य में तत्पर, माता-पिता आदि पूज्यजनों की आज्ञा भंग

करने वाले, विनय रहित, विकलरूप अर्थात् वेडील आकार वाले, वढ़े हुए नख, केश, दाढ़ी, मूंछ और रोम वाले, काले, अतीव कठोर, श्यामवर्ण वाले, बिखरे हुए बालों वाले, पीले और सफेद केशों वाले, अनेक स्नायुओं से आवेष्टित, दुर्दर्शनीय रूप वाले, संकुचित और वली-तरंगयुक्त (झुरियों से युक्त) टेढ़ेमेढ़े अंगोपांग वाले, अनेक प्रकार के कुलक्षणों से युक्त, जरापरिणत वृद्ध पुरुष के सदृश प्रविरल और टूटे फूटे सड़े दाँतों वाले, घड़े के समान भयङ्कर मुंह वाले, विषम नेत्रों वाले, टेढ़ी नाक वाले, टेढ़े और विकृत मुख वाले, खाज (एक प्रकार की भयङ्कर खुजली) वाले, कठिन और तीक्ष्ण नखों द्वारा खुजलाने से विकृत बने हुए, दद्रु (दाद), किडिभ (एक प्रकार का कोढ़), सिध्म (एक प्रकार का भयंकर कोढ़) वाले, फटी हुई कठोर चमड़ी वाले, विचित्र अंग वाले, ऊंट के समान गति वाले, कुआकृतियुक्त, विषमसंधिवन्धनयुक्त, ऊँची नीची विषम हड्डियों और पसलियों से युक्त, कुगठन युक्त, कुसंहनन वाले, कुप्रमाणयुक्त, विषम संस्थानयुक्त, कुरूप कुस्थान में वढ़े हुए शरीर वाले, कुशय्या वाले (खराव स्थान में शयन करने वाले), कुभोजन करने वाले, विविध व्याधियों से पीड़ित, स्खलित गति वाले, उत्साह रहित, सत्त्व रहित, विकृत चेष्टा युक्त, तेज हीन, वारम्बार शीत, उष्ण, तीक्ष्ण और कठोर पवन से व्याप्त (संत्रस्त) रज आदि से मलिन अंग वाले, अत्यन्त क्रोध, मान, माया और लोभ से युक्त, अत्यन्त अशुभ वेदना को भोगने वाले और प्रायः धर्म-संज्ञा (धर्म-भावना) एवं सम्यक्त्व से भ्रष्ट होंगे। इनकी अवगाहना एक हाथ प्रमाण होगी। इनका आयुष्य सोलह वर्ष और अधिक से अधिक बीस वर्ष का होगा। ये वहुत पुत्रपौत्रादि परिवार वाले तथा अत्यन्त ममत्व वाले होंगे। इनके बहत्तर कुटुम्व वीजभूत (आगामी मनुष्य जाति के लिए वीज रूप) होंगे। ये गंगा और सिन्धु महानदियों के बिलों में और वैताढ्य पर्वत की गुफाओं का आश्रय लेकर रहेंगे।

भगवन्! वे मनुष्य किस प्रकार का आहार करेंगे? गौतम! उस काल उस समय में गंगा और सिन्धु महानदियाँ, रथ-मार्ग प्रमाण विस्तृत होंगी। उनमें अक्ष-प्रमाण (धुरी के छिद्र में प्रवेश करे उतना) पानी बहेगा। उस जल में अनेक मच्छ और कच्छप होंगे। पानी अति अल्प होगा। वे बिलवासी मनुष्य सूर्योदय के समय एक मुहूर्त और सूर्यास्त के समय एक मुहूर्त अपने अपने बिलों से बाहर निकलेंगे और गंगा सिन्धु महानदियों में से मछलियाँ और कच्छपादि को पकड़ कर रेत में गाड़ देंगे। वे रात की ठण्ड से और दिन की गर्मी से सिक जायेंगे। इस प्रकार शाम को गाड़े हुए मच्छादि को सुबह निकाल कर खायेंगे और सुबह के गाड़े हुए मच्छादि को शाम को निकाल कर खायेंगे। इस प्रकार वे इक्कीस

हजार वर्ष तक अपनी आजीविका चलावेंगे ।

हे भगवन् ! शील रहित, निर्गुण, मर्यादा रहित, प्रत्याख्यान और पौषधोपवास रहित, प्रायः मांसाहारी, मत्स्याहारी, क्षुद्राहारी, मृतकाहारी वे मनुष्य मरण समय काल करके कहां जायेंगे ? कहां उत्पन्न होंगे ? हे गौतम ! वे मनुष्य प्रायः नरक और तिर्यञ्च में जायेंगे, नरक तिर्यञ्च गतिमें उत्पन्न होंगे । भगवन् ! उस काल और उस समयके सिंह, व्याघ्र, वृक (भेड़िया), द्वीपी (गेण्डा), रीछ, तरक्ष (जरख), शरभ आदि जो कि पूर्वोक्त रूपसे निःशील आदि होंगे, वे मर कर कहाँ जायेंगे ? कहां उत्पन्न होंगे ? गौतम ! वे प्रायः नरक और तिर्यञ्च योनिमें उत्पन्न होंगे । भगवन् ! उस काल और उस समयके ढंक (एक प्रकार के कौए), कंक, वीलक, जलवायस (जल काक), मयूर आदि पक्षी जो पूर्ववत् निःशील आदि होंगे, वे मर कर कहां उत्पन्न होंगे ? गौतम ! वे प्रायः नरक और तिर्यंच योनिमें उत्पन्न होंगे । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है... । ऐसा कहकर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ।।२८७।।

।। सातवें शतक का छठा उद्देशक समाप्त ।।

शतक ७ उद्देशक ७

भगवन् ! उपयोगपूर्वक चलते, बैठते यावत् सोते तथा वस्त्र, पात्र, कम्बल और पादप्रोञ्छन (रजोहरण) आदि लेते हुए और रखते हुए संवृत्त (संवरयुक्त) अनगार को ऐर्यापथिकी क्रिया लगती है, या साम्परायिकी क्रिया लगती है ? गौ० ...... ऐर्यापथिकी क्रिया लगती है, किन्तु साम्परायिकी क्रिया नहीं लगती । भगवन् ! आप किस कारण कहते हैं कि संवरयुक्त यावत् अनगारको ऐर्यापथिकी क्रिया लगती है, साम्परायिकी क्रिया नहीं लगती ? गौतम ! जिसके क्रोध, मान, माया और लोभ व्यवच्छिन्न हो गए हैं, उसको ऐर्यापथिकी क्रिया लगती है । इसी प्रकार यावत् सूत्र विरुद्ध प्रवृत्ति करने वाले को साम्परायिकी क्रिया लगती है । वह संवृत्त अनगार यथासूत्र (सूत्रके अनुसार) प्रवृत्ति करता है । इस कारण हे गौतम ! उसको यावत् साम्परायिकी क्रिया नहीं लगती ।।२८८।।

भगवन् ! काम रूपी हैं या अरूपी हैं ? गौतम ! काम रूपी हैं, अरूपी नहीं हैं । भगवन् ! काम सचित्त हैं, या अचित्त हैं ? गौतम ! काम सचित्त भी हैं और अचित्त भी हैं । भगवन् ! काम जीव हैं या अजीव हैं ? गौतम ! काम जीव भी हैं और अजीव भी हैं । भगवन् ! काम जीवोंके होते हैं या अजीवों के ? गौतम ! काम जीवों के होते हैं, अजीवों के नहीं होते । भगवन् ! काम कितने प्रकारके कहे गए हैं ? गौतम ! काम दो प्रकारके कहे गए हैं, यथा—शब्द और रूप । भगवन् !

भोग रूपी हैं या अरूपी हैं ? गौतम ! भोग रूपी हैं, अरूपी नहीं । भगवन् ! भोग सचित्त हैं या अचित्त ? गौतम ! भोग सचित्त भी हैं और अचित्त भी हैं। भगवन् ! भोग जीव हैं, या अजीव ? गौतम ! भोग जीव भी हैं और अजीव भी हैं। भगवन् ! भोग जीवों के होते हैं, या अजीवों के ? गौतम ! भोग जीवोंके होते हैं, अजीवोंके नहीं होते ।

भगवन् ! भोग कितने प्रकार के कहे गए हैं ? गौतम ! भोग तीन प्रकार के कहे गये हैं। यथा–गन्ध, रस और स्पर्श । भगवन् ! काम-भोग कितने प्रकार के कहे गये हैं ? गौतम ! काम और भोग दोनों मिलाकर पांच प्रकार के कहे हैं। यथा–शब्द, रूप, गन्ध, रस और स्पर्श । भगवन् ! जीव कामी हैं या भोगी हैं ? गौतम ! जीव कामी भी हैं और भोगी भी हैं। भगवन् ! किस कारण से कहते हैं कि जीव कामी भी हैं और भोगी भी हैं ? गौतम ! श्रोत्रेन्द्रिय और चक्षुरिन्द्रिय की अपेक्षा जीव कामी हैं और घ्राणेन्द्रिय, जिव्हेन्द्रिय तथा स्पर्शनेन्द्रियकी अपेक्षा जीव भोगी हैं । इस कारण हे गौतम ! जीव कामी भी हैं और भोगी भी हैं ।

भगवन् ! नैरयिक जीव कामी हैं या भोगी हैं ? गौतम ! नैरयिक जीव कामी भी हैं और भोगी भी हैं । इस प्रकार यावत् स्तनितकुमारों तक कहना चाहिये । भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीव कामी हैं या भोगी हैं ? गौतम ! पृथ्वीकायिक जीव कामी नहीं हैं, भोगी हैं । भगवन् ! किस कारण से कहते हैं कि पृथ्वीकायिक जीव यावत् भोगी हैं ? गौतम ! स्पर्शनेन्द्रिय की अपेक्षा वे भोगी हैं । इस प्रकार यावत् वनस्पतिकायिक तक कहना चाहिये । बेइन्द्रिय जीव भी भोगी हैं, परन्तु वे जिव्हेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय की अपेक्षा भोगी हैं । तेइन्द्रिय जीव भी इसी तरह जानने चाहियें, किन्तु वे घ्राणेन्द्रिय, जिव्हेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय की अपेक्षा भोगी हैं ।

भगवन् ! चतुरिन्द्रिय जीव कामी हैं या भोगी हैं ? गौतम ! चतुरिन्द्रिय जीव कामी भी हैं और भोगी भी हैं । भगवन् ! इसका क्या कारण है ? गौतम ! चतुरिन्द्रिय जीव चक्षुइन्द्रिय की अपेक्षा कामी हैं । घ्राणेन्द्रिय, जिव्हेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय की अपेक्षा भोगी हैं । शेष वैमानिकपर्यन्त सभी जीवों के विषय में औधिक जीवों की तरह कहना चाहिये । भगवन् ! कामभोगी, नोकामीनोभोगी और भोगी जीवोंमें कौन किससे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ? गौतम ! कामभोगी जीव सबसे थोड़े हैं, नोकामीनोभोगी जीव उनसे अनन्तगुणे हैं और भोगी जीव उनसे अनन्त गुणे हैं ॥२८६॥

हे भगवन् ! ऐसा छद्मस्थ मनुष्य जो किसी देवलोकमें उत्पन्न होनेके योग्य है, वह क्षीण-भोगी (दुर्बल शरीर वाला) उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुष-

कारपराक्रम द्वारा विपुल और भोगने योग्य भोगोंको भोगने में समर्थ नहीं है ? हे भगवन् ! आप इस अर्थको इसी तरह कहते हैं ? हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं। वह उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषकारपराक्रम द्वारा किन्हीं विपुल और भोगने योग्य भोगोंको भोगनेमें समर्थ है। इसलिये हे गौतम ! वह भोगी भोगों का त्याग करता हुआ महानिर्जरा और महापर्यवसान (महाफल) वाला होता है।

भगवन् ! ऐसा अधोऽवधिक (नियतक्षेत्र के अवधिज्ञान वाला) मनुष्य जो किसी देवलोकमें उत्पन्न होने योग्य है, वह क्षीण-भोगी (दुर्बल शरीर वाला) उत्थान यावत् पुरुषकारपराक्रम द्वारा विपुल भोगने योग्य भोगोंको भोगने में समर्थ है ? गौतम ! इसका कथन भी उपर्युक्त छद्मस्थके समान ही जान लेना चाहिये, यावत् वह महापर्यवसान वाला होता है।

भगवन् ! ऐसा परमावधिक मनुष्य जो उसी भवमें सिद्ध होने वाला है यावत् सर्व दुःखोंका अन्त करने वाला है, क्या वह क्षीण-भोगी यावत् भोगने योग्य विपुल भोगोंको भोगने में समर्थ है ? गौतम ! इसका उत्तर छद्मस्थके लिये दिये हुए उत्तरके समान जानना चाहिये।

भगवन् ! केवलज्ञानी मनुष्य जो उसी भवमें सिद्ध होने वाला है यावत् सभी दुःखोंका अन्त करने वाला है। क्या वह और भोगने योग्य विपुल भोगोंको भोगने में समर्थ है ? गौतम ! इसका कथन परमावधिज्ञानी की तरह करना चाहिये। यावत् वह महापर्यवसान वाला होता है ॥२९०॥

भगवन् ! जो ये असंज्ञी (मन रहित) प्राणी हैं, यथा—पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेउकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक और छठा कितनेक त्रस-कायिक (सम्मूर्च्छिम त्रसकायिक) जीव जो अन्ध (अज्ञानी), मूढ़, अज्ञानान्धकार में प्रविष्ट, अज्ञानरूप आवरण और मोह जालके द्वारा आच्छादित हैं, वे अकाम-निकरण (अनिच्छापूर्वक) वेदना वेदते हैं,—क्या ऐसा कहना चाहिए ? हाँ, गौतम ! जो ये असंज्ञी प्राणी पृथ्वीकायिक यावत् वनस्पतिकायिक और छठा त्रस (सम्मूर्च्छिम त्रस) कायिक जीव, ये सब अकामनिकरण वेदना वेदते हैं।

भगवन् ! क्या ऐसा भी है कि समर्थ होते हुए (संज्ञी होते हुए) भी जीव अकाम-निकरण वेदना वेदते हैं ? हाँ, गौतम ! वेदते हैं। भगवन् ! समर्थ होते हुए भी जीव अकामनिकरण वेदना किस प्रकार वेदते हैं ? गौतम ! जो जीव समर्थ होते हुए भी अन्धकार में दीपक के विना पदार्थों को देखने में समर्थ नहीं होते, अवलोकन किये विना सामने के पदार्थों को नहीं देख सकते, अवेक्षण किये विना पीछे रहे हुए रूपों को नहीं देख सकते, अवलोकन किये विना दोनों ओर के रूपों को नहीं देख सकते, आलोचन किये विना ऊपर और नीचे के रूपों को नहीं देख सकते, वे समर्थ होते हुए भी अकाम-निकरण वेदना वेदते हैं।

भगवन् ! क्या ऐसा भी होता है कि समर्थ होते हुए भी जीव प्रकामनिकरण (तीव्र इच्छापूर्वक) वेदना को वेदते हैं ? हाँ, गौतम ! वेदते हैं। भगवन् ! समर्थ होते हुए भी जीव प्रकामनिकरण वेदना किस प्रकार वेदते हैं ? गौतम ! जो समुद्र के पार जाने में समर्थ नहीं हैं, जो समुद्र के पार रहे हुए रूपों को देखने में समर्थ नहीं हैं, जो देवलोक में जाने में समर्थ नहीं हैं और जो देवलोक में रहे हुए रूपों को देखने में समर्थ नहीं हैं, हे गौतम ! वे समर्थ होते हुए भी प्रकामनिकरण वेदना वेदते हैं। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है।......॥२६१॥

॥ सातवें शतक का सातवां उद्देशक समाप्त ॥

—०—

शतक ७ उद्देशक ८

भगवन् ! क्या छद्मस्थ मनुष्य अनन्त और शाश्वत अतीत काल में केवल संयम द्वारा, केवल संवर द्वारा, केवल ब्रह्मचर्य द्वारा और केवल अष्ट प्रवचनमाताके पालन द्वारा सिद्ध हुआ है, बुद्ध हुआ है, यावत् सर्व दुःखोंका अन्त किया है ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। इस विषयमें प्रथम शतकके चौथे उद्देशक में जो कहा है वही यावत् 'अलमत्थु' पाठ तक कहना चाहिये ॥२६२॥

भगवन् ! क्या हाथी और कुन्थुए का जीव समान है ? हाँ, गौतम ! हाथी और कुन्थुआ दोनोंका जीव समान है। इस विषयमें राजप्रश्नीय सूत्रमें कहे अनुसार यावत् 'खुड्डियं वा महालियं वा' पाठ तक कहना चाहिये ॥२६३॥

भगवन् ! नैरयिक जीवों द्वारा जो पापकर्म किया गया है, किया जाता है और जो किया जायेगा, क्या वह सब दुःखरूप है और जिसकी निर्जरा की गई है, क्या वह सब सुख रूप है ? हां, गौतम ! नैरयिकों द्वारा जो पापकर्म किया गया है यावत् वह दुःख रूप है और जिसकी निर्जरा की गई है, वह सुख रूप है। इस प्रकार यावत् वैमानिक पर्यन्त चौबीसों दण्डकोंमें जान लेना चाहिये ॥२६४॥

भगवन् ! संज्ञा कितने प्रकार की कही गई है ? गौतम ! संज्ञा दस प्रकार की कही गई है। यथा—१ आहार संज्ञा, २ भय संज्ञा, ३ मैथुन संज्ञा, ४ परिग्रह संज्ञा, ५ क्रोध संज्ञा, ६ मान संज्ञा, ७ माया संज्ञा, ८ लोभ संज्ञा, ९ लोक संज्ञा, १० ओघ संज्ञा। इस प्रकार यावत् वैमानिक पर्यन्त चौबीसों दण्डकों में ये दस संज्ञायें पाई जाती हैं। नैरयिक जीव दस प्रकारकी वेदनाका अनुभव करते हुए रहते हैं। यथा—१ शीत, २ उष्ण, ३ क्षुधा, ४ पिपासा, ५ कण्डू (खुजली), ६ परतन्त्रता, ७ ज्वर, ८ दाह, ९ भय, १० शोक ॥२६५॥

भगवन् ! क्या हाथी और कुन्थुए के जीव को अप्रत्याख्यानिकी क्रिया समान लगती है ? हां, गौतम ! हाथी और कुन्थुएके जीवको अप्रत्याख्यानिकी

क्रिया समान लगती है। भगवन्! इसका क्या कारण है? गौतम! अविरति की अपेक्षा हाथी और कुन्थुएके जीवको अप्रत्याख्यानिकी क्रिया समान लगती है ॥२६६॥

भगवन्! आधाकर्म आहारादि सेवन करने वाला साधु क्या बान्धता है, क्या करता है, किसका चय करता है, किसका उपचय करता है? गौतम! आधाकर्म आहारादिका सेवन करने वाला साधु आयुष्यकर्मको छोड़कर, शेष सात कर्मोंकी प्रकृतियोंको, यदि वे शिथिल बन्ध से बंधी हुई हों, तो उन्हें गाढ़बन्ध वाली करता है यावत् बारम्बार संसार परिभ्रमण करता है। इस विषयक सारा वर्णन प्रथम शतकके नौवें उद्देशकमें कहे अनुसार कहना चाहिये। यावत् पण्डित शाश्वत है और पण्डितपन अशाश्वत है, यहाँ तक कहना चाहिये। हे भगवन्! यह इसी प्रकार है···। इस प्रकार कह कर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ॥२६७॥

॥ सातवें शतकका आठवां उद्देशक समाप्त ॥

—o—

शतक ७ उद्देशक ६

भगवन्! क्या असंवृत्त (प्रमत्त) अनगार बाहरके पुद्गलोंको ग्रहण किये बिना एक वर्ण वाला एकरूप वैक्रिय कर सकता है? गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं। भगवन्! क्या असंवृत्त अनगार बाहरके पुद्गलोंको ग्रहण करके एक वर्ण वाले एकरूपकी विक्रिया कर सकता है? हां, गौतम! कर सकता है। भगवन्! क्या वह अनगार यहाँ रहे हुए पुद्गलोंको ग्रहण करके विक्रिया करता है, या वहाँ रहे हुए पुद्गलोंको ग्रहण करके विक्रिया करता है, या अन्यत्र रहे हुए पुद्गलोंको ग्रहण करके विक्रिया करता है? गौतम! यहाँ रहे हुए पुद्गलोंको ग्रहण करके विक्रिया (विकुर्वणा) करता है, परन्तु वहाँ रहे हुए पुद्गलों को ग्रहण करके विक्रिया नहीं करता और अन्यत्र रहे हुए पुद्गलोंको ग्रहण करके भी विक्रिया नहीं करता। इस प्रकार एक वर्ण अनेकरूप, अनेकवर्ण एकरूप और अनेकवर्ण अनेकरूप चौभंगी आदिका कथन जिस प्रकार छठे शतकके नौवें उद्देशकमें किया गया है, उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिये। परन्तु इतनी विशेषता है कि यहाँ रहा हुआ साधु यहाँ रहे हुए पुद्गलोंको ग्रहण करके विक्रिया करता है। शेष सारा वर्णन उसीके अनुसार कहना चाहिये, यावत् भगवन्! क्या रूक्ष पुद्गलों को स्निग्ध पुद्गलपने परिणमानेमें समर्थ है? हां, समर्थ है। भगवन्! क्या यहाँ रहे हुए पुद्गलोंको ग्रहणकरके यावत् अन्यत्र रहे हुए पुद्गलोंको ग्रहण किये बिना विक्रिया करता है, वहाँ तक कहना चाहिये ॥२६८॥

अरिहन्त भगवान् ने यह जाना है, यह सुना है अर्थात् प्रत्यक्ष देखा है, विशेष रूपसे जाना है कि महाशिलाकण्टक नामक संग्राम हुआ। भगवन्! जब

महाशिलाकण्टक संग्राम चलता था, तब उसमें कौन जीता और कौन हारा ? गौतम ! वज्री अर्थात् इन्द्र और विदेहपुत्र अर्थात् कोणिक राजा जीते। नव मल्लवी और नव लिच्छवी जो कि काशी और कौशल देशके अठारह गणराजा थे, वे पराजित हुए।

उस समय में 'महाशिला कंटक संग्राम' उपस्थित हुआ जान कर कोणिक राजाने अपने कौटुम्बिक पुरुषों (आज्ञापालक सेवकों) को बुलाया। बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा कि हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही 'उदायी' नामक पट्टहस्ती को तैयार करो और हाथी, घोड़ा, रथ और योद्धाओंसे युक्त चतुरंगिणी सेना सन्नद्धबद्ध करो अर्थात् शस्त्रादिसे सुसज्जित करो और वैसा करके अर्थात् मेरी आज्ञानुसार कार्य करके मेरी आज्ञा वापिस मुझे शीघ्र सौंपो। इसके पश्चात् कोणिक राजा के द्वारा इस प्रकार कहे हुए वे कौटुम्बिक पुरुष हृष्ट, तुष्ट हुए यावत् मस्तक पर अञ्जलि करके—'स्वामिन् ! जैसी आपकी आज्ञा'—ऐसा कहकर विनयपूर्वक वचनों द्वारा आज्ञा स्वीकार की। वचन को स्वीकार करके कुशल आचार्यों द्वारा शिक्षित और तीक्ष्ण मति-कल्पनाके विकल्पोंसे युक्त इत्यादि विशेषणों युक्त औपपातिक सूत्र में कहे अनुसार यावत् भयंकर संग्राम के योग्य उदार (प्रधान) उदायी नामक पट्टहस्तीको सुसज्जित किया। तथा घोड़ा, हाथी, रथ और योद्धाओंसे युक्त चतुरंगिणी सेनाको सुसज्जित किया। सुसज्जित करके जहां कोणिक राजा था, वहाँ आये और दोनों हाथ जोड़कर कोणिक राजा को उसकी आज्ञा वापिस सौंपी। इसके अनन्तर कोणिक राजा जहां स्नानघर था, वहाँ गया और स्नानघरमें प्रवेश किया। फिर स्नान करके सब अलङ्कारोंसे विभूषित हुआ, सन्नद्धबद्ध हुआ। लोह कवचको धारण किया। मुड़े हुए धनुर्दण्ड को ग्रहण किया। गलेमें आभूषण पहने। योद्धाके योग्य उत्तमोत्तम चिन्हपट बाँधे। आयुध और प्रहरणोंको धारण किया, कोरण्टक-पुष्पमाला युक्त छत्र धारण किया। उसके चारों तरफ चामर ढुलाये जाने लगे। जय-विजय शब्द उच्चारण किये जाने लगे। ऐसा कोणिक राजा औपपातिक सूत्रमें कहे अनुसार यावत् उदायी नामक पट्टहस्ती पर बैठा।

इसके पश्चात् हारों से आच्छादित वक्षस्थल वाला कोणिक जनमन में रति उत्पन्न करता हुआ और औपपातिक सूत्र में कहे अनुसार बार-बार श्वेत-चामरों से विंजाता हुआ यावत् घोड़े, हाथी, रथ और उत्तम योद्धाओंसे युक्त चतुरंगिणी सेनासे परिवृत महान् सुभटोंके विस्तीर्ण समूहसे व्याप्त कोणिक राजा महाशिला-कंटक संग्राम में आया। उसके आगे देवेन्द्र देवराज शक्र वज्र के समान अभेद्य एक महान् कवच की विकुर्वणा करके खड़ा हुआ। इस प्रकार मानों दो इन्द्र संग्राम करने लगे। यथा (१) देवन्द्र और (२) मनुजेन्द्र। अब

क्रिया समान लगती है। भगवन्! इसका क्या कारण है? गौतम! अविरति की अपेक्षा हाथी और कुन्थुए के जीवको अप्रत्याख्यानिकी क्रिया समान लगती है ॥२६६॥

भगवन्! आधाकर्म आहारादि सेवन करने वाला साधु क्या बान्धता है, क्या करता है, किसका चय करता है, किसका उपचय करता है? गौतम! आधाकर्म आहारादिका सेवन करने वाला साधु आयुष्यकर्मको छोड़कर, शेष सात कर्मोंकी प्रकृतियोंको, यदि वे शिथिल बन्ध से बंधी हुई हों, तो उन्हें गाढ़बन्ध वाली करता है यावत् बारम्बार संसार परिभ्रमण करता है। इस विषयक सारा वर्णन प्रथम शतकके नौवें उद्देशकमें कहे अनुसार कहना चाहिये। यावत् पण्डित शाश्वत है और पण्डितपन अशाश्वत है, यहाँ तक कहना चाहिये। हे भगवन्! यह इसी प्रकार है…। इस प्रकार कह कर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ॥२६७॥

॥ सातवें शतकका आठवां उद्देशक समाप्त ॥

—०—

शतक ७ उद्देशक ६

भगवन्! क्या असंवृत्त (प्रमत्त) अनगार बाहरके पुद्गलोंको ग्रहण किये विना एक वर्ण वाला एकरूप वैक्रिय कर सकता है? गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं। भगवन्! क्या असंवृत्त अनगार बाहरके पुद्गलोंको ग्रहण करके एक वर्ण वाले एकरूपकी विक्रिया कर सकता है? हां, गौतम! कर सकता है। भगवन्! क्या वह अनगार यहाँ रहे हुए पुद्गलोंको ग्रहण करके विक्रिया करता है, या वहाँ रहे हुए पुद्गलोंको ग्रहण करके विक्रिया करता है, या अन्यत्र रहे हुए पुद्गलोंको ग्रहण करके विक्रिया करता है? गौतम! यहाँ रहे हुए पुद्गलोंको ग्रहण करके विक्रिया (विकुर्वणा) करता है, परन्तु वहाँ रहे हुए पुद्गलों को ग्रहण करके विक्रिया नहीं करता और अन्यत्र रहे हुए पुद्गलोंको ग्रहण करके भी विक्रिया नहीं करता। इस प्रकार एक वर्ण अनेकरूप, अनेकवर्ण एकरूप और अनेकवर्ण अनेकरूप चौभंगी आदिका कथन जिस प्रकार छठे शतकके नौवें उद्देशकमें किया गया है, उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिये। परन्तु इतनी विशेषता है कि यहाँ रहा हुआ साधु यहाँ रहे हुए पुद्गलोंको ग्रहण करके विक्रिया करता है। शेष सारा वर्णन उसीके अनुसार कहना चाहिये, यावत् भगवन्! क्या रूक्ष पुद्गलों को स्निग्ध पुद्गलपने परिणमानेमें समर्थ है? हां, समर्थ है। भगवन्! क्या यहाँ रहे हुए पुद्गलोंको ग्रहणकरके यावत् अन्यत्र रहे हुए पुद्गलोंको ग्रहण किये विना विक्रिया करता है, वहाँ तक कहना चाहिये ॥२६८॥

अरिहन्त भगवान् ने यह जाना है, यह सुना है अर्थात् प्रत्यक्ष देखा है, विशेष रूपसे जाना है कि महाशिलाकण्टक नामक संग्राम हुआ। भगवन्! जब

महाशिलाकण्टक संग्राम चलता था, तब उसमें कौन जीता और कौन हारा ? गौतम ! वज्री अर्थात् इन्द्र और विदेहपुत्र अर्थात् कोणिक राजा जीते। नव मल्लवी और नव लिच्छवी जो कि काशी और कौशल देशके अठारह गणराजा थे, वे पराजित हुए।

उस समय में 'महाशिला कंटक संग्राम' उपस्थित हुआ जान कर कोणिक राजाने अपने कौटुम्बिक पुरुषों (आज्ञापालक सेवकों) को बुलाया। बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा कि हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही 'उदायी' नामक पट्टहस्ती को तैयार करो और हाथी, घोड़ा, रथ और योद्धाओंसे युक्त चतुरंगिणी सेना सन्नद्धवद्ध करो अर्थात् शस्त्रादिसे सुसज्जित करो और वैसा करके अर्थात् मेरी आज्ञानुसार कार्य करके मेरी आज्ञा वापिस मुझे शीघ्र सौंपो। इसके पश्चात् कोणिक राजा के द्वारा इस प्रकार कहे हुए वे कौटुम्बिक पुरुष हृष्ट, तुष्ट हुए यावत् मस्तक पर अञ्जलि करके—'स्वामिन् ! जैसी आपकी आज्ञा'—ऐसा कहकर विनयपूर्वक वचनों द्वारा आज्ञा स्वीकार की। वचन को स्वीकार करके कुशल आचार्यों द्वारा शिक्षित और तीक्ष्ण मति-कल्पनाके विकल्पोंसे युक्त इत्यादि विशेषणों युक्त औपपातिक सूत्र में कहे अनुसार यावत् भयंकर संग्राम के योग्य उदार (प्रधान) उदायी नामक पट्टहस्तीको सुसज्जित किया। तथा घोड़ा, हाथी, रथ और योद्धाओंसे युक्त चतुरंगिणी सेनाको सुसज्जित किया। सुसज्जित करके जहां कोणिक राजा था, वहाँ आये और दोनों हाथ जोड़कर कोणिक राजा को उसकी आज्ञा वापिस सौंपी। इसके अनन्तर कोणिक राजा जहां स्नानघर था, वहाँ गया और स्नानघरमें प्रवेश किया। फिर स्नान करके सब अलङ्कारोंसे विभूषित हुआ, सन्नद्धबद्ध हुआ। लोह कवचको धारण किया। मुड़े हुए धनुर्दण्ड को ग्रहण किया। गलेमें आभूषण पहने। योद्धाके योग्य उत्तमोत्तम चिन्हपट बाँधे। आयुध और प्रहरणोंको धारण किया, कोरण्टक-पुष्पमाला युक्त छत्र धारण किया। उसके चारों तरफ चामर ढुलाये जाने लगे। जय-विजय शब्द उच्चारण किये जाने लगे। ऐसा कोणिक राजा औपपातिक सूत्रमें कहे अनुसार यावत् उदायी नामक पट्टहस्ती पर बैठा।

इसके पश्चात् हारों से आच्छादित वक्षस्थल वाला कोणिक जनमन में रति उत्पन्न करता हुआ और औपपातिक सूत्र में कहे अनुसार वार-बार श्वेत-चामरों से विंजाता हुआ यावत् घोड़े, हाथी, रथ और उत्तम योद्धाओंसे युक्त चतुरंगिणी सेनासे परिवृत महान् सुभटोंके विस्तीर्ण समूहसे व्याप्त कोणिक राजा महाशिला-कंटक संग्राम में आया। उसके आगे देवेन्द्र देवराज शक्र वज्र के समान अभेद्य एक महान् कवच की विकुर्वणा करके खड़ा हुआ। इस प्रकार मानों दो इन्द्र संग्राम करने लगे। यथा (१) देवन्द्र और (२) मनुजेन्द्र। अब

कोणिक राजा एक हाथीके द्वारा भी शत्रु सेना का पराजय करने में समर्थ था। इसके अनन्तर उस कोणिक राजाने महाशिला-कण्टक संग्राम करते हुए नव मल्लकी और नव लिच्छवी जो काशी और कौशल देशके अठारह गणराजा थे, उनके महा-योद्धाओंको नष्ट किया, घायल किया और मार डाला। उनकी चिन्हयुक्त ध्वजा और पताकाओंको गिरा दिया। जिनके प्राण महासंकटमें पड़ गये हैं, ऐसे उन राजाओं को युद्धमें से चारों दिशाओंमें भगा दिया।

भगवन् ! इसे महाशिलाकण्टक संग्राम क्यों कहा जाता है ? गौतम ! जब महाशिला-कण्टक संग्राम हो रहा था, उस समय उस संग्राममें जो भी घोड़ा, हाथी, योद्धा और सारथि आदि तृण, काष्ठ, पत्र या कंकर आदिके द्वारा आहत होते थे वे सब ऐसा जानते थे कि हम महाशिलासे मारे गये हैं अर्थात् हमारे ऊपर महाशिला पड़ गई है। इस कारण गौतम ! उसे महाशिलाकण्टक संग्राम कहा गया है। भगवन् ! महाशिला-कण्टक संग्राममें कितने लाख मनुष्य मारे गये ? गौतम ! चौरासी लाख मनुष्य मारे गये। भगवन् ! निःशील यावत् प्रत्याख्यान पौषधोपवास रहित, रोष में भरे हुए, कुपित बने हुए, युद्धमें घायल हुए और अनुपशान्त ऐसे वे मनुष्य कालके समयमें काल करके कहां गये और कहां उत्पन्न हुए ? गौतम ! वे प्रायः नरक और तिर्यञ्च योनिमें उत्पन्न हुए ॥२६६॥

भगवन् ! अरिहन्त भगवान् ने जाना है, प्रत्यक्ष किया है और विशेष रूप से जाना है कि रथमूसल नामक संग्राम हुआ। हे भगवन् ! जब रथमूसल संग्राम हो रहा था, तब कौन जीता था और कौन हारा था ? गौतम ! वज्री (इन्द्र), विदेहपुत्र (कोणिक) और असुरेन्द्र असुरकुमार-राज चमर जीता था और नव मल्लकी तथा नव लिच्छवी राजा हारे थे। रथमूसल संग्रामको उपस्थित हुआ जान-कर कोणिक राजाने अपने कौटुम्बिक (सेवक) पुरुषोंको बुलाया। यावत् महा-शिलाकण्टक संग्राममें कहा हुआ सारा वर्णन यहां कहना चाहिये। इसमें इतनी विशेषता है कि यहाँ भूतानन्द नामक पट्टहस्ती यावत् वह कोणिक रथमूसल संग्राम में उतरा। उसके आगे देवेन्द्र देवराज शक्र था यावत् पूर्ववत् सारा वर्णन कहना चाहिये। पीछे असुरेन्द्र असुरकुमारराज चमर ने लोहेके बने हुए किठिन (बांस का बना हुआ एक तापस पात्र) के समान कवचकी विकुर्वणा की। इस प्रकार तीन इन्द्र युद्ध करने लगे। यथा—देवेन्द्र, मनुजेन्द्र और असुरेन्द्र। अब कोणिक एक हाथीके द्वारा भी शत्रुओंको पराजय करनेमें समर्थ था, यावत् उसने पूर्व कथित वर्णन के अनुसार शत्रुओं को चारों दिशाओंमें भगा दिया।

भगवन् ! इसे रथमूसल संग्राम क्यों कहते हैं ? गौतम ! जिस समय रथमूसल संग्राम हो रहा था, उस समय अश्व रहित, सारथी रहित, योद्धा रहित

और मूसल सहित रथ, अत्यन्त जन संहार, जन वध, जन मर्दन और जन प्रलय करता हुआ तथा रक्तका कीचड़ करता हुआ चारों ओर दौड़ता था। अतः उस संग्रामको रथमूसल संग्राम कहा गया है। भगवन्! उस रथमूसल संग्राममें कितने लाख मनुष्य मारे गये? गौतम! छयानवें लाख मनुष्य मारे गये। भगवन्! निःशील (शील रहित) यावत् वे मनुष्य मर कर कहां गये, कहाँ उत्पन्न हुए? गौतम! उनमें से दस हजार मनुष्य तो एक मछलीके उदर में उत्पन्न हुए। एक मनुष्य देवलोकमें उत्पन्न हुआ, एक मनुष्य उत्तम कुल (मनुष्य गति) में उत्पन्न हुआ और शेष प्रायः नरक और तिर्यञ्च योनिमें उत्पन्न हुए ॥३००॥

भगवन्! देवेन्द्र देवराज शक्र और असुरेन्द्र असुरकुमारराज चमर, इन दोनों इन्द्रों ने कोणिक राजा को किस कारण से सहायता दी? गौतम! देवेन्द्र देवराज शक्र तो कोणिक राजा का पूर्व संगतिक (पूर्वभव सम्बन्धी अर्थात् कातिक सेठ के भव में) मित्र था और असुरेन्द्र असुरकुमारराज चमर कोणिक राजा का पर्याय-संगतिक (पूरण नामक तापस की अवस्था का साथी) मित्र था। इसलिये हे गौतम! देवेन्द्र देवराज शक्रने और असुरेन्द्र असुरकुमारराज चमरने कोणिकको सहायता दी ॥३०१॥

भगवन्! बहुतसे मनुष्य इस प्रकार कहते हैं यावत् प्ररूपणा करते हैं कि अनेक प्रकार के छोटे बड़े संग्रामोंमें से किसी भी संग्राममें सम्मुख रहकर युद्ध करते हुए उसमें मारे जायँ, तो वे सब काल के समय काल करके देवलोकों में से किसी देवलोक में उत्पन्न होते हैं। भगवन्! ऐसा किस प्रकार हो सकता है? गौतम! बहुत से मनुष्य जो इस प्रकार कहते हैं यावत् प्ररूपणा करते हैं कि संग्राममें मारे हुए मनुष्य देवलोकोंमें उत्पन्न होते हैं, वे मिथ्या कहते हैं। गौतम! मैं इस प्रकार कहता हूं यावत् प्ररूपणा करता हूं—उस काल उस समयमें वैशाली नामकी नगरी थी। उसमें वरुण-नागनत्तुआ (नाग नामक पुरुष का 'वरुण' नामक पौत्र या दोहित्र) रहता था। वह धनाढ्य यावत् किसीसे पराभूत न हो सके—ऐसा समर्थ था। वह श्रमणोपासक था और जीवाजीवादि तत्त्वोंका ज्ञाता था, यावत् वह आहारादि द्वारा श्रमण-निर्ग्रन्थोंको प्रतिलाभित करता हुआ एवं निरन्तर छठ-छठकी तपस्या द्वारा अपनी आत्मा को भावित करता हुआ विचरता था।

एक बार राजाके आदेशसे, गणके अभियोग से और बलके अभियोगसे उसे रथमूसल संग्राममें जाने की आज्ञा हुई। तब उसने बेले की तपस्या को बढ़ाकर तेले की तपस्या करली। उसने अपने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रियो! चार घण्टों वाला अश्वरथ सामग्री सहित तैयार कर उपस्थित करो। घोड़ा, हाथी, रथ और प्रवर-योद्धाओंसे युक्त चतुरंगिणी

कोणिक राजा एक हाथीके द्वारा भी शत्रु सेना का पराजय करने में समर्थ था। इसके अनन्तर उस कोणिक राजाने महाशिला-कण्टक संग्राम करते हुए नव मल्लवी और नव लिच्छवी जो काशी और कौशल देशके अठारह गणराजा थे, उनके महा-योद्धाओंको नष्ट किया, घायल किया और मार डाला। उनकी चिन्हयुक्त ध्वजा और पताकाओंको गिरा दिया। जिनके प्राण महासंकटमें पड़ गये हैं, ऐसे उन राजाओं को युद्धमें से चारों दिशाओंमें भगा दिया।

भगवन् ! इसे महाशिलाकण्टक संग्राम क्यों कहा जाता है ? गौतम ! जब महाशिला-कण्टक संग्राम हो रहा था, उस समय उस संग्राममें जो भी घोड़ा, हाथी, योद्धा और सारथि आदि तृण, काष्ठ, पत्र या कंकर आदिके द्वारा आहत होते थे वे सब ऐसा जानते थे कि हम महाशिलासे मारे गये हैं अर्थात् हमारे ऊपर महाशिला पड़ गई है। इस कारण गौतम ! उसे महाशिलाकण्टक संग्राम कहा गया है। भगवन् ! महाशिला-कण्टक संग्राममें कितने लाख मनुष्य मारे गये ? गौतम ! चौरासी लाख मनुष्य मारे गये। भगवन् ! निःशील यावत् प्रत्याख्यान पौषधोपवास रहित, रोष में भरे हुए, कुपित बने हुए, युद्धमें घायल हुए और अनुपशान्त ऐसे वे मनुष्य कालके समयमें काल करके कहां गये और कहां उत्पन्न हुए ? गौतम ! वे प्रायः नरक और तिर्यञ्च योनिमें उत्पन्न हुए ॥२९९॥

भगवन् ! अरिहन्त भगवान् ने जाना है, प्रत्यक्ष किया है और विशेष रूप से जाना है कि रथमूसल नामक संग्राम हुआ। हे भगवन् ! जब रथमूसल संग्राम हो रहा था, तब कौन जीता था और कौन हारा था ? गौतम ! वज्री (इन्द्र), विदेहपुत्र (कोणिक) और असुरेन्द्र असुरकुमार-राज चमर जीता था और नव मल्लवी तथा नव लिच्छवी राजा हारे थे। रथमूसल संग्रामको उपस्थित हुआ जान-कर कोणिक राजाने अपने कौटुम्बिक (सेवक) पुरुषोंको बुलाया। यावत् महा-शिलाकण्टक संग्राममें कहा हुआ सारा वर्णन यहां कहना चाहिये। इसमें इतनी विशेषता है कि यहाँ भूतानन्द नामक पट्टहस्ती यावत् वह कोणिक रथमूसल संग्राम में उतरा। उसके आगे देवेन्द्र देवराज शक्र था यावत् पूर्ववत् सारा वर्णन कहना चाहिये। पीछे असुरेन्द्र असुरकुमारराज चमर ने लोहेके बने हुए किठिन (बांस का बना हुआ एक तापस पात्र) के समान कवचकी विकुर्वणा की। इस प्रकार तीन इन्द्र युद्ध करने लगे। यथा—देवेन्द्र, मनुजेन्द्र और असुरेन्द्र। अब कोणिक एक हाथीके द्वारा भी शत्रुओंको पराजय करनेमें समर्थ था, यावत् उसने पूर्व कथित वर्णन के अनुसार शत्रुओं को चारों दिशाओंमें भगा दिया।

भगवन् ! इसे रथमूसल संग्राम क्यों कहते हैं ? गौतम ! जिस समय रथमूसल संग्राम हो रहा था, उस समय अश्व रहित, सारथी रहित, योद्धा रहित

सेनाको सज्जित करो, यावत् सज्जित करके यह मेरी आज्ञा मुझे समर्पित करो। कौटुम्बिक पुरुषोंने यावत् उसकी आज्ञा को स्वीकार कर छत्र सहित, ध्वजा सहित यावत् रथको शीघ्र उपस्थित किया और घोड़ा, हाथी, रथ एवं प्रवर-योद्धाओंसे युक्त चतुरंगिणी सेना को सज्जित किया और वरुण-नागनत्तुआको उसकी आज्ञा वापिस सौंपी। वरुण-नागनत्तुआ स्नानघर में गया और कोणिक की तरह यावत् सर्वालङ्कारोंसे विभूषित हुआ, कवच पहना, कोरण्टपुष्प की माला युक्त छत्र धारण किया। फिर अनेक गणनायक यावत् दूत और सन्धिपालों के साथ परिवृत्त हो स्नान-घर से बाहर निकला। निकल कर बाहरकी उपस्थान-शालामें आया और चार-घण्टों वाले अश्वरथ पर सवार हुआ। घोड़े, हाथी, रथ और प्रवर-योद्धाओंसे युक्त चतुरंगिणी सेना के साथ यावत् महान् सुभटों के समूह से परिवृत्त वह वरुणनागनत्तुआ रथमूसल संग्राम में आया।

युद्ध में प्रवृत्त होने के पूर्व उसने यह नियम लिया कि 'रथमूसल संग्राममें युद्ध करते हुए मुझ पर जो पहले वार करेगा, उसी को मारना मुझे योग्य है, दूसरे को नहीं।' इस प्रकार का अभिग्रह करके वह संग्राम करने लगा। संग्राम करते हुए वरुण-नागनत्तुआके रथके सामने, उसीके समान वय वाला, उसीके समान त्वचा वाला और उसी के समान अस्त्रशस्त्रादि उपकरणों वाला एक पुरुष, रथमें बैठकर आया और उसने वरुण-नागनत्तुआ से कहा कि "हे वरुण-नागनत्तुआ! तू मुझ पर प्रहार कर।" तब वरुण-नागनत्तुआ ने उस पुरुषसे इस प्रकार कहा "देवानुप्रिय! जब तक मुझ पर पहले कोई प्रहार नहीं करेगा, तब तक उस पर प्रहार करना मुझे योग्य नहीं है। इसलिये पहले तू ही मुझ पर प्रहार कर।" जब वरुण-नागनत्तुआ ने उस पुरुषसे ऐसा कहा, तब कुपित एवं क्रोधाग्निसे धमधमाते हुए उस पुरुष ने धनुष उठाया, उस पर बाण चढ़ाया, अमुक आसन से अमुक स्थान पर रह कर धनुषको कान तक लम्बा खींचा और वरुण-नागनत्तुआ पर तत्काल प्रबल प्रहार किया। उस प्रहार से घायल बने हुए वरुण-नागनत्तुआने कुपित होकर धनुष उठाया, उस पर बाण चढ़ाया और उस बाण को कान पर्यन्त खींचकर उस पुरुष पर फैंका। इस प्रहार से जिस प्रकार पत्थर के टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं, उसी प्रकार वह पुरुष जीवन से रहित हो गया।

इसके पश्चात् उस पुरुष के प्रबल प्रहार से घायल हुआ वरुणनागनत्तुआ शक्ति रहित, निर्बल, वीर्यरहित और पुरुषकार पराक्रम से रहित बना और 'अब मेरा शरीर टिक नहीं सकेगा'—यह समझ कर रथको वापिस फेरा और संग्राम-स्थल से बाहर निकला। एकान्त स्थान में जाकर रथ को खड़ा किया। रथ से नीचे उतर कर उसने घोड़ों को छोड़ कर विसर्जित कर दिया। फिर दर्भ (डाभ) का संथारा बिछाया और पूर्वदिशा की ओर मुंह करके पर्यंकासनसे दर्भ के संथारे

पर बैठा और दोनों हाथ जोड़कर यावत् इस प्रकार कहा—'अरिहन्त भगवन्त यावत् जो सिद्धगति को प्राप्त हुए हैं, उन्हें नमस्कार हो। मेरे धर्म-गुरु धर्माचार्य श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को नमस्कार हो, जो धर्म की आदि करने वाले हैं यावत् सिद्धगतिको प्राप्त करने की इच्छा वाले हैं। वहां दूर स्थान पर रहे हुए भगवान् को यहां रहा हुआ मैं वन्दना करता हूं। वहाँ रहे हुए भगवान् मुझे देखें," इत्यादि कहकर उसनें वन्दन नमस्कार किया। वन्दन नमस्कार करके इस प्रकार कहा कि "पहले मैंने श्रमण भगवान् महावीर स्वामीके पास जीवन पर्यन्त स्थूल प्राणातिपात का प्रत्याख्यान किया था, यावत् स्थूल परिग्रह का जीवन पर्यन्त प्रत्याख्यान किया था, अब अरिहन्त भगवान् महावीर स्वामी की साक्षी से सर्व प्राणातिपात का जीवन पर्यन्त प्रत्याख्यान करता हूं ···। इस प्रकार स्कन्दक की तरह 'इस शरीर का भी अन्तिम श्वासोच्छ्वासके साथ त्याग करता हूं', ऐसा कह कर उसनें सन्नाहपट (कवच) खोल दिया। सन्नाहपट को खोलकर वाण को बाहर खींचा। वाणको शरीरसे बाहर निकाल कर आलोचना की, प्रतिक्रमण किया और समाधि युक्त काल धर्मको प्राप्त हो गया।

उस वरुणनागनत्तुआ का एक प्रिय बाल-मित्र भी रथमूसल संग्राममें युद्ध करता था। वह भी एक पुरुष द्वारा घायल हुआ और शक्तिरहित, बलरहित, वीर्य-रहित बनें हुए उसनें सोचा-'अब मेरा शरीर टिक नहीं सकेगा,' उसनें वरुणनागनत्तुआ को युद्ध-स्थलसे बाहर निकलते हुए देखा। वह भी अपने रथ को वापिस फिराकर रथ-मूसल संग्राम से बाहर निकला और जहां वरुण-नागनत्तुआ था, वहाँ आकर घोड़ोंको रथ से खोलकर विसर्जित कर दिया। फिर वस्त्र का संथारा बिछाकर उस पर पूर्व दिशा की ओर मुंह करके बैठा और दोनों हाथ जोड़कर इस प्रकार बोला—'भगवन्! मेरे प्रिय बाल-मित्र वरुण-नागनत्तुआ के जो शीलव्रत, गुण-व्रत, विरमण व्रत, प्रत्याख्यान और पौषधोपवास हैं, वे सब मुझे भी होवें'—ऐसा कहकर उसनें कवच खोला। शरीरमें लगे हुए वाण को बाहर निकाला और अनुक्रमसे वह भी काल-धर्मको प्राप्त हो गया। वरुण-नागनत्तुआ को काल-धर्म प्राप्त हुआ जानकर निकट रहे हुए वाणव्यन्तर देवों ने उस पर सुगन्धित जलकी वृष्टि की, पांच वर्णके फूल वरसाये और गीत एवं गन्धर्व-नाद किया। उस वरुण-नागनत्तुआ की दिव्य देव-ऋद्धि, दिव्य देव प्रभाव को सुनकर और देखकर बहुत से मनुष्य परस्पर इस प्रकार कहने लगे यावत् प्ररूपणा करनें लगे कि 'देवानु-प्रियो! जो संग्राम करते हुए मरते हैं, वे देवलोक में उत्पन्न होते हैं ॥३०२॥

भगवन्! वरुण-नागनत्तुआ काल के समय में काल करके कहां गया, कहाँ उत्पन्न हुआ? गौतम! सौधर्म देवलोक के अरुणाभ नामक विमानमें देवपने उत्पन्न हुआ है। वहां के कितने ही देवोंकी स्थिति चार पल्योपमकी कही गई है,

तदनुसार वरुण देव की स्थिति भी चार पल्योपम की है । भगवन् ! वह वरुणदेव देवलोककी आयु, भव और स्थिति का क्षय होने पर कहाँ जाएगा, कहाँ उत्पन्न होगा ? गौतम ! वह महाविदेह क्षेत्रमें जन्म लेकर सिद्ध होगा यावत् सभी दुःखों का अन्त करेगा । भगवन् ! वरुण-नागनत्तुआका प्रिय बालमित्र कालके समय काल करके कहां गया, कहां उत्पन्न हुआ ? गौतम ! वह सुकुल में (अच्छे मनुष्य कुल में) उत्पन्न हुआ है । भगवन् ! वहाँसे काल करके वरुण-नागनत्तुआका प्रिय बालमित्र कहाँ जायेगा, कहाँ उत्पन्न होगा ? गौतम ! वह महाविदेह क्षेत्रमें जन्म लेकर सिद्ध होगा यावत् सर्व दुःखोंका अन्त करेगा । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है...। ऐसा कह कर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ॥३०३॥

॥सातवें शतक का नौवां उद्देशक समाप्त ॥

शतक ७ उद्देशक १०

उस काल उस समयमें राजगृह नामक नगर था, वर्णक० । गुणशील नामक बगीचा था, वर्णक० । यावत् उसमें पृथ्वी-शिलापट्ट था । उस गुणशील उद्यान के पास थोड़ी दूर पर बहुतसे अन्यतीर्थी रहते थे । यथा--कालोदायी, शैलोदायी, शैवालोदायी, उदय, नामोदय, नर्मोदय, अन्यपालक, शैलपालक, शंखपालक और सुहस्ती गृहपति । किसी समय वे सब एक जगह आये और सुखपूर्वक बैठे । उन अन्यतीथिकों में इस प्रकार का वार्तालाप हुआ--"श्रमण-ज्ञातपुत्र (महावीर) पांच अस्तिकायोंकी प्ररूपणा करते हैं, यथा--धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और जीवास्तिकाय । इनमें से श्रमण-ज्ञातपुत्र चार अस्तिकायको 'अजीवकाय' कहते हैं । यथा--धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय । एक जीवास्तिकायको श्रमण-ज्ञातपुत्र 'अरूपी जीवकाय' बतलाते हैं । उन पांच अस्तिकायों में श्रमण-ज्ञातपुत्र चार अस्तिकायों को 'अरूपी' बताते हैं । यथा--धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और जीवास्तिकाय । एक पुद्गलास्तिकाय को ही श्रमण-ज्ञातपुत्र रूपीकाय और 'अजीवकाय' कहते हैं । उनकी यह बात किस प्रकार मानी जा सकती है ?"

उस काल उस समयमें श्रमण भगवान् महावीर स्वामी गुणशील उद्यान में यावत् पधारे । यावत् परिषद् वापिस चली गई । उस काल उस समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामीके ज्येष्ठ अन्तेवासी गौतम गोत्री इन्द्रभूति नामक अनगार दूसरे शतक के निर्ग्रन्थोद्देशकमें कहे अनुसार भिक्षाचर्या के लिये घूमते हुए यथा-पर्याप्त आहार-पानी ग्रहण करके राजगृह नगर से त्वरा रहित, चपलता रहित, ईर्यासमिति का शोधन करते हुए, अन्यतीर्थिकोंसे थोड़ी दूर होकर निकले । तब

अन्यतीर्थिकोंने भगवान् गौतम को थोड़ी दूरी से जाते हुए देखा और एक दूसरेसे परस्पर इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रियो ! पञ्चास्तिकाय सम्बन्धी यह बात हम नहीं जानते। यह गौतम अपने से थोड़ी दूरी पर ही जा रहे हैं, इसलिये गौतमसे यह अर्थ पूछना श्रेयस्कर है।' इस प्रकार परस्पर परामर्श करके वे भगवान् गौतम के पास आये और उन्होंने भगवान् गौतम से इस प्रकार पूछा—

'हे गौतम ! तुम्हारे धर्माचार्य धर्मोपदेशक श्रमण-ज्ञातपुत्र पांच अस्तिकाय की प्ररूपणा करते हैं, यथा-धर्मास्तिकाय यावत् आकाशास्तिकाय यावत् उन्होंने अपनी सारी चर्चा गौतम से कही। फिर पूछा गौतम ! यह किस प्रकार है ? तब भगवान् गौतमने अन्यतीर्थिकों से इस प्रकार कहा—"देवानुप्रियो ! हम अस्तिभाव (विद्यमान) को नास्तिभाव (अविद्यमान) नहीं कहते, इसी प्रकार नास्तिभाव को अस्तिभाव नहीं कहते। देवानुप्रियो ! हम सभी अस्तिभावोंको अस्तिभाव कहते हैं और नास्तिभावोंको नास्तिभाव कहते हैं, इसलिये देवानुप्रियो ! आप स्वयं ज्ञान द्वारा इस बात का विचार करो," इस प्रकार कहकर गौतम स्वामीने उन अन्यतीर्थिकोंसे कहा कि जैसा भगवान् ने कहा है वैसा ही है। गौतमस्वामी गुणशीलक उद्यान में श्रमण भगवान् महावीर स्वामीके पास आये और दूसरे शतक के पांचवें निर्ग्रन्थोद्देशक में कहे अनुसार यावत् भगवान् को भक्तपान दिखलाया। भक्तपान दिखलाकर श्रमण भगवान् महावीर स्वामीको वन्दन नमस्कार किया। वन्दन नमस्कार करके न बहुत दूर न बहुत निकट रह कर यावत् पर्युपासना करने लगे।

उस काल उस समयमें श्रमण भगवान् महावीर स्वामी महाकथाप्रतिपन्न थे अर्थात् बहुत से मनुष्योंको धर्मोपदेश देनेमें प्रवृत्त थे। उसी समय कालोदायी वहाँ शीघ्र आया। 'कालोदायिन् !' इस प्रकार सम्बोधित करके श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने कालोदायी से इस प्रकार कहा—कालोदायी ! किसी समय एकत्र बैठे हुए तुम सबमें पंचास्तिकाय के सम्बन्धमें इस प्रकार विचार हुआ था कि यावत् यह बात किस प्रकार मानी जा सकती है ? कालोदायिन् ! क्या यह बात यथार्थ है ?" "हाँ, यथार्थ है।" "कालोदायिन् ! पंचास्तिकाय सम्बन्धी बात सत्य है। मैं धर्मास्तिकाय यावत् पुद्गलास्तिकाय पर्यन्त पाँच अस्तिकाय की प्ररूपणा करता हूं। उनमें से चार अस्तिकायोंको अजीवास्तिकाय अजीवरूप कहता हूं। यावत् पूर्व कथितानुसार एक पुद्गलास्तिकायको रूपी अजीवकाय कहता हूं।

तब कालोदायी ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामीसे कहा कि "भगवन् ! धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय इन अरूपी अजीवकायोंके ऊपर क्या कोई बैठना, सोना, खड़े रहना, नीचे बैठना और इधर-उधर आलोटना

इत्यादि क्रियाएँ कर सकता है ?" कालोदायिन् ! यह अर्थ योग्य नहीं है । केवल पुद्गलास्तिकाय ही रूपी अजीवकाय है, उस पर बैठना,सोना आदि क्रियाएँ करने में कोई भी समर्थ है । भगवन् ! इस रूपी अजीव पुद्गलास्तिकायमें क्या जीवों को पापफल-विपाक सहित अर्थात् अशुभ फल देने वाले पापकर्म लगते हैं ? कालोदायिन् ! यह अर्थ योग्य नहीं है, किन्तु अरूपी जीवास्तिकाय में ही जीवों को पापफलविपाक सहित पापकर्म लगते हैं, अर्थात् जीव ही पापकर्म संयुक्त होते हैं । भगवान् के उत्तरको सुन कर कालोदायी बोधको प्राप्त हुआ । फिर उसने श्रमण भगवान् महावीर स्वामीको वन्दन नमस्कार किया । वन्दना नमस्कार करके उसने इस प्रकार कहा—भगवन् ! मैं आपके पास धर्म सुनना चाहता हूं" भगवान् ने उसको धर्म सुनाया । फिर स्कन्दककी तरह उसने भगवान् के पास प्रव्रज्या अंगीकार की । ग्यारह अंगों का ज्ञान पढ़ा यावत् कालोदायी अनगार विचरते हैं ।।३०४।।

किसी समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी राजगृह नगर के गुणशील उद्यानसे निकलकर बाहर जनपद (देश)में विचरने लगे । उस काल उस समयमें राजगृह नगर के बाहर गुणशील नामक उद्यान था । किसी समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी पुनः वहां पधारे यावत् धर्मोपदेश सुनकर परिषद् लौट गई । कालोदायी अनगार किसी समय श्रमण भगवान् महावीरके पास आये और भगवान् महावीर स्वामीको वन्दन नमस्कार करके इस प्रकार पूछा—भगवन् ! क्या जीवोंको पापफल-विपाक सहित पापकर्म लगते हैं ? हाँ, कालोदायिन् ! लगते हैं । भगवन् ! पापफल-विपाक सहित पापकर्म कैसे होते हैं ? कालोदायिन् ! जैसे कोई पुरुष सुन्दर भाण्डमें पकाने से शुद्ध पका हुआ, अठारह प्रकारके दाल-शाकादि व्यञ्जनोंसे युक्त विष-मिश्रित भोजन करता है, तो वह भोजन प्रारंभमें अच्छा लगता है, परन्तु उसके बाद उसका परिणाम खराब रूपपने, दुर्गन्धपने यावत् छठे शतक के महास्रव नामक तीसरे उद्देशकमें कहे अनुसार अशुभ होता है । इसी प्रकार कालोदायिन् ! जीवके लिये प्राणातिपात यावत् मिथ्यादर्शनशल्य तक अठारह पाप-स्थानका सेवन तो अच्छा लगता है, किन्तु उनके द्वारा बंधे हुए पापकर्म जब उदयमें आते हैं, तब उनका परिणाम अशुभ होता है । इसी प्रकार कालोदायिन् ! जीवोंके लिये अशुभ फल-विपाक सहित पापकर्म होते हैं ।

भगवन् ! क्या जीवोंके कल्याण फल-विपाक सहित कल्याण (शुभ) कर्म होते हैं ? हां, कालोदायिन् ! होते हैं । भगवन् ! जीवोंके कल्याण फल-विपाक सहित कल्याण-कर्म कैसे होते हैं ? कालोदायिन् ! जैसे कोई एक पुरुष सुन्दर भाण्डमें राँधने से शुद्ध पका हुआ और अठारह प्रकारके दाल-शाकादि व्यञ्जनोंसे

युक्त औषध मिश्रित भोजन करता है, तो वह भोजन प्रारम्भमें अच्छा नहीं लगता, परन्तु उसके बाद जब उसका परिणमन होता है, तब वह सुरूपपने, सुवर्णपने यावत् सुखपने बारंबार परिणत होता है, वह दुःखपने परिणत नहीं होता। इसी प्रकार कालोदायिन्! जीवोंके लिये प्राणातिपात-विरमण यावत् परिग्रह-विरमण, क्रोधविवेक (क्रोधका त्याग) यावत् मिथ्यादर्शनशल्यका त्याग, प्रारंभमें कठिन लगता है, किन्तु उसका परिणाम सुखरूप यावत् नो दुःखरूप होता है। इसी प्रकार कालोदायिन्! जीवोंके कल्याणफल-विपाक संयुक्त कल्याण कर्म होते हैं ॥३०५॥

भगवन्! समान आयुके यावत् समान भाण्ड पात्रादि उपकरण वाले दो पुरुष परस्पर एक दूसरेके साथ अग्निकायका समारम्भ करें। उनमें से एक पुरुष अग्निकायको जलावे और एक पुरुष अग्निकायको बुझावे, तो भगवन्! उन दोनों पुरुषोंमें से कौनसा पुरुष महाकर्म वाला, महाक्रिया वाला, महाआस्रव वाला और महावेदना वाला होता है और कौनसा पुरुष अल्प कर्मवाला, अल्प क्रियावाला, अल्प आस्रव वाला और अल्प वेदना वाला होता है? अर्थात् जो पुरुष अग्निकाय को जलाता है वह महाकर्मवाला...होता है, या जो पुरुष अग्निकाय को बुझाता है वह महाकर्म वाला...होता है? कालोदायिन्! उन दोनों पुरुषों में से जो पुरुष अग्निकाय को जलाता है, वह पुरुष महाकर्म वाला यावत् महावेदना वाला होता है और जो पुरुष अग्निकाय को बुझाता है, वह अल्प कर्म वाला यावत् अल्प वेदना वाला होता है।

भगवन्! ऐसा किस कारण से कहते हैं कि उन दोनों पुरुषों में से जो पुरुष अग्निकाय को जलाता है वह महाकर्म वाला......होता है और जो अग्निकाय को बुझाता है, वह अल्प कर्म वाला...होता है? कालोदायिन्! उन दोनों पुरुषों में से जो पुरुष अग्निकायको जलाता है, वह पृथ्वी-कायका बहुत समारम्भ करता है, अप्कायका बहुत समारम्भ करता है, अग्निकाय का अल्प समारंभ करता है, वायुकायका बहुत समारम्भ करता है, वनस्पतिकायका बहुत समारम्भ करता है और त्रसकायका बहुत समारम्भ करता है। और जो पुरुष अग्निकायको बुझाता है वह पृथ्वीकाय का अल्प समारम्भ करता है, अप्कायका अल्प समारम्भ करता है, वायुकाय का अल्प समारम्भ करता है, वनस्पतिकायका अल्प समारम्भ करता है, एवं त्रसकायका अल्प समारंभ करता है। किन्तु अग्निकायका बहुत समारम्भ करता है। इसलिये कालोदायी! जो पुरुष अग्निकायको जलाता है वह पुरुष महाकर्मवाला...है और जो पुरुष अग्निकाय को बुझाता है वह अल्पकर्म वाला है ॥३०६॥

भगवन्! क्या अचित्त पुद्गल भी अवभासित होते हैं, उद्योत करते हैं, तपते हैं और प्रकाश करते हैं? हां, कालोदायी! करते हैं। भगवन्! कौन-से

अचित्त पुद्गल अवभास करते हैं यावत् प्रकाश करते हैं ? कालोदायिन् ! कुपित हुए साधु की तेजोलेश्या निकलकर दूर जाकर गिरती है, जाने योग्य देश (स्थान) में जाकर उस देशमें गिरती है। जहां जहां वह गिरती है, वहां वहां अचित्त पुद्गल भी अवभास करते हैं यावत् प्रकाश करते हैं। इस कारण कालोदायिन् ! अचित्त पुद्गल भी अवभास करते हैं यावत् प्रकाश करते हैं। इसके बाद कालोदायी अनगार ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना नमस्कार किया और बहुत चतुर्थ (उपवास), षष्ठ (दो उपवास), अष्टम (तीन उपवास) इत्यादि तप द्वारा अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे। यावत् प्रथम शतकके नौवें उद्देशकमें कालास्यवेषी पुत्रकी तरह सिद्ध, बुद्ध, मुक्त यावत् समस्त दुःखोंसे मुक्त हुए। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है···॥३०७॥

॥ सातवें शतकका दसवां उद्देशक समाप्त ॥

॥ सातवां शतक समाप्त ॥

शतक ८ उद्देशक १

[१ पुद्गल २ आशीविष ३ वृक्ष ४ क्रिया ५ आजीविक ६ प्रासुक ७ अदत्त ८ प्रत्यनीक ९ बन्ध और १० आराधना। आठवें शतक के ये दस उद्देशक हैं।]

राजगृह नगरमें यावत् गौतम स्वामीने इस प्रकार पूछा-'भगवन् ! पुद्गल कितने प्रकार के कहे गये हैं ?' गौतम ! पुद्गल तीन···यथा-प्रयोग-परिणत, मिश्र-परिणत और विस्रसा-परिणत ॥३०८॥

भगवन् ! प्रयोगपरिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गये हैं ? गौतम ! पांच प्रकार के कहे गये हैं। यथा-एकेन्द्रिय प्रयोग परिणत, बेइन्द्रिय प्रयोग परिणत यावत् पञ्चेन्द्रिय प्रयोग-परिणत। भगवन् ! एकेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल कितने प्रकार के··· ? गौतम ! पांच प्रकार के···-पृथ्वीकायिक ए०प्र० प० पु० यावत् वनस्पतिकायिक एकेन्द्रिय प्रयोग परिणत पुद्गल। भगवन् ! पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गये हैं ? गौतम ! दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा-सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल और बादर पृथ्वीकायिक एकेंद्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल। इसी प्रकार अप्कायिक एकेंद्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल दो प्रकार के जानने चाहियें। यावत् इसी तरह वनस्पति-कायिक एकेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल दो प्रकार के जानने चाहियें। भगवन् ! बेइन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गये हैं ? गौतम ! वे अनेक प्रकार के कहे गये हैं। इसी प्रकार तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल भी

जान लेने चाहियें। भगवन्! पञ्चेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल कितने प्रकारके कहे गये हैं? गौतम! वे चार प्रकार के कहे गये हैं। यथा–नारक पञ्चेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल, तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल, मनुष्य पञ्चेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल और देव पञ्चेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल।

भगवन्! नैरयिक पञ्चेन्द्रिय प्रयोगपरिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गये हैं? गौतम! नैरयिक पंचेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल सात प्रकार के कहे गये हैं। यथा–रत्नप्रभा पृथ्वी नैरयिक पञ्चेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल यावत् अधःसप्तम पृथ्वी नैरयिक पञ्चेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल।

भगवन्! तिर्यञ्च-योनिक पञ्चेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गये हैं? गौतम! तिर्यञ्च-योनिक पञ्चेन्द्रिय प्रयोगपरिणत पुद्गल तीन प्रकार के कहे गये हैं, यथा–जलचर-तिर्यञ्च-योनिक पञ्चेन्द्रिय प्रयोग-परिणत-पुद्गल, स्थलचर तिर्यञ्चयोनिक पञ्चेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल और खेचर-तिर्यञ्च-योनिक पञ्चेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल।

भगवन्! जलचर-तिर्यच-योनिक पंचेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गये हैं? गौतम! वे दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा–सम्मूर्च्छिम-जलचर-तिर्यंचयोनिक पंचेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल और गर्भज-जलचर-तिर्यच-योनिक पंचेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल।

भगवन्! स्थलचर-तिर्यच-योनिक पंचेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गये हैं? गौतम! वे दो प्रकारके कहे गये हैं। यथा–चतुष्पद-स्थलचर-तिर्यचयोनिक पंचेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल और परिसर्प-स्थलचर-तिर्यच-योनिक पंचेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल। भगवन्! चतुष्पद-स्थलचर तिर्यच-योनिक पंचेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गये हैं? गौतम! वे दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा–सम्मूर्च्छिमचतुष्पद स्थलचर तिर्यंचयोनिक पंचेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल और गर्भजचतुष्पद-स्थलचर तिर्यंच-योनिक पंचेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल। इसी अभिलाप (पाठ) द्वारा परिसर्प दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा–उरपरिसर्प और भुजपरिसर्प। उरपरिसर्प दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा–सम्मूर्च्छिम और गर्भज। इसी प्रकार भुजपरिसर्प और खेचर के भी दो दो भेद कहे गये हैं।

भगवन्! मनुष्य-पंचेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गये हैं? गौतम! वे दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा–सम्मूर्च्छिम मनुष्य-पंचेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल और गर्भज मनुष्य पंचेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल।

भगवन् ! देव-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गये हैं ? गौतम ! वे चार प्रकार के कहे गये हैं। यथा-भवनवासी देव-पंचेंद्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल यावत् वैमानिक देव-पंचेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल। भगवन् ! भवनवासी देव-पंचेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गये हैं ? गौतम ! वे दस प्रकार के कहे गये हैं। यथा-असुरकुमारदेव प्रयोग-परिणत पुद्गल यावत् स्तनितकुमार प्रयोग-परिणत पुद्गल। इसी प्रकार इसी अभिलाप द्वारा आठ प्रकारके वाणव्यन्तर कहने चाहियें। यथा-पिशाच यावत् गन्धर्व। इसी प्रकार इसी अभिलाप द्वारा ज्योतिषी देवों के पांच भेद कहने चाहियें। यथा-चन्द्र-विमान ज्योतिष्क देव यावत् तारा-विमान ज्योतिष्क देव। वैमानिक देव दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा-कल्पोपपन्न वैमानिक देव और कल्पातीत वैमानिक देव। कल्पोपपन्न वैमानिक देवों के बारह भेद कहे गये हैं। यथा-सौधर्म-कल्पोपपन्नक यावत् अच्युत-कल्पोपपन्नक। कल्पातीत वैमानिक देव दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा-ग्रैवेयक-कल्पातीत वैमानिक और अनुत्तरौपपातिक कल्पातीत वैमानिक देव। ग्रैवेयक कल्पातीत वैमानिक देवों के नौ भेद कहे गये हैं। यथा-अधस्तन-अधस्तन (नीचे की त्रिक का नीचे का विमान) ग्रैवेयक कल्पातीत वैमानिक देव यावत् उपरितन-उपरितन (ऊपर की त्रिक का ऊपर का विमान) ग्रैवेयक-कल्पातीत वैमानिक देव। भगवन् ! अनुत्तरौपपातिक-कल्पातीत वैमानिकदेव पंचेंद्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गये हैं ? गौतम ! वे पांच प्रकार के कहे गये हैं। यथा-विजय अनुत्तरौपपातिक-वैमानिक देव पंचेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल यावत् सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरौपपातिक वैमानिक देव पचेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल।

भगवन् ! सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय प्रयोगपरिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गए हैं ? गौतम ! दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा—पर्याप्त सूक्ष्मपृथ्वी-कायिक एकेन्द्रिय प्रयोगपरिणत पुद्गल और अपर्याप्त सूक्ष्मपृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय प्रयोगपरिणत पुद्गल। (कोई कोई आचार्य अपर्याप्त को पहले और पर्याप्त को पीछे कहते हैं।) इस प्रकार बादर पृथ्वीकायिक एकेन्द्रियके भी दो भेद कहने चाहियें। यावत् वनस्पतिकायिक तक सबके सूक्ष्म और बादर, इनके पर्याप्त और अपर्याप्त भेद कहने चाहियें।

भगवन् ! बेइन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल कितने प्रकारके कहे गये हैं ? गौतम ! दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा—पर्याप्त बेइन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल और अपर्याप्त बेइन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल। इसी प्रकार त्रीन्द्रिय और चतुरि-न्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गलोंके विषयमें भी जानना चाहिये। भगवन् ! रत्नप्रभा पृथ्वी नैरयिक प्रयोग-परिणत पुद्गल कितने प्रकारके कहे गये हैं ? गौतम ! वे दो

प्रकारके कहे गये हैं। यथा—पर्याप्त रत्नप्रभा पृथ्वी नैरयिक प्रयोग-परिणत और अपर्याप्त रत्नप्रभा पृथ्वी नैरयिक प्रयोग-परिणत। इसी प्रकार यावत् अधःसप्तम पृथ्वी नैरयिक प्रयोग-परिणत तक कहना चाहिये।

भगवन्! सम्मूर्च्छिम जलचर तिर्यंच-योनिक पंचेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल कितने प्रकारके कहे गये हैं? गौतम! वे दो प्रकारके कहे गये हैं। यथा—पर्याप्त सम्मूर्च्छिम जलचर तिर्यंच-योनिक पंचेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल और अपर्याप्त सम्मूर्च्छिम जलचर तिर्यंच-योनिक पंचेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल। इसी प्रकार गर्भज जलचरोंके विषयमें भी जानना चाहिये। इसी प्रकार सम्मूर्च्छिम और गर्भज चतुष्पद स्थलचर जीवोंके विषयमें यावत् खेचर जीवों तक के विषय में भी जानना चाहिये। इन प्रत्येक के पर्याप्त और अपर्याप्त ये दो दो भेद कहने चाहियें।

भगवन्! सम्मूर्च्छिम मनुष्य पंचेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गये हैं? गौतम! वे एक प्रकारके कहे गये हैं। यथा—अपर्याप्त सम्मूर्च्छिम मनुष्य पंचेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल। भगवन्! गर्भज मनुष्य पंचेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल कितने प्रकारके कहे गये हैं? गौतम! वे दो प्रकारके कहे गये हैं। यथा—पर्याप्त गर्भज मनुष्य पंचेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल और अपर्याप्त गर्भज मनुष्य पंचेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल।

भगवन्! असुरकुमार भवनवासी देव प्रयोग-परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गये हैं? गौतम! वे दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा—पर्याप्त असुर-कुमार भवनवासी देव प्रयोग-परिणत पुद्गल और अपर्याप्त असुरकुमार भवन-वासी देव प्रयोग-परिणत पुद्गल। इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमारों तक पर्याप्त और अपर्याप्त ऐसे दो दो भेद कहने चाहियें। इसी प्रकार पिशाच से लेकर गन्धर्व तक आठ प्रकारके वाणव्यन्तर देवोंके तथा चन्द्रसे लेकर तारा विमान पर्यन्त पांच प्रकारके ज्योतिषी देवोंके एवं सौधर्म कल्पोपपन्नक यावत् अच्युत कल्पो-पपन्नक तक और अधस्तन-अधस्तन ग्रैवेयक कल्पातीतसे लेकर उपरितन-उपरितन ग्रैवेयक कल्पातीत देव प्रयोग-परिणत पुद्गलके एवं विजय अनुत्तरौपपातिक कल्पातीत यावत् अपराजित अनुत्तरौपपातिक देवोंके प्रत्येकके पर्याप्त और अपर्याप्त ये दो दो भेद कहने चाहियें।

भगवन्! सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिक-कल्पातीत देव प्रयोग-परिणत पुद्गल कितने प्रकारके कहे गये हैं? गौतम! वे दो प्रकारके कहे गये हैं। यथा—पर्याप्त सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिक-कल्पातीत देव प्रयोग-परिणत पुद्गल और अपर्याप्त सर्वार्थसिद्ध प्रयोग-परिणत पुद्गल।

शरीर प्रयोग-परिणत हैं, वे वर्ण से काले वर्णपने भी परिणत हैं, यावत् आयत संस्थान रूप से भी परिणत हैं। इस प्रकार पर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय औदारिक तैजस् कार्मण शरीर प्रयोग-परिणत भी जानना चाहिये। इस प्रकार यथानुक्रमसे जानना चाहिये। जिसके जितने शरीर हों उतने कहने चाहियें। यावत् जो पुद्गल पर्याप्त सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरोपपातिक देव पञ्चेन्द्रिय वैक्रिय तैजस् कार्मण शरीर प्रयोग परिणत हैं, वे वर्ण से काला वर्णपने यावत् संस्थान से आयत संस्थान रूप परिणत हैं।

जो पुद्गल अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय स्पर्शनेन्द्रिय प्रयोग-परिणत हैं, वे वर्णसे काला वर्णपने यावत् आयत संस्थानपने भी परिणत हैं। जो पुद्गल पर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय स्पर्शनेन्द्रिय प्रयोग-परिणत हैं। वे भी इसी प्रकार जानने चाहियें। इसी प्रकार अनुक्रमसे सभी जानना चाहिये। जिसके जितनी इन्द्रियां हों, उसके उतनी कहनी चाहियें। यावत् जो पुद्गल पर्याप्त सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरोपपातिक देव पञ्चेन्द्रिय यावत् स्पर्शनेन्द्रिय प्रयोग-परिणत हैं, वे वर्णसे काला वर्णपने यावत् आयत संस्थानपने परिणत हैं।

जो पुद्गल अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय औदारिक तैजस् कार्मण तथा स्पर्शनेन्द्रिय प्रयोग परिणत हैं, वे वर्ण से काला वर्णपने भी यावत् आयत संस्थानपने भी परिणत हैं। वे जो पर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय औदारिक तैजस् कार्मण तथा स्पर्शनेन्द्रिय प्रयोग-परिणत हैं, वे भी इसी प्रकार जानने चाहियें। इस प्रकार अनुक्रमसे सभी जानना चाहिये। जिसके जितने शरीर और इन्द्रियां हों, उसके उतने शरीर और उतनी इन्द्रियां कहनी चाहियें। यावत् जो पुद्गल पर्याप्त सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरौपपातिक देव पंचेन्द्रिय वैक्रिय तैजस् कार्मण तथा श्रोत्रेन्द्रिय यावत् स्पर्शनेन्द्रिय प्रयोग-परिणत हैं, वे वर्णसे काला वर्णपने यावत् संस्थानसे आयत संस्थानपने परिणत हैं। इस प्रकार ये नौ दण्डक कहे गये हैं ॥३०९॥

भगवन् ! मिश्र-परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गये हैं ? गौतम ! पांच प्रकार के कहे गये हैं। यथा–एकेन्द्रियमिश्र-परिणत यावत् पंचेन्द्रिय मिश्र-परिणत०। भगवन् ! एकेन्द्रिय मिश्र-परिणत पुद्गल कितने प्रकारके कहे गये हैं ? गौतम ! जिस प्रकार प्रयोग-परिणत पुद्गलों के विषय में नौ दण्डक कहे गये हैं, उसी प्रकार मिश्र-परिणत पुद्गलों के विषय में भी नौ दण्डक कहने चाहियें और उसी प्रकार सारा वर्णन कहना चाहिये। पूर्वोक्त वर्णनसे इसमें अन्तर यह है कि–'प्रयोग-परिणत' के स्थान पर 'मिश्र-परिणत'–कहना चाहिये। शेष सब उसी प्रकार कहना चाहिये। यावत् जो पुद्गल पर्याप्त सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरौपपातिक मिश्र-परिणत हैं, वे यावत् आयत संस्थान रूप से भी परिणत हैं ॥३१०॥

भगवन् ! विस्रसा-परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गये हैं ? गौतम ! वे पांच प्रकार के कहे गये हैं। यथा–वर्ण-परिणत, गंध-परिणत, रस-परिणत, स्पर्श-परिणत और संस्थान-परिणत। वर्ण-परिणत पुद्गल पांच प्रकार के कहे गये हैं। यथा–काला वर्णपने परिणत यावत् शुक्ल वर्णपने परिणत। जो गन्ध-परिणत हैं, वे दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा–सुरभिगन्धपरिणत और दुरभिगन्ध-परिणत। जिस प्रकार प्रज्ञापना सूत्र के पहले पदमें कहा गया है, उसी प्रकार यहां भी कहना चाहिये। यावत् जो पुद्गल संस्थानसे आयत संस्थान रूप परिणत हैं, वे वर्णसे काला वर्णपने भी परिणत हैं यावत् रूक्ष स्पर्शपने भी परिणत हैं ॥३११॥

भगवन् ! एक द्रव्य क्या प्रयोग-परिणत होता है, मिश्र-परिणत होता है, अथवा विस्रसा-परिणत होता है ? गौतम ! एक द्रव्य प्रयोग-परिणत होता है, अथवा मिश्र-परिणत होता है, अथवा विस्रसा-परिणत होता है। भगवन् ! यदि एक द्रव्य प्रयोग-परिणत होता है, तो क्या मन प्रयोग-परिणत होता है, वचन प्रयोग-परिणत होता है, या काय प्रयोग-परिणत होता है ? गौतम ! वह मन प्रयोग-परिणत होता है, या वचन प्रयोग-परिणत होता है, या काय प्रयोग-परिणत होता है। भगवन् ! यदि एक द्रव्य मन प्रयोग-परिणत होता है, तो क्या सत्य-मन प्रयोग-परिणत होता है, मृषा-मन प्रयोग-परिणत होता है, सत्यमृषा-मन प्रयोग-परिणत होता है, या असत्यामृषा-मन प्रयोग-परिणत होता है ? गौतम ! वह सत्य-मन प्रयोग-परिणत होता है, या मृषा-मन प्रयोग परिणत होता है, या सत्य-मृषा-मन प्रयोग-परिणत होता है, या असत्यामृषा-मन प्रयोग-परिणत होता है।

भगवन् ! यदि एक द्रव्य सत्य-मन प्रयोग-परिणत होता है, तो क्या आरम्भ सत्य-मन प्रयोग-परिणत होता है, अनारम्भ सत्य-मन प्रयोग-परिणत होता है, सारम्भ सत्य-मन प्रयोग-परिणत होता है, असारम्भ सत्य-मन प्रयोग-परिणत होता है, समारम्भ··· या असमारम्भ सत्य-मन प्रयोग-परिणत होता है ? गौतम ! वह आरम्भ सत्य-मन प्रयोग-परिणत होता है, अथवा यावत् असमारम्भ सत्य मन प्रयोग-परिणत होता है।

भगवन् ! यदि एक द्रव्य मृषा-मन प्रयोग-परिणत होता है, तो क्या आरंभमृषा-मन प्रयोग-परिणत होता है, यावत् असमारंभ-मृषा-मन प्रयोग-परिणत होता है ? गौतम ! जिस प्रकार सत्य-मन प्रयोग-परिणतके विषय में कहा है, उसी प्रकार मृषा-मन प्रयोग-परिणतके विषय में भी कहना चाहिये, तथा सत्य-मृषा-मनप्रयोग-परिणत के विषय में एवं असत्या-मृषा-मन प्रयोग-परिणत के विषयमें भी कहना चाहिये।

भगवन् ! यदि एक द्रव्य वचन-प्रयोग-परिणत होता है, तो क्या सत्य वचन प्रयोग-परिणत होता है, मृषा-वचन प्रयोग-परिणत होता है, सत्य-मृषा-वचन

प्रयोग-परिणत होता है, या असत्यामृषा वचन-प्रयोग-परिणत होता है ? गौतम ! जिस प्रकार मन प्रयोग-परिणतके विषय में कहा है, उसी प्रकार वचन प्रयोग-परिणत के विषयमें भी कहना चाहिये। यावत् वह असमारम्भ वचन प्रयोग-परिणत होता है–यहां तक कहना चाहिये।

भगवन् ! यदि एक द्रव्य काय-प्रयोग-परिणत होता है, तो क्या औदारिक-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है, औदारिकमिश्र-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है, वैक्रिय-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है, वैक्रिय मिश्र शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है, आहारक-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है, आहारक-मिश्र शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है, या कार्मणशरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है ? गौतम ! वह एक द्रव्य औदारिक-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है, अथवा यावत् कार्मणशरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है। भगवन् ! यदि एक द्रव्य औदारिक-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है, तो क्या एकेन्द्रिय औदारिक-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है, अथवा यावत् पञ्चेन्द्रिय औदारिक-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है ? गौतम ! वह एक द्रव्य एकेन्द्रिय औदारिक-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है, या बेइन्द्रिय औदारिक-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है अथवा यावत् पञ्चेन्द्रिय औदारिक-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है। भगवन् ! जो एक द्रव्य एकेन्द्रिय औदारिक-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है, तो क्या वह पृथ्वीकाय एकेन्द्रिय औदारिक-शरीर काय-प्रयोग परिणत होता है, अथवा यावत् वनस्पतिकायिक एकेन्द्रिय औदारिक-शरीर काय-प्रयोग परिणत होता है ? गौतम ! वह पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय औदारिक-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है अथवा यावत् वनस्पतिकायिक एकेन्द्रिय औदारिक-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है। भगवन् ! जो एक द्रव्य पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय औदारिक-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है, तो क्या वह सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय औदारिक-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है, अथवा बादर पृथ्वीकायिक एकेंद्रिय औदारिक-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है ?—

गौतम ! वह सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय औदारिक-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है। अथवा बादर पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय औदारिक शरीर काय-प्रयोग परिणत होता है। भगवन् ! जो एक द्रव्य सूक्ष्मपृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय औदारिक-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है, तो क्या पर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेंद्रिय औदारिक-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है, या अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वी-कायिक एकेन्द्रिय औदारिक-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है ? गौतम ! वह पर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय औदारिक-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है, या अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेंद्रिय औदारिक-शरीर काय-प्रयोग-परिणत

होता है। इसी प्रकार बादर पृथ्वीकायिक के विषय में भी जानना चाहिये। इसी प्रकार यावत् वनस्पतिकायिक तक सभी के चार चार भेद (सूक्ष्म, बादर, पर्याप्त और अपर्याप्त) के विषय में जानना चाहिये। इसी प्रकार बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चौइन्द्रियके दो दो भेद (पर्याप्त और अपर्याप्त) के विषयमें कहना चाहिये।

भगवन् ! यदि एक द्रव्य पञ्चेन्द्रिय औदारिक शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है, तो क्या तिर्यञ्चयोनि पञ्चेन्द्रिय औदारिक शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है, अथवा मनुष्य पञ्चेन्द्रिय औदारिक-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है ? गौतम ! वह तिर्यचयोनिक पञ्चेन्द्रिय औदारिक-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है, अथवा मनुष्य पञ्चेन्द्रिय औदारिक-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है।

भगवन् ! यदि एक द्रव्य तिर्यञ्चयोनिक पञ्चेंद्रिय औदारिक-शरीर काय-प्रयोग परिणत होता है, तो क्या जलचर तिर्यचयोनिक पञ्चेन्द्रिय औदारिक-शरीर कायप्रयोग-परिणत होता है, अथवा स्थलचर तिर्यचयोनिक पञ्चेन्द्रिय औदारिक-शरीर कायप्रयोग-परिणत होता है, अथवा खेचर तिर्यचयोनिक पंचेंद्रिय औदारिक-शरीर कायप्रयोग-परिणत होता है ? गौतम ! यावत् खेचरों तक चार चार भेदों (सम्मूर्च्छिम, गर्भज, पर्याप्त, अपर्याप्त) के विषयमें पहले कहे अनुसार जानना चाहिये। भगवन् ! यदि एक द्रव्य मनुष्य पञ्चेन्द्रिय औदारिक शरीर काय प्रयोग-परिणत होता है, तो क्या सम्मूर्च्छिम मनुष्य पञ्चेन्द्रिय औदारिक शरीर कायप्रयोग-परिणत होता है, अथवा गर्भज मनुष्य पञ्चेन्द्रिय औदारिक शरीर कायप्रयोग-परिणत होता है ? गौतम ! वह सम्मूर्च्छिम, अथवा गर्भज मनुष्य पञ्चेन्द्रिय औदारिक-शरीर कायप्रयोग-परिणत होता है। भगवन् ! यदि एक द्रव्य गर्भज मनुष्य पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर कायप्रयोग-परिणत होता है, तो क्या पर्याप्त गर्भज मनुष्य पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर कायप्रयोग-परिणत होता है, अथवा अपर्याप्त गर्भज मनुष्य पञ्चेन्द्रिय औदारिक-शरीर कायप्रयोग-परिणत होता है ? गौतम ! वह पर्याप्त गर्भज मनुष्य पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर कायप्रयोग-परिणत होता है, अथवा अपर्याप्त गर्भज मनुष्य पंचेंद्रिय औदारिक-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है।

भगवन् ! यदि एक द्रव्य औदारिक-मिश्र-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है, तो क्या एकेंद्रिय औदारिक-मिश्र-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है ? बेइन्द्रिय-औदारिक-मिश्र-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है ? या यावत् पंचेन्द्रिय औदारिक-मिश्र-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है ? गौतम ! वह एकेन्द्रिय औदारिक-मिश्र-शरीर काय-प्रयोग परिणत होता है, अथवा बेइन्द्रिय औदारिक-

मिश्र-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है, अथवा यावत् पंचेन्द्रिय औदारिक-मिश्र-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है। जिस प्रकार औदारिक-शरीर काय-प्रयोग-परिणत के आलापक कहे हैं, उसी प्रकार औदारिक-मिश्र-शरीर काय-प्रयोग-परिणतके भी आलापक कहने चाहियें। किंतु इतनी विशेषता है कि औदारिक-मिश्र-शरीर काय-प्रयोग-परिणतका आलापक बादर वायुकायिक, गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च और गर्भज मनुष्य के पर्याप्त और अपर्याप्त के विषय में कहना चाहिये और इसके सिवाय शेष सभी जीवोंके अपर्याप्तके विषयमें कहना चाहिये।

भगवन्! यदि एक द्रव्य वैक्रिय-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है, तो क्या एकेन्द्रिय वैक्रिय-शरीर काय-प्रयोग परिणत होता है? अथवा यावत् पंचेन्द्रिय वैक्रिय-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है? गौतम! वह एकेंद्रिय वैक्रिय-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है, अथवा पंचेंद्रिय वैक्रिय-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है। भगवन्! यदि एक द्रव्य एकेंद्रिय वैक्रिय-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है, तो क्या वायुकायिक एकेन्द्रिय वैक्रिय-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है? अथवा अवायुकायिक (वायुकायिक जीवोंके सिवाय) एकेंद्रिय वैक्रिय-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है? गौतम! वह एक द्रव्य वायुकायिक एकेंद्रिय वैक्रिय-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है। परन्तु अवायुकायिक एकेंद्रिय वैक्रिय-शरीर काय-प्रयोग-परिणत नहीं होता। इसी प्रकार इस अभिलाप द्वारा प्रज्ञापना सूत्र के इक्कीसवें 'अवगाहना संस्थान' पद में वैक्रिय-शरीर के सम्बन्ध में कथित वर्णन के अनुसार यहां भी कहना चाहिये। यावत् पर्याप्त सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिक कल्पातीत वैमानिक देव पंचेंद्रिय वैक्रिय-शरीर काय-प्रयोग परिणत होता है, या अपर्याप्त सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरौपपातिक कल्पातीत वैमानिक देव पंचेंद्रिय वैक्रिय-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है। भगवन्! यदि एक द्रव्य वैक्रिय-मिश्र-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है, तो क्या एकेंद्रिय वैक्रिय-मिश्र-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है, अथवा यावत् पंचेंद्रिय वैक्रिय-मिश्र-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है? गौतम! जिस प्रकार वैक्रिय-शरीर काय-प्रयोग-परिणतके विषय में कहा है, उसी प्रकार वैक्रिय-मिश्र-शरीर काय-प्रयोग-परिणत के विषय में भी कहना चाहिये। परन्तु विशेषता यह है कि वैक्रिय-मिश्र-शरीर काय-प्रयोग देव और नैरयिक के अपर्याप्त के विषय में और शेष सभी जीवों के पर्याप्त के विषय में कहना चाहिये, यावत् पर्याप्त सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिक कल्पातीत वैमानिक देव पंचेन्द्रिय वैक्रिय-मिश्र-शरीर काय-प्रयोग-परिणत नहीं होता, किंतु अपर्याप्त सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरौपपातिक कल्पातीत वैमानिक देव पंचेन्द्रिय वैक्रिय-मिश्र-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है।

भगवन्! यदि एक द्रव्य आहारक-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है, तो

क्या मनुष्य आहारक-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है, अथवा अमनुष्याहारक-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है? गौतम ! इस विषयमें प्रज्ञापना सूत्रके इक्कीसवें 'अवगाहना संस्थान' पदमें जिस प्रकार कहा है, उसी प्रकार यहां भी जानना चाहिये । यावत् ऋद्धि प्राप्त प्रमत्त-संयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्त संख्येय-वर्षायुष्क मनुष्याहारक-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है, परन्तु अनृद्धि प्राप्त प्रमत्तसंयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्त संख्येय वर्षायुष्क मनुष्याहारक-शरीर काय-प्रयोग-परिणत नहीं होता । भगवन् ! यदि एक द्रव्य आहारक-मिश्र-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है, तो क्या मनुष्याहारक-मिश्र-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है, अथवा अमनुष्याहारक-मिश्र-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है ? गौतम ! जिस प्रकार आहारक-शरीर काय-प्रयोग-परिणतके विषय में कहा गया है, उसी प्रकार आहारकमिश्र-शरीर काय-प्रयोग-परिणत के विषयमें भी कहना चाहिये ।

भगवन् ! यदि एक द्रव्य कार्मण-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है, तो क्या एकेन्द्रिय कार्मण-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है, अथवा यावत् पंचेन्द्रिय कार्मण-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है ? गौतम ! वह एकेन्द्रिय कार्मण-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है । इस विषयमें जिस प्रकार प्रज्ञापनासूत्र के इक्कीसवें 'अवगाहना संस्थान' पदमें कार्मणके भेद कहे गये हैं, उसी प्रकार यहां भी जानना चाहिये । यावत् पर्याप्त सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरौपपातिक कल्पातीत वैमानिक देव पंचेंद्रिय कार्मण-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है, अथवा अपर्याप्त सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरौपपातिक कल्पातीत वैमानिक देव पंचेंद्रिय कार्मण-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है ।

भगवन् ! यदि एक द्रव्य मिश्र परिणत होता है, तो क्या मनोमिश्र-परिणत होता है, या वचनमिश्र-परिणत होता है, या कायमिश्र-परिणत होता है ? गौतम ! वह मनोमिश्र-परिणत भी होता है, वचनमिश्र-परिणत भी होता है, या कायमिश्र-परिणत भी होता है । भगवन् ! यदि एक द्रव्य मनोमिश्र-परिणत होता है, तो क्या सत्यमनोमिश्र-परिणत होता है, मृषामनोमिश्र-परिणत होता है, सत्यमृषा-मनोमिश्र-परिणत होता है, या असत्यामृषा-मनोमिश्र-परिणत होता है ? गौतम ! जिस प्रकार प्रयोग-परिणत पुद्गलके विषय में कहा गया है, उसी प्रकार मिश्र-परिणत पुद्गलके विषयमें भी सब कहना चाहिये, यावत् पर्याप्त सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरौपपातिक कल्पातीत वैमानिक देव पंचेंद्रिय कार्मण-शरीर काय-मिश्र-परिणत होता है, या अपर्याप्त सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरौपपातिक कल्पातीत वैमानिक देव पंचेंद्रिय कार्मण-शरीर काय-मिश्र-परिणत होता है ।

भगवन् ! यदि एक द्रव्य विस्रसा (स्वभाव) परिणत होता है, तो क्या वह वर्ण-परिणत होता है, गन्ध-परिणत होता है, रस-परिणत होता है, स्पर्श-परिणत

होता है, या संस्थान-परिणत होता है ? गौतम ! वह वर्ण-परिणत होता है, या गन्ध परिणत होता है, या रस-परिणत होता है, या स्पर्श-परिणत होता है, या संस्थान परिणत होता है। भगवन् ! यदि एक द्रव्य वर्ण-परिणत होता है, तो क्या काला वर्णपने परिणत होता है, नील-वर्णपने परिणत होता है, यावत् शुक्ल वर्णपने परिणत होता है ?—

गौतम ! वह काला-वर्णपने परिणत होता है अथवा यावत् शुक्ल वर्णपने परिणत होता है। भगवन् ! यदि एक द्रव्य गन्धपने परिणत होता है, तो क्या सुरभि-गन्ध (सुगन्ध) पने परिणत होता है, या दुरभिगन्ध (दुर्गन्ध) पने परिणत होता है ? गौतम ! वह सुरभि-गन्धपने परिणत होता है, अथवा दुरभि-गन्धपने परिणत होता है। भगवन् ! यदि एक द्रव्य रसपने परिणत होता है, तो क्या तीखे रसपने परिणत होता है, अथवा यावत् मीठे रसपने परिणत होता है ? गौतम ! वह तीखे रसपने परिणत होता है, अथवा यावत् मीठे रसपने परिणत होता है। भगवन् ! यदि एक द्रव्य स्पर्श परिणत होता है, तो क्या कर्कश-स्पर्शपने परिणत होता है, अथवा यावत् रूक्ष-स्पर्शपने परिणत होता है ? गौतम ! वह कर्कश-स्पर्शपने परिणत होता है, अथवा यावत् रूक्ष-स्पर्शपने परिणत होता है। भगवन् ! यदि एक द्रव्य संस्थान-परिणत होता है, तो क्या परिमण्डल संस्थानपने परिणत होता है, अथवा यावत् आयत संस्थानपने परिणत होता है ? गौतम ! वह परिमण्डल संस्थानपने परिणत होता है, अथवा यावत् आयत संस्थानपने भी परिणत होता है ॥३१२॥

भगवन् ! क्या दो द्रव्य प्रयोग-परिणत होते हैं, या मिश्र-परिणत होते हैं, या विस्रसा-परिणत होते हैं। गौतम ! वे प्रयोगपरिणत······या विस्रसा परिणत होते हैं। अथवा एक द्रव्य प्रयोग-परिणत होता है और दूसरा मिश्र-परिणत होता है, अथवा एक द्रव्य प्रयोग-परिणत होता है और दूसरा द्रव्य विस्रसा परिणत होता है। अथवा एक द्रव्य मिश्र परिणत होता है और दूसरा विस्रसा परिणत होता है। भगवन् ! यदि वे दो द्रव्य प्रयोग-परिणत होते हैं, तो क्या मन प्रयोग-परिणत होते हैं, या वचन प्रयोग-परिणत होते हैं, या काय-प्रयोग परिणत होते हैं ? गौतम ! (१) वे दो द्रव्य मनःप्रयोग-परिणत होते हैं, (२) या वचन-प्रयोग-परिणत होते हैं, (३) या काय-प्रयोग-परिणत होते हैं, अथवा उनमें से एक द्रव्य (४) मनःप्रयोग-परिणत होता है और दूसरा वचन-प्रयोग-परिणत होता है। अथवा (५) एक द्रव्य मनःप्रयोग-परिणत होता है और दूसरा काय-प्रयोग-परिणत होता है। अथवा (६) एक द्रव्य वचन-प्रयोग-परिणत होता है और दूसरा काय-प्रयोग-परिणत होता है।

भगवन् ! यदि वे दो द्रव्य मनःप्रयोग परिणत होते हैं, तो क्या सत्य मनः-

प्रयोग-परिणत होते हैं, या असत्य मनःप्रयोग-परिणत होते हैं, या सत्यमृषा मनः-प्रयोग-परिणत होते हैं, या असत्यामृषा मनःप्रयोग-परिणत होते हैं। गौतम! (१-४) वे सत्य मनःप्रयोग-परिणत होते हैं, अथवा यावत् असत्यामृषा मनःप्रयोग परिणत होते हैं। अथवा (५) उनमें से एक द्रव्य सत्य मनःप्रयोग-परिणत होता है और दूसरा मृषा मनःप्रयोग-परिणत होता है। अथवा (६) एक द्रव्य सत्य मनःप्रयोग-परिणत होता है और दूसरा सत्यमृषा मनःप्रयोग-परिणत होता है। अथवा (७) एक द्रव्य सत्य मनःप्रयोग-परिणत होता है और दूसरा असत्यामृषा मनःप्रयोग परिणत होता है। अथवा (८) एक द्रव्य मृषा मनःप्रयोग-परिणत होता है और दूसरा सत्यमृषा······। अथवा (९) एक द्रव्य मृषा मनःप्रयोग परिणत होता है और दूसरा असत्यामृषा मनःप्रयोग-परिणत होता है। अथवा (१०) एक द्रव्य सत्यमृषा मनःप्रयोग-परिणत होता है और दूसरा असत्यामृषा मनःप्रयोग-परिणत होता है।

भगवन्! यदि वे दो द्रव्य सत्यमनःप्रयोग-परिणत होते हैं, तो क्या आरम्भ सत्यमनःप्रयोग-परिणत होते हैं, या अनारम्भ सत्यमनःप्रयोग-परिणत होते हैं, या सारम्भ (संरम्भ) सत्यमनःप्रयोग-परिणत होते हैं, या असारम्भ सत्यमनः-प्रयोग-परिणत होते हैं, या समारम्भ सत्यमनःप्रयोग-परिणत होते हैं, या असमारम्भ सत्यमनःप्रयोग-परिणत होते हैं? गौतम! वे दो द्रव्य आरम्भ सत्यमनः प्रयोग-परिणत होते हैं, अथवा यावत् असमारम्भ सत्यमनःप्रयोग-परिणत होते हैं, अथवा एक द्रव्य आरम्भ सत्यमनःप्रयोग-परिणत होता है और दूसरा अनारम्भ सत्यमनःप्रयोग-परिणत होता है। इस प्रकार द्विक संयोगी भांगे करने चाहियें। जहां जितने द्विक संयोगी भांगे होते हैं, वहां उतने सभी कहने चाहियें। यावत् सर्वार्थसिद्ध वैमानिक देव पर्यन्त कहना चाहिये।

भगवन्! यदि वे दो द्रव्य मिश्र-परिणत होते हैं, तो क्या वे मनोमिश्र-परिणत होते हैं? इत्यादि प्रश्न। गौतम! जिस प्रकार प्रयोग-परिणतके विषयमें कहा है, उसी प्रकार मिश्र-परिणतके सम्बन्धमें भी कहना चाहिये। भगवन्! यदि दो द्रव्य विस्रसा-परिणत होते हैं, तो क्या वर्णपने परिणत होते हैं, अथवा यावत् संस्थानपने परिणत होते हैं? गौतम! जिस प्रकार पहले कहा है, उसी प्रकार विस्रसापरिणतके विषयमें भी कहना चाहिए। यावत् एक द्रव्य चतुरस्र संस्थान-पने परिणत होता है और दूसरा आयत संस्थानपने परिणत होता है।

भगवन्! क्या तीन द्रव्य प्रयोग-परिणत होते हैं, मिश्र-परिणत होते हैं, या विस्रसा-परिणत होते हैं। गौतम! तीनों द्रव्य प्रयोगपरिणत होते हैं, या मिश्रपरिणत ······, या विस्रसापरिणत······। अथवा एक द्रव्य प्रयोग-परिणत होता है और दो द्रव्य मिश्र-परिणत होते हैं। अथवा एक द्रव्य प्रयोग-परिणत होता है और दो द्रव्य विस्रसा-परिणत होते हैं। अथवा दो द्रव्य प्रयोग-

परिणत होते हैं और एक द्रव्य मिश्रपरिणत होता है। अथवा दो द्रव्य प्रयोग-परिणत होते हैं और एक द्रव्य विस्रसा-परिणत होता है। अथवा एक द्रव्य मिश्र-परिणत होता है और दो द्रव्य विस्रसा-परिणत होते हैं। अथवा दो द्रव्य मिश्र-परिणत होते हैं और एक द्रव्य विस्रसा-परिणत होता है। अथवा एक द्रव्य प्रयोग-परिणत होता है, एक द्रव्य मिश्र-परिणत होता है और एक द्रव्य विस्रसा-परिणत होता है।

भगवन्! यदि तीन द्रव्य प्रयोग-परिणत होते हैं, तो क्या मनः प्रयोग-परिणत होते हैं, या वचन प्रयोग···, या काय प्रयोग-परिणत होते हैं? गौतम! वे मनःप्रयोगपरिणत होते हैं, या वचन···, या काय प्रयोग······होते हैं। इस प्रकार एक संयोगी, द्विक संयोगी और त्रिक संयोगी भंग कहने चाहियें। भगवन्! यदि तीन द्रव्य मनः-प्रयोग-परिणत होते हैं, तो क्या सत्यमन प्रयोग-परिणत होते हैं, इत्यादि प्रश्न? गौतम! वे तीनों द्रव्य सत्यमनःप्रयोग-परिणत होते हैं, अथवा यावत् असत्या-मृपामनःप्रयोग-परिणत होते हैं। अथवा उनमें से एक द्रव्य सत्यमनःप्रयोग-परिणत होता है और दो द्रव्य मृपामनः-प्रयोग-परिणत होते हैं। इस प्रकार यहां भी द्विक संयोगी और त्रिक संयोगी भंग कहना चाहिये। संस्थान भी इसी प्रकार यावत् एक त्र्यस्र संस्थानपने परिणत होता है, एक चतुरस्र संस्थानपने परिणत होता है और एक आयत संस्थान-पने परिणत होता है।

भगवन्! क्या चार द्रव्य प्रयोग-परिणत होते हैं, या मिस्र-परिणत होते हैं, या विश्रसा-परिणत होते हैं? गौतम! चार द्रव्य प्रयोग-परिणत होते हैं, या मिश्र-परिणत होते हैं, या विस्रसा-परिणत होते हैं। अथवा (१) एक प्रयोग-परिणत होता है और तीन मिश्र-परिणत होते हैं। अथवा (२) एक प्रयोग-परिणत होता है और तीन विस्रसा-परिणत होते हैं। अथवा (३) दो द्रव्य प्रयोग-परिणत होते हैं और दो मिश्र-परिणत होते हैं। अथवा (४) दो द्रव्य प्रयोग-परिणत होते हैं और दो विस्रसा-परिणत होते हैं। अथवा (५) तीन द्रव्य प्रयोग-परिणत होते है और एक मिश्र-परिणत होता है। अथवा (६) तीन द्रव्य प्रयोग- परिणत होते हैं और एक विस्रसा-परिणत होता है। अथवा (७) एक मिस्र-परिणत होता है और तीन विस्रसा-परिणत होते हैं। अथवा (८) दो द्रव्य मिश्र-परिणत होते हैं और दो द्रव्य विस्रसा-परिणत होते हैं। अथवा (९) तीन द्रव्य मिश्र-परिणत होते हैं और एक द्रव्य विस्रसा-परिणत होता है। अथवा (१०) एकद्रव्य प्रयोग-परिणत होता है, एक द्रव्य मिश्र-परिणत होता है और दो द्रव्य विस्रसा-परिणत होते हैं। अथवा (११) एक द्रव्य प्रयोग-परिणत होता है, दो द्रव्य मिश्र-परिणत होते हैं और एक द्रव्य विस्रसा-परिणत होता

है। अथवा (१२) दो द्रव्य प्रयोग-परिणत होते हैं, एक मिश्र-परिणत होता है और एक विस्रसा-परिणत होता है। भगवन्! यदि चार द्रव्य प्रयोग-परिणत होते हैं, तो क्या मनःप्रयोग-परिणत होते हैं, या वचन प्रयोग-परिणत होते हैं, या काय प्रयोग-परिणत होते हैं? गौतम! ये सब पहले की तरह कहना चाहिये। इसी क्रम द्वारा पांच, छह, सात, आठ, नौ, दस, संख्यात, असंख्यात और अनन्त द्रव्यों के द्विक-संयोगी, त्रिक-संयोगी यावत् दस-संयोगी, बारह-संयोगी आदि सभी भंग उपयोगपूर्वक कहने चाहियें। जहां जितने संयोग होते हैं, वहां उतने संयोग कहने चाहिएं। ये सभी संयोग नौवें शतकके प्रवेशनक नामक बत्तीसवें उद्देशकमें जिस प्रकार आगे कहे जायेंगे, उसी प्रकार उपयोगपूर्वक यहां पर भी कहना चाहिये। यावत् असंख्यात और अनन्त द्रव्यों के परिणाम कहना चाहिये, परन्तु एक पद अधिक करके कहना चाहिये। यावत् अथवा अनन्त द्रव्य परिमण्डल संस्थानपने परिणत होते हैं, यावत् अनन्त द्रव्य आयत संस्थानपने परिणत होते हैं ॥३१३॥

भगवन्! प्रयोग-परिणत, मिश्र-परिणत और विस्रसा-परिणत, इन तीनों प्रकार के पुद्गलों में कौन किस से अल्प, बहुत, तुल्य और विशेषाधिक हैं? गौतम! सबसे थोड़े पुद्गल प्रयोग-परिणत हैं, उनसे मिश्र-परिणत पुद्गल अनन्त-गुणे हैं और उनसे विस्रसा-परिणत पुद्गल अनन्त गुणे हैं। हे भगवन्! यह इसी प्रकार है...। ऐसा कह कर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ॥३१४॥

॥ आठवें शतक का प्रथम उद्देशक समाप्त ॥

शतक ८ उद्देशक २

भगवन्! आशीविष कितने प्रकार का कहा गया है? गौतम! आशीविष दो प्रकार का कहा गया है। यथा—जाति-आशीविष और कर्म-आशीविष। भगवन्! जाति-आशीविष कितने प्रकारका कहा गया है? गौतम! वह चार प्रकार का कहा गया है। यथा—१ वृश्चिक-जाति-आशीविष, २ मण्डूक-जाति-आशीविष, ३ उरग-जाति-आशीविष और ४ मनुष्य-जाति-आशीविष।

भगवन्! वृश्चिक-जाति-आशीविष का कितना विषय कहा गया है? अर्थात् वृश्चिकजाति-आशीविषका सामर्थ्य कितना है? गौतम! वृश्चिक-जाति-आशीविष अर्द्ध भरत-क्षेत्र प्रमाण शरीर को विषयुक्त एवं विषसे व्याप्त करनेमें समर्थ है। यह उस विष का सामर्थ्य मात्र है, परन्तु सम्प्राप्ति द्वारा अर्थात् क्रियात्मक प्रयोग द्वारा उसने ऐसा कभी किया नहीं, करता नहीं और करेगा भी नहीं।

भगवन्! मण्डूकजाति-आशीविष का विषय कितना है? गौतम! मण्डूक-जाति-आशीविष अपने विष द्वारा भरतक्षेत्र प्रमाण शरीर को व्याप्त कर सकता

है। यह उसका सामर्थ्य मात्र है, परन्तु सम्प्राप्ति द्वारा उसने ऐसा कभी किया नहीं, करता नहीं और करेगा भी नहीं।

उरगजाति-आशीविष जम्बूद्वीप प्रमाण शरीर को अपने विष द्वारा व्याप्त कर सकता है। यह उसका सामर्थ्य मात्र है, किन्तु सम्प्राप्ति द्वारा उसने ऐसा कभी किया नहीं, करता नहीं और करेगा भी नहीं। मनुष्यजाति-आशीविष, समय-क्षेत्र प्रमाण (मनुष्य-क्षेत्र प्रमाण-अढ़ाई द्वीप प्रमाण) शरीर को अपने विष द्वारा व्याप्त कर सकता है। किन्तु यह उसका सामर्थ्य मात्र है। सम्प्राप्ति द्वारा उसने कभी ऐसा किया नहीं, करता नहीं और करेगा भी नहीं।

भगवन् ! यदि कर्म-आशीविष है, तो क्या नैरयिक कर्म-आशीविष है, या तिर्यंच-योनिक कर्म-आशीविष है, या मनुष्य···, या देव कर्म-आशीविष है ? गौतम ! नैरयिक कर्म-आशीविष नहीं, किन्तु तिर्यञ्चयोनिक कर्म-आशीविष है, मनुष्य···और देवकर्म-आशीविष है। भगवन् ! यदि तिर्यंचयोनिक कर्म-आशीवि है, तो क्या एकेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक कर्म-आशीविष है, अथवा यावत् पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक कर्म-आशीविष है ? गौतम ! एकेन्द्रिय, बेइंद्रिय, तेइन्द्रिय और चउरिन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक कर्म-आशीविष नहीं, परन्तु पंचेंद्रिय तिर्यंचयोनिक कर्म-आशीविष है।

भगवन् ! यदि पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक कर्म-आशीविष है, तो क्या सम्मूर्च्छिम पंचेंद्रिय तिर्यंचयोनिक कर्म-आशीविष है, या गर्भज पंचेंद्रिय तिर्यंचयोनिक कर्म-आशीविष है ? गौतम ! प्रज्ञापनासूत्र के इक्कीसवें शरीर पदमें वैक्रियशरीर के सम्बन्ध में जिस प्रकार कहा है, उसी प्रकार कहना चाहिये। यावत् पर्याप्त संख्यात वर्ष की आयुष्य वाला गर्भज कर्मभूमिज पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक कर्म-आशीविष होता है, परन्तु अपर्याप्त असंख्यात वर्षकी आयुष्य वाला यावत् कर्म-आशीविष नहीं होता।

भगवन् ! यदि मनुष्य कर्म-आशीविष है, तो क्या सम्मूर्च्छिम मनुष्य कर्म-आशीविष है, या गर्भज मनुष्य कर्म-आशीविष है ? गौतम ! सम्मूर्च्छिम मनुष्य कर्म-आशीविष नहीं होता, किन्तु गर्भज मनुष्य कर्म-आशीविष होता है। प्रज्ञापना-सूत्रके इक्कीसवें शरीर पद में वैक्रिय-शरीर के सम्बन्ध में जिस प्रकार जीव भेद कहे गये हैं, उसी प्रकार यहां भी कहना चाहिये। यावत् पर्याप्त संख्यात वर्षकी आयुष्य वाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्य कर्म-आशीविष होते हैं, परन्तु अपर्याप्त, संख्यात वर्ष की आयुवाले यावत् कर्म-आशीविष नहीं होते।

भगवन् ! यदि देव कर्म-आशीविष होते हैं, तो क्या भवनवासी देव कर्म-आशीविष होते हैं, अथवा यावत् वैमानिक देव कर्म-आशीविष होते हैं। गौतम ! भवनवासी, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देव, ये चारों प्रकार के देव

कर्म-आशीविष होते हैं। भगवन्! यदि भवनवासी देव कर्म-आशीविष होते हैं, तो क्या असुरकुमार भवनवासी देव कर्म- आशीविष होते हैं, अथवा यावत् स्तनित-कुमार भवनवासी देव कर्म-आशीविष होते हैं। गौतम! असुरकुमार भवनवासी देव भी कर्म-आशीविष होते हैं, यावत् स्तनितकुमार भवनवासी देव भी कर्म-आशीविष होते हैं।

भगवन्! यदि असुरकुमार यावत् स्तनितकुमार भवनवासी देव कर्म-आशीविष हैं तो क्या पर्याप्त असुरकुमारादि भवनवासी देव कर्म-आशीविष हैं, अथवा अपर्याप्त असुरकुमारादि भवनवासी देव कर्म-आशीविष हैं? गौतम! पर्याप्त असुरकुमार भवनवासी देव कर्म-आशीविष नहीं, परन्तु अपर्याप्त असुर-कुमार भवनवासी देव कर्म-आशीविष हैं। इस प्रकार यावत् स्तनितकुमारों तक जानना चाहिये। भगवन्! यदि वाणव्यन्तर देव कर्म आशीविष हैं, तो क्या पिशाच वाणव्यन्तर देव-कर्म-आशीविष हैं इत्यादि प्रश्न? गौतम! वे सभी अपर्याप्त अवस्था में कर्म-आशीविष हैं। इस प्रकार सभी ज्योतिषी देव भी अपर्याप्त अवस्था में कर्म-आशीविष हैं।

भगवन्! यदि वैमानिक देव कर्म-आशीविष हैं, तो क्या कल्पोपपन्नक वैमानिक देव कर्म-आशीविष हैं, या कल्पातीत वैमानिक देव कर्म-आशीविष हैं। गौतम! कल्पोपपन्नक वैमानिक देव कर्म-आशीविष हैं। परन्तु कल्पातीत वैमा-निक देव कर्म-आशीविष नहीं हैं।

भगवन्! यदि कल्पोपपन्नक वैमानिक देव कर्म-आशीविष हैं, तो क्या सौधर्म-कल्पोपपन्नक वैमानिक देव कर्म-आशीविष हैं, अथवा यावत् अच्युत-कल्पोपपन्नक वैमानिक देव कर्म-आशीविष हैं? गौतम! सौधर्म-कल्पोपपन्नक वैमा-निक देव यावत् सहस्रारकल्पोपपन्नक वैमानिक देव कर्म-आशीविष हैं। परन्तु आणत, प्राणत, आरण और अच्युत कल्पोपपन्नक वैमानिक देव कर्म-आशीविष नहीं हैं।

भगवन्! यदि सौधर्म-कल्पोपपन्नक वैमानिक देव कर्म-आशीविष हैं, तो क्या पर्याप्त सौधर्म-कल्पोपपन्नक वैमानिक देव कर्म-आशीविष हैं, अथवा अपर्याप्त सौधर्म-कल्पोपपन्नक वैमानिक देव कर्म-आशीविष हैं? गौतम! पर्याप्त सौधर्म-कल्पोपपन्नक देव कर्म-आशीविष नहीं, परन्तु अपर्याप्त···कर्म-आशीविष हैं। इस प्रकार यावत् पर्याप्त सहस्रार-कल्पोपपन्नक वैमानिक देव कर्म-आशीविष नहीं, परन्तु अपर्याप्त सहस्रार-कल्पोपपन्नक वैमानिक देव कर्म-आशीविष हैं ॥३१५॥

छद्मस्थ पुरुष इन दस वस्तुओं को सर्वभावसे नहीं जानता और नहीं देखता। यथा—१ धर्मास्तिकाय, २ अधर्मास्तिकाय, ३ आकाशास्तिकाय, ४ शरीर

रहित जीव, ५ परमाणु पुद्गल, ६ शब्द, ७ गन्ध, ८ वायु, ९ यह जीव जिन होगा या नहीं, १० यह जीव सभी दु:खोंका अन्त करेगा या नहीं। इन दस बातों को उत्पन्न ज्ञान-दर्शनके धारक, अरिहन्त-जिन-केवली ही सर्वभावसे जानते और देखते हैं। यथा—धर्मास्तिकाय यावत् यह जीव समस्त दु:खोंका अन्त करेगा या नहीं ॥३१६॥

भगवन् ! ज्ञान कितने प्रकार का कहा गया है ? गौतम ! ज्ञान पांच प्रकार का कहा गया है। यथा—आभिनिबोधिक ज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनः-पर्ययज्ञान और केवलज्ञान। भगवन् ! आभिनिबोधिकज्ञान कितने प्रकारका कहा गया है ? गौतम ! आभिनिबोधिक ज्ञान चार प्रकारका कहा गया है। यथा—अवग्रह, ईहा, अवाय (अपाय) और धारणा। जिस प्रकार राजप्रश्नीय सूत्रमें ज्ञानके भेद कहे गये हैं, उसी प्रकार यावत् केवलज्ञान पर्यन्त कहना चाहिये।

भगवन् ! अज्ञान कितने प्रकारका कहा गया है ? गौतम ! अज्ञान तीन प्रकार का कहा गया है। यथा—मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान और विभंगज्ञान। भगवन् ! मतिअज्ञान कितने प्रकारका कहा गया है ? गौतम ! मतिअज्ञान चार प्रकार का कहा गया है ? यथा—अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा।

भगवन् ! अवग्रह कितने प्रकार का कहा गया है ? गौतम ! अवग्रह दो प्रकार का कहा गया है। यथा—अर्थावग्रह और व्यंजनावग्रह। जिस प्रकार नंदी-सूत्रमें आभिनिबोधिक ज्ञानके विषयमें कहा है, उसी प्रकार यहां भी जान लेना चाहिये। किन्तु वहां आभिनिबोधिक ज्ञानके प्रकरणमें अवग्रह आदिके एकार्थिक (समानार्थक) शब्द कहे हैं। उनको छोड़कर यावत् नोइन्द्रिय धारणा तक कहना चाहिये। इस प्रकार धारणाका और मतिज्ञानका यह कथन किया गया है।

भगवन् ! श्रुतअज्ञान कितने प्रकार का कहा है ? गौतम ! जिस प्रकार नन्दीसूत्रमें कहा गया है—'जो अज्ञानी मिथ्यादृष्टियों द्वारा प्ररूपित हैं,' इत्यादि यावत् सांगोपांग चार वेद तक श्रुतअज्ञान है। इस प्रकार यह श्रुतअज्ञान का वर्णन किया गया है।

भगवन् ! विभंगज्ञान कितने प्रकार का कहा गया है ? गौतम ! विभंगज्ञान अनेक प्रकार का कहा गया है। यथा—ग्राम संस्थित अर्थात् ग्रामके आकार, नगर संस्थित अर्थात् नगर के आकार यावत् सन्निवेश संस्थित, द्वीप संस्थित, समुद्र संस्थित, वर्ष संस्थित (भरतादि क्षेत्र के आकार), वर्षधर संस्थित (क्षेत्र की मर्यादा करने वाले पर्वतोंके आकार), सामान्य पर्वताकार, वृक्षके आकार, स्तूप के आकार, घोड़के आकार, हाथीके आकार, मनुष्यके आकार, किन्नरके आकार, किम्पुरुषके आकार, महोरगके आकार, गन्धर्वके आकार, वृषभ (बैल)के आकार, पशुके आकार, पशय अर्थात् दो खुर वाले एक प्रकारके जंगली जानवरके आकार,

विहग अर्थात् पक्षीके आकार और वानरके आकार, इस प्रकार विभंगज्ञान नाना संस्थान संस्थित कहा गया है।

भगवन्! जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी हैं? गौतम! जीव ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी हैं। जो जीव ज्ञानी हैं, उनमें से कुछ जीव दो ज्ञान वाले हैं, कुछ जीव तीन ज्ञान वाले हैं, कितनेक जीव चार ज्ञान वाले हैं और कुछ जीव एक ज्ञान वाले हैं। जो दो ज्ञान वाले हैं, वे मतिज्ञान और श्रुतज्ञान वाले हैं। जो तीन ज्ञान वाले हैं, वे मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान वाले हैं, अथवा मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और मनःपर्यवज्ञान वाले हैं। जो जीव चार ज्ञान वाले हैं, वे मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्यय ज्ञान वाले हैं। जो जीव एक ज्ञान वाले हैं, वे अवश्य ही केवलज्ञान वाले हैं। जो जीव अज्ञानी हैं, उनमें कुछ जीव दो अज्ञान वाले हैं, और कुछ जीव तीन अज्ञान वाले हैं। जो दो अज्ञान वाले हैं, वे मति-अज्ञान और श्रुतअज्ञान वाले हैं। जो तीन अज्ञान वाले हैं, वे मति अज्ञान, श्रुत-अज्ञान और विभंगज्ञान वाले हैं।

भगवन्! नैरयिक जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी हैं? गौतम! नैरयिक जीव ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी हैं। उनमें जो ज्ञानी हैं, वे नियमा (अवश्य) तीन ज्ञान वाले होते हैं। यथा—मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी। उनमें जो अज्ञानी हैं, उनमें से कुछ दो अज्ञान वाले हैं, और कुछ तीन अज्ञान वाले हैं। इस प्रकार तीन अज्ञान भजना (विकल्प) से होते हैं। भगवन्! असुरकुमार ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं? गौतम! जिस प्रकार नैरयिकों का कथन किया गया है, उसी प्रकार असुरकुमारों का भी कथन करना चाहिये। अर्थात् जो ज्ञानी हैं, वे अवश्य ही तीन ज्ञान वाले हैं, और जो अज्ञानी हैं, वे भजना से तीन अज्ञान वाले हैं। इस प्रकार स्तनितकुमारों तक कहना चाहिये।

भगवन्! पृथ्वीकायिक जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी? गौतम! वे ज्ञानी नहीं, किन्तु अज्ञानी हैं। वे नियमा दो अज्ञान वाले हैं। यथा—मतिअज्ञान और श्रुतअज्ञान। इस प्रकार यावत् वनस्पतिकायिक पर्यन्त कहना चाहिये। भगवन्! बेइंद्रिय जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी हैं? गौतम! वे ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी हैं। जो ज्ञानी हैं वे नियमा दो ज्ञान वाले हैं। यथा—मतिज्ञान और श्रुतज्ञान। जो अज्ञानी हैं, वे नियमा दो अज्ञान (मतिअज्ञान और श्रुतअज्ञान) वाले हैं। इस प्रकार तेइंद्रिय और चौइन्द्रिय जीवों के विषय में भी कहना चाहिये।

भगवन्! पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी हैं? गौतम! वे ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी हैं। जो ज्ञानी हैं उनमें से कितने ही दो ज्ञान वाले हैं और कितने ही तीन ज्ञान वाले हैं। इस प्रकार तीन ज्ञान और अज्ञान भजना से जानने चाहियें। औधिक जीवों के समान मनुष्यों में पांच ज्ञान और तीन

अज्ञान भजना से होते हैं। वाणव्यन्तरों का कथन नैरयिकों के समान जानना चाहिये। ज्योतिषी और वैमानिकों में नियमा तीन ज्ञान और तीन अज्ञान होते हैं। भगवन्! सिद्ध भगवान् ज्ञानी हैं, या अज्ञानी हैं? गौतम! सिद्ध भगवान् ज्ञानी हैं, अज्ञानी नहीं। वे नियमा एक केवलज्ञान वाले हैं ॥३१७॥

भगवन्! निरयगतिक (नरक में जाते हुए) जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी हैं? गौतम! वे ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी हैं। जो ज्ञानी हैं, वे नियमा तीन ज्ञान वाले हैं और जो अज्ञानी हैं, वे भजना से तीन अज्ञान वाले हैं। भगवन्! तिर्यञ्चगतिक (तिर्यञ्चगति में जाते हुए) जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी हैं? गौतम! उनको नियमा दो ज्ञान या दो अज्ञान होते हैं।

भगवन्! मनुष्यगतिक जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी हैं? गौतम! उनको भजना से तीन ज्ञान होते हैं और नियमा दो अज्ञान होते हैं। देवगतिक जीवों का वर्णन निरयगतिक जीवों के समान जानना चाहिये। भगवन्! सिद्धगतिक जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी? गौतम! उनका कथन सिद्धों की तरह करना चाहिये अर्थात् वे नियमा एक केवलज्ञान वाले होते हैं।

भगवन्! सइन्द्रिय (इन्द्रिय वाले) जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी हैं? गौतम! उनको भजनासे चार ज्ञान और तीन अज्ञान होते हैं। भगवन्! एकेन्द्रिय जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी हैं? गौतम! एकेन्द्रिय जीवों का कथन पृथ्वीकायिक जीवों की तरह करना चाहिये। बेइंद्रिय, तेइन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवों में नियमा दो ज्ञान या दो अज्ञान होते हैं। पञ्चेन्द्रिय जीवों का कथन सेन्द्रिय जीवों की तरह जानना चाहिये।

भगवन्! अनिन्द्रिय (इन्द्रिय रहित) जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी हैं? गौतम! उनका कथन सिद्ध जीवों की तरह जानना चाहिये। भगवन्! सकायिक जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानो हं? गौतम! सकायिक जीवों को पांच ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से होते हैं। पृथ्वीकायिक यावत् वनस्पतिकायिक जीव ज्ञानी नहीं, अज्ञानी होते हैं। वे नियमा दो अज्ञान (मति-अज्ञान और श्रुतअज्ञान) वाले हैं। त्रसकायिक जीवों का कथन सकायिक जीवों की तरह जानना चाहिये। भगवन्! अकायिक (काया रहित) जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी हैं? गौतम! इनका कथन सिद्धों की तरह जानना चाहिये।

भगवन्! सूक्ष्म जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी? गौतम! इनका कथन पृथ्वीकायिक जीवों के समान जानना चाहिये। भगवन्! बादर जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी? गौतम! इनका कथन सकायिक जीवों के समान जानना चाहिये। भगवन्! नोसूक्ष्म नोबादर जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी? गौतम! इनका कथन सिद्ध जीवों की तरह जानना चाहिये।

भगवन् ! पर्याप्त जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी हैं ? गौतम ! इनका कथन सकायिक जीवों के समान जानना चाहिये । भगवन् ! पर्याप्त नैरयिक जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी हैं ? गौतम ! इनको नियमा तीन ज्ञान या तीन अज्ञान होते हैं । नैरयिक जीवों के कथन के समान यावत् स्तनितकुमार देवों तक जानना चाहिये । पृथ्वीकायिक जीवों का कथन और बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय तक के जीवों का कथन एकेन्द्रिय जीवों के समान जानना चाहिये ।

भगवन् ! पर्याप्त पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी हैं ? गौतम ! इनके तीन ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से होते हैं । मनुष्यों का कथन सकायिक की तरह जानना चाहिये । वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिकों का कथन नैरयिक जीवोंकी तरह जानना चाहिए । भगवन् ! अपर्याप्त जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी हैं ? गौतम ! इनके तीन ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से होते हैं । हे भगवन् ! अपर्याप्त नैरयिक ज्ञानी हैं, या अज्ञानी हैं ? हे गौतम ! इनमें तीन ज्ञान नियम से और तीन अज्ञान भजना से होते हैं । इसी प्रकार यावत् स्तनित-कुमार देवों तक जानना चाहिये । अपर्याप्त पृथ्वीकायिक यावत् वनस्पतिकायिक तक के जीवों का कथन एकेन्द्रिय जीवों के समान जानना चाहिये ।

भगवन् ! अपर्याप्त बेइन्द्रिय जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी ? गौतम ! इन्हें दो ज्ञान या दो अज्ञान नियमा होते हैं । इसी प्रकार यावत् पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक तक जानना चाहिये । भगवन् ! अपर्याप्त मनुष्य ज्ञानी हैं, या अज्ञानी ? गौतम ! उनमें तीन ज्ञान भजनासे और दो अज्ञान नियमा होते हैं । वाणव्यन्तरों का कथन नैरयिक जीवों की तरह जानना चाहिये । अपर्याप्त ज्योतिषी और वैमानिकोंमें तीन ज्ञान और तीन अज्ञान नियमा होते हैं । भगवन् ! नोपर्याप्त नोअपर्याप्त जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी ? गौतम ! उनका कथन सिद्ध जीवों के समान जानना चाहिये ।

भगवन् ! निरय-भवस्थ–नरकगति में रहे हुए जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी ? गौतम ! इनका कथन निरयगतिक जीवों के समान जानना चाहिये । भगवन् ! तिर्यग्भवस्थ जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी ? गौतम ! उनके तीन ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से होते हैं । भगवन् ! मनुष्य-भवस्थ जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी ? गौतम ! इनका कथन सकायिक जीवों के समान जानना चाहिये । भगवन् ! देव-भवस्थ जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी ? गौतम ! इनका कथन निरय-भवस्थ जीवों के समान जानना चाहिये । अभवस्थ जीवों का कथन सिद्धों के समान जानना चाहिये ।

भगवन् ! भवसिद्धिक (भव्य) जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी ? गौतम ! उनका कथन सकायिक जीवों के समान जानना चाहिये । भगवन् ! अभवसिद्धिक जीव

ज्ञानी हैं, या अज्ञानी हैं ? गौतम ! ये ज्ञानी नहीं, किन्तु अज्ञानी हैं । इनमें तीन अज्ञान भजनासे होते हैं। भगवन् ! नोभवसिद्धिक-नोअभवसिद्धिक जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी ? गौतम ! उनका कथन सिद्ध जीवों के समान जानना चाहिये । भगवन् ! संज्ञी जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी ? गौतम ! इनका कथन सेन्द्रिय जीवों के समान जानना चाहिये । असंज्ञी जीवों का कथन बेइन्द्रिय जीवों के समान जानना चाहिये । नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी जीवों का कथन सिद्ध जीवों के समान जानना चाहिये ॥३१८॥

भगवन् ! लब्धि कितने प्रकार की कही गई है ? गौतम ! दस प्रकार की कही गई है। यथा—१ ज्ञानलब्धि, २ दर्शनलब्धि, ३ चारित्रलब्धि, ४ चारित्राचारित्रलब्धि, ५ दानलब्धि, ६ लाभलब्धि, ७ भोगलब्धि, ८ उपभोगलब्धि, ९ वीर्यलब्धि और १० इन्द्रियलब्धि । भगवन् ! ज्ञान-लब्धि कितने प्रकार की कही गई है ? गौतम ! ज्ञानलब्धि पांच प्रकार की कही गई है । यथा—आभिनिबोधिकज्ञान लब्धि यावत् केवलज्ञान लब्धि । भगवन् ! अज्ञान-लब्धि कितने प्रकार की कही गई है ? गौतम ! अज्ञान-लब्धि तीन प्रकार की कही गई है। यथा—मतिअज्ञान लब्धि, श्रुतअज्ञान लब्धि और विभंगज्ञान लब्धि ।

भगवन् ! दर्शन-लब्धि कितने प्रकार की कही गई है ? गौतम ! दर्शन-लब्धि तीन प्रकार की कही गई है। यथा—१ सम्यग्दर्शन लब्धि, २ मिथ्यादर्शन लब्धि और ३ सम्यग्मिथ्यादर्शन लब्धि । भगवन् ! चारित्र-लब्धि कितने प्रकार की कही गई है ? गौतम ! चारित्र-लब्धि पांच प्रकारकी कही गई है। यथा—१ सामायिक चारित्र-लब्धि, २ छेदोपस्थापनीय चारित्र-लब्धि, ३ परिहारविशुद्धि चारित्र-लब्धि, ४ सूक्ष्म-सम्पराय चारित्र-लब्धि और ५ यथाख्यात चारित्र-लब्धि। भगवन् ! चारित्राचरित्र लब्धि कितने प्रकार की कही गई है ? गौतम ! वह एक ही प्रकार की कही गई है। इसी प्रकार दानलब्धि, लाभलब्धि, भोगलब्धि और उपभोगलब्धि, ये सब एक एक प्रकार की कही गई हैं ।

भगवन् ! वीर्य-लब्धि कितने प्रकार की कही गई है ? गौतम ! वीर्य-लब्धि तीन प्रकार की कही गई है। यथा—१ बालवीर्य लब्धि, २ पण्डितवीर्य लब्धि और ३ बालपण्डितवीर्य लब्धि। भगवन् ! इन्द्रिय-लब्धि कितने प्रकार की कही गई है ? गौतम ! इन्द्रिय-लब्धि पांच प्रकारकी कही गई है। यथा—श्रोत्रेन्द्रिय लब्धि यावत् स्पर्शनेन्द्रिय लब्धि ।

भगवन् ! ज्ञानलब्धि वाले जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी ? गौतम ! वे ज्ञानी हैं, अज्ञानी नहीं । उनमें से कितने ही दो ज्ञान वाले होते हैं। इस प्रकार उनमें पांच ज्ञान भजना से पाये जाते हैं। भगवन् ! ज्ञानलब्धि रहित जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी ? गौतम ! वे ज्ञानी नहीं, अज्ञानी हैं। उनमें से कितने ही दो अज्ञान

वाले होते हैं और कितने ही जीव तीन अज्ञान वाले होते हैं। इस प्रकार उनमें तीन अज्ञान भजनासे पाये जाते हैं। भगवन् ! आभिनिवोधिक ज्ञान-लब्धि वाले जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी ? गौतम ! वे ज्ञानी हैं, अज्ञानी नहीं। उनमें से कितने ही जीव दो ज्ञान वाले होते हैं, कितने ही तीन ज्ञान वाले और कितनेक चार ज्ञान वाले होते हैं। इस तरह उनमें चार ज्ञान भजना से पाये जाते हैं।

भगवन् ! आभिनिवोधिक ज्ञान-लब्धि रहित जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी ? गौतम ! वे ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी। जो ज्ञानी हैं, वे नियम से एक केवलज्ञान वाले हैं और जो अज्ञानी हैं, उनमें कितने ही दो अज्ञान वाले हैं और कितनेक तीन अज्ञान वाले हैं। अर्थात् उनमें तीन अज्ञान भजनासे पाये जाते हैं। इस प्रकार श्रुतज्ञान लब्धि वाले जीवोंका कथन आभिनिबोधिक ज्ञान लब्धि वाले जीवों के समान कहना चाहिये और श्रुतज्ञान-लब्धि रहित जीवोंका कथन आभिनिबोधिक ज्ञान-लब्धि रहित जीवोंके समान जानना चाहिये। भगवन् ! अवधिज्ञान-लब्धि वाले जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी ? गौतम ! वे ज्ञानी हैं, अज्ञानी नहीं। उनमें से कितने ही तीन ज्ञान वाले हैं और कई चार ज्ञान वाले हैं। जो तीन ज्ञान वाले हैं, वे आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान वाले हैं, और जो चार ज्ञान वाले हैं, वे आभिनिवोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मन:पर्ययज्ञान वाले हैं।

भगवन् ! अवधिज्ञान-लब्धि रहित जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी ? गौतम ! वे ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी हैं। इस प्रकार उनमें अवधिज्ञानके सिवाय चार ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से होते हैं। भगवन् ! मन:पर्ययज्ञान-लब्धि वाले जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी ? गौतम ! वे ज्ञानी हैं, अज्ञानी नहीं। उनमें से कितने ही तीन ज्ञान वाले हैं और कितने ही चार ज्ञान वाले हैं। जो तीन ज्ञान वाले हैं वे आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान और मन:पर्ययज्ञान वाले हैं। जो चार ज्ञान वाले हैं, वे आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मन:पर्ययज्ञान वाले हैं।

भगवन् ! मन:पर्ययज्ञानलब्धि रहित जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी ? गौतम ! वे ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी। उनमें मन:पर्ययज्ञान के सिवाय चार ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से पाये जाते हैं। भगवन् ! केवलज्ञान-लब्धि वाले जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी ? गौतम ! वे ज्ञानी हैं, अज्ञानी नहीं। वे नियम से एक केवलज्ञान वाले हैं। भगवन् ! केवलज्ञान-लब्धि रहित जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी ? गौतम ! वे ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी। उनमें केवलज्ञान के सिवाय चार ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से पाये जाते हैं। भगवन् ! अज्ञानलब्धि वाले जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी ? गौतम ! वे ज्ञानी नहीं, अज्ञानी हैं। उनमें तीन अज्ञान भजना से पाये जाते हैं।

भगवन् ! अज्ञान-लब्धि रहित जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी ? गौतम ! वे ज्ञानी

हैं, अज्ञानी नहीं। उनमें पांच ज्ञान भजना से पाये जाते हैं। जिस प्रकार अज्ञान-लब्धि वाले और अज्ञान-लब्धि रहित जीवों का कथन किया है, उसी प्रकार मति-अज्ञान, श्रुतअज्ञान लब्धि वाले तथा इन लब्धिसे रहित जीवों का कथन करना चाहिये। अर्थात् अज्ञान-लब्धि वाले जीवोंकी तरह मतिअज्ञान और श्रुतअज्ञान लब्धि वाले जीवों का कथन करना चाहिये। अज्ञान-लब्धि रहित जीवों की तरह मति-अज्ञान लब्धि रहित और श्रुतअज्ञान लब्धि रहित जीवों का कथन करना चाहिये। विभंगज्ञान लब्धि वाले जीवों में नियम से तीन अज्ञान होते हैं और विभंगज्ञान लब्धि रहित जीवों में पांच ज्ञान भजना से और दो अज्ञान नियमा पाये जाते हैं।

भगवन्! दर्शन-लब्धि वाले जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी? गौतम! वे ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी। जो ज्ञानी हैं, वे भजनासे पांच ज्ञान वाले हैं और जो अज्ञानी हैं, वे भजनासे तीन अज्ञान वाले हैं। भगवन्! दर्शनलब्धि रहित जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी? गौतम! दर्शनलब्धि रहित कोई भी जीव नहीं होता। सम्यग्दर्शन-लब्धि वाले जीवोंमें पांच ज्ञान भजनासे होते हैं। सम्यग्दर्शन-लब्धि रहित जीवोंमें तीन अज्ञान भजनासे होते हैं। भगवन्! मिथ्यादर्शन-लब्धि वाले जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी? गौतम! वे ज्ञानी नहीं, अज्ञानी होते हैं। उनमें तीन अज्ञान भजनासे पाये जाते हैं। मिथ्यादर्शन-लब्धि रहित जीवों में पांच ज्ञान और तीन अज्ञान भजनासे होते हैं। सम्यग्मिथ्यादर्शन लब्धि (मिश्रदृष्टि) वाले जीवों का कथन मिथ्यादर्शन लब्धि वाले जीवों के समान जानना चाहिये और सम्यग्मिथ्यादर्शन लब्धि रहित जीवोंका कथन मिथ्यादर्शन लब्धि रहित जीवों की तरह जानना चाहिये।

भगवन्! चारित्रलब्धि वाले जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी? गौतम! वे ज्ञानी होते हैं, अज्ञानी नहीं। उनमें पांच ज्ञान भजनासे पाये जाते हैं। चारित्रलब्धि रहित जीवोंमें मनःपर्यय ज्ञानके सिवाय चार ज्ञान और तीन अज्ञान भजनासे पाये जाते हैं। भगवन्! सामायिक-चारित्रलब्धि वाले जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी? गौतम! वे ज्ञानी हैं, अज्ञानी नहीं। उनमें केवलज्ञानके सिवाय चार ज्ञानकी भजना है। सामायिक-चारित्रलब्धि रहित जीवों में पांच ज्ञान और तीन अज्ञानकी भजना है। इस प्रकार सामायिक-चारित्र-लब्धि वाले जीवोंके समान यावत् यथाख्यात-चारित्र वाले जीवोंका कथन करना चाहिये, किन्तु यथाख्यात चारित्र वाले जीवों में पांच ज्ञान भजना से पाये जाते हैं। सामायिक-चारित्र-लब्धि रहित जीवोंकी तरह यावत् यथाख्यातचारित्र लब्धिरहित जीवोंका कथन करना चाहिये।

भगवन्! चारित्राचारित्र (देशचारित्र) लब्धि वाले जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी? गौतम! वे ज्ञानी हैं, अज्ञानी नहीं। उनमें से कितने ही दो ज्ञान वाले हैं और कितने ही तीन ज्ञान वाले हैं। जो दो ज्ञान वाले हैं, वे आभिनिबोधिकज्ञान

और श्रुतज्ञान वाले हैं। जो तीन ज्ञान वाले हैं, वे आभिनिबोधिक ज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान वाले हैं। चारित्राचारित्र (देशचारित्र)लब्धि रहित जीवोंमें पांच ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से होते हैं। दानलब्धि वाले जीवोंमें पांच ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से पाये जाते हैं। भगवन्! दानलब्धि रहित जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी? गौतम! वे ज्ञानी हैं, अज्ञानी नहीं। उनमें नियम से एक केवलज्ञान होता है। इस प्रकार यावत् वीर्यलब्धि वाले और वीर्यलब्धि रहित जीवों का कथन करना चाहिये। बालवीर्य-लब्धि वाले जीवोंमें तीन ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से पाये जाते हैं। बालवीर्यलब्धि रहित जीवोंमें पांच ज्ञान भजनासे पाये जाते हैं। पण्डितवीर्यलब्धि वाले जीवोंमें पांच ज्ञान भजनासे होते हैं। पण्डितवीर्यलब्धिरहित जीवोंमें मनःपर्ययज्ञानके सिवाय चार ज्ञान और तीन अज्ञान भजनासे होते हैं। बालपण्डितवीर्यलब्धि वाले जीवोंमें तीन ज्ञान भजनासे होते हैं, और बालपण्डित-वीर्यलब्धि रहित जीवोंमें पांच ज्ञान और तीन अज्ञान भजनासे पाये जाते हैं।

भगवन्! इन्द्रिय-लब्धि वाले जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी? गौतम! उनमें चार ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से पाये जाते हैं। भगवन्! इन्द्रिय-लब्धि रहित जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी? गौतम! वे ज्ञानी हैं, अज्ञानी नहीं। वे नियमसे एक केवलज्ञान वाले हैं। श्रोत्रेन्द्रिय-लब्धि वाले जीवोंका कथन इन्द्रिय-लब्धि वाले जीवों के समान जानना चाहिये।

भगवन्! श्रोत्रेन्द्रिय-लब्धि रहित जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी? गौतम! वे ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी हैं। जो ज्ञानी हैं, उनमें कितने ही दो ज्ञान वाले हैं, और कितने ही एक ज्ञान वाले हैं। जो दो ज्ञान वाले हैं वे आभिनिबोधिकज्ञान और श्रुतज्ञान वाले हैं। जो एक ज्ञान वाले हैं, वे एक केवलज्ञान वाले हैं। जो अज्ञानी हैं, वे नियमा दो अज्ञान वाले हैं। यथा—मतिअज्ञान और श्रुतअज्ञान। चक्षुरिन्द्रिय और घ्राणेन्द्रिय लब्धि वाले जीवोंका कथन श्रोत्रेन्द्रिय-लब्धि वाले जीवोंके समान करना चाहिये। उनमें चार ज्ञान और तीन अज्ञान भजनासे पाये जाते हैं। चक्षु-रिन्द्रिय और घ्राणेन्द्रियलब्धि रहित जीवोंका कथन श्रोत्रेन्द्रिय-लब्धि रहित जीवों की तरह करना चाहिये। अर्थात् उनमें ज्ञान दो तथा एक और अज्ञान दो पाये जाते हैं। जिव्हेन्द्रिय लब्धि वाले जीवोंमें चार ज्ञान और तीन अज्ञान भजनासे पाये जाते हैं। भगवन्! जिव्हेन्द्रिय लब्धि रहित जीव ज्ञानी होते हैं, या अज्ञानी? गौतम! वे ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी हैं। जो ज्ञानी हैं, वे नियम से एक केवल-ज्ञानी हैं। जो अज्ञानी हैं, वे नियम से दो अज्ञान (मतिअज्ञान श्रुतअज्ञान) वाले हैं। स्पर्शनेन्द्रिय लब्धि वाले जीवोंका कथन इन्द्रिय लब्धि वाले जीवों के समान

कहना चाहिये। उनमें चार ज्ञान और तीन अज्ञान भजनासे पाये जाते हैं। स्पर्शनेन्द्रियलब्धि रहित जीवोंका कथन इन्द्रिय-लब्धि रहित जीवों के समान कहना चाहिये। उनमें एक केवलज्ञान होता है ॥३१९॥

भगवन् ! साकारोपयोग वाले जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी ? गौतम ! वे ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी। जो ज्ञानी हैं उनमें पांच ज्ञान भजनासे हैं, और जो अज्ञानी हैं, उनमें तीन अज्ञान भजनासे हैं। भगवन् ! आभिनिबोधिक ज्ञान साकारोपयोग वाले जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी ? गौतम ! वे ज्ञानी हैं, अज्ञानी नहीं। उनमें चार ज्ञान भजनासे पाये जाते हैं। श्रुतज्ञान साकारोपयोग वाले जीव भी इसी प्रकार हैं। अवधिज्ञान साकारोपयोग वाले जीवोंका कथन अवधिज्ञान लब्धि वाले जीवोंके समान जानना चाहिये अर्थात् उनमें तीन या चार ज्ञान पाये जाते हैं। मनःपर्यवज्ञान साकारोपयोग वाले जीवों का कथन मनःपर्यवज्ञान लब्धि वाले जीवोंके समान जानना चाहिये अर्थात् उनमें मति, श्रुत और मनःपर्याय, ये तीन ज्ञान, अथवा अवधि सहित चार ज्ञान पाये जाते हैं। केवलज्ञान साकारोपयोग वाले जीवोंका कथन केवलज्ञान लब्धि वाले जीवोंके समान जानना चाहिये, अर्थात् उनमें एक केवलज्ञान ही पाया जाता है। मतिअज्ञान साकारोपयोग वाले और श्रुतअज्ञान साकारोपयोग वाले जीवोंमें तीन अज्ञान भजनासे पाये जाते हैं। विभंगज्ञान साकारोपयोग वाले जीवोंमें नियम से तीन अज्ञान पाये जाते हैं।

भगवन् ! अनाकारोपयोग वाले जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी ? गौतम ! वे ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी। उनमें पांच ज्ञान और तीन अज्ञान भजनासे होते हैं। इस प्रकार चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन अनाकारोपयोग वाले जीवोंके विषय में भी जान लेना चाहिये। परन्तु उनमें चार ज्ञान और तीन अज्ञान भजनासे होते हैं।

भगवन् ! अवधिदर्शन अनाकारोपयोग वाले जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी ? गौतम ! वे ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी। उनमें जो ज्ञानी हैं, उनमें से कितने ही तीन ज्ञान वाले (पहलेके तीन ज्ञान वाले) और कितने ही चार ज्ञान वाले होते हैं। जो अज्ञानी हैं, उनमें नियमसे तीन अज्ञान पाये जाते हैं। यथा—मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान और विभंगज्ञान। केवलदर्शन अनाकारोपयोग वाले जीवोंका कथन केवलज्ञान लब्धि वाले जीवों की तरह जानना चाहिये। वे मात्र एक केवलज्ञान वाले होते हैं।

भगवन् ! सयोगी जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी ? गौतम ! उनका कथन सकायिक जीवोंके समान जानना चाहिये। मनयोगी, वचनयोगी और काययोगी जीवोंका कथन भी इसी भांति जानना चाहिये। अयोगी अर्थात् योगरहित जीवों

का कथन सिद्धोंके समान जानना चाहिये। भगवन्! सलेशी जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी? गौतम! उनका कथन सकायिक जीवोंके समान जानना चाहिये।

भगवन्! कृष्णलेशी जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी? गौतम! उनका कथन सेन्द्रिय-जीवोंके समान जानना चाहिये। इसी प्रकार नीललेश्या, कापोतलेश्या, तेजोलेश्या और पद्मलेश्या वाले जीवोंका कथन जानना चाहिये। शुक्ललेश्या वाले जीवोंका कथन सलेशी जीवोंके समान जानना चाहिये। और अलेशी जीवों का कथन सिद्धोंकी तरह जानना चाहिये।

भगवन्! सकषायी जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी? गौतम! उनका कथन सेन्द्रिय जीवोंके समान जानना चाहिये। इसी प्रकार क्रोध-कषायी, मान-कषायी, मायाकषायी और लोभकषायी जीवोंके विषयमें भी जान लेना चाहिये। भगवन्! अकषायी जीव ज्ञानी हैं, अज्ञानी हैं? गौतम! वे ज्ञानी हैं, अज्ञानी नहीं। उनमें पांच ज्ञान भजनासे पाये जाते हैं।

भगवन्! सवेदक (वेद सहित) जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी? गौतम! वे भी सेन्द्रिय जीवोंकी तरह हैं। इसी प्रकार स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी और नपुंसकवेदी जीवोंके विषयमें भी जानना चाहिये। अवेदक जीवोंका वर्णन अकषायी जीवोंके समान है। भगवन्! आहारक जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी? गौतम! आहारक जीव सकषायी जीवोंके समान हैं। परन्तु इतनी विशेषता है कि उनमें केवल-ज्ञान भी पाया जाता है।

भगवन्! अनाहारक जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी? गौतम! वे ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी। उनमें चार ज्ञान (मनःपर्ययके सिवाय) और तीन अज्ञान भजनासे पाये जाते हैं ॥३२०॥

भगवन्! आभिनिबोधिक ज्ञानका विषय कितना कहा गया है? गौतम! आभिनिबोधिक ज्ञानका विषय संक्षेपसे चार प्रकारका कहा गया है। यथा—द्रव्य से, क्षेत्रसे, कालसे और भावसे। द्रव्यसे आभिनिबोधिक ज्ञानी सामान्यरूपसे सभी द्रव्योंको जानता देखता है। क्षेत्रसे आभिनिबोधिक ज्ञानी आदेशसे (सामान्यसे) सभी क्षेत्रको जानता और देखता है। इसी प्रकार काल और भावसे भी जानना चाहिये।

भगवन्! श्रुतज्ञानका विषय कितना कहा गया है? गौतम! वह संक्षेपसे चार प्रकारका कहा है। यथा—द्रव्यसे, क्षेत्रसे, कालसे और भावसे। द्रव्यसे उपयुक्त (उपयोग सहित) श्रुतज्ञानी सभी द्रव्योंको जानता और देखता है। इस प्रकार क्षेत्रसे, कालसे भी जानना चाहिये। भावसे उपयुक्त श्रुतज्ञानी सभी भावों को जानता और देखता है।

कहना चाहिये। उनमें चार ज्ञान और तीन अज्ञान भजनासे पाये जाते हैं। स्पर्शनेन्द्रियलब्धि रहित जीवोंका कथन इन्द्रिय-लब्धि रहित जीवों के समान कहना चाहिये। उनमें एक केवलज्ञान होता है ॥३१६॥

भगवन्! साकारोपयोग वाले जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी? गौतम! वे ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी। जो ज्ञानी हैं उनमें पांच ज्ञान भजनासे हैं, और जो अज्ञानी हैं, उनमें तीन अज्ञान भजनासे हैं। भगवन्! आभिनिबोधिक ज्ञान साकारोपयोग वाले जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी? गौतम! वे ज्ञानी हैं, अज्ञानी नहीं। उनमें चार ज्ञान भजनासे पाये जाते हैं। श्रुतज्ञान साकारोपयोग वाले जीव भी इसी प्रकार हैं। अवधिज्ञान साकारोपयोग वाले जीवोंका कथन अवधिज्ञान लब्धि वाले जीवोंके समान जानना चाहिये अर्थात् उनमें तीन या चार ज्ञान पाये जाते हैं। मनःपर्यवज्ञान साकारोपयोग वाले जीवों का कथन मनःपर्यवज्ञान लब्धि वाले जीवोंके समान जानना चाहिये अर्थात् उनमें मति, श्रुत और मनःपर्याय, ये तीन ज्ञान, अथवा अवधि सहित चार ज्ञान पाये जाते हैं। केवलज्ञान साकारोपयोग वाले जीवोंका कथन केवलज्ञान लब्धि वाले जीवोंके समान जानना चाहिये, अर्थात् उनमें एक केवलज्ञान ही पाया जाता है। मतिअज्ञान साकारोपयोग वाले और श्रुतअज्ञान साकारोपयोग वाले जीवोंमें तीन अज्ञान भजनासे पाये जाते हैं। विभंगज्ञान साकारोपयोग वाले जीवोंमें नियम से तीन अज्ञान पाये जाते हैं।

भगवन्! अनाकारोपयोग वाले जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी? गौतम! वे ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी। उनमें पांच ज्ञान और तीन अज्ञान भजनासे होते हैं। इस प्रकार चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन अनाकारोपयोग वाले जीवोंके विषय में भी जान लेना चाहिये। परन्तु उनमें चार ज्ञान और तीन अज्ञान भजनासे होते हैं।

भगवन्! अवधिदर्शन अनाकारोपयोग वाले जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी? गौतम! वे ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी। उनमें जो ज्ञानी हैं, उनमें से कितने ही तीन ज्ञान वाले (पहलेके तीन ज्ञान वाले) और कितने ही चार ज्ञान वाले होते हैं। जो अज्ञानी हैं, उनमें नियमसे तीन अज्ञान पाये जाते हैं। यथा—मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान और विभंगज्ञान। केवलदर्शन अनाकारोपयोग वाले जीवोंका कथन केवलज्ञान लब्धि वाले जीवों की तरह जानना चाहिये। वे मात्र एक केवलज्ञान वाले होते हैं।

भगवन्! सयोगी जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी? गौतम! उनका कथन सकायिक जीवोंके समान जानना चाहिये। मनयोगी, वचनयोगी और कायसयोगी जीवोंका कथन भी इसी भांति जानना चाहिये। अयोगी अर्थात् योगरहित जीवों

का कथन सिद्धोंके समान जानना चाहिये। भगवन्! सलेशी जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी? गौतम! उनका कथन सकायिक जीवोंके समान जानना चाहिये।

भगवन्! कृष्णलेशी जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी? गौतम! उनका कथन सेन्द्रिय-जीवोंके समान जानना चाहिये। इसी प्रकार नीललेश्या, कापोतलेश्या, तेजोलेश्या और पद्मलेश्या वाले जीवोंका कथन जानना चाहिये। शुक्ललेश्या वाले जीवोंका कथन सलेशी जीवोंके समान जानना चाहिये। और अलेशी जीवों का कथन सिद्धोंकी तरह जानना चाहिये।

भगवन्! सकषायी जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी? गौतम! उनका कथन सेन्द्रिय जीवोंके समान जानना चाहिये। इसी प्रकार क्रोध-कषायी, मान-कषायी, मायाकषायी और लोभकषायी जीवोंके विषयमें भी जान लेना चाहिये। भगवन्! अकषायी जीव ज्ञानी हैं, अज्ञानी हैं? गौतम! वे ज्ञानी हैं, अज्ञानी नहीं। उनमें पांच ज्ञान भजनासे पाये जाते हैं।

भगवन्! सवेदक (वेद सहित) जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी? गौतम! वे भी सेन्द्रिय जीवोंकी तरह हैं। इसी प्रकार स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी और नपुंसकवेदी जीवोंके विषयमें भी जानना चाहिये। अवेदक जीवोंका वर्णन अकषायी जीवोंके समान है। भगवन्! आहारक जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी? गौतम! आहारक जीव सकषायी जीवोंके समान हैं। परन्तु इतनी विशेषता है कि उनमें केवल-ज्ञान भी पाया जाता है।

भगवन्! अनाहारक जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी? गौतम! वे ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी। उनमें चार ज्ञान (मनःपर्ययके सिवाय) और तीन अज्ञान भजनासे पाये जाते हैं ॥३२०॥

भगवन्! आभिनिबोधिक ज्ञानका विषय कितना कहा गया है? गौतम! आभिनिबोधिक ज्ञानका विषय संक्षेपसे चार प्रकारका कहा गया है। यथा—द्रव्य से, क्षेत्रसे, कालसे और भावसे। द्रव्यसे आभिनिबोधिक ज्ञानी सामान्यरूपसे सभी द्रव्योंको जानता देखता है। क्षेत्रसे आभिनिबोधिक ज्ञानी आदेशसे (सामान्यसे) सभी क्षेत्रको जानता और देखता है। इसी प्रकार काल और भावसे भी जानना चाहिये।

भगवन्! श्रुतज्ञानका विषय कितना कहा गया है? गौतम! वह संक्षेपसे चार प्रकारका कहा हैं। यथा—द्रव्यसे, क्षेत्रसे, कालसे और भावसे। द्रव्यसे उपयुक्त (उपयोग सहित) श्रुतज्ञानी सभी द्रव्योंको जानता और देखता है। इस प्रकार क्षेत्रसे, कालसे भी जानना चाहिये। भावसे उपयुक्त श्रुतज्ञानी सभी भावों को जानता और देखता है।

भगवन् ! अवधिज्ञानका विषय कितना कहा है ? गौतम ! संक्षेपसे चार प्रकारका कहा गया है। यथा—द्रव्यसे, क्षेत्रसे, कालसे और भावसे। द्रव्यसे अवधिज्ञानी रूपी द्रव्योंको जानता और देखता है। इत्यादि जिस प्रकार नन्दी· सूत्रमें कहा है, उसी प्रकार यावत् भाव पर्यन्त कहना चाहिये।

भगवन् ! मनःपर्यय ज्ञानका विषय कितना कहा गया है ? गौतम ! वह संक्षेपसे चार प्रकारका कहा गया है। यथा—द्रव्यसे, क्षेत्रसे, कालसे और भावसे। द्रव्यसे ऋजुमति मनःपर्यय ज्ञानी मनपने परिणत अनन्त प्रादेशिक अनन्त स्कंधों को जानता और देखता है। इत्यादि जिस प्रकार नन्दीसूत्रमें कहा है उसी प्रकार यावत् भाव तक जानना चाहिये।

भगवन् ! केवलज्ञानका विषय कितना कहा गया है ? गौतम ! संक्षेपसे चार प्रकारका कहा गया है। यथा—द्रव्यसे, क्षेत्रसे, कालसे और भावसे। द्रव्य से केवलज्ञानी सभी द्रव्योंको जानता और देखता है। इस प्रकार यावत् भावसे केवलज्ञानी समस्त भावोंको जानता और देखता है।

भगवन् ! मतिअज्ञानका विषय कितना कहा गया है ? गौतम ! वह संक्षेप से चार प्रकारका कहा गया है। यथा—द्रव्यसे, क्षेत्रसे, कालसे और भावसे। द्रव्यसे मतिअज्ञानी, मतिअज्ञानके विषयभूत द्रव्योंको जानता और देखता है। इस प्रकार यावत् भावसे मतिअज्ञानी मतिअज्ञानके विषयभूत भावोंको जानता और देखता है।

भगवन् ! श्रुतअज्ञानका विषय कितना कहा गया है ? गौतम ! वह संक्षेप से चार प्रकारका कहा गया है। यथा-द्रव्यसे, क्षेत्रसे, कालसे और भावसे। द्रव्यसे श्रुतअज्ञानी, श्रुतअज्ञानके विषयभूत द्रव्योंको कहता है, बतलाता है और प्ररूपित करता है। इस प्रकार क्षेत्रसे और कालसे भी जानना चाहिये। भावकी अपेक्षा श्रुतअज्ञानी, श्रुतअज्ञानके विषयभूत भावोंको कहता है, बतलाता है और प्ररूपित करता है। भगवन् ! विभंगज्ञानका विषय कितना कहा गया है ? गौतम ! वह संक्षेपसे चार प्रकारका कहा गया है, यथा-द्रव्यसे, क्षेत्रसे, कालसे और भावसे। द्रव्यकी अपेक्षा विभंगज्ञानी विभंगज्ञानके विषयभूत द्रव्योंको जानता और देखता है यावत् भावसे विभंज्ञानी विभंगज्ञानके विषयभूत भावोंको जानता और देखता है ॥३२१॥

भगवन् ! ज्ञानी ज्ञानीपने कितने काल तक रहता है ? गौतम ! ज्ञानी दो प्रकारके कहे गये हैं। यथा-सादिअपर्यवसित और सादि-सपर्यवसित। सादि-सपर्यवसित ज्ञानी जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट कुछ अधिक छासठ सागरोपम तक ज्ञानीपने रहते हैं। भगवन् ! आभिनिबोधिक ज्ञानी आभिनिबोधिक ज्ञानीपने कितने काल तक रहता है ? गौतम ! ज्ञानी, आभिनिबोधिकज्ञानी यावत्

केवलज्ञानी, अज्ञानी, मतिअज्ञानी, श्रुतअज्ञानी और विभंगज्ञानी–इन दस का स्थितिकाल प्रज्ञापना सूत्रके अठारहवें 'कायस्थिति पद' में कहे अनुसार जानना चाहिये। इन दसका पारस्परिक अन्तर जीवाभिगम सूत्रके अनुसार जानना चाहिये, और इनका अल्प-बहुत्व प्रज्ञापना सूत्रके तीसरे पदमें कहे अनुसार जानना चाहिये।

भगवन्! आभिनिबोधिक ज्ञानके पर्याय कितने कहे गये हैं? गौतम! आभिनिबोधिक ज्ञानके अनन्त पर्याय कहे गये हैं। भगवन्! श्रुतज्ञानके कितने पर्याय कहे गये हैं? गौतम! श्रुतज्ञानके अनन्त पर्याय कहे गये हैं। इसी प्रकार अवधिज्ञान, मन:पर्ययज्ञान और केवलज्ञानके भी अनन्त पर्याय कहे गये हैं। इसी प्रकार मतिअज्ञान और श्रुतअज्ञानके भी अनन्त पर्याय कहे गये हैं। भगवन्! विभंगज्ञानके कितने पर्याय कहे गये हैं? गौतम! विभंगज्ञानके अनन्त पर्याय कहे गये हैं।

भगवन्! पूर्व कथित आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन:पर्ययज्ञान और केवलज्ञानके पर्यायोंमें किसके पर्याय किससे अल्प, बहुत, तुल्य, या विशेषाधिक हैं? गौतम! मन:पर्ययज्ञानके पर्याय सबसे थोड़े हैं, उनसे अवधिज्ञान के पर्याय अनन्तगुणा हैं। उनसे श्रुतज्ञानके पर्याय अनन्त गुणा हैं। उनसे आभिनिबोधिक ज्ञानके पर्याय अनन्तगुणा हैं। उनसे केवलज्ञानके पर्याय अनन्त गुणा हैं। भगवन्! मतिअज्ञान, श्रुत अज्ञान और विभंगज्ञानके पर्यायोंमें किसके पर्याय किसके पर्यायोंसे यावत् विशेषाधिक हैं? गौतम! सबसे थोड़े विभंगज्ञानके पर्याय हैं। उनसे श्रुतअज्ञानके पर्याय अनन्त गुणा हैं। उनसे मतिअज्ञानके पर्याय अनन्त गुणा हैं।

भगवन्! इन आभिनिबोधिकज्ञान यावत् केवलज्ञान, तथा मतिअज्ञान, श्रुत अज्ञान और विभंगज्ञानके पर्यायोंमें किसके पर्याय किसके पर्यायोंसे यावत् विशेषाधिक हैं? गौतम! सबसे थोड़े मन:पर्ययज्ञानके पर्याय हैं। उनसे विभंगज्ञानके पर्याय अनन्त गुणा हैं। उनसे अवधिज्ञानके पर्याय अनन्त गुणा हैं। उनसे श्रुतअज्ञानके पर्याय अनन्त गुणा हैं। उनसे श्रुतज्ञानके पर्याय विशेषाधिक हैं। उनसे मतिअज्ञान के पर्याय अनन्त गुणा हैं। उनसे मतिज्ञानके पर्याय विशेषाधिक हैं। उनसे केवलज्ञानके पर्याय अनन्त गुणा हैं। हे भगवन्! यह इसी प्रकार है......। ऐसा कहकर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं॥३२२॥

॥ आठवें शतक का दूसरा उद्देशक समाप्त ॥

—०—

शतक ८ उद्देशक ३—वृक्ष के भेदादि

भगवन् ! वृक्ष कितने प्रकारके कहे गये हैं ? गौतम ! वृक्ष तीन प्रकारके कहे गये हैं। यथा—संख्यात जीव वाले, असंख्यात जीव वाले और अनन्त जीव वाले। भगवन् ! संख्यात जीव वाले वृक्ष कितने प्रकारके कहे गये हैं ? गौतम ! संख्यात जीव वाले वृक्ष अनेक प्रकारके कहे गये हैं। यथा—ताड़, तमाल, तक्कलि, तेतलि इत्यादि प्रज्ञापनासूत्रके पहले पदमें कहे अनुसार यावत् नालिकेर पर्यन्त जानना चाहिये। इसके अतिरिक्त इस प्रकारके जितने भी वृक्ष विशेष हैं, वे सव संख्यात जीव वाले हैं।

भगवन् ! असंख्यात जीव वाले वृक्ष कितने प्रकारके कहे गये हैं ? गौतम ! असंख्यात जीव वाले वृक्ष दो प्रकारके कहे गये हैं। यथा—एक बीज वाले और वहुबीजक—वहुत वीजों वाले। भगवन् ! एकबीज वृक्ष कितने प्रकारके कहे गये हैं ? गौतम ! एकवीज वृक्ष अनेक प्रकारके कहे गये हैं। यथा—नीम, आम, जामुन आदि। प्रज्ञापनासूत्रके पहले पदमें कहे अनुसार यावत् वहुवीज वाले फलों तक कहना चाहिये। इस प्रकार असंख्यात जीविक वृक्ष कहे गये हैं।

भगवन् ! अनन्त जीव वाले वृक्ष कितने प्रकार के कहे गये हैं ? गौतम ! अनन्त जीव वाले वृक्ष अनेक प्रकार के कहे गये हैं। यथा—आलू, मूला, शृंगबेर (अदरख) आदि। भगवती सूत्रके सातवें शतकके तीसरे उद्देशक में कहे अनुसार यावत् सिउन्ढी, मुसुन्ढी तक जानना चाहिये। इसके अतिरिक्त इस प्रकारके दूसरे वृक्ष भी जान लेने चाहियें। इस प्रकार अनन्त जीव वाले वृक्षोंका कथन किया गया है ।।३२३।।

भगवन् ! कछुआ, कछुएकी श्रेणि, गोधा (गोह), गोधाकी पंक्ति, गाय, गायकी पंक्ति, मनुष्य, मनुष्य की पंक्ति, भैंसा, भैंसों की पंक्ति, इन सवके दो, तीन या संख्यात खण्ड किये जायं, तो उनके बीचका भाग क्या जीव प्रदेशोंसे स्पृष्ट है ? हां, गौतम ! स्पृष्ट है। भगवन् ! कोई पुरुष उन कछुए आदिके खण्डोंके वीचके भागको हाथ से, पैरसे, अंगुलिसे, शलाकासे, काष्ठसे और लकड़ीके छोटे टुकड़ेसे स्पर्श करे, विशेप स्पर्श करे, थोड़ा या विशेप खींचे अथवा किसी तीक्ष्ण शस्त्र समूहसे छेदे, विशेप रूपसे छेदे, अग्निसे जलावे, तो क्या उन जीव प्रदेशों को थोड़ी, या अधिक पीड़ा होती है, या उनके किसी अवयव का छेद होता है ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं। क्योंकि जीव प्रदेशों पर शस्त्र आदिका प्रभाव नहीं होता ।।३२४।।

भगवन् ! पृथ्वियां कितनी कही गई हैं ? गौतम ! पृथ्वियां आठ कही गई हैं। यथा—रत्नप्रभा यावत् अधःसप्तम पृथ्वी, ईषत्प्राग्भारा (सिद्ध-शिला)। भगवन् ! यह रत्नप्रभा पृथ्वी क्या चरम (अन्तिम) है, या अचरम (मध्यवर्ती) है ? यहां प्रज्ञापना सूत्रका चरम नामक दसवां पद कहना चाहिये। यावत्—हे

भगवन् ! वैमानिक स्पर्श चरम द्वारा क्या चरम हैं, या अचरम हैं ? गौतम ! वे चरम भी हैं और अचरम भी हैं। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है…। ऐसा कहकर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं ॥३२५॥

॥ आठवें शतक का तीसरा उद्देशक समाप्त ॥

शतक ८ उद्देशक ४–पांच क्रियाएं

राजगृह नगर में यावत् गौतम स्वामी ने इस प्रकार पूछा कि हे भगवन् ! क्रियाएं कितनी कही गई हैं ? गौतम ! क्रियाएं पांच कही गई हैं। यथा–कायिकी, अधिकरणिकी, प्राद्वेषिकी, पारितापनिकी और प्राणातिपातिकी। यहां प्रज्ञापना सूत्र का बाईसवां सम्पूर्ण क्रियापद कहना चाहिए यावत् 'मायाप्रत्ययिक क्रियाएं विशेषाधिक हैं'–यहां तक कहना चाहिए। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है।…ऐसा कहकर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ॥३२६॥

॥ आठवें शतक का चौथा उद्देशक समाप्त ॥

शतक ८ उद्देशक ५

राजगृह नगर में यावत् गौतमस्वामी ने इस प्रकार पूछा। भगवन् ! आजीविक अर्थात् गोशालक के शिष्यों ने स्थविर भगवन्तोंसे इस प्रकार पूछा कि कोई श्रावक सामायिक करके उपाश्रय में बैठा है। उस श्रावकके वस्त्र आदि कोई चुरा ले जाय और (सामायिक पूर्ण होने पर उसे पार कर) वह उन वस्तुओं का अन्वेषण करे, तो क्या वह श्रावक अपनी वस्तु का अन्वेषण करता है, या दूसरों की वस्तु का अन्वेषण करता है ? गौतम ! वह श्रावक अपनी वस्तुका अन्वेषण करता है, दूसरों की वस्तु का अन्वेषण नहीं करता।

भगवन् ! शीलव्रत, गुणव्रत, विरमण, प्रत्याख्यान और पौषधोपवास अंगीकार किये हुए श्रावक के वे अपहृत (चुराये हुए) भाण्ड क्या उसके लिए अभाण्ड हो जाते हैं ? हां, गौतम ! वे उसके लिये अभाण्ड हो जाते हैं। भगवन् ! यदि उसके लिये वे अभाण्ड हो जाते हैं, तो आप ऐसा क्यों कहते हैं कि वह श्रावक अपने भाण्ड का अन्वेषण करता है, दूसरे के भाण्ड का अन्वेषण नहीं करता ? गौतम ! सामायिक करने वाले उस श्रावकके मनमें ऐसे परिणाम होते हैं कि 'हिरण्य (चांदी) मेरा नहीं है, स्वर्ण मेरा नहीं है, कांस्य (कांसी के वर्तन) मेरे नहीं हैं, वस्त्र मेरे नहीं हैं, विपुल धन, कनक, रत्न, मणि, मोती, शंख, शिलाप्रवाल (विद्रुम मणि), तथा रक्तरत्न अर्थात् पद्मरागादि मणि इत्यादि विद्यमान सारभूत द्रव्य

मेरे नहीं हैं।' परन्तु उसने ममत्वभावका प्रत्याख्यान नहीं किया है, इस कारण... गौतम ! ऐसा कहता हूं कि वह श्रावक अपने भाण्ड का अन्वेषण करता है, दूसरों के भाण्ड का अन्वेषण नहीं करता।

भगवन् ! कोई एक श्रावक सामायिक करके श्रमणोपाश्रय में बैठा है। उस समय यदि कोई व्यभिचारी लम्पट पुरुष उस श्रावक की जाया (स्त्री) को भोगता हैं, तो क्या वह जाया (श्रावक की स्त्री) को भोगता है, या अजाया (श्रावककी स्त्री नहीं दूसरोंकी स्त्री)को भोगता है ? गौतम ! वह पुरुष उस श्रावक की जाया को भोगता है, अजाया को नहीं भोगता।

भगवन् ! शीलव्रत, गुणव्रत, विरमण प्रत्याख्यान और पौषधोपवास कर लेने से उस श्रावक की जाया क्या 'अजाया' हो जाती है। हां, गौतम ! अजाया हो जाती है। भगवन् ! जब वह उस श्रावक के लिये अजाया हो जाती है, तो आप ऐसा क्यों कहते हैं कि वह लम्पट उसकी जाया को भोगता है, अजाया को नहीं भोगता ? गौतम ! शीलव्रतादि को अंगीकार करने वाले उस श्रावक के मन में ऐसे परिणाम होते हैं कि 'माता मेरी नहीं है, पिता मेरा नहीं है, भाई मेरे नहीं हैं, वहन मेरी नहीं है, स्त्री मेरी नहीं है, पुत्र मेरे नहीं हैं, पुत्री मेरी नहीं है और स्नुषा (पुत्रवधू) मेरी नहीं है।' ऐसा होते हुए भी उनके साथ उसका प्रेम वन्धन टूटा नहीं, इस कारण...गौतम ! ऐसा कहता हूं कि वह पुरुष उस श्रावक की जाया को भोगता है, अजाया को नहीं भोगता ॥३२७॥

भगवन् ! जिस श्रमणोपासक ने पहले स्थूल प्राणातिपात का प्रत्याख्यान नहीं किया, वह पीछे उसका प्रत्याख्यान करता हुआ क्या करता है ? गौतम ! वह अतीतकाल में किये हुए प्राणातिपात का प्रतिक्रमण करता है अर्थात् उस पापकी निन्दा करके उससे निवृत्त होता है। प्रत्युत्पन्न अर्थात् वर्त्तमानकालीन प्राणातिपात का संवर (निरोध) करता है। अनागत (भविष्यत्कालीन) प्राणातिपात का प्रत्याख्यान करता है, अर्थात् उसे न करने की प्रतिज्ञा करता है।

भगवन् ! अतीतकाल के प्राणातिपातादि का प्रतिक्रमण करता हुआ श्रमणोपासक-१ क्या त्रिविध त्रिविध (तीन करण, तीन योग से) या २ त्रिविध द्विविध, ३ त्रिविध एकविध, ४ द्विविध त्रिविध, ५ द्विविध द्विविध या ६ द्विविध एकविध, ७ एकविध त्रिविध, ८ एकविध द्विविध अथवा ९ एकविध एकविध प्रतिक्रमण करता है ? गौतम ! त्रिविध त्रिविध प्रतिक्रमण करता है, या त्रिविध द्विविध प्रतिक्रमण करता है, अथवा यावत् एकविध एकविध भी प्रतिक्रमण करता है। १ जब त्रिविध त्रिविध प्रतिक्रमण करता है, तब स्वयं करता नहीं, दूसरे से करवाता नहीं और करने वाले का अनुमोदन भी नहीं करता-मन से, वचन से और काया से। २ जब त्रिविध द्विविध प्रतिक्रमण करता है, तब स्वयं करता नहीं,

दूसरे से करवाता नहीं, करने वालेका अनुमोदन करता नहीं–मन और वचन से। ३ अथवा स्वयं करता नहीं, दूसरे से करवाता नहीं और करने वाले का अनुमोदन करता नहीं–मन और काया से। ४ अथवा स्वयं करता नहीं, दूसरे से करवाता नहीं और करने वाले का अनुमोदन भी नहीं करता–वचन और काया से।

जब त्रिविध एकविध (तीन करण एक योग से) प्रतिक्रमण करता है, तब ५ स्वयं करता नहीं, दूसरों से करवाता नहीं, करते हुए का अनुमोदन करता नहीं–मन से। ६ अथवा स्वयं करता नहीं, दूसरों से करवाता नहीं, करते हुए का अनुमोदन करता नहीं–वचन से। ७ अथवा स्वयं करता नहीं, दूसरों से करवाता नहीं, करते हुए का अनुमोदन करता नहीं–काया से। जब द्विविध त्रिविध(दो करण तीन योग से) प्रतिक्रमण करता है, तब ८ स्वयं करता नहीं, दूसरों से करवाता नहीं–मन, वचन और काया से। ९ अथवा स्वयं करता नहीं, करते हुए का अनुमोदन करता नहीं–मन, वचन और काया से। १० अथवा दूसरों से करवाता नहीं, करते हुए का अनुमोदन करता नहीं–मन, वचन और काया से।

जब द्विविध द्विविध प्रतिक्रमण करता है, तब–११ स्वयं करता नहीं, दूसरों से करवाता नहीं–मन और वचन से। १२ अथवा स्वयं करता नहीं, दूसरों से करवाता नहीं–मन और काया से। १३ अथवा–स्वयं करता नहीं, दूसरोंसे करवाता नहीं–वचन और काया से। १४ अथवा स्वयं करता नहीं, करते हुएका अनुमोदन करता नहीं–मन और वचन से। १५ अथवा–स्वयं करता नहीं, करते हुए का अनुमोदन करता नहीं–मन और काया से। १६ अथवा–स्वयं करता नहीं, करते हुए का अनुमोदन करता नहीं–वचन और कायासे। १७ अथवा दूसरों से करवाता नहीं, करते हुए का अनुमोदन करता नहीं–मन और वचन से। १८ अथवा–दूसरों से करवाता नहीं, करते हुए का अनुमोदन करता नहीं–मन और काया से। १९ अथवा–दूसरों से करवाता नहीं, करते हुए का अनुमोदन करता नहीं–वचन और काया से।

जब द्विविध एकविध प्रतिक्रमण करता है तब २० स्वयं करता नहीं, दूसरों से करवाता नहीं–मन से। २१ अथवा स्वयं करता नहीं, दूसरों से करवाता नहीं–वचन से। २२ अथवा–स्वयं करता नहीं, दूसरों से करवाता नहीं–काया से। २३ अथवा—स्वयं करता नहीं, करते हुए का अनुमोदन करता नहीं–मन से। २४ अथवा—स्वयं करता नहीं, करते हुए का अनुमोदन करता नहीं—वचन से। २५ अथवा स्वयं करता नहीं, करते हुए का अनुमोदन करता नहीं–काया से। २६ अथवा दूसरों से करवाता नहीं, करते हुए का अनुमोदन करता नहीं–मन से। २७ अथवा

दूसरों से करवाता नहीं, करते हुए का अनुमोदन करता नहीं–वचन से। २८ अथवा दूसरों से करवाता नहीं, करते हुए का अनुमोदन करता नहीं—काया से।

जब एकविध त्रिविध प्रतिक्रमण करता है तब २९ स्वयं करता नहीं–मन, वचन और काया से। ३० अथवा दूसरों से करवाता नहीं—मन, वचन और कायासे। ३१ अथवा करते हुए का अनुमोदन करता नहीं—मन, वचन और काया से।

जब एकविध द्विविध प्रतिक्रमण करता है, तब ३२ स्वयं करता नहीं—मन और वचन से। ३३ अथवा स्वयं करता नहीं–मन और काया से। ३४ अथवा स्वयं करता नहीं—वचन और काया से। ३५ अथवा दूसरों से करवाता नहीं–मन और वचन से। ३६ अथवा दूसरों से करवाता नहीं–मन और काया से। ३७ अथवा दूसरों से करवाता नहीं—वचन और काया से। ३८ अथवा करते हुए का अनुमोदन करता नहीं—मन और वचन से। ३९ अथवा करते हुए का अनुमोदन करता नहीं—मन और काया से। ४० अथवा करते हुए का अनुमोदन करता नहीं–वचन और काया से।

जब एकविध एकविध प्रतिक्रमण करता है, तब ४१ स्वयं करता नहीं–मन से। ४२ अथवा स्वयं करता नहीं—वचन से। ४३ अथवा स्वयं करता नहीं–काया से। ४४ अथवा दूसरों से करवाता नहीं—मनसे। ४५ अथवा दूसरों से करवाता नहीं–वचन से। ४६ अथवा दूसरों से करवाता नहीं—काया से। ४७ अथवा करते हुए का अनुमोदन करता नहीं—मन से। ४८ अथवा अनुमोदन करता नहीं—वचन से। ४९ अथवा अनुमोदन करता नहीं–काया से।

भगवन्! प्रत्युत्पन्न (वर्तमान काल) का संवर करता हुआ श्रावक क्या त्रिविध त्रिविध संवर करता है? इत्यादि प्रश्न। गौतम! पहले कहे अनुसार उनचास भंग कहने चाहियें अर्थात् प्रतिक्रमणके विषयमें जो उनचास भंग कहे हैं, वे ही संवरके विषय में जानने चाहियें। भगवन्! अनागत (भविष्यत्) कालके प्राणातिपात का प्रत्याख्यान करता हुआ श्रावक क्या त्रिविध त्रिविध प्रत्याख्यान करता है? इत्यादि प्रश्न। गौतम! पहले कहे अनुसार यहां भी उनचास भंग कहने चाहियें यावत् 'अथवा करते हुए का अनुमोदन करता नहीं—काया से'—यहां तक कहना चाहिये। भगवन्! जिस श्रमणोपासक ने पहले स्थूल मृषावाद का प्रत्याख्यान नहीं किया, किंतु बाद में वह स्थूल मृषावाद का प्रत्याख्यान करता है, तो क्या करता है? गौतम! जिस प्रकार प्राणातिपातके विषयमें एक सौ सैंतालीस (अतीत कालके पापसे निवृत्त, वर्तमानमें संवर करने और आगामी काल के प्रत्याख्यान करने रूप तीन काल सम्बन्धी ४९ × ३ = १४७) भंग कहे गये हैं। उसी प्रकार मृषावादके विषयमें भी एक सौ सैंतालीस भंग कहने चाहियें। इसी

प्रकार स्थूल अदत्तादान, स्थूल मैथुन और स्थूल परिग्रहके विषयमें भी एक सौ सैंतालीस, एक सौ सैंतालीस भंग जानने चाहियें। यावत् 'अथवा पाप करते हुए का अनुमोदन करता नहीं, कायासे' यहां तक जानना चाहिये। इस प्रकारके श्रमणोपासक होते हैं, किन्तु आजीविकोपासक (गोशालकके उपासक) इस प्रकार के नहीं होते ॥३२८॥

आजीविक (गोशालक) के सिद्धांत का यह अर्थ है कि—'प्रत्येक जीव अक्षीणपरिभोगी अर्थात् सचित्ताहारी है।' इसलिये वे लकड़ी आदिसे पीटकर, तलवार आदि से काटकर, शूलादि से भेदन कर, पांख आदि को कतरकर, चमड़ी आदि को उतार कर और विनाश करके खाते हैं, अर्थात् संसारके दूसरे प्राणी इस प्रकार जीवोंको हननेमें तत्पर हैं, परंतु आजीविकके मत में ये बारह आजीविकोपासक कहे गये हैं। यथा—१ ताल, २ तालप्रलम्ब, ३ उद्विध, ४ संविध, ५ अवविध, ६ उदय, ७ नामोदय, ८ नर्मोदय, ९ अनुपालक, १० शंखपालक, ११ अयम्बुल और १२ कातर। ये बारह आजीविकके उपासक हैं। इनका देव गोशालक है। वे माता पिताकी सेवा करने वाले होते हैं। वे पांच प्रकारके फल नहीं खाते, यथा—१ उम्बर के फल, २ बड़ के फल, ३ बोर, ४ सत्तर (शहतूत) का फल और ५ पीपल का फल। वे प्याज, लहसुन और कन्दमूलके विवर्जक (त्यागी) होते हैं। वे अनिर्लाञ्छित (खसी नहीं किये हुए) और नहीं नाथे हुए (जिनका नाक विंधा हुआ नहीं) ऐसे बैलों द्वारा त्रस प्राणीकी हिंसारहित व्यापार से आजीविका करते हैं। जब गोशालक के उपासक भी इस प्रकारसे हिंसारहित व्यापार द्वारा आजीविका करते हैं, तो जो श्रमणोपासक हैं, उनका तो कहना ही क्या? क्योंकि उन्होंने तो विशिष्टतर देव-गुरु-धर्मका आश्रय लिया है। जो श्रमणोपासक होते हैं, उन्हें ये पन्द्रह कर्मादान स्वयं करना, दूसरों से करवाना और करते हुए का अनुमोदन करना नहीं कल्पता। वे कर्मादान इस प्रकार हैं;—

१ अंगारकर्म, २ वनकर्म, ३ शाकटिक कर्म, ४ भाटी कर्म, ५ स्फोटक कर्म, ६ दन्तवाणिज्य, ७ लाक्षावाणिज्य, ८ केशवाणिज्य, ९ रसवाणिज्य, १० विषवाणिज्य, ११ यन्त्रपीडनकर्म, १२ निर्लाञ्छनकर्म, १३ दावाग्निदापनता, १४ सरोह्रदतड़ाग-शोषणता और १५ असतीपोषणता। ये श्रमणोपासक शुक्ल (पवित्र) शुक्लाभिजात (पवित्रता प्रधान) होकर काल के समय काल करके किसी एक देवलोक में देव रूप से उत्पन्न होते हैं ॥३२९॥

भगवन्! कितने प्रकार के देवलोक कहे गये हैं? गौतम! चार प्रकारके देवलोक कहे गये हैं। यथा—भवनवासी, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक। हे भगवन्! यह इसी प्रकार है……। ऐसा कहकर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं ॥३३०॥ ॥ आठवें शतकका पांचवां उद्देशक समाप्त ॥

शतक ८ उद्देशक ६

भगवन् ! तथारूप (साधुके वेष और तदनुकूल प्रवृत्ति तथा गुणोंसे युक्त) श्रमण या माहण को प्रासुक एवं एषणीय अशन, पान, खादिम और स्वादिम आहार द्वारा प्रतिलाभित करते हुए श्रमणोपासक को किस फलकी प्राप्ति होती है ? गौतम ! उसके एकान्तरूपमें निर्जरा होती है, किन्तु पाप कर्म नहीं होता। भगवन् ! तथारूप श्रमण-माहणको अप्रासुक और अनेषणीय अशनादि द्वारा प्रतिलाभित करते हुए श्रमणोपासक को किस फल की प्राप्ति होती है ? गौतम ! उसके बहुत निर्जरा और अल्प पाप होता है। भगवन् ! तथारूप असंयत, अविरत, जिसने पाप कर्मों को नहीं रोका और पापका प्रत्याख्यान भी नहीं किया, उसे प्रासुक या अप्रासुक, एषणीय या अनेषणीय अशन पानादि द्वारा प्रतिलाभित करते हुए श्रमणोपासक को किस फल की प्राप्ति होती है ? गौतम ! उसे एकान्त कर्मबंध होता है, निर्जरा कुछ भी नहीं होती१ ॥३३१॥

कोई साधु गृहस्थके घर आहार लेने के लिये जाय वहां वह गृहस्थ दो पिण्ड (दो रोटी या दो लड्डू आदि पदार्थ) बहरावे और ऐसा कहे कि—'हे आयुष्मन् श्रमण ! इन दो पिण्डों में से एक पिण्ड आप खाना और दूसरा पिण्ड स्थविर मुनियों को देना।' वह मुनि दोनों पिण्ड ग्रहण करके अपने स्थान पर आवे। वहां आकर स्थविर मुनियों की गवेषणा करे। गवेषणा करने पर वे स्थविर मुनि मिल जायं, तो वह पिण्ड उन्हें दे दे। गवेषणा करने पर भी यदि वे नहीं मिलें, तो उस पिण्ड को न तो आप खावे न दूसरों को देवे। किन्तु एकान्त और अनापात, अचित्त, बहुप्रासुक स्थण्डिल स्थान की प्रतिलेखना और प्रमार्जना करके वहां परठ दे।

कोई साधु गृहस्थ के घर गोचरी जाय। वहां गृहस्थ उसे तीन पिण्ड (तीन रोटी अथवा तीन लड्डू आदि कोई वस्तु) देवे और ऐसा कहे कि 'हे आयुष्मन् श्रमण ! इन तीन पिण्डों में से एक पिण्ड तो आप खाना और दो पिंड स्थविर मुनियों को देना।' फिर वह मुनि उन पिंडों को लेकर अपने स्थान पर आवे। वहां आकर स्थविर मुनियों की गवेषणा करे। यदि वे मिल जायं, तो वे दो पिंड उन्हें दे दे। यदि वे नहीं मिलें, तो उन दो पिंडों को न स्वयं आप खावे और न दूसरों को दे, किन्तु पूर्वोक्त विशेषण युक्त स्थण्डिल भूमि की प्रतिलेखना व प्रमार्जना करके परठ दे। इसी प्रकार चार, पांच, छह यावत् दस पिंड तक के

---

१. यह विधि निश्चयनय की अपेक्षा है। व्यवहार नय से कहीं भी सर्वज्ञों ने अनुकम्पादान का निषेध नहीं किया। क्योंकि उन्होंने स्थानांगसूत्र नवम स्थानक में ९ प्रकार के पुण्य बताए हैं—अन्नपुण्णे······इत्यादि।

विषय में कहना चाहिये। उनमें से एक पिंड स्वयं ग्रहण करने के लिये तथा शेष पिंड स्थविर मुनियों को देने के लिये कहे, इत्यादि कथन करना चाहिये। शेष सारा वर्णन पूर्वोक्त प्रकार से कहना चाहिये।

कोई साधु गृहस्थ के घर गोचरी के लिये जाय। वहां वह गृहस्थ दो पात्र बहरावे और ऐसा कहे कि—'हे आयुष्मन् श्रमण! इन दो पात्रों में से एक पात्र का उपयोग आप स्वयं करना और दूसरा पात्र स्थविर मुनियों को देना।' तो उन दोनों पात्रों को ग्रहण कर अपने स्थान पर आवे यावत् सारा वर्णन पूर्वोक्त रूप से कहना। उस दूसरे पात्र का उपयोग आप स्वयं न करे और न वह दूसरों को दे, किन्तु यावत् उसको परठ दे। इसी प्रकार तीन, चार यावत् दस पात्र तक का कथन पूर्वोक्त पिंड के समान कहना चाहिये। जिस प्रकार पात्र की वक्तव्यता कही, उसी प्रकार गुच्छक, रजोहरण, चोलपट्ट, कम्बल, दण्ड और संस्तारक की वक्तव्यता कहनी चाहिये। यावत् परठ दे—यहां तक कहना चाहिये ॥३३२॥

भगवन्! कोई साधु गाथापति (गृहस्थ) के घर में गोचरी गया, वहां उस साधु द्वारा (मूल गुणादि में दोष रूप) कृत्य का सेवन हो गया हो और तत्क्षण उसके मन में ऐसा विचार उत्पन्न हो कि—'प्रथम मैं यहीं पर इस कृत्य स्थान की आलोचना, प्रतिक्रमण, निन्दा और गर्हा करूं, उसके अनुबन्ध का छेदन करूं, इससे विशुद्ध बनूं, भविष्य में ऐसा कार्य न करने की प्रतिज्ञा करूं तथा यथोचित प्राय-श्चित और तपःकर्म स्वीकार करलूं। फिर मैं यहां से जाकर स्थविर मुनियों के पास आलोचना करूंगा यावत् यथोचित तपःकर्म स्वीकार करूंगा।' ऐसा विचार कर वह मुनि स्थविर मुनियों के पास जाने के लिये निकला। उन स्थविर मुनियों के पास पहुंचने के पूर्व ही वे स्थविर मुनि वात आदि दोष के प्रकोप से मूक हो जायं (वे बोल न सकें) और इसी कारण वे प्रायश्चित न दे सकें, तो हे भगवन्! वह मुनि आराधक है या विराधक? गौतम! वह आराधक है, विराधक नहीं। उपर्युक्त अकार्य का सेवन करने वाले मुनि ने स्वयं आलोचनादि करली, फिर स्थविर मुनियों के पास आलोचना करने के लिये निकला, किन्तु वहां पहुंचने के पूर्व ही वह स्वयं वात आदि दोषके कारण मूक हो जाय, तो हे भगवन्! वह मुनि आराधक है, या विराधक? गौतम! वह मुनि आराधक है, विराधक नहीं।

उपर्युक्त अकार्य सेवन करने वाला मुनि स्वयं आलोचनादि करके स्थविर मुनियों के पास आलोचना करने को निकला, किन्तु वहां पहुंचने के पूर्व ही वे स्थविर मुनि काल कर गये, तो हे भगवन्! वह मुनि आराधक है, या विराधक? गौतम! वह मुनि आराधक है, विराधक नहीं। उपर्युक्त अकार्य का सेवन करने वाला मुनि स्वयं आलोचनादि करके स्थविर मुनियों के पास आलोचना करनेके लिये निकला, किन्तु वहां पहुंचनेके पूर्व ही वह स्वयं कालकर जाय, तो···भगवन्!

वह मुनि आराधक है, या विराधक ? गौतम ! वह मुनि आराधक है, विराधक नहीं ।

उपर्युक्त अकार्यका सेवन करने वाला मुनि स्वयं आलोचनादि करके स्थविर मुनियों के पास आलोचना करने के लिये निकला और वह वहां पहुंच गया, तत्पश्चात् वे स्थविर मुनि वात आदि दोष के कारण मूक हो गये, तो हे भगवन् ! वह मुनि आराधक है, या विराधक ? गौतम ! वह आराधक है, विराधक नहीं। जिस प्रकार असंप्राप्त (स्थविरों के पास न पहुंचे हुए) मुनि के चार आलापक कहे गये, उसी प्रकार सम्प्राप्त (स्थविरों की सेवा में पहुंचे हुए) मुनि के भी चार आलापक कहने चाहियें ।

किसी मुनि के द्वारा बाहर विचार (नीहार) भूमि अथवा विहारभूमि की ओर जाते हुए उसके द्वारा किसी अकार्यका सेवन हो गया हो, फिर उसके मनमें इस प्रकारका विचार उत्पन्न हुआ हो कि 'प्रथम मैं स्वयं यहां इस अकार्य की आलोचना आदि करूं,' इत्यादि पूर्ववत् सारा वर्णन कहना चाहिये । पूर्वोक्त प्रकार से संप्राप्त और असम्प्राप्त दोनों के आठ आलापक कहने चाहियें यावत् वह मुनि आराधक है, विराधक नहीं, यहां तक कहना चाहिये । ग्रामानुग्राम विचरते हुए किसी मुनि द्वारा अकार्य का सेवन हो जाय, तो उसके भी इसी प्रकार आठ आलापक जानने चाहियें। यावत् वह मुनि आराधक है, विराधक नहीं-यहां तक कहना चाहिए ।

कोई साध्वी गोचरी के लिये गृहस्थ के घर गई । वहां उसके द्वारा किसी अकार्य का सेवन हो गया । तत्पश्चात् उसके मनमें ऐसा विचार उत्पन्न हुआ कि 'पहले मैं यहीं अकृत्य स्थान की आलोचना करूं, यावत् तपकर्म को स्वीकार करूं, इसके बाद प्रवर्तिनी के पास आलोचना करूंगी यावत् तप कर्म को स्वीकार करूंगी',—ऐसा विचार कर वह साध्वी, प्रवर्तिनीके पास जानेके लिये निकली । प्रवर्तिनी के पास पहुंचने के पहले ही वह प्रवर्तिनी वात आदि दोष के कारण मूक हो गई (जिव्हा बन्द हो गई—बोल न सकी) । तो···भगवन् ! क्या वह साध्वी आराधक है, या विराधक ? गौतम ! वह साध्वी आराधक है, विराधक नहीं । जिस प्रकार साधु के तीन आलापक कहे हैं, उसी प्रकार साध्वी के भी तीन आलापक कहने चाहियें, किन्तु इतनी विशेषता है कि 'स्थविर' शब्द के स्थान पर 'प्रवर्तिनी' शब्द का प्रयोग करना चाहिये ।

भगवन् ! ऐसा क्यों कहा गया कि-'वे आराधक हैं, विराधक नहीं ?' गौतम ! जैसे कोई पुरुष ऊन (भेड़) के बाल, हाथी के बाल, या सण के रेसे (तन्तु), कपास के रेसे तथा तृण, इन सब के एक, दो, तीन यावत् संख्येय टुकड़े करके अग्नि में डाले, तो काटते हुए वे काटे गये और अग्नि में डालते हुए

'डाले गये', जलते हुए 'जले'—इस प्रकार कहलाता है ? (गौतम स्वामी कहते हैं) हां, भगवन् ! काटे जाते हुए—'काटे गये', डाले जाते हुए—'डाले गये' और जलते हुए—'जले' इस प्रकार कहलाते हैं। (भगवान् फिर फरमाते हैं) अथवा कोई पुरुष नवीन अथवा धोये हुए अथवा यन्त्र से तुरन्त उतरे हुए वस्त्र को मजीठ के द्रोण (पात्र) में डाले, तो हे गौतम ! क्या उठाते हुए वह कपड़ा उठाया गया, डालते हुए वह डाला गया और रंगते हुए वह 'रंगा गया'—ऐसा कहा जाता है ? (गौतम स्वामी कहते हैं) हां, भगवन् ! उठाते हुए उठाया गया, डालते हुए 'डाला गया' और रंगते हुए 'रंगा गया'-ऐसा कहा जाता है।(भगवान् फरमाते हैं) हे गौतम ! इसी प्रकार जो साधु या साध्वी, आराधना करने के लिये तैयार हुआ है, 'वह आराधक है, विराधक नहीं'—ऐसा कहा जाता है ॥३३३॥

भगवन् ! जलते हुए दीपकमें क्या जलता है ? क्या दीपक जलता है, दीप-यष्टि (दीवी—दीवट) जलती है, वत्ती जलती है, तेल जलता है, दीप-चम्पक अर्थात् दीपकका ढक्कन जलता है, या ज्योति (दीपशिखा) जलती है ? गौतम ! दीप नहीं जलता, यावत् दीपक का ढक्कन भी नहीं जलता, परन्तु ज्योति (दीप-शिखा) जलती है। भगवन् ! जलते हुए घरमें क्या जलता है ? क्या घर जलता है, भींत जलती है, टट्टी (खसखस आदि की टाटी या पतली दीवार) जलती है, धारण (मुख्य स्तम्भ) जलता है, बलहरण (मुख्य स्तम्भ के ऊपर रहने वाली लकड़ी—लम्बा काष्ठ) जलता है, क्या बांस जलते हैं, मल्ल (भींतके आधारभूत स्तम्भ) जलते हैं, वर्ग (वांस आदिके बन्धनभूत छाल) जलते हैं, छित्वर (बांस आदि को ढकने के लिये डाली हुई चटाई) जलते हैं, छादन (दर्भादि युक्त पटल)जलता है, या अग्नि जलती है ? गौतम ! घर नहीं जलता, भींत नहीं जलती, यावत् छादन नहीं जलता, किन्तु अग्नि जलती है ॥३३४॥

भगवन् ! एक जीव दूसरे के एक औदारिक शरीर की अपेक्षा कितनी क्रिया वाला होता है ? गौतम ! कदाचित् तीन क्रिया वाला, कदाचित् चार क्रिया वाला और कदाचित् पांच क्रिया वाला होता है। तथा कदाचित् अक्रिय (क्रिया-रहित) भी होता है। भगवन् ! एक नैरयिक जीव दूसरे के एक औदारिक शरीर की अपेक्षा कितनी क्रिया वाला होता है ? गौतम ! कदाचित् तीन क्रिया वाला, कदाचित् चार क्रिया वाला और कदाचित् पांच क्रिया वाला होता है। भगवन् ! एक असुरकुमार दूसरे के एक औदारिक शरीर की अपेक्षा कितनी क्रिया वाला होता है ? गौतम ! पूर्व कथितानुसार कदाचित् तीन क्रिया वाला, कदाचित् चार क्रिया वाला और कदाचित् पांच क्रिया वाला होता है। इसी प्रकार यावत् वैमानिक देवों तक जानना चाहिये। परन्तु मनुष्य का कथन औघिक जीव की तरह जानना चाहिये।

भगवन् ! एक जीव दूसरे जीवों के औदारिक शरीरोंकी अपेक्षा कितनी क्रिया वाला होता है ? गौतम ! कदाचित् तीन क्रिया वाला, कदाचित् चार क्रिया वाला और कदाचित् पांच क्रिया वाला होता है। तथा कदाचित् अक्रिय (क्रिया-रहित) भी होता है। भगवन् ! एक नैरयिक जीव दूसरे जीवोंके औदारिक शरीरोंकी अपेक्षा कितनी क्रिया वाला होता है ? गौतम ! जिस प्रकार प्रथम दण्डक कहा गया है, उसी प्रकार सभी दण्डक कहने चाहियें, यावत् वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिये। परन्तु मनुष्योंका कथन औधिक जीवोंकी तरह जानना चाहिये।

भगवन् ! बहुतसे जीव दूसरेके एक औदारिक शरीरकी अपेक्षा कितनी क्रिया वाले होते हैं ? गौतम ! कदाचित् तीन क्रिया वाले, कदाचित् चार क्रिया वाले और कदाचित् पांच क्रिया वाले होते हैं, तथा कदाचित् अक्रिय होते हैं। भगवन् ! बहुत से नैरयिक जीव दूसरेके एक औदारिक शरीरकी अपेक्षा कितनी क्रिया वाले होते हैं ? गौतम ! जिस प्रकार प्रथम दण्डक कहा, उसी प्रकार यावत् वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिये। परन्तु मनुष्योंका कथन औधिक जीवोंकी तरह कहना चाहिये। भगवन् ! बहुत जीव दूसरे जीवोंके औदारिक शरीरों की अपेक्षा कितनी क्रिया वाले होते हैं ? गौतम ! तीन क्रिया वाले भी, चार क्रिया वाले भी और पांच क्रिया वाले भी होते हैं तथा अक्रिय भी होते हैं। भगवन् ! बहुत नैर-यिक जीव दूसरे जीवोंके औदारिक शरीरोंकी अपेक्षा कितनी क्रिया वाले होते हैं ? गौतम ! तीन क्रिया वाले भी, चार क्रिया वाले भी और पांच क्रिया वाले भी होते हैं। इस प्रकार यावत् वैमानिक पर्यन्त जानना चाहिये। परन्तु मनुष्यों का कथन इसोके औधिक जीवोंकी तरह जानना चाहिये।

भगवन् ! एक जीव दूसरे एक जीव के वैक्रिय शरीर की अपेक्षा कितनी क्रिया वाला होता है ? गौतम ! कदाचित् तीन क्रिया वाला और कदाचित् चार क्रिया वाला होता है तथा कदाचित् अक्रिय होता है। भगवन् ! एक नैरयिक जीव दूसरे एक जीवके वैक्रिय शरीर की अपेक्षा कितनी क्रिया वाला होता है ? गौतम ! कदाचित् तीन क्रिया वाला और कदाचित् चार क्रिया वाला होता है। इस प्रकार यावत् वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिये। किन्तु मनुष्य का कथन औधिक जीव की तरह कहना चाहिये। जिस तरह औदारिक शरीरके चार दंडक कहे, उसी प्रकार वैक्रिय शरीरके भी चार दण्डक कहने चाहियें। परन्तु उसमें पांचवीं क्रिया का कथन नहीं करना चाहिये। शेष सभी पूर्व की तरह कहना चाहिये। जिस प्रकार वैक्रिय शरीर का कथन किया गया है, उसी प्रकार आहारक, तैजस और कार्मण शरीरका भी कथन करना चाहिये। प्रत्येकके चार चार दण्डक कहने चाहियें। 'यावत् भगवन् ! वैमानिक देव कार्मण शरीरोंकी अपेक्षा कितनी

क्रिया वाले होते हैं ? गौतम ! तीन क्रिया वाले भी और चार क्रिया वाले भी होते हैं ।' यहां तक कहना चाहिये । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है'''॥३३५॥

॥ आठवें शतकका छठा उद्देशक समाप्त ॥

—०—

शतक ८ उद्देशक ७

उस काल उस समयमें राजगृह नामक नगर था ।(वर्णन करना चाहिये ।) वहां गुणशीलक नामक उद्यान था (वर्णन) । यावत् पृथ्वी-शिलापट्टक था । उस गुणशीलक बगीचे के आसपास–न बहुत दूर, न बहुत निकट, बहुत से अन्यतीर्थिक रहते थे । उस काल उस समयमें श्रमण भगवान् महावीर स्वामी धर्मतीर्थ की स्थापना करने वाले यावत् वहां समवसरे (पधारे)यावत् धर्मोपदेश सुनकर परिषद् वापिस चली गई । उस काल उस समयमें श्रमण भगवान् महावीर स्वामीके बहुत-से शिष्य स्थविर भगवन्त जाति-संपन्न कुलसम्पन्न इत्यादि दूसरे शतक में वर्णित गुणोंसे युक्त यावत् जीवनकी आशा और मरणके भयसे रहित थे । वे श्रमण भगवान् महावीर स्वामीके पास न अति दूर न बहुत निकट, ऊर्ध्व-जानु (घुटने खड़े रखकर), अधो-सिर (मस्तक को कुछ झुकाकर), ध्यान-कोष्ठोपगत होकर संयम और तप द्वारा अपनी आत्मा को भावित करते हुए यावत् विचरते थे ।

तब वे अन्यतीर्थिक जहां स्थविर भगवन्त थे वहां आये । वहां आकर उन्होंने स्थविर भगवन्तोंसे इस प्रकार कहा–'हे आर्यो ! तुम त्रिविध-त्रिविध (तीन करण तीन योगसे) असंयत, अविरत, अप्रतिहत, अप्रत्याख्यातपाप-कर्म वाले हो ।' इत्यादि । सातवें शतकके दूसरे उद्देशक के कथनानुसार कहा । यावत् तुम एकांत बाल हो ।

यह सुनकर उन स्थविर भगवन्तों ने उन अन्यतीर्थिकोंसे इस प्रकार पूछा–'हे आर्यो ! हम किस कारण त्रिविध-त्रिविध असंयत अविरत यावत् एकान्त बाल हैं ?' तब उन अन्यतीर्थिकोंने उन स्थविर भगवन्तोंसे इस प्रकार कहा—'हे आर्यो ! तुम अदत्त पदार्थ ग्रहण करते हो, अदत्त खाते हो और अदत्तकी अनुमति देते हो । इस प्रकार अदत्तका ग्रहण करते हुए, अदत्त खाते हुए और अदत्तकी अनुमति देते हुए तुम त्रिविध-त्रिविध असंयत, अविरत यावत् एकान्त बाल हो ।'

तब उन स्थविर भगवन्तों ने उन अन्यतीर्थिकोंसे इस प्रकार पूछा—'हे आर्यो ! हम किस प्रकार अदत्तका ग्रहण करते हैं, अदत्तका भोजन करते हैं और अदत्तकी अनुमति देते हैं, जिससे कि अदत्तका ग्रहण करते हुए अदत्त खाते

हुए और अदत्तकी अनुमति देते हुए हम त्रिविध-त्रिविध असंयत, अविरत यावत् एकान्त बाल हैं ?'

उन अन्यतीर्थिकोंने उन स्थविर भगवन्तोंसे इस प्रकार कहा— हे आर्यो ! आपके मतमें दिया जाता हुआ पदार्थ 'नहीं दिया गया,' ग्रहण किया जाता हुआ 'ग्रहण नहीं किया गया' और पात्रमें डाली जाती हुई वस्तु 'नहीं डाली गई'-ऐसा कथन है, इसलिए आर्यो ! आपको दिया जाता हुआ पदार्थ जब तक पात्रमें नहीं पड़ा, तब तक बीचमें से ही कोई उसका अपहरण करले, तो वह उस गृहपतिके पदार्थका अपहरण हुआ'—ऐसा आप कहते हैं, परन्तु 'आपके पदार्थका अपहरण हुआ'—ऐसा नहीं कहते। इसलिये आप अदत्तका ग्रहण करते हो यावत् अदत्तकी अनुमति देते हो और अदत्तका ग्रहण करते हुए यावत् एकान्त बाल हो।

यह सुनकर उन स्थविर भगवन्तोंने उन अन्यतीर्थिकोंसे इस प्रकार कहा कि 'आर्यो ! हम अदत्तका ग्रहण नहीं करते, अदत्त आहार नहीं करते और अदत्त की अनुमति भी नहीं देते।' आर्यो ! हम दत्त (स्वामी द्वारा दिए हुए) पदार्थको ग्रहण करते हैं, दत्तका आहार करते हैं और दत्तकी अनुमति देते हैं। इसलिए दत्तका ग्रहण करते हुए, दत्तका आहार करते हुए और दत्तकी अनुमति देते हुए हम त्रिविध-त्रिविध संयत, विरत, प्रतिहत-प्रत्याख्यातपापकर्म वाले हैं। इस प्रकार सातवें शतकके दूसरे उद्देशकके कथनानुसार यावत् हम एकान्त पण्डित हैं।'

तब उन अन्यतीर्थिकोंने उन स्थविर भगवन्तोंसे इस प्रकार कहा—'हे आर्यो ! तुम किस प्रकार दत्तका ग्रहण करते हो, यावत् दत्तकी अनुमति देते हो, जिससे दत्तका ग्रहण करते हुए यावत् तुम एकान्त पण्डित हो ?' तब उन स्थविर भगवन्तोंने उन अन्यतीर्थिकोंसे इस प्रकार कहा—हे आर्यो ! हमारे सिद्धान्त में—दिया जाता हुआ पदार्थ 'दिया गया,' ग्रहण किया जाता हुआ 'ग्रहण किया गया' और पात्रमें डाला जाता हुआ 'डाला गया' कहलाता है। इसलिये आर्यो ! हमको दिया जाता हुआ पदार्थ जब तक हमारे पात्रमें नहीं पड़ा है, तब तक बीचमें ही कोई व्यक्ति उसका अपहरण करले, तो वह पदार्थ हमारा अपहृत हुआ कहलाता है, किन्तु वह गृहस्थका पदार्थ अपहृत हुआ—ऐसा नहीं कहलाता। इसलिये हम दत्त का ग्रहण करते हैं, दत्तका आहार करते हैं और दत्तकी अनुमति देते हैं। इस प्रकार दत्तका ग्रहण करते हुए यावत् दत्तकी अनुमति देते हुए हम त्रिविध-त्रिविध संयत यावत् एकान्त पण्डित हैं। हे आर्यो ! तुम स्वयं त्रिविध-त्रिविध असंयत यावत् एकान्त बाल हो।

तदनन्तर उन अन्यतीर्थिकोंने उन स्थविर भगवन्तोंसे इस प्रकार कहा कि 'आर्यो ! हम किस कारण त्रिविध-त्रिविध असंयत यावत् एकान्त बाल हैं ?' उन स्थविर भगवन्तोंने उन अन्यतीर्थिकोंसे इस प्रकार कहा कि 'आर्यो ! तुम

अदत्तका ग्रहण करते हो, अदत्तका आहार करते हो और अदत्तकी अनुमति देते हो। इसलिये अदत्तका ग्रहण करते हुए तुम यावत् एकान्त बाल हो।'

तब उन अन्यतीर्थिकोंने उन स्थविर भगवन्तोंसे इस प्रकार पूछा—आर्यो! हम किस कारण अदत्तका ग्रहण करते हैं यावत् एकान्त बाल हैं? उन स्थविर भगवन्तोंने उन अन्यतीर्थिकोंसे इस प्रकार कहा—'हे आर्यो! तुम्हारे मतमें दिया जाता हुआ पदार्थ 'नहीं दिया गया', इत्यादि पूर्वोक्त सारा वर्णन कहना चाहिये। यावत् वह पदार्थ गृहस्थका है, तुम्हारा नहीं। इसलिये तुम अदत्तका ग्रहण करते हो यावत् पूर्वोक्त प्रकारसे तुम एकांत बाल हो।

यह सुनकर उन अन्यतीर्थिकोंने उन स्थविर भगवन्तोंसे इस प्रकार कहा—आर्यो! तुम त्रिविध-त्रिविध असंयत यावत् एकांत बाल हो। तब उन स्थविर भगवन्तोंने अन्यतीर्थिकोंसे इस प्रकार पूछा—आर्यो! हम किस कारणसे त्रिविध-त्रिविध असंयत यावत् एकांत बाल हैं? तब उन अन्यतीर्थिकोंने उन स्थविर भगवन्तोंसे इस प्रकार कहा—आर्यो! चलते हुए तुम पृथ्वीकायिक जीवोंको दबाते हो, मारते हो, पादाभिघात करते हो, भूमिके साथ उन्हें श्लिष्ट करते हो, संहत (एकत्रित) करते हो, संघट्टित करते हो, परितापित करते हो, क्लांत करते हो, मारणान्तिक कष्ट देते हो, उपद्रवित करते हो (मार देते हो), इस प्रकार पृथ्वीकायिक जीवोंको दबाते हुए यावत् मारते हुए तुम त्रिविध-त्रिविध असंयत, अविरत यावत् एकान्त बाल हो।

तब उन स्थविर भगवन्तोंने उन अन्यतीर्थिकोंसे इस प्रकार कहा—'आर्यो! चलते हुए हम पृथ्वीकायिक जीवोंको दबाते नहीं, हनते नहीं, यावत् मारते नहीं। आर्यो! चलते हुए हम काय अर्थात् शरीरके लघुनीत, बड़ी नीत आदि कार्यके लिये, योगके लिये अर्थात् ग्लानादिककी सेवाके लिये और ऋत (सत्य) के लिये अर्थात् अप्कायादि जीवरक्षणरूप संयमके लिये एक स्थलसे दूसरे स्थल पर जाते हैं, एक प्रदेशसे दूसरे प्रदेशमें जाते हैं, इस प्रकार एक स्थलसे दूसरे स्थल पर और एक प्रदेशसे दूसरे प्रदेशमें जाते हुए हम पृथ्वीकायिक जीवोंको दबाते नहीं, उनका हनन नहीं करते यावत् उनको मारते नहीं, अतः पृथ्वीकायिक जीवोंको नहीं दबाते हुए, नहीं हनते हुए यावत् नहीं मारते हुए हम त्रिविध-त्रिविध संयत, विरत यावत् एकांत पण्डित हैं। किन्तु आर्यो! तुम स्वयं त्रिविध-त्रिविध असंयत, अविरत यावत् एकांत बाल हो।'

तब उन अन्यतीर्थिकोंने उन स्थविर भगवन्तोंसे इस प्रकार कहा—'आर्यो! किस कारण हम त्रिविध-त्रिविध असंयत, अविरत यावत् एकान्त बाल हैं?' तब उन स्थविर भगवन्तोंने उन अन्यतीर्थिकोंसे इस प्रकार कहा—'आर्यो! चलते हुए तुम पृथ्वीकायिक जीवोंको दबाते हो यावत् मारते हो। इसलिये पृथ्वीकायिक

जीवोंको दबाते हुए यावत् मारते हुए तुम त्रिविध-त्रिविध असंयत, अविरत यावत् एकान्त बाल हो।' तब उन अन्यतीर्थिकों ने उन स्थविर भगवन्तों से इस प्रकार कहा—'आर्यो! तुम्हारे मत में 'गच्छन्' (जाता हुआ) 'अगत' (नहीं गया) कहलाता है। जो उलंघन किया जाता हो, वह 'उलंघन नहीं किया गया'—ऐसा कहलाता है और राजगृह नगरको प्राप्त करनेकी इच्छा वाला पुरुष 'असंप्राप्त' (प्राप्त नहीं किया हुआ) कहलाता है।' तब उन स्थविर भगवन्तों ने उन अन्य-तीर्थिकों से इस प्रकार कहा—आर्यो! हमारे मत में गच्छन् अगत नहीं कहलाता। व्यतिक्रम्यमाण (उलंघन किया जाता हुआ) 'अव्यतिक्रान्त' (उलंघन नहीं किया) नहीं कहलाता और राजगृह नगरको प्राप्त करनेकी इच्छा वाला व्यक्ति असंप्राप्त नहीं कहलाता, किन्तु आर्यो! हमारे मत में 'गच्छन्' गत, व्यतिक्रम्यमाण 'व्यति-क्रान्त' और राजगृह नगरको प्राप्त करने की इच्छा वाला व्यक्ति 'संप्राप्त' कह-लाता है। आर्यो! तुम्हारे ही मत में 'गच्छन्' 'अगत,' व्यतिक्रम्यमाण 'अव्यति-क्रान्त' और राजगृह नगरको प्राप्त करनेकी इच्छा वाला 'असंप्राप्त' कहलाता है। इस प्रकार उन स्थविर भगवन्तोंने उन अन्यतीर्थिकों को निरुत्तर किया, निरुत्तर करके उन्होंने 'गति-प्रपात' नामक अध्ययन प्ररूपित किया ॥३३६॥

भगवन्! गति-प्रपात कितने प्रकारका कहा गया है? गौतम! गति-प्रपात पांच प्रकार का कहा गया है। यथा—१ प्रयोग गति, २ तत गति, ३ बन्धन छेदन गति, ४ उपपात गति और ५ विहायोगति। यहां से प्रारम्भ करके प्रज्ञापना सूत्रका सोलहवां प्रयोग पद सम्पूर्ण कहना चाहिये। यावत् 'यह विहायोगतिका वर्णन हुआ'—वहां तक कहना चाहिये। हे भगवन्! यह इसी प्रकार है।······ऐसा कहकर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं ॥३३७॥

॥ आठवें शतकका सातवां उद्देशक समाप्त ॥

—०—

शतक ८ उद्देशक ८

राजगृह नगरमें गौतमस्वामीने यावत् इस प्रकार पूछा—भगवन्! गुरु महाराजकी अपेक्षा कितने प्रत्यनीक (द्वेषी) कहे गये हैं? गौतम! तीन प्रत्यनीक कहे गये हैं। यथा—१ आचार्य प्रत्यनीक, २ उपाध्याय प्रत्यनीक और ३ स्थविर प्रत्यनीक। भगवन्! गतिकी अपेक्षा कितने प्रत्यनीक कहे गये हैं? गौतम! तीन प्रत्यनीक कहे गये हैं। यथा—१ इहलोक प्रत्यनीक, २ परलोकप्रत्यनीक और ३ उभयलोकप्रत्यनीक। भगवन्! समूहकी अपेक्षा कितने प्रत्यनीक कहे गये हैं? गौतम! तीन प्रत्यनीक कहे गये हैं। यथा—१ कुल प्रत्यनीक, २ गण प्रत्यनीक और ३ संघ प्रत्यनीक। भगवन्! अनुकम्पाकी अपेक्षा कितने प्रत्यनीक कहे गये हैं?

गौतम ! तीन प्रत्यनीक कहे गये हैं। यथा—१ तपस्वी प्रत्यनीक, २ ग्लान प्रत्यनीक और ३ शैक्ष प्रत्यनीक। भगवन् ! श्रुतकी अपेक्षा कितने प्रत्यनीक कहे गये हैं ? गौतम ! तीन प्रत्यनीक कहे गये हैं। यथा—१ सूत्रप्रत्यनीक, २ अर्थप्रत्यनीक और ३ तदुभयप्रत्यनीक। भगवन् ! भावकी अपेक्षा कितने प्रत्यनीक कहे गये हैं ? गौतम ! तीन प्रत्यनीक कहे गये हैं। यथा—१ ज्ञानप्रत्यनीक, २ दर्शनप्रत्यनीक और ३ चारित्रप्रत्यनीक ॥३३८॥

भगवन् ! व्यवहार कितने प्रकारके कहे गये हैं ? गौतम ! व्यवहार पांच प्रकार के कहे गये हैं। यथा—१ आगम व्यवहार, २ श्रुतव्यवहार, ३ आज्ञा-व्यवहार, ४ धारणाव्यवहार और ५ जीतव्यवहार। इन पांच प्रकारके व्यवहारोंमें से जिसके पास आगम-व्यवहार हो, उसे आगम-व्यवहार से कार्य चलाना चाहिये। जिसके पास आगम-व्यवहार न हो, उसे श्रुत-व्यवहारसे कार्य चलाना चाहिये। जिसके पास श्रुत-व्यवहार न हो, उसे आज्ञा-व्यवहार से कार्य चलाना चाहिये। जिसके पास आज्ञा-व्यवहार न हो, उसे धारणा-व्यवहारसे कार्य चलाना चाहिये। जिसके पास धारणा० न हो, उसे जीत-व्यवहारसे कार्य चलाना चाहिये। इस प्रकार इन पांच व्यवहारोंसे कार्य चलाना चाहिये। उपरोक्त रीतिके अनुसार आगम, श्रुत, आज्ञा, धारणा और जीत, इन व्यवहारों में से जिसके पास जो व्यवहार हो, उससे कार्य चलाना चाहिये। भगवन् ! आगम-बलिक श्रमण निर्ग्रन्थ क्या कहते हैं ? गौतम ! इन पांच प्रकार के व्यवहारों में से जिस समय जो व्यवहार हो, उससे अनिश्रोपश्रित (रागद्वेष के त्यागपूर्वक) भली प्रकारसे व्यवहार चलाता हुआ श्रमण-निर्ग्रन्थ आज्ञाका आराधक होता है ॥३३९॥

भगवन् ! बन्ध कितने प्रकार का कहा गया है ? गौतम ! बन्ध दो प्रकार का कहा गया है। यथा—ऐर्यापथिक बन्ध और साम्परायिक बन्ध। भगवन् ! ऐर्यापथिक बन्ध क्या नैरयिक बांधता है, तिर्यंच बांधता है, तिर्यंचणी (तिर्यंच स्त्री) बांधती है, मनुष्य बांधता है, मनुष्यणी बांधती है, देव बांधता है, या देवी बांधती है ? गौतम ! नैरयिक नहीं बांधता, तिर्यंच नहीं बांधता, तिर्यंचणी नहीं बांधती, देव नहीं बांधता और देवी भी नहीं बांधती। किन्तु पूर्व प्रतिपन्न की अपेक्षा मनुष्य और मनुष्यस्त्रियां बांधती हैं। प्रतिपद्यमानकी अपेक्षा (१) मनुष्य बांधता है, अथवा (२) मनुष्य-स्त्री बांधती है, अथवा (३) मनुष्य बांधते हैं, अथवा (४) मनुष्य-स्त्रियां बांधती हैं, अथवा (५) मनुष्य और मनुष्य-स्त्री बांधती है, अथवा (६) मनुष्य और मनुष्य-स्त्रियां बांधती हैं, अथवा (७) मनुष्य (बहुत मनुष्य) और मनुष्य-स्त्री बांधती है, अथवा (८) मनुष्य और मनुष्य-स्त्रियां बांधती हैं। भगवन् ! ऐर्यापथिक कर्म क्या (१) स्त्री बांधती है, (२) पुरुष बांधता है, (३) नपुंसक बांधता है, (४) स्त्रियां बांधती हैं, (५) पुरुष बांधते

हैं, (६) नपुंसक बांधते हैं, (७) या नोस्त्री-नोपुरुष-नोनपुंसक बांधता है ?—

गौतम ! स्त्री नहीं बांधती, पुरुष नहीं बांधता, नपुंसक नहीं बांधता, स्त्रियां नहीं बांधती, पुरुष नहीं बांधते और नपुंसक भी नहीं बांधते, किन्तु पूर्व-प्रतिपन्न की अपेक्षा वेद रहित जीव बांधते हैं। अथवा प्रतिपद्यमान की अपेक्षा वेद रहित जीव बांधता है अथवा वेद रहित जीव बांधते हैं।

भगवन् ! यदि वेद रहित एक जीव, या वेद रहित बहुत जीव, ऐर्यापथिक कर्म बांधते हैं, तो क्या (१) स्त्रीपश्चात्कृत (जो जीव गत काल में स्त्री था, अब वर्त्तमान काल में अवेदी हो गया है) जीव बांधता है, (२) पुरुषपश्चात्कृत (जो पहले पुरुष वेदी था किन्तु अब अवेदी है) जीव बांधता है, (३) नपुंसकपश्चात्कृत (जो पहले नपुंसक वेदी था, किन्तु अब अवेदी है) जीव बांधता है, (४) स्त्री-पश्चात्कृत जीव बांधते हैं, (५) पुरुषपश्चात्कृत जीव बांधते हैं, या (६) नपुंसक-पश्चात्कृत बांधते हैं, (७) अथवा एक स्त्री-पश्चात्कृत और एक पुरुष-पश्चात्कृत जीव बांधता है, अथवा (८) एक स्त्री-पश्चात्कृत जीव और बहुत पुरुष० जीव बांधते हैं, अथवा (९) बहुत स्त्री० और एक पुरुषपश्चात्कृत जीव बांधता है, अथवा (१०) बहुत स्त्री-पश्चात्कृत जीव और बहुत पुरुषपश्चात्कृत जीव बांधते हैं, अथवा (११) एक स्त्री-पश्चात्कृत जीव और एक नपुंसक-पश्चात्कृत जीव बांधता है, अथवा (१२) एक स्त्रीपश्चात्कृत जीव और बहुत नपुंसक-पश्चात्कृत जीव बांधते हैं, अथवा (१३) बहुत स्त्री-पश्चात्कृत जीव और एक नपुंसकपश्चात्कृत जीव बांधता है, अथवा (१४) बहुत स्त्री-पश्चात्कृत जीव और बहुत नपुंसकपश्चात्कृत जीव बांधते हैं, अथवा (१५) एक पुरुषपश्चात्-कृत जीव और एक नपुंसक-पश्चात्कृत जीव बांधता है, अथवा (१६) एक पुरुष-पश्चात्कृत जीव और बहुत नपुंसकपश्चात्कृत जीव बांधते हैं, अथवा (१७) बहुत पुरुषपश्चात्कृत जीव और एक नपुंसकपश्चात्कृत जीव बांधता है, अथवा (१८) बहुत पुरुषपश्चात्कृत जीव और बहुत नपुंसकपश्चात्कृत जीव बांधते हैं, अथवा (१९) एक स्त्रीपश्चात्कृत जीव, एक पुरुषपश्चात्कृत जीव और एक नपुंसकपश्चात्कृत जीव बांधता है अथवा (२०) एक स्त्रीपश्चात्कृत जीव, एक पुरुष-पश्चात्कृत जीव और बहुत नपुंसक-पश्चात्कृत जीव बांधते हैं, अथवा (२१) एक स्त्री-पश्चात्कृत जीव, बहुत-पुरुषपश्चात्कृत जीव और एक नपुंसक-पश्चात्-कृत जीव बांधता है, अथवा (२२) एक स्त्री-पश्चात्कृत जीव, बहुत पुरुष-पश्चात्-कृत जीव और बहुत नपुंसक-पश्चात्कृत जीव बांधते हैं, अथवा (२३) बहुत स्त्री-पश्चात्कृत जीव, एक पुरुष-पश्चात्कृत जीव और एक नपुंसक-पश्चात्कृत जीव बांधता है, अथवा (२४) बहुत स्त्री-पश्चात्कृत जीव, एक पुरुषपश्चात्कृत जीव और बहुत नपुंसकपश्चात्कृत जीव बांधते हैं, अथवा (२५) बहुत स्त्री-पश्चात्कृत

जीव, बहुत पुरुषपश्चात्कृत जीव और एक नपुंसकपश्चात्कृत जीव बांधता है, अथवा (२६) बहुत स्त्रीपश्चात्कृत जीव, बहुत पुरुषपश्चात्कृत जीव और बहुत नपुंसकपश्चात्कृत जीव बांधते हैं ?—

गौतम ! (१) स्त्रीपश्चात्कृत जीव भी बांधता है, (२) पुरुषपश्चात्कृत जीव भी बांधता है, (३) नपुंसक-पश्चात्कृत जीव भी बांधता है, (४) स्त्री-पश्चात्कृत जीव भी बांधते हैं, (५) पुरुषपश्चात्कृत जीव भी बांधते हैं, (६) नपुंसकपश्चात्कृत जीव भी बांधते हैं, अथवा (७) एक स्त्रीपश्चात्कृत जीव और एक पुरुष-पश्चात्कृत जीव भी बांधता है, अथवा यावत् बहुत स्त्रीपश्चात्कृत जीव, बहुत पुरुषपश्चात्कृत जीव और बहुत नपुंसकपश्चात्कृत जीव भी बांधते हैं, इस प्रकार प्रश्न में जो छब्बीस भंग कहे गये हैं, उत्तर में भी वे छब्बीस भंग ज्यों के त्यों कहने चाहियें ।

भगवन् ! (१) क्या जीव ने ऐर्यापथिक कर्म बांधा, बांधता है और बांधेगा, (२) बांधा, बांधता है, नहीं बांधेगा, (३) बांधा, नहीं बांधता है, बांधेगा, (४) बांधा, नहीं बांधता है, नहीं बांधेगा, (५) नहीं बांधा, बांधता है, बांधेगा, (६) नहीं बांधा, बांधता है, नहीं बांधेगा और (७) नहीं बांधा, नहीं बांधता है, नहीं बांधेगा ? गौतम ! भवाकर्षकी अपेक्षा किसी एक जीव ने बांधा, बांधता है और बांधेगा । किसी एक जीव ने बांधा, बांधता है, नहीं बांधेगा । यावत् किसी एक जीव ने नहीं बांधा, नहीं बांधता है, नहीं बांधेगा । इस प्रकार उपरोक्त आठों भंग यहां कहने चाहियें । ग्रहणाकर्ष की अपेक्षा किसी एक जीवने बांधा, बांधता है, बांधेगा । यावत् किसी एक जीवने नहीं बांधा, बांधता है, बांधेगा । किन्तु यहां छठा भंग (नहीं बांधा, बांधता है, नहीं बांधेगा०) नहीं कहना चाहिये । किसी एक जीव ने नहीं बांधा, नहीं बांधता है, बांधेगा । किसी एक जीव ने नहीं बांधा, नहीं बांधता है और नहीं बांधेगा ।

भगवन् ! जीव ऐर्यापथिक कर्म क्या सादि-सपर्यवसित बांधता है या सादि-अपर्यवसित बांधता है, या अनादि-सपर्यवसित बांधता है, या अनादि-अपर्यवसित बांधता है ? गौतम ! सादि-सपर्यवसित बांधता है, किन्तु सादि-अपर्यवसित नहीं बांधता, अनादि-सपर्यवसित नहीं बांधता और अनादि-अपर्यवसित भी नहीं बांधता । भगवन् ! जीव ऐर्यापथिक कर्म देश से आत्मा के देश को बांधता है, देश से सर्व को बांधता है, सर्व से देश को बांधता है, या सर्व से सर्व को बांधता है ? गौतम ! देश से देश को नहीं बांधता, देश से सर्व को नहीं बांधता, सर्वसे देश को नहीं बांधता, किन्तु सर्व से सर्व को बांधता है ।।३४०।।

भगवन् ! साम्परायिक कर्म नैरयिक बांधता है, तिर्यञ्च बांधता है, तिर्यंचणी बांधती है, मनुष्य बांधता है, मनुष्यणी बांधती है, देव बांधता है, या देवी बांधती

है ? गौतम ! नैरयिक भी बांधता है, तिर्यञ्च भी बांधता है, तिर्यंचिनी भी बांधती है, मनुष्य भी बांधता है, मानुषी भी बांधती है, देव भी बांधता है और देवी भी बांधती है। भगवन् ! साम्परायिक कर्म क्या स्त्री बांधती है, पुरुष बांधता है, यावत् नोस्त्री-नोपुरुष-नोनपुंसक बांधता है ? गौतम ! स्त्री भी बांधती है, पुरुष भी बांधता है, नपुंसक भी बांधता है, अथवा बहुत स्त्रियां भी बांधती हैं, बहुत पुरुष भी बांधते हैं और बहुत नपुंसक भी बांधते हैं। अथवा ये सब और अवेदी एक जीव भी बांधता है अथवा ये सब और अवेदी बहुत जीव भी बांधते हैं।

भगवन् ! यदि वेद रहित एक जीव और वेद रहित बहुत जीव साम्परायिककर्म बांधते हैं, तो क्या स्त्री-पश्चात्कृत जीव बांधता है, पुरुष-पश्चात्कृत जीव बांधता है, इत्यादि प्रश्न ? गौतम ! जिस प्रकार ऐर्यापथिक कर्मबन्ध के विषय में छब्बीस भंग कहे हैं, उसी प्रकार यहां भी कहना चाहिये। यावत् 'बहुत स्त्री-पश्चात्कृत जीव, बहुत पुरुष-पश्चात्कृत जीव और बहुत नपुंसक-पश्चात्कृत जीव बांधते हैं,'-यहां तक कहना चाहिये।

भगवन् ! १ किसी जीव ने साम्परायिक कर्म बांधा, बांधता है और बांधेगा ? २ बांधा, बांधता है और नहीं बांधेगा ? ३ बांधा, नहीं बांधता है और बांधेगा और ४ बांधा, नहीं बांधता है और नहीं बांधेगा ? गौतम ! १ कितने ही जीवों ने बांधा है, बांधते हैं और बांधेगें, २ कितने ही जीवों ने बांधा है, बांधते हैं और नहीं बांधेंगे, ३ कितने ही जीवों ने बांधा है, नहीं बांध रहे और बांधेंगे, ४ कितने ही जीवों ने बांधा है, नहीं बांध रहे और नहीं बांधेंगे।

भगवन् ! साम्परायिक कर्म सादि-सपर्यवसित बांधते हैं ? इत्यादि प्रश्न। गौतम ! सादि-सपर्यवसित बांधते हैं, अनादि-सपर्यवसित बांधते हैं, अनादि-अपर्यवसित बांधते हैं, परन्तु सादि-अपर्यवसित नहीं बांधते। भगवन् ! साम्परायिक कर्म देश से आत्म-देश को बांधते हैं ? इत्यादि प्रश्न ? गौतम ! जिस प्रकार ऐर्यापथिक कर्म के सम्बन्ध में कहा गया है, उसी प्रकार साम्परायिक कर्म के विषय में भी जान लेना चाहिये। यावत् सर्वसे सर्वको बांधते हैं ॥३४१॥

भगवन् ! कर्म प्रकृतियां कितनी कही गई हैं ? गौतम ! कर्म प्रकृतियां आठ
कही गई हैं। यथा-ज्ञानावरणीय, यावत् अन्तराय। भगवन् ! परीषह कितने कहे
गये हैं ? गौतम ! परीषह बाईस कहे गये हैं। यथा-१ क्षुधा परीषह, २ पिपासा
परीषह यावत्(३ शीत परीषह,४ उष्ण परीषह, ५ दंशमशक परीषह, ६ अचेल परी-
षह ७ अरति परीषह, ८ स्त्री परीषह, ९ चर्या परीषह, १० निसीहिया (निषद्या)
परीषह, ११ शय्या परीषह, १२ आक्रोश परीषह १३ वध परीषह, १४ याचना
परीषह, १५ अलाभ परीषह, १६ रोग परीषह, १७ तृणस्पर्श परीषह, १८ जल्ल
परीषह, १९ सत्कारपुरस्कार परीषह, २० प्रज्ञा परीषह, २१ अज्ञान परीषह)

२२ दर्शनपरीषह। भगवन् ! कितनी कर्मप्रकृतियों में इन बाईस परीषहोंका समवतार (समावेश) होता है ? गौतम ! चार कर्म-प्रकृतियोंमें बाईस परीषहोंका समवतार होता है। यथा–ज्ञानावरणीय, वेदनीय, मोहनीय और अन्तराय।

भगवन् ! ज्ञानावरणीय कर्ममें कितने परीषहोंका समवतार होता है ? गौतम ! दो परीषहोंका समवतार होता है। यथा–प्रज्ञा परीषह और ज्ञान परीषह। भगवन् ! वेदनीय कर्ममें कितने परीषहोंका समवतार होता है ? गौतम ! वेदनीय कर्म में ग्यारह परीषहों का समवतार होता है। यथा–अनुक्रम से पहले के पांच परीषह (क्षुधा परीषह, पिपासा परीषह, शीत परीषह, उष्ण परीषह और दंशमशक परीषह), चर्या परीषह, शय्या परीषह, वध परीषह, रोग परीषह, तृणस्पर्श परीषह और जल्ल (मैल) परीषह। इन ग्यारह परीषहों का समवतार वेदनीय कर्म में होता है।

भगवन् ! दर्शन-मोहनीय कर्ममें कितने परीषहोंका समवतार होता है ? गौतम ! इसमें एक दर्शन परीषह का समवतार होता है। भगवन् ! चारित्र मोहनीय कर्म में कितने परीषहोंका समवतार होता है ? गौतम ! उसमें सात परीषहों का समवतार होता है। यथा–अरति परीषह, अचेल परीषह, स्त्री परीषह, निषद्या परीषह, याचना परीषह, आक्रोश परीषह और सत्कार-पुरस्कार परीषह। इन सात परीषहों का समवतार चारित्र-मोहनीय कर्म में होता है। भगवन् ! अन्तराय कर्म में कितने परीषहों का समवतार होता है ? गौतम ! एक अलाभ परीषह का समवतार होता है।

भगवन् ! सात प्रकारके कर्म बाँधने वाले जीवके कितने परीषह होते हैं ? गौतम ! उसके बाईस परीषह होते हैं, परन्तु वह जीव एक साथ बीस परीषहोंको वेदता है। क्योंकि जिस समय शीत परीषह वेदता है, उस समय उष्ण परीषह नहीं वेदता और जिस समय उष्ण परीषह वेदता है, उस समय शीत परीषह नहीं वेदता। जिस समय चर्या परीषह वेदता है, उस समय निषद्या परीषह नहीं वेदता और जिस समय निषद्या परीषह वेदता है, उस समय चर्या परीषह नहीं वेदता।

भगवन् ! आठ प्रकारके कर्मोंको बांधने वाले जीवके कितने परीषह कहे गये हैं ? गौतम ! बाईस परीषह कहे गये हैं। यथा–क्षुधा परीषह, पिपासा परीषह, शीत परीषह, दंशमशक परीषह यावत् अलाभ परीषह। किन्तु वह एक साथ बीस परीषहोंको वेदता है। जिस प्रकार सप्तविध -बंधकके विषयमें कहा है, उसी प्रकार अष्टविध बन्धकके विषयमें भी कहना चाहिये। भगवन् ! षड्-विध बन्धक सराग छद्मस्थके कितने परीषह कहे गये हैं ? गौतम ! चौदह परीषह कहे गये हैं,

किन्तु वह एक साथ बारह परीषह वेदता है। जिस समय शीत परीषह वेदता है, उस समय उष्ण परीषह नहीं वेदता और जिस समय उष्ण परीषह वेदता है, उस समय शीत परीषह नहीं वेदता। जिस समय चर्या परीषह वेदता है, उस समय शय्या परीषह नहीं वेदता और जिस समय शय्या परीषह वेदता है, उस समय चर्या परीषह नहीं वेदता।

भगवन्! एक-विध बन्धक वीतराग छद्मस्थ जीवके कितने परीषह कहे गये हैं? गौतम! षड्-विध बन्धक के समान चौदह परीषह कहे गये हैं, किन्तु वह एक साथ बारह परीषह वेदता है। जिस प्रकार षड्-विध बन्धकके विषयमें कहा है, उसी प्रकार एक-विध बन्धक वीतराग छद्मस्थके विषयमें भी कहना चाहिये।

भगवन्! एक-विध बन्धक सयोगी भवस्थ केवली के कितने परीषह कहे गये हैं? गौतम! ग्यारह परीषह कहे गए हैं, किन्तु एक साथ नौ परीषह वेदता है। शेष सारा कथन षड्-विध बन्धकके समान जानना चाहिये। भगवन्! अबन्धक अयोगी भवस्थ केवलीके कितने परीषह कहे गये हैं? गौतम! ग्यारह परीषह कहे गये हैं। किन्तु वह एक साथ नौ परीषह वेदता है। क्योंकि जिस समय शीत परीषह वेदता है,उस समय उष्ण परीषह नहीं वेदता और जिस समय उष्ण परीषह वेदता है, उस समय शीत परीषह नहीं वेदता। जिस समय चर्या परीषह वेदता है, उस समय शय्या परीषह नहीं वेदता और जिस समय शय्या परीषह वेदता है, उस समय चर्या परीषह नहीं वेदता ॥३४२॥

भगवन्! जम्बूद्वीप नामक द्वीपमें दो सूर्य उदयके समय दूर होते हुए भी निकट दिखाई देते हैं? मध्यान्हके समय निकट होते हुए भी दूर दिखाई देते हैं? और अस्त होनेके समय दूर होते हुए भी निकट दिखाई देते हैं? हां, गौतम! जम्बूद्वीप नामक द्वीपमें दो सूर्य उदयके समय दूर होते हुए भी निकट दिखाई देते हैं, इत्यादि। यावत् अस्त समय दूर होते हुए भी निकट दिखाई देते हैं।

भगवन्! जम्बूद्वीपमें दो सूर्य उदय के समय, मध्यान्हके समय और अस्तके समय सभी स्थानों पर ऊंचाईमें बराबर हैं? हां गौतम! जम्बूद्वीपमें रहे हुए दो सूर्य उदयके समय यावत् सभी स्थानों पर ऊंचाईमें बराबर हैं। भगवन्! यदि जम्बूद्वीपमें दो सूर्य उदयके समय, मध्यान्हके समय और अस्तके समय, सभी स्थानों पर ऊंचाईमें बराबर हैं, तो ऐसा किस कारण कहते हैं कि जम्बूद्वीपमें दो सूर्य उदयके समय दूर होते हुए भी निकट दिखाई देते हैं, यावत् अस्तके समय दूर होते हुए भी निकट दिखाई देते हैं? गौतम! लेश्या (तेज) के प्रतिघात से सूर्य उदयके समय दूर होते हुए भी निकट दिखाई देते हैं। मध्यान्हमें तेजके अभितापसे पास होते हुए भी दूर दिखाई देते हैं और अस्तके समय तेजके प्रतिघातसे दूर होते हुए भी निकट दिखाई देते हैं। इसलिए हे गौतम! मैं कहता हूं कि जम्बूद्वीपमें दो सूर्य

उदयके समय दूर होते हुए भी निकट दिखाई देते हैं, यावत् अस्तके समय दूर होते हुए भी निकट दिखाई देते हैं।

भगवन् ! जम्बूद्वीपमें दो सूर्य क्या अतीत क्षेत्रकी ओर जाते हैं, वर्तमान क्षेत्र की ओर जाते हैं, या अनागत क्षेत्र की ओर जाते हैं ? गौतम ! अतीत क्षेत्र की ओर नहीं जाते, अनागत क्षेत्र की ओर भी नहीं जाते, वर्त्तमान क्षेत्र की ओर जाते हैं। भगवन् ! जम्बूद्वीपमें दो सूर्य अतीत क्षेत्र को प्रकाशित करते हैं, वर्त्तमान क्षेत्र को प्रकाशित करते हैं, या अनागत क्षेत्र को प्रकाशित करते हैं ? गौतम ! अतीत क्षेत्र को प्रकाशित नहीं करते और न अनागत क्षेत्र को ही प्रकाशित करते हैं, वर्त्तमान क्षेत्र को प्रकाशित करते हैं।

भगवन् ! जम्बूद्वीप में दो सूर्य स्पृष्ट क्षेत्र को प्रकाशित करते हैं, या अस्पृष्ट क्षेत्र को प्रकाशित करते हैं ? गौतम ! वे स्पृष्ट क्षेत्र को प्रकाशित करते हैं, अस्पृष्ट क्षेत्र को प्रकाशित नहीं करते, यावत् नियमा छह दिशाओं को प्रकाशित करते हैं। भगवन् ! जम्बूद्वीपमें दो सूर्य अतीत क्षेत्रको उद्योतित करते हैं, इत्यादि प्रश्न। गौतम ! पूर्वोक्त प्रकार से जानना चाहिये। यावत् नियमसे छह दिशा को उद्योतित करते हैं। इसी प्रकार तपाते हैं। यावत् छह दिशा को नियमसे प्रकाशित करते हैं। भगवन् ! जम्बूद्वीप में सूर्यों की क्रिया क्या अतीत क्षेत्रमें की जाती है, वर्त्तमान क्षेत्रमें की जाती है अथवा अनागत क्षेत्रमें की जाती है ? गौतम ! अतीत क्षेत्र में क्रिया नहीं की जाती और न अनागत क्षेत्र में की जाती है बल्कि वर्त्तमान क्षेत्र में क्रिया की जाती है। भगवन् ! वे सूर्य स्पृष्ट क्रिया करते हैं, या अस्पृष्ट ? गौतम ! वे स्पृष्ट क्रिया करते हैं, अस्पृष्ट क्रिया नहीं करते, यावत् नियम से छह दिशा में स्पृष्ट क्रिया करते हैं।

भगवन् ! जम्बूद्वीप में सूर्य कितने ऊंचे क्षेत्र को तप्त करते हैं, कितने नीचे क्षेत्र को तप्त करते हैं और कितने तिर्च्छे क्षेत्र को तप्त करते हैं ? गौतम ! सौ योजन ऊंचे क्षेत्र को तप्त करते हैं, अठारह सौ (१८००) योजन नीचे क्षेत्र को तप्त करते हैं और सैंतालीस हजार दो सौ त्रेसठ योजन तथा एक योजन के इक्कीस बटा साठ भाग (४७२६३-२१/६०) तिर्च्छे क्षेत्र को तप्त करते हैं।

भगवन् ! मनुष्योत्तर पर्वत के भीतर जो चन्द्र, सूर्य, ग्रहगण, नक्षत्र और तारा रूप देव हैं, क्या वे ऊर्ध्वलोक में उत्पन्न हुए हैं ? गौतम ! जिस प्रकार जीवाभिगम सूत्र की तीसरी प्रतिपत्ति में कहा गया है, उसी प्रकार यहां भी कहना चाहिये। यावत् उनका 'उपपातविरह काल जघन्य एक समय और उत्कृष्ट छह मास है,' यहां तक कहना चाहिये। भगवन् ! मनुष्योत्तर पर्वत के बाहर जो चन्द्रादि देव हैं, वे ऊर्ध्वलोक में उत्पन्न हुए हैं ? गौतम ! जिस प्रकार जीवाभिगम सूत्र की तीसरी प्रतिपत्ति में कहा गया है, उसी प्रकार यहां भी कहना चाहिये। यावत्

भगवन्! इन्द्रस्थान कितने काल तक उपपात-विरहित कहा गया है? गौतम! जघन्य एक समय, उत्कृष्ट छह मास का विरह कहा गया है। अर्थात् एक इन्द्र के मरण (च्यवन) के पश्चात् जघन्य एक समय पश्चात् और उत्कृष्ट छह महीने के अनन्तर दूसरा इन्द्र उस स्थान पर उत्पन्न होता है। इतने काल तक इन्द्र-स्थान उपपात-विरहित होता है–यहां तक कहना चाहिये। हे भगवन्! यह इसी प्रकार है।···ऐसा कहकर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ॥३४३॥

॥ आठवें शतक का आठवां उद्देशक समाप्त ॥

शतक ८ उद्देशक ९

भगवन्! बन्ध कितने प्रकार का कहा गया है? गौतम! बन्ध दो प्रकार का कहा गया है। यथा–प्रयोग बन्ध और विस्रसा बन्ध ॥३४४॥

भगवन्! विस्रसा बन्ध कितने प्रकार का कहा गया है? गौतम! विस्रसा बन्ध दो प्रकार का कहा गया है। यथा–सादि विस्रसा बन्ध और अनादि विस्रसा बन्ध। भगवन्! अनादि विस्रसा बन्ध कितने प्रकार का कहा गया है? गौतम! अनादि विस्रसा बन्ध तीन प्रकार का कहा गया है। यथा–धर्मास्तिकाय का अन्योन्य अनादि विस्रसा बन्ध, अधर्मास्तिकाय का अन्योन्य अनादि विस्रसा बन्ध और आकाशास्तिकाय का अन्योन्य अनादि विस्रसा बन्ध।

भगवन्! धर्मास्तिकाय का अन्योन्य अनादि विस्रसा बन्ध, क्या देश बन्ध है, अथवा सर्व बन्ध है? गौतम! देश बन्ध है, सर्व बन्ध नहीं। इसी प्रकार अधर्मास्तिकायका अन्योन्य अनादि विस्रसा बन्ध और आकाशास्तिकाय का अन्योन्य अनादि विस्रसा बन्ध के विषय में भी जानना चाहिये अर्थात् ये भी देश बन्ध हैं, सर्वबन्ध नहीं। भगवन्! धर्मास्तिकायका अन्योन्य अनादि विस्रसा बन्ध कितने काल तक रहता है? गौतम! सर्वाद्धा अर्थात् सभी काल रहता है। इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय का अन्योन्य अनादि विस्रसा बन्ध और आकाशास्तिकाय का अन्योन्य अनादि विस्रसा बन्ध भी सर्व काल रहता है।

भगवन्! सादि विस्रसा बन्ध कितने प्रकार का कहा गया है? गौतम! तीन प्रकार का कहा गया है। यथा–बंधन-प्रत्ययिक, भाजन-प्रत्ययिक और परिणाम-प्रत्ययिक। भगवन्! बंधनप्रत्ययिक सादि विस्रसा बंध किसे कहते हैं? गौतम! परमाणु, द्विप्रदेशिक, त्रिप्रदेशिक यावत् दस प्रदेशिक, संख्यात प्रदेशिक, असंख्यात प्रदेशिक और अनन्त प्रदेशिक पुद्गल स्कन्धों का विषम स्निग्धता द्वारा, विषम रूक्षता द्वारा और विषम स्निग्धरूक्षता द्वारा बन्धनप्रत्ययिक बंध होता है, वह जघन्य एक समय और उत्कृष्ट असंख्य काल तक रहता है। इस प्रकार

वन्धनप्रत्ययिक बंध कहा गया है। भगवन्! भाजनप्रत्ययिक सादि विस्रसा बंध किसे कहते हैं? गौतम! पुरानी मदिरा, पुराना गुड़ और पुराने चावलों का भाजन-प्रत्ययिक सादि-विस्रसा बंध होता है। वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट संख्यात काल तक रहता है। यह भाजनप्रत्ययिक बंध कहा गया है। भगवन्! परिणाम-प्रत्ययिक सादि-विस्रसा बंध किसे कहते हैं? गौतम! बादलों का, अभ्रवृक्षों का यावत् अमोघों (सूर्यके उदय और अस्त के समय सूर्य की किरणों का एक प्रकार का आकार 'अमोघ' कहलाता है) आदि के नाम तीसरे शतक के सातवें उद्देशक में कहे गये हैं, उन सब का परिणाम प्रत्ययिक बंध होता है। वह बंध जघन्य एक समय और उत्कृष्ट छह मास तक रहता है। इस प्रकार परिणाम प्रत्ययिक बंध कहा गया है। यह सादि-विस्रसा बंध एवं विस्रसा बंध का कथन हुआ॥ ३४५॥

भगवन्! प्रयोग-बन्ध किसे कहते हैं? गौतम! प्रयोग बंध तीन प्रकार का कहा गया है। यथा—१ अनादि-अपर्यवसित २ सादि-अपर्यवसित और ३ सादि-सपर्यवसित। इनमें से जो अनादि-अपर्यवसित बंध है। वह जीव के मध्यके आठ प्रदेशों का होता है। उन आठ प्रदेशों में भी तीन तीन प्रदेशों का जो बंध है, वह अनादि-अपर्यवसित बंध है, शेष सभी प्रदेशों का सादि बंध है। सिद्ध जीवों के प्रदेशों का सादि-अपर्यवसित बंध है। सादि-सपर्यवसित बंध चार प्रकार का कहा गया है। यथा— आलापन बन्ध, आलीन बन्ध, शरीर बन्ध और शरीर प्रयोग बन्ध।

भगवन्! आलापन बन्ध किसे कहते हैं? गौतम! घास के भार, लकड़ी के भार, पत्तों के भार, पलाल के भार और बेल के भार, इन भारों को बेंत की लता, छाल, वरत्रा (मोटी रस्सी), रज्जु (रस्सी), बेल, कुश और डाभ आदि से बांधना— 'आलापन बन्ध' कहलाता है। यह जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट संख्यात काल तक रहता है। यह आलापन बन्ध कहा गया है।

भगवन्! आलीन बंध किसे कहते हैं? गौतम! आलीन बन्ध चार प्रकार का कहा गया है। यथा—१ श्लेषणा बंध, २ उच्चय बंध, ३ समुच्चय बंध और ४ संहनन बंध।

भगवन्! श्लेषणा बंध किसे कहते हैं? गौतम! शिखर, कुट्टिम (फर्श), स्तम्भ, प्रासाद, काष्ठ, चर्म, घड़ा, कपड़ा, चटाई आदि का चूना, मिट्टी, कर्दम (कीचड़), श्लेप (वज्र लेप), लाख, मोम इत्यादि श्लेषण द्रव्यों द्वारा जो बन्ध होता है, वह 'श्लेपण बन्ध' कहलाता है। यह जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट संख्यात काल तक रहता है। यह श्लेषणा बंध कहा गया है।

भगवन्! उच्चय बंध किसे कहते हैं? गौतम! तृण राशि, काष्ठ राशि, पत्र राशि, तुष राशि, भूसे का ढेर, उपलों (छाणों) का ढेर और कचरे का ढेर, इन

सभी का ऊंचे ढेर रूप से जो बंध होता है, उच्चय बंध कहते हैं। वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट संख्येय काल तक रहता है। इस प्रकार उच्चय बंध कहा गया है।

भगवन् ! समुच्चय बंध किसे कहते हैं ? गौतम ! कुआं, तालाव, नदी, द्रह, वापी, पुष्करिणी, दीर्घिका, गुंजालिका, सरोवर, सरोवरों की पंक्ति, बड़े सरोवरों की पंक्ति, बिलों की पंक्ति, देवकुल, सभा, प्रपा (प्याऊ), स्तूप, खाई, परिघा, दुर्ग (किला), कंगूरे, चरिक, द्वार, गोपुर, तोरण, प्रासाद (महल), घर, शरणस्थान, लेण (घर-विशेष), दूकान, शृंगाटकाकार मार्ग, त्रिक मार्ग, चतुष्क मार्ग, चत्वर मार्ग, चतुर्मुख मार्ग और राजमार्गादि का चूना, मिट्टी और वज्र-लेपादि के द्वारा समुच्चय-रूप से जो बंध होता है, उसे 'समुच्चय बंध' कहते हैं। उसकी स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट संख्येय काल की है। इस प्रकार यह समुच्चय बंध कहा गया है।

भगवन् ! संहनन बंध किसे कहते हैं ? गौतम ! संहनन बंध दो प्रकार का कहा गया है। यथा—देश संहनन बंध और सर्व संहनन बंध। भगवन् ! संहनन बंध किसे कहते हैं ? गौतम ! गाड़ी, रथ, यान (छोटी गाड़ी), युग्यवाहन (दो हाथ प्रमाण वेदिका सहित जम्पान—पालकी), गिल्लि (हाथी की अम्बाड़ी), थिल्लि (पलाण), शिविका (पालकी), स्यन्दमानी (वाहन विशेष), लोढी, लोह का कड़ा, कड़छी, (चम्मच,) आसन, शयन, स्तम्भ, मिट्टी के बर्तन, पात्र और नाना प्रकार के उपकरण इत्यादि पदार्थों के साथ जो सम्बन्ध होता है, उसे देश संहनन बंध कहते हैं। यह जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट संख्येय काल तक रहता है। इस प्रकार यह देश संहनन बंध कहा गया है।

भगवन् ! सर्व संहनन बंध किसे कहते हैं ? गौतम ! दूध और पानी की तरह मिल जाना—सर्व संहनन बंध कहलाता है। इस प्रकार सर्व संहनन बंध कहा गया है। यह आलीन बंध का कथन पूर्ण हुआ ॥३४६॥

भगवन् ! शरीर बंध कितने प्रकार का कहा गया है ? गौतम ! शरीर बंध दो प्रकार का कहा गया है। यथा—१ पूर्व-प्रयोग-प्रत्ययिक और २ प्रत्युत्पन्न-प्रयोग-प्रत्ययिक। भगवन् ! पूर्व-प्रयोग-प्रत्ययिक शरीर बंध किसे कहते हैं ? गौतम ! जहां जहां जिन कारणों से समुद्घात करते हुए नैरयिक जीवों का और संसारी सभी जीवों के जीव प्रदेशों का जो बंध होता है, उसे 'पूर्व-प्रयोग-प्रत्ययिक बंध' कहते हैं। यह पूर्व-प्रयोगप्रत्ययिक बंध है।

भगवन् ! प्रत्युत्पन्न-प्रयोग-प्रत्ययिक बंध किसे कहते हैं ? गौतम ! केवलीसमुद्घात द्वारा समुद्घात करते हुए और समुद्घात से वापिस निवृत्त होते हुए बीच में मन्थानावस्था में रहे हुए केवलज्ञानी अनगार के तैजस और कार्मण शरीरका

जो वंध होता है, उसे 'प्रत्युत्पन्न-प्रयोग-प्रत्ययिक बंध' कहते हैं। तैजस और कार्मण शरीर के बंध का क्या कारण है? उस समय में आत्म-प्रदेशों का संघात होता हैं, जिससे तैजस और कार्मण शरीर का वंध होता है। इस प्रकार यह प्रत्युत्पन्न-प्रयोग-प्रत्ययिक वंध कहा गया है। यह शरीर बंध का कथन पूर्ण हुआ।

भगवन्! शरीर-प्रयोग वंध कितने प्रकार का कहा गया है? गौतम! शरीर-प्रयोग बंध पांच प्रकार का कहा गया है। यथा–१ औदारिक शरीर प्रयोग वंध, २ वैक्रिय शरीर प्रयोग वंध, ३ आहारक शरीर प्रयोग वंध, ४ तैजस शरीर प्रयोगबन्ध और ५ कार्मण शरीर प्रयोगबंध। भगवन्! औदारिक शरीर प्रयोग वंध कितने प्रकार का कहा गया है? गौतम! औदारिक शरीर प्रयोग वंध पांच प्रकार का कहा गया है। यथा–एकेंद्रिय औदारिक शरीर प्रयोग वंध, वेइन्द्रिय औदारिक शरीर प्रयोग बंध यावत् पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर प्रयोग वंध।

भगवन्! एकेंद्रिय औदारिक शरीर प्रयोग बंध कितने प्रकार का कहा गया है? गौतम! पांच प्रकार का कहा गया है। यथा–पृथ्वीकायिक एकेंद्रिय औदारिक-शरीर प्रयोग-वंध इत्यादि। इस प्रकार इस अभिलाप द्वारा जिस प्रकार प्रज्ञापनासूत्र के इक्कीसवें 'अवगाहना संस्थान पद' में औदारिक शरीर के भेद कहे गये हैं, उसी प्रकार यहां भी कहना चाहिये। यावत् पर्याप्त गर्भज मनुष्य पञ्चेन्द्रिय औदारिक शरीर प्रयोग-बंध और अपर्याप्त गर्भज-मनुष्य पञ्चेंद्रिय औदारिक शरीर-प्रयोग-बंध तक कहना चाहिये।

भगवन्! औदारिक-शरीर-प्रयोगबंध किस कर्म के उदय से होता है? गौतम! सवीर्यता, सयोगता और सद्द्रव्यता से, प्रमाद, कर्म, योग, भाव और आयुष्य आदि हेतुओं से और औदारिक-शरीर-प्रयोग-वंध नामकर्म के उदयसे औदारिक-शरीर-प्रयोग-बंध होता है। भगवन्! एकेंद्रिय औदारिक-शरीर-प्रयोग-वंध किस कर्मके उदय से होता है? गौतम! पहले कहे अनुसार जानना चाहिये। इस प्रकार यह पृथ्वीकायिक एकेंद्रिय औदारिकशरीरप्रयोगबंध है। इसी प्रकार यावत् वनस्पति-कायिक एकेंद्रिय औदारिकशरीरप्रयोगबंध तथा बेइंद्रिय, तेइंद्रिय और चौइंद्रिय औदारिक-शरीर-प्रयोग-बंध तक जानना चाहिये।

भगवन्! तिर्यञ्च पञ्चेंद्रिय औदारिक-शरीर-प्रयोग-बंध किस कर्मके उदय से होता है। गौतम! पूर्व कथनानुसार जानना चाहिये। भगवन्! मनुष्य पञ्चेंद्रिय औदारिकशरीर-प्रयोगबंध किस कर्म के उदय से होता है? गौतम! सवीर्यता, सयोगता और सद्द्रव्यता से तथा प्रमाद हेतु से यावत् आयुष्य आश्रित तथा मनुष्य पञ्चेंद्रिय औदारिकशरीरप्रयोग नाम कर्म के उदय से, 'मनुष्य पञ्चेंद्रिय औदारिकशरीरप्रयोग-बंध' होता है।

सभी का ऊंचे ढेर रूप से जो बंध होता है, उच्चय बंध कहते हैं। वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट संख्येय काल तक रहता है। इस प्रकार उच्चय बंध कहा गया है।

भगवन्! समुच्चय बंध किसे कहते हैं? गौतम! कुआं, तालाव, नदी, द्रह, वापी, पुष्करिणी, दीर्घिका, गुंजालिका, सरोवर, सरोवरों की पंक्ति, बड़े सरोवरों की पंक्ति, विलों की पंक्ति, देवकुल, सभा, प्रपा (प्याऊ), स्तूप, खाई, परिघा, दुर्ग (किला), कंगूरे, चरिक, द्वार, गोपुर, तोरण, प्रासाद (महल), घर, शरणस्थान, लेण (घर-विशेष), दूकान, शृंगाटकाकार मार्ग, त्रिक मार्ग, चतुष्क मार्ग, चत्वर मार्ग, चतुर्मुख मार्ग और राजमार्गादि का चूना, मिट्टी और वज्र-लेपादि के द्वारा समुच्चय-रूप से जो बंध होता है, उसे 'समुच्चय बंध' कहते हैं। उसकी स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट संख्येय काल की है। इस प्रकार यह समुच्चय बंध कहा गया है।

भगवन्! संहनन बंध किसे कहते हैं? गौतम! संहनन बंध दो प्रकार का कहा गया है। यथा–देश संहनन बंध और सर्व संहनन बंध। भगवन्! संहनन बंध किसे कहते हैं? गौतम! गाड़ी, रथ, यान (छोटी गाड़ी), युग्यवाहन (दो हाथ प्रमाण वेदिका सहित जम्पान–पालकी), गिल्लि (हाथी की अम्बाड़ी), थिल्लि (पलाण), शिविका (पालकी), स्यन्दमानी (वाहन विशेष), लोढी, लोह का कड़ा, कड़छी, (चम्मच,) आसन, शयन, स्तम्भ, मिट्टी के बर्तन, पात्र और नाना प्रकार के उपकरण इत्यादि पदार्थों के साथ जो सम्बन्ध होता है, उसे देश संहनन बंध कहते हैं। यह जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट संख्येय काल तक रहता है। इस प्रकार यह देश संहनन बंध कहा गया है।

भगवन्! सर्व संहनन बंध किसे कहते हैं? गौतम! दूध और पानी की तरह मिल जाना—सर्व संहनन बंध कहलाता है। इस प्रकार सर्व संहनन बंध कहा गया है। यह आलीन बंध का कथन पूर्ण हुआ ॥३४६॥

भगवन्! शरीर बंध कितने प्रकार का कहा गया है? गौतम! शरीर बंध दो प्रकार का कहा गया है। यथा—१ पूर्व-प्रयोग-प्रत्ययिक और २ प्रत्युत्पन्न-प्रयोग-प्रत्ययिक। भगवन्! पूर्व-प्रयोग-प्रत्ययिक शरीर बंध किसे कहते हैं? गौतम! जहां जहां जिन कारणों से समुद्घात करते हुए नैरयिक जीवों का और संसारी सभी जीवों के जीव प्रदेशों का जो बंध होता है, उसे 'पूर्व-प्रयोग-प्रत्ययिक बंध' कहते हैं। यह पूर्व-प्रयोगप्रत्ययिक बंध है।

भगवन्! प्रत्युत्पन्न-प्रयोग-प्रत्ययिक बंध किसे कहते हैं? गौतम! केवलीसमुद्घात द्वारा समुद्घात करते हुए और समुद्घात से वापिस निवृत्त होते हुए बीच में मन्थानावस्था में रहे हुए केवलज्ञानी अनगार के तैजस और कार्मण शरीरका

जो बंध होता है, उसे 'प्रत्युत्पन्न-प्रयोग-प्रत्ययिक बंध' कहते हैं। तैजस और कार्मण शरीर के बंध का क्या कारण है? उस समय में आत्म-प्रदेशों का संघात होता हैं, जिससे तैजस और कार्मण शरीर का बंध होता है। इस प्रकार यह प्रत्युत्पन्न-प्रयोग-प्रत्ययिक बंध कहा गया है। यह शरीर बंध का कथन पूर्ण हुआ।

भगवन्! शरीर-प्रयोग बंध कितने प्रकार का कहा गया है? गौतम! शरीर-प्रयोग बंध पांच प्रकार का कहा गया है। यथा-१ औदारिक शरीर प्रयोग बंध, २ वैक्रिय शरीर प्रयोग बंध, ३ आहारक शरीर प्रयोग बंध, ४ तैजस शरीर प्रयोगबन्ध और ५ कार्मण शरीर प्रयोगबंध। भगवन्! औदारिक शरीर प्रयोग बंध कितने प्रकार का कहा गया है? गौतम! औदारिक शरीर प्रयोग बंध पांच प्रकार का कहा गया है। यथा-एकेंद्रिय औदारिक शरीर प्रयोग बंध, बेइन्द्रिय औदारिक शरीर प्रयोग बंध यावत् पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर प्रयोग बंध।

भगवन्! एकेंद्रिय औदारिक शरीर प्रयोग बंध कितने प्रकार का कहा गया है? गौतम! पांच प्रकार का कहा गया है। यथा-पृथ्वीकायिक एकेंद्रिय औदारिक-शरीर प्रयोग-बंध इत्यादि। इस प्रकार इस अभिलाप द्वारा जिस प्रकार प्रज्ञापनासूत्र के इक्कीसवें 'अवगाहना संस्थान पद' में औदारिक शरीर के भेद कहे गये हैं, उसी प्रकार यहां भी कहना चाहिये। यावत् पर्याप्त गर्भज मनुष्य पञ्चेन्द्रिय औदारिक शरीर प्रयोग-बंध और अपर्याप्त गर्भज-मनुष्य पञ्चेंद्रिय औदारिक शरीर-प्रयोग-बंध तक कहना चाहिये।

भगवन्! औदारिक-शरीर-प्रयोगबंध किस कर्म के उदय से होता है? गौतम! सवीर्यता, सयोगता और सद्द्रव्यता से, प्रमाद, कर्म, योग, भाव और आयुष्य आदि हेतुओं से और औदारिक-शरीर-प्रयोग-बंध नामकर्म के उदयसे औदारिक-शरीर-प्रयोग-बंध होता है। भगवन्! एकेंद्रिय औदारिक-शरीर-प्रयोग-बंध किस कर्मके उदय से होता है? गौतम! पहले कहे अनुसार जानना चाहिये। इस प्रकार यह पृथ्वीकायिक एकेंद्रिय औदारिकशरीरप्रयोगबंध है। इसी प्रकार यावत् वनस्पति-कायिक एकेंद्रिय औदारिकशरीरप्रयोगबंध तथा बेइंद्रिय, तेइंद्रिय और चौइंद्रिय औदारिक-शरीर-प्रयोग-बंध तक जानना चाहिये।

भगवन्! तिर्यञ्च पञ्चेंद्रिय औदारिक-शरीर-प्रयोग-बंध किस कर्मके उदय से होता है। गौतम! पूर्व कथनानुसार जानना चाहिये। भगवन्! मनुष्य पञ्चेंद्रिय औदारिकशरीर-प्रयोगबंध किस कर्म के उदय से होता है? गौतम! सवीर्यता, सयोगता और सद्द्रव्यता से तथा प्रमाद हेतु से यावत् आयुष्य आश्रित तथा मनुष्य पञ्चेंद्रिय औदारिकशरीरप्रयोग नाम कर्म के उदय से, 'मनुष्य पञ्चेंद्रिय औदारिकशरीरप्रयोग-बंध' होता है।

भगवन् ! औदारिक-शरीर प्रयोगबन्ध क्या देशबन्ध है, या सर्वबन्ध है ? गौतम ! देशबन्ध भी है और सर्वबन्ध भी है। भगवन् ! एकेंद्रिय औदारिक शरीर प्रयोग-बंध क्या देशबन्ध है, या सर्वबन्ध है ? गौतम ! देशबन्ध भी है और सर्वबन्ध भी है। इसी प्रकार यावत् हे भगवन् ! मनुष्य पञ्चेंद्रिय औदारिक शरीर-प्रयोग-बन्ध क्या देश-बन्ध है, या सर्वबन्ध है ? गौतम ! देशबन्ध भी है और सर्वबन्ध भी है—यहां तक कहना चाहिये।

भगवन् ! औदारिक-शरीर-प्रयोगबंध कितने काल तक रहता है ? गौतम ! सर्वबंध एक समय तक रहता है और देशबंध जघन्य एक समय और उत्कृष्ट एक समय कम तीन पल्योपम तक रहता है। भगवन् ! एकेंद्रिय औदारिक-शरीर-प्रयोग-बंध कितने काल तक रहता है ? गौतम ! सर्व-बंध एक समय तक रहता है और देशबंध जघन्य एक समय और उत्कृष्ट एक समय कम बाईस हजार वर्ष तक रहता है।

भगवन् ! पृथ्वीकायिक एकेंद्रिय औदारिक-शरीर-प्रयोग बंध कितने काल तक रहता है ? गौतम ! सर्वबंध एक समय तक रहता है और देशबंध जघन्य तीन समय कम क्षुल्लक भव पर्यंत और उत्कृष्ट एक समय कम बाईस हजार वर्ष तक रहता है। इसी प्रकार सभी जीवों का सर्वबंध एक समय तक रहता है। देशबंध वैक्रिय शरीर वालोंको छोड़कर जघन्य तीन समय कम क्षुल्लकभव तक और उत्कृष्ट जिन जीवोंकी जितनी आयुष्य स्थिति है, उसमें से एक समय कम तक रहता है। जिनके वैक्रिय शरीर है, उनके देशबंध जघन्य एक समय और उत्कृष्ट जिनका जितना आयुष्य है, उसमें से एक समय कम तक रहता है। इस प्रकार यावत् मनुष्यों में देशबंध जघन्य एक समय और उत्कृष्ट एक समय कम तीन पल्योपम तक जानना चाहिये।

भगवन् ! औदारिक शरीरके बंधका अन्तर कितने काल का होता है ? गौतम ! सर्व-बंधका अन्तर जघन्य तीन समय कम क्षुल्लकभव ग्रहण पर्यंत है और उत्कृष्ट समयाधिक पूर्व कोटि और तेंतीस सागर है। देश-बंध का अन्तर जघन्य एक समय और उत्कृष्ट तीन समय अधिक तेंतीस सागरोपम है। भगवन् ! एकेंद्रिय औदारिक-शरीर-बंधका अन्तर कितने काल का है ? गौतम ! इनके सर्व-बंधका अन्तर जघन्य तीन समय कम क्षुल्लकभव पर्यंत है और उत्कृष्ट एक समय अधिक बाईस हजार वर्ष है। देश बंध का अन्तर जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अन्त-र्मुहूर्त तक है।

भगवन् ! पृथ्वीकायिक एकेंद्रिय औदारिक-शरीर-बंधका अन्तर कितने काल का है ? गौतम ! इनके सर्वबंधका अन्तर जिस प्रकार एकेंद्रिय में कहा गया है, उसी प्रकार कहना चाहिये। देश-बंध का अन्तर जघन्य एक समय और उत्कृष्ट

तीन समय का है। जिस प्रकार पृथ्वीकायिक जीवों का कहा गया, उसी प्रकार वायुकायिक जीवोंको छोड़कर चतुरिन्द्रिय तक सभी जीवोंके विपयमें कहना चाहिये। परन्तु उत्कृष्ट सर्व-बंधका अन्तर जिन जीवोंकी जितनी आयुष्य स्थिति हो उससे एक समय अधिक कहनी चाहिये अर्थात् सर्व-बन्ध का अन्तर समयाधिक आयुष्य स्थिति प्रमाण जानना चाहिए। वायुकाय जीवों के सर्व-बन्ध का अन्तर जघन्य तीन समय कम क्षुल्लकभव ग्रहण और उत्कृष्ट समयाधिक तीन हजार वर्ष का है। इनके देश-बन्ध का अन्तर जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त तक जानना चाहिए।

भगवन्! पंचेन्द्रिय तिर्यंच औदारिक-शरीर-बन्ध का अन्तर कितने काल का कहा गया है? गौतम! उनके सर्व-बन्ध का अन्तर जघन्य तीन समय कम क्षुल्लक-भव-ग्रहण और उत्कृष्ट समयाधिक पूर्व कोटि है। देश-बन्ध का अन्तर जिस प्रकार एकेन्द्रिय में कहा, उसी प्रकार सभी पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चों में जानना चाहिये। इसी प्रकार मनुष्यों में भी समझना चाहिए यावत् 'उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है'—यहां तक कहना चाहिये।

भगवन्! कोई जीव एकेंद्रिय अवस्था में है, वह एकेंद्रिय को छोड़कर किसी दूसरी जाति में चला जाय और वहां से पुन: एकेंद्रिय में आवे, तो एकेंद्रिय औदारिक शरीर-प्रयोग-बंध का अन्तर कितने काल का होता है? गौतम! सर्व-बंध का अन्तर जघन्य तीन समय कम दो क्षुल्लक भव और उत्कृष्ट संख्यात वर्ष अधिक दो हजार सागरोपम हैं। देशबंध का अन्तर जघन्य एक समय अधिक क्षुल्लकभव तक है और उत्कृष्ट संख्यात वर्ष अधिक दो हजार सागरोपम है।

भगवन्! कोई जीव पृथ्वीकायिक अवस्था में हो, वहां से पृथ्वीकाय के सिवाय अन्य काय में उत्पन्न हो और वहां से वह पुन: पृथ्वीकाय में आवे, तो पृथ्वीकायिक एकेंद्रिय औदारिक-शरीर-प्रयोग बंध का अन्तर कितने कालका होता है? गौतम! सर्व-बंध का अंतर जघन्य तीन समय कम दो क्षुल्लकभव पर्यंत और उत्कृष्ट काल की अपेक्षा अनन्त काल–अनन्त उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी है। क्षेत्र की अपेक्षा अनंत लोक–असंख्य पुद्गल परावर्तन है। वह पुद्गल परावर्तन आवलिका के असंख्यातवें भाग प्रमाण है अर्थात् आवलिका के असंख्यातवें भाग में जितने समय हैं, उतने पुद्गल-परावर्तन हैं। देश-बंध का अन्तर जघन्य समयाधिक क्षुल्लकभव और उत्कृष्ट अनन्त काल यावत् आवलिका के असंख्यातवें भागके समयों के बराबर असंख्य पुद्गल परावर्तन है। जिस प्रकार पृथ्वीकायिक जीवों का अंतर कहा गया, उसी प्रकार वनस्पतिकायिक जीवोंको छोड़कर मनुष्य तक

सभी जीवों के विषय में जानना चाहिए। वनस्पतिकायिक जीवों के सर्व-बंध का अंतर जघन्य काल की अपेक्षा तीन समय कम दो क्षुल्लक भव और उत्कृष्ट असंख्य काल–असंख्य उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी तक है। क्षेत्र की अपेक्षा असंख्य लोक हैं। देश-बंध का अंतर जघन्य समयाधिक क्षुल्लक भव तक है और उत्कृष्ट पृथ्वी-काय के स्थिति काल तक अर्थात् असंख्य उत्सर्पिणी अवसर्पिणी यावत् असंख्य लोक तक है।

भगवन्! औदारिक-शरीर के देश-बंधक, सर्वबंधक और अबंधक जीवोंमें कौन किससे कम, अधिक, तुल्य और विशेषाधिक हैं? गौतम! सबसे थोड़े जीव औदारिक-शरीर के सर्व-बंधक हैं, उनसे अबंधक जीव विशेषाधिक हैं और उनसे देश-बंधक जीव असंख्यात गुणा हैं ॥३४७॥

भगवन्! वैक्रिय-शरीर प्रयोग-बंध कितने प्रकारका कहा गया है? गौतम! दो प्रकार का कहा गया है। यथा–१ एकेंद्रिय वैक्रिय-शरीर प्रयोग बंध और २ पञ्चेन्द्रिय वैक्रिय-शरीर प्रयोग-बंध। भगवन्! यदि एकेंद्रिय वैक्रिय-शरीर प्रयोग-बंध है, तो वायुकायिक एकेंद्रिय वैक्रियशरीर प्रयोग-बंध है, अथवा अवायुकायिक एकेंद्रिय वैक्रिय-शरीर प्रयोग-बन्ध है? गौतम! इस प्रकार इस अभिलाप द्वारा, प्रज्ञापनासूत्रके इक्कीसवें अवगाहना संस्थान पदमें वैक्रिय-शरीर के भेद कहे गये हैं, उसी प्रकार यहां भी कहना चाहिये यावत् पर्याप्त सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरौपपातिक कल्पातीत वैमानिक देव पञ्चेन्द्रिय वैक्रिय-शरीर प्रयोग-बन्ध और अपर्याप्त सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरौपपातिक कल्पातीत वैमानिक देव पञ्चेन्द्रिय वैक्रिय-शरीर प्रयोग बन्ध।

भगवन्! वैक्रिय-शरीर प्रयोग बन्ध किस कर्मके उदयसे होता है? गौतम! सवीर्यता, सयोगता, सद्द्रव्यता यावत् आयुष्य और लब्धिके कारण तथा वैक्रिय-शरीर-प्रयोग नाम-कर्मके उदयसे वैक्रिय-शरीर प्रयोग-बन्ध होता है। भगवन्! वायुकायिक एकेन्द्रिय वैक्रिय-शरीर प्रयोग-बन्ध किस कर्मके उदयसे होता है? गौतम! सवीर्यता, सयोगता, सद्द्रव्यता यावत् आयुष्य और लब्धिके कारण एवं वायुकायिक एकेंद्रिय वैक्रिय-शरीर प्रयोग-नाम कर्मके उदयसे वायुकायिक एकेन्द्रिय वैक्रिय-शरीर प्रयोग-बंध होता है।

भगवन्! रत्नप्रभापृथ्वी नैरयिक-पंचेन्द्रिय-वैक्रिय शरीर प्रयोगबन्ध किस कर्मके उदयसे होता है? गौतम! सवीर्यता, सयोगता और सद्द्रव्यता यावत् आयुष्य के कारण एवं रत्नप्रभा पृथ्वी नैरयिकपंचेन्द्रिय-वैक्रियशरीर नाम कर्मके उदयसे रत्नप्रभा पृथ्वी नैरयिक-पंचेन्द्रिय-वैक्रियशरीर प्रयोगबंध होता है। इसी प्रकार यावत् अधःसप्तम नरक पृथ्वी तक कहना चाहिए। भगवन्! तिर्यचयोनिकपंचेन्द्रिय-वैक्रिय-शरीर प्रयोगबंध किस कर्मके उदयसे होता है?—

गौतम ! सवीर्यता, सयोगता, सद्‌द्रव्यता यावत् आयुष्य और लब्धिके कारण तथा तिर्यचयोनिक पंचेन्द्रिय वैक्रिय-शरीर-प्रयोग नाम-कर्मके उदयसे होता है। इसी प्रकार मनुष्य पञ्चेन्द्रिय वैक्रिय-शरीर प्रयोग-बंधके विषयमें भी जान लेना चाहिये। असुरकुमार भवनवासी देव यावत् स्तनितकुमार भवनवासी देव, वाण-व्यन्तर, ज्योतिषी, सौधर्मकल्पोत्पन्नक वैमानिक देव यावत् अच्युत कल्पोत्पन्नक वैमानिक देव, ग्रैवेयक कल्पातीत वैमानिक देव तथा अनुत्तरौपपातिक कल्पातीत वैमानिक देव, इन सबका कथन रत्नप्रभा पृथ्वीके नैरयिकोंके समान जानना चाहिये।

भगवन् ! वैक्रिय-शरीर प्रयोग-बंध क्या देशबंध है, या सर्वबंध है ? गौतम ! देशबंध भी है और सर्वबंध भी है। इसी प्रकार वायुकायिक एकेन्द्रिय वैक्रिय-शरीर प्रयोगबंध तथा रत्नप्रभा पृथ्वी नैरयिक वैक्रिय-शरीर प्रयोग-बंधसे लगाकर यावत् अनुत्तरौपपातिक देवों तक जानना चाहिये।

भगवन् ! वैक्रिय-शरीर प्रयोगबंध कितने काल तक रहता है ? गौतम ! सर्वबंध जघन्य एक समय और उत्कृष्ट दो समय तक और देशबंध जघन्य एक समय और उत्कृष्ट एक समय कम तेतीस सागरोपम तक रहता है। भगवन् ! वायुकायिक एकेन्द्रिय वैक्रियशरीर प्रयोगबंध कितने काल तक रहता है ? गौतम ! सर्व-बंध एक समय तक और देश-बंध जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त तक रहता है।

भगवन् ! रत्नप्रभा-पृथ्वी-नैरयिक-वैक्रियशरीर प्रयोग-बंध कितने काल रहता है ? गौतम ! सर्व-बन्ध एक समय तक रहता है। देश-बंध जघन्य तीन समय कम दस हजार वर्ष तक तथा उत्कृष्ट एक समय कम एक सागरोपम तक रहता है। इस प्रकार यावत् अधः-सप्तम नरक-पृथ्वी तक जानना चाहिये, परन्तु जिसकी जितनी जघन्य स्थिति हो, उसमें तीन समय कम जघन्य देश-बंध जानना चाहिये और जिसकी जितनी उत्कृष्ट स्थिति हो, उसमें एक समय कम उत्कृष्ट देश-बंध जानना चाहिये। पंचेन्द्रिय तिर्यच और मनुष्यका कथन वायुकायिक के समान जानना चाहिये। असुरकुमार, नागकुमार यावत् अनुत्तरौपपातिक देवोंका कथन नैरयिक के समान जानना चाहिए, परन्तु जिनकी जितनी स्थिति हो, उतनी कहनी चाहिये, यावत् अनुत्तरौपपातिक देवोंका सर्व-बंध एक समय तक रहता है और देश-बंध जघन्य तीन समय कम इकत्तीस सागरोपम और उत्कृष्ट एक समय कम तेतीस सागरोपम तक का होता है।

भगवन् ! वैक्रिय-शरीर-प्रयोग-बंध का अन्तर कितने कालका होता है ? गौतम ! सर्वबंधका अन्तर जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अनन्त काल—अनन्त उत्सर्पिणी अवसर्पिणी यावत् आवलिकाके असंख्यातवें भागके समयोंके बराबर

पुद्गलपरावर्तन तक रहता है। इसी प्रकार देश-बंधका अन्तर भी जान लेना चाहिए।

भगवन् ! वायुकायिक वैक्रिय-शरीर-प्रयोग-बंधका अन्तर कितने कालका होता है ? गौतम ! सर्व-बंधका अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पल्योपमका असंख्यातवां भाग होता है। इसी प्रकार देश-बंधका अन्तर भी जानना चाहिये। भगवन् ! तिर्यचयोनिक पंचेन्द्रिय वैक्रिय-शरीर प्रयोगबंधका अन्तर कितने काल का होता है ? गौतम ! सर्वबंधका अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पूर्व-कोटि पृथक्त्व का होता है। इसी प्रकार देशबंध का अन्तर भी जानना चाहिये और इसी प्रकार मनुष्यके विषयमें भी जानना चाहिये।

भगवन् ! कोई जीव वायुकायिक अवस्थामें हो, वहांसे मरकर वह वायु-कायिकके सिवाय दूसरे कायमें उत्पन्न हो जाय और फिर वह वहांसे मरकर वायुकायिक जीवों में उत्पन्न हो, तो उस वायुकायिक एकेन्द्रिय वैक्रिय-शरीर प्रयोग-बंधका अन्तर कितने कालका होता है ? गौतम ! उसके सर्वबंधका अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्त काल-वनस्पति-काल तक होता है। इसी प्रकार देशबंधका अन्तर भी जान लेना चाहिये।

भगवन् ! कोई जीव रत्नप्रभा पृथ्वीमें नैरयिकपने उत्पन्न होकर, वहांसे काल करके रत्नप्रभा पृथ्वीके सिवाय दूसरे स्थानोंमें उत्पन्न हो और वहांसे मर-कर पुनः रत्नप्रभा पृथ्वीमें नैरयिकरूपसे उत्पन्न हो, तो उस रत्नप्रभा नैरयिक वैक्रिय-शरीर प्रयोग-बंधका अन्तर कितने कालका होता है ? गौतम ! सर्व-बंध-का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल होता है। देश-बंधका अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनंत काल-वनस्पति-कालका होता है। इसी प्रकार यावत् अधःसप्तम नरक-पृथ्वी तक जानना चाहिये, परन्तु विशेषता यह है कि सर्व-बंधका जघन्य अन्तर जिन नैरयिकोंकी जितनी जघन्य स्थिति हो, उतनी स्थितिसे अन्तर्मुहूर्त अधिक जानना चाहिये। शेष सारा कथन पूर्वके समान जानना चाहिये। पंचेन्द्रिय तिर्यचयोनिक और मनुष्यके सर्व-बंधका अन्तर वायुकायिक के समान जानना चाहिये। इसी प्रकार असुरकुमार, नागकुमार यावत् सहस्रार देवों तक, रत्नप्रभाके समान जानना चाहिये, परन्तु विशेषता यह है कि उनके सर्व-बंधका अन्तर, जिनकी जितनी जघन्य स्थिति हो, उससे अन्तर्मुहूर्त अधिक जानना चाहिये। शेष सारा कथन पूर्वके समान जानना चाहिये।

भगवन् ! आणत देवलोकमें देवपने उत्पन्न हुआ कोई जीव वहांसे चवकर आणत देवलोकके सिवाय दूसरे जीवोंमें उत्पन्न हो और वहांसे मरकर पुनः आणत देवलोकमें देवपने उत्पन्न हो, तो उस आणत देव वैक्रियशरीर प्रयोग-बंधका

कितने कालका होता है ? गौतम ! सर्व-बंधका अन्तर जघन्य वर्ष-पृथक्त्व अधिक अठारह सागरोपम और उत्कृष्ट अनन्त काल-वनस्पति काल पर्यंत होता है। देश-बंधका अन्तर जघन्य वर्ष-पृथक्त्व और उत्कृष्ट अनन्त काल-वनस्पतिकाल पर्यन्त होता है। इसी प्रकार यावत् अच्युत देवलोक पर्यंत जानना चाहिये, परन्तु सर्व-बंधका अंतर जघन्य जिसकी जितनी स्थिति हो, उससे वर्ष-पृथक्त्व अधिक जानना चाहिये। शेष सारा कथन पूर्वके समान जानना चाहिये।

भगवन् ! ग्रैवेयक कल्पातीत वैक्रिय-शरीर प्रयोग-बंधका अन्तर कितने काल का होता है ? गौतम ! सर्व-बंधका अन्तर जघन्य वर्ष-पृथक्त्व अधिक बाईस साग-रोपमका और उत्कृष्ट अनन्त काल-वनस्पति काल पर्यंत होता है। देश-बंधका अन्तर जघन्य वर्ष-पृथक्त्व और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल पर्यंत होता है।

भगवन् ! अनुत्तरौपपातिक देव वैक्रिय-शरीर प्रयोग-बंधका अन्तर कितने कालका होता है ? गौतम ! सर्व-बंधका अन्तर जघन्य वर्ष-पृथक्त्व अधिक इकत्तीस सागरोपम और उत्कृष्ट संख्यात सागरोपमका होता है। देश-बंधका अन्तर जघन्य वर्ष-पृथक्त्व और उत्कृष्ट संख्यात सागरोपम होता है। भगवन् ! वैक्रिय-शरीरके देशबन्धक, सर्वबन्धक और अबंधक जीवोंमें कौन किससे कम, अधिक, तुल्य और विशेषाधिक हैं ? गौतम ! वैक्रिय-शरीरके सर्व-बंधक जीव सबसे थोड़े हैं, उनसे देश-बंधक असंख्यात गुणे हैं और उनसे अबंधक जीव अनन्त गुणे हैं।

भगवन् ! आहारक-शरीर प्रयोग-बंध कितने प्रकार का कहा गया है ? गौतम ! एक प्रकार का कहा गया है। भगवन् ! यदि आहारक-शरीर प्रयोग-बंध एक प्रकार का कहा गया है, तो आहारक-शरीर प्रयोग-बंध मनुष्योंके होता है, अथवा अमनुष्यों (मनुष्यों के सिवाय अन्य जीवों) के ? गौतम ! मनुष्योंके आहारक-शरीर प्रयोग-बंध होता है, अमनुष्योंके नहीं होता। इस प्रकार इस अभि-लाप द्वारा प्रज्ञापनासूत्रके इक्कीसवें अवगाहना-संस्थान पद में कहे अनुसार कहना चाहिये। यावत् ऋद्धि-प्राप्त-प्रमत्तसंयत-सम्यग्दृष्टि-पर्याप्त-संख्यात-वर्षायुष्क-कर्म-भूमिज-गर्भज मनुष्यके आहारक-शरीर प्रयोग-बंध होता है, परंतु अनृद्धिप्राप्त (ऋद्धिको अप्राप्त) प्रमत्तसंयत-सम्यग्दृष्टि-पर्याप्त-संख्यात-वर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भज मनुष्य को नहीं होता।

भगवन् ! आहारक-शरीर प्रयोग-बंध किस कर्म के उदयसे होता है ? गौतम ! सवीर्यता, सयोगता और सद्द्रव्यता यावत् लब्धि से तथा आहारक-शरीर प्रयोग नाम-कर्मके उदयसे आहारक-शरीर प्रयोग-बंध होता है। भगवन् ! आहारक-शरीर प्रयोग-बंध क्या देश-बंध होता है, या सर्व-बंध···? गौतम ! सर्व-बंध भी होता है और देश-बंध भी। भगवन् ! आहारक-शरीर प्रयोग-बंध कितने काल तक रहता है ? गौतम ! आहारक-शरीर प्रयोग-बंधका सर्वबंध एक समय

तक होता है और देशबंध जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त तक होता है। भगवन्! आहारक-शरीर प्रयोग-बंध का अन्तर कितने काल का है? गौतम! सर्व-बंधका अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्तकाल—अनन्त उत्सर्पिणी अवसर्पिणी होता है। क्षेत्रकी अपेक्षा अनन्त लोक—उपार्ध (कुछ कम अर्द्ध) पुद्गल परावर्तन होता है। इसी प्रकार देशबंधका अन्तर भी जानना चाहिये। भगवन्! आहारक-शरीरके देशबंधक, सर्वबंधक और अबंधक जीवों में कौन किससे कम, अधिक, तुल्य और विशेषाधिक हैं? गौतम! सबसे थोड़े जीव आहारक-शरीरके सर्व-बंधक हैं, उनसे देशबंधक संख्यात गुणा हैं और उनसे अबंधक जीव अनन्त गुणा हैं ॥३४८॥

भगवन्! तैजस्-शरीर प्रयोग-बंध कितने प्रकार का कहा गया है? गौतम! पांच प्रकार का कहा गया है। यथा—एकेंद्रिय तैजस्-शरीर प्रयोग-बंध, वेइन्द्रिय तैजस्-शरीर प्रयोगबंध यावत् पंचेंद्रिय तैजस्-शरीर प्रयोगबंध। भगवन्! एकेन्द्रिय तैजस्-शरीर प्रयोग-बंध कितने प्रकार का कहा गया है? गौतम! इस अभिलाप द्वारा जिस प्रकार प्रज्ञापनासूत्रके इक्कीसवें अवगाहना-संस्थान पदमें भेद कहे हैं, उसी प्रकार यहां भी कहना चाहिये, यावत् पर्याप्त सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरौपपातिक कल्पातीत वैमानिक देव पंचेन्द्रिय तैजस्-शरीर प्रयोग बंध और अपर्याप्त सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरौपपातिक कल्पातीत वैमानिक देव पंचेन्द्रिय तैजस् प्रयोग-बंध। भगवन्! तैजस्-शरीर प्रयोग-बंध किस कर्मके उदयसे होता है? गौतम! सवीर्यता, सयोगता और सद्द्रव्यता यावत् आयुष्य—इन आठ कारणोंसे तैजस्-शरीर प्रयोग नामकर्मके उदयसे तैजस्-शरीर प्रयोग-बंध होता है।

भगवन्! तैजस्शरीर प्रयोग-बंध क्या देशबंध होता है, या सर्व-बंध होता है? गौतम! यह देश-बंध होता है, सर्व-बन्ध नहीं होता। भगवन्! तैजसशरीर प्रयोग-बंध कितने काल तक रहता है? गौतम! तैजस्शरीर प्रयोग-बंध दो प्रकारका कहा गया है। यथा—१ अनादि-अपर्यवसित और २ अनादि-सपर्यवसित। भगवन्! तैजस्शरीर प्रयोग-बंधका अन्तर कितने काल का है? गौतम! अनादि-अपर्यवसित और अनादि-सपर्यवसित, इन दोनों प्रकारके तैजस्शरीर प्रयोग-बंध का अन्तर नहीं है। भगवन्! तैजस्शरीरके देशबंधक और अबंधक जीवोंमें कौन किससे कम, अधिक, तुल्य या विशेषाधिक हैं? गौतम! तैजस् शरीरके अवन्धक जीव सबसे थोड़े हैं। उनसे देश-बन्धक जीव अनन्त गुणा हैं ॥३४९॥

भगवन्! कार्मण-शरीर प्रयोग बन्ध कितने प्रकारका कहा गया है? गौतम! आठ प्रकार का कहा गया है। यथा—ज्ञानावरणीय कार्मण-शरीर प्रयोग-बन्ध यावत् अन्तराय-कार्मण-शरीर प्रयोग-बन्ध। भगवन्! ज्ञानावरणीय कार्मण-शरीर प्रयोग-बन्ध किस कर्मके उदय से होता है? गौतम! ज्ञान की

प्रत्यनीकता (विपरीतता) करनेसे, ज्ञानका अपलाप करनेसे, ज्ञानमें अन्तराय देनेसे, ज्ञान का द्वेष करनेसे, ज्ञान की आशातना करनेसे, ज्ञानके विसंवादन योगसे और ज्ञानावरणीय कार्मण-शरीर-प्रयोग नामकर्मके उदयसे, ज्ञानावरणीय कार्मण-शरीर प्रयोग-बन्ध होता है।

भगवन् ! दर्शनावरणीय कार्मण-शरीर प्रयोग-बन्ध किस कर्मके उदयसे होता है ? गौतम ! दर्शन की प्रत्यनीकतासे, इत्यादि जिस प्रकार ज्ञानावरणीयके कारण कहे हैं, उसी प्रकार दर्शनावरणीयके भी जानने चाहियें, किन्तु 'ज्ञानावरणीय'के स्थानमें—'दर्शनावरणीय' कहना चाहिये यावत् दर्शन विसंवादन योग और दर्शनावरणीय कार्मण-शरीर-प्रयोग नामकर्मके उदय से दर्शनावरणीय कार्मण-शरीर प्रयोग-बन्ध होता है।

भगवन् ! साता-वेदनीय कार्मण-शरीर प्रयोग-बन्ध किस कर्म के उदय से होता है ? गौतम ! प्राणियों पर अनुकम्पा करनेसे, भूतों (चार स्थावरों) पर अनुकम्पा करनेसे इत्यादि, जिस प्रकार सातवें शतकके छठे उद्देशकमें कहा है, उसी प्रकार यहां भी कहना चाहिये यावत् प्राण, भूत, जीव और सत्त्वोंको परिताप नहीं उपजानेसे और साता-वेदनीय कार्मण-शरीर प्रयोग नामकर्मके उदयसे साता-वेदनीय कार्मण-शरीर प्रयोग-बन्ध होता है।

भगवन् ! आसातावेदनीय कार्मणशरीर प्रयोग-बन्ध किस कर्मके उदयसे होता है ? गौतम ! दूसरे जीवोंको दुःख देनेसे, उन्हें शोक उत्पन्न करने से, इत्यादि जिस प्रकार सातवें शतकके छठे उद्देशकमें कहा है, उसी प्रकार यहां भी कहना चाहिये, यावत् उन्हें परिताप उपजाने और असातावेदनीय कार्मणशरीर-प्रयोग नामकर्मके उदयसे असातावेदनीय कार्मण-शरीर प्रयोग-बन्ध होता है।

भगवन् ! मोहनीय कार्मण-शरीर प्रयोग-बन्ध किस कर्मके उदयसे होता है ? गौतम ! तीव्र क्रोध करनेसे, तीव्र मान करनेसे, तीव्र माया करनेसे, तीव्र लोभ करनेसे, तीव्र दर्शन-मोहनीयसे, तीव्र चारित्र-मोहनीयसे और मोहनीय कार्मण-शरीर-प्रयोग नाम-कर्मके उदयसे—मोहनीय-कार्मण-शरीर प्रयोग-बन्ध होता है।

भगवन् ! नरकायुष्य कार्मण-शरीर-प्रयोग-बन्ध किस कर्मके उदयसे होता है ? गौतम ! महारम्भसे, महापरिग्रहसे, मांसाहार करनेसे, पंचेन्द्रियजीवों का वध करने से और नरकायुष्य कार्मण-शरीर-प्रयोग नाम-कर्मके उदयसे नरकायुष्य कार्मण-शरीर प्रयोग-बन्ध होता है।

भगवन् ! तिर्यचयोनिक-आयुष्य कार्मण-शरीर प्रयोग-बन्ध किस कर्मके उदयसे होता है ? गौतम ! माया करनेसे, गूढ़ माया करनेसे, झूठ बोलनेसे, खोटा तोल खोटा माप करनेसे और तिर्यच-योनिक आयुष्य कार्मण-शरीर प्रयोगनाम कर्म के उदयसे तिर्यचयोनिक आयुष्य कार्मण-शरीर प्रयोगबन्ध होता है। भगवन् !

मनुष्यायुष्य कार्मण-शरीर प्रयोगबन्ध किस कर्मके उदयसे होता है ? गौतम प्रकृतिकी भद्रतासे, प्रकृतिकी विनीततासे, दयालुतासे, अमत्सरभावसे और मनुष्य युष्य कार्मणशरीर-प्रयोग नामकर्मके उदयसे मनुष्यायुष्य कार्मणशरीर प्रयोगबन्ध होता है। भगवन् ! देव आयुष्य कार्मणशरीर प्रयोगबन्ध किस कर्मके उदयसे होता है ? गौतम ! सरागसंयम से, संयमासंयम (देश विरति) से, अज्ञान तप करनेसे, अकामनिर्जरा से और देवायुष्य कार्मण-शरीर-प्रयोग नाम-कर्मके उदयसे देवायुष्य कार्मण-शरीर प्रयोगबन्ध होता है।

भगवन् ! शुभनाम कार्मण-शरीर प्रयोग-बन्ध किस कर्म के उदय से होता है ? गौतम ! काया की सरलतासे, भाव की सरलता से, भाषा की सरलता से और अविसंवादन योग से तथा शुभनाम कार्मण-शरीर-प्रयोग नामकर्म के उदय से शुभनाम कार्मण-शरीर प्रयोग-बन्ध होता है। भगवन् ! अशुभ नाम कार्मण शरीर प्रयोग-बन्ध किस कर्मके उदय से होता है ? गौतम ! काया की वक्रता से, भाव की वक्रता से, भाषा की वक्रता से, विसंवादन योगसे और अशुभनाम कार्मण-प्रयोग नाम-कर्मके उदय से अशुभनाम कार्मण-शरीर प्रयोग-बन्ध होता है।

भगवन् ! उच्चगोत्र कार्मण-शरीर प्रयोग-बन्ध किस कर्म के उदय से होता है ? गौतम ! जाति-मद, बलमद, रूपमद, तपमद, श्रुतमद, लाभमद और ऐश्वर्यमद, ये आठ मद न करने से तथा उच्चगोत्र कार्मण-शरीरप्रयोग नाम-कर्म के उदय से उच्चगोत्र कार्मणशरीर प्रयोगबन्ध होता है। भगवन् ! नीचगोत्र कार्मणशरीर प्रयोग-बन्ध किस कर्म के उदय से होता है ? गौतम ! जातिमद, कुलमद, बलमद यावत् ऐश्वर्यमद—ये आठ मद करने से तथा नीचगोत्र कार्मण-शरीर-प्रयोग नाम-कर्म के उदय से नीचगोत्र कार्मण-शरीर बंधता है।

भगवन् ! अन्तराय कार्मण-शरीर प्रयोगबन्ध किस कर्म के उदय से होता है ? गौतम ! दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय और वीर्यान्तराय से तथा अन्तराय-कार्मण-शरीर-प्रयोग नामकर्म के उदय से अन्तराय-कार्मण-शरीर-प्रयोग-बन्ध होता है।

भगवन् ! ज्ञानावरणीय कार्मण-शरीर प्रयोगबन्ध देश-बन्ध है या सर्व-बन्ध ? गौतम ! देशबन्ध है, सर्व-बन्ध नहीं। इसी प्रकार यावत् अन्तराय-कार्मण-शरीर प्रयोग-बन्ध तक जानना चाहिये। भगवन् ! ज्ञानावरणीय-कार्मण-शरीर प्रयोग-बन्ध कितने काल तक रहता है ? गौतम ! ज्ञानावरणीय-कार्मण-शरीर-प्रयोग-बन्ध दो प्रकार का कहा गया है। यथा—१ अनादिअपर्यवसित और अनादि-सपर्यवसित। जिस प्रकार तैजस् शरीर का स्थितिकाल कहा, उसी प्रकार यहां भी कहना चाहिये। यावत् अन्तराय कर्म के स्थिति-काल तक कहना चाहिये।

भगवन् ! ज्ञानावरणीय कार्मण-शरीर प्रयोगबन्ध का अन्तर कितने काल

का होता है ? गौतम ! अनादिअपर्यवसित और अनादिसपर्यवसित। ज्ञानावरणीय कार्मण-शरीर प्रयोगबंध का अन्तर नहीं होता। जिस प्रकार तैजस्-शरीर प्रयोग-बंधके अन्तर के विषय में कहा गया, उसी प्रकार यहां भी समझना चाहिये, यावत् अन्तराय कार्मण-शरीर-प्रयोग-बन्ध के अन्तर तक जानना चाहिये। भगवन् ! ज्ञानावरणीय कर्मके देश-बंधक और अबन्धक जीवों में कौन किससे कम, अधिक, तुल्य या विशेषाधिक हैं ? गौतम ! जिस प्रकार तैजस्-शरीर का अल्पबहुत्व कहा, उसी प्रकार कहना चाहिये। इसी प्रकार आयुष्य-कर्मके सिवाय यावत् अन्तराय-कर्म तक कहना चाहिये। भगवन् ! आयुष्यकर्म के देश-बन्धक और अबन्धक जीवों में कौन किससे कम, अधिक, तुल्य या विशेषाधिक हैं ? गौतम ! आयुष्य-कर्मके देशबन्धक जीव सबसे थोड़े हैं, उनसे अबन्धक जीव संख्यात गुणा हैं ॥३५०॥

भगवन् ! जिस जीव के औदारिक शरीर का सर्व-बन्ध है, क्या वह जीव वैक्रिय-शरीर का बन्धक है, या अबन्धक है ? गौतम ! वह बन्धक नहीं, अबंधक है। भगवन् ! औदारिक शरीर का सर्वबन्धक जीव आहारक-शरीर का बन्धक है, या अबन्धक ? गौतम ! वह बन्धक नहीं, अबन्धक है। भगवन् ! औदारिक-शरीर का सर्व-बन्धक जीव तैजस्-शरीर का बन्धक है, या अबन्धक ? गौतम ! वह बन्धक है, अबन्धक नहीं। भगवन् ! यदि वह तैजस्-शरीर का बन्धक है, तो क्या देश-बन्धक है, या सर्व-बन्धक है ? गौतम ! वह देश-बन्धक है, सर्व-बन्धक नहीं। भगवन् ! औदारिक-शरीर का सर्व-बन्धक जीव कार्मण-शरीर का बन्धक है, या अबन्धक ? गौतम ! तैजस्-शरीर के समान वह यावत् कार्मण-शरीर का देश-बन्धक है, सर्व-बन्धक नहीं। भगवन् ! औदारिक-शरीर का देश-बन्धक जीव वैक्रिय शरीर का बन्धक है, या अबन्धक है ? गौतम ! वह बन्धक नहीं, अबन्धक है। जिस प्रकार सर्व-बन्धक का कहा, उसी प्रकार देश-बन्धक के विषय में भी यावत् कार्मण-शरीर तक कहना चाहिये।

भगवन् ! वैक्रिय-शरीर का सर्व-बन्धक जीव औदारिक-शरीर का बन्धक है, या अबन्धक ? गौतम ! वह बन्धक नहीं, अबन्धक है। इसी प्रकार आहारक-शरीर के विषय में भी जानना चाहिये। तैजस् और कार्मण शरीर के विषय में जिस प्रकार औदारिक-शरीर के साथ कथन किया है, उसी प्रकार वैक्रिय-शरीर के साथ भी कहना चाहिये यावत् वह देश-बन्धक है, सर्वबन्धक नहीं। भगवन् ! वैक्रिय-शरीर का देश-बन्धक जीव औदारिक-शरीर का बन्धक है या अबन्धक ? गौतम ! वह बन्धक नहीं, अबन्धक है। जिस प्रकार वैक्रिय-शरीर के सर्व-बन्ध के विषय में

मनुष्यायुष्य कार्मण-शरीर प्रयोगवन्ध किस कर्मके उदयसे होता है ? गौतम प्रकृतिकी भद्रतासे, प्रकृतिकी विनीततासे, दयालुतासे, अमत्सरभावसे और मनुष्य युष्य कार्मणशरीर-प्रयोग नामकर्मके उदयसे मनुष्यायुष्य कार्मणशरीर प्रयोगवन्ध होता है। भगवन् ! देव आयुष्य कार्मणशरीर प्रयोगवन्ध किस कर्मके उदयसे होता है ? गौतम ! सरागसंयम से, संयमासंयम(देश विरति)से, अज्ञान तप करनेसे, अकामनिर्जरा से और देवायुष्य कार्मण-शरीर-प्रयोग नाम-कर्मके उदयसे देवायुष्य कार्मण-शरीर प्रयोगवन्ध होता है।

भगवन् ! शुभनाम कार्मण-शरीर प्रयोग-वन्ध किस कर्म के उदय से होता है ? गौतम ! काया की सरलतासे, भाव की सरलता से, भाषा की सरलता से और अविसंवादन योग से तथा शुभनाम कार्मण-शरीर-प्रयोग नामकर्म के उदय से शुभनाम कार्मण-शरीर प्रयोग-वन्ध होता है। भगवन् ! अशुभ नाम कार्मण शरीर प्रयोग-वन्ध किस कर्मके उदय से होता है ? गौतम ! काया की वक्रता से, भाव की वक्रता से, भाषा की वक्रता से, विसंवादन योगसे और अशुभनाम कार्मण-प्रयोग नाम-कर्मके उदय से अशुभनाम कार्मण-शरीर प्रयोग-वन्ध होता है।

भगवन् ! उच्चगोत्र कार्मण-शरीर प्रयोग-वन्ध किस कर्म के उदय से होता है ? गौतम ! जाति-मद, वलमद, रूपमद, तपमद, श्रुतमद, लाभमद और ऐश्वर्यमद, ये आठ मद न करने से तथा उच्चगोत्र कार्मण-शरीरप्रयोग नाम-कर्म के उदय से उच्चगोत्र कार्मणशरीर प्रयोगवन्ध होता है। भगवन् ! नीचगोत्र कार्मणशरीर प्रयोग-वन्ध किस कर्म के उदय से होता है ? गौतम ! जातिमद, कुलमद, वलमद यावत् ऐश्वर्यमद–ये आठ मद करने से तथा नीचगोत्र कार्मण-शरीर-प्रयोग नाम-कर्म के उदय से नीचगोत्र कार्मण-शरीर वंधता है।

भगवन् ! अन्तराय कार्मण-शरीर प्रयोगवन्ध किस कर्म के उदय से होता है ? गौतम ! दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय और वीर्यान्तराय से तथा अन्तराय-कार्मण-शरीर-प्रयोग नामकर्म के उदय से अन्तराय-कार्मण-शरीर-प्रयोग-वन्ध होता है।

भगवन् ! ज्ञानावरणीय कार्मण-शरीर प्रयोगबन्ध देश-वन्ध है या सर्व-वन्ध ? गौतम ! देशवन्ध है, सर्व-वन्ध नहीं। इसी प्रकार यावत् अन्तराय-कार्मण-शरीर प्रयोग-वन्ध तक जानना चाहिये। भगवन् ! ज्ञानावरणीय-कार्मण-शरीर प्रयोग-वन्ध कितने काल तक रहता है ? गौतम ! ज्ञानावरणीय-कार्मण-शरीर-प्रयोग-वन्ध दो प्रकार का कहा गया है। यथा–१ अनादिअपर्यवसित और अनादि-सपर्यवसित। जिस प्रकार तैजस् शरीर का स्थितिकाल कहा, उसी प्रकार यहां भी कहना चाहिये। यावत् अन्तराय कर्म के स्थिति-काल तक कहना चाहिये।

भगवन् ! ज्ञानावरणीय कार्मण-शरीर प्रयोगवन्ध का अन्तर कितने काल

का होता है ? गौतम ! अनादिअपर्यवसित और अनादिसपर्यवसित । ज्ञानावरणीय कार्मण-शरीर प्रयोगबंध का अन्तर नहीं होता । जिस प्रकार तैजस्-शरीर प्रयोग-बंधके अन्तर के विषय में कहा गया, उसी प्रकार यहां भी समझना चाहिये, यावत् अन्तराय कार्मण-शरीर-प्रयोग-बन्ध के अन्तर तक जानना चाहिये । भगवन् ! ज्ञानावरणीय कर्मके देश-बंधक और अबन्धक जीवों में कौन किससे कम, अधिक, तुल्य या विशेषाधिक हैं ? गौतम ! जिस प्रकार तैजस्-शरीर का अल्पबहुत्व कहा, उसी प्रकार कहना चाहिये । इसी प्रकार आयुष्य-कर्मके सिवाय यावत् अन्तराय-कर्म तक कहना चाहिये । भगवन् ! आयुष्यकर्म के देश-बन्धक और अबन्धक जीवों में कौन किससे कम, अधिक, तुल्य या विशेषाधिक हैं ? गौतम ! आयुष्य-कर्मके देशबन्धक जीव सबसे थोड़े हैं, उनसे अबन्धक जीव संख्यात गुणा हैं ॥३५०॥

भगवन् ! जिस जीव के औदारिक शरीर का सर्व-बन्ध है, क्या वह जीव वैक्रिय-शरीर का बन्धक है, या अबन्धक है ? गौतम ! वह बन्धक नहीं, अबंधक है । भगवन् ! औदारिक शरीर का सर्वबन्धक जीव आहारक-शरीर का बन्धक है, या अवन्धक ? गौतम ! वह बन्धक नहीं, अवन्धक है । भगवन् ! औदारिक-शरीर का सर्व-बन्धक जीव तैजस्-शरीर का वन्धक है, या अवन्धक ? गौतम ! वह वन्धक है, अबन्धक नहीं । भगवन् ! यदि वह तैजस्-शरीर का बन्धक है, तो क्या देश-वन्धक है, या सर्व-वन्धक है ? गौतम ! वह देश-बन्धक है, सर्व-वन्धक नहीं । भगवन् ! औदारिक-शरीर का सर्व-बन्धक जीव कार्मण-शरीर का वन्धक है, या अबन्धक ? गौतम ! तैजस्-शरीर के समान वह यावत् कार्मण-शरीर का देश-बन्धक है, सर्व-वन्धक नहीं । भगवन् ! औदारिक-शरीर का देश-वन्धक जीव वैक्रिय शरीर का वन्धक है, या अबन्धक है ? गौतम ! वह वन्धक नहीं, अबन्धक है । जिस प्रकार सर्व-वन्धक का कहा, उसी प्रकार देश-बन्धक के विषय में भी यावत् कार्मण-शरीर तक कहना चाहिये ।

भगवन् ! वैक्रिय-शरीर का सर्व-बन्धक जीव औदारिक-शरीर का बन्धक है, या अबन्धक ? गौतम ! वह वन्धक नहीं, अवन्धक है । इसी प्रकार आहारक-शरीर के विषय में भी जानना चाहिये । तैजस् और कार्मण शरीर के विषय में जिस प्रकार औदारिक-शरीर के साथ कथन किया है, उसी प्रकार वैक्रिय-शरीर के साथ भी कहना चाहिये यावत् वह देश-वन्धक है, सर्वबन्धक नहीं । भगवन् ! वैक्रिय-शरीर का देश-वन्धक जीव औदारिक-शरीर का बन्धक है या अवन्धक ? गौतम ! वह वन्धक नहीं, अवन्धक है । जिस प्रकार वैक्रिय-शरीर के सर्व-वन्ध के विषय में

कहा, उसी प्रकार देश-वन्ध के विषय में भी यावत् कार्मण-शरीर तक कहना चाहिये।

भगवन् ! आहारक शरीर का सर्व वन्धक जीव औदारिक-शरीर का वन्धक है या अवन्धक ? गौतम ! वह वन्धक नहीं, अवन्धक है। इसी प्रकार वैक्रिय-शरीर के विषय में भी जानना चाहिए। तैजस और कार्मण-शरीर के विषय में औदारिक-शरीर के विषय में कहा उसी प्रकार जानना चाहिए, वैसे ही आहारक-शरीर के विषय में भी कहना चाहिये। भगवन् ! आहारक-शरीर का देश-वन्धक जीव क्या औदारिक-शरीर का वन्धक है या अवन्धक ? गौतम ! जिस प्रकार आहारक-शरीर के सर्व-वन्ध के विषय में कहा, उसी प्रकार देशवन्धक के विषय में भी कहना चाहिये यावत् कार्मण-शरीर तक कहना चाहिये।

भगवन् ! तैजस्-शरीर का देश-वन्धक जीव औदारिक-शरीर का वन्धक है या अवन्धक ? गौतम ! वह वन्धक भी है और अवन्धक भी। भगवन् ! यदि वह औदारिक-शरीर का वन्धक है, तो देश-वन्धक है या सर्व-वन्धक ? गौतम ! वह देशवन्धक भी है और सर्ववन्धक भी। भगवन् ! तैजस्-शरीर का बन्धक जीव वैक्रिय-शरीर का वन्धक है या अवन्धक ? गौतम ! पूर्व कथनानुसार जानना चाहिये। इसी प्रकार आहारक-शरीर के विषय में भी जानना चाहिये।

भगवन् ! तैजस-शरीर का वन्धक जीव कार्मण-शरीरका वन्धक है या अवन्धक ? गौतम ! वह वन्धक है, अवन्धक नहीं। भगवन् ! यदि वह कार्मण-शरीर का वन्धक है, तो देशवन्धक है या सर्व-वन्धक ? गौतम ! वह देश-वन्धक है, सर्व-वन्धक नहीं। भगवन् ! कार्मण-शरीर का देश-वन्धक जीव औदारिक-शरीर का वन्धक है या अवन्धक ? गौतम ! जिस प्रकार तैजस्-शरीर का कथन किया है, उसी प्रकार कार्मण-शरीर का भी कहना चाहिये यावत् वह तैजस्-शरीर का देश-वन्धक है, सर्व-वन्धक नहीं ॥३५१॥

भगवन् ! औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस् और कार्मण शरीर के देश-वन्धक, सर्ववन्धक और अवन्धक—इन सब जीवों में कौन किससे कम, अधिक, तुल्य या विशेषाधिक है ? गौतम ! (१) सबसे थोड़े जीव आहारक-शरीर के सर्व-वन्धक हैं। (२) उनसे आहारक-शरीर के देश-वन्धक संख्यात गुणा हैं। (३) उनसे वैक्रिय-शरीर के सर्व-वन्धक असंख्यात गुणा हैं। (४) उनसे वैक्रिय-शरीर के देश-वन्धक असंख्यात गुणा हैं। (५) उनसे तैजस् और कार्मण-शरीरके अवन्धक जीव अनन्त गुणा हैं, और ये दोनों परस्पर तुल्य हैं। (६) उनसे औदारिक-शरीर के सर्व-वन्धक जीव अनन्त गुणा हैं। (७) उनसे औदारिक-शरीरके अवन्धक जीव विशेषाधिक हैं। (८) उनसे औदारिक-शरीरके देश-वन्धक जीव असंख्यात गुणा हैं। (९) उनसे तैजस् और कार्मण-शरीर के देशवन्धक जीव विशेषाधिक है।

(१०) उनसे वैक्रिय-शरीर के अबन्धक जीव विशेषाधिक हैं। (११) उनसे आहारक-शरीर के अबन्धक जीव विशेषाधिक हैं। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है।... ऐसा कहकर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ॥३५२॥

॥ आठवें शतक का नौवां उद्देशक समाप्त ॥

शतक ८ उद्देशक १०—श्रुत और शील के आराधकादि

राजगृह नगर में यावत् गौतम स्वामी ने इस प्रकार पूछा-भगवन् ! अन्य-तीर्थिक इस प्रकार कहते हैं यावत् प्ररूपणा करते हैं—१ शील ही श्रेष्ठ है, २ श्रुत ही श्रेष्ठ है, ३ (शील निरपेक्ष) श्रुत ही श्रेष्ठ है अथवा (श्रुतनिरपेक्ष) शील ही श्रेष्ठ है। तो हे भगवन् ! यह किस प्रकार है ? हे गौतम ! अन्यतीर्थिकों ने जो इस प्रकार कहा है, वह मिथ्या कहा है। गौतम ! मैं इस प्रकार कहता हूं यावत् प्ररूपणा करता हूं। मैंने चार प्रकार के पुरुष कहे हैं, यथा—

१ कोई शील सम्पन्न है, परन्तु श्रुत सम्पन्न नहीं है। २ कोई पुरुष श्रुत सम्पन्न है, परन्तु शील सम्पन्न नहीं है। ३ कोई पुरुष शील सम्पन्न भी है और श्रुत सम्पन्न भी है। ४ कोई पुरुष शील सम्पन्न भी नहीं और श्रुत सम्पन्न भी नहीं।

(१) इनमें से जो प्रथम प्रकार का पुरुष है, वह शीलवान् है, परन्तु श्रुतवान् नहीं। वह उपरत (पापादि से निवृत्त) है, परन्तु धर्म को नहीं जानता।...गौतम ! उस पुरुष को मैंने 'देश-आराधक' कहा है। (२) जो दूसरे प्रकार का पुरुष है, वह शीलवान् नहीं, परन्तु श्रुतवान् है। वह पुरुष अनुपरत (पापादि से अनिवृत्त) है, परन्तु धर्म को जानता है। हे गौतम ! उस पुरुष को मैंने 'देश-विराधक' कहा है। (३) जो तीसरा पुरुष है, वह शीलवान् भी है और श्रुतवान् भी है। वह पुरुष उपरत है और धर्म को जानता है।...गौतम ! उस पुरुष को मैंने 'सर्वाराधक' कहा है। (४) जो चौथा पुरुष है, वह शील और श्रुत दोनों से रहित है। वह अनुपरत है और धर्मका भी ज्ञाता नहीं है। हे गौतम ! उस पुरुषको मैंने 'सर्व-विराधक' कहा है॥३५३॥

भगवन् ! आराधना कितने प्रकार की कही गई है ? गौतम ! आराधना तीन प्रकारकी कही गई है। यथा-१ ज्ञान आराधना, २ दर्शन आराधना और ३ चारित्र आराधना। भगवन् ! ज्ञान आराधना कितने प्रकार की कही गई है ? गौतम ! तीन प्रकारकी कही गई है। यथा-१ उत्कृष्ट, २ मध्यम और ३ जघन्य। भगवन् ! दर्शन आराधना कितने प्रकारकी कही गई है ? गौतम ! ज्ञान आराधना के समान दर्शन आराधना भी तीन प्रकारकी और चारित्र आराधना भी तीन प्रकार की कही गई है।

भगवन् ! जिस जीवके उत्कृष्ट ज्ञान आराधना होती है, उसके उत्कृष्ट दर्शन आराधना होती है और जिस जीवके उत्कृष्ट दर्शन आराधना होती है, उस जीवके उत्कृष्ट ज्ञान आराधना होती है ? गौतम ! जिस जीवके उत्कृष्ट ज्ञान आराधना होती है, उसके उत्कृष्ट या मध्यम दर्शन आराधना होती है । जिस जीव के उत्कृष्ट दर्शन आराधना होती है, उसके उत्कृष्ट या मध्यम या जघन्य ज्ञान आराधना होती है ।

भगवन् ! जिस जीवके उत्कृष्ट ज्ञान आराधना होती है, उसके उत्कृष्ट चारित्र आराधना होती है और जिस जीवके उत्कृष्ट चारित्र आराधना होती है, उसके उत्कृष्ट ज्ञान आराधना होती है ? गौतम ! जिस प्रकार उत्कृष्ट ज्ञान आराधना और दर्शन आराधनाके विषय में कहा, उसी प्रकार उत्कृष्ट ज्ञान आराधना और उत्कृष्ट चारित्र आराधनाके विषयमें भी कहना चाहिये ।

भगवन् ! जिसके उत्कृष्ट दर्शन आराधना होती है, उसके उत्कृष्ट चारित्र आराधना होती है और जिसके उत्कृष्ट चारित्र आराधना होती है, उसके उत्कृष्ट दर्शन आराधना होती है ? गौतम ! जिसके उत्कृष्ट दर्शन आराधना होती है, उसके उत्कृष्ट या जघन्य या मध्यम चारित्र आराधना होती है और जिसके उत्कृष्ट चारित्र आराधना होती है, उसके नियमा (अवश्य) उत्कृष्ट दर्शन आराधना होती है ।

भगवन् ! ज्ञान की उत्कृष्ट आराधना करके जीव कितने भव ग्रहण करके सिद्ध होता है, यावत् सभी दुःखोंका अन्त करता है ? गौतम ! कितने ही जीव उसी भवमें सिद्ध हो जाते हैं, यावत् सभी दुःखोंका अन्त कर देते हैं । कितने ही जीव दो भवग्रहण करके सिद्ध होते हैं यावत् समस्त दुःखोंका अन्त करते हैं । कितने ही जीव कल्पोत्पन्न देवलोकोंमें अथवा कल्पातीत देवलोकोंमें उत्पन्न होते हैं ।

भगवन् ! दर्शनकी उत्कृष्ट आराधना करके जीव कितने भवग्रहण करके सिद्ध होता है यावत् सभी दुःखोंका अन्त करता है ? गौतम ! जिस प्रकार उत्कृष्ट ज्ञान आराधनाके विषयमें कहा, उसी प्रकार उत्कृष्ट दर्शन आराधनाके विषयमें भी कहना चाहिए । भगवन् ! उत्कृष्ट चारित्र आराधना करके जीव कितने भव ग्रहण करके सिद्ध होता है, यावत् समस्त दुःखोंका अन्त करता है ? गौतम ! जिस प्रकार उत्कृष्ट ज्ञान आराधनाके विषयमें कहा, उसी प्रकार उत्कृष्ट चारित्र आराधनाके विषयमें भी कहना चाहिये । कितने ही जीव कल्पातीत देवलोकोंमें उत्पन्न होते हैं ।

भगवन् ! ज्ञानकी मध्यम आराधना करके जीव कितने भव ग्रहण करके सिद्ध होता है, यावत् सर्व दुःखोंका अन्त करता है ? गौतम ! कितने ही जीव दो

भव ग्रहण करके सिद्ध होते हैं यावत् सभी दुःखोंका अन्त करते हैं, वे तीसरे भव का अतिक्रमण नहीं करते। भगवन्! दर्शनकी मध्यम आराधना करके जीव कितने भव ग्रहण करके सिद्ध होता है, यावत् सर्व दुःखोंका अन्त करता है ? गौतम ! जिस प्रकार मध्यम ज्ञान आराधनाके विषयमें कहा है, उसी प्रकार मध्यम दर्शन आराधना और मध्यम चारित्र आराधनाके विषयमें भी कहना चाहिये।

भगवन् ! ज्ञानकी जघन्य आराधना करके जीव कितने भव ग्रहण करके सिद्ध होता है, यावत् सभी दुःखोंका अन्त करता है ? गौतम ! कितने ही जीव तीसरे भवमें सिद्ध होते हैं यावत् सर्व दुःखोंका अन्त करते हैं, परन्तु सात-आठ भवका अतिक्रमण नहीं करते। इसी प्रकार जघन्य दर्शन आराधना और जघन्य चारित्र आराधनाके विषयमें भी कहना चाहिए ॥३५४॥

भगवन् ! पुद्गल परिणाम कितने प्रकारका कहा गया है ? गौतम ! पांच प्रकारका कहा गया है। यथा–१ वर्ण परिणाम, २ गन्ध परिणाम, ३ रस परिणाम, ४ स्पर्श परिणाम और ५ संस्थान परिणाम। भगवन् ! वर्ण परिणाम कितने प्रकारका कहा गया है ? गौतम ! पांच प्रकारका कहा गया है। यथा–१ काला वर्ण-परिणाम, यावत् शुक्ल (श्वेत) वर्ण-परिणाम। इसी प्रकार इस अभिलाप द्वारा दो प्रकारका गन्ध-परिणाम, पांच प्रकारका रस-परिणाम और आठ प्रकारका स्पर्शपरिणाम जानना चाहिए। भगवन् ! संस्थान-परिणाम कितने प्रकारका कहा गया है ? गौतम ! पांच प्रकारका कहा गया है। यथा–परिमण्डल संस्थान-परिणाम, यावत् आयत संस्थान-परिणाम ॥३५५॥

भगवन् ! पुद्गलास्तिकायका एक प्रदेश (१) द्रव्य है, (२) द्रव्य-देश है, (३) बहुत द्रव्य हैं, (४) बहुत द्रव्य-देश हैं, अथवा (५) एक द्रव्य और एक द्रव्य-देश है, (६) अथवा एक द्रव्य और बहुत द्रव्य-देश हैं, (७) अथवा बहुत द्रव्य और एक द्रव्य-देश है, (८) अथवा बहुत द्रव्य और बहुत द्रव्य-देश हैं ? गौतम ! वह कथंचित् एक द्रव्य है, कथंचित् एक द्रव्य-देश है, परन्तु वह बहुत द्रव्य नहीं और बहुत द्रव्य-देश भी नहीं। एक द्रव्य और एक द्रव्य-देश भी नहीं। यावत् बहुत द्रव्य और बहुत द्रव्य-देश नहीं।

भगवन् ! पुद्गलास्तिकायके दो प्रदेश क्या एक द्रव्य है, या एक द्रव्य-देश है, इत्यादि पूर्वोक्त प्रश्न ? गौतम ! १ कथंचित् द्रव्य है, २ कथंचित् द्रव्यदेश है, ३ कथंचित् बहुत द्रव्य हैं, ४ कथंचित् बहुत द्रव्य-देश हैं, ५ कथंचित् एक द्रव्य और एक द्रव्यदेश है, परन्तु ६ एक द्रव्य और बहुत द्रव्य-देश नहीं, ७ बहुत द्रव्य और एक द्रव्यदेश नहीं, ८ बहुत द्रव्य और बहुत द्रव्यदेश नहीं।

भगवन् ! पुद्गलास्तिकायके तीन प्रदेश क्या एक द्रव्य है, या एक द्रव्य-देश है—इत्यादि पूर्वोक्त प्रश्न ? गौतम ! कथंचित् एक द्रव्य है, कथंचित् एक द्रव्य-देश

है, यावत् कथंचित् बहुत द्रव्य और एक द्रव्य-देश है, यहां तक सात भंग कहने चाहियें। परन्तु बहुत द्रव्य और बहुत द्रव्यदेश नहीं हैं। भगवन् ! पुद्गलास्तिकाय के चार प्रदेश एक द्रव्य है, या एक द्रव्य-देश है, इत्यादि पूर्वोक्त प्रश्न ? गौतम ! (१) कथंचित् एक द्रव्य है, (२) कथंचित् एक द्रव्य-देश है, इत्यादि आठ भंग कहने चाहियें। जिस प्रकार चार प्रदेशोंके विषयमें कहा, उसी प्रकार पांच, छह, सात, यावत् असंख्य प्रदेशों तक कहना चाहिये। भगवन् ! पुद्गलास्तिकायके अनन्त प्रदेश—एक द्रव्य है, या एक द्रव्य-देश है, इत्यादि पूर्वोक्त प्रश्न ? गौतम ! पहले कहे अनुसार इसमें भी आठ भंग कहने चाहियें ॥३५६॥

भगवन् ! लोकाकाशके प्रदेश कितने कहे गये हैं ? गौतम ! असंख्य प्रदेश कहे गये हैं। भगवन् ! प्रत्येक जीवके प्रदेश कितने कहे गये हैं ? गौतम ! लोकाकाशके जितने प्रदेश कहे गये हैं, उतने ही प्रत्येक जीवके प्रदेश कहे गये हैं ॥३५७॥

भगवन् ! कर्म-प्रकृतियां कितनी कही गई हैं ? गौतम ! कर्म-प्रकृतियां आठ कही गई हैं। यथा—ज्ञानावरणीय यावत् अन्तराय। भगवन् ! नैरयिक जीवोंकी कितनी कर्म-प्रकृतियां कही हैं ? गौतम ! आठ कर्म-प्रकृतियां कही गई हैं। इस प्रकार वैमानिक पर्यन्त सभी जीवोंके आठ कर्म-प्रकृतियां कही हैं। भगवन् ! ज्ञानावरणीय कर्मके कितने अविभागपरिच्छेद कहे हैं ? गौतम ! अनन्त अविभागपरिच्छेद कहे हैं। भगवन् ! नैरयिक जीवोंके ज्ञानावरणीय कर्मके कितने अविभागपरिच्छेद कहे हैं। गौतम ! अनन्त अविभागपरिच्छेद कहे हैं। इसी प्रकार सभी जीवोंके विषयमें कहना चाहिये। यावत् वैमानिक देवोंके विषयमें प्रश्न ? गौतम ! अनन्त अविभागपरिच्छेद कहे हैं। जिस प्रकार ज्ञानावरणीय कर्मके अविभागपरिच्छेद कहे, उसी प्रकार अन्तराय तक आठों कर्म-प्रकृतियोंके अविभागपरिच्छेद—वैमानिक पर्यन्त सभी जीवोंके कहना चाहिये।

भगवन् ! प्रत्येक जीवका प्रत्येक जीव-प्रदेश ज्ञानावरणीय कर्मके कितने अविभागपरिच्छेदोंसे आवेष्टित परिवेष्टित है ? गौतम ! कदाचित् आवेष्टित परिवेष्टित होता है और कदाचित् नहीं भी होता। यदि आवेष्टित-परिवेष्टित होता है, तो वह नियमा अनन्त अविभाग परिच्छेदोंसे होता है।

भगवन् ! प्रत्येक नैरयिक जीव का प्रत्येक जीव-प्रदेश ज्ञानावरणीय कर्मके कितने अविभाग परिच्छेदों से आवेष्टित-परिवेष्टित होता है ? गौतम ! वह नियमा अनन्त अविभागपरिच्छेदों से आवेष्टित परिवेष्टित होता है। जिस प्रकार नैरयिक जीव के विषय में कहा, उसी प्रकार यावत् वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिये। परन्तु मनुष्य का कथन औधिक (सामान्य) जीव की तरह कहना चाहिये।

भगवन् ! प्रत्येक जीव का प्रत्येक जीव-प्रदेश दर्शनावरणीय कर्मके कितने

अविभाग परिच्छेदों द्वारा आवेष्टित परिवेष्टित है ? गौतम ! जिस प्रकार ज्ञानावरणीय कर्म के विषय में दण्डक कहा है, उसी प्रकार यहां भी वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिये और यावत् अन्तराय कर्म पर्यन्त कहना चाहिये । परन्तु वेदनीय, आयुष्य, नाम और गोत्र—इन चार कर्मो के विषय में जिस प्रकार नैरयिक जीवों के लिये कथन किया है, उसी प्रकार मनुष्यों के लिये कहना चाहिये । शेष सब वर्णन पहले के समान कहना चाहिये ॥३५८॥

भगवन् ! जिस जीव के ज्ञानावरणीय कर्म है, उसके दर्शनावरणीय कर्म भी है और जिस जीव के दर्शनावरणीय कर्म है, उसके ज्ञानावरणीय कर्म भी है ? हां गौतम ! जिसके ज्ञानावरणीय कर्म है, उसके नियम से दर्शनावरणीय कर्म भी है और जिसके दर्शनावरणीय कर्म है, उसके नियमसे ज्ञानावरणीय कर्म भी है ।

भगवन् ! जिसके ज्ञानावरणीय कर्म है, उसके वेदनीय कर्म है, और जिसके वेदनीय कर्म है, उसके ज्ञानावरणीय कर्म है ? गौतम ! जिसके ज्ञानावरणीय कर्म है उसके नियम से वेदनीय कर्म भी है, किन्तु जिसके वेदनीय कर्म है, उसके ज्ञानावरणीय कर्म कदाचित् होता भी है और कदाचित् नहीं भी होता ।

भगवन् ! जिसके ज्ञानावरणीय कर्म है, उसके मोहनीय कर्म है ? और जिसके मोहनीय कर्म है, उसके ज्ञानावरणीय कर्म है ? गौतम ! जिसके ज्ञानावरणीय कर्म है, उसके मोहनीय कर्म कदाचित् होता है और कदाचित् नहीं होता । परन्तु जिसके मोहनीय कर्म है, उसके ज्ञानावरणीय कर्म नियम से है ।

भगवन् ! जिसके ज्ञानावरणीय कर्म है, उसके आयुष्य कर्म है, इत्यादि प्रश्न ? गौतम ! जिस प्रकार वेदनीय कर्म के विषय में कहा, उसी प्रकार आयुष्य कर्म के लिए भी कहना चाहिये । इसी प्रकार नाम और गोत्र कर्म के साथ भी कहना चाहिये । जिस प्रकार दर्शनावरणीय कर्म के सम्बन्धमें कहा, उसी प्रकार अन्तराय कर्म के साथ भी परस्पर नियमा कहना चाहिये ।

भगवन् ! जिस जीव के दर्शनावरणीय कर्म है, उसके वेदनीय कर्म है, और जिसके वेदनीय कर्म है, उसके दर्शनावरणीय कर्म है ? गौतम ! जिस प्रकार ज्ञानावरणीय कर्म का कथन—ऊपर के सात कर्मो के साथ कहा, उसी प्रकार दर्शनावरणीय कर्म का भी ऊपरके छह कर्मों के साथ कहना चाहिये । इस प्रकार यावत् अन्तराय कर्म तक कहना चाहिये ।

भगवन् ! जिस जीव के वेदनीय कर्म है, उसके मोहनीय कर्म है और जिस जीव के मोहनीय कर्म है, उस जीव के वेदनीय कर्म भी है ? गौतम ! जिस जीव के वेदनीय कर्म है, उसके मोहनीय कर्म कदाचित् होता है और कदाचित् नहीं होता, परन्तु जिसके मोहनीय कर्म है, उसके वेदनीय कर्म नियम से होता है ।

भगवन् ! जिसके वेदनीय कर्म है, उसके आयुष्य कर्म है, इत्यादि प्रश्न ?

गौतम ! ये दोनों कर्म परस्पर अवश्य होते हैं। जिस प्रकार आयुष्य कर्म के साथ कहा, उसी प्रकार नाम और गोत्र कर्म के साथ भी कहना चाहिये।

भगवन् ! जिसके वेदनीय कर्म है, उसके अन्तराय कर्म है, इत्यादि प्रश्न ? गौतम ! जिसके वेदनीय कर्म है, उसके अन्तराय कर्म कदाचित् होता है और कदाचित् नहीं भी होता। परन्तु जिसके अन्तराय कर्म होता है, उसके वेदनीय कर्म नियमा होता है।

भगवन् ! जिसके मोहनीय कर्म होता है, उसके आयुष्य कर्म होता है और जिसके आयुष्य कर्म होता है उसके मोहनीय कर्म होता है ? गौतम ! जिसके मोहनीय कर्म होता है, उसके आयुष्य कर्म अवश्य होता है। जिसके आयुष्य कर्म होता है, उसके मोहनीय कर्म कदाचित् होता है और कदाचित् नहीं भी होता। इसी प्रकार नाम, गोत्र और अन्तराय कर्म के विषय में भी कहना चाहिये।

भगवन् ! जिसके आयुष्य कर्म होता है, उसके नाम कर्म भी होता है, इत्यादि प्रश्न ? गौतम ! ये दोनों परस्पर नियमसे होते हैं। इसी प्रकार गोत्र के साथ भी कहना चाहिये। भगवन् ! जिसके आयुष्य कर्म होता है, उसके अन्तराय कर्म होता है इत्यादि प्रश्न ? गौतम ! जिसके आयुष्य कर्म होता है, उसके अन्तराय कर्म कदाचित् होता है और कदाचित् नहीं भी होता, परन्तु जिसके अन्तराय कर्म होता है, उसके आयुष्य कर्म अवश्य होता है।

भगवन् ! जिसके नाम कर्म होता है, उसके गोत्र कर्म होता है और जिसके गोत्र कर्म होता है, उसके नाम कर्म भी होता है ? गौतम ! जिसके नामकर्म होता है, उसके गोत्र-कर्म अवश्य होता है और जिसके गोत्र कर्म होता है, उसके नामकर्म भी अवश्य होता है। ये दोनों कर्म परस्पर नियम से होते हैं। भगवन् ! जिसके नामकर्म होता है, उसके अन्तराय कर्म होता है ? और जिसके अन्तराय कर्म होता है, उसके नामकर्म होता है ? गौतम ! जिसके नामकर्म होता है, उसके अन्तराय-कर्म कदाचित् होता है और कदाचित् नहीं भी होता। परन्तु जिसके अन्तराय-कर्म होता है, उसके नामकर्म अवश्य होता है।

भगवन् ! जिसके गोत्र-कर्म होता है, उसके अन्तराय-कर्म होता है और जिसके अन्तराय-कर्म होता है, उसके गोत्र-कर्म होता है ? गौतम ! जिसके गोत्र-कर्म होता है, उसके अन्तराय-कर्म कदाचित् होता है और कदाचित् नहीं भी होता। परन्तु जिसके अन्तराय कर्म होता है, उसके गोत्र-कर्म नियम से होता है ॥३५९॥

भगवन् ! जीव पुद्गली है, अथवा पुद्गल ? गौतम ! जीव पुद्गली भी है और पुद्गल भी। भगवन् ! ऐसा क्यों कहते हैं कि 'जीव पुद्गली भी है और पुद्गल भी है'? गौतम ! जिस पुरुषके पास छत्र हो उसे छत्री, दण्ड हो उसे दण्डी,

घट हो उसे घटी, पट हो उसे पटी, और कर हो उसे करी कहते हैं, उसी प्रकार जीव भी श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, जिव्हेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय की अपेक्षा 'पुद्गली' कहलाता है, और जीव की अपेक्षा 'पुद्गल' कहलाता है। इसलिये··· गौतम ! मैं ऐसा कहता हूं कि जीव पुद्गली भी है और पुद्गल भी है। भगवन् ! नैरयिक जीव पुद्गली है अथवा पुद्गल ? गौतम ! उपरोक्त सूत्रकी तरह यहां भी कहना चाहिये। अर्थात् नैरयिक जीव पुद्गली भी है और पुद्गल भी है। इसी प्रकार वैमानिक पर्यंत कहना चाहिये, परन्तु जिन जीवों के जितनी इन्द्रियां हों, उनके उतनी इन्द्रियां कहनी चाहियें। भगवन् ! सिद्ध जीव पुद्गली हैं या पुद्गल ? गौतम ! सिद्ध जीव पुद्गली नहीं, किन्तु पुद्गल हैं। भगवन् ! ऐसा क्यों कहा कि —'सिद्ध जीव पुद्गली नहीं, पुद्गल हैं' ? गौतम ! जीव की अपेक्षा सिद्ध जीव पुद्गल हैं, इसलिए ऐसा कहता हूं कि सिद्ध जीव पुद्गली नहीं, पुद्गल हैं। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है···। इस प्रकार कहकर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं ॥३६०॥

॥ आठवें शतकका दसवां उद्देशक समाप्त ॥

॥ आठवां शतक समाप्त ॥

—०—

शतक ६

नौवें शतक में चौंतीस उद्देशक हैं। यथा—जम्बूद्वीप के विषय में प्रथम उद्देशक है। ज्योतिषी देवों के सम्बन्ध में दूसरा उद्देशक है। तीसरे से तीसवें उद्देशक तक अट्ठाइस उद्देशकों में अन्तर्द्वीपों का वर्णन है। इकत्तीसवें उद्देशक में 'असोच्चा केवली' का वर्णन है। बत्तीसवें उद्देशक में गांगेय अनगार के प्रश्न हैं। तेतीसवां उद्देशक ब्राह्मणकुण्ड ग्राम विषयक है। चौंतीसवें उद्देशक में पुरुषघातक पुरुष आदि का वर्णन है।

उद्देशक १—जम्बूद्वीप

उस काल उस समयमें मिथिला नामकी नगरी थी। वर्णन। वहां मणिभद्र नाम का उद्यान था। वर्णन। वहां श्रमण भगवान् महावीर स्वामी पधारे। परिषद् वन्दन के लिये निकली और धर्मोपदेश सुनकर वापिस लौट गई, यावत् पर्युपासना करते हुए गौतम स्वामी ने इस प्रकार पूछा—भगवन् ! जम्बूद्वीप कहां है ? और जम्बूद्वीप का आकार कैसा है ? गौतम ! इस विषय में जम्बूद्वीप-

प्रज्ञप्ति में कहे अनुसार सारा वर्णन जानना चाहिये, यावत् इस जम्बूद्वीप में पूर्व और पश्चिम चौदह लाख छप्पन हजार नदियां हैं—यहां तक कहना चाहिये। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है।...ऐसा कहकर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ॥३६१॥

॥ नौवें शतक का प्रथम उद्देशक समाप्त ॥

शतक ९ उद्देशक २—जम्बूद्वीपादि में चन्द्रमा

राजगृह नगर में यावत् गौतम स्वामी ने इस प्रकार पूछा—भगवन् ! जम्बूद्वीप नाम के द्वीप में कितने चन्द्रमाओं ने प्रकाश किया, प्रकाश करते हैं और प्रकाश करेंगे ? गौतम ! जिस प्रकार जीवाभिगम सूत्र की तीसरी प्रतिपत्ति के दूसरे उद्देशक में कहा है, उसी प्रकार जानना चाहिये। यावत् 'एक लाख तेतीस हजार नौ सौ पचास कोड़ाकोड़ी ताराओं के समूह शोभित हुए, शोभित होते हैं और शोभित होंगे'—यहां तक जानना चाहिये।

भगवन् ! लवण समुद्र में कितने चन्द्रमाओं ने प्रकाश किया, करते हैं और प्रकाश करेंगे ? गौतम ! जिस प्रकार जीवाभिगम सूत्र की तीसरी प्रतिपत्ति के दूसरे उद्देशक में कहा है, उसी प्रकार ताराओं के वर्णन तक जानना चाहिये। धातकी-खण्ड, कालोदधि, पुष्करवर द्वीप, आभ्यन्तर पुष्करार्द्ध और मनुष्य क्षेत्र, इन सब में जीवाभिगम सूत्र के अनुसार जानना चाहिये। यावत् 'एक चन्द्र का परिवार यावत् कोड़ाकोड़ी तारागण हैं'—यहां तक जानना चाहिये।

भगवन् ! पुष्करार्द्ध समुद्रमें कितने चन्द्रमाओं ने प्रकाश किया, करते हैं और प्रकाश करेंगे ? गौतम ! जीवाभिगम सूत्र की तीसरी प्रतिपत्ति के दूसरे उद्देशक में सब द्वीप और समुद्रों में ज्योतिषी देवों का जो वर्णन कहा है, उसी प्रकार यावत् 'स्वयम्भूरमण समुद्र में यावत् शोभित हुए हैं, शोभित होते हैं और शोभेंगे।' यहां तक जानना चाहिये। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है।...ऐसा कहकर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ॥३६२॥

॥ नौवें शतक का दूसरा उद्देशक समाप्त ॥

शतक ९ उद्देशक ३ से ३०—अन्तर्द्वीपक मनुष्य

राजगृह नगर में यावत् गौतमस्वामी ने इस प्रकार पूछा—भगवन् ! दक्षिण दिशा का 'एकोरुक' मनुष्यों का 'एकोरुक' नामक द्वीप कहां है ? गौतम ! जम्बूद्वीप नाम के द्वीप के मेरु पर्वत से दक्षिण दिशा में चुल्लहिमवन्त नामक वर्षधर पर्वतके

पूर्व के चरमान्त (किनारे) से ईशान कोण में तीन सौ योजन लवण समुद्र में जाने पर वहां दक्षिण दिशा के 'एकोरुक' मनुष्यों का 'एकोरुक' नामक द्वीप है। गौतम! उस द्वीप की लम्बाई-चौड़ाई तीन सौ योजन है और उसका परिक्षेप (परिधि) नव सौ उनचास योजन से कुछ कम है। वह द्वीप एक पद्मवर वेदिका और एक वनखण्ड द्वारा चारों तरफ से वेष्टित है। इन दोनों का प्रमाण और वर्णन जीवाभिगम सूत्र की तीसरी प्रतिपत्ति के पहले उद्देशक के अनुसार जानना चाहिये। इसी क्रम से यावत् शुद्धदन्त द्वीप तक का वर्णन वहां से जान लेना चाहिये। 'इन द्वीपों के मनुष्य मरकर देवगति में उत्पन्न होते हैं'—यहां तक का वर्णन जानना चाहिये। इस प्रकार इन अट्ठाइस अन्तर्द्वीपों की अपनी अपनी लम्बाई चौड़ाई भी जान लेनी चाहिये। परन्तु यहां एक एक द्वीपके विषयमें एक एक उद्देशक कहना चाहिये। इस प्रकार इन अट्ठाइस अन्तरद्वीपों के अट्ठाइस उद्देशक होते हैं। हे भगवन्! यह इसी प्रकार है।...ऐसा कहकर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं ॥३६३॥

॥ नौवें शतक के तीन से तीस तक के उद्देशक समाप्त ॥

शतक ९ उद्देशक ३१—असोच्चा केवली

राजगृह नगर में यावत् गौतम स्वामी ने इस प्रकार पूछा—"भगवन्! केवली, केवली के श्रावक, केवली की श्राविका, केवली के उपासक, केवली की उपासिका, केवलीपाक्षिक (स्वयं बुद्ध), केवलीपाक्षिक के श्रावक, केवलीपाक्षिक की श्राविका, केवलिपाक्षिक के उपासक, केवलिपाक्षिक की उपासिका, इनमें से किसी के पास विना सुने ही किसी जीव को केवलि प्ररूपित धर्म श्रवण का लाभ होता है। गौतम! केवली यावत् केवलीपाक्षिककी उपासिका (इन दस) के पास सुने विना ही किसी जीव को केवलिप्ररूपित धर्मश्रवण का लाभ होता है (धर्म का बोध होता है) और किसी जीव को नहीं होता।

भगवन्! ऐसा किस कारण कहा गया कि—किसी के पास सुने विना भी किसी जीव को केवलिप्ररूपित धर्म का बोध होता है और किसी को नहीं होता? गौतम! जिस जीवके ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम किया हुआ है, उसको केवली यावत् केवलिपाक्षिक उपासिका—इनमें से किसी के पास सुने विना ही केवलिप्ररूपित धर्म श्रवणका लाभ होता है और जिस जीव ने ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम नहीं किया, उसको केवली यावत् केवलिपाक्षिक की उपासिका के पास सुने विना केवलिप्ररूपित धर्म श्रवण का लाभ नहीं होता।...गौतम! इस

कारण ऐसा कहा कि 'यावत् किसी को धर्म श्रवणका लाभ होता है और किसी को नहीं होता।'

भगवन् ! केवली यावत् केवलिपाक्षिककी उपासिका से सुने विना ही कोई जीव शुद्धबोधि (सम्यग्दर्शन) प्राप्त करता है ? गौतम ! केवली आदिके पास सुने विना कुछ जीव शुद्धबोधि प्राप्त करते हैं और कितनेक जीव शुद्धबोधि प्राप्त नहीं करते। भगवन् ! ऐसा किस कारण कहा गया कि 'यावत् शुद्धबोधि को प्राप्त नहीं करते ?' गौतम ! जिस जीवने दर्शनावरणीय (दर्शनमोहनीय) कर्म का क्षयोपशम किया है, उस जीवको केवली आदिके पास सुने विना ही शुद्धबोधिका लाभ होता है और जिस जीवने दर्शनावरणीयका क्षयोपशम नहीं किया, उस जीवको केवली आदिके पास सुने विना शुद्धबोधि का लाभ नहीं होता। इसलिये गौतम ! यावत् सुने विना शुद्धबोधि प्राप्त नहीं करते।

भगवन् ! केवली आदिके पास सुने विना क्या कोई जीव अगारवास छोड़कर और मुण्डित होकर अनगारिकपन (प्रव्रज्या) स्वीकार करता है ? गौतम ! कोई जीव स्वीकार करता है और कोई स्वीकार नहीं करता ? भगवन् ! इसका क्या कारण है ? गौतम ! जिस जीवके धर्मान्तरायिक कर्मका अर्थात् चारित्र धर्ममें अन्तरायभूत चारित्रावरणीय कर्मका क्षयोपशम किया हुआ है, वह जीव केवली आदि के पास सुने विना ही मुंडित होकर अनगारपने को स्वीकार करता है, परन्तु जिस जीवके धर्मान्तरायिक कर्मोंका क्षयोपशम नहीं हुआ, वह प्रव्रज्या स्वीकार नहीं करता, इसलिए पूर्वोक्त कथन है।

भगवन् ! केवली आदिके पास सुने विना क्या कोई जीव शुद्ध ब्रह्मचर्यवास को धारण करता है ? गौतम ! कोई जीव शुद्ध ब्रह्मचर्यवासको धारण करता है और कोई नहीं करता। भगवन् ! इसका क्या कारण है ? गौतम ! जिस जीवने चारित्रावरणीय कर्मका क्षयोपशम किया है, वह केवली आदिके पास सुने विना ही शुद्ध ब्रह्मचर्यवास को धारण करता है, परंतु जिसने चारित्रावरणीय कर्मका क्षयोपशम नहीं किया, वह जीव यावत् ब्रह्मचर्यवासको धारण नहीं करता, इस लिए पूर्वोक्त प्रकारसे कहा गया है।

भगवन् ! केवली आदिके पास सुने विना भी क्या कोई जीव शुद्ध संयम द्वारा संयम-यतना करता है ? गौतम ! कोई जीव करता है और कोई नहीं करता। भगवन् ! इसका क्या कारण है ? गौतम ! जिस जीव ने यतनावरणीय (वीर्यान्तराय) कर्मका क्षयोपशम किया है, वह केवली आदि किसी के पास सुने विना भी शुद्ध संयम द्वारा संयम-यतना करता है और जिसने यतनावरणीय कर्मका क्षयोपशम नहीं किया, वह यावत् शुद्ध संयम द्वारा संयम-यतना नहीं करता। इसलिये ···गौतम ! पूर्वोक्त प्रकार से कहा है।

भगवन् ! केवली आदिके पाससे धर्म श्रवण किये बिना ही क्या कोई जीव शुद्ध संवर द्वारा संवृत्त होता है (आस्रव निरोध करता है) ? गौतम ! कोई करता है और कोई नहीं भी करता। भगवन् ! इसका क्या कारण है ? गौतम ! जिस जीवने अध्यवसानावरणीय (भाव चारित्रावरणीय) कर्म का क्षयोपशम किया है, वह यावत् सुने बिना भी शुद्ध संवर द्वारा आस्रव का निरोध करता है और जिस ने अध्यवसानावरणीय कर्मका क्षयोपशम नहीं किया, वह शुद्ध संवर द्वारा आस्रव का निरोध नहीं करता। इसलिये……।

भगवन् ! केवली आदिके पाससे सुने बिना ही कोई जीव शुद्ध आभिनिबोधिकज्ञान उत्पन्न करता है ? गौतम ! कोई करता है और कोई नहीं करता। भगवन् ! इसका क्या कारण है ? गौतम ! जिस जीवने आभिनिबोधिक ज्ञानावरणीय कर्मका क्षयोपशम किया है, वह यावत् सुने बिना ही आभिनिबोधिक ज्ञान उत्पन्न करता है और जिस जीवने आभिनिबोधिक ज्ञानावरणीय कर्मका क्षयोपशम नहीं किया, वह यावत् आभिनिबोधिक ज्ञान उत्पन्न नहीं करता। इसलिये……।

भगवन् ! केवली आदिके पाससे सुने बिना ही कोई जीव शुद्ध श्रुतज्ञान उत्पन्न करता है ? गौतम ! जिस प्रकार आभिनिबोधिक ज्ञान का कथन किया गया, उसी प्रकार शुद्ध श्रुतज्ञान, शुद्ध अवधिज्ञान और शुद्ध मनःपर्ययज्ञानके विषय में भी कहना चाहिये, परन्तु श्रुतज्ञानमें श्रुत-ज्ञानावरणीय कर्मका क्षयोपशम, अवधिज्ञानमें अवधिज्ञानावरणीय कर्मका क्षयोपशम और मनःपर्ययज्ञानमें मनः-पर्ययज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम कहना चाहिये।

भगवन् ! केवली आदिके पास सुने बिना ही कोई जीव केवलज्ञान उत्पन्न करता है ? गौतम ! कोई करता है और कोई नहीं करता। भगवन् ! इसका क्या कारण है ? गौतम ! जिस जीवने केवल ज्ञानावरणीय कर्मका क्षय किया है, वह जीव केवलज्ञान उत्पन्न करता है और जिस जीवने केवलज्ञानावरणीय कर्मका क्षय नहीं किया, वह केवलज्ञान उत्पन्न नहीं करता। इसलिये……।

भगवन् ! केवली यावत् केवलिपाक्षिककी उपासिका, इन दसके पास केवलीप्ररूपित धर्म सुने बिना भी क्या कोई जीव केवली प्ररूपित धर्मका श्रवण-बोध (श्रुत सम्यक्त्वका अनुभव) करता है, मुण्डित होकर अगारवाससे अनगार-वासको स्वीकार करता है, शुद्ध ब्रह्मचर्यवास धारण करता है, शुद्ध संयम द्वारा संयमयतना करता है, शुद्धसंवर द्वारा आस्रवका निरोध करता है, शुद्ध आभिनि-बोधिक ज्ञान उत्पन्न करता है, यावत् शुद्ध मनःपर्ययज्ञान तथा केवलज्ञान उत्पन्न करता है ? गौतम ! केवली आदिके पाससे सुने बिना भी कोई जीव बोध प्राप्त करता है और कोई जीव नहीं करता। कोई जीव शुद्ध सम्यक्त्वका अनुभव करता

है और कोई नहीं करता। कोई जीव मुण्डित होकर अगारवाससे अनगारपन स्वीकार करता है और कोई नहीं करता। कोई जीव शुद्ध ब्रह्मचर्यवास धारण करता है और कोई नहीं करता। कोई जीव शुद्ध संयम द्वारा संयम-यतना करता है और कोई नहीं करता। कोई जीव शुद्ध संवर द्वारा आस्रवका निरोध करता है और कोई नहीं करता। कोई जीव शुद्ध आभिनिबोधिक ज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधि-ज्ञान, मनःपर्यय ज्ञान और केवलज्ञान उत्पन्न करता है और कोई जीव नहीं करता।

भगवन्! ऐसा कहने का कारण क्या है? गौतम! (१) जिस जीवने ज्ञानावरणीय कर्मका क्षयोपशम नहीं किया, (२) दर्शनावरणीयकर्म का क्षयोपशम नहीं किया, (३) धर्मान्तरायिक कर्मका क्षयोपशम नहीं किया, (४) चारित्रावरणीय कर्मका क्षयोपशम नहीं किया, (५) यतना-वरणीय कर्मका क्षयोपशम नहीं किया, (६) अध्यवसानावरणीय कर्मका क्षयोपशम नहीं किया, (७) आभिनिबोधिक ज्ञानावरणीय कर्मका क्षयोपशम नहीं किया, (८ से १०) इसी प्रकार श्रुतज्ञानावरणीय, अवधिज्ञानावरणीय और मनःपर्यय ज्ञानावरणीय कर्मका क्षयोपशम नहीं किया, (११) केवल ज्ञानावरणीय कर्मका क्षय नहीं किया, वे जीव केवलज्ञानी आदिके पास केवलिप्ररूपित धर्मको सुने विना धर्मका बोध प्राप्त नहीं करते, शुद्ध सम्यक्त्वका अनुभव नहीं करते, यावत् केवलज्ञानको उत्पन्न नहीं करते। जिन जीवोंने ज्ञानावरणीय कर्मका क्षयोपशम किया है, दर्शनावरणीय कर्मका क्षयोपशम किया है, धर्मान्तरायिक कर्मका क्षयोपशम किया है, यावत् केवलज्ञानावरणीय कर्मका क्षय किया है, वे जीव केवली आदिके पास सुने विना ही धर्मका बोध प्राप्त करते हैं, शुद्ध सम्यक्त्व का अनुभव करते हैं यावत् केवलज्ञान उत्पन्न करते हैं ॥३६४॥

निरन्तर छठ-छठ (वेले—वेले) का तप करते हुए सूर्यके सम्मुख ऊंचे हाथ करके, आतापना भूमिमें आतापना लेते हुए, उस जीवके प्रकृतिकी भद्रता, प्रकृतिकी उपशान्तता, स्वभावसे ही क्रोध-मान-माया-लोभके अत्यन्त अल्प होने, अत्यन्त मार्दव—नम्रता, अर्थात् प्रकृतिकी कोमलता, कामभोगोंमें आसक्ति नहीं होने, भद्रता और विनीतता से, किसी दिन शुभ अध्यवसाय, शुभपरिणाम, विशुद्ध लेश्या एवं तदावरणीय (विभंगज्ञानावरणीय) कर्मों के क्षयोपशमसे ईहा, अपोह, मार्गणा और गवेषणा करते हुए 'विभंग' नामक अज्ञान उत्पन्न होता है। उस उत्पन्न हुए विभंगज्ञान द्वारा वह जघन्य अंगुलके असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट असंख्यात हजार योजन तक जानता और देखता है। उस उत्पन्न हुए विभंगज्ञान द्वारा वह जीवोंको भी जानता है और अजीवोंको भी जानता है। वह पाखण्डी, आरम्भी, परिग्रही और संक्लेश को प्राप्त हुए जीवोंको भी जानता है और विशुद्ध जीवोंको भी जानता है। इसके अनन्तर वह विभंगज्ञानी सर्व प्रथम

सम्यक्त्व प्राप्त करता है। उसके बाद श्रमण-धर्म पर रुचि करता है, रुचि करके चारित्र अंगीकार करता है। फिर लिंग (साधुवेश) स्वीकार करता है। तब उस विभंगज्ञानीके मिथ्यात्वके पर्याय क्रमशः क्षीण होते-होते और सम्यग्दर्शन के पर्याय क्रमशः बढ़ते-बढ़ते वह 'विभंग' नामक अज्ञान सम्यक्त्व युक्त होता है और शीघ्र ही अवधिरूपमें परिवर्तित हो जाता है ॥३६५॥

भगवन् ! वह अवधिज्ञानी कितनी लेश्याओंमें होता है ? गौतम ! तीन विशुद्ध लेश्याओंमें होता है। यथा—१ तेजोलेश्या, २ पद्मलेश्या और ३ शुक्ल-लेश्या। भगवन् ! वह अवधिज्ञानी कितने ज्ञानमें होता है ? गौतम ! १ आभि-निबोधिकज्ञान, २ श्रुतज्ञान और ३ अवधिज्ञान, इन तीन ज्ञानोंमें होता है। भगवन् ! वह अवधिज्ञानी सयोगी होता है, या अयोगी ? गौतम ! वह सयोगी होता है, अयोगी नहीं होता। भगवन् ! यदि वह सयोगी होता है तो क्या मनयोगी होता है, वचनयोगी होता है, या काययोगी होता है ? गौतम ! वह मनयोगी होता है, वचनयोगी होता है और काययोगी भी होता है। भगवन् ! वह साकार उप-योग वाला होता है, या अनाकार उपयोग वाला ? गौतम ! वह साकार (ज्ञान) उपयोग वाला भी होता है और अनाकार (दर्शन) उपयोग वाला भी होता है।

भगवन् ! वह किस संहनन में होता है ? गौतम ! वह वज्रऋषभनाराच संहनन वाला होता है। भगवन् ! वह किस संस्थान में होता है ? गौतम ! वह छह संस्थानों में से किसी भी संस्थान में होता है। भगवन् ! वह अवधिज्ञानी कितनी ऊंचाई वाला होता है ? गौतम ! वह जघन्य सात हाथ और उत्कृष्ट पांच सौ धनुषकी ऊंचाई वाला होता है। भगवन् ! वह कितनी आयुष्य वाला होता है ? गौतम ! जघन्य साधिक आठ वर्ष और उत्कृष्ट पूर्व कोटि आयुष्य वाला होता है।

भगवन् ! वह सवेदी होता है, या अवेदी ? गौतम ! वह सवेदी होता है, अवेदी नहीं होता। भगवन् ! यदि वह सवेदी होता है, तो क्या स्त्री-वेदी होता है, पुरुष-वेदी होता है, नपुंसक-वेदी होता है, या पुरुषनपुंसक-वेदी (कृत्रिम नपुंसक) होता है ? गौतम ! स्त्रीवेदी नहीं होता, पुरुषवेदी होता है, नपुंसकवेदी नहीं होता, किन्तु पुरुषनपुंसकवेदी होता है। भगवन् ! वह अवधिज्ञानी सकषायी होता है, या अकषायी ? गौतम ! वह सकषायी होता है, अकषायी नहीं होता। भगवन् ! यदि वह सकषायी होता है, तो वह कितने कषाय वाला होता है ? गौतम ! वह संज्वलन क्रोध, मान, माया और लोभ—इन चार कषायों वाला होता है। भगवन् ! उसके कितने अध्यवसाय होते हैं ? गौतम ! उसके असंख्यात अध्यवसाय होते हैं। भगवन् ! वे अध्यवसाय प्रशस्त होते हैं, या अप्रशस्त ? गौतम ! प्रशस्त होते हैं, अप्रशस्त नहीं होते।

वह अवधिज्ञानी बढ़ते हुए प्रशस्त अध्यवसायोंसे, अनन्त नैरयिक-भवोंसे

अपनी आत्माको विमुक्त करता है, अनन्त तिर्यच-भवोंसे अपनी आत्माको विमुक्त करता है, अनन्त मनुष्य-भवोंसे अपनी आत्माको विमुक्त करता है और अनन्त देव-भवोंसे अपनी आत्माको विमुक्त करता है। जो ये नरक-गति, तिर्यञ्च गति, मनुष्य-गति और देव-गति नामक चार उत्तर प्रकृतियां हैं, उनके तथा दूसरी प्रकृतियोंके आधारभूत अनन्तानुवन्धी क्रोध, मान, माया और लोभका क्षय करता है, उनका क्षय करके अप्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया और लोभका क्षय करता है, उनका क्षय करके प्रत्याख्यानावरण..., उनका क्षय करके संज्वलन क्रोध, मान, माया और लोभका क्षय करता है, इसके पश्चात् पांच प्रकारका ज्ञानावरणीय कर्म, नौ प्रकारका दर्शनावरणीय कर्म, पांच प्रकारका अन्तराय कर्म तथा कटे हुए मस्तक वाले ताड़-वृक्ष के समान मोहनीय कर्मको बनाकर, कर्म-रजको बिखेर देने वाले अपूर्वकरणमें प्रवेश किये हुए उस जीवके अनन्त, अनुत्तर, व्याघात रहित, आवरण रहित, कृत्स्न (संपूर्ण) प्रतिपूर्ण एवं श्रेष्ठ केवलज्ञान और केवलदर्शन उत्पन्न होता है ।।३६६।।

भगवन् ! वे असोच्चाकेवली केवलिप्ररूपित धर्म कहते हैं, बतलाते हैं और प्ररूपणा करते हैं ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं। वे एक ज्ञात (उदाहरण) और एक प्रश्नके उत्तरके सिवाय धर्मका उपदेश नहीं करते। भगवन् ! वे असोच्चाकेवली किसीको प्रव्रजित करते हैं, मुण्डित करते हैं ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं, किन्तु (अमुकके पास तुम प्रव्रज्या ग्रहण करो—) ऐसा उपदेश करते (कहते) हैं। भगवन् ! वे असोच्चाकेवली सिद्ध होते हैं यावत् समस्त दुःखोंका अन्त करते हैं ? हां, गौतम ! वे सिद्ध होते हैं, यावत् समस्त दुःखोंका अन्त करते हैं ।।३६७।।

भगवन् ! वे असोच्चाकेवली क्या ऊर्ध्वलोकमें होते हैं, अधोलोकमें होते हैं, या तिर्यग्-लोकमें होते हैं ? गौतम ! ऊर्ध्व-लोकमें भी होते हैं, अधोलोकमें भी होते हैं और तिर्यग्-लोकमें भी होते हैं। यदि ऊर्ध्व-लोकमें होते हैं, तो शब्दापाती, विकटापाती, गन्धापाती और माल्यवन्त नामक वृत्त (वैताढ्य) पर्वतोंमें होते हैं। तथा संहरणकी अपेक्षा सौमनस वनमें अथवा पाण्डुक वनमें होते हैं। यदि अधो-लोकमें होते हैं, तो गर्त्ता (अधोलोक ग्रामादि) में अथवा गुफामें होते हैं। तथा संहरणकी अपेक्षा पाताल-कलशोंमें अथवा भवनवासी देवोंके भवनोंमें होते हैं। यदि तिर्यग्-लोकमें होते हैं, तो पन्द्रह कर्मभूमिमें होते हैं। तथा संहरणकी अपेक्षा ढाई द्वीप और समुद्रोंके एक भागमें होते हैं।

भगवन् ! वे असोच्चा केवली एक समयमें कितने होते हैं ? गौतम ! जघन्य एक, दो, तीन और उत्कृष्ट दस होते हैं। इसलिये हे गौतम ! मैं ऐसा कहता हूं कि केवली यावत् केवलिपाक्षिककी उपासिकाके पास केवली प्ररूपित धर्म सुने बिना ही किसी जीवको केवलि प्ररूपित धर्मका बोध होता है और किसी को नहीं होता,

यावत् कोई जीव केवलज्ञान उत्पन्न कर लेता है और कोई उत्पन्न नहीं करता ॥३६८॥

भगवन् ! केवली यावत् केवलिपाक्षिक की उपासिकाके पास धर्म-प्रतिपादक वचन सुनकर कोई जीव केवलिप्ररूपित धर्मका बोध प्राप्त कर सकता है ? गौतम ! केवली यावत् सुनकर कोई जीव…बोध प्राप्त करता है और कोई नहीं करता । इस विषयमें जिस प्रकार 'असोच्चा' की वक्तव्यता कही, उसी प्रकार 'सोच्चा' की भी कहनी चाहिये, परन्तु यहां 'सोच्चा' ऐसा पाठ कहना चाहिये । शेष सभी पूर्वोक्त वक्तव्यता कहनी चाहिये । यावत् जिस जीवके मनःपर्यय ज्ञानावरणीय कर्मका क्षयोपशम हुआ है और जिस जीव ने केवलज्ञानावरणीय कर्मका क्षय किया है, उस जीवको केवली आदिके पाससे सुनकर केवलिप्ररूपित धर्मका बोध होता है, शुद्ध सम्यक्त्वका बोध होता है यावत् केवलज्ञानकी प्राप्ति होती है ।

केवली आदिके पाससे धर्मप्रतिपादक वचन सुनकर सम्यग्दर्शनादि प्राप्त जीवको निरन्तर तेले-तेलेकी तपस्या द्वारा आत्माको भावित करते हुए, प्रकृतिकी भद्रता आदि गुणोंसे यावत् ईहा, अपोह, मार्गण गवेषणा करते हुए अवधिज्ञान उत्पन्न होता है । उस उत्पन्न हुए अवधिज्ञानके द्वारा वह जघन्य अंगुलके असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट अलोकमें लोक प्रमाण असंख्य खण्डोंको जानता और देखता है ।

भगवन् ! वह अवधिज्ञानी जीव कितनी लेश्याओंमें होता है ? गौतम ! वह छहों लेश्याओंमें होता है । यथा—कृष्णलेश्या यावत् शुक्ललेश्या । भगवन् ! वह अवधिज्ञानी कितने ज्ञानमें होता है ? गौतम ! वह तीन ज्ञान अथवा चार ज्ञान में होता है । यदि तीन ज्ञानमें होता है, तो आभिनिबोधिक ज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञानमें होता है, यदि चार ज्ञानमें होता है, तो आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञानमें होता है ।

भगवन् ! वह अवधिज्ञानी सयोगी होता है, या अयोगी होता है ? गौतम ! जिस प्रकार 'असोच्चा' के विषयमें कहा, उसी प्रकार यहां भी योग, उपयोग, संहनन, संस्थान, ऊंचाई और आयुष्य, इन सभीके विषयमें कहना चाहिये । भगवन् ! वह अवधिज्ञानी सवेदी होता है, या अवेदी ? गौतम ! वह अवधिज्ञानी सवेदी होता है अथवा अवेदी होता है । भगवन् ! यदि वह अवेदी होता है, तो क्या उपशान्त वेदी होता है, या क्षीण वेदी होता है ? गौतम ! वह उपशान्त वेदी नहीं होता, किन्तु क्षीण वेदी होता है ।

भगवन् ! यदि वह सवेदी होता है, तो क्या स्त्री-वेदी होता है, पुरुष-वेदी होता है, नपुंसक-वेदी होता है, या पुरुषनपुंसक-वेदी होता है ? गौतम ! वह स्त्री-वेदी होता है अथवा पुरुष-वेदी होता है अथवा पुरुषनपुंसक-वेदी होता है। भगवन् ! वह अवधिज्ञानी सकषायी होता है या अकषायी ? गौतम ! वह सकषायी होता है अथवा अकषायी होता है। भगवन् ! यदि वह अकषायी होता है, तो क्या उपशान्त कषायी होता है, या क्षीण कषायी ? गौतम ! वह उपशान्त कषायी नहीं होता, किन्तु क्षीणकषायी होता है।

भगवन् ! यदि वह सकषायी होता है, तो कितने कषायों में होता है ? गौतम ! वह चार कषायोंमें, तीन कषायोंमें, दो कषायोंमें, या एक कषायमें होता है। यदि चार कषायोंमें होता है, तो संज्वलन-क्रोध, मान, माया और लोभमें होता है। यदि तीन कषायोंमें होता है, तो संज्वलन मान, माया और लोभमें होता है। यदि दो कषायोंमें होता है, तो संज्वलन माया और लोभमें होता है। यदि एक कषायमें होता है, तो एक संज्वलन लोभमें होता है।

भगवन् ! उस अवधिज्ञानी के कितने अध्यवसाय होते हैं ? गौतम ! उसके असंख्यात अध्यवसाय होते हैं। 'असोच्चा केवली' में कहे अनुसार यावत् 'उसे केवलज्ञान केवलदर्शन उत्पन्न होता है।' यहां तक कहना चाहिये। भगवन् ! वे 'सोच्चा केवली' केवली-प्ररूपित धर्म कहते हैं, जतलाते हैं, प्ररूपित करते हैं ? हां, गौतम ! वे केवलीप्ररूपित धर्म कहते हैं, जतलाते हैं और प्ररूपित करते हैं। भगवन् ! वे किसी को प्रव्रजित करते हैं, मुण्डित करते हैं ? हां, गौतम ! वे प्रव्रजित करते हैं, मुण्डित करते हैं।

भगवन् ! उन सोच्चा केवलीके शिष्य भी किसी को प्रव्रजित करते हैं, मुण्डित करते हैं ? हां, गौतम ! उनके शिष्य भी प्रव्रजित करते हैं, मुण्डित करते हैं। भगवन् ! उन सोच्चा केवली के प्रशिष्य भी प्रव्रजित करते हैं, मुण्डित करते हैं ? हां, गौतम ! उनके प्रशिष्य भी प्रव्रजित करते हैं, मुण्डित करते हैं। भगवन् ! वे सोच्चा केवली सिद्ध होते हैं, बुद्ध होते हैं, यावत् समस्त दुःखों का अन्त करते हैं ? हां, गौतम ! वे सिद्ध होते हैं, बुद्ध होते हैं यावत् समस्त दुःखों का अन्त करते हैं।

भगवन् ! उनके शिष्य भी सिद्ध होते हैं, यावत् सभी दुःखों का अन्त करते हैं ? हां, गौतम ! सिद्ध होते हैं, यावत् समस्त दुःखों का अन्त करते हैं। भगवन् ! उनके प्रशिष्य भी सिद्ध होते हैं, यावत् समस्त दुःखों का अन्त करते हैं ? हां, गौतम ! सिद्ध होते हैं, यावत् समस्त दुःखों का अन्त करते हैं। भगवन् ! वे 'सोच्चा केवली' ऊर्ध्वलोक में होते हैं-इत्यादि प्रश्न ? गौतम ! 'असोच्चा' केवली के विषय में कहे अनुसार जानना चाहिये यावत् 'वे ढाई द्वीप समुद्र के एक भाग में

होते हैं'-यहां तक कहना चाहिये। भगवन् ! वे सोच्चा केवली एक समय में कितने होते हैं ? गौतम ! वे एक समय में जघन्य एक, दो, या तीन होते हैं और उत्कृष्ट एक सौ आठ होते हैं। इसलिये···गौतम ! ऐसा कहा गया है कि 'केवली यावत् केवलिपाक्षिक की उपासिका से धर्म-प्रतिपादक वचन सुनकर यावत् कोई जीव केवलज्ञान, केवलदर्शन उत्पन्न करता है और कोई उत्पन्न नहीं करता। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है।···ऐसा कहकर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं ॥३६९॥

॥ नौवें शतक का इकत्तीसवां उद्देशक समाप्त ॥

शतक ९ उद्देशक ३२

गांगेय प्रश्न—सान्तर निरन्तर उत्पत्ति आदि

उस काल उस समयमें वाणिज्य-ग्राम नामक नगर था (वर्णन)। वहां द्युतिपलाश नामक उद्यान था। वहां श्रमण भगवान् महावीर स्वामी पधारे। परिषद् वन्दन के लिये निकली। भगवान् ने धर्मोपदेश दिया। परिषद् वापिस चली गई। उस काल उस समय में पुरुषादानीय भगवान् पार्श्वनाथ के शिष्यानुशिष्य गांगेय नामक अनगार थे। वे जहां श्रमण भगवान् महावीर स्वामी थे, वहां आये और श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के न अति समीप न अति दूर खड़े रहकर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से इस प्रकार पूछा—भगवन् ! क्या नैरयिक सान्तर (अन्तर सहित) उत्पन्न होते हैं, या निरन्तर उत्पन्न होते हैं ? गांगेय ! नैरयिक सान्तर भी उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी। भगवन् ! असुरकुमार सान्तर उत्पन्न होते हैं, या निरन्तर···? गांगेय ! वे सान्तर भी उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी। इस प्रकार यावत् स्तनितकुमार तक जानना चाहिये।

भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीव सान्तर उत्पन्न होते हैं, या निरन्तर···? गांगेय ! पृथ्वीकायिक जीव सान्तर उत्पन्न नहीं होते, निरन्तर उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार यावत् वनस्पतिकायिक जीवों तक जानना चाहिये। बेइंद्रिय जीवों से लेकर यावत् वैमानिक देवों तक नैरयिकों के समान जानना चाहिये ॥३७०॥

भगवन् ! नैरयिक जीव सान्तर उद्वर्तते (मरते) हैं, या निरन्तर···? गांगेय ! नैरयिक जीव सान्तर भी उद्वर्तते हैं और निरन्तर भी। इसी प्रकार यावत् स्तनित-कुमारों तक जानना चाहिये। भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीव सान्तर उद्वर्तते हैं, या निरन्तर···?गांगेय ! पृथ्वीकायिक जीव सांतर नहीं उद्वर्तते, किन्तु निरन्तर उद्वर्तते हैं। इसी प्रकार यावत् वनस्पतिकायिक जीवों तक जानना चाहिये—ये सान्तर नहीं, निरन्तर उद्वर्तते हैं। भगवन् ! बेइंद्रिय जीव सान्तर उद्वर्तते हैं या निरन्तर ?

भगवन् ! यदि वह सवेदी होता है, तो क्या स्त्री-वेदी होता है, पुरुष-वेदी होता है, नपुंसक-वेदी होता है, या पुरुषनपुंसक-वेदी होता है ? गौतम ! वह स्त्री-वेदी होता है अथवा पुरुष-वेदी होता है अथवा पुरुषनपुंसक-वेदी होता है। भगवन् ! वह अवधिज्ञानी सकषायी होता है या अकषायी ? गौतम ! वह सकषायी होता है अथवा अकषायी होता है। भगवन् ! यदि वह अकषायी होता है, तो क्या उपशान्त कषायी होता है, या क्षीण कषायी ? गौतम ! वह उपशान्त कषायी नहीं होता, किन्तु क्षीणकषायी होता है।

भगवन् ! यदि वह सकषायी होता है, तो कितने कषायों में होता है ? गौतम ! वह चार कषायोंमें, तीन कषायोंमें, दो कषायोंमें, या एक कषायमें होता है। यदि चार कषायोंमें होता है, तो संज्वलन–क्रोध, मान, माया और लोभमें होता है। यदि तीन कषायोंमें होता है, तो संज्वलन मान, माया और लोभमें होता है। यदि दो कषायोंमें होता है, तो संज्वलन माया और लोभमें होता है। यदि एक कषायमें होता है, तो एक संज्वलन लोभमें होता है।

भगवन् ! उस अवधिज्ञानी के कितने अध्यवसाय होते हैं ? गौतम ! उसके असंख्यात अध्यवसाय होते हैं। 'असोच्चा केवली' में कहे अनुसार यावत् 'उसे केवलज्ञान केवलदर्शन उत्पन्न होता है।' यहां तक कहना चाहिये। भगवन् ! वे 'सोच्चा केवली' केवली-प्ररूपित धर्म कहते हैं, जतलाते हैं, प्ररूपित करते हैं ? हां, गौतम ! वे केवलीप्ररूपित धर्म कहते हैं, जतलाते हैं और प्ररूपित करते हैं। भगवन् ! वे किसी को प्रव्रजित करते हैं, मुण्डित करते हैं ? हां, गौतम ! वे प्रव्रजित करते हैं, मुण्डित करते हैं।

भगवन् ! उन सोच्चा केवलीके शिष्य भी किसी को प्रव्रजित करते हैं, मुण्डित करते हैं ? हां, गौतम ! उनके शिष्य भी प्रव्रजित करते हैं, मुण्डित करते हैं। भगवन् ! उन सोच्चा केवली के प्रशिष्य भी प्रव्रजित करते हैं, मुण्डित करते हैं ? हां, गौतम ! उनके प्रशिष्य भी प्रव्रजित करते हैं, मुण्डित करते हैं। भगवन् ! वे सोच्चा केवली सिद्ध होते हैं, बुद्ध होते हैं, यावत् समस्त दुःखों का अन्त करते हैं ? हां, गौतम ! वे सिद्ध होते हैं, बुद्ध होते हैं यावत् समस्त दुःखों का अन्त करते हैं।

भगवन् ! उनके शिष्य भी सिद्ध होते हैं, यावत् सभी दुःखों का अन्त करते हैं ? हां, गौतम ! सिद्ध होते हैं, यावत् समस्त दुःखों का अन्त करते हैं। भगवन् ! उनके प्रशिष्य भी सिद्ध होते हैं, यावत् समस्त दुःखों का अन्त करते हैं ? हां, गौतम ! सिद्ध होते हैं, यावत् समस्त दुःखों का अन्त करते हैं। भगवन् ! वे 'सोच्चा केवली' ऊर्ध्वलोक में होते हैं–इत्यादि प्रश्न ? गौतम ! 'असोच्चा' केवली के विषय में कहे अनुसार जानना चाहिये यावत् 'वे ढाई द्वीप समुद्र के एक भाग में

प्रभाके साथ अनुक्रमसे दूसरी नरकोंके साथ संयोग करनेसे छह भंग होते हैं।)

अथवा दो नैरयिक रत्नप्रभामें और एक शर्कराप्रभामें उत्पन्न होता है। अथवा यावत् दो जीव रत्नप्रभामें और एक जीव अधःसप्तम पृथ्वीमें होता है। (इस प्रकार २-१ के भी पूर्ववत् छह भंग होते हैं।) अथवा एक शर्कराप्रभामें दो वालुकाप्रभा में होते हैं। अथवा यावत् एक शर्कराप्रभा में और दो अधःसप्तम पृथ्वी में होते हैं। (इस प्रकार शर्कराप्रभा के साथ १-२ के पांच भंग होते हैं।) अथवा दो शर्कराप्रभा में और एक वालुकाप्रभा में होता है। अथवा यावत् दो शर्कराप्रभा में और एक अधःसप्तमपृथ्वी में उत्पन्न होता है। (इस प्रकार २-१ के पूर्ववत् पांच भंग होते हैं।) जिस प्रकार शर्कराप्रभा की वक्तव्यता कही, उसी प्रकार सातों नरकों की वक्तव्यता जाननी चाहिये।

अथवा यावत् दो तमःप्रभा में और एक तमस्तमःप्रभा में होता है। यहां तक जानना चाहिये। अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभामें और एक वालुकाप्रभामें होता है। अथवा एक रत्नप्रभामें, एक शर्कराप्रभामें और एक पंकप्रभा में होता है, अथवा यावत् एक रत्नप्रभामें, एक शर्कराप्रभामें और एक अधःसप्तम पृथ्वी में होता है। (इस प्रकार रत्नप्रभा के और शर्कराप्रभा के साथ पांच विकल्प होते हैं) अथवा एक रत्नप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में और एक पंकप्रभा में होता है। अथवा एक रत्नप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में और एक धूमप्रभा में होता है। इस प्रकार यावत् अथवा एक रत्नप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में और एक अधः-सप्तम पृथ्वी में होता है। (इस प्रकार शर्कराप्रभा को छोड़ देने पर चार विकल्प होते हैं) अथवा एक रत्नप्रभा में, एक पंकप्रभा में और एक धूमप्रभा में होता है, अथवा यावत् एक रत्नप्रभा में, एक पंकप्रभा में और एक अधःसप्तम पृथ्वी में होता है। (इस प्रकार वालुकाप्रभा को छोड़ देने पर तीन विकल्प होते हैं)

अथवा एक रत्नप्रभा में, एक धूमप्रभा में और एक तमःप्रभा में होता है। अथवा एक रत्नप्रभा में, एक धूमप्रभा में और एक अधःसप्तम पृथ्वी में होता है। (इस प्रकार पंकप्रभा को छोड़ देने पर दो विकल्प होते हैं) अथवा एक रत्नप्रभा में, एक तमःप्रभा में और एक अधःसप्तम पृथ्वी में होता है। (धूमप्रभा को छोड़ने पर यह एक विकल्प होता है। इस प्रकार रत्नप्रभा के ५-४-३-२-१=१५ विकल्प होते हैं) अथवा एक शर्कराप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में और एक पंकप्रभा में होता है। अथवा एक शर्कराप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में और एक धूमप्रभा में होता है। अथवा यावत् एक शर्कराप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में और एक अधः-सप्तम पृथ्वी में होता है। (इस प्रकार शर्कराप्रभा और वालुकाप्रभा के साथ चार विकल्प होते हैं।) अथवा एक शर्कराप्रभा में, एक पंकप्रभा में और एक धूमप्रभा में होता है। अथवा यावत् एक शर्कराप्रभा में, एक पंकप्रभा में और एक अधः-

सप्तम पृथ्वी में होता है। (इस प्रकार वालुकाप्रभा को छोड़ने पर तीन विकल्प होते हैं।) अथवा एक शर्कराप्रभा में, एक धूमप्रभा में और एक तमःप्रभा में होता है। अथवा एक शर्कराप्रभा में, एक धूमप्रभा में और एक अधःसप्तम पृथ्वीमें होता है। (इस प्रकार पंकप्रभा को छोड़ देने पर दो विकल्प बनते हैं।) अथवा एक शर्कराप्रभा में, एक तमःप्रभा में और एक अधःसप्तम पृथ्वी में होता है। (इस प्रकार धूमप्रभा को छोड़ देने पर एक विकल्प बनता है।(इस प्रकार शर्कराप्रभा के साथ ४-३-२-१=ये १० विकल्प होते हैं।)

अथवा एक वालुकाप्रभा में, एक पंकप्रभा में और एक धूमप्रभा में होता है। अथवा एक वालुकाप्रभा में, एक पंकप्रभा में और एक तमःप्रभा में होता है। अथवा एक वालुकाप्रभा में, एक पंकप्रभा में और एक अधःसप्तम पृथ्वी में होता है। (इस प्रकार वालुकाप्रभा और पंकप्रभा के साथ तीन विकल्प होते हैं।) अथवा एक वालुकाप्रभा में, एक धूमप्रभा में और एक तमःप्रभा में होता है। अथवा एक वालुकाप्रभा में, एक धूमप्रभा में और एक अधःसप्तम पृथ्वी में होता है। (इस प्रकार पंकप्रभा को छोड़ने पर दो विकल्प बनते हैं।)अथवा एक वालुकाप्रभा में, एक तमःप्रभा में और एक अधःसप्तम पृथ्वी में होता है। (इस प्रकार धूमप्रभा को छोड़ने पर एक विकल्प बनता है। इस प्रकार वालुकाप्रभा के साथ ३-२-१=ये ६ विकल्प होते हैं।) अथवा एक पंकप्रभा में, एक धूमप्रभा में और एक तमःप्रभा में होता है। अथवा एक पंकप्रभा में, एक धूमप्रभा में और एक अधःसप्तम पृथ्वी में होता है। (इस प्रकार पंकप्रभा और धूमप्रभा के साथ दो विकल्प होते हैं।) अथवा एक पंकप्रभा में, एक तमःप्रभा में और एक अधःसप्तम पृथ्वी में होता है। (इस प्रकार पंकप्रभा के साथ २-१=ये ३ विकल्प होते हैं।) अथवा एक धूमप्रभा में, एक तमःप्रभा में और एक अधःसप्तम पृथ्वी में होता है। (इस प्रकार धूमप्रभा पृथ्वी के साथ एक विकल्प होता है। १५-१०-६-३-१ ये सब मिलकर त्रिक-संयोगी पैंतीस विकल्प तथा पैंतीस ही भंग होते हैं।

भगवन्! नैरयिक प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए चार नैरयिक जीव रत्नप्रभामें उत्पन्न होते हैं, इत्यादि प्रश्न। गांगेय! वे चार जीव रत्नप्रभामें होते हैं, अथवा यावत् अधःसप्तम पृथ्वीमें होते हैं। (इस प्रकार असंयोगी सात विकल्प और सात ही भंग होते हैं।)

(द्विक संयोगी त्रेसठ भंग)—अथवा एक रत्नप्रभा में और तीन शर्कराप्रभा में होते हैं। अथवा एक रत्नप्रभा में और तीन वालुकाप्रभा में होते हैं। इस प्रकार अथवा यावत् एक रत्नप्रभा में और तीन अधःसप्तम पृथ्वी में होते हैं। (इस प्रकार १-३ के छह भंग हुए) अथवा दो रत्नप्रभा में और दो शर्कराप्रभा में होते हैं। इस प्रकार अथवा यावत् दो रत्नप्रभा में और दो अधःसप्तम पृथ्वी में होते

हैं। (इस प्रकार २-२ के छह भंग होते हैं।) अथवा तीन रत्नप्रभा में और एक शर्कराप्रभा में होता है। इस प्रकार अथवा यावत् तीन रत्नप्रभा में और एक अधःसप्तम पृथ्वी में होता है। (इस प्रकार ३-१ के छह भंग होते हैं। इस प्रकार रत्नप्रभा के साथ अठारह भंग होते हैं।) अथवा एक शर्कराप्रभा में और तीन वालुकाप्रभा में होते हैं। जिस प्रकार रत्नप्रभा का आगे की नरकों के साथ संचार (योग) किया, उसी प्रकार शर्कराप्रभा का भी उसके आगे की नरकों के साथ संचार करना चाहिये। इस प्रकार एक एक नरक के साथ योग करना चाहिये अथवा यावत् तीन तमःप्रभा में और एक अधःसप्तम पृथ्वी में होता है। (इस तरह ये द्विक संयोगी त्रेसठ भंग हुए।)

(त्रिक संयोगी १०५ भंग-) अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में और दो वालुकाप्रभा में होते हैं। अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में और दो पंकप्रभा में होते हैं। इसी प्रकार यावत् एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में और दो अधःसप्तम पृथ्वी में होते हैं। (इस प्रकार १-१-२ के पांच भंग होते हैं।) अथवा एक रत्नप्रभा में, दो शर्कराप्रभा में और एक वालुकाप्रभा में होता है। इस प्रकार एक रत्नप्रभा में, दो शर्कराप्रभा में और एक अधःसप्तम पृथ्वी में होता है। (इस प्रकार १-२-१ के पांच भंग होते हैं।) अथवा दो रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में और एक वालुकाप्रभा में होता है। इसी प्रकार यावत् दो रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में और एक अधःसप्तम पृथ्वी में होता है। (इस प्रकार २-१-१ के पांच भंग होते हैं। तीनों को मिलाकर पन्द्रह भंग होते हैं) अथवा एक रत्नप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में और दो पंकप्रभा में होते हैं। इस प्रकार यावत् एक रत्नप्रभा में, एक वालुकाप्रभामें और दो अधःसप्तम पृथ्वीमें होते हैं। इसी अभिलाप द्वारा जिस प्रकार तीन नैरयिकोंके त्रिक संयोगी भंग कहे उसी प्रकार चार नैरयिकोंके भी त्रिक संयोगी भंग जानने चाहियें यावत् दो धूमप्रभा में एक तमःप्रभा में और एक अधःसप्तम पृथ्वी में होता है। (ये त्रिक संयोगी १०५ भंग हुए।)

(चतुःसंयोगी पैंतीस भंग)-(१) अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभामें, एक वालुकाप्रभामें और एक पंकप्रभामें होता है। (२) अथवा एक रत्नप्रभामें, एक शर्कराप्रभामें, एक वालुकाप्रभामें और एक धूमप्रभामें होता है। (३) अथवा एक रत्नप्रभामें, एक शर्कराप्रभामें, एक वालुकाप्रभामें और एक तमःप्रभामें होता है। (४) अथवा एक रत्नप्रभामें, एक शर्कराप्रभामें, एक वालुकाप्रभामें और एक अधःसप्तम पृथ्वीमें होता है। (ये चार भंग होते हैं।) (१) अथवा एक रत्नप्रभामें, एक शर्कराप्रभामें, एक पंकप्रभामें और एक धूमप्रभामें होता है। (२) अथवा एक रत्नप्रभामें, एक शर्कराप्रभामें, एक पंकप्रभामें और

एक तमःप्रभामें होता है। (३) अथवा एक रत्नप्रभामें, एक शर्कराप्रभामें, एक पंकप्रभामें और एक अधःसप्तम पृथ्वीमें होता है। (ये तीन भंग होते हैं।)

(१) अथवा एक रत्नप्रभामें, एक शर्कराप्रभामें, एक धूमप्रभामें और एक तमःप्रभामें होता है। (२) अथवा एक रत्नप्रभामें, एक शर्कराप्रभामें, एक धूमप्रभा में और एक अधःसप्तम पृथ्वीमें होता है। (ये दो भंग होते हैं।) अथवा एक रत्नप्रभामें, एक शर्कराप्रभामें, एक तमःप्रभा में और एक अधःसप्तम पृथ्वीमें होता है। (यह एक भंग होता है।) (१) अथवा एक रत्नप्रभामें, एक वालुकाप्रभा में, एक पंकप्रभामें और एक धूमप्रभामें होता है। (२)अथवा एक रत्नप्रभामें, एक वालुकाप्रभामें, एक पंकप्रभामें और एक तमःप्रभामें होता है। (३) अथवा एक रत्नप्रभामें, एक वालुकाप्रभामें, एक पंकप्रभामें और एक अधःसप्तम पृथ्वीमें होता है। (ये तीन भंग होते हैं।)

(१) अथवा एक रत्नप्रभामें, एक वालुकाप्रभामें, एक धूमप्रभामें और एक तमःप्रभामें होता है। (२) अथवा एक रत्नप्रभामें, एक वालुकाप्रभामें, एक धूम-प्रभा में और एक अधःसप्तम पृथ्वीमें होता है। (ये दो भंग होते हैं।) (१) अथवा एक रत्नप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में, एक तमःप्रभा में और एक अधः-सप्तम पृथ्वीमें होता है। (यह एक भंग होता है।)

(१) अथवा एक रत्नप्रभा में, एक पंकप्रभा में, एक धूमःप्रभा में और एक तमःप्रभा में होता है। (२) अथवा एक रत्नप्रभा में, एक पंकप्रभा में, एक धूम-प्रभा में और एक अधःसप्तम पृथ्वी में होता है। (ये दो भंग होते हैं) (१) अथवा एक रत्नप्रभा में, एक पंकप्रभा में, एक तमःप्रभा में और एक अधःसप्तम पृथ्वीमें होता है। (यह एक भंग होता है।) (१) अथवा एक रत्नप्रभा में, एक धूमप्रभामें, एक तमःप्रभा में और एक अधःसप्तम पृथ्वीमें होता है। (यह एक भंग होता है। इस प्रकार रत्नप्रभाके संयोग वाले ४-३-२-१-३-२-१-२-१-१=२० भंग होते हैं।)

(१) अथवा एक शर्कराप्रभामें, एक वालुकाप्रभामें, एक पंकप्रभामें और एक धूमप्रभामें होता है। जिस प्रकार रत्नप्रभाका आगेकी पृथ्वियोंके साथ संचार (योग) किया, उसी प्रकार शर्कराप्रभाका उसके आगेकी पृथ्वियोंके साथ योग करना चाहिये यावत् अथवा एक शर्कराप्रभामें, एक धूमप्रभामें, एक तमःप्रभामें और एक अधःसप्तम पृथ्वीमें होता है। (शर्कराप्रभाके संयोग वाले दस भंग होते हैं।) (१) अथवा एक वालुकाप्रभामें, एक पंकप्रभामें, एक धूमप्रभामें और एक तमःप्रभा में होता है। (२) अथवा एक वालुकाप्रभामें, एक पंकप्रभा में, एक धूमप्रभामें और एक अधःसप्तम पृथ्वीमें होता है। (३) अथवा एक वालुकाप्रभामें, एक पंक-प्रभा में, एक तमःप्रभामें और एक अधःसप्तम पृथ्वीमें होता है। (४) अथवा

एक वालुकाप्रभामें, एक धूमप्रभामें, एक तम:प्रभामें और एक अध:सप्तम पृथ्वीमें होता है। (इस प्रकार वालुकाप्रभाके संयोग वाले चार भंग होते हैं।) (१) अथवा एक पंकप्रभामें, एक धूमप्रभामें, एक तम:प्रभामें और एक अध:सप्तम पृथ्वीमें होता है। (इस प्रकार यह एक भंग होता है। ये २०-१०-४-१-ये चतु:संयोगी ३५ भंग होते हैं। सब मिलकर चार नैरयिक आश्रयी असंयोगी ७, द्विक संयोगी ६३, त्रिक संयोगी १०५ और चतु:संयोगी ३५, ये सब २१० भंग होते हैं।)

भगवन्! पांच नैरयिक जीव नैरयिक प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए क्या रत्नप्रभामें उत्पन्न होते हैं—इत्यादि प्रश्न। गांगेय! रत्नप्रभामें होते हैं अथवा यावत् अध:सप्तम पृथ्वीमें होते हैं। (इस प्रकार-असंयोगी सात भंग होते हैं।)

(द्विक संयोगी ८४ भंग)-अथवा एक रत्नप्रभामें और चार शर्कराप्रभामें होते हैं। अथवा यावत् एक रत्नप्रभामें और चार अध:सप्तम पृथ्वीमें होते हैं। (इस प्रकार 'एक और चार' से रत्नप्रभाके साथ शेष पृथ्वियोंका योग करने पर छह भंग होते हैं।) (१) अथवा दो रत्नप्रभा में और तीन शर्कराप्रभामें होते हैं। इस प्रकार यावत् दो रत्नप्रभामें और तीन अध:सप्तम पृथ्वीमें होते हैं। (इस प्रकार 'दो और तीन' के छह भंग होते हैं।) अथवा तीन रत्नप्रभामें और दो शर्कराप्रभामें होते हैं। इस प्रकार यावत् तीन रत्नप्रभामें और दो अध:सप्तम पृथ्वी में होते हैं। (इस प्रकार 'तीन और दो' से छह भंग होते हैं।) अथवा चार रत्नप्रभामें और एक शर्कराप्रभामें होता है। इस प्रकार चार रत्नप्रभामें और एक अध:सप्तम पृथ्वीमें होता है। (इस प्रकार 'चार और एक' से छह भंग होते हैं। रत्नप्रभाके संयोगसे ये कुल चौबीस भंग होते हैं।) अथवा एक शर्कराप्रभामें और चार वालुकाप्रभा में होते हैं। जिस प्रकार रत्नप्रभाके साथ आगेकी पृथ्वियोंका संयोग किया, उसी प्रकार शर्कराप्रभाके साथ संयोग करनेसे वीस भंग होते हैं। अथवा यावत् चार शर्कराप्रभामें और एक अध:सप्तम पृथ्वीमें होता है। इस प्रकार वालुकाप्रभा आदि एक एक पृथ्वीके साथ योग करना चाहिए। यावत् चार तम:प्रभामें और एक अध:सप्तम पृथ्वीमें होता है। (ये द्विक संयोगी चौरासी भंग होते हैं।)

(त्रिक संयोगी २१० भंग)-अथवा एक रत्नप्रभामें, एक शर्कराप्रभामें और तीन वालुकाप्रभामें होते हैं। इस प्रकार यावत् एक रत्नप्रभामें, एक शर्कराप्रभा में और तीन अध:सप्तम पृथ्वीमें होते हैं। (इस प्रकार 'एक, एक, तीन' के पांच भंग होते हैं।) अथवा एक रत्नप्रभामें, दो शर्कराप्रभामें और दो वालुकाप्रभामें होते हैं। इस प्रकार यावत् एक रत्नप्रभामें, दो शर्कराप्रभामें और दो अध:सप्तम

पृथ्वीमें होते हैं। (इस प्रकार 'एक, दो, दो' के पांच भंग होते हैं।) अथवा दो रत्नप्रभामें, एक शर्कराप्रभामें और दो वालुकाप्रभामें होते हैं। इस प्रकार यावत् दो रत्नप्रभामें, एक शर्कराप्रभामें और दो अधःसप्तम पृथ्वीमें होते हैं। (इस प्रकार 'दो, एक, दो' के पांच भंग होते हैं।) अथवा एक रत्नप्रभामें, तीन शर्कराप्रभामें और एक वालुकाप्रभामें होता है। इस प्रकार यावत् एक रत्नप्रभामें, तीन शर्कराप्रभामें और एक अधःसप्तम पृथ्वीमें होता है। (इस प्रकार 'एक, तीन, एक' के पांच भंग होते हैं।) अथवा दो रत्नप्रभामें, दो शर्कराप्रभामें और एक वालुकाप्रभा में होता है। इस प्रकार यावत् दो रत्नप्रभामें, दो शर्कराप्रभामें और एक अधःसप्तम पृथ्वीमें होता है। (इस प्रकार 'दो, दो, एक के पांच भंग होते हैं।) अथवा तीन रत्नप्रभामें, एक शर्कराप्रभामें और एक वालुकाप्रभामें होता है। इस प्रकार यावत् तीन रत्नप्रभामें, एक शर्कराप्रभामें और एक अधःसप्तम पृथ्वीमें होता है। (इस प्रकार 'तीन, एक, एक' के पांच भंग होते हैं।) अथवा एक रत्नप्रभामें, एक वालुकाप्रभामें और तीन पंकप्रभामें होते हैं। इस क्रमसे जिस प्रकार चार नैरयिक जीवोंके त्रिक संयोगी भंग कहे हैं, उसी प्रकार पांच नैरयिकोंके भी त्रिकसंयोगी भंग जानने चाहियें। परन्तु यहां 'एक' के स्थानमें 'दो' का संचार करना चाहिये। शेष सभी पूर्वोक्त जान लेना चाहिये यावत् तीन धूमप्रभामें, एक तमःप्रभामें और एक अधःसप्तम पृथ्वीमें होता है। यहां तक कहना चाहिये। (ये त्रिकसंयोगी २१० भंग होते हैं।)

(चतुःसंयोगी १४० भंग)—अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में और दो पंकप्रभा में होते हैं। इस प्रकार यावत् एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में और दो अधःसप्तम पृथ्वी में होते हैं। (ये चार भंग होते हैं।) अथवा एक रत्नप्रभामें, एक शर्कराप्रभामें, दो वालुकाप्रभा में और एक पंकप्रभामें होता है। इस प्रकार यावत् एक रत्नप्रभामें, एक शर्कराप्रभा में, दो वालुकाप्रभामें और एक अधःसप्तम पृथ्वीमें होता है। (ये चार भंग होते हैं।) अथवा एक रत्नप्रभामें, दो शर्कराप्रभामें, एक वालुकाप्रभामें और एक पंकप्रभा में होता है। इस प्रकार यावत् एक रत्नप्रभामें, दो शर्कराप्रभा में, एक वालुकाप्रभामें और एक अधःसप्तम पृथ्वी में होता है। (ये चार भंग होते हैं।) अथवा दो रत्नप्रभामें, एक शर्कराप्रभामें, एक वालुकाप्रभामें और एक पंकप्रभामें होता है। इस प्रकार यावत् दो रत्नप्रभामें, एक शर्कराप्रभामें, एक वालुकाप्रभा में और एक अधःसप्तम पृथ्वीमें होता है। (ये चार भंग होते हैं।) अथवा एक रत्नप्रभामें, एक शर्कराप्रभामें, एक पंकप्रभामें और दो धूमप्रभामें होते हैं। जिस प्रकार चार नैरयिक जीवोंके चतुःसंयोगी भंग कहे हैं, उसी प्रकार पांच नैरयिक जीवोंके भी चतुःसंयोगी भंग कहने चाहियें, परन्तु यहां एक अधिकका

संचार (संयोग) करना चाहिये। इस प्रकार यावत् दो पंकप्रभामें, एक धूमप्रभा में, एक तमःप्रभामें और एक अधःसप्तम पृथ्वीमें होता है। यहां तक कहना चाहिये। (ये चतुःसंयोगी १४० भंग होते हैं।)

(पंच संयोगी इक्कीस भंग)–(१) अथवा एक रत्नप्रभामें, एक शर्कराप्रभामें, एक वालुकाप्रभामें, एक पंकप्रभामें और एक धूमप्रभामें होता है। (२) अथवा एक रत्नप्रभामें, एक शर्कराप्रभामें, एक बालुकाप्रभामें, एक पंकप्रभामें और एक तमःप्रभामें होता है। (३) अथवा एक रत्नप्रभामें यावत् एक पंकप्रभामें और एक अधःसप्तम पृथ्वी में होता है। (४) अथवा एक रत्नप्रभामें, एक शर्कराप्रभामें, एक वालुकाप्रभामें, एक धूमप्रभामें और एक तमःप्रभामें होता है। (५) अथवा एक रत्नप्रभामें, एक शर्कराप्रभामें, एक वालुकाप्रभामें, एक धूमप्रभामें और एक अधःसप्तम पृथ्वीमें होता है। (६) अथवा एक रत्नप्रभामें, एक शर्कराप्रभामें, एक वालुकाप्रभामें, एक तमःप्रभामें और एक अधःसप्तम पृथ्वीमें होता है। (७) अथवा एक रत्नप्रभामें, एक शर्कराप्रभामें, एक पंकप्रभामें, एक धूमप्रभामें और एक तमःप्रभामें होता है।

(८) अथवा एक रत्नप्रभामें, एक शर्कराप्रभामें, एक पंकप्रभा में, एक धूमप्रभामें और एक अधःसप्तम पृथ्वीमें होता है। (९) अथवा एक रत्नप्रभामें, एक शर्कराप्रभामें, एक पंकप्रभामें, एक तमःप्रभामें और एक अधःसप्तम पृथ्वीमें होता है। (१०) अथवा एक रत्नप्रभामें, एक शर्कराप्रभामें, एक धूमप्रभामें, एक तमःप्रभामें, और एक अधःसप्तम पृथ्वीमें होता है। (११) अथवा एक रत्नप्रभामें, एक बालुकाप्रभामें, एक पंकप्रभामें, एक धूमप्रभामें और एक तमःप्रभामें होता है। (१२) अथवा एक रत्नप्रभामें, एक बालुकाप्रभामें, एक पंक-प्रभामें, एक धूमप्रभामें, और एक अधःसप्तम पृथ्वी में होता है। (१३) अथवा एक रत्नप्रभामें, एक बालुकाप्रभामें, एक पंकप्रभामें, एक तमःप्रभामें और एक अधःसप्तम पृथ्वी में होता है। (१४) अथवा एक रत्नप्रभामें, एक बालुकाप्रभामें, एक धूमप्रभामें, एक तमःप्रभामें और एक अधःसप्तम पृथ्वीमें होता है।

(१५) अथवा एक रत्नप्रभामें, एक पंकप्रभामें, यावत् एक अधःसप्तम पृथ्वीमें होता है। (१६) अथवा एक शर्कराप्रभामें, एक बालुकाप्रभामें, यावत् एक तमःप्रभामें होता है। (१७) अथवा एक शर्कराप्रभामें, यावत् एक पंकप्रभामें, एक धूमप्रभामें और एक अधःसप्तम पृथ्वीमें होता है। (१८) अथवा एक शर्कराप्रभा में, यावत् एक पंकप्रभामें, एक तमःप्रभामें और एक अधःसप्तम पृथ्वीमें होता है। (१९) अथवा एक शर्कराप्रभामें, एक वालुकाप्रभामें, एक धूमप्रभामें, एक तमःप्रभामें और एक अधःसप्तम पृथ्वीमें होता है। (२०) अथवा एक शर्कराप्रभा

में, एक पंकप्रभामें, यावत् एक अधःसप्तम पृथ्वीमें होता है। (२१) अथवा एक वालुकाप्रभामें, यावत् एक अधःसप्तम पृथ्वीमें होता है।

भगवन्! छह नैरयिक जीव नैरयिक प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए क्या रत्नप्रभामें उत्पन्न होते हैं, इत्यादि प्रश्न। गांगेय! वे रत्नप्रभामें होते हैं अथवा यावत् अधःसप्तम पृथ्वीमें होते हैं। (ये असंयोगी सात भंग होते हैं।)

(द्विक संयोगी १०५ भंग)-(१) अथवा एक रत्नप्रभामें और पांच शर्करा-प्रभामें होते हैं। (२) अथवा एक रत्नप्रभामें और पांच वालुकाप्रभामें होते हैं। अथवा यावत् (६) एक रत्नप्रभामें और पांच अधःसप्तम पृथ्वीमें होते हैं। अथवा दो रत्नप्रभा में और चार शर्कराप्रभामें होते हैं। अथवा यावत् (६) दो रत्नप्रभा में और चार अधःसप्तम पृथ्वीमें होते हैं। अथवा तीन रत्नप्रभामें और तीन शर्कराप्रभामें होते हैं। इस क्रम द्वारा जिस प्रकार पांच नैरयिक जीवोंके द्विक-संयोगी भंग कहे हैं, उसी प्रकार छह नैरयिकोंके भी कहने चाहियें, परन्तु यहां एक अधिकका संचार करना चाहिये यावत् (१०५) अथवा पांच तमःप्रभामें और एक अधःसप्तम पृथ्वीमें होता है।

(त्रिक संयोगी ३५० भंग)—(१) अथवा एक रत्नप्रभामें, एक शर्कराप्रभा में और चार वालुकाप्रभा में होते हैं। (२) अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्करा-प्रभा में और चार पंकप्रभामें होते हैं। इस प्रकार यावत् (५) अथवा एक रत्न-प्रभा में, एक शर्कराप्रभामें और चार अधःसप्तम पृथ्वीमें होते हैं। (१) अथवा एक रत्नप्रभामें,दो शर्कराप्रभामें और तीन वालुकाप्रभामें होते हैं। इस क्रमसे जिस प्रकार पांच नैरयिक जीवोंके त्रिक-संयोगी भंग कहे हैं, उसी प्रकार छह नैरयिक जीवोंके भी त्रिक-संयोगी भंग कहने चाहियें, परन्तु यहां एक का संचार अधिक करना चाहिये। शेष सभी पूर्ववत् कहना चाहिये। (इस प्रकार ये ३५० भंग होते हैं।)

(पंच संयोगी १०५ भंग)—जिस प्रकार पांच नैरयिकोंके भंग कहे गये, उसी प्रकार छह नैरयिकोंके चतुःसंयोगी और पंच-संयोगी भंग जान लेने चाहियें, परन्तु इनमें एक नैरयिक का संचार अधिक करना चाहिये। यावत् अन्तिम भंग इस प्रकार है—दो वालुकाप्रभा में, एक पंकप्रभा में, एक धूमप्रभामें, एक तमः-प्रभामें और एक तमस्तमःप्रभा में होता है।

(छह संयोगी सात भंग)-(१) अथवा एक रत्नप्रभामें, एक शर्कराप्रभामें यावत् एक तमःप्रभा में होता है। (२) अथवा एक रत्नप्रभामें, यावत् एक धूमप्रभामें और एक अधःसप्तम पृथ्वी में होता है। (३) अथवा एक रत्नप्रभामें यावत् एक पंकप्रभामें, एक तमःप्रभामें और एक अधःसप्तम पृथ्वीमें होता है। (४) अथवा एक रत्नप्रभा में यावत् एक वालुकाप्रभा में, एक धूमप्रभा में यावत एक

अधःसप्तम पृथ्वी में होता है। (५) अथवा एक रत्नप्रभामें, एक शर्कराप्रभामें, एक पंकप्रभा में यावत् एक अधःसप्तम पृथ्वी में होता है। (६) अथवा एक रत्नप्रभामें, एक वालुकाप्रभा में यावत् एक अधःसप्तम पृथ्वी में होता है। (७) अथवा एक शर्कराप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में यावत् एक अधःसप्तम पृथ्वी में होता है।

भगवन् ! सात नैरयिक जीव नैरयिक प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए क्या रत्नप्रभा पृथ्वी में उत्पन्न होते हैं, इत्यादि प्रश्न। गांगेय ! वे सातों नैरयिक रत्न-प्रभा में होते हैं, अथवा यावत् अधःसप्तम पृथ्वीमें होते हैं—ये असंयोगी सात विकल्प होते हैं।

अथवा एक रत्नप्रभामें और छह शर्कराप्रभामें होते हैं। इस क्रम से जिस प्रकार छह नैरयिक जीवोंके द्विक-संयोगी भंग कहे हैं, उसी प्रकार सात नैरयिकों के भी जानने चाहियें, परन्तु इतनी विशेषता है कि यहां एक नैरयिक का अधिक संचार करना चाहिये। शेष सभी पूर्ववत् जानना चाहिये। जिस प्रकार छह नैरयिक जीवोंके त्रिक-संयोगी, चतुःसंयोगी, पंचसंयोगी और षट्संयोगी भंग कहे, उसी प्रकार सात नैरयिकोंके विषयमें भी जानना चाहिये, परन्तु इतनी विशेषता है कि यहां एक एक नैरयिक जीवका अधिक संचार करना चाहिये। यावत् षट्संयोगीका अन्तिम भंग इस प्रकार कहना चाहिये—अथवा दो शर्कराप्रभामें, एक वालुकाप्रभामें, यावत् एक अधःसप्तम पृथ्वीमें होता है। यहां तक जानना चाहिये। (सात संयोगी एक भंग।) अथवा एक रत्नप्रभामें, एक शर्कराप्रभामें,

भगवन् ! नौ नैरयिक जीव नैरयिक प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए क्या रत्नप्रभामें उत्पन्न होते हैं, इत्यादि प्रश्न । गांगेय ! वे नौ नैरयिक जीव रत्नप्रभा में होते हैं, अथवा यावत् अधःसप्तम पृथ्वीमें होते हैं । अथवा एक रत्नप्रभामें और आठ शर्कराप्रभामें होते हैं । इत्यादि जिस प्रकार आठ नैरयिकोंके द्विक-संयोगी, त्रिक-संयोगी, चतुःसंयोगी, पंचसंयोगी, षट्संयोगी और सप्तसंयोगी भंग कहे, उसी प्रकार नौ नैरयिकोंके विषयमें भी कहना चाहिये । परन्तु विशेष यह है कि एक-एक नैरयिकका अधिक संचार करना चाहिये । शेष सभी पूर्वोक्त प्रकारसे जानना चाहिये । अन्तिम भंग इस प्रकार है–अथवा तीन रत्नप्रभामें, एक शर्कराप्रभामें, एक वालुकाप्रभामें यावत् एक अधःसप्तम पृथ्वीमें होता है ।

भगवन् ! दस नैरयिक जीव नैरयिक प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए क्या रत्नप्रभामें होते हैं, अथवा यावत् अधःसप्तम पृथ्वीमें होते हैं ? गांगेय ! वे दस नैरयिक जीव रत्नप्रभामें होते हैं अथवा यावत् अधःसप्तम पृथ्वीमें होते हैं । अथवा एक रत्नप्रभामें और नौ शर्कराप्रभामें होते हैं । इत्यादि द्विकसंयोगी, त्रिक-संयोगी, चतुःसंयोगी, पंचसंयोगी, षट्संयोगी और सप्तसंयोगी भंग जिस प्रकार नौ नैरयिक जीवोंके कहे गये हैं, उसी प्रकार दस नैरयिक जीवोंके विषयमें भी जानना चाहिये । परन्तु विशेषता यह है कि एक एक नैरयिकका अधिक संचार करना चाहिये । शेष सभी पूर्वोक्त रूपसे जानना चाहिये । उनका अन्तिम भंग इस प्रकार है—अथवा चार रत्नप्रभामें, एक शर्कराप्रभामें यावत् एक अधःसप्तम पृथ्वी में होता है ।

भगवन् ! संख्यात नैरयिक जीव नैरयिक प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए क्या रत्नप्रभामें उत्पन्न होते हैं, इत्यादि प्रश्न । गांगेय ! संख्यात नैरयिक रत्नप्रभा में उत्पन्न होते हैं, अथवा यावत् अधःसप्तम पृथ्वीमें उत्पन्न होते हैं । (ये असंयोगी सात भंग होते हैं ।) (१) अथवा एक रत्नप्रभामें होता है और संख्यात शर्कराप्रभा में होते हैं । (२-६) इसी प्रकार यावत् एक रत्नप्रभामें और संख्यात अधःसप्तम पृथ्वीमें होते हैं । (ये छह भंग होते हैं ।) (१) अथवा दो रत्नप्रभामें और संख्यात शर्कराप्रभामें होते हैं । (२-६) इस प्रकार यावत् दो रत्नप्रभामें और संख्यात अधःसप्तम पृथ्वीमें होते हैं । (ये छह भंग होते हैं ।)

(१)अथवा तीन रत्नप्रभामें और संख्यात शर्कराप्रभामें होते हैं । इसी प्रकार इसी क्रमसे एक-एक नैरयिकका संचार करना चाहिये । अथवा यावत् दस रत्नप्रभामें और संख्यात शर्कराप्रभामें होते हैं । इस प्रकार यावत् दस रत्नप्रभामें और संख्यात अधःसप्तम पृथ्वीमें होते हैं । अथवा संख्यात रत्नप्रभामें और संख्यात शर्कराप्रभामें होते हैं । इस प्रकार यावत् संख्यात रत्नप्रभामें और संख्यात अधःसप्तम पृथ्वीमें होते हैं । अथवा एक शर्कराप्रभामें और संख्यात वालुकाप्रभामें होते हैं ।

जिस प्रकार रत्नप्रभा पृथ्वीका शेष पृथ्वियोंके साथ संयोग किया, उसी प्रकार शर्कराप्रभा पृथ्वीका भी आगे की सभी पृथ्वियोंके साथ संयोग करना चाहिये। इस प्रकार एक-एक पृथ्वी का आगे की पृथ्वियोंके साथ संयोग करना चाहिये। यावत् अथवा संख्यात तमःप्रभामें और संख्यात अधःसप्तम पृथ्वीमें होते हैं। (ये द्विक-संयोगी २३१ भंग होते हैं।)

(१) अथवा एक रत्नप्रभामें, एक शर्कराप्रभामें और संख्यात वालुकाप्रभा में होते हैं। (२) अथवा एक रत्नप्रभामें, एक शर्कराप्रभामें और संख्यात पंकप्रभा में होते हैं। इस प्रकार यावत् एक रत्नप्रभामें, एक शर्कराप्रभामें और संख्यात अधःसप्तम पृथ्वीमें होते हैं। अथवा एक रत्नप्रभामें, दो शर्कराप्रभामें और संख्यात वालुकाप्रभामें होते हैं। अथवा एक रत्नप्रभामें, दो शर्कराप्रभामें और संख्यात अधःसप्तम पृथ्वीमें होते हैं। अथवा एक रत्नप्रभामें, तीन शर्कराप्रभामें और संख्यात वालुकाप्रभामें होते हैं। इस प्रकार इस क्रम से एक-एक नैरयिकका अधिक संचार करना चाहिये। अथवा एक रत्नप्रभामें, संख्यात शर्कराप्रभामें और संख्यात वालुकाप्रभामें होते हैं। यावत् अथवा एक रत्नप्रभामें, संख्यात वालुकाप्रभामें और संख्यात अधःसप्तम पृथ्वीमें होते हैं।

अथवा दो रत्नप्रभामें, संख्यात शर्कराप्रभामें और संख्यात वालुकाप्रभामें होते हैं यावत् अथवा दो रत्नप्रभामें,संख्यात शर्कराप्रभामें और संख्यात अधःसप्तम पृथ्वी में होते हैं, अथवा तीन रत्नप्रभामें, संख्यात शर्कराप्रभामें और संख्यात वालुकाप्रभा में होते हैं। इस क्रम से रत्नप्रभामें एक-एक नैरयिकका अधिक संचार करना चाहिये, यावत् अथवा संख्यात रत्नप्रभामें, संख्यात शर्कराप्रभामें और संख्यात वालुकाप्रभामें होते हैं, यावत् अथवा संख्यात रत्नप्रभामें, संख्यात शर्कराप्रभामें और संख्यात अधःसप्तम पृथ्वीमें होते हैं। अथवा एक रत्नप्रभामें, एक वालुकाप्रभा में और संख्यात पंकप्रभा में होते हैं। यावत् अथवा एक रत्नप्रभा में, एक वालुका-प्रभामें और संख्यात अधःसप्तम पृथ्वीमें होते हैं। अथवा एक रत्नप्रभामें, दो वालु-काप्रभामें और संख्यात पंकप्रभामें होते हैं। इस क्रमसे त्रिक-संयोगी, चतुःसंयोगी यावत् सप्तसंयोगी भंगों का कथन दस नैरयिक सम्बन्धी भंगोंके समान कहना चाहिये। (अन्तिम भंग यह है–) अथवा संख्यात रत्नप्रभामें, संख्यात शर्कराप्रभामें और यावत् संख्यात अधःसप्तम पृथ्वी में होते हैं।

भगवन्! असंख्यात नैरयिक नैरयिक-प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए क्या रत्नप्रभामें होते हैं, इत्यादि प्रश्न? गांगेय! रत्नप्रभामें होते हैं, अथवा यावत् अधःसप्तम पृथ्वीमें होते हैं, अथवा एक रत्नप्रभामें और असंख्यात शर्कराप्रभामें होते हैं। जिस प्रकार संख्यात नैरयिकोंके द्विकसंयोगी यावत् सप्तसंयोगी भंग कहे, उसी प्रकार असंख्यातके भी कहने चाहियें, परन्तु इतनी विशेषता है कि यहां

'असंख्यात' का पद अधिक कहना चाहिये अर्थात् बारहवां 'असंख्यात पद' कहना चाहिये। शेष सभी पूर्वोक्त प्रकार से जानना चाहिये, यावत् अन्तिम आलापक यह है-अथवा असंख्यात रत्नप्रभामें, असंख्यात शर्कराप्रभामें यावत् असंख्यात अधः-सप्तम पृथ्वीमें होते हैं।

भगवन् ! नैरयिक प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए नैरयिक उत्कृष्ट पदमें क्या रत्नप्रभामें होते हैं, इत्यादि प्रश्न ? गांगेय ! उत्कृष्ट पदमें सभी नैरयिक रत्न-प्रभामें होते हैं। (१) अथवा रत्नप्रभा और शर्कराप्रभामें होते हैं। (२) अथवा रत्नप्रभा और वालुकाप्रभामें होते हैं। इस प्रकार यावत् रत्नप्रभा और अधःसप्तम पृथ्वीमें होते हैं। (त्रिकसंयोगी पन्द्रह विकल्प) (१) अथवा रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा और वालुकाप्रभामें होते हैं। इस प्रकार यावत् (५) रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा और अधःसप्तम पृथ्वीमें होते हैं। (६) अथवा रत्नप्रभा, वालुकाप्रभा और पंकप्रभामें होते हैं। (७-९) अथवा यावत् रत्नप्रभा, वालुकाप्रभा और अधःसप्तम पृथ्वीमें होते हैं। (१०) अथवा रत्नप्रभा, पंकप्रभा और धूमप्रभामें होते हैं। जिस प्रकार रत्नप्रभाको न छोड़ते हुए तीन नैरयिक जीवोंके त्रिकसंयोगी भंग कहे हैं, उसी प्रकार यहां पर भी कहने चाहियें। यावत् (१५) अथवा रत्नप्रभा, तमःप्रभा और अधःसप्तम पृथ्वी में होते हैं।

(चतुःसंयोगी बीस भंग)-(१) अथवा रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा और पंकप्रभामें होते हैं। (२) अथवा रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा और धूमप्रभामें होते हैं। यावत् (४) अथवा रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, वालुका-प्रभा और अधःसप्तम पृथ्वीमें होते हैं। (५) अथवा रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, पंकप्रभा और धूमप्रभामें होते हैं। रत्नप्रभाको न छोड़ते हुए जिस प्रकार चार नैरयिक जीवों के चतुःसंयोगी भंग कहे हैं, उसी प्रकार यहां भी कहने चाहियें यावत् (२०) अथवा रत्नप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा और अधःसप्तम पृथ्वीमें होते हैं।

(पंच संयोगी पन्द्रह भंग)-(१) अथवा रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा, पंकप्रभा और धूमप्रभामें होते हैं। (२) अथवा रत्नप्रभा यावत् पंकप्रभा और तमःप्रभामें होते हैं। (३) अथवा रत्नप्रभा यावत् पंकप्रभा और अधःसप्तम पृथ्वी में होते हैं। (४) अथवा रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा, धूमप्रभा और तमः-प्रभामें होते हैं। रत्नप्रभाको न छोड़ते हुए जिस प्रकार पांच नैरयिक जीवोंके पंच-संयोगी भंग कहे हैं, उसी प्रकार कहने चाहियें, अथवा यावत् (१५) रत्नप्रभा, पंकप्रभा यावत् अधःसप्तम पृथ्वीमें होते हैं।

(षट्संयोगी छह भंग)-(१) अथवा रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, यावत् धूमप्रभा और तमःप्रभामें होते हैं। (२) अथवा रत्नप्रभा, यावत् धूमप्रभा और अधःसप्तम पृथ्वीमें होते हैं। (३) अथवा रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा यावत् पंकप्रभा, तमःप्रभा और

अध:सप्तम पृथ्वीमें होते हैं। (४) अथवा रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा, धूमप्रभा, तम:प्रभा और अध:सप्तम पृथ्वीमें होते हैं। (५) अथवा रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, पंकप्रभा, यावत् अध:सप्तम पृथ्वीमें होते हैं। (६) अथवा रत्नप्रभा, वालुकाप्रभा, यावत् अध:सप्तम पृथ्वीमें होते हैं। (सप्तसंयोगी एक भंग) (१) अथवा रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, यावत् अध:सप्तम पृथ्वीमें होते हैं। इस प्रकार उत्कृष्ट पद के सभी मिलकर चौसठ (१+६+१५+२०+१५+६+१=६४) भंग होते हैं।

भगवन्! रत्नप्रभा पृथ्वीनैरयिक प्रवेशनक, शर्कराप्रभा पृथ्वी नैरयिक प्रवेशनक, यावत् अध:सप्तम पृथ्वी नैरयिकप्रवेशनक, इनमें कौनसा प्रवेशनक किस प्रवेशनक से अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक है? गांगेय! सबसे अल्प अध:सप्तम पृथ्वी नैरयिक प्रवेशनक है, उससे तम:प्रभा पृथ्वी नैरयिक प्रवेशनक असंख्यात गुणा है, इस प्रकार उलटे क्रमसे यावत् रत्नप्रभा पृथ्वी नैरयिक प्रवेशनक असंख्यात गुणा है ।।३७२।।

भगवन्! तिर्यंचयोनिक प्रवेशनक कितने प्रकार का कहा गया है ? गांगेय! वह पांच प्रकारका कहा गया है। यथा—एकेंद्रिय तिर्यंच-योनिक प्रवेशनक यावत् पंचेन्द्रिय तिर्यंच-योनिक प्रवेशनक। भगवन्! एक तिर्यंच-योनिक जीव तिर्यंच-योनिक प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करता हुआ क्या एकेंद्रियोंमें उत्पन्न होता है, अथवा यावत् पंचेन्द्रियोंमें उत्पन्न होता है ? गांगेय! एक तिर्यंच-योनिक जीव एकेन्द्रियों में उत्पन्न होता है, अथवा यावत् पंचेन्द्रियों में उत्पन्न होता है। भगवन्! दो तिर्यंच-योनिक जीव तिर्यंच-योनिक प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए क्या एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होते हैं, इत्यादि प्रश्न ? गांगेय! एकेन्द्रियोंमें होते हैं अथवा यावत् पंचेन्द्रियोंमें होते हैं। अथवा एक एकेन्द्रियमें और एक वेइन्द्रियमें होता है। जिस प्रकार नैरयिक जीवोंके विषयमें कहा, उसी प्रकार तिर्यंच-योनिक प्रवेशनक के विषय में भी कहना चाहिये। यावत् असंख्य तिर्यंच-योनिक प्रवेशनक तक कहना चाहिये।

भगवन्! उत्कृष्ट तिर्यंच-योनिक प्रवेशनक विषयक प्रश्न ? गांगेय! वे सभी एकेन्द्रियोंमें होते हैं। अथवा एकेन्द्रिय और वेइन्द्रियोंमें होते हैं, जिस प्रकार नैरयिक जीवोंमें संचार किया गया है, उसी प्रकार तिर्यंचयोनिक प्रवेशनकके विषयमें भी संचार करना चाहिये। एकेन्द्रिय जीवोंको न छोड़ते हुए द्विकसंयोगी, त्रिकसंयोगी, चतु:संयोगी और पंचसंयोगी भंग उपयोगपूर्वक कहने चाहियें। यावत् अथवा एकेन्द्रिय जीवोंमें, वेइन्द्रियोंमें यावत् पंचेन्द्रियोंमें होते हैं। भगवन्!

एकेन्द्रिय तिर्यंच-योनिक प्रवेशनक यावत् पंचेंद्रिय-तिर्यंच-योनिक प्रवेशनक, इनमें कौन किससे यावत् विशेषाधिक हैं? गांगेय! सबसे थोड़े पंचेन्द्रिय तिर्यंच-योनिक प्रवेशनक हैं, उनसे चतुरिन्द्रिय तिर्यंच-योनिक प्रवेशनक विशेषाधिक हैं, उनसे तेइन्द्रिय तिर्यंच-योनिक प्रवेशनक विशेषाधिक है, उनसे द्वीन्द्रिय तिर्यंच-योनिक प्रवेशनक विशेषाधिक हैं और उनसे एकेन्द्रिय तिर्यञ्च-योनिक प्रवेशनक विशेषाधिक हैं ॥३७३॥

भगवन्! मनुष्य-प्रवेशनक कितने प्रकारका कहा गया है? गांगेय! दो प्रकारका कहा गया है। यथा—सम्मूर्च्छिम मनुष्य-प्रवेशनक और गर्भज मनुष्य प्रवेशनक। भगवन्! मनुष्य-प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करता हुआ एक मनुष्य क्या सम्मूर्च्छिम मनुष्योंमें उत्पन्न होता है, या गर्भज मनुष्योंमें उत्पन्न होता है? गांगेय! वह सम्मूर्च्छिम मनुष्योंमें उत्पन्न होता है, अथवा गर्भज मनुष्योंमें उत्पन्न होता है।

भगवन्! दो मनुष्य मनुष्य-प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए क्या सम्मूर्च्छिम मनुष्योंमें उत्पन्न होते हैं, इत्यादि प्रश्न। गांगेय! दो मनुष्य सम्मूर्च्छिम मनुष्यों में होते हैं, अथवा गर्भज मनुष्योंमें होते हैं। अथवा एक सम्मूर्च्छिम मनुष्योंमें और एक गर्भज मनुष्योंमें होता है। इस क्रमसे जिस प्रकार नैरयिक-प्रवेशनक कहा, उसी प्रकार मनुष्य-प्रवेशनक भी कहना चाहिये। यावत् दस मनुष्यों तक कहना चाहिये। भगवन्! संख्यात मनुष्य मनुष्यप्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए इत्यादि प्रश्न। गांगेय! वे सम्मूर्च्छिम मनुष्योंमें होते हैं, अथवा गर्भज मनुष्यों में होते हैं। अथवा एक सम्मूर्च्छिम मनुष्यों में होता है और संख्यात गर्भज मनुष्यों में होते हैं। अथवा दो सम्मूर्च्छिम मनुष्यों में होते हैं और संख्यात गर्भज मनुष्यों में होते हैं। इस प्रकार एक-एक बढ़ाते हुए यावत् अथवा संख्यात सम्मूर्च्छिम मनुष्यों में और संख्यात गर्भज मनुष्यों में होते हैं। भगवन्! असंख्यात मनुष्य मनुष्य-प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करनेके सम्बन्धमें प्रश्न। गांगेय! वे सभी सम्मूर्च्छिम मनुष्यों में होते हैं। अथवा असंख्यात सम्मूर्च्छिम मनुष्योंमें होते हैं और एक गर्भज मनुष्यों में होता है। अथवा असंख्यात सम्मूर्च्छिम मनुष्यों में होते हैं और दो गर्भज मनुष्यों में होते हैं। अथवा इस प्रकार यावत् असंख्यात सम्मूर्च्छिम मनुष्योंमें होते हैं और संख्यात गर्भज मनुष्योंमें होते हैं। भगवन्! मनुष्य उत्कृष्ट रूप से किस प्रवेशनक में होते हैं? इत्यादि प्रश्न। गांगेय! वे सभी सम्मूर्च्छिम मनुष्योंमें होते हैं। अथवा सम्मूर्च्छिम मनुष्यों में और गर्भज मनुष्योंमें होते हैं। भगवन्! सम्मूर्च्छिम मनुष्य प्रवेशनक और गर्भज मनुष्य प्रवेशनक, इनमें कौनसा प्रवेशनक किस प्रवेशनक से यावत् विशेषाधिक है? गांगेय! सबसे अल्प गर्भज मनुष्य प्रवेशनक है, उससे सम्मूर्च्छिम मनुष्य-प्रवेशनक असंख्यात गुणा है ॥३७४॥

भगवन् ! देव-प्रवेशनक कितने प्रकार का कहा गया है ? गांगेय ! चार प्रकार का कहा गया है। यथा—भवनवासी देव-प्रवेशनक, वाणव्यन्तर देव-प्रवेशनक, ज्योतिषी देव-प्रवेशनक और वैमानिक देव-प्रवेशनक। भगवन् ! एक देव देव-प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करता हुआ क्या भवनवासी देवों में होता है, वाणव्यन्तर देवों में होता है, ज्योतिषी देवों में होता है, अथवा वैमानिक देवों में होता है ? गांगेय ! वह भवनवासी देवोंमें होता है, अथवा वाणव्यन्तर देवोंमें, अथवा ज्योतिषी देवों में, अथवा वैमानिक देवों में होता है। भगवन् ! दो देव देवप्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए—इत्यादि प्रश्न। गांगेय ! वे दो देव भवनवासी देवोंमें होते हैं, अथवा वाणव्यन्तर देवोंमें होते हैं, अथवा ज्योतिषी देवोंमें होते हैं, अथवा वैमानिक देवोंमें होते हैं। अथवा एक भवनवासी देवोंमें होता है और एक वाणव्यन्तर देवोंमें होता है। जिस प्रकार तिर्यंच-योनिक प्रवेशनक कहा, उसी प्रकार देव-प्रवेशनक भी कहना चाहिये। यावत् असंख्यात देव प्रवेशनक तक कहना चाहिये।

भगवन् ! देव उत्कृष्टपने किस प्रवेशनक में होते हैं, इत्यादि प्रश्न। गांगेय ! वे सभी ज्योतिषी देवों में होते हैं, अथवा ज्योतिषी और भवनवासी देवों में होते हैं, अथवा ज्योतिषी और वाणव्यन्तर देवों में होते हैं, अथवा ज्योतिषी और वैमानिक देवों में होते हैं, अथवा ज्योतिषी, भवनवासी और वाणव्यन्तर देवों में होते हैं, अथवा ज्योतिषी, भवनवासी और वैमानिक देवों में होते हैं, अथवा ज्योतिषी, वाणव्यन्तर और वैमानिक देवों में होते हैं। अथवा ज्योतिषी, भवनवासी, वाणव्यन्तर और वैमानिक देवोंमें होते हैं।

भगवन् ! भवनवासी देवप्रवेशनक, वाणव्यन्तर देव-प्रवेशनक, ज्योतिषी-देव-प्रवेशनक और वैमानिक देव-प्रवेशनक, इनमें कौनसा प्रवेशनक किस प्रवेशनक से यावत् विशेषाधिक है ? गांगेय ! वैमानिक देव-प्रवेशनक सबसे अल्प है, उससे भवनवासी देव-प्रवेशनक असंख्यात गुणा है, उससे वाणव्यंतर देव प्रवेशनक असंख्यात गुणा है और उससे ज्योतिषी-देव-प्रवेशनक संख्यातगुणा है ॥३७५॥

भगवन् ! नैरयिकप्रवेशनक, तिर्यंचयोनिकप्रवेशनक, मनुष्यप्रवेशनक और देव-प्रवेशनक, इनमें कौनसा प्रवेशनक किस प्रवेशनकसे यावत् विशेषाधिक है ? गांगेय ! सबसे अल्प मनुष्य प्रवेशनक है, उससे नैरयिक-प्रवेशनक असंख्यात गुणा है, उससे देव-प्रवेशनक असंख्यात गुणा है और उससे तिर्यंचयोनिक प्रवेशनक असंख्यात गुणा है ॥३७६॥

भगवन् ! नैरयिक सान्तर (अन्तर सहित) उत्पन्न होते हैं अथवा निरन्तर उत्पन्न होते हैं, असुरकुमार सान्तर उत्पन्न होते हैं अथवा निरन्तर, यावत् वैमानिक देव सान्तर उत्पन्न होते हैं, या निरन्तर। नैरयिक सान्तर उद्वर्तते हैं, या

एकेन्द्रिय तिर्यंच-योनिक प्रवेशनक यावत् पंचेंद्रिय-तिर्यंच-योनिक प्रवेशनक, इनमें कौन किससे यावत् विशेषाधिक हैं ? गांगेय ! सबसे थोड़े पंचेन्द्रिय तिर्यंच-योनिक प्रवेशनक हैं, उनसे चतुरिन्द्रिय तिर्यंच-योनिक प्रवेशनक विशेषाधिक हैं, उनसे तेइन्द्रिय तिर्यंच-योनिक प्रवेशनक विशेषाधिक हैं, उनसे द्वीन्द्रिय तिर्यंच-योनिक प्रवेशनक विशेषाधिक हैं और उनसे एकेन्द्रिय तिर्यञ्च-योनिक प्रवेशनक विशेषाधिक हैं ॥३७३॥

भगवन् ! मनुष्य-प्रवेशनक कितने प्रकारका कहा गया है ? गांगेय ! दो प्रकारका कहा गया है। यथा—सम्मूर्च्छिम मनुष्य-प्रवेशनक और गर्भज मनुष्य प्रवेशनक। भगवन् ! मनुष्य-प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करता हुआ एक मनुष्य क्या सम्मूर्च्छिम मनुष्योंमें उत्पन्न होता है, या गर्भज मनुष्योंमें उत्पन्न होता है ? गांगेय ! वह सम्मूर्च्छिम मनुष्योंमें उत्पन्न होता है, अथवा गर्भज मनुष्योंमें उत्पन्न होता है।

भगवन् ! दो मनुष्य मनुष्य-प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए क्या सम्मूर्च्छिम मनुष्योंमें उत्पन्न होते हैं, इत्यादि प्रश्न। गांगेय ! दो मनुष्य सम्मूर्च्छिम मनुष्यों में होते हैं, अथवा गर्भज मनुष्योंमें होते हैं। अथवा एक सम्मूर्च्छिम मनुष्योंमें और एक गर्भज मनुष्योंमें होता है। इस क्रमसे जिस प्रकार नैरयिक-प्रवेशनक कहा, उसी प्रकार मनुष्य-प्रवेशनक भी कहना चाहिये। यावत् दस मनुष्यों तक कहना चाहिये। भगवन् ! संख्यात मनुष्य मनुष्यप्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए इत्यादि प्रश्न। गांगेय ! वे सम्मूर्च्छिम मनुष्योंमें होते हैं, अथवा गर्भज मनुष्यों में होते हैं। अथवा एक सम्मूर्च्छिम मनुष्यों में होता है और संख्यात गर्भज मनुष्यों में होते हैं। अथवा दो सम्मूर्च्छिम मनुष्यों में होते हैं और संख्यात गर्भज मनुष्यों में होते हैं। इस प्रकार एक-एक बढ़ाते हुए यावत् अथवा संख्यात सम्मूर्च्छिम मनुष्यों में और संख्यात गर्भज मनुष्यों में होते हैं। भगवन् ! असंख्यात मनुष्य मनुष्य-प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करनेके सम्बन्धमें प्रश्न। गांगेय ! वे सभी सम्मूर्च्छिम मनुष्यों में होते हैं। अथवा असंख्यात सम्मूर्च्छिम मनुष्योंमें होते हैं और एक गर्भज मनुष्यों में होता है। अथवा असंख्यात सम्मूर्च्छिम मनुष्यों में होते हैं और दो गर्भज मनुष्यों में होते हैं। अथवा इस प्रकार यावत् असंख्यात सम्मूर्च्छिम मनुष्योंमें होते हैं और संख्यात गर्भज मनुष्योंमें होते हैं। भगवन् ! मनुष्य उत्कृष्ट रूप से किस प्रवेशनक में होते हैं ? इत्यादि प्रश्न। गांगेय ! वे सभी सम्मूर्च्छिम मनुष्योंमें होते हैं। अथवा सम्मूर्च्छिम मनुष्यों में और गर्भज मनुष्योंमें होते हैं। भगवन् ! सम्मूर्च्छिम मनुष्य प्रवेशनक और गर्भज मनुष्य प्रवेशनक, इनमें कौनसा प्रवेशनक किस प्रवेशनक से यावत विशेषाधिक है ? गांगेय ! सबसे अल्प गर्भज मनुष्य प्रवेशनक है, उससे सम्मूर्च्छिम मनुष्य-प्रवेशनक असंख्यात गुणा है ॥३७४॥

भगवन् ! देव-प्रवेशनक कितने प्रकार का कहा गया है ? गांगेय ! चार प्रकार का कहा गया है। यथा—भवनवासी देव-प्रवेशनक, वाणव्यन्तर देव-प्रवेशनक, ज्योतिषी देव-प्रवेशनक और वैमानिक देव-प्रवेशनक। भगवन् ! एक देव देव-प्रवेशनक द्वारा प्रवेश करता हुआ क्या भवनवासी देवों में होता है, वाणव्यन्तर देवों में होता है, ज्योतिषी देवों में होता है, अथवा वैमानिक देवों में होता है ? गांगेय ! वह भवनवासी देवोंमें होता है, अथवा वाणव्यन्तर देवोंमें, अथवा ज्योतिषी देवों में, अथवा वैमानिक देवों में होता है। भगवन् ! दो देव देवप्रवेशनक द्वारा प्रवेश करते हुए—इत्यादि प्रश्न। गांगेय ! वे दो देव भवनवासी देवोंमें होते हैं, अथवा वाणव्यन्तर देवोंमें होते हैं, अथवा ज्योतिषी देवोंमें होते हैं, अथवा वैमानिक देवोंमें होते हैं। अथवा एक भवनवासी देवोंमें होता है और एक वाणव्यन्तर देवोंमें होता है। जिस प्रकार तिर्यंच-योनिक प्रवेशनक कहा, उसी प्रकार देव-प्रवेशनक भी कहना चाहिये। यावत् असंख्यात देव प्रवेशनक तक कहना चाहिये।

भगवन् ! देव उत्कृष्टपने किस प्रवेशनक में होते हैं, इत्यादि प्रश्न। गांगेय ! वे सभी ज्योतिषी देवों में होते हैं, अथवा ज्योतिषी और भवनवासी देवों में होते हैं, अथवा ज्योतिषी और वाणव्यन्तर देवों में होते हैं, अथवा ज्योतिषी और वैमानिक देवों में होते हैं, अथवा ज्योतिषी, भवनवासी और वाणव्यन्तर देवों में होते हैं, अथवा ज्योतिषी, भवनवासी और वैमानिक देवों में होते हैं, अथवा ज्योतिषी, वाणव्यन्तर और वैमानिक देवों में होते हैं। अथवा ज्योतिषी, भवनवासी, वाणव्यन्तर और वैमानिक देवोंमें होते हैं।

भगवन् ! भवनवासी देवप्रवेशनक, वाणव्यन्तर देव-प्रवेशनक, ज्योतिषी-देव-प्रवेशनक और वैमानिक देव-प्रवेशनक, इनमें कौनसा प्रवेशनक किस प्रवेशनक से यावत् विशेषाधिक है ? गांगेय ! वैमानिक देव-प्रवेशनक सबसे अल्प है, उससे भवनवासी देव-प्रवेशनक असंख्यात गुणा है, उससे वाणव्यन्तर देव प्रवेशनक असंख्यात गुणा है और उससे ज्योतिषी-देव-प्रवेशनक संख्यातगुणा है ॥३७५॥

भगवन् ! नैरयिकप्रवेशनक, तिर्यचयोनिकप्रवेशनक, मनुष्यप्रवेशनक और देव-प्रवेशनक, इनमें कौनसा प्रवेशनक किस प्रवेशनकसे यावत् विशेषाधिक है ? गांगेय ! सबसे अल्प मनुष्य प्रवेशनक है, उससे नैरयिक-प्रवेशनक असंख्यात गुणा है, उससे देव-प्रवेशनक असंख्यात गुणा है और उससे तिर्यचयोनिक प्रवेशनक असंख्यात गुणा है ॥३७६॥

भगवन् ! नैरयिक सान्तर (अन्तर सहित) उत्पन्न होते हैं अथवा निरन्तर उत्पन्न होते हैं, असुरकुमार सान्तर उत्पन्न होते हैं अथवा निरन्तर, यावत् वैमानिक देव सान्तर उत्पन्न होते हैं, या निरन्तर। नैरयिक सान्तर उद्वर्तते हैं, या

निरन्तर, यावत् वाणव्यन्तर सान्तर उद्वर्तते हैं, या निरन्तर। ज्योतिषी देव सान्तर चवते हैं, या निरन्तर। वैमानिक देव सान्तर चवते हैं या निरन्तर ? गांगेय ! नैरयिक सान्तर भी उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी, यावत् स्तनितकुमार सान्तर भी उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी उत्पन्न होते हैं। पृथ्वीकायिक सान्तर उत्पन्न नहीं होते, परन्तु निरन्तर उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार यावत् वनस्पतिकायिक जीव सान्तर उत्पन्न नहीं होते, निरन्तर उत्पन्न होते हैं। शेष सभी जीव नैरयिक जीवों के समान सान्तर भी उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी, यावत् वैमानिक देव सान्तर भी उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी। नैरयिक जीव सान्तर भी उद्वर्तते हैं और निरन्तर भी। इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमारों तक कहना चाहिये। पृथ्वीकायिक जीव सान्तर नहीं उद्वर्तते, निरन्तर उद्वर्तते हैं। इसी प्रकार यावत् वनस्पतिकायिक जीवों तक कहना चाहिये। शेष सभी जीवों का कथन नैरयिकों के समान जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि 'ज्योतिषी और वैमानिक देव चवते हैं'-ऐसा पाठ कहना चाहिये, यावत् वैमानिक देव सान्तर भी चवते हैं और निरन्तर भी चवते हैं।

भगवन् ! सत् (विद्यमान) नैरयिक उत्पन्न होते हैं, या असत् (अविद्यमान) नैरयिक उत्पन्न होते हैं ? गांगेय ! सत् नैरयिक उत्पन्न होते हैं, असत् नैरयिक उत्पन्न नहीं होते। इसी प्रकार वैमानिक पर्यंत जानना चाहिये। भगवन् ! सत् नैरयिक उद्वर्तते हैं, या असत् नैरयिक...? गांगेय ! सत् नैरयिक उद्वर्तते हैं, असत् नैरयिक नहीं उद्वर्तते। इसी प्रकार यावत् वैमानिक पर्यन्त जानना चाहिये, परन्तु इतनी विशेषता है कि 'ज्योतिषी और वैमानिक देव चवते हैं'-ऐसा कहना चाहिए।

भगवन् ! नैरयिक जीव सत् नैरयिकोंमें उत्पन्न होते हैं, या असत् नैरयिकों में। असुरकुमार देव सत् असुरकुमार देवोंमें उत्पन्न होते हैं, या असत् असुरकुमार देवोंमें, इसी प्रकार यावत् सत् वैमानिकोंमें उत्पन्न होते हैं, या असत् वैमानिकोंमें। सत् नैरयिकोंमें से उद्वर्तते हैं, या असत् नैरयिकोंमें से। सत् असुरकुमारोंमें से उद्वर्तते हैं, या असत् असुरकुमारों में से। इसी प्रकार यावत् सत् वैमानिकोंमें से चवते हैं, या असत् वैमानिकों में से ? गांगेय ! नैरयिक जीव सत् नैरयिकोंमें उत्पन्न होते हैं, परन्तु असत् नैरयिकों में उत्पन्न नहीं होते। सत् असुरकुमारोंमें उत्पन्न होते हैं, असत् असुरकुमारों में नहीं। इसी प्रकार यावत् सत् वैमानिकोंमें उत्पन्न होते हैं, असत् वैमानिकोंमें नहीं। सत् नैरयिकोंमें से उद्वर्तते हैं, असत् नैरयिकोंमें से नहीं, यावत् सत् वैमानिकोंमें से चवते हैं, असत् वैमानिकोंमें से नहीं।

भगवन् ! ऐसा किस कारणसे कहते हैं कि सत् नैरयिकोंमें उत्पन्न होते हैं, असत् नैरयिकोंमें नहीं, इसी प्रकार यावत् सत वैमानिकोंसे चवते हैं, असत् वैमानिकोंसे नहीं ? गांगेय ! पुरुषादानीय अरिहन्त श्री पार्श्वनाथ ने 'लोक को शाश्वत,

अनादि और अनन्त कहा है ।' इत्यादि पांचवें शतक के नौवें उद्देशकमें कहे अनुसार जानना चाहिये । यावत् "जो अवलोकन किया जाय, उसे 'लोक' कहते हैं," इस कारण हे गांगेय ! ऐसा कहा गया है कि यावत् सत् वैमानिकों से चवते हैं, असत् वैमानिकों से नहीं ।

भगवन् ! आप स्वयं इस प्रकार जानते हैं, अथवा अस्वयं जानते हैं, बिना सुने ही इस प्रकार जानते हैं अथवा सुनकर जानते हैं कि 'सत् नैरयिक उत्पन्न होते हैं, असत् नैरयिक नहीं, यावत् सत् वैमानिकोंसे चवते हैं, असत् वैमानिकोंसे नहीं ?' गांगेय ! ये सभी बातें मैं स्वयं जानता हूं, अस्वयं नहीं, बिना सुने ही जानता हूं, सुनकर ऐसा नहीं जानता कि "सत् नैरयिक उत्पन्न होते हैं, असत् नैरयिक नहीं, यावत् सत् वैमानिकोंसे चवते हैं, असत् वैमानिकोंसे नहीं ।"

भगवन् ! ऐसा कहने का क्या कारण है कि 'मैं स्वयं जानता हूं,' इत्यादि पूर्वोक्त यावत् सत् वैमानिकोंसे चवते हैं, असत् वैमानिकोंसे नहीं ? गांगेय ! केवलज्ञानी पूर्वमें मित (मर्यादित) भी जानते हैं और अमित (अमर्यादित) भी जानते हैं, इसी प्रकार दक्षिणमें भी जानते हैं । इस प्रकार शब्द उद्देशक (छठे शतक के चौथे उद्देशक) में कहे अनुसार जानना चाहिये । यावत् केवली का ज्ञान निरावरण होता है । इसलिए हे गांगेय ! इस कारण मैं कहता हूं कि 'मैं स्वयं जानता हूं । इत्यादि यावत् असत् वैमानिकों से नहीं चवते ।'

भगवन् ! क्या नैरयिक नैरयिकोंमें स्वयं उत्पन्न होते हैं, या अस्वयं उत्पन्न होते हैं ? गांगेय ! नैरयिक नैरयिकों में स्वयं उत्पन्न होते हैं, अस्वयं उत्पन्न नहीं होते । भगवन् ! ऐसा क्यों कहते हैं ? गांगेय ! कर्मके उदय से, कर्मके गुरुपन से, कर्म के भारीपनसे, कर्मों के अत्यन्त गुरुत्व और भारीपनसे, अशुभ कर्मों के उदय से, अशुभ कर्मों के विपाकसे और अशुभ कर्मोंके फल-विपाकसे नैरयिक नैरयिकोंमें स्वयं उत्पन्न होते हैं, अस्वयं नहीं होते । इस कारण हे गांगेय ! यह कहा गया है कि नैरयिक नैरयिकोंमें स्वयं उत्पन्न होते हैं, अस्वयं उत्पन्न नहीं होते । भगवन् ! क्या असुरकुमार असुरकुमारोंमें स्वयं उत्पन्न होते हैं, या अस्वयं ? गांगेय ! असुरकुमार असुरकुमारोंमें स्वयं उत्पन्न होते हैं, अस्वयं उत्पन्न नहीं होते ।

भगवन् ! ऐसा कहने का क्या कारण है ? गांगेय ! कर्मके उदयसे, अशुभ कर्मके उपशमसे, अशुभकर्मके अभावसे, कर्मकी विशोधिसे, कर्मोंकी विशुद्धिसे, शुभ कर्मोंके उदयसे, शुभ कर्मोंके विपाकसे और शुभ कर्मोंके फल-विपाकसे असुरकुमार असुरकुमारोंमें स्वयं उत्पन्न होते हैं, अस्वयं उत्पन्न नहीं होते । इसलिये हे गांगेय ! पूर्वोक्त रूपसे कहा गया है । इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमारों तक जानना चाहिये । भगवन् ! क्या पृथ्वीकायिक पृथ्वीकायिकोंमें स्वयं उत्पन्न होते

हैं या अस्वयं···? गांगेय ! पृथ्वीकायिक पृथ्वीकायिकों में स्वयं उत्पन्न होते हैं, अस्वयं उत्पन्न नहीं होते।

भगवन् ! ऐसा किस कारण कहते हैं, कि 'पृथ्वीकायिक स्वयं उत्पन्न होते हैं,' इत्यादि। गांगेय ! कर्म के उदय से, कर्मके गुरुपनसे, कर्म के भारीपन से, कर्मके अत्यन्त गुरुत्व और भारीपन से, शुभ और अशुभ कर्मों के उदयसे, शुभ और अशुभ कर्मों के विपाक से और शुभाशुभ कर्मोंके फल-विपाक से पृथ्वीकायिक पृथ्वीकायिकों में स्वयं उत्पन्न होते हैं, अस्वयं उत्पन्न नहीं होते। इसलिये हे गांगेय ! पूर्वोक्त रूपसे कहा गया है। इसी प्रकार यावत् मनुष्य तक जानना चाहिये। जिस प्रकार असुरकुमारों के विषय में कहा, उसी प्रकार वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिकोंके विषय में भी जानना चाहिये। इसलिये हे गांगेय ! इस कारण ऐसा कहता हूं कि, 'यावत् वैमानिक वैमानिकों में स्वयं उत्पन्न होते हैं, अस्वयं उत्पन्न नहीं होते' ॥३७७॥

इसके अनन्तर गांगेय अनगारने श्रमण भगवान् महावीर स्वामीको सर्वज्ञ और सर्वदर्शी जाना। पश्चात् गांगेय अनगारने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को तीन बार आदक्षिण-प्रदक्षिणा की, वन्दना नमस्कार किया, वन्दना नमस्कार करके इस प्रकार निवेदन किया—"भगवन् ! मैं आपके पास चार यामरूप धर्मसे पांच महाव्रत रूप धर्मको अंगीकार करना चाहता हूं। इस प्रकार सारा वर्णन पहले शतकके नौवें उद्देशकमें कथित कालास्यवेषिकपुत्र अनगारके समान जानना चाहिये। यावत् गांगेय अनगार सिद्ध, बुद्ध, मुक्त यावत् समस्त दुःखोंसे रहित बने। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है।······॥३७८॥

॥ गांगेय-चरित्र समाप्त ॥

॥ नौवें शतक का बत्तीसवां उद्देशक समाप्त ॥

शतक ९ उद्देशक ३३—ऋषभदत्त और देवानन्दा

उस काल उस समय में 'ब्राह्मण-कुण्डग्राम' नामका नगर था (वर्णन)। बहुशालक नामक उद्यान था। उस ब्राह्मणकुण्ड ग्राम नामक नगर में 'ऋषभ-दत्त' नामका ब्राह्मण रहता था। वह आढ्य (धनवान्), तेजस्वी, प्रसिद्ध यावत् अपरिभूत था। वह ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेदमें निपुण था। (शतक दो उद्देशक एकमें कथित) स्कन्दक तापस की तरह वह भी ब्राह्मणोंके दूसरे बहुतसे नयों (शास्त्रों) में कुशल था। वह श्रमणोंका उपासक, जीवाजीवादि तत्त्वोंका जानकार, पुण्य पापको पहचानने वाला, यावत् आत्माको भावित करता

हुआ रहता था × । उस ऋषभदत्त ब्राह्मण के 'देवानन्दा' नाम की स्त्री थी। उसके हाथ पैर सुकुमाल थे, यावत् उसका दर्शन भी प्रिय था। उसका रूप सुन्दर था। वह श्रमणोपासिका थी। वह जीवाजीवादि तत्त्वोंकी जानकार, तथा पुण्य पापको पहचानने वाली थी। उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी वहां पधारे। जनता यावत् पर्युपासना करने लगी।

श्रमण भगवान् महावीर स्वामीके आगमनकी बात सुनकर वह ऋषभदत्त ब्राह्मण बड़ा प्रसन्न हुआ। यावत् उल्लसित हृदय वाला हुआ। वह अपनी पत्नी देवानन्दा ब्राह्मणीके पास आया और इस प्रकार कहा—'देवानुप्रिये! तीर्थंकी आदिके करने वाले यावत् सर्वज्ञ-सर्वदर्शी श्रमण भगवान् महावीर स्वामी, आकाश में रहे हुए चक्रसे युक्त यावत् सुखपूर्वक विहार करते हुए यहां पधारे और बहुशालक नामक उद्यानमें यथायोग्य अवग्रह ग्रहण करके यावत् विचरते हैं। हे देवानुप्रिये! तथारूप अरिहन्त भगवान्के नामगोत्रके श्रवणका भी महान् फल है, तो उनके सम्मुख जाने, वन्दन नमस्कार करने, प्रश्न पूछने और पर्युपासना करने आदिसे होने वाले फलके विषयमें तो कहना ही क्या है। तथा एक भी आर्य और धार्मिक सुवचनके श्रवणसे महाफल होता है, तो फिर विपुल अर्थको ग्रहण करनेसे महाफल हो, इसमें तो कहना ही क्या है। इसलिये देवानुप्रिये! हम चलें और श्रमण भगवान् महावीर स्वामीको वन्दन नमस्कार करें यावत् उनकी पर्युपासना करें। यह कार्य अपने लिए इस भवमें और परभवमें हित, सुख, संगतता, निःश्रेयस और शुभ अनुबन्धके लिए होगा।' ऋषभदत्तसे यह बात सुनकर देवानन्दा बड़ी प्रसन्न यावत् उल्लसित हृदय वाली हुई और दोनों हाथ जोड़, मस्तक पर अंजली करके ऋषभदत्त ब्राह्मणके इस कथनको विनयपूर्वक स्वीकार किया।

इसके पश्चात् ऋषभदत्त ब्राह्मणने अपने कौटुम्बिक (सेवक) पुरुषोंको बुलाया और इस प्रकार कहा–'हे देवानुप्रियो! जल्दी चलने वाले सुन्दर और समान रूप वाले, समान खुर और पूंछ वाले, समान सींग वाले, स्वर्ण निर्मित कण्ठके आभूषणोंसे युक्त, उत्तम गति (चाल) वाले, चांदीकी घण्टियोंसे युक्त, स्वर्णमय नासारज्जु (नाथ) द्वारा बांधे हुए, नील-कमलके सिरपेच वाले दो उत्तम युवा बैलोंसे युक्त, अनेक प्रकारकी मणिमय घण्टियोंके समूहसे व्याप्त, उत्तम काष्ठमय धोंसरा (जुआ) और जोत की दो उत्तम डोरियोंसे युक्त, प्रवर (श्रेष्ठ) लक्षण युक्त धार्मिक श्रेष्ठ यान (रथ) तैयार करके यहां उपस्थित करो और आज्ञाका पालन कर निवेदन करो (अर्थात् कार्य सम्पूर्ण हो जानेकी सूचना दो)। ऋषभ-

×श्री ऋषभदत्त पहले वैदिक मतावलम्बी थे। किन्तु बाद में भगवान् पार्श्वनाथके सन्तानिक मुनिवरोंके सम्पर्क से श्रमणोपासक बने।

दत्त ब्राह्मणकी इस प्रकार आज्ञा होने पर वे सेवक पुरुष प्रसन्न यावत् आनन्दित हृदय वाले हुए और मस्तक पर अंजली करके इस प्रकार कहा—'हे स्वामिन् ! यह आपकी आज्ञा हमें मान्य है'—ऐसा कहकर विनयपूर्वक उसके वचनोंको स्वीकार किया और आज्ञानुसार शीघ्र चलने वाले दो बैलोंसे युक्त यावत् धार्मिक श्रेष्ठ रथको शीघ्र उपस्थित किया, यावत् आज्ञा पालनकर निवेदन किया।

तब ऋषभदत्त ब्राह्मणने स्नान किया यावत् अल्प भार और महामूल्य वाले आभूषणोंसे अपने शरीरको अलंकृत किया, और घर से बाहर निकल कर जहां बाहरी उपस्थानशाला थी और जहां धार्मिक श्रेष्ठ रथ था वहां आया, आकर रथ पर चढ़ा।

तब देवानन्दा ब्राह्मणी ने अन्तःपुर में स्नान किया, फिर पैरोंमें पहननेके सुन्दर नूपुर, मणियुक्त मेखला (कन्दोरा), हार, उत्तम कङ्कण, अंगूठियां, विचित्र मणिमय एकावली (एक लड़ा) हार, कण्ठ-सूत्र, ग्रैवेयक (वक्षस्थल पर रहा हुआ गलेका लम्बा हार), कटिसूत्र और विचित्र मणि तथा रत्नोंके आभूषण, इन सबसे शरीर को सुशोभित करके, उत्तम चीनांशुक (वस्त्र) पहनकर शरीर पर सुकुमाल वस्त्र ओढ़कर, सब ऋतुओंके सुगन्धित फूलोंसे अपने केशोंको गूंथकर, कपाल पर चन्दन लगाकर, उत्तम आभूषणोंसे शरीरको अलंकृत कर, कालागुरुके धूपसे सुगन्धित होकर, लक्ष्मीके समान वेष वाली यावत् अल्पभार और बहुमूल्य वाले आभरणोंसे शरीरको अलंकृत करके, बहुतसी कुब्जा दासियों-चिलात देश की दासियों यावत् अनेक देश-विदेशोंसे आकर एकत्रित हुई दासियों अपने देशके वेष धारण करने वाली, इंगित—आकृति द्वारा चिन्तित और इष्ट अर्थको जानने वाली कुशल और विनयसम्पन्न दासियोंके परिवार सहित तथा स्वदेश की दासियों, खोजा पुरुष, वृद्ध कंचुकी और मान्य पुरुषोंके समूहके साथ वह देवानन्दा अपने अन्तःपुरसे निकली और जहां बाहरकी उपस्थानशाला थी और जहां धार्मिक श्रेष्ठ रथ खड़ा था वहां आई और उस धार्मिक श्रेष्ठ रथ पर चढ़ी।

इसके अनन्तर वह ऋषभदत्त ब्राह्मण देवानन्दा ब्राह्मणीके साथ धार्मिक श्रेष्ठ रथ पर चढ़ा हुआ और अपने परिवारसे परिवृत्त, ब्राह्मणकुण्ड ग्राम नामक नगरके मध्यमें होता हुआ निकला और बहुशालक उद्यानमें आया। तीर्थंकर भगवान् के छत्र आदि अतिशयों को देखकर उसने धार्मिक श्रेष्ठ रथको खड़ा रक्खा और नीचे उतरा। रथसे उतरकर वह श्रमण भगवान् महावीर स्वामीके पास पांच प्रकार के अभिगमसे जाने लगा। वे अभिगम इस प्रकार हैं। यथा—'सचित्त द्रव्यों का त्याग करना,' इत्यादि दूसरे शतकके पांचवें उद्देशकमें कहे अनुसार यावत् तीन प्रकार की उपासना करने लगा। देवानन्दा ब्राह्मणी भी धार्मिक रथसे नीचे उतरी और अपनी दासियों आदिके परिवारसे परिवृत्त होकर श्रमण भगवान्

महावीर स्वामीके पास पांच प्रकारके अभिगम युक्त जाने लगी। वे अभिगम इस प्रकार हैं- (१) सचित्त द्रव्य का त्याग करना, (२) अचित्त द्रव्य का त्याग नहीं करना अर्थात् वस्त्रादिक को समेट कर व्यवस्थित करना, (३) विनयसे शरीरको अवनत करना (नीचेकी ओर झुका देना), (४) भगवान्के दृष्टिगोचर होते ही दोनों हाथ जोड़ना और (५) मनको एकाग्र करना। इन पांच अभिगम द्वारा जहां श्रमण भगवान् महावीर स्वामी थे, वहां आई और भगवान् को तीन वार आदक्षिण-प्रदक्षिणा करके वन्दन नमस्कार किया। वन्दन नमस्कार के बाद ऋषभदत्त ब्राह्मणको आगे करके अपने परिवार सहित शुश्रूषा करती हुई और नत बन कर सन्मुख स्थित रही हुई, विनयपूर्वक हाथ जोड़ कर उपासना करने लगी ॥३७९॥

इसके बाद उस देवानन्दा ब्राह्मणी के स्तनों में दूध आ गया। उसके नेत्र आनन्दाश्रुओं से भीग गये। हर्ष से प्रफुल्लित होती हुई उसकी भुजाओं को वलयों ने रोका (उसकी भुजाओं के कड़े तंग हो गये), हर्ष से उसका शरीर प्रफुल्लित हो गया। उसकी कंचुकी विस्तीर्ण हो गई। मेघ की धारा से विकसित कदम्ब पुष्पके समान उसका सारा शरीर रोमाञ्चित हो गया। वह श्रमण भगवान् महावीर स्वामी की ओर अनिमेष दृष्टि से देखने लगी ॥३८०॥

इसके पश्चात् 'हे भगवन्!' ऐसा कहकर गौतम स्वामी ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना नमस्कार किया। वन्दना नमस्कार करके इस प्रकार पूछा—'हे भगवन्! इस देवानन्दा ब्राह्मणी को किस प्रकार पाना चढ़ा (इसके स्तनों में दूध कैसे आ गया) यावत् इसको रोमाञ्च किस प्रकार हुआ? और आप देवानुप्रिय की ओर अनिमेष दृष्टिसे देखती हुई क्यों खड़ी है?' 'हे गौतम!'—ऐसा कहकर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने गौतम स्वामीसे इस प्रकार कहा—गौतम! यह देवानन्दा मेरी माता है, मैं देवानन्दाका आत्मज (पुत्र) हूं। इसलिये देवानन्दा को पूर्वके पुत्र-स्नेहानुरागसे दूध आया यावत् रोमाञ्च हुआ और यह मेरी ओर अनिमेष दृष्टि से देखती हुई खड़ी है। इसके पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर स्वामीने ऋषभदत्त ब्राह्मण, देवानन्दा ब्राह्मणी और उस बड़ी ऋषि-परिषद् आदिको धर्म-कथा कही, यावत् परिषद् वापिस चली गई।

श्रमण भगवान् महावीर स्वामीके पास धर्म श्रवण कर और हृदय में धारण करके ऋषभदत्त ब्राह्मण बड़ा प्रसन्न हुआ, तुष्ट हुआ। उसने खड़े होकर श्रमण भगवान् महावीर स्वामीकी तीन वार प्रदक्षिणा की यावत् नमस्कार किया और इस प्रकार निवेदन किया कि 'हे भगवन्! आपका कथन यथार्थ है।' इत्यादि दूसरे शतकके पहले उद्देशक में स्कन्दक तापसके प्रकरणमें कहे अनुसार यावत्

'जो आप कहते हैं वह उसी प्रकार है।' इस प्रकार कह कर ऋषभदत्त ब्राह्मण ईशान कोण की ओर गया और स्वयमेव आभरण, माला और अलंकारोंको उतार दिया। फिर स्वयमेव पञ्चमुष्टि लोच किया और श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास आया। भगवान् को तीन वार प्रदक्षिणा की यावत् नमस्कार करके इस प्रकार कहा—"भगवन्! जरा और मरणसे यह लोक चारों ओर प्रज्वलित है, हे भगवन्! यह लोक चारों ओर अत्यंत प्रज्वलित है।'इस प्रकार कहकर स्कन्दक तापसकी तरह प्रव्रज्या अंगीकार की, यावत् सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन किया, और बहुत से उपवास, वेला, तेला, चौला आदि विचित्र तप-कर्मसे आत्माको भावित करते हुए बहुत वर्षों तक श्रमण पर्याय का पालन किया और एक मासकी संलेखनासे आत्माको संलिखित करके साठ भक्तोंके अनशनों का छेदन किया और जिसके लिये निर्ग्रन्थपन—संयम स्वीकार किया था यावत् उस निर्वाण रूप अर्थ की आराधना करली यावत् वे सर्व दुःखों से मुक्त हुए।

श्रमण भगवान् महावीर स्वामीसे धर्म सुनकर और हृदय में धारण करके देवानन्दा ब्राह्मणी हृष्ट (आनन्दित) और तुष्ट हुई। श्रमण भगवान् महावीर स्वामीकी तीन प्रदक्षिणा कर यावत् नमस्का रकर इस प्रकार बोली-'हे भगवन्! आपका कथन यथार्थ है।' इस प्रकार ऋषभ दत्त ब्राह्मणके समान कहकर निवेदन किया कि भगवन्! मैं प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहती हूं। तब श्रमण भगवान् महावीर स्वामीने देवानन्दाको स्वयमेव दीक्षा दी। दीक्षा देकर आर्य चन्दना आर्याको शिष्या रूपमें दिया। इसके पश्चात् आर्या चन्दनाने आर्या देवानन्दाको स्वयमेव प्रव्रजित किया, स्वयमेव मुण्डित किया, स्वयमेव शिक्षा दी। देवानन्दाने भी ऋषभदत्त ब्राह्मणके समान आर्या चन्दनाके वचनोंको स्वीकार किया और उनकी आज्ञानुसार पालन करने लगी यावत् संयममें प्रवृत्ति करने लगी। देवानन्दा आर्याने आर्य चन्दना आर्याके पास सामायिक आदि ग्यारह अंगोंका अध्ययन किया। शेष वर्णन पूर्ववत् है यावत् वह देवानन्दा आर्या सभी दुःखों से मुक्त हुई ॥३८१॥

जमाली चरित्र

उस ब्राह्मणकुण्ड ग्राम नामक नगरकी पश्चिम दिशामें क्षत्रियकुण्ड ग्राम नामक नगर था। उस क्षत्रियकुण्ड ग्राम नामक नगरमें जमाली नामका क्षत्रियकुमार रहता था। वह आढ्य (धनिक), दीप्त–तेजस्वी यावत् अपरिभूत था। वह अपने उत्तम भवन पर, जिसमें मृदंग वज रहे हैं, अनेक प्रकारकी सुन्दर युवतियों द्वारा सेवित है, बत्तीस प्रकारके नाटकों द्वारा हस्तपादादि अवयव जहां नचाए जा रहे हैं, जहां वार-वार स्तुतिकी जा रही है, अत्यन्त खुशियां मनाई जा रही हैं, उस भवनमें प्रावृष्, वर्षा, शरद, हेमन्त, वसन्त और ग्रीष्म, इन छह ऋतुओंमें अपने वैभवके अनुसार सुखका अनुभव करता हुआ, समय विताता हुआ, मनुष्य सम्बन्धी

पांच प्रकारके इष्ट शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गन्ध, इन काम भोगोंका अनुभव करता हुआ रहता था।

क्षत्रियकुण्ड ग्राम नामक नगरमें शृंगाटक, त्रिक, चतुष्क और चत्वरमें यावत् बहुतसे मनुष्योंका कोलाहल हो रहा था, इत्यादि सारा वर्णन औपपातिक सूत्रमें कहे अनुसार जानना चाहिये, यावत् बहुतसे मनुष्य परस्पर इस प्रकार कहते हैं यावत् परूपणा करते हैं कि—"हे देवानुप्रियो! आदिकर (धर्म-तीर्थकी आदि करने वाले) यावत् सर्वज्ञ-सर्वदर्शी, श्रमण भगवान् महावीर स्वामी, इस ब्राह्मणकुण्ड ग्राम नगरके बाहर, बहुशाल नामक उद्यानमें यथायोग्य अवग्रह ग्रहण करके यावत् विचरते हैं। देवानुप्रियो! तथारूप अरिहन्त भगवान्के नाम, गोत्रके श्रवणमात्रसे भी महाफल होता है, इत्यादि औपपातिक सूत्रके अनुसार वर्णन जानना चाहिये, यावत् वह जन-समूह एक दिशाकी ओर जाता है और क्षत्रियकुंड ग्राम नामक नगर के मध्यमें होता हुआ बाहर निकलता है और बहुशालक उद्यानमें आता है। इस का सारा वर्णन औपपातिक सूत्रके अनुसार जानना चाहिये, यावत् वह जन-समूह तीन प्रकारकी पर्युपासना करता है।

बहुतसे मनुष्योंके शब्द और कोलाहल सुनकर और अवधारण कर क्षत्रिय-कुमार जमालीके मनमें इस प्रकारका विचार उत्पन्न हुआ कि—"क्या आज क्षत्रिय-कुण्ड ग्राम नगरमें इन्द्रका उत्सव है, स्कन्दका उत्सव है, वासुदेवका उत्सव है, नागका उत्सव है, ...कूपका उत्सव है, तालाब का उत्सव है, नदीका उत्सव है, द्रहका उत्सव है, पर्वतका उत्सव है, वृक्षका उत्सव है, कि जिससे ये सब उग्रकुल, भोगकुल, राजन्यकुल, इक्ष्वाकुकुल, ज्ञातकुल और कुरुवंश, इन सबके क्षत्रिय, क्षत्रियपुत्र, भट और भटपुत्र इत्यादि औपपातिक सूत्रमें कहे अनुसार यावत् सार्थवाह प्रमुख यावत् बाहर निकलते हैं—इस प्रकार विचार करके जमाली क्षत्रियकुमारने कञ्चुकी (सेवक) को बुलाया और इस प्रकार कहा—"हे देवानुप्रिय! क्या आज क्षत्रियकुण्ड ग्राम नामक नगरके बाहर इन्द्र आदिका उत्सव है, जिससे ये सब लोग बाहर जा रहे हैं?" जमाली क्षत्रियकुमारके इस प्रश्नको सुनकर वह कंचुकी पुरुष हर्षित एवं सन्तुष्ट हुआ। श्रमण भगवान् महावीर स्वामीके आगमनका निश्चय करके उसने हाथ जोड़कर जमाली क्षत्रियकुमारको जय-विजय शब्दों द्वारा बधाया। तदनन्तर उसने इस प्रकार कहा—"हे देवानुप्रिय! आज क्षत्रियकुण्ड ग्राम नामक नगरके बाहर इन्द्र आदिका उत्सव नहीं है, किन्तु सर्वज्ञ सर्वदर्शी श्रमण भगवान् महावीर स्वामी नगरके बाहर बहुशाल नामक उद्यानमें पधारे हैं और यथायोग्य अवग्रह ग्रहण करके यावत् विचरते हैं। इसी-लिये ये उग्रकुल भोगकुलादिके क्षत्रिय आदि वन्दनके लिए जा रहे हैं।" कंचुकी पुरुषसे यह बात सुनकर एवं हृदयमें धारण करके जमाली क्षत्रियकुमार हर्षित

'जो आप कहते हैं वह उसी प्रकार है।' इस प्रकार कह कर ऋषभदत्त ब्राह्मण ईशान कोण की ओर गया और स्वयमेव आभरण, माला और अलंकारोंको उतार दिया। फिर स्वयमेव पञ्चमुष्टि लोच किया और श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास आया। भगवान् को तीन बार प्रदक्षिणा की यावत् नमस्कार करके इस प्रकार कहा—"भगवन्! जरा और मरणसे यह लोक चारों ओर प्रज्वलित है, हे भगवन्! यह लोक चारों ओर अत्यंत प्रज्वलित है।' इस प्रकार कहकर स्कन्दक तापसकी तरह प्रव्रज्या अंगीकार की, यावत् सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन किया, और वहुत से उपवास, वेला, तेला, चौला आदि विचित्र तप-कर्मसे आत्माको भावित करते हुए वहुत वर्षों तक श्रमण पर्याय का पालन किया और एक मासकी संलेखनासे आत्माको संलिखित करके साठ भक्तोंके अनशनों का छेदन किया और जिसके लिये निर्ग्रन्थपन—संयम स्वीकार किया था यावत् उस निर्वाण रूप अर्थ की आराधना करली यावत् वे सर्व दुःखों से मुक्त हुए।

श्रमण भगवान् महावीर स्वामीसे धर्म सुनकर और हृदय में धारण करके देवानन्दा ब्राह्मणी हृष्ट (आनन्दित) और तुष्ट हुई। श्रमण भगवान् महावीर स्वामीकी तीन प्रदक्षिणा कर यावत् नमस्का रकर इस प्रकार वोली–'हे भगवन्! आपका कथन यथार्थ है।' इस प्रकार ऋषभ दत्त ब्राह्मणके समान कहकर निवेदन किया कि भगवन्! मैं प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहती हूं। तव श्रमण भगवान् महावीर स्वामीने देवानन्दाको स्वयमेव दीक्षा दी। दीक्षा देकर आर्य चन्दना आर्याको शिष्या रूपमें दिया। इसके पश्चात् आर्या चन्दनाने आर्या देवानन्दाको स्वयमेव प्रव्रजित किया, स्वयमेव मुण्डित किया, स्वयमेव शिक्षा दी। देवानन्दाने भी ऋषभदत्त ब्राह्मणके समान आर्या चन्दनाके वचनोंको स्वीकार किया और उनकी आज्ञानुसार पालन करने लगी यावत् संयममें प्रवृत्ति करने लगी। देवानन्दा आर्याने आर्य चन्दना आर्याके पास सामायिक आदि ग्यारह अंगोंका अध्ययन किया। शेष वर्णन पूर्ववत् है यावत् वह देवानन्दा आर्या सभी दुःखों से मुक्त हुई ॥३८१॥

जमाली चरित्र

उस ब्राह्मणकुण्ड ग्राम नामक नगरकी पश्चिम दिशामें क्षत्रियकुण्ड ग्राम नामक नगर था। उस क्षत्रियकुण्ड ग्राम नामक नगरमें जमाली नामका क्षत्रियकुमार रहता था। वह आढ्य (धनिक), दीप्त–तेजस्वी यावत् अपरिभूत था। वह अपने उत्तम भवन पर, जिसमें मृदंग वज रहे हैं, अनेक प्रकारकी सुन्दर युवतियों द्वारा सेवित है, वत्तीस प्रकारके नाटकों द्वारा हस्तपादादि अवयव जहां नचाए जा रहे हैं, जहां वार-वार स्तुतिकी जा रही है, अत्यन्त खुशियां मनाई जा रही हैं, उस भवनमें प्रावृष्, वर्षा, शरद, हेमन्त, वसन्त और ग्रीष्म, इन छह ऋतुओंमें अपने वैभवके अनुसार सुखका अनुभव करता हुआ, समय विताता हुआ, मनुष्य सम्वन्धी

पांच प्रकारके इष्ट शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गन्ध, इन काम भोगोंका अनुभव करता हुआ रहता था।

क्षत्रियकुण्ड ग्राम नामक नगरमें शृंगाटक, त्रिक, चतुष्क और चत्वरमें यावत् बहुतसे मनुष्योंका कोलाहल हो रहा था, इत्यादि सारा वर्णन औपपातिक सूत्रमें कहे अनुसार जानना चाहिये, यावत् बहुतसे मनुष्य परस्पर इस प्रकार कहते हैं यावत् परूपणा करते हैं कि—'हे देवानुप्रियो! आदिकर (धर्म-तीर्थकी आदि करने वाले) यावत् सर्वज्ञ-सर्वदर्शी, श्रमण भगवान् महावीर स्वामी, इस ब्राह्मणकुण्ड ग्राम नगरके बाहर, बहुशाल नामक उद्यानमें यथायोग्य अवग्रह ग्रहण करके यावत् विचरते हैं। देवानुप्रियो! तथारूप अरिहन्त भगवान्के नाम, गोत्रके श्रवणमात्रसे भी महाफल होता है, इत्यादि औपपातिक सूत्रके अनुसार वर्णन जानना चाहिये, यावत् वह जन-समूह एक दिशाकी ओर जाता है और क्षत्रियकुंड ग्राम नामक नगर के मध्यमें होता हुआ बाहर निकलता है और बहुशालक उद्यानमें आता है। इस का सारा वर्णन औपपातिक सूत्रके अनुसार जानना चाहिये, यावत् वह जन-समूह तीन प्रकारकी पर्युपासना करता है।

बहुतसे मनुष्योंके शब्द और कोलाहल सुनकर और अवधारण कर क्षत्रिय-कुमार जमालीके मनमें इस प्रकारका विचार उत्पन्न हुआ कि—"क्या आज क्षत्रिय-कुण्ड ग्राम नगरमें इन्द्रका उत्सव है, स्कन्दका उत्सव है, वासुदेवका उत्सव है, नागका उत्सव है, ...कूपका उत्सव है, तालाब का उत्सव है, नदीका उत्सव है, द्रहका उत्सव है, पर्वतका उत्सव है, वृक्षका उत्सव है, कि जिससे ये सब उग्रकुल, भोगकुल, राजन्यकुल, इक्ष्वाकुकुल, ज्ञातकुल और कुरुवंश, इन सबके क्षत्रिय, क्षत्रियपुत्र, भट और भटपुत्र इत्यादि औपपातिक सूत्रमें कहे अनुसार यावत् सार्थवाह प्रमुख यावत् बाहर निकलते हैं—इस प्रकार विचार करके जमाली क्षत्रियकुमारने कञ्चुकी (सेवक) को बुलाया और इस प्रकार कहा—"हे देवानुप्रिय! क्या आज क्षत्रियकुण्ड ग्राम नामक नगरके बाहर इन्द्र आदिका उत्सव है, जिससे ये सब लोग बाहर जा रहे हैं?" जमाली क्षत्रियकुमारके इस प्रश्नको सुनकर वह कंचुकी पुरुष हर्षित एवं सन्तुष्ट हुआ। श्रमण भगवान् महावीर स्वामीके आगमनका निश्चय करके उसने हाथ जोड़कर जमाली क्षत्रियकुमारको जय-विजय शब्दों द्वारा बधाया। तदनन्तर उसने इस प्रकार कहा—"हे देवानुप्रिय! आज क्षत्रियकुण्ड ग्राम नामक नगरके बाहर इन्द्र आदिका उत्सव नहीं है, किन्तु सर्वज्ञ सर्वदर्शी श्रमण भगवान् महावीर स्वामी नगरके बाहर बहुशाल नामक उद्यानमें पधारे हैं और यथायोग्य अवग्रह ग्रहण करके यावत् विचरते हैं। इसी-लिये ये उग्रकुल भोगकुलादिके क्षत्रिय आदि वन्दनके लिए जा रहे हैं।" कंचुकी पुरुषसे यह बात सुनकर एवं हृदयमें धारण करके जमाली क्षत्रियकुमार हर्षित

एवं संतुष्ट हुआ और कौटुम्बिक पुरुषोंको बुलाकर इस प्रकार कहा—'हे देवानु-प्रियो ! तुम शीघ्र चार घण्टों वाले अश्वरथको जोड़कर यहां उपस्थित करो और मेरी आज्ञा का पालन कर निवेदन करो ।' जमाली क्षत्रियकुमारकी इस आज्ञाको सुनकर तदनुसार कार्य करके उन्हें निवेदन किया ।

इसके बाद जमाली क्षत्रियकुमार स्नानघरमें गया । वहां जाकर स्नान किया यावत् औपपातिक सूत्रमें वर्णित परिषद्का सारा वर्णन जानना चाहिये । यावत् चन्दनसे लिप्त शरीर वाला वह जमाली सभी अलंकारोंसे विभूषित होकर घरसे बाहर निकला और उपस्थानशालामें आकर अश्वरथ पर चढ़ा । सिर पर कोरण्ट पुष्पकी माला युक्त छत्र धारण किये हुए और महायोद्धाओंके समूहसे परि-वृत्त वह जमाली कुमार क्षत्रियकुण्ड ग्राम नामक नगरके मध्यमें होकर बाहर निकला और बहुशाल उद्यानमें आया । घोड़ोंको रोककर रथ खड़ा किया और नीचे उतरा । फिर पुष्प, ताम्बूल, आयुध (शस्त्र) आदि तथा उपानह (जूता) छोड़ दिया और एक पट वाले वस्त्रका उत्तरासंग किया । इसके बाद परम पवित्र बनकर और मस्तक पर दोनों हाथ जोड़कर श्रमण भगवान् महावीर स्वामीके निकट पहुंचा । श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को तीन बार प्रदक्षिणा की यावत् त्रिविध पर्युपासनासे उपासना करने लगा । श्रमण भगवान् महावीर स्वामीने जमाली क्षत्रियकुमारको तथा उस बड़ी ऋषिगण आदिकी महापरिषद्को धर्मो-पदेश दिया । धर्मोपदेश श्रवण कर वह परिषद् वापिस चली गई ।

श्रमण भगवान् महावीर स्वामीके पास धर्म सुनकर और हृदयमें धारण करके जमाली क्षत्रियकुमार हर्षित और सन्तुष्ट हृदय वाला हुआ यावत् खड़े होकर श्रमण भगवान् महावीर स्वामीको तीन बार प्रदक्षिणा करके वन्दन नमस्कार किया और इस प्रकार कहा—"हे भगवन् ! मैं निर्ग्रन्थ-प्रवचन पर श्रद्धा करता हूं, भगवन् ! मैं निर्ग्रन्थ-प्रवचन पर विश्वास करता हूं, भगवन् ! मैं निर्ग्रन्थ-प्रवचन पर रुचि करता हूं, भगवन् ! मैं निर्ग्रन्थ-प्रवचनके अनुसार प्रवृत्ति करनेको तत्पर हुआ हूं । भगवन् ! यह निर्ग्रन्थ-प्रवचन सत्य है, तथ्य है, असंदिग्ध है, जैसा कि आप कहते हैं । हे देवानुप्रिय ! मैं अपने माता-पिताकी आज्ञा लेकर, गृहवासका त्याग करके, मुण्डित होकर आपके पास अनगार-धर्मको स्वीकार करना चाहता हूं ।" भगवान् ने कहा—"हे देवानुप्रिय ! जैसा तुम्हें सुख हो वैसा करो, धर्म-कार्यमें समयमात्र भी प्रमाद मत करो" ।।३८२।।

जब श्रमण भगवान् महावीर स्वामीने जमालीसे पूर्वोक्त प्रकारसे कहा तो जमाली हर्षित और सन्तुष्ट हुआ । उसने भगवान्को तीन बार प्रदक्षिणा करके वन्दना नमस्कार किया । फिर चार घंटों वाले अश्वरथ पर चढ़कर श्रमण भगवान् महावीर स्वामीके पाससे और बहुशालक उद्यानसे निकला, यावत् सिर पर कोरण्ट

पुष्पकी माला युक्त छत्र धराता हुआ और महा सुभटोंके समूहसे परिवृत्त वह जमालीकुमार क्षत्रियकुण्ड ग्राम नगरके मध्य होता हुआ अपने घरके बाहरकी उपस्थानशालामें आया और घोड़ोंको रोककर रथसे नीचे उतरा। वह अपने माता-पिताके पास आया और जय-विजय शब्दोंसे वधाकर इस प्रकार बोला—
"हे माता पिता! मैंने श्रमण भगवान् महावीर स्वामीसे धर्म सुना है। वह धर्म मुझे इष्ट, अत्यन्त इष्ट और रुचिकर हुआ है।" जमालीकुमारकी यह बात सुनकर उसके माता पिताने कहा–'हे पुत्र! तू धन्य है, तू कृतार्थ है, तू कृतपुण्य है और कृत-लक्षण है कि तूने श्रमण भगवान् महावीर स्वामीसे धर्म सुना है और वह धर्म तुझे इष्ट, अत्यन्त इष्ट और रुचिकर हुआ है।'

जमाली क्षत्रियकुमारने दूसरी बार अपने माता पितासे इस प्रकार कहा—
"हे माता पिता! मैं संसारके भयसे उद्विग्न हुआ हूं, जन्म, जरा और मरणसे भय-भीत हुआ हूं। अतः माता पिता! मैं आपकी आज्ञा होने पर श्रमण भगवान् महावीर स्वामीके पास मुण्डित होकर गृहवासका त्याग करके अनगार-धर्म स्वीकार करना चाहता हूं।"

जमाली क्षत्रियकुमारकी माता उसके उपरोक्त अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय, अमनोज्ञ, मनको अप्रिय, अश्रुतपूर्व (जो पहले कभी नहीं सुनी) ऐसी (आघात-कारक) वाणी सुनकर और अवधारण कर (शोक ग्रस्त हुई) शरीर के रोमकूपों से झरते हुए पसीने से वह भीग गई। शोकके भार से उसका सारा शरीर कम्पित होने लगा, चेहरे की कान्ति फीकी पड़ गई। उसका मुख, दीन और शोकातुर हो गया। हाथों से मसली हुई कमल-माला की तरह उसका शरीर तत्काल ग्लान एवं दुर्बल हो गया। वह लावण्य रहित, प्रभा रहित और शोभा रहित हो गई। उसके शरीर पर पहने हुए आभूषण ढीले हो गये। उसकी चूड़ियां हाथों से गिर पड़ीं और टूट कर चूर्ण हो गईं। उसका उत्तरीय वस्त्र अस्तव्यस्त हो गया। मूर्च्छा द्वारा उसका चैतन्य विलुप्त हो जानेसे वह भारी शरीर वाली हो गई। उसके सुकुमाल केशपाश विखर गये। कुल्हाड़ीसे काटी हुई चम्पक लताके समान और उत्सव पूरा हो जाने पर इन्द्रध्वजदण्डके समान उसके सन्धि बन्धन शिथिल हो गये। वह सभी अंगोंसे 'धड़ाम' करती हुई धरती पर गिर पड़ी। इसके अनन्तर जमाली क्षत्रियकुमारकी माताके शरीर पर दासियों ने शीघ्र ही स्वर्ण कलशोंके मुखसे निकली हुई शीतल और निर्मल जलधाराका सिंचन करके स्वस्थ बनाया और वांसके बने हुए उत्क्षेपक (पंखों) तथा ताड़पत्र के बने हुए पंखों द्वारा जलविन्दु सहित पवन करके दासियों ने उसे आश्वस्त और विश्वस्त किया। स्वस्थ होते होते ही रोती हुई, आक्रन्दन करती हुई शोक करती हुई और विलाप करती हुई वह जमालीकुमार की माता इस प्रकार कहने लगी–

'हे पुत्र ! तू मुझे इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ, मनाम (मन पसंद), आधारभूत, विश्वासपात्र, सम्मत, बहुमत, अनुमत, आभूषणोंकी पेटीके तुल्य, रत्न स्वरूप, रत्न तुल्य, जीवित के उत्सव समान और हृदय को आनन्ददायक एक ही पुत्र है। उदुम्बर (गूलर) के पुष्प के समान तेरा नाम सुनना भी दुर्लभ है, तब तेरा दर्शन दुर्लभ हो, इसमें तो कहना ही क्या ? अतः पुत्र ! तेरा वियोग मुझसे एक क्षण भी सहन नहीं हो सकता। इसलिए जब तक हम जीवित हैं, तब तक घर ही रह कर कुल वंशकी अभिवृद्धि कर। जब हम कालधर्म को प्राप्त हो जायं और तुम्हारी वृद्धावस्था आ जाय, तब कुल वंशकी वृद्धि करके तुम निरपेक्ष होकर श्रमण भगवान् महावीर स्वामीके पास मुण्डित होकर अनगारधर्मको स्वीकार करना।"

तब राजकुमार जमालीने अपने माता-पितासे इस प्रकार कहा-"हे माता-पिता ! अभी जो आपने कहा कि-'हे पुत्र ! तू हमें इष्ट, कान्त, प्रिय आदि है यावत् हमारे कालगत होने पर तू दीक्षा अंगीकार करना' इत्यादि। परन्तु माता-पिता ! यह मनुष्य जीवन जन्म, जरा, मरण, रोग, व्याधि आदि अनेक शारीरिक और मानसिक दुःखोंकी अत्यन्त वेदनासे और सैंकड़ों व्यसनों (कष्टों) से घिरा हुआ है। यह अध्रुव, अनित्य और अशाश्वत है। संध्याकालीन रंगों के समान, पानी के बुलबुले के समान, कुशाग्र पर रहे हुए जल-बिन्दुके समान, स्वप्न-दर्शनके समान तथा बिजलीकी चमकके समान चञ्चल और अनित्य है। सड़ना, पड़ना, गलना और विनष्ट होना इसका धर्म (स्वभाव) है। पहले या पीछे एक दिन अवश्य ही छोड़ना पड़ता है; तो हे माता-पिता ! इस बातका निर्णय कौन कर सकता है कि हममें से कौन पहले जायेगा (मरेगा) और कौन पीछे जायेगा। इसलिए माता-पिता ! आप मुझे आज्ञा दीजिये। आपकी आज्ञा होने पर मैं श्रमण भगवान् महावीर स्वामीके पास प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहता हूं।"

जमाली क्षत्रियकुमारकी बात सुनकर उसके माता-पिताने इस प्रकार कहा-"हे पुत्र ! यह तेरा शरीर उत्तमरूप, लक्षण, व्यञ्जन (मस तिल आदि चिन्ह) और गुणोंसे युक्त है, उत्तम बल, वीर्य और सत्त्व सहित है, विज्ञान में विचक्षण है, सौभाग्य गुणसे उन्नत है, कुलीन है, अत्यन्त समर्थ है, व्याधि और रोगोंसे रहित है, निरुपहत, उदात्त और मनोहर है, पटु (चतुर) पांच इन्द्रियों से युक्त और प्रथम युवावस्था को प्राप्त है, इत्यादि अनेक उत्तम गुणोंसे युक्त है। इसलिये पुत्र ! जब तक तेरे शरीर में रूप, सौभाग्य और यौवन आदि गुण हैं, तब तक तू इनका अनुभव कर। इसके पश्चात् जब हम कालधर्मको प्राप्त हो जायं, और तुझे वृद्धावस्था प्राप्त हो जाय तब कुल-वंशकी वृद्धि करनेके पश्चात् निरपेक्ष होकर श्रमण भगवान् महावीर के पास दीक्षा लेना।"

जमाली क्षत्रियकुमारने अपने माता-पितासे इस प्रकार कहा—"हे माता-पिता ! आपने कहा—"हे पुत्र ! यह तेरा शरीर उत्तम रूप, लक्षण, व्यञ्जन और गुणोंसे युक्त है, इत्यादि यावत् हमारे कालगत होने पर तू दीक्षा लेना।" परन्तु माता-पिता ! यह मनुष्य का शरीर दुःखोंका घर है। अनेक प्रकार की व्याधियोंका स्थान है। अस्थिरूप लकड़ी का बना हुआ है। नाड़ियों और स्नायुओंके समूहसे वेष्टित है। मिट्टीके बर्तन के समान दुर्बल है। अशुचिका भण्डार है। निरन्तर इसकी सम्हाल करनी पड़ती है। जीर्णघरके समान सड़ना, गलना और विनष्ट होना इसका स्वभाव है। इस शरीर को पहले या पीछे एक दिन छोड़ना ही पड़ेगा। कौन जानता है कि हममें से पहले कौन जायेगा और पीछे कौन ? इसलिए आप मुझे आज्ञा दीजिये।"

तब जमालीकुमारके माता-पिताने उससे इस प्रकार कहा—'हे पुत्र ! ये तेरे आठ स्त्रियां हैं। वे विशाल कुलमें उत्पन्न और तरुण अवस्था को प्राप्त हैं, वे समान त्वचा वाली, समान उम्र वाली, समान रूप,लावण्य और यौवन गुणसे युक्त हैं, वे समान कुलमे लाई हुई हैं, वे कलामें कुशल, सर्वकाललालित और सुखके योग्य हैं। वे मार्दव गुणसे युक्त, निपुण, विनयोपचार में पण्डिता और विचक्षणा हैं। सुन्दर, मित और मधुर बोलने वाली हैं। हास्य, विप्रेक्षित (कटाक्ष दृष्टि), गति, विलास और स्थितिमें विशारद हैं। वे उत्तम कुल और शीलसे सुशोभित हैं। विशुद्ध कुलरूप वंश तन्तुकी वृद्धि करनेमें समर्थ यौवन वाली हैं। मनके अनुकूल और हृदय को इष्ट हैं और गुणोंके द्वारा प्रिय और उत्तम हैं। वे तुझमें सदा अनुरक्त और सर्वांग सुन्दर हैं। इसलिये हे पुत्र ! तू इन स्त्रियों के साथ मनुष्य सम्बन्धी विपुल काम भोगोंका भोग कर। जब विषय की उत्सुकता नहीं रहे और भुक्त-भोगी हो जाय तब हमारे काल धर्म को प्राप्त हो जाने पर यावत् तू दीक्षा लेना।

माता-पिताकी उपरोक्त बातके उत्तरमें जमाली क्षत्रियकुमारने अपने माता-पिता से इस प्रकार कहा—"हे माता-पिता ! आपने कहा कि—'विशाल कुलमें उत्पन्न तेरी ये आठ स्त्रियां हैं, इत्यादि। माता-पिता ! ये मनुष्य सम्बन्धी काम-भोग निश्चित रूपसे अशुचि और अशाश्वत हैं। वात, पित्त, श्लेष्म (कफ), वीर्य और रुधिरके झरने हैं। मल, मूत्र, श्लेष्म (खंखार), सिंघाण (नासिका का मैल), वमन, पित्त, राध, शुक्र और शोणितसे उत्पन्न हुए हैं। वे अमनोज्ञ, बुरे, मूत्र और विष्ठासे भरपूर तथा दुर्गन्धसे युक्त हैं। मृत कलेवरके समान गन्ध वाले एवं उच्छ्वास और निश्वाससे उद्वेग उत्पन्न करने वाले हैं। वीभत्स, अल्प काल रहने वाले, हलके और कलमल (शरीरमें रहा हुआ एक प्रकारका अशुद्ध द्रव्य)के स्थान-रूप होनेसे दुःखरूप हैं और सभी मनुष्योंके लिए साधारण हैं। काम-भोग शारी-रिक और मानसिक अत्यन्त दुःखपूर्वक साध्य हैं। अज्ञानी पुरुषों द्वारा सेवित

तथा उत्तम पुरुषों द्वारा सदा निन्दनीय हैं, अनन्त संसार की वृद्धि करने वाले हैं, परिणाममें कटु फल वाले हैं, जलते हुए घासके पूलेके स्पर्शके समान दुःखदायी तथा कठिनतासे छूटने वाले हैं, दुःखानुभव वाले हैं। ये काम-भोग मोक्षमार्गमें विघ्नरूप हैं। माता-पिता ! यह भी कौन जानता है कि हममें से कौन पहले जायेगा और कौन पीछे। इसलिए मुझे दीक्षा लेनेकी आज्ञा दीजिए।"

इसके पश्चात् जमालीकुमारके माता-पिताने इस प्रकार कहा–'हे पुत्र ! यह दादा, परदादा और पिताके परदादासे प्राप्त बहुत हिरण्य, सुवर्ण, कांस्य, वस्त्र, विपुल धन, कनक यावत् सारभूत द्रव्य विद्यमान है। यह द्रव्य इतना है कि यदि सात पीढ़ी तक पुष्कल (खुले हाथों) दान दिया जाय, भोगा जाय और बांटा जाय, तो भी समाप्त नहीं हो सकता। अतः पुत्र ! मनुष्य सम्बन्धी विपुल ऋद्धि और सम्मान का भोग कर। सुख का अनुभव करके और कुल-वंशकी वृद्धि करके पीछे यावत् तू दीक्षा लेना।'

तब जमाली क्षत्रियकुमारने अपने माता-पितासे इस प्रकार कहा—"आपने धन सम्पत्ति आदिके लिए कहा है, परन्तु हे माता-पिता ! यह हिरण्य, सुवर्ण यावत् सर्व सारभूत द्रव्य अग्नि, चोर, राजा और मृत्यु (काल) के लिए साधारण (आधीन) है। बन्धु इसे बंटा सकते हैं। अग्नि यावत् दायाद(भाई आदि हिस्सेदार) के लिए सामान्य (विशेष आधीन) है। यह अध्रुव, अनित्य और अशाश्वत् है। इसे पहले या पीछे, एक-न-एक दिन अवश्य छोड़ना पड़ेगा। हममें से पहले कौन जायेगा और पीछे कौन, यह भी कौन जानता है। इसलिए आप मुझे दीक्षा की आज्ञा दीजिये।"

जब जमालीकुमार के माता-पिता उसे विषयके अनुकूल बहुत-सी उक्तियों, प्रज्ञप्तियों, संज्ञप्तियों और विज्ञप्तियों द्वारा कहने, जतलाने और समझाने-बुझानेमें समर्थ नहीं हुए, तब विषयके प्रतिकूल और संयममें भय तथा उद्वेग उत्पन्न करने वाली उक्तियोंसे समझाते हुए इस प्रकार कहने लगे–"हे पुत्र ! यह निर्ग्रन्थ-प्रवचन सत्य, अनुत्तर (अनुपम), अद्वितीय, परिपूर्ण, न्याययुक्त, शुद्ध, शल्य को काटने वाला, सिद्धिमार्ग, मुक्तिमार्ग, निर्याणमार्ग और निर्वाणमार्ग रूप है, यह अवितथ (सत्य) है, अविसंधि (निरन्तर) है और समस्त दुःखोंका नाश करने वाला है। इसमें तत्पर जीव सिद्ध, बुद्ध, एवं मुक्त होते हैं, निर्वाण प्राप्त करते हैं तथा समस्त दुःखोंका अन्त करते हैं। परन्तु पुत्र ! यह धर्म, सर्पकी एकान्त दृष्टि, शस्त्रकी एक धार और लोहेके चने चबानेके समान दुष्कर है, बालु (रेत)के कवल (ग्रास) के समान निस्वाद है, गंगा महानदीके प्रवाहके सम्मुख जानेके समान तथा भुजाओंसे महा-समुद्र तैरनेके समान इसका पालन करना बड़ा कठिन है। यह धर्म खड्ग आदि की तीक्ष्ण धार

पर चलनेके समान दुष्कर है। महाशिलाको उठानेके समान है और तलवारकी तीक्ष्ण धाराके समान व्रत का आचरण करना कठिन है। हे पुत्र! श्रमण-निर्ग्रन्थों को इतने कार्य करने नहीं कल्पते, यथा—(१) आधाकर्मिक, (२) औद्देशिक, (३) मिश्र जात, (४) अध्यवपूरक, (५) पूतिकर्म, (६) क्रीत, (७) प्रामित्य (८) अछेद्य, (९) अनिसृष्ट, (१०) अभ्याहृत, (११) कान्तारभक्त, (१२) दुर्भिक्षभक्त, (१३) ग्लानभक्त, (१४) वार्दलिकाभक्त, (१५) प्राघुर्णकभक्त, (१६) शय्यातर-पिण्ड और (१७) राजपिण्ड। इसी प्रकार मूल, कन्द, फल, बीज और हरी वनस्पतिका भोजन करना और पीना नहीं कल्पता। पुत्र! तू सुख-भोग करने योग्य है, दुःखके योग्य नहीं है। तू शीत, उष्ण, भूख, प्यास, चोर, श्वापद (हिंसक पशु), डांस और मच्छरके उपद्रव वात, पित्त, कफ और सन्निपात सम्बन्धी अनेक प्रकार के रोग और उन रोगोंसे होने वाले कष्ट तथा परिषह उपसर्गोंको सहन करने में तू समर्थ नहीं है। हे पुत्र! हम एक क्षणके लिए भी तेरा वियोग सहन नहीं कर सकते। इसलिए जब तक हम जीवित हैं तब तक तू गृहस्थवास में रह और हमारे काल-धर्मको प्राप्त हो जाने पर यावत् दीक्षा लेना।"

माता-पिता को उत्तर देते हुए जमालीकुमारने इस प्रकार कहा—"हे माता-पिता! आपने निर्ग्रन्थ-प्रवचन को सत्य, अनुत्तर और अद्वितीय कह कर संयम पालनमें जो कठिनाइयां बतलाईं, वे ठीक हैं, परन्तु कृपण-मन्द शक्ति वाले कायर और कापुरुष तथा इस लोकमें आसक्त और परलोकसे पराङ्मुख ऐसे विषयभोगों की तृष्णा वाले पुरुषोंके लिए इसका पालन करना अवश्य कठिन है। परन्तु धीर और शूरवीर, दृढ़ निश्चयी तथा उपाय करने में प्रवृत्त पुरुषोंके लिए इसका पालन करना कुछ भी कठिन नहीं है। इसलिए माता-पिता! आप मुझे दीक्षा की आज्ञा दीजिए। आपकी आज्ञा होने पर मैं श्रमण भगवान् महावीर स्वामीके पास दीक्षा लेना चाहता हूं। जब जमालीकुमार के माता-पिता विषयके अनुकूल और प्रतिकूल बहुत-सी उक्तियों, प्रज्ञप्तियों, संज्ञप्तियों और विज्ञप्तियों द्वारा उसे समझाने में समर्थ नहीं हुए, तब बिना इच्छाके जमालीकुमारको दीक्षा लेने की आज्ञा दी ॥३८३॥

इसके अनन्तर जमाली क्षत्रियकुमारके पिताने कौटुम्बिक पुरुषोंको बुलाया और इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रियो! शीघ्र ही इस क्षत्रियकुंड ग्राम नगरके बाहर और भीतर पानीका छिड़काव करो। झाड़-बुहार कर जमीनको साफ करो, इत्यादि औपपातिक सूत्रमें कहे अनुसार कार्य करके उन पुरुषोंने आज्ञा वापिस सौंपी। इसके पश्चात् उसने सेवक पुरुषोंसे इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रियो! शीघ्र इस जमाली क्षत्रियकुमारका महार्थ, महामूल्य, महापूज्य (महान् पुरुषोंके योग्य) और

विपुल निष्क्रमणाभिषेक की तैयारी करो।' सेवक पुरुषोंने उसकी आज्ञानुसार कार्य करके आज्ञा वापिस सौंपी। इसके पश्चात् जमाली क्षत्रियकुमार के माता-पिता ने उसे उत्तम सिंहासन पर पूर्वकी ओर मुंह करके बैठाया, और एक सौ आठ सोनेके कलशोंसे इत्यादि राजप्रश्नीय सूत्र में कहे अनुसार यावत् एक सौ आठ मिट्टीके कलशोंसे सर्वऋद्धि द्वारा यावत् महाशब्दों द्वारा निष्क्रमणाभिषेक से अभिषेक करने लगे।

अभिषेक करनेके पश्चात् जमालीकुमारके माता-पिताने हाथ जोड़कर यावत् उसे जय विजय शब्दोंसे बधाई दी। फिर उन्होंने उससे कहा-'हे पुत्र! हम तेरे लिए क्या देवें? तेरे लिए क्या कार्य करें? तेरा क्या प्रयोजन है?' तब जमालीकुमार ने इस प्रकार कहा-'माता-पिता! मैं कुत्रिकापणसे रजोहरण और पात्र मंगवाना तथा नापित को बुलाना चाहता हूं।' तब जमालीकुमारके पिताने कौटुंबिक पुरुषों को बुलाया और कहा-'हे देवानुप्रियो! शीघ्र ही भंडार में से तीन लाख सोनैया निकालो। उनमें से दो लाख सोनैया देकर कुत्रिकापणसे रजोहरण और पात्र लाओ और एक लाख सोनैया देकर नाईको बुलाओ।' उपर्युक्त आज्ञा सुनकर हर्षित और तुष्ट हुए सेवकोंने हाथ जोड़कर स्वामीके वचन स्वीकार किये और भंडारमें से तीन लाख सोनैया (सुवर्णमुद्रा) निकालकर कुत्रिकापणसे रजोहरण और पात्र लाए तथा नाई को बुलाया। जमालीकुमारके पिताके सेवक पुरुषों द्वारा बुलाये जाने पर नाई बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने स्नानादि किया और अपने शरीरको अलंकृत किया। फिर जमालीकुमार के पिता के पास आया।

(वह नापित जमालीकुमारके पिताके पास आया।) उन्हें जय-विजय शब्दोंसे बधाई दी और इस प्रकार कहा-"हे देवानुप्रिय! मेरे करने योग्य कार्य कहिये।" जमालीकुमारके पिताने उस नापितसे इस प्रकार कहा-"देवानुप्रिय! जमाली-कुमारके अग्रकेश, अत्यन्त यत्नपूर्वक चार अंगुल छोड़कर निष्क्रमण के योग्य काट दो।" जमालीकुमारके पिताकी आज्ञा सुनकर नापित अत्यंत प्रसन्न हुआ और दोनों हाथ जोड़कर बोला-'हे स्वामिन्! मैं आपकी आज्ञानुसार करूंगा,'-इस प्रकार कह कर विनयपूर्वक उनके वचनों को स्वीकार किया। फिर सुगन्धित गन्धोदकसे हाथ-पैर धोए और शुद्ध आठ तह वाले वस्त्र से मुंह बांधा, फिर अत्यन्त यत्नपूर्वक जमालीकुमारके निष्क्रमण योग्य चार अंगुल अग्रकेश छोड़कर शेष केशोंको काटा। इसके पश्चात् जमालीकुमार की माताने हंसके समान श्वेत वस्त्र में उन अग्र-केशों को ग्रहण किया। सुगन्धित गन्धोदकसे धोया। उत्तम और प्रधान गन्ध तथा माला द्वारा उनका अर्चन किया और शुद्ध वस्त्रमें बांधकर उन्हें रत्न करण्डियेमें रक्खा। इसके पश्चात् जमालीकुमारकी माता पुत्र वियोगसे रोती हुई हार, जल-धारा, सिन्दुवार, वृक्ष के पुष्प और टूटी हुई मोतियों की मालाके समान आंसू

गिराती हुई इस प्रकार बोली—"ये केश हमारे लिए बहुत-सी तिथियों, पर्व, उत्सव, यज्ञ और महोत्सवोंमें जमालीकुमारके अन्तिम दर्शन-रूप या बारम्बार दर्शनरूप होंगे"—ऐसा विचार कर उसने उन्हें अपने तकिये के नीचे रक्खा।

इसके बाद जमालीकुमार के माता-पिता ने उत्तर दिशा की ओर दूसरा सिंहासन रखवाया और जमालीकुमार को सोने और चांदी के कलशों से स्नान कराया, फिर सुगन्धित गन्धकाषायित (गन्ध प्रधान लाल) वस्त्र से उसके अंग पोंछे। उसके बाद सरस गोशीर्ष चन्दन से गात्रों का विलेपन किया। तत्पश्चात् ऐसा पटशाटक (रेशमी वस्त्र) पहनाया जो नासिका के निश्वास की वायु से उड़ जाय, ऐसा हलका, नेत्रों को अच्छा लगे वैसा सुन्दर, सुन्दर वर्ण और कोमल स्पर्श से युक्त था। वह वस्त्र घोड़े के मुख की लार से भी अधिक मुलायम, श्वेत सोने के तार से जड़ा हुआ महामूल्यवान् और हंस के चिन्ह से युक्त था। फिर हार (अठारह लड़ी वाला हार), अर्द्ध हार (नवसर हार) पहनाया। जिस प्रकार राजप्रश्नीय सूत्र में सूर्याभ देव के अलङ्कारों का वर्णन है, उसी प्रकार यहां भी समझना चाहिए। यावत् विचित्र रत्नों से जड़ा हुआ मुकुट पहनाया। अधिक क्या कहा जाय, ग्रंथिम (गूंथी हुई), वेष्टिम (वींटी हुई), पूरिम (पूरी की हुई) और संघातिम (परस्पर संघात की हुई) से तैयार की हुई चारों प्रकार की मालाओं से कल्प वृक्ष के समान उस जमालीकुमार को अलंकृत एवं विभूषित किया गया। इसके बाद उसके पिता ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और इस प्रकार कहा—"हे देवानुप्रियो! सैंकड़ों स्तम्भों से युक्त लीलापूर्वक पुतलियोंसे युक्त इत्यादि राजप्रश्नीय सूत्र में वर्णित विमान के समान यावत् मणिरत्नों की घण्टिकाओं के समूहों से युक्त, हजार पुरुषों द्वारा उठाने योग्य शिविका (पालकी) तैयार करके मुझे निवेदन करो।" इसके बाद उन सेवक पुरुषों ने उसी प्रकार की शिविका तैयार कर निवेदन किया। इसके बाद जमालीकुमार केशालङ्कार, वस्त्रालङ्कार, मालालङ्कार और आभरणालङ्कार, इन चार प्रकार के अलङ्कारों से अलंकृत होकर और प्रतिपूर्ण अलङ्कारोंसे विभूषित होकर सिंहासन से उठा। वह दक्षिण की ओर से शिविका पर चढ़ा और श्रेष्ठ सिंहासन पर पूर्व की ओर मुंह करके बैठा।

इसके पश्चात् जमालीकुमार की माता स्नान करके यावत् शरीर को अलंकृत करके, हंस के चिन्ह वाला पटशाटक लेकर दक्षिणकी ओर से शिविका पर चढ़ी और जमालीकुमारके दाहिनी ओर उत्तम भद्रासन पर बैठी। इसके बाद जमालीकुमारकी धायमाता स्नान करके यावत् शरीर को अलंकृत करके रजोहरण और पात्र लेकर दाहिनी ओर से शिविका पर चढ़ी और जमालीकुमार के बांई ओर उत्तम भद्रासन पर बैठी। इसके बाद जमालीकुमारके पीछे मनोहर

आकार और सुन्दर वेष वाली, सुन्दर गति वाली, सुन्दर शरीर वाली यावत् रूप और यौवन के विलास युक्त, एक युवती हिम, रजत, कुमुद, मोगरे के फूल और चन्द्रमाके समान कोरण्टक पुष्पकी मालासे युक्त श्वेत छत्र हाथमें लेकर लीला-पूर्वक धारण करती हुई खड़ी रही। फिर जमालीकुमारके दाहिनी तथा बांयीं ओर, श्रृंगारके घरके समान मनोहर आकार वाली और सुन्दर वेष वाली उत्तम दो युवतियां दोनों ओर चमर ढुलाती हुई खड़ी हुईं। वे चंवर मणि, कनक, रत्न और महामूल्यके विमल तपनीय (रक्त सुवर्ण) से बने हुए विचित्र दण्ड वाले थे और शंख, अङ्क, मोगरा के फूल, चन्द्र, जलविन्दु और मथे हुए अमृतके फेनके समान श्वेत थे। इसके बाद जमालीकुमारके उत्तर-पूर्व दिशा (ईशान कोण) में श्रृंगारके गृहके समान और उत्तम वेष वाली एक उत्तम स्त्री श्वेत रजतमय पवित्र पानीसे भरा हुआ, उन्मत्त हाथीके मुखके आकार वाला कलश लेकर खड़ी हुई। जमालीकुमारके दक्षिण-पूर्व (आग्नेय कोण)में श्रृंगारके घरके समान उत्तम वेष-वाली एक उत्तम स्त्री विचित्र सोने के दण्ड वाले पंखे को लेकर खड़ी हुई।

जमालीकुमारके पिताने कौटुम्बिक पुरुषोंको बुलाकर इस प्रकार कहा— "हे देवानुप्रियो! समान त्वचा वाले, समान उम्र वाले, समान रूप लावण्य और यौवन गुणोंसे युक्त तथा एक समान आभूषण और वस्त्र पहने हुए एक हजार उत्तम युवक पुरुषोंको बुलाओ।" सेवक पुरुषोंने स्वामीके वचन स्वीकार कर शीघ्र ही हजार पुरुषोंको बुलाया। वे हजार पुरुष हर्षित और तुष्ट हुए। वे स्नान करके एक समान आभूषण और वस्त्र पहनकर जमालीकुमारके पिताके पास आए और हाथ जोड़कर बधाई दी तथा इस प्रकार बोले—"हे देवानुप्रिय! हमारे योग्य जो कार्य हो वह कहिये।" तब जमालीकुमारके पिताने उनसे कहा—"हे देवानुप्रियो! तुम सब जमालीकुमारकी शिविका को उठाओ।" उन पुरुषोंने शिविका उठाई। हजार पुरुषों द्वारा उठाई हुई जमालीकुमारकी शिविकाके सबसे आगे ये आठ मंगल अनुक्रम से चले। यथा— (१) स्वस्तिक, (२) श्रीवत्स, (३) नन्द्यावर्त, (४) वर्धमानक, (५) भद्रासन, (६) कलश, (७) मत्स्य और (८) दर्पण। इन आठ मंगलोंके पीछे पूर्ण कलश चला, इत्यादि औपपातिक सूत्रमें कहे अनुसार यावत् गगनतलको स्पर्श करती हुई वैजयन्ती (ध्वजा) चली। लोग जय-जयकार का उच्चारण करते हुए अनुक्रमसे आगे चले। इसके पश्चात् उग्रकुल, भोगकुलमें उत्पन्न पुरुष यावत् महापुरुषोंके समूह जमालीकुमारके आगे पीछे और आसपास चलने लगे।

जमालीकुमारके पिताने स्नान किया, यावत् विभूषित होकर हाथीके उत्तम कंधे पर चढ़ा। कोरण्टक पुष्पकी मालासे युक्त छत्र धारण करते हुए, दो श्वेत चामरोंसे विंजाते हुए, घोड़ा, हाथी, रथ और सुभटोंसे युक्त, चतुरंगिणी सेना

सहित और महासुभटोंके वृन्दसे परिवृत जमालीकुमारके पिता उसके पीछे चलने लगे। जमालीकुमारके आगे महान् और उत्तम घोड़े, दोनों ओर उत्तम हाथी, पीछे रथ और रथका समूह चला। इस प्रकार ऋद्धि सहित यावत् वादिन्त्रके शब्दोंसे युक्त जमालीकुमार चलने लगा। उसके आगे कलश और तालवृन्त लिए हुए पुरुष चले। उसके सिर पर श्वेत छत्र धारण किया हुआ था। दोनों ओर श्वेत चामर और पंखे ढुलाए जा रहे थे। इनके पीछे बहुतसे लकड़ी वाले, भाले वाले, पुस्तक वाले यावत् वीणा वाले पुरुष चले। उनके पीछे एक सौ आठ हाथी, एक सौ आठ घोड़े और एक सौ आठ रथ चले। उनके बाद लकड़ी, तलवार और भाला लिए हुए पदाति पुरुष चले। उनके पीछे बहुतसे युवराज, धनिक, तलवर यावत् सार्थवाह आदि चले। इस प्रकार क्षत्रियकुण्ड ग्राम नगरके बीचमें चलते हुए नगरके बाहर बहुशालक उद्यानमें श्रमण भगवान् महावीर स्वामीके पास जाने लगे।

क्षत्रियकुण्ड ग्रामके बीचसे निकलते हुए जमालीकुमार को शृंगाटक, त्रिक, चतुष्क यावत् राजमार्गों में बहुतसे धनार्थी और इच्छुक पुरुष अभिनन्दन करते हुए एवं स्तुति करते हुए इस प्रकार कहने लगे—"हे नन्द (आनन्द-दायक)! धर्म द्वारा तेरी जय हो। नन्द! तपसे तुम्हारी जय हो। नन्द! तुम्हारा भद्र (कल्याण) हो। नन्द! अखण्डित उत्तम ज्ञान, दर्शन और चारित्र द्वारा अविजित ऐसी इन्द्रियों को जीतें और श्रमण धर्मका पालन करें। धैर्य रूपी कच्छको मजबूत बांधकर सर्व विघ्नों को जीतें। इन्द्रियों को वश करके परीषह रूपी सेना पर विजय प्राप्त करें। तप द्वारा रागद्वेष रूपी मल्लों पर विजय प्राप्त करें और उत्तम शुक्लध्यान द्वारा अष्ट कर्म रूपी शत्रुओंका मर्दन करें। हे धीर! तीन लोक रूपी विश्व-मण्डप में आप आराधना रूपी पताका लेकर अप्रमत्ततापूर्वक विचरण करें और निर्मल विशुद्ध ऐसा अनुत्तर केवलज्ञान प्राप्त करें, तथा जिनवरोपदिष्ट सरल सिद्धि मार्ग द्वारा परम पद रूप मोक्षको प्राप्त करें। तुम्हारे धर्म-मार्ग में किसी प्रकारका विघ्न न हो।" इस प्रकार लोग अभिनन्दन और स्तुति करते हैं।

औपपातिक सूत्रमें वर्णित कोणिकके प्रसंगानुसार जमालीकुमार हजारों पुरुषोंसे देखा जाता हुआ ब्राह्मणकुण्ड ग्राम नगरके बाहर बहुशाल उद्यान में आया और तीर्थंकर भगवान्के छत्र आदि अतिशयोंको देखते ही सहस्रपुरुषवाहिनीसे नीचे उतरा। फिर जमालीकुमारको आगे करके उसके माता-पिता श्रमण भगवान् महावीर स्वामीकी सेवामें उपस्थित हुए और भगवान्को तीन बार प्रदक्षिणा करके इस प्रकार बोले—"हे भगवन्! यह जमालीकुमार हमारा इकलौता, प्रिय और इष्ट पुत्र है। इसका नाम सुनना भी दुर्लभ है, तो दर्शन दुर्लभ हो इसमें तो कहना ही क्या। जिस प्रकार कीचड़में उत्पन्न होने और पानीमें बड़ा होने पर भी कमल

पानी और कीचड़से निर्लिप्त रहता है, इसी प्रकार जमालीकुमार भी कामसे उत्पन्न हुआ और भोगोंमें वड़ा हुआ, परन्तु वह काममें किंचित् भी आसक्त नहीं है। मित्र, ज्ञाति, स्वजन सम्वन्धी और परिजनोंमें लिप्त नहीं है। भगवन् ! यह जमालीकुमार संसारके भयसे उद्विग्न हुआ है, जन्म-मरणके भयसे भयभीत हुआ है। यह आपके पास मुण्डित होकर अनगार धर्म स्वीकार करना चाहता है। अतः हे भगवन् ! हम यह शिष्यरूपी भिक्षा देते हैं। आप इसे स्वीकार करें।"

तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर स्वामीने जमाली क्षत्रियकुमारसे इस प्रकार कहा—"हे देवानुप्रिय ! जिस प्रकार तुम्हें सुख हो वैसा करो, किन्तु विलम्व मत करो।" भगवान् के ऐसा कहने पर जमाली क्षत्रियकुमार हर्षित और तुष्ट हुआ और भगवान् को तीन वार प्रदक्षिणा कर यावत् वन्दना नमस्कार कर उत्तर पूर्व (ईशानकोण) में गया। उसने स्वयमेव आभरण, माला और अलङ्कार उतारे। उसकी माताने उन्हें हंस के चिन्हवाले पटशाटक (वस्त्र) में ग्रहण किया। फिर हार और जलधाराके समान आंसू गिराती हुई अपने पुत्रसे इस प्रकार वोली—"हे पुत्र ! संयममें प्रयत्न करना, संयम में पराक्रम करना। संयम पालनमें किंचित् मात्र भी प्रमाद मत करना।" इस प्रकार कहकर जमाली क्षत्रियकुमार के माता पिता भगवान् को वन्दना नमस्कार कर के जिस दिशा से आये थे, उसी दिशा में वापिस चले गये।

इसके अनन्तर जमाली क्षत्रियकुमारने स्वयमेव पंचमुष्टिक लोच किया और श्रमण भगवान् महावीर स्वामीकी सेवामें आकर ऋषभदत्त ब्राह्मणकी तरह प्रव्रज्या अंगीकार की। इसमें इतनी विशेषता है कि जमाली क्षत्रियकुमारने पांच सौ पुरुषोंके साथ प्रव्रज्या ली। फिर जमाली अनगारने सामायिकादि ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। वहुतसे उपवास, वेला, तेला यावत् अर्द्धमास, मासखमण आदि विचित्र तप द्वारा आत्माको भावित करता हुआ विचरने लगा ॥३८४॥

एक दिन जमाली अनगार श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना नमस्कार कर इस प्रकार बोले—"हे भगवन् ! आपकी आज्ञा हो, तो मैं पांच सौ अनगारों के साथ अन्य प्रान्तोंमें विचरना चाहता हूं।" भगवान्ने जमाली अनगारकी इस मांग का आदर नहीं किया, स्वीकार नहीं किया और मौन रहे। जमाली अनगार ने यही वात दूसरी वार और तीसरी वार कही, परन्तु भगवान् पूर्ववत् मौन रहे। तव जमाली अनगार भगवान्को वन्दना नमस्कार करके उनके पाससे एवं वहुशालक उद्यानसे निकल कर पांच सौ साधुओंके साथ अन्य देशों में विचरने लगे।

उस काल उस समय श्रावस्ती नामकी नगरी थी—वर्णन। वहां कोष्ठक नामक उद्यान था—वर्णन यावत् वनखण्ड तक। उस काल उस समयमें चम्पा नामकी नगरी थी—वर्णन। पूर्णभद्र उद्यान था—वर्णन यावत् उसमें पृथ्वीशिलापट्ट था।

एक बार वह जमाली अनगार पांच सौ साधुओंके साथ अनुक्रमसे विहार करते हुए और ग्रामानुग्राम विचरते हुए श्रावस्ती नगरी के बाहर कोष्ठक उद्यानमें आये और यथायोग्य अवग्रह ग्रहण करके संयम और तप द्वारा आत्माको भावित करते हुए विचरने लगे। इधर भगवान् महावीर स्वामी अनुक्रम से विचरते हुए यावत् सुखपूर्वक विहार करते हुए चम्पा नगरीके पूर्णभद्र उद्यानमें पधारे और यथायोग्य अवग्रह ग्रहण करके तप संयम से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे।

जमाली अनगार को अरस, विरस, अन्त, प्रान्त, रूक्ष, तुच्छ, कालातिक्रान्त (भूख, प्यासका समय बीत जाने पर किया गया आहार), प्रमाणातिक्रान्त (प्रमाणसे कम या अधिक) और ठण्डे पान-भोजनसे शरीरमें महारोग हो गया। वह रोग अत्यन्त दाह करने वाला, विपुल, प्रगाढ़, कर्कश, कटुक, चण्ड (भयङ्कर), दुःखरूप, कष्ट-साध्य, तीव्र और असह्य था। उसका शरीर पित्तज्वरसे व्याप्त होने से दाह युक्त था। वेदनासे पीड़ित बने जमाली अनगारने श्रमण निर्ग्रन्थोंसे कहा—"हे देवानुप्रियो! मेरे सोने के लिये संस्तारक (बिछौना) बिछाओ।" श्रमण-निर्ग्रन्थोंने जमाली अनगारकी बात विनयपूर्वक स्वीकार की और बिछौना बिछाने लगे। जमाली अनगार वेदना से अत्यन्त व्याकुल थे, इसलिये उन्होंने फिर श्रमण निर्ग्रन्थों से पूछा—"हे देवानुप्रियो! क्या बिछौना बिछा दिया, या बिछा रहे हो?" तब श्रमण निर्ग्रन्थों ने कहा—"हे देवानुप्रिय! बिछौना अभी बिछा नहीं है, बिछा रहे हैं।"

श्रमणों की यह बात सुनने पर जमाली अनगार को इस प्रकार विचार हुआ—"श्रमण भगवान् महावीर स्वामी इस प्रकार कहते हैं यावत् प्ररूपणा करते हैं कि 'चलमान चलित है, उदीर्यमाण उदीरित है यावत् निर्जीर्यमाण निर्जीर्ण है,' परन्तु यह बात मिथ्या है। क्योंकि यह बात प्रत्यक्ष है कि जब तक बिछौना बिछाया जाता हो, तब तक 'बिछाया हुआ' नहीं है, इस कारण चलमान चलित नहीं, किन्तु अचलित है, यावत् निर्जीर्यमाण निर्जीर्ण नहीं, परन्तु अनिर्जीर्ण है।" इस प्रकार विचार कर जमाली अनगार ने श्रमण-निर्ग्रन्थोंको बुलाकर इस प्रकार कहा—"हे देवानुप्रियो! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी इस प्रकार कहते हैं यावत् प्ररूपणा करते हैं कि 'चलमान चलित कहलाता है' इत्यादि (पूर्ववत्) यावत् निर्जीर्यमाण निर्जीर्ण नहीं, किन्तु अनिर्जीर्ण है।" जमाली अनगार की इस बात पर कितने ही श्रमण-निर्ग्रन्थोंने श्रद्धा, प्रतीत और रुचि की तथा कितने ही श्रमण-निर्ग्रन्थोंने श्रद्धा, प्रतीति और रुचि नहीं की। जिन श्रमण-निर्ग्रन्थों ने जमाली अनगारकी उपरोक्त बात पर श्रद्धा, प्रतीति एवं रुचि की, वे जमाली अनगारके पास रहे और जिन्होंने उनकी बात पर श्रद्धा, प्रतीति और रुचि नहीं की, वे जमाली अनगार के पास से—कोष्ठक उद्यानसे निकल कर अनुक्रमसे

विचरते हुए एवं ग्रामानुग्राम विहार करते हुए, चम्पा नगरीके बाहर पूर्णभद्र उद्यानमें, श्रमण भगवान् महावीर स्वामीके पास लौट आये और भगवान्‌को तीन बार प्रदक्षिणा करके एवं वन्दना नमस्कार करके उनके आश्रय में विचरने लगे ॥३८५॥

किसी समय जमाली अनगार पूर्वोक्त रोगसे मुक्त हुआ, रोग रहित और बलवान् शरीर वाला हुआ। श्रावस्ती नगरीके कोष्ठक उद्यानसे निकल कर अनुक्रमसे विचरता हुआ एवं ग्रामानुग्राम विहार करता हुआ चंपा नगरीके पूर्णभद्र उद्यानमें आया। उस समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी भी वहां पधारे हुए थे। वह श्रमण भगवान् महावीर स्वामीके पास आया और भगवान् के न अति दूर और न अति समीप खड़ा रहकर इस प्रकार बोला—"जिस प्रकार आपके बहुतसे शिष्य छद्मस्थ रहकर छद्मस्थ विहारसे विचरण कर रहे हैं, उस प्रकार मैं छद्मस्थ विहारसे विचरण नहीं करता, किन्तु उत्पन्न हुए केवलज्ञान केवलदर्शन को धारण करने वाला अरिहन्त, जिन, केवली होकर केवली-विहारसे विचरण कर रहा हूं।"

जमाली की बात सुनकर भगवान् गौतम स्वामीने जमाली अनगारसे इस प्रकार कहा—"हे जमाली! केवली का ज्ञान दर्शन पर्वत, स्तम्भ और स्तूप आदिसे आवृत और निवारित नहीं होता। जमाली! यदि तू उत्पन्न केवलज्ञान दर्शनका धारण करने वाला अरिहन्त, जिन, केवली होकर केवली-विहारसे विचरण करता है, तो इन दो प्रश्नोंका उत्तर दे—हे जमाली! क्या लोक शाश्वत है या अशाश्वत है? जमाली! क्या जीव शाश्वत है या अशाश्वत है?" गौतम स्वामी के इन प्रश्नोंको सुनकर जमाली शंकित और कांक्षित हुआ यावत् कलुपित परिणाम वाला हुआ। वह गौतम स्वामी के प्रश्नों का उत्तर देने में समर्थ नहीं हुआ। अतः मौन धारण कर चुपचाप खड़ा रहा।

इसके पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने जमाली अनगार को सम्बोधित करके कहा—"हे जमाली! मेरे बहुत से श्रमण-निर्ग्रन्थ शिष्य छद्मस्थ हैं, परन्तु वे मेरे ही समान इन प्रश्नों का उत्तर देने में समर्थ हैं, किन्तु जिस प्रकार तू कहता है कि 'मैं सर्वज्ञ अरिहन्त, जिन, केवली हूं,' वे इस प्रकार की भाषा नहीं बोलते।" जमाली! लोक शाश्वत है, क्योंकि 'लोक कदापि नहीं था, नहीं है और नहीं रहेगा'—यह बात नहीं है, किन्तु 'लोक था, है और रहेगा।' लोक ध्रुव, नियत, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित और नित्य है। जमाली! लोक अशाश्वत भी है, क्योंकि अवसर्पिणी काल होकर उत्सर्पिणी काल होता है। उत्सर्पिणी काल होकर अवसर्पिणी काल होता है।" जमाली! जीव शाश्वत है, क्योंकि 'जीव कदापि नहीं था, नहीं है और नहीं रहेगा'—ऐसी बात नहीं है, 'जीव था,

है और रहेगा।' यावत् जीव नित्य है। हे जमाली! जीव अशाश्वत भी है। क्योंकि वह नैरयिक होकर तिर्यंचयोनिक हो जाता है, तिर्यंचयोनिक होकर मनुष्य हो जाता है और मनुष्य होकर देव हो जाता है।"

इसके अनन्तर जमाली अनगार इस प्रकार कहते यावत् प्ररूपणा करते हुए श्रमण भगवान् महावीर स्वामीकी बात पर श्रद्धा, प्रतीति, रुचि नहीं करता हुआ, अपितु अश्रद्धा, अप्रतीति और अरुचि करता हुआ, दूसरी बार भगवान्के पास से निकल गया। जमालीने बहुतसे असद्भूत भावोंको प्रगट करके तथा मिथ्यात्वके अभिनिवेशसे अपनी आत्माको, पर को और उभयको भ्रान्त तथा मिथ्यात्वयुक्त करते हुए बहुत वर्षों तक श्रमणपर्यायका पालन किया। फिर अर्द्ध मासकी संलेखना द्वारा अपने शरीरको कृश करके और अनशन द्वारा तीस भक्तोंका छेदन करके, पूर्वोक्त पापकी आलोचना प्रतिक्रमण किये बिना ही काल के समयमें काल करके लान्तक देवलोकमें, तेरह सागरोपमकी स्थिति वाले किल्विषिक देवोंमें किल्विषिक देव रूपसे उत्पन्न हुआ ॥३८६॥

जमाली अनगार को कालधर्म प्राप्त हुआ जानकर गौतम स्वामी ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना नमस्कार कर इस प्रकार पूछा—'हे भगवन्! आप देवानुप्रिय का अन्तेवासी कुशिष्य जमाली अनगार कालके समय काल करके कहां गया, कहां उत्पन्न हुआ?' 'हे गौतम! इस प्रकार सम्बोधित करके श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने इस प्रकार कहा—गौतम! मेरा अन्तेवासी कुशिष्य जो जमाली अनगार था, वह जब मैं इस प्रकार कहता था यावत् प्ररूपणा करता था, तब इस प्रकार की यावत् प्ररूपणा करते हुए मेरी बात पर श्रद्धा, प्रतीति, रुचि नहीं करता हुआ यावत् कालके समय काल करके किल्विषिक देवोंमें उत्पन्न हुआ है ॥३८७॥

भगवन्! किल्विषिक देव कितने प्रकारके कहे गये हैं? गौतम! किल्विषिक देव तीन प्रकारके कहे गये हैं। यथा—तीन पल्योपमकी स्थिति वाले, तीन सागरोपमकी स्थिति वाले और तेरह सागरोपमकी स्थिति वाले। भगवन्! तीन पल्योपमकी स्थिति वाले किल्विषिक देव कहां रहते हैं? गौतम! ज्योतिषी देवों के ऊपर और सौधर्म एवं ईशान देवलोकके नीचे तीन पल्योपमकी स्थिति वाले किल्विषिक देव रहते हैं। भगवन्! तीन सागरोपमकी स्थिति वाले किल्विषिक देव कहां रहते हैं? गौतम! सौधर्म और ईशान देवलोकके ऊपर तथा सनत्कुमार और माहेन्द्र देवलोकके नीचे तीन सागरोपमकी स्थिति वाले किल्विषिक देव रहते हैं। भगवन्! तेरह सागरोपमकी स्थिति वाले किल्विषिक देव कहां

रहते हैं ? गौतम ! ब्रह्म देवलोकके ऊपर और लान्तक देवलोकके नीचे तेरह सागरोपमकी स्थिति वाले किल्विषिक देव रहते हैं।

भगवन् ! किल्विषिक देव किस कर्मके निमित्तसे किल्विषिक देवपने उत्पन्न होते हैं ? गौतम ! जो जीव आचार्य, उपाध्याय, कुल, गण और संघके प्रत्यनीक (द्वेषी) होते हैं, आचार्य और उपाध्यायके अपयश करने वाले, अवर्णवाद बोलने वाले और अकीर्त्ति करने वाले होते हैं। बहुत असत्य अर्थको प्रकट करने से, तथा मिथ्या-कदाग्रहसे अपनी आत्माको, दूसरोंको और उभयको भ्रान्त और दुर्बोध करने वाले जीव बहुत वर्षों तक श्रमण-पर्यायका पालन कर, अकार्यस्थान (पापस्थान) की आलोचना और प्रतिक्रमण किये बिना कालके समय काल करके किन्हीं किल्विषिक देवोंमें किल्विषिक देवपने उत्पन्न होते हैं। वे इस प्रकार हैं— तीन पल्योपमकी स्थिति वाले, तीन सागरकी स्थिति वाले और तेरह सागरकी स्थिति वाले।

भगवन् ! वे किल्विषिक देव आयु, भव और स्थिति का क्षय होने पर उस देवलोकसे चवकर कहां जाते हैं, कहां उत्पन्न होते हैं ? गौतम ! कुछ किल्विषिक देव नैरयिक, तिर्यंच, मनुष्य और देव के चार, पांच भव करके और इतना संसार परिभ्रमण करके सिद्ध होते हैं, बुद्ध होते हैं यावत् समस्त दुःखोंका अन्त करते हैं और कितने ही किल्विषिक देव अनादि, अनन्त और दीर्घ मार्ग वाले चार गतिरूप संसार कान्तार (संसार रूपी अटवी)में परिभ्रमण करते हैं।

भगवन् ! क्या जमाली अनगार अरसाहारी (रस रहित आहार करने वाला), विरसाहारी, अन्ताहारी, प्रान्ताहारी, रूक्षाहारी, तुच्छाहारी, अरसजीवी, विरसजीवी यावत् तुच्छजीवी, उपशान्त जीवन वाला, प्रशान्त जीवन वाला और विविक्तजीवी (पवित्र और एकान्त जीवन वाला) था ? हां, गौतम ! जमाली अनगार अरसाहारी, विरसाहारी यावत् विविक्तजीवी था। भगवन् ! यदि जमाली अनगार अरसाहारी, विरसाहारी यावत् विविक्तजीवी था, तो कालके समय काल करके वह लान्तक देवलोक में तेरह सागरोपमकी स्थिति वाले किल्विषिक देवोंमें किल्विषिक देवपने क्यों उत्पन्न हुआ ? गौतम ! वह जमाली अनगार आचार्य और उपाध्याय का प्रत्यनीक (द्वेषी) था। आचार्य और उपाध्याय का अपयश करने वाला और अवर्णवाद बोलने वाला था, यावत् वह मिथ्याभिनिवेश द्वारा अपने आपको, दूसरोंको और उभयको भ्रान्त और दुर्बोध करता था यावत् बहुत वर्षों तक श्रमण-पर्यायका पालन कर, अर्धमासिक संलेखना द्वारा शरीर को कृश कर और तीस भक्त अनशनका छेदनकर, उस पापस्थानक की आलोचना और प्रतिक्रमण किये बिना कालके समय काल कर, लान्तक देवलोकमें तेरह सागरोपम की स्थिति वाले किल्विषिक देवों में किल्विषिक देव रूपसे उत्पन्न हुआ ॥३८८॥

भगवन् ! वह जमाली देव देवपन और देवलोक से अपनी आयु क्षय होने पर यावत् कहां उत्पन्न होगा ? गौतम ! तिर्यंचयोनिक, मनुष्य और देवके चार पांच भव करके और इतना संसार परिभ्रमण करके सिद्ध होगा, बुद्ध होगा यावत् समस्त दु:खोंका अन्त करेगा । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है…। ऐसा कहकर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ।।३८६।।

।। जमाली-चरित्र समाप्त ।।

।। नौवें शतक का तेतीसवां उद्देशक समाप्त ।।

—०—

शतक ६ उद्देशक ३४—पुरुष और नोपुरुष का घातकादि

उस काल उस समय में राजगृह नगर था । वहां गौतम स्वामीने भगवान् से इस प्रकार पूछा—"भगवन् ! कोई पुरुष, पुरुष की घात करता हुआ, क्या पुरुष की ही घात करता है, अथवा नोपुरुष (पुरुष के सिवाय दूसरे जीवों) की घात करता है ? गौतम ! वह पुरुष की भी घात करता है और नोपुरुष की भी । भगवन् ! इसका क्या कारण है ? गौतम ! घात करने वाले उस पुरुषके मनमें इस प्रकार का विचार होता है कि 'मैं एक पुरुषको मारता हूं,' परन्तु वह एक पुरुष को मारता हुआ दूसरे अनेक जीवोंको भी मारता है । इसलिये हे गौतम ! यह कहा गया है कि—'वह पुरुषको भी मारता है और नोपुरुषको भी मारता है ।'

भगवन् ! अश्व को मारता हुआ कोई पुरुष अश्व को मारता है, या नोअश्व को ? गौतम ! वह अश्व को भी मारता है और नोअश्व (अश्व के सिवाय दूसरे जीवों) को भी मारता है । भगवन् ! इसका क्या कारण है ? गौतम ! इसका उत्तर पूर्ववत् जानना चाहिये । इसी प्रकार हाथी, सिंह, व्याघ्र यावत् चित्रल तक जानना चाहिए । इन सभी के लिये एक समान पाठ है ।

भगवन् ! कोई पुरुष किसी एक त्रस जीवको मारता हुआ वह उस त्रस जीवको मारता है, या उसके अतिरिक्त दूसरे त्रस जीवोंको भी मारता है ? गौतम ! वह उस त्रस जीवको भी मारता है और उसके सिवाय दूसरे त्रस जीवों को भी मारता है । भगवन् ! इसका क्या कारण है ? गौतम ! उस त्रस जीव को मारने वाले पुरुषके मनमें ऐसा विचार होता है कि—'मैं इस त्रस जीव को मारता हूं,' परन्तु वह उस त्रस जीव को मारता हुआ उसके सिवाय दूसरे अनेक त्रस जीवों को भी मारता है, इसलिये हे गौतम ! पूर्वोक्त रूपसे जानना चाहिये । इन सभी का एक समान पाठ है ।

भगवन् ! कोई पुरुष ऋषि को मारता हुआ ऋषि को ही मारता है, या नोऋषि (ऋषि के सिवाय दूसरे जीवों) को भी मारता है ? गौतम ! वह ऋषिको

भी मारता है और नोऋषिको भी। भगवन् ! इसका क्या कारण है ? गौतम ! उस मारने वाले पुरुष के मन में ऐसा विचार होता है कि 'मैं एक ऋषि को मारता हूं,' परन्तु वह एक ऋषि को मारता हुआ अनन्त जीवों को मारता है। इस कारण पूर्वोक्त रूपसे कहा गया है। भगवन् ! पुरुषको मारता हुआ कोई व्यक्ति, क्या पुरुष वैरसे स्पृष्ट होता है, या नोपुरुषवैरसे ? गौतम ! वह नियमसे (निश्चित रूप से) पुरुष वैरसे स्पृष्ट होता है। (१) अथवा पुरुष वैर से और नोपुरुष वैर से स्पृष्ट होता है। (२) अथवा पुरुषवैर से और नोपुरुष-वैरों से स्पृष्ट होता है। इसी प्रकार अश्व के विषय में यावत् चित्रलके विषय में भी जानना चाहिये। यावत् अथवा चित्रल-वैर से और नोचित्रल-वैरों से स्पृष्ट होता है। भगवन् ! ऋषि को मारता हुआ कोई पुरुष क्या ऋषि-वैर से स्पृष्ट होता है, या नोऋषि-वैरसे स्पृष्ट होता है ? गौतम ! वह नियम से ऋषि-वैरसे और नोऋषि-वैरोंसे स्पृष्ट होता है ॥३६०॥

भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीव पृथ्वीकायिक जीवोंको आभ्यन्तर और बाहरी श्वासोच्छ्वासके रूपमें ग्रहण करते हैं और छोड़ते हैं ? हां, गौतम ! पृथ्वीकायिक जीव पृथ्वीकायिक जीवोंको आभ्यन्तर और बाहरी श्वासोच्छ्वासके रूपमें ग्रहण करते हैं और छोड़ते हैं। भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीव अप्कायिक जीवोंको आभ्यन्तर और बाहरी श्वासोच्छ्वास के रूपमें ग्रहण करते और छोड़ते हैं ? हां, गौतम ! पृथ्वीकायिक जीव अप्कायिक जीवों को यावत् ग्रहण करते और छोड़ते हैं। इसी प्रकार अग्निकायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक जीवोंको भी यावत् ग्रहण करते और छोड़ते हैं।

भगवन् ! अप्कायिक जीव पृथ्वीकायिक जीवोंको आभ्यन्तर और बाहरी श्वासोच्छ्वास के रूपमें ग्रहण करते और छोड़ते हैं ? हां, गौतम ! पूर्वोक्त रूपसे जानना चाहिये। भगवन् ! अप्कायिक जीव अप्कायिक जीवोंको आभ्यन्तर और बाहरी श्वासोच्छ्वास के रूपमें ग्रहण करते और छोड़ते हैं ? हां, गौतम ! पूर्वोक्त रूपसे जानना चाहिये। इसी प्रकार तेउकाय, वायुकाय और वनस्पतिकायके विषय में भी जानना चाहिये।

भगवन् ! तेजस्कायिक जीव पृथ्वीकायिक जीवों को आभ्यन्तर और बाहरी श्वासोच्छ्वासके रूपमें ग्रहण करते हैं ? हां, गौतम ! पूर्वोक्त रूपसे जानना चाहिये। यावत् भगवन् ! वनस्पतिकायिक जीव वनस्पतिकायिक जीवोंको आभ्यन्तर और बाहरी श्वासोच्छ्वास के रूपमें ग्रहण करते और छोड़ते हैं ? हां, गौतम ! पूर्वोक्त रूपसे जानना चाहिये।

भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीव पृथ्वीकायिक जीवोंको आभ्यन्तर और बाहरी

श्वासोच्छ्वासके रूपमें ग्रहण करते हुए और छोड़ते हुए कितनी क्रिया वाले होते हैं ? गौतम ! कदाचित् तीन क्रिया वाले, कदाचित् चार क्रिया वाले और कदाचित् पांच क्रिया वाले होते हैं ।

भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीव अप्कायिक जीवोंको आभ्यन्तर और बाहरी श्वासोच्छ्वासके रूपमें ग्रहण करते और छोड़ते हुए कितनी क्रिया वाले होते हैं ? गौतम ! पूर्वोक्त रूपसे जानना चाहिये । इसी प्रकार तेजस्कायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक के साथ भी कहना चाहिये । इसी प्रकार अप्कायिक जीवोंके साथ पृथ्वीकायिक आदि सभीका कथन करना चाहिये । इसी प्रकार तेजस्कायिक और वायुकायिक जीवोंके साथ पृथ्वीकायिकादिका कथन करना चाहिए । यावत् भगवन् ! वनस्पतिकायिक जीव वनस्पतिकायिक जीवोंको आभ्यन्तर और बाहरी श्वासोच्छ्वासके रूप में ग्रहण करते हुए कितनी क्रिया वाले होते हैं ? गौतम ! कदाचित् तीन क्रिया वाले, कदाचित् चार क्रिया वाले और कदाचित् पांच क्रिया वाले होते हैं ।।३६१।।

भगवन् ! वायुकायिक जीव वृक्ष के मूलको कंपाते हुए और गिराते हुए कितनी क्रिया वाले होते हैं ? गौतम ! कदाचित् तीन क्रिया वाले, कदाचित् चार क्रिया वाले और कदाचित् पांच क्रिया वाले होते हैं । इसी प्रकार यावत् कन्द तक जानना चाहिये । इसी प्रकार यावत् बीजको कंपाने आदि के सम्बन्धमें प्रश्न । गौतम ! कदाचित् तीन क्रिया वाले, कदाचित् चार क्रिया वाले और कदाचित् पांच क्रिया वाले होते हैं । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।...ऐसा कहकर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ।।३६२।।

।। नौवें शतक का चौंतीसवां उद्देशक समाप्त ।।

।। नौवां शतक समाप्त ।।

शतक १०

इस शतकके चौंतीस उद्देशक इस प्रकार हैं–(१) दिशाके सम्बन्धमें पहला उद्देशक है, (२) संवृत अनगारादिके विषयमें दूसरा उद्देशक है, (३) देवावासोंको उल्लंघन करनेमें देवोंकी आत्मऋद्धि (स्वशक्ति) के विषय में तीसरा उद्देशक है, (४) श्रमण भगवान् महावीर स्वामीके श्यामहस्ती नामक शिष्यके प्रश्नों के सम्बन्धमें चौथा उद्देशक है, (५) चमर आदि इन्द्रों की अग्रमहिषियोंके सम्बन्धमें पांचवां उद्देशक है, (६) सुधर्मा सभाके विषय में छठा उद्देशक है, (७–३४) उत्तर दिशाके अट्ठाइस अन्तरद्वीपोंके विषय में सातवेंसे लेकर चौंतीसवें तक अट्ठाइस उद्देशक हैं ।

उद्देशक १—दिशाओं का स्वरूप-शरीर

राजगृह नगर में गौतम स्वामीने यावत् इस प्रकार पूछा—भगवन् ! यह पूर्व दिशा क्या कहलाती है ? गौतम ! यह जीव रूप भी कहलाती है और अजीव रूप भी कहलाती है। भगवन् ! यह पश्चिम दिशा क्या कहलाती है ? गौतम ! पूर्व दिशाके समान जानना चाहिये। इसी प्रकार दक्षिण दिशा, उत्तर दिशा, ऊर्ध्व दिशा और अधो दिशाके विषयमें भी जानना चाहिये।

भगवन् ! दिशाएं कितनी कही गई हैं ? गौतम ! दिशाएं दश कही गई हैं। यथा—१ पूर्व, २ पूर्वदक्षिण (आग्नेय कोण), ३ दक्षिण, ४ दक्षिणपश्चिम (नैऋत्य कोण), ५ पश्चिम, ६ पश्चिमोत्तर (वायव्य कोण), ७ उत्तर, ८ उत्तर-पूर्व (ईशान कोण), ९ ऊर्ध्व दिशा और १० अधो दिशा।

भगवन् ! इन दस दिशाओं के कितने नाम कहे गए हैं ? गौतम ! दस नाम कहे गए हैं। यथा—१ ऐन्द्री (पूर्व), २ आग्नेयी (अग्नि कोण), ३ याम्या (दक्षिण), ४ नैऋती (नैऋत्य कोण), ५ वारुणी (पश्चिम), ६ वायव्य (वायव्य कोण), ७ सौम्या (उत्तर), ८ ऐशानी (ईशान कोण), ९ विमला (ऊर्ध्वदिशा), १० तमा (अधो दिशा)।

भगवन् ! ऐन्द्री (पूर्व) दिशा—१ जीव रूप है, २ जीवके देश रूप है, ३ जीवके प्रदेश रूप है, अथवा ४ अजीवरूप है, ५ अजीवके देश रूप है, ६ या अजीव के प्रदेश रूप है ? गौतम ! ऐन्द्री दिशा जीव रूप भी है, इत्यादि पूर्वोक्त रूपसे जानना चाहिये, यावत् वह अजीव प्रदेश रूप भी है। उसमें जो जीव हैं वे एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय यावत् पंचेन्द्रिय तथा अनिन्द्रिय (केवलज्ञानी) हैं। जो जीवके देश हैं, वे एकेन्द्रिय जीवके देश हैं यावत् अनिन्द्रिय जीव के देश हैं। जो जीव-प्रदेश हैं, वे नियमत: एकेन्द्रिय जीवके प्रदेश हैं, बेइन्द्रिय जीवके प्रदेश हैं यावत् अनिन्द्रिय जीवके प्रदेश हैं। जो अजीव हैं, वे दो प्रकार के हैं। यथा—रूपी अजीव और अरूपी अजीव। रूपी अजीवोंके चार भेद हैं। यथा—स्कन्ध, स्कन्धदेश, स्कन्ध-प्रदेश और परमाणु पुद्गल। अरूपी अजीवोंके सात भेद हैं। यथा—१ स्कन्ध रूप धर्मास्ति-काय नहीं, किन्तु धर्मास्तिकाय का देश है। २ धर्मास्तिकाय के प्रदेश हैं। ३ अधर्मास्तिकाय नहीं, किन्तु अधर्मास्तिकाय का देश है। ४ अधर्मास्तिकाय के प्रदेश हैं। ५ आकाशास्तिकाय नहीं, किन्तु आकाशास्तिकाय का एक देश है। ६ आका-शास्तिकायके प्रदेश हैं। ७ अद्धासमय अर्थात् काल है।

भगवन् ! आग्नेयी दिशा क्या जीव रूप है, जीव देश रूप है, जीव प्रदेश रूप है, इत्यादि प्रश्न। गौतम ! १ जीव नहीं, किन्तु जीवके देश, २ जीवके प्रदेश, ३ अजीव, ४ अजीवके देश और ५ अजीव प्रदेश भी हैं। जीवके जो देश है, वे नियम से एकेन्द्रियोंके देश हैं अथवा एकेन्द्रियों के बहुत देश और बेइन्द्रिय का एक देश

है। अथवा एकेन्द्रियोंके बहुत देश और बेइन्द्रिय के बहुत देश हैं। अथवा एकेन्द्रियों के बहुत देश और बहुत बेइन्द्रियों के बहुत देश। अथवा एकेंद्रियोंके बहुत देश और एक तेइन्द्रियका एक देश। इस प्रकार तीन भंग तेइंद्रियके साथ कहने चाहियें। इसी प्रकार यावत् अनिन्द्रिय तकके भी तीन-तीन भंग कहने चाहियें। जीवके जो प्रदेश हैं वे नियमसे एकेन्द्रियोंके प्रदेश हैं अथवा एकेन्द्रियोंके बहुत प्रदेश और एक बेइन्द्रिय के बहुत प्रदेश। अथवा एकेन्द्रियोंके बहुत प्रदेश और बहुत बेइन्द्रियोंके बहुत प्रदेश। इस प्रकार सभी जगह प्रथम भंग के सिवाय दो दो भंग जानने चाहियें। इस प्रकार यावत् अनिन्द्रिय तक जानना चाहिये। अजीवोंके दो भेद हैं। यथा—रूपी अजीव और अरूपी अजीव। रूपी अजीवके चार भेद हैं। स्कन्ध, स्कन्ध देश, स्कन्ध प्रदेश और परमाणु पुद्गल। अरूपी अजीव के सात भेद हैं। यथा—१ धर्मास्तिकाय नहीं, किन्तु धर्मास्तिकायका देश, २ धर्मास्तिकायके प्रदेश, ३ अधर्मास्तिकाय नहीं, किन्तु अधर्मास्तिकायका देश, ४ अधर्मास्तिकायके प्रदेश, ५ आकाशास्तिकाय नहीं, किन्तु आकाशास्तिकायका देश, ६ आकाशास्तिकायके प्रदेश और ७ अद्धा समय। विदिशाओंमें जीव नहीं हैं, इसलिये सर्वत्र देश और प्रदेश विषयक भंग होते हैं।

भगवन्! याम्या (दक्षिण) दिशा क्या जीव रूप है, इत्यादि प्रश्न। गौतम! ऐन्द्री दिशाके समान सभी कथन जानना चाहिये। आग्नेयी विदिशा का कथन नैर्ऋतीविदिशा के समान है। वारुणी (पश्चिम) दिशा का कथन ऐन्द्री दिशाके समान है। वायव्यविदिशाका कथन आग्नेयी विदिशाके समान है। सौम्या (उत्तर) दिशाका कथन ऐन्द्री दिशाके समान है और ऐशानी विदिशाका कथन आग्नेयी विदिशाके समान है। विमला (ऊर्ध्व) दिशा में जीवोंका कथन आग्नेयी दिशाके समान है और अजीवों का कथन ऐन्द्री दिशामें कथित अजीवों की तरह है। इसी प्रकार तमा (अधो) दिशा का कथन भी जानना चाहिये। परन्तु इतनी विशेषता है कि तमा दिशामें अरूपी अजीवों के छह भेद हैं। क्योंकि उसमें अद्धा-समय (काल) नहीं है॥३९३॥

भगवन्! शरीर कितने प्रकारके कहे गये हैं? गौतम! शरीर पांच प्रकारके कहे गये हैं। यथा—औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस् और कार्मण। भगवन्! औदारिक शरीर कितने प्रकार का कहा गया है? गौतम! यहां प्रज्ञापना सूत्रके अवगाहना संस्थान नामक इक्कीसवें पदमें वर्णित अल्प-बहुत्व तक सारा वर्णन कहना चाहिये। हे भगवन्! यह इसी प्रकार है।······ऐसा कहकर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं॥३९४॥

॥ दसवें शतकका प्रथम उद्देशक समाप्त॥

शतक १० उद्देशक २—कषाय भावमें साम्परायिकी क्रिया।

राजगृह नगरमें यावत् गौतम स्वामीने इस प्रकार पूछा—भगवन् ! वीचि-मार्ग (कषाय भाव) में स्थित होकर सामनेके रूपों को देखते हुए, पीछे रहे हुए रूपोंको देखते हुए, पार्श्ववर्ती (दोनों ओरके) रूपोंको देखते हुए, ऊपरके रूपोंको देखते हुए और नीचे के रूपोंको देखते हुए संवृत अनगारको क्या ऐर्यापथिकी क्रिया लगती है, या साम्परायिकी क्रिया लगती है ? गौतम ! ······ऐर्यापथिकी क्रिया नहीं लगती, साम्परायिकी क्रिया लगती है।

भगवन् ! इसका क्या कारण है ? गौतम ! जिसके क्रोध, मान, माया और लोभ व्युच्छिन्न (अनुदित—उदयावस्थामें नहीं रहे हुए) हो गये हों, उसीको ऐर्या-पथिकी क्रिया लगती है। यहां सातवें शतकके प्रथम उद्देशक में वर्णित 'वह संवृत-अनगार सूत्र-विरुद्ध आचरण करता है'—तक सब वर्णन जानना चाहिये। भगवन् ! अवीचिमार्ग में (अकषाय भावमें) स्थित संवृत अनगारको उपर्युक्त रूपों का अवलोकन करते हुए क्या ऐर्यापथिकी क्रिया लगती है, या साम्परायिकी क्रिया लगती है ? गौतम ! अकषाय भावमें स्थित संवृत अनगारको उपर्युक्त रूपोंका अवलोकन करते हुए ऐर्यापथिकी क्रिया लगती है, किन्तु साम्परायिकी क्रिया नहीं लगती।

भगवन् ! इसका क्या कारण है ? गौतम ! जिसके क्रोध, मान, माया और लोभ व्युच्छिन्न (अनुदित—उदयावस्था में नहीं रहे हुए) हो गये हों, उसको ऐर्या-पथिकी क्रिया लगती है, साम्परायिकी नहीं लगती। यहां सातवें शतकके प्रथम उद्देशकमें वर्णित 'वह संवृत्त अनगार सूत्रके अनुसार आचरण करता है'—तक सब वर्णन कहना चाहिये ॥३६५॥

भगवन् ! योनि कितने प्रकारकी कही गई है ? गौतम ! योनि तीन प्रकार की कही गई है। यथा—शीत, उष्ण और शीतोष्ण। यहां प्रज्ञापना सूत्रका नौवां 'योनि पद' सम्पूर्ण कहना चाहिये ॥३६६॥

भगवन् ! वेदना कितने प्रकारकी कही गई है ? गौतम ! वेदना तीन प्रकार की कही गई है। यथा—शीत, उष्ण और शीतोष्ण। इस प्रकार यहां प्रज्ञापना सूत्र का सम्पूर्ण पैंतीसवां वेदना पद कहना चाहिये, यावत् हे भगवन् ! क्या नैरयिक जीव दुःख रूप वेदना वेदते हैं, या सुख-रूप वेदना वेदते हैं, या अदुःख-असुख रूप वेदना वेदते हैं ? हे गौतम ! नैरयिक जीव दुःखरूप वेदना भी वेदते हैं, सुखरूप वेदना भी वेदते हैं और अदुःख-असुख रूप वेदना भी वेदते हैं ॥३६७॥

जिस अनगारने मासिक भिक्षु-प्रतिमा अंगीकार की है, तथा जिसने शरीरके ममत्वका और शरीर-संस्कारका त्याग कर दिया है, इत्यादि मासिक भिक्षु-प्रतिमा सम्बन्धी सभी वर्णन यहां दशाश्रुतस्कन्धमें बताये अनुसार यावत् बारहवीं

भिक्षु-प्रतिमा तक सभी वर्णन-यावत् उसके आराधना होती है—तक कहना चाहिये ।।३९८।।

यदि किसी भिक्षुके द्वारा किसी अकृत्य-स्थानका सेवन हो गया हो और यदि वह उस अकृत्य-स्थानकी आलोचना तथा प्रतिक्रमण किये बिना ही काल कर जाय, तो उसके आराधना नहीं होती। यदि अकृत्य-स्थानकी वह आलोचना और प्रतिक्रमण करके काल करे, तो उसके आराधना होती है। कदाचित् किसी भिक्षु के द्वारा अकृत्यस्थान का सेवन हो गया हो और बाद में उसके मनमें यह विचार उत्पन्न हो कि 'मैं अपने अन्तिम समयमें इस अकृत्य स्थानकी आलोचना करूंगा यावत् तप रूप प्रायश्चित्त स्वीकार करूंगा', परन्तु वह उस अकृत्यस्थानकी आलोचना और प्रतिक्रमण किये बिना ही काल कर जाय, तो उसके आराधना नहीं होती। यदि वह आलोचना और प्रतिक्रमण करके काल करे, तो आराधना होती है। कदाचित् किसी भिक्षुके द्वारा अकृत्यस्थानका सेवन हो गया हो और उसके बाद वह यह सोचे कि 'जब कि श्रमणोपासक भी कालके समय काल करके किसी एक देवलोकमें उत्पन्न हो जाते हैं, तो क्या मैं अणपन्निक देव भी नहीं हो सकूंगा'—यह सोचकर यदि वह उस अकृत्य-स्थानकी आलोचना और प्रतिक्रमण किये बिना ही काल कर जाय, तो उसके आराधना नहीं होती। यदि अकृत्यस्थान की आलोचना और प्रतिक्रमण करके काल करता है, तो उसके आराधना होती है। हे भगवन्! यह इसी प्रकार है।······ऐसा कहकर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ।।३९९।।

।। दसवें शतकका द्वितीय उद्देशक समाप्त ।।

शतक १० उद्देशक ३—देवकी उल्लंघन शक्ति···

राजगृह नगर में गौतम स्वामीने यावत् इस प्रकार पूछा—भगवन्! देव अपनी शक्ति द्वारा यावत् चार-पाँच देवावासोंका उल्लंघन करता है और इसके अनन्तर दूसरेकी शक्ति द्वारा उल्लंघन करता है? हां, गौतम! देव अपनी शक्ति द्वारा चार-पांच देवावासोंका उल्लंघन करता है और उसके बाद दूसरी शक्ति (वैक्रियकी शक्ति) द्वारा उल्लंघन करता है। इसी प्रकार असुरकुमारोंके विषय में भी जानना चाहिये, परन्तु वे अपनी शक्ति द्वारा असुरकुमारोंके आवासोंका उल्लंघन करते हैं। शेष पूर्ववत् जानना चाहिये। इसी प्रकार इसी अनुक्रमसे यावत् स्तनित-कुमार, वाण-व्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक पर्यन्त जानना चाहिये,

यावत् 'वे अपनी शक्तिसे चार पांच आवासोंका उल्लंघन करते हैं, इसके अनन्तर दूसरी शक्ति (स्वाभाविक शक्तिके अतिरिक्त उत्तर वैक्रिय शक्ति) से उल्लंघन करते हैं।

भगवन् ! क्या अल्पऋद्धिक (अल्प शक्ति वाला) देव महर्द्धिक (महा शक्ति वाला) देव के बीचमें से होकर जा सकता है ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है (वह उनके बीचोबीच होकर नहीं जा सकता)। भगवन् ! समर्द्धिक (समान शक्ति-वाला) देव समर्द्धिक देव के बीच में होकर जा सकता है ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं, परन्तु वह प्रमत्त (असावधान) हो तो जा सकता है। भगवन् ! क्या वह देव उस सामने वाले देवको विमोहित करके जाता है, या विमोहित किये विना जाता है ? गौतम ! वह देव सामने वाले देवको विमोहित करके जा सकता है, विमोहित किये विना नहीं जा सकता। भगवन् ! क्या वह देव उसे पहले विमोहित करता है और पीछे जाता है, अथवा पहले जाता है और पीछे विमोहित करता है ? गौतम ! वह देव उसे पहले विमोहित करता है और पीछे जाता है, परन्तु पहले जाकर पीछे विमोहित नहीं करता।

भगवन् ! क्या महर्द्धिक देव अल्पऋद्धिक देवके ठीक मध्य में होकर जा सकता है ? हां, गौतम ! जा सकता है। भगवन् ! वह महर्द्धिक देव उस अल्प-ऋद्धिक देव को विमोहित करके जाता है अथवा विमोहित किये विना जाता है ? गौतम ! विमोहित करके भी जा सकता है और विमोहित किये विना भी जा सकता है। भगवन् ! वह महर्द्धिक देव उसे पहले विमोहित करके पीछे जाता है, अथवा पहले जाता है और पीछे विमोहित करता है ? गौतम ! वह महर्द्धिक देव पहले विमोहित करके पीछे भी जा सकता है और पहले जाकर पीछे भी विमोहित कर सकता है। भगवन् ! अल्पऋद्धिक असुरकुमार देव महर्द्धिक असुरकुमार देवके बीचोबीच होकर जा सकता है ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं। इस प्रकार सामान्य देव की तरह असुरकुमारके भी तीन आलापक कहने चाहिएं। इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमार तक कहना चाहिए, तथा वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमा-निक देवों के विषय में भी इसी प्रकार कहना चाहिए।

भगवन् ! अल्पऋद्धिक देव महर्द्धिक देवीके मध्य में होकर जा सकता है ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं। भगवन् ! समऋद्धिक देव समऋद्धिक देवीके मध्यमें होकर जा सकता है ? गौतम ! पूर्वोक्त प्रकारसे देवके साथ देवीका भी दण्डक कहना चाहिये, यावत् वैमानिक पर्यंत इसी प्रकार कहना चाहिये। भगवन् ! अल्प-ऋद्धिक देवी महर्द्धिक देवके मध्यमें होकर जा सकती है ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं, इस प्रकार यहां तीसरा दण्डक कहना चाहिये, यावत् हे भगवन् ! महर्द्धिक वैमानिक देवी अल्पऋद्धिक वैमानिक देव के बीच में से निकलकर जा

सकती है ? हां, गौतम ! जा सकती है। भगवन् ! अल्पऋद्धिक देवी महर्द्धिक देवीके मध्य में से चलकर जा सकती है ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं। इस प्रकार समऋद्धिक देवी का समऋद्धिक देवीके साथ तथा महर्द्धिक देवी का अल्पऋद्धिक देवी के साथ, उपर्युक्त रूप से आलापक कहना चाहिये। इस प्रकार एक-एक के तीन-तीन आलापक कहने चाहियें, यावत् भगवन् ! महर्द्धिक वैमानिक देवी अल्पऋद्धिक वैमानिक देवी के मध्य में होकर जा सकती है ? हां गौतम ! जा सकती है, यावत् भगवन् ! क्या वह महर्द्धिक देवी उसे विमोहित करके जा सकती है, अथवा विमोहित किये बिना जा सकती है, तथा पहले विमोहित करके पीछे जाती है, अथवा पहले जाकर पीछे विमोहित करती है ? गौतम ! पूर्वोक्त रूप से जानना चाहिये, यावत् 'पहले जाती है और पीछे भी विमोहित करती है,' तक कहना चाहिये। इस प्रकार चार दण्डक कहने चाहियें ॥४००॥

भगवन् ! जब घोड़ा दौड़ता है, तब 'खु-खु' शब्द क्यों करता है ? गौतम ! जब घोड़ा दौड़ता है, तब उसके हृदय और यकृत के बीच में कर्कट नामक वायु उत्पन्न होती है, इससे दौड़ता हुआ घोड़ा 'खु-खु' शब्द करता है ॥४०१॥

भगवन् ! १ आमन्त्रणी, २ आज्ञापनी, ३ याचनी, ४ पृच्छनी, ५ प्रज्ञापनी, ६ प्रत्याख्यानी, ७ इच्छानुलोमा, ८ अनभिगृहीता, ९ अभिगृहीता, १० संशयकरणी, ११ व्याकृता और १२ अव्याकृता, इन बारह प्रकार की भाषाओं में—हम आश्रय करेंगे, शयन करेंगे, खड़े रहेंगे, बैठेंगे और लेटेंगे,' इत्यादि भाषा क्या प्रज्ञापनी भाषा कहलाती है और ऐसी भाषा मृषा (असत्य) नहीं कहलाती ? हां गौतम ! उपरोक्त प्रकार की भाषा प्रज्ञापनी भाषा···मृषा नहीं कहलाती। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है।···ऐसा कह कर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ॥४०२॥

॥ दसवें शतकका तृतीय उद्देशक समाप्त ॥

—०—

शतक १० उद्देशक ४

उस काल उस समय वाणिज्यग्राम नामक नगर था। उस समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामीके ज्येष्ठ अन्तेवासी (शिष्य) इन्द्रभूति नामक अनगार थे। वे ऊर्ध्वजानु यावत् विचरते थे। उस काल उस समयमें श्रमण भगवान् महावीर स्वामीके शिष्य 'श्यामहस्ती' अनगार थे। वे गौतम स्वामीके पास आकर उन्हें तीन बार प्रदक्षिणा एवं वन्दना नमस्कार करके पर्युपासना करते हुए इस प्रकार बोले—भगवन् ! क्या असुरकुमारोंके राजा, असुरकुमारोंके इन्द्र चमरके त्रायस्त्रिंशक देव हैं ? हां, श्यामहस्ती ! चमरेन्द्रके त्रायस्त्रिंशक देव हैं।

यावत् 'वे अपनी शक्तिसे चार पांच आवासोंका उल्लंघन करते हैं, इसके अनन्तर दूसरी शक्ति (स्वाभाविक शक्तिके अतिरिक्त उत्तर वैक्रिय शक्ति) से उल्लंघन करते हैं।

भगवन् ! क्या अल्पऋद्धिक (अल्प शक्ति वाला) देव महर्द्धिक (महा शक्ति वाला) देव के बीचमें से होकर जा सकता है ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है (वह उनके बीचोबीच होकर नहीं जा सकता)। भगवन् ! समर्द्धिक (समान शक्ति-वाला) देव समर्द्धिक देव के बीच में होकर जा सकता है ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं, परन्तु वह प्रमत्त (असावधान) हो तो जा सकता है। भगवन् ! क्या वह देव उस सामने वाले देवको विमोहित करके जाता है, या विमोहित किये विना जाता है ? गौतम ! वह देव सामने वाले देवको विमोहित करके जा सकता है, विमोहित किये बिना नहीं जा सकता। भगवन् ! क्या वह देव उसे पहले विमोहित करता है और पीछे जाता है, अथवा पहले जाता है और पीछे विमोहित करता है ? गौतम ! वह देव उसे पहले विमोहित करता है और पीछे जाता है, परन्तु पहले जाकर पीछे विमोहित नहीं करता।

भगवन् ! क्या महर्द्धिक देव अल्पऋद्धिक देवके ठीक मध्य में होकर जा सकता है ? हां, गौतम ! जा सकता है। भगवन् ! वह महर्द्धिक देव उस अल्प-ऋद्धिक देव को विमोहित करके जाता है अथवा विमोहित किये विना जाता है ? गौतम ! विमोहित करके भी जा सकता है और विमोहित किये विना भी जा सकता है। भगवन् ! वह महर्द्धिक देव उसे पहले विमोहित करके पीछे जाता है, अथवा पहले जाता है और पीछे विमोहित करता है ? गौतम ! वह महर्द्धिक देव पहले विमोहित करके पीछे भी जा सकता है और पहले जाकर पीछे भी विमोहित कर सकता है। भगवन् ! अल्पऋद्धिक असुरकुमार देव महर्द्धिक असुरकुमार देवके बीचोबीच होकर जा सकता है ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं। इस प्रकार सामान्य देव की तरह असुरकुमारके भी तीन आलापक कहने चाहिएं। इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमार तक कहना चाहिए, तथा वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमा-निक देवों के विषय में भी इसी प्रकार कहना चाहिए।

भगवन् ! अल्पऋद्धिक देव महर्द्धिक देवीके मध्य में होकर जा सकता है ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं। भगवन् ! समऋद्धिक देव समऋद्धिक देवीके मध्यमें होकर जा सकता है ? गौतम ! पूर्वोक्त प्रकारसे देवके साथ देवीका भी दण्डक कहना चाहिये, यावत् वैमानिक पर्यंत इसी प्रकार कहना चाहिये। भगवन् ! अल्प-ऋद्धिक देवी महर्द्धिक देवके मध्यमें होकर जा सकती है ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं, इस प्रकार यहां तीसरा दण्डक कहना चाहिये, यावत् हे भगवन् ! महर्द्धिक वैमानिक देवी अल्पऋद्धिक वैमानिक देव के बीच में से निकलकर जा

भगवन् ! इसका क्या कारण है कि असुरेन्द्र असुरकुमारेन्द्रके त्रायस्त्रिंशक देव हैं ? श्यामहस्ती ! उन त्रायस्त्रिंशक देवोंका वर्णन इस प्रकार है। उस काल उस समय इस जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें काकन्दी नामकी नगरी थी (वर्णन)। उस काकन्दी नगरीमें एक दूसरे की परस्पर सहायता करने वाले तेतीस श्रमणोपासक गृहपति रहते थे। वे धनिक यावत् अपरिभूत थे। वे जीवाजीवके ज्ञाता और पुण्य-पापके जानने वाले थे। वे परस्पर सहायक तेतीस श्रमणोपासक गृहपति पहले उग्र, उग्रविहारी, संविग्न, संविग्नविहारी थे, परन्तु पीछे पासत्थ (पार्श्वस्थ), पासत्थविहारी, अवसन्न, अवसन्नविहारी, कुशील, कुशीलविहारी, यथाछन्द और यथाछन्दविहारी हो गये। बहुत वर्षों तक श्रमणोपासक पर्याय का पालन कर, अर्धमासिक संलेखना द्वारा शरीरको कृश कर, तीस भक्तोंका अनशन द्वारा छेदन करके और उस प्रमाद स्थानकी आलोचना और प्रतिक्रमण किये विना ही कालके समय काल कर वे असुरकुमारराज असुरकुमारेन्द्र चमरके त्रायस्त्रिंशक देवपने उत्पन्न हुए हैं।

(श्यामहस्ती, गौतम स्वामीसे पूछते हैं) भगवन् ! क्या जब से वे काकन्दी निवासी परस्पर सहायता करने वाले तेतीस श्रमणोपासक असुरकुमारराज असुरेन्द्र चमरके त्रायस्त्रिंशक देवपने उत्पन्न हुए हैं, तबसे ऐसा कहा जाता है कि असुरेन्द्र असुरकुमारराज चमरके त्रायस्त्रिंशक देव हैं ? (अर्थात् क्या इससे पहले त्रायस्त्रिंशक देव नहीं थे ?) श्यामहस्ती अनगारके इस प्रश्नको सुनकर गौतम स्वामी शंकित, कांक्षित और अत्यन्त संदिग्ध हुए। वे वहां से उठे और श्यामहस्ती अनगारके साथ श्रमण भगवान् महावीर स्वामीके पास आये। भगवान्को वन्दना नमस्कार करके गौतमस्वामीने इस प्रकार पूछा—भगवन् ! क्या असुरेन्द्र असुर-कुमारराज चमरके त्रायस्त्रिंशक देव हैं ? हां, गौतम हैं।

भगवन् ! ऐसा किस कारणसे कहते हैं कि चमरके त्रायस्त्रिंशक देव हैं, इत्यादि पूर्व कथित त्रायस्त्रिंशक देवोंका सब सम्बन्ध कहना चाहिये, यावत् काकन्दी निवासी श्रमणोपासक त्रायस्त्रिंशक देवपने उत्पन्न हुए। तबसे लेकर ऐसा कहा जाता है कि चमरेन्द्रके त्रायस्त्रिंशक देव हैं ? क्या इसके पहले वे नहीं थे ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं। असुरेन्द्र असुरकुमारराज चमरके त्रायस्त्रिंशक देवोंके नाम शाश्वत कहे गये हैं। इसलिये वे कभी नहीं थे—ऐसा नहीं और नहीं रहेंगे—ऐसा भी नहीं। वे नित्य हैं, अव्युच्छित्तिनय (द्रव्यार्थिक नय) की अपेक्षा पहले वाले चवते हैं और दूसरे उत्पन्न होते हैं। उनका विच्छेद कभी नहीं होता।

भगवन् ! वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बलिके त्रायस्त्रिंशक देव हैं ? हां, गौतम ! हैं। भगवन् ! ऐसा किस कारणसे कहते हैं कि वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बलिके त्रायस्त्रिंशक देव हैं ? गौतम ! बलिके त्रायस्त्रिंशक देवोंका वर्णन इस प्रकार है—

उस काल उस समय इस जम्बूद्वीपके भरत क्षेत्रमें विभेल नामका सन्निवेश (कस्बा) था (वर्णन)। उस विभेल सन्निवेशमें परस्पर सहायता करने वाले तेतीस श्रमणोपासक थे, इत्यादि जैसा वर्णन चमरेन्द्रके लिए कहा है, वैसा यहां भी जानना चाहिये। यावत् वे त्रायस्त्रिशक देवपने उत्पन्न हुए। जब से वे विभेल सन्निवेश निवासी परस्पर सहायक तेतीस गृहपति श्रमणोपासक वलिके त्रायस्त्रिशक देवपने उत्पन्न हुए, तबसे क्या ऐसा कहा जाता है कि वलिके त्रायस्त्रिशक देव हैं, इत्यादि पूर्वोक्त सभी वर्णन कहना चाहिये। यावत् 'वे नित्य हैं, अव्युच्छित्ति नयकी अपेक्षा पुराने चवते हैं और नये उत्पन्न होते हैं'–तक कहना चाहिये।

भगवन्! नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज धरणके त्रायस्त्रिशक देव है? हां, गौतम! हैं। भगवन्! किस कारणसे कहते हैं कि नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज धरणके त्रायस्त्रिशक देव हैं? गौतम! नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज धरणके त्रायस्त्रिशक देवोंके नाम शाश्वत कहे गये हैं। 'वे कभी नहीं थे'–ऐसा नहीं, 'नहीं रहेंगे'—ऐसा भी नहीं, यावत् पुराने चवते हैं और नये उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार भूतानन्द यावत् महाघोष इन्द्रके त्रायस्त्रिशक देवोंके विषयमें जानना चाहिये।

भगवन्! देवेन्द्र देवराज शक्रके त्रायस्त्रिशक देव हैं? हां, गौतम! हैं। भगवन्! ऐसा किस कारणसे कहते हैं कि देवेन्द्र देवराज शक्रके त्रायस्त्रिशक देव हैं। गौतम! शक्रके त्रायस्त्रिशक देवोंका सम्बन्ध इस प्रकार है—उस काल उस समयमें इस जम्बूद्वीपके भरत क्षेत्रमें पलाशक नामका सन्निवेश था (वर्णन)। वहां परस्पर सहायता करने वाले तेतीस श्रमणोपासक रहते थे। इत्यादि पूर्वोक्त वर्णन कहना चाहिये। वे तेतीस श्रमणोपासक पहले भी और पीछे भी उग्र, उग्रविहारी, संविग्न और संविग्नविहारी होकर बहुत वर्षों तक श्रमणोपासक पर्याय का पालन कर, मासिक संलेखना द्वारा शरीरको कृश कर, साठ भक्त अनशनका छेदनकर, आलोचना और प्रतिक्रमण कर और कालके अवसर समाधिपूर्वक काल करके शक्रके त्रायस्त्रिशक देवपने उत्पन्न हुए हैं, इत्यादि सारा वर्णन चमरेन्द्रके समान कहना चाहिये। यावत् 'पुराने चवते हैं, और नये उत्पन्न होते हैं'—तक कहना चाहिये।

भगवन्! देवेन्द्र देवराज ईशानके त्रायस्त्रिशक देव हैं? गौतम! शक्रेन्द्रके समान ईशानेन्द्रका भी वर्णन जानना चाहिये। इसमें इतनी विशेषता है कि ये श्रमणोपासक चम्पा नगरीमें रहते थे। शेष सारा वर्णन शक्रेन्द्रके समान जानना चाहिये। भगवन्! देवेन्द्र देवराज सनत्कुमारके त्रायस्त्रिशक देव हैं? हां, गौतम! हैं। भगवन्! इसका क्या कारण है कि देवेन्द्र देवराज सनत्कुमारके त्रायस्त्रिशक देव हैं? गौतम! जिस प्रकार धरणेन्द्रके विषयमें कहा है, उसी प्रकार सनत्कुमार

के विषयमें भी जानना चाहिए । इसी प्रकार यावत् प्राणत तक जानना चाहिए और इसी प्रकार अच्युत तक जानना चाहिए, यावत् 'पुराने चवते हैं और नए उत्पन्न होते हैं'—तक जानना चाहिए । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।......ऐसा कहकर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ॥४०३॥

॥ दसवें शतकका चतुर्थ उद्देशक समाप्त ॥

—o—

शतक १० उद्देशक ५—चमरेन्द्र का परिवार

उस काल उस समयमें राजगृह नामक नगर था । वहां गुणशीलक नामक उद्यान था । (वहां श्रमण भगवान् महावीर स्वामी समवसरे) यावत् परिषद् धर्मोपदेश सुनकर लौट गई । उस काल उस समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामीके बहुतसे अन्तेवासी (शिष्य) स्थविर भगवान् जातिसम्पन्न इत्यादि आठवें शतकके सातवें उद्देशकमें कहे अनुसार विशेषण विशिष्ट यावत् विचरते थे । वे स्थविर भगवान् जाननेकी श्रद्धा वाले यावत् संशय वाले होकर गौतम स्वामीके समान पर्युपासना करते हुए इस प्रकार बोले—

भगवन् ! असुरेन्द्र असुरकुमारराज चमरके कितनी अग्रमहिषियां (पटरानियां) कही गई हैं ? आर्यो ! चमरेन्द्रके पांच अग्रमहिषियां कही गई हैं । यथा—१ काली, २ राजी, ३ रजनी, ४ विद्युत् और ५ मेघा । इनमें से एक-एक अग्रमहिषी के आठ-आठ हजार देवियोंका परिवार कहा गया है । भगवन् ! क्या एक-एक देवी आठ-आठ हजार देवियोंके परिवारकी विकुर्वणा कर सकती है ? आर्यो ! हां, कर सकती है । इस प्रकार पूर्वापर सब मिलकर पांच अग्रमहिषियों का परिवार चालीस हजार देवियां हैं । यह एक त्रुटिक (वर्ग) कहलाता है ।

भगवन् ! क्या असुरेन्द्र असुरकुमारराज चमर अपनी चमरचञ्चा राजधानीकी सुधर्मासभा में, चमर नामक सिंहासन पर बैठकर, उस त्रुटिक (देवियों के परिवार) के साथ भोगने योग्य दिव्य-भोगोंको भोगनेमें समर्थ है ? आर्यो ! यह अर्थ समर्थ नहीं ।

हे आर्यो ! वह असुरेन्द्र असुरकुमारराज चमर चमरचञ्चा राजधानीकी सुधर्मा सभामें चमर नामक सिंहासन पर बैठकर चौंसठ हजार सामानिक देव, त्रायस्त्रिंशक देव और दूसरे बहुतसे असुरकुमार देव और देवियोंके साथ प्रवृत्त होकर निरन्तर होने वाले नाट्य गीत और वादित्रोंके शब्दों द्वारा, केवल परिवारकी ऋद्धिसे भोग भोगनेमें समर्थ है, परन्तु मैथुन-निमित्तक भोग भोगनेमें समर्थ नहीं है ॥४०४॥

भगवन्! असुरेन्द्र असुरकुमारराज चमरके लोकपाल सोम महाराजाके कितनी अग्रमहिषियां कही गई हैं? आर्यो! उनके चार अग्रमहिषियां कही गई हैं। यथा-कनका, कनकलता, चित्रगुप्ता और वसुन्धरा। इनमें से प्रत्येक देवीका एक-एक हजार देवियोंका परिवार है। इनमें से प्रत्येक देवी एक-एक हजार देवियोंके परिवारकी विकुर्वणा कर सकती है। इस प्रकार पूर्वापर सब मिल कर चार हजार देवियां होती हैं। यह एक त्रुटिक (देवियोंका वर्ग) कहलाता है।

भगवन्! क्या असुरेन्द्र असुरकुमारराज चमरका लोकपाल सोम नामक महाराजा, अपनी सोमा राजधानीकी सुधर्मा सभामें, सोम नामक सिंहासन पर बैठकर उस त्रुटिकके साथ भोग भोगनेमें समर्थ है? आर्यो! जिस प्रकार चमरके सम्बन्धमें कहा गया, उसी प्रकार यहां भी जानना चाहिये, परन्तु इसका परिवार राजप्रश्नीय सूत्रमें वर्णित सूर्याभदेवके समान जानना चाहिये। शेष सब पूर्ववत् जानना चाहिये, यावत् वह सोमा राजधानीमें मैथुन-निमित्तक भोग भोगनेमें समर्थ नहीं है।

भगवन्! उस चमरके लोकपाल यम महाराजाके कितनी अग्रमहिषियां कही गई हैं? आर्यो! जिस प्रकार सोम महाराजाका कहा, उसी प्रकार यम महाराजाका कहना चाहिये, किन्तु इतनी विशेषता है कि यम लोकपालके यमा नामक राजधानी है। इसी प्रकार वरुण और वैश्रमणका भी कहना चाहिये, किन्तु वरुणके वरुणा राजधानी है और वैश्रमणके वैश्रमणा राजधानी है। शेष सब पूर्ववत् जानना चाहिए, यावत् वह वहां मैथुननिमित्तक भोग भोगनेमें समर्थ नहीं है।

भगवन्! वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बलिके कितनी अग्रमहिषियां कही गई हैं? आर्यो! पांच अग्रमहिषियां कही गई हैं। यथा-सुभा, निसुम्भा, रम्भा, निरम्भा और मदना। इनमें प्रत्येक देवीके आठ-आठ हजार देवियोंका परिवार है, इत्यादि सारा वर्णन चमरेन्द्रके समान जानना चाहिए, परन्तु बलीन्द्रके बलिचञ्चा राजधानी है। इसका परिवार तृतीय शतकके प्रथम उद्देशकमें कहे अनुसार तथा शेष सब वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिए, यावत् 'वह मैथुन निमित्तक भोग भोगनेमें समर्थ नहीं है।'

भगवन्! वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बलिके लोकपाल सोम महाराजाके कितनी अग्रमहिषियां हैं? आर्यो! चार अग्रमहिषियां हैं। यथा-मेनका, सुभद्रा, विजया और असनी। इनकी एक-एक देवीका परिवार आदि सारा वर्णन चमरके सोम नामक लोकपालके समान जानना चाहिए। इसी प्रकार यावत् वैश्रमण तक जानना चाहिए।

भगवन्! नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज धरणके कितनी अग्रमहिषियां कही गई हैं? आर्यो! उसके छह अग्रमहिषियां कही गई हैं। यथा-इला, शुक्रा, सतारा,

सौदामिनी, इन्द्रा, घनविद्युत्। इन प्रत्येक देवियोंके छह-छह हजार देवियोंका परिवार कहा गया है। भगवन्! इनमें से प्रत्येक देवी अन्य छह-छह हजार देवियों के परिवारकी विकुर्वणा कर सकती है? हां, आर्यो! कर सकती है। ये पूर्वापर सब मिलाकर छत्तीस हजार देवियोंकी विकुर्वणा कर सकती हैं। इस प्रकार यह इन देवियोंका त्रुटिक कहा गया है।

भगवन्! धरणेन्द्र यावत् भोग भोगनेमें समर्थ है, इत्यादि प्रश्न? पूर्ववत् जानना चाहिए, यावत् वह वहां मैथुन-निमित्तक भोग भोगने में समर्थ नहीं है, इसमें इतनी विशेषता है कि राजधानीका नाम धरणा, धरण सिंहासनके विषयमें स्व-परिवार, शेष सब पूर्ववत् कहना चाहिये।

भगवन्! नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज धरणके लोकपाल कालवाल नामक महाराजाके कितनी अग्रमहिषियां कही गई हैं? आर्यो! उसके चार अग्र-महिषियां कही गई हैं। यथा–अशोका, विमला, सुप्रभा और सुदर्शना। इनमें से एक-एक देवीका परिवार आदि वर्णन चमरके लोकपालके समान कहना चाहिए। इसी प्रकार शेष तीन लोकपालोंके विषय में भी कहना चाहिए। भगवन्! भूतानन्दके कितनी अग्रमहिषियां कही गई हैं? आर्यो! उसके छह अग्र-महिषियां कही गई हैं। यथा–रूपा, रूपांशा, सुरूपा, रूपकावती, रूपकान्ता, रूप-प्रभा। इनमें प्रत्येक देवीके परिवार आदिका वर्णन धरणेन्द्रके समान जानना चाहिए।

भगवन्! भूतानन्दके लोकपाल नागवित्तके कितनी अग्रमहिषियां कही गई हैं? आर्यो! उसके चार अग्रमहिषियां कही गई हैं। यथा–सुनन्दा, सुभद्रा, सुजाता, सुमना। इनमें प्रत्येक देवीके परिवार आदिका वर्णन चमरेन्द्रके लोकपालके समान और इसी प्रकार शेप तीन लोकपालोंके विपयमें भी जानना चाहिये। दक्षिणदिशा के इन्द्रोंका कथन धरणेन्द्रके समान और उनके लोकपालोंका कथन धरणेन्द्रके लोकपालोंकी तरह जानना चाहिये।

उत्तर दिशाके इन्द्रोंका कथन भूतानन्दके समान और उनके लोकपालों का कथन भूतानन्दके लोकपालोंके समान जानना चाहिये। परन्तु इतनी विशेपता है कि सब इन्द्रोंकी राजधानियोंका और सिंहासनोंका नाम इन्द्रके नामके समान जानना चाहिये। उनके परिवारका वर्णन तीसरे शतकके पहले उद्देशकमें कहे अनुसार जानना चाहिये। सभी लोकपालों की राजधानियां और सिंहासनोंका नाम लोकपालके नामके अनुसार जानना चाहिये और उनके परिवारका वर्णन चमरेन्द्र के लोकपालों के परिवारके वर्णनके समान जानना चाहिये।

भगवन्! पिशाचेन्द्र पिशाचराज कालके कितनी अग्रमहिपियां कही गई हैं? आर्यो! उसके चार अग्रमहिपियां कही गई हैं, यथा–कमला, कमलप्रभा, उत्पला

और सुदर्शना। इनमें से प्रत्येक देवीके एक एक हजार देवियोंका परिवार है। शेष सब वर्णन चमरेन्द्रके लोकपालोंके समान जानना चाहिए और परिवार भी उसीके समान जानना चाहिये। परन्तु विशेषता यह है कि इसके काला नामकी राजधानी और काल नामका सिंहासन है। शेष सब वर्णन पहलेके समान जानना चाहिये। इसी प्रकार महाकालके विषयमें भी जानना चाहिये।

भगवन्! भूतेन्द्र भूतराज सुरूपके कितनी अग्रमहिषियां कही गई हैं? आर्यो! चार अग्रमहिषियां कही गई हैं। यथा-रूपवती, बहुरूपा, सुरूपा और सुभगा। इनमें प्रत्येक देवीके परिवार आदिका वर्णन कालेन्द्रके समान जानना चाहिये। इसी प्रकार प्रतिरूपेन्द्र के विषयमें भी जानना चाहिये।

भगवन्! यक्षेन्द्र यक्षराज पूर्णभद्रके कितनी अग्रमहिषियां कही गई हैं? आर्यो! चार अग्रमहिषियां कही हैं। यथा—पूर्णा, बहुपुत्रिका, उत्तमा और तारका। प्रत्येक देवीके परिवार आदिका वर्णन कालेन्द्रके समान जानना चाहिये। इसी प्रकार माणिभद्रके विषयमें भी जानना चाहिये।

भगवन्! राक्षसेन्द्र राक्षसराज भीमके कितनी अग्रमहिषियां कही गई हैं? आर्यो! चार अग्रमहिषियां कही गई हैं। यथा—पद्मा, पद्मावती, कनका और रत्नप्रभा। प्रत्येक देवीके परिवार आदिका वर्णन कालेन्द्रके समान है और इसी प्रकार महाभीम के विषयमें भी जानना चाहिये।

भगवन्! किन्नरेन्द्र के कितनी अग्रमहिषियां कही गई हैं? आर्यो! चार अग्रमहिषियां कही गई हैं। यथा-अवतंसा, केतुमती, रतिसेना और रतिप्रिया। प्रत्येक देवीके परिवारके विषयमें पूर्वोक्त रूपसे जानना चाहिये। इसी प्रकार किम्पुरुषेन्द्रके विषयमें भी जानना चाहिये।

भगवन्! सत्पुरुषेन्द्रके कितनी अग्रमहिषियां कही गई हैं? आर्यो! चार अग्रमहिषियां कही गई हैं। यथा—रोहिणी, नवमिका, ह्री और पुष्पवती। प्रत्येक देवी के परिवारका वर्णन पूर्वोक्त रूपसे जानना चाहिये। इसी प्रकार महापुरुषेन्द्र के विषयमें भी जानना चाहिये।

भगवन्! अतिकायेन्द्र के कितनी अग्रमहिषियां कही गई हैं? आर्यो! चार अग्रमहिषियां कही गई हैं। यथा-भुजंगा, भुजंगवती, महाकच्छा और स्फुटा। प्रत्येक देवीके परिवारका वर्णन पूर्वोक्त रूप से जानना चाहिये। इसी प्रकार महाकायेन्द्रके विषयमें भी जानना चाहिये।

भगवन्! गीतरतीन्द्र के कितनी अग्रमहिषियां कही गई हैं? आर्यो! चार अग्रमहिषियां कही गई हैं। यथा—सुघोषा, विमला, सुस्वरा और सरस्वती। प्रत्येक देवीके परिवार का वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिए। इसी प्रकार गीतयश इन्द्रके

विषयमें भी जानना चाहिये। इन सभी इन्द्रों का शेष सब वर्णन कालेन्द्रके समान जानना चाहिये। राजधानियों और सिंहासनोंका नाम इन्द्रोंके नामके समान तथा शेष वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिये।

भगवन्! ज्योतिषीन्द्र ज्योतिषीराज चन्द्रके कितनी अग्रमहिषियां कही गई हैं? आर्यो! चार अग्रमहिषियां कही गई हैं। यथा—चन्द्रप्रभा, ज्योत्स्नाभा, अर्चिमाली और प्रभंकरा, इत्यादि जीवाभिगम सूत्र की तीसरी प्रतिपत्ति के 'ज्योतिषी' नामक दूसरे उद्देशकमें कहे अनुसार जानना चाहिये। इसी प्रकार सूर्यके विषयमें भी जानना चाहिये। सूर्यके चार अग्रमहिषियोंके नाम ये हैं—सूर्यप्रभा, आतपाभा, अर्चिमाली और प्रभंकरा, इत्यादि पूर्वोक्त सब कहना चाहिये, यावत् वे अपनी राजधानीमें सिंहासन पर मैथुननिमित्तक भोग भोगनेमें समर्थ नहीं हैं।

भगवन्! अंगारक नामके महाग्रहके कितनी अग्रमहिषियां कही गई हैं? आर्यो! चार अग्रमहिषियां कही गई हैं। यथा—विजया, वैजयन्ती, जयन्ती और अपराजिता। इनकी प्रत्येक देवीके परिवारका वर्णन चन्द्रमाके समान जानना चाहिये, परन्तु इतनी विशेषता है कि इसके विमानका नाम अंगारावतंसक और सिंहासनका नाम अंगारक है। इसी प्रकार व्याल नामक ग्रहके विषयमें भी जानना चाहिये। इसी प्रकार ८८ महाग्रहोंके विषय में यावत् भावकेतु ग्रह तक जानना चाहिये। परन्तु अवतंसक और सिंहासनका नाम इन्द्रके नामके समान है, शेष वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिये।

भगवन्! देवेन्द्र देवराज शक्रके कितनी अग्रमहिषियां कही गई हैं? आर्यो! आठ अग्रमहिषियां कही गई हैं। यथा—पद्मा, शिवा, श्रेया, अञ्जू, अमला, अप्सरा, नवमिका और रोहिणी। इनमें से प्रत्येक देवीका सोलह हजार देवियोंका परिवार है। इनमें से प्रत्येक देवी दूसरी सोलह हजार देवियोंके परिवारकी विकुर्वणा कर सकती है। इसी प्रकार पूर्वापर मिलाकर एक लाख अट्ठाइस हजार देवियों के परिवार की विकुर्वणा कर सकती हैं। यह एक त्रुटिक कहा गया है।

भगवन्! देवेन्द्र देवराज शक्र सौधर्म देवलोकके सौधर्मावतंसक विमानमें, सुधर्मा सभा में, शक्र नामक सिंहासन पर बैठकर उस त्रुटिकके साथ भोग भोगनेमें समर्थ है? आर्यो! इसका सभी वर्णन चमरेन्द्रके समान जानना चाहिये, परन्तु इसके परिवारका वर्णन तीसरे शतकके प्रथम उद्देशकमें कहे अनुसार जानना चाहिये।

भगवन्! देवेन्द्र देवराज शक्रके लोकपाल सोम महाराजा के कितनी अग्रमहिषियां कही गई हैं? आर्यो! चार अग्रमहिषियां कही गई हैं। यथा—रोहिणी, मदना, चित्रा और सोमा। इनमें से प्रत्येक देवीके परिवारका वर्णन चमरेन्द्रके लोकपालोंके समान जानना चाहिये, परन्तु इतनी विशेषता है कि स्वयंप्रभ नामक

विमानमें सुधर्मा सभामें सोम नामक सिंहासन पर बैठकर यावत् भोग भोगनेमें समर्थ नहीं, इत्यादि पूर्ववत् जानना चाहिये। इसी प्रकार यावत् वैश्रमण तक जानना चाहिये, परन्तु उसके विमान आदि का वर्णन तृतीय शतकके सातवें उद्देशकमें कहे अनुसार जानना चाहिये।

भगवन् ! देवेन्द्र देवराज ईशानके कितनी अग्रमहिषियां कही गई हैं ? आर्यो ! आठ अग्रमहिषियां कही गई हैं। तथा—कृष्णा, कृष्णराजि, रामा, रामरक्षिता, वसु, वसुगुप्ता, वसुमित्रा और वसुन्धरा। इन देवियोंके परिवार आदिका वर्णन शक्रेन्द्रके समान जानना चाहिये।

भगवन् ! देवेन्द्र देवराज ईशानके सोम नामक लोकपाल के कितनी अग्रमहिषियां कही गई हैं ? आर्यो ! चार अग्रमहिषियां कही हैं। यथा—पृथ्वी, रात्रि, रजनी और विद्युत्। शेष वर्णन शक्रके लोकपालोंके समान है। इसी प्रकार यावत् वरुण तक जानना चाहिये। परन्तु विमानोंका वर्णन चौथे शतकके पहले दूसरे तीसरे और चौथे उद्देशकके उल्लेखानुसार जानना चाहिये। शेष पूर्ववत्, यावत् वह मैथुन-निमित्तक भोग भोगनेमें समर्थ नहीं है। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है।...ऐसा कहकर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ॥४०५॥

॥ दसवें शतक का पांचवां उद्देशक समाप्त ॥

शतक १० उद्देशक ६

हे भगवन् ! देवेन्द्र देवराज शक्र की सुधर्मा सभा कहां है ? हे गौतम ! इस जम्बूद्वीप के मेरुपर्वत से दक्षिण दिशा में, इस रत्नप्रभा पृथ्वी के बहुसम रमणीय भूमि-भाग से बहुत कोटाकोटि योजन दूर ऊंचाई में, सौधर्म नामक देवलोक में सुधर्मा सभा है। इत्यादि 'राजप्रश्नीय' सूत्र के अनुसार यावत् पांच अवतंसक विमान कहे गए हैं। यथा—अशोकावतंसक, यावत् मध्यमें सौधर्मावतंसक विमान है। उसकी लम्बाई और चौड़ाई साढ़े बारह लाख योजन है। शक्र का उपपात, अभिषेक, अलङ्कार यावत् आत्मरक्षक इत्यादि सारा वर्णन सूर्याभ देवके समान जानना चाहिये, किन्तु प्रमाण जो शक्रेन्द्र का है वही कहना चाहिये। शक्रेन्द्र की स्थिति दो सागरोपम की है।

भगवन् ! देवेन्द्र देवराज शक्र कितना महाऋद्धिशाली और कितना महासुखी है ? गौतम ! वह महाऋद्धिशाली यावत् महासुखी है। वह बत्तीस लाख विमानों का स्वामी है, यावत् विचरता है। देवेन्द्र देवराज शक्र इस प्रकार की महाऋद्धि

विषयमें भी जानना चाहिये। इन सभी इन्द्रों का शेष सब वर्णन कालेन्द्रके समान जानना चाहिये। राजधानियों और सिंहासनोंका नाम इन्द्रोंके नामके समान तथा शेष वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिये।

भगवन्! ज्योतिषीन्द्र ज्योतिषीराज चन्द्रके कितनी अग्रमहिषियां कही गई हैं? आर्यो! चार अग्रमहिषियां कही गई हैं। यथा-चन्द्रप्रभा, ज्योत्स्नाभा, अर्चिमाली और प्रभंकरा, इत्यादि जीवाभिगम सूत्र की तीसरी प्रतिपत्ति के 'ज्योतिषी' नामक दूसरे उद्देशकमें कहे अनुसार जानना चाहिये। इसी प्रकार सूर्यके विषयमें भी जानना चाहिये। सूर्यके चार अग्रमहिषियोंके नाम ये हैं—सूर्यप्रभा, आतपाभा, अर्चिमाली और प्रभंकरा, इत्यादि पूर्वोक्त सब कहना चाहिये, यावत् वे अपनी राजधानीमें सिंहासन पर मैथुननिमित्तक भोग भोगनेमें समर्थ नहीं हैं।

भगवन्! अंगारक नामक महाग्रहके कितनी अग्रमहिषियां कही गई हैं? आर्यो! चार अग्रमहिषियां कही गई हैं। यथा—विजया, वैजयन्ती, जयन्ती और अपराजिता। इनकी प्रत्येक देवीके परिवारका वर्णन चन्द्रमाके समान जानना चाहिये, परन्तु इतनी विशेषता है कि इसके विमानका नाम अंगारावतंसक और सिंहासनका नाम अंगारक है। इसी प्रकार व्याल नामक ग्रहके विषयमें भी जानना चाहिये। इसी प्रकार ८८ महाग्रहोंके विषय में यावत् भावकेतु ग्रह तक जानना चाहिये। परन्तु अवतंसक और सिंहासनका नाम इन्द्रके नामके समान है, शेष वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिये।

भगवन्! देवेन्द्र देवराज शक्रके कितनी अग्रमहिषियां कही गई हैं? आर्यो! आठ अग्रमहिषियां कही गई हैं। यथा—पद्मा, शिवा, श्रेया, अञ्जू, अमला, अप्सरा, नवमिका और रोहिणी। इनमें से प्रत्येक देवीका सोलह हजार देवियोंका परिवार है। इनमें से प्रत्येक देवी दूसरी सोलह हजार देवियोंके परिवारकी विकुर्वणा कर सकती है। इसी प्रकार पूर्वापर मिलाकर एक लाख अट्ठाइस हजार देवियों के परिवार की विकुर्वणा कर सकती हैं। यह एक त्रुटिक कहा गया है।

भगवन्! देवेन्द्र देवराज शक्र सौधर्म देवलोकके सौधर्मावतंसक विमानमें, सुधर्मा सभा में, शक्र नामक सिंहासन पर बैठकर उस त्रुटिकके साथ भोग भोगनेमें समर्थ है? आर्यो! इसका सभी वर्णन चमरेन्द्रके समान जानना चाहिये, परन्तु इसके परिवारका वर्णन तीसरे शतकके प्रथम उद्देशकमें कहे अनुसार जानना चाहिये।

भगवन्! देवेन्द्र देवराज शक्रके लोकपाल सोम महाराजा के कितनी अग्रमहिषियां कहीं गई हैं? आर्यो! चार अग्रमहिषियां कही गई हैं। यथा—रोहिणी, मदना, चित्रा और सोमा। इनमें से प्रत्येक देवीके परिवारका वर्णन चमरेन्द्रके लोकपालोंके समान जानना चाहिये, परन्तु इतनी विशेषता है कि स्वयंप्रभ नामक

विमानमें सुधर्मा सभामें सोम नामक सिंहासन पर बैठकर यावत् भोग भोगनेमें समर्थ नहीं, इत्यादि पूर्ववत् जानना चाहिये। इसी प्रकार यावत् वैश्रमण तक जानना चाहिये, परन्तु उसके विमान आदि का वर्णन तृतीय शतकके सातवें उद्देशकमें कहे अनुसार जानना चाहिये।

भगवन्! देवेन्द्र देवराज ईशानके कितनी अग्रमहिषियां कही गई हैं? आर्यो! आठ अग्रमहिषियां कही गई हैं। तथा—कृष्णा, कृष्णराजि, रामा, रामरक्षिता, वसु, वसुगुप्ता, वसुमित्रा और वसुन्धरा। इन देवियोंके परिवार आदिका वर्णन शक्रेन्द्रके समान जानना चाहिये।

भगवन्! देवेन्द्र देवराज ईशानके सोम नामक लोकपाल के कितनी अग्रमहिषियां कही गई हैं? आर्यो! चार अग्रमहिषियां कही हैं। यथा—पृथ्वी, रात्रि, रजनी और विद्युत्। शेष वर्णन शक्रके लोकपालोंके समान है। इसी प्रकार यावत् वरुण तक जानना चाहिये। परन्तु विमानोंका वर्णन चौथे शतकके पहले दूसरे तीसरे और चौथे उद्देशकके उल्लेखानुसार जानना चाहिये। शेष पूर्ववत्, यावत् वह मैथुन-निमित्तक भोग भोगनेमें समर्थ नहीं है। हे भगवन्! यह इसी प्रकार है।...ऐसा कहकर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ॥४०५॥

॥ दसवें शतक का पांचवां उद्देशक समाप्त ॥

शतक १० उद्देशक ६

हे भगवन्! देवेन्द्र देवराज शक्र की सुधर्मा सभा कहां है? हे गौतम! इस जम्बूद्वीप के मेरुपर्वत से दक्षिण दिशा में, इस रत्नप्रभा पृथ्वी के बहुसम रमणीय भूमि-भाग से बहुत कोटाकोटि योजन दूर ऊंचाई में, सौधर्म नामक देवलोक में सुधर्मा सभा है। इत्यादि 'राजप्रश्नीय' सूत्र के अनुसार यावत् पांच अवतंसक विमान कहे गए हैं। यथा—अशोकावतंसक, यावत् मध्यमें सौधर्मावतंसक विमान है। उसकी लम्बाई और चौड़ाई साढ़े बारह लाख योजन है। शक्र का उपपात, अभिषेक, अलङ्कार यावत् आत्मरक्षक इत्यादि सारा वर्णन सूर्याभ देवके समान जानना चाहिये, किन्तु प्रमाण जो शक्रेन्द्र का है वही कहना चाहिये। शक्रेन्द्र की स्थिति दो सागरोपम की है।

भगवन्! देवेन्द्र देवराज शक्र कितना महाऋद्धिशाली और कितना महासुखी है? गौतम! वह महाऋद्धिशाली यावत् महासुखी है। वह बत्तीस लाख विमानों का स्वामी है, यावत् विचरता है। देवेन्द्र देवराज शक्र इस प्रकार की महाऋद्धि

और महासुख वाला है। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है...। ऐसा कह कर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ॥४०६॥

॥ दसवें शतक का छठा उद्देशक समाप्त ॥

शतक १० उद्देशक ७-३४—एकोरुक आदि अन्तरद्वीप

भगवन् ! उत्तर दिशामें रहने वाले एकोरुक मनुष्यों का एकोरुक नामक द्वीप कहां है ? गौतम ! एकोरुक द्वीप से लगाकर यावत् शुद्धदन्त द्वीप तक समस्त अधिकार जीवाभिगम सूत्रमें कहे अनुसार कहना चाहिये। प्रत्येक द्वीपके विषयमें एक-एक उद्देशक है। इस प्रकार अट्ठाइस द्वीपोंके अट्ठाइस उद्देशक होते हैं। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है...। ऐसा कहकर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं॥४०७॥

॥ दसवें शतक के ७ से ३४ उद्देशक समाप्त ॥

॥ दसवां शतक समाप्त ॥

शतक ११

ग्यारहवें शतकमें बारह उद्देशक हैं। यथा—१ उत्पल, २ शालूक, ३ पलाश, ४ कुम्भी, ५ नाडीक, ६ पद्म, ७ कर्णिका, ८ नलिन, ९ शिवराजर्षि, १० लोक, ११ काल और १२ आलभिक।

—०—

उद्देशक १—उत्पल के जीव

उस काल उस समय में राजगृह नगर में पर्युपासना करते हुए गौतम स्वामी यावत् इस प्रकार बोले—भगवन् ! एक पत्ते वाला उत्पल (कमल) एक जीव वाला है, या अनेक जीवों वाला ? गौतम ! एक पत्र वाला उत्पल एक जीव वाला है, अनेक जीवों वाला नहीं। जब उस उत्पल में दूसरे जीव (जीवाश्रित पत्ते आदि अवयव) उत्पन्न होते हैं, तब वह एक जीव वाला नहीं रह कर अनेक जीव वाला होता है।

भगवन् ! उत्पलमें वे जीव कहांसे आकर उत्पन्न होते हैं ? नैरयिकसे, तिर्यञ्चसे, मनुष्यसे या देवसे आकर उत्पन्न होते हैं ? गौतम ! वे जीव नरकसे आकर उत्पन्न नहीं होते, वे तिर्यञ्च से, मनुष्यसे या देवसे आकर उत्पन्न होते हैं। यहां प्रज्ञापना सूत्रके छठे व्युत्क्रान्तिपद के 'वनस्पतिकायिक जीवोंमें यावत् ईशान देवलोक तकके जीवोंका उपपात होता है'—तक कहना चाहिये। भगवन् ! उत्पल

में वे जीव एक समयमें कितने उत्पन्न होते हैं ? गौतम ! वे जीव एक समयमें जघन्य एक दो या तीन और उत्कृष्ट संख्यात या असंख्यात उत्पन्न होते हैं। भगवन् ! उन उत्पलके जीवोंको प्रतिसमय निकाला जाय तो कितने काल में वे पूरे निकाले जा सकते हैं ? गौतम ! उत्पलके उन असंख्यात जीवोंमें से प्रतिसमय एक-एक जीव निकाला जाय, तो असंख्यात उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल बीत जाय तो भी वे सम्पूर्ण रूपसे नहीं निकाले जा सकते। इस प्रकार किसी ने किया नहीं और कर भी नहीं सकता। भगवन् ! उन उत्पल के जीवोंके शरीर की अवगाहना कितनी बड़ी होती है ? गौतम ! जघन्य अंगुलके असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट कुछ अधिक एक हजार योजन होती है।

भगवन् ! वे उत्पलके जीव ज्ञानावरणीय कर्मके बंधक हैं या अबन्धक ? गौतम ! वे ज्ञानावरणीय कर्मके अबन्धक नहीं, बंधक हैं। एक जीव हो, तो एक बंधक है और अनेक जीव हों, तो अनेक बंधक हैं। इस प्रकार आयुष्यको छोड़ कर अन्तराय कर्म तक समझना चाहिये। भगवन् ! वे जीव आयुष्यकर्मके बन्धक हैं या अबन्धक ? गौतम ! १ उत्पलका एक जीव बंधक है, २ एक जीव अबंधक है, ३ अनेक जीव बंधक है, ४ अनेक जीव अबन्धक हैं। ५ अथवा एक जीव बन्धक और एक जीव अबन्धक हैं, ६ अथवा एक बन्धक और अनेक अबन्धक हैं, ७ अथवा अनेक बन्धक और एक अबन्धक है, ८ अथवा अनेक बन्धक और अनेक अबन्धक हैं,—इस प्रकार ये आठ भंग होते हैं। भगवन् ! वे उत्पलके जीव ज्ञानावरणीय कर्मके वेदक हैं, या अवेदक हैं ? गौतम ! वे अवेदक नहीं, वेदक हैं। एक जीव हो तो एक जीव वेदक है और अनेक जीव हों तो अनेक जीव वेदक हैं। इसी प्रकार यावत् अन्तराय कर्म तक जानना चाहिये। भगवन् ! वे उत्पलके जीव साता-वेदक हैं या असाता-वेदक हैं ? गौतम ! एक जीव साता-वेदक है या एक जीव असाता-वेदक है। इत्यादि पूर्वोक्त आठ भंग जानने चाहियें।

भगवन् ! वे उत्पल के जीव ज्ञानावरणीय-कर्म के उदय वाले हैं या अनुदय वाले ? गौतम ! वे जीव ज्ञानावरणीय-कर्म के अनुदय वाले नहीं, परन्तु एक-एक जीव हो तो एक और अनेक जीव हों तो अनेक (—सभी जीव) उदय वाले हैं। इसी प्रकार यावत् अन्तराय-कर्म तक जानना चाहिये। भगवन् ! वे उत्पल के जीव ज्ञानावरणीय-कर्मके उदीरक हैं या अनुदीरक ? गौतम ! वे अनुदीरक नहीं, परन्तु एक जीव हो तो एक और अनेक जीव हों तो अनेक जीव उदीरक हैं। इसी प्रकार यावत् अन्तराय-कर्म तक जानना चाहिये। परन्तु इतनी विशेषता है कि वेदनीय-कर्म और आयुष्य-कर्ममें पूर्वोक्त आठ भंग कहने चाहियें।

भगवन् ! वे उत्पलके जीव कृष्ण-लेश्या वाले, नील-लेश्या वाले, कापोत-लेश्या वाले या तेजो-लेश्या वाले होते हैं ? गौतम ! एक जीव कृष्ण-लेश्या वाला

यावत् एक जीव तेजो-लेश्या वाला होता है। अथवा अनेक जीव कृष्ण-लेश्या वाले या अनेक जीव नील-लेश्या वाले, या अनेक जीव कापोत-लेश्या वाले, अनेक जीव तेजो-लेश्या वाले होते हैं। अथवा एक जीव कृष्णलेश्या वाला और एक जीव नीललेश्या वाला होता है। इस प्रकार द्विक संयोगी, त्रिकसंयोगी और चतुःसंयोगी सब मिलकर अस्सी भंग होते हैं। भगवन्! वे उत्पल के जीव सम्यग्दृष्टि हैं, मिथ्यादृष्टि हैं अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टि हैं? गौतम वे सम्यग्दृष्टि नहीं, सम्यग्मिथ्यादृष्टि भी नहीं, वे एक हों या अनेक, सभी जीव मिथ्यादृष्टि ही हैं। भगवन्! वे उत्पल के जीव ज्ञानी हैं, अथवा अज्ञानी? गौतम! वे ज्ञानी नहीं, परन्तु एक हों या अनेक, सभी जीव अज्ञानी हैं। भगवन्! वे उत्पल के जीव मनयोगी, वचन-योगी और काययोगी हैं? गौतम! वे मन योगी नहीं, वचन योगी भी नहीं, वे एक हों या अनेक-सभी जीव काययोगी हैं।

भगवन्! वे उत्पलके जीव साकारोपयोग (ज्ञानोपयोग) वाले हैं या अनाकारोपयोग (दर्शनोपयोग) वाले हैं? गौतम! एक जीव साकारोपयोग वाला है अथवा एक जीव अनाकारोपयोग वाला है। इत्यादि पूर्वोक्त आठ भंग कहने चाहियें। भगवन्! उन उत्पलके जीवोंका शरीर कितने वर्ण, कितने गन्ध, कितने रस और कितने स्पर्श वाला है? गौतम! पांच वर्ण, पांच रस, दो गन्ध और आठ स्पर्श वाला है। जीव स्वयं वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श रहित है। भगवन्! वे उत्पलके जीव उच्छ्वासक हैं, निःश्वासक हैं, या अनुच्छ्वासकनिश्वासक हैं? गौतम! १ कोई एक जीव उच्छ्वासक है, या २ कोई एक जीव निश्वासक है, ३ या कोई एक जीव अनुच्छ्वासकनिश्वासक है, ४ या अनेक जीव उच्छ्वासक हैं, ५ या अनेक जीव निःश्वासक हैं, ६ या अनेक जीव अनुच्छ्वासकनिश्वासक हैं, (७-१०) अथवा एक उच्छ्वासक और एक निश्वासक है, इत्यादि। (११–१४) अथवा एक उच्छ्वासक और एक अनुच्छ्वासक है, इत्यादि। (१५–१८) अथवा एक निःश्वासक और एक अनुच्छ्वासकनिश्वासक है, इत्यादि। (१९–२६) अथवा एक उच्छ्वासक, एक निश्वासक और एक अनुच्छ्वासकनिश्वासक है, इत्यादि आठ भंग होते हैं। ये सब मिलकर छब्बीस भंग हो जाते हैं। भगवन्! वे उत्पलके जीव आहारक हैं या अनाहारक? गौतम! वे सब अनाहारक नहीं, किन्तु कोई एक जीव आहारक है अथवा कोई एक जीव अनाहारक है, इत्यादि आठ भंग कहने चाहियें।

भगवन्! वे उत्पलके जीव सर्वविरत हैं, अविरत हैं, या विरताविरत हैं? गौतम! वे सर्वविरत नहीं और विरताविरत भी नहीं, किन्तु एक जीव अथवा अनेक जीव अविरत ही हैं। भगवन्! वे उत्पल के जीव सक्रिय हैं, या अक्रिय? गौतम! वे एक हों या अनेक, अक्रिय नहीं, सक्रिय हैं। भगवन्! वे उत्पल के जीव

सप्तविध बन्धक हैं, या अष्टविध बन्धक ? गौतम ! वे जीव सप्तविध बन्धक हैं अथवा अष्टविध बन्धक हैं। यहां पूर्वोक्त आठ भंग कहने चाहियें।

भगवन् ! वे उत्पल के जीव आहार संज्ञा के उपयोग वाले, भयसंज्ञाके उपयोग वाले, मैथुन संज्ञाके उपयोग वाले और परिग्रह संज्ञा के उपयोग वाले हैं ? गौतम ! वे आहार संज्ञाके उपयोग वाले हैं, इत्यादि लेश्याद्वार के समान अस्सी भंग कहने चाहियें। भगवन् ! वे उत्पलके जीव क्रोध-कषायी, मानकषायी, माया-कषायी और लोभ-कषायी हैं ? गौतम ! यहां भी पूर्वोक्त अस्सी भंग कहने चाहियें। भगवन् ! वे उत्पलके जीव स्त्रीवेद वाले, पुरुषवेद वाले और नपुंसकवेद वाले हैं ? गौतम ! वे स्त्रीवेद वाले नहीं, पुरुषवेद वाले भी नहीं, परन्तु एक जीव हो या अनेक, सभी नपुंसकवेद वाले हैं। भगवन् ! वे उत्पलके जीव स्त्री-वेदके बन्धक, पुरुषवेद-बन्धक और नपुंसक-वेदके बन्धक हैं ? गौतम ! वे स्त्री-वेद बन्धक, पुरुषवेद-बन्धक और नपुंसकवेद-बन्धक हैं। यहां उच्छ्वास द्वारके अनुसार छब्बीस भंग कहने चाहियें। भगवन् ! वे उत्पलके जीव संज्ञी हैं या असंज्ञी ? गौतम ! वे संज्ञी नहीं, किन्तु एक हों या अनेक जीव, वे असंज्ञी ही हैं। भगवन् ! वे उत्पलके जीव सेन्द्रिय हैं या अनिन्द्रिय ? गौतम ! वे अनिन्द्रिय नहीं, किन्तु एक जीव सेन्द्रिय है अथवा अनेक जीव सेन्द्रिय हैं।

भगवन् ! वह उत्पल का जीव उत्पलपने कितने काल तक रहता है ? गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट असंख्य काल तक रहता है। भगवन् ! वह उत्पलका जीव पृथ्वीकायमें जावे और पुनः उत्पलमें आवे, इस प्रकार कितने काल तक गमनागमन करता है ? गौतम ! भवादेश (भवकी अपेक्षा) से जघन्य दो भव और उत्कृष्ट असंख्यात भव तक गमनागमन करता है। कालादेश से जघन्य दो अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट असंख्यात काल तक गमनागमन करता है।

भगवन् ! वह उत्पलका जीव अप्कायपने उत्पन्न होकर पुनः उत्पलमें आवे, तो इस प्रकार कितने काल तक गमनागमन करता है ? गौतम ! जिस प्रकार पृथ्वीकायके विषयमें कहा है, उसी प्रकार अप्कायके विषयमें यावत् वायुकाय तक कहना चाहिये। भगवन् ! वह उत्पलका जीव वनस्पतिमें आवे और पुनः उसीमें उत्पन्न हो, इस प्रकार कितने काल तक गमनागमन करता है ? गौतम ! भवादेश से जघन्य दो भव और उत्कृष्ट अनन्त भव तक गमनागमन करता है, कालादेशसे जघन्य दो अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्त काल (वनस्पतिकाल) तक गमनागमन करता है।

भगवन् ! वह उत्पलका जीव बेइन्द्रियमें जाकर पुनः उत्पल में ही आवे, तो इस प्रकार कितने काल तक गमनागमन करता है ? गौतम ! भवादेशसे जघन्य दो

भव, उत्कृष्ट संख्यात भव और कालादेशसे जघन्य दो अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट संख्यात काल तक गमनागमन करता है। इसी प्रकार तेइंद्रिय और चौइंद्रियके विषयमें भी जानना चाहिये।

भगवन् ! वह उत्पलका जीव पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमें जाकर पुनः उत्पलपने उत्पन्न हो, तो इस प्रकार कितने काल तक गमनागमन करता है ? गौतम ! भवादेशसे जघन्य दो भव, उत्कृष्ट आठ भव और कालादेशसे जघन्य दो अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट पूर्वकोटिपृथक्त्वकाल तक गमनागमन करता है। इसी प्रकार मनुष्य योनि का भी जानना चाहिये।

भगवन् ! वे उत्पलके जीव किस पदार्थका आहार करते हैं ? गौतम ! वे जीव द्रव्यसे अनन्त प्रदेशी द्रव्योंका आहार करते हैं, इत्यादि प्रज्ञापना सूत्रके अट्ठाइसवें पदके पहले आहारक उद्देशकमें वर्णित वर्णनके अनुसार वनस्पतिकायिकोंका आहार यावत् 'वे सर्वात्मना (सर्व प्रदेशोंसे) आहार करते हैं'—तक कहना चाहिए, किन्तु वे नियमा छह दिशाका आहार करते हैं। शेष सभी वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिये।

भगवन् ! उन उत्पलके जीवोंकी स्थिति कितने काल की है ? गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट दस हजार वर्षकी है। भगवन् ! उत्पलके जीवोंमें कितने समुद्घात कहे गये हैं ? गौतम ! उनमें तीन समुद्घात कहे गये हैं, यथा—वेदना समुद्घात, कषाय समुद्घात और मारणान्तिक समुद्घात। भगवन् ! वे उत्पलके जीव मारणान्तिक समुद्घात द्वारा समवहत होकर मरते हैं या असमवहत होकर ? गौतम ! वे समवहत होकर भी मरते हैं और असमवहत होकर भी।

भगवन् ! वे उत्पलके जीव मरकर तुरन्त कहां जाते हैं और कहां उत्पन्न होते हैं ? क्या नैरयिकों में उत्पन्न होते हैं, तिर्यचयोनिकोंमें, मनुष्योंमें या देवोंमें उत्पन्न होते हैं ? गौतम ! प्रज्ञापना सूत्रके छठे व्युत्क्रान्ति पदके उद्वर्तना प्रकरण में वनस्पतिकायिक जीवोंके वर्णित वर्णनके अनुसार यहां भी कहना चाहिये।

भगवन् ! सभी प्राण, सभी भूत, सभी जीव और सभी सत्त्व, उत्पलके मूलपने, कन्दपने, नालपने, पत्रपने, केसरपने, कर्णिकापने और थिभुगपने (पत्रके उत्पत्ति स्थान) पहले उत्पन्न हुए ? हां, गौतम ! सभी प्राण, भूत, जीव और सत्त्व अनेक बार अथवा अनन्त बार पूर्वोक्त रूपसे उत्पन्न हुए। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है।······ऐसा कहकर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं।।४०८।।

।। ग्यारहवें शतकका प्रथम उद्देशक समाप्त ।।

———

शतक ११ उद्देशक २—शालूक के जीव

भगवन् ! एक पत्ते वाला शालूक (उत्पल कन्द) एक जीव वाला है या अनेक जीव वाला ? गौतम ! वह एक जीव वाला है। इस प्रकार उत्पलोद्देशक की सभी वक्तव्यता यावत् 'अनन्त वार उत्पन्न हुए हैं'—तक कहनी चाहिये, परन्तु इतनी विशेषता है कि शालूकके शरीरकी अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट धनुषपृथक्त्व है। शेष पूर्ववत् जानना चाहिये। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है।······ऐसा कहकर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ॥४०९॥

॥ ग्यारहवें शतकका द्वितीय उद्देशक समाप्त ॥

शतक ११ उद्देशक ३—पलास के जीव

भगवन् ! पलास वृक्ष प्रारम्भमें जब एक पत्ते वाला होता है, तब वह एक जीव वाला होता है या अनेक जीव वाला ? गौतम ! उत्पल उद्देशककी सारी वक्तव्यता कहनी चाहिये, परन्तु इतनी विशेषता है कि पलास के शरीरकी अवगाहना जघन्य अंगुलके असंख्यातवें भाग उत्कृष्ट गाऊ पृथक्त्व है। देव चवकर पलास वृक्षमें उत्पन्न नहीं होते। भगवन् ! पलास वृक्षके जीव कृष्णलेश्या वाले, नीललेश्या वाले और कापोतलेश्या वाले होते हैं ? गौतम ! वे कृष्णलेश्या वाले, नीललेश्या वाले या कापोतलेश्या वाले होते हैं। इस प्रकार यहां उच्छ्वासक द्वारके समान छव्वीस भंग कहने चाहियें। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है।···ऐसा कहकर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ॥४१०॥

॥ ग्यारहवें शतकका तृतीय उद्देशक समाप्त ॥

शतक ११ उद्देशक ४—कुम्भिक के जीव

भगवन् ! एक पत्ते वाला कुम्भिक (वनस्पति विशेष) एक जीव वाला होता है या अनेक जीव वाला ? गौतम ! जिस प्रकार पलासके विषयमें तीसरे उद्देशकमें कहा है, उसी प्रकार यहां भी कहना चाहिये, इसमें इतनी विशेषता है कि कुम्भिक की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वर्ष पृथक्त्व (दो वर्षसे नौ वर्ष तक) है। शेष सभी पूर्ववत् जानना चाहिये। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है।······ऐसा कहकर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ॥४११॥

॥ ग्यारहवें शतकका चतुर्थ उद्देशक समाप्त ॥

शतक ११ उद्देशक ५—नालिक के जीव

भगवन् ! एक पत्ते वाला नालिक (नाडिक) एक जीव वाला है या अनेक जीव वाला ? गौतम ! जिस प्रकार चौथे कुम्भिक उद्देशक में कहा है, उसी प्रकार यहां भी सभी वक्तव्यता कहनी चाहिये । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।···ऐसा कहकर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ।।४१२।।

।। ग्यारहवें शतकका पंचम उद्देशक समाप्त ।।

शतक ११ उद्देशक ६—पद्म के जीव

भगवन् ! एक पत्ते वाला पद्म एक जीव वाला होता है या अनेक जीव वाला ? गौतम ! उत्पल उद्देशकानुसार सभी वर्णन करना चाहिये । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है । ······ऐसा कहकर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ।।४१३।।

।। ग्यारहवें शतक का छठा उद्देशक समाप्त ।।

शतक ११ उद्देशक ७—कर्णिका के जीव

भगवन् ! एक पत्ते वाली कर्णिका (वनस्पति विशेष) एक जीव वाली है या अनेक जीव वाली ? गौतम ! उत्पल उद्देशकके समान सभी वर्णन करना चाहिए । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।······ऐसा कहकर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ।।४१४।।

।। ग्यारहवें शतकका सप्तम उद्देशक समाप्त ।।

शतक ११ उद्देशक ८—नलिन के जीव

भगवन् ! एक पत्ते वाला नलिन (कमल विशेष) एक जीव वाला होता है या अनेक जीव वाला ? गौतम ! उत्पल उद्देशकके अनुसार सभी वर्णन करना चाहिये, यावत् 'सभी जीव अनन्त वार उत्पन्न हो चुके हैं'—तक कहना चाहिये । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है । ······ऐसा कहकर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ।।४१५।।

।। ग्यारहवें शतकका अष्टम उद्देशक समाप्त ।।

शतक ११ उद्देशक ९—राजर्षि शिव का वृत्तान्त

उस काल उस समयमें हस्तिनापुर नामक नगर था, वर्णन। उस हस्तिनापुर नगर के वाहर उत्तरपूर्व दिशा (ईशानकोण) में सहस्राम्रवन नामक उद्यान था। वह उद्यान सभी ऋतुओंके पुष्प और फलोंसे समृद्ध था। वह नन्दन वनके समान सुरम्य था। उसकी छाया सुखकारक और शीतल थी। वह मनोहर, स्वादिष्ट फल युक्त, कण्टक रहित और प्रसन्नता उत्पन्न करने वाला यावत् प्रतिरूप (सुन्दर) था। उस हस्तिनापुर नगर में 'शिव' नाम का राजा था। वह हिमवान् पर्वतके समान श्रेष्ठ राजा था, इत्यादि राजाका सब वर्णन कहना। उस शिव राजाके 'धारिणी' नामकी पटरानी थी। उसके हाथ, पैर अति सुकुमाल थे, इत्यादि स्त्री का वर्णन कहना। उस शिव राजाका पुत्र धारिणी रानी का अंगजात शिवभद्र नाम का कुमार था। उसके हाथ पैर अतिसुकुमाल थे। कुमार का वर्णन राजप्रश्नीय सूत्र में कथित सूर्यकान्त राजकुमारके समान कहना चाहिये। यावत् वह कुमार राज्य, राष्ट्र और सैन्यादिक का अवलोकन करता हुआ विचरता था।

किसी समय राजा शिव को रात्रिके पिछले प्रहरमें राज्य कार्यभार का विचार करते हुए ऐसा अध्यवसाय उत्पन्न हुआ कि यह मेरे पूर्वके पुण्य-कर्मों का प्रभाव है, इत्यादि तीसरे शतकके प्रथम उद्देशकमें कथित तामलि-तापसके अनुसार विचार हुआ, यावत् मैं पुत्र, पशु, राज्य, राष्ट्र, वल, वाहन, कोष, कोष्ठागार, पुर और अन्त:पुर इत्यादि द्वारा वृद्धिको प्राप्त हो रहा हूं। पुष्कल धन, कनक, रत्न यावत् सारभूत द्रव्य द्वारा अतिशय वृद्धि को प्राप्त हो रहा हूं और मैं पूर्व-पुण्योंके फल स्वरूप एकान्त सुख भोग रहा हूं, तो मेरे लिये यह श्रेष्ठ है कि जब तक मैं हिरण्यादि से वृद्धि को प्राप्त हो रहा हूं यावत् जब तक सामन्त राजा आदि मेरे आधीन हैं, तव तक कल प्रात:काल देदीप्यमान सूर्य के उदय होने पर वहुत-सी लोढ़ी, लोहे की कड़ाही, कड़छी और ताम्बेके दूसरे तापसोचित उपकरण वनवाऊं और शिवभद्र कुमारको राज्य पर स्थापित करके और पूर्वोक्त तापसके उपकरण लेकर, उन तापसोंके पास जाऊं—जो गंगा नदीके किनारे वानप्रस्थ तापस हैं, यथा—अग्निहोत्री, पोतिक-वस्त्र धारण करने वाले, कौत्रिक, ज्ञायिक, श्रद्धालु, खप्परधारी, कुंडिका धारण करने वाले, फल-भोजी, उम्मज्जक, समज्जक, निमज्जक, सम्प्रक्षालक, ऊर्ध्वकंडुक, अधोकंडुक, दक्षिण-कूलक, उत्तर-कूलक, शंखधमक, कूलधमक, मृगलुब्धक, हस्ती-तापस, जलाभिषेक किये विना भोजन नहीं करने वाले, विलवासी, वायुमें रहने वाले, वल्कलधारी, पानी हारक, पत्राहारक, छाल खाने वाले, पुष्पाहारक, फलाहारी, वीजाहारी, [illegible] कर टूटे या गिरे हुए कन्द, मूल, छाल, पत्र, पुष्प और फल खाने वाले, [illegible]

कर चलने वाले, वृक्ष के मूलों में रहने वाले, मांडलिक, वनवासी, विलवासी, दिशाप्रोक्षी, आतापना से पंचाग्नि तापने वाले और अपने शरीरको अंगारोंसे तपा कर लकड़ी-सा करने वाले इत्यादि औपपातिक सूत्र में कहे अनुसार यावत् जो अपने शरीरको काष्ठ तुल्य बना देते हैं, उनमें से जो तापस 'दिशाप्रोक्षक' (जल द्वारा दिशा का पूजन करने के पश्चात् फल-पुष्पादि ग्रहण करने वाले) हैं, उनके पास मुण्डित होकर दिक्प्रोक्षक तापस रूप प्रव्रज्या अंगीकार करूं। प्रव्रज्या अंगीकार करके इस प्रकारका अभिग्रह करूं कि'यावज्जीवन निरन्तर वेले-वेलेकी तपस्या द्वारा दिक्चक्रवाल तप-कर्मसे दोनों हाथ ऊंचे रखकर रहना मुझे कल्पता है।' इस प्रकार शिवराजा को विचार हुआ।

इस प्रकार विचार करके दूसरे दिन प्रातःकाल सूर्योदय होने पर अनेक प्रकार की लोढ़ियां, लोह कड़ाह आदि तापसके उपकरण तैयार करवा कर, अपने कौटुम्बिक पुरुषोंको बुलाया और इस प्रकार कहा-'हे देवानुप्रियो ! हस्तिनापुर नगरके बाहर और भीतर जलका छिड़काव करके शीघ्र स्वच्छ कराओ,' इत्यादि यावत् उन्होंने राजाकी आज्ञानुसार कार्य करवा कर राजाको निवेदन किया। इसके अनन्तर शिव राजा ने उनसे कहा कि—'देवानुप्रियो ! शिवभद्र कुमारके राज्याभिषेक की शीघ्र तैयारी करो।' कौटुम्बिक पुरुषों द्वारा राज्याभिषेक की तैयारी हो जाने पर शिवराजाने अनेक गण-नायक, दण्ड-नायक यावत् सन्धि-पालक आदिके परिवार से युक्त होकर शिवभद्र कुमार को उत्तम सिंहासन पर पूर्व दिशाकी ओर मुंह करके बिठाया। फिर एक सौ आठ सोनेके कलशों द्वारा यावत् एक सौ आठ मिट्टीके कलशों द्वारा सर्वऋद्धि से यावत् वादिन्त्रादिक के शब्दों द्वारा राज्याभिषेक से अभिषिक्त किया। तत्पश्चात् अत्यन्त सुकुमाल और सुगन्धित गन्धवस्त्र द्वारा उसके शरीरको पोंछा। गोशीर्ष चन्दनका लेप किया, यावत् जमाली-वर्णनके अनुसार कल्पवृक्षके समान उसको अलंकृत एवं विभूषित किया। इसके अनन्तर हाथ जोड़ कर शिवभद्र कुमार को जय विजय शब्दों से बधाया और औपपातिक सूत्र में वर्णित कोणिक राजाके प्रकरणानुसार इष्ट, कान्त एवं प्रिय शब्दों द्वारा आशीर्वाद दिया, यावत् कहा कि तुम दीर्घायु हो और इष्टजनों से युक्त होकर हस्तिनापुर नगर और दूसरे बहुत-से ग्रामादि का तथा परिवार, राज्य और राष्ट्र आदिका स्वामीपन भोगते हुए विचरो, इत्यादि कहकर जय जय शब्द उच्चारण किये। शिवभद्रकुमार राजा बना। वह महाहिमवान् पर्वत की तरह राजाओंमें मुख्य होकर विचरने लगा। यहां शिवभद्र राजा का वर्णन कहना चाहिए।

इसके पश्चात् किसी समय शिव राजा ने प्रशस्त तिथि, करण, दिवस और नक्षत्रके योग में विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम तैयार करवाया और मित्र, ज्ञाति, स्वजन, परिजन, राजा, क्षत्रिय आदिको आमंत्रित किया। स्वयं

स्नानादि करके भोजनके समय भोजन मण्डपमें उत्तम सुखासन पर बैठा और उन मित्र, ज्ञाति, स्वजन, परिजन, राजा, क्षत्रिय आदिके साथ विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम का भोजन करके तामली तापसके समान उनका सत्कार सम्मान किया। तत्पश्चात् उन सभी की तथा शिवभद्र राजा की आज्ञा लेकर तापसोचित उपकरण ग्रहण किये और गंगा नदीके किनारे दिशाप्रोक्षक तापसोंके पास दिशाप्रोक्षक तापसी प्रव्रज्या ग्रहण की और इस प्रकार का अभिग्रह धारण किया कि 'मुझे बेले-बेले तपस्या करते हुए विचरना कल्पता है, इत्यादि पूर्ववत् अभिग्रह धारण कर, प्रथम छठ तप अंगीकार कर विचरने लगा।

इसके बाद प्रथम बेले की तपस्या के पारणेके दिन वे शिव राजर्षि आतापना भूमि से नीचे उतरे, वल्कलके वस्त्र पहने, फिर अपनी झोंपड़ीमें आये और किढिण (बांस का पात्र-छबड़ी) और कावड़ को लेकर पूर्व दिशा को प्रोक्षित किया और बोले—'हे पूर्व दिशाके सोम महाराजा! धर्म साधन में प्रवृत्त मुझ राजर्षि शिवका आप रक्षण करें और पूर्व दिशामें रहे हुए कन्द, मूल, छाल, पत्र, पुष्प, फल, बीज और हरी वनस्पति लेने की आज्ञा दीजिये।' इस प्रकार कह कर वे शिव राजर्षि पूर्व दिशाकी ओर गये। उन्होंने कन्द, मूल आदि ग्रहण कर अपनी छबड़ी भरी। दर्भ, कुश, समिधा और वृक्ष की शाखाओंको झुका कर पत्ते ग्रहण किये और अपनी झोंपड़ीमें आए। फिर कावड़ नीचे रख कर वेदिका का प्रमार्जन किया और लीप कर उसे शुद्ध किया। फिर डाभ और कलश हाथमें लेकर गंगा नदी पर आए, उसमें डुबकी लगाई। जल-क्रीड़ा स्नान, आचमन आदि करके गंगा नदीसे बाहर निकले और अपनी झोंपड़ीमें आकर डाभ, कुश और बालुकासे वेदिका बनाई। मथन-काष्ठसे अरणीकी लकड़ीको घिसकर अग्नि सुलगाई और उसमें काष्ठ डालकर प्रज्वलित की। फिर अग्नि की दाहिनी ओर इन सात वस्तुओंको रक्खा, यथा-सकथा (उपकरण विशेष), वल्कल, दीप, शय्या के उपकरण, कमण्डल, दण्ड और अपना शरीर। मधु, घी और चावल द्वारा अग्नि में होम करके बलि द्वारा वैश्व देवकी पूजा की, फिर अतिथिकी पूजा करके शिव राजर्षिने आहार किया।

इसके पश्चात् शिव राजर्षिने दूसरी बार बेले की तपस्या की। पारणेके दिन वे आतापना भूमिसे नीचे उतरे, वल्कलके वस्त्र पहने, यावत् प्रथम पारणे का सारा वर्णन जानना चाहिए, परंतु इतनी विशेषता है कि दूसरे पारणेके दिन दक्षिण दिशा का प्रोक्षण किया और इस प्रकार कहा—"हे दक्षिण दिशाके लोकपाल यम महाराज! परलोक साधनामें प्रवृत्त मुझ शिव राजर्षि की रक्षा करो," इत्यादि, सब पूर्ववत् जानना चाहिए। इसके बाद यावत् उसने आहार किया। इसी प्रकार शिवराजर्षिने तीसरी बार बेलेकी तपस्या की। उसके पारणेके दिन पूर्वोक्त सारी

विधि की। इसमें इतनी विशेषता है कि पश्चिम दिशाका प्रोक्षण किया और कहा—"हे पश्चिम दिशाके लोकपाल वरुण महाराज! परलोक साधनामें प्रवृत्त मुझ शिव राजर्षि की रक्षा करें," इत्यादि यावत् आहार किया। चौथी वार वेले की तपस्याके पारणेके दिन उत्तर दिशा का प्रोक्षण किया और कहा—'हे उत्तर दिशाके लोकपाल वैश्रमण महाराज! धर्म साधनामें प्रवृत्त मुझ शिवराजर्षिकी आप रक्षा करें,' इत्यादि, यावत् आहार किया ॥४१६॥

निरन्तर वेले-वेलेकी तपस्यापूर्वक दिक्चक्रवाल तप करने यावत् आतापना लेने और प्रकृतिकी भद्रता यावत् विनीततासे शिवराजर्षिको किसी दिन तदावरणीय कर्मों के क्षयोपशम होने से ईहा, अपोह, मार्गणा और गवेषणा करते हुए विभंग नामक अज्ञान उत्पन्न हुआ। उस उत्पन्न हुए विभंगज्ञानसे वे इस लोकमें सात द्वीप और सात समुद्र देखने लगे। इससे आगे वे जानते-देखते नहीं थे।

इससे शिवराजर्षिको इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ—"मुझे अतिशय ज्ञान-दर्शन उत्पन्न हुआ है। इस लोकमें सात द्वीप और सात समुद्र हैं, उसके वाद द्वीप और समुद्र नहीं हैं।" ऐसा विचार कर वे आतापना-भूमिसे नीचे उतरे और वल्कल वस्त्र पहन कर अपनी झोंपड़ीमें आये। अपने लोढ़ी, लोह कड़ाह आदि तापसके उपकरण और कावड़को लेकर हस्तिनापुर नगरमें, तापसोंके आश्रममें आये और तापसोंके उपकरण रखकर हस्तिनापुर नगर के शृंगाटक, त्रिक यावत् राजमार्गों में वहुत-से मनुष्योंको इस प्रकार कहने और प्ररूपणा करने लगे—"हे देवानुप्रियो! मुझे अतिशय ज्ञान-दर्शन उत्पन्न हुआ है, जिससे मैं यह जानता देखता हूं कि इस लोकमें सात द्वीप और सात समुद्र हैं।" शिवराजर्षिकी उपरोक्त बात सुनकर वहुत-से मनुष्य इस प्रकार कहने लगे—"हे देवानुप्रियो! शिवराजर्षि जो यह वात कहते हैं कि 'मुझे अतिशय ज्ञान-दर्शन उत्पन्न हुआ है, यावत् इस लोकमें सात द्वीप और सात समुद्र ही हैं। इसके आगे द्वीप-समुद्र नहीं हैं'—उनकी यह वात इस प्रकार कैसे मानी जाय?"

उस काल उस समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी वहां पधारे। जनता धर्मोपदेश सुनकर यावत् चली गई। उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर स्वामीके ज्येष्ठ अन्तेवासी इन्द्रभूति अनगार ने, दूसरे शतकके निर्ग्रन्थोद्देशकमें वर्णित विधिके अनुसार भिक्षार्थ जाते हुए, वहुत-से मनुष्योंके शब्द सुने। वे परस्पर कह रहे थे कि 'हे देवानुप्रियो! शिवराजर्षि कहते हैं कि मुझे अतिशय ज्ञान-दर्शन उत्पन्न हुआ है, यावत् इस लोकमें सात द्वीप और समुद्र ही हैं, इसके आगे द्वीप और समुद्र नहीं हैं। यह वात कैसे मानी जाय?'

वहुत-से मनुष्योंसे यह वात सुनकर गौतम स्वामीको सन्देह कुतूहल एवं श्रद्धा हुई, उन्होंने भगवान्‌की सेवामें आकर इस प्रकार पूछा—'हे भगवन्! शिव-

राजर्षि कहते हैं कि सात द्वीप और सात समुद्र हैं, इसके आगे द्वीप समुद्र नहीं हैं, उनका ऐसा कहना सत्य है क्या ?' भगवान् ने कहा—'हे गौतम ! शिवराजर्षिसे सुनकर बहुत-से मनुष्य जो कहते हैं कि 'सात द्वीप और सात समुद्र ही हैं, इसके बाद कुछ भी नहीं है, इत्यादि—' यह कथन मिथ्या है। गौतम ! मैं इस प्रकार कहता हूं यावत् प्ररूपणा करता हूं कि जम्बूद्वीपादि द्वीप और लवण समुद्रादि समुद्र, ये सब वृत्ताकार (गोल) होने से आकार में एक सरीखे हैं। परन्तु विस्तारमें एक-दूसरे से दुगुने-दुगुने होने के कारण अनेक प्रकार के हैं, इत्यादि सभी वर्णन जीवाभिगम सूत्रमें कहे अनुसार जानना चाहिए। यावत् हे आयुष्मन् श्रमणो ! इस तिर्च्छे लोकमें स्वयंभूरमण समुद्र पर्यन्त असंख्यात द्वीप और समुद्र कहे गये हैं।

भगवन् ! जम्बूद्वीप नामक द्वीपमें वर्ण सहित और वर्ण रहित, गन्ध सहित और गन्ध रहित, रस सहित और रस रहित, स्पर्श सहित और स्पर्श रहित द्रव्य, अन्योन्य बद्ध, अन्योन्य स्पृष्ट यावत् अन्योन्य सम्बद्ध हैं ? हां, गौतम ! हैं। भगवन् ! लवण समुद्रमें वर्ण सहित और वर्ण रहित, गंध सहित और गन्ध रहित, रस सहित और रस रहित, स्पर्श सहित और स्पर्श रहित द्रव्य अन्योन्य बद्ध, अन्योन्य स्पृष्ट यावत् अन्योन्य सम्बद्ध हैं ? हां,गौतम ! हैं। भगवन् ! क्या धातकीखण्डमें यावत् स्वयम्भूरमण समुद्रमें वर्णादि सहित और वर्णादि रहित द्रव्य यावत् अन्योन्य सम्बद्ध हैं ? हां, गौतम ! हैं। इसके पश्चात् वह महती परिषद् श्रमण भगवान् महावीर स्वामीसे उपर्युक्त अर्थ सुनकर और हृदय में धारण कर हर्षित एवं सन्तुष्ट हुई और भगवान् को वन्दना नमस्कार कर चली गई।

हस्तिनापुर नगर में शृंगाटक यावत् अन्य राज-मार्गों पर बहुत-से लोग इस प्रकार कहने एवं प्ररूपणा करने लगे कि 'हे देवानुप्रियो ! शिव राजर्षि जो कहते एवं प्ररूपणा करते हैं कि 'मुझे अतिशेष ज्ञान दर्शन उत्पन्न हुआ है, जिससे मैं जानता—देखता हूं कि इस लोक में सात द्वीप और सात समुद्र ही हैं, इनके आगे द्वीप और समुद्र नहीं हैं,'—उनका यह कथन मिथ्या है। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी इस प्रकार कहते और प्ररूपणा करते हैं कि 'निरन्तर बेले बेले की तपस्या करते हुए शिवराजर्षिको विभंगज्ञान उत्पन्न हुआ है। जिससे वे सात द्वीप समुद्र तक जानते-देखते हैं और इसके आगे द्वीप समुद्र नहीं हैं, यह उनका कथन मिथ्या है। क्योंकि जम्बूद्वीप आदि द्वीप और लवणादि समुद्र असंख्यात हैं।'

शिवराजर्षि बहुत-से मनुष्योंसे यह बात सुन कर और अवधारण करके शंकित, कांक्षित, संदिग्ध, अनिश्चित और कलुषित भावको प्राप्त हुए। शंकित, कांक्षित, आदि बने हुए शिवराजर्षिका वह विभंग नामक अज्ञान तुरन्त नष्ट हो गया।

इसके पश्चात् शिवराजर्षि को इस प्रकार विचार उत्पन्न हुआ कि 'श्रमण भगवान् महावीर स्वामी-धर्मकी आदि करने वाले, तीर्थंकर यावत् सर्वज्ञ, सर्वदर्शी हैं, जिनके आगे आकाशमें धर्मचक्र चलता है, वे यहां सहस्राम्रवन उद्यान में यथा-योग्य अवग्रह ग्रहण करके यावत् विचरते हैं। इस प्रकार के अरिहंत भगवन्तोंका नाम-गोत्र सुनना भी महाफल वाला है, तो उनके सम्मुख जाना, वन्दन करना, इत्यादिका तो कहना ही क्या, इत्यादि औपपातिक सूत्र के उल्लेखानुसार विचार किया, यावत् एक भी आर्य धार्मिक सुवचन का सुनना भी महाफल-दायक है, तो विपुल अर्थ के अवधारण का तो कहना ही क्या। अतः मैं श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास जाऊं, वन्दन-नमस्कार यावत् पर्युपासना करूं। यह मेरे लिये इस भव और पर भव में यावत् श्रेयकारी होगा।'

ऐसा विचार कर वे तापसों के मठमें आये और उसमें प्रवेश किया। मठमें से लोढ़ी, लोह-कड़ाह यावत् कावड़ आदि उपकरण लेकर पुनः निकले। विभंगज्ञान रहित वे शिवराजर्षि हस्तिनापुर नगर के मध्य होते हुए सहस्राम्रवन उद्यान में श्रमण भगवान् महावीर स्वामीके निकट आये। भगवान् को तीन बार प्रदक्षिणा करके वन्दन नमस्कार किया और न अति दूर न अति निकट यावत् हाथ जोड़कर भगवान्की उपासना करने लगे। श्रमण भगवान् महावीर स्वामीने शिवराजर्षि और महा-परिषद् को धर्मोपदेश दिया यावत्-"इस प्रकार पालन करने से जीव आज्ञा के आराधक होते हैं।"

श्रमण भगवान् महावीर स्वामीसे धर्मोपदेश सुनकर और अवधारण कर शिवराजर्षि, स्कन्दक की तरह ईशानकोणमें गये और लोढ़ी, लोह-कड़ाह यावत् कावड़ आदि तापसोचित उपकरणोंको एकान्त स्थान में डाल दिया। फिर स्वय-मेव पञ्चमुष्टि लोच किया और श्रमण भगवान् महावीर स्वामीके समीप (नौवें शतकके तेतीसवें उद्देशक में कथित) ऋषभदत्त की तरह प्रव्रज्या अंगीकार की। ग्यारह अंगोंका ज्ञान पढ़ा, यावत् वे शिवराजर्षि समस्त दुःखोंसे मुक्त हुए ॥४१७॥

श्रमण भगवान् महावीर स्वामीको वन्दना नमस्कार कर गौतमस्वामीने इस प्रकार पूछा—'भगवन्! सिद्ध होने वाले जीव किस संहनन में सिद्ध होते हैं? गौतम! वज्रऋषभनाराच संहननमें सिद्ध होते हैं, इत्यादि औपपातिक सूत्र के अनुसार 'संहनन, संस्थान, उच्चत्व, आयुष्य, परिवसन (निवास), इस प्रकार सम्पूर्ण सिद्धिगण्डिका तक यावत् सिद्ध जीव अव्याबाध शाश्वत सुखों का अनुभव करते हैं—यहां तक कहना चाहिए। हे भगवन्! यह इसी प्रकार है।···ऐसा कह-कर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ॥४१८॥

॥ शिवराजर्षि चरित्र समाप्त ॥

॥ ग्यारहवें शतक का नौवां उद्देशक समाप्त ॥

शतक ११ उद्देशक १०—लोक के द्रव्यादि भेद...

राजगृह नगर में गौतम स्वामीने यावत् इस प्रकार पूछा—'भगवन् ! लोक कितने प्रकारका कहा है ?' गौतम ! लोक चार प्रकार का कहा है। यथा–१ द्रव्य लोक, २ क्षेत्र लोक, ३ काल लोक और ४ भाव लोक। भगवन् ! क्षेत्र-लोक कितने प्रकार का कहा है ? गौतम ! तीन प्रकार का कहा है। यथा—१ अधोलोक क्षेत्रलोक, २ तिर्यग्लोक क्षेत्रलोक, ३ ऊर्ध्वलोक क्षेत्रलोक। भगवन् ! अधोलोक क्षेत्रलोक कितने प्रकार का कहा है ? गौतम ! सात प्रकार का कहा है। यथा—रत्नप्रभापृथ्वी अधोलोक क्षेत्रलोक, यावत् अध:सप्तम-पृथ्वी अधोलोक क्षेत्रलोक। भगवन् ! तिर्यग्लोक क्षेत्रलोक कितने प्रकार का है ? गौतम ! असंख्य प्रकारका है। यथा—जम्बूद्वीप-तिर्य्ग्लोक क्षेत्रलोक यावत् स्वयंभूरमणसमुद्र तिर्य्ग्लोक क्षेत्रलोक। भगवन् ! ऊर्ध्वलोक क्षेत्रलोक कितने प्रकार का है ? गौतम ! पन्द्रह प्रकार का है। यथा— (१–१२) सौधर्मकल्प ऊर्ध्वलोक क्षेत्रलोक यावत् अच्युतकल्प ऊर्ध्वलोक क्षेत्रलोक। १३ ग्रैवेयक विमान ऊर्ध्वलोक क्षेत्रलोक। १४ अनुत्तरविमान ऊर्ध्वलोक०। १५ ईषत्प्राग्भार पृथ्वी ऊर्ध्वलोक क्षेत्रलोक।

भगवन् ! अधोलोक क्षेत्रलोक का कैसा संस्थान है ? गौतम ! त्रपा (तिपाई) के आकार है। भगवन् ! तिर्यग्लोक क्षेत्रलोक का संस्थान कैसा है ? गौतम ! झालर के आकार का है। भगवन् ! ऊर्ध्वलोक क्षेत्र लोकका कैसा संस्थान है ? गौतम ! ऊर्ध्व मृदंगके आकार है। भगवन् ! लोकका कैसा संस्थान है ? गौतम ! लोक सुप्रतिष्ठक (शराव) के आकार है। यथा—वह नीचे चौड़ा है। मध्य में संक्षिप्त (संकीर्ण) है, इत्यादि सातवें शतक के प्रथम उद्देशकमें कहे अनुसार जानें। उस लोकको उत्पन्न ज्ञान-दर्शनके धारक केवलज्ञानी जानते हैं। इसके पश्चात् वे सिद्ध होते हैं यावत् समस्त दु:खों का अन्त करते हैं।

भगवन् ! अलोक का कैसा संस्थान कहा है ? गौतम ! अलोक का संस्थान पोले गोले के समान कहा है। भगवन् ! अधोलोक क्षेत्रलोक में क्या जीव हैं, जीवके देश हैं, जीवके प्रदेश हैं, अजीव हैं, अजीवके देश हैं और अजीवके प्रदेश हैं ? गौतम ! जिस प्रकार दसवें शतकके प्रथम उद्देशक में ऐन्द्री दिशाके विषयमें कहा, उसी प्रकार यहां भी सभी वर्णन ज्ञातव्य, यावत् अद्धासमय (काल) रूप है। भगवन् ! तिर्यग्लोक जीव रूप है, इत्यादि प्रश्न। गौतम ! पूर्ववत्। इसी प्रकार ऊर्ध्वलोक क्षेत्रलोक के विषयमें भी जानना चाहिये, परन्तु इतनी विशेषता है कि ऊर्ध्वलोकमें अरूपीके छह भेद ही हैं, क्योंकि वहां अद्धासमय नहीं है।

भगवन् लोक में जीव हैं, इत्यादि प्रश्न। गौतम ! दूसरे शतक के दसवें अस्तिकाय उद्देशकमें लोकाकाशके विषय-वर्णनके अनुसार जानना चाहिये, विशेषमें यहां अरूपीके सात भेद कहने चाहियें, यावत् अधर्मास्तिकायके प्रदेश, आकाशास्तिकाय का देश, आकाशास्तिकायके प्रदेश और अद्धासमय। शेष पूर्ववत् जानना चाहिये। भगवन् ! अलोकमें जीव हैं, इत्यादि प्रश्न। गौतम ! दूसरे शतकके दसवें अस्तिकाय उद्देशकमें जिस प्रकार अलोकाकाशके विषयमें कहा, उसी प्रकार यहां भी जानना चाहिये, यावत् वह सर्वाकाशके अनन्तवें भाग न्यून है।

भगवन् ! अधोलोक क्षेत्रलोकके एक आकाश-प्रदेश में जीव हैं, जीवोंके देश हैं, जीवोंके प्रदेश हैं, अजीव हैं, अजीवोंके देश हैं, अजीवों के प्रदेश हैं ? गौतम ! जीव नहीं, किन्तु जीवोंके देश हैं, जीवोंके प्रदेश हैं, अजीव हैं, अजीवोंके देश हैं और अजीवोंके प्रदेश हैं। इनमें जो जीवोंके देश हैं, वे नियम से १ एकेन्द्रिय जीवोंके देश हैं। अथवा २ एकेन्द्रिय जीवोंके देश और वेइन्द्रिय जीवका एक देश है। ३ अथवा एकेन्द्रिय जीवोंके देश और वेइंद्रिय जीवोंके देश हैं। इस प्रकार मध्यम भंग रहित (एकेन्द्रिय जीवोंके देश और वेइंद्रिय जीवके देश, इस मध्यम भंगसे रहित) शेष भंग यावत् अनिन्द्रिय तक जानने चाहियें यावत् एकेन्द्रिय जीवोंके देश और अनिन्द्रिय जीवोंके देश हैं। इनमें जो जीवके प्रदेश हैं, वे नियमसे एकेन्द्रिय जीवोंके प्रदेश हैं, अथवा एकेन्द्रिय जीवोंके प्रदेश और एक वेइन्द्रिय जीवके प्रदेश हैं, अथवा एकेन्द्रिय जीवोंके प्रदेश और वेइन्द्रिय जीवोंके प्रदेश हैं। इस प्रकार यावत् पञ्चेन्द्रिय तक प्रथम भंगके सिवाय दो दो भंग कहने चाहियें। अनिन्द्रियमें तीनों भंग कहने चाहियें। उनमें जो अजीव हैं, वे दो प्रकार के कहे हैं। यथा—रूपी अजीव और अरूपी अजीव। रूपी अजीवोंका वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिये। अरूपी अजीव पांच प्रकार के कहे गये हैं। यथा—१ धर्मास्तिकायका देश, २ धर्मास्तिकाय का प्रदेश, ३ अधर्मास्तिकायका देश, ४ अधर्मास्तिकाय का प्रदेश और ५ अद्धा समय।

भगवन् ! तिर्यग्लोक क्षेत्रलोकके एक आकाशप्रदेशमें जीव हैं, इत्यादि प्रश्न। गौतम ! जिस प्रकार अधोलोक क्षेत्रलोकके विषयमें कहा है, उसी प्रकार यहां भी जानना चाहिये और इसी प्रकार ऊर्ध्वलोक क्षेत्रलोक के एक आकाश-प्रदेशके विषय में भी जानना चाहिये, किन्तु वहां अद्धा समय नहीं है, इसलिये वहां चार प्रकार के अरूपी अजीव हैं। लोकके एक आकाश-प्रदेशका कथन अधोलोक क्षेत्रलोक के एक आकाश-प्रदेशके कथनके समान जानना चाहिये।

भगवन् ! अलोकके एक आकाशप्रदेशमें जीव हैं, इत्यादि प्रश्न। गौतम ! वहां 'जीव नहीं, जीवोंके देश नहीं, इत्यादि पूर्ववत् जानना चाहिये, यावत् अलोक अनन्त अगुरुलघु गुणोंसे संयुक्त है और सर्वाकाशके अनन्तवें भाग न्यून है।

द्रव्य से अधोलोक क्षेत्रलोकमें अनन्त जीव द्रव्य हैं, अनन्त अजीव द्रव्य हैं और अनन्त जीवाजीव द्रव्य हैं। इसी प्रकार तिर्यग्लोक क्षेत्रलोकमें और ऊर्ध्वलोक क्षेत्रलोकमें भी जानना चाहिये। द्रव्यसे अलोक में जीव द्रव्य नहीं, अजीव द्रव्य नहीं, और जीवाजीव द्रव्य भी नहीं, किन्तु अजीव द्रव्य का एक देश है यावत् सर्वाकाशके अनन्तवें भाग न्यून है। कालसे अधोलोक क्षेत्रलोक किसी समय नहीं था—ऐसा नहीं, यावत् वह नित्य है। इस प्रकार यावत् अलोक के विषयमें भी कहना चाहिये। भावसे अधोलोक क्षेत्रलोकमें 'अनन्त वर्ण पर्याय हैं, इत्यादि दूसरे शतकके प्रथम उद्देशकमें स्कन्दक वर्णित प्रकरण के अनुसार जानना चाहिये, यावत् अनन्त अगुरुलघु पर्याय हैं। इस प्रकार यावत् लोक तक जानना चाहिये। भावसे अलोकमें वर्ण पर्याय नहीं, यावत् अगुरुलघु पर्याय नहीं है, परन्तु एक अजीव द्रव्य का देश है और वह सर्वाकाशके अनन्तवें भाग न्यून है ॥४१९॥

भगवन्! लोक कितना बड़ा कहा है? गौतम! जम्बूद्वीप नामक यह द्वीप समस्त द्वीप और समुद्रोंके मध्यमें है। इसकी परिधि तीन लाख सोलह हजार दो सौ सत्ताइस (३१६२२७) योजन, तीन कोस एक सौ अट्ठाइस धनुष और साढ़े तेरह अंगुल से कुछ अधिक है। यदि महर्द्धिक यावत् महासुख सम्पन्न छह देव मेरु पर्वत पर उसकी चूलिकाके चारों तरफ खड़े रहें और नीचे चार दिशाकुमारी देवियां चार अन्नपिण्ड लेकर जम्बूद्वीप की जगती पर चारों दिशाओं में बाहर की ओर मुंह करके खड़ी होवें, फिर वे देवियां एक साथ चारों अन्नपिण्डों को बाहर फेंकें, उसी समय उन देवोंमें से प्रत्येक देव उनको पृथ्वी पर गिरने के पहले ही ग्रहण करने में समर्थ है—ऐसी तीव्र गति वाले उन देवों में से एक देव उत्कृष्ट यावत् तीव्र गतिसे पूर्व में, एक देव पश्चिम में, एक देव उत्तर में, एक देव दक्षिण में, एक देव ऊर्ध्वदिशा में और एक देव अधोदिशा में जावे, उसी दिन, उसी समय एक गाथापति के, एक हजार वर्ष की आयुष्य वाला एक बालक हुआ। बादमें उस बालक के माता-पिता कालधर्म को प्राप्त हो गये, उतने समय में भी वे देव, लोक का अन्त प्राप्त नहीं कर सकते। वह बालक स्वयं आयुष्य पूर्ण होने पर काल-धर्म को प्राप्त हो गया, उतने समय में भी वे देव, लोक का अन्त प्राप्त नहीं कर सकते। उस बालक के हाड़ और हाड़ की मज्जा विनष्ट हो गई, तो भी वे देव, लोक का अन्त प्राप्त नहीं कर सकते। उस बालक की सात पीढ़ी तक कुलवंश नष्ट हो गया, तो उतने समय में भी वे देव, लोक का अन्त प्राप्त नहीं कर सकते। पश्चात् उस बालक के नाम-गोत्र भी नष्ट हो गये, उतने समय तक चलते रहने पर भी वे देव, लोक के अन्त को प्राप्त नहीं कर सकते।

भगवन्! उन देवोंका गत (गया हुआ—उल्लंघन किया हुआ) क्षेत्र अधिक है, या अगत (नहीं गया हुआ) क्षेत्र अधिक है? गौतम! गत-क्षेत्र अधिक है।

अगत-क्षेत्र थोड़ा है। अगत-क्षेत्र, गत-क्षेत्र के असंख्यातवें भाग है। अगत-क्षेत्र से गत-क्षेत्र असंख्यात गुणा है। गौतम ! लोक इतना वड़ा है।

भगवन् ! अलोक कितना वड़ा है ? गौतम ! इस मनुष्य क्षेत्र की लम्बाई और चौड़ाई पैंतालीस लाख (४५०००००) योजन है, इत्यादि स्कन्दक प्रकरण के अनुसार जानना चाहिये, यावत् वह परिधि-युक्त है। उस समयमें दस महर्द्धिक देव इस मनुष्य लोकको चारों ओर घेरकर खड़े हों, उनके नीचे आठ दिशा-कुमारियां आठ अन्नपिण्डों को ग्रहण कर मानुषोत्तर पर्वत की चारों दिशाओं और चारों विदिशाओं में वाह्याभिमुख खड़ी रहें, पश्चात् वे उन आठों अन्नपिण्डोंको एक साथ ही मानुषोत्तर पर्वतकी वाहरकी दिशाओंमें फेंकें, तो उन खड़े हुए देवों में से प्रत्येक देव उनको पृथ्वी पर गिरने के पूर्व ही ग्रहण करने में समर्थ है,-ऐसी शीघ्र गति वाले वे दसों देव, लोकके अन्तसे, यावत् (यह असत् कल्पना है जो संभव नहीं है) पूर्वादि चार दिशाओंमें और चारों विदिशाओंमें तथा एक ऊर्ध्व-दिशामें और एक अधो-दिशामें जावे। उसी समय एक गाथापतिके घर एक लाख वर्षकी आयुष्य वाला एक वालक उत्पन्न हुआ। क्रमशः उस वालक के माता-पिता दिवंगत हुए, उसका भी आयुष्य क्षीण हो गया, उसकी अस्थि और मज्जा नष्ट हो गई और उसकी सात पीढ़ियोंके पश्चात् वह कुलवंश भी नष्ट हो गया और उसके नाम-गोत्र भी नष्ट हो गये, इतने समय तक चलते रहने पर भी वे देव अलोकके अन्त को प्राप्त नहीं कर सकते।

भगवन् ! उन देवों द्वारा गत-क्षेत्र अधिक है, या अगत-क्षेत्र अधिक है ? गौतम ! गत-क्षेत्र थोड़ा है और अगत-क्षेत्र अधिक है। गत-क्षेत्र से अगत क्षेत्र अनन्त गुणा है। अगत-क्षेत्र से गत-क्षेत्र अनन्तवें भाग है। हे गौतम ! अलोक इतना वड़ा कहा गया है ॥४२०॥

भगवन् ! लोकके एक आकाशप्रदेश पर एकेन्द्रिय जीवोंके जो प्रदेश हैं, यावत् पंचेंद्रिय जीवोंके और अनिन्द्रिय जीवोंके जो प्रदेश हैं, क्या वे सभी अन्योन्य स्पृष्ट हैं, यावत् अन्योन्य संवद्ध हैं ? भगवन् ! वे परस्पर एक दूसरे को आवाधा (पीड़ा) और व्यावाधा (विशेष पीड़ा) उत्पन्न करते हैं, तथा उनके अवयवोंका छेद करते हैं ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं। भगवन् ! इसका क्या कारण है, यावत् वे पीड़ा नहीं पहुंचाते और अवयवोंका छेद नहीं करते ? गौतम ! जिस प्रकार कोई शृंगारित और उत्तम वेष वाली यावत् मधुर कंठ वाली नर्तकी सैकड़ों और लाखों व्यक्तियोंसे परिपूर्ण रंगस्थली में वत्तीस प्रकारके नाट्यों में से कोई एक नाट्य दिखाती है, तो हे गौतम ! क्या दर्शक लोग उस नर्तकीको अनिमेष दृष्टि से चारों ओर से देखते हैं, और उनकी दृष्टियां उस नर्तकी के चारों ओर गिरती हैं ? हां, भगवन् ! वे दर्शक लोग उसे अनिमेष दृष्टि से देखते हैं और उनकी

दृष्टियां उसके चारों ओर गिरती हैं। गौतम ! क्या उन दर्शकों की वे दृष्टियां उस नर्तकी को किसी प्रकार की पीड़ा पहुंचाती हैं, या उसके अवयव का छेद करती हैं? भगवन् ! यह अर्थ समर्थ नहीं। गौतम ! वे दृष्टियां परस्पर एक दूसरे को किसी प्रकार की पीड़ा उत्पन्न करती हैं, या उनके अवयव का छेद करती हैं? भगवन् ! यह अर्थ समर्थ नहीं। गौतम ! इसी प्रकार जीवों के आत्मप्रदेश परस्पर वद्ध, स्पृष्ट और संवद्ध होने पर भी आवाधा, व्यावाधा उत्पन्न नहीं करते और न अवयव का छेद करते हैं ॥४२१॥

भगवन् ! लोकके एक आकाशप्रदेश पर जघन्य पद में रहे हुए जीव-प्रदेश, उत्कृष्ट पदमें रहे हुए जीव-प्रदेश और सभी जीव, इनमें कौन किससे अल्प, वहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं? गौतम ! लोक के एक आकाश-प्रदेश पर जघन्य पद में रहे हुए जीव-प्रदेश सब से थोड़े हैं। उससे सभी जीव असंख्यात गुणा हैं, उनसे एक आकाशप्रदेश पर उत्कृष्ट पदसे रहे हुए जीव-प्रदेश विशेषाधिक हैं। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ······। ऐसा कहकर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं ॥४२२॥

॥ ग्यारहवें शतक का दसवां उद्देशक समाप्त ॥

—o—

शतक ११ उद्देशक ११—सुदर्शन सेठ के काल-विषयक प्रश्नोत्तर०

उस काल उस समय में वाणिज्यग्राम नामक नगर था (वर्णन)। द्युति-पलाश नामक उद्यान था (वर्णन)। उसमें एक पृथ्वी-शिलापट्ट था। उस वाणिज्य-ग्राम नगर में सुदर्शन नामक सेठ रहता था, वह आढ्य यावत् अपरिभूत था। वह जीवाजीवादि तत्त्वों का जानने वाला श्रमणोपासक था। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी वहां पधारे, यावत् परिषद् पर्युपासना करने लगी। भगवान् का आगमन सुनकर सुदर्शन सेठ वहुत हर्षित एवं संतुष्ट हुआ। वह स्नान कर एवं वस्त्रालंकारों से विभूषित होकर, कोरण्ट पुष्प की मालायुक्त छत्र धारण कर, अनेक व्यक्तियों के साथ पैदल चल कर भगवान् के दर्शनार्थ गया। नौवें शतक के तेतीसवें उद्देशक में ऋषभदत्त के प्रकरण में कथित पांच अभिगम करके वह सुदर्शन सेठ भगवान् की तीन प्रकार की पर्युपासना करने लगा। भगवान् ने उस महा-परिषद् को और सुदर्शन सेठ को 'आराधक वनने' जैसी धर्म-कथा कही। धर्म-कथा सुनकर सुदर्शन सेठ अत्यन्त हर्षित एवं सन्तुष्ट हुए। उन्होंने खड़े होकर भगवान् को तीन वार प्रदक्षिणा की और वन्दना नमस्कार करके इस प्रकार पूछा—

भगवन् ! काल कितने प्रकार का कहा है? सुदर्शन ! काल चार प्रकार का कहा है। यथा-१ प्रमाण काल, २ यथायुनिर्वृत्ति काल, ३ मरण काल और ४ अद्धा काल। भगवन् ! प्रमाण काल कितने प्रकार का कहा है? सुदर्शन !

अगत-क्षेत्र थोड़ा है। अगत-क्षेत्र, गत-क्षेत्र के असंख्यातवें भाग है। अगत-क्षेत्र से गत-क्षेत्र असंख्यात गुणा है। गौतम ! लोक इतना बड़ा है।

भगवन् ! अलोक कितना बड़ा है ? गौतम ! इस मनुष्य क्षेत्र की लम्वाई और चौड़ाई पैंतालीस लाख (४५०००००) योजन है, इत्यादि स्कन्दक प्रकरण के अनुसार जानना चाहिये, यावत् वह परिधि-युक्त है। उस समयमें दस महर्द्धिक देव इस मनुष्य लोकको चारों ओर घेरकर खड़े हों, उनके नीचे आठ दिशा-कुमारियां आठ अन्नपिण्डों को ग्रहण कर मानुषोत्तर पर्वत की चारों दिशाओं और चारों विदिशाओं में वाह्याभिमुख खड़ी रहें, पश्चात् वे उन आठों अन्नपिण्डोंको एक साथ ही मानुषोत्तर पर्वतकी वाहरकी दिशाओंमें फेंकें, तो उन खड़े हुए देवों में से प्रत्येक देव उनको पृथ्वी पर गिरने के पूर्व ही ग्रहण करने में समर्थ है,—ऐसी शीघ्र गति वाले वे दसों देव, लोकके अन्तसे, यावत् (यह असत् कल्पना है जो संभव नहीं है) पूर्वादि चार दिशाओंमें और चारों विदिशाओंमें तथा एक ऊर्ध्व-दिशामें और एक अधो-दिशामें जावें। उसी समय एक गाथापतिके घर एक लाख वर्षकी आयुष्य वाला एक वालक उत्पन्न हुआ। क्रमशः उस वालक के माता-पिता दिवंगत हुए, उसका भी आयुष्य क्षीण हो गया, उसकी अस्थि और मज्जा नष्ट हो गई और उसकी सात पीढ़ियोंके पश्चात् वह कुलवंश भी नष्ट हो गया और उसके नाम-गोत्र भी नष्ट हो गये, इतने समय तक चलते रहने पर भी वे देव अलोकके अन्त को प्राप्त नहीं कर सकते।

भगवन् ! उन देवों द्वारा गत-क्षेत्र अधिक है, या अगत-क्षेत्र अधिक है ? गौतम ! गत-क्षेत्र थोड़ा है और अगत-क्षेत्र अधिक है। गत-क्षेत्र से अगत क्षेत्र अनन्त गुणा है। अगत-क्षेत्र से गत-क्षेत्र अनन्तवें भाग है। हे गौतम ! अलोक इतना बड़ा कहा गया है ॥४२०॥

भगवन् ! लोकके एक आकाशप्रदेश पर एकेन्द्रिय जीवोंके जो प्रदेश हैं, यावत् पंचेंद्रिय जीवोंके और अनिन्द्रिय जीवोंके जो प्रदेश हैं, क्या वे सभी अन्योन्य स्पृष्ट हैं, यावत् अन्योन्य संवद्ध हैं ? भगवन् ! वे परस्पर एक दूसरे को आवाधा (पीड़ा) और व्यावाधा (विशेष पीड़ा) उत्पन्न करते हैं, तथा उनके अवयवोंका छेद करते हैं ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं। भगवन् ! इसका क्या कारण है, यावत् वे पीड़ा नहीं पहुंचाते और अवयवोंका छेद नहीं करते ? गौतम ! जिस प्रकार कोई शृंगारित और उत्तम वेष वाली यावत् मधुर कंठ वाली नर्तकी सैकड़ों और लाखों व्यक्तियोंसे परिपूर्ण रंगस्थली में वत्तीस प्रकारके नाट्यों में से कोई एक नाट्य दिखाती है, तो हे गौतम ! क्या दर्शक लोग उस नर्तकीको अनिमेष दृष्टि से चारों ओर से देखते हैं, और उनकी दृष्टियां उस नर्तकी के चारों ओर गिरती हैं ? हां, भगवन् ! वे दर्शक लोग उसे अनिमेष दृष्टि से देखते हैं और उनकी

दृष्टियां उसके चारों ओर गिरती हैं। गौतम ! क्या उन दर्शकों की वे दृष्टियां उस नर्तकी को किसी प्रकार की पीड़ा पहुंचाती हैं, या उसके अवयव का छेद करती हैं ? भगवन् ! यह अर्थ समर्थ नहीं। गौतम ! वे दृष्टियां परस्पर एक दूसरे को किसी प्रकार की पीड़ा उत्पन्न करती हैं, या उनके अवयव का छेद करती हैं ? भगवन् ! यह अर्थ समर्थ नहीं। गौतम ! इसी प्रकार जीवों के आत्मप्रदेश परस्पर बद्ध, स्पृष्ट और संबद्ध होने पर भी आबाधा, व्याबाधा उत्पन्न नहीं करते और न अवयव का छेद करते हैं ॥४२१॥

भगवन् ! लोकके एक आकाशप्रदेश पर जघन्य पद में रहे हुए जीव-प्रदेश, उत्कृष्ट पदमें रहे हुए जीव-प्रदेश और सभी जीव, इनमें कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं ? गौतम ! लोक के एक आकाश-प्रदेश पर जघन्य पद में रहे हुए जीव-प्रदेश सब से थोड़े हैं। उससे सभी जीव असंख्यात गुणा हैं, उनसे एक आकाशप्रदेश पर उत्कृष्ट पदसे रहे हुए जीव-प्रदेश विशेषाधिक हैं। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ......। ऐसा कहकर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं ॥४२२॥

॥ ग्यारहवें शतक का दसवां उद्देशक समाप्त ॥

—०—

शतक ११ उद्देशक ११—सुदर्शन सेठ के काल-विषयक प्रश्नोत्तर०

उस काल उस समय में वाणिज्यग्राम नामक नगर था (वर्णन)। द्युति-पलाश नामक उद्यान था (वर्णन)। उसमें एक पृथ्वी-शिलापट्ट था। उस वाणिज्य-ग्राम नगर में सुदर्शन नामक सेठ रहता था, वह आढ्य यावत् अपरिभूत था। वह जीवाजीवादि तत्त्वों का जानने वाला श्रमणोपासक था। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी वहां पधारे, यावत् परिषद् पर्युपासना करने लगी। भगवान् का आगमन सुनकर सुदर्शन सेठ बहुत हर्षित एवं संतुष्ट हुआ। वह स्नान कर एवं वस्त्रालंकारों से विभूषित होकर, कोरण्ट पुष्प की मालायुक्त छत्र धारण कर, अनेक व्यक्तियों के साथ पैदल चल कर भगवान् के दर्शनार्थ गया। नौवें शतक के तेतीसवें उद्देशक में ऋषभदत्त के प्रकरण में कथित पांच अभिगम करके वह सुदर्शन सेठ भगवान् की तीन प्रकार की पर्युपासना करने लगा। भगवान् ने उस महा-परिषद् को और सुदर्शन सेठ को 'आराधक बनने' जैसी धर्म-कथा कही। धर्म-कथा सुनकर सुदर्शन सेठ अत्यन्त हर्षित एवं सन्तुष्ट हुए। उन्होंने खड़े होकर भगवान् को तीन बार प्रदक्षिणा की और वन्दना नमस्कार करके इस प्रकार पूछा—

भगवन् ! काल कितने प्रकार का कहा है ? सुदर्शन ! काल चार प्रकार का कहा है। यथा–१ प्रमाण काल, २ यथायुनिर्वृत्ति काल, ३ मरण काल और ४ अद्धा काल। भगवन् ! प्रमाण काल कितने प्रकार का कहा है ? सुदर्शन !

प्रमाण काल दो प्रकार का कहा है। यथा–दिवस प्रमाणकाल और रात्रि प्रमाण-काल। चार पौरुषी (प्रहर) का दिवस होता है और चार पौरुषी की रात्रि होती है। दिवस और रात्रि की पौरुषी उत्कृष्ट साढ़े चार मुहूर्त की और जघन्य तीन मुहूर्त की होती है ॥४२३॥

भगवन्! जब दिवसकी अथवा रात्रिकी पौरुषी उत्कृष्ट साढ़े चार मुहूर्तकी होती है, तब उस मुहूर्तका कितना भाग घटते-घटते (कम होते हुए) दिवस और रात्रिकी जघन्य तीन मुहूर्तकी पौरुषी होती है, और जब दिवस अथवा रात्रिकी पौरुषी जघन्य तीन मुहूर्तकी होती है, तब मुहूर्तका कितना भाग बढ़ते-बढ़ते उत्कृष्ट साढ़े चार मुहूर्तकी पौरुषी होती है? सुदर्शन! जब दिवस और रात्रिकी पौरुषी उत्कृष्ट साढ़े चार मुहूर्तकी होती है, तब मुहूर्तका एक सौ बाईसवां भाग घटते-घटते जघन्य पौरुषी तीन मुहूर्तकी होती है और जब जघन्य पौरुषी तीन मुहूर्तकी होती है, तब मुहूर्तका एक सौ बाईसवां भाग बढ़ते-बढ़ते उत्कृष्ट पौरुषी साढ़े चार मुहूर्तकी होती है।

भगवन्! दिवसकी अथवा रात्रिकी उत्कृष्ट साढ़े चार मुहूर्तकी पौरुषी कब होती है और जघन्य तीन मुहूर्तकी पौरुषी कब होती है? सुदर्शन! जब अठारह मुहूर्तका बड़ा दिन होता है और बारह मुहूर्तकी छोटी रात्रि होती है तब साढ़े चार मुहूर्तकी दिवसकी उत्कृष्ट पौरुषी होती है और रात्रिकी तीन मुहूर्तकी सबसे छोटी पौरुषी होती है। जब अठारह मुहूर्तकी बड़ी रात्रि होती है और बारह मुहूर्तका छोटा दिन होता है, तब साढ़े चार मुहूर्तकी उत्कृष्ट रात्रि-पौरुषी होती है और तीन मुहूर्तकी जघन्य दिवस-पौरुषी होती है।

भगवन्! अठारह मुहूर्तका उत्कृष्ट दिवस और बारह मुहूर्तकी जघन्य रात्रि कब होती है? तथा अठारह मुहूर्तकी उत्कृष्ट रात्रि और बारह मुहूर्तका जघन्य दिवस कब होता है? सुदर्शन! आषाढ़की पूर्णिमाको अठारह मुहूर्तका उत्कृष्ट दिवस तथा बारह मुहूर्तकी जघन्य रात्रि होती है। पौष मासकी पूर्णिमाको अठारह मुहूर्तकी उत्कृष्ट रात्रि तथा बारह मुहूर्तका जघन्य दिन होता है।

भगवन्! दिवस और रात्रि ये दोनों समान भी होते हैं? हां, सुदर्शन! होते हैं। भगवन्! दिवस और रात्रि–ये दोनों समान कब होते हैं? सुदर्शन! चैत्रकी पूर्णिमा और आश्विन की पूर्णिमाको दिवस और रात्रि दोनों बराबर होते हैं। उस दिन पन्द्रह मुहूर्तका दिवस तथा पन्द्रह मुहूर्तकी रात्रि होती है और दिवस एवं रात्रिकी पौने चार मुहूर्तकी पौरुषी होती है। इस प्रकार प्रमाण काल कहा गया है ॥४२४॥

भगवन्! यथायुनिर्वृत्ति काल कितने प्रकारका कहा है? सुदर्शन! जिस किसी नैरयिक, तिर्यञ्चयोनिक, मनुष्य या देवने स्वयं जैसा आयुष्य बांधा है,

उसी प्रकार उसका पालन करना–भोगना 'यथानिर्वृत्ति काल' कहलाता है। भगवन्! मरणकाल किसे कहते हैं? सुदर्शन! शरीरसे जीवका अथवा जीवसे शरीरका वियोग होता है, उसे 'मरणकाल' कहा जाता है। भगवन्! अद्धाकाल कितने प्रकार का कहा है? सुदर्शन! अद्धाकाल अनेक प्रकार का कहा है। यथा–समय रूप, आवलिका रूप यावत् उत्सर्पिणी रूप। सुदर्शन! कालके सबसे छोटे भागको 'समय' कहते हैं, जिसके फिर दो विभाग न हो सकें। असंख्य समयोंके समुदायसे एक आवलिका होती है। संख्यात आवलिकाका एक उच्छ्वास होता है, इत्यादि छठे शतक के सातवें शालि उद्देशक में कहे अनुसार यावत् सागरोपम तक जानना चाहिये। भगवन्! पल्योपम और सागरोपमका क्या प्रयोजन है? सुदर्शन! पल्योपम और सागरोपमके द्वारा नैरयिक, तिर्यञ्च-योनिक मनुष्य तथा देवोंका आयुष्य मापा जाता है ॥४२५॥

भगवन्! नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही है? सुदर्शन! यहां प्रज्ञापना सूत्रका चौथा स्थिति पद सम्पूर्ण कहना चाहिये यावत् सर्वार्थसिद्ध देवोंकी अजघन्य अनुत्कृष्ट तेतीस सागरोपमकी स्थिति कही है ॥४२६॥

भगवन्! इन पल्योपम और सागरोपम का क्षय या अपचय होता है? हां, सुदर्शन! होता है। भगवन्! ऐसा क्यों कहते हैं कि पल्योपम और सागरोपमका क्षय और अपचय होता है? सुदर्शन! (इस बात को एक उदाहरण द्वारा समझाया जाता है) उस काल उस समय हस्तिना(ग)पुर नामक एक नगर था (वर्णन)। वहां सहस्राम्रवन नामक उद्यान था (वर्णन)। उस हस्तिनापुर नगरमें बल नामक राजा था (वर्णन)। उस बल राजाके प्रभावती नामकी रानी थी। उसके हाथ पैर सुकुमाल थे, इत्यादि वर्णन जानना चाहिये। किसी दिन उस प्रकारके भवन में जो भीतरसे चित्रित, बाहर से सफेदी किया हुआ और घिसकर कोमल बनाया हुआ था। जिसका उपरिभाग विविध चित्र युक्त था और नीचेका भाग सुशोभित था। वह मणि और रत्नोंके प्रकाशसे अन्धकार रहित, बहुसमान, सुविभक्त भाग वाला, पांच वर्णके सरस और सुगन्धित पुष्प-पुञ्जोंके उपचारसे युक्त, उत्तम कालागुरु, कुन्दरुक और तुरुष्क (शिलारस)के धूपसे चारों ओर सुगन्धित, सुगन्धित पदार्थों से सुवासित एवं सुगन्धित द्रव्यकी गुटिकाके समान था। ऐसे वासगृह (भवन) में शय्या थी, जो तकिया सहित, सिरहाने और पगोतियेके दोनों ओर तकिया युक्त, दोनों ओरसे उन्नत, मध्यमें कुछ नमी हुई (झुकी हुई) विशाल, गंगा के किनारेकी रेतीके अवदाल (पैर रखने से फिसल जाने)के समान कोमल, क्षोमिक-रेशमी दुकूलपटसे आच्छादित, रजस्त्राण (उड़ती हुई धूलको रोकने वाले वस्त्र) से ढकी हुई, रक्तांशुक (मच्छरदानी) सहित, सुरम्य आजिनक (एक प्रकार का कोमल वस्त्र), रुई, बूर, नवनीत (मक्खन), अर्कतूल (आक की रुई) के

समान कोमल स्पर्श वाली, सुगन्धित उत्तम पुष्प, चूर्ण और अन्य शयनोपचारसे युक्त थी। ऐसी शय्यामें सोती हुई प्रभावती रानी ने अर्द्ध निद्रित अवस्थामें अर्द्ध रात्रिके समय इस प्रकार का उदार, कल्याण, शिव, धन्य, मंगलकारक और शोभा-युक्त महास्वप्न देखा और जागृत हुई।

प्रभावती रानी ने स्वप्न में एक सिंह देखा, जो मोतियों के हार, रजत (चांदी), क्षीर समुद्र, चन्द्र-किरण, पानी की बिन्दु और रजत-महाशैल (वैताढ्य) पर्वतके समान श्वेत वर्ण वाला था। वह विशाल, रमणीय और दर्शनीय था। उसके प्रकोष्ठ स्थिर और सुन्दर थे। वह अपने गोल, पुष्ट, सुश्लिष्ट, विशिष्ट और तीक्ष्ण दाढ़ाओं से युक्त मुंह को फाड़े हुए था। उसके ओष्ठ संस्कारित उत्तम कमल के समान कोमल, प्रमाणोपेत, अत्यन्त सुशोभित थे। उसका तालु और जीभ रक्त-कमल के पत्र के समान, अत्यंत कोमल थी। उसकी आंखें मूस में रहे हुए एवं अग्नि से तपाये हुए तथा आवर्त करते हुए उत्तम स्वर्ण के समान वर्ण वाली, गोल और बिजली के समान निर्मल थीं। उसकी जंघा विशाल और पुष्ट थी। वह सम्पूर्ण और विपुल स्कन्ध वाला था। उसकी केशरा कोमल, विशद, सूक्ष्म एवं प्रशस्त लक्षण वाली थी। वह सिंह अपनी सुन्दर तथा उन्नत पूंछ को पृथ्वी पर फटकारता हुआ सौम्य, सौम्य आकार वाला, लीला करता हुआ, उवासी लेता हुआ और आकाश से नीचे उतर कर अपने मुख में प्रवेश करता हुआ दिखाई दिया। यह स्वप्न देखकर प्रभावती रानी जाग्रत हुई। प्रभावती रानी इस प्रकार के उदार यावत् शोभा वाले महास्वप्न को देखकर जाग्रत हुई। वह हर्षित, सन्तुष्ट हृदय यावत् मेघकी धारासे विकसित कदम्ब-पुष्प के समान रोमाञ्चित होती हुई स्वप्न का स्मरण करने लगी। फिर रानी अपनी शय्या से उठी कौर शीघ्रता रहित, चपलता, संभ्रम, एवं विलम्ब रहित, राजहंसके समान उत्तम गतिसे चलकर, बलराजाके शयनगृह में आई और इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ, मनाम, उदार, कल्याण, धन्य, मंगल, सुन्दर, मित, मधुर और मञ्जुल (कोमल) वाणीसे बोलती हुई बलराजाको जगाने लगी। राजा जाग्रत हुआ। राजा की आज्ञा होने पर, रानी विचित्र मणि और रत्नों की रचना से चित्रित भद्रासन पर बैठी। सुखासन पर बैठने के अनन्तर स्वस्थ और शान्त बनी हुई प्रभावती रानी इष्ट, प्रिय यावत् मधुर वाणीसे इस प्रकार बोली—

हे देवानुप्रिय! आज तथाप्रकार की (उपरोक्त वर्णन वाली) सुखशय्या में सोती हुई मैंने, अपने मुखमें प्रवेश करते हुए सिंहके स्वप्न को देखा है। देवानुप्रिय! इस उदार महास्वप्नका क्या फल होगा? प्रभावती रानीकी यह बात सुनकर और हृदय में धारणकर राजा हर्षित, तुष्ट और संतुष्ट हृदय वाला हुआ। मेघकी धारा से विकसित कदम्बके सुगन्धित पुष्पके समान रोमाञ्चित बना हुआ बल

राजा उस स्वप्नका अवग्रह (सामान्य विचार) तथा ईहा (विशेष विचार) करने लगा। ऐसा करके अपने स्वाभाविक बुद्धि-विज्ञानसे उस स्वप्नके फल का निश्चय किया। तत्पश्चात् राजा इष्ट, कान्त, मंगल, मित यावत् मधुर वाणी से बोलता हुआ इस प्रकार कहने लगा–

'हे देवी! तुमने उदार स्वप्न देखा है। देवी! तुमने कल्याणकारक स्वप्न देखा है। यावत् देवी! तुमने शोभायुक्त स्वप्न देखा है। हे देवी! तुमने आरोग्य, तुष्टि, दीर्घायुष्य, कल्याण और मंगलकारक स्वप्न देखा है। हे देवानुप्रिये! तुम्हें अर्थलाभ, भोगलाभ, पुत्रलाभ और राज्य-लाभ होगा। देवानुप्रिये! नव मास और साढ़े सात दिन बीतनेके बाद अपने कुलमें ध्वज समान, दीपक समान, पर्वत समान, शिखर समान, तिलक समान तथा कुल की कीर्ति करने वाले, कुल को आनन्द देने वाले, कुल का यश करने वाले, कुल के लिये आधारभूत, कुल में वृक्ष समान, कुल की वृद्धि करने वाले, सुकुमाल हाथ-पांव वाले, अंगहीनता रहित, सम्पूर्ण पञ्चेन्द्रिय युक्त शरीर वाले यावत् चन्द्र के समान सौम्य आकृति वाले, कान्त, प्रियदर्शन, सुरूप एवं देव-कुमार के समान कान्ति वाले पुत्रको तुम जन्म दोगी।

वह बालक बालभावसे मुक्त होकर विज्ञ और परिणत होकर युवावस्थाको प्राप्त करके शूरवीर, पराक्रमी, विस्तीर्ण और विपुल बल (सेना) तथा वाहन वाला, राज्यका स्वामी होगा। हे देवी! तुमने उदार (प्रधान) स्वप्न देखा है। देवी! तुमने आरोग्य, तुष्टि यावत् मंगलकारक स्वप्न देखा है।' इस प्रकार बल राजा ने इष्ट यावत् मधुर वचनों से प्रभावती देवी को यही बात दो तीन बार कही। बलराजा की पूर्वोक्त बात सुनकर और अवधारण कर प्रभावती देवी हर्षित एवं सन्तुष्ट हुई और हाथ जोड़ कर इस प्रकार बोली 'हे देवानुप्रिय! आपने जो कहा वह यथार्थ है, सत्य है, सन्देह रहित है। मुझे इच्छित और स्वीकृत है, पुनः पुनः इच्छित और स्वीकृत है।' इस प्रकार स्वप्न के अर्थ को स्वीकार कर बलराजा की अनुमति से भद्रासन से उठी और शीघ्रता एवं चपलता रहित गति से अपने शयनागार में आकर शय्या पर बैठी। रानी विचार करने लगी—'यह मेरा उत्तम, प्रधान और मंगलरूप स्वप्न, दूसरे पाप-स्वप्नोंसे विनष्ट न हो जाय', अतः वह देव-गुरु सम्बन्धी प्रशस्त और मंगल रूप धार्मिक कथाओं और विचारणाओं से स्वप्न जागरण करती हुई बैठी रही।

इसके अनन्तर बलराजा ने कौटुम्बिक (सेवक) पुरुषों को बुलाकर इस प्रकार कहा–'हे देवानुप्रियो! तुम शीघ्र ही बाहरकी उपस्थानशाला में, विशेष रूप से गन्धोदक का छिड़काव कर के स्वच्छ करो और लीप कर शुद्ध करो। सुगन्धित

और उत्तम पांच वर्ण के पुष्पों से अलंकृत करो। उत्तम कालागुरु और कुन्दरुक धूप से यावत् सुगन्धित गुटिका के समान करो-कराओ, फिर सिंहासन रक्खो और मुझे निवेदन करो। कौटुम्बिक पुरुषों ने राजा की आज्ञानुसार कार्य करके निवेदन किया।

प्रातःकाल के समय बलराजा अपनी शय्या से उठे और पादपीठसे नीचे उतरे। फिर वे व्यायामशाला में गये। वहां के कार्य का तथा स्नानघरके कार्य का वर्णन औपपातिक सूत्रसे जानना चाहिये, यावत् चन्द्रके समान प्रियदर्शनी बनकर वह राजा स्नानघर से निकलकर बाहरी उपस्थानशालामें आया और पूर्व दिशाकी ओर मुंह करके सिंहासन पर बैठा। फिर अपनी बांयीं ओर ईशान-कोण में, श्वेत वस्त्रसे आच्छादित तथा सरसों आदि मांगलिक पदार्थों से उपचरित आठ भद्रासन रखवाये। तत्पश्चात् प्रभावती देवी के लिए अनेक प्रकार के मणि-रत्नोंसे सुशोभित, बहुमूल्य, विचित्र कला-कौशल युक्त दर्शनीय, ऐसी सूक्ष्म वस्त्र की एक यवनिका (पर्दा) लगवाई। उसके भीतर अनेक प्रकार के मणि रत्नोंसे रचित, विचित्र, गद्दीयुक्त, श्वेत वस्त्रसे आच्छादित तथा सुकोमल एक भद्रासन रखवाया। फिर बलराजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाकर इस प्रकार कहा-

'देवानुप्रियो! तुम शीघ्र जाओ और ऐसे स्वप्नपाठकों को बुलाओ—जो अष्टांग महानिमित्तके सूत्र एवं अर्थ के ज्ञाता हों और विविध शास्त्रों में कुशल हों।' राजाज्ञाको स्वीकार कर कौटुम्बिक पुरुष शीघ्र, चपलता युक्त, वेगपूर्वक एवं तीव्र गतिसे हस्तिनापुर नगरके मध्य होकर स्वप्न-पाठकोंके घर पहुंचे और उन्हें राजाज्ञा सुनाई। स्वप्न-पाठक प्रसन्न हुए। उन्होंने स्नान करके शरीर को अलंकृत किया। वे मस्तक पर सर्षप और हरी दूबसे मंगल करके अपने-अपने घर से निकले और राज्य-प्रासाद के द्वार पर पहुंचे। वे सभी स्वप्न-पाठक एकत्रित होकर बाहर की उपस्थानशाला में आये। उन्होंने हाथ जोड़कर जय-विजय शब्दों से बलराजा को बधाई दी। बल राजासे वन्दित, पूजित, सत्कृत और सम्मानित किये हुए वे स्वप्न-पाठक, पहले से बिछाये हुये उन भद्रासनों पर बैठे। बल राजा ने प्रभावती देवीको बुलाकर यवनिकाके भीतर बिठाया। तत्पश्चात् हाथों में पुष्प और फल लेकर बलराजा ने अतिशय विनयपूर्वक उन स्वप्न-पाठकों से इस प्रकार कहा—"हे देवानुप्रियो! आज प्रभावती देवी ने तथारूप के वासगृह में शयन करते हुए सिंह का स्वप्न देखा। देवानुप्रियो! इस उदार स्वप्न का क्या फल होगा?"

बलराजासे प्रश्न सुनकर, अवधारण कर, वे स्वप्न-पाठक प्रसन्न हुए। उन्होंने उस स्वप्नके विषयमें सामान्य विचार किया, विशेष विचार किया, स्वप्नके अर्थ का निश्चय किया, परस्पर एक दूसरे के साथ विचार-विमर्श किया और स्वप्न का अर्थ स्वयं जानकर, दूसरे से ग्रहण कर, तथा शंका समाधान करके अर्थ का

निश्चय किया और बलराजाको सम्बोधित करते हुए इस प्रकार बोले–"हे देवानु-प्रिय! स्वप्न-शास्त्र में बयालीस सामान्य स्वप्न और तीस महा स्वप्न—इस प्रकार कुल बहत्तर प्रकारके स्वप्न कहे हैं। इनमें से तीर्थंकर तथा चक्रवर्ती की माताएं, जब तीर्थंकर या चक्रवर्ती गर्भ में आते हैं, तब ये चौदह महास्वप्न देखती हैं। यथा—१ हाथी, २ वृषभ, ३ सिंह, ४ अभिषेक की हुई लक्ष्मी, ५ पुष्पमाला, ६ चन्द्र, ७ सूर्य, ८ ध्वजा, ९ कुम्भ (कलश), १० पद्मसरोवर, ११ समुद्र, १२ विमान अथवा भवन, १३ रत्नराशि और १४ निर्धूम अग्नि। इन चौदह महा-स्वप्नोंमें से वासुदेवकी माताएं, जब वासुदेव गर्भमें आते हैं, तब सात स्वप्न देखती हैं, बलदेव की माता, जब बलदेव गर्भ में आते हैं, तब इन चौदह महास्वप्नोंमें से चार महास्वप्न देखती हैं और माण्डलीक राजा की माता, इन चौदह महास्वप्नों में से कोई एक महा स्वप्न देखती है। देवानुप्रिय! प्रभावती देवी ने एक महास्वप्न देखा है। यह स्वप्न उदार, कल्याणकारी, आरोग्य,, तुष्टि एवं मगलकारी है, सुख समृद्धि का सूचक है। इससे आपको अर्थ लाभ, भोग लाभ, पुत्र लाभ और राज्य लाभ होगा। नव मास और साढ़े सात दिन व्यतीत होने पर प्रभावती देवी आपके कुल में ध्वज समान पुत्रको जन्म देगी। वह बालक बाल्यावस्था को पार कर युवक होने पर राज्य का अधिपति होगा, अथवा भावितात्मा अनगार होगा। अतः हे देवानुप्रिय! प्रभावती देवीने यह स्वप्न उदार यावत् महाकल्याणकारी देखा है।'

स्वप्नपाठकों से उपरोक्त स्वप्न-फल सुनकर एवं अवधारण करके बलराजा हर्षित हुआ, संतुष्ट हुआ और हाथ जोड़ कर यावत् स्वप्नपाठकों से इस प्रकार बोला—"हे देवानुप्रियो! जैसा आपने स्वप्नफल बताया वह उसी प्रकार है"—इस प्रकार कह कर स्वप्न का अर्थ भली प्रकार से स्वीकार किया। इसके पश्चात् स्वप्नपाठकों को विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम, पुष्प, वस्त्र, गन्ध, माला और अलंकारों से सत्कृत किया, सम्मानित किया और जीविका के योग्य बहुत प्रीतिदान दिया और उन्हें जाने की आज्ञा दी। इसके बाद अपने सिंहासनसे उठकर बलराजा प्रभावती रानी के पास आया, और स्वप्नपाठकों से सुना हुआ स्वप्न का अर्थ कह सुनाया। यावत्"हे देवानुप्रिये! तुमने एक उदार महास्वप्न देखा है, जिससे तुम्हारे एक पुत्र उत्पन्न होगा। वह राज्याधिपति होगा, अथवा भावितात्मा अनगार होगा। देवानुप्रिये! तुमने एक उदार यावत् मांगलिक स्वप्न देखा है।" इस प्रकार इष्ट, कान्त, प्रिय यावत् मधुरवाणी से दो तीन बार कहकर प्रभावती देवी की प्रशंसा की।

बलराजासे उपर्युक्त अर्थ सुनकर, अवधारण कर प्रभावती देवी हर्षित एवं सन्तुष्ट हुई, यावत् हाथ जोड़ कर इस प्रकार बोली—"हे देवानुप्रिय! जैसा आप कहते हैं वैसा ही है।" इस प्रकार कहकर स्वप्न के अर्थ को भली प्रकार

ग्रहण किया और वलराजा की अनुमति से अनेक प्रकार के मणि-रत्नों की कारीगरी से युक्त उस भद्रासन से उठी और शीघ्रता तथा चपलता रहित यावत् हंस-गति से चलकर अपने भवन में आई।

स्नान करके प्रभावती देवी अलंकृत एवं विभूषित हुई। वह गर्भ का पालन करने लगी। वह अत्यन्त शीतल, अत्यन्त उष्ण, अत्यन्त तिक्त (तीखा), अत्यन्त कटु, अत्यन्त कषैला, अत्यन्त खट्टा और अत्यन्त मधुर पदार्थ न खाती, परन्तु ऋतु योग्य सुखकारक भोजन करती। वह गर्भके लिये हितकारी, पथ्यकारी, मित और पोषण करने वाले पदार्थ यथा-समय ग्रहण करने लगी तथा वैसे ही वस्त्र और माला, पुष्प, आभरण आदि धारण करने लगी। यथा-समय उसे जो जो दोहद उत्पन्न हुए, वे सभी सम्मानके साथ पूर्ण किये गये। वह रोग, मोह, भय और परित्रास रहित होकर गर्भ का सुखपूर्वक पोषण करने लगी। इस प्रकार नवमास और साढ़े सात दिन पूर्ण होने पर प्रभावती देवी ने सुकुमाल हाथ पैर वाले दोष रहित, प्रतिपूर्ण पञ्चेन्द्रिय युक्त शरीर वाले तथा लक्षण, व्यञ्जन और गुणों से युक्त यावत् चन्द्र समान सौम्य आकृति वाले, कान्त, प्रिय-दर्शन और सुन्दर रूप वाले पुत्र को जन्म दिया।

पुत्र जन्म होने पर प्रभावती देवी की सेवा करने वाली दासियां, पुत्र-जन्म जानकर वलराजाके पास आई और हाथ जोड़कर जय विजय शब्दों से बधाई दी। उन्होंने राजा से निवेदन किया—"हे देवानुप्रिय ! प्रभावती देवी की प्रीति के लिये हम आपसे पुत्र-जन्मरूप प्रिय समाचार निवेदन करती हैं। यह आपके लिये प्रिय होवे।" दासियों से प्रिय सम्वाद सुनकर वल राजा हर्षित एवं सन्तुष्ट हुआ, यावत् मेघ की धारासे सिंचित कदम्ब-पुष्प के समान रोमाञ्चित हुआ। नरेश ने अपने मुकुटको छोड़कर धारण किये हुए शेष सभी अलंकार उन दासियों को पारितोषिक स्वरूप दे दिये। फिर श्वेत रजतमय और निर्मल पानी से भरा हुआ कलश लेकर दासियों का मस्तक धोया और जीविका के योग्य वहुत-सा प्रीतिदान देकर उन्हें सत्कृत और सम्मानित कर विसर्जित किया ॥४२७॥

इसके बाद वलराजा ने कौटुम्बिक पुरुषोंको बुलाया और कहा–"हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही वन्दियोंको मुक्त करो, मान (माप) और उन्मान (तोल) की वृद्धि करो। हस्तिनापुर नगरके बाहर और भीतर छिड़काव करो, स्वच्छ करो, सम्मार्जित करो, शुद्धि करो, कराओ। तत्पश्चात् यूपसहस्र और चक्रसहस्रको पूजा महिमा और सत्कार के योग्य करो। यह सब कार्य करके मुझे निवेदन करो। इसके बाद वलराजा की आज्ञानुसार कार्य करके उन सेवक पुरुषों ने आज्ञा पालन का निवेदन किया। राजा ने व्यायामशाला में जाकर व्यायाम किया और स्नान किया। दस दिन के लिए प्रजा से शुल्क (मूल्य या कर विशेप) और कर लेना रोक दिया।

क्रय, विक्रय, मान, उन्मान का निषेध किया, और ऋणियों को ऋण-मुक्त किया तथा दण्ड और कुदण्ड का निषेध किया। प्रजा के घर में सुभटों के प्रवेश को वन्द कर दिया और धरणा देने का निषेध कर दिया। इसके अतिरिक्त गणिकाओं और नाटिकाओं से युक्त तथा अनेक तालानुचरों से निरन्तर वजाई जाती हुई मृदंगों से युक्त, तथा प्रमोद एवं क्रीड़ापूर्वक सभी लोगों के साथ दस दिन तक पुत्र महोत्सव मनाया जाता रहा। इन दस दिनों में वलराजा सैकड़ों, हजारों, लाखों रुपयोंके खर्च वाले कार्य करता हुआ, दान देता हुआ, दिलवाता हुआ एवं इसी प्रकार सैकड़ों, हजारों, लाखों रुपयों की भेंट स्वीकार करता हुआ विचरता रहा। फिर वालक के माता-पिता ने पहले दिन कुल मर्यादा के अनुसार क्रिया की। तीसरे दिन वालक को चन्द्र और सूर्य के दर्शन कराये। छठे दिन जागरणारूप उत्सव विशेष किया। ग्यारह दिन व्यतीत होने पर अशुचिकर्म की निवृत्ति की। वारहवें दिन विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम तैयार कर (ग्यारहवें शतक के नौवें उद्देशक में कथित शिवराजा के समान) सभी क्षत्रिय ज्ञातिजनों को निमंत्रित कर भोजन कराया। फिर उन सब के समक्ष अपने वाप-दादा आदि से चली आती हुई कुल परम्परा के अनुसार कुल के योग्य, कुलोचित, कुलरूप सन्तान की वृद्धि करने वाला, गुणयुक्त और गुणनिष्पन्न नाम देते हुए कहा—'क्योंकि यह वालक वलराजा का पुत्र और प्रभावती देवी का आत्मज है, इसलिए इसका नाम 'महावल' रक्खा जाय।' अतएव वालकके माता-पिताने उसका नाम महावल रखा।

महावलकुमार का—१ क्षीरधात्री, २ मज्जनधात्री, ३ मण्डनधात्री, ४ क्रीडनधात्री, ५ अंकधात्री—इन पांच धात्रियों द्वारा राजप्रश्नीय सूत्र में वर्णित दृढ़प्रतिज्ञ कुमारके समान पालन किया जाने लगा। वह कुमार वायु और व्याघात रहित स्थानमें रही हुई चम्पक लताके समान अत्यन्त सुखपूर्वक वढ़ने लगा। महावल कुमारके माता-पिताने अपनी कुल-मर्यादाके अनुसार जन्म-दिनसे लेकर क्रमशः सूर्य-चन्द्र दर्शन, जागरण, नामकरण, घुटनोंके वल चलाना, पैरोंसे चलाना, अन्न भोजन प्रारम्भ करना, ग्रास वढ़ाना, संभाषण करना, कान विंधाना, वर्षगांठ मनाना, चोटी रखवाना, उपनयन (संस्कृत) करना, इत्यादि वहुत से गर्भधारण जन्म-महोत्सव आदि कौतुक किये।

जव महावल कुमार आठ वर्ष से कुछ अधिक उम्रका हुआ, तो माता-पिता ने प्रशस्त, तिथि, करण, नक्षत्र और मुहूर्तमें पढ़नेके लिये कलाचार्यके यहां भेजा, इत्यादि सारा वर्णन दृढ़प्रतिज्ञ कुमार के अनुसार कहना चाहिये यावत् महावल कुमार भोग भोगनेमें समर्थ हुआ। महावल कुमार को भोग योग्य जानकर माता-पिताने उसके लिये उत्तम आठ प्रासाद वनवाये। वे प्रासाद 'राजप्रश्नीय' सूत्र में उल्लिखित वर्णन के अनुसार अतिशय ऊंचे यावत् अत्यन्त सुन्दर थे। उनके ठीक

मध्य में एक बड़ा भवन तैयार करवाया। उस भवन में सैंकड़ों खम्भे लगे हुये थे, इत्यादि राजप्रश्नीय सूत्र के प्रेक्षागृह मण्डप वर्णन के समान जान लेना चाहिये यावत् वह अत्यन्त सुन्दर था ।।४२८।।

शुभ तिथि, करण, दिवस, नक्षत्र और मुहूर्तमें महाबल कुमार को स्नान करवा कर अलंकारोंसे अलंकृत एवं विभूषित किया। फिर सधवा स्त्रियों के द्वारा अभ्यंगन, विलेपन, मण्डन, गीत, तिलक आदि मांगलिक कार्य किये गये। तत्पश्चात् समान त्वचा वाली, समान उम्र वाली, समान रूप, लावण्य, यौवन और गुणों से युक्त एवं समान राजकुलसे लाई हुई उत्तम आठ राजकन्याओंके साथ एक ही दिन में पाणिग्रहण करवाया गया।

विवाहोपरान्त महाबलकुमार के माता-पिता ने अपनी आठों पुत्रवधुओं के लिए प्रीतिदान दिया। यथा—आठ कोटि हिरण्य(चांदी के सिक्के), आठ कोटि सोनैया (सोने के सिक्के), आठ श्रेष्ठ मुकुट, आठ श्रेष्ठ कुन्डलयुगल, आठ उत्तम हार, आठ उत्तम अर्द्ध हार, आठ उत्तम एकसरा हार, आठ मुक्तावली हार, आठ कनकावली हार, आठ रत्नावली हार, आठ उत्तम कड़ोंकी जोड़ी, आठ उत्तम त्रुटित (बाजूबन्द) की जोड़ी, उत्तम आठ रेशमी वस्त्र युगल, आठ उत्तम सूती वस्त्रयुगल, आठ टसर वस्त्र युगल, आठ पट्ट युगल, आठ दुकूल युगल, आठ श्री, आठ ह्री, आठ धी, आठ कीर्ति, आठ बुद्धि, और आठ लक्ष्मी देवियों के चित्र, आठ नन्द, आठ भद्र, आठ ताड़ वृक्ष, ये सब रत्नमय जानने चाहिएं। अपने भवन में केतु (चिन्ह रूप) आठ उत्तम ध्वज, दस हजार गायों का एक व्रज (गोकुल) ऐसे आठ उत्तम गोकुल, बत्तीस मनुष्यों द्वारा किया जाने वाला एक नाटक होता है,—ऐसे आठ उत्तम नाटक, आठ उत्तम घोड़े, ये सब रत्नमय जानने चाहिएं। भाण्डागार समान आठ रत्नमय उत्तमोत्तम हाथी, भाण्डागार—श्रीघर समान सर्व रत्नमय आठ उत्तम यान, आठ उत्तम युग्म (एक प्रकार का वाहन), आठ शिविका, आठ स्यन्दमानिका, आठ गिल्ली (हाथी की अम्बाड़ी), आठ थिल्लि (घोड़े का पलाण—काठी), आठ उत्तम विकट (खुले हुए) यान, आठ पारियानिक (क्रीड़ा करने के) रथ, आठ संग्रामिक रथ, आठ उत्तम अश्व, आठ उत्तम हाथी, दस हजार कुल—परिवार जिसमें रहते हों ऐसे आठ गांव, आठ उत्तम दास, आठ उत्तम दासियां, आठ उत्तम किंकर, आठ कंचुकी (द्वार रक्षक), आठ वर्षधर (अन्तःपुरके रक्षक खोजा), आठ महत्तरक (अन्तःपुर के कार्य का विचार करने वाले), आठ सोने के, आठ चांदी के और आठ सोने-चांदी के अवलम्बनदीपक (लटकने वाले दीपक—हण्डियां), आठ सोने के, आठ चांदी के, आठ सोने-चांदी के उत्कञ्चन दीपक (दण्ड युक्त दीपक—मशाल), इसी प्रकार सोना, चांदी और सोना-चांदी, इन तीनों प्रकार के आठ पञ्जर दीपक।

सोना, चांदी और सोना-चांदी के आठ थाल, आठ थालियां, आठ स्थासक (तसलियां), आठ मल्लक (कटोरे), आठ तलिका (रकावियां), आठ कलाचिका (चम्मच), आठ तापिकाहस्तक (संडासियां), आठ तवे, आठ पादपीठ (पैर रखने के वाजोठ), आठ भीषिका (आसन विशेष), आठ करोटिका (लोटा), आठ पलंग, आठ प्रतिशय्या (छोटे पलंग), आठ हंसासन, आठ क्रौंचासन, आठ गरुड़ासन, आठ उन्नतासन, आठ अवनतासन, आठ दीर्घासन, आठ भद्रासन, आठ पक्षासन, आठ मकरासन, आठ पद्मासन, आठ दिक्स्वस्तिकासन, आठ तेल के डिब्बे, इत्यादि सभी राजप्रश्नीय सूत्र के अनुसार जानने चाहियें, यावत् आठ सर्षप के डिब्बे, आठ कुब्जा दासियां इत्यादि सभी औपपातिक सूत्रके अनुसार जानने चाहियें, यावत् आठ पारस देश की दासियां, आठ छत्र, आठ छत्रधारिणी दासियां, आठ चामर, आठ चामरधारिणी दासियां, आठ पंखे, आठ पंखाधारिणी दासियां, आठ करो-टिका (ताम्बूल के करण्डिए), आठ करोटिकाधारिणी दासियां, आठ क्षीरधात्रियां (दूध पिलाने वाली धाय), यावत् आठ अङ्कधात्रियां, आठ अंगमर्दिका (शरीरका अल्प मर्दन करने वाली दासियां), आठ उन्मर्दिका (शरीर का अधिक मर्दन करने वाली दासियां), आठ स्नान कराने वाली दासियां, आठ अलङ्कार पहनाने वाली दासियां, आठ चन्दन घिसने वाली दासियां, आठ ताम्बूलचूर्ण पीसने वाली, आठ कोष्ठागार की रक्षा करने वाली, आठ परिहास करने वाली, आठ सभा में पास रहने वाली, आठ नाटक करने वाली, आठ कौटुम्बिक (साथ जाने वाली), आठ रसोई वनाने वाली, आठ भण्डारकी रक्षा करने वाली, आठ तरुणियां, आठ पुष्प धारण करने वाली (मालिन), आठ पानी भरने वाली, आठ शय्या विछाने वाली, आठ आभ्यन्तर और आठ वाह्य प्रतिहारियां, आठ माला बनाने वाली और आठ पेषण करने वाली दासियां दीं। इसके अतिरिक्त वहुत सा हिरण्य, सुवर्ण, कांस्य, वस्त्र तथा विपुल धन, कनक यावत् सारभूत धन दिया, जो सात पीढ़ी तक इच्छापूर्वक देने और भोगनेके लिये पर्याप्त था। इसी प्रकार महावल कुमारने भी प्रत्येक स्त्री को एक-एक हिरण्य कोटि, एक-एक स्वर्ण कोटि, इत्यादि पूर्वोक्त सभी वस्तुएं दीं, यावत् एक-एक पेषणकारी दासी, तथा वहुतसा हिरण्य-सुवर्णादि विभक्त कर दिया। वह महावलकुमार नौवें शतक के तेतीसवें उद्देशक में कथित जमालिकुमार के वर्णन के अनुसार उस उत्तम प्रासाद में अपूर्व भोग भोगता हुआ रहने लगा ॥४२९॥

उस काल उस समय में तेरहवें तीर्थंकर भगवान् विमलनाथ स्वामीके प्रपौत्र (प्रशिष्य-शिष्यानुशिष्य) धर्मघोष नामक अनगार थे। वे जाति-सम्पन्न इत्यादि केशी स्वामीके समान थे, यावत् पांच सौ साधुओंके परिवारके साथ अनुक्रमसे एक गांवसे दूसरे गांव विहार करते हुए हस्तिनापुर नगरके सहस्राम्र वन नामक उद्यान

में पधारे और यथायोग्य अवग्रह ग्रहण करके संयम और तपसे अपनी आत्माको भावित करते हुए विचरने लगे। हस्तिनापुर निवासियोंको मुनि आगमन ज्ञात हुआ, यावत् परिषद् पर्युपासना करने लगी।

दर्शनार्थ जाते हुए बहुत-से मनुष्यों का कोलाहल सुनकर जमालीकुमारके समान महाबलकुमारने अपने कञ्चुकी पुरुषोंको बुलाकर इसका कारण पूछा। कञ्चुकी पुरुषोंने महाबलकुमारसे हाथ जोड़कर विनयपूर्वक निवेदन किया— 'हे देवानुप्रिय ! तीर्थंकर विमलनाथ भगवान्के प्रशिष्य धर्मघोष अनगार यहां पधारे हैं।' महाबलकुमार भी वन्दना करने गया और केशी स्वामीके समान धर्मघोष अनगार ने धर्मोपदेश दिया। धर्मोपदेश सुनकर महाबलकुमारको वैराग्य उत्पन्न हुआ। घर आकर माता-पितासे कहा—'हे माता-पिता ! मैं धर्मघोष अनगारके पास अनगार-धर्म स्वीकार करना चाहता हूं।' जमालीकुमारके समान महाबलकुमार और उसके माता-पिता में उत्तर-प्रत्युत्तर हुए, यावत् उन्होंने कहा—'हे पुत्र ! यह विपुल धन और उत्तम राजकुलमें उत्पन्न हुई, कलाओंमें कुशल, आठ बालाओंको छोड़कर तुम कैसे दीक्षा लेते हो, इत्यादि यावत् माता-पिताने अनिच्छापूर्वक महाबलकुमारसे इस प्रकार कहा—"हे पुत्र ! हम एक दिनके लिए भी तुम्हारी राज्य-लक्ष्मीको देखना चाहते हैं।" माता-पिता की बात सुनकर महाबलकुमार चुप रहे। इसके पश्चात् माता-पिताने ग्यारहवें शतकके नौवें उद्देशकमें वर्णित शिवभद्रके समान, महाबलका राज्याभिषेक किया और महाबलकुमारको जय-विजय शब्दोंसे बधाई दी, तथा इस प्रकार कहा—'हे पुत्र ! कहो हम तुम्हें क्या देवें ? तुम्हारे लिये क्या करें,' इत्यादि वर्णन जमालीके समान जानना चाहिये। महाबलकुमारने धर्मघोष अनगारके पास प्रव्रज्या अंगीकार कर सामायिक आदि चौदह पूर्वों का ज्ञान पढ़ा और उपवास, बेला, तेला आदि विचित्र तप द्वारा आत्माको भावित करते हुए सम्पूर्ण बारह वर्ष तक श्रमण-पर्यायका पालन किया, और मासिक संलेखनासे साठ भक्त अनशन का छेदन कर, आलोचना प्रतिक्रमण कर, एवं समाधियुक्त कालके समय काल करके ऊर्ध्वलोकमें चन्द्र और सूर्यसे भी ऊपर बहुत दूर, अम्बड़के समान यावत् ब्रह्मदेवलोकमें देवपने उत्पन्न हुआ। वहां कितने ही देवोंकी दस सागरोपम की स्थिति कही गई है, तदनुसार महाबल देव की भी दस सागरोपमकी स्थिति कही गई है। 'हे सुदर्शन ! पूर्वभवमें तेरा जीव महाबल था। वहां ब्रह्मदेवलोक की दस सागरोपम की स्थिति पूर्ण कर और देवलोक का आयुष्य, भव और स्थितिका क्षय होने पर वहांसे चवकर सीधे इस वाणिज्यग्राम नगरके सेठ-कुल में तू पुत्र रूपसे उत्पन्न हुआ है' ॥४३०॥

'हे सुदर्शन ! बालभावसे मुक्त होकर तू विज्ञ और परिणत वयवाला हुआ, यौवन वय प्राप्त होकर तथाप्रकारके स्थविरोंके पास केवलिप्ररूपित धर्म

सुना। वह धर्म तुझे इच्छित प्रतीच्छित और रुचिकर हुआ। सुदर्शन ! अभी जो तू कर रहा है वह अच्छा कर रहा है। हे सुदर्शन ! इसलिये ऐसा कहा जाता है कि पल्योपम और सागरोपम का क्षय और अपचय होता है।

श्रमण भगवान् महावीर स्वामीसे धर्म सुनकर और हृदयमें धारण कर सुदर्शन सेठको शुभ अध्यवसाय, शुभ परिणाम और विशुद्ध लेश्यासे तदावरणीय कर्मों का क्षयोपशम हुआ और ईहा, अपोह, मार्गणा और गवेषणा करते हुए संज्ञी पूर्वजातिस्मरण (ऐसा ज्ञान जिससे निरन्तर संलग्न अपने संज्ञी रूपसे किये हुए पूर्वभव देखे जा सकें) ज्ञान उत्पन्न हुआ, जिससे भगवान् द्वारा कहे हुए अपने पूर्वभव को स्पष्टरूप से जानने लगा। इससे सुदर्शन सेठ को दुगुनी श्रद्धा और संवेग उत्पन्न हुआ। उसके नेत्र आनन्दाश्रुओं से परिपूर्ण हो गये। तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर स्वामीको तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिणा एवं वन्दना नमस्कार करके इस प्रकार वोला–"हे भगवन् ! आप जैसा कहते हैं,वैसा ही है,सत्य है, यथार्थ है।" इस प्रकार कहकर सुदर्शन सेठ ने नौवें शतक के तेतीसवें उद्देशक में वर्णित ऋषभदत्त की तरह प्रव्रज्या अंगीकार की। चौदह पूर्व का ज्ञान पढ़ा। सम्पूर्ण वारह वर्ष तक श्रमण-पर्यायका पालन किया यावत् समस्त दुःखोंसे रहित हुए। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है।...ऐसा कहकर यावत् गौतम स्वामी विचरते हैं ॥४३१॥

॥ महावल-चरित्र समाप्त ॥

॥ ग्यारहवें शतक का ग्यारहवां उद्देशक समाप्त ॥

शतक ११ उद्देशक १२—श्रमणोपासक ऋषिभद्रपुत्र की धर्मचर्चा०

उस काल उस समयमें आलभिका नाम की नगरी थी (वर्णन)। वहां शंखवन नामक उद्यान था (वर्णन)। उस आलभिका नगरी में 'ऋषिभद्रपुत्र' प्रमुख वहुत-से श्रमणोपासक रहते थे। वे आढ्य यावत् अपरिभूत थे। वे जीवाजीवादि तत्त्वों के ज्ञाता थे। किसी समय एक स्थान पर एकत्रित होकर वैठे हुए उन श्रमणोपासकों में इस प्रकार का वार्तालाप हुआ—"हे आर्यो ! देवलोकोंमें देवोंकी कितनी स्थिति कही गई है ?" प्रश्न सुनकर देवोंकी स्थिति के विषयके ज्ञाता 'ऋषिभद्र-पुत्र' ने उन श्रमणोपासकोंको इस प्रकार कहा–"हे आर्यो ! देवोंकी जघन्य स्थिति दस हजार वर्षकी कही गई है। उसके वाद एक समय अधिक, दो समय अधिक यावत् दस समय अधिक, संख्यात समय अधिक और असंख्यात समय अधिक, इस

में पधारे और यथायोग्य अवग्रह ग्रहण करके संयम और तपसे अपनी आत्माको भावित करते हुए विचरने लगे। हस्तिनापुर निवासियोंको मुनि आगमन ज्ञात हुआ, यावत् परिषद् पर्युपासना करने लगी।

दर्शनार्थ जाते हुए बहुत-से मनुष्यों का कोलाहल सुनकर जमालीकुमारके समान महावलकुमारने अपने कञ्चुकी पुरुषोंको बुलाकर इसका कारण पूछा। कञ्चुकी पुरुषोंने महावलकुमारसे हाथ जोड़कर विनयपूर्वक निवेदन किया—'हे देवानुप्रिय! तीर्थंकर विमलनाथ भगवान्‌के प्रशिष्य धर्मघोष अनगार यहां पधारे हैं।' महावलकुमार भी वन्दना करने गया और केशी स्वामीके समान धर्मघोष अनगार ने धर्मोपदेश दिया। धर्मोपदेश सुनकर महावलकुमारको वैराग्य उत्पन्न हुआ। घर आकर माता-पितासे कहा—'हे माता-पिता! मैं धर्मघोष अनगारके पास अनगार-धर्म स्वीकार करना चाहता हूं।' जमालीकुमारके समान महावलकुमार और उसके माता-पिता में उत्तर-प्रत्युत्तर हुए, यावत् उन्होंने कहा—'हे पुत्र! यह विपुल धन और उत्तम राजकुलमें उत्पन्न हुई, कलाओंमें कुशल, आठ वालाओंको छोड़कर तुम कैसे दीक्षा लेते हो, इत्यादि यावत् माता-पिताने अनिच्छापूर्वक महावलकुमारसे इस प्रकार कहा—"हे पुत्र! हम एक दिनके लिए भी तुम्हारी राज्य-लक्ष्मीको देखना चाहते हैं।" माता-पिता की वात सुनकर महावलकुमार चुप रहे। इसके पश्चात् माता-पिताने ग्यारहवें शतकके नौवें उद्देशकमें वर्णित शिवभद्रके समान, महावलका राज्याभिषेक किया और महावलकुमारको जय-विजय शब्दोंसे बधाई दी, तथा इस प्रकार कहा—'हे पुत्र! कहो हम तुम्हें क्या देवें? तुम्हारे लिये क्या करें,' इत्यादि वर्णन जमालीके समान जानना चाहिये। महावलकुमारने धर्मघोष अनगारके पास प्रव्रज्या अंगीकार कर सामायिक आदि चौदह पूर्वों का ज्ञान पढ़ा और उपवास, वेला, तेला आदि विचित्र तप द्वारा आत्माको भावित करते हुए सम्पूर्ण वारह वर्ष तक श्रमण-पर्यायका पालन किया, और मासिक संलेखनासे साठ भक्त अनशन का छेदन कर, आलोचना प्रतिक्रमण कर, एवं समाधियुक्त कालके समय काल करके ऊर्ध्वलोकमें चन्द्र और सूर्यसे भी ऊपर वहुत दूर, अम्वड़के समान यावत् ब्रह्मदेवलोकमें देवपने उत्पन्न हुआ। वहां कितने ही देवोंकी दस सागरोपम की स्थिति कही गई है, तदनुसार महावल देव की भी दस सागरोपमकी स्थिति कही गई है। 'हे सुदर्शन! पूर्वभवमें तेरा जीव महावल था। वहां ब्रह्मदेवलोक की दस सागरोपम की स्थिति पूर्ण कर और देवलोक का आयुष्य, भव और स्थितिका क्षय होने पर वहांसे चवकर सीधे इस वाणिज्यग्राम नगरके सेठ-कुल में तू पुत्र रूपसे उत्पन्न हुआ है' ॥४३०॥

'हे सुदर्शन! वालभावसे मुक्त होकर तू विज्ञ और परिणत वयवाला हुआ, यौवन वय प्राप्त होकर तथाप्रकारके स्थविरोंके पास केवलिप्ररूपित धर्म

सुना। वह धर्म तुझे इच्छित प्रतीच्छित और रुचिकर हुआ। सुदर्शन ! अभी जो तू कर रहा है वह अच्छा कर रहा है। हे सुदर्शन ! इसलिये ऐसा कहा जाता है कि पल्योपम और सागरोपम का क्षय और अपचय होता है।

श्रमण भगवान् महावीर स्वामीसे धर्म सुनकर और हृदयमें धारण कर सुदर्शन सेठको शुभ अध्यवसाय, शुभ परिणाम और विशुद्ध लेश्यासे तदावरणीय कर्मों का क्षयोपशम हुआ और ईहा, अपोह, मार्गणा और गवेषणा करते हुए संज्ञी पूर्वजातिस्मरण (ऐसा ज्ञान जिससे निरन्तर संलग्न अपने संज्ञी रूपसे किये हुए पूर्वभव देखे जा सकें) ज्ञान उत्पन्न हुआ, जिससे भगवान् द्वारा कहे हुए अपने पूर्वभव को स्पष्टरूप से जानने लगा। इससे सुदर्शन सेठ को दुगुनी श्रद्धा और संवेग उत्पन्न हुआ। उसके नेत्र आनन्दाश्रुओं से परिपूर्ण हो गये। तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर स्वामीको तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिणा एवं वन्दना नमस्कार करके इस प्रकार बोला–"हे भगवन् ! आप जैसा कहते हैं,वैसा ही है,सत्य है, यथार्थ है।" इस प्रकार कहकर सुदर्शन सेठ ने नौवें शतक के तेतीसवें उद्देशक में वर्णित ऋषभदत्त की तरह प्रव्रज्या अंगीकार की। चौदह पूर्व का ज्ञान पढ़ा। सम्पूर्ण बारह वर्ष तक श्रमण-पर्यायका पालन किया यावत् समस्त दुःखोंसे रहित हुए। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है।···ऐसा कहकर यावत् गौतम स्वामी विचरते हैं ॥४३१॥

॥ महावल-चरित्र समाप्त ॥

॥ ग्यारहवें शतक का ग्यारहवां उद्देशक समाप्त ॥

शतक ११ उद्देशक १२—श्रमणोपासक ऋषिभद्रपुत्र की धर्मचर्चा०

उस काल उस समयमें आलभिका नाम की नगरी थी (वर्णन)। वहां शंखवन नामक उद्यान था (वर्णन)। उस आलभिका नगरी में 'ऋषिभद्रपुत्र' प्रमुख वहुत-से श्रमणोपासक रहते थे। वे आढ्य यावत् अपरिभूत थे। वे जीवाजीवादि तत्त्वों के ज्ञाता थे। किसी समय एक स्थान पर एकत्रित होकर वैठे हुए उन श्रमणोपासकों में इस प्रकार का वार्तालाप हुआ—"हे आर्यो ! देवलोकोंमें देवोंकी कितनी स्थिति कही गई है ?" प्रश्न सुनकर देवोंकी स्थिति के विषयके ज्ञाता 'ऋषिभद्र-पुत्र' ने उन श्रमणोपासकोंको इस प्रकार कहा–"हे आर्यो ! देवोंकी जघन्य स्थिति दस हजार वर्षकी कही गई है। उसके वाद एक समय अधिक, दो समय अधिक यावत् दस समय अधिक, संख्यात समय अधिक और असंख्यात समय अधिक, इस

प्रकार बढ़ते हुए उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की स्थिति कही गई है। इसके आगे अधिक स्थिति वाले देव और देवलोक नहीं हैं।" ऋषिभद्रपुत्र श्रमणोपासक के उपरोक्त कथन पर उन श्रमणोपासकों ने श्रद्धा, प्रतीति और रुचि नहीं की और अपने-अपने स्थान पर चले गये ॥४३२॥

उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी वहां पधारे यावत् परिषद् उपासना करने लगी। तुंगिका नगरीके श्रावकोंके समान वे श्रमणोपासक भी भगवान् का आगमन सुनकर हर्षित और सन्तुष्ट हुए, यावत् भगवान्की पर्युपासना करने लगे। भगवान् ने उन श्रमणोपासकों को और आई हुई महापरिषद् को यावत् 'आज्ञा के आराधक होवें'–यहां तक धर्मोपदेश दिया।

श्रमण भगवान् महावीर स्वामीसे धर्मोपदेश सुनकर और हृदय में धारण कर वे श्रमणोपासक हर्षित एवं सन्तुष्ट हुए। उन्होंने खड़े होकर भगवान् को वन्दना नमस्कार किया और इस प्रकार पूछा—"हे भगवन्! ऋषिभद्रपुत्र श्रमणोपासक हमें इस प्रकार कहता है यावत् प्ररूपणा करता है कि 'देवलोकों में देवोंकी जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की कही गई है, इसके पश्चात् एक-एक समय अधिक यावत् उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागरोपम की कही गई है। इसके बाद देव और देवलोक व्युच्छिन्न हो जाते हैं,' तो भगवन्! यह बात किस प्रकार है?"

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने उन श्रमणोपासकों से कहा–"हे आर्यो! ऋषिभद्रपुत्र श्रमणोपासक तुम्हें कहता है यावत् प्ररूपणा करता है कि 'देवलोकोंमें देवों की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की कही गई है यावत् समयाधिक करते हुए उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागरोपम की कही गई है। इसके पश्चात् देव और देवलोक व्युच्छिन्न हो जाते हैं'—यह बात सत्य है। आर्यो! मैं भी इसी प्रकार कहता हूं यावत् प्ररूपणा करता हूं कि 'देवलोकों में देवों की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की है यावत् उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागरोपम की है। इसके पश्चात् देव और देवलोक व्युच्छिन्न हो जाते हैं,' यह बात सत्य है।" भगवान् से समाधान सुनकर, अवधारण कर और भगवान् को वन्दना नमस्कार कर वे श्रमणोपासक, ऋषिभद्रपुत्र श्रमणोपासक के समीप आये। उसे वन्दना नमस्कार किया और उसकी सत्य बात को न मानने रूप अपने अपराधके लिये विनयपूर्वक बारंबार क्षमायाचना करने लगे। फिर उन श्रमणोपासकों ने भगवान् से कई प्रश्न पूछे, उनके अर्थ ग्रहण किये और भगवान् को वन्दना नमस्कार कर अपने-अपने स्थान पर चले गये ॥४३३॥

तदुपरान्त भगवान् गौतम स्वामी ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना नमस्कार कर इस प्रकार पूछा–"भगवन्! क्या श्रमणोपासक ऋषिभद्रपुत्र अगारवास को त्याग कर आपके समीप अनगार प्रव्रज्या स्वीकार करने में समर्थ

है ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं, किन्तु वहुत से शीलव्रत, गुणव्रत, विरमणव्रत, प्रत्याख्यान और पौषधोपवासों से तथा यथा-योग्य स्वीकृत तपस्या द्वारा अपनी आत्माको भावित करता हुआ, वहुत वर्षो तक श्रमणोपासक पर्यायका पालन करेगा। फिर मासिक संलेखना द्वारा साठ भक्त अनशन का छेदन कर, आलोचना और प्रतिक्रमण कर, एवं समाधि प्राप्त कर, काल के समय काल करके सौधर्म कल्प में अरुणाभ नामक विमान में देवरूप से उत्पन्न होगा। वहां कितने ही देवों की चार पल्योपम की स्थिति कही गई है, उनमें ऋषिभद्रपुत्र देव की भी चार पल्योपम की स्थिति होगी।

भगवन् ! वह ऋषिभद्रपुत्र देव उस देवलोक का आयुष्य, भव और स्थिति क्षय होने पर कहां जायेगा, कहां उत्पन्न होगा ? गौतम ! वह महाविदेह क्षेत्र मे सिद्ध होगा यावत् सभी दुःखोंका अन्त करेगा। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है।… ऐसा कहकर गौतम स्वामी यावत् आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे। पश्चात् किसी समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी आलभिका नगरी के शंखवन उद्यान से निकलकर वाहर जनपद में विचरण करने लगे ॥४३४॥

उस काल उस समय में आलभिका नगरी थी (वर्णन)। वहां शंखवन नाम का उद्यान था (वर्णन)। उस शंखवन उद्यानसे थोड़ी दूर 'पुद्गल' नामक परिव्राजक रहता था। वह ऋग्वेद, यजुर्वेद, आदि यावत् वहुत से ब्राह्मण विषयक नयोंमें कुशल था। वह निरन्तर वेले-वेले की तपस्या करता हुआ आतापना भूमिमें दोनों हाथ ऊंचे करके आतापना लेता था। इस प्रकार तपस्या करते हुए उस 'पुद्गल' परिव्राजक को प्रकृति की सरलता आदि से शिव परिव्राजक के समान विभंग नामक अज्ञान उत्पन्न हुआ। उस विभंगज्ञानसे पांचवें ब्रह्म देवलोकमें रहे हुए देवोंकी स्थिति जानने देखने लगा। फिर उस 'पुद्गल' परिव्राजकको इस प्रकारका विचार उत्पन्न हुआ—"मुझे अतिशेष ज्ञानदर्शन उत्पन्न हुआ है, जिससे मैं जानता हूं कि देवलोकोंमें देवोंकी जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की है। फिर एक समय अधिक, दो समय अधिक यावत् असंख्य समय अधिक,इस प्रकार करते हुए उत्कृष्ट स्थिति दस सागरोपम की है। उसके वाद देव और देवलोक व्युच्छिन्न हो जाते हैं,"–इस प्रकार विचार करके वह आतापना भूमि से नीचे उतरा। त्रिदण्ड, कुण्डिका यावत् भगवां वस्त्रोंको ग्रहण कर आलभिका नगरी में तापसों के आश्रम में आया और वहां अपने उपकरण रख कर आलभिका नगरीके शृंगाटक, त्रिक, राजमार्ग आदि में इस प्रकार कहने लगा यावत् प्ररूपणा करने लगा—"हे देवानुप्रियो ! मुझे विशिष्ट ज्ञान-दर्शन उत्पन्न हुआ है, जिससे मैं यह जानता और देखता हूं कि देवलोकों में जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट स्थिति दस सागरोपम की है, इससे आगे देव और देवलोक नहीं हैं।" इस वात को सुनकर आलभिका नगरीके लोग परस्पर

शिव राजर्षि के समान कहने लगे कि-"हे देवानुप्रियो ! यह वात कैसे मानी जाय ?" कुछ काल के अनन्तर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी वहां पधारे, यावत् गौतम स्वामी भिक्षा के लिये नगरी में गये। वहां लोगों से उपरोक्त वात सुनकर अपने स्थान पर आये और भगवान्से इस विषयमें पूछा। भगवान् ने फरमाया-"गौतम ! पुद्गल परिव्राजक का कथन असत्य है। मैं इस प्रकार कहता हूं और प्ररूपणा करता हूं कि देवलोकों में देवों की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की है, इसके अनन्तर एक समयाधिक, द्विसमयाधिक यावत् उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागरोपमकी है। इसके वाद देव और देवलोक व्युच्छिन्न हो गये हैं।"

भगवन् ! सौधर्म देवलोक में वर्ण सहित और वर्ण रहित द्रव्य हैं, इत्यादि प्रश्न। हां, गौतम ! हैं। इसी प्रकार ईशान देवलोक में यावत् अच्युत देवलोक में, ग्रैवेयक विमानों में, अनुत्तर विमानों में और ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी में वर्णादि सहित और वर्णादि रहित द्रव्य हैं। धर्मोपदेश सुनकर वह महापरिषद् चली गई। आलभिका नगरी के मनुष्यों द्वारा पुद्गल परिव्राजक को अपनी मान्यता मिथ्या ज्ञात हुई और वे भी शिवराजर्षि के समान शङ्कित, कांक्षित हुए, जिससे उनका विभंगज्ञान नष्ट हो गया। वे अपने उपकरण लेकर भगवान् के पास आये। भगवान्के द्वारा अपनी शंका निवारण हो जाने पर स्कन्दक की तरह त्रिदण्ड, कुण्डिका एवं भगवां वस्त्र छोड़कर प्रव्रजित हुए और शिवराजर्षि के समान आराधक होकर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हुए। वे सिद्ध अव्यावाध, शाश्वत सुख का अनुभव करते हैं। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है।...ऐसा कह कर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ॥४३५॥

॥ ग्यारहवें शतक का वारहवां उद्देशक समाप्त ॥

॥ ग्यारहवां शतक समाप्त ॥

शतक १२

वारहवें शतकमें दस उद्देशक हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं—१ शंख, २ जयन्ती, ३ पृथ्वी, ४ पुद्गल, ५ अतिपात, ६ राहु, ७ लोक, ८ नाग, ९ देव और १० आत्मा।

उद्देशक १

उस काल उस समयमें श्रावस्ती नाम की नगरी थी, वर्णन। कोष्ठक नामक उद्यान था, वर्णन। उस श्रावस्ती नगरी में शंख प्रमुख वहुत-से श्रमणोपासक रहते थे। वे आढ्य यावत् अपरिभूत थे। वे जीव-अजीवादि तत्त्वों के जानकार यावत् विचरते थे। शंख श्रमणोपासक की स्त्री का नाम उत्पला था। वह सुकुमाल हाथ-

पांव वाली यावत् सुरूप और जीव-अजीवादि तत्त्वों की जानने वाली श्रमणो-पासिका थी। उस श्रावस्ती नगरी में पुष्कली नाम का एक श्रमणोपासक भी रहता था। वह आढ्य यावत् अपरिभूत था तथा जीव-अजीवादि तत्त्वों का ज्ञाता था।

उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी श्रावस्ती पधारे। परिषद् वन्दन के लिये गई यावत् पर्युपासना करने लगी। भगवान् के आगमन को जानकर वे श्रावक भी आलभिका नगरी के श्रावकों के समान वन्दनार्थ गये, यावत् पर्युपासना करने लगे। भगवान् ने उस महा परिषद् को और उन श्रमणोपासकों को धर्मोपदेश दिया यावत् परिषद् वापिस चली गई। वे श्रमणोपासक भगवान् के पास धर्मोपदेश सुनकर और अवधारण करके हर्षित और सन्तुष्ट हुए। भगवान् को वन्दना नमस्कार कर प्रश्न पूछे। उनके अर्थ को ग्रहण किया। फिर खड़े होकर भगवान् को वन्दना नमस्कार कर, कोष्ठक उद्यानसे निकल कर श्रावस्ती नगरी की ओर जाने का विचार किया॥४३६॥

इसके पश्चात् शंख श्रमणोपासक ने दूसरे श्रमणोपासकों से इस प्रकार कहा—"हे देवानुप्रियो! तुम पुष्कल अशन, पान, खादिम और स्वादिम तैयार कराओ। हम सभी उस पुष्कल अशन, पान, खादिम और स्वादिम का आस्वादन करते हुए, विशेष आस्वादन करते हुए, परस्पर देते हुए और खाते हुए, पाक्षिक पौषध (दया)का अनुपालन करते हुए रहेंगे।" उन श्रमणोपासकों ने शंख श्रमणो-पासक के वचन को विनयपूर्वक स्वीकार किया।

इसके वाद उस शंख श्रमणोपासक को इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ —"अशनादि यावत् खाते हुए, पाक्षिक पौषध करना मेरे लिये श्रेयस्कर नहीं, परन्तु अपनी पौषधशाला में, ब्रह्मचर्यपूर्वक मणि और स्वर्ण का त्याग कर, माला, उद्वर्तना और विलेपन को छोड़कर तथा शस्त्र और मूसलादि का त्याग करना और डाभ के संथारे सहित, दूसरे किसी की सहायता विना, मुझ अकेले को पौषध स्वीकार करके विचरना श्रेयस्कर है।" ऐसा विचार कर वह अपने घर आया और अपनी पत्नी उत्पला श्रमणोपासिका से पूछकर अपनी पौषधशाला में आया। पौषधशाला का परिमार्जन करके उच्चार (वड़ी नीत) और प्रस्रवण (लघुनीत) की भूमि का प्रतिलेखन करके, डाभ का संथारा विछाकर, उसपर बैठा और पौषध ग्रहण करके पाक्षिक पौषध का पालन करने लगा।

इसके पश्चात् वे श्रमणोपासक श्रावस्ती नगरी में अपने-अपने घर गए और पुष्कल अशन, पान, खादिम और स्वादिम तैयार करवाया। फिर एक दूसरे को बुलाकर वे इस प्रकार कहने लगे कि हे देवानुप्रियो! हमने विपुल अशन, पान,

खादिम और स्वादिम तैयार करवा लिया है, परन्तु अभी तक शंख श्रमणोपासक नहीं आये हैं। इसलिए उन्हें बुलवाना चाहिए।

इसके अनन्तर पुष्कली श्रावक ने उन श्रावकों से कहा कि "हे देवानुप्रियो! तुम शांतिपूर्वक विश्राम करो, मैं शंख श्रावक को बुला लाता हूं।" ऐसा कहकर वहां से चले और श्रावस्ती नगरी के मध्य होते हुए शंख श्रावक के घर पहुँचे।

पुष्कली श्रावक को आते हुए देखकर उत्पला श्राविका हर्षित और सन्तुष्ट हुई। वह अपने आसन से उठ कर सात-आठ कदम सामने गई। उसने पुष्कली श्रावक को वन्दना नमस्कार कर बैठने के लिए आसन दिया और इस प्रकार बोली–"हे देवानुप्रिय! कहिये, आपके आने का क्या प्रयोजन है?" पुष्कली श्रावक ने उत्पला से पूछा–"हे देवानुप्रिये! शंख श्रावक कहां है?" उत्पला श्राविका ने उत्तर दिया—"वे पौषधशाला में पौषध करके बैठे हुए हैं।"

तब पुष्कली श्रावक पौषधशालामें शंख श्रावकके समीप आया। गमनागमन का प्रतिक्रमण करके शंख श्रावक को वन्दना नमस्कार किया और इस प्रकार कहा–"हे देवानुप्रिय! हमने विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम तैयार करवाया है, अतः आओ चलें और उस आहारादि को खाते-पीते पौषध करें।" तब शंख श्रावकने पुष्कली श्रावक से इस प्रकार कहा—"हे देवानुप्रिय! आहारादि खाते-पीते हुए पौषध करना योग्य नहीं। ऐसा सोचकर मैंने बिना खाये-पिये पौषध अंगीकार कर लिया है। तुम सब अपनी इच्छानुसार आहारादि खाते-पीते हुए पौषध करो।"

तब पुष्कली श्रावक वहां से रवाना होकर श्रावस्ती नगरी के मध्य चलकर उन श्रावकों के पास पहुंचा और इस प्रकार बोला–हे देवानुप्रियो! शंख श्रावक ने बिना खाये-पिये पौषध अंगीकार कर लिया है। उन्होंने कहा है कि तुम अपनी इच्छानुसार आहारादि करते हुए पौषध करो, शंख श्रावक नहीं आवेगा। यह सुन उन श्रावकों ने आहारादि खाते-पीते हुए पौषध किया।

खादिम और स्वादिम तैयार करवा लिया है, परन्तु अभी तक शंख श्रमणोपासक नहीं आये हैं। इसलिए उन्हें बुलवाना चाहिए।

इसके अनन्तर पुष्कली श्रावक ने उन श्रावकों से कहा कि "हे देवानुप्रियो ! तुम शांतिपूर्वक विश्राम करो, मैं शंख श्रावक को बुला लाता हूं।" ऐसा कहकर वहां से चले और श्रावस्ती नगरी के मध्य होते हुए शंख श्रावक के घर पहुँचे।

पुष्कली श्रावक को आते हुए देखकर उत्पला श्राविका हर्षित और सन्तुष्ट हुई। वह अपने आसन से उठ कर सात-आठ कदम सामने गई। उसने पुष्कली श्रावक को वन्दना नमस्कार कर बैठने के लिए आसन दिया और इस प्रकार बोली–"हे देवानुप्रिय ! कहिये, आपके आने का क्या प्रयोजन है ?" पुष्कली श्रावक ने उत्पला से पूछा–"हे देवानुप्रिये ! शंख श्रावक कहां है ?" उत्पला श्राविका ने उत्तर दिया—"वे पौषधशाला में पौषध करके बैठे हुए हैं।"

तब पुष्कली श्रावक पौषधशालामें शंख श्रावकके समीप आया। गमनागमन का प्रतिक्रमण करके शंख श्रावक को वन्दना नमस्कार किया और इस प्रकार कहा–"हे देवानुप्रिय ! हमने विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम तैयार करवाया है, अतः आओ चलें और उस आहारादि को खाते-पीते पौषध करें।" तब शंख श्रावकने पुष्कली श्रावक से इस प्रकार कहा—"हे देवानुप्रिय ! आहारादि खाते-पीते हुए पौषध करना योग्य नहीं। ऐसा सोचकर मैंने विना खाये-पिये पौषध अंगीकार कर लिया है। तुम सब अपनी इच्छानुसार आहारादि खाते-पीते हुए पौषध करो।"

तब पुष्कली श्रावक वहां से रवाना होकर श्रावस्ती नगरी के मध्य चलकर उन श्रावकों के पास पहुंचा और इस प्रकार बोला–हे देवानुप्रियो ! शंख श्रावक ने विना खाये-पिये पौषध अंगीकार कर लिया है। उन्होंने कहा है कि तुम अपनी इच्छानुसार आहारादि करते हुए पौषध करो, शंख श्रावक नहीं आवेगा। यह सुन उन श्रावकों ने आहारादि खाते-पीते हुए पौषध किया।

रात्रिके पिछले भागमें धर्म जागरणा करते हुए शंख श्रावकको इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ कि कल प्रातःकाल सूर्योदय होने पर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना नमस्कार यावत् पर्युपासना करके, वहां से लौटने पर पाक्षिक पौषध पालना मेरे लिये श्रेयस्कर है। ऐसा विचार कर वह दूसरे दिन प्रातःकाल सूर्योदय होने पर, पौषधशाला से बाहर निकला और बाहर जाने योग्य शुद्ध तथा मंगल रूप वस्त्रों को उत्तम रीतिसे पहन कर, अपने घरसे पैदल चलते हुए श्रावस्ती नगरी के मध्य में होकर भगवान् की सेवा में पहुंचा, यावत् भगवान् की पर्युपासना करने लगा। यहां अभिगम नहीं कहना चाहिये। वे पुष्कली आदि सभी श्रावक दूसरे दिन प्रातःकाल सूर्योदय होने पर स्नान करके यावत् शरीरको अलंकृत कर अपने-अपने घरसे निकले और एक स्थान पर एकत्रित होकर भगवान् की सेवामें

पहुँचे यावत् पर्युपासना करने लगे। भगवान् ने महापरिषद् को और उन श्रावकों को "आज्ञा के आराधक हो" वैसा धर्मोपदेश दिया। वे सभी श्रावक धर्मोपदेश सुनकर और हृदय में धारण करके हृष्ट-तुष्ट हुए। तत्पश्चात् खड़े होकर भगवान् को वन्दना नमस्कार किया। इसके पश्चात् वे शंख श्रावक के पास आकर इस प्रकार कहने लगे—"हे देवानुप्रिय! आपने कल हमें विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम तैयार करनेके लिये कहा था और कहा था कि हम अशनादि खाते-पीते हुए पौषध करेंगे। तदनुसार हमने अशनादि तैयार करवाया, किन्तु फिर आप नहीं आये और आपने बिना खाये-पिये पौषध कर लिया। देवानुप्रिय! आपने हमारी अच्छी हंसी की।" उन श्रावकों की इस बात को सुनकर श्रमण भगवान् महावीर स्वामीने इस प्रकार कहा—'हे आर्यो! तुम शंख श्रावककी अवहेलना, निंदा, खिसना, गर्हा और अवमानना (अपमान) मत करो। क्योंकि शंख श्रावक प्रियधर्मा है। इसने प्रमाद और निद्रा का त्याग करके सुदर्शन जागरिका जाग्रत की है ॥४३७॥

भगवन्! इस प्रकार कह कर भगवान् गौतम स्वामी ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना नमस्कार करके इस प्रकार पूछा—"भगवन्! जागरिका कितने प्रकार की कही गई है?" गौतम! जागरिका तीन प्रकार की कही गई है। यथा—बुद्धजागरिका, अबुद्धजागरिका और सुदर्शनजागरिका।

भगवन्! तीन प्रकार की जागरिका कहने का क्या कारण है? गौतम! जो उत्पन्न हुए केवलज्ञान केवलदर्शन के धारक अरिहंत भगवान् हैं, इत्यादि दूसरे शतक के प्रथम उद्देशक के स्कन्दक प्रकरण के अनुसार सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हैं वे 'बुद्ध' हैं, उनकी प्रमाद रहित अवस्थाको 'बुद्धजागरिका' कहते हैं। जो अनगार ईर्या आदि पांच समिति, तीन गुप्ति यावत् गुप्त ब्रह्मचारी हैं, वे सर्वज्ञ न होने के कारण 'अबुद्ध' कहलाते हैं। उनकी जागरणा को 'अबुद्ध जागरिका' कहते हैं। श्रावक जीव अजीव आदि तत्त्वों के जानकार होते हैं, इसलिए इनकी जागरणा 'सुदर्शनजागरिका' कहलाती है। इसलिए हे गौतम! इस तरह तीन प्रकार की जागरिका कही गई है ॥४३८॥

इसके अनन्तर उस शंख श्रमणोपासक ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना नमस्कार कर इस प्रकार पूछा—"भगवन्! क्रोधके वश आर्त्त बना हुआ जीव क्या बांधता है? क्या करता है? किसका चय करता है और किसका उपचय करता है? शंख! क्रोध के वश आर्त्त बना हुआ जीव आयुष्य कर्म को छोड़कर शेष सात कर्मों को शिथिल बंधन से बंधी हुई प्रकृतियों को दृढ़ बन्धन वाली करता है, इत्यादि सब पहले शतक के पहले उद्देशक में कथित संवर रहित अनगार के समान जान लेना चाहिए। यावत् वह संसार में परिभ्रमण करता है।

भगवन्! मान के वश आर्त्त बना हुआ जीव क्या बांधता है, इत्यादि प्रश्न।

शंख ! पूर्व कहे अनुसार जानना चाहिए। इसी प्रकार माया और लोभ के वश आर्त बने हुए जीव के विषय में भी जानना चाहिए, यावत् वह संसार में परिभ्रमण करता है। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से क्रोधादि कषाय का ऐसा तीव्र और कटु फल सुन कर और अवधारण करके कर्म-बन्ध से भयभीत हुए वे श्रावक त्रास पाये, त्रसित हुए और संसार के भय से उद्विग्न बने हुए वे भगवान् को वन्दना नमस्कार करके शंख श्रावक के समीप आये। उन्हें वन्दना नमस्कार करके अपने अविनयरूप अपराध के लिये विनयपूर्वक बार-बार क्षमा-याचना करने लगे। इसके पश्चात् वे सभी श्रावक अपने-अपने घर गये। शेष वर्णन आलभिका के श्रमणोपासकों के समान जानना चाहिये।

हे भगवन् ! ऐसा कहकर भगवान् गौतम स्वामीने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना नमस्कार कर इस प्रकार पूछा—'भगवन् ! क्या शंख श्रमणोपासक आपके पास प्रव्रज्या लेने में समर्थ है ?' गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। शेष वर्णन ऋषिभद्रपुत्रके समान कहना चाहिये, यावत् सर्वदुःखोंका अन्त करेगा। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है।......ऐसा कहकर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ॥४३९॥

॥ बारहवें शतक का प्रथम उद्देशक समाप्त ॥

—०—

शतक १२ उद्देशक २—जयंती श्रमणोपासिका

उस काल उस समय में कौशाम्बी नामकी नगरी थी (वर्णन)। चन्द्रावतरण उद्यान था (वर्णन)। उस कौशाम्बी नगरी में सहस्रानीक राजा का पौत्र, शतानीक राजा का पुत्र, चेटक राजा का दौहित्र, मृगावती रानी का आत्मज, जयन्ती श्रमणोपासिका का भतीजा उदायन नामक राजा था, वर्णन। उसी नगरी में सहस्रानीक राजा की पुत्रवधू, शतानीक राजा की पत्नी, चेटक राजा की पुत्री, उदायन राजा की माता और जयन्ती श्रमणोपासिका की भौजाई मृगावती देवी थी। वह सुकुमाल हाथ-पांव वाली थी, इत्यादि वर्णन जानना चाहिए यावत् सुरूप थी और श्रमणोपासिका थी। उसी नगरी में जयंती नाम की श्रमणोपासिका थी। वह सहस्रानीक राजा की पुत्री, शतानीक राजाकी बहिन, उदायन राजा की भूआ, मृगावती देवीकी ननन्द और श्रमण भगवान् महावीर स्वामीके साधुओं की प्रथम शय्यातर थी। वह सुकुमाल यावत् सुरूप और जीवाजीव आदि तत्त्वों की जानकार, यावत् विचरती थी ॥४४०॥

उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी वहां पधारे यावत् परिषद् पर्युपासना करने लगी। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के आगमन की

बात सुन कर उदायन राजा हर्षित और सन्तुष्ट हुआ। कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाकर उसने इस प्रकार कहा-"हे देवानुप्रियो ! कौशाम्बी नगरी को अन्दर और बाहर साफ करवाओ, इत्यादि कोणिक राजा के समान जानना चाहिए, यावत् वह पर्युपासना करने लगा। भगवान् के आगमन की बात सुनकर जयन्ती श्रमणोपासिका हर्षित एवं सन्तुष्ट हुई और मृगावती देवी के पास आकर बोली-"हे देवानुप्रिये ! श्रमण भगवान् महावीर यहां कौशाम्बी नगरी के चन्द्रावतरण उद्यान में पधारे हैं। उनका नाम, गोत्र सुनने से भी महाफल होता है, तो दर्शन और वन्दन का तो कहना ही क्या ? उनका एक भी धर्म-वचन सुनने मात्र से महाफल मिलता है, तो तत्त्व-ज्ञान संबंधी विपुल अर्थ सीखने के महाफल का तो कहना ही क्या है ? अत. हम चलें और वन्दन नमस्कार करें। यह कार्य हमारे लिए इस भव, परभव और दोनों भवों के लिए कल्याणप्रद और श्रेयस्कर होगा। जिस प्रकार देवानन्दा ने ऋषभदत्त के वचन को स्वीकार किया था, उसी प्रकार मृगावतीने भी जयन्ती श्राविकाके वचन स्वीकार किये। फिर सेवक पुरुषों को बुलाकर वेगवान् यावत् धार्मिक श्रेष्ठ रथ जोड़ कर लाने की आज्ञा दी। सेवक पुरुषों ने आज्ञा का पालन किया और रथ लाकर उपस्थित किया। मृगावती देवी और जयन्ती श्राविका ने स्नान करके शरीर को अलंकृत किया। फिर बहुत-सी कुब्जा दासियों के साथ अन्तःपुर से बाहर निकली और फिर बाहरी उपस्थानशाला में आई और रथारूढ़ होकर उद्यान में पहुँची। रथ से नीचे उतर कर देवानन्दा के समान वन्दना नमस्कार कर, उदायन राजा को आगे करके चली और उसके पीछे ठहर कर पर्युपासना करने लगी। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने उदायन राजा, मृगावती देवी, जयन्ती श्रमणोपासिका और उस महा परिषद् को धर्मोपदेश दिया यावत् परिषद् लौट गई। उदायन राजा और मृगावती भी चले गये ॥४४१॥

जयन्ती श्रमणोपासिका श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से धर्मोपदेश सुनकर एवं अवधारण करके हर्षित और सन्तुष्ट हुई और भगवान् को वन्दना-नमस्कार कर, इस प्रकार पूछा-"भगवन् ! जीव किस कारण से गुरुत्व-भारीपन को प्राप्त होते हैं ?" जयन्ती ! जीव प्राणातिपात आदि अठारह पापस्थानों का सेवन करके गुरुत्व को प्राप्त होते हैं और इनसे निवृत्त होकर जीव हलका होता है। इस प्रकार प्रथम शतक के नौवें उद्देशक में कहे अनुसार जानना चाहिए यावत् वे संसार समुद्रसे पार हो जाते हैं। भगवन् ! जीवों का भवसिद्धिकपन स्वाभाविक है या पारिणामिक ? जयन्ती ! स्वाभाविक है, पारिणामिक नहीं। भगवन् ! क्या सभी भवसिद्धिक जीव सिद्ध होंगे ? हां, जयन्ती ! सभी भवसिद्धिक जीव सिद्ध

होंगे। भगवन् ! यदि सभी भवसिद्धिक जीव सिद्ध हो जायेंगे, तो लोक भवसिद्धिक जीवों से रहित हो जायेगा ? जयन्ती ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। भगवन् ! क्या कारण है कि सभी भवसिद्धिक जीवों के सिद्ध होने पर भी लोक भवसिद्धिक जीवों से रहित नहीं होगा ? जयन्ती ! जिस प्रकार सर्वाकाश की श्रेणी जो अनादि अनन्त है और एक प्रदेशी होने से दोनों ओर से परिमित तथा अन्य श्रेणियों द्वारा परिवृत्त है, उसमें से प्रत्येक समय में एक एक परमाणु पुद्गल जितना खण्ड निकालते हुए, अनन्त उत्सर्पिणी और अनन्त अवसर्पिणी तक निकाला जाय, तो भी वह श्रेणी खाली नहीं होती। इसी प्रकार हे जयन्ती ! ऐसा कहा जाता है कि सब भवसिद्धिक जीव सिद्ध होंगे, परन्तु लोक भवसिद्धिक जीवोंसे रहित नहीं होगा।

भगवन् ! जीवोंका सुप्त (सोते) रहना अच्छा है या जा(गते)गृत रहना ? कुछ जीवों का सुप्त रहना अच्छा है और कुछ जीवों का जाग्रत रहना अच्छा है। जयन्ती ! भगवन् ! इसका क्या कारण है ? जयन्ती ! जो ये अधार्मिक, अधर्म का अनुसरण करने वाले, अधर्मप्रिय, अधर्म का कथन करने वाले, अधर्म का अवलोकन करने वाले, अधर्म में आसक्त, अधर्माचरण करने वाले और अधर्म से ही अपनी आजीविका करने वाले हैं, उन जीवों का सुप्त रहना अच्छा है। क्योंकि वे जीव सुप्त हों, तो अनेक प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों के दुःख, शोक और परिताप आदि के कारण नहीं बनते तथा अपने को, दूसरों को और स्वपर को अनेक अधार्मिक संयोजनाओं (प्रपञ्चों) में नहीं फंसाते। अतः ऐसे जीवों का सुप्त रहना अच्छा है।

जो जीव धार्मिक, धर्मानुसारी, धर्मप्रिय, धर्म का कथन करने वाले, धर्म का अवलोकन करने वाले, धर्मासक्त, धर्माचरण करने वाले और धर्मपूर्वक आजीविका चलाने वाले हैं, उन जीवों का जाग्रत रहना अच्छा है। क्योंकि वे जाग्रत हों, तो अनेक प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों के दुःख, शोक और परिताप आदि के कारण नहीं बनते तथा अपने आप को, दूसरों को और स्वपर को अनेक धार्मिक संयोजनाओं में लगाते रहते हैं, तथा धार्मिक जागरिका द्वारा जाग्रत रहते हैं, इसलिए इन जीवों का जाग्रत रहना अच्छा है। इसलिए हे जयन्ती ! ऐसा कहा जाता है कि कुछ जीवों का सुप्त रहना अच्छा है और कुछ जीवों का जाग्रत रहना अच्छा है।

भगवन् ! जीवों की सबलता अच्छी है या दुर्बलता ? जयन्ती ! कुछ जीवों की सबलता अच्छी है और कुछ जीवों की दुर्बलता। भगवन् ! क्या कारण है कि कुछ जीवोंकी सबलता अच्छी है और कुछ जीवों की दुर्बलता ? जयन्ती ! जो जीव अधार्मिक यावत् अधर्म द्वारा ही आजीविका करते हैं, उनकी दुर्बलता अच्छी है। उन जीवों के दुर्बल होने से वे किसी जीवको दुःख आदि नहीं पहुँचा सकते, इत्यादि

'सुप्त' के समान दुर्बलता का भी कथन करना चाहिए और जाग्रतके समान सबलता का कथन करना चाहिए। इसलिए धार्मिक जीवोंकी सबलता अच्छी है। इस कारण हे जयन्ती ! ऐसा कहा जाता है कि कुछ जीवों की सबलता अच्छी है और कुछ जीवों की दुर्बलता।

भगवन् ! जीवों की दक्षता (चातुर्यता-उद्यमीपन) अच्छी है या आलसीपन ? जयन्ती ! कुछ जीवों की दक्षता अच्छी है और कुछ जीवों का आलसीपन। भगवन् ! इसका क्या कारण है ? जयन्ती ! जो जीव अधार्मिक यावत् अधर्म द्वारा आजीविका करते हैं, उन जीवोंका आलसीपन अच्छा है। यदि वे आलसी होंगे, तो प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों को दुःख, शोक, परितापादि उत्पन्न नहीं करेंगे, इत्यादि सब सुप्त के समान कहना चाहिए। दक्षता (उद्यमीपन) का कथन जाग्रत के समान कहना चाहिए, यावत् वे स्व-पर और उभय को धर्म के साथ जोड़ने वाले होते हैं। वे जीव दक्ष हों, तो आचार्य, उपाध्याय, स्थविर, तपस्वी, ग्लान, शैक्ष (नवदीक्षित), कुल, गण, संघ और सार्धमिक की वैयावृत्य (सेवा) करने वाले होते हैं। इसलिए इन जीवोंकी दक्षता अच्छी है। इस कारण हे जयन्ती ! ऐसा कहा जाता है कि कुछ जीवों की दक्षता और कुछ जीवोंका आलसीपन अच्छा है।

भगवन् ! श्रोत्रेन्द्रिय के वश आर्त्त (पीड़ित) बना हुआ जीव क्या बांधता है, इत्यादि प्रश्न। जयन्ती ! जिस प्रकार क्रोध के वश आर्त्त बने हुए जीव के विषय में कहा गया है, उसी प्रकार यहां भी जानना चाहिए, यावत् वह संसार में परिभ्रमण करता है। इसी प्रकार चक्षुइन्द्रिय यावत् स्पर्शनेन्द्रिय के वश आर्त्त बने हुए जीव के विषय में भी कहना चाहिए, यावत् संसार में परिभ्रमण करता है। इसके पश्चात् जयन्ती श्रमणोपासिका श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से उपरोक्त अर्थो को सुन कर और हृदय में धारण करके हर्षित एवं सन्तुष्ट हुई, इत्यादि सब वर्णन नौवें शतक के तेतीसवें उद्देशक में कथित देवानन्दा के वर्णन के समान कहना चाहिए, यावत् जयन्ती ने प्रव्रज्या ग्रहण की और सभी दुःखों से मुक्त हुई। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है।···ऐसा कहकर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ॥ ४४२॥

॥ बारहवें शतक का द्वितीय उद्देशक समाप्त ॥

शतक १२ उद्देशक ३—सात पृथ्वियां

राजगृह नगरमें यावत् गौतम स्वामीने इस प्रकार पूछा—"भगवन् ! पृथ्वियां कितनी कही गई हैं ?" गौतम ! पृथ्वियां सात कही गई हैं। यथा—प्रथमा, द्वितीया यावत् सप्तमी। भगवन् ! प्रथम पृथ्वी का क्या नाम और गोत्र है ?

होंगे। भगवन् ! यदि सभी भवसिद्धिक जीव सिद्ध हो जायेंगे, तो लोक भवसिद्धिक जीवों से रहित हो जायेगा ? जयन्ती ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। भगवन् ! क्या कारण है कि सभी भवसिद्धिक जीवों के सिद्ध होने पर भी लोक भवसिद्धिक जीवों से रहित नहीं होगा ? जयन्ती ! जिस प्रकार सर्वाकाश की श्रेणी जो अनादि अनन्त है और एक प्रदेशी होने से दोनों ओर से परिमित तथा अन्य श्रेणियों द्वारा परिवृत्त है, उसमें से प्रत्येक समय में एक एक परमाणु पुद्गल जितना खण्ड निकालते हुए, अनन्त उत्सर्पिणी और अनन्त अवसर्पिणी तक निकाला जाय,तो भी वह श्रेणी खाली नहीं होती। इसी प्रकार हे जयन्ती ! ऐसा कहा जाता है कि सब भवसिद्धिक जीव सिद्ध होंगे, परन्तु लोक भवसिद्धिक जीवोंसे रहित नहीं होगा।

भगवन् ! जीवोंका सुप्त (सोते) रहना अच्छा है या जा(गते)गृत रहना ? कुछ जीवों का सुप्त रहना अच्छा है और कुछ जीवों का जाग्रत रहना अच्छा है। जयन्ती ! भगवन् ! इसका क्या कारण है ? जयन्ती ! जो ये अधार्मिक, अधर्म का अनुसरण करने वाले, अधर्मप्रिय, अधर्म का कथन करने वाले, अधर्म का अवलोकन करने वाले, अधर्म में आसक्त, अधर्माचरण करने वाले और अधर्म से ही अपनी आजीविका करने वाले हैं, उन जीवों का सुप्त रहना अच्छा है। क्योंकि वे जीव सुप्त हों, तो अनेक प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों के दुःख, शोक और परिताप आदि के कारण नहीं बनते तथा अपने को, दूसरों को और स्वपर को अनेक अधार्मिक संयोजनाओं (प्रपञ्चों) में नहीं फंसाते। अतः ऐसे जीवों का सुप्त रहना अच्छा है।

जो जीव धार्मिक, धर्मानुसारी, धर्मप्रिय, धर्म का कथन करने वाले, धर्म का अवलोकन करने वाले, धर्मासक्त, धर्माचरण करने वाले और धर्मपूर्वक आजीविका चलाने वाले हैं, उन जीवों का जाग्रत रहना अच्छा है। क्योंकि वे जाग्रत हों, तो अनेक प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों के दुःख, शोक और परिताप आदि के कारण नहीं बनते तथा अपने आप को, दूसरों को और स्वपर को अनेक धार्मिक संयोजनाओं में लगाते रहते हैं, तथा धार्मिक जागरिका द्वारा जाग्रत रहते हैं, इसलिए इन जीवों का जाग्रत रहना अच्छा है। इसलिए हे जयन्ती ! ऐसा कहा जाता है कि कुछ जीवों का सुप्त रहना अच्छा है और कुछ जीवों का जाग्रत रहना अच्छा है।

भगवन् ! जीवों की सबलता अच्छी है या दुर्बलता ? जयन्ती ! कुछ जीवों की सबलता अच्छी है और कुछ जीवों की दुर्बलता। भगवन् ! क्या कारण है कि कुछ जीवोंकी सबलता अच्छी है और कुछ जीवों की दुर्बलता ? जयन्ती ! जो जीव अधार्मिक यावत् अधर्म द्वारा ही आजीविका करते हैं, उनकी दुर्बलता अच्छी है। उन जीवों के दुर्बल होने से वे किसी जीवको दुःख आदि नहीं पहुँचा सकते, इत्यादि

'सुप्त' के समान दुर्बलता का भी कथन करना चाहिए और जाग्रतके समान सबलता का कथन करना चाहिए। इसलिए धार्मिक जीवोंकी सबलता अच्छी है। इस कारण हे जयन्ती ! ऐसा कहा जाता है कि कुछ जीवों की सबलता अच्छी है और कुछ जीवों की दुर्बलता।

भगवन् ! जीवों की दक्षता (चातुर्यता-उद्यमीपन) अच्छी है या आलसीपन ? जयन्ती ! कुछ जीवों की दक्षता अच्छी है और कुछ जीवों का आलसीपन। भगवन् ! इसका क्या कारण है ? जयन्ती ! जो जीव अधार्मिक यावत् अधर्म द्वारा आजीविका करते हैं, उन जीवोंका आलसीपन अच्छा है। यदि वे आलसी होंगे, तो प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों को दुःख, शोक, परितापादि उत्पन्न नहीं करेंगे, इत्यादि सब सुप्त के समान कहना चाहिए। दक्षता (उद्यमीपन) का कथन जाग्रत के समान कहना चाहिए, यावत् वे स्व-पर और उभय को धर्म के साथ जोड़ने वाले होते हैं। वे जीव दक्ष हों, तो आचार्य, उपाध्याय, स्थविर, तपस्वी, ग्लान, शैक्ष (नवदीक्षित), कुल, गण, संघ और सार्धमिक की वैयावृत्य (सेवा) करने वाले होते हैं। इसलिए इन जीवोंकी दक्षता अच्छी है। इस कारण हे जयन्ती ! ऐसा कहा जाता है कि कुछ जीवों की दक्षता और कुछ जीवोंका आलसीपन अच्छा है।

भगवन् ! श्रोत्रेन्द्रिय के वश आर्त्त (पीड़ित) बना हुआ जीव क्या बांधता है, इत्यादि प्रश्न। जयन्ती ! जिस प्रकार क्रोध के वश आर्त्त बने हुए जीव के विषय में कहा गया है, उसी प्रकार यहां भी जानना चाहिए, यावत् वह संसार में परिभ्रमण करता है। इसी प्रकार चक्षुइन्द्रिय यावत् स्पर्शनेन्द्रिय के वश आर्त्त बने हुए जीव के विषय में भी कहना चाहिए, यावत् संसार में परिभ्रमण करता है। इसके पश्चात् जयन्ती श्रमणोपासिका श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से उपरोक्त अर्थों को सुन कर और हृदय में धारण करके हर्षित एवं सन्तुष्ट हुई, इत्यादि सब वर्णन नौवें शतक के तेतीसवें उद्देशक में कथित देवानन्दा के वर्णन के समान कहना चाहिए, यावत् जयन्ती ने प्रव्रज्या ग्रहण की और सभी दुःखों से मुक्त हुई। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है।...ऐसा कहकर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ॥ ४४२॥

॥ बारहवें शतक का द्वितीय उद्देशक समाप्त ॥

शतक १२ उद्देशक ३—सात पृथ्वियां

राजगृह नगरमें यावत् गौतम स्वामीने इस प्रकार पूछा—"भगवन् ! पृथ्वियां कितनी कही गई हैं ?" गौतम ! पृथ्वियां सात कही गई हैं। यथा—प्रथमा, द्वितीया यावत् सप्तमी। भगवन् ! प्रथम पृथ्वी का क्या नाम और गोत्र है ?

गौतम ! प्रथम पृथ्वी का नाम 'घम्मा' है और गोत्र रत्नप्रभा है। इस प्रकार जीवाभिगम सूत्र की तीसरी प्रतिपत्ति के प्रथम नैरयिक उद्देशक में कहे अनुसार यावत् अल्पवहुत्व तक जानना चाहिए। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है।···ऐसा कह कर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ॥४४३॥

॥ बारहवें शतक का तीसरा उद्देशक समाप्त ॥

शतक १२ उद्देशक ४—परमाणु और स्कन्ध के विभाग०

राजगृह नगर में यावत् गौतम स्वामीने इस प्रकार पूछा—भगवन् ! दो परमाणु संयुक्त रूप में जब इकट्ठे होते हैं, तब उनका क्या होता है ? गौतम ! उनका द्विप्रदेशी स्कन्ध होता है। यदि उसके विभाग किये जायं तो उसके दो विभाग होते हैं-एक ओर एक परमाणु पुद्गल रहता है और दूसरी ओर भी एक परमाणु पुद्गल होता है। भगवन् ! जब तीन परमाणु पुद्गल संयुक्त रूप में इकट्ठे होते हैं, तब उनका क्या होता है ? गौतम ! उनका त्रिप्रदेशी स्कन्ध बनता है। यदि उसके विभाग किये जायं, तो दो या तीन विभाग होते हैं। यदि दो विभाग हों तो एक ओर एक परमाणु पुद्गल और दूसरी ओर द्विप्रदेशी स्कन्ध रहता है। यदि तीन विभाग हों, तो तीन परमाणु पुद्गल पृथक्-पृथक् रहते हैं।

भगवन् ! चार परमाणु पुद्गल जब इकट्ठे होते हैं, तब उनका क्या होता है ? गौतम ! चतुष्प्रदेशी स्कन्ध होता है। यदि उसके विभाग किये जायं, तो दो, तीन या चार विभाग होते हैं। यदि दो विभाग हों, तो एक ओर एक परमाणु पुद्गल और दूसरी ओर त्रिप्रदेशी स्कन्ध रहता है। अथवा एक ओर द्विप्रदेशी स्कन्ध और दूसरी ओर भी द्विप्रदेशी स्कन्ध रहता है। यदि तीन विभाग हों, तो एक ओर भिन्न-भिन्न दो परमाणु पुद्गल और दूसरी ओर द्विप्रदेशी स्कन्ध रहता है। चार विभाग होने पर पृथक्-पृथक् चार परमाणु पुद्गल रहते हैं।

भगवन् ! पांच परमाणु पुद्गल जब संयुक्त रूप में इकट्ठे होते हैं, तब क्या होता है ? गौतम ! पंच प्रदेशी स्कन्ध होता है। यदि उसके विभाग किये जायं, तो दो, तीन, चार और पांच विभाग होते हैं। दो विभाग होने पर एक ओर एक परमाणु पुद्गल और दूसरी ओर चतुष्प्रदेशी स्कन्ध रहता है। अथवा एक ओर द्विप्रदेशी स्कन्ध और दूसरी ओर त्रिप्रदेशी स्कन्ध रहता है। यदि उसके तीन विभाग किये जायं, तो एक ओर पृथक्-पृथक् दो परमाणु पुद्गल और दूसरी ओर त्रिप्रदेशी स्कन्ध रहता है-१-१-३। अथवा एक ओर एक परमाणु पुद्गल और दूसरी ओर दो द्विप्रदेशी स्कन्ध रहते हैं-१-२-२। यदि उसके चार विभाग किये जायं तो एक ओर पृथक्-पृथक् तीन परमाणु पुद्गल और दूसरी ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध

रहता है–१-१-१-२। यदि उसके पांच विभाग किये जायं तो पृथक्-पृथक् पांच परमाणु होते हैं। यथा–१-१-१-१-१।

भगवन्! छह परमाणु पुद्गल जब इकट्ठे होते हैं, तो क्या बनता है? गौतम! षट् प्रदेशी स्कन्ध बनता है। यदि उसके विभाग किए जायं, तो दो, तीन, चार, पांच या छह विभाग होते हैं। जब उसके दो विभाग होते हैं, तब एक ओर एक परमाणु पुद्गल और एक ओर एक पञ्च प्रदेशी स्कन्ध रहता है, अथवा एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक चतुष्प्रदेशी स्कन्ध रहता है, अथवा दो त्रिप्रदेशी स्कन्ध होते हैं। जब उसके तीन विभाग होते हैं, तब एक ओर पृथक्-पृथक् दो परमाणु-पुद्गल और एक ओर एक चतुष्प्रदेशी स्कन्ध होता है, अथवा एक ओर एक परमाणु-पुद्गल, एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक त्रिप्रदेशी स्कन्ध होता है, अथवा तीन द्विप्रदेशी स्कन्ध होते हैं। जब चार विभाग होते हैं, तब एक ओर पृथक्-पृथक् तीन परमाणु पुद्गल और एक ओर त्रिप्रदेशी स्कन्ध होता है, अथवा एक ओर पृथक्-पृथक् दो परमाणु पुद्गल और एक ओर दो द्विप्रदेशी स्कन्ध होते हैं। जब उसके पांच विभाग होते हैं तो एक ओर पृथक् पृथक् चार परमाणु-पुद्गल और एक ओर द्विप्रदेशी स्कन्ध होता है। जब उसके छह विभाग होते हैं, तब उसके पृथक्-पृथक् छह परमाणुपुद्गल होते हैं।

भगवन्! सात परमाणु-पुद्गल जब इकट्ठे होते हैं, तब क्या बनता है? गौतम! सप्त प्रदेशी स्कन्ध बनता है। यदि उसके विभाग किये जायं, तो दो तीन यावत् सात विभाग होते हैं। जब दो विभाग किये जायं तो एक ओर एक परमाणु पुद्गल और एक ओर छह प्रदेशी स्कन्ध होता है, अथवा एक ओर दो प्रदेशी स्कन्ध और एक ओर पञ्चप्रदेशी स्कन्ध होता है, अथवा एक ओर त्रिप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर चतुष्प्रदेशी स्कन्ध होता है। जब उसके तीन विभाग किये जायं तो एक ओर पृथक्-पृथक् दो परमाणु पुद्गल और एक ओर पञ्चप्रदेशी स्कन्ध होता है, अथवा एक ओर एक परमाणु पुद्गल, एक ओर दो प्रदेशी स्कन्ध और एक ओर चतुष्प्रदेशी स्कन्ध होता है, अथवा एक ओर एक परमाणु पुद्गल और एक ओर दो त्रिप्रदेशी स्कंध होते हैं, अथवा एक ओर दो द्विप्रदेशी स्कंध और एक ओर एक त्रिप्रदेशी स्कन्ध होता है, जब उसके चार विभाग किये जायं, तब एक ओर पृथक्-पृथक् तीन परमाणु पुद्गल और एक ओर चतुष्प्रदेशी स्कन्ध होता है, अथवा एक ओर पृथक्-पृथक् दो परमाणु-पुद्गल, एक ओर द्विप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर त्रिप्रदेशी स्कंध होता है, अथवा एक ओर एक परमाणु पुद्गल और एक ओर तीन द्विप्रदेशी स्कन्ध होते हैं। उसके पांच विभाग किये जायं तब एक ओर पृथक्-पृथक् चार परमाणु-पुद्गल और एक ओर त्रिप्रदेशी स्कन्ध होता है, अथवा एक ओर पृथक्-पृथक् तीन परमाणु पुद्गल और एक ओर दो द्विप्रदेशी स्कंध होते हैं।

जब उसके छह विभाग किये जायं तो एक ओर पृथक्-पृथक् पांच परमाणु पुद्गल और एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध होता है। यदि उसके सात विभाग किये जायं तो पृथक्-पृथक् सात परमाणु पुद्गल होते हैं।

भगवन्! आठ परमाणु इकट्ठे होने पर क्या बनता है? गौतम! अष्ट प्रदेशी स्कन्ध बनता है। यदि उसके विभाग किये जायं तो दो, तीन, यावत् आठ विभाग होते हैं। जब उसके दो विभाग किये जायं तो एक ओर एक परमाणु पुद्गल और एक ओर सप्त प्रदेशी स्कन्ध होता है, अथवा एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक छह प्रदेशी स्कन्ध होता है, अथवा एक ओर एक त्रिप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक पञ्चप्रदेशी स्कन्ध होता है, अथवा दो चतुष्प्रदेशी स्कंध होते हैं। जब उसके तीन विभाग किए जायं तो एक ओर पृथक् २ दो परमाणु पुद्गल और एक ओर छह प्रदेशी स्कन्ध होता है, अथवा एक ओर एक परमाणु पुद्गल, एक ओर द्विप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर पञ्च प्रदेशी स्कन्ध होता है, अथवा एक ओर एक परमाणु पुद्गल, एक ओर एक त्रिप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक चतुष्प्रदेशी स्कन्ध होता है, अथवा एक ओर दो द्विप्रदेशी स्कन्ध और एक चतुष्प्रदेशी स्कंध होता है, अथवा एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर दो त्रिप्रदेशी स्कन्ध होते हैं। जब उसके चार विभाग किये जाते हैं तब एक ओर पृथक्-पृथक् तीन परमाणु-पुद्गल और एक ओर एक पञ्चप्रदेशी स्कन्ध होता है, अथवा एक ओर पृथक्-पृथक् दो परमाणु-पुद्गल, एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक चतुष्प्रदेशी स्कन्ध होता है, अथवा एक ओर पृथक्-पृथक् दो परमाणु-पुद्गल और एक ओर दो त्रिप्रदेशी स्कन्ध होते हैं, अथवा एक ओर एक परमाणु-पुद्गल, एक ओर दो द्विप्रदेशी स्कंध और एक ओर एक त्रिप्रदेशी स्कन्ध होता है, अथवा चार द्विप्रदेशी स्कन्ध होते हैं। जब उसके पांच विभाग किये जायं, तो एक ओर पृथक्-पृथक् चार परमाणु-पुद्गल और एक ओर एक चतुष्प्रदेशी स्कन्ध होता है, अथवा एक ओर पृथक्-पृथक् तीन परमाणु-पुद्गल और एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध तथा एक ओर एक त्रिप्रदेशी स्कन्ध होता है, अथवा एक ओर पृथक्-पृथक् दो परमाणु-पुद्गल और एक ओर तीन द्विप्रदेशी स्कन्ध होते हैं। यदि उसके छह विभाग किये जायं, तो एक ओर पृथक्-पृथक् पांच परमाणु पुद्गल और एक ओर एक त्रिप्रदेशी स्कंध होता है अथवा एक ओर पृथक्-पृथक् चार परमाणु-पुद्गल और एक ओर दो द्विप्रदेशी स्कन्ध होते हैं। यदि उसके सात विभाग किये जायं तो एक ओर पृथक्-पृथक् छह परमाणु-पुद्गल और एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध होता है। यदि उसके आठ विभाग किये जायं, तो पृथक्-पृथक् आठ परमाणु-पुद्गल होते हैं।

भगवन्! नौ परमाणु-पुद्गलोंके मिलने पर क्या बनता है? गौतम! नौ

प्रदेशी स्कन्ध बनता है। यदि उसके विभाग किये जायं, तो दो तीन यावत् नौ विभाग होते हैं। जब दो विभाग किए जायं, तब एक ओर एक परमाणु-पुद्गल और एक ओर एक अष्टप्रदेशी स्कन्ध होता है। इस प्रकार एक-एक का संचार (वृद्धि) करना चाहिए। यावत् अथवा एक ओर एक चतुःप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक पंचप्रदेशी स्कन्ध होता है। जब उसके तीन विभाग किये जायं, तब एक ओर पृथक्-पृथक् दो परमाणु-पुद्गल और एक ओर एक सप्तप्रदेशी स्कन्ध होता है, अथवा एक ओर एक परमाणु-पुद्गल, एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक छह प्रदेशी स्कन्ध होता है, अथवा एक ओर एक परमाणु-पुद्गल, एक ओर एक त्रिप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक पंचप्रदेशी स्कन्ध होता है, अथवा एक ओर एक परमाणु-पुद्गल और एक ओर दो चतुःप्रदेशी स्कन्ध होते हैं, अथवा एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध, एक ओर एक त्रिप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक चतुःप्रदेशी स्कन्ध होता है, अथवा तीन त्रिप्रदेशी स्कन्ध होते हैं।

जब उसके चार विभाग किये जायं, तब एक ओर पृथक्-पृथक् तीन परमाणु-पुद्गल और एक ओर एक छह प्रदेशी स्कन्ध होता है, अथवा एक ओर पृथक्-पृथक् दो परमाणु पुद्गल, एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक पञ्चप्रदेशी स्कन्ध होता है, अथवा एक ओर पृथक्-पृथक् दो परमाणु पुद्गल, एक ओर एक त्रिप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक चतुःप्रदेशी स्कन्ध होता है, अथवा एक ओर एक परमाणु-पुद्गल, एक ओर दो द्विप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक चतुःप्रदेशी स्कन्ध होता है, अथवा एक ओर एक परमाणु-पुद्गल, एक ओर एक द्विप्रदशी स्कन्ध और एक ओर दो त्रिप्रदेशी स्कन्ध होते हैं, अथवा एक ओर तीन द्विप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक त्रिप्रदेशी स्कन्ध होता है।

जब नौ प्रदेशी स्कन्ध के पांच विभाग किये जायं, तब एक ओर पृथक्-पृथक् चार परमाणु-पुद्गल और एक ओर एक पञ्चप्रदेशी स्कन्ध होता है, अथवा एक ओर पृथक-पृथक् तीन परमाणु-पुद्गल, एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक चतुःप्रदेशी स्कन्ध होता है, अथवा एक ओर पृथक्-पृथक् तीन परमाणु-पुद्गल और एक ओर दो त्रिप्रदेशी स्कन्ध होते हैं, अथवा एक ओर पृथक्-पृथक् दो परमाणु-पुद्गल, एक ओर दो द्विप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक त्रिप्रदेशी स्कन्ध होता है, अथवा एक ओर एक परमाणु-पुद्गल और एक ओर चार द्विप्रदेशी स्कन्ध होते हैं।

जब नौप्रदेशी स्कन्ध के छह विभाग किये जायं तब एक ओर पृथक्-पृथक् पांच परमाणु-पुद्गल और एक ओर एक चतुःप्रदेशी स्कन्ध होता है, अथवा एक ओर पृथक्-पृथक् चार परमाणु पुद्गल, एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध, और एक

ओर एक त्रिप्रदेशी स्कन्ध होता है, अथवा एक ओर पृथक्-पृथक् तीन परमाणु-पुद्गल और एक ओर तीन द्विप्रदेशी स्कन्ध होते हैं।

नौ प्रदेशी स्कन्ध के सात विभाग किये जायं तब एक ओर पृथक्-पृथक् छह परमाणु-पुद्गल और एक ओर एक त्रिप्रदेशी स्कन्ध होता है, अथवा एक ओर पृथक्-पृथक् पांच परमाणु-पुद्गल और एक ओर दो द्विप्रदेशी स्कन्ध होते हैं।

जब उसके आठ विभाग किये जायं तब एक ओर पृथक्-पृथक् सात परमाणु पुद्गल और एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध होता है। जब उसके नौ विभाग किये जायं, तब पृथक्-पृथक् नौ परमाणु-पुद्गल होते हैं।

भगवन् ! दस परमाणु मिलकर क्या बनता है ? गौतम ! उनका एक दस प्रदेशी स्कन्ध बनता है। यदि उसके विभाग किये जायं, तो दो, तीन यावत् दस विभाग होते हैं। जब उसके दो विभाग किये जायं, तो एक ओर एक परमाणु-पुद्गल और एक ओर एक नौ प्रदेशी स्कन्ध होता है, अथवा एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक अष्ट प्रदेशी स्कन्ध होता है। इस प्रकार एक-एक का संचार करना चाहिये। यावत् दो पञ्चप्रदेशी स्कन्ध होते हैं।

जब उसके तीन विभाग किये जाते हैं, तब एक ओर पृथक्-पृथक् दो परमाणु-पुद्गल और एक ओर एक अष्ट प्रदेशी स्कन्ध होता है, अथवा एक ओर एक परमाणु-पुद्गल, एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक सप्तप्रदेशी स्कन्ध होता है, अथवा एक ओर एक परमाणु-पुद्गल, एक ओर एक त्रिप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक छह प्रदेशी स्कन्ध होता है, अथवा एक ओर एक परमाणु-पुद्गल, एक ओर एक चतुष्प्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक पञ्च प्रदेशी स्कन्ध होता है, अथवा एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर दो चतुष्प्रदेशी स्कन्ध होते हैं, अथवा एक ओर दो त्रिप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक चतुष्प्रदेशी स्कन्ध होता है।

जब उसके चार विभाग किये जाते हैं तो एक ओर पृथक्-पृथक् तीन परमाणु-पुद्गल और एक ओर एक सप्त प्रदेशी स्कन्ध होता है, अथवा एक ओर पृथक्-पृथक् दो परमाणु-पुद्गल, एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक छह प्रदेशी स्कन्ध होता है, अथवा एक ओर पृथक्-पृथक् दो परमाणु-पुद्गल, एक ओर एक त्रिप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक पंचप्रदेशी स्कन्ध होता है, अथवा एक ओर पृथक्-पृथक् दो परमाणु-पुद्गल, और एक ओर दो चतुष्प्रदेशी स्कन्ध होते हैं, अथवा एक ओर एक परमाणु-पुद्गल, एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध, एक ओर एक त्रिप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक चतुःप्रदेशी स्कन्ध होता है, अथवा एक ओर एक परमाणु-पुद्गल और एक ओर तीन त्रिप्रदेशी स्कन्ध होते हैं, अथवा एक ओर तीन द्विप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक चतुष्प्रदेशी

स्कन्ध होता है, अथवा एक ओर एक परमाणु-पुद्गल और एक ओर तीन त्रिप्रदेशी स्कन्ध होते हैं, अथवा एक ओर दो द्विप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर दो त्रिप्रदेशी स्कन्ध होते हैं।

जब उसके पांच विभाग किये जायं, तब एक ओर पृथक्-पृथक् चार परमाणु पुद्गल और एक ओर एक छह प्रदेशी स्कन्ध होता है, अथवा एक ओर पृथक्-पृथक् तीन परमाणु पुद्गल, एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक पञ्च प्रदेशी स्कन्ध होता है, अथवा एक ओर तीन परमाणु पुद्गल, एक ओर एक त्रिप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक चतुष्प्रदेशी स्कन्ध होता है, अथवा एक ओर पृथक्-पृथक् दो परमाणु-पुद्गल, एक ओर दो द्विप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक चतुष्प्रदेशी स्कन्ध होता है, अथवा एक ओर दो परमाणु पुद्गल, एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर दो त्रिप्रदेशी स्कन्ध होते हैं, अथवा एक ओर एक परमाणु-पुद्गल, एक ओर तीन द्विप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक त्रिप्रदेशी स्कन्ध होता है, अथवा पांच द्विप्रदेशी स्कन्ध होते हैं।

जब उसके छह विभाग किये जाते हैं, तो एक ओर पृथक्-पृथक् पांच परमाणु-पुद्गल और एक ओर एक पञ्च प्रदेशी स्कन्ध होता है, अथवा एक ओर पृथक्-पृथक् चार परमाणु-पुद्गल, एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक चतुष्प्रदेशी स्कन्ध होता है, अथवा एक ओर पृथक्-पृथक् चार परमाणु-पुद्गल और एक ओर दो त्रिप्रदेशी स्कन्ध होते हैं, अथवा एक ओर पृथक्-पृथक् तीन परमाणु-पुद्गल, एक ओर दो द्विप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक त्रिप्रदेशी स्कन्ध होता है, अथवा एक ओर पृथक्-पृथक् दो परमाणु पुद्गल, और एक ओर चार द्विप्रदेशी स्कन्ध होते हैं।

जब उसके सात विभाग किये जाते हैं, तो एक ओर पृथक्-पृथक् छह परमाणु-पुद्गल, और एक ओर एक चतुष्प्रदेशी स्कन्ध होता है, अथवा एक ओर पृथक्-पृथक् पांच परमाणु-पुद्गल और एक ओर द्विप्रदेशी स्कन्ध तथा एक ओर एक त्रिप्रदेशी स्कन्ध होता है, अथवा एक ओर पृथक्-पृथक् चार परमाणु-पुद्गल और एक ओर तीन द्विप्रदेशी स्कन्ध होते हैं।

जब उसके आठ विभाग किये जाते हैं, तो एक ओर पृथक्-पृथक् सात परमाणु-पुद्गल और एक ओर एक त्रिप्रदेशी स्कन्ध होता है, अथवा एक ओर पृथक्-पृथक् छह परमाणु-पुद्गल और एक ओर दो द्विप्रदेशी स्कन्ध होते हैं। जब उसके नौ विभाग किये जाते हैं, तो एक ओर पृथक्-पृथक् आठ परमाणु-पुद्गल और एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध होता है। जब उसके दस विभाग किये जाते हैं, तो पृथक्-पृथक् दस परमाणु-पुद्गल होते हैं।

भगवन् ! संख्यात परमाणु-पुद्गल एक साथ मिलने पर क्या बनता है ? गौतम ! वह संख्यात प्रदेशी स्कन्ध बनता है। यदि उसके विभाग किये जायं, तो दो तीन यावत् दस और संख्यात विभाग होते हैं। जब उसके दो विभाग किये जाते हैं, तो एक ओर एक परमाणु-पुद्गल और एक ओर संख्यात प्रदेशी स्कन्ध होता है, अथवा एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक संख्यात प्रदेशी स्कन्ध होता है, अथवा एक ओर एक त्रिप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक संख्यात प्रदेशी स्कन्ध होता है। इस प्रकार यावत् एक ओर एक दस प्रदेशी स्कन्ध और एक ओर संख्यात प्रदेशी स्कन्ध होता है, अथवा दो संख्यात प्रदेशी स्कन्ध होते हैं।

जब उसके तीन विभाग किये जाते हैं, तो एक ओर पृथक्-पृथक् दो परमाणु-पुद्गल और एक ओर एक संख्यात प्रदेशी स्कन्ध होता है, अथवा एक ओर एक परमाणु पुद्गल, एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक संख्यात प्रदेशी स्कन्ध होता है, अथवा एक ओर एक परमाणु-पुद्गल, एक ओर एक त्रिप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक संख्यात प्रदेशी स्कन्ध होता है। इस प्रकार यावत् अथवा एक ओर एक परमाणु-पुद्गल, एक ओर एक दस प्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक संख्यात प्रदेशी स्कन्ध होता है, अथवा एक ओर एक परमाणु-पुद्गल और एक ओर दो संख्याल प्रदेशी स्कन्ध होते हैं, अथवा एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर दो संख्यात प्रदेशी स्कन्ध होते हैं। इस प्रकार यावत् एक ओर एक दस प्रदेशी स्कन्ध और एक ओर दो संख्यात प्रदेशी स्कन्ध होते हैं, अथवा तीन संख्यात प्रदेशी स्कन्ध होते हैं।

जब उसके चार विभाग किये जाते हैं, तो एक ओर पृथक्-पृथक् तीन परमाणु-पुद्गल और एक ओर एक संख्यात प्रदेशी स्कन्ध होता है, अथवा एक ओर पृथक्-पृथक् दो परमाणु-पुद्गल, एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक संख्यात प्रदेशी स्कन्ध होता है, अथवा एक ओर पृथक्-पृथक् दो परमाणु-पुद्गल, एक ओर एक त्रिप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक संख्यात प्रदेशी स्कन्ध होता है। इस प्रकार यावत् एक ओर पृथक्-पृथक् दो परमाणु-पुद्गल, एक ओर एक दस प्रदेशी स्कन्ध और एक ओर संख्यात प्रदेशी स्कन्ध होता है, अथवा एक ओर पृथक्-पृथक् दो परमाणु-पुद्गल, और एक ओर दो संख्यात प्रदेशी स्कन्ध होते हैं, अथवा एक ओर एक परमाणु-पुद्गल, एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर दो संख्यात प्रदेशी स्कन्ध होते हैं। इस प्रकार यावत् एक ओर एक परमाणु-पुद्गल, एक ओर एक दस प्रदेशी स्कन्ध और एक ओर दो संख्यात प्रदेशी स्कन्ध होते हैं, अथवा एक ओर एक परमाणु-पुद्गल और एक ओर तीन संख्यात प्रदेशी स्कन्ध होते हैं, अथवा एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर तीन संख्यात प्रदेशी स्कन्ध होते हैं। इस प्रकार यावत् एक ओर एक दस प्रदेशी स्कन्ध और एक ओर

तीन संख्यात प्रदेशी स्कन्ध होते हैं, अथवा चारों संख्यात प्रदेशी स्कन्ध होते हैं।

इस प्रकार इस क्रम से पंच संयोगी भी कहना चाहिये, यावत् नौ संयोगी तक कहना चाहिये। जब उसके दस विभाग किये जाते हैं तो एक ओर पृथक्-पृथक् नौ परमाणु-पुद्गल और एक ओर एक संख्यात प्रदेशी स्कन्ध होता है, अथवा एक ओर पृथक्-पृथक् आठ परमाणु-पुद्गल, एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर संख्यात प्रदेशी स्कन्ध होता है। इस क्रम से एक-एक की संख्या बढ़ाते जाना चाहिये, यावत् एक ओर एक दस प्रदेशी स्कन्ध और एक ओर नौ संख्यात प्रदेशी स्कन्ध होते हैं, अथवा दस संख्यात प्रदेशी स्कन्ध होते हैं। जब उसके संख्यात विभाग किये जाते हैं तो पृथक्-पृथक् संख्यात परमाणु-पुद्गल होते हैं।

भगवन्! असंख्यात परमाणु-पुद्गल मिलकर क्या बनता है? गौतम! उनका असंख्यात प्रदेशी स्कन्ध बनता है। यदि उसके विभाग किये जायं तो दो, तीन यावत् दस, संख्यात और असंख्यात विभाग होते हैं। जब उसके दो विभाग किये जाते हैं, तो एक ओर एक परमाणु-पुद्गल और एक ओर असंख्यात प्रदेशी स्कन्ध होता है, यावत् एक ओर एक दस प्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक असंख्यात प्रदेशी स्कन्ध होता है, अथवा एक ओर एक संख्यात प्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक असंख्यात प्रदेशी स्कन्ध होता है, अथवा दो असंख्यात प्रदेशी स्कन्ध होते हैं।

जब उसके तीन विभाग किये जाते हैं, तो एक ओर पृथक्-पृथक् दो परमाणु-पुद्गल और एक ओर एक असंख्यात प्रदेशी स्कन्ध होता है, अथवा एक ओर एक परमाणु-पुद्गल, एक ओर द्विप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक असंख्यात प्रदेशी स्कन्ध होता है, यावत् एक ओर एक परमाणु-पुद्गल, एक ओर दस प्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक असंख्यात प्रदेशी स्कन्ध होता है, अथवा एक ओर एक परमाणु-पुद्गल, एक ओर एक संख्यात प्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक असंख्यात प्रदेशी स्कन्ध होता है, अथवा एक ओर एक परमाणु-पुद्गल और एक ओर दो असंख्यात प्रदेशी स्कन्ध होते हैं, अथवा एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर दो असंख्यात प्रदेशी स्कन्ध होते हैं। इस प्रकार यावत् एक ओर एक संख्यात प्रदेशी स्कन्ध और एक ओर दो असंख्यात प्रदेशी स्कन्ध होते हैं, अथवा तीन असंख्यात प्रदेशी स्कन्ध होते हैं।

जब उसके चार विभाग किये जाते हैं, तो एक ओर पृथक्-पृथक् तीन परमाणु-पुद्गल और एक ओर एक असंख्यात प्रदेशी स्कन्ध होता है, इस प्रकार चार संयोगी यावत् दस संयोगी तक जानना चाहिये। इन सब का कथन संख्यात प्रदेशी के अनुरूप जानना चाहिये, परन्तु एक 'असंख्यात' शब्द अधिक कहना चाहिये, यावत् अथवा दस असंख्यात प्रदेशी स्कन्ध होते हैं।

जब उसके संख्यात विभाग किये जाते हैं, तो एक ओर पृथक्-पृथक् संख्यात परमाणु-पुद्गल और एक ओर असंख्यात प्रदेशी स्कन्ध होता है, अथवा एक ओर संख्यात द्विप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर असंख्यात प्रदेशी स्कन्ध होता है । इस प्रकार यावत् एक ओर संख्यात दस प्रदेशी स्कंध और एक ओर एक असंख्यात प्रदेशी स्कन्ध होता है, अथवा एक ओर संख्यात संख्यातप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर-एक असंख्यात प्रदेशी स्कन्ध होता है, अथवा संख्यात असंख्यात प्रदेशी स्कन्ध होते हैं । जब उसके असंख्यात विभाग किये जाते हैं, तो पृथक्-पृथक् असंख्य परमाणु-पुद्गल होते हैं ।

भगवन् ! अनन्त परमाणु–पुद्गल इकट्ठे होकर क्या बनता है ? गौतम ! एक अनन्त प्रदेशी स्कन्ध होता है । यदि उसके विभाग किये जायं, तो दो, तीन यावत् दस, संख्यात, असंख्यात और अनन्त विभाग होते हैं । जब दो विभाग किये जाते हैं, तो एक ओर एक परमाणु-पुद्गल और एक ओर अनन्त प्रदेशी स्कन्ध होता है, यावत् दो अनन्त प्रदेशी स्कन्ध होते हैं ।

जब उसके तीन विभाग किये जाते हैं, तो एक ओर पृथक्-पृथक् दो परमाणु-पुद्गल और एक ओर एक अनन्त प्रदेशी स्कन्ध होता है, अथवा एक ओर एक परमाणु पुद्गल, एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक अनन्त प्रदेशी स्कन्ध होता है, यावत् एक ओर एक परमाणु-पुद्गल, एक ओर एक असंख्यात प्रदेशी स्कन्ध और एक ओर एक अनन्त प्रदेशी स्कन्ध होता है, अथवा एक ओर एक परमाणु-पुद्गल और एक ओर दो अनन्त प्रदेशी स्कन्ध होते हैं, अथवा एक ओर एक द्विप्रदेशी स्कन्ध और एक ओर दो अनन्त प्रदेशी स्कन्ध होते हैं । इस प्रकार यावत् एक ओर एक दस प्रदेशी स्कन्ध और एक ओर दो अनन्त प्रदेशी स्कन्ध होते हैं, अथवा एक ओर संख्यात प्रदेशी स्कन्ध और एक ओर दो अनन्त प्रदेशी स्कन्ध होते हैं, अथवा एक ओर एक असंख्यात प्रदेशी स्कन्ध और एक ओर दो अनन्त प्रदेशी स्कन्ध होते हैं, अथवा तीनों अनन्त प्रदेशी स्कन्ध होते हैं ।

जब उसके चार विभाग किये जाते हैं, तो एक ओर पृथक्-पृथक् तीन परमाणु-पुद्गल और एक ओर एक अनन्त प्रदेशी स्कन्ध होता है । इस प्रकार चार संयोगी यावत् संख्यात संयोगी तक कहना चाहिए । ये सब भंग असंख्यात के अनुरूप कहने चाहिएं, परन्तु यहां एक 'अनन्त' शब्द अधिक कहना चाहिए, यावत् एक ओर संख्यातप्रदेशी स्कन्ध संख्यात होते हैं और एक ओर एक अनन्त प्रदेशी स्कन्ध होता है, अथवा एक ओर असंख्यात प्रदेशी स्कन्ध संख्यात होते हैं और एक ओर अनन्त प्रदेशी स्कन्ध होता है, अथवा अनन्त प्रदेशी स्कन्ध संख्यात होते हैं ।

जब उसके असंख्यात विभाग किये जाते हैं, तो एक ओर पृथक्-पृथक् असंख्यात परमाणु-पुद्गल और एक ओर एक अनन्त प्रदेशी स्कन्ध होता है, अथवा एक ओर

द्विप्रदेशी स्कन्ध असंख्यात होते हैं और एक ओर एक अनन्त प्रदेशी स्कन्ध होता है, यावत् एक ओर संख्यात प्रदेशी स्कन्ध असंख्यात और एक ओर एक अनन्त प्रदेशी स्कन्ध होता है, अथवा एक ओर असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध असंख्यात होते हैं और एक ओर एक अनन्त प्रदेशी स्कन्ध होता है, अथवा असंख्यात अनन्त प्रदेशी स्कन्ध होते हैं। जब उसके अनन्त विभाग किये जाते हैं, तो पृथक्-पृथक् अनन्त परमाणु-पुद्गल होते हैं ॥४४४॥

भगवन्! क्या परमाणु पुद्गलों के संयोग और विभाग से होने वाले अनंतानन्त पुद्गल परिवर्तन जानने योग्य हैं? हां, गौतम! संयोग और विभाग से होने वाले परमाणु पुद्गलों के अनन्तानन्त पुद्गल परिवर्तन जानने योग्य हैं। भगवन्! पुद्गल परिवर्तन कितने प्रकार का कहा गया है? गौतम! सात प्रकार का कहा गया है। यथा-१ औदारिक पुद्गलपरिवर्तन, २ वैक्रिय पुद्गल परिवर्तन, ३ तैजस् पुद्गल परिवर्तन, ४ कार्मण पुद्गल परिवर्तन, ५ मनः पुद्गल परिवर्तन, ६ वचन पुद्गल परिवर्तन और ७ आनप्राण पुद्गल परिवर्तन। भगवन्! नैरयिक जीवों के कितने प्रकार के पुद्गल परिवर्तन कहे गये हैं? गौतम! सात पुद्गल परिवर्तन कहे गये हैं। यथा औदारिक पुद्गल परिवर्तन यावत् आनप्राण पुद्गल परिवर्तन। इस प्रकार यावत् वैमानिक तक कहना चाहिये।

भगवन्! प्रत्येक नैरयिक जीव के भूतकालमें औदारिक पुद्गल परिवर्तन कितने हुए हैं? गौतम! अनंत हुए हैं। भगवन्! भविष्यत्कालमें कितने होंगे? गौतम! किसी के होंगे और किसी के नहीं होंगे। जिसके होंगे उसके जघन्य एक,दो,तीन होंगे और उत्कृष्ट संख्यात, असंख्यात या अनन्त होंगे। भगवन्! प्रत्येक असुरकुमार के भूतकाल औदारिक पुद्गल परिवर्तन कितने हुए हैं? गौतम! पूर्ववत् जानना चाहिए। इसी प्रकार यावत् वैमानिक तक जानना चाहिए।

भगवन्! प्रत्येक नैरयिक जीव के भूतकाल में वैक्रिय पुद्गल परिवर्तन कितने हुए हैं? गौतम! अनन्त हुए हैं। जिस प्रकार औदारिक पुद्गल परिवर्तन के विषय में कहा, उसी प्रकार वैक्रिय पुद्गल परिवर्तन के विषय में भी जानना चाहिए, यावत् वैमानिक तक कहना चाहिए। इसी प्रकार यावत् आनप्राण पुद्गल परिवर्तन तक कहना चाहिए। इस प्रकार प्रत्येक जीव की अपेक्षा सात दण्डक होते हैं।

भगवन्! नैरयिक जीवों के भूतकाल में औदारिक पुद्गल परिवर्तन कितने हुए हैं? गौतम! अनन्त हुए हैं। भगवन्! भविष्यमें कितने होंगे? गौतम! अनन्त होंगे। इस प्रकार यावत् वैमानिक तक कहना चाहिए। इसी प्रकार वैक्रिय पुद्गल परिवर्तन, यावत् आनप्राण पुद्गल परिवर्तन के विषय में यावत् वैमानिकों तक कहना चाहिये। इस प्रकार सातों पुद्गल परिवर्तनों के विषय में बहुवचन सम्बन्धी सात दण्डक के चौवीस दण्डक कहने चाहियें।

भगवन् ! प्रत्येक नैरयिक जीव के नैरयिक अवस्था में औदारिक पुद्गल परिवर्तन कितने हुए हैं ? गौतम ! एक भी नहीं हुआ। भगवन् ! भविष्य में कितने होंगे ? गौतम ! एक भी नहीं होगा। भगवन् ! प्रत्येक नैरयिक जीव के असुर-कुमारपने में औदारिक पुद्गल परिवर्तन कितने हुए हैं ? गौतम ! पूर्वोक्त वक्तव्यतानुसार जानना चाहिए। इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमार तक कहना चाहिए।

भगवन् ! प्रत्येक नैरयिक जीव के पृथ्वीकायपने औदारिक पुद्गल परिवर्तन कितने हुए हैं ? गौतम ! अनन्त हुए हैं। भगवन् ! भविष्य में कितने होंगे ? गौतम ! किसी के होंगे और किसी के नहीं होंगे। जिसके होंगे, उसके जघन्य एक, दो, तीन और उत्कृष्ट संख्यात, असंख्यात और अनन्त होंगे और इसी प्रकार यावत् मनुष्य भव तक में कहना चाहिए। जिस प्रकार असुरकुमार के विषय में कहा, उसी प्रकार वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक के विषय में भी कहना चाहिए।

भगवन् ! प्रत्येक असुरकुमार के नैरयिक भव में औदारिक पुद्गल परि-वर्तन कितने हुए हैं ? गौतम ! जिस प्रकार नैरयिकोंका कथन किया है,उसी प्रकार असुरकुमार के विषय में यावत् वैमानिक भव पर्यन्त कहना चाहिये। इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमारों तक कहना चाहिये और इसी प्रकार पृथ्वीकाय से लेकर यावत् वैमानिक पर्यन्त एक समान कहना चाहिए। भगवन् ! प्रत्येक नैरयिक भव में वैक्रिय पुद्गल परिवर्तन कितने हुए हैं ? गौतम ! अनन्त हुए हैं। भगवन् ! भविष्य में कितने होंगे ? गौतम ! होंगे या नहीं, यदि होंगे तो एक से लेकर यावत् अनन्त होंगे। इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमारभव तक कहना चाहिये।

भगवन् ! प्रत्येक नैरयिक जीव के पृथ्वीकायिक भव में वैक्रिय पुद्गल परि-वर्तन कितने हुए हैं ? गौतम ! एक भी नहीं हुआ। भगवन् ! आगे कितने होंगे ? गौतम ! एक भी नहीं होगा। इस प्रकार जहां वैक्रिय शरीर है, वहां एकादि पुद्गल परिवर्तन जानना चाहिये और जहां वैक्रिय शरीर नहीं है, वहां पृथ्वी-कायिकपने में कहा, उसी प्रकार कहना चाहिए, यावत् वैमानिक जीवों के वैमा-निकभव पर्यन्त कहना चाहिये। तैजस् पुद्गल परिवर्तन और कार्मण पुद्गल परिवर्तन सर्वत्र एक से लगाकर अनन्त तक कहना चाहिए। मन पुद्गल परिवर्तन सभी पञ्चेन्द्रिय जीवों में एक से लेकर अनन्त तक कहना चाहिए, किन्तु विकले-न्द्रियों (एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय) में मनःपुद्गल परिवर्तन नहीं होता। इस प्रकार वचन पुद्गल परिवर्तन का भी कहना चाहिये, किंतु विशेषता यह है कि वह एकेन्द्रिय जीवों में नहीं होता। आनप्राण (श्वासोच्छ्वास) पुद्गल परिवर्तन सभी जीवों में एकसे लेकर अनन्त तक जानना चाहिये, यावत् वैमानिक भव तक कहना चाहिये।

भगवन् ! नैरयिक जीवोंके नैरयिकभवमें कितने औदारिक पुद्गल परिवर्तन हुए हैं ? गौतम ! एक भी नहीं हुआ। भगवन् ! आगे कितने होंगे ? गौतम ! एक भी नहीं होगा। इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमारपने तक कहना चाहिये। भगवन् ! नैरयिक जीवों के पृथ्वीकायपनेमें औदारिक पुद्गल परिवर्तन कितने हुए हैं ? गौतम ! अनन्त हुए हैं। भगवन् ! आगे कितने होंगे ? गौतम ! अनन्त होंगे। इसी प्रकार यावत् मनुष्यभव तक कहना चाहिए। जिस प्रकार नैरयिकभव में कहे हैं, उसी प्रकार वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिकभव में कहना चाहिए। इसी प्रकार यावत् वैमानिकोंके वैमानिकभव तक सातों ही पुद्गल परिवर्तन कहने चाहिएं। जहां जो पुद्गल परिवर्तन हों, वहां अतीत (बीते हुए) और पुरस्कृत (भविष्यकालीन) अनन्त कहने चाहिएं और जहां नहीं हों, वहां अतीत और पुरष्कृत दोनों नहीं कहने चाहिएं। यावत् भगवन् ! वैमानिकों के वैमानिकभवमें कितने आनप्राणपुद्गल परिवर्तन हुए हैं ? गौतम ! अनन्त हुए हैं। भगवन् ! आगे कितने होंगे ? गौतम ! अनन्त होंगे ॥४४५॥

भगवन् ! 'औदारिक पुद्गल परिवर्तन' यह औदारिक पुद्गल परिवर्तन क्यों कहलाता है ? गौतम ! औदारिक शरीरमें रहते हुए जीव ने औदारिक शरीर योग्य द्रव्य औदारिक शरीरपने ग्रहण किये हैं, बद्ध किये हैं अर्थात् जीव प्रदेशों के साथ एकमेक किये हैं, शरीर पर रेणुके समान स्पृष्ट किये हैं, अथवा नवीन नवीन ग्रहण कर उन्हें पुष्ट किया है; उन्हें किया है, अर्थात् पूर्व परिणामकी अपेक्षा परिणामान्तर किया है। प्रस्थापित (स्थिर) किया है, स्थापित किया है, अभिनिविष्ट (सर्वथा लगे हुए) किये हैं, अभिसमन्वागत (सर्वथा प्राप्त) किये हैं, सभी अवयवोंसे उन्हें ग्रहण किया है, परिणामित (रसानुभूति से परिणामान्तर प्राप्त) किया है, निर्जीर्ण (क्षीण रस वाले) किया है, निःश्रित (जीव प्रदेशोंसे पृथक्) किया है, निःसृष्ट (अपने प्रदेशोंसे परित्यक्त) किया है, इसलिये हे गौतम ! 'औदारिक पुद्गल परिवर्तन' औदारिक पुद्गल परिवर्तन कहलाता है। इसी प्रकार वैक्रिय पुद्गल परिवर्तन भी कहना चाहिए, परन्तु इतनी विशेषता है कि 'वैक्रिय शरीरमें रहते हुए जीवने वैक्रिय शरीर योग्य ग्रहण आदि किया है,' इत्यादि कहना चाहिये। शेष पूर्ववत् कहना चाहिए। इसी प्रकार यावत् आनप्राण पुद्गल परिवर्तन तक कहना चाहिए। किंतु वहां 'आनप्राण योग्य सर्व द्रव्योंको आनप्राणपने ग्रहणादि किया,' इत्यादि कहना चाहिए। शेष पूर्ववत् जानना चाहिए।

भगवन् ! औदारिक पुद्गल परिवर्तन कितने कालमें निर्वर्तित–निष्पन्न होता है ? गौतम ! अनन्त उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल में निष्पन्न होता है। इसी प्रकार वैक्रिय पुद्गल परिवर्तन यावत् आनप्राण पुद्गल परिवर्तन तक जानना

चाहिए। भगवन् ! औदारिक पुद्गल परिवर्तन निष्पत्तिकाल, वैक्रिय पुद्गल परिवर्तन निष्पत्तिकाल यावत् आनप्राण पुद्गल परिवर्तन निष्पत्तिकाल, इनमें कौनसा काल किस काल से अल्प यावत् विशेषाधिक है ? गौतम ! सबसे थोड़ा कार्मण पुद्गल परिवर्तन निष्पत्तिकाल है, उससे तैजस् पुद्गल परिवर्तन निष्पत्तिकाल अनन्त गुणा है, उससे औदारिक पुद्गल परिवर्तन निष्पत्तिकाल अनन्त गुणा है, उससे आनप्राण पुद्गल परिवर्तन निष्पत्तिकाल अनन्त गुणा है, उससे मनःपुद्गल परिवर्तन निष्पत्तिकाल अनन्त गुणा है, उससे वचनपुद्गलपरिवर्तन निष्पत्तिकाल अनन्त गुणा है और उससे वैक्रिय पुद्गल परिवर्तन निष्पत्तिकाल अनन्त गुणा है ॥४४६॥

भगवन् ! औदारिक पुद्गल परिवर्तन यावत् आनप्राण पुद्गल परिवर्तन, इनमें कौन पुद्गल परिवर्तन, किससे अल्प यावत् विशेषाधिक है ? गौतम ! सबसे थोड़ा वैक्रिय पुद्गल परिवर्तन है उससे वचन पुद्गल परिवर्तन अनन्त गुणा है, उससे मनःपुद्गल परिवर्तन अनन्त गुणा है, उससे आनप्राण पुद्गल परिवर्तन अनन्त गुणा है, उससे औदारिक पुद्गल परिवर्तन अनन्त गुणा है, उससे तैजस् पुद्गल परिवर्तन अनन्त गुणा है और उससे कार्मण पुद्गल परिवर्तन अनन्त गुणा है। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है। ...ऐसा कहकर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ॥४४७॥

॥ बारहवें शतक का चतुर्थ उद्देशक समाप्त ॥

शतक १२ उद्देशक ५—पाप कर्मके वर्णादि पर्याय०

राजगृह नगरमें यावत् गौतम स्वामीने इस प्रकार पूछा—भगवन् ! प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन और परिग्रह—ये सभी कितने वर्ण, गंध, रस और स्पर्श वाले हैं ? गौतम ! ये पांच वर्ण, दो गंध, पांच रस और चार स्पर्श वाले कहे हैं। भगवन् ! क्रोध, कोप, रोष, दोष, अक्षमा, संज्वलन, कलह, चाण्डिक्य भण्डन और विवाद—ये सभी कितने वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श वाले कहे हैं ? गौतम ! ये पांच वर्ण, दो गन्ध, पांच रस और चार स्पर्श वाले कहे हैं। भगवन् ! मान, मद, दर्प, स्तम्भ, गर्व, अत्युत्क्रोश, परपरिवाद, उत्कर्ष, अपकर्ष, उन्नत, उन्नाम, दुर्नाम—ये सभी कितने वर्ण, रस और स्पर्श वाले कहे हैं ? गौतम ! ये पांच वर्ण, दो गन्ध, पांच रस और चार स्पर्श वाले कहे हैं।

भगवन् ! माया, उपधि, निकृति, वलय, गहन, नूम, कल्क, कुरूपा, जिह्मता, किल्विष, आदरणता (आचरणता), गूहनता, वञ्चनता, प्रतिकुञ्चनता और

सातियोग—इन सभी में कितने वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श हैं ? गौतम ! इन सभी का कथन क्रोधके समान जानना चाहिए।

भगवन् ! लोभ, इच्छा, मूर्च्छा, कांक्षा, गृद्धि, तृष्णा, भिध्या, अभिध्या, आशंसना, प्रार्थना, लालपनता, कामाशा, भोगाशा, जीविताशा, मरणाशा और नन्दिराग—इनमें कितने वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श हैं ? गौतम ! क्रोधके समान समझना चाहिए। भगवन् ! प्रेम-राग, द्वेष, कलह यावत् मिथ्यादर्शन शल्य, इनमें कितने वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श हैं ? गौतम ! क्रोधके समान जानो ॥४४८॥

भगवन् ! प्राणातिपात विरमण यावत् परिग्रह विरमण, क्रोधविवेक (क्रोध-त्याग) यावत् मिथ्यादर्शनशल्यविवेक—इन सभीके कितने वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श हैं ? गौतम ! ये सभी वर्ण, गंध, रस और स्पर्शसे रहित हैं। भगवन् ! औत्पत्तिकी, वैनयिकी, कार्मिकी और पारिणामिकी बुद्धिमें कितने वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श हैं ? गौतम ! ये······रहित हैं। भगवन् ! अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा—ये सभी कितने वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श वाले हैं ? गौतम ! ये······रहित हैं।

भगवन् ! उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषकारपराक्रम—ये सभी कितने वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श वाले हैं ? गौतम ! ये······रहित हैं। भगवन् ! सातवें अवकाशान्तरमें कितने वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श हैं ? गौतम ! वह वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श रहित है। भगवन् ! सातवां तनुवात कितने वर्णादि युक्त है ? गौतम ! प्राणातिपातके समान कहना चाहिये, किन्तु इतनी विशेषता है कि यह आठ स्पर्श वाला है। सातवें तनुवातके समान सातवां घनवात, घनोदधि और सातवीं पृथ्वी कहनी चाहिये। छठा अवकाशान्तर वर्णादि रहित है। छठा तनु-वात, घनवात, घनोदधि और छठी पृथ्वी, ये सब आठ स्पर्श वाले हैं। जिस प्रकार सातवीं पृथ्वी की वक्तव्यता कही है, उसी प्रकार यावत् प्रथम पृथ्वी तक जानना चाहिये। जम्बूद्वीप यावत् स्वयम्भूरमण समुद्र, सौधर्मकल्प यावत् ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी, नैरयिकावास यावत् वैमानिकावास, ये सब आठ स्पर्श वाले हैं।

भगवन् ! नैरयिकों में कितने वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श हैं ? गौतम ! वैक्रिय और तैजस् पुद्गलोंकी अपेक्षा वे पांच वर्ण, पांच रस, दो गन्ध और आठ स्पर्श वाले हैं। कार्मण पुद्गलोंकी अपेक्षा पांच वर्ण, पांच रस, दो गन्ध और चार स्पर्श वाले हैं। जीव की अपेक्षा वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श रहित हैं। इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमारों तक कहना चाहिये।

भगवन् ! पृथ्वीकायिक कितने वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श वाले हैं ? गौतम ! औदारिक और तैजस् पुद्गलों की अपेक्षा पांच वर्ण, पांच रस, दो गन्ध

और आठ स्पर्श वाले हैं। कार्मणकी अपेक्षा और जीव की अपेक्षा पूर्ववत्-नैरयिकोंके कथन के समान जानना चाहिये। इसी प्रकार यावत् चौइन्द्रिय तक जानना चाहिये। परन्तु इतनी विशेषता है कि वायुकायिक औदारिक, वैक्रिय और तैजस् पुद्गलोंकी अपेक्षा पांच वर्ण, पांच रस, दो गन्ध और आठ स्पर्श वाले हैं। शेष नैरयिकोंके समान जानना चाहिये। पञ्चेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक जीवोंका कथन भी वायुकायिकों के समान जानना चाहिये।

भगवन्! मनुष्य कितने वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श वाले हैं? गौतम! औदारिक, वैक्रिय, आहारक और तैजस् पुद्गलोंकी अपेक्षा पांच वर्ण, पांच रस, दो गन्ध और आठ स्पर्श वाले हैं। कार्मण पुद्गल और जीव की अपेक्षा नैरयिकों के समान जानना चाहिए और नैरयिकोंके समान ही वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिकों का कथन करना चाहिये। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और काल—ये वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श रहित हैं। पुद्गलास्तिकाय पांच वर्ण, पांच रस, दो गन्ध और आठ स्पर्श वाला है। ज्ञानावरणीय यावत् अन्तराय—ये आठ कर्म पांच वर्ण, पांच रस, दो गन्ध और चार स्पर्श वाले हैं।

भगवन्! कृष्ण लेश्या कितने वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श वाली है? गौतम! द्रव्य लेश्या की अपेक्षा पांच वर्ण, पांच रस, दो गन्ध और आठ स्पर्श वाली है और भाव लेश्या की अपेक्षा वर्णादि रहित है। इसी प्रकार यावत् शुक्ल लेश्या तक जानना चाहिये। सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, केवलदर्शन, अभिनिवोधिक(मति)ज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान, केवलज्ञान, मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान, विभंगज्ञान, आहारसंज्ञा, भयसंज्ञा, मैथुनसंज्ञा और परिग्रहसंज्ञा, ये सभी वर्णादि रहित हैं। औदारिक शरीर, वैक्रियशरीर, आहारक शरीर और तैजस् शरीर ये आठ स्पर्श वाले हैं और कार्मणशरीर, मनयोग और वचनयोग, ये चार स्पर्श वाले हैं। कामभोग आठ स्पर्श वाले हैं। साकारोपयोग और अनाकारोपयोग ये दोनों वर्णादि रहित हैं।

भगवन्! सभी द्रव्य कितने वर्णादि वाले हैं? गौतम! कुछ द्रव्य पांच वर्ण, पांच रस, दो गन्ध और आठ स्पर्श वाले हैं, कुछ पांच वर्ण, पांच रस, दो गन्ध और चार स्पर्श वाले हैं और कुछ एक वर्ण, एक रस, एक गन्ध, और दो स्पर्श वाले हैं, तथा कुछ द्रव्य वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श से रहित हैं। इसी प्रकार सभी प्रदेश, सभी पर्याय, अतीत काल, अनागत काल और समस्त काल—ये सब वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्शसे रहित हैं ॥४४९॥

भगवन्! गर्भमें उत्पन्न होता हुआ जीव कितने वर्ण, गंध, रस और स्पर्श

वाले परिणामसे परिणत होता है ? गौतम ! वह पांच वर्ण, पांच रस, दो गन्ध और आठ स्पर्श वाले परिणामसे परिणत होता है ॥४५०॥

भगवन् ! क्या जीव कर्मों से ही मनुष्य तिर्यंचादि विविध रूपोंको प्राप्त होता है, कर्मों के विना विविध रूपोंको प्राप्त नहीं होता? क्या जगत् कर्मों से विविध रूपों को प्राप्त होता है ? और विना कर्मों के प्राप्त नहीं होता ? हां, गौतम ! कर्मसे जीव और जगत् (जीवोंका समूह) विविध रूपोंको प्राप्त होते हैं, किन्तु कर्मों के बिना विविध रूपोंको प्राप्त नहीं होते। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।······ऐसा कहकर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ॥४५१॥

॥ वारहवें शतकका पांचवां उद्देशक समाप्त ॥

शतक १२ उद्देशक ६—चन्द्रमाको राहु ग्रसता है ?...

राजगृह नगर में यावत् गौतम स्वामी ने इस प्रकार पूछा–भगवन् ! वहुत-से मनुष्य इस प्रकार कहते हैं और प्ररूपणा करते हैं कि 'राहु चन्द्रमा को ग्रसता है', तो हे भगवन् ! 'राहु चन्द्रमा को ग्रसता है' यह किस प्रकार हो सकता है ? गौतम ! वहुत-से मनुष्य परस्पर यों कहते हैं और प्ररूपणा करते हैं कि 'राहु चन्द्रमा को ग्रसता है'–यह मिथ्या है । हे गौतम ! मैं इस प्रकार कहता हूं कि राहु महर्द्धिक यावत् महासौख्य वाला है । वह उत्तम वस्त्र, उत्तम माला, उत्तम सुगंध और उत्तम आभूषणों को धारण करने वाला देव है । उस राहु देव के नौ नाम कहे हैं । यथा- १ शृंगाटक २ जटिलक ३ क्षत्रक ४ खर ५ दर्दुर ६ मकर ७ मत्स्य ८ कच्छप और ९ कृष्णसर्प । राहु के विमान पांच वर्णों वाले कहे हैं । यथा—१ काला २ नीला ३ लाल ४ पीला और ५ श्वेत, इनमें से राहु का जो काला विमान है, वह खंजन (काजल) के समान वर्ण वाला है, जो नीला (हरा) विमान है वह कच्चे तुम्बे के समान वर्ण वाला है, जो लाल विमान है वह मजीठ के समान वर्ण वाला है, जो पीला विमान है वह हल्दी के समान वर्ण वाला है और जो श्वेत विमान है वह भस्मराशि(राख के ढेर)के समान वर्ण वाला है। जब आता-जाता हुआ, विकुर्वणा करता हुआ तथा काम-क्रीड़ा करता हुआ राहु देव पूर्व में रहे हुए चन्द्रमा के प्रकाश को ढक कर पश्चिम की ओर जाता है तब पूर्व में चन्द्र दिखाई देता है और पश्चिम में राहु दिखाई देता है, जब पश्चिम में चन्द्रमाके प्रकाश को ढक कर पूर्वकी ओर जाता है तब पश्चिम में चन्द्रमा दिखाई देता है और पूर्वमें राहु दिखाई देता है । जिस प्रकार पूर्व और पश्चिम के दो आलापक कहे हैं, उसी प्रकार दक्षिण और उत्तर के दो आलापक कहने चाहियें, इसी प्रकार उत्तर-पूर्व (ईशानकोण) और दक्षिण-पश्चिम (नैऋत्यकोण) के दो आलापक कहने चाहियें और इसी प्रकार दक्षिण-

र्व (अग्निकोण) और उत्तर-पश्चिम (वायव्यकोण) के दो आलापक कहने चाहियें। इसी प्रकार यावत् जब उत्तर-पश्चिम में चन्द्र दिखाई देता है और दक्षिण-पूर्व में राहु दिखाई देता है एवं जब गमनागमन करता हुआ, विकुर्वणा करता हुआ अथवा काम-क्रीड़ा करता हुआ राहु चन्द्रमा के प्रकाश को आवृत्त करता है, तब मनुष्य कहते हैं कि 'चन्द्रमा को राहु ग्रसता है', इसी प्रकार जब राहु चन्द्रमा के प्रकाश को आवृत्त करता हुआ निकट से निकलता है, तब मनुष्य कहते हैं कि 'चन्द्रमा ने राहु की कुक्षि का भेदन कर दिया'। इसी प्रकार राहु जब चन्द्रमा के प्रकाश को ढकता हुआ पीछे लौटता है, तब मनुष्य कहते हैं कि 'राहु ने चन्द्रमा का वमन कर दिया'। इसी प्रकार जब राहु चन्द्रमा के प्रकाश को नीचे से, चारों दिशाओं से और विदिशाओं से ढक देता है, तब मनुष्य कहते हैं कि 'राहु ने चन्द्रमा को ग्रसित कर लिया है'।

भगवन् ! राहु कितने प्रकार का कहा है ? गौतम ! राहु दो प्रकार का कहा हैं। यथा—ध्रुव-राहु (नित्य-राहु) और पर्वराहु। जो ध्रुव राहु है, वह कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा से लेकर प्रतिदिन अपने पन्द्रहवें भाग से चन्द्र-विम्बके पन्द्रहवें भाग को ढकता रहता है। यथा—प्रतिपदा को प्रथम भाग ढकता है, द्वितीया के दिन दूसरे भाग को ढकता है, इस प्रकार यावत् अमावस्या के दिन चन्द्रमा के पन्द्रहवें भागको ढकता है। कृष्ण-पक्ष के अन्तिम समय में चन्द्रमा रक्त (सर्वथा आच्छादित) हो जाता है और दूसरे समय में चन्द्र रक्त(अंश से आच्छादित) और विरक्त अंश से अनाच्छादित रहता है। शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से लेकर प्रतिदिन चन्द्र के प्रकाश का पन्द्रहवां भाग खुला होता जाता है। यथा—प्रतिपदा के दिन पहला भाग खुला होता है यावत् पूर्णिमा के दिन पन्द्रहवां भाग खुला हो जाता है। शुक्लपक्ष के अन्तिम समय में चन्द्र विरक्त (सर्वथा अनाच्छादित) हो जाता है और शेप समय में चन्द्र रक्त और विरक्त रहता है। जो पर्वराहु है वह जघन्य छह मास में चन्द्र और सूर्य को ढकता है और उत्कृष्ट बयालीस मास में चन्द्रमा को और अड़तालीस वर्ष में सूर्य को ढकता है ॥४५२॥

भगवन् ! चन्द्रमा को 'शशि' (सश्री) क्यों कहते हैं ? गौतम ! ज्योतिषियों के इन्द्र, एवं ज्योतिषियों के राजा चन्द्र के मृगाङ्क (मृग के चिन्ह वाला) विमान है। उसमें कान्त (सुन्दर) देव, कान्त देवियां और कान्त आसन, शयन, स्तम्भ, पात्र आदि उपकरण हैं, तथा ज्योतिषियों का इन्द्र, ज्योतिषियों का राजा चन्द्र स्वयं भी सौम्य, कान्त, सुभग, प्रियदर्शन और सुरूप है, इसलिये चन्द्र को 'शशि' (सश्री-शोभा सहित) कहते हैं ॥४५३॥

भगवन् ! सूर्य को 'आदित्य' (आदि-प्रथम-पहला) क्यों कहते हैं ? गौतम ! समय, आवलिका यावत् उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी आदि कालों का आदिभूत (कारण) सूर्य है, इसलिये इसे 'आदित्य' कहते हैं ॥४५४॥

भगवन् ! ज्योतिपियों के इन्द्र, ज्योतिपियोंके राजा चन्द्रमाके कितनी अग्रमहिषियां हैं ? गौतम ! जिस प्रकार दसवें शतक के दसवें उद्देशक में कहा है, उसी प्रकार जानना चाहिये, यावत् "अपनी राजधानी में सिंहासन पर मैथुन निमित्तक भोग भोगने में समर्थ नहीं है"—तक कहना चाहिये । सूर्य के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार कहना चाहिये ।

भगवन् ! ज्योतिपियों के इन्द्र, ज्योतिपियों के राजा चन्द्र और सूर्य किस प्रकार के काम-भोग भोगते हुए विचरते हैं ? गौतम ! जिस प्रकार प्रथम युवा अवस्था के प्रारम्भ में किसी बलवान् पुरुष ने युवावस्था में प्रविष्ट होती हुई किसी बलशालिनी कन्या के साथ नया ही विवाह किया और इसके अनन्तर ही वह पुरुष अर्थोपार्जन करने के लिये परदेश चला गया और सोलह वर्ष तक विदेश में रहकर धनोपार्जन करता रहा, फिर सभी कार्यों को समाप्त करके वह निर्विघ्न रूप से लौटकर अपने घर आया। फिर स्नान करके, सभी अलंकारों से अलंकृत होकर, मनोज्ञ स्थालीपाक विशुद्ध अठारह प्रकार के व्यञ्जनों से युक्त भोजन करे, तत्पश्चात् महाबल के उद्देशक में वर्णित वासगृह के समान शयनगृह में, शृंगारकी गृहरूप सुन्दर वेप वाली यावत् ललित कलायुक्त, अनुरक्त, अत्यन्त रागयुक्त और मनोऽनुकूल स्त्री के साथ वह इष्ट शब्द-स्पर्शादि पांच प्रकार के मनुष्य सम्बन्धी काम-भोग सेवन करता है । वेदोपशमन (विकार शान्ति) के समय में "हे गौतम ! वह पुरुष किस प्रकार के सुख का अनुभव करता है ?" (गौतम स्वामी कहते हैं कि) "भगवन् ! वह पुरुष उदार सुख का अनुभव करता है।" (भगवान् फरमाते हैं कि) "गौतम ! उस पुरुष के काम-भोगों की अपेक्षा वाणव्यन्तर देवोंके काम-भोग अनन्त गुणा विशिष्ट होते हैं। वाणव्यन्तर देवोंके काम-भोगों से असुरेन्द्र के सिवाय शेष भवनवासी देवों के काम-भोग अनन्तगुणा विशिष्ट होते हैं। शेप भवनवासी देवोंके काम-भोगों से असुरकुमार देवों के काम-भोग अनन्तगुणा विशिष्ट होते हैं। असुरकुमार देवों के काम-भोगों से ज्योतिषी देवरूप ग्रहगण, नक्षत्र और तारा देवों के काम-भोग अनन्त गुणा विशिष्ट होते हैं। ज्योतिषी देव रूप ग्रहगण, नक्षत्र और तारा देवों के काम-भोग से ज्योतिषियों के इन्द्र, ज्योतिषियों के राजा चन्द्र और सूर्य के काम-भोग अनन्तगुणा विशिष्ट होते हैं । हे गौतम ! ज्योतिषियोंके इन्द्र ज्योतिषियों के राजा चन्द्र और सूर्य इस प्रकार के काम भोगों का अनुभव करते हुए विचरते हैं । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है।···ऐसा कहकर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ॥४५५॥

॥ बारहवें शतक का छठा उद्देशक समाप्त ॥

———

शतक १२ उद्देशक ७—बकरियों के बाड़े का दृष्टांत०

उस काल उस समय में गौतम स्वामी ने इस प्रकार पूछा—"भगवन् ! लोक कितना बड़ा है ?" गौतम ! लोक बहुत बड़ा है । वह पूर्व दिशा में असंख्य कोटा-कोटि योजन है, इसी प्रकार दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशा में भी असंख्य कोटा-कोटि योजन है, और इसी प्रकार ऊर्ध्वदिशा और अधोदिशा में भी असंख्य कोटा-कोटि योजन आयामविष्कम्भ (लम्बाई चौड़ाई) वाला है ।

भगवन् ! इतने बड़े लोक में क्या कोई परमाणु-पुद्गल जितना भी आकाश-प्रदेश ऐसा है जहां पर इस जीव ने जन्म-मरण नहीं किया है ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है । भगवन् ! इसका क्या कारण है ? गौतम ! जैसे कोई पुरुष सौ बकरियों के लिये एक विशाल अजाव्रज बनवाये । उसमें कम से कम एक, दो, तीन और अधिक से अधिक एक हजार बकरियों को रक्खे और उसमें उनके लिये घास पानी डाल दे । यदि वे बकरियां वहां कम से कम एक, दो, तीन दिन और अधिक से अधिक छह महीने तक रहें ।

भगवान् पूछते हैं–"गौतम ! उस बाड़े का कोई परमाणु पुद्गल मात्र प्रदेश ऐसा रह सकता है कि जो बकरियों के मल, मूत्र, श्लेष्म, नाक का मैल, वमन, पित्त, शुक्र, रुधिर, चर्म, रोम, सींग, खुर और नख से स्पर्श न किया गया हो ?" गौतम स्वामी उत्तर देते हैं–"भगवन् ! यह अर्थ समर्थ नहीं है ।" भगवान् कहते हैं कि–"हे गौतम ! कदाचित् उस बाड़े में कोई एक परमाणु-पुद्गल मात्र प्रदेश ऐसा रह भी सकता है कि जो बकरियों के मल यावत् नखों से स्पृष्ट न हुआ हो, तथापि इतने बड़े लोकमें, लोकके शाश्वत भावके कारण, संसार के अनादि होनेके कारण, जीवकी नित्यता के कारण, कर्मकी बहुलता के कारण और जन्म-मरण की बहु-लता के कारण कोई भी परमाणु-पुद्गल मात्र प्रदेश ऐसा नहीं है कि जहां इस जीव ने जन्म-मरण नहीं किया हो । इस कारण हे गौतम ! उपर्युक्त बात कही गई है ।।४५६।।

भगवन् ! पृथ्वियां कितनी कही हैं ? गौतम ! पृथ्वियां सात कही हैं । यहां प्रथम शतक के पांचवें उद्देशक में कहे अनुसार नरकादि के आवास कहने चाहिएं । इसी प्रकार यावत् अनुत्तर-विमान यावत् अपराजित और सर्वार्थसिद्ध तक कहना चाहिये । भगवन् ! यह जीव इस रत्नप्रभा पृथ्वीके तीस लाख नरकावासोंमें से प्रत्येक नरकावासमें, पृथ्वीकायिकपने यावत् वनस्पतिकायिकपने, नरकपने (नरका-वास पृथ्वीकायिकरूप) और नैरयिकपने पहले उत्पन्न हुआ है ? हां, गौतम ! अनेक वार अथवा अनन्त वार पहले उत्पन्न हो चुका है ।

भगवन् ! सभी जीव इस रत्नप्रभा पृथ्वीके तीस लाख नरकावासों में से

प्रत्येक नरकावासमें पृथ्वीकायिकपने यावत् वनस्पतिकायिकपने, नरकपने और नैरयिकपने पहले उत्पन्न हो चुके हैं? हां, गौतम ! अनेक बार अथवा अनन्त बार उत्पन्न हो चुके हैं। भगवन् ! यह जीव शर्कराप्रभाके पच्चीस लाख नरकावासोंमें से प्रत्येक नरकावासमें, पृथ्वीकायिकपने यावत् वनस्पतिकायिकपने यावत् पहले उत्पन्न हो चुका है ? हां, गौतम ! जिस प्रकार रत्नप्रभाके दो आलापक कहे हैं, उसी प्रकार शर्कराप्रभा के भी दो आलापक (एक जीव और सभी जीव के) कहने चाहियें। इसी प्रकार यावत् धूमप्रभा तक कहना चाहिए।

भगवन् ! यह जीव तमःप्रभा पृथ्वीके पांच कम एक लाख नरकावासों में से प्रत्येक नरकावासमें पूर्ववत् उत्पन्न हो चुका है ? हां, गौतम ! पूर्ववत् उत्पन्न हो चुका है। भगवन् ! यह जीव अधःसप्तम पृथ्वीके पांच अनुत्तर और अति विशाल नरकावासों में से प्रत्येक नरकावासमें पूर्ववत् उत्पन्न हो चुका है? हां, गौतम ! रत्नप्रभा पृथ्वीके समान हो चुका है। भगवन् ! यह जीव असुरकुमारोंके चौसठ लाख असुरकुमारावासोंमें से प्रत्येक असुरकुमारावास में, पृथ्वीकायिकपने यावत् वनस्पतिकायिकपने, देवपने, देवीपने, आसन, शयन, पात्रादि उपकरणके रूप में पहले उत्पन्न हो चुका है ? हां, गौतम ! अनेक बार या अनन्त बार उत्पन्न हो चुका है। सभी जीवोंके विषयमें भी इसी प्रकार जानना चाहिये। इसी प्रकार स्तनितकुमारों तक जानना चाहिये। किन्तु उनके आवासों की संख्यामें भेद है। वह संख्या पहले बता दी गई है।

भगवन् ! यह जीव असंख्यात लाख पृथ्वीकायिक आवासोंमें से प्रत्येक पृथ्वीकायिकावासमें पृथ्वीकायिकपने यावत् वनस्पतिकायिकके रूप में उत्पन्न हो चुका है ? हां, गौतम ! अनेक बार या अनंत बार उत्पन्न हो चुका है। इसी प्रकार सभी जीवोंके लिये भी कहना चाहिये। इसी प्रकार यावत् वनस्पतिकायिकों में भी कहना चाहिये।

भगवन् ! यह जीव असंख्यात लाख बेइन्द्रियावासों में से प्रत्येक बेइन्द्रियावासमें पृथ्वीकायिकपने यावत् वनस्पतिकायिकपने और बेइन्द्रियके रूपमें पहले उत्पन्न हो चुका है ? हां, गौतम ! अनेक बार या अनंत बार उत्पन्न हो चुका है। इसी प्रकार सभी जीवोंके विषयमें भी कहना चाहिये, परन्तु इतनी विशेषता है कि तेइन्द्रियोंमें यावत् वनस्पतिकायिकपने यावत् तेइन्द्रियपने, चौइन्द्रियोंमे यावत् चौइन्द्रियपने, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकों में यावत् पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिकपने और मनुष्यों में यावत् मनुष्यपने उत्पत्ति जाननी चाहिए। शेष सभी बेइन्द्रियोंके समान कहना चाहिये। जिस प्रकार असुरकुमारोंके विषयमें कहा है, उसी प्रकार वाणव्यन्तर, ज्योतिषी, सौधर्म और ईशान देवलोक तक कहना चाहिए।

भगवन् ! यह जीव सनत्कुमार देवलोकके बारह लाख विमानावासोंमें से

प्रत्येक विमानावासमें पृथ्वीकायिकपने यावत् पहले उत्पन्न हो चुका है ? हां, गौतम ! सब कथन असुरकुमारोंके समान जानना चाहिये। किन्तु वहां देवीपने उत्पन्न नहीं हुआ। इसी प्रकार सभी जीवोंके विषयमें जानना चाहिए। इसी प्रकार यावत् आनत, प्राणत, आरण और अच्युत तक जानना चाहिये।

भगवन् ! यह जीव तीन सौ अठारह ग्रैवेयक विमानावासोंमें से प्रत्येक विमानावास में पृथ्वीकायिक के रूपमें यावत् उत्पन्न हो चुका है ? हां, गौतम ! पूर्ववत् उत्पन्न हो चुका है। भगवन् ! यह जीव पांच अनुत्तर विमानोंमें से प्रत्येक विमानमें पृथ्वीकायिकके रूपमें यावत् पहले उत्पन्न हो चुका है ? हां, गौतम ! अनेक बार या अनन्त बार उत्पन्न हो चुका है, किन्तु वहां देव और देवी रूप से उत्पन्न नहीं हुआ। इसी प्रकार सभी जीवोंके विषयमें जानना चाहिये।

भगवन् ! यह जीव सभी जीवोंके मातापने, पिता, भाई, बहन, स्त्री, पुत्र, पुत्री और पुत्रवधू के सम्बन्धसे पहले उत्पन्न हो चुका है ? हां, गौतम ! अनेक बार या अनंत बार उत्पन्न हो चुका है। भगवन् ! सभी जीव इस जीवके मातापने यावत् पुत्रवधूपने उत्पन्न हो चुके हैं ? हां, गौतम ! अनेक बार या अनंत बार उत्पन्न हो चुके हैं। भगवन् ! यह जीव सभी जीवोंके शत्रुपने, वैरी, घातक, वधक, प्रत्यनीक और शत्रुसहायक होकर उत्पन्न हो चुका है ? हां, गौतम ! अनेक बार या अनंत बार उत्पन्न हो चुका है।

भगवन् ! सभी जीव इस जीवके शत्रुपने यावत् शत्रुसहायकपने पहले उत्पन्न हो चुके हैं ? हां, गौतम ! अनेक बार या अनंत बार उत्पन्न हो चुके हैं। भगवन् ! यह जीव सभी जीवोंके राजापने, युवराज यावत् सार्थवाहपने पहले उत्पन्न हो चुका है ? हां, गौतम ! अनेक बार या अनंत बार उत्पन्न हो चुका है। इसी प्रकार सभी जीवोंके विषयमें भी जानना चाहिये। भगवन् ! यह जीव सभी जीवोंके दासपने, प्रेष्यपने (नौकर होकर), भृतक, भागीदार, भोगपुरुष (दूसरोंके उपार्जित धन का भोग करने वाला), शिष्य और द्वेष्य (द्वेषी-ईर्षालू) के रूपमें पहले उत्पन्न हो चुका है ? हां, गौतम ! अनेक बार या अनंत बार उत्पन्न हो चुका है। इस प्रकार सभी जीव भी इस जीवके प्रति पूर्वोक्त रूप से उत्पन्न हो चुके हैं। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है।......ऐसा कहकर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ॥४५७॥

॥ बारहवें शतक का सातवां उद्देशक समाप्त ॥

———

शतक १२ उद्देशक ८—देवका नाग आदिमें उपपात

उस काल उस समय में गौतम स्वामी ने यावत् इस प्रकार पूछा—भगवन् ! महाऋद्धि वाला, यावत् महासुख वाला देव चवकर (मरकर) तुरन्त ही केवल दो शरीर धारण करने वाले नागों में (सर्प अथवा हाथी में) उत्पन्न होता है ? हां गौतम ! उत्पन्न होता है। भगवन् ! वह वहां नाग के भव में अर्चित, वन्दित, पूजित, सत्कारित, सम्मानित, दिव्य, प्रधान, सत्य, सत्यावपातरूप एवं सन्निहित प्रातिहारिक होता है ? हां, गौतम ! होता है। भगवन् ! वहां से चवकर अन्तर रहित वह मनुष्य होकर सिद्ध, बुद्ध होता है, यावत् संसार का अन्त करता है ? हां, गौतम ! वह सिद्ध बुद्ध होता है, यावत् संसार का अन्त करता है। भगवन् ! महर्द्धिक यावत् महासुख वाला देव दो शरीर वाली मणियों में उत्पन्न होता है ? हां,गौतम ! होता है। भगवन् ! महर्द्धिक यावत् महासुख वाला देव दो शरीर धारण करने वाले वृक्षों में उत्पन्न होता है ? हां, गौतम ! होता है, पूर्ववत्। परन्तु इतनी विशेषता है कि जिस वृक्ष में वह उत्पन्न होता है, वह वृक्ष सन्निहित प्रातिहारिक होता है, तथा उस वृक्ष की पीठिका (चबूतरा आदि) गोबरादि से लीपी हुई और खड़िया मिट्टी आदि द्वारा पोती हुई होती है। शेष पूर्ववत्, यावत् वह संसार का अन्त करता है ॥४५८॥

भगवन् ! वानर वृषभ (वड़ा वन्दर), कुक्कुट-वृषभ (वड़ा कूकड़ा), मंडूक-वृषभ (वड़ा मेंढक), ये सभी शील रहित,व्रत रहित, गुण रहित, मर्यादा रहित, प्रत्याख्यान पौषधोपवास रहित, काल के समय काल करके इस रत्नप्रभा पृथ्वी में उत्कृष्ट सागरोपम की स्थिति वाले नरकावास में नैरयिक रूप से उत्पन्न होते हैं ? श्रमण भगवान् महावीर स्वामी कहते हैं कि हाँ, गौतम ! नैरयिक रूप से उत्पन्न होते हैं, क्योंकि 'उत्पन्न होता हुआ, उत्पन्न हुआ' कहलाता है। भगवन् ! सिंह, व्याघ्र आदि सातवें शतक के छठे अवसर्पिणी उद्देशक में कथित जीव यावत् पाराशर—ये सभी शील रहित इत्यादि पूर्वोक्त रूप से उत्पन्न होते हैं ? हां गौतम ! होते हैं। भगवन् ! कौआ, गिद्ध, विलक, मेंढक और मोर—ये सभी शील रहित इत्यादि पूर्वोक्त रूप से उत्पन्न होते हैं ? हां, गौतम ! उत्पन्न होते हैं। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है।……ऐसा कहकर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ॥४५९॥

॥ वारहवें शतक का आठवां उद्देशक समाप्त ॥

अर्थागम-द्वितीय खण्ड

परिशिष्ट नं० १

अकारादि अनुक्रमणिका

शतक १२ उद्देशक ८–देवका नाग आदिमें उपपात

उस काल उस समय में गौतम स्वामी ने यावत् इस प्रकार पूछा–भगवन् ! महाऋद्धि वाला, यावत् महासुख वाला देव चवकर (मरकर) तुरन्त ही केवल दो शरीर धारण करने वाले नागों में (सर्प अथवा हाथी में) उत्पन्न होता है ? हां गौतम ! उत्पन्न होता है। भगवन् ! वह वहां नाग के भव में अर्चित, वन्दित, पूजित, सत्कारित, सम्मानित, दिव्य, प्रधान, सत्य, सत्यावपातरूप एवं सन्निहित प्रातिहारिक होता है ? हां, गौतम ! होता है। भगवन् ! वहां से चवकर अन्तर रहित वह मनुष्य होकर सिद्ध, बुद्ध होता है, यावत् संसार का अन्त करता है ? हां, गौतम ! वह सिद्ध बुद्ध होता है, यावत् संसार का अन्त करता है। भगवन् ! महर्द्धिक यावत् महासुख वाला देव दो शरीर वाली मणियों में उत्पन्न होता है ? हां,गौतम ! होता है। भगवन् ! महर्द्धिक यावत् महासुख वाला देव दो शरीर धारण करने वाले वृक्षों में उत्पन्न होता है ? हां, गौतम ! होता है, पूर्ववत्। परन्तु इतनी विशेषता है कि जिस वृक्ष में वह उत्पन्न होता है, वह वृक्ष सन्निहित प्रातिहारिक होता है, तथा उस वृक्ष की पीठिका (चबूतरा आदि) गोबरादि से लीपी हुई और खड़िया मिट्टी आदि द्वारा पोती हुई होती है। शेष पूर्ववत्, यावत् वह संसार का अन्त करता है ॥४५८॥

भगवन् ! वानर वृषभ (बड़ा वन्दर), कुक्कुट-वृषभ (बड़ा कूकड़ा), मंडूक-वृषभ (बड़ा मेंढक), ये सभी शील रहित,व्रत रहित, गुण रहित, मर्यादा रहित, प्रत्याख्यान पौषधोपवास रहित, काल के समय काल करके इस रत्नप्रभा पृथ्वी में उत्कृष्ट सागरोपम की स्थिति वाले नरकावास में नैरयिक रूप से उत्पन्न होते हैं ? श्रमण भगवान् महावीर स्वामी कहते हैं कि हाँ, गौतम ! नैरयिक रूप से उत्पन्न होते हैं, क्योंकि 'उत्पन्न होता हुआ, उत्पन्न हुआ' कहलाता है। भगवन् ! सिंह, व्याघ्र आदि सातवें शतक के छठे अवसर्पिणी उद्देशक में कथित जीव यावत् पाराशर–ये सभी शील रहित इत्यादि पूर्वोक्त रूप से उत्पन्न होते हैं ? हां गौतम ! होते हैं। भगवन् ! कौआ, गिद्ध, बिलक, मेंढक और मोर—ये सभी शील रहित इत्यादि पूर्वोक्त रूप से उत्पन्न होते हैं ? हां, गौतम ! उत्पन्न होते हैं। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है।······ऐसा कहकर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ॥४५९॥

॥ वारहवें शतक का आठवां उद्देशक समाप्त ॥

शतक १२ उद्देशक ६—भव्यद्रव्यादि पांच प्रकार के देव

भगवन् ! देव कितने प्रकार के कहे हैं ? गौतम ! देव पांच प्रकार के कहे हैं। यथा—भव्यद्रव्यदेव, नरदेव, धर्मदेव, देवाधिदेव और भावदेव। भगवन् ! 'भव्यद्रव्यदेव'—ऐसा कहने का कारण क्या है ? गौतम ! जो पञ्चेन्द्रिय-तिर्यञ्च-योनिक अथवा मनुष्य देवों में उत्पन्न होने योग्य (भव्य) हैं, वे 'भव्यद्रव्यदेव' कहलाते हैं। भगवन् ! 'नरव' क्यों कहलाते हैं ? गौतम ! जो राजा पूर्व पश्चिम और दक्षिण में समुद्र तथा उत्तर में हिमवान् पर्वत पर्यन्त छह खण्ड पृथ्वी के स्वामी चक्रवर्ती हैं। जिनके यहां समस्त रत्नों में प्रधान चक्ररत्न उत्पन्न हुआ है, जो नवनिधि के स्वामी हैं, समृद्ध भण्डार वाले हैं, वत्तीस हजार राजा जिनका अनुसरण करते हैं, ऐसे महासागर रूप उत्तम मेखला पर्यन्त पृथ्वी के पति और मनुष्येन्द्र हैं, वे 'नरदेव' कहलाते हैं।

भगवन् ! 'धर्मदेव' क्यों कहलाते हैं ? गौतम ! जो ये अनगार भगवान् ईर्यासमिति आदि समितियों से समन्वित यावत् गुप्त ब्रह्मचारी हैं, वे 'धर्मदेव' कहलाते हैं। भगवन् ! 'देवाधिदेव' क्यों कहलाते हैं ? गौतम ! उत्पन्न हुए केवल-ज्ञान और केवलदर्शन को धारण करने वाले यावत् सर्वदर्शी अरिहन्त भगवान् 'देवाधिदेव' कहलाते हैं। भगवन् ! 'भावदेव' किसे कहते हैं ? गौतम ! भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देव, जो देवगति सम्बन्धी नामकर्म और गोत्र-कर्म का वेदन कर रहे हैं, वे 'भावदेव' कहलाते हैं ॥४६०॥

भगवन् ! भव्यद्रव्यदेव किस गति से आकर उत्पन्न होते हैं ? क्या नैर-यिकों से आकर उत्पन्न होते हैं, अथवा तिर्यंचों, मनुष्यों या देवों से आकर उत्पन्न होते हैं ? गौतम ! नैरयिकों, तिर्यञ्चों, मनुष्यों और देवों से आकर उत्पन्न होते हैं। यहां प्रज्ञापना सूत्र के छठे व्युत्क्रान्ति पद में कहे अनुसार भेद (विशेषता) कहना चाहिये। उन सभी के उत्पत्ति के विषय में अनुत्तरौपपातिक तक कहना चाहिए। इसमें इतनी विशेषता है कि असंख्यात वर्ष की आयुष्य वाले अकर्मभूमि और अन्तरद्वीप के जीव तथा सर्वार्थसिद्ध के जीवों को छोड़कर यावत् अपराजित देवों (भवनपति से लगाकर अपराजित नाम के चौथे अनुत्तर विमान तक) से आकर उत्पन्न होते हैं, परन्तु सर्वार्थसिद्ध के देवों से आकर उत्पन्न नहीं होते।

भगवन् ! नरदेव कहां से आकर उत्पन्न होते हैं, क्या नैरयिक, तिर्यंच, मनुष्य या देवों से आकर उत्पन्न होते हैं ? गौतम ! वे नैरयिक और देवों से आकर उत्पन्न होते हैं, तिर्यंच और मनुष्यों से आकर उत्पन्न नहीं होते। भगवन् ! यदि वे नैरयिकों से आकर उत्पन्न होते हैं, तो क्या रत्नप्रभा यावत् अधःसप्तम पृथ्वी के नैरयिकों से आकर उत्पन्न होते हैं ? गौतम ! वे रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों से आकर उत्पन्न होते हैं, किंतु शर्कराप्रभा यावत् अधःसप्तम पृथ्वी के

नैरयिकों से नहीं। भगवन्! यदि वे देवों से आकर उत्पन्न होते हैं, तो क्या भवनवासी, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देवों से आकर उत्पन्न होते हैं? गौतम! वे भवनवासी, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक–सभी देवों से आकर उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार सभी देवों के विषय में यावत् सर्वार्थसिद्ध पर्यंत' व्युत्क्रान्ति पद में कथित विशेषता पूर्वक उपपात कहना चाहिये।

भगवन्! धर्मदेव नैरयिक आदि किस गति से आकर उत्पन्न होते हैं? गौतम! यह सभी वर्णन व्युत्क्रान्ति पद में कथित भेद सहित यावत् सर्वार्थसिद्ध तक उपपात कहना चाहिए, परन्तु इतनी विशेषता है कि तमःप्रभा और अधःसप्तम पृथ्वी से तथा तेउकाय, वायुकाय, असंख्यात वर्ष वाले कर्मभूमिज, अकर्मभूमिज और अन्तरद्वीपज मनुष्य तथा तिर्यंचों से आकर धर्मदेव उत्पन्न नहीं होते।

भगवन्! देवाधिदेव कहां से आकर उत्पन्न होते हैं? क्या नैरयिकादि चारों गतिसे आकर उत्पन्न होते हैं? गौतम! नैरयिक और देवोंसे आकर उत्पन्न होते हैं, तिर्यंच और मनुष्य गति से आकर उत्पन्न नहीं होते। भगवन्! यदि नैरयिकों से आकर उत्पन्न होते हैं, तो क्या रत्नप्रभा आदिके नैरयिकोंसे आकर उत्पन्न होते हैं? गौतम! प्रथम तीन पृथ्वियों से आकर उत्पन्न होते हैं, शेष पृथ्वियों का निषेध है। भगवन्! यदि देवोंसे आकर उत्पन्न होते हैं, तो क्या भवनपति आदिसे आकर उत्पन्न होते हैं? गौतम! सभी वैमानिक देवोंसे यावत् सर्वार्थसिद्ध से आकर उत्पन्न होते हैं। शेष देवों का निषेध करना चाहिये। भगवन्! भावदेव किस गतिसे आकर उत्पन्न होते हैं? गौतम! प्रज्ञापना सूत्रके छठे व्युत्क्रान्ति पद में जिस प्रकार भवनवासियों का उपपात कहा है, उसी प्रकार यहां कहना चाहिये ॥४६१॥

भगवन्! भव्यद्रव्यदेवों की स्थिति कितने काल की कही है? गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट तीन पल्योपम। भगवन्! नरदेवों की स्थिति कितने काल की है? गौतम! जघन्य सात सौ वर्ष और उत्कृष्ट चौरासी लाख पूर्व की है। भगवन्! धर्मदेवों की स्थिति कितने काल की है? गौतम! जघन्य अंतर्मुहूर्त और उत्कृष्ट देशोनपूर्वकोटि। भगवन्! देवाधिदेवोंकी स्थिति कितने कालकी है? गौतम! जघन्य बहत्तर वर्ष और उत्कृष्ट चौरासी लाख पूर्व की है। भगवन्! भावदेवों की स्थिति कितने काल की है? गौतम! जघन्य दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की है ॥४६२॥

भगवन्! भव्यद्रव्यदेव एक रूप अथवा अनेक रूपों की विकुर्वणा करने में समर्थ है? हां गौतम! भव्यद्रव्यदेव एक रूप और अनेक रूपों की विकुर्वणा करने में समर्थ है। एक रूप की विकुर्वणा करता हुआ एक एकेन्द्रिय रूप यावत् एक पञ्चेन्द्रियरूप की विकुर्वणा करता है। अथवा अनेक रूपों की विकुर्वणा करता हुआ अनेक एकेंद्रिय रूप यावत् अनेक पञ्चेन्द्रिय रूप विकुर्वणा करता है। वे रूप

संख्यात, या असंख्यात सम्बद्ध या असम्बद्ध, समान या असमान होते हैं। उनसे वह अपना यथेष्ट कार्य करता है। इसी प्रकार नरदेव और धर्मदेव के विषय में भी समझना चाहिये।

भगवन् ! देवाधिदेव एक रूप या अनेक रूपों की विकुर्वणा करने में समर्थ है ? गौतम ! एकरूप और अनेक रूपों की विकुर्वणा करने में समर्थ है। परन्तु उन्होंने (शक्ति होते हुए भी उत्सुकता के अभाव से) सम्प्राप्ति द्वारा कभी विकुर्वणा नहीं की, करते भी नहीं और करेंगे भी नहीं। भगवन् ! भावदेव एकरूप या अनेक रूपों की विकुर्वणा करने में समर्थ है ? गौतम ! जिस प्रकार भव्यद्रव्यदेव का कथन किया है, उसी प्रकार इनका भी जानना चाहिये ॥४६३॥

भगवन् ! भव्यद्रव्यदेव मरकर तुरन्त नैरयिकों में यावत् देवों में उत्पन्न होते हैं ? गौतम ! नैरयिक, तिर्यञ्च और मनुष्यों में उत्पन्न नहीं होते, देवों में उत्पन्न होते हैं और देवों में भी सभी देवों में यावत् सर्वार्थसिद्ध तक उत्पन्न होते हैं। भगवन् ! (अविरत) नरदेव मरने के बाद तत्काल किस गति में उत्पन्न होते हैं ? गौतम ! नैरयिकों में उत्पन्न होते हैं। तिर्यञ्च, मनुष्य और देवों में उत्पन्न नहीं होते। नैरयिकों में भी सातों नरक पृथ्वियों में उत्पन्न होते हैं। भगवन् ! धर्मदेव आयु पूर्ण कर तत्काल कहां उत्पन्न होते हैं? गौतम वे नरक, तिर्यञ्च और मनुष्यों में उत्पन्न नहीं होते, देवों में उत्पन्न होते हैं। भगवन् ! यदि धर्मदेव देवोंमें उत्पन्न होते हैं, तो भवनपति. वाणव्यन्तर, ज्योतिषी या वैमानिक देवों में उत्पन्न होते हैं ? गौतम ! भवनपति, वाणव्यन्तर और ज्योतिषी देवों में उत्पन्न नहीं होते, वैमानिक देवों में उत्पन्न होते हैं। वैमानिकों में वे सभी वैमानिक देवोंमें यावत् सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरोपपातिक देवों में उत्पन्न होते हैं, और कोई-कोई धर्मदेव सिद्ध होकर समस्त दुःखों का अन्त कर देते हैं। भगवन् ! देवाधिदेव आयु पूर्ण कर तत्काल कहां उत्पन्न होते हैं ? गौतम ! वे सिद्ध होते हैं यावत् समस्त दुःखों का अंत करते हैं। भगवन् ! भावदेव तत्काल आयु पूर्ण कर कहां उत्पन्न होते हैं ? गौतम ! प्रज्ञापनासूत्र के छठे व्युत्क्रान्ति पद में जिस प्रकार असुरकुमारों की उद्वर्तना कही है, उसी प्रकार यहां भावदेवों की भी उद्वर्तना कहनी चाहिए।

भगवन् ! भव्यद्रव्यदेव, भव्यद्रव्यदेव रूप से कितने काल तक रहता है ? गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट तीन पल्योपम तक रहता है। जिस प्रकार भवस्थिति कही, उसी प्रकार संस्थिति भी कहनी चाहिए। विशेषता यह कि धर्मदेव जघन्य एक समय और उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि वर्ष तक रहता है। भगवन् ! भव्यद्रव्यदेव का अन्तर कितने काल का होता है ? गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक दस हजार वर्ष तक और उत्कृष्ट अनन्तकाल—वनस्पतिकाल पर्यन्त अन्तर होता है।

भगवन् ! नरदेव का अन्तर कितने काल का होता है ? गौतम ! जघन्य एक सागरोपम से कुछ अधिक और उत्कृष्ट अनन्तकाल, देशोन अपार्द्ध पुद्गल-- परावर्तन पर्यन्त अन्तर होता है। भगवन् ! धर्मदेव का अन्तर कितने काल का होता है ? गौतम ! जघन्य पल्योपम पृथक्त्व (दो से नव पल्योपम तक) और उत्कृष्ट अनन्तकाल, देशोन अपार्द्ध पुद्गल-परावर्त्तन पर्यन्त होता है। भगवन् ! देवाधिदेव का अन्तर कितने काल का होता है ? गौतम ! देवाधिदेव का अन्तर नहीं होता। भगवन् ! भावदेव का अन्तर कितने काल का होता है ? गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्तकाल, वनस्पतिकाल पर्यन्त अन्तर होता है।

भगवन् ! इन भव्यद्रव्यदेव, नरदेव यावत् भावदेव में से कौन किससे अल्प, बहुत या विशेषाधिक हैं ? गौतम ! सबसे थोड़े नरदेव होते हैं, उनसे देवाधिदेव संख्यात गुणा, उनसे धर्मदेव संख्यात गुणा, उनसे भव्यद्रव्यदेव असंख्यात गुणा और उनसे भावदेव असंख्यात गुणा होते हैं। भगवन् ! भावदेव, भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी, वैमानिक, सौधर्म, ईशान यावत् अच्युत, ग्रैवेयक और अनुत्तरौपपातिक–इनमें कौन किससे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?—

गौतम ! सबसे थोड़े अनुत्तरौपपातिक भावदेव हैं, उनसे ऊपर के ग्रैवेयक के भावदेव संख्यात गुणा हैं, उनसे मध्यम ग्रैवेयक के भावदेव संख्यात गुणा हैं, उनसे नीचे के ग्रैवेयक के भावदेव संख्यात गुणा हैं, उनसे अच्युतकल्प के देव संख्यात गुणा हैं, यावत् आनतकल्प के देव संख्यात गुणा हैं। जिस प्रकार जीवा-भिगम सूत्र की दूसरी प्रतिपत्ति के त्रिविध जीवाधिकार में देव पुरुषों का अल्प-बहुत्व कहा है, उसी प्रकार यहां भी यावत् 'ज्योतिषी भावदेव असंख्यात गुणा हैं'—तक कहना चाहिए। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है।…ऐसा कहकर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ॥४६४-४६५॥

॥ बारहवें शतक का नौवां उद्देशक समाप्त ॥

शतक १२ उद्देशक १०

आत्मा के आठ भेद और उनका सम्बन्ध

भगवन् ! आत्मा कितने प्रकार की कही है ? गौतम ! आत्मा आठ प्रकार की कही है। यथा–द्रव्य आत्मा, कषाय आत्मा, योग आत्मा, उपयोग आत्मा, ज्ञान आत्मा, दर्शन आत्मा, चारित्र आत्मा और वीर्य आत्मा। भगवन् ! जिसके द्रव्यात्मा होती है, उसके कषायात्मा होती है और जिसके कषायात्मा होती है, उसके द्रव्यात्मा होती है ? गौतम ! जिसके द्रव्यात्मा होती है, उसके कषायात्मा कदाचित् होती है और कदाचित् नहीं भी होती, परन्तु जिसके कषायात्मा होती है, उसके

द्रव्यात्मा अवश्य होती है। भगवन्! जिसके द्रव्यात्मा होती है, उसके योगात्मा होती है और जिसके योगात्मा होती है, उसके द्रव्यात्मा होती है? गौतम! जिस प्रकार द्रव्यात्मा और कषायात्मा का सम्बन्ध कहा है, उसी प्रकार द्रव्यात्मा और योगात्मा का सम्बन्ध कहना चाहिये।

भगवन्! जिसके द्रव्यात्मा होती है, उसके उपयोग आत्मा होती है और जिसके उपयोगात्मा होती है, उसके द्रव्यात्मा होती है? इस प्रकार सभी आत्माओं के सम्बन्ध में प्रश्न करना चाहिये। गौतम! जिसके द्रव्यात्मा होती है, उसके उपयोगात्मा अवश्य होती है और जिसके उपयोगात्मा होती है, उसके द्रव्यात्मा अवश्य होती है। जिसके द्रव्यात्मा होती है, उसके ज्ञानात्मा भजना (विकल्प) से होती है। अर्थात् कदाचित् होती है, कदाचित् नहीं भी होती। जिसके ज्ञानात्मा होती है, उसके द्रव्यात्मा अवश्य होती है। जिसके द्रव्यात्मा होती है, उसके दर्शनात्मा अवश्य होती है। जिसके दर्शनात्मा होती है, उसके द्रव्यात्मा अवश्य होती है। जिसके द्रव्यात्मा होती है, उसके चारित्रात्मा भजना से होती है और जिसके चारित्रात्मा होती है उसके द्रव्यात्मा अवश्य होती है। जिसके द्रव्यात्मा होती है, उसके वीर्यात्मा भजना से होती है और जिसके वीर्यात्मा होती है, उसके द्रव्यात्मा अवश्य होती है।

भगवन्! जिसके कषायात्मा होती है, उसके योगात्मा होती है, इत्यादि प्रश्न। गौतम! जिसके कषायात्मा होती है, उसके योगात्मा अवश्य होती है, किंतु जिसके योगात्मा होती है, उसके कषायात्मा कदाचित् होती है और कदाचित् नहीं होती। इसी प्रकार उपयोगात्मा के साथ कषायात्मा का सम्बन्ध कहना चाहिये। तथा कषायात्मा और ज्ञानात्मा, इन दोनों का परस्पर सम्बन्ध भजना से कहना चाहिये। कषायात्मा और उपयोगात्मा के सम्बन्ध के समान कषायात्मा और दर्शनात्मा का सम्बन्ध कहना चाहिये, तथा कषायात्मा और चारित्रात्मा का परस्पर सम्बन्ध भजना से कहना चाहिये। कषायात्मा और योगात्मा के सम्बन्ध के समान कषायात्मा और वीर्यात्मा का सम्बन्ध कहना चाहिये। जिस प्रकार कषायात्मा के साथ अन्य छह आत्माओं की वक्तव्यता कही है, उसी प्रकार योगात्मा के साथ आगे की पांच आत्माओं की वक्तव्यता कहनी चाहिये। जिस प्रकार द्रव्यात्मा की वक्तव्यता कही, उसी प्रकार उपयोगात्मा की आगे की चार आत्माओं के साथ वक्तव्यता कहनी चाहिये। जिसके ज्ञानात्मा होती है, उसके दर्शनात्मा अवश्य होती है और जिसके दर्शनात्मा होती है, उसके ज्ञानात्मा भजना से होती है। जिसके ज्ञानात्मा होती है, उसके चारित्रात्मा भजना से होती है और जिसके चारित्रात्मा होती है, उनके ज्ञानात्मा अवश्य होती है। ज्ञानात्मा और वीर्यात्मा—इन दोनों का पारस्परिक सम्बन्ध भजना से कहना चाहिये। जिसके दर्शनात्मा होती है, उसके

चारित्रात्मा और वीर्यात्मा–ये दोनों भजना से होती हैं। जिसके चारित्रात्मा और वीर्यात्मा होती है, उसके दर्शनात्मा अवश्य होती है। जिसके चारित्रात्मा होती है, उसके वीर्यात्मा अवश्य होती है और जिसके वीर्यात्मा होती है, उसके चारित्रात्मा कदाचित् होती है और कदाचित् नहीं भी होती।

भगवन् ! द्रव्यात्मा, कषायात्मा यावत् वीर्यात्मा–इनमें से कौनसी आत्मा किससे अल्प यावत् विशेषाधिक है ? गौतम ! सबसे थोड़ी चारित्रात्मा है, उससे ज्ञानात्मा अनंत गुणी है, उससे कषायात्मा अनंत गुणी है, उससे योगात्मा विशेषाधिक है, उससे वीर्यात्मा विशेषाधिक है, उससे उपयोगात्मा, द्रव्यात्मा और दर्शनात्मा ये तीनों विशेषाधिक हैं और ये तीनों परस्पर तुल्य हैं ।।४६६।।

भगवन् ! आत्मा ज्ञान-स्वरूप है या अज्ञानरूप है ? गौतम ! आत्मा कदाचित् ज्ञान-स्वरूप है और कदाचित् अज्ञान स्वरूप है, परन्तु ज्ञान तो अवश्य आत्म-स्वरूप है। भगवन् ! नैरयिकों की आत्मा ज्ञानरूप है या अज्ञानरूप ? गौतम ! नैरयिक जीवों की आत्मा कदाचित् ज्ञानरूप है और कदाचित् अज्ञान रूप है, परन्तु उनका ज्ञान अवश्य ही आत्मरूप है। इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमारों तक कहना चाहिये। भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीवों की आत्मा ज्ञानरूप है या अज्ञानरूप ? गौतम ! पृथ्वीकायिक जीवों की आत्मा अवश्य अज्ञानरूप है, परन्तु उनका अज्ञान अवश्य आत्मरूप है। इस प्रकार यावत् वनस्पतिकायिक तक कहना चाहिये। बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय यावत् वैमानिक तक जीवोंका कथन नैरयिकोंके समान जानना चाहिये।

भगवन् ! आत्मा दर्शनरूप है या दर्शन उससे भिन्न है ? गौतम ! आत्मा अवश्य दर्शनरूप है और दर्शन भी अवश्य आत्मरूप है। भगवन् ! नैरयिक जीवोंकी आत्मा दर्शनरूप है या नैरयिक जीवों का दर्शन उससे भिन्न है ? गौतम ! नैरयिक जीवों की आत्मा अवश्य दर्शनरूप है और उनका दर्शन भी अवश्य आत्मरूप है। इस प्रकार यावत् वैमानिकों तक चौवीसों दण्डक कहने चाहिएं ।।४६७।।

भगवन् ! रत्नप्रभा पृथ्वी आत्मरूप है या अन्य (असद् रूप) ? गौतम ! रत्नप्रभा पृथ्वी कथंचित् आत्मरूप (सद्‌रूप) है और कथंचित् नोआत्मरूप (असद्‌रूप) है। सदसद्‌रूप (उभयरूप) होने से कथंचित् अवक्तव्य है। भगवन् ! क्या कारण है कि–रत्नप्रभा पृथ्वी कथंचित् सद्‌रूप, कथंचित् असद्‌रूप, और कथंचित् उभयरूप होने से अवक्तव्य कहते हैं ? गौतम ! रत्नप्रभा पृथ्वी अपने स्वरूप से सद्‌रूप है, पर स्वरूप से असद्‌रूप है और उभयरूप की विवक्षा से सद्-असद्‌रूप होने से अवक्तव्य है। इसलिये पूर्वोक्त रूप से कहा गया है।

भगवन् ! शर्कराप्रभा पृथ्वी आत्मरूप (सद्‌रूप) है, इत्यादि प्रश्न। गौतम ! जिस प्रकार रत्नप्रभा पृथ्वी का कथन किया है, उसी प्रकार शर्कराप्रभा पृथ्वी के

विषय में यावत् अधःसप्तम पृथ्वी तक कहना चाहिये। भगवन् ! सौधर्म देवलोक सद्रूप है, इत्यादि प्रश्न। गौतम ! सौधर्म देवलोक कथंचित् सद्रूप है, कथंचित् असद्रूप है और कथंचित् सदसद्रूप होने से अवक्तव्य है।

भगवन् ! इसका क्या कारण है ? गौतम ! स्व स्वरूप से सद्रूप है, पर स्वरूप से असद्रूप है और उभय की अपेक्षा अवक्तव्य है। इसलिये उपर्युक्त रूप से कहा है। इसी प्रकार यावत् अच्युत कल्प तक जानना चाहिये। भगवन् ! ग्रैवेयक विमान सद्रूप है इत्यादि, प्रश्न। गौतम ! रत्नप्रभा पृथ्वी के समान कहना चाहिये। इसी प्रकार अनुत्तर विमान तथा ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी तक कहना चाहिये।

भगवन् ! परमाणु-पुद्गल सद्रूप है या असद्रूप है ? गौतम ! जिस प्रकार सौधर्म देवलोक के विषय में कहा है उसी प्रकार परमाणु-पुद्गल के विषय में भी कहना चाहिये। भगवन् ! द्विप्रदेशी स्कन्ध सद्रूप है या असद्रूप ? गौतम ! द्वि प्रदेशी स्कन्ध कथंचित् सद्रूप है १।२-३ कथंचित् असद्रूप है और सदसद्रूप होने से कथंचित् अवक्तव्य है। ४ कथंचित् सद्रूप है और कथंचित् असद्रूप है। ५ कथंचित् सद्रूप है और सदसद्उभयरूप होने से अवक्तव्य है। ६ कथंचित् असद्रूप है और सदसद्उभयरूप होने से अवक्तव्य है।

भगवन् ! क्या कारण है कि यावत् अवक्तव्यरूप है ? गौतम ! द्विप्रदेशी स्कन्ध अपने स्वरूप की अपेक्षा सद्रूप है, परस्वरूप की अपेक्षा असद्रूप है और उभयरूप से अवक्तव्य है ३। ४ एक देश की अपेक्षा एवं सद्भाव पर्याय की विवक्षा तथा एक देश की अपेक्षा से एवं असद्भाव पर्याय की विवक्षा से द्विप्रदेशी स्कन्ध सद्रूप और असद्रूप है। ५ एक देश की अपेक्षा, सद्भाव पर्याय की अपेक्षा, और एक देश की अपेक्षा से सद्भाव और असद्भाव, इन दोनों पर्यायों की अपेक्षा से द्विप्रदेशी स्कन्ध सद्रूप और सदसद्रूप उभयरूप होने से अवक्तव्य है। ६ एक देश की अपेक्षा, असद्भाव पर्याय की अपेक्षा और एक देश के सद्भाव असद्भाव-रूप उभय पर्यायकी अपेक्षा द्विप्रदेशी स्कन्ध असद्रूप और अवक्तव्यरूप है। इस कारण पूर्वोक्त प्रकार से कहा है।

भगवन् ! त्रिप्रदेशी स्कन्ध आत्मा (सद्-रूप) है या उससे अन्य है ? गौतम ! त्रिप्रदेशी स्कन्ध १ कथंचित् आत्मा (विद्यमान) है, २ कथंचित् नो आत्मा है, ३ आत्मा तथा नो आत्मा इस उभयरूप से कथंचित् अवक्तव्य है, ४ कथंचित् आत्मा तथा कथंचित् नो आत्मा है, ५ कथंचित् आत्मा और नो आत्माएं हैं, ६ कथं-चित् आत्माएं और नो आत्मा है, ७ कथंचित् आत्मा और आत्मा तथा नो आत्मा उभय रूप से अवक्तव्य है, ८ कथंचित् आत्मा और आत्माएं तथा नो आत्माएं उभय रूप से अवक्तव्य हैं, ९ कथंचित् आत्माएं और आत्मा तथा नो आत्मा उभय

रूप से अवक्तव्य है, १० कथंचित् नो आत्मा और आत्मा तथा नो आत्मा उभय रूप से अवक्तव्य है, ११ कथंचित् नो आत्मा और आत्माएं तथा नो आत्माएं उभय रूप से अवक्तव्य है। १२ कथंचित् नो आत्माएं और आत्माएं तथा नो आत्माएं उभय रूप से अवक्तव्य है, १३ कथंचित् आत्मा, नो आत्मा और आत्मा तथा नो आत्मा उभय रूप से अवक्तव्य है।

भगवन् ! ऐसा क्यों कहा गया कि 'त्रिप्रदेशी स्कन्ध कथंचित् आत्मा है, इत्यादि ? गौतम ! त्रिप्रदेशी स्कन्ध १ अपने आदेश (अपेक्षा) से आत्मा है, २ पर के आदेश से नो आत्मा है, ३ उभय के आदेश से आत्मा और नो आत्मा इस उभय रूप से अवक्तव्य है, ४ एक देश के आदेश से सद्भाव पर्याय की अपेक्षा से और एक देश के आदेश से असद्भाव पर्याय की अपेक्षा त्रिप्रदेशी स्कन्ध आत्मा और नो आत्मारूप है, ५ एक देश के आदेश से सद्भाव पर्याय की अपेक्षा और बहुत देशों के आदेश से असद्भाव पर्याय की अपेक्षा से वह त्रिप्रदेशी स्कन्ध आत्मा तथा नोआत्माएं हैं, ६ बहुत देशों के आदेश से सद्भाव पर्याय की अपेक्षा और एक देश के आदेश से असद्भाव पर्याय की अपेक्षा से त्रिप्रदेशी स्कन्ध आत्माएं और नो आत्मा है, ७ एक देश के आदेश से सद्भाव पर्याय की अपेक्षा से और एक देश के आदेश से उभय (सद्भाव और असद्भाव) पर्याय की अपेक्षा से त्रिप्रदेशी स्कन्ध आत्मा और आत्माएं तथा नो आत्माएं उभय रूप से अवक्तव्य है, ८ एक देश के आदेश से सद्भाव पर्याय की अपेक्षा से और बहुत देशों के आदेश से उभय पर्याय की विवक्षा से त्रिप्रदेशी स्कन्ध आत्मा और आत्माएं तथा नोआत्माएं इस उभय रूप से अवक्तव्य है, ९ बहुत देशों के आदेश से सद्भाव पर्याय की अपेक्षा से और एक देश के आदेश से उभय पर्याय की अपेक्षा से त्रिप्रदेशी स्कन्ध आत्माएं और आत्मा तथा नो आत्मा इस उभय रूप से अवक्तव्य है। ये तीन भंग जानने चाहियें। १० एक देश के आदेश से असद्भाव पर्याय की अपेक्षा से और एक देश के आदेश से उभय पर्याय की अपेक्षा से त्रिप्रदेशी स्कन्ध नो आत्मा और आत्मा तथा नो आत्मा से अवक्तव्य है, ११ एक देश के आदेश से असद्भाव पर्याय की अपेक्षा से और बहुत देशों के आदेश से तदुभय पर्याय की अपेक्षा से त्रिप्रदेशी स्कन्ध नो आत्माएं और आत्माएं तथा नो आत्माएं इस उभय रूप से अवक्तव्य है। १२ बहुत देशों के आदेश से असद्भाव पर्याय की अपेक्षा से और एक देश के आदेश से तदुभय पर्याय की अपेक्षा से त्रिप्रदेशी स्कन्ध नो आत्माएं और आत्मा तथा नो आत्मा उभय रूप से अवक्तव्य है, १३ एक देश के आदेश से सद्भाव पर्याय की अपेक्षा, एक देश के आदेश से असद्भाव पर्याय की अपेक्षा से और एक देश के आदेश से तदुभय पर्याय की अपेक्षा से त्रिप्रदेशी स्कन्ध कथंचित् आत्मा,

नोआत्मा और आत्मा तथा नोआत्मा उभयरूप से अवक्तव्य है। इसलिये हे गौतम ! त्रिप्रदेशी स्कन्ध के विषय में उपर्युक्त कथन किया गया है।

भगवन् ! चतुःप्रदेशी स्कन्ध आत्मा है या अन्य है, इत्यादि प्रश्न। गौतम ! चतुष्प्रदेशी स्कन्ध १ कथंचित् आत्मा है, २ कथंचित् नोआत्मा है, ३ आत्मा नोआत्मा उभय रूप से कथंचित् अवक्तव्य है। ४-७ कथंचित् आत्मा और नोआत्मा है (एक वचन और बहुवचन आश्री चार भंग)। ८-११ कथंचित् आत्मा और अवक्तव्य है (एक वचन और बहुवचन आश्री चार भंग)। १२-१५ कथंचित् नो आत्मा और अवक्तव्य है (एक वचन और बहुवचन आश्री चार भंग)। १६ कथंचित् आत्मा और नोआत्मा तथा आत्मा, नोआत्मा रूप से अवक्तव्य है। १७ कथंचित् आत्मा, नोआत्मा और आत्माएं तथा नोआत्माएं रूपसे अवक्तव्य है। १८ कथंचित् आत्मा, नोआत्माएं तथा आत्मा और नोआत्मा उभयरूपसे अवक्तव्य है। १९ कथंचित् आत्माएं, नोआत्मा और आत्मा तथा नोआत्मारूप से अवक्तव्य है। भगवन् ! ऐसा कहने का क्या कारण है ? गौतम ! १ अपने आदेश से आत्मा है, २ पर के आदेश से नोआत्मा है, ३ तदुभय के आदेश से आत्मा और नोआत्मा-इस उभय रूपसे अवक्तव्य है। ४-७ एक देशके आदेशसे सद्भाव पर्याय की अपेक्षा से और एक देश के आदेश से असद्भाव पर्याय की अपेक्षा से (एक वचन और बहुवचन आश्री) चार भंग होते हैं। ८-११ सद्भाव पर्याय और तदुभय पर्याय की अपेक्षा से (एक वचन बहुवचन आश्री) चार भंग होते हैं। १२-१५ असद्भाव पर्याय और तदुभय पर्याय की अपेक्षा से (एक वचन बहुवचन आश्री) चार भंग होते हैं। १६ एक देश के आदेश से सद्भाव पर्याय की अपेक्षा से, एक देश के आदेश से असद्भाव पर्याय की अपेक्षा से और एक देश के आदेश से तदुभय पर्याय की अपेक्षा से चतुष्प्रदेशी स्कन्ध आत्मा, नोआत्मा और आत्मा नोआत्मा उभय-रूप से अवक्तव्य है। १७ एक देश के आदेश से सद्भाव पर्याय की अपेक्षा से, एक देश के आदेश से असद्भाव पर्याय की अपेक्षा से और बहुत देशों के आदेश से तदुभय पर्याय की अपेक्षा से चतुष्प्रदेशी स्कन्ध आत्मा, नोआत्मा और आत्माएं, नोआत्माएं उभय रूप से अवक्तव्य है। १८ एक देश के आदेश से सद्भाव पर्याय की अपेक्षा से, बहुत देशों के आदेश से असद्भाव पर्याय की अपेक्षा से और एक देश के आदेश से तदुभयपर्यायकी अपेक्षासे चतुष्प्रदेशी स्कन्ध आत्मा, नो आत्माएं और आत्मा नोआत्मा उभय रूप से अवक्तव्य है। १९ बहुत देशों के आदेश से सद्भाव पर्याय की अपेक्षा से, एक देश के आदेश से असद्भाव पर्याय की अपेक्षा से और एक देश के आदेश से तदुभय पर्याय की अपेक्षा से चतुष्प्रदेशी स्कन्ध आत्माएं, नोआत्मा और आत्मा नोआत्मा उभयरूप से अवक्तव्य है। इसलिये हे गौतम ! इस कारण ऐसा कहा

जाता है कि चतुष्प्रदेशी स्कन्ध कथंचित् आत्मा है, कथंचित् नोआत्मा है और कथंचित् अवक्तव्य है। इस निक्षेप में पूर्वोक्त सभी भंग यावत् 'नोआत्मा है' तक कहने चाहियें।

भगवन् ! पञ्चप्रदेशी स्कन्ध आत्मा है या अन्य है ? गौतम ! पञ्चप्रदेशी स्कन्ध १ कथंचित् आत्मा है, २ कथंचित् नोआत्मा है, ३ आत्मा नोआत्मा रूप से कथंचित् अवक्तव्य है, ४-७ कथंचित् आत्मा, नोआत्मा और आत्मा नोआत्मा उभय रूप से कथंचित् अवक्तव्य है, ८-११ कथंचित् आत्मा और अवक्तव्य के चार भंग, १२-१५ कथंचित् नोआत्मा और अवक्तव्य के चार भंग, त्रिक संयोगी आठ भंग में से एक आठवां भंग घटित नहीं होता, अर्थात् सात भंग होते हैं। कुल मिलाकर बाइस भंग होते हैं।

भगवन् ! ऐसा क्यों कहा गया है कि पञ्चप्रदेशी स्कन्ध आत्मा है, इत्यादि प्रश्न। गौतम ! १ पञ्चप्रदेशी स्कन्ध अपने आदेश से आत्मा है, २ पर के आदेश से नोआत्मा है, ३ तदुभय के आदेश से अवक्तव्य है, एक देश के आदेश से सद्भाव पर्याय की अपेक्षा और एक देश के आदेश से असद्भाव पर्याय की अपेक्षा से कथंचित् आत्मा है, कथंचित् नोआत्मा है। इस प्रकार द्विक संयोगी सभी भंग पाये जाते हैं। त्रिसंयोगी आठ भंग होते हैं, उनमें से आठवां भंग घटित नहीं होता। छह प्रदेशी स्कन्ध के विषय में ये सभी भंग घटित होते हैं। छह प्रदेशी स्कन्ध के समान यावत् अनन्त प्रदेशी तक कहना चाहिये।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है।...—ऐसा कह कर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ॥४६८॥

॥ बारहवें शतक का दसवां उद्देशक समाप्त ॥

॥ बारहवां शतक समाप्त ॥

—०—

लब्धि-सामर्थ्यसे रस्सीसे बंधी हुई हंडिया(घड़ली)को हाथमें लेकर आकाशमें गमन कर सकता है, इत्यादि विषयका कथन किया गया है और दसवें उद्देशकमें समुद्घात का प्रतिपादन किया गया है।

उद्देशक १

राजगृह नगरमें गौतमस्वामीने यावत् इस प्रकार पूछा—भगवन् ! नरक पृथ्वियां कितनी कही गई हैं ? गौतम ! नरक पृथ्वियां सात कही गई हैं। यथा—रत्नप्रभा, यावत् अधःसप्तम पृथ्वी। भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वीमें कितने लाख नरकावास कहे गये हैं ? गौतम ! तीस लाख नरकावास कहे गये हैं। भगवन् ! क्या वे नरकावास संख्येय विस्तृत (संख्यात योजन विस्तार वाले) हैं या असंख्येय विस्तृत हैं ? गौतम ! वे संख्येय विस्तृत भी हैं और असंख्येय विस्तृत भी हैं।

भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वीके तीस लाख नरकावासों में से संख्येय विस्तृत नरकावासोंमें एक समयमें १ कितने नैरयिक जीव उत्पन्न होते हैं ? २ कितने कापोत लेश्या वाले नैरयिक० ? ३ कितने कृष्ण-पाक्षिक जीव० ? ४ कितने शुक्ल-पाक्षिक० ? ५ कितने संज्ञी० ? ६ कितने असंज्ञी० ? ७ कितने भवसिद्धिक० ? ८ कितने अभव-सिद्धिक० ? ९ कितने आभिनिवोधिकज्ञानी(मतिज्ञानी)० ? १० कितने श्रुतज्ञानी० ? ११ कितने अवधिज्ञानी० ? १२ कितने मतिअज्ञानी० ? १३ कितने श्रुतअज्ञानी० ? १४ कितने विभंगज्ञानी० ? १५ कितने चक्षुदर्शनी० ? १६ कितने अचक्षुदर्शनी० ? १७ कितने अवधिदर्शनी० ? १८ कितने आहार-संज्ञाके उपयोग वाले० ? १९ कितने भय-संज्ञा० ? २० कितने मैथुन-संज्ञा० ? २१ कितने परिग्रह-संज्ञा० ? २२ कितने स्त्री-वेदी० ? २३ कितने पुरुष-वेदी० ? २४ कितने नपुंसक-वेदी० ? २५ कितने क्रोध-कषायी० ? यावत् (२६-२८) कितने लोभ-कषायी० ? २९ कितने श्रोत्रेन्द्रियके उपयोग वाले० ? यावत् (३० से ३३) कितने स्पर्शनेन्द्रिय० ? ३४ कितने नोइन्द्रिय (मन)० ? ३५ कितने मन-योगी० ? ३६ कितने वचन-योगी० ? ३७ कितने काय-योगी० ? ३८ कितने साकारोपयोग वाले० ? और ३९ कितने अनाकारोपयोग० ?—

गौतम ! इस रत्नप्रभा पृथ्वीके तीस लाख नरकावासोंमें से संख्येयविस्तृत नरकावासोंमें एक समयमें १ जघन्य एक,दो या तीन और उत्कृष्ट संख्यात नैरयिक उत्पन्न होते हैं ? २ जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट संख्यात कापोत लेशी जीव उत्पन्न होते हैं। ३ जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट संख्यात कृष्ण-पाक्षिक जीव उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार शुक्ल-पाक्षिक, संज्ञी, असंज्ञी, भव-सिद्धिक, अभवसिद्धिक, आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मतिअज्ञानी, और विभंगज्ञानीके विषय में भी इसी प्रकार कहना चाहिए। चक्षुदर्शनी जीव उत्पन्न नहीं होते। जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट संख्यात अचक्षुदर्शन

वाले जीव उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार अवधिदर्शनी और आहार-संज्ञाके उपयोग वाले यावत् परिग्रह-संज्ञाके उपयोग वाले भी कहने चाहियें। स्त्री-वेदी जीव उत्पन्न नहीं होते। पुरुष-वेदी जीव भी उत्पन्न नहीं होते। मात्र नपुंसक-वेदी ही उत्पन्न होते हैं, जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट संख्यात। इसी प्रकार क्रोध-कषायी यावत् लोभ-कषायी उत्पन्न होते हैं। श्रोत्रेन्द्रियके उपयोग वाले वहां उत्पन्न नहीं होते। इसी प्रकार यावत् स्पर्शनेन्द्रियके उपयोग वाले जीव भी उत्पन्न नहीं होते। जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट संख्यात नोइन्द्रियके उपयोग वाले उत्पन्न होते हैं। मनयोगी और वचनयोगी जीव उत्पन्न नहीं होते। जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट संख्यात काययोगी जीव उत्पन्न होते हैं ? इसी प्रकार साकारोपयोग वाले और अनाकारोपयोग वाले जीवोंके विषयमें भी कहना चाहिए।

भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वीके तीस लाख नरकावासोंमें से जो संख्यात योजन विस्तार वाले नरकावास हैं, उनमें से एक समयमें कितने नैरयिक जीव उद्वर्तते हैं–निकलते हैं (मरते हैं)? कितने कापोतलेशी नैरयिक उद्वर्तते हैं? यावत् कितने अनाकारोपयुक्त (दर्शनोपयोग वाले) नैरयिक उद्वर्तते हैं ? गौतम! इस रत्नप्रभा पृथ्वीके तीस लाख नरकावासोंमें से जो संख्यात योजन विस्तार वाले नरकावास हैं, उनमें से एक समयमें जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट संख्यात नैरयिक उद्वर्तते हैं, जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट संख्यात कापोत-लेशी नैरयिक उद्वर्तते हैं। इसी प्रकार यावत् संज्ञी-जीव तक नैरयिक उद्वर्तना कहनी चाहिए। असंज्ञी-जीव नहीं उद्वर्तते। भवसिद्धिक नैरयिक जीव जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट संख्यात उद्वर्तते हैं। इसी प्रकार श्रुतअज्ञानी तक उद्वर्तना कहनी चाहिए। विभंगज्ञानी और चक्षुदर्शनी नहीं उद्वर्तते। अचक्षु-दर्शनी जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट संख्यात उद्वर्तते हैं। इसी प्रकार यावत् लोभ-कषायी नैरयिकजीवों तक उद्वर्तना कहनी चाहिए। श्रोत्रेन्द्रियके उपयोग वाले नैरयिक जीव नहीं उद्वर्तते। इसी प्रकार यावत् स्पर्शनेन्द्रियके उपयोग वाले भी नहीं उद्वर्तते। नोइन्द्रियोपयुक्त नैरयिक जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट संख्यात उद्वर्तते हैं। मन-योगी और वचन-योगी नहीं उद्वर्तते। काय-योगी जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट संख्यात उद्वर्तते हैं। इसी प्रकार साकारोपयोग वाले और अनाकारोपयोग वाले नैरयिक जीवोंकी उद्वर्तना कहनी चाहिए।

भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वीके तीस लाख नरकावासोंमें से संख्यात योजन विस्तार वाले नरकावासोंमें १ कितने नैरयिक जीव कहे गये हैं ? २ कितने कापोतलेशी नैरयिक कहे गये हैं ? यावत् ३९ कितने अनाकारोपयोग वाले नैरयिक कहे गये हैं ? १ कितने अनन्तरोपपन्नक २ कितने परंपरोपपन्नक ३ कितने अनन्त-

रावगाढ़ ४ कितने परम्परावगाढ़ ५ कितने अनन्तराहारक ६ कितने परम्पराहारक ७ कितने अनन्तर पर्याप्तक ८ कितने परम्परपर्याप्तक ९ कितने चरम और १० कितने अचरम कहे गये हैं ? गौतम ! इस रत्नप्रभा पृथ्वीके तीस लाख नरकावासोंमें से जो नरकावास संख्यात योजनके विस्तार वाले हैं, उनमें संख्यात नैरयिक जीव कहे गये हैं। संख्यात कापोतलेशी जीव कहे गये हैं। इसी प्रकार यावत् संख्यात संज्ञी जीव कहे गये हैं। असंज्ञी जीव कदाचित् होते हैं और कदाचित् नहीं होते। यदि होते हैं, तो जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट संख्यात होते हैं। भवसिद्धिक जीव संख्यात कहे गये हैं। इसी प्रकार यावत् परिग्रह संज्ञाके उपयोग वाले नैरयिक संख्यात कहे गये हैं। स्त्री-वेदी और पुरुष-वेदी नहीं होते। नपुंसक-वेदी संख्यात होते हैं। इसी प्रकार क्रोध-कषायी भी संख्यात होते हैं। मान-कषायी नैरयिक असंज्ञी नैरयिकोंके समान कदाचित् होते हैं और कदाचित् नहीं होते। इसी प्रकार यावत् माया-कषायी और लोभ-कषायी नैरयिकोंके विषयमें भी कहना चाहिए। श्रोत्रेन्द्रिय यावत् स्पर्शनेन्द्रिय उपयोग वाले नैरयिक संख्यात होते हैं। नोइन्द्रियके उपयोग वाले नैरयिक असंज्ञी नैरयिक जीवोंकी तरह कदाचित् होते हैं और कदाचित् नहीं होते। मन-योगी यावत् अनाकारोपयोग वाले नैरयिक संख्यात होते हैं। अनन्तरोपपन्नक नैरयिक कदाचित् होते हैं और कदाचित् नहीं होते। यदि होते हैं तो असंज्ञी जीवोंके समान एक, दो या तीन और उत्कृष्ट संख्यात होते हैं। परम्परोपपन्नक नैरयिक संख्यात होते हैं। जिस प्रकार अनन्तरोपपन्नकका कथन किया गया, उसी प्रकार अनन्तरावगाढ़, अनन्तराहारक, अनन्तर-पर्याप्तक और चरमका कथन करना चाहिये। जिस प्रकार परम्परोपपन्नकका कथन किया गया है, उसी प्रकार परंपरावगाढ़, परंपराहारक, परंपरपर्याप्तक और अचरमका कथन करना चाहिए।

भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के तीस लाख नरकावासों में से असंख्यात योजन विस्तार वाले नरकावासोंमें एक समयमें कितने नैरयिक उत्पन्न होते हैं ? यावत् कितने अनाकारोपयोग वाले नैरयिक उत्पन्न होते हैं ? गौतम ! इस रत्नप्रभा पृथ्वीके तीस लाख नरकावासोंमें से असंख्यात योजन विस्तार वाले नरकावासों में एक समयमें जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट असंख्यात नैरयिक उत्पन्न होते हैं। जिस प्रकार संख्यात योजन विस्तार वाले नरकावासोंके विषयमें उत्पाद, उद्वर्तन और सत्ता (विद्यमानता) ये तीन आलापक कहे गये हैं, उसी प्रकार असंख्यात योजन विस्तार वाले नरकावासोंके विषयमें भी तीन आलापक कहने चाहियें। इनमें यह विशेषता है कि यहां संख्यातके स्थान पर 'असंख्यात' पाठ कहना चाहिए। शेष सब पहलेके समान कहना चाहिए। यावत् 'असंख्यातअचरम नैरयिक कहे गये हैं।' इनमें विशेषता यह है कि—संख्यात योजन और असंख्यात

योजन विस्तार वाले नरकावासोंमें से अवधिज्ञानी और अवधिदर्शनी 'संख्यात ही उद्वर्तते हैं'–कहना चाहिए। शेष सब पहलेके समान कहना चाहिए।

भगवन् ! शर्कराप्रभा पृथ्वीमें कितने नरकावास कहे गये हैं, इत्यादि प्रश्न। गौतम ! पच्चीस लाख नरकावास कहे गये हैं । भगवन् ! वे नरकावास क्या संख्यात योजन विस्तार वाले हैं या असंख्यात योजन विस्तार वाले ? गौतम ! जिस प्रकार रत्नप्रभा पृथ्वीके विषयमें कहा गया है, उसी प्रकार शर्कराप्रभाके विषय में भी कहना चाहिये। परन्तु उत्पाद, उद्वर्तना और सत्ता, इन तीनों ही आलापकों में 'असंज्ञी' नहीं कहना चाहिये। शेष सभी कथन पूर्व की तरह कहना चाहिये। भगवन् ! बालुकाप्रभा पृथ्वी में० ? गौतम ! बालुकाप्रभामें पन्द्रह लाख नरकावास कहे गये हैं। शेष सभी कथन शर्कराप्रभाके समान कहना चाहिये। यहां लेश्याके विषयमें विशेषता है। लेश्याका कथन प्रथम शतक के दूसरे उद्देशकके समान कहना चाहिये। भगवन् ! पंकप्रभा पृथ्वीमें०? गौतम ! दस लाख नरकावास कहे गये हैं। जिस प्रकार शर्कराप्रभा पृथ्वीके विषयमें कहा है, उसी प्रकार यहां भी कहना चाहिये। विशेषता यह है कि यहांसे अवधिज्ञानी और अवधिदर्शनी नहीं उद्वर्तते। शेष सारा कथन पूर्वके समान जानना चाहिये। भगवन् ! धूमप्रभा पृथ्वी में० ? गौतम ! तीन लाख नरकावास कहे गये हैं। जिस प्रकार पंकप्रभाके विषय में कहा, उसी प्रकार यहां भी कहना चाहिये।

भगवन् ! तमःप्रभा पृथ्वी में० ? गौतम ! पांच कम एक लाख नरकावास कहे गये हैं। शेष सभी वर्णन पंकप्रभाके समान कहना चाहिये । भगवन् ! अधः-सप्तम पृथ्वीमें अनुत्तर और बहुत बड़े कितने महा नरकावास कहे गये हैं, इत्यादि प्रश्न। गौतम ! अनुत्तर और बहुत बड़े पांच महा नरकावास कहे गये हैं। यावत् (काल, महाकाल, रौरव, महारौरव,) अप्रतिष्ठान । भगवन् ! वे नरकावास संख्यात योजन विस्तार वाले हैं या असंख्यात योजन विस्तार वाले हैं ? गौतम ! मध्यका अप्रतिष्ठान नरकावास संख्यात योजन विस्तार वाला है और शेष चार नरकावास असंख्यात योजन के विस्तार वाले हैं।

भगवन् ! अधःसप्तम पृथ्वीके पांच अनुत्तर और बहुत बड़े यावत् महा नरकावासों में से संख्यात योजनके विस्तार वाले अप्रतिष्ठान नरकावास में एक समयमें कितने नैरयिक उत्पन्न होते हैं, इत्यादि प्रश्न। गौतम ! जिस प्रकार पंक-प्रभा के विषय में कहा, उसी प्रकार यहां भी कहना चाहिये, विशेषता यह है कि यहां तीन ज्ञान वाले न तो उत्पन्न होते हैं और न उद्वर्तते हैं, परन्तु इन पांचों नरकावासों में रत्नप्रभा पृथ्वी आदिके समान तीनों ज्ञान वाले पाये जाते हैं। जिस प्रकार संख्यात योजन विस्तार वाले नरकावासोंके विषयमें कहा, उसी प्रकार

असंख्यात योजन विस्तार वाले नरकावासोंके विषयमें भी कहना चाहिये। इसमें संख्यातके स्थान पर 'असंख्यात' पाठ कहना चाहिये ।।४६९।।

भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के तीस लाख नरकावासों में से संख्यात योजन विस्तार वाले नरकावासों में सम्यग्दृष्टि नैरयिक उत्पन्न होते हैं, मिथ्या-दृष्टि नैरयिक उत्पन्न होते हैं और सम्यग्मिथ्यादृष्टि (मिश्रदृष्टि) नैरयिक उत्पन्न होते हैं ? गौतम ! सम्यग्दृष्टि नैरयिक भी उत्पन्न होते हैं और मिथ्यादृष्टि नैरयिक भी उत्पन्न होते हैं, परन्तु सम्यग्मिथ्यादृष्टि नैरयिक उत्पन्न नहीं होते । भगवन् ! रत्नप्रभा पृथ्वी के तीस लाख नरकावासों में से संख्यात योजन विस्तार वाले नरकावासों में से क्या सम्यग्दृष्टि नैरयिक उद्वर्तते हैं, इत्यादि प्रश्न । गौतम ! पूर्व के समान जानना चाहिये, अर्थात् सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि उद्वर्तते हैं, परन्तु सम्यग्मिथ्यादृष्टि नहीं उद्वर्तते । भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वीके तीस लाख नरकावासों में से संख्यात योजन विस्तार वाले नरकावास सम्यग्दृष्टि नैरयिकोंसे अविरहित (सहित) हैं, मिथ्यादृष्टि नैरयिकों से अविरहित हैं, और सम्यग्मिथ्या-दृष्टि नैरयिकों से अविरहित हैं ? गौतम ! सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि नैरयिकोंसे अविरहित हैं, सम्यग्-मिथ्यादृष्टि नैरयिकोंसे कदाचित् अविरहित होते हैं और कदाचित् विरहित होते हैं । इसी प्रकार असंख्यात योजन विस्तार वाले नरकावासों के विषय में भी तीनों आलापक कहने चाहियें । इसी प्रकार शर्कराप्रभा यावत् तमःप्रभा तक कहना चाहिये ।

भगवन् ! अधःसप्तम पृथ्वीके पांच अनुत्तर यावत् संख्यात योजन विस्तार वाले नरकावासोंमें सम्यग्दृष्टि नैरयिक उत्पन्न होते हैं, इत्यादि प्रश्न । गौतम ! सम्यग्दृष्टि नैरयिक उत्पन्न नहीं होते, मिथ्यादृष्टि नैरयिक उत्पन्न होते हैं । सम्य-ग्मिथ्यादृष्टि नैरयिक भी उत्पन्न नहीं होते । इसी प्रकार उद्वर्तनाके विषय में भी कहना चाहिये । जिस प्रकार रत्नप्रभामें सत्ताके विषयमें मिथ्यादृष्टि आदि द्वारा अविरहित कहे गये हैं, उसी प्रकार यहां भी कहना चाहिये । इसी प्रकार असंख्यात योजन विस्तार वाले नरकावासोंके विषय में भी तीन आलापक कहने चाहियें ।।४७०।।

भगवन् ! क्या कृष्णलेशी, नीललेशी यावत् शुक्ललेशी (कृष्णलेश्या योग्य) बन कर कृष्णलेशी-नैरयिकोंमें उत्पन्न होता है ? हां गौतम ! कृष्णलेशी होकर यावत् उत्पन्न होता है । भगवन् ! इसका क्या कारण है ? गौतम ! लेश्या के स्थान संक्लेश को प्राप्त होते हुए कृष्ण-लेश्या रूप से परिणमते हैं और कृष्ण लेश्या से परिणत होने के बाद वह जीव कृष्णलेश्या वाले नैरयिकों में उत्पन्न होता है । इस कारण यावत् पूर्वोक्त रूप से कहा गया है।

भगवन् ! कृष्णलेशी यावत् शुक्ललेशी होकर जीव नीललेश्या वाले नैरयिकों में उत्पन्न होता है ? हां गौतम ! यावत् उत्पन्न होता है । भगवन् ! इसका क्या कारण है ? गौतम ! लेश्या के स्थान संक्लेश को प्राप्त होते हुए और विशुद्धि को प्राप्त होते हुए वह जीव नीललेश्या रूप में परिणत होता है, और नीललेश्या रूप से परिणत होने के बाद वह नीललेशी नैरयिकों में उत्पन्न होता है । इसलिये हे गौतम ! पूर्वोक्त रूप से कहा गया है ।

भगवन् ! क्या कृष्णलेशी, नीललेशी यावत् शुक्ललेशी होकर कापोतलेश्या वाले नैरयिकों में उत्पन्न होता है ? गौतम ! जिस प्रकार नीललेश्याके विषय में कहा गया, उसी प्रकार कापोत लेश्या के विषय में कहना चाहिये, यावत् इस कारण उत्पन्न होते हैं–तक कहना चाहिए । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।...... ऐसा कहकर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं ॥४७१॥

॥ तेरहवें शतकका प्रथम उद्देशक समाप्त ॥

—०—

शतक १३ उद्देशक २

भगवन् ! कितने प्रकार के देव कहे गए हैं ? गौतम ! चार प्रकार के...... । यथा—१ भवनवासी, २ वाणव्यन्तर, ३ ज्योतिषी और ४ वैमानिक । भगवन् ! भवनवासी देव कितने प्रकारके कहे गए हैं ? गौतम ! दस प्रकार... हैं । यथा असुर-कुमार इत्यादि भेद दूसरे शतक के सातवें देवोद्देशक के अनुसार यावत् 'अपराजित और सर्वार्थसिद्ध' पर्यन्त कहना चाहिये । भगवन् ! असुरकुमार देवों के कितने लाख आवास कहे गये हैं ? गौतम ! असुरकुमार देवों के चौंसठ लाख आवास कहे गये हैं । भगवन् ! असुरकुमार देवों के वे आवास संख्यात योजन विस्तार वाले हैं या असंख्यात योजन विस्तार वाले हैं ? गौतम ! संख्यात योजन विस्तार वाले भी हैं और असंख्यात योजन विस्तार वाले भी हैं । भगवन् ! असुरकुमारों के चौंसठ लाख आवासों में से संख्यात योजन विस्तार वाले असुरकुमारावासों में एक समय में कितने असुरकुमार उत्पन्न होते हैं, यावत् कितने तेजोलेशी उत्पन्न होते हैं ? कितने कृष्णपाक्षिक उत्पन्न होते हैं ? इस प्रकार रत्नप्रभा पृथ्वी के विषय में किये गये प्रश्न के समान प्रश्न करना चाहिये और उसका उत्तर भी उसी प्रकार समझ लेना चाहिये । परन्तु इतनी विशेषता है कि यहां दो वेदों सहित (स्त्रीवेदी और पुरुष-वेदी) उत्पन्न होते हैं, नपुंसकवेदी उत्पन्न नहीं होते । शेष सब पूर्ववत् जानना चाहिए । उद्वर्तना के विषयमें भी उसी प्रकार जानना चाहिये, परन्तु इतनी विशे-षता है कि असंज्ञी भी उद्वर्तते हैं । अवधिज्ञानी और अवधिदर्शनी नहीं उद्वर्तते ।

शेष सब पूर्ववत् जानना चाहिये। सत्ता के विषय में पहले कहे अनुसार ही कहना चाहिये, परन्तु इतनी विशेषता है कि वहां संख्यात स्त्रीवेदी और संख्यात पुरुषवेदी हैं, नपुंसकवेदी बिलकुल नहीं हैं। क्रोधकषाय वाले कदाचित् होते हैं और कदाचित् नहीं होते। यदि होते हैं तो जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट संख्यात होते हैं। इसी प्रकार मानकषायी और मायाकषायी के विषय में भी कहना चाहिये। लोभकषायी संख्यात होते हैं। शेष पूर्ववत् जानना चाहिये। संख्येय विस्तृत आवासों में उत्पाद, उद्वर्तना और सत्ता के तीन आलापकोंके विषय में चार लेश्यायें कहनी चाहियें। इसी प्रकार असंख्येय विस्तृत असुरकुमारावासों के विषय में भी कहना चाहिये। परन्तु इनमें 'असंख्यात' पाठ यावत् 'असंख्यात अचरम कहे गये हैं'—तक कहना चाहिये। भगवन्! नागकुमार देवों के कितने लाख आवास कहे गये हैं? गौतम! पूर्वोक्त रूप से यावत् स्तनितकुमारों तक कहना चाहिये। विशेषता यह है कि जहां जितने लाख भवन हों, वहां उतने लाख भवन कहने चाहियें।

भगवन्! वाणव्यन्तर देवों के कितने लाख आवास कहे गये हैं? गौतम! वाणव्यन्तर देवों के असंख्यात लाख आवास कहे गये हैं? भगवन्! वे आवास संख्येय विस्तृत हैं या असंख्येय विस्तृत? गौतम! वे संख्येय विस्तृत हैं, असंख्येय विस्तृत नहीं। भगवन्! वाणव्यन्तर देवों के संख्येय विस्तृत आवासों में एक समय में कितने वाणव्यन्तर देव उत्पन्न होते हैं? गौतम! जिस प्रकार असुरकुमार देवों के संख्येय विस्तृत आवासों के विषय में तीन आलापक कहे, उसी प्रकार वाणव्यन्तर देवों के विषय में भी तीन आलापक कहने चाहियें।

भगवन्! ज्योतिषी देवों के कितने लाख विमानावास कहे गये हैं? गौतम! ज्योतिषी देवों के असंख्यात लाख विमानावास कहे गये हैं। भगवन्! वे विमानावास संख्येय विस्तृत हैं या असंख्येय विस्तृत? गौतम! जिस प्रकार वाणव्यन्तर देवों के विषय में कहा, उसी प्रकार ज्योतिषी देवों के विषय में भी तीन आलापक कहने चाहियें। इसमें इतनी विशेषता है कि ज्योतिषियों में केवल एक तेजोलेश्या ही होती है। उत्पाद, उद्वर्तना और सत्ता में असंज्ञी नहीं होते। शेष सभी वर्णन पूर्ववत् है।

भगवन्! सौधर्म देवलोक में कितने लाख विमानावास कहे गए हैं? गौतम! बत्तीस लाख विमानावास कहे गये हैं। भगवन्! वे विमानावास संख्यात योजन विस्तार वाले हैं या असंख्यात योजन विस्तार वाले? गौतम! संख्यात······भी हैं और असंख्यात···भी हैं। भगवन्! सौधर्म देवलोक के बत्तीस लाख विमानावासों में से संख्यात योजन विस्तार वाले विमानों में से एक समय में कितने देव उत्पन्न होते हैं? तेजोलेश्या वाले कितने सौधर्म देव उत्पन्न होते हैं? जिस प्रकार ज्योतिषी देवों के विषय में तीन आलापक कहे, उसी प्रकार यहां भी

तीन आलापक कहने चाहियें। विशेष में तीनों आलापकों में 'संख्यात' पाठ कहना तथा अवधिज्ञानी और अवधिदर्शनी के च्यवन सम्बन्धी पाठ भी कहना चाहिये। इसके अतिरिक्त सभी विषय पूर्वानुसार कहना चाहिये।

असंख्यात योजन विस्तृत विमानावासों के विषय में भी तीनों आलापक कहने चाहियें, किंतु इनमें 'संख्यात' के स्थानमें 'असंख्यात' कहना चाहिये। असंख्येय योजन विस्तृत विमानावासों में से अवधिज्ञानी और अवधिदर्शनी तो संख्यात ही च्यवते हैं। शेष सभी वर्णन पूर्ववत् है। जिस प्रकार सौधर्म देवलोक के विषय में छः आलापक कहे, उसी प्रकार ईशान देवलोक के विषय में भी छः (तीन संख्येय योजन के विमान सम्बन्धी और तीन असंख्येय योजन के विमानों के विषय में) आलापक कहने चाहिएं। सनत्कुमार के विषय में भी इसी प्रकार जानना चाहिए। इसमें अन्तर इतना है कि सनत्कुमार देवों में केवल पुरुषवेदी ही उत्पन्न होते हैं, स्त्रीवेदी उत्पन्न नहीं होते और न सत्ता में ही रहते हैं। यहां तीनों आलापकों में 'असंज्ञी' पाठ नहीं कहना चाहिये। शेष सभी वक्तव्यता पूर्वानुसार कहनी चाहिए। इसी प्रकार यावत् सहस्रार देवलोक तक कहना चाहिए। अन्तर विमानों की संख्या और लेश्या के विषय में है। शेष सभी विषय पूर्वानुसार है।

भगवन्! आनत और प्राणत देवलोकों में कितने सौ विमानावास कहे हैं? गौतम! चार सौ विमानावास कहे हैं। भगवन्! वे विमानावास संख्यात योजन विस्तृत हैं या असंख्यात योजन विस्तृत? गौतम! संख्यात योजन विस्तृत भी हैं और असंख्यात योजन विस्तृत भी हैं। संख्यात योजन विस्तार वाले विमानावासों के विषयमें सहस्रार देवलोकके समान तीन आलापक कहने चाहियें। असंख्यात योजन विस्तार वाले विमानों में उत्पाद और च्यवन के विषय में 'संख्यात' और सत्तामें 'असंख्यात' कहना चाहिये। इतनी विशेषता है कि नो-इन्द्रियोपयुक्त (मन के उपयोग वाले), अनन्तरोपपन्नक, अनन्तरावगाढ़, अनन्तराहारक और अनन्तर-पर्याप्तक, इन पांचों पदों के विषय में जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट संख्यात उत्पन्न होते हैं। एवं सत्तामें असंख्यात होते हैं। जिस प्रकार आनत और प्राणतके विषयमें कहा, उसी प्रकार आरण और अच्युत के विषय में भी कहना चाहिये। विमानों की संख्या में अन्तर है। इसी प्रकार ग्रैवेयक देवलोकोंके विषय में भी कहना चाहिये।

भगवन्! अनुत्तर विमान कितने कहे गये हैं? गौतम! पांच अनुत्तर विमान कहे गये हैं। भगवन्! वे अनुत्तर विमान संख्येय योजन विस्तृत हैं या असंख्येय योजन विस्तृत हैं? गौतम! उनमें से एक संख्यात योजन विस्तृत है और शेष चार असंख्यात योजन विस्तृत हैं। भगवन्! पांच अनुत्तर विमानों में से संख्यात योजन विस्तार वाले विमान में एक समय में कितने अनुत्तरोपपातिक देव

उत्पन्न होते हैं और कितने शुक्ल लेशी उत्पन्न होते हैं, इत्यादि प्रश्न। गौतम ! पांच अनुत्तर विमानों में से संख्यात योजन विस्तार वाले 'सर्वार्थ-सिद्ध अनुत्तर विमान' में जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट संख्यात अनुत्तरोपपातिक देव उत्पन्न होते हैं। जिस प्रकार संख्यात योजन विस्तार वाले ग्रैवेयक विमानों के विषयमें कहा, उसी प्रकार यहां भी कहना चाहिए। विशेषता यह है कि यहां कृष्णपाक्षिक, अभव्य और तीन अज्ञान वाले जीव उत्पन्न नहीं होते, न च्यवते हैं और न सत्ता में ही होते हैं। इसी प्रकार तीनों आलापकोंमें अचरम का भी निषेध करना चाहिये, यावत् संख्यात चरम कहे गये हैं। शेष सभी वर्णन पूर्ववत् कहना चाहिये। असंख्यात योजन के विस्तार वाले विमानावासों में भी इनका कथन नहीं करना चाहिये। परन्तु उनमें अचरम भी हैं। शेष सभी वर्णन असंख्येय विस्तृत ग्रैवेयकों के समान कहना चाहिये। यावत् 'असंख्यात अचरम कहे गये हैं'—तक कहना चाहिये।

भगवन् ! असुरकुमार देवों के चौंसठ लाख असुरकुमारावासों में से संख्येय योजन विस्तृत असुरकुमारावासों में सम्यग्दृष्टि असुरकुमार उत्पन्न होते हैं, मिथ्यादृष्टि उत्पन्न होते हैं या मिश्रदृष्टि उत्पन्न होते हैं ? गौतम ! जिस प्रकार रत्नप्रभा पृथ्वी के सम्बन्ध में तीन आलापक कहे, उसी प्रकार यहां भी कहने चाहियें और उसी प्रकार असंख्यात योजन विस्तार वाले असुरकुमारावासों के विषय में भी तीन आलापक कहने चाहियें। इसी प्रकार यावत् ग्रैवेयक और अनुत्तर विमानों में भी कहना चाहिये। यह विशेषता है कि अनुत्तर-विमानोंके तीनों आलापकोंमें मिथ्यादृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टिका कथन नहीं करना चाहिये, शेष सभी वर्णन पूर्ववत् है।

भगवन् कृष्णलेशी, नीललेशी यावत् शुक्ललेशी (से परिवर्तित) होकर जीव कृष्णलेशी देवोंमें उत्पन्न होते हैं ? हां, गौतम ! जिस प्रकार प्रथम उद्देशक में नैरयिकों के विषयमें कहा, उसी प्रकार यहां भी कहना चाहिये। नीललेशी यावत् शुक्ललेशीके विषयमें भी उसी प्रकार कहना चाहिये। विशेषता यह है कि लेश्याके स्थान विशुद्ध होते-होते शुक्ललेश्यामें परिणत होते हैं। शुक्ललेश्यामें परिणत होने के पश्चात् वे जीव शुक्ललेशी देवोंमें उत्पन्न होते हैं। इस कारण हे गौतम! 'उत्पन्न होते हैं'—ऐसा कहा गया है। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है।...ऐसा कहकर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ॥४७२॥

॥ तेरहवें शतक का द्वितीय उद्देशक समाप्त ॥

शतक १३ उद्देशक ३—नैरयिकके अनन्तराहारादि

भगवन्! नैरयिक जीव उत्पत्ति-क्षेत्र को प्राप्त होकर अनन्तराहारी (तुरन्त आहार करने वाले) होते हैं और इसके अनन्तर निर्वर्तना (शरीर की उत्पत्ति) करते हैं? (इसके अनन्तर लोमाहारादि द्वारा पुद्गलों को ग्रहण करते हैं? इसके पश्चात् पुद्गलों को इन्द्रियादि रूपमें परिणत करते हैं?) इसके वाद परिचारणा (शब्दादि विषयोंका उपभोग करते हैं? और इसके पश्चात् अनेक प्रकार के रूपों की विकुर्वणा) करते हैं? हां गौतम! पूर्वोक्त प्रकारसे करते हैं। इत्यादि प्रज्ञापना सूत्र का ३४ वां परिचारणा पद सम्पूर्ण कहना चाहिये। हे भगवन्! यह इसी प्रकार है।……ऐसा कहकर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ॥४७३॥

॥ तेरहवें शतक का तीसरा उद्देशक समाप्त ॥

—०—

शतक १३ उद्देशक ४—नरकावासों की एक दूसरे से विशालता०

भगवन्! नरक पृथ्वियां कितनी कही गई हैं? गौतम! नरक पृथ्वियां सात कही गई हैं। यथा—रत्नप्रभा यावत् अधःसप्तम पृथ्वी। भगवन्! अधः-सप्तम पृथ्वी में पांच अनुत्तर और बहुत बड़े नरकावास यावत् 'अप्रतिष्ठान' तक कहे गये हैं। वे नरकावास छठी तमःप्रभा पृथ्वी के नरकावासों से अत्यन्त बड़े, बहुत विस्तार वाले, बहुत अवकाश वाले और बहुत जीवों से रहित हैं, किन्तु महाप्रवेश वाले नहीं हैं। वे अत्यन्त संकीर्ण और व्याप्त नहीं हैं अर्थात् वे नरका-वास बहुत विशाल हैं। उन नरकावासों में रहे हुए नैरयिक, छठी तमःप्रभा पृथ्वी में रहे हुए नैरयिकों की अपेक्षा महा कर्म वाले, महा क्रिया वाले, महा आश्रव वाले और महा वेदना वाले हैं। वे तमःप्रभा स्थित नैरयिकों की अपेक्षा न तो अल्पकर्म वाले हैं और न अल्प क्रिया, अल्प आश्रव और अल्प वेदना वाले हैं। वे नैरयिक अत्यन्त अल्प ऋद्धि वाले और अत्यन्त अल्प द्युति वाले हैं। वे महाऋद्धि और महा द्युति वाले नहीं हैं। छठी तमःप्रभा पृथ्वीमें पांच कम एक लाख नरका-वास कहे गये हैं। वे नरकावास अधःसप्तम पृथ्वी के नरकावासों की अपेक्षा अत्यन्त बड़े और महा विस्तार वाले नहीं हैं। वे महा प्रवेश वाले और अत्यन्त आकीर्ण (व्याप्त) हैं। उन नरकावासों में रहे हुए नैरयिक, अधःसप्तम पृथ्वी में रहे हुए नैरयिकों की अपेक्षा अल्प कर्म, अल्प क्रिया, अल्प आश्रव और अल्पवेदना वाले हैं। अधःसप्तम पृथ्वी के नैरयिकों की अपेक्षा महाकर्म वाले, महा क्रिया, महा आश्रव और महा वेदना वाले नहीं हैं। वे अधःसप्तम पृथ्वी में रहे हुए नैरयिकों की अपेक्षा महा ऋद्धि और महा द्युति वाले हैं, वे अल्प ऋद्धि और अल्प द्युति वाले नहीं हैं।

उत्पन्न होते हैं और कितने शुक्ल लेशी उत्पन्न होते हैं, इत्यादि प्रश्न। गौतम ! पांच अनुत्तर विमानों में से संख्यात योजन विस्तार वाले 'सर्वार्थ-सिद्ध अनुत्तर विमान' में जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट संख्यात अनुत्तरोपपातिक देव उत्पन्न होते हैं। जिस प्रकार संख्यात योजन विस्तार वाले ग्रैवेयक विमानों के विषयमें कहा, उसी प्रकार यहां भी कहना चाहिए। विशेषता यह है कि यहां कृष्णपाक्षिक, अभव्य और तीन अज्ञान वाले जीव उत्पन्न नहीं होते, न च्यवते हैं और न सत्ता में ही होते हैं। इसी प्रकार तीनों आलापकोंमें अचरम का भी निषेध करना चाहिये, यावत् संख्यात चरम कहे गये हैं। शेष सभी वर्णन पूर्ववत् कहना चाहिये। असंख्यात योजन के विस्तार वाले विमानावासों में भी इनका कथन नहीं करना चाहिये। परन्तु उनमें अचरम भी हैं। शेष सभी वर्णन असंख्येय विस्तृत ग्रैवेयकों के समान कहना चाहिये। यावत् 'असंख्यात अचरम कहे गये हैं'—तक कहना चाहिये।

भगवन् ! असुरकुमार देवों के चौंसठ लाख असुरकुमारावासों में से संख्येय योजन विस्तृत असुरकुमारावासों में सम्यग्दृष्टि असुरकुमार उत्पन्न होते हैं, मिथ्यादृष्टि उत्पन्न होते हैं या मिश्रदृष्टि उत्पन्न होते हैं ? गौतम ! जिस प्रकार रत्नप्रभा पृथ्वी के सम्बन्ध में तीन आलापक कहे, उसी प्रकार यहां भी कहने चाहियें और उसी प्रकार असंख्यात योजन विस्तार वाले असुरकुमारावासों के विषय में भी तीन आलापक कहने चाहियें। इसी प्रकार यावत् ग्रैवेयक और अनुत्तर विमानों में भी कहना चाहिये। यह विशेषता है कि अनुत्तर-विमानोंके तीनों आलापकोंमें मिथ्यादृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टिका कथन नहीं करना चाहिये, शेष सभी वर्णन पूर्ववत् है।

भगवन् कृष्णलेशी, नीललेशी यावत् शुक्ललेशी (से परिवर्तित) होकर जीव कृष्णलेशी देवोंमें उत्पन्न होते हैं ? हां, गौतम ! जिस प्रकार प्रथम उद्देशक में नैरयिकों के विषयमें कहा, उसी प्रकार यहां भी कहना चाहिये। नीललेशी यावत् शुक्ललेशीके विषयमें भी उसी प्रकार कहना चाहिये। विशेषता यह है कि लेश्याके स्थान विशुद्ध होते-होते शुक्ललेश्यामें परिणत होते हैं। शुक्ललेश्यामें परिणत होने के पश्चात् वे जीव शुक्ललेशी देवोंमें उत्पन्न होते हैं। इस कारण हे गौतम! 'उत्पन्न होते हैं'—ऐसा कहा गया है। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है।…ऐसा कहकर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ॥४७२॥

॥ तेरहवें शतक का द्वितीय उद्देशक समाप्त ॥

———

शतक १३ उद्देशक ३—नैरयिकके अनन्तराहारादि

भगवन् ! नैरयिक जीव उत्पत्ति-क्षेत्र को प्राप्त होकर अनन्तराहारी (तुरन्त आहार करने वाले) होते हैं और इसके अनन्तर निर्वर्तना (शरीर की उत्पत्ति) करते हैं ? (इसके अनन्तर लोमाहारादि द्वारा पुद्गलों को ग्रहण करते हैं ? इसके पश्चात् पुद्गलों को इन्द्रियादि रूपमें परिणत करते हैं ?) इसके वाद परिचारणा (शब्दादि विषयोंका उपभोग करते हैं ? और इसके पश्चात् अनेक प्रकार के रूपों की विकुर्वणा) करते हैं ? हां गौतम ! पूर्वोक्त प्रकारसे करते हैं। इत्यादि प्रज्ञापना सूत्र का ३४ वां परिचारणा पद सम्पूर्ण कहना चाहिये। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है।......ऐसा कहकर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ।।४७३।।

।। तेरहवें शतक का तीसरा उद्देशक समाप्त ।।

—०—

शतक १३ उद्देशक ४—नरकावासों की एक दूसरे से विशालता०

भगवन् ! नरक पृथ्वियां कितनी कही गई हैं ? गौतम ! नरक पृथ्वियां सात कही गई हैं। यथा—रत्नप्रभा यावत् अधःसप्तम पृथ्वी। भगवन् ! अधः-सप्तम पृथ्वी में पांच अनुत्तर और वहुत वड़े नरकावास यावत् 'अप्रतिष्ठान' तक कहे गये हैं। वे नरकावास छठी तमःप्रभा पृथ्वी के नरकावासों से अत्यन्त वड़े, वहुत विस्तार वाले, वहुत अवकाश वाले और बहुत जीवों से रहित हैं, किन्तु महाप्रवेश वाले नहीं हैं। वे अत्यन्त संकीर्ण और व्याप्त नहीं हैं अर्थात् वे नरका-वास वहुत विशाल हैं। उन नरकावासों में रहे हुए नैरयिक, छठी तमःप्रभा पृथ्वी में रहे हुए नैरयिकों की अपेक्षा महा कर्म वाले, महा क्रिया वाले, महा आश्रव वाले और महा वेदना वाले हैं। वे तमःप्रभा स्थित नैरयिकों की अपेक्षा न तो अल्पकर्म वाले हैं और न अल्प क्रिया, अल्प आश्रव और अल्प वेदना वाले हैं। वे नैरयिक अत्यन्त अल्प ऋद्धि वाले और अत्यन्त अल्प द्युति वाले हैं। वे महाऋद्धि और महा द्युति वाले नहीं हैं। छठी तमःप्रभा पृथ्वीमें पांच कम एक लाख नरका-वास कहे गये हैं। वे नरकावास अधःसप्तम पृथ्वी के नरकावासों की अपेक्षा अत्यन्त वड़े और महा विस्तार वाले नहीं हैं। वे महा प्रवेश वाले और अत्यन्त आकीर्ण (व्याप्त) हैं। उन नरकावासों में रहे हुए नैरयिक, अधःसप्तम पृथ्वी में रहे हुए नैरयिकों की अपेक्षा अल्प कर्म, अल्प क्रिया, अल्प आश्रव और अल्पवेदना वाले हैं। अधःसप्तम पृथ्वी के नैरयिकों की अपेक्षा महाकर्म वाले, महा क्रिया, महा आश्रव और महा वेदना वाले नहीं हैं। वे अधःसप्तम पृथ्वी में रहे हुए नैरयिकों की अपेक्षा महा ऋद्धि और महा द्युति वाले हैं, वे अल्प ऋद्धि और अल्प द्युति वाले नहीं हैं।

छठी तमःप्रभा पृथ्वी के नरकावास, पांचवीं धूमप्रभा पृथ्वी के नरकावासों से अत्यन्त बड़े, अति विस्तार वाले, अति अवकाश वाले हैं और बहुत जीवों से रहित हैं। तमःप्रभा के समान, महा प्रवेश वाले, अति आकीर्ण और अति व्याप्त नहीं हैं, किंतु विशाल हैं। छठी तमःप्रभा पृथ्वी स्थित नैरयिक, पांचवीं धूमप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों की अपेक्षा महा कर्म, महा क्रिया, महा आश्रव और महा वेदना वाले हैं, परन्तु अल्प कर्म, अल्प क्रिया, अल्प आश्रव और अल्प वेदना वाले नहीं हैं। वे अल्प ऋद्धि और अल्प द्युति वाले हैं, वे महा ऋद्धि और महा द्युति वाले नहीं हैं। पांचवी धूमप्रभा पृथ्वी में तीन लाख नरकावास कहे गये हैं, इत्यादि कथन जिस प्रकार छठी तमःप्रभा पृथ्वी के विषय में कहा, उसी प्रकार सातों नरक पृथ्वियों के विषय में, परस्पर यावत् रत्नप्रभा तक कहना चाहिये। यावत् 'शर्कराप्रभा पृथ्वी के नैरयिक, रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों की अपेक्षा महा ऋद्धि और महा द्युति वाले नहीं हैं। उनकी अपेक्षा अल्प ऋद्धि और अल्प द्युति वाले हैं-'यहां तक कहना चाहिये ॥४७४॥

भगवन्! रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिक पृथ्वी के स्पर्श का किस प्रकार का अनुभव करते हुए रहते हैं? गौतम! वे पृथ्वी के स्पर्श का अनिष्ट यावत् मन के प्रतिकूल अनुभव करते हुए रहते हैं। इस प्रकार यावत् अधःसप्तम पृथ्वी के नैरयिकों के विषय में भी कहना चाहिये। इसी प्रकार अनिष्ट यावत् प्रतिकूल अप् (जल) का स्पर्श यावत् वनस्पति स्पर्श का अनुभव करते हुए रहते हैं ॥४७५॥

भगवन्! यह रत्नप्रभा पृथ्वी शर्कराप्रभा पृथ्वीकी अपेक्षा मोटाई में सर्वथा मोटी और चारों दिशाओं में लंबाई-चौड़ाई में सर्वथा छोटी है? हां गौतम! जीवाभिगम सूत्र की तीसरी प्रतिपत्ति के दूसरे नैरयिक उद्देशक के अनुसार यहां भी कहना चाहिये ॥४७६॥

भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नरकावासों के आसपास जो पृथ्वी-कायिक यावत् वनस्पतिकायिक जीव हैं, वे महाकर्म, महाक्रिया, महाआश्रव और महावेदना वाले हैं? हां, गौतम! हैं, इत्यादि जीवाभिगम सूत्र की तीसरी प्रतिपत्ति के दूसरे नैरयिक उद्देशक के अनुसार यावत् अधःसप्तम पृथ्वी तक कहना चाहिये ॥४७७॥

भगवन्! लोक की लम्बाई का मध्य-भाग कहां कहा गया है? गौतम! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के आकाशखण्ड के असंख्यातवें भाग का उल्लंघन करने के बाद लोक की लम्बाई का मध्य-भाग कहा गया है। भगवन्! अधोलोक की लम्बाई० ? गौतम! चौथी पंकप्रभा पृथ्वीके आकाशखण्ड का कुछ अधिक अर्द्धभाग उल्लंघन करने के बाद अधोलोककी लम्बाई का मध्य-भाग कहा गया है। भगवन्! ऊर्ध्वलोक० ? गौतम! सनत्कुमार और माहेन्द्र देवलोकके ऊपर और ब्रह्म-

देवलोक के नीचे, रिष्ट नामक तीसरे प्रतर में ऊर्ध्वलोक की लम्बाई का मध्य-भाग कहा गया है।

भगवन् ! तिर्यग् लोक० ? गौतम ! इस जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत के बहुसम मध्यभाग (ठीक बीचोबीच) में रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊपर और नीचे के दो क्षुद्र प्रतरों में, तिर्यग्लोक के मध्यभाग रूप आठ रुचक-प्रदेश कहे गये हैं, जिनसे ये दस दिशाएं निकली हैं। यथा-पूर्व दिशा, पूर्वदक्षिण इत्यादि, दसवें शतक के प्रथम उद्देशक के अनुसार कहना चाहिए, यावत् 'दिशाओं के दस नाम हैं'—तक कहना चाहिए ॥४७८॥

भगवन् ! ऐन्द्री (पूर्व) दिशा के आदि (प्रारम्भ) में क्या है, वह कहां से निकली है, उसके प्रारम्भ में कितने प्रदेश हैं, उत्तरोत्तर कितने प्रदेशों की वृद्धि होती है, वह कितने प्रदेश वाली है, उसका अन्त कहां होता है और उसका संस्थान कैसा है ? गौतम ! ऐन्द्री दिशा के प्रारम्भ में रुचक प्रदेश हैं। वह रुचक-प्रदेशों से निकली है। वह प्रारम्भ में दो प्रदेश वाली है। आगे दो-दो प्रदेशों की उत्तरोत्तर वृद्धि होती है। लोक आश्रयी वह असंख्यात प्रदेश वाली है और अलोक आश्रयी अनन्त प्रदेश वाली है। लोक आश्रयी वह सादि सान्त (आदि और अन्त सहित) है और अलोक आश्रयी वह सादि अनन्त है। लोक आश्रयी वह मुरज (मृदंग) के आकार है और अलोक आश्रयी वह 'ऊर्ध्वशकटाकार' (शकटोर्द्धि) है।

भगवन् ! आग्नेयी दिशा के आदि में क्या है, वह कहां से निकली है, उसकी आदि में कितने प्रदेश हैं, वह कितने प्रदेशों के विस्तार वाली है, वह कितने प्रदेश वाली है, उसके अंत में क्या है और उसका आकार कैसा है ? गौतम ! आग्नेयी दिशा के आदि में रुचक-प्रदेश हैं। वह रुचक-प्रदेशों से निकली है। उसके प्रारम्भ में एक प्रदेश है। वह अन्त तक एक प्रदेश के विस्तार वाली है। वह उत्तरोत्तर वृद्धि रहित है। लोक आश्रयी वह असंख्यात प्रदेश वाली है और अलोक की अपेक्षा अनन्त प्रदेश वाली है। लोक आश्रयी वह सादि सान्त है और अलोक की अपेक्षा वह सादि अनन्त है। वह टूटी हुई मोतियों की माला के आकार है।

याम्या (दक्षिण) दिशा का स्वरूप ऐन्द्री (पूर्व) दिशा के समान जानना चाहिये। नैर्ऋती का स्वरूप आग्नेयी के समान जानना चाहिये, इत्यादि। ऐन्द्री दिशा के वर्णन के समान चारों दिशाओं का और आग्नेयी दिशा के समान चारों विदिशाओं का स्वरूप जानना चाहिये। भगवन् ! विमला (ऊर्ध्व) दिशा के आदि में क्या है, इत्यादि आग्नेयी के समान प्रश्न। गौतम ! विमला दिशा के आदि में रुचक-प्रदेश हैं। वह रुचक-प्रदेशों से निकली है। उसके आदि में चार प्रदेश हैं। वह अन्त तक दो प्रदेशों के विस्तार वाली है। वह उत्तरोत्तर वृद्धि रहित है।

लोक आश्रयी वह असंख्यात प्रदेश वाली है । इत्यादि सारा वर्णन आग्नेयी दिशा के समान कहना चाहिये। विशेषता यह है कि वह रुचकाकार है। इसी प्रकार तमा (अधो) दिशा का वर्णन भी जानना चाहिये ॥४७६॥

भगवन् ! यह लोक किस प्रकार का कहलाता है ? गौतम ! यह लोक पंचास्तिकाय रूप कहलाता है। यथा—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, यावत् (आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय,) पुद्गलास्तिकाय । भगवन् ! धर्मास्तिकाय से जीवों की क्या प्रवृत्ति होती है ? गौतम ! धर्मास्तिकाय से जीवोंका आगमन, गमन, भाषा, उन्मेष (आंखें खोलना),मनोयोग, वचनयोग और काययोग की प्रवृत्ति होती है । इसी प्रकार के दूसरे जितने भी चलभाव (गमनशील-भाव) हैं, वे सब धर्मास्तिकाय के द्वारा प्रवृत्त होते हैं । धर्मास्तिकाय का लक्षण 'गति' रूप है। भगवन् ! अधर्मास्तिकाय से जीवों की क्या प्रवृत्ति होती है ? गौतम ! अधर्मास्तिकाय से जीवों का स्थान (स्थित रहना), निषीदन (बैठना), त्वग्वर्तन (सोना), मन को एकाग्र करना आदि तथा इसी प्रकार अन्य जितने भी स्थित भाव हैं, वे सब अधर्मास्तिकाय से प्रवृत्त होते हैं । अधर्मास्तिकाय का लक्षण 'स्थिति' रूप है ।

भगवन् ! आकाशास्तिकाय से जीवों और अजीवों की क्या प्रवृत्ति होती है ? गौतम ! आकाशास्तिकाय जीव और अजीव द्रव्यों का भाजनभूत (आश्रय रूप) है अर्थात् आकाश से जीव और अजीव द्रव्यों के 'अवगाह' की प्रवृत्ति होती है । जैसा कि गाथा में कहा है–एगेण वि से पुण्णे, दोहि वि पुण्णे सयं पि माएज्जा । कोडिसएण वि पुण्णे, कोडिसहस्सं पि माएज्जा ॥ अर्थात्—एक परमाणु से पूर्ण, या दो परमाणु से पूर्ण एक आकाश प्रदेश में सौ परमाणु भी समा सकते हैं । सौ करोड़ परमाणुओं से पूर्ण एक आकाश प्रदेश में हजार करोड़ परमाणु भी समा सकते हैं । आकाशास्तिकाय का लक्षण 'अवगाहना' रूप है ।

भगवन् ! जीवास्तिकाय के द्वारा जीवोंकी क्या प्रवृत्ति होती है ? गौतम ! जीवास्तिकाय के द्वारा आभिनिबोधिक ज्ञानकी अनन्त पर्यायें, श्रुतज्ञानकी अनन्त पर्यायें प्राप्त करता है, इत्यादि दूसरे शतकके दसवें अस्तिकाय उद्देशकके अनुसार, यावत् वह ज्ञान और दर्शन के उपयोग को प्राप्त होता है । जीव का लक्षण 'उपयोग' रूप है ।

भगवन् ! पुद्गलास्तिकाय से जीवोंकी क्या प्रवृत्ति होती है ? गौतम ! पुद्गलास्तिकाय से जीवोंके औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तेजस्, कार्मण, श्रोत्रेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, स्पर्शनेन्द्रिय, मनोयोग, वचनयोग, काययोग और श्वासोच्छ्वास का ग्रहण होता है । पुद्गलास्तिकाय का लक्षण 'ग्रहण' रूप है ॥४८०॥

भगवन् ! धर्मास्तिकाय का एक प्रदेश कितने धर्मास्तिकायके प्रदेशों द्वारा स्पृष्ट (स्पर्शा हुआ) है ? गौतम ! जघन्य पदमें तीन प्रदेशोंसे और उत्कृष्ट पद में छह प्रदेशोंसे स्पृष्ट है । भगवन् ! धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकायके कितने प्रदेशों से स्पृष्ट है ? गौतम ! जघन्य पद में चार और उत्कृष्ट पद में सात अधर्मास्तिकाय के प्रदेशोंसे स्पृष्ट है । वह आकाशास्तिकाय के कितने प्रदेशोंसे स्पृष्ट है ? गौतम ! वह सात प्रदेशों से स्पृष्ट है ।

भगवन् ! वह जीवास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट है ? गौतम ! अनन्त प्रदेशोंसे स्पृष्ट है । भगवन् ! पुद्गलास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट है ? गौतम ! अनन्त प्रदेशों से स्पृष्ट है । भगवन् ! अद्धाकालके कितने समयों से स्पृष्ट है ? गौतम ! कदाचित् स्पृष्ट होता है और कदाचित् स्पृष्ट नहीं होता । यदि स्पृष्ट होता है, तो नियमतः अनन्त समयों से स्पृष्ट होता है ।

भगवन् ! अधर्मास्तिकायका एक प्रदेश धर्मास्तिकायके कितने प्रदेशोंसे स्पृष्ट होता है ? गौतम ! जघन्य पद में चार और उत्कृष्ट पद में सात प्रदेशोंसे स्पृष्ट होता है । भगवन् ! अधर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशोंसे स्पृष्ट होता है ? गौतम ! जघन्य पदमें तीन और उत्कृष्ट पदमें छह प्रदेशोंसे स्पृष्ट होता है । शेष सभी वर्णन धर्मास्तिकाय के प्रदेश के समान है ।

भगवन् ! आकाशास्तिकाय का एक प्रदेश धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट है ? गौतम ! कदाचित् स्पृष्ट है और कदाचित् स्पृष्ट नहीं है । यदि स्पृष्ट है, तो जघन्य पद में एक, दो, तीन या चार प्रदेशों से स्पृष्ट होता है और उत्कृष्ट पद में सात प्रदेशोंसे स्पृष्ट होता है । इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय के प्रदेशों से भी स्पृष्ट होता है । भगवन् ! आकाशास्तिकायके कितने प्रदेशोंसे स्पृष्ट है ? गौतम ! छह प्रदेशोंसे स्पृष्ट है । भगवन् ! जीवास्तिकायके कितने प्रदेशोंसे स्पृष्ट होता है ? गौतम ! कदाचित् स्पृष्ट होता है और कदाचित् नहीं । यदि स्पृष्ट है, तो नियमतः अनन्त प्रदेशों से स्पृष्ट होता है । इसी प्रकार पुद्गलास्तिकाय के प्रदेशों से और अद्धा-कालके समयोंसे स्पर्शना जाननी चाहिये ॥४८१॥

भगवन् ! जीवास्तिकाय का एक प्रदेश धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशोंसे स्पृष्ट है ? गौतम ! जघन्य पदमें चार और उत्कृष्ट पदमें सात प्रदेशोंसे स्पृष्ट है । इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय के प्रदेशों से भी स्पृष्ट होता है । भगवन् ! आकाशास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट है ? गौतम ! सात प्रदेशोंसे स्पृष्ट होता है । भगवन् ! जीवास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट है ? गौतम ! शेष सभी वर्णन धर्मास्तिकायके प्रदेशके समान जानना चाहिये । भगवन् ! पुद्गलास्तिकाय का एक प्रदेश धर्मास्तिकायके कितने प्रदेशों से स्पृष्ट है ? गौतम ! जिस प्रकार जीवा-

लोक आश्रयी वह असंख्यात प्रदेश वाली है। इत्यादि सारा वर्णन आग्नेयी दिशा के समान कहना चाहिये। विशेषता यह है कि वह रुचकाकार है। इसी प्रकार तमा (अधो) दिशा का वर्णन भी जानना चाहिये ॥४७९॥

भगवन् ! यह लोक किस प्रकार का कहलाता है ? गौतम ! यह लोक पंचास्तिकाय रूप कहलाता है। यथा—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, यावत् (आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय,) पुद्गलास्तिकाय। भगवन् ! धर्मास्तिकाय से जीवों की क्या प्रवृत्ति होती है ? गौतम ! धर्मास्तिकाय से जीवोंका आगमन, गमन, भाषा, उन्मेष (आंखें खोलना), मनोयोग, वचनयोग और काययोग की प्रवृत्ति होती है। इसी प्रकार के दूसरे जितने भी चलभाव (गमनशील-भाव) हैं, वे सब धर्मास्तिकाय के द्वारा प्रवृत्त होते हैं। धर्मास्तिकाय का लक्षण 'गति' रूप है। भगवन् ! अधर्मास्तिकाय से जीवों की क्या प्रवृत्ति होती है ? गौतम ! अधर्मास्तिकाय से जीवों का स्थान (स्थित रहना), निषीदन (बैठना), त्वग्वर्तन (सोना), मन को एकाग्र करना आदि तथा इसी प्रकार अन्य जितने भी स्थित भाव हैं, वे सब अधर्मास्तिकाय से प्रवृत्त होते हैं। अधर्मास्तिकाय का लक्षण 'स्थिति' रूप है।

भगवन् ! आकाशास्तिकाय से जीवों और अजीवों की क्या प्रवृत्ति होती है ? गौतम ! आकाशास्तिकाय जीव और अजीव द्रव्यों का भाजनभूत (आश्रय रूप) है अर्थात् आकाश से जीव और अजीव द्रव्यों के 'अवगाह' की प्रवृत्ति होती है। जैसा कि गाथा में कहा है—एगेण वि से पुण्णे, दोहि वि पुण्णे सयं पि माएज्जा। कोडिसएण वि पुण्णे, कोडिसहस्सं पि माएज्जा ॥ अर्थात्—एक परमाणु से पूर्ण, या दो परमाणु से पूर्ण एक आकाश प्रदेश में सौ परमाणु भी समा सकते हैं। सौ करोड़ परमाणुओं से पूर्ण एक आकाश प्रदेश में हजार करोड़ परमाणु भी समा सकते हैं। आकाशास्तिकाय का लक्षण 'अवगाहना' रूप है।

भगवन् ! जीवास्तिकाय के द्वारा जीवोंकी क्या प्रवृत्ति होती है ? गौतम ! जीवास्तिकाय के द्वारा आभिनिवोधिक ज्ञानकी अनन्त पर्यायें, श्रुतज्ञानकी अनन्त पर्यायें प्राप्त करता है, इत्यादि दूसरे शतकके दसवें अस्तिकाय उद्देशकके अनुसार, यावत् वह ज्ञान और दर्शन के उपयोग को प्राप्त होता है। जीव का लक्षण 'उपयोग' रूप है।

भगवन् ! पुद्गलास्तिकाय से जीवोंकी क्या प्रवृत्ति होती है ? गौतम ! पुद्गलास्तिकाय से जीवोंके औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तेजस्, कार्मण, श्रोत्रेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, स्पर्शनेन्द्रिय, मनोयोग, वचनयोग, काययोग और श्वासोच्छ्वास का ग्रहण होता है। पुद्गलास्तिकाय का लक्षण 'ग्रहण' रूप है ॥४८०॥

भगवन् ! धर्मास्तिकाय का एक प्रदेश कितने धर्मास्तिकायके प्रदेशों द्वारा स्पृष्ट (स्पर्शा हुआ) है ? गौतम ! जघन्य पदमें तीन प्रदेशोंसे और उत्कृष्ट पद में छह प्रदेशोंसे स्पृष्ट है । भगवन् ! धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकायके कितने प्रदेशों से स्पृष्ट है ? गौतम ! जघन्य पद में चार और उत्कृष्ट पद में सात अधर्मास्तिकाय के प्रदेशोंसे स्पृष्ट है । वह आकाशास्तिकाय के कितने प्रदेशोंसे स्पृष्ट है ? गौतम ! वह सात प्रदेशों से स्पृष्ट है ।

भगवन् ! वह जीवास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट है ? गौतम ! अनन्त प्रदेशोंसे स्पृष्ट है । भगवन् ! पुद्गलास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट है ? गौतम ! अनन्त प्रदेशों से स्पृष्ट है । भगवन् ! अद्धाकालके कितने समयों से स्पृष्ट है ? गौतम ! कदाचित् स्पृष्ट होता है और कदाचित् स्पृष्ट नहीं होता । यदि स्पृष्ट होता है, तो नियमतः अनन्त समयों से स्पृष्ट होता है ।

भगवन् ! अधर्मास्तिकायका एक प्रदेश धर्मास्तिकायके कितने प्रदेशोंसे स्पृष्ट होता है ? गौतम ! जघन्य पद में चार और उत्कृष्ट पद में सात प्रदेशोंसे स्पृष्ट होता है । भगवन् ! अधर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशोंसे स्पृष्ट होता है ? गौतम ! जघन्य पदमें तीन और उत्कृष्ट पदमें छह प्रदेशोंसे स्पृष्ट होता है । शेष सभी वर्णन धर्मास्तिकाय के प्रदेश के समान है ।

भगवन् ! आकाशास्तिकाय का एक प्रदेश धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट है ? गौतम ! कदाचित् स्पृष्ट है और कदाचित् स्पृष्ट नहीं है । यदि स्पृष्ट है, तो जघन्य पद में एक, दो, तीन या चार प्रदेशों से स्पृष्ट होता है और उत्कृष्ट पद में सात प्रदेशोंसे स्पृष्ट होता है । इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय के प्रदेशों से भी स्पृष्ट होता है । भगवन् ! आकाशास्तिकायके कितने प्रदेशोंसे स्पृष्ट है ? गौतम ! छह प्रदेशोंसे स्पृष्ट है । भगवन् ! जीवास्तिकायके कितने प्रदेशोंसे स्पृष्ट होता है ? गौतम ! कदाचित् स्पृष्ट होता है और कदाचित् नहीं । यदि स्पृष्ट है, तो नियमतः अनन्त प्रदेशों से स्पृष्ट होता है । इसी प्रकार पुद्गलास्तिकाय के प्रदेशों से और अद्धा-कालके समयोंसे स्पर्शना जाननी चाहिये ।।४८१।।

भगवन् ! जीवास्तिकाय का एक प्रदेश धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशोंसे स्पृष्ट है ? गौतम ! जघन्य पदमें चार और उत्कृष्ट पदमें सात प्रदेशोंसे स्पृष्ट है । इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय के प्रदेशों से भी स्पृष्ट होता है । भगवन् ! आकाशास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट है ? गौतम ! सात प्रदेशोंसे स्पृष्ट होता है । भगवन् ! जीवास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट है ? गौतम ! शेष सभी वर्णन धर्मास्तिकायके प्रदेशके समान जानना चाहिये । भगवन् ! पुद्गलास्तिकाय का एक प्रदेश धर्मास्तिकायके कितने प्रदेशों से स्पृष्ट है ? गौतम ! जिस प्रकार जीवा-

लोक आश्रयी वह असंख्यात प्रदेश वाली है। इत्यादि सारा वर्णन आग्नेयी दिशा के समान कहना चाहिये। विशेषता यह है कि वह रुचकाकार है। इसी प्रकार तमा (अधो) दिशा का वर्णन भी जानना चाहिये ॥४७९॥

भगवन्! यह लोक किस प्रकार का कहलाता है? गौतम! यह लोक पंचास्तिकाय रूप कहलाता है। यथा—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, यावत् (आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय,) पुद्गलास्तिकाय। भगवन्! धर्मास्तिकाय से जीवों की क्या प्रवृत्ति होती है? गौतम! धर्मास्तिकाय से जीवोंका आगमन, गमन, भाषा, उन्मेष (आंखें खोलना), मनोयोग, वचनयोग और काययोग की प्रवृत्ति होती है। इसी प्रकार के दूसरे जितने भी चलभाव (गमनशील-भाव) हैं, वे सब धर्मास्तिकाय के द्वारा प्रवृत्त होते हैं। धर्मास्तिकाय का लक्षण 'गति' रूप है। भगवन्! अधर्मास्तिकाय से जीवों की क्या प्रवृत्ति होती है? गौतम! अधर्मास्तिकाय से जीवों का स्थान (स्थित रहना), निषीदन (बैठना), त्वग्वर्तन (सोना), मन को एकाग्र करना आदि तथा इसी प्रकार अन्य जितने भी स्थित भाव हैं, वे सब अधर्मास्तिकाय से प्रवृत्त होते हैं। अधर्मास्तिकाय का लक्षण 'स्थिति' रूप है।

भगवन्! आकाशास्तिकाय से जीवों और अजीवों की क्या प्रवृत्ति होती है? गौतम! आकाशास्तिकाय जीव और अजीव द्रव्यों का भाजनभूत (आश्रय रूप) है अर्थात् आकाश से जीव और अजीव द्रव्यों के 'अवगाह' की प्रवृत्ति होती है। जैसा कि गाथा में कहा है—एगेण वि से पुण्णे, दोहि-वि पुण्णे सयं पि माएज्जा। कोडिसएण वि पुण्णे, कोडिसहस्सं पि माएज्जा ॥ अर्थात्—एक परमाणु से पूर्ण, या दो परमाणु से पूर्ण एक आकाश प्रदेश में सौ परमाणु भी समा सकते हैं। सौ करोड़ परमाणुओं से पूर्ण एक आकाश प्रदेश में हजार करोड़ परमाणु भी समा सकते हैं। आकाशास्तिकाय का लक्षण 'अवगाहना' रूप है।

भगवन्! जीवास्तिकाय के द्वारा जीवोंकी क्या प्रवृत्ति होती है? गौतम! जीवास्तिकाय के द्वारा आभिनिवोधिक ज्ञानकी अनन्त पर्यायें, श्रुतज्ञानकी अनन्त पर्यायें प्राप्त करता है, इत्यादि दूसरे शतकके दसवें अस्तिकाय उद्देशकके अनुसार, यावत् वह ज्ञान और दर्शन के उपयोग को प्राप्त होता है। जीव का लक्षण 'उपयोग' रूप है।

भगवन्! पुद्गलास्तिकाय से जीवोंकी क्या प्रवृत्ति होती है? गौतम! पुद्गलास्तिकाय से जीवोंके औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तेजस्, कार्मण, श्रोत्रेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, स्पर्शनेन्द्रिय, मनोयोग, वचनयोग, काययोग और श्वासोच्छ्वास का ग्रहण होता है। पुद्गलास्तिकाय का लक्षण 'ग्रहण' रूप है ॥४८०॥

भगवन् ! धर्मास्तिकाय का एक प्रदेश कितने धर्मास्तिकायके प्रदेशों द्वारा स्पृष्ट (स्पर्शा हुआ) है ? गौतम ! जघन्य पदमें तीन प्रदेशोंसे और उत्कृष्ट पद में छह प्रदेशोंसे स्पृष्ट है। भगवन् ! धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकायके कितने प्रदेशों से स्पृष्ट है ? गौतम ! जघन्य पद में चार और उत्कृष्ट पद में सात अधर्मास्तिकाय के प्रदेशोंसे स्पृष्ट है। वह आकाशास्तिकाय के कितने प्रदेशोंसे स्पृष्ट है ? गौतम ! वह सात प्रदेशों से स्पृष्ट है।

भगवन् ! वह जीवास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट है ? गौतम ! अनन्त प्रदेशोंसे स्पृष्ट है। भगवन् ! पुद्गलास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट है ? गौतम ! अनन्त प्रदेशों से स्पृष्ट है। भगवन् ! अद्धाकालके कितने समयों से स्पृष्ट है ? गौतम ! कदाचित् स्पृष्ट होता है और कदाचित् स्पृष्ट नहीं होता। यदि स्पृष्ट होता है, तो नियमत: अनन्त समयों से स्पृष्ट होता है।

भगवन् ! अधर्मास्तिकायका एक प्रदेश धर्मास्तिकायके कितने प्रदेशोंसे स्पृष्ट होता है ? गौतम ! जघन्य पद में चार और उत्कृष्ट पद में सात प्रदेशोंसे स्पृष्ट होता है। भगवन् ! अधर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशोंसे स्पृष्ट होता है ? गौतम ! जघन्य पदमें तीन और उत्कृष्ट पदमें छह प्रदेशोंसे स्पृष्ट होता है। शेष सभी वर्णन धर्मास्तिकाय के प्रदेश के समान है।

भगवन् ! आकाशास्तिकाय का एक प्रदेश धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट है ? गौतम ! कदाचित् स्पृष्ट है और कदाचित् स्पृष्ट नहीं है। यदि स्पृष्ट है, तो जघन्य पद में एक, दो, तीन या चार प्रदेशों से स्पृष्ट होता है और उत्कृष्ट पद में सात प्रदेशोंसे स्पृष्ट होता है। इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय के प्रदेशों से भी स्पृष्ट होता है। भगवन् ! आकाशास्तिकायके कितने प्रदेशोंसे स्पृष्ट है ? गौतम ! छह प्रदेशोंसे स्पृष्ट है। भगवन् ! जीवास्तिकायके कितने प्रदेशोंसे स्पृष्ट होता है ? गौतम ! कदाचित् स्पृष्ट होता है और कदाचित् नहीं। यदि स्पृष्ट है, तो नियमत: अनन्त प्रदेशों से स्पृष्ट होता है। इसी प्रकार पुद्गलास्तिकाय के प्रदेशों से और अद्धा-कालके समयोंसे स्पर्शना जाननी चाहिये ।।४८१।।

भगवन् ! जीवास्तिकाय का एक प्रदेश धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशोंसे स्पृष्ट है ? गौतम ! जघन्य पदमें चार और उत्कृष्ट पदमें सात प्रदेशोंसे स्पृष्ट है। इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय के प्रदेशों से भी स्पृष्ट होता है। भगवन् ! आकाशास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट है ? गौतम ! सात प्रदेशोंसे स्पृष्ट होता है। भगवन् ! जीवास्तिकाय के कितने प्रदेशों से स्पृष्ट है ? गौतम ! शेष सभी वर्णन धर्मास्तिकायके प्रदेशके समान जानना चाहिये। भगवन् ! पुद्गलास्तिकाय का एक प्रदेश धर्मास्तिकायके कितने प्रदेशों से स्पृष्ट है ? गौतम ! जिस प्रकार जीवा-

स्तिकाय के एक प्रदेश के विषय में कथन किया, उसी प्रकार यहां भी जानना चाहिये।

भगवन्! पुद्गलास्तिकायके दो प्रदेश धर्मास्तिकायके कितने प्रदेशोंसे स्पृष्ट हैं? गौतम! जघन्य पद में छह प्रदेशोंसे और उत्कृष्ट पदमें बारह प्रदेशोंसे स्पृष्ट हैं। इसी प्रकार अधर्मास्तिकायके प्रदेशोंसे भी स्पृष्ट होते हैं। भगवन्! वे आकाशास्तिकायके कितने प्रदेशोंसे स्पृष्ट हैं? गौतम! बारह प्रदेशोंसे स्पृष्ट हैं। शेष सभी वर्णन धर्मास्तिकायके समान जानना चाहिए। भगवन्! पुद्गलास्तिकायके तीन प्रदेश धर्मास्तिकायके कितने प्रदेशोंसे स्पृष्ट होते हैं? गौतम! जघन्य पदमें आठ और उत्कृष्ट पदमें सत्रह प्रदेशोंसे स्पृष्ट होते हैं। इसी प्रकार अधर्मास्तिकायके प्रदेशोंसे भी स्पृष्ट होते हैं। भगवन्! आकाशास्तिकायके कितने प्रदेशोंसे स्पृष्ट होते हैं? गौतम! सत्रह प्रदेशोंसे स्पृष्ट होते हैं। शेष सभी वर्णन धर्मास्तिकायके समान जानना चाहिये। इस प्रकार इस पाठ द्वारा यावत् दस प्रदेशों तक कहना चाहिये। विशेषमें जघन्य पदमें दो और उत्कृष्ट पदमें पांचका प्रक्षेप करना चाहिये। पुद्गलास्तिकायके चार प्रदेश, जघन्य पदमें दस प्रदेशोंसे और उत्कृष्ट पदमें बाईस प्रदेशोंसे स्पृष्ट होते हैं। पुद्गलास्तिकायके पांच प्रदेश, जघन्य पदमें बारह प्रदेशोंसे और उत्कृष्ट पदमें सत्ताइस प्रदेशोंसे स्पृष्ट होते हैं। पुद्गलास्तिकायके छह प्रदेश, जघन्य पदमें चौदह और उत्कृष्ट पदमें बत्तीस प्रदेशोंसे स्पृष्ट होते हैं। पुद्गलास्तिकायके सात प्रदेश, जघन्य पदमें सोलह और उत्कृष्ट पदमें सैंतीस प्रदेशोंसे स्पृष्ट होते हैं। पुद्गलास्तिकायके आठ प्रदेश, जघन्य पदमें अठारह और उत्कृष्ट पदमें बयालीस प्रदेशोंसे स्पृष्ट होते हैं। पुद्गलास्तिकायके नौ प्रदेश, जघन्य पदमें बीस और उत्कृष्ट पदमें सैंतालीस प्रदेशोंसे स्पृष्ट होते हैं। पुद्गलास्तिकायके दस प्रदेश, जघन्य पदमें बाईस और उत्कृष्ट पदमें बावन प्रदेशों से स्पृष्ट होते हैं। आकाशास्तिकायके लिए सभी स्थान पर उत्कृष्ट पद कहना चाहिये।

भगवन्! पुद्गलास्तिकायके संख्यात प्रदेश धर्मास्तिकायके कितने प्रदेशोंसे स्पृष्ट होते हैं? गौतम! जघन्य पदमें उन्हीं संख्यात प्रदेशोंको दुगुना करके दो रूप और अधिक करे और उत्कृष्ट पदमें उन्हीं संख्यात प्रदेशोंको पांच गुणा करके उनमें दो रूप और अधिक जोड़े, उतने प्रदेशोंसे वे स्पृष्ट होते हैं। भगवन्! वे अधर्मास्तिकायके कितने प्रदेशोंसे स्पृष्ट होते हैं? गौतम! धर्मास्तिकायके समान जान लेना चाहिए। भगवन्! आकाशास्तिकायके कितने प्रदेशोंसे स्पृष्ट होते हैं? गौतम! उन्हीं संख्यात प्रदेशोंको पांच गुणा करके उनमें दो रूप और जोड़े, उतने प्रदेशोंसे स्पृष्ट होते हैं। भगवन्! वह जीवास्तिकायके कितने प्रदेशोंसे स्पृष्ट होते हैं? गौतम! अनन्त प्रदेशोंसे स्पृष्ट होते हैं। भगवन्! पुद्गलास्तिकाय के……?

गौतम ! अनन्त......। भगवन् ! कितने अद्धा-समयोंसे स्पृष्ट होते हैं ? गौतम ! कदाचित् स्पृष्ट होते हैं और कदाचित् स्पृष्ट नहीं होते। यावत् अनन्त समयोंसे स्पृष्ट होते हैं।

भगवन्! पुद्गलास्तिकायके असंख्यात प्रदेश धर्मास्तिकायके कितने प्रदेशों से स्पृष्ट होते हैं ? गौतम ! जघन्य पदमें उन्हीं असंख्यात प्रदेशोंको दुगुना करके उनमें दो रूप और अधिक जोड़े, उतने प्रदेशोंसे स्पृष्ट होते हैं और उत्कृष्ट पदमें उन्हीं असंख्यात प्रदेशोंको पांच गुणा करके, उनमें दो रूप अधिक जोड़े, उतने प्रदेशोंसे स्पृष्ट होते हैं। शेष सभी वर्णन संख्यात प्रदेशोंके समान जानना चाहिये, यावत् 'अवश्य अनन्त समयोंसे स्पृष्ट होते हैं'—तक कहना चाहिए।

भगवन् ! पुद्गलास्तिकायके अनन्त प्रदेश धर्मास्तिकायके कितने प्रदेशोंसे स्पृष्ट होते हैं ? गौतम ! जिस प्रकार असंख्यात प्रदेशोंके विषयमें कहा, उसी प्रकार अनन्त प्रदेशोंके विषयमें भी (असंख्यात प्रदेश स्पृष्ट होते हैं ऐसा) जानना चाहिये। भगवन् ! अद्धा-कालका एक समय धर्मास्तिकायके कितने प्रदेशोंसे स्पृष्ट होता है ? गौतम ! सात प्रदेशोंसे स्पृष्ट होता है। अधर्मास्तिकायके कितने प्रदेशोंसे स्पृष्ट होता है ? पूर्वोक्त रूपसे जानना चाहिए। इसी प्रकार आकाशास्तिकायके प्रदेशोंसे स्पर्शना कहनी चाहिये। जीवास्तिकायके कितने प्रदेशोंसे स्पृष्ट होता है ? अनन्त प्रदेशोंसे स्पृष्ट होता है। इसी प्रकार यावत् अनंत अद्धासमयोंसे स्पृष्ट होता है।

भगवन् ! धर्मास्तिकाय द्रव्य धर्मास्तिकायके कितने प्रदेशोंसे स्पृष्ट होता है ? गौतम ! एक भी प्रदेशसे स्पृष्ट नहीं होता। वह अधर्मास्तिकाय० ? असंख्य प्रदेशोंसे स्पृष्ट होता है। आकाशास्तिकाय० ? असंख्य प्रदेशोंसे स्पृष्ट होता है। जीवास्तिकाय० ? अनन्त प्रदेशोंसे स्पृष्ट होता है। पुद्गलास्तिकाय० ? अनन्त प्रदेशोंसे स्पृष्ट होता है। कितने अद्धा-समयोंसे स्पृष्ट होता है ? कदाचित् स्पृष्ट होता है और कदाचित् नहीं होता। यदि होता है तो अवश्य अनन्त समयोसे स्पृष्ट होता है।

भगवन् ! धर्मास्तिकाय द्रव्य धर्मास्तिकायके कितने प्रदेशोंसे स्पृष्ट होता है। गौतम ! असंख्य प्रदेशोंसे स्पृष्ट होता है। अधर्मास्तिकाय० ? एक भी प्रदेशसे स्पृष्ट नहीं होता। शेष सभी कथन धर्मास्तिकायके समान जानना चाहिए। इसी प्रकार इसी पाठ द्वारा सभी स्व-स्थानमें एक भी प्रदेशसे स्पृष्ट नहीं होते और पर-स्थानमें धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय-ये तीनों असंख्य प्रदेशोंसे स्पृष्ट होते हैं। पीछे के तीन स्थान (जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और अद्धा-समय) अनन्त प्रदेशोंसे स्पृष्ट होते हैं। इस प्रकार यावत् अद्धा-समय तक कहना चाहिए। यावत् अद्धा-समय कितने अद्धा-समयोंसे स्पृष्ट होता है ? एक भी नहीं।

भगवन् ! जहां धर्मास्तिकाय का एक प्रदेश अवगाढ़ (रहा हुआ) है, वहां धर्मास्तिकायके दूसरे कितने प्रदेश अवगाढ़ हैं ? गौतम ! एक भी प्रदेश अवगाढ़ नहीं है। अधर्मास्तिकाय० ? एक प्रदेश अवगाढ़ होता है। आकाशास्तिकाय० ? एक प्रदेश अवगाढ़ होता है। जीवास्तिकाय० ? अनन्त प्रदेश अवगाढ़ होते हैं। पुद्गलास्तिकाय० ? अनन्त प्रदेश अवगाढ़ होते हैं। कितने अद्धा-समय अवगाढ़ होते हैं ? अद्धा-समय कदाचित् अवगाढ़ होते हैं, कदाचित् नहीं होते। यदि अवगाढ़ होते हैं, तो अनन्त अद्धा-समय अवगाढ़ होते हैं।

भगवन् ! जहां अधर्मास्तिकाय का एक प्रदेश अवगाढ़ होता है, वहां धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाढ़ होते हैं ? गौतम ! वहां एक प्रदेश अवगाढ़ होता है। अधर्मास्तिकाय०? एक भी अवगाढ़ नहीं होता। शेष कथन धर्मास्तिकायके समान जानना चाहिये। भगवन् ! जहां आकाशास्तिकाय का एक प्रदेश अवगाढ़ होता है, वहां धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाढ़ होते हैं ? गौतम ! वहां धर्मास्तिकायके प्रदेश कदाचित् अवगाढ़ होते हैं, कदाचित् अवगाढ़ नहीं होते। यदि अवगाढ़ होते हैं, तो एक प्रदेश अवगाढ़ होता है। इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय के प्रदेशों के विषय में भी जानना चाहिये। आकाशास्तिकाय० ? एक भी अवगाढ़ नहीं होता। जीवास्तिकाय०? कदाचित् अवगाढ़ होते हैं और कदाचित् नहीं होते। यदि अवगाढ़ होते हैं, तो अनन्त प्रदेश अवगाढ़ होते हैं। इसी प्रकार यावत् अद्धा-समय तक कहना चाहिये।

भगवन् ! जहां जीवास्तिकाय का एक प्रदेश अवगाढ़ होता है, वहां धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाढ़ होते हैं ? वहां एक प्रदेश अवगाढ़ होता है। इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय के प्रदेशों और आकाशास्तिकाय के प्रदेशों के विषय में भी जानना चाहिये। वहां जीवास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाढ़ होते हैं ? अनन्त प्रदेश अवगाढ़ होते हैं। शेष सभी कथन धर्मास्तिकाय के समान जानना चाहिये। भगवन् ! जहां पुद्गलास्तिकाय का एक प्रदेश अवगाढ़ होता है, वहां धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाढ़ होते हैं ? गौतम ! जिस प्रकार जीवास्तिकाय के प्रदेशों के विषय में कहा, उसी प्रकार सभी कथन करना चाहिये।

भगवन् ! जहां पुद्गलास्तिकाय के दो प्रदेश अवगाढ़ होते हैं, वहां धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाढ़ होते हैं ? गौतम ! कदाचित् एक या दो प्रदेश अवगाढ़ होते हैं। इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय के विषय में तथा शेष वर्णन धर्मास्तिकाय के समान कहना चाहिये। भगवन् ! जहां पुद्गलास्तिकाय के तीन प्रदेश अवगाढ़ होते हैं, वहां धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाढ़ होते हैं ? गौतम ! कदाचित् एक, दो या तीन प्रदेश अवगाढ़ होते हैं। इसी प्रकार

अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय के विषय में भी कहना चाहिये, शेष जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और अद्धासमय के विषय में, जिस प्रकार दो पुद्गल प्रदेशों के कथनानुसार तीन पुद्गल प्रदेशों के विषय में भी कहना चाहिये और आदि के तीन अस्तिकायों के विषय में एक-एक प्रदेश बढ़ाना चाहिये । शेष के विषय में जिस प्रकार दो पुद्गल प्रदेशों के सम्बन्ध में कहा है, उसी प्रकार यावत् दस प्रदेशों तक कहना चाहिये । अर्थात् जहां पुद्गलास्तिकाय के दस प्रदेश अवगाढ़ होते हैं, वहां धर्मास्तिकाय का कदाचित् एक, दो, तीन यावत् दस प्रदेश अवगाढ़ होते हैं । जहां पुद्गलास्तिकाय के संख्यात प्रदेश अवगाढ़ होते हैं, वहां धर्मास्तिकाय का कदाचित् एक, दो यावत् दस प्रदेश, यावत् संख्यात प्रदेश अवगाढ़ होते हैं । जहां पुद्गलास्तिकाय के असंख्य प्रदेश अवगाढ़ होते हैं, वहां धर्मास्तिकाय का कदाचित् एक प्रदेश यावत् संख्य प्रदेश और असंख्य प्रदेश अवगाढ़ होते हैं । जिस प्रकार पुद्गलास्तिकाय के असंख्य प्रदेशों के विषय में कहा, उसी प्रकार अनन्त प्रदेशों के विषय में भी कहना चाहिए । अर्थात् जहां पुद्गलास्तिकाय के अनन्त प्रदेश अवगाढ़ होते हैं, वहां धर्मास्तिकाय का कदाचित् एक प्रदेश, यावत् संख्यात प्रदेश और असंख्य प्रदेश अवगाढ़ होते हैं ।

भगवन् ! जहां एक अद्धा-समय अवगाढ़ होता है, वहां धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाढ़ होते हैं ? गौतम ! एक प्रदेश अवगाढ़ होता है । अधर्मास्तिकाय०? एक० । आकाशास्तिकाय०? एक० । जीवास्तिकाय०? अनन्त प्रदेश अवगाढ़ होते हैं । इसी प्रकार यावत् अद्धा-समय तक कहना चाहिए । भगवन् ! जहां एक धर्मास्तिकाय द्रव्य अवगाढ़ होता है, वहां धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाढ़ होते हैं ? गौतम ! वहां धर्मास्तिकाय का एक भी प्रदेश अवगाढ़ नहीं होता । वहां अधर्मास्तिकाय० ? असंख्य प्रदेश अवगाढ़ होते हैं । आकाशास्तिकाय० ? असंख्य० । जीवास्तिकाय० ? अनन्त होते हैं । इसी प्रकार अद्धा-समय तक कहना चाहिए ।

भगवन् ! जहां अधर्मास्तिकाय द्रव्य अवगाढ़ होता है, वहां धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाढ़ होते हैं ? गौतम ! असंख्य प्रदेश अवगाढ़ होते हैं । अधर्मास्तिकाय० ? एक भी नहीं । शेष सभी धर्मास्तिकायके समान कहना चाहिए । धर्मास्तिकायादि द्रव्यों के 'स्वस्थान' में एक भी प्रदेश नहीं होता और परस्थान में प्रथम के तीन द्रव्यों के (धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय के) असंख्य प्रदेश कहने चाहिएं और पीछे के तीन (जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और अद्धा-समय) द्रव्योंके अनन्त प्रदेश कहने चाहियें । यावत् अद्धा-समय तक कहना चाहिए । यावत्—कितने अद्धा-समय अवगाढ़ होते हैं ? एक भी अवगाढ़ नहीं होता ।।४८२।।

भगवन् ! जहां एक पृथ्वीकायिक जीव अवगाढ़ होता है, वहां दूसरे कितने पृथ्वीकायिक जीव अवगाढ़ होते हैं ? गौतम ! असंख्य पृथ्वीकायिक जीव अवगाढ़

होते हैं। कितने अप्कायिक० ? असंख्य०। कितने तेजस्कायिक० ?असंख्य०। कितने वायुकायिक०? असंख्य०। कितने वनस्पतिकायिक० ? अनन्त जीव अवगाढ़ होते हैं। भगवन् ! जहां एक अप्कायिक जीव अवगाढ़ होता है, वहां कितने पृथ्वीकायिक जीव अवगाढ़ होते हैं ? गौतम ! असंख्य अवगाढ़ होते हैं। दूसरे कितने अप्कायिक० ? असंख्य होते हैं। जिस प्रकार पृथ्वीकायिक जीवों की वक्तव्यता कही, उसी प्रकार सभी की सभी वक्तव्यता कहनी चाहिये। यावत् वनस्पतिकायिक तक कहनी चाहिये। यावत्—कितने अन्य वनस्पतिकायिक जीव अवगाढ़ होते हैं ? अनन्त ॥४८३॥

भगवन् ! धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय पर कोई पुरुष ठहरने में, खड़ा रहने में, नीचे बैठने में और सोने में समर्थ हो सकता है ? नहीं, गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं। उस स्थान पर अनन्त जीव अवगाढ़ होते हैं। भगवन् ! इसका क्या कारण है ? गौतम ! जिस प्रकार कोई कूटागारशाला हो, वह भीतर और बाहर से लीपी हुई और चारों ओर से ढकी हुई हो, उसके द्वार भी बन्द हों, इत्यादि राजप्रश्नीय सूत्रानुसार जानना चाहिये। उस कूटागारशाला के द्वार के कपाटों को बन्द करके उसके ठीक मध्यभाग में जघन्य एक, दो, तीन और उत्कृष्ट एक हजार दीपक जलावे, तो हे गौतम ! क्या उस समय उन दीपकों का प्रकाश परस्पर मिल कर तथा परस्पर स्पर्श कर एक दूसरे के साथ एकमेक हो जाता है ? हां, भगवन् ! एक रूप हो जाता है। गौतम ! उन दीपकों के उस प्रकाश पर क्या कोई पुरुष ठहर सकता है यावत् सो सकता है ? नहीं भगवन् ! यह अर्थ समर्थ नहीं। उस प्रकाश में अनन्त जीव रहे हुए हैं, इसलिये हे गौतम ! ऐसा कहा गया है कि यावत् धर्मास्तिकाय में अनन्त जीव अवगाढ़ हैं ॥४८४॥

भगवन् ! लोक का बहुसम भाग (अत्यन्त सम–प्रदेशों की वृद्धि-हानि से रहित) कहां है और लोक का सर्व संक्षिप्त भाग कहां कहा गया है ? गौतम ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊपर और नीचे क्षुद्र (लघु) प्रतरों में लोक का बहुसम भाग कहा गया है और यहीं लोक का सर्व संक्षिप्त (सब से संकीर्ण) भाग कहा गया है। भगवन् ! लोक का विग्रह-विग्रहिक भाग (लोक रूप शरीर का वक्रतायुक्त भाग) कहां कहा गया है ? गौतम ! जहां विग्रहकण्डक वक्रतायुक्त अवयव है, वहां लोक का विग्रहविग्रहिक भाग कहा गया है ॥४८५॥

भगवन् ! इस लोक का संस्थान किस प्रकार का कहा गया है ? गौतम ! इस लोक का संस्थान सुप्रतिष्ठक के आकार का कहा गया है। यह लोक नीचे विस्तीर्ण है, इत्यादि वर्णन सातवें शतक के प्रथम उद्देशक के अनुसार यावत् 'संसार का अन्त करते हैं'—तक कहना चाहिये। भगवन् ! अधोलोक, तिर्यग्लोक और ऊर्ध्वलोक में कौन किससे कम, अधिक यावत् विशेषाधिक है ? गौतम ! सबसे

थोड़ा(छोटा) तिर्यग्लोक है, उससे ऊर्ध्वलोक असंख्यात गुणा है और उससे अधो-लोक विशेषाधिक है। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है।...–कह कर गौतम-स्वामी यावत् विचरते हैं ।।४८६।।

।। तेरहवें शतक का चौथा उद्देशक समाप्त ।।

शतक १३ उद्देशक ५—नैरयिकों का आहार

भगवन् ! नैरयिक सचित्ताहारी हैं, अचित्ताहारी हैं या मिश्राहारी हैं ? गौतम ! वे न तो सचित्ताहारी हैं और न मिश्राहारी हैं, वे अचित्ताहारी हैं। इसी प्रकार असुरकुमारों के लिये भी कहना चाहिये। यहां प्रज्ञापना सूत्र के २८ वें आहार पदका प्रथम नैरयिक उद्देशक सम्पूर्ण कहना चाहिये। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है,...ऐसा कह कर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ।।४८७।।

।। तेरहवें शतक का पांचवां उद्देशक समाप्त ।।

शतक १३ उद्देशक ६-सान्तर-निरन्तर उपपात-च्यवन...

राजगृह नगर में गौतमस्वामीने यावत् इस प्रकार पूछा–भगवन् ! नैरयिक सान्तर (समयादि के अन्तर सहित) उत्पन्न होते हैं या निरन्तर (समयादि के अन्तर रहित) ? गौतम ! नैरयिक सान्तर भी उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी। असुरकुमारों के विषय में भी इसी प्रकार कहना चाहिये। नौवें शतक के बत्तीसवें गांगेय उद्देशकके उत्पाद और उद्वर्तना के सम्बन्ध में दो दण्डक, यावत् 'वैमानिक सान्तर भी च्यवते हैं और निरन्तर भी च्यवते हैं'—तक कहना चाहिए ।।४८८।।

भगवन् ! असुरकुमारों के इन्द्र और असुरकुमारों के राजा चमर का 'चमर-चंचा' नामक आवास कहां कहा गया है ? गौतम ! इस जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत से दक्षिण में तिर्च्छे असंख्य द्वीप समुद्रों को उल्लंघन करने के बाद (अरुणवर द्वीप की बाह्य वेदिका के अन्तसे अरुणवर समुद्र में बयालीस हजार योजन जानेके पश्चात् चमरेन्द्र का तिगिच्छक कूट नाम का उपपात पर्वत आता है। उससे दक्षिण दिशा में छह सौ पचपन करोड़ पैंतीस लाख पचास हजार योजन अरुणोदक समुद्रमें तिर्च्छा जाने के बाद नीचे रत्नप्रभा पृथ्वी के भीतर चालीस हजार योजन जाने पर चम-रेन्द्र की चमरचंचा नामक राजधानी आती है, इत्यादि) दूसरे शतक के आठवें सभा उद्देशक में जो वक्तव्यता कही गई है, वह सम्पूर्ण कहनी चाहिये। विशेषता यह है कि तिगिच्छकूट के उत्पात पर्वत, चमरचंचा नामक राजधानी, चमरचंचक नामक आवास पर्वत और दूसरे बहुत से इत्यादि, सब उसी प्रकार कहना चाहिये, यावत् तीन लाख सोलह हजार दो सौ सत्ताइस योजन तीन गाउ दो सौ अट्ठाइस

प्रभावती प्रमुख रानियां भी पर्युपासना करती हैं । भगवान् ने धर्म-कथा कही। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से धर्मोपदेश सुन कर और हृदय में अवधारण कर उदायन नरेश हर्षित और सन्तुष्ट हुए। वे खड़े हुए और श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को तीन बार प्रदक्षिणा दी, यावत् नमस्कार करके इस प्रकार बोले—"हे भगवन्! जैसा आपने कहा, वह वैसा ही है, तथ्य है, यावत् जिस प्रकार आप कहते हैं, उसी प्रकार है। हे देवानुप्रिय ! मैं चाहता हूं कि अभीचि-कुमार का राज्याभिषेक करके देवानुप्रिय के पास मुण्डित होकर यावत् प्रव्रज्या अंगीकार करूं।" भगवान् ने कहा—"हे देवानुप्रिय! जैसा सुख हो वैसा करो। धर्मकार्य में विलम्ब मत करो।" श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के वचन सुन कर उदायन राजा हर्षित एवं सन्तुष्ट हुआ। राजा ने भगवान् को वन्दना-नमस्कार किया और अभिषेक योग्य पट्टहस्ती पर सवार होकर वीतिभय नगर की ओर जाने लगा।

उदायन नरेश को इस प्रकार का संकल्प उत्पन्न हुआ कि—"अभीचि कुमार मेरा एक ही पुत्र है, वह मुझे अत्यन्त इष्ट एवं प्रिय है यावत् उसका नाम श्रवण भी दुर्लभ है, तो फिर उसके दर्शन दुर्लभ हों, इसमें तो कहना ही क्या ? यदि मैं अभीचि कुमार को राज्य में स्थापित करके श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास मुण्डित होकर यावत् प्रव्रज्या ग्रहण करलूं, तो अभीचि कुमार राज्य, राष्ट्र यावत् जनपद में और मनुष्य सम्बन्धी काम-भोगों में मूच्छित, गृद्ध, ग्रथित एवं तल्लीन होकर अनादि- अनन्त दीर्घ मार्ग वाले चार गति रूप संसार अटवीमें परिभ्रमण करेगा। इसलिये अभीचि कुमार को राज्यारूढ़ कर, श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास यावत् प्रव्रज्या लेना, यह श्रेयस्कर नहीं है, अपितु अपने भानजे केशी कुमार का राज्याभिषेक कर प्रव्रजित होना मेरे लिये श्रेयस्कर है।" इस प्रकार विचार करता हुआ उदायन राजा वीतिभय नगर के मध्य होता हुआ अपने भवन के बाहर की उपस्थानशाला में आया और आभिषेक्य पट्टहस्ती को खड़ा रख कर नीचे उतरा। फिर राजसभा में आया और पूर्वदिशा की ओर मुंह करके भव्य सिंहासन पर बैठा। तत्पश्चात् कौटुम्बिक पुरुषों को बुला कर इस प्रकार कहा—"हे देवानुप्रियो! वीतिभय नगर को बाहर और भीतर से स्वच्छ करवाओ, यावत् कौटुम्बिक पुरुषों ने नगर को सजा करके, आज्ञा पालन का निवेदन किया। इसके बाद उदायन राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को आज्ञा दी— "हे देवानुप्रियो! शीघ्र ही केशी कुमार को यावत् महा राज्याभिषेक की तैयारी करो। वर्णन ग्यारहवें शतक के नौवें उद्देशक के शिवभद्र कुमार के राज्याभिषेक के समान यावत् 'दीर्घायुषी होवो'—तक कहना चाहिये, यावत् इष्टजनों से परि-वृत्त होकर सिन्धुसौवीर प्रमुख सोलह देश, वीतिभय प्रमुख तीन सौ त्रेसठ नगर

और आकर तथा मुकुटवद्ध महासेन प्रमुख दस राजा एवं अन्य बहुत से राजा तथा युवराज आदिका स्वामीपन यावत् करते हुए और राज्यका पालन करते हुए विचरो"–ऐसा कहकर 'जय जय' शब्द बोलते हैं। केशी कुमार राजा बना। वह महाहिमवान् पर्वत के समान इत्यादि वर्णन युक्त यावत् विचरने लगा।

उदायन राजा ने केशी राजासे दीक्षा लेने की आज्ञा मांगी। केशी राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और नौवें शतकके तेतीसवें उद्देशकमें कथित जमाली कुमारके समान यावत् निष्क्रमणाभिषेक (दीक्षाभिषेक) करने लगा। अनेक गणनायक आदि परिवार से युक्त केशी राजा, उदायन राजा को उत्तम सिंहासन पर पूर्व दिशा सम्मुख विठा कर एक सौ आठ स्वर्ण कलशों से अभिषेक करने लगा, इत्यादि जमाली के समान वर्णन कहना चाहिये। यावत् केशी राजा ने कहा— 'हे स्वामिन्! कहिये, हम क्या देवें, क्या अर्पण करें और आपका क्या प्रयोजन है?' उदायन राजाने केशी राजासे कहा कि—"हे देवानुप्रिय! कुत्रिकापणसे रजोहरण और पात्र मंगवाओ।" इत्यादि जमाली के वर्णनानुसार। विशेषता यह है कि जिसको प्रिय-वियोग दुस्सह है ऐसी पद्मावती रानी ने उदायन राजा के अग्रकेशों को ग्रहण किया। इसके पश्चात् केशी राजा ने दूसरी वार भी उत्तर दिशा में सिंहासन रखवा कर उदायन राजा का श्वेत (चांदी) और पीत (सोने के) कलशों से अभिषेक किया। शेष सभी वर्णन जमाली के समान जानना चाहिये, यावत् वह शिविका में बैठा। इसी प्रकार धायमाता के सम्बन्ध में भी जानना चाहिये। विशेषता यह है कि यहां पद्मावती रानी ने हंस चिन्ह वाले रेशमी वस्त्र को ग्रहण किया, इत्यादि शेष सभी उसी प्रकार यावत् उदायन राजा शिबिका से नीचे उतर कर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के समीप आया और तीन वार वन्दना-नमस्कार कर, उत्तर-पूर्व दिशा की ओर जा कर स्वयमेव आभरण, माला और अलंकार उतारे, इत्यादि पूर्ववत्, यावत् पद्मावती रानीने केश ग्रहण किये यावत् इस प्रकार वोली कि–'हे स्वामिन्! संयम में प्रयत्न करते रहें, यावत् प्रमाद नहीं करें'– कह कर केशी राजा और पद्मावती रानी ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना नमस्कार किया और अपने स्थान चले गये। उदायन राजा ने स्वयमेव पंचमुष्टिक लोच किया। शेष वृत्तान्त नौवें शतक के ३३ वें उद्देशक में कथित ऋषभदत्त के समान यावत् उदायी श्रमण समस्त दुःखों से रहित हुए।।४९०।।

किसी दिन रात्रिके पिछले पहरमें कुटुम्ब जागरणा करते हुए अभीचि कुमार को इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ—'मैं उदायन राजा का पुत्र और प्रभावती देवी का आत्मज हूं, फिर भी उदायन राजाने मुझे छोड़कर अपने भानजे केशी कुमार को राज्य पर स्थापित करके श्रमण-भगवान् महावीर स्वामी के समीप यावत् प्रव्रज्या ग्रहण की है।' इस प्रकारके महान् अप्रीति रूप मनोमानसिक

धनुष और कुछ विशेषाधिक साढ़े तेरह अंगुल चमरचंचा की परिधि है। उस चमरचंचा राजधानी से दक्षिण पश्चिम दिशा (नैऋत्यकोण) में छह सौ पचपन करोड़ पेंतीस लाख पचास हजार योजन अरुणोदक समुद्र में तिच्छी जाने के बाद वहां असुरकुमारों के इन्द्र, असुरकुमारों के राजा चमर का चमरचंच नामक आवास कहा गया है। उसकी लम्बाई-चौड़ाई चौरासी हजार योजन है। उसकी परिधि दो लाख पैंसठ हजार छह सौ बत्तीस योजन से कुछ विशेषाधिक है। वह आवास एक प्राकार (प्रकोट) से चारों ओर से घिरा हुआ है। वह प्राकार ऊंचाई में एक सौ पचास योजन है। इस प्रकार चमरचञ्चा राजधानी की सारी वक्तव्यता यावत् 'चार प्रासाद पंक्तियां हैं'—तक, सभा छोड़कर कहना चाहिये।

भगवन्! क्या असुरेन्द्र, असुरराज चमर 'चमरचञ्च' नामक आवास में रहता है? गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं। भगवन्! चमरेन्द्र चमरचंच नाम के आवास में क्यों नहीं रहता? गौतम! जिस प्रकार मनुष्य-लोक में औपकारिक घर (प्रासादादि के पीठ तुल्य घर), बगीचे में बनाये हुए घर, नगर के पास बनाये हुए घर, नगर से निकलने वाले द्वार के पास बनाये हुए घर और जल के फव्वारे सहित घर होते हैं, वहां बहुत से पुरुष, स्त्रियां आदि बैठते हैं, सोते हैं इत्यादि राजप्रश्नीय सूत्रानुसार यावत् 'कल्याण रूप फल और वृत्ति विशेष का अनुभव करते हुए रहते हैं'—तक कहना चाहिये। (वे स्थान विश्रामके लिए अस्थायी होते हैं) वहां वे लोग स्थायी निवास नहीं करते। उनका निवास दूसरी जगह होता है। इसी प्रकार हे गौतम! असुरेन्द्र, असुरराज चमर का चमरचञ्च नामक आवास केवल क्रीड़ा और रति के लिए है। चमरेन्द्र वहां आकर क्रीड़ा और रति करता है। इस लिए हे गौतम! ऐसा कहा गया है कि चमरेन्द्र चमरचंच आवास में निवास नहीं करता। 'हे भगवन्! यह इसी प्रकार है,···भगवन्! यह इसी प्रकार है—ऐसा कहकर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं। इसके अनन्तर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी किसी दिन राजगृह नगर और गुण-शील उद्यान से यावत् विहार कर देते हैं ॥४८६॥

उदायी नरेश चरित्र

उस काल उस समय में चम्पा नाम की नगरी थी (वर्णन)। पूर्णभद्र नाम का उद्यान था (वर्णन)। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी किसी दिन पूर्वानुपूर्वी विचरते हुए चम्पानगरी के पूर्णभद्र उद्यान में पधारे यावत् विचरने लगे।

उस काल उस समय में सिन्धुसौवीर देश में वीतिभय नाम का नगर था (वर्णन)। उस वीतिभय नगर के बाहर उत्तरपूर्व दिशा (ईशान कोण) में मृगवन नाम का उद्यान था। वह सभी ऋतुओं के पुष्पादिक से समृद्ध था (वर्णन)। वीतिभय नगर में उदायन नाम का राजा था। वह महाहिमवान् पर्वत के समान

था (वर्णन)। उदायन राजा के प्रभावती नाम की रानी थी। वह सुकुमाल हाथ-पैर वाली थी (वर्णन)। उदायन राजा का पुत्र और प्रभावती देवी का आत्मज 'अभीचि' नाम का कुमार था। वह सुकुमाल···था। उसका वर्णन शिवभद्र के समान जानना चाहिए, यावत् वह राज्य का निरीक्षण करता हुआ विचरता था। उदायन राजा का सगा भानजा 'केशी' नामक कुमार था। वह भी सुकुमाल यावत् सुरूप था। उदायन राजा सिन्धुसौवीर आदि सोलह देश, वीतिभय प्रमुख तीन सौ त्रेसठ नगर और आकर का स्वामी था। उसकी आधीनता में–जिनको छत्र, चामर और बालव्यजन (पंखे) दिये गये हैं—ऐसे महासेन प्रमुख दस मुकुटबद्ध राजा और इसी प्रकार के दूसरे बहुत से राजा, युवराज, तलवर (कोतवाल) यावत् सार्थवाह आदि थे, जिन पर आधिपत्य करता और राज्यका पालन करता हुआ विचरता था। वह जीवाजीवादि तत्त्वों का जानकार श्रमणोपासक था।

एक दिन उदायन राजा अपनी पौषधशाला में आये और बारहवें शतक के प्रथम उद्देशक में कथित शंख श्रमणोपासक के समान पौषध करके यावत् विचरने लगे। रात्रि के पिछले पहर में धर्म जागरण करते हुए उदायन राजा को इस प्रकार संकल्प यावत् उत्पन्न हुआ कि—वे ग्राम, आकर (खान), नगर, खेड़, कर्बट, मडम्ब, द्रोणमुख, पत्तन, आश्रम, सम्बाह और सन्निवेश धन्य हैं, जहां श्रमण भगवान् महावीर स्वामी विचरते हैं, वे राजा सेठ, तलवर यावत् सार्थवाह आदि धन्य हैं जो श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना-नमस्कार करते हैं यावत् पर्युपासना करते हैं। यदि श्रमण भगवान् महावीर स्वामी पूर्वानुपूर्वी (अनुक्रम) से विचरते हुए एवं एक ग्राम से दूसरे ग्राम जाते हुए यावत् विहार करते हुए यहां पधारें, यहां समोसरें और इस वीतिभय नगर के बाहर मृगवन नामक उद्यान में यथायोग्य अवग्रह ग्रहण कर, संयम और तप से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरें, तो मैं श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना-नमस्कार करूं यावत् पर्युपासना करूं। उदायन राजा को उत्पन्न हुए इस प्रकार के संकल्प को जान कर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी चम्पा नगरी के पूर्णभद्र उद्यान से निकले और अनुक्रम से विचरते हुए, ग्रामानुग्राम चलते हुए यावत् सिन्धुसौवीर देश में वीतिभय नगर के मृगवन उद्यान में पधारे यावत् विचरने लगे। वीतिभय नगर में शृंगाटकादि मार्गों में यावत् परिषद पर्युपासना करने लगी। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के आगमन की बात सुन कर उदायन राजा हर्षित एवं सन्तुष्ट हुआ और अपने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाकर कहा–हे देवानुप्रियो! तुम शीघ्र वीतिभय नगर को भीतर और बाहर से स्वच्छ करवाओ, इत्यादि औपपातिक सूत्रानुसार वर्णन करना चाहिये, यावत् उदायन राजा भगवान् की पर्युपासना करता है और

प्रभावती प्रमुख रानियां भी पर्युपासना करती हैं । भगवान् ने धर्म-कथा कही। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से धर्मोपदेश सुन कर और हृदय में अवधारण कर उदायन नरेश हर्षित और सन्तुष्ट हुए। वे खड़े हुए और श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को तीन बार प्रदक्षिणा दी, यावत् नमस्कार करके इस प्रकार बोले—"हे भगवन् ! जैसा आपने कहा, वह वैसा ही है, तथ्य है, यावत् जिस प्रकार आप कहते हैं, उसी प्रकार है। हे देवानुप्रिय ! मैं चाहता हूं कि अभीचि-कुमार का राज्याभिषेक करके देवानुप्रिय के पास मुण्डित होकर यावत् प्रव्रज्या अंगीकार करूं।" भगवान् ने कहा—"हे देवानुप्रिय ! जैसा सुख हो वैसा करो। धर्मकार्य में विलम्ब मत करो।" श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के वचन सुन कर उदायन राजा हर्षित एवं सन्तुष्ट हुआ। राजा ने भगवान् को वन्दना-नमस्कार किया और अभिषेक योग्य पट्टहस्ती पर सवार होकर वीतिभय नगर की ओर जाने लगा।

उदायन नरेश को इस प्रकार का संकल्प उत्पन्न हुआ कि—"अभीचि कुमार मेरा एक ही पुत्र है, वह मुझे अत्यन्त इष्ट एवं प्रिय है यावत् उसका नाम श्रवण भी दुर्लभ है, तो फिर उसके दर्शन दुर्लभ हों, इसमें तो कहना ही क्या ? यदि मैं अभीचि कुमार को राज्य में स्थापित करके श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास मुण्डित होकर यावत् प्रव्रज्या ग्रहण करलूं, तो अभीचि कुमार राज्य, राष्ट्र यावत् जनपद में और मनुष्य सम्बन्धी काम-भोगों में मूर्च्छित, गृद्ध, ग्रथित एवं तल्लीन होकर अनादि- अनन्त दीर्घ मार्ग वाले चार गति रूप संसार अटवीमें परिभ्रमण करेगा। इसलिये अभीचि कुमार को राज्यारूढ़ कर, श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास यावत् प्रव्रज्या लेना, यह श्रेयस्कर नहीं है, अपितु अपने भानजे केशी कुमार का राज्याभिषेक कर प्रव्रजित होना मेरे लिये श्रेयस्कर है।" इस प्रकार विचार करता हुआ उदायन राजा वीतिभय नगर के मध्य होता हुआ अपने भवन के बाहर की उपस्थानशाला में आया और आभिषेक्य पट्टहस्ती को खड़ा रख कर नीचे उतरा। फिर राजसभा में आया और पूर्वदिशा की ओर मुंह करके भव्य सिंहासन पर बैठा। तत्पश्चात् कौटुम्बिक पुरुषों को बुला कर इस प्रकार कहा—"हे देवानुप्रियो ! वीतिभय नगर को बाहर और भीतर से स्वच्छ करवाओ, यावत् कौटुम्बिक पुरुषों ने नगर को सजा करके आज्ञा पालन का निवेदन किया। इसके बाद उदायन राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को आज्ञा दी—"हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही केशी कुमार को यावत् महा राज्याभिषेक की तैयारी करो। वर्णन ग्यारहवें शतक के नौवें उद्देशक के शिवभद्र कुमार के राज्याभिषेक के समान यावत् 'दीर्घायुषी होवो'—तक कहना चाहिये, यावत् इष्टजनों से परि-वृत्त होकर सिन्धुसौवीर प्रमुख सोलह देश, वीतिभय प्रमुख तीन सौ त्रेसठ नगर

और आकर तथा मुकुटवद्ध महासेन प्रमुख दस राजा एवं अन्य वहुत से राजा तथा युवराज आदिका स्वामीपन यावत् करते हुए और राज्यका पालन करते हुए विचरो"–ऐसा कहकर 'जय जय' शब्द बोलते हैं। केशी कुमार राजा बना। वह महाहिमवान् पर्वत के समान इत्यादि वर्णन युक्त यावत् विचरने लगा।

उदायन राजा ने केशी राजासे दीक्षा लेने की आज्ञा मांगी। केशी राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और नौवें शतकके तेतीसवें उद्देशकमें कथित जमाली कुमारके समान यावत् निष्क्रमणाभिषेक (दीक्षाभिषेक) करने लगा। अनेक गणनायक आदि परिवार से युक्त केशी राजा, उदायन राजा को उत्तम सिंहासन पर पूर्वदिशा सम्मुख बिठा कर एक सौ आठ स्वर्ण कलशों से अभिषेक करने लगा, इत्यादि जमाली के समान वर्णन कहना चाहिये। यावत् केशी राजा ने कहा—'हे स्वामिन्! कहिये, हम क्या देवें, क्या अर्पण करें और आपका क्या प्रयोजन है?' उदायन राजाने केशी राजासे कहा कि—"हे देवानुप्रिय! कुत्रिकापणसे रजोहरण और पात्र मंगवाओ।" इत्यादि जमाली के वर्णनानुसार। विशेषता यह है कि जिसको प्रिय-वियोग दुस्सह है ऐसी पद्मावती रानी ने उदायन राजा के अग्रकेशों को ग्रहण किया। इसके पश्चात् केशी राजा ने दूसरी बार भी उत्तर दिशा में सिंहासन रखवा कर उदायन राजा का श्वेत (चांदी) और पीत (सोने के) कलशों से अभिषेक किया। शेष सभी वर्णन जमाली के समान जानना चाहिये, यावत् वह शिविका में बैठा। इसी प्रकार धायमाता के सम्बन्ध में भी जानना चाहिये। विशेषता यह है कि यहां पद्मावती रानी ने हंस चिन्ह वाले रेशमी वस्त्र को ग्रहण किया, इत्यादि शेष सभी उसी प्रकार यावत् उदायन राजा शिविका से नीचे उतर कर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के समीप आया और तीन बार वन्दना-नमस्कार कर, उत्तर-पूर्व दिशा की ओर जा कर स्वयमेव आभरण, माला और अलंकार उतारे, इत्यादि पूर्ववत्, यावत् पद्मावती रानीने केश ग्रहण किये यावत् इस प्रकार बोली कि–'हे स्वामिन्! संयम में प्रयत्न करते रहें, यावत् प्रमाद नहीं करें'–कह कर केशी राजा और पद्मावती रानी ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना नमस्कार किया और अपने स्थान चले गये। उदायन राजा ने स्वयमेव पंचमुष्टिक लोच किया। शेष वृत्तान्त नौवें शतक के ३३ वें उद्देशक में कथित ऋषभदत्त के समान यावत् उदायी श्रमण समस्त दुःखों से रहित हुए ॥४९०॥

किसी दिन रात्रिके पिछले पहरमें कुटुम्ब जागरणा करते हुए अभीचि कुमार को इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ—'मैं उदायन राजा का पुत्र और प्रभावती देवी का आत्मज हूं, फिर भी उदायन राजाने मुझे छोड़कर अपने भानजे केशी कुमार को राज्य पर स्थापित करके श्रमण-भगवान् महावीर स्वामी के समीप यावत् प्रव्रज्या ग्रहण की है।' इस प्रकारके महान् अप्रीति रूप मनोमानसिक

(आन्तरिक) दुःखसे पीड़ित बना हुआ, अभीचि कुमार अपने अन्तःपुर के परिवार सहित, अपने भाण्डमात्रोपकरण आदि लेकर वहां से निकला और चम्पा नगरी आकर कोणिक राजाके आश्रयमें रहने लगा। वहां उसे विपुल भोग-सामग्री प्राप्त हुई। कालान्तरमें अभीचि कुमार श्रमणोपासक बना और जीवाजीवादि तत्त्वों का ज्ञाता हुआ। श्रमणोपासक होने पर भी अभीचि कुमार उदायन राजर्षिके प्रति वैरके अनुबन्ध से युक्त था।

उस काल उस समय में रत्नप्रभा पृथ्वीके नरकावासोंके निकट असुरकुमारोंके चौंसठ लाख आवास कहे गये हैं। वह अभीचि कुमार बहुत वर्षों तक श्रमणोपासक-पर्याय का पालन कर और अर्द्धमासिक संलेखना से तीस भक्त अनशन का छेदन करके, उस पाप-स्थान की आलोचना एवं प्रतिक्रमण किये बिना, मरण के समय काल-धर्म को प्राप्त होकर, रत्नप्रभा पृथ्वी के नरकावासों के निकट, असुरकुमार देवों के चौंसठ लाख आवासों में से किसी आवास में 'आयाव' रूप असुरकुमार देवपने उत्पन्न हुआ। वहां कितने ही आयाव रूप असुरकुमार देवों की स्थिति एक पल्योपम की कही गई है। अभीचि देव की स्थिति भी एक पल्योपम की है। भगवन्! अभीचि देव आयु-क्षय, स्थिति-क्षय और भव-क्षय होने के पश्चात् मर कर कहां जाएगा, कहां उत्पन्न होगा? गौतम! वहां से च्यव कर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेगा और सिद्ध होगा यावत् सभी दुःखों का अन्त करेगा। हे भगवन्! यह इसी प्रकार है।'''गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ॥४९१॥

॥ तेरहवें शतक का छठा उद्देशक समाप्त ॥

—०—

शतक १३ उद्देशक ७—भाषा जीव या अजीवादि

राजगृह नगर में गौतम स्वामी ने इस प्रकार पूछा—"भगवन्! भाषा आत्मा (जीव स्वरूप) है या अन्य (आत्मा से भिन्न) है? गौतम! भाषा आत्मा नहीं है, अन्य (आत्मा से भिन्न अर्थात् पुद्गल स्वरूप) है। भगवन्! भाषा रूपी है या अरूपी? गौतम! भाषा रूपी है, अरूपी नहीं। भगवन्! भाषा सचित्त है या अचित्त? गौतम! भाषा सचित्त नहीं, अचित्त है। भगवन्! भाषा जीव है या अजीव? गौतम! भाषा जीव नहीं, अजीव है। भगवन्! भाषा जीवों के होती है या अजीवों के? गौतम! भाषा जीवोंके होती है, अजीवों के नहीं होती। भगवन्! बोलनेके पूर्व भाषा कहलाती है, बोलते समय भाषा कहलाती है या बोलने के बाद भाषा कहलाती है? गौतम! बोलने के पूर्व भाषा नहीं कहलाती, बोलते समय भाषा कहलाती है। बोलने के पश्चात् भी भाषा नहीं कहलाती। भगवन्! बोलने से पूर्व भाषा का भेदन होता है, बोलते समय भाषा का भेदन होता है या

बोलने के पश्चात् भाषा का भेदन होता है ? गौतम ! बोलने से पूर्व भाषा का भेदन नहीं होता, बोलते समय भाषा का भेदन होता है । बोलने के पश्चात् भी भाषाका भेदन नहीं होता । भगवन् ! भाषा कितने प्रकारकी कही गई है ? गौतम ! भाषा चार प्रकार की कही गई है । यथा–सत्य भाषा, मृषा भाषा(असत्य भाषा), सत्यमृषा भाषा (मिश्र भाषा), असत्यामृषा भाषा (व्यवहार भाषा) ।।४९२।।

भगवन् ! मन आत्मा है या आत्मा से अन्य ? गौतम ! मन आत्मा नहीं, आत्मा से अन्य है, इत्यादि जिस प्रकार भाषा के विषय में कहा, उसी प्रकार मन के विषय में भी यावत् 'अजीवों के मन नहीं होता'–तक कहना चाहिये । भगवन् ! मननसे पूर्व मन होता है, मनन के समय मन होता है या मनन-समय बीत जाने पर मन होता है ? गौतम ! जिस प्रकार भाषा के सम्बन्ध में कहा, उसी प्रकार मन के विषय में भी कहना चाहिये । भगवन् ! मनन के पूर्व मन का भेदन होता है, मनन के समय मन का भेदन होता है या मनन-समय बीत जाने पर मन का भेदन होता है ? गौतम ! भाषा सम्बन्धी कथन यहां भी कहना चाहिये । भगवन् ! मन कितने प्रकार का कहा गया है ? गौतम ! मन चार प्रकार का कहा गया है । यथा—१ सत्यमन, २ मृषामन, ३ सत्यमृषामन और ४ असत्यामृषामन ।।४९३।।

भगवन् ! काय (शरीर) आत्मा है या आत्मा से अन्य ? गौतम ! काय आत्मा भी है और आत्मा से भिन्न भी । भगवन् ! काय रूपी है या अरूपी ? गौतम ! काय रूपी भी है और अरूपी भी । इसी प्रकार पूर्ववत् एक-एक प्रश्न करना चाहिये । (उत्तर)गौतम ! कायसचित्त भी है और अचित्त भी । काय जीव रूप भी है और अजीव रूप भी । काय जीवों के भी होती है और अजीवों के भी । भगवन् ! पहले काय होती है, इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न ? गौतम ! जीवका सम्बन्ध होने के पहले भी काया होती है, चीयमान (पुद्गलों का ग्रहण होते समय) भी काया होती है और काया-समय (पुद्गलों के ग्रहण का समय) व्यतीत हो जाने पर भी काया होती है । भगवन् ! जीवों द्वारा ग्रहण करने के पहले काया का भेदन होता है, इत्यादि प्रश्न ? गौतम ! पहले भी काया का भेदन होता है, यावत् (पुद्गलों के ग्रहण का समय बीत जाने पर) भी भेदन होता है । भगवन् ! काया कितने प्रकार की कही गई है ? गौतम ! काया सात प्रकार की कही गई है । यथा–१ औदारिक, २ औदारिक मिश्र, ३ वैक्रिय, ४ वैक्रिय मिश्र, ५ आहारक, ६ आहारक मिश्र और ७ कार्मण ।।४९४।।

भगवन् ! मरण कितने प्रकार का कहा गया है ? गौतम ! मरण पांच प्रकार का कहा गया है । यथा—१ आवीचिक मरण, २ अवधि मरण, ३ आत्यन्तिक मरण, ४ बाल मरण और ५ पण्डित मरण । भगवन् ! आवीचिकमरण

कितने प्रकार का कहा गया है ? गौतम ! आवीचिकमरण पांच प्रकार का कहा गया है। यथा-१ द्रव्यावीचिकमरण, २ क्षेत्रावीचिकमरण, ३ कालावीचिकमरण, ४ भवावीचिकमरण और भावावीचिकमरण। भगवन् ! द्रव्यावीचिकमरण कितने प्रकार का कहा गया है ? गौतम ! चार प्रकार का कहा गया है। यथा-१ नैरयिक द्रव्यावीचिकमरण, २ तिर्यञ्चयोनिकद्रव्यावीचिकमरण, ३ मनुष्य द्रव्यावीचिकमरण और ४ देव द्रव्यावीचिकमरण।

भगवन् ! नैरयिक द्रव्य (जीव) पने वर्तते हुए नैरयिक जीव ने जो द्रव्य नैरयिक आयुष्यपने स्पर्श रूप से ग्रहण किये हैं, बन्धन रूप से बांधे हैं, प्रदेश रूप से पुष्ट किये हैं, विशिष्ट रस युक्त किये हैं, स्थिति रूप से स्थापित किये हैं, जीव प्रदेशों में प्रविष्ट किये हैं, अभिनिविष्ट अर्थात् अत्यन्त गाढ़ रूप से प्रविष्ट किये हैं और अभिसमन्वागत अर्थात् उदयाभिमुख किये हैं, उन द्रव्योंको आवीचिकमरण से निरन्तर प्रति समय छोड़ते हैं। इस कारण हे गौतम ! द्रव्यावीचिकमरण को नैरयिक द्रव्यावीचिकमरण कहते हैं। इसी प्रकार (तिर्यञ्चयोनिक द्रव्यावीचिकमरण, मनुष्य द्रव्यावीचिकमरण) यावत् देव द्रव्यावीचिकमरण जानना चाहिये।

भगवन् ! क्षेत्रावीचिकमरण कितने प्रकारका कहा गया है ? गौतम ! चार प्रकार का कहा गया हैं। यथा-नैरयिक-क्षेत्रावीचिकमरण, यावत् देव क्षेत्रावीचिकमरण। भगवन् ! नैरयिक क्षेत्रावीचिकमरण 'नैरयिक क्षेत्रावीचिक मरण' क्यों कहलाता है ? गौतम ! नैरयिक क्षेत्र में रहे हुए नैरयिक जीव ने...स्वयं नैरयिक आयुष्यपने ग्रहण किये हैं, यावत् उन द्रव्यों को प्रति समय निरन्तर छोड़ते हैं, इत्यादि द्रव्यावीचिक मरण के समान यहां भी कहना चाहिए। इसलिये हे गौतम ! नैरयिक क्षेत्रावीचिकमरण 'नैरयिक क्षेत्रावीचिकमरण' कहलाता है। इसी प्रकार यावत् (कालावीचिकमरण, भवावीचिकमरण,) भावावीचिक मरण तक कहना चाहिये।

भगवन् ! अवधिमरण कितने प्रकारका कहा गया है ? गौतम ! पांच प्रकारका कहा गया है। यथा-द्रव्यावधिमरण, क्षेत्रावधिमरण, (कालावधिमरण, भवावधिमरण) यावत् भावावधिमरण। भगवन् ! द्रव्यावधिमरण कितने प्रकार का कहा गया है ? गौतम ! चार प्रकार का कहा गया है। यथा—नैरयिक द्रव्यावधिमरण यावत् देव०।

भगवन् ! नैरयिक द्रव्यावधिमरण 'नैरयिक द्रव्यावधिमरण' क्यों कहलाता है ? गौतम ! नैरयिकपने रहे हुए नैरयिक जीव जिन द्रव्यों को इस समय (वर्त्तमान समय)में छोड़ते हैं, फिर वे ही जीव नैरयिक होकर उन्हीं द्रव्योंको ग्रहणकर फिर भी छोड़ेंगे, इस कारण हे गौतम ! नैरयिक द्रव्यावधिमरण 'नैरयिक द्रव्या-

वधिमरण' कहलाता है। इसी प्रकार तिर्यञ्चयोनिक द्रव्यावधिमरण, मनुष्य द्रव्यावधिमरण और देव द्रव्यावधिमरण भी कहना चाहिये। तथा इसी पाठ से क्षेत्रावधिमरण, कालावधिमरण, भवावधिमरण और भावावधिमरण भी कहना चाहिये।

भगवन्! आत्यन्तिकमरण कितने प्रकार का कहा गया है? गौतम! पांच प्रकार का कहा गया है। यथा–द्रव्यात्यन्तिकमरण, क्षेत्रात्यन्तिकमरण यावत् भावात्यन्तिकमरण। भगवन्! द्रव्यात्यन्तिकमरण कितने प्रकारका कहा गया है? गौतम! चार प्रकारका कहा गया है। यथा–नैरयिक द्रव्यात्यन्तिकमरण यावत् देव द्रव्यात्यन्तिकमरण। भगवन्! नैरयिक द्रव्यात्यन्तिकमरण 'नैरयिक द्रव्यात्यन्तिक मरण' क्यों कहलाता है? गौतम! नैरयिकपने रहे हुए नैरयिक जीव जिन द्रव्यों को वर्त्तमान समय में छोड़ते हैं, वे नैरयिक जीव उन द्रव्यों को भविष्यत्काल में फिर नहीं छोड़ेंगे, इस कारण हे गौतम! नैरयिक द्रव्यात्यन्तिकमरण 'नैरयिक द्रव्यात्यन्तिकमरण' कहलाता है। इसी प्रकार तिर्यचयोनिक द्रव्यात्यन्तिकमरण, मनुष्य द्रव्यात्यन्तिकमरण और देव द्रव्यात्यन्तिकमरण भी जानना चाहिये। तथा इसी प्रकार क्षेत्रात्यन्तिकमरण यावत् भावात्यन्तिक मरण भी जानना चाहिये।

भगवन्! वालमरण कितने प्रकार का कहा गया है? गौतम! बारह प्रकार का कहा गया है। यथा–वलय मरण इत्यादि दूसरे शतक के पहले उद्देशकके स्कन्दकाधिकार के अनुसार यावत् गृध्रपृष्ठ मरण तक जानना चाहिये। भगवन्! पण्डित मरण कितने प्रकारका कहा गया है? गौतम! दो प्रकारका कहा गया है। यथा–१ पादपोपगमन मरण और २ भक्तप्रत्याख्यानमरण। भगवन्! पादपोपगमन मरण कितने प्रकार का कहा गया है? गौतम दो प्रकारका कहा गया है। यथा—१ निर्हारिम और अनिर्हारिम यावत् अवश्य अप्रतिकर्म—तक कहना चाहिये। भगवन्! भक्तप्रत्याख्यान मरण कितने प्रकारका कहा गया है? गौतम! पूर्व कथनानुसार उसके निर्हारिम और अनिर्हारिम–ये दो भेद होते हैं। इनमें विशेषता यह है कि दोनों प्रकार का भक्तप्रत्याख्यान मरण अवश्य ही सप्रतिकर्म (शरीर संस्कार सहित) होता है। हे भगवन्! यह इसी प्रकार है।···ऐसा कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं ॥४६५॥

॥ तेरहवें शतक का सातवां उद्देशक समाप्त ॥

———

शतक १३ उद्देशक ८—कर्म-प्रकृति

भगवन्! कर्म-प्रकृतियां कितनी कही गई हैं? गौतम! कर्म-प्रकृतियां आठ कही गई हैं। यहां प्रज्ञापना सूत्र के २३ वें पद के द्वितीय 'वन्ध-स्थिति' उद्देशक का

सम्पूर्ण कथन करना चाहिये। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है।······ऐसा कहकर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं ॥४९६॥

॥ तेरहवें शतक का आठवां उद्देशक समाप्त ॥

शतक १३ उद्देशक ९—अनगार की वैक्रिय-शक्ति

राजगृह नगर में गौतम स्वामी ने यावत् इस प्रकार पूछा–भगवन् ! जैसे कोई पुरुष रस्सी से बंधी हुई घटिका लेकर जाता है, उसी प्रकार भावितात्मा अनगार भी वैक्रिय लब्धि से रस्सी से बन्धी हुई घटिका हाथ में लेकर स्वयं ऊंचे आकाश में उड़ सकता है ? हां, गौतम ! उड़ सकता है । भगवन् ! भावितात्मा अनगार रस्सी से बंधी हुई घटिका हाथ में धारण करने रूप कितने रूपों की विकुर्वणा कर सकता है ? गौतम ! तीसरे शतक के पांचवें उद्देशक में कहे अनुसार युवति-युवा के हस्तग्रहण के दृष्टान्तानुसार सभी कहना चाहिए। यह उनकी शक्ति मात्र है, सम्प्राप्ति (सम्पादन) द्वारा कभी इतने रूप विकुर्वे नहीं, विकुर्वता नहीं और विकुर्वेगा भी नहीं।

भगवन् ! जैसे कोई पुरुष हिरण्य (चांदी) की पेटी लेकर गमन करता है, उसी प्रकार भावितात्मा अनगार भी हिरण्य की पेटी हस्तगत करके (ऐसे रूपकी विकुर्वणा करके) स्वयं ऊंचे आकाश में उड़ सकता है ? गौतम ! यह सभी पूर्ववत् जानना चाहिये। इसी प्रकार स्वर्ण की पेटी, रत्नों की पेटी, वज्र की पेटी, वस्त्रों की पेटी और आभूषणों की पेटी लेकर आकाश में गमन कर सकता है। इसी प्रकार विदलकट (बांस की चटाई), शुम्बकट (बीरण घासकी चटाई), चर्मकट (चर्म से भरी हुई चटाई या खाट आदि), कम्बलकट (ऊनके कम्बल का बिछौना) तथा लोह का भार, ताम्बेका भार, कलईका भार, शीशेका भार, हिरण्य का भार, स्वर्ण का भार और वज्र का भार लेकर (इन सभी रूपों की विकुर्वणा करके) ऊंचे आकाश में उड़ सकता है।

भगवन् ! जैसे कोई वागुलपक्षिणी (चमगादड़) अपने दोनों पैर वृक्षादि में ऊंचे लगाकर(ऊंचे पैर और नीचे सिर लटकाकर)रहती है, उसी प्रकार भावितात्मा अनगार भी वागुली की तरह विकुर्वणा करके स्वयं ऊंचे आकाश में उड़ सकता है ? गौतम ! उड़ सकता है। इसी प्रकार यज्ञोपवीत की वक्तव्यता भी कहनी चाहिये अर्थात् जैसे कोई ब्राह्मण गले में जनेऊ डालकर गमन करता है, उसी प्रकार भावितात्मा अनगार भी वैसे रूप की विकुर्वणा कर सकता है, यावत् 'सम्प्राप्ति द्वारा विकुर्वेगे नहीं'—तक कहना चाहिये।

भगवन् ! जिस प्रकार कोई जलोक (पानी में रहने वाला बेइंद्रिय जीव) अपने शरीर से पानी को प्रेरित करके गमन करती है, उसी प्रकार भावितात्मा अनगार भी वैसे रूप की विकुर्वणा करके आकाश में उड़ सकता है। गौतम ! यह सभी वर्णन वागुली के समान जानना चाहिये । भगवन् ! जैसे कोई एक वीजंवीजक पक्षी अपने दोनों पैरों को घोड़े की भांति एक साथ उठाता हुआ गमन करता है, उसी प्रकार भावितात्मा अनगार भी वैसे रूपों की विकुर्वणा करके आकाश में उड़ सकता है ? हां, गौतम ! उड़ सकता है। शेष सभी पूर्ववत् जानना चाहिये । भगवन् ! जिस प्रकार कोई विलाडक पक्षी एक वृक्षसे दूसरे वृक्ष पर और दूसरे से तीसरे पर गमन करता है, क्या भावितात्मा अनगार भी उस प्रकारके रूप की विकुर्वणा करके आकाशमें उड़ सकता है ? हां,···। शेष···। भगवन् ! जैसे कोई एक जीवंजीवक नामक पक्षी अपने दोनों पैरोंको घोड़े की तरह एक साथ उठाता हुआ गमन करता है, उसी प्रकार भावितात्मा अनगार भी ऐसे रूपों की विकुर्वणा करके आकाशमें उड़ सकता है ? हां,···। शेष···। भगवन् ! जैसे कोई हंस एक तीर से दूसरे तीर पर क्रीड़ा करता हुआ जाता है, उसी प्रकार क्या भावितात्मा अनगार भी हंसके समान विकुर्वणा करके आकाश में उड़ सकता है ? हां,···। शेष···। भगवन् ! जैसे कोई समुद्रवायस(समुद्रका कौआ) एक कल्लोल का उल्लंघन करता हुआ दूसरी कल्लोल (तरंग–लहर) पर जाता है, उसी प्रकार क्या भावितात्मा अनगार भी विकुर्वणा करके आकाश में गमन कर सकता है ? हां,···।

भगवन् ! जैसे कोई पुरुष हाथ में चक्र लेकर जाता है, उसी प्रकार क्या भावितात्मा अनगार भी चक्रकृत्य को हस्तगत करके (तदनुसार विकुर्वणा करके) आकाश में उड़ सकता है ? हां, गौतम ! शेष सभी पूर्व कथित रज्जुबद्ध घटिका के समान जानना चाहिये। इसी प्रकार छत्र और चामर का भी कहना चाहिये। भगवन् ! जैसे कोई पुरुष रत्न लेकर गमन करता है, उसी प्रकार वज्र, वैडूर्य यावत् रिष्टरत्न, तथा उत्पल और पद्म यावत् कोई पुरुष सहस्रपत्र हाथ में लेकर गमन करता है, उसी प्रकार क्या भावितात्मा अनगार भी स्वयं ऐसे रूपों की विकुर्वणा करके आकाश में उड़ सकता है ? हां, गौतम ! उसी प्रकार जानना चाहिये।

भगवन् ! जैसे कोई पुरुष कमल की डण्डी को तोड़ता हुआ गमन करता है, उसी प्रकार क्या भावितात्मा अनगार भी स्वयं इस प्रकार की विकुर्वणा कर आकाश में उड़ सकता है ? हां, गौतम ! शेष पूर्ववत्। भगवन् ! जैसे कोई मृणालिका (नलिनी) अपने शरीर को पानी में डुबाती और मुख बाहर रखती हुई रहती है, क्या भावितात्मा अनगार भी उसी प्रकार की विकुर्वणा करके आकाश में उड़ सकता है ? हां, गौतम ! शेष सभी वागुलीकी तरह जानना चाहिये। भगवन् !

जैसे कोई वन-खण्ड हो, जो काला, काले प्रकाश वाला, यावत् मेघ के समूहवत् प्रसन्नता देने वाला यावत् दर्शनीय हो, क्या उसी प्रकार भावितात्मा अनगार भी स्वयं उस वन-खण्ड के समान विकुर्वणा करके आकाश में उड़ सकता है ? हां, गौतम ! शेष पूर्ववत् । भगवन् ! जैसे कोई पुष्करणी हो, जो चतुष्कोण, समतीर, अनुक्रम से सुशोभित यावत् पक्षियों के मधुर शब्दों से युक्त, प्रसन्नता देने वाली, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप हो, क्या उसी प्रकार भावितात्मा अनगार भी उस पुष्करणी के समान विकुर्वणा करके आकाश में उड़ सकता है । हां, गौतम ! उड़ सकता है ।

भगवन् ! भावितात्मा अनगार पूर्वोक्त पुष्करणी के समान कितने रूपों की विकुर्वणा करने में समर्थ है ? गौतम ! शेष पूर्ववत् जानना चाहिये । परन्तु सम्प्राप्ति द्वारा इतने रूपों की विकुर्वणा की नहीं, करता नहीं और करेगा भी नहीं । भगवन् ! पूर्वोक्त रूपों की विकुर्वणा मायी अनगार करता है या अमायी (माया रहित) अनगार करता है ? गौतम ! मायी अनगार विकुर्वणा करता है, अमायी अनगार विकुर्वणा नहीं करता । मायी अनगार उस विकुर्वणा रूप प्रमाद-स्थान की आलोचना और प्रतिक्रमण किये बिना काल कर जाय, तो उसे आराधना नहीं होती, इत्यादि तीसरे शतक के चौथे उद्देशक के अनुसार यावत् आलोचना और प्रतिक्रमण करले तो उसको 'आराधना होती है'-तक कहना चाहिये । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है । ···ऐसा कह कर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ॥४९७॥

॥ तेरहवें शतक का नौवां उद्देशक समाप्त ॥

शतक १३ उद्देशक १०—छाद्मस्थिक समुद्घात

भगवन् ! छाद्मस्थिक समुद्घात कितनी कही गई हैं ? गौतम !···छह कही···। यथा—वेदनास०, इत्यादि प्रज्ञापना सूत्र के छत्तीसवें 'समुद्घात' पद के अनुसार यावत् आहारक स० तक कहनी चाहिये । हे भगवन् !···यावत् विचरते हैं ॥४९८॥

॥ तेरहवें शतक का दसवां उद्देशक समाप्त ॥

॥ तेरहवां शतक समाप्त ॥

शतक १४

१ चरम शब्द सहित होने से प्रथम उद्देशक का नाम चरम उद्देशक है, २ 'उन्माद' अर्थ का प्रतिपादक होनेसे दूसरा 'उन्माद' उद्देशक है, ३ शरीर शब्दोपलक्षित होनेसे तीसरा शरीरोद्देशक है, ४ पुद्गलका अर्थ प्रतिपादन करनेसे चौथा

पुद्गलोद्देशक है, ५ अग्निशब्दोपलक्षित होने से पांचवां अग्नि उद्देशक है, ६ 'किमाहार' (किस दिशा का आहार वाला होता है) प्रश्न युक्त होनेसे छठा 'किमाहारोद्देशक' है, ७ 'चिरसंसिट्ठो सि गोयमा !' इस पदमें आए संश्लिष्ट शब्द युक्त होने से सातवां 'संश्लिष्ट' उद्देशक है, ८ नरकपृथ्वीके 'अंतर' का प्रतिपादन करनेसे आठवां अन्तर उद्देशक है, ९ प्रारम्भमें 'अनगार' पद होनेसे नौवां अनगार उद्देशक है और १० प्रारम्भ में 'केवली' पद होनेसे दसवां केवली उद्देशक है। इस प्रकार चौदहवें शतकमें दस उद्देशक हैं।

उद्देशक १— चरम-परम के मध्य की गति०

राजगृह नगर में गौतमस्वामीने इस प्रकार पूछा—भगवन् ! कोई भावितात्मा अनगार—जिसने चरम (पूर्ववर्ती) सौधर्मादि देवलोक का उल्लंघन कर दिया और परम (परभागवर्ती) सनत्कुमारादि देवलोक को प्राप्त नहीं हुआ, इस मध्यमें ही यदि वह काल कर जाय, तो उसकी कौन-सी गति होती है ? कहां उपपात होता है ? गौतम ! चरम देवावास और परम देवावासके निकट उस लेश्यावाला जो देवावास है, वहां उसकी गति होती है, वहां उसका उपपात होता है। वहां जाकर यह अनगार यदि पूर्व लेश्याको छोड़ता है, तो कर्म-लेश्या (भाव-लेश्या) से ही गिरता है और यदि वहां जाकर उस लेश्याको नहीं छोड़ता है, तो वह उसी लेश्या का आश्रय कर रहता है।

भगवन् ! कोई भावितात्मा अनगार जो चरम असुरकुमारावासका उल्लंघन कर गया और परम असुरकुमारावासको प्राप्त नहीं हुआ, यदि इसके बीचमें ही वह काल कर जाय, तो कहां जाता है, कहां उत्पन्न होता है ? गौतम ! इसी प्रकार जानना चाहिये और इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमारावास ज्योतिष्कावास और वैमानिकावास पर्यन्त—यावत् 'विचरते हैं' तक कहना चाहिये ।।४६६।।

भगवन् ! नैरयिक जीवों की शीघ्रगति किस प्रकार की कही गई है और उनकी शीघ्रगतिका विषय कैसा कहा गया है ? गौतम ! जैसे कोई बलिष्ठ, युगवान् (सुषम-दुषमादि काल में उत्पन्न हुआ विशिष्ट बल वाला) यावत् निपुण पुरुष, शिल्पशास्त्रका ज्ञाता हो, वह अपने संकुचित हाथको शीघ्रतासे पसारे (फैलावे) और पसारे हुए हाथको संकुचित करे, खुली हुई मुट्ठी बन्द करे और बन्द मुट्ठी खोले, खुली हुई आंख बन्द करे और बन्द आंख उघाड़े, तो हे भगवन् ! नैरयिक जीवों की इस प्रकारकी शीघ्रगति और शीघ्रगतिका विषय होता है ? हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, क्योंकि नैरयिक जीव एक समय की (ऋजुगति से), दो या तीन समय की विग्रहगतिसे उत्पन्न होते हैं। गौतम ! नैरयिक जीवोंकी इस प्रकारकी शीघ्रगति और शीघ्रगतिका विषय कहा गया है। इसी प्रकार यावत् वैमानिकों

तक जानना चाहिये। विशेषता यह है कि एकेन्द्रियोंमें उत्कृष्ट चार समयकी विग्रहगति कहनी चाहिये। शेष सभी पूर्ववत् जानना चाहिये ॥५००॥

भगवन्! नैरयिक अनन्तरोपपन्नक हैं, परम्परोपपन्नक हैं अथवा अनन्तर-परम्परानुपपन्नक हैं? गौतम! नैरयिक अनन्तरोपपन्नक भी हैं, परम्परोपपन्नक भी हैं और अनन्तर-परम्परानुपपन्नक भी हैं। भगवन्! इस विविधताका क्या कारण है? गौतम! जिन नैरयिकों को उत्पन्न हुए अभी प्रथम समय ही हुआ है, (उत्पत्तिमें एक समयादिका अन्तर नहीं पड़ा) उनको अनन्तरोपपन्नक कहते हैं? जिन नैरयिकों को उत्पन्न हुए दो, तीन आदि समय हो गये हैं (प्रथम समयके सिवाय द्वितीयादि समय हो गये हैं) उन्हें 'परम्परोपपन्नक' कहते हैं और जो नैरयिक जीव नरकमें उत्पन्न होनेके लिये विग्रहगतिमें चल रहे हैं, उनको 'अनन्तरपरम्परानुपपन्नक' कहते हैं। इस कारण हे गौतम! नैरयिक जीव यावत् अनन्तरपरम्परानुपपन्नक हैं। इस प्रकार निरन्तर यावत् वैमानिक तक कहना चाहिये। भगवन्! अनन्तरोपपन्नक नैरयिक, नैरयिकका आयुष्य बांधते हैं, तिर्यंचका आयुष्य बांधते हैं, मनुष्यका आयुष्य बांधते हैं या देवका आयुष्य बांधते हैं? गौतम! नैरयिकका आयुष्य नहीं बांधते यावत् देवका आयुष्य भी नहीं बांधते। भगवन्! परम्परोपपन्नक नैरयिक, नैरयिक का आयुष्य बांधते हैं, यावत् देव का आयुष्य बांधते हैं? गौतम! वे नैरयिकका आयुष्य नहीं बांधते, तिर्यंच या मनुष्य का आयुष्य बांधते हैं। देवताका आयुष्य भी नहीं बांधते। भगवन्! अनन्तरपरम्परा-नुपपन्नक नैरयिक, नैरयिकका आयुष्य बांधते हैं, इत्यादि प्रश्न। गौतम! वे नैरयिक यावत् देवमें से किसीका भी आयुष्य नहीं बांधते। इसी प्रकार यावत् वैमानिकों तक कहना चाहिये। विशेषता यह है कि परम्परोपपन्नक पंचेन्द्रिय-तिर्यंचयोनिक और मनुष्य चारों प्रकारका आयुष्य बांधते हैं। शेष सभी पूर्ववत् कहना चाहिये।

भगवन्! नैरयिक अनन्तर निर्गत हैं, परम्पर निर्गत हैं या अनन्तरपरम्पर अनिर्गत हैं? गौतम! नैरयिक जीव अनन्तर निर्गत भी होते हैं, परम्पर निर्गत भी होते हैं और अनन्तरपरम्पर निर्गत भी होते हैं। भगवन्! ऐसा क्यों कहा जाता है? गौतम! जिन नैरयिक जीवों को नरक से निकलने का प्रथम समय ही है, वे 'अनन्तर निर्गत' हैं। जिन नैरयिक जीवोंको नरकसे निकले प्रथमसमय व्यतिरिक्त द्वितीयादि समय हो गये हैं, वे 'परम्पर निर्गत' हैं और जो नैरयिक जीव विग्रह-गति समापन्नक हैं, वे 'अनन्तरपरंपर अनिर्गत' हैं। इस कारण हे गौतम! ऐसा कहा गया है कि नैरयिक जीव यावत् 'अनन्तरपरम्पर अनिर्गत हैं'। इसी प्रकार यावत् वैमानिकों तक कहना चाहिये।

भगवन्! अनन्तर निर्गत नैरयिक जीव नरकायुष्य बांधते हैं, यावत्

देवायुष्य बांधते हैं ? गौतम ! वे नरकायुष्य नहीं बांधते यावत् देवायुष्य भी नहीं बांधते । भगवन् ! परम्परनिर्गत नैरयिक नरकायुष्य बांधते हैं, इत्यादि प्रश्न । गौतम ! वे नरकायुष्य भी बांधते हैं···और देवायुष्य भी बांधते हैं । भगवन् ! अनंतर-परम्पर अनिर्गत नैरयिक क्या नरकायुष्य बांधते हैं, इत्यादि प्रश्न । गौतम ! वे नरकायुष्य नहीं बांधते यावत् देवायुष्य भी नहीं बांधते । इसी प्रकार शेष सभी यावत् वैमानिक तक कहना चाहिये। भगवन् ! नैरयिक जीव अनन्तर खेदोपपन्न हैं, परम्पर खेदोपपन्न हैं या अनन्तरपरम्पर खेदानुपपन्न हैं ? गौतम ! नैरयिक जीव अनन्तर खेदोपपन्न भी हैं, परंपर खेदोपपन्न भी हैं और अनन्तरपरम्पर खेदोपपन्न भी हैं । इसी अभिलाप द्वारा पूर्वोक्त रूपसे चार दण्डक कहने चाहियें । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।···ऐसा कहकर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं।।५०१।।

।। चौदहवें शतक का पहला उद्देशक समाप्त ।।

—०—

शतक १४ उद्देशक २—उन्माद के भेद०

भगवन् ! उन्माद कितने प्रकार का कहा गया है ? गौतम ! उन्माद दो प्रकार···। यथा—यक्षावेश से और मोहनीय कर्म के उदय से होने वाला। इन दोनों में से जो यक्षावेश रूप उन्माद है, वह सुखपूर्वक वेदा जा सकता है और सुखपूर्वक छुड़ाया जा सकता है। मोहनीय कर्मके उदयसे होने वाला उन्माद दुःखपूर्वक वेदा जाता है और दुःखपूर्वक ही छुड़ाया जा सकता है। भगवन् ! नैरयिक जीवोंके कितने प्रकार का उन्माद कहा गया है ? गौतम ! उनके दो प्रकार का उन्माद कहा गया है, यथा–यक्षावेश रूप उन्माद और मोहनीय कर्मके उदयसे होने वाला उन्माद । भगवन् ! ऐसा क्यों कहा गया ? गौतम ! कोई देव यदि नैरयिक जीवों पर अशुभ पुद्गलों का प्रक्षेप करता है, तो उन अशुभ पुद्गलोंके प्रक्षेपसे वह नैरयिक जीव यक्षावेश रूप उन्मादको प्राप्त होता है और मोहनीय कर्मके उदयसे मोहनीथ कर्मजन्य उन्मादको प्राप्त होता है। इस कारण हे गौतम ! दो प्रकार का उन्माद कहा गया है।

भगवन् ! असुरकुमारोंको कितने प्रकारका उन्माद कहा गया है ? गौतम ! नैरयिकोंके समान दो प्रकारका उन्माद कहा गया है । विशेपता यह है कि उनसे महर्द्धिक देव उन असुरकुमारों पर अशुभ पुद्गलों का प्रक्षेप करता है, उन अशुभ पुद्गलोंके प्रक्षेपसे वे यक्षावेश रूप उन्माद को प्राप्त होते हैं और मोहनीय कर्मके उदयसे मोहनीय कर्मजन्य उन्माद को प्राप्त होते हैं। शेप सब पूर्ववत् । इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमारों तक कहना चाहिये । पृथ्वीकायिकसे लेकर मनुष्यों तक नैरयिकोंके समान कहना चाहिये । जिस प्रकार असुरकुमारोंके विपयमें कहा, उसी प्रकार वाणव्यन्तर, ज्योतिपी और वैमानिकोंके विपयमें भी कहना चाहिये ।।५०२।।

भगवन् ! कालवर्षी (काल—समय पर बरसने वाला) मेघ वृष्टिकाय (जल समूह)वरसाता है ? हां, गौतम ! वरसाता है । भगवन् ! जब देवेन्द्र देवराज शक्र वृष्टि करनेकी इच्छा वाला होता है, तब वह किस प्रकार वृष्टि करता है ? गौतम ! जब देवेन्द्र देवराज शक्र वृष्टि करनेकी इच्छा वाला होता है, तब आभ्यन्तर परिषद्के देवों को बुलाता है, बुलाये हुए वे आभ्यन्तर परिषद्के देव मध्यम परिषद्के देवोंको बुलाते हैं, वे मध्यम परिषद्के देव बाह्य परिषद्के देवोंको बुलाते हैं। बाह्य परिषद्के देव बाह्य बाह्य (बाहर-बाहर)के देवोंको बुलाते हैं। वे बाह्य-बाह्य देव आभियोगिक देवोंको बुलाते हैं । वे आभियोगिक देव वृष्टिकायिक देवों को बुलाते हैं । तत्पश्चात् वे वृष्टिकायिक देव वृष्टि करते हैं । इस प्रकार हे गौतम ! देवेन्द्र देवराज शक्र वृष्टि करता है ।

भगवन् ! असुरकुमार देव भी वृष्टि करते हैं ? हां, गौतम करते हैं । भगवन् ! असुरकुमार देव वृष्टि क्यों करते हैं ? गौतम ! अरिहन्त भगवन्तोंके जन्म-महोत्सव, निष्क्रमण-महोत्सव, ज्ञानोत्पत्ति-महोत्सव और निर्वाण-महोत्सव के अवसर पर असुरकुमार देव वृष्टि करते हैं । इसी प्रकार नागकुमार यावत् स्तनितकुमारों तक कहना चाहिये । वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देवों के विषय में भी इसी प्रकार कहना चाहिये ।।५०३।।

भगवन् ! जब देवेन्द्र देव-राज ईशान तमस्काय करनेकी इच्छा करता है, तब किस प्रकार करता है ? गौतम ! जब देवेन्द्र देवराज ईशान तमस्काय करने की इच्छा करता है, तब आभ्यन्तर परिषद् के देवों को बुलाता है । वे आभ्यन्तर परिषद् के देव मध्यम परिषद् को बुलाते हैं, इत्यादि वर्णन शक्र वर्णन के समान जानना चाहिये, यावत् वे आभियोगिक देव तमस्कायिक देवोंको बुलाते हैं, और वे तमस्कायिक देव तमस्काय करते हैं। हे गौतम ! इस प्रकार देवेन्द्र देवराज ईशान तमस्काय करता है । भगवन् ! असुरकुमार देव भी तमस्काय करते हैं ? हां, गौतम ! करते हैं । भगवन् ! असुरकुमार देवों के तमस्काय करनेके कौनसे कारण हैं ?—

गौतम ! क्रीड़ा और रतिके निमित्त, शत्रुको विस्मित करने के निमित्त, छिपाने योग्य धन की रक्षा के लिए और अपने शरीरको प्रच्छादित करनेके लिए असुरकुमार देव भी तमस्काय करते हैं । इसी प्रकार यावत् वैमानिकों तक कहना चाहिये । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।······ऐसा कह कर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ।।५०४।।

।। चौदहवें शतक का दूसरा उद्देशक समाप्त ।।

—०—

शतक १४ उद्देशक ३—अनगार की अवगणना करने वाले देव०

भगवन् ! क्या महाकाय (बड़े परिवार वाला) और महाशरीर (बड़े शरीर वाला) देव भावितात्मा अनगारके बीचमें होकर जाता है ? गौतम ! कोई जाता है और कोई नहीं जाता। भगवन् ! ऐसा क्यों होता है ? गौतम ! देव दो प्रकार के कहे गये हैं, तद्यथा–मायीमिथ्यादृष्टिउपपन्नक और अमायी-समदृष्टि उपपन्नक। मायी मिथ्यादृष्टि उपपन्नक देव भावितात्मा अनगार को देखकर भी वन्दना नमस्कार नहीं करता और कल्याणकारी, मंगलकारी, देवतुल्य, ज्ञानवान् नहीं समझता यावत् पर्युपासना नहीं करता। इसलिये वह देव भावितात्मा अनगार के मध्य में होकर चला जाता है और अमायी-समदृष्टि उपपन्नक देव भावितात्मा अनगार को देखकर वन्दना नमस्कार करता है यावत् पर्युपासना करता है। वह भावितात्मा अनगार के मध्य में होकर नहीं जाता। इस कारण हे गौतम ! ऐसा कहा गया है कि कोई देव जाता है और कोई नहीं जाता। भगवन् ! महाकाय (बड़े परिवार वाला) और महाशरीर (बड़े शरीर वाला) असुरकुमार देव भावितात्मा अनगारके मध्यमें होकर जाता है ? गौतम ! पूर्ववत् जानना चाहिये। इस प्रकार देव-दण्डक यावत् वैमानिकों तक कहना चाहिये ॥५०५॥

भगवन् ! क्या नैरयिक जीवों में सत्कार, सम्मान, कृतिकर्म, अभ्युत्थान, अंजलि-प्रग्रह, आसनाभिग्रह, आसनानुप्रदान, सम्मुख जाना, बैठे हुए आदरणीय पुरुषकी सेवा करना और जब वे उठकर जायं, तब कुछ दूर तक उनके पीछे जाना, इत्यादि विनय है ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं। अर्थात् नैरयिकमें सत्कार आदि विनय नहीं है। भगवन् ! असुरकुमार देवोंमें सत्कार, सम्मान यावत् अनुगमन आदि विनय है ? हां, गौतम है। इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमारों तक कहना चाहिये। जिस प्रकार नैरयिकोंके लिए कहा, उसी प्रकार पृथ्वीकायिक से लेकर यावत् चतुरिन्द्रिय जीवों तक कहना चाहिये।

भगवन् ! पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च-योनिक जीवों में सत्कार यावत् अनुगमन इत्यादि विनय है ? हां गौतम ! है, परन्तु आसनाभिग्रह (आसन देना) और आसनानुप्रदान (आसन को एक स्थान से दूसरे स्थान ले जाना) रूप विनय नहीं होता। जिस प्रकार असुरकुमारोंके विषयमें कहा, उसी प्रकार मनुष्य यावत् वैमानिकों तक कहना चाहिये ॥ ५०६॥

भगवन् ! अल्पऋद्धि वाला देव महाऋद्धि वाले देव के मध्य में होकर जा सकता है ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं। भगवन् ! समर्द्धिक (समान ऋद्धि वाला) देव समानऋद्धि वाले देवके मध्यमें होकर जा सकता है ?…नहीं। यदि वह समान ऋद्धिवाला देव प्रमत्त (असावधान) हो, तो जा सकता है। भगवन् !

मध्यमें होकर जाने वाला देव शस्त्रका प्रहार कर के जा सकता है या विना प्रहार किये ही जा सकता है ? गौतम ! शस्त्र का प्रहार करके जा सकता है, प्रहार किये विना नहीं जा सकता ।

भगवन् ! वह देव पहले शस्त्रका प्रहार करता है और पीछे जाता है, या पहले जाता है और पीछे शस्त्रका प्रहार करता है ? गौतम ! पहले शस्त्रका प्रहार करता है और पीछे जाता है। ऐसा नहीं होता कि पहले जाता है और पीछे प्रहार करता है । इस प्रकार इस अभिलाप द्वारा दसवें शतकके 'आइड्ढिय' नामक तीसरे उद्देशकके अनुसार सम्पूर्ण रूपसे चारों दण्डक यावत् 'महाऋद्धि वाली वैमानिक देवी के मध्यमें होकर जा सकती है'–तक कहना चाहिये ।। ५०७।।

भगवन् ! रत्नप्रभा पृथ्वीके नैरयिक किस प्रकारके पुद्गल परिणामका अनुभव करते हैं ? गौतम ! वे अनिष्ट यावत् अमनाम (मनके प्रतिकूल) पुद्गल परिणामका अनुभव करते हैं । इसी प्रकार यावत् अधःसप्तम पृथ्वीके नैरयिकों तक कहना चाहिये । इसी प्रकार यावत् वेदना परिणामका भी अनुभव करते हैं, इत्यादि जीवाभिगम सूत्रकी तीसरी प्रतिपत्तिके दूसरे उद्देशक के अनुसार कहना चाहिये, यावत्–भगवन् ! अधःसप्तम पृथ्वीके नैरयिक किस प्रकारकी परिग्रह-संज्ञा परिणामका अनुभव करते हैं ? गौतम ! वे अनिष्ट यावत् अमनाम परिग्रह-संज्ञा परिणामका अनुभव करते हैं । हे भगवन ! यह इसी प्रकार है।······–ऐसा कहकर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ।।५०८।।

।। चौदहवें शतक का तीसरा उद्देशक समाप्त ।।

शतक १४ उद्देशक ४-पुद्गल के वर्णादि परिवर्तन०

भगवन् ! यह पुद्गल (परमाणु या स्कन्ध) अनन्त, अपरिमित और शाश्वत अतीत-कालमें एक समय तक रूक्ष स्पर्श वाला रहा, एक समय तक अरूक्ष अर्थात् स्निग्ध स्पर्श वाला और एक समय तक रूक्ष और स्निग्ध दोनों प्रकारके स्पर्श वाला रहा ? पहले करण अर्थात् प्रयोग करण और विस्रसा करणके द्वारा अनेक वर्ण और अनेक रूप वाले परिणाम से परिणत हुआ और उस अनेक वर्ण आदि परिणाम के क्षीण होने पर वह पुद्गल एक वर्ण वाला और एक रूप वाला रहा था ? हां, गौतम ! यह पुद्गल अतीत काल में इत्यादि यावत् 'एक रूप वाला था' -तक कहना चाहिये । भगवन् ! यह पुद्गल (परमाणु या स्कन्ध) शाश्वत वर्तमान काल में, इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न । गौतम ! पूर्वानुसार जानना चाहिये । इसी प्रकार अनंत अनागत कालके विषयमें भी जानना चाहिये। भगवन् ! यह स्कन्ध अनन्त, शाश्वत, अतीत-कालमें इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न ? गौतम ! जिस

प्रकार पुद्गलके विषयमें कहा, उसी प्रकार स्कन्धके विषयमें भी कहना चाहिये ॥५०६॥

भगवन् ! यह जीव अनन्त और शाश्वत अतीत काल में एक समय में दुःखी एक समय में अदुःखी (सुखी) तथा एक समयमें दुःखी और सुखी था और प्रथम करण (प्रयोग-करण) और विस्रसा करण द्वारा अनेक भाव वाले और अनेक रूप वाले परिणामसे परिणत हुआ था ? इसके पश्चात् वेदनीय एवं ज्ञानावरणीयादि कर्मों की निर्जरा होने पर जीव एक भाग वाला और एक रूप वाला था ? हां, गौतम ! यह जीव यावत् एक रूप वाला था । इसी प्रकार शाश्वत वर्तमान कालमें तथा अनन्त और शाश्वत भविष्यत्कालके विषय में भी कहना चाहिये ॥५१०॥

भगवन् ! परमाणु-पुद्गल शाश्वत है या अशाश्वत ? गौतम ! कथंचित् शाश्वत् और कथंचित् अशाश्वत है । भगवन् ! इसका क्या कारण है ? गौतम ! द्रव्यार्थ रूप से परमाणु-पुद्गल शाश्वत है और वर्णपर्याय यावत् स्पर्श पर्यायों द्वारा अशाश्वत है । इस कारण हे गौतम ! ऐसा कहा गया है कि परमाणु-पुद्गल कथंचित् शाश्वत और कथंचित् अशाश्वत है ॥ ५११ ॥

भगवन् ! परमाणु-पुद्गल चरम है या अचरम ? गौतम ! परमाणु-पुद्गल द्रव्य की अपेक्षा चरम नहीं, अचरम है । क्षेत्रादेश से कदाचित् चरम और कदाचित् अचरम है । कालादेश से कदाचित् चरम और कदाचित् अचरम है और भावादेश से भी कथंचित् चरम है और कथंचित् अचरम है ॥ ५१२ ॥

भगवन् ! परिणाम कितने प्रकार का कहा गया है ? गौतम ! परिणाम दो प्रकार का कहा गया है । यथा–जीव परिणाम और अजीव परिणाम । इस प्रकार यहां प्रज्ञापना सूत्र का तेरहवां परिणाम-पद सम्पूर्ण कहना चाहिये । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।···ऐसा कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं ॥ ५१३ ॥

॥ चौदहवें शतक का चौथा उद्देशक समाप्त ॥

शतक १४ उद्देशक ५—जीवों का अग्नि-प्रवेश०

भगवन् ! नारक जीव अग्निकाय के बीच में होकर जा सकता है ? गौतम ! कोई नैरयिक जा सकता है और कोई नहीं जा सकता । भगवन् ! ऐसा क्यों कहा गया ? गौतम ! नैरयिक दो प्रकार के कहे गये हैं । यथा–विग्रहगति समापन्नक (एक गति से दूसरी गति में जाते हुए) और अविग्रह-गति-समापन्नक (उत्पत्ति

क्षेत्र को प्राप्त हुए)। इनमें से जो विग्रहगति समापन्नक हैं, वे अग्नि के मध्य में होकर जा सकते हैं। भगवन्! क्या वे अग्नि से जलते हैं? गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं, क्योंकि उन पर अग्नि रूप शस्त्र असर नहीं करता। जो अविग्रह-गति-समापन्नक हैं, वे अग्निकाय के मध्य में होकर नहीं जा सकते, क्योंकि नरक में बादर अग्नि नहीं होती। इसलिए हे गौतम! ऐसा कहा गया है कि कोई नैरयिक जा सकता है और कोई नहीं जा सकता।

भगवन्! असुरकुमार देव अग्निके मध्यमें होकर जा सकते हैं? गौतम! कोई जा सकते हैं और कोई नहीं जा सकते। भगवन्! इसका क्या कारण है? गौतम! असुरकुमार दो प्रकारके कहे गये हैं। यथा-विग्रह गति समापन्नक और अविग्रह गति समापन्नक। जो विग्रह गति समापन्नक असुरकुमार हैं,वे नैरयिकोंके समान हैं यावत् 'उन पर अग्नि-शस्त्र असर नहीं करता'। जो अविग्रह गति समापन्नक असुरकुमार हैं, उनमें से कोई अग्नि के मध्य में होकर जा सकता है और कोई नहीं जा सकता। जो अग्नि के मध्य में जाता है वह जलता है? यह अर्थ समर्थ नहीं। क्योंकि उस पर अग्नि आदि शस्त्र असर नहीं करता। इस कारण हे गौतम! ऐसा कहा गया है कि कोई असुरकुमार जा सकता है और कोई नहीं जा सकता। इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमारों तक कहना चाहिये। एकेन्द्रियों के विषय में नैरयिकों के समान कहना चाहिये।

भगवन्! बेइन्द्रिय जीव अग्निकाय के मध्य में होकर जाते हैं? जिस प्रकार असुरकुमारों के विषय में कहा, उसी प्रकार बेइन्द्रियों के विषयमें कहना चाहिए। परन्तु इतनी विशेषता है कि—'जो बेइन्द्रिय जीव अग्निके बीचमें होकर जाते हैं, वे जलते हैं?' हां, वे जल जाते हैं। शेष सभी पूर्ववत् यावत् चतुरिन्द्रिय तक कहना चाहिये। भगवन्! पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च-योनिक जीव अग्नि के मध्य में होकर जाते हैं? गौतम! कोई जाता है और कोई नहीं जाता।

भगवन! क्या कारण है? गौतम! पंचेन्द्रिय तिर्यच-योनिक दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा–विग्रहगति-समापन्नक और अविग्रहगति-समापन्नक। जो विग्रह-गति-समापन्नक पञ्चेन्द्रिय तिर्यच-योनिक हैं, उनका कथन नैरयिक की तरह जानना चाहिए यावत् उन पर शस्त्र असर नहीं करता। जो अविग्रहगति-समापन्नक पंचेन्द्रिय तिर्यचयोनिक हैं, वे दो प्रकारके कहे गये हैं। यथा–ऋद्धि प्राप्त (वैक्रिय लब्धि युक्त) और ऋद्धि अप्राप्त (वैक्रिय लब्धि रहित)। जो पंचेन्द्रिय तिर्यंच-योनिक ऋद्धि प्राप्त हैं, उनमें से कोई अग्नि में होकर जाता है और कोई नहीं जाता। जो जाता है क्या वह जलता है? यह अर्थ समर्थ नहीं। उन पर शस्त्र असर नहीं करता। ऋद्धि अप्राप्त पंचेन्द्रिय तिर्यच-योनिकों में से कोई अग्नि में होकर जाता है और कोई नहीं जाता। जो जाता है क्या वह जलता है? हां, जलता है। इस कारण हे गौतम!

ऐसा कहा गया है कि—कोई अग्नि······नहीं जाता । इसी प्रकार मनुष्य के विषय में भी कहना चाहिये । असुरकुमारों के समान वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिकों के विषय में भी कहना चाहिये ।। ५१४ ।।

नैरयिक जीव दस स्थानों का अनुभव करते हैं । यथा—१ अनिष्ट शब्द, २ अनिष्ट रूप, ३ अनिष्ट गन्ध, ४ अनिष्ट रस, ५ अनिष्ट स्पर्श, ६ अनिष्ट गति, ७ अनिष्ट स्थिति, ८ अनिष्ट लावण्य, ९ अनिष्ट यशःकीर्त्ति और १० अनिष्ट उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषकार-पराक्रम । असुरकुमार दस स्थानों का अनुभव करते हैं । यथा—१ इष्ट शब्द, २ इष्ट रूप, यावत् १० इष्ट उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषकार-पराक्रम । इस प्रकार यावत् स्तनितकुमारों तक कहना चाहिये । पृथ्वीकायिक जीव छह स्थानों का अनुभव करते हैं । १ इष्टानिष्ट स्पर्श, २ इष्टानिष्ट गति, यावत् ६ इष्टानिष्ट उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषकार-पराक्रम । इसी प्रकार यावत् वनस्पतिकायिक जीवों तक कहना चाहिये ।

बेइन्द्रिय जीव सात स्थानोंका अनुभव करते हैं–१इष्टानिष्ट रस, इत्यादि शेष एकेन्द्रियोंके समान कहना चाहिये । तेइन्द्रिय जीव आठ स्थानों का अनुभव करते हैं । यथा–१ इष्टानिष्ट गन्ध, शेष बेइन्द्रियों के समान कहना चाहिये । चतुरिन्द्रिय जीव नौ स्थानों का अनुभव करते हैं । यथा–१ इष्टानिष्ट रूप, शेष तेइन्द्रिय जीवों के समान कहना चाहिये । पंचेन्द्रिय तिर्यंच-योनिक जीव दस स्थानों का अनुभव करते हैं । यथा—१ इष्टानिष्ट शब्द यावत् १० इष्टानिष्ट उत्थान, कर्म, बल वीर्य, पुरुषकार-पराक्रम । इसी प्रकार मनुष्योंके विषयमें भी कहना चाहिए । असुरकुमारों के समान वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिकों तक कहना चाहिए ।। ५१५ ।।

भगवन् ! महर्द्धिक यावत् महासुख वाला देव बाहरके पुद्गलोंको ग्रहण किये बिना तिर्च्छे पर्वतको अथवा तिर्च्छी भींतको उल्लंघने (एक बार उल्लंघने) में और प्रलंघने (बार-बार उल्लंघन करने) में समर्थ है ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं । भगवन् ! महर्द्धिक यावत् महासुख वाला देव बाहरके पुद्गलोंको ग्रहण करके तिर्च्छे पर्वतको या तिर्च्छी भींतको उल्लंघन-प्रलंघन करनेमें समर्थ है ? हां, गौतम ! समर्थ है । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।···ऐसा कहकर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ।। ५१६।।

।।चौदहवें शतक का पांचवां उद्देशक समाप्त ।।

—०—

शतक १४ उद्देशक ६—नैरयिकादि के आहारादि

राजगृह नगर में गौतम स्वामीने यावत् इस प्रकार पूछा—"भगवन् ! नैरयिक जीव किन द्रव्यों का आहार करते हैं ? किस तरह परिणमाते हैं ? उनकी क्या योनि है और उनकी स्थिति का क्या कारण कहा गया है ? गौतम ! नैरयिक जीव पुद्गलोंका आहार करते हैं और उसका पुद्गल रूप परिणाम होता है। उनकी योनि शीत-उष्ण स्पर्श वाली है। आयुष्य कर्मके पुद्गल उनकी स्थिति का कारण हैं। बन्ध द्वारा वे कर्म को प्राप्त हुए हैं। नैरयिकपने के निमित्तभूत कर्म वाले हैं। कर्म-पुद्गल से उनकी स्थिति है और कर्मोंके कारण वे अन्य पर्यायको प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार वैमानिकों तक कहना चाहिये ॥५१७॥

भगवन् ! नैरयिक जीव वीचि द्रव्योंका आहार करते हैं या अवीचि द्रव्यों का ? गौतम ! नैरयिक जीव वीचि द्रव्योंका भी आहार करते हैं और अवीचि द्रव्यों का भी। भगवन् ! ऐसा क्यों कहा गया ? गौतम ! जो नैरयिक एक प्रदेश भी न्यून द्रव्योंका आहार करते हैं, वे वीचि द्रव्योंका आहार करते हैं और जो परिपूर्ण द्रव्योंका आहार करते हैं, वे अवीचि द्रव्योंका आहार करते हैं। इस कारण हे गौतम ! ऐसा कहा गया है कि नैरयिक जीव वीचि द्रव्योंका भी आहार करते हैं और अवीचि द्रव्यों का भी। इसी प्रकार यावत् 'वैमानिक' तक कहना चाहिये ॥५१८॥

भगवन् ! देवेन्द्र देवराज शक्र भोगने योग्य मनोज्ञ स्पर्शादि भोगोंको भोगने की इच्छा करता है, तब वह किस प्रकार भोगता है ? गौतम ! उस समय देवेन्द्र देवराज शक्र एक महान् चक्र के समान गोलाकार स्थानकी विकुर्वणा करता है। उसकी लम्बाई चौड़ाई एक लाख योजन और परिधि तीन लाख (तीन लाख सोलह हजार दो सौ सत्ताइस योजन, तीन कोस एक सौ अट्ठाइस धनुष और कुछ अधिक साढ़े तेरह अंगुल) यावत् होती है। उस चक्रके आकार वाले स्थानके ऊपर बराबर बहुसम रमणीय भूमिभाग होता है (वर्णन) यावत् वह 'मनोज्ञ स्पर्श वाला होता है'–तक कहना चाहिये। उस चक्राकार स्थानके ठीक मध्य भाग में एक महान् प्रासादावतंसक (प्रासादोंमें भूषण रूप सुन्दर भवन अर्थात् सभी भवनोंमें श्रेष्ठ भवन) की विकुर्वणा करता है। वह ऊंचाईमें पांच सौ योजन होता है। उसका विष्कम्भ (विस्तार) ढाई सौ योजन होता है। वह प्रासाद अभ्युद्गत (अत्यन्त ऊंचा) और प्रभाके पुञ्जसे व्याप्त होनेसे मानो हंसता हुआ होता है, इत्यादि प्रासाद वर्णन जानना चाहिये, यावत् वह दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप होता है, उस प्रासादावतंसक का ऊपरी भाग पद्म और लताओंके चित्रणसे विचित्र यावत् दर्शनीय होता है। उस प्रासादावतंसकके भीतरका भाग सम और रमणीय होता है, यावत् 'वहां मणियोंका स्पर्श होता है'—तक जानना चाहिये। वहां आठ योजन ऊंची एक मणि-पीठिका होती है, जो वैमानिकों की

मणिपीठिका के समान होती है। उसके ऊपर एक महान् देवशय्याकी विकुर्वणा करता है। उस देवशय्याका वर्णन यावत् 'प्रतिरूप' तक कहना चाहिये। वहां देवेन्द्र देवराज शक्र अपने-अपने परिवार सहित आठ अग्रमहिषियोंके साथ गन्धर्वानीक और नाट्यानीक—इन दो प्रकार की अनीकाओंके साथ जोरसे आहत(वजाये हुए) नाट्य गीत और वादित्रके शब्दों द्वारा यावत् भोगने योग्य दिव्य भोगों को भोगता है।

भगवन्! जब देवेन्द्र देवराज ईशान दिव्य भोग भोगने की इच्छा करता है, तब वह किस प्रकार भोगता है? जिस प्रकार शक्रके लिये कहा है, उसी प्रकार ईशान और सनत्कुमारके विषयमें भी कहना चाहिये। विशेषता यह है कि प्रासादावतंसक की ऊंचाई छह सौ योजन और विस्तार तीन सौ योजन होता है। मणिपीठिका के ऊपर एक महान् सिंहासन अपने परिवार के योग्य आसनों सहित विकुर्वता है, इत्यादि कहना चाहिये। वहां देवेन्द्र देवराज सनत्कुमार बहत्तर हजार सामानिक देवोंके साथ यावत् दो लाख ८८ हजार आत्मरक्षक देवोंके साथ और सनत्कुमार कल्पवासी बहुतसे देव और देवियोंके साथ प्रवृत्त होकर महान् गीत और वादित्र शब्दोंके साथ यावत् भोग भोगता है। सनत्कुमारके समान यावत् प्राणत तथा अच्युत देवलोक तक कहना चाहिये। विशेषतामें जिसका जितना परिवार हो उतना कहना चाहिये। अपने-अपने विमानों की ऊंचाई के बराबर प्रासाद की ऊंचाई और उससे आधा विस्तार कहना चाहिये। यावत् अच्युत देवलोकका प्रासादावतंसक नौ सौ योजन ऊंचा है और चार सौ पचास योजन विस्तृत है। उसमें हे गौतम! देवेन्द्र देव-राज अच्युत दस हजार सामानिक देवों के साथ यावत् भोग भोगता है। शेष सभी पूर्ववत् कहना चाहिये। हे भगवन्! यह इसी प्रकार है।······ऐसा कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं। ॥५१९॥

॥ चौदहवें शतक का छठा उद्देशक समाप्त ॥

शतक १४ उद्देशक ७—भगवान् और गौतमका भवान्तरीय सम्बन्ध०

राजगृह नगरमें यावत् परिषद् धर्मोपदेश श्रवण कर लौट गई। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने--'हे गौतम!' इस प्रकार भगवान् गौतमको सम्बोधित करके इस प्रकार कहा—"गौतम! तू मेरे साथ चिर-संश्लिष्ट है (मेरे साथ, चिर-कालसे स्नेहसे बद्ध है)। गौतम! तू मेरे साथ चिरसंस्तुत है (लम्बे कालके स्नेहसे तूने मेरी प्रशंसा की है)। गौतम! तू मेरे साथ चिरपरिचित है (तेरा मेरे साथ लम्बे समयसे परिचय रहा है)। गौतम! तू मेरे साथ चिरसेवित या चिरप्रीत है

(तूने लम्बे कालसे मेरी सेवा की है अथवा मेरे साथ प्रीति रक्खी है)। गौतम ! तू मेरे साथ चिरानुगत है (चिरकाल से तूने मेरा अनुसरण किया है)। गौतम ! तू मेरे साथ चिरानुवृत्ति है (तेरा मेरे साथ चिरकाल से अनुकूल वर्तात्र रहा है)। हे गौतम ! इस से (पूर्व के) अनन्तर देव-भवमें और उससे अनन्तर मनुष्य-भवमें तेरा मेरे साथ सम्बन्ध था। अधिक क्या कहा जाय, इस भवमें मृत्युके पश्चात् इस शरीरके छूट जाने पर हम दोनों तुल्य (एक सरीखे) और एकार्थ (एक प्रयोजन वाले अथवा एक सिद्धि क्षेत्रमें रहने वाले) विशेषता रहित और किसी प्रकारके भेद-भाव रहित हो जायेंगे ॥५२०॥

भगवन् ! जिस प्रकार हम दोनों इस पूर्वोक्त अर्थको जानते-देखते हैं, तो क्या अनुत्तरौपपातिक देव भी इस अर्थको इसी प्रकार जानते-देखते हैं ? हां......। भगवन् ! क्या कारण है कि जिस प्रकार...... उसी प्रकार अनुत्तरौपपातिक...? गौतम ! अनुत्तरौपपातिक देवोंको अवधिज्ञानकी लब्धिसे मनोद्रव्यकी अनन्त वर्गणाएं ज्ञेय रूपसे उपलब्ध हैं (प्राप्त हैं), अभिसमन्वागत हुई हैं। इस कारण हे गौतम ! ऐसा कहा गया है कि यावत् अनुत्तरौपपातिक देव जानते-देखते हैं ॥५२१॥

भगवन् ! तुल्य कितने प्रकार के कहे गये हैं ? गौतम ! तुल्य छह प्रकार के कहे गये हैं। यथा–१ द्रव्य तुल्य २ क्षेत्र तुल्य ३ काल तुल्य ४ भव तुल्य ५ भाव तुल्य और ६ संस्थान तुल्य। भगवन् ! द्रव्य तुल्य 'द्रव्य तुल्य' क्यों कहलाता है ? गौतम ! एक परमाणु-पुद्गल दूसरे परमाणु-पुद्गल के साथ द्रव्यसे तुल्य है, किन्तु परमाणु-पुद्गलसे व्यतिरिक्त (भिन्न) दूसरे पदार्थोंके साथ परमाणु-पुद्गल द्रव्यसे तुल्य नहीं है। इसी प्रकार एक द्विप्रदेशिक स्कन्ध दूसरे द्विप्रदेशिक स्कन्धके साथ द्रव्यसे तुल्य है, किन्तु द्विप्रदेशिक स्कन्धसे व्यतिरिक्त दूसरे स्कन्ध के साथ द्विप्रदेशिक स्कन्ध द्रव्यसे तुल्य नहीं है। इसी प्रकार यावत् दस प्रदेशिक स्कन्ध तक कहना चाहिये। एक तुल्य संख्यात प्रदेशिक स्कन्ध दूसरे तुल्य संख्यात प्रदेशिक स्कन्ध के साथ तुल्य है, परन्तु तुल्य संख्यात-प्रदेशिक स्कन्ध व्यतिरिक्त दूसरे स्कन्धके साथ तुल्य संख्यात प्रदेशिक स्कन्ध द्रव्य से तुल्य नहीं है। इसी प्रकार तुल्य असंख्यात प्रदेशिक स्कन्ध और तुल्य अनन्त-प्रदेशिक स्कन्ध के विषय में भी जानना चाहिये। इस कारण हे गौतम ! द्रव्य तुल्य 'द्रव्य तुल्य' कहलाता है।

भगवन् ! क्षेत्र तुल्य 'क्षेत्र तुल्य' क्यों कहलाता है ? गौतम ! एक प्रदेशावगाढ़ पुद्गल (आकाश के एक प्रदेश पर रहा हुआ पुद्गल) दूसरे एक प्रदेशावगाढ़ पुद्गल के साथ क्षेत्र से तुल्य कहलाता है। परन्तु एक प्रदेशावगाढ़ व्यतिरिक्त पुद्गल के साथ एक प्रदेशावगाढ़ पुद्गल क्षेत्र से तुल्य नहीं है। इसी प्रकार यावत् दस प्रदेशावगाढ़ पुद्गल का भी कहना चाहिये। तथा एक तुल्य

संख्यात प्रदेशावगाढ़ पुद्गल अन्य तुल्य संख्यात प्रदेशावगाढ़ पुद्गल के साथ तुल्य होता है। इसी प्रकार तुल्य असंख्यात प्रदेशावगाढ़ पुद्गल के विषय में भी कहना चाहिये। इस कारण हे गौतम ! क्षेत्र तुल्य 'क्षेत्र तुल्य' कहलाता है।

भगवन् ! काल तुल्य 'काल तुल्य' क्यों कहलाता है ? गौतम ! एक समय की स्थिति वाला पुद्गल अन्य एक समयकी स्थिति वाले पुद्गलके साथ कालसे तुल्य है, किन्तु एक समयकी स्थिति वाले पुद्गलके अतिरिक्त दूसरे पुद्गलोंके साथ एक समयकी स्थिति वाला पुद्गल कालसे तुल्य नहीं है। इसी प्रकार यावत् तुल्य दस समयकी स्थिति वाले पुद्गल, तुल्य संख्यात समयकी स्थिति वाले पुद्गल और तुल्य असंख्यात समयकी स्थिति वाले पुद्गलके विषयमें भी कहना चाहिये। इस कारण हे गौतम ! कालतुल्य 'कालतुल्य' कहलाता है। भगवन् ! भव तुल्य 'भव तुल्य' क्यों कहलाता है ? गौतम ! नैरयिक जीव अन्य नैरयिक जीवके साथ भव तुल्य है, किन्तु नैरयिक जीवोंके अतिरिक्त तिर्यचादि दूसरे जीवोंके साथ नैरयिक जीव भव तुल्य नहीं है। इसी प्रकार तिर्यचयोनिक, मनुष्य और देवके विषयमें भी कहना चाहिये। इस कारण हे गौतम ! भव तुल्य 'भव तुल्य' कहलाता है।

भगवन् ! भावतुल्य 'भावतुल्य' क्यों कहलाता है ? गौतम ! एक गुण काले वर्ण वाला पुद्गल अन्य एक गुण काले वर्ण वाले पुद्गल के साथ भाव से तुल्य है। परन्तु एक गुण काले वर्ण के सिवाय दूसरे पुद्गलों के साथ एक गुण काले वर्ण वाला पुद्गल भाव से तुल्य नहीं है। इसी प्रकार यावत् दस गुण काला पुद्गल, संख्यात गुण काला पुद्गल, इसी प्रकार असंख्यात गुण काला पुद्गल और इसी प्रकार तुल्य अनन्त गुण काला पुद्गल भी कहना चाहिये। जिस प्रकार काला वर्ण कहा, उसी प्रकार नीला, लाल, पीला और श्वेत वर्ण के विषय में भी कहना चाहिये। इसी प्रकार सुरभिगन्ध और दुरभि-गन्ध इसी प्रकार तिक्त यावत् मधुर रस और इसी प्रकार कर्कश यावत् रूक्ष पुद्गल तक कहना चाहिये। औदयिक भाव औदयिक भाव के साथ तुल्य है, परन्तु औदयिक भाव के सिवाय दूसरे भावों के साथ तुल्य नहीं है। इसी प्रकार औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक तथा पारिणामिक भाव के विषय में भी कहना चाहिये। सान्निपातिक भाव सान्निपातिक भाव के साथ तुल्य है। इस कारण हे गौतम ! भावतुल्य 'भाव तुल्य' कहलाता है।

भगवन् ! संस्थान तुल्य 'संस्थान तुल्य' क्यों कहलाता है ? गौतम ! परिमण्डल संस्थान अन्य परिमण्डल संस्थान के साथ संस्थान तुल्य है, किन्तु दूसरे संस्थानों के साथ संस्थान तुल्य नहीं है। इसी प्रकार वृत्त संस्थान, त्र्यस्र संस्थान, चतुरस्र संस्थान और आयत संस्थान के विषयमें भी कहना चाहिये। एक समचतुरस्र

संस्थान अन्य समचतुरस्र संस्थान के साथ संस्थान तुल्य है, परन्तु समचतुरस्र के अतिरिक्त दूसरे संस्थानों के साथ संस्थान तुल्य नहीं है। इसी प्रकार न्यग्रोधपरिमण्डल यावत् हुण्डक संस्थान तक कहना चाहिये । इस कारण हे गौतम ! संस्थान तुल्य 'संस्थान तुल्य' कहलाता है ।।५२२।।

भगवन् ! भक्तप्रत्याख्यान (आहार का त्याग) करने वाला अनगार मूर्च्छित यावत् अत्यन्त आसक्त होकर आहार करता है और इसके वाद स्वाभाविक रूप से काल करता है ? इसके वाद अमूर्च्छित अगृद्ध यावत् अनासक्त होकर आहार करता है ? हां, गौतम ! भक्तप्रत्याख्यान करने वाला अनगार पूर्वोक्त रूप से आहार करता है। भगवन् ! ऐसा क्यों कहा गया ? गौतम ! भक्तप्रत्याख्यान करने वाला अनगार प्रथम मूर्च्छित यावत् अत्यन्त आसक्त होकर आहार करता है। इसके पश्चात् स्वाभाविक रूप से काल करता है। इसके अनन्तर यावत् आहार के विपय में अमूर्च्छित (राग रहित) होकर आहार करता है। इसलिये हे गौतम ! भक्तप्रत्याख्यान करने वाला अनगार पूर्वोक्त रूप से यावत् आहार करता है ।। ५२३ ।।

भगवन् ! 'लवसत्तम' देव हैं ? हां, गौतम ! हैं। भगवन् ! उन्हें 'लवसत्तम देव' क्यों कहते हैं ? गौतम ! जैसे कोई युवक पुरुप यावत् जो शिल्पकला का ज्ञाता हो, निपुण हो, वह पके हुए, काटने योग्य, पीले पड़े हुए और पीलीनाल (डण्डी) वाले शाली, व्रीहि, गेहूं, जौ और जवजव (एक प्रकार का धान्य विशेष) को हाथसे इकट्ठा करके मुट्ठी में पकड़ कर 'ये काटे'—इस प्रकार शीघ्रतापूर्वक, नवीन धार चढ़ाई हुई तीक्ष्ण दरांती से सात लव (कवलिया) को जितने समय में काट लेता है, हे गौतम ! यदि उन देवों का इतना (सात लव काटे जितना) समय (पूर्वभव का) आयुष्य अधिक होता, तो वे उसी भव में सिद्ध हो जाते, यावत् सभी दुःखों का का अन्त कर देते । इस कारण हे गौतम ! उन-देवोंको 'लवसप्तम' कहते हैं ।। ५२४ ।।

भगवन् ! 'अनुत्तरौपपातिक' देव हैं ? हां, गौतम ! हैं। भगवन् ! वे 'अनुत्तरौपपातिक' देव क्यों कहलाते हैं ? गौतम ! अनुत्तरौपपातिक देवों को अनुत्तर शब्द यावत् अनुत्तर स्पर्श प्राप्त हैं, इस कारण हे गौतम ! उनको यावत् अनुत्तरौपपातिक देव कहते हैं। भगवन् ! कितना कर्म शेप रहने पर वे जीव अनुत्तरौपपातिक देवपने उत्पन्न हुए हैं ? गौतम ! श्रमण निर्ग्रन्थ पष्ठभक्त (वेला) द्वारा जितने कर्मों की निर्जरा करते हैं, उतने कर्म शेप रहने पर साधु अनुत्तरौपपातिकपने उत्पन्न हुए हैं। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।''''ऐसा कहकर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं ।। ५२५ ।।

।। चौदहवें शतकका सातवां उद्देशक समाप्त ।।

शतक १४ उद्देशक ८—पृथ्वियों और देवलोकों का अन्तर

भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी और शर्कराप्रभा पृथ्वी का कितना अबाधा-अन्तर कहा गया है ? गौतम ! असंख्य हजार योजनका अबाधा-अन्तर कहा गया है। भगवन् ! शर्कराप्रभा और वालुकाप्रभा पृथ्वीका कितना अबाधा-अन्तर कहा गया है ? गौतम ! पूर्ववत्, इसी प्रकार यावत् तमःप्रभा और अधः-सप्तम पृथ्वी तक कहना चाहिए। भगवन् ! अधःसप्तम पृथ्वी और अलोकका अबाधा-अन्तर कितना कहा गया है ? गौतम ! असंख्य हजार योजन कहा गया है।

भगवन् ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी और ज्योतिषी देवोंका अबाधान्तर कितना कहा गया है ? गौतम ! ७९० योजनका अबाधान्तर कहा गया है। भगवन् ! ज्योतिषी देवों और सौधर्म-ईशान कल्पों का० ? गौतम ! असंख्यात योजन यावत् अबाधान्तर कहा गया है। भगवन् ! सौधर्म-ईशान कल्प और सनत्कुमार-माहेन्द्र कल्पों का० ? इसी प्रकार जानना चाहिये। भगवन् ! सनत्कुमार,माहेन्द्र और ब्रह्मलोक कल्पका० ? इसी······। भगवन् ! ब्रह्मलोक और लान्तक कल्पका०? इसी···। भगवन् ! लान्तक और महाशुक्र कल्पका अन्तर कितना है ? पूर्ववत्, महाशुक्र और सहस्रार कल्पका अबाधान्तर भी इसी प्रकार जानना चाहिए और सहस्रार और आणत-प्राणत कल्पोंका, आणत-प्राणत कल्प और आरण-अच्युत कल्पों का, आरण-अच्युत और ग्रैवेयक विमानोंका तथा ग्रैवेयक विमानोंसे अनुत्तर विमानोंका अबाधान्तर भी पूर्ववत् जानना चाहिए। भगवन् ! अनुत्तर विमानों का और ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी का० ? गौतम ! बारह योजनका अबाधान्तर कहा गया है। भगवन् ! ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी और अलोकका० ? गौतम ! देशोन योजन (कुछ कम एक योजन) का अबाधान्तर कहा गया है ॥५२६॥

भगवन् ! सूर्य की गर्मी से पीड़ित, तृषासे व्याकुल, दावानलकी ज्वालासे जला हुआ यह शाल वृक्ष काल-मास में (मरण के समय में) काल करके कहां जायेगा, कहां उत्पन्न होगा ? गौतम ! इसी राजगृह नगरमें फिर शालवृक्षपने उत्पन्न होगा। वहां वह अर्चित, वन्दित, पूजित, सत्कृत, सम्मानित और दिव्य (प्रधान) होगा। तथा वह सत्य, सत्यावपात, सन्निहितप्रातिहार्य (पूर्व भव सम्बन्धी देवोंने जिसका प्रतिहारपन्न-सामीप्य किया है) और जिसका पीठ (चबूतरा) लिपा हुआ और पुता हुआ तथा सत्कारित होगा।

भगवन् ! वह शालवृक्ष वहांसे मरकर कहां जायेगा और कहां उत्पन्न होगा ? गौतम ! महाविदेह क्षेत्रमें जन्म लेकर सिद्ध होगा, यावत् सब दुःखोंका

मस्तक बना देता है। इस प्रक्रियामें पुरुषके मस्तक का छेदन करते हुए भी उस पुरुषको किञ्चित् भी पीड़ा नहीं होने देता। इस प्रकार सूक्ष्मतापूर्वक क्रिया करके वह मस्तकको कमण्डलु में डालता है ॥५३१॥

भगवन्! क्या जृम्भक देव (स्वच्छन्दाचारी) देव हैं? हां, गौतम! हैं। भगवन्! वे जृम्भक देव क्यों कहलाते हैं? गौतम! जृम्भक देव सदा प्रमोदी, अत्यन्त क्रीड़ाशील, कन्दर्प में रत और मैथुन सेवनके स्वभाव वाले होते हैं। जो पुरुष उन देवों को कुपित हुए देखता है, वह पुरुष महान् अपयश को प्राप्त करता है, तथा जो पुरुष उन देवों को तुष्ट (प्रसन्न) हुए देखता है, वह महायश को प्राप्त करता है। इस कारण हे गौतम! वे 'जृम्भक देव' कहलाते हैं। भगवन्! जृम्भक देव कितने प्रकार के कहे गये हैं? गौतम! दस प्रकार के कहे गये हैं। यथा—१ अन्न जृम्भक, २ पान जृम्भक, ३ वस्त्र जृम्भक, ४ लयन जृम्भक, ५ शयन जृम्भक, ६ पुष्प जृम्भक, ७ फल जृम्भक, ८ पुष्पफल जृम्भक, ९ विद्या जृम्भक और १० अव्यक्त जृम्भक।

भगवन्! जृम्भक देव कहां रहते हैं? गौतम! जृम्भक देव सभी दीर्घ (लम्बे) वैताढ्य पर्वतों में, चित्रविचित्र यमक और समक पर्वतोंमें तथा काञ्चन पर्वतोंमें रहते हैं। भगवन्! जृम्भक देवोंकी स्थिति कितने काल की कही गई है? गौतम! जृम्भक देवों की स्थिति एक पल्योपम की कही गई है। हे भगवन्! यह इसी प्रकार है। ······ऐसा कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं ॥५३२॥

॥ चौदहवें शतक का आठवां उद्देशक समाप्त ॥

शतक १४ उद्देशक ९—भावितात्मा अनगार और प्रकाशित पुद्गल०

भगवन्! अपनी कर्म-लेश्या को नहीं जानने-देखने वाला भावितात्मा अनगार, सरूपी (सशरीरी) और कर्म-लेश्या सहित जीवको जानता-देखता है? हां, गौतम! भावितात्मा अनगार जो अपनी कर्म सम्बन्धी लेश्या को नहीं जानता नहीं देखता, वह सरूपी कर्म-लेश्या वाले जीव को जानता-देखता है। भगवन्! सरूपी (वर्ण आदि युक्त) सकर्मलेश्य (कर्मके योग्य कृष्णादि लेश्या के) पुद्गल-स्कन्ध प्रकाशित होते हैं? हां, गौतम! वे पुद्गल-स्कन्ध प्रकाशित होते हैं। भगवन्! वे सरूपी कर्म-लेश्य पुद्गल कौन-से हैं जो प्रकाशित होते हैं यावत् प्रभासित होते हैं? गौतम! चन्द्र और सूर्य के विमानों से बाहर निकले हुए प्रकाश पुद्गल प्रकाशित होते हैं, यावत् प्रभासित होते हैं। इस प्रकार हे गौतम! ये सभी सरूपी कर्म योग्य लेश्या वाले पुद्गल प्रकाशित होते हैं यावत् प्रभासित होते हैं ॥५३३॥

अन्त करेगा। भगवन् ! सूर्य......जली हुई यह शाल-यष्टिका......कहां जाएगी, कहां उत्पन्न होगी ? गौतम ! इसी जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें विन्ध्याचलकी तलहटी स्थित माहेश्वरी नगरी में शाल्मली वृक्ष रूप से उत्पन्न होगी। वहां वह अर्चित, वन्दित और पूजित होगी, यावत् उसका चबूतरा लीपा-पोता हुआ होगा। इस प्रकार वह पूजनीय होगी। भगवन् ! वह काल करके कहां जाएगी, कहां उत्पन्न होगी ? गौतम ! पूर्वोक्त शालवृक्षके समान कहना चाहिये, यावत् वह सर्व दुःखोंका अन्त करेगी।......उदुम्बर-यष्टिका (उम्बर वृक्षकी शाखा) काल करके कहां जाएगी, कहां उत्पन्न होगी ? गौतम ! इसी जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें पाटलीपुत्र नामके नगरमें पाटली वृक्षपने उत्पन्न होगी। वहां यह अर्चित, वन्दित यावत् पूजनीय होगी। भगवन् ! वहांसे कालकर वह कहां जाएगी, कहां उत्पन्न होगी ? पूर्वोक्त यावत् वह समस्त दुःखोंका अन्त करेगी ॥५२७॥

उस काल उस समय अम्बड़ परिव्राजक के सात सौ शिष्य ग्रीष्म-कालमें विहार करते थे, इत्यादि औपपातिक सूत्रानुसार० यावत् 'वे आराधक हुए'—तक कहना चाहिये ॥५२८॥

भगवन् ! बहुतसे मनुष्य परस्पर इस प्रकार कहते हैं, कि 'अम्बड़ परिव्राजक' कम्पिलपुरमें सौ घरोंमें भोजन करता है, इत्यादि औपपातिक सूत्रकी अम्बड़ सम्बन्धी वक्तव्यता, यावत् महर्द्धिक दृढ़प्रतिज्ञ होकर सभी दुःखों का अन्त करेगा ॥५२९॥

भगवन् ! अव्याबाध देव, अव्याबाध देव (किसी को पीड़ा नहीं पहुँचाने वाले) कहे जाते हैं ? हां गौतम ! कहे जाते हैं। भगवन् ! वे 'अव्याबाध देव' क्यों कहलाते हैं ? गौतम ! प्रत्येक अव्याबाध देव पुरुषके आंखकी एक पलक पर दिव्य देवर्द्धि, दिव्य देवद्युति, दिव्य देवानुभाव और बत्तीस प्रकारकी दिव्य नाटक विधि बतलानेमें समर्थ है। इससे वे उस पुरुषको स्वल्पमात्र भी दुःख नहीं होने देते और न उसके अवयव का छेदन करते हैं। इस प्रकार सूक्ष्मतापूर्वक नाट्य-विधि बतला सकते हैं। इस कारण हे गौतम ! वे 'अव्याबाध देव' कहलाते हैं ॥५३०॥

भगवन् ! देवेन्द्र देवराज शक्र अपने हाथ में ग्रहण की हुई तलवार से किसी पुरुष का मस्तक काट कर कमण्डलु में डालने में समर्थ है ? हां गौतम ! समर्थ है। भगवन् ! वह उस मस्तक को कमण्डलु में किस प्रकार डालता है ? गौतम ! शक्र उस पुरुषके मस्तक को छेदन (खण्ड-खण्ड) करके, भेदन (कपड़े की तरह चीर) कर, कूट कर (ऊखलमें तिलोंकी तरह कूट कर), चूर्ण कर (शिला पर लोढ़ी से गन्ध-द्रव्यादि पीसा जाता है, उसी प्रकार चूर्ण करके) कमण्डलु में डालता है। इसके बाद वह उस मस्तकके अवयवोंको एकत्रित करता है और पुनः

मस्तक बना देता है। इस प्रक्रियामें पुरुषके मस्तक का छेदन करते हुए भी उस पुरुषको किञ्चित् भी पीड़ा नहीं होने देता। इस प्रकार सूक्ष्मतापूर्वक क्रिया करके वह मस्तकको कमण्डलु में डालता है ॥५३१॥

भगवन् ! क्या जृम्भक देव (स्वच्छन्दाचारी) देव हैं ? हां, गौतम ! हैं। भगवन् ! वे जृम्भक देव क्यों कहलाते हैं ? गौतम ! जृम्भक देव सदा प्रमोदी, अत्यन्त क्रीड़ाशील, कन्दर्प में रत और मैथुन सेवनके स्वभाव वाले होते हैं। जो पुरुष उन देवों को कुपित हुए देखता है, वह पुरुष महान् अपयश को प्राप्त करता है, तथा जो पुरुष उन देवों को तुष्ट (प्रसन्न) हुए देखता है, वह महायश को प्राप्त करता है। इस कारण हे गौतम ! वे 'जृम्भक देव' कहलाते हैं। भगवन् ! जृम्भक देव कितने प्रकार के कहे गये हैं ? गौतम ! दस प्रकार के कहे गये हैं। यथा—१ अन्न जृम्भक, २ पान जृम्भक, ३ वस्त्र जृम्भक, ४ लयन जृम्भक, ५ शयन जृम्भक, ६ पुष्प जृम्भक, ७ फल जृम्भक, ८ पुष्पफल जृम्भक, ९ विद्या जृम्भक और १० अव्यक्त जृम्भक।

भगवन् ! जृम्भक देव कहां रहते हैं ? गौतम ! जृम्भक देव सभी दीर्घ (लम्बे) वैताढ्य पर्वतों में, चित्रविचित्र यमक और समक पर्वतोंमें तथा काञ्चन पर्वतोंमें रहते हैं। भगवन् ! जृम्भक देवोंकी स्थिति कितने काल की कही गई है ? गौतम ! जृम्भक देवों की स्थिति एक पल्योपम की कही गई है। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है। ······ऐसा कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं ॥५३२॥

॥ चौदहवें शतक का आठवां उद्देशक समाप्त ॥

शतक १४ उद्देशक ९—भावितात्मा अनगार और प्रकाशित पुद्गल०

भगवन् ! अपनी कर्म-लेश्या को नहीं जानने-देखने वाला भावितात्मा अनगार, सरुपी (सशरीरी) और कर्म-लेश्या सहित जीवको जानता-देखता है ? हां, गौतम ! भावितात्मा अनगार जो अपनी कर्म सम्बन्धी लेश्या को नहीं जानता नहीं देखता, वह सरूपी कर्म-लेश्या वाले जीव को जानता-देखता है। भगवन् ! सरूपी (वर्ण आदि युक्त) सकर्मलेश्य (कर्मके योग्य कृष्णादि लेश्या के) पुद्गल-स्कन्ध प्रकाशित होते हैं ? हां, गौतम ! वे पुद्गल-स्कन्ध प्रकाशित होते हैं। भगवन् ! वे सरूपी कर्म-लेश्य पुद्गल कौन-से हैं जो प्रकाशित होते हैं यावत् प्रभासित होते हैं ? गौतम ! चन्द्र और सूर्य के विमानों से बाहर निकले हुए प्रकाश पुद्गल प्रकाशित होते हैं, यावत् प्रभासित होते हैं। इस प्रकार हे गौतम ! ये सभी सरूपी कर्म योग्य लेश्या वाले पुद्गल प्रकाशित होते हैं यावत् प्रभासित होते हैं ॥५३३॥ .. . .

भगवन् ! नैरयिकों के आत्त पुद्गल (सुखकारक पुद्गल) होते हैं या अनात्त (दु:खकारक) होते हैं ? गौतम ! उनके आत्त पुद्गल नहीं होते, अनात्त होते हैं। भगवन् ! असुरकुमारों के० ? गौतम ! उनके आत्त पुद्गल होते हैं, अनात्त पुद्गल नहीं होते। इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमारों तक कहना चाहिये। भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीवों के० ? गौतम ! उनके आत्त पुद्गल भी होते हैं और अनात्त पुद्गल भी। इसी प्रकार यावत् मनुष्यों तक कहना चाहिये। वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिकोंके विषयमें असुरकुमारोंके समान कहना चाहिये। भगवन् ! नैरयिकोंके पुद्गल इष्ट होते हैं या अनिष्ट ? गौतम ! इष्ट पुद्गल नहीं होते, अनिष्ट पुद्गल होते हैं। जिस प्रकार आत्त पुद्गलों के विषय में कहा, उसी प्रकार इष्ट, कान्त, प्रिय तथा मनोज्ञ पुद्गलों के विषय में भी कहना चाहिये। इस प्रकार ये पांच दण्डक कहने चाहियें। भगवन् ! महर्द्धिक यावत् महासुख वाला देव हजार रूपों की विकुर्वणा करके हजार भाषा बोलनेमें समर्थ है ? हां, गौतम ! समर्थ है। भगवन् ! वह एक भाषा है या हजार भाषा ? गौतम ! वह एक भाषा है, हजार भाषा नहीं ॥५३४॥

उस काल उस समय में भगवान् गौतम स्वामी ने तत्काल उदित हुए और जासुमण वृक्षके फूलोंके पुंज समान लाल ऐसे बालसूर्य को देखा। सूर्य को देखकर श्रद्धा वाले यावत् जिनको प्रश्न का कुतूहल उत्पन्न हुआ है, ऐसे भगवान् गौतम स्वामी ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के निकट आकर यावत् वन्दना-नमस्कार कर इस प्रकार पूछा-भगवन् ! 'सूर्य' क्या है और सूर्यका अर्थ क्या है? गौतम ! 'सूर्य' शुभ पदार्थ है और सूर्य का अर्थ भी शुभ है। भगवन् ! 'सूर्य' क्या है और 'सूर्य की प्रभा' क्या है ? गौतम ! पूर्वोक्त रूप से जानना चाहिये। इसी प्रकार छाया (प्रतिबिम्ब) और लेश्या (प्रकाश का समूह) के विषय में भी जानना चाहिये ॥ ५३५ ॥

भगवन् ! जो श्रमण-निर्ग्रन्थ आर्यपने (पापकर्म रहित पने) विचरते हैं, वे किसकी तेजोलेश्या (तेज—सुख) का अतिक्रमण करते हैं (उनका सुख किन से बढ़कर है) ? गौतम ! एक मास की दीक्षा-पर्याय वाला श्रमण निर्ग्रन्थ वाणव्यन्तर देवों की तेजोलेश्या (सुख) का अतिक्रमण करता है (वह वाणव्यन्तर देवों से भी अधिक सुखी है)। दो मास की दीक्षा-पर्याय वाला श्रमण-निर्ग्रंथ असुरेन्द्र (चमरेन्द्र और बलीन्द्र) के अतिरिक्त दूसरे भवनवासी देवों की तेजोलेश्या का अतिक्रमण करता है। इसी प्रकार इसी पाठ द्वारा तीन मास की दीक्षा-पर्याय वाला श्रमण-निर्ग्रन्थ असुरकुमार देवों की तेजोलेश्या का अतिक्रमण करता है। चार मास की दीक्षा-पर्याय वाला श्रमण-निर्ग्रंथ ग्रह गण, नक्षत्र और तारा रूप ज्योतिषी देवों की तेजोलेश्या का अतिक्रमण करता है। पांच मास की दीक्षा-पर्याय वाला श्रमण-निर्ग्रन्थ ज्योतिषियों के इन्द्र ज्योतिषियों के राजा चन्द्र और सूर्य की तेजो-

लेश्या का अतिक्रमण करता है। छह मास की दीक्षा-पर्याय वाला श्रमण-निर्ग्रंथ सौधर्म और ईशानवासी देवों की तेजोलेश्या का अतिक्रमण करता है। सात मास की दीक्षा-पर्याय वाला श्रमण-निर्ग्रंथ सनत्कुमार और माहेन्द्र देवों की, आठ मास की दीक्षा-पर्याय वाला श्रमण-निर्ग्रंथ ब्रह्मलोक और लान्तक देवों की, नौ मास की दीक्षा-पर्याय वाला श्रमण-निर्ग्रन्थ महाशुक्र और सहस्रार देवों की, दस मास की दीक्षा-पर्याय वाला श्रमण-निर्ग्रंथ आनत, प्राणत, आरण और अच्युत देवों की, ग्यारह मास की दीक्षा-पर्याय वाला श्रमण-निर्ग्रंथ ग्रैवेयक देवों की और बारह मास की दीक्षा-पर्याय वाला श्रमण-निर्ग्रंथ अनुत्तरौपपातिक देवों की तेजोलेश्या का अतिक्रमण कर जाता है। इसके अनन्तर शुद्ध और शुद्धतर परिणाम वाला होकर सिद्ध होता है यावत् सभी दुःखों का अन्त करता है। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है।······ऐसा कहकर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं।। ५३६ ।।

।। चौदहवें शतक का नौवां उद्देशक समाप्त ।।

शतक १४ उद्देशक १०—केवली और सिद्ध का ज्ञान

भगवन् ! केवलज्ञानी छद्मस्थ को जानते-देखते हैं ? हां गौतम ! जानते-देखते हैं। भगवन् ! जिस प्रकार केवलज्ञानी छद्मस्थ को जानते-देखते हैं उसी प्रकार सिद्ध भी छद्मस्थ को जानते-देखते हैं ? हां···। भगवन् ! केवलज्ञानी आधोवधिक (प्रतिनियत क्षेत्र विषयक अवधिज्ञान वाले) को जानते-देखते हैं ? हां······। इसी प्रकार परमावधिज्ञानी, केवलज्ञानी और सिद्ध को भी जानते-देखते हैं। भगवन् ! जिस प्रकार केवलज्ञानी सिद्ध को जानते-देखते हैं, उसी प्रकार सिद्ध भी सिद्धों को जानते-देखते हैं ? हां······। भगवन् ! केवलज्ञानी बोलते हैं और प्रश्न का उत्तर देते हैं ? हां······। भगवन् ! जिस प्रकार केवलज्ञानी बोलते हैं और प्रश्न का उत्तर देते हैं, उसी प्रकार क्या सिद्ध भी बोलते हैं और प्रश्न का उत्तर देते हैं ? यह अर्थ समर्थ नहीं। भगवन् ! सिद्ध क्यों नहीं बोलते ? गौतम ! केवलज्ञानी उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषकार-पराक्रम सहित हैं, परन्तु सिद्ध उत्थान यावत् पुरुषकार पराक्रम से रहित हैं, इस कारण सिद्ध केवलज्ञानी के समान नहीं बोलते और न प्रश्न का उत्तर ही देते हैं।

भगवन् ! केवलज्ञानी अपनी आंखें खोलते और मीचते हैं ? हां, गौतम ! वे आंखें खोलते और मीचते हैं। इसी प्रकार शरीर को संकुचित-विस्तृत करते हैं, खड़े रहते हैं, बैठते हैं तथा शय्या (वसति) और नैषेधिकी (थोड़े समय के लिये वसति) करते हैं। भगवन् ! केवलज्ञानी रत्नप्रभा पृथ्वी को–'यह रत्नप्रभा पृथ्वी है'–इस प्रकार जानते-देखते हैं ? हां गौतम ! जानते-देखते हैं। भगवन् ! जिस

प्रकार केवलज्ञानी रत्नप्रभा पृथ्वी को 'यह रत्नप्रभा पृथ्वी है'-- इस प्रकार जानते-देखते हैं, उसी प्रकार सिद्ध भी रत्नप्रभा पृथ्वी को--'रत्नप्रभा पृथ्वी है'-इस प्रकार जानते-देखते हैं ? हां......। भगवन् ! केवलज्ञानी शर्कराप्रभा पृथ्वी को--'शर्कराप्रभा पृथ्वी' इस प्रकार जानते-देखते हैं ? पूर्वोक्त रूप से यावत् अधःसप्तम तक जानना चाहिये । भगवन् ! केवलज्ञानी सौधर्म कल्प को जानते-देखते हैं ? हां, गौतम ! जानते-देखते हैं । इसी प्रकार ईशान यावत् अच्युत कल्प तक कहना चाहिये । भगवन् ! केवलज्ञानी ग्रैवेयक विमानों को जानते-देखते हैं ? पूर्वोक्त रूप से यावत् अनुत्तर विमान् तक जानो । भगवन् ! केवलज्ञानी ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी को जानते-देखते हैं ? गौतम ! पूर्वोक्त रूप से जानना चाहिये ।

भगवन् ! केवलज्ञानी परमाणु पुद्गल को जानते-देखते हैं ? हां, गौतम ! जानते देखते हैं । इस प्रकार द्विप्रदेशी स्कन्ध यावत्-- भगवन् ! जिस प्रकार केवलज्ञानी अनन्तप्रदेशिक स्कन्ध को जानते-देखते हैं, उसी प्रकार सिद्ध भी अनन्तप्रदेशिक स्कन्धको यावत् जानते-देखते हैं ? हां...। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।......॥५३७॥

॥ चौदहवें शतक का दसवां उद्देशक समाप्त ॥

॥ चौदहवां शतक समाप्त ॥

शतक १५--गोशालक चरित्र

उस काल उस समयमें श्रावस्ती नाम की नगरी थी । वर्णन । श्रावस्ती नगरी के उत्तर-पूर्व में कोष्ठक नामक उद्यान था । वर्णन । उस श्रावस्ती नगरी में आजीविक (गोशालक) मत की उपासिका हालाहला नामक कुम्भारिन रहती थी । वह ऋद्धि सम्पन्न यावत् अपराभूत थी । उसने आजीविक के सिद्धान्त का अर्थ (रहस्य) प्राप्त किया था, अर्थ पूछा था, अर्थ का निश्चय किया था, उसकी अस्थि और मज्जा, प्रेम और अनुराग द्वारा रंगी हुई थी । 'आयुष्मन् ! आजीविक का सिद्धान्त रूप अर्थ, यही खरा (सच्चा) अर्थ है, और यही परमार्थ है, शेष सब अनर्थ हैं ।' इस प्रकार वह आजीविक के सिद्धान्त से अपनी आत्मा को भावित करती हुई रहती थी ।

उस काल उस समयमें चौबीस वर्ष की दीक्षा-पर्याय वाला मंखलिपुत्र गोशालक, हालाहला नामक कुम्भारिन की कुम्भकारापण (मिटट्री के बर्तनों की दुकान) में आजीविक संघ से परिवृत्त होकर आजीविक सिद्धान्त से अपनी आत्मा को भावित करता हुआ विचरता था । किसी दिन उस मंखलिपुत्र गोशालक के पास

ये छह दिशाचर आये। यथा-१ शान २ कलन्द ३ कर्णिकार ४ अछिद्र ५ अग्निवेश्यायन और ६ गोमायुपुत्र अर्जुन। उन छह दिशाचरों ने पूर्वश्रुत में कहे हुए आठ प्रकार के निमित्त, नौवां गीतमार्ग तथा दसवां नृत्यमार्ग को अपने-अपने मतिदर्शन से पूर्वश्रुत में से उद्धृत कर मंखलिपुत्र गोशालक का शिष्य भाव से आश्रय ग्रहण किया।

इसके बाद मंखलिपुत्र गोशालक अष्टांग महानिमित्त के स्वल्प उपदेश द्वारा सभी प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों को इन छह बातों के विषय में अनतिक्रमणीय (जो अन्यथा--असत्य न हो) उत्तर देने लगा। वे छह विषय ये हैं-१ लाभ २ अलाभ ३ सुख ४ दुःख ५ जीवन और ६ मरण। मंखलिपुत्र गोशालक अष्टांग महानिमित्त के स्वल्प उपदेश मात्र से श्रावस्ती नगरी में जिन नहीं होते हुए भी 'मैं जिन हूं'--इस प्रकार प्रलाप करता हुआ, अर्हन्त नहीं होते हुए भी 'मैं अर्हन्त हूं'—इस प्रकार मिथ्या बकवास करता हुआ, केवली नहीं होते हुए भी 'मैं केवली हूं'–इस प्रकार मिथ्या भाषण करता हुआ, सर्वज्ञ नहीं...... 'मैं सर्वज्ञ हूं''—इस प्रकार मिथ्या कथन......और जिन नहीं होते हुए भी 'जिन' शब्द का प्रकाश (दावा) करता हुआ अर्थात् अपने लिए जिन विशेषण का प्रयोग करता हुआ विचरता था ॥५३८॥

इसके बाद श्रावस्ती नगरी में सिंघाड़े के आकार वाले त्रिक यावत् राजमार्गों में बहुत से मनुष्य इस प्रकार कहने लगे यावत् प्ररूपणा करने लगे–"हे देवानुप्रियो! यह मंखलिपुत्र गोशालक 'जिन' होकर अपने आपको 'जिन' कहता हुआ यावत् 'जिन' शब्द का प्रकाश करता हुआ विचरता है, तो इस प्रकार कैसे माना जाय?"

उस काल उस समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी वहां पधारे, यावत् परिषद् धर्मोपदेश सुन कर चली गई। उस काल उस समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के ज्येष्ठ अन्तेवासी, गौतम गोत्रीय इन्द्रभूति अनगार यावत् छठ-छठ का पारणा करते थे, इत्यादि दूसरे शतक के पांचवें उद्देशक अनुसार यावत् गोचरी के लिए फिरते हुए गौतम स्वामी ने बहुत से मनुष्यों के शब्द सुने। लोग इस प्रकार कहते थे कि–"हे देवानुप्रियो! मंखलिपुत्र गोशालक 'जिन' होकर अपने-आपको 'जिन' कहता हुआ यावत् 'जिन' शब्दका प्रकाश करता हुआ विचरता है। उसकी यह बात कैसे मानी जाय ?" लोगों से ऐसा सुन कर और अवधारण कर यावत् प्रश्न पूछने की श्रद्धा वाले हुए यावत् आहार-पानी भगवान् को दिखलाया, यावत् पर्युपासना करते हुए वे इस प्रकार बोले–'भगवन! मैं छठ के पारणे इत्यादि पूर्वोक्त कहना चाहिए यावत् गोशालक 'जिन' शब्द का प्रकाश करता हुआ विचरता है, तो भगवन्! उसका यह कथन कैसा है? भगवन्!

आपके श्रीमुख से मैं मंखलिपुत्र गोशालक का जन्म से लेकर अन्त तक का वृत्तान्त सुनना चाहता हूं।'

(भगवान् ने फरमाया) 'हे गौतम' इस प्रकार सम्बोधित करके श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने गौतम स्वामी से कहा—गौतम ! बहुत-से मनुष्य जो परस्पर इस प्रकार कहते हैं कि मंखलिपुत्र गोशालक 'जिन' होकर और अपने आपको 'जिन' कहता हुआ यावत् 'जिन' शब्द का प्रकाश करता हुआ विचरता है'—यह बात मिथ्या है। हे गौतम ! मैं इस प्रकार कहता हूं यावत् प्ररूपणा करता हूं कि मंखलिपुत्र-गोशालक का मंखलि नामक मंख जाति का पिता था। उस मंखलि नामक मंख के भद्रा नाम की भार्या थी। वह सुकुमाल हाथ-पांव वाली यावत् प्रतिरूप (सुन्दर) थी। किसी समय वह भद्रा भार्या गर्भवती हुई।

उस काल उस समयमें 'शरवण' नाम का ग्राम था। वह ऋद्धिसम्पन्न, उपद्रव रहित यावत् देवलोक समान प्रकाश वाला और मन को प्रसन्न करने वाला था। उसमें गोवहुल नामक एक ब्राह्मण रहता था। वह ऋद्धि सम्पन्न यावत् अपराभूत था। वह ऋग्वेद आदि ब्राह्मण-शास्त्रों के विषय में निपुण था। उस गोवहुल ब्राह्मण के एक गोशाला थी। एक दिन वह मंखलि नामक भिक्षाचर अपनी गर्भवती भद्रा भार्या को साथ लेकर निकला। वह चित्रपटसे अपनी आजीविका चलाता हुआ अनुक्रम से शरवण नामक सन्निवेश में आया और गोवहुल ब्राह्मण की गोशाला के एक भाग में अपने भण्डोपकरण रक्खे। वह शरवण ग्राममें ऊंच, नीच और मध्यम कुलों के घर-समुदाय में भिक्षाचर्या के लिये फिरने लगा। वह अपने निवास के लिये किसी स्थान की खोज करने लगा। सभी ओर गवेषणा करने पर भी उसे कोई रहने योग्य स्थान नहीं मिला, तो उसने गोवहुल ब्राह्मण की गोशाला के एक भाग में ही वर्षाऋतु विताने के लिये निवास किया। भद्रा ने नौ मास और साढ़े सात रात-दिन बीतने पर एक सुकुमाल हाथ-पैर वाले यावत् सुन्दर पुत्र को जन्म दिया।

ग्यारह दिन बीत जाने के पश्चात् बारहवें दिन उस बालक के माता-पिता ने गोशाला में उत्पन्न होने के कारण बालक का गुणनिष्पन्न नाम 'गोशालक' रक्खा। गोशालक बाल्यावस्था से मुक्त हो, विज्ञान से परिणत मति वाला होकर यौवन को प्राप्त हुआ। वह स्वयं स्वतंत्र रूप से हाथ में चित्रपट लेकर मंखपने की वृत्ति से आत्मा को भावित करता हुआ विचरने लगा ॥५३९॥

गौतम ! उस काल उस समय तीस वर्ष तक गृहवास में रह कर और माता-पिता का स्वर्गवास हो जाने पर (आचारांग सूत्र के दूसरे श्रुतस्कन्ध के पन्द्रहवें भावना अध्ययन के अनुसार—'माता-पिता के जीवित रहते मैं दीक्षा नहीं 'लूंगा'—इस प्रकार का अभिग्रह पूर्ण होने पर, मैंने सुवर्णादि का त्याग कर इत्यादि)

यावत् एक देवदूष्य वस्त्रको ग्रहण कर मुण्डित हुआ और गृहस्थवास का त्यागकर अनगार प्रव्रज्या ग्रहण की। उस समय हे गौतम! मैं पहले वर्ष में अर्द्धमास-अर्द्धमास क्षमण करते हुए, अस्थिक ग्राम की निश्रा में, प्रथम वर्षावास रहने के लिए आया। दूसरे वर्ष में मास-मास क्षमण युक्त अनुक्रम से विहार करते हुए राजगृह नगर के नालन्दा पाड़ा में आया और नालन्दा पाड़ा के वाह्य भागमें, तन्तुवाय (कपड़ा बुननेवाले की) शाला के एक भाग में यथायोग्य अवग्रह ग्रहण करके वर्षावास रहा। तत्पश्चात् गौतम! मैं प्रथम मासक्षमण स्वीकार कर विचरने लगा।

उस समय मंखलिपुत्र गोशालक चित्रपट से आजीविका करता हुआ, अनुक्रम से एक ग्राम से दूसरे ग्राम जाता हुआ राजगृह आया और नालन्दा-पाड़े के वाहरी भाग में, बुनकर की शाला के एक भाग में अपना भण्डोपकरण रक्खा। फिर राजगृह नगर में ऊंच, नीच और मध्यम कुल में भिक्षा के लिये जाते हुए उसने वर्षावास के लिए दूसरा स्थान ढूंढने का वहुत प्रयत्न किया, किन्तु उसे कहीं स्थान नहीं मिला। अत: जिस तन्तुवाय-शालाके एक भाग में मैं था, वहीं वह भी रहने लगा। हे गौतम! मैं प्रथम मासक्षमण के पारणेके दिन तन्तुवायशालासे निकला और नालन्दा के वाहरी भाग के मध्य में होता हुआ राजगृह नगर में आया। फिर ऊंच, नीच और मध्यम कुल में यावत् आहार के लिए फिरते हुए मैंने विजय नामक गाथापति के घरमें प्रवेश किया।

मुझे प्रवेश करते देख कर विजय गाथापति प्रसन्न एवं सन्तुष्ट हुआ। वह शीघ्र ही सिंहासन से नीचे उतरा और पादुका (खड़ाऊं) का त्याग किया। फिर एक पट वाले वस्त्र का उत्तरासंग किया। दोनों हाथ जोड़कर सात-आठ चरण मेरे सामने आया और मुझे तीन बार प्रदक्षिणा करके वन्दन-नमस्कार किया। 'आज मैं भगवान् को पुष्कल अशन, पान, खादिम और स्वादिम से प्रतिलाभूंगा'— ऐसा विचार कर सन्तुष्ट हुआ। वह प्रतिलाभते समय भी सन्तुष्ट था और प्रतिलाभित करने के वाद भी सन्तुष्ट रहा। विजय गाथापति ने द्रव्य की शुद्धि से, दायक की शुद्धि से और पात्र की शुद्धि से तथा त्रिविध (मन, वचन, काया) और तीन करण (कृत, कारित, अनुमोदित) की शुद्धि से मुझे प्रतिलाभित करने के निमित्त से देव का आयुष्य वांधा। संसार परिमित किया। दान के प्रभाव से उसके घर में ये पांच दिव्य प्रकट हुए। यथा—१ वसुधारा की वृष्टि २ पांच वर्ण के पुष्पों की वृष्टि ३ ध्वजा रूप वस्त्र की वृष्टि ४ देवदुन्दभि का वादन और ५ आकाश में—'अहो दान, अहोदान' की ध्वनि।

राजगृह नगर में शृंगाटक त्रिकमार्ग यावत् राजमार्गों में वहुत-से मनुष्य परस्पर इस प्रकार कहने लगे यावत् प्ररूपणा करने लगे

कि—हे देवानुप्रियो ! विजय गाथापति धन्य है । देवानुप्रियो ! विजय गाथापति कृतार्थ है । देवानुप्रियो ! विजय गाथापति कृतपुण्य (पुण्यशाली) है । देवानुप्रियो ! विजय गाथापति कृतलक्षण (उत्तम लक्षणों वाला) है । देवानुप्रियो ! विजय गाथापति के उभय लोक सार्थक हैं और विजय गाथापति का मनुष्य सम्बन्धी जन्म और जीवन का फल प्रशंसनीय है । जिसके घर में तथारूप उत्तम, सौम्य आकार वाले श्रमण को प्रतिलाभित करने से ये पांच दिव्य प्रकट हुए हैं, यावत् 'अहोदान' 'अहोदान' की उद्घोषणा हुई है, इसलिये विजय गाथापति धन्य है, कृतार्थ है, कृतपुण्य है, कृतलक्षण है । उसके दोनों लोक सार्थक हैं और उस विजय गाथापति का मनुष्य सम्बन्धी जन्म और जीवन का फल प्रशंसनीय है ।

मंखलिपुत्र गोशालक ने भी बहुत मनुष्यों से यह घटना सुनी और अवधारण की । उसके मन में संशय और कुतूहल उत्पन्न हुआ । वह विजय गाथापति के यहां आया । उसने विजय गाथापति के घर में बरसी हुई वसुधारा, पांच वर्णके फूलों और घर से बाहर निकलते हुए मुझे और विजय गाथापति को देखा । गोशालक प्रसन्न एवं सन्तुष्ट हुआ । वह मेरे पास आया और तीन बार प्रदक्षिणा करके वन्दन-नमस्कार किया और इस प्रकार बोला—"हे भगवन् ! आप मेरे धर्माचार्य हैं और मैं आपका धर्म-शिष्य हूं" । गौतम ! मैंने मंखलिपुत्र गोशालक की इस बात का आदर नहीं किया, स्वीकार भी नहीं किया और मौन रहा । तत्पश्चात् गौतम ! मैं राजगृह नगर से निकल कर नालन्दा के बाहरी भाग की तन्तुवायशाला में आया और दूसरा मासक्षमण स्वीकार कर लिया ।

इसके पश्चात् दूसरे मासक्षमण के पारणे के समय, मैं तन्तुवाय शाला से निकला और आनन्द गाथापति के घर में प्रवेश किया । आनन्द गाथापति ने मुझे आता हुआ देखा, इत्यादि सारा वृत्तान्त विजय गाथापति के समान है, विशेषता यह है कि 'मैं विपुल खण्ड-खाद्यादि (खाजा आदि) भोजन सामग्री से प्रतिलाभूंगा' ऐसा विचार कर वह आनन्द गाथापति सन्तुष्ट हुआ, इत्यादि पूर्ववत् । यावत् मैंने तीसरा मासक्षमण स्वीकार कर लिया ।

तीसरे मासक्षमण के पारणे के लिए मैंने तन्तुवायशाला से बाहर निकल कर यावत् सुनन्द गाथापति के घर में प्रवेश किया । सुनन्द गाथापति ने मुझे आते हुए देखा यावत् उसने मुझे सर्वकाम-गुणयुक्त (सर्व रसों से युक्त) भोजन द्वारा प्रतिलाभित किया । शेष पूर्ववत् । मैंने चौथा मासक्षमण स्वीकार किया ।

नालन्दा के बाहरी भाग से कुछ दूर 'कोल्लाक' नामक सन्निवेश(ग्राम) था (वर्णन)। कोल्लाक सन्निवेशमें बहुल नामका ब्राह्मण रहता था । वह आढ्य यावत् अपराभूत था । वह ऋग्वेद आदि में निपुण था । उस बहुल ब्राह्मण ने कार्तिक

चातुर्मासकी प्रतिपदाके दिन पुष्कल, खांड घीसे संयुक्त परमान्न(खीर)द्वारा ब्राह्मणों को भोजन कराया। गौतम ! चौथे मासक्षमण के पारणे के लिये तन्तुवायशाला से निकल कर कोल्लाक सन्निवेश में ऊंच नीच और मध्यम कुलों में भिक्षाचरी के लिये जाते हुए मैंने बहुल ब्राह्मण के घर में प्रवेश किया। बहुल ब्राह्मण ने मुझे आते हुए देखा, इत्यादि पूर्ववत्। यावत् 'मैं खांड और घृत संयुक्त परमान्न (पायसी-खीर) से प्रतिलाभूंगा' ऐसा विचार कर बहुल ब्राह्मण सन्तुष्ट हुआ। शेष पूर्ववत् यावत् 'बहुल ब्राह्मण धन्य है।'

इसके अनन्तर मंखलिपुत्र गोशालक ने मुझे तन्तुवायशाला में नहीं देखा, तो उसने राजगृह नगर के बाहर और भीतर सभी ओर मेरी खोज की, परन्तु कहीं भी मेरी श्रुति (शब्द) और क्षुति (छींक) और प्रवृत्ति न पाकर पुनः तन्तुवायशाला में गया। उसने अपनी शाटिका (अन्दर पहनने का वस्त्र), पाटिका (ऊपर पहनने का वस्त्र), कुण्डी, उपानत् (पगरखियां) और चित्रपट ब्राह्मणों को देकर दाढ़ी और मूंछ का मुण्डन करवाया, फिर तन्तुवायशाला और नालन्दापाड़ा से निकलकर कोल्लाक सन्निवेश में आया। कोल्लाक सन्निवेश के बाहरी भाग में बहुत-से मनुष्य परस्पर इस प्रकार बातें कर रहे थे–'हे देवानुप्रियो ! बहुल ब्राह्मण धन्य है इत्यादि, पूर्वोक्त यावत् बहुल ब्राह्मण का जन्म और जीवन का फल प्रशंसनीय है।'

उस समय बहुत-से मनुष्यों से यह बात सुन कर अवधारण कर, मंखलिपुत्र गोशालक को विचार उत्पन्न हुआ कि–'मेरे धर्माचार्य और धर्मोपदेशक श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को जैसी ऋद्धि, द्युति, यश, बल, वीर्य, पुरुषकार-पराक्रम लब्ध हुआ है, प्राप्त हुआ है, अभिसमन्वागत हुआ है, वैसी ऋद्धि, द्युति यावत् पुरुषकारपराक्रम अन्य किसी भी तथारूप श्रमण-माहण को लब्ध, प्राप्त और अभिसमन्वागत नहीं हुआ। इसलिये मेरे 'धर्माचार्य, धर्मोपदेशक श्रमण भगवान् महावीर स्वामी अवश्य यहीं होंगे'—ऐसा विचार करके वह कोल्लाक-सन्निवेश के बाहर और भीतर, सभी ओर मेरी खोज करने लगा। खोज करते हुए वह कोल्लाक सन्निवेश के बाहर के भाग में मनोज्ञ भूमि में मेरे पास आया। मंखलिपुत्र गोशालक ने प्रसन्न और सन्तुष्ट होकर मेरी तीन बार प्रदक्षिणा की यावत् नमस्कार करके इस प्रकार बोला–'हे भगवन् ! आप मेरे धर्माचार्य हैं और मैं आपका शिष्य हूं।' हे गौतम ! मैंने मंखलिपुत्र गोशालक की उस बात को सुना (अर्थात् भावी भाव से स्वीकार किया)। इसके पश्चात् गौतम ! मैं मंखलिपुत्र गोशालक के साथ प्रणीत-भूमि में लाभ-अलाभ, सुःख-दुख, सत्कार-असत्कार का अनुभव करता हुआ और अनित्यता का चिन्तन करता हुआ विचरता रहा ॥५४०॥

गौतम ! अन्यदा किसी दिन प्रथम शरद काल के समय—जब वृष्टि नहीं

हो रही थी, मैं गोशालक के साथ सिद्धार्थ ग्राम नाम नामक नगर मे चलकर कूर्मग्राम नामक नगर की ओर जा रहा था, सिद्धार्थग्राम और कूर्मग्राम के मध्य तिल का एक बड़ा पौधा था, जो पत्र-पुष्प युक्त, हरितपन से अत्यन्त शोभायमान था। गोशालक ने उस तिल के पौधे को देखा और मुझे वन्दन-नमस्कार कर पूछा—"हे भगवन् ! यह तिल का पौधा निष्पन्न होगा या नहीं ? इन सात तिलों के फूल के जीव मर कर कहां जावेंगे, कहां उत्पन्न होंगे ?" हे गौतम ! मंखलिपुत्र गोशालक को मैंने इस प्रकार कहा—"हे गोशालक ! यह तिल का पौधा निष्पन्न होगा। यह निष्पन्न होने से वंचित नहीं रहेगा। ये सात तिलपुष्प के जीव मर कर इसी तिल के पौधे की एक तिलफली में सात तिल के रूप में उत्पन्न होंगे।"

मेरी बात पर गोशालकने श्रद्धा, प्रतीति और रुचि नहीं की। 'मेरे निमित्त से ये मिथ्यावादी हों'—ऐसा सोच कर, गोशालक मेरे पाससे धीरे-धीरे पीछे खिसका और तिलके पौधेके निकट आकर उसे मिट्टी सहित मूलसे उखाड़कर एक ओर फेंक दिया और मेरे निकट आकर साथ हो गया। पौधा उखाड़ने के अनन्तर तत्काल आकाशमें दिव्य बादल हुए और गर्जना करने लगे, बिजली चमकने लगी और अधिक पानी और कीचड़ नहीं हो, इस प्रकार थोड़े पानी और छोटी बून्दों वाली, रज एवं धूलको शान्त करने वाली दिव्य वृष्टि हुई, जिससे वह तिलका पौधा वहीं स्थिर हो गया, विशेष स्थिर हो गया, उगा और बद्ध-मूल होकर वहीं प्रतिष्ठित हो गया। वे सात तिल-पुष्पके जीव मरकर उसी तिलके पौधे की एक फलीमें, सात तिल रूपमें उत्पन्न हुए॥५४१॥

गौतम ! इसके बाद मैं गोशालक के साथ कूर्मग्राम नगर में आया। उस समय कूर्मग्रामके बाहर वैश्यायन नामक बाल-तपस्वी निरन्तर छठ-छठ तप करता था और दोनों हाथ ऊचे रख कर सूर्यके सम्मुख खड़ा हो, आतापना ले रहा था। सूर्यकी गर्मीसे तपी हुई जूंएं उसके सिरसे नीचे गिर रही थीं और वह तपस्वी सर्व प्राण, भूत, जीव और सत्त्वकी दया के लिये, पड़ी हुई उन जूंओंको उठाकर पुनः सिर पर रख रहा था।

मंखलीपुत्र गोशालकने वैश्यायन बाल-तपस्वीको देखा तो मेरा साथ छोड़कर पीछे खिसका और वैश्यायन बाल-तपस्वीके पास पहुँचा। गोशालकने उससे कहा—"तुम तत्त्वज्ञमुनि हो अथवा जूंओंके शय्यातर हो ?" वैश्यायन बाल-तपस्वी ने गोशालकके इस कथनका आदर नहीं किया और स्वीकार भी नहीं किया, वह मौन रहा। गोशालक ने वैश्यायन बाल-तपस्वी को दूसरी बार और तीसरी बार इसी प्रकार पूछा—"तुम तत्त्वज्ञ मुनि हो या जूंओंके शय्यातर हो ?" गोशालक ने दूसरी बार और तीसरी बार इसी प्रकार पूछा, तब वैश्यायन कुपित हुआ यावत् क्रोधसे धमधमायमान होकर आतापनाभूमिसे नीचे उतरा, फिर तैजस्-समुद्घात

करके सात-आठ चरण पीछे हटा और गोशालकके वधके लिये अपने शरीर में से तेजोलेश्या बाहर निकाली।

गौतम ! मैंने मंखलिपुत्र गोशालकके ऊपर अनुकम्पा करके, वैश्यायन बाल-तपस्वीकी तेजोलेश्याका प्रतिसंहरण करने के लिये, शीतल तेजोलेश्या बाहर निकाली। मेरी उस शीतल तेजोलेश्यासे वैश्यायन बाल-तपस्वी की उष्ण-तेजोलेश्याका प्रतिघात हो गया। मेरी शीतल तेजोलेश्यासे अपनी उष्ण तेजोलेश्या का प्रतिघात हुआ और गोशालकके शरीरको किञ्चित् भी पीड़ा अथवा अवयवका छेद नहीं हुआ जानकर, वैश्यायन बाल-तपस्वीने अपनी उष्ण-तेजोलेश्या पीछी खींच ली और मेरे प्रति इस प्रकार बोला—"हे भगवन् ! मैंने जाना २।"

इसके पश्चात् गोशालकने मुझसे पूछा कि—"हे भगवन् ! इस जूंओंके शय्यातर बाल-तपस्वीने आपको—"भगवन् ! मैंने जाना२।" इस प्रकार क्या कहा ? "तब हे गौतम ! मैंने गोशालकसे इस प्रकार कहा कि हे गोशालक ! तूने वैश्यायन बाल-तपस्वीको देखा और मेरे पाससे हट कर धीरे-धीरे पीछे गया। फिर तूने वैश्यायन बाल-तपस्वीसे इस प्रकार कहा—"तू ज्ञाततत्त्व मुनि है अथवा जूंओं का शय्यातर है ?" वैश्यायनने तेरे इस कथनका आदर—स्वीकार नहीं किया और मौन रहा। इसके पश्चात् तूने उसे दूसरी और तीसरी बार भी इसी प्रकार कहा, तब वह वैश्यायन बालतपस्वी कुपित हुआ यावत् तेरा वध करने के लिये अपने शरीरमें से तेजो-लेश्या बाहर निकाली। उस समय मैंने तुझ पर अनुकम्पा करके वैश्यायन बाल-तपस्वी की तेजोलेश्याका प्रति-संहरण करने के लिये शीत-लेश्या निकाली यावत् उससे उसकी उष्ण तेजोलेश्या का प्रतिघात हुआ और तेरे शरीरको कुछ भी पीड़ा नहीं हुई, जानकर अपनी उष्ण-तेजोलेश्याको वापिस खींच लिया। फिर उसने मुझे इस प्रकार कहा—"हे भगवन् ! मैंने जाना २।"

इसके पश्चात् हे गौतम ! मेरी उपरोक्त बात सुनकर गोशालक डरा यावत् भयभीत होकर मुझे वन्दना नमस्कारकर इस प्रकार बोला—"हे भगवन् ! संक्षिप्त-विपुल तेजोलेश्या कैसे प्राप्त होती है ?" मैंने कहा—"हे गोशालक ! नख सहित बन्द की हुई मुट्ठीमें जितने उड़दके बाकुले आवें उतने मात्रसे और एक विकटाशय (चुल्लू भर) पानीसे निरन्तर छठ-छठ की तपस्या के साथ दोनों हाथ ऊंचे रखकर यावत् आतापना लेने वाले पुरुषको छह मास के अन्तमें संक्षिप्त-विपुल तेजो-लेश्या प्राप्त होती है। गोशालकने मेरे कथन को विनयपूर्वक सम्यग्रूप से स्वीकार किया ॥५४२॥

इसके अनन्तर हे गौतम ! अन्यदा एक दिन मंखलिपुत्र गोशालकके साथ मैं कूर्मग्राम नगरसे सिद्धार्थग्राम नगरकी ओर जाने लगा। जब हम उस तिलके पौधे के स्थानके निकट आये, तो गोशालक ने मुझ से कहा—हे भगवन् ! आपने मुझे

उस समय कहा था कि "हे गोशालक ! यह तिलका पौधा निष्पन्न होगा यावत् तिलपुष्पके जीव सात तिल रूप से उत्पन्न होंगे, किंतु आपकी वह बात मिथ्या हुई। क्योंकि यह प्रत्यक्ष दिख रहा है कि यह तिल का पौधा उगा ही नहीं और वे तिलपुष्पके सात जीव मर कर इसी तिलके पौधे की एक तिलफलीमें सात तिल रूपसे उत्पन्न नहीं हुए।"

इसके उत्तरमें मैंने गोशालकसे कहा—हे गोशालक ! जब मैंने तुझसे ऐसा कहा, तब तूने मेरे कथनकी श्रद्धा प्रतीति और रुचि नहीं की और ऐसा सोचकर कि—'मेरे निमित्तसे वे मिथ्यावादी हों'—तू मेरे पास से पीछे खिसका और उस तिलके पौधेको यावत् मिट्टी सहित उखाड़कर एकान्तमें फेंक दिया। गोशालक ! उस समय तत्क्षण आकाशमें दिव्य बादल प्रकट हुए, यावत् गर्जना करने लगे, यावत् वे तिलके पौधे की एक तिलफलीमें सात तिल रूपसे उत्पन्न हुए हैं। इसलिये गोशालक ! वह तिल का पौधा निष्पन्न हुआ है और वे सात तिल-पुष्पके जीव मर कर इसी तिलके पौधेकी एक तिल-फलीमें सात तिल रूपसे उत्पन्न हुए हैं। इस प्रकार गोशालक ! वनस्पतिकायिक जीव मर कर प्रवृत्तपरिहारका परिहार (उपभोग) करते हैं अर्थात् मर कर उसी शरीर में पुनः उत्पन्न हो जाते हैं।

गोशालकने मेरे इस कथनकी श्रद्धा, प्रतीति एवं रुचि नहीं की, यावत् उस तिलके पौधेके पास जाकर उसकी तिलफली को तोड़ कर और हाथ में मसल कर सात तिल बाहर निकाले। इसके बाद मंखलिपुत्र गोशालक को सात तिलोंकी गिनती करते हुए इस प्रकारका विचार उत्पन्न हुआ—'सभी जीव प्रवृत्तपरिहार करते हैं, अर्थात् मर कर उसी शरीरमें पुनः उत्पन्न हो जाते हैं।' गौतम ! मंखलिपुत्र गोशालक का यह 'परिवर्त्त परिहार वाद' है। गौतम ! मुझसे (तेजोलेश्या की विधि प्राप्त करने के बाद) मंखलिपुत्र गोशालकका यह अपक्रमण है, अर्थात् वह मुझसे पृथक् हुआ है ॥५४३॥

इसके अनन्तर वह मंखलिपुत्र गोशालक उड़दके बाकलोंकी नख सहित एक मुट्ठीसे और एक चुल्लू भर पानीके द्वारा निरन्तर छठ-छठके तपके साथ दोनों हाथ ऊंचे रख कर और सूर्यके सम्मुख खड़ा रह कर आतापना भूमिमें आतापना लेने लगा। ऐसा करते हुए छह मासके अन्तमें गोशालकको संक्षिप्त-विपुल तेजो-लेश्या उत्पन्न हो गई ॥५४४॥

अन्यदा किसी दिन गोशालक से ये छह दिशाचर आकर मिले। यथा-शान इत्यादि (पूर्वोक्त वर्णन यावत् 'यह जिन नहीं होते हुए भी अपने लिए 'जिन' शब्द का प्रकाश करता हुआ विचरता है') हे गौतम ! मंखलिपुत्र गोशालक वास्तव में 'जिन' नहीं है, परन्तु 'जिन' शब्द का प्रलाप करता हुआ यावत् 'जिन' शब्द का प्रकाश करता हुआ विचरता है। गोशालक 'अजिन' है। तत्पश्चात् वह अत्यन्त

बड़ी परिषद् ग्यारहवें शतक के नौवें उद्देशक में शिव राजर्षि के चरित्र के अनुसार धर्मोपदेश सुनकर और वन्दना-नमस्कार कर चली गई।

श्रावस्ती नगरी में शृंगाटक (त्रिक मार्ग) यावत् राजमार्गों में बहुत से मनुष्य इस प्रकार यावत् प्ररूपणा करने लगे-हे देवानुप्रियो! मंखलिपुत्र गोशालक 'जिन' होकर अपने आपको 'जिन' कहता हुआ विचरता है। यह बात मिथ्या है। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी कहते हैं यावत् प्ररूपणा करते हैं कि-'मंखलिपुत्र गोशालक का-'मंखली नामक मंख(भिक्षाचर विशेष)पिता था,इत्यादि। पूर्वोक्त सारा वर्णन यावत् गोशालक 'जिन' नहीं होते हुए भी 'जिन' शब्द का प्रकाश करता हुआ विचरता है'-तक जानना चाहिए। इस लिए मंखलिपुत्र गोशालक जिन नहीं है। वह व्यर्थ ही 'जिन' शब्द का प्रलाप करता हुआ विचरता है। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी 'जिन' हैं, यावत् 'जिन' शब्द का प्रकाश करते हुए विचरते हैं।

यह बात गोशालक ने बहुत से मनुष्यों से सुनी। सुनते ही वह अत्यन्त कुपित हुआ, यावत् मिसमिसाट करता हुआ (क्रोध से दांत पीसता हुआ) आतापना भूमिसे नीचे उतरा और श्रावस्ती नगरी के मध्यमें होता हुआ, हालाहला कुम्भारिन की वर्तनों की दूकान पर आया। वह आजीविक संघ से परिवृत्त होकर अत्यन्त अमर्ष (क्रोध) को धारण करता रहा ॥५४५॥

उस समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के शिष्य आनन्द नामक स्थविर थे। वे प्रकृति से भद्र यावत् विनीत थे और वे निरन्तर छठ-छठ की तपस्या करते हुए और संयम-तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरते थे। वे आनन्द स्थविर छठक्षमण के पारणे के दिन प्रथम पौरिसी में स्वाध्याय आदि यावत् गौतम स्वामी के समान भगवान् से आज्ञा मांगी, और ऊंच, नीच और मध्यम कुलों में गोचरी के लिए चले। वे हालाहला कुम्भारिन की दूकान के समीप होकर जा रहे थे कि गोशालक ने आनन्द स्थविर को देखा। गोशालक ने आ० स्थविरको सम्बोधित कर कहा– हे आनन्द! यहां आ और मेरे एक हृष्टांत को सुन। गोशालक से सम्बोधित होकर आनन्द स्थविर हालाहला कुम्भारिन की दूकान में गोशालक के पास आये।

गोशालक ने आनन्द स्थविर से कहा--"हे आनन्द! आजसे बहुत काल पहले अनेक प्रकार के धन के अर्थी, धन के लोभी, धन के गवेषक, धनाकांक्षी एवं धन की तृष्णा वाले कई छोटे-बड़े वणिक धन उपार्जन करने के लिये अनेक प्रकार की सुन्दर वस्तुएं, अनेक गाड़ियों में भर कर और पर्याप्त अन्न पानी रूप पाथेय लेकर एक महा अटवी में प्रविष्ट हुए। वह अटवी ग्राम रहित, पानी के प्रवाह रहित, सार्थ आदि के आगमन से रहित और लम्बे मार्ग वाली थी। उस अटवी के कुछ भाग में जाने के बाद उनका साथ लिया हुआ पानी समाप्त हो गया। पानी रहित

और तृषा से पीड़ित वे व्यापारी एक-दूसरे से कहने लगे-"हे देवानुप्रियो ! अपने साथ का पानी समाप्त हो गया है, इसलिए अब हमें इस अटवी में सभी ओर पानी की खोज करना श्रेयस्कर है। वे लोग उस अटवी में पानी की खोज करने लगे। पानी की खोज करते हुए उन्होंने एक बड़ा वन-खण्ड देखा। वह वन-खण्ड श्याम और श्याम कान्ति वाला यावत् महामेघ के समूह जैसा प्रसन्नता उत्पन्न करने वाला यावत् सुन्दर था। उस वन-खण्डके मध्यभाग में उन्होंने एक बड़ा वल्मीक (बांबी) देखा,उस वल्मीकके सिंहकी केशरालके समान ऊंचे उठे हुए चार शिखर थे। वे शिखर तिर्च्छे विस्तीर्ण,नीचे अर्द्ध सर्पके समान(विस्तीर्ण)और ऊपर संकुचित थे। अर्द्ध सर्प की आकृति वाले,प्रसन्नता उत्पन्न करनेवाले यावत् सुन्दर थे। उस वल्मीकको देखकर वे वणिक् प्रसन्न और सन्तुष्ट हुए और परस्पर कहने लगे-"हे देवानुप्रियो ! इस भयंकर अटवी में पानी की खोज करते हुए हम सब वल्मीकके ये चार सुन्दर शिखर देख रहे हैं, इसलिये देवानुप्रियो ! इस वल्मीक के प्रथम शिखर को तोड़ना श्रेयस्कर है, जिससे हमें बहुत-सा उत्तम पानी मिलेगा"- ऐसा विचार कर उन व्यापारियों ने वल्मीक के प्रथम शिखर को तोड़ा, जिससे उनको स्वच्छ, हितकारक, उत्तम, हल्का और स्फटिक के वर्ण जैसा बहुत पानी प्राप्त हुआ। वे सभी प्रसन्न और सन्तुष्ट हुए। उन व्यापारियों ने पानी पिया, अपने बैलों आदि वाहनों को पिलाया और पानी के बर्तन भर लिये।

तत्पश्चात् उन्होंने परस्पर विचार किया-'हे देवानुप्रियो ! प्रथम शिखर को तोड़ने से हम को बहुत-सा उत्तम पानी प्राप्त हुआ है, अब हमें दूसरा शिखर तोड़ना श्रेयस्कर है, जिससे हमें पर्याप्त उत्तम स्वर्ण प्राप्त होगा'--ऐसा विचार कर उन्होंने वल्मीक के दूसरे शिखर को तोड़ा। उसमें से उन्हें स्वच्छ, उत्तम, तापको सहन करने योग्य महाअर्थ वाला और महामूल्य वाला पर्याप्त स्वर्ण मिला। स्वर्ण प्राप्त करने से प्रसन्न और सन्तुष्ट बने हुए उन व्यापारियों ने अपने पात्र भर लिये और वाहनों (गाड़ियों) को भी भर लिया।

फिर तीसरी बार उन्होंने विचार किया कि-'हे देवानुप्रियो ! इस वल्मीकके प्रथम शिखर को तोड़ने से हमें स्वच्छ पानी मिला और दूसरे को तोड़ने से उत्तम स्वर्ण मिला। अतः देवानुप्रियो ! अब तीसरा शिखर तोड़ना श्रेयस्कर है, जिससे हमें उदार मणिरत्न प्राप्त होंगे'-यह विचार कर उन्होंने तीसरा शिखर तोड़ा, जिसमें से उन्हें विमल, निर्मल, गोल, निष्कल(दोष रहित),महान् अर्थ वाले, महा-मूल्य वाले उदार मणिरत्न प्राप्त हुए। मणिरत्नों को प्राप्त करके वे व्यापारी अत्यन्त हृष्ट और तुष्ट हुए। उन्होंने मणिरत्नोंसे अपने पात्र और वाहन भर लिये।

इसके अनन्तर उन्होंने वल्मीकके चौथे शिखरको तोड़नेका निश्चय किया।

उन्होंने सोचा—इससे हमें उत्तम, महामूल्य वाले, महाप्रयोजन वाले और महापुरुषों के योग्य उदार वज्ररत्न प्राप्त होंगे। उन व्यापारियों में से एक वणिक उन सब का हितकामी, सुखकामी, पथ्यकामी, अनुकम्पक और निःश्रेयस चाहने वाला था। उसने अपने सभी साथियोंसे कहा—"हे देवानुप्रियो ! हमें प्रथम शिखर तोड़नेसे स्वच्छ जल मिला, यावत् तीसरे को तोड़ने से मणिरत्न प्राप्त हुए। अब बस कीजिए, अपने लिये इतना पर्याप्त है। अब हमें इस चौथे शिखर को तोड़ना श्रेयस्कर नहीं होगा। कदाचित् चौथा शिखर तोड़ना अपने लिये उपद्रवकारी हो सकता है।"

उस हितकामी यावत् निःश्रेयसकामी वणिककी बात पर उन व्यापारियोंने श्रद्धा, प्रतीति एवं रुचि नहीं की और वल्मीकके चौथे शिखर को तोड़ डाला। शिखर टूटते ही उसमें से उग्र विष वाला, प्रचण्ड विष वाला, घोर विष वाला, महाविष वाला, अतिकाय (बड़ा भारी), मषि और मूषा के समान काले वर्ण वाला, दृष्टि के विष से रोष पूर्ण, काजल के पुञ्ज समान कान्ति वाला, लाल आंखों वाला, चपल एवं चलती हुई दो जिव्हा वाला, पृथ्वीतल की वेणी समान, उत्कट, स्पष्ट, कुटिल, जटिल, कर्कश, विस्तीर्ण, फटाटोप करने (फण को फैला कर विस्तृत करने) में दक्ष, अग्नि से तपाये हुए लोहेके समान धमधमायमान शब्द वाला, उग्र और तीव्र रोष वाला, त्वरित, चपल, धमधमायमान शब्द करने वाला इत्यादि विशेषणोंसे युक्त एक दृष्टि-विष सर्पका उन्हें स्पर्श हुआ। स्पर्श होते ही वह दृष्टि-विष सर्प अत्यन्त कुपित हुआ यावत् मिसमिसाट शब्द करता हुआ शीघ्रतापूर्वक उठा और सरसराट करता हुआ वल्मीक के शिखर पर चढ़कर सूर्य की ओर देखा। सूर्यकी ओर से दृष्टि हटा कर उस महासर्प ने व्यापारी वर्ग की ओर अनिमेष दृष्टि से देखा। सर्पराज की दृष्टि मात्र से उन वणिकों को पात्र और उपकरणों सहित, एक ही प्रहार से कूटाघात (पाषाण मय महा यन्त्र के आघात के समान) से तत्क्षण जला कर भस्म कर दिया। उन वणिकोंमें से जो वणिक् उनका हितकामी यावत् निःश्रेयसकामी था, उस पर अनुकम्पा करके उस नागरूप देव ने भण्डोपकरण सहित अपने नगर में रख दिया (पहुंचा दिया)।'

इस प्रकार हे आनन्द ! तेरे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक, श्रमण ज्ञातपुत्रने उदार (प्रधान) पर्याय प्राप्त की है और देव मनुष्य एवं असुरों सहित इस लोक में 'श्रमण भगवान् महावीर, श्रमण भगवान् महावीर' इस प्रकार की उदार कीर्ति, वर्ण, शब्द और श्लोक (यश) व्याप्त हुआ है, प्रसृत हुआ है और सर्वत्र उनकी प्रशंसा और स्तुति हो रही है। यदि वे आज मुझे कुछ भी कहेंगे, तो मेरे तप-तेज से,,जिस प्रकार सर्प ने एक ही प्रहारसे वणिकों को कूटाघात के समान

जलाकर भस्म कर दिया, उसी प्रकार मैं भी जला कर भस्म कर दूंगा। आनन्द! जिस प्रकार वणिकों के उस हितकामी यावत् निःश्रेयसकामी वणिक् पर नागदेव ने अनुकम्पा की और उसे भण्डोपकरण सहित अपने नगर में पहुंचा दिया, उसी प्रकार मैं तेरा संरक्षण और संगोपन करूंगा। अतः आनन्द! तू जा और अपने धर्माचार्य, धर्मोपदेशक श्रमण ज्ञातपुत्र को यह बात कह दे।"

गोशालक की बात सुनकर आनन्द स्थविर भयभीत हुए। वे वहांसे लौट कर त्वरित गतिसे शीघ्र ही कोष्ठक उद्यानमें, श्रमण भगवान् महावीर स्वामीके समीप आये और तीन वार प्रदक्षिणा एवं वन्दना-नमस्कार कर इस प्रकार बोले–'भगवन्! आज छठ-क्षमणके पारणेके लिए आपकी आज्ञा लेकर श्रावस्ती नगरीमें ऊंच नीच और मध्यम कुलोंमें गोचरीके लिये जाते हुए जब मैं हालाहला कुम्भारिन की दूकान के अदूर सामन्त होकर जा रहा था, तब मंखलिपुत्र गोशालकने मुझे देखा और मुझे बुलाकर कहा–"हे आनन्द! यहां आ और मेरे एक दृष्टान्त को सुन।" तब मैं उसके पास गया। गोशालकने मुझसे इस प्रकार कहा—"आनन्द! आजसे बहुत काल पहले कुछ वणिक् इत्यादि पूर्ववत् यावत् नागदेवने उसे अपने नगरमें पहुंचा दिया। अतः आनन्द! तू जा और अपने धर्माचार्य, धर्मोपदेशक को यावत् कह।" ॥ ५४६ ॥

हे भगवन्! मंखलिपुत्र गोशालक अपने तप-तेजसे एक ही प्रहार में कूटाघात के समान जलाकर भस्म करने में समर्थ है? भगवन्! मंखलिपुत्र गोशालक का यह यावत् विषय मात्र है या वह ऐसा करने में समर्थ है?

हे आनन्द! मंखलिपुत्र गोशालक अपने तप-तेज से यावत् भस्म करने में समर्थ है। आनन्द! मंखलिपुत्र गोशालकका यावत् यह विषय है। आनन्द! वह ऐसा करने में समर्थ है, परन्तु अरिहन्त भगवान् को जलाकर भस्म करनेमें समर्थ नहीं है तथापि उनको परिताप उत्पन्न करने में समर्थ है। हे आनन्द! गोशालक का जितना तप-तेज है, उससे अनगार भगवन्तों का तप-तेज अनन्त गुण विशिष्ट है, क्योंकि अनगार भगवन्त क्षान्तिक्षम (क्षमा करने में समर्थ) हैं। आनन्द! अनगार भगवन्तों का जितना तप-तेज है, उससे अनन्त गुण विशिष्ट तप-तेज स्थविर भगवन्तों का है, क्योंकि स्थविर भगवन्त क्षान्ति-क्षम होते हैं। आनन्द! स्थविर भगवन्तों का जितना तप-तेज होता है, उससे अनन्त गुण विशिष्ट तप-तेज अरिहंत भगवन्तों का होता है, क्योंकि अरिहन्त भगवन्त क्षान्तिक्षम होते हैं। हे आनन्द! मंखलिपुत्र गोशालक अपने तप-तेज द्वारा यावत् भस्म करने में समर्थ है। यह उसका विषय (शक्ति) है और वह वैसा करने में समर्थ भी है। परन्तु अरिहंत भगवन्तोंको भस्म करने में समर्थ नहीं है, केवल परिताप उत्पन्न कर सकता है॥ ५४७ ॥

आनन्द ! अतः तू जा और गौतम आदि श्रमण-निर्ग्रन्थों को कह कि "हे आर्यो ! गोशालक के साथ उसके मतके प्रतिकूल तुम कोई भी धर्मसम्बन्धी चर्चा, प्रतिसारणा (उसके मतके प्रतिकूल अर्थ को स्मरण करने रूप) तथा प्रत्युपचार (तिरस्कार रूप वचन)मत कहना। गोशालक ने श्रमण-निर्ग्रन्थों के प्रति विशेषतः मिथ्यात्व (म्लेच्छपन अथवा अनार्यपन) धारण किया है। भगवान् को वन्दना नमस्कार करके आनन्द स्थविर, गौतम आदि श्रमण-निर्ग्रन्थोंके पास आये और उन्हें सम्बोधन कर इस प्रकार कहा—"हे आर्यो ! आज छठक्षमण पारणेके लिए श्रमण भगवान् महावीर स्वामी की आज्ञा प्राप्त कर मैं श्रावस्ती नगरी में इत्यादि वर्णन। आर्यो ! आप कोई भी गोशालकके साथ उसके मतके प्रतिकूल धर्म-चर्चा मत करना यावत् उसने श्रमण-निर्ग्रन्थों के साथ विशेषतः अनार्यपन धारण किया है ॥५४८॥

जब आनन्द स्थविर, गौतम आदि श्रमण-निर्ग्रन्थों को भगवान्‌की आज्ञा सुना रहे थे, इतने में ही गोशालक आजीविक संघ सहित हालाहला कुम्भारिन की दूकानसे निकल कर, अत्यन्त रोष को धारण करता हुआ शीघ्र और त्वरित गति से कोष्ठक उद्यान में, श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास आया। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से न अति दूर न अति निकट खड़ा रहकर उनसे इस प्रकार कहने लगा—"हे आयुष्मन् ! काश्यप गोत्रीय ! मेरे विषय में तुम अच्छा कहते हो, आयुष्मन् काश्यप ! तुम मेरे विषय में ठीक कहते हो कि मंखलिपुत्र गोशालक मेरा धर्मान्तेवासी है। (परन्तु आपको ज्ञात होना चाहिये कि) जो मंखलिपुत्र गोशालक तुम्हारा धर्मान्तेवासी था, वह तो शुक्ल (पवित्र) और शुक्लाभिजात (पवित्र परिणाम वाला) होकर काल के समय काल करके किसी देवलोक में देवपने उत्पन्न हुआ है। मैं तो कौंडिन्यायन गोत्रीय उदायी हूं। मैंने गौतम-पुत्र अर्जुन के शरीरका त्याग करके मंखलिपुत्र गोशालकके शरीर में प्रवेश कर, यह सातवां परिवृत्तपरिहार (शरीरान्तर प्रवेश) किया है। आयुष्मन् काश्यप ! हमारे सिद्धान्तके अनुसार जो मोक्ष में गये हैं, जाते हैं और जावेंगे, वे सभी चौरासी लाख महाकल्प (काल विशेष) सात देव भव, सात संयूथनिकाय, सात संज्ञी गर्भ (मनुष्य गर्भावास), सात परिवृत्त परिहार (शरीरान्तर प्रवेश) और पांच लाख साठ हजार छह सौ तीन कर्मोंके भेदोंको अनुक्रमसे क्षय करने के पश्चात् सिद्ध होते हैं, बुद्ध होते हैं, मुक्त होते हैं, निर्वाण प्राप्त करते हैं और समस्त दुःखों का अन्त करते हैं। भूतकाल में ऐसा किया है, वर्तमान में करते हैं और भविष्य में करेंगे।

जिस प्रकार गंगा महानदी जहांसे निकलती है और जहां समाप्त होती है, उस गंगा का अद्धा (मार्ग) लम्बाई में पांच सौ योजन है, चौड़ाई में आधा योजन

है, और गहराई में पांच सौ धनुष है। इस प्रकार गंगा के प्रमाण वाली सात गंगा नदियां मिल कर एक महागंगा होती है। सात महागंगा मिलकर एक सादीन गंगा होती है। सात सादीन गंगा मिल कर एक मृत्युगंगा होती है। सात मृत्युगंगा मिलकर एक लोहित गंगा होती है। सात लोहित गंगा मिलकर एक अवन्ती गंगा होती है। सात अवन्ती गंगा मिलकर एक परमावती गंगा होती है। इस प्रकार पूर्वापर मिलकर एक लाख सत्रह हजार छह सौ उनचास गंगा नदियां होती हैं।

उन गंगा नदियों के वालुका कण का दो प्रकार का उद्धार कहा गया है। यथा—सूक्ष्म वोन्दि कलेवर रूप और वादर वोन्दि कलेवर रूप। इनमें से सूक्ष्म वोन्दि कलेवर रूप उद्धार स्थाप्य है (यह निरुपयोगी है), अतएव उसका विचार करने की आवश्यकता नहीं है। उनमें से जो वादर वोन्दि कलेवर रूप उद्धार है, उसमें से सौ-सौ वर्षो में एक-एक वालुका कण निकाला जाय और जितने काल में उक्त गंगाके समुदाय रूप वह कोठा खाली हो, नीरज (रज रहित) हो, निर्लेप हो और निष्ठित (समाप्त) हो, तब एक 'शर प्रमाण' काल कहलाता है। इस प्रकार के तीन लाख शर प्रमाण काल द्वारा एक 'महाकल्प' होता है। चौरासी लाख महाकल्प द्वारा एक 'महामानस' होता है। अनन्त संयूथ (अनंत जीवके समुदाय रूप निकायसे जीव च्यव कर संयूथ–देवभवमें) उपरितन मानस शर प्रमाण आयुष्य द्वारा उत्पन्न होता है और वहां दिव्य भोग भोगता है। उस देवलोकका आयुष्य, देवभव और देव-स्थिति का क्षय होने पर प्रथम संज्ञी गर्भज पञ्चेन्द्रिय मनुष्यपने उत्पन्न होता है। इसके बाद वहां से मर कर तुरन्त मध्यम मानस शर प्रमाण आयुष्य द्वारा संयूथ देवनिकाय में उत्पन्न होता है। वहां दिव्य-भोग भोगता है। वहां से देवलोकका आयुष्य, भव और स्थिति क्षय होने पर दूसरी बार संज्ञीगर्भ (गर्भज मनुष्य)में जन्मता है। इसके बाद वहांसे मर कर तुरन्त अधस्तन मानस शर प्रमाण आयुष्य द्वारा संयूथ (देवनिकाय)में उत्पन्न होता है। वहां दिव्य भोग भोगकर, वहां से च्यव कर तीसरे संज्ञी-गर्भमें जन्मता है। वहां से यावत् निकल कर उपरितन मानसोत्तर (महामानस) आयुष्य द्वारा संयूथ देवनिकायमें उत्पन्न होता है। वहां दिव्य-भोग भोग कर यावत् वहां से च्यव कर चौथे संज्ञी-गर्भ में जन्मता है। वहां से मर कर तुरन्त मध्यम मानसोत्तर आयुष्य द्वारा संयूथ में उपजता है। वहां दिव्य भोग भोग कर यावत् वहां से च्यव कर पांचवें संज्ञी-गर्भ में उत्पन्न होता है। वहां से मर कर तुरन्त अधस्तन मानसोत्तर आयुष्य द्वारा संयूथ में उत्पन्न होता है। वहां दिव्य-भोग भोग कर यावत् वहां से च्यव कर छठे संज्ञी गर्भ में उत्पन्न होता है।

वहां से मर कर तुरन्त जो ब्रह्मलोक नामक कल्प (देवलोक) कहा गया है, वह पूर्व-पश्चिम लम्बा है और उत्तर-दक्षिण चौड़ा है प्रज्ञापना सूत्रके दूसरे स्थान-

पदके अनुसार वर्णन, यावत् उसमें पांच अवतंसक विमान कहे गये हैं। यथा—अशोकावतंसक यावत् वे प्रतिरूप (सुन्दर) हैं। उस देवलोक में उत्पन्न होता है। वहां दस सागरोपम तक दिव्य भोग भोग कर यावत् वहां से च्यव कर सातवें संज्ञी गर्भ में उत्पन्न होता है। वहां नौ मास और साढ़े सात रात्रि-दिवस व्यतीत होने पर सुकुमाल, भद्र, मृदु और दर्भ के कुण्डल के समान संकुचित केश वाला, कानके आभूषणोंसे जिसके कपोल-भाग शोभित हो रहे हैं ऐसा देवकुमारके समान कान्ति वाला एक बालक जन्मा। काश्यप! वह मैं हूं। इसके पश्चात् आयुष्मन् काश्यप! कुमारावस्था में प्रव्रज्या द्वारा, कुमारावस्था में ब्रह्मचर्य द्वारा, अविद्ध कर्ण (व्युत्पन्न बुद्धि वाले) मुझे प्रव्रज्या ग्रहण करने की बुद्धि उत्पन्न हुई और सात परिवृत्त परिहार (शरीरान्तर प्रवेश) में संचार किया। यथा—१ ऐणेयक, २ मल्लराम, ३ मण्डिक, ४ रोह, ५ भारद्वाज, ६ गौतमपुत्र अर्जुन और ७ मंखलिपुत्र गोशालक के शरीर में प्रवेश किया।

इनमें से जो प्रथम परिवृत्त-परिहार(शरीरान्तर प्रवेश)राजगृह नगरके बाहर मण्डिकुक्षि नामक उद्यानमें, कुण्डियायन गोत्रीय उदायन के शरीर का त्याग करके ऐणेयकके शरीरमें प्रवेश किया, प्रवेश करके बाईस वर्ष तक प्रथम शरीरान्तरमें परि-वर्तन किया। दूसरे परिवृत्त-परिहारमें उदण्डपुर नगरके बाहर चन्द्रावतरण उद्यान में ऐणेयक के शरीर का त्याग कर मल्लरामके शरीरमें प्रवेश किया और इक्कीस वर्ष तक दूसरे परिवृत्त-परिहार का उपभोग किया। तीसरा परिवृत्त-परिहार चम्पा नगरीके बाहर अंगमन्दिर नामक उद्यानमें, मल्लरामके शरीरका त्याग कर के मण्डिकके शरीरमें प्रवेश किया और वहां बीस वर्ष तक तीसरे परिवृत्त-परिहार का उपभोग किया। चौथा परिवृत्त-परिहार वाराणसी नगरीके बाहर काम महा-वन नामक उद्यानमें मण्डिक के शरीर का त्याग कर रोहकके शरीरमें प्रवेश किया और उन्नीस वर्ष तक चौथे परिवृत्त-परिहार का उपभोग किया। पांचवां परिवृत्त-परिहार आलभिका नगरी के बाहर प्राप्तकाल नामक उद्यानमें रोहकके शरीरका त्याग करके भारद्वाजके शरीरमें प्रवेश किया और अठारह वर्ष तक पांचवें परि-वृत्त-परिहार का उपभोग किया। छठा परिवृत्त-परिहार वैशाली नगरीके बाहर कुण्डियायन नामक उद्यानमें भारद्वाजके शरीर का त्याग करके गौतमपुत्र-अर्जुन के शरीरमें प्रवेश किया और वहां सत्रह वर्ष तक छठे परिवृत्त-परिहार का उपभोग किया।

सातवाँ परिवृत्त परिहार इसी श्रावस्ती नगरीमें हालाहला कुम्भारिन की दूकान में गौतमपुत्र अर्जुनके शरीरका त्याग करके मंखलिपुत्र गोशालक का शरीर समर्थ, स्थिर, ध्रुव, धारण करने योग्य, शीत को सहन करने वाला, उष्णता को सहन करने वाला, क्षुधाको सहन करने वाला, डांस-मच्छर आदिके विविध परीषह

और उपसर्गोंको सहन करने वाला तथा स्थिर संहनन वाला है, ऐसा समझ कर उसमें प्रवेश किया और इसमें सोलह वर्ष तक इस सातवें परिवृत्त-परिहार का उपभोग करता हूं। इस प्रकार आयुष्मन् काश्यप ! मैंने एक सौ तेतीस वर्षो में ये सात परिवृत्त-परिहार किये हैं। ऐसा मैंने कहा है। इसलिये आयुष्मन् काश्यप ! तुम मुझे ठीक कहते हो। आयुष्मन् काश्यप ! तुम मुझे खूब अच्छा कहते हो कि 'मंखलिपुत्र गोशालक मेरा धर्मान्तेवासी है २।' ॥५४६॥

(गोशालक के उपर्युक्त कथन पर) श्रमण भगवान् महावीर स्वामीने मंखलिपुत्र गोशालकसे कहा—"हे गोशालक ! जिस प्रकार कोई चोर, ग्रामवासियों के द्वारा पराभव पाता हुआ, खड्डा, गुफा, दुर्ग (दुःख पूर्वक—कठिनतासे जाने योग्य स्थान), निम्न (नीचा स्थान), पर्वत या विषम स्थान को प्राप्त नहीं करता हुआ, एक ऊन के बड़े रोम (केश) से, सन के रोमसे, कपास के रोम से और तृण के अग्रभाग से अपनेको ढककर बैठ जाय और वह नहीं ढका हुआ भी अपने-आपको ढका (छुपा) हुआ माने, अप्रच्छन्न होते हुए भी अपने आपको छिपा हुआ माने, लुका हुआ नहीं होते हुए भी अपने आपको लुका हुआ माने, अपलापित (गुप्त) नहीं होते हुए भी अपने आपको गुप्त माने, उसी प्रकार गोशालक ! तू अन्य (दूसरा)नहीं होते हुए भी अपने आपको अन्य बता रहा है। गोशालक ! तू ऐसा मत कर। तू ऐसा करनेके योग्य नहीं है। तू वही है, तेरी वही प्रकृति है। तू अन्य नहीं हैं ॥५५०॥"

जब श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने इस प्रकार कहा, तब गोशालक अत्यंत कुपित हुआ और श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को अनेक प्रकारके अनुचित एवं आक्रोश पूर्ण वचनोंसे तिरस्कार करने लगा। वह अनेक प्रकार की उद्घर्षणा (पराभव) युक्त वचनोंसे अपमान करने लगा। वह अनेक प्रकार की निर्भर्त्सना द्वारा निर्भर्त्सित करने लगा। अनेक प्रकारके कर्कश वचनों से अपमानित करने लगा। यह सब करके गोशालक बोला—'मैं मानता हूं कि कदाचित् आज तू नष्ट हुआ है, कदाचित्...विनष्ट..., कदाचित्...भ्रष्ट...,कदाचित् आज तू नष्ट, विनष्ट और भ्रष्ट हुआ है। आज तू जीवित नहीं रह सकता। मेरे द्वारा तेरा सुख (शुभ) होने वाला नहीं है ॥५५१॥

उस काल उस समयमें श्रमण भगवान् महावीर स्वामी का पूर्वदेशमें उत्पन्न सर्वानुभूति अनगार था, जो प्रकृतिका भद्र और विनीत था। वह अपने धर्माचार्य के अनुरागसे गोशालक की बात पर अश्रद्धा करता हुआ उठा और गोशालक के पास जा कर इस प्रकार कहने लगा—"हे गोशालक ! जो मनुष्य तथारूप श्रमण-माहण के पास एक भी आर्य (निर्दोष) धार्मिक सुवचन सुनता है, वह उनको वन्दन-नमस्कार करता है, यावत् उन्हें कल्याणकारी, मंगलकारी, देवरूप, ज्ञान-स्वरूप मानकर पर्युपासना करता है, तो गोशालक ! तेरे लिये तो कहना ही क्या ?

भगवान् ने तुझे दीक्षा दी, तुझे शिष्य रूप से स्वीकार किया और तुझे मुण्डित किया, भगवान् ने तुझे व्रत समाचारी सिखाई, भगवान् ने तुझे (तेजोलेश्या आदि विषयक) उपदेश देकर शिक्षित किया और भगवान् ने तुझे बहुश्रुत बनाया, इतने पर भी तू भगवान् के साथ अनार्यपना कर रहा है ? गोशालक ! तू ऐसा मत कर। गोशालक ! तू ऐसा करने के योग्य नहीं है। तू वही मंखलिपुत्र गोशालक है, दूसरा नहीं। तेरी वही प्रकृति है।" सर्वानुभूति अनगार की बात सुन कर गोशालक अत्यन्त कुपित हुआ और अपने तप-तेज के द्वारा एक ही प्रहार में कूटाघात की तरह सर्वानुभूति अनगारको जलाकर भस्म कर दिया। उन्हें भस्म करके गोशालक फिर श्रमण भगवान् महावीर स्वामीको अनेक प्रकारके आक्रोश वचनोंसे अपशब्द कहने लगा, यावत् 'आज मेरे से तुम्हें सुख (शुभ) होने वाला नहीं है।'

उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी का अन्तेवासी कौशल देश (अयोध्या देश) में उत्पन्न सुनक्षत्र नामक अनगार था, जो प्रकृति से भद्र और विनीत था। उसने भी धर्माचार्य के अनुराग से सर्वानुभूति के समान गोशालक को यथार्थ बात कही, यावत् गोशालक ! तू वही है, तेरी वही प्रकृति है, तू अन्य नहीं है। सुनक्षत्र अनगार के ऐसा कहने पर गोशालक अत्यन्त कुपित हुआ और अपने तप-तेज से सुनक्षत्र अनगार को भी जलाया। मंखलिपुत्र गोशालक के तप-तेजसे जला हुआ सुनक्षत्र अनगार श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के निकट आया और तीन बार प्रदक्षिणा देकर वन्दन नमस्कार किया, वन्दन-नमस्कार करके स्वयं पंच महाव्रतों का उच्चारण किया और सभी साधु-साध्वियों को खमाया, फिर आलोचना और प्रतिक्रमण करके समाधि प्राप्त कर अनुक्रम से कालधर्म को प्राप्त हुआ।

अपने तप-तेज से सुनक्षत्र अनगार को जला कर गोशालक तीसरी बार फिर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी पर अनेक प्रकार के अनुचित वचनों द्वारा आक्रोश करने लगा, इत्यादि पूर्ववत्, यावत् 'आज मुझ से तुम्हारा शुभ होने वाला नहीं है।' तब श्रमण भगवान् महावीर स्वामीने मंखलिपुत्र गोशालक से इस प्रकार कहा-'हे गोशालक ! जो तथा-प्रकार के श्रमण-माहण से एक भी आर्य धार्मिक सुवचन सुनता है, इत्यादि, यावत् वह भी उसकी पर्युपासना करता है तो गोशालक ! तेरे विषय में तो कहना ही क्या है ? मैंने तुझे प्रव्रजित किया यावत् मैंने तुझे बहुश्रुत किया, अब मेरे साथ ही तूने इस प्रकार मिथ्यात्व (अनार्यपन) स्वीकार किया है। गोशालक ! ऐसा मत कर। ऐसा करना तुझे योग्य नहीं है। यावत् तू वही है, अन्य नहीं है। तेरी वही प्रकृति है।"

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के ऐसा कहने पर गोशालक अत्यन्त कुपित हुआ और तैजस् समुद्घात कर के सात, आठ चरण पीछे हटा और श्रमण

भगवान् महावीर स्वामी का वध करने के लिये अपने शरीर में से तेजोलेश्या निकाली। जिस प्रकार वातोत्कलिका (ठहर-ठहर कर चलने वाली वायु) और मण्डलाकार वायु, पर्वत, भींत, स्तम्भ या स्तूप द्वारा स्खलित एवं निवृत्त हो जाती हैं किन्तु उसे गिराने में समर्थ—विशेष समर्थ नहीं हो सकती, इसी प्रकार श्रमण भगवान् महावीर स्वामी का वध करने के लिये मंखलिपुत्र गोशालक द्वारा अपने शरीर में से बाहर निकाली हुई तपोजन्य तेजोलेश्या, भगवान् को क्षति पहुंचाने में समर्थ नहीं हुई। परन्तु वह गमनागमन करने लगी, फिर उसने प्रदक्षिणा दी और आकाश में ऊंची उछली। फिर आकाश से नीचे गिरती हुई वह तेजो-लेश्या गोशालक के शरीर में प्रविष्ट हो गई और उसे जलाने लगी।

वह अपनी ही तेजोलेश्या से पराभव को प्राप्त हुआ। क्रुद्ध गोशालक ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से कहा—"आयुष्मन् काश्यप! मेरी तपोजन्य तेजोलेश्या द्वारा पराभव को प्राप्त होकर तू पित्त-ज्वर युक्त शरीर वाला होगा और छह मास के अन्त में दाह की पीड़ा से छद्मस्थ अवस्था में ही मर जायगा।" तब श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने गोशालक से इस प्रकार कहा—"हे गोशा-लक! तेरी तपोजन्य तेजोलेश्या से पराभव को प्राप्त होकर मैं छह मास के अन्त में यावत् काल नहीं करूंगा, परन्तु दूसरे सोलह वर्ष तक जिनपने गन्धहस्ती के समान विचरूंगा। परन्तु गोशालक! तू स्वयं अपनी ही तेजोलेश्या से पराभव को प्राप्त होकर सात रात्रि के अन्त में पित्त-ज्वर से पीड़ित होकर, छद्मस्थ अवस्था में ही काल कर जायगा।"

श्रावस्ती नगरी में शृंगाटक यावत् राजमार्ग में बहुत से मनुष्य कहने लगे यावत् प्ररूपणा करने लगे—"हे देवानुप्रियो! श्रावस्ती नगरी के बाहर, कोष्ठक उद्यान में दो जिन परस्पर संलाप करते हैं, उनमें से एक इस प्रकार कहता है कि 'तू पहले मर जायगा।' और दूसरा उसे कहता है कि तू ......।' इन दोनों में न मालूम कौन सत्यवादी है और कौन मिथ्यावादी है।" उन लोगों में से जो प्रधान मनुष्य थे, वे कहने लगे कि "श्रमण भगवान् महावीर स्वामी सत्यवादी हैं और मंखलिपुत्र गोशालक मिथ्यावादी है।"

तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने श्रमण निर्ग्रन्थों को सम्बोधित कर कहा—"हे आर्यो! जिस प्रकार तृण-राशि, काष्ठ-राशि, पत्र-राशि, त्वचा (छाल) राशि, तुष-राशि, भूसा-राशि, गोमय (गोबर) राशि, और अवकर (कचरा) राशि, अग्नि से दग्ध, अग्निसे नष्ट एवं परिणामान्तर को प्राप्त होती है और जिसका तेज हत हो गया हो, तेज चला गया हो, नष्ट हो गया हो, भ्रष्ट हो गया हो, लुप्त हो गया हो यावत् उसी प्रकार मंखलिपुत्र गोशालक ने मेरे वध के लिए अपने शरीर से तेजोलेश्या बाहर निकाली थी, अब

उसका तेज हत (नष्ट) हो गया है यावत् उसका तेज नष्ट, विनष्ट, भ्रष्ट हो गया है। इसलिये आर्यो! अब तुम अपनी इच्छानुसार गोशालक के साथ धर्म-चर्चा करो। धार्मिक प्रतिप्रेरणा, प्रतिसारणा आदि करो और अर्थ, हेतु, प्रश्न, व्याकरण और कारणों के द्वारा पूछे हुए प्रश्न का उत्तर न बन सके, इस प्रकार निरुत्तर करो।

जब श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने ऐसा कहा, तब श्रमण-निर्ग्रंथों ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना-नमस्कार किया और गोशालक के साथ धर्म सम्बन्धी प्रतिप्रेरणा (उसके मतके प्रतिकूल वचन), प्रतिसारणा (उसके मत के प्रतिकूल अर्थ का स्मरण कराना) तथा प्रत्युपचार किया और अर्थ हेतु तथा कारण आदि द्वारा उसे निरुत्तर किया।

श्रमण निर्ग्रन्थों द्वारा प्रतिप्रेरणा एवं अर्थ, हेतु, व्याकरण एवं प्रश्नों से यावत् निरुत्तर किया गया, तब गोशालक अत्यन्त कुपित हुआ, यावत् मिसमिसाहट करता हुआ क्रोध से अत्यन्त प्रज्वलित हुआ, परन्तु श्रमण-निर्ग्रन्थों के शरीर को कुछ भी पीड़ा, उपद्रव तथा अवयव-छेद करनेमें समर्थ नहीं हुआ। जब आजीविक स्थविरों ने यह देखा कि श्रमण-निर्ग्रंथोंसे धर्म सम्बन्धी प्रतिप्रेरणा, प्रतिसारणा और प्रत्युपचार द्वारा तथा अर्थ, हेतु, व्याकरण, प्रश्नोत्तर से गोशालक निरुत्तर कर दिया गया है, जिससे गोशालक अत्यन्त कुपित यावत् क्रोध से प्रज्वलित हो रहा है, किन्तु श्रमण-निर्ग्रंथों के शरीर को कुछ भी पीड़ा उपद्रव एवं अवयव-छेद नहीं कर सका, तब वे आजीविक मंखलिपुत्र गोशालक के आश्रय से निकल कर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के आश्रय में आये और तीन वार प्रदक्षिणा करके वन्दना-नमस्कार किया, तथा श्रमण भगवान् महावीर स्वामी का आश्रय लेकर विचरने लगे और कुछ आजीविक स्थविर, मंखलिपुत्र गोशालक का आश्रय लेकर ही विचरते रहे।

मंखलिपुत्र गोशालक जिस कार्य को सिद्ध करने के लिये आया था, वह सिद्ध नहीं कर सका, तब वह दिशाओं की ओर लम्बी दृष्टि फेंकता हुआ, दीर्घ और गरम-गरम निःश्वास छोड़ता हुआ, दाढ़ी के वालोंको नोचता हुआ, गर्दन के पीछे के भाग को खुजलाता हुआ, पुत-प्रदेश को प्रस्फोटित करता हुआ, हाथों को हिलाता हुआ और दोनों पैरों को भूमि पर पटकता हुआ-"हा हा !! अरे ! मैं मारा गया"-ऐसा विचार कर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के समीप से और कोष्ठक उद्यान से निकल कर श्रावस्ती नगरी में हालाहला कुम्भारिन की दुकान में आया। इसके अनन्तर हाथमें आम्रफल (आम की गुठली) लिया और मद्यपान करता हुआ, वारम्वार गाता हुआ, वारम्वार नाचता हुआ, वारंवार हालाहला कुम्भारिन को अञ्जलि करता हुआ और मिट्टी के वर्तन में

कर थोड़ा चूसे या विशेष रूप से चूसे परन्तु पानी नहीं पीवे। यह त्वचा पानी कहा गया है।

सिम्बली पानी किस प्रकार का होता है ? कलाय सिम्बली (धान्य विशेष) मूंग की फली, उड़द की फली, सिम्बली (वृक्ष विशेष)की फली आदि अपक्व और कच्ची हो उनको मुख में थोड़ा चबावे, विशेष चबावे, परन्तु उसका पानी नहीं पीवे। यह सिम्बली पानी कहलाता है। शुद्ध पानी किस प्रकारका होता है ? जो छह महीने तक शुद्ध खादिम आहार खाता है, छह महीनों में से दो महीने तक पृथ्वी संस्तारक पर सोता है और दो महीने लकड़ीके संस्तारक पर सोता है और दो महीने तक दर्भ के संस्तारक पर सोता है, इस प्रकार छह महीने पूर्ण होने पर अंतिम रात्रि में उसके पास महर्द्धिक यावत् महासुख वाले दो देव प्रकट होते हैं। यथा—पूर्णभद्र और माणिभद्र। वे देव शीतल और गीले हाथोंसे उसके शरीर के अवयवों का स्पर्श करते हैं। उन देवों की जो अनुमोदना करता है, वह आशीविष कर्म करता है और जो उन देवों की अनुमोदना नहीं करता, उसके स्वयं के शरीर में अग्निकाय उत्पन्न हो जाती है। वह अग्निकाय अपने तेज द्वारा उसके शरीर को जलाती है। तत्पश्चात् वह सिद्ध हो जाता है यावत् समस्त दुःखों का अन्त करता है। वह शुद्ध-पानक कहलाता है।

उस श्रावस्ती नगरी में अयंपुल नाम का आजीविक मत का उपासक रहता था। वह ऋद्धि सम्पन्न यावत् अपराभूत था। वह हालाहला कुम्भारिन की तरह यावत् आजीविक सिद्धान्त से अपनी आत्मा को भावित करता हुआ रहता था। किसी दिन रात्रि के पिछले पहर में कुटुम्ब-जागरणा करते हुए अयंपुल आजीविकोपासक को यह विचार उत्पन्न हुआ--'हल्ला' नामक कीट विशेष का आकार कैसा होता है।" फिर अयंपुल आजीविकोपासक को विचार उत्पन्न हुआ कि 'मेरे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक मंखलिपुत्र गोशालक उत्पन्न ज्ञान, दर्शन को धारण करने वाले यावत् सर्वज्ञ-सर्वदर्शी हैं। वे इसी श्रावस्ती नगरी में हालाहला कुम्भारिन की दूकान में आजीविक संघ सहित, आजीविक सिद्धान्त से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरते हैं। अतः कल प्रातःकाल यावत् सूर्योदय होने पर गोशालक को वन्दन और पर्युपासना कर यह प्रश्न पूछना मेरे लिये श्रेयस्कर है। ऐसा विचार कर दूसरे दिन प्रातःकाल सूर्योदय होने पर स्नान किया, फिर अल्पभार और महामूल्यवान् आभूषणों से अपने शरीर को अलंकृत कर वह अपने घर से बाहर निकला और पैदल चलता हुआ हालाहला कुम्भारिन की दूकान पर आया। उसने गोशालक को हाथ में आम्रफल लिये हुए यावत् हालाहला कुम्भारिन को बारंबार अंजली-कर्म करते हुए एवं मिट्टी मिश्रित शीतल जल द्वारा अपने

रहे हुए मिट्टी मिश्रित शीतल पानी से अपने शरीर को सिंचन करता हुआ विचरने लगा ॥ ५५२ ॥

"हे आर्यो !" इस प्रकार सम्बोधन कर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने श्रमण-निर्ग्रंथों को बुला कर कहा—आर्यो ! मंखलिपुत्र गोशालक ने मेरा वध करने के लिए अपने शरीर में से जो तेजोलेश्या निकाली थी, वह निम्नलिखित सोलह देशों का घात करने में, वध करने में, उच्छेदन करने में और भस्म करने में समर्थ थी। यथा—१ अंग, २ वंग, ३ मगध, ४ मलय, ५ मालव, ६ अच्छ, ७ वत्स, ८ कौत्स, ९ पाट, १० लाट, ११ वज्र, १२ मौली, १३ काशी, १४ कौशल, १५ अवाव और १६ संभुक्तर।

आर्यो ! मंखलिपुत्र गोशालक, हालाहला कुम्भारिन की दूकान में, आम्र-फल हाथ में ग्रहण करके मद्यपान करता हुआ यावत् वारम्वार अंजलि-कर्म करता हुआ विचरता है। वह अपने दोषों को ढकने के लिये इन आठ 'चरम' वस्तुओं की प्ररूपणा करता है। यथा—१ चरम पान, २ चरम गान, ३ चरम नाट्य, ४ चरम अंजलिकर्म, ५ चरम पुष्कल-संवर्तक महामेघ, ६ चरम सेचनक-गंधहस्ती, ७ चरम महाशिला कण्टक संग्राम और मैं ८ (मंखलिपुत्र गोशालक) इस अवसर्पिणी काल में चौवीस तीर्थंकरों में से चरम तीर्थंकरपने सिद्ध होऊंगा यावत् समस्त दुःखों का अन्त करूंगा। आर्यो ! मंखलिपुत्र गोशालक मिट्टी के पात्रमें रहे हुए मिट्टी मिश्रित शीतल पानी द्वारा अपने शरीर का सिंचन करता हुआ विचरता है। इस पाप को छिपाने के लिए चार प्रकार के पानक (पीने योग्य) और चार प्रकारके अपानक (नहीं पीने योग्य, किन्तु शीतल और दाहोपशमक) की प्ररूपणा करता है।

पानी कितने प्रकार का कहा गया है ? पानी चार प्रकारका कहा गया है। यथा—गाय की पीठ से गिरा हुआ, हाथ से मसला हुआ, सूर्य के तापसे तपा हुआ और शिला से गिरा हुआ। यह चार प्रकार का पानी है। अपानक कितने प्रकार का है ? अपानक चार प्रकारका कहा गया है। यथा—स्थाल का पानी, वृक्षादि की छाल का पानी, सिम्बली (मटर आदि) की फली का पानी और शुद्ध पानी।

स्थाल पानी कितने प्रकार का कहा गया है ? पानी से भीगा हुआ स्थाल, पानी से भीगा हुआ वारक (करवा—मिट्टी का छोटा वर्त्तन), पानी से भीगा हुआ घड़ा (वड़ा घड़ा)। पानी से भीगा हुआ कलश अथवा पानी से भीगा हुआ मिट्टी का वर्त्तन, जिसका हाथ से स्पर्श करे, परन्तु पानी पीवे नहीं। यह स्थाल-पानी कहा गया है। त्वचा पानी (वृक्षादि की छाल का पानी) किस प्रकार का होता है ? आम्र, अम्बाडग इत्यादि प्रज्ञापना सूत्र के सोलहवें प्रयोग पदके अनुसार यावत् वोर, तिन्दुरुक पर्यन्त। वह तरुण (अपक्व) और कच्चा हो, उसे मुख में रख

कर थोड़ा चूसे या विशेष रूप से चूसे परन्तु पानी नहीं पीवे। यह त्वचा पानी कहा गया है।

सिम्वली पानी किस प्रकार का होता है ? कलाय सिम्वली (धान्य विशेष) मूंग की फली, उड़द की फली, सिम्वली (वृक्ष विशेष)को फली आदि अपक्व और कच्ची हो उनको मुख में थोड़ा चवावे, विशेष चवावे, परन्तु उसका पानी नहीं पीवे । यह सिम्वली पानी कहलाता है। शुद्ध पानी किस प्रकारका होता है ? जो छह महीने तक शुद्ध खादिम आहार खाता है, छह महीनों में से दो महीने तक पृथ्वी संस्तारक पर सोता है और दो महीने लकड़ीके संस्तारक पर सोता है और दो महीने तक दर्भ के संस्तारक पर सोता है, इस प्रकार छह महीने पूर्ण होने पर अंतिम रात्रि में उसके पास महर्द्धिक यावत् महासुख वाले दो देव प्रकट होते हैं। यथा—पूर्णभद्र और माणिभद्र। वे देव शीतल और गीले हाथोंसे उसके शरीर के अवयवों का स्पर्श करते हैं। उन देवों की जो अनुमोदना करता है, वह आशीविष कर्म करता है और जो उन देवों की अनुमोदना नहीं करता, उसके स्वयं के शरीर में अग्निकाय उत्पन्न हो जाती है। वह अग्निकाय अपने तेज द्वारा उसके शरीर को जलाती है। तत्पश्चात् वह सिद्ध हो जाता है यावत् समस्त दुःखों का अन्त करता है। वह शुद्ध-पानक कहलाता है।

उस श्रावस्ती नगरी में अयंपुल नाम का आजीविक मत का उपासक रहता था। वह ऋद्धि सम्पन्न यावत् अपराभूत था। वह हालाहला कुम्भारिन की तरह यावत् आजीविक सिद्धान्त से अपनी आत्मा को भावित करता हुआ रहता था। किसी दिन रात्रि के पिछले पहर में कुटुम्ब-जागरणा करते हुए अयंपुल आजीविकोपासक को यह विचार उत्पन्न हुआ—'हल्ला' नामक कीट विशेष का आकार कैसा होता है।" फिर अयंपुल आजीविकोपासक को विचार उत्पन्न हुआ कि 'मेरे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक मंखलिपुत्र गोशालक उत्पन्न ज्ञान, दर्शन को धारण करने वाले यावत् सर्वज्ञ-सर्वदर्शी हैं। वे इसी श्रावस्ती नगरी में हालाहला कुम्भारिन की दूकान में आजीविक संघ सहित, आजीविक सिद्धान्त से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरते हैं। अतः कल प्रातःकाल यावत् सूर्योदय होने पर गोशालक को वन्दन और पर्युपासना कर यह प्रश्न पूछना मेरे लिये श्रेयस्कर है। ऐसा विचार कर दूसरे दिन प्रातःकाल सूर्योदय होने पर स्नान किया, फिर अल्पभार और महामूल्यवान् आभूषणों से अपने शरीर को अलंकृत कर वह अपने घर से बाहर निकला और पैदल चलता हुआ हालाहला कुम्भारिन की दूकान पर आया। उसने गोशालक को हाथ में आम्रफल लिये हुए यावत् हालाहला कुम्भारिन को वारंवार अंजली-कर्म करते हुए एवं मिट्टी मिश्रित शीतल जल द्वारा अपने

शरीर के अवयवों को सिंचन करते हुए देखा और देखते ही लज्जित, उदास और व्रीडित (अधिक लज्जित) हुआ। वह धीरे-धीरे पीछे हटने लगा।

तब आजीविक स्थविरों ने आजीविकोपासक अयंपुल को लज्जित होकर पीछे जाते हुए देखा तो उसे सम्बोधन कर कहा-"हे अयंपुल ! यहां आओ !" आजीविक स्थविरों से सम्बोधित होकर अयंपुल उनके पास आया और उन्हें वन्दना-नमस्कार कर के उन के समीप बैठ कर पर्युपासना करने लगा। तब आजीविक स्थविरों ने उससे कहा--"हे अयंपुल ! आज पिछली रात्रि के समय यावत् तुझे ऐसा विचार उत्पन्न हुआ कि 'हल्ला' का आकार कैसा होता है, यावत् मैं अपने धर्माचार्य गोशालक को पूछ कर निर्णय करूं," यावत् तू आया है। अयंपुल ! यह बात सत्य है ?" (अयंपुल ने कहा) "हां, सत्य है।"

अयंपुल ! तुम्हारे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक मंखलिपुत्र गोशालक हालाहला कुम्भारिन की दुकान में आम्रफल हाथ में लेकर यावत् अञ्जलि करते हुए विचरते हैं। वे भगवान् गोशालक आठ चरम की प्ररूपणा करते हैं। यथा--चरम पानक यावत् वे सब दुःखों का अन्त करेंगे। अयंपुल ! तुम्हारे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक मंखलिपुत्र गोशालक मिट्टी मिश्रित शीतल पानी से अपने शरीर का सिंचन करते हुए विचरते हैं। इस विषय में भी वे भगवान् चार पानक और चार अपानक की प्ररूपणा करते हैं, यावत् वे सिद्ध होते हैं और समस्त दुःखों का अन्त करते हैं, अतः अयंपुल ! तू जा और अपने धर्माचार्य, धर्मोपदेशक मंखलिपुत्र गोशालक को अपना प्रश्न पूछ।

आजीविक स्थविरों के कहने पर अयंपुल हृष्टतुष्ट हुआ और गोशालक के पास जाने लगा, तब आजीविक-स्थविरों ने गोशालक को उस आम्रफल को एकान्त में डालने के लिए संकेत किया। उनका संकेत जान कर गोशालक ने आम्रफल को एक ओर डाल दिया। इसके पश्चात् अयंपुल गोशालक के पास गया और उसे तीन बार प्रदक्षिणा करके यावत् पर्युपासना करने लगा।

गोशालक ने अयंपुल से पूछा--"हे अयंपुल ! रात्रि के पिछले पहर में यावत् तुझे संकल्प उत्पन्न हुआ, जिससे तू मेरे पास आया है, क्या यह बात सत्य है ?" "हां भगवन् ! सत्य है।" "अयंपुल ! मेरे हाथ में आम की गुठली नहीं थी, आम्रफल की छाल थी। अयंपुल ! तुझे 'हल्ला' का आकार जानने की इच्छा हुई थी, उसका उत्तर यह है कि -वांस के मूल के आकार 'हल्ला' होती है। (तत्पश्चात् उन्माद के वश गोशालक कहता है) "हे वीरा ! वीणा वजाओ।..."तत्पश्चात् मंखलि-पुत्र गोशालक से अपने प्रश्न का उत्तर सुन कर हृष्टतुष्ट चित्त वाले अयंपुल ने उसे वन्दन-नमस्कार किया, प्रश्न पूछे, अर्थ ग्रहण किया और गोशालक को वन्दन-नमस्कार करके यावत् अपने स्थान पर चला गया।

मंखलिपुत्र गोशालक ने अपना मरण-काल निकट जान कर आजीविक स्थविरों को अपने पास बुलाया, और इस प्रकार कहा--'हे देवानुप्रियो ! जब मैं काल-धर्म को प्राप्त हो जाऊं, तब सुगन्धित गन्धोदक से मुझे स्नान कराना, फिर सुकुमाल गन्ध-काषायिक वस्त्र से मेरे शरीर को पोंछना और सरस गोशीर्ष-चन्दन से शरीर का विलेपन करना। फिर हंस के चिन्ह वाला महामूल्यवान् पटशाटक पहनाना, फिर सभी अलंकारों से विभूषित करना। इसके बाद हजार पुरुषों से उठाने योग्य शिविका में बिठाना। शिविका में बिठा कर श्रावस्ती नगरी के शृंगाटक यावत् राजमार्गों में उच्च स्वरसे उद्घोषणा करते हुए इस प्रकार कहना मंखलिपुत्र गोशालक जिन, जिन-प्रलापी यावत् जिन शब्द का प्रकाश करता हुआ विचर कर, इस अवसर्पिणी काल के चौबीस तीर्थकरों में से अन्तिम तीर्थंकर होकर सिद्ध हुआ है यावत् समस्त दुःखों से रहित हुआ है।" इस प्रकार ऋद्धि और सत्कार के समुदाय से मेरे शरीर को बाहर निकालना।' आजीविक स्थविरों ने मंखलिपुत्र गोशालक की बात को विनयपूर्वक स्वीकार किया ॥५५३॥

तत्पश्चात् जब सातवीं रात्रि व्यतीत हो रही थी, तब गोशालक को सम्यक्त्व प्राप्त हुई और उसे इस प्रकार का अध्यवसाय यावत् उत्पन्न हुआ कि "मैं वास्तव में जिन नहीं हूं, तथापि मैं जिन-प्रलापी यावत् जिन शब्द का प्रकाश करता हुआ विचरा हूं। मैं श्रमणोंका घातक, श्रमणोंको मारने वाला, श्रमणोंका प्रत्यनीक (विरोधी), आचार्य, उपाध्यायका अपयश करने वाला, अवर्णवाद एवं अपकीर्ति करने वाला मंखलिपुत्र गोशालक हूं। मैं अत्यधिक असद्भावना पूर्ण मिथ्याभिनिवेशसे अपने आपको, दूसरोंको और स्व-पर उभय को व्युद्ग्राहित (भ्रान्त) करता हुआ, व्युत्पादित (मिथ्यात्व युक्त) करता हुआ विचरा और अपनी ही तेजोलेश्या से पराभूत होकर पित्तज्वर से व्याप्त तथा दाह से जलता हुआ छद्मस्थ अवस्था में ही सात रात्रि के अन्त में काल करूंगा। वास्तव में श्रमण भगवान् महावीर ही जिन हैं और जिनप्रलापी यावत् जिन शब्द का प्रकाश करते हुए विचरते हैं।"

इस प्रकार विचार कर गोशालक ने आजीविक स्थविरों को अपने पास बुलाया और अनेक प्रकार की शपथ दिला कर कहा—'मैं वास्तव में जिन नहीं हूं, फिर भी जिन-प्रलापी यावत् जिन शब्दका प्रकाश करता हुआ विचरा हूं। मैं वही मंखलिपुत्र गोशालक हूं। मैं श्रमणोंकी घात करने वाला हूं यावत् छद्मस्थ अवस्था में ही काल कर जाऊंगा। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी वास्तव में जिन, जिन-प्रलापी यावत् जिन शब्दका प्रकाश करते हुए विचरते हैं। इसलिये हे देवानुप्रियो ! जब मैं काल-धर्म को प्राप्त हो जाऊं, तब मेरे बांयें पैरको मुञ्जकी रस्सीसे बांधना और तीन बार मेरे मुंहमें थूकना, फिर श्रावस्ती नगरी में शृंगा-

टक यावत् राजमार्गोंमें मुझे घसीटते हुए उच्च स्वर से उद्घोषणा करते हुए कहना कि–"हे देवानुप्रियो ! मंखलिपुत्र गोशालक जिन नहीं है, किन्तु जिन प्रलापी और जिन शब्दका प्रकाश करता हुआ विचरा है । यह श्रमणों की घात करने वाला मंखलिपुत्र गोशालक यावत् छद्मस्थ अवस्थामें ही काल-धर्म को प्राप्त हुआ है । श्रमण भगवान् महावीर स्वामी वास्तव में जिन हैं और जिन-प्रलापी यावत् जिन शब्दका प्रकाश करते हुए विचरते हैं ।" इस प्रकार विना ऋद्धि और असत्कार पूर्वक मेरे मृत शरीर का निष्क्रमण करना,"—ऐसा कह र गोशालक काल-धर्म को प्राप्त हो गया ।। ५५४।।

तत्पश्चात् आजीविक स्थविरों ने गोशालक को काल-धर्म प्राप्त हुआ जान कर हालाहला कुम्भारिन की दुकान के द्वार वन्द कर दिये, दुकानके बीच में (भूमि पर) श्रावस्ती नगरीका चित्र बनाया, फिर गोशालकके बायें पांव को मुञ्ज की रस्सी से बांधा । तीन वार उसके मुंह में थूका, और उस चित्रित की हुई श्रावस्ती नगरी के शृंगाटक यावत् राजमार्गों में उसे घसीटते हुए मन्द स्वरसे उद्घोषणा करते हुए, इस प्रकार कहने लगे–"हे देवानुप्रियो ! मंखलिपुत्र गोशालक जिन नहीं, किन्तु जिन-प्रलापी होकर यावत् विचरा है । यह श्रमण-घातक मंखलिपुत्र गोशालक यावत् छद्मस्थ अवस्था में ही काल-धर्म को प्राप्त हुआ है । श्रमण भगवान् महावीर स्वामी वास्तव में जिन हैं और जिन-प्रलापी होकर यावत् विचरते हैं ।" इस प्रकार कह कर वे स्थविर, गोशालक द्वारा दिलाई हुई शपथ से मुक्त हुए । तत्पश्चात् गोशालककी पूजा-सत्कार स्थिर रखने के लिये उसके पांवकी रस्सी खोली और दुकानके द्वार खोले । फिर गोशालकके शरीरको सुगन्धित गन्धोदकसे स्नान कराया इत्यादि पूर्वोक्त कथनानुसार यावत् महाऋद्धि-सत्कारसे मंखलिपुत्र-गोशालकके मृत शरीरका निष्क्रमण किया ।।५५५।।

किसी दिन श्रमण भगवान् महावीर स्वामी श्रावस्ती नगरीके कोष्ठक उद्यानसे निकल कर अन्य देशोंमें विचरने लगे । उस काल उस समय मेंढिक ग्राम नामक नगर था (वर्णन) । उस मेंढिक ग्राम नगर के बाहर उत्तर-पूर्व दिशामें शाल-कोष्ठक नामक उद्यान था (वर्णन) यावत् पृथ्वी शिलापट्ट था उस शाल-कोष्ठक उद्यान के निकट एक मालुका (एक बीज वाले वृक्षों का वन) महा-कच्छ था । वह श्याम, श्याम कान्ति वाला यावत् महामेघके समूह के समान था । वह पत्र, पुष्प, फल और हरितवर्ण से देदीप्यमान और अत्यन्त सुशोभित था । उस मेंढिक ग्राम नगरमें रेवती नामकी गाथापत्नी रहती थी । वह आढ्य यावत् अपरिभूत थी । अन्यदा श्रमण भगवान् महावीर स्वामी अनुक्रमसे विहार करते हुए मेंढिक ग्राम नगर के बाहर शाल-कोष्ठक उद्यानमें पधारे, यावत् परिषद् वन्दना करके लौट गई ।

उस समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामीके शरीरमें महापीड़ाकारी, अत्यन्त दाह करने वाला यावत् कष्टपूर्वक सहन करने योग्य तथा जिसने पित्तज्वर के द्वारा शरीर को व्याप्त किया है एवं जिससे अत्यन्त दाह होता है, ऐसा रोग उत्पन्न हुआ। उस रोगके कारण रक्तयुक्त (आंव वाले) दस्त लगने लगे। भगवान् के शरीर की ऐसी दशा जान कर चारों वर्ण के मनुष्य इस प्रकार कहने लगे—"श्रमण भगवान् महावीर स्वामी, गोशालकके तप-तेज से पराभूत पित्तज्वर एवं ज्वर से पीड़ित होकर छह मास के अंत में छद्मस्थ अवस्था में मृत्यु प्राप्त करेंगे।"

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के अन्तेवासी 'सिंह' नाम के अनगार थे। वे प्रकृतिसे भद्र और विनीत थे। वे मालुका कच्छके निकट निरन्तर बेले-बेलेके तपसे दोनों हाथों को ऊपर उठा कर यावत् आतापना लेते थे। जब सिंह अनगार एक ध्यान को समाप्त कर दूसरा ध्यान प्रारम्भ करने वाले थे, उस समय उन्हें विचार उत्पन्न हुआ—"मेरे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक भगवान् महावीर स्वामी के शरीर में अत्यन्त दाहक और महापीड़ाकारी रोग उत्पन्न हुआ है, इत्यादि यावत् वे छद्मस्थ अवस्था में काल करेंगे, तब अन्यतीर्थिक कहेंगे कि "वे छद्मस्थ अवस्थामें काल-धर्मको प्राप्त हो गये,"—इस प्रकारके महा मानसिक दुःख से पीड़ित बने हुए वे सिंह अनगार, आतापना भूमिसे नीचे उतरे और मालुका कच्छ में प्रवेश करके जोर जोर से फूट फूट कर रोने लगे।

उसी समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने श्रमण-निर्ग्रन्थों को बुला कर कहा—"हे आर्यो! मेरा अन्तेवासी सिंह अनगार अत्यन्त रुदन कर रहा है। इसलिये आर्यो! तुम जाओ और सिंह अनगार को यहां लिवा लाओ।" भगवान् को वन्दना-नमस्कार करके वे श्रमण-निर्ग्रन्थ शालकोष्ठक उद्यान से चल कर मालुका कच्छमें सिंह अनगार के समीप आये और कहने लगे—"हे सिंह! धर्माचार्य तुम्हें बुलाते हैं।" तब सिंह अनगार उन श्रमण-निर्ग्रन्थोंके साथ मालुका कच्छसे निकल कर शालकोष्ठक उद्यानमें श्रमण भगवान् महावीर स्वामीके पास आये और भगवान् को तीन बार प्रदक्षिणा करके यावत् पर्युपासना करने लगे।

श्रमण भगवान् महावीर स्वामीने कहा "हे सिंह! ध्यानान्तरिका में वर्तते हुए तुम्हें इस प्रकारका विचार उत्पन्न हुआ यावत् अत्यन्त रुदन करने लगे, सिंह! क्या यह बात सत्य है?" (उत्तर) "हां, भगवन्! सत्य है।" "सिंह! गोशालक के तप-तेज द्वारा पराभूत होकर मैं छह मास के अन्तमें यावत् काल नहीं करूंगा। मैं अन्य सोलह वर्ष तक जिन अवस्थामें गन्धहस्तीके समान विचरूंगा। सिंह! तू मेंढिक ग्राम नगरमें रेवती गाथापत्नीके घर जा। उस रेवती गाथापत्नी ने मेरे लिये दो कोहला (कद्दू) के फलोंको संस्कारित कर तैयार किया है, उनसे मुझे प्रयोजन

नहीं है, परन्तु उसके यहां वायुको शान्त करने वाला विजोरापाक जो कल तैयार किया हुआ है, उसे ला। वह मेरे लिए उपयुक्त है।"

श्रमण भगवान् महावीर स्वामीसे आदेश पाकर सिंह अनगार प्रसन्न एवं सन्तुष्ट यावत् प्रफुल्लित हुए और भगवान्को वन्दना-नमस्कार करके त्वरा, चपलता और उतावलसे रहित, मुखवस्त्रिका का प्रतिलेखन किया यावत् गौतम स्वामी के समान भगवान्को वन्दना-नमस्कार करके शाल-कोष्ठक उद्यानसे निकल कर, त्वरा और शीघ्रता रहित यावत् मेंढिक ग्राम नगर के मध्यभागमें होकर रेवती गाथापत्नी के घर पहुंचे और घर में प्रवेश किया। सिंह अनगारको आते हुए देख कर रेवती गाथापत्नी प्रसन्न एवं सन्तुष्ट हुई। वह शीघ्र ही अपने आसन पर से उठी और सात-आठ चरण, सिंह अनगारके सामने गई और तीन वार प्रदक्षिणा करके वन्दन-नमस्कार कर इस प्रकार बोली—"हे देवानुप्रिय ! आपके पधारने का प्रयोजन क्या है ?" तब सिंह अनगारने कहा—"हे रेवती ! तुमने श्रमण भगवान् महावीर स्वामीके लिये जो कोहलेके दो फल संस्कारित करके तैयार किये हैं, उनसे मेरा प्रयोजन नहीं है, किन्तु वायु को शान्त करने वाला विजोरा-पाक जो कल का वनाया हुआ है, वह मुझे दो, उसीसे प्रयोजन है।"

रेवती गाथापत्नीने सिंह अनगारकी वात सुनकर कहा—"हे सिंह ! ऐसे कौन ज्ञानी और तपस्वी हैं, जिन्होंने मेरी यह गुप्त वात जानी और तुमसे कहा, जिससे कि तुम जानते हो।" दूसरे शतकके प्रथम उद्देशकमें स्कन्दकके अधिकार वर्णन अनुसार यावत् भगवान्के कहने से मैं जानता हूं"—ऐसा सिंह अनगारने कहा। सिंह अनगारकी वात सुनकर रेवती गाथापत्नी अत्यन्त हृष्ट एवं सन्तुष्ट हुई। उसने रसोई घरमें आकर पात्रको खोला और सिंह अनगारके निकट आकर वह सारा पाक उनके पात्रमें डाल दिया। रेवती गृहपत्नीके द्रव्यकी शुद्धि युक्त प्रशस्त भावोंसे दिए गए दानसे सिंह अनगारको प्रतिलाभित करने से रेवती गाथा-पत्नीने देवका आयुष्य वांधा यावत् इसी शतकमें कथित विजय गाथापतिके समान 'रेवतीने जन्म और जीवनका फल प्राप्त किया है'—ऐसी उद्घोषणा हुई।

तत्पश्चात् वे सिंह अनगार रेवती गाथापत्नीके घरसे निकलकर मेंढिक ग्राम नगर के मध्य होते हुए भगवान्के पास पहुंचे और गौतम स्वामीके समान यावत् आहार-पानी दिखाया। फिर वह सव श्रमण भगवान् महावीर स्वामीके हाथमें भली प्रकार रख दिया। इसके अनन्तर श्रमण भगवान् महावीर स्वामीने मूर्च्छा (आसक्ति) रहित यावत् तृष्णा रहित, विलमें सर्प प्रवेशके समान उस आहारको शरीर रूप कोठेमें डाल दिया। उस आहारको खानेके पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर स्वामीका वह महापीड़ाकारी रोग शीघ्र ही शांत हो गया। वे हृष्ट, रोग रहित और वलवान् शरीर वाले हो गये। इससे सभी श्रमण तुष्ट

(प्रसन्न) हुए, श्रमणियां तुष्ट हुई, श्रावक तुष्ट हुए, श्राविकाएं तुष्ट हुईं, देव तुष्ट हुए, देवियां तुष्ट हुईं और देव, मनुष्य, असुरों सहित समग्र विश्व सन्तुष्ट हुआ ।।५५६।।

भगवान् गौतम स्वामीने श्रमण भगवान् महावीर स्वामीको वन्दना-नमस्कार करके इस प्रकार पूछा—"भगवन् ! देवानुप्रियका अन्तेवासी पूर्वदेशमें उत्पन्न सर्वानुभूति अनगार, जो प्रकृतिसे भद्र यावत् विनीत था और जिसे मंखलिपुत्र गोशालकने अपने तप-तेजसे जलाकर भस्म कर दिया था, वह मरकर कहां गया, कहां उत्पन्न हुआ ? गौतम ! मेरा अन्तेवासी पूर्व देशोत्पन्न सर्वानुभूति अनगार गोशालकके तप-तेजसे भस्म होकर ऊंचा चन्द्र और सूर्यको यावत् ब्रह्मलोक, लान्तक और महाशुक्र कल्पको उल्लंघन कर, सहस्रार कल्पमें देव रूपमें उत्पन्न हुआ है। वहां के कई देवोंकी स्थिति अठारह सागरोपमकी कही गई है। सर्वानुभूति देवकी स्थिति भी अठारह सागरोपमकी है। वहां का आयुष्य, भव और स्थिति का क्षय होने पर वह सर्वानुभूति देव वहांसे च्यव कर यावत् महाविदेह क्षेत्रमें सिद्ध होगा, यावत् समस्त दुःखोंका अन्त करेगा ।

भगवन् ! देवानुप्रियके अन्तेवासी कोशल देशोत्पन्न भद्र प्रकृति और विनीत सुनक्षत्र नामक अनगारको जब गोशालकने तप तेजसे परितापित किया, तब वह काल करके कहां गया, कहां उत्पन्न हुआ ? गौतम ! मेरा अन्तेवासी सुनक्षत्र अनगार गोशालकके तप-तेजसे परितापित होकर मेरे पास आया, मुझे वन्दना-नमस्कार करके स्वयमेव पांच महाव्रतोंका उच्चारण किया और श्रमण-श्रमणियोंसे क्षमा प्रार्थना की, फिर आलोचना-प्रतिक्रमण करके, समाधि प्राप्त कर, कालके समयमें काल करके ऊंचे चन्द्र और सूर्यको यावत् आणत, प्राणत और आरण कल्पको उल्लंघन कर अच्युत देवलोकमें देवपने उत्पन्न हुआ है। वहां कई देवोंकी स्थिति बाईस सागरोपमकी कही गई है। उनमें सुनक्षत्र देवकी स्थिति भी बाईस सागरोपमकी है। शेष सभी सर्वानुभूति अनगारवत् यावत् वह सभी दुःखोंका अन्त करेगा ।।५५७।।

भगवन् ! देवानुप्रिय का अन्तेवासी कुशिष्य मंखलिपुत्र गोशालक था। वह काल के समय में काल करके कहां गया, कहां उत्पन्न हुआ ? गौतम ! मेरा अन्तेवासी कुशिष्य मंखलिपुत्र गोशालक, जो श्रमणों की घात करने वाला था यावत् वह छद्मस्थावस्था में ही कालके समय में काल करके ऊंचा चन्द्र और सूर्य का उल्लंघन कर यावत् अच्युत कल्प में देवपने उत्पन्न हुआ है। वहां कई देवों की स्थिति बाईस सागरोपम की कही गई है। उनमें गोशालक देव की स्थिति भी बाईस सागरोपम की है।

भगवन् ! गोशालक का जीव देवलोक की आयु, भव और स्थिति का क्षय होने पर, देवलोक से च्यव कर यावत् कहां उत्पन्न होगा ? गौतम ! इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में, विन्ध्य पर्वत की तलहटी में पुण्ड्र देश के शतद्वार नामक नगर में, सन्मूर्ति नाम के राजा की भद्रा भार्या की कुक्षि में पुत्र रूप से उत्पन्न होगा। वह नौ मास और साढ़े सात रात्रि-दिवस व्यतीत होने पर यावत् एक सुन्दर बालक को जन्म देगी।

जिस रात्रि में उस बालक का जन्म होगा, उस रात्रि में शतद्वार नगर के भीतर और बाहर अनेक भार प्रमाण और अनेक कुंभ प्रमाण पद्मों (कमलों) और रत्नों की वृष्टि होगी। उस समय उस बालक के माता-पिता ग्यारह दिन बीत जाने पर बारहवें दिन नामकरण करेंगे। वे गुणयुक्त, गुण-निष्पन्न नाम कि–हमारे इस बालक का जन्म हुआ तब शतद्वार नगर के बाहर और भीतर यावत् पद्मों और रत्नों की वृष्टि हुई थी, इसलिये इस बालक का नाम 'महापद्म' हो-ऐसा विचार कर उस बालक के माता-पिता 'महा-पद्म' यह नाम देंगे।

जब वह महापद्म बालक कुछ अधिक आठ वर्ष का होगा, तब उसके माता-पिता शुभ तिथि, करण, दिवस, नक्षत्र और मुहूर्त में अत्यन्त बड़ा राज्याभिषेक करेंगे। वह महापद्म राजा महाहिमवान् आदि पर्वत के समान बलशाली होगा, इत्यादि वर्णन यावत् वह विचरेगा। किसी दिन उस महापद्म राजा के महर्द्धिक यावत् महासुख वाले दो देव सेना-कर्म करेंगे। उन देवों के नाम इस प्रकार हैं-पूर्णभद्र और माणिभद्र। शतद्वार नगर में बहुत से माण्डलिक राजा, युवराज तलवर यावत् सार्थवाह प्रमुख परस्पर इस प्रकार कहेंगे कि-"हे देवानुप्रियो ! हमारे महापद्म राजा के पूर्णभद्र और माणिभद्र ये दो महर्द्धिक यावत् महासुख वाले देव सेनाकर्म करते हैं, इसलिये देवानुप्रियो ! हमारे महापद्म राजा का दूसरा नाम 'देवसेन' हो। तब उस महापद्म राजा का दूसरा नाम 'देवसेन' होगा।

किसी दिन देवसेन राजा के यहां शंख-खण्ड अथवा शंख तल के समान निर्मल और श्वेत ऐसे चार दांतों वाला एक हस्तीरत्न उपस्थित होगा। देवसेन राजा उस हस्तीरत्न पर चढ़ कर शतद्वार नगर के मध्य में होकर बार-बार आवागमन करेगा। तब नगर के बहुत-से माण्डलिक राजा यावत् सार्थवाह आदि परस्पर इस प्रकार कहेंगे-"हे देवानुप्रियो ! हमारे देवसेन राजा का तीसरा नाम 'विमलवाहन' हो।" तब देवसेन राजा का तीसरा नाम 'विमलवाहन' होगा।

किसी समय विमलवाहन राजा श्रमण-निर्ग्रन्थों के साथ मिथ्या अर्थात् अनार्यपन का आचरण करेगा। कई श्रमण-निर्ग्रन्थों को आक्रोश करेगा, किन्हीं की हंसी करेगा, कइयों को एक दूसरे से पृथक् करेगा, कइयों की भर्त्सना करेगा, कुछ श्रमणों को बांधेगा, कुछ को रोकेगा, कुछ के अवयव का छेदन करेगा, कुछ को

मारेगा, कइयों को उपद्रव करेगा। किन्हीं के वस्त्र, पात्र कम्बल और पादप्रोंछन को तोड़-फोड़ और नष्ट करेगा, अपहरण करेगा, वहुतों के आहार पानी का विच्छेद करेगा और कई श्रमणों को नगर और देश से वाहर निकाल देगा।

उस समय शतद्वार नगर में वहुत से माण्डलिक राजा, युवराज यावत् सार्थवाह आदि परस्पर इस प्रकार कहेंगे-'हे देवानुप्रियो ! विमलवाहन राजाने श्रमण निर्ग्रन्थों के साथ अनार्यपन स्वीकार किया है यावत् कितने ही श्रमणों को देश से वाहर निकालता है। अतः देवानुप्रियो ! यह अपने लिये श्रेयस्कर नहीं है और न विमलवाहन राजा तथा इस राज्य, राष्ट्र, वल(सेना), वाहन, पुर, अन्तःपुर और देश के लिये ही श्रेयस्कर है। इसलिये देवानुप्रियो ! विमलवाहन राजा को इस विषय में निवेदन करना अपने लिये श्रेयस्कर है। इस प्रकार विचार कर तथा एक दूसरे से निश्चय कर वे विमल-वाहन राजा के पास पहुंचेंगे और दोनों हाथ जोड़ कर विमलवाहन राजा को जय-विजय शब्दों से सम्मानित करके वे इस प्रकार कहेंगे-हे देवानुप्रिय ! श्रमण-निर्ग्रन्थों के साथ आप अनार्यपन का आचरण करते हुए उन पर आक्रोश करते हैं यावत् देश से वाहर निकालते हैं। देवानुप्रिय ! यह कार्य आपके लिये, हमारे लिये और इस राज्य यावत् देश के लिये श्रेयस्कर नहीं है। आपका श्रमण-निर्ग्रन्थों के साथ अनार्यपन का आचरण उचित नहीं है। इसलिये देवानुप्रिय ! आप इस दुराचरण को वन्द कीजिये।

जव वे वहुत से माण्डलिक राजा, युवराज यावत् सार्थवाह आदि राजासे निवेदन करेंगे, तव वह विमलवाहन राजा "धर्म नहीं, तप नहीं"—ऐसी वुद्धि होते हुए भी मिथ्या-विनय वता कर उनका निवेदन मान लेगा। शतद्वार नगर के वाहर उत्तर-पूर्व दिशामें सुभूमि-भाग नामक उद्यान होगा। वह सव ऋतुओंके फल-फूलोंसे युक्त होगा, इत्यादि वर्णन। उस काल उस समयमें विमल नामके तीर्थ-करके प्रपौत्र 'सुमंगल' नामक अनगार होंगे। वे जाति-सम्पन्न इत्यादि ग्यारहवें उद्देशकमें धर्मघोष अनगार के वर्णन के समान यावत् संक्षिप्त विपुल तेजोलेश्या वाले, तीन ज्ञान सहित वे सुमंगल अनगार, सुभूमि-भाग उद्यान से न अति दूर न अति निकट निरन्तर छठ-छठ तपके साथ यावत् आतापना लेते हुए विचरेंगे।

किसी एक दिन विमलवाहन राजा रथचर्या करने के लिये निकलेगा, तव सुभूमि-भाग उद्यान से थोड़ी दूर रथचर्या करता हुआ वह राजा निरन्तर छठ-छठ तपके साथ यावत् आतापना लेते हुए सुमंगल अनगार को देखेगा। उन्हें देखते ही वह कोपाविष्ट होकर यावत् क्रोध से अत्यन्त प्रज्वलित होता हुआ रथके अग्रभाग से सुमंगल अनगार को टक्कर देकर नीचे गिरा देगा। जव विमल-वाहन राजा रथके अग्रभाग से सुमंगल अनगार को नीचे गिरा देगा, तव सुमंगल अनगार धीरे-धीरे उठेंगे और दूसरी वार फिर आतापना लेंगे। तव विमलवाहन

राजा सुमंगल अनगार को दूसरी वार रथ के अग्रभाग से अभिघात कर नीचे गिरा देगा।

तब सुमंगल अनगार धीरे-धीरे उठेंगे और अवधिज्ञान में उपयोग लगा कर विमलवाहन के अतीत-काल को देखेंगे। फिर वे विमलवाहन राजा से इस प्रकार कहेंगे—"तू वास्तव में विमलवाहन राजा नहीं है, तू देवसेन राजा नहीं है और तू महापद्म राजा भी नहीं है। तू इससे पूर्व तीसरे भवमें श्रमणों की घात करने वाला मंखलिपुत्र गोशालक था और तू छद्मस्थ अवस्थामें ही मरा था। उस समय सर्वानुभूति अनगार ने समर्थ होते हुए भी तेरे अपराध को सम्यक् प्रकार से सहन किया था, क्षमा किया था, तितिक्षा की थी और उसको अध्यासित (सहन) किया था। इसी प्रकार सुनक्षत्र अनगार ने भी यावत् अध्यासित किया था। उस समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने भी समर्थ होते हुए यावत् सहन किया था। परन्तु मैं इस प्रकार सहन यावत् अध्यासित नहीं करूंगा। मैं तुझे अपने तप-तेज से घोड़ा, रथ और सारथी सहित एक ही प्रहार में कूटाघात की तरह राख का ढेर कर दूंगा।

जब सुमंगल अनगार विमलवाहन राजासे ऐसा कहेंगे तब वह अत्यन्त कुपित होगा यावत् क्रोध से अत्यन्त प्रज्वलित होगा। तब वह तीसरी बार सुमंगल अनगार को रथके अग्रभाग से टक्कर देकर गिरा देगा। जब विमलवाहन राजा रथके अग्रभाग से टक्कर देकर सुमंगल अनगार को तीसरी बार गिरा देगा, तब सुमंगल अनगार अत्यन्त कुपित यावत् क्रोधावेश से मिसमिसाट करता हुआ आतापना भूमि से नीचे उतर कर तैजस् समुद्घात करेंगे और सात-आठ चरण पीछे हट कर विमलवाहन राजाको घोड़े, रथ और सारथी सहित जलाकर भस्म कर देंगे।

भगवन्! सुमंगल अनगार घोड़े रथ और सारथी सहित विमलवाहन राजा को भस्म का ढेर करके वे स्वयं काल करके कहां जावेंगे, कहां उत्पन्न होंगे? गौतम! विमलवाहन राजाको घोड़े, रथ और सारथी सहित भस्म करने के पश्चात् सुमंगल अनगार बेला, तेला, चौला, पचौला यावत् विचित्र प्रकार के तप से अपनी आत्मा को भावित करते हुए बहुत वर्षों तक श्रमण-पर्याय का पालन करेंगे। फिर एक मास की संलेखना से साठ भक्त अनशन का छेदन करेंगे और आलोचना, प्रतिक्रमण करके समाधिस्थ हो काल करेंगे, वे ऊंचे चन्द्र सूर्य यावत् एक सौ ग्रैवेयक विमानावासों का उल्लंघन करके सर्वार्थ-सिद्ध महाविमान में देवपने उत्पन्न होंगे। वहां देवों की अजघन्यानुत्कृष्ट (जघन्य और उत्कृष्टता से रहित) तेतीस सागरोपम की स्थिति कही गई है। वहां सुमंगल देवकी भी परिपूर्ण तेतीस सागरोपम की स्थिति होगी। वहां का आयुष्य, भव और स्थितिका क्षय

होने पर वहां से च्यव कर सुमंगल देव महाविदेह क्षेत्रमें सिद्ध होंगे यावत् सभी दुःखों का अन्त करेंगे ।।५५८।।

भगवन् ! सुमंगल अनगारके द्वारा घोड़े, रथ और सारथी सहित भस्म किया हुआ विमलवाहन राजा कहां जायेगा, कहां उत्पन्न होगा ? गौतम ! सुमंगल अनगार के द्वारा घोड़े, रथ और सारथी सहित यावत् भस्म किया जाने पर विमलवाहन राजा, अधःसप्तम पृथ्वी में, उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले नरकोंमें नैरयिक रूपसे उत्पन्न होगा । वहां से यावत् उद्वर्त कर (निकल कर) मत्स्योंमें उत्पन्न होगा । वहां शस्त्र के द्वारा वध होने पर दाह ज्वर की पीड़ा से काल करके दूसरी वार फिर अधःसप्तम पृथ्वी में···वहां से यावत् निकल कर फिर दूसरी वार मत्स्यों में जन्मेगा । वहां पर भी शस्त्र से मारा जाकर यावत् छठी तमःप्रभा पृथ्वीमें उत्कृष्ट स्थिति वाले नरकावासों में नैरयिक होगा । वहांसे यावत् निकल कर स्त्री रूप से उत्पन्न होगा । वहां भी शस्त्राघातसे मरकर दूसरी वार छठी तमःप्रभा···वहां से यावत् निकल कर फिर दूसरी वार स्त्री···यावत् पांचवीं धूमप्रभा नरक में···वहां से यावत् निकल कर उरःपरिसर्पो में उत्पन्न होगा···दूसरी वार पांचवीं नरक में···दूसरी वार फिर उरःपरिसर्पों में···चौथी पंकप्रभा नरक में···सिंहों में···दूसरी वार चौथी नरक में···दूसरी बार सिंहों में···तीसरी वालुकाप्रभा नरक में··· पक्षियों में ··· दूसरी वार तीसरी नरक में··· दूसरी वार पक्षियों में···दूसरी शर्कराप्रभा नरक में···सरीसृपों में···दूसरी वार शर्कराप्रभा में ···दूसरी वार सरीसृपों में···इस रत्नप्रभा पृथ्वी में···संज्ञी जीवों में···असंज्ञी जीवों में···दूसरी वार रत्नप्रभा पृथ्वी में पल्योपम के असंख्यातवें भाग की स्थिति वाले नरकावासोंमें नैरयिक रूप से उत्पन्न होगा ।

वहां से यावत् निकल कर खेचर जीवों के जो ये भेद हैं, यथा—चर्म-पक्षी, लोम-पक्षी, समुद्गक पक्षी और वितत-पक्षी, उनमें अनेक लाख वार मर कर वहीं वार-वार उत्पन्न होता रहेगा । सर्वत्र शस्त्रसे मारा जाने पर दाहकी उत्पत्तिसे काल-समय काल करेगा और भुजपरिसर्पों के जो भेद हैं, यथा—गोह, नकुल (नोलिया) इत्यादि प्रज्ञापना सूत्र के प्रथम पद के अनुसार उन सभी में उत्पन्न होगा यावत् जाहक चौपाये जीवों में अनेक लाख वार मर कर वहीं वार-वार उत्पन्न होगा । शेप सब खेचरवत् जानना चाहिये यावत् काल करके उरपरिसर्पो के इन भेदों में उत्पन्न होगा, यथा—सर्प, अजगर, आशालिका और महोरग, इनमें अनेक लाख वार मर कर इन चतुष्पद जीवों के भेदोंमें उत्पन्न होगा, यथा—एक खुर वाला, दो खुर वाला, गण्डीपद और सनखपद । उनमें अनेक लाख वार उत्पन्न होगा । वहां से काल करके इन जलचर जीवों के भेदों में उत्पन्न होगा, यथा—कच्छप यावत् सुंसुमार, इनमें अनेक······। फिर चतुरिन्द्रिय जीवोंके भेदोंमें उत्पन्न होगा ।

यथा—अन्धिक, पौत्रिक इत्यादि प्रज्ञापना सूत्र के प्रथम पद के अनुसार—यावत् गोमय कीटों में अनेक०। वहांसे काल करके तेइन्द्रिय जीवोंके भेद, यथा—उपचित् यावत् हस्तीशौण्ड, इनमें उत्पन्न होगा, वहां से काल करके वेइन्द्रिय जीवोंके भेद यथा—पुला कृमि यावत् समुद्रलिक्षा, इनमें अनेक लाख बार उत्पन्न होगा।

फिर वनस्पति के भेद, यथा—वृक्ष, गुच्छ यावत् कुहुना, इनमें अनेक······ और विशेष करके कटुरस वाले वृक्षों और वेलों में उत्पन्न होगा। सभी स्थानों पर शस्त्र से मारा जायेगा। उसके पश्चात् वायुकायिक जीवोंके भेद, यथा—पूर्व-वायु यावत् शुद्धवायु, इनमें अनेक०। फिर तेउकायके भेद, यथा—अंगार यावत् सूर्यकान्तमणि से निःश्रित अग्नि, उनमें अनेक······। फिर अप्काय के भेद, यथा—अवश्याय यावत् खाई का पानी, उनमें अनेक लाख बार—विशेष कर खारे पानी और खाई के पानी में उत्पन्न होगा। सभी स्थानों में शस्त्र द्वारा मारा जायेगा। फिर पृथ्वीकायिक के भेद, यथा-पृथ्वी, शर्करा, यावत् सूर्यकान्तमणि, इनमें अनेक······और विशेष कर खर-वादर पृथ्वीकाय में उत्पन्न होगा। सर्वत्र शस्त्र से वध होगा, यावत् काल करके—

फिर वह राजगृह नगर के वाहर (सामान्य) वेश्यापने उत्पन्न होगा। वहां शस्त्र से मारा जाने पर काल करके दूसरी वार राजगृहके भीतर (विशिष्ट) वेश्यापने उत्पन्न होगा। वहां भी शस्त्र द्वारा मारा जाने पर यावत् काल करके इसी जम्बूद्वीपके भरत क्षेत्रमें विन्ध्य पर्वतके पास विभेल नामक ग्राम में, ब्राह्मण कुल में पुत्री रूपसे उत्पन्न होगा। वह पुत्री जब वाल्यावस्था का त्याग कर यौवन अवस्था को प्राप्त होगी, तब उसके माता-पिता उचित द्रव्य और उचित विनय द्वारा पति को भार्या रूपसे अर्पण करेंगे। वह उसकी स्त्री होगी। वह इष्ट, कान्त यावत् अनुमत, आभूषणोंके करण्डिये तुल्य, तेलकी कूपीके समान अत्यन्त सुरक्षित, वस्त्र की पेटीके समान सुसंग्रहीत, रत्नकरण्डिये के समान सुरक्षित, शीत, उष्ण यावत् परीषह-उपसर्ग उसे स्पर्श न करें, इस प्रकार अत्यन्त संगोपित होगी। वह ब्राह्मण-पुत्री गर्भवती होगी और अपने ससुरालसे पीहर जाती हुई मार्गमें दावाग्नि की ज्वाला से जल कर मरेगी और दक्षिण दिशा के अग्निकुमार देवों में देव रूप से उत्पन्न होगी।

वहां से च्यव कर मनुष्यशरीरको धारण करके केवलवोधि (सम्यक्त्व) को प्राप्त करेगा। तत्पश्चात् मुण्डित होकर अगारवास का त्याग करके अनगारवास को ग्रहण करेगा। वहां श्रामण्य (चारित्र) की विराधना करके मर कर दक्षिण दिशा के असुरकुमार देवोंमें देव रूपसे उत्पन्न होगा। वहां से च्यव कर मनुष्य होगा और संयम लेकर यावत् विराधना करके···नागकुमार देवों में···सुवर्णकुमार देवों में···। इसी प्रकार विद्युत्कुमार देवोंमें यावत् अग्निकुमार देवोंको छोड़कर दक्षिण-

निकायके स्तनितकुमारों तक यावत् वहां से निकल कर मनुष्य होगा यावत् चारित्र की विराधना करके ज्योतिषी देवों में उत्पन्न होगा।

वहां से च्यव कर मनुष्य होगा यावत् चारित्र की विराधना किये विना (आराधक होकर) काल के समय काल करके सौधर्म देवलोकमें देवरूपसे उत्पन्न होगा। वहांसे च्यव कर मनुष्य होगा और चारित्र की विराधना किये विना काल के समय काल करके सनत्कुमार देवलोकमें देव रूप से उत्पन्न होगा। वहांसे च्यव कर मनुष्य होगा। जिस प्रकार सनत्कुमार देवलोक के विषयमें कहा, उसी प्रकार ब्रह्मलोक, महाशुक्र, आनत और आरण देवलोकों के विषय में कहना चाहिये। वहांसे च्यव कर मनुष्य होगा यावत् चारित्र की विराधना किये विना काल करके सर्वार्थसिद्ध महाविमान में देव रूप से उत्पन्न होगा। वहां से च्यव कर महाविदेह क्षेत्र में ऋद्धिसम्पन्न यावत् अपराभूत कुलमें पुत्र रूपसे उत्पन्न होगा। जिस प्रकार औपपातिक सूत्रमें दृढ़प्रतिज्ञकी वक्तव्यता कही, उसी प्रकार यावत् उसे उत्तम केवलज्ञान, केवलदर्शन उत्पन्न होगा।

वे दृढ़प्रतिज्ञ केवली अपने अतीत काल को देखेंगे। देख कर श्रमण-निर्ग्रन्थों को सम्बोधन कर इस प्रकार कहेंगे-'हे आर्यो! आजसे बहुत काल पहले मैं मंखलि-पुत्र गोशालक था। मैंने श्रमणोंकी घात की थी यावत् छद्मस्थावस्था में काल-धर्म को प्राप्त हुआ था। आर्यो! मैं अनादि अनन्त और दीर्घमार्ग वाले चार गति रूप संसार अटवी में भटका था। इसलिये आर्यो! तुम में से कोई भी आचार्य-प्रत्यनीक (आचार्य के द्वेषी) मत होना, उपाध्याय-प्रत्यनीक मत होना, आचार्य और उपाध्याय के अपयश करने वाले, अवर्णवाद करने वाले और अकीर्ति करने वाले मत होना और मेरे समान अनादि अनन्त यावत् संसार अटवीमें भ्रमण मत करना।

दृढ़प्रतिज्ञ केवली की बात सुन कर और हृदयमें अवधारण करके वे श्रमण-निर्ग्रन्थ भयभीत होंगे, त्रस्त होंगे और संसारके भयसे उद्विग्न होकर दृढ़प्रतिज्ञ केवलीको वन्दना-नमस्कार करेंगे, वन्दना-नमस्कार करके पापस्थानकी आलोचना और निन्दा करेंगे, यावत् तपःकर्मको स्वीकार करेंगे। दृढ़प्रतिज्ञ केवली बहुत वर्षों तक केवल-पर्याय का पालन करेंगे और शेष आयुष्य थोड़ा रहा जान कर भक्त-प्रत्याख्यान करेंगे। इस प्रकार औपपातिक सूत्रानुसार यावत् सभी दुःखोंका अन्त करेंगे। हे भगवन्! यह इसी प्रकार है।······ऐसा कहकर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं॥५५६॥

॥ तेजनिसर्ग (गोशालक-चरित्र) समाप्त ॥

॥ पन्द्रहवां शतक समाप्त ॥

—०—

शतक १६

सोलहवें शतक में चौदह उद्देशक हैं। पहले उद्देशक में अधिकरणी–एरण आदि विषयक कथन है। दूसरेमें जरा आदि अर्थ विषयक…। तीसरेमें कर्म विषयक कथन है। चौथे उद्देशकके प्रारंभमें 'जावतिय' शब्द होने से इस उद्देशक का नाम 'जावतिय' है। पांचवें उद्देशकमें गंगदत्त देव विषयक, छठेमें स्वप्न विषयक, सातवेंमें उपयोग विषयक, आठवेंमें लोक स्वरूप विषयक, नौंवेंमें बलीन्द्र विषयक, दसवेंमें अवधिज्ञान विषयक, ग्यारहवेंमें द्वीपकुमार विषयक, बारहवेंमें उदधिकुमार विषयक, तेरहवें में दिशाकुमार विषयक और चौदहवेंमें स्तनितकुमार विषयक कथन है।

उद्देशक १—आघातसे वायुकायकी उत्पत्ति०

उस काल उस समय में राजगृह नगरमें यावत् पर्युपासना करते हुए गौतम स्वामीने इस प्रकार पूछा—"भगवन्! क्या अधिकरणी (एरण) पर (हथौड़ा मारते समय) वायुकाय उत्पन्न होता है?" "हां गौतम! होता है।" भगवन्! उस वायुकायका किसी दूसरे पदार्थके साथ स्पर्श होने पर वह मरता है या स्पर्श हुए बिना ही मरता है? गौतम! उसका दूसरे पदार्थके साथ स्पर्श होने पर ही मरता है, स्पर्श हुए बिना नहीं मरता। भगवन्! जब वायुकाय मरता है, तो क्या शरीर सहित भवान्तरमें जाता है या शरीर रहित? गौतम! इस विषयमें दूसरे शतकके प्रथम (स्कन्दक) उद्देशकके अनुसार, यावत् शरीर रहित होकर नहीं जाता–तक जानना चाहिये ॥५६०॥

भगवन्! अंगीठीमें अग्निकाय कितने काल तक सचित्त रहता है? गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट तीन रात-दिन तक सचित्त रहता है। वहां अन्य वायुकायिक जीव भी उत्पन्न होते हैं। क्योंकि वायुकायके बिना अग्निकाय प्रज्वलित नहीं रहता ॥५६१॥

भगवन्! लोहा तपानेकी भट्ठीमें तपे हुए लोहेको लोहेकी संडासीसे पकड़ कर ऊंचा-नीचा करने वाले पुरुषको कितनी क्रिया लगती हैं? गौतम! जब तक वह पुरुष लोहा तपानेकी भट्ठीमें लोहेकी संडासीसे लोहेको ऊंचा या नीचा करता है, तब तक कायिकीसे लेकर प्राणातिपातिकी क्रिया तक पांच क्रिया लगती हैं। जिन जीवोंके शरीरसे लोहा, लोहेकी भट्ठी, संडासी, अंगारे, अंगारे निकालनेकी सलाई और धमण बनी है, उन सभी जीवोंको भी कायिकी यावत् पांच क्रिया लगती हैं।

भगवन्! लोहेकी भट्ठीमें से लोहेको संडासीसे पकड़कर एरण पर रखते और उठाते हुए पुरुषको कितनी क्रिया लगती हैं? गौतम! जब तक लोहेकी भट्ठीमें से लोहे को लेकर यावत् रखता है, तब तक उस पुरुषको कायिकी यावत् प्राणाति-

पातिकी तक पांच क्रियाएं लगती हैं। जिन जीवोंके शरीरसे लोहा, सण्डासी, घन, हथौड़ा, एरण, एरणका लकड़ा बना है और गर्म लोहेको ठण्डा करनेकी द्रोणी (कुण्डी) तथा अधिकरणशाला (लोहारका कारखाना) बना है, उन जीवोंको भी कायिकी यावत् पांच क्रियाएं लगती हैं ॥५६२॥

भगवन् ! जीव अधिकरणी है या अधिकरण ? गौतम ! जीव अधिकरणी भी है और अधिकरण भी। भगवन् ! क्या कारण है कि जीव अधिकरणी भी है और अधिकरण भी ? गौतम ! अविरतिकी अपेक्षा जीव अधिकरणी भी है और अधिकरण भी। भगवन् ! नैरयिक जीव अधिकरणी है या अधिकरण ? गौतम ! नैरयिक जीव अधिकरणी भी है और अधिकरण भी। जिस प्रकार जीवके सम्बन्ध में कहा, उसी प्रकार नैरयिकके विषयमें भी जानना चाहिये, यावत् निरन्तर वैमानिक तक जानना चाहिये।

भगवन् ! जीव साधिकरणी है या निरधिकरणी ? गौतम ! जीव साधिकरणी है, निरधिकरणी नहीं। भगवन् ! ऐसा क्यों कहा गया ? गौतम ! अविरतिकी अपेक्षा जीव साधिकरणी है, निरधिकरणी नहीं। इसी प्रकार यावत् वैमानिकों तक जानना चाहिए। भगवन् ! जीव आत्माधिकरणी है, पराधिकरणी है या तदुभयाधिकरणी है ? गौतम ! जीव आत्माधिकरणी भी है, पराधिकरणी भी है और तदुभयाधिकरणी भी है।

भगवन् ! ऐसा किस लिए कहा गया कि यावत् जीव तदुभयाधिकरणी भी है ? गौतम ! अविरति की अपेक्षा यावत् तदुभयाधिकरणी भी है। इसी प्रकार यावत् वैमानिकों तक जानना चाहिये। भगवन् ! जीवोंका अधिकरण आत्म-प्रयोग से होता है, पर-प्रयोगसे होता है या तदुभय-प्रयोगसे होता है ? गौतम ! जीवोंका अधिकरण आत्म-प्रयोगसे भी होता है, पर-प्रयोगसे भी होता है और तदुभय-प्रयोगसे भी होता है। भगवन् ! ऐसा क्यों कहा गया ? गौतम ! अविरति की अपेक्षा यावत् तदुभय-प्रयोगसे भी होता है। इसी प्रकार यावत् वैमानिकों तक जानना चाहिये ॥५६३॥

भगवन् ! शरीर कितने प्रकार के कहे गये हैं ? गौतम ! शरीर पांच प्रकार के कहे गये हैं। यथा-औदारिक यावत् कार्मण। भगवन् ! इन्द्रियां कितनी कही गई हैं ? गौतम ! पांच कही गई हैं। यथा-श्रोत्रेन्द्रिय यावत् स्पर्शनेन्द्रिय। भगवन् ! योग कितने प्रकार के कहे गये हैं ? गौतम ! योग तीन प्रकार के··· हैं। यथा—मन योग, वचन योग और काय योग।

भगवन् ! औदारिक शरीर को बांधता हुआ जीव अधिकरणी है या अधिकरण ? गौतम ! अधिकरणी भी है और अधिकरण भी। भगवन् ! वह अधिक-

रणी और अधिकरण क्यों है ? गौतम ! अविरतिके कारण यावत् अधिकरण भी है। भगवन् ! औदारिक शरीर को बांधता हुआ पृथ्वीकायिक जीव अधिकरणी है या अधिकरण ? गौतम ! पूर्ववत्। इसी प्रकार यावत् मनुष्य तक जानना चाहिये और इसी प्रकार वैक्रिय शरीर के विषयमें भी जानना चाहिये। जिन जीवोंके जो शरीर हो उनके वही कहना चाहिये।

भगवन् ! आहारक शरीर बांधता हुआ जीव अधिकरणी है या अधिकरण ? गौतम ! वह अधिकरणी भी है और अधिकरण भी। भगवन् ! किस कारण उसे अधिकरणी और अधिकरण कहते हैं ? गौतम ! प्रमाद की अपेक्षा वह अधिकरणी और अधिकरण है। इसी प्रकार मनुष्य के विषय में जानना चाहिये। तैजस् शरीर का कथन औदारिक शरीरके समान जानना चाहिये। परन्तु तैजस् शरीर सभी जीवोंके होता है। कार्मण शरीरके विषयमें भी इसी प्रकार जानना चाहिये।

भगवन् ! श्रोत्रेन्द्रियको बांधता हुआ जीव अधिकरणी है या अधिकरण ? गौतम ! औदारिक शरीर के समान यह भी जानना चाहिये। परन्तु जिन जीवों के श्रोत्रेन्द्रिय हो, उनकी अपेक्षा ही यह कथन है। इसी प्रकार चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय के विषयमें भी जानना चाहिये। जिन जीवों के जितनी इन्द्रियां हों, उनके विषयमें उस प्रकार जानना चाहिये।

भगवन् ! मनोयोग को बांधता हुआ जीव अधिकरणी है या अधिकरण ? गौतम ! श्रोत्रेन्द्रिय के समान जानो, वचन-योग के विषय में भी इसी प्रकार जानो, परन्तु वचन-योग में एकेन्द्रियों का कथन नहीं करना चाहिये। काय-योग के विषय में भी इसी प्रकार जानना चाहिये। काय-योग सभी जीवों के होता है। इसी प्रकार वैमानिकों तक जानना चाहिये। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है।...ऐसा कहकर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ।। ५६४ ।।

।। सोलहवें शतक का प्रथम उद्देशक समाप्त ।।

शतक १६ उद्देशक २—जरा शारीरिक और शोक मानसिक०

राजगृह नगर में यावत् इस प्रकार पूछा—भगवन् ! जीवोंके जरा और शोक होता है ? हां गौतम ! जीवों के जरा भी होती है और शोक भी होता है। भगवन् ! ऐसा क्यों होता है ? गौतम ! जो जीव शारीरिक वेदना वेदते हैं, उन जीवों के जरा होती है, और जो जीव मानसिक वेदना वेदते हैं, उन जीवों के शोक होता है। इस कारण ऐसा कहा गया है कि जीवों के जरा भी होती है और शोक भी होता है। इसी प्रकार नैरयिकों यावत् स्तनितकुमारों तक कहना चाहिये।

भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीवों के जरा और शोक होता है ? गौतम ! पृथ्वीकायिक जीवों के जरा होती है, शोक नहीं होता। भगवन् ! उन्हें शोक क्यों नहीं होता ? गौतम ! पृथ्वीकायिक जीव शारीरिक वेदना वेदते हैं, मानसिक वेदना नहीं वेदते, अतः उनके जरा होती है, शोक नहीं होता। इस प्रकार यावत् चतुरिन्द्रिय जीवों तक जानना चाहिये। शेष जीवों का कथन सामान्य जीवोंके समान जानना चाहिये यावत् वैमानिकों तक जानना चाहिये। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है।...ऐसा कह कर गौतम स्वामी यावत् पर्युपासना करते हैं ॥ ५६५ ॥

उस काल उस समयमें शक्र देवेन्द्र देवराज, वज्रपाणि, पुरन्दर यावत् भोग भोगता हुआ विचरता था। वह अपने विशाल अवधिज्ञानसे इस सम्पूर्ण जम्बूद्वीपको देख रहा था। उसने जम्बूद्वीपमें श्रमण भगवान् महावीर स्वामीको देखा। यहां तीसरे शतकके प्रथम उद्देशकमें कथित ईशानेन्द्र की वक्तव्यताके समान शक्रेन्द्र की वक्तव्यता कहनी चाहिये। विशेषता यह है कि यहां शक्रेन्द्र आभियोगिक देवों को नहीं बुलाता, इसका सेनापति हरिणैगमेषी देव हैं। सुघोषा घण्टा है। विमान का बनाने वाला पालक देव है। विमान का नाम पालक है। इसके निकलने का मार्ग उत्तर दिशा है। दक्षिण पूर्व (अग्निकोण) में रतिकर पर्वत है। शेष सभी उसी प्रकार कहना चाहिये। यावत् शक्रेन्द्र अपना नाम सुना कर भगवान् की पर्युपासना करने लगा। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने धर्म-कथा कही यावत् परिषद् लौट गई। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से धर्म-कथा सुनकर देवेन्द्र देवराज शक्र हृष्ट एवं सन्तुष्ट हुआ। उसने भगवान् को वन्दना-नमस्कार करके इस प्रकार पूछा—

भगवन् ! अवग्रह कितने प्रकारका कहा गया है ? शक्र ! अवग्रह पांच प्रकारका कहा गया है। यथा—देवेन्द्रावग्रह, राजावग्रह, गाथापति (गृहपति)-अवग्रह, सागारिकावग्रह और साधर्मिकावग्रह। (तत्पश्चात् शक्रेन्द्र ने इस प्रकार निवेदन किया कि) भगवन् ! आज-कल जो ये श्रमण-निर्ग्रन्थ विचरते हैं, उनको मैं अवग्रह की अनुज्ञा देता हूं। ऐसा कह कर शक्रेन्द्र श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना-नमस्कार करके उस दिव्य यान विमान पर बैठ कर जिधरसे आया था, उधर वापिस चला गया।

भगवन् ! ऐसा कहकर भगवान् गौतम स्वामीने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना-नमस्कार करके इस प्रकार पूछा—भगवन् ! देवेन्द्र देवराज शक्र ने आप से पूर्वोक्त रूपसे अवग्रह सम्बन्धी जो कहा, वह अर्थ सत्य है ? हां गौतम ! वह अर्थ सत्य है ॥ ५६६ ॥

भगवन् ! देवेन्द्र देवराज शक्र सत्यवादी है या मिथ्यावादी ? गौतम ! वह सत्यवादी है, मिथ्यावादी नहीं। भगवन् ! देवेन्द्र देवराज शक्र सत्य-भाषा बोलता

है, मृषा भाषा बोलता है, सत्य-मृषा भाषा बोलता है अथवा असत्यामृषा भाषा बोलता है ? गौतम ! वह सत्य भाषा भी बोलता है यावत् असत्यामृषा भाषा भी बोलता है ?

भगवन् ! देवेन्द्र देवराज शक्र क्या सावद्य (पाप-युक्त) भाषा बोलता है या निरवद्य (पाप-रहित) भाषा बोलता है ? गौतम ! वह सावद्य भाषा भी बोलता है और निरवद्य भाषा भी बोलता है। भगवन् ! ऐसा क्यों कहा गया कि शक्रेन्द्र सावद्य भाषा भी बोलता है और निरवद्य भाषा भी बोलता है ? गौतम ! जब देवेन्द्र देवराज शक्र सूक्ष्मकाय अर्थात् हाथ अथवा वस्त्र से मुख ढके बिना बोलता है, तब वह सावद्य भाषा बोलता है। जब वह हाथ अथवा वस्त्र से मुख को ढक कर बोलता है, तब वह निरवद्य भाषा बोलता है। इसलिये ऐसा कहा गया है कि शक्र सावद्य भाषा भी बोलता है और निरवद्य भाषा भी बोलता है।

भगवन् ! देवेन्द्र देवराज शक्र भवसिद्धिक है या अभवसिद्धिक है ? सम्यग्दृष्टि है ? या मिथ्यादृष्टि, इत्यादि प्रश्न ? गौतम ! तीसरे शतक के प्रथम उद्देशक में सनत्कुमार के वर्णन के अनुसार यहां भी जानना चाहिये यावत् वह अचरम नहीं है ॥५६७॥

भगवन् ! जीवों के कर्म चैतन्यकृत होते हैं या अचैतन्यकृत ? गौतम ! जीवों के कर्म चैतन्यकृत होते हैं, अचैतन्यकृत नहीं होते। भगवन् ! इसका क्या कारण है कि जीवों के कर्म चैतन्यकृत होते हैं, अचैतन्यकृत नहीं होते ?

गौतम ! जीवों के जो पुद्गल आहार रूप से, शरीर रूप से और कलेवर रूप से उपचित (सञ्चित) हुए हैं, वे पुद्गल उस उस रूप से परिणत होते हैं। इसलिए आयुष्मन् श्रमणो ! कर्म अचैतन्यकृत नहीं हैं। वे पुद्गल दुःस्थान रूप से, दुःशय्या रूप से और दुर्निषद्या रूप से तथा तथारूप से परिणत होते हैं। इसलिये आयुष्मन् श्रमणो ! कर्म अचैतन्यकृत नहीं हैं। वे पुद्गल आतंक रूप से परिणत होकर जीव के वध के लिए होते हैं। वे संकल्प रूप से परिणत होकर जीव के वध के लिए होते हैं। वे पुद्गल मरणान्त रूप से परिणत होकर जीव के वध के लिये होते हैं। इसलिए हे आयुष्मन् श्रमणो ! कर्म अचैतन्यकृत नहीं हैं। इसी प्रकार नैरयिकों से लेकर वैमानिकों तक कहना चाहिए। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है।······ऐसा कह कर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ॥५६८॥

॥ सोलहवें शतक का द्वितीय उद्देशक समाप्त ॥

शतक १६ उद्देशक ३—कर्म—बन्ध०

राजगृह नगर में गौतमस्वामी ने यावत् इस प्रकार पूछा कि भगवन् ! कर्म-प्रकृतियां कितनी कही गई हैं ? गौतम ! कर्म-प्रकृतियां आठ कही गई हैं। यथा—

ज्ञानावरणीय यावत् अन्तराय। इस प्रकार यावत् वैमानिकों तक कहना चाहिये। भगवन्! ज्ञानावरणीय कर्म को वेदता हुआ जीव कितनी कर्मप्रकृतियां वेदता है? गौतम! आठ···यहां प्रज्ञापना सूत्र का सत्ताइसवां 'वेदावेद' नामक पद सम्पूर्ण कहना चाहिए। इसी प्रकार 'वेदाबन्ध' 'बन्धावेद' और 'बन्धाबन्ध' उद्देशक भी यावत् वैमानिकों तक कहना चाहिए। हे भगवन्! यह इसी प्रकार है।······ऐसा कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं ॥५६६॥

किसी दिन श्रमण भगवान् महावीर राजगृह नगर के गुणशीलक उद्यान से निकल कर बाहर दूसरे देशों में विहार करने लगे। उस काल उस समय में उल्लुकतीर नामक नगर था (वर्णन)। उस उल्लुकतीर नगर के बाहर ईशान कोण में 'एकजम्बूक' नामक उद्यान था (वर्णन)। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी अनुक्रम से विचरते हुए यावत् किसी दिन एकजम्बूक नामक उद्यान में पधारे यावत् परिषद् लौट गई। इसके पश्चात् 'हे भगवन्!' ऐसा कह कर भगवान् गौतम स्वामी ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना-नमस्कार कर इस प्रकार पूछा—

भगवन्! निरन्तर छठ-छठके तपपूर्वक यावत् आतापना लेते हुए भावितात्मा अनगार को दिवस के पूर्वभाग में अपने हाथ, पैर यावत् उरु (जंघा) को संकोचना या फैलाना नहीं कल्पता है और दिन के पश्चिम भाग में हाथ, पैर यावत् उरु को संकोचना और फैलाना कल्पता है? इस प्रकार कायोत्सर्ग में रहे हुए भावितात्मा अनगार की नासिका में अर्श (मस्सा) लटकता हो, उस अर्श को देख कर कोई वैद्य उसे काटने के लिये उस ऋषि को भूमि पर सुलावे और उसके अर्श को काटे, तो भगवन्! अर्श काटने वाले उस वैद्य को क्रिया लगती है या जिसका अर्श काटा जा रहा है, उस ऋषि को धर्मान्तिराय रूप क्रिया के सिवाय दूसरी भी क्रिया लगती है? हां, गौतम! जो काटता है, उसे (शुभ) क्रिया लगती है और जिसका अर्श काटा जाता है, उसे धर्मान्तिरायके सिवाय दूसरी कोई क्रिया नहीं लगती। हे भगवन्! यह इसी प्रकार है।······ऐसा कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं ॥५७०॥

॥ सोलहवें शतक का तीसरा उद्देशक समाप्त ॥

—०—

शतक १६ उद्देशक ४-नैरयिकों की निर्जरा की श्रमणों से तुलना

राजगृह नगर में गौतम स्वामी ने यावत् इस प्रकार पूछा—भगवन्! अन्नग्लायक (भूख को सहन नहीं कर सकने वाला) श्रमण निर्ग्रन्थ जितने कर्म खपाता है, उतने कर्म नैरयिक जीव नरक में एक वर्ष में, अनेक वर्षों में या सौ वर्षों में खपाता है? गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं। भगवन्! चतुर्थभक्त (एक उपवास) करने वाला श्रमण-निर्ग्रन्थ जितने कर्म खपाता है, उतने कर्म नैरयिक जीव नरक

में सौ वर्षों में, अनेक सौ वर्षों या हजार वर्षों में खपाता है ?······नहीं । भगवन् ! छठ-भक्त करने वाला श्रमण-निर्ग्रन्थ जितने कर्म क्षय करता है, उतने कर्म नैरयिक नरकमें एक हजार वर्षों में, अनेक हजार वर्षों में या एक लाख वर्ष में क्षय करता है ? ···नहीं । भगवन् ! अष्टम-भक्त करने वाला श्रमण-निर्ग्रन्थ जितने कर्म खपाता है, उतने कर्म नैरयिक नरक में एक लाख वर्षों में, अनेक लाख वर्षों में या एक करोड़ वर्षमें नष्ट करता है ?···नहीं । भगवन् ! दशम-भक्त करने वाला श्रमण-निर्ग्रन्थ जितने कर्म खपाता है, उतने कर्म नैरयिक जीव नरक में एक करोड़ वर्ष में, अनेक करोड़ वर्षों में या कोटाकोटि वर्षों में खपाता है ? ······नहीं ।

भगवन् ! क्या कारण है कि 'अन्नग्लायक श्रमण-निर्ग्रन्थ जितने कर्म खपाता है, उतने कर्म नैरयिक जीव नरक में एक वर्ष में या अनेक वर्षों में भी नहीं खपा सकता है और चतुर्थ-भक्त करने वाला श्रमण-निर्ग्रन्थ इत्यादि यावत् कोटाकोटि वर्षों में भी नहीं क्षय कर सकता, इत्यादि प्रश्न । गौतम ! जैसे एक वृद्ध पुरुष हैं । वृद्धावस्था के कारण उसका शरीर जर्जरित है, चमड़ी ढीली होने से सिकुड़ कर सिलवटों (झुरियों) से व्याप्त है, जिसके दांत विरल (थोड़े) रह गये हैं, अथवा सभी दांत गिर गये हैं, जो गर्मी से व्याकुल हो रहा है, जो प्यास से पीड़ित है, जो आतुर (रोगी), भूखा, प्यासा, दुर्बल और मानसिक क्लेशसे युक्त है । एक बड़ी कोशम्ब नामक वृक्ष की सूखी, टेढ़ीमेढ़ी गांठगठीली, चिकनी, बांकी और निराधार रही हुई गण्डिका (गांठ गठीली जड़) पर एक कुण्ठित (जिसकी धार तीखी नहीं, भौंथरी-भोंठी हो गई है ऐसे) कुल्हाड़े से, वह वृद्ध पुरुष जोर-जोर से शब्द (हुँकारध्वनि) करता हुआ प्रहार करे, तो भी वह उस लकड़ी के बड़े-बड़े टुकड़े नहीं कर सकता । इसी प्रकार हे गौतम ! नैरयिक जीवों ने अपने पाप-कर्म गाढ़े किये हैं, चिकने किये हैं, इत्यादि छठे शतक के पहले उद्देशकानुसार । इस कारण वे नैरयिक जीव अत्यन्त वेदना वेदते हुए भी महानिर्जरा और महापर्यवसान (मोक्ष रूप फल) वाले नहीं होते । जिस प्रकार कोई पुरुष एरण पर घन की चोट मारता हुआ जोर-जोर से शब्द करता हुआ, एरण के स्थूल पुद्गलों को तोड़ने में समर्थ नहीं होता, इसी प्रकार नैरयिक जीव गाढ़ कर्म वाले होते हैं । इसलिये वे यावत् महापर्यवसान वाले नहीं होते ।

जिस प्रकार कोई तरुण बलवान यावत् मेधावी और निपुण शिल्पकार पुरुष शाल्मली वृक्ष की गीली, अजटिल, अगंठिल (गांठ रहित), अचिक्कण (चिकनास रहित), सीधी और आधार वाली गण्डिका पर तीक्ष्ण

कुल्हाड़े द्वारा प्रहार करे, तो वह जोर-जोर से शब्द किये विना ही (सरलता से) उसके वड़े-वड़े टुकड़े कर देता है, इसी प्रकार हे गौतम ! जिन श्रमण-निर्ग्रन्थों ने अपने कर्मों को यथा-स्थूल शिथिल यावत् निष्ठित किये हैं यावत् वे कर्म शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं और वे श्रमण-निर्ग्रन्थ यावत् महापर्यवसान वाले होते हैं।

गौतम ! जैसे कोई पुरुष सूखे हुए घास के पूले को यावत् अग्नि में डाले, तो वह शीघ्र ही जल जाता है, इसी प्रकार श्रमण-निर्ग्रन्थों के यथा-वादर कर्म शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। जैसे कोई पुरुष पानी की बूंद को तपाये हुए लोह के कड़ाह पर डाले तो वह शीघ्र ही नष्ट हो जाती है, इसी प्रकार श्रमण-निर्ग्रन्थों के यथा-वादर कर्म शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। छठे शतक के प्रथम उद्देशकानुसार यावत् वे महापर्यवसान वाले होते हैं। इसलिये हे गौतम ! ऐसा कहा गया है कि 'अन्नग्लायक श्रमण-निर्ग्रन्थ जितने कर्मों को क्षय करता है, इत्यादि यावत् उतने कर्मों को नैरयिक जीव कोटाकोटि वर्षों में भी नहीं खपाते। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है।...... ऐसा कहकर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं।। ५७१ ।।

।। सोलहवें शतक का चौथा उद्देशक समाप्त ।।

शतक १६ उद्देशक ५—शक्रेन्द्र के प्रश्न और भगवान् के उत्तर०

उस काल उस समय में उल्लुकतीर नामक नगर था (वर्णन)। एकजम्बूक नामक उद्यान था (वर्णन)। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी वहां पधारे यावत् परिषद् पर्युपासना करती है। उस काल उस समयमें देवेन्द्र देवराज, वज्रपाणि शक्र इत्यादि सोलहवें शतकके द्वितीय उद्देशकवत् दिव्य यान-विमानसे वहां आया और श्रमण भगवान् महावीर स्वामीको वन्दना-नमस्कार कर इस प्रकार पूछा—भगवन् ! कोई महर्द्धिक यावत् महासुख वाला देव वाहर के पुद्गलों को ग्रहण किये विना यहां आने में समर्थ है ? शक्र ! यह अर्थ समर्थ नहीं।

भगवन् ! महर्द्धिक यावत् महासुख वाला देव वाहर के पुद्गलों को ग्रहण करके यहां आने में समर्थ है ? हां शक्र ! समर्थ है। भगवन् ! महर्द्धिक यावत् महासुख वाला देव, इसी प्रकार वाहर के पुद्गलोंको ग्रहण करके गमन करने, वोलने, उत्तर देने, आंख खोलने और वन्द करने, शरीर के अवयवों को संकोचने और फैलाने में, स्थान, शय्या, निषद्या और स्वाध्यायभूमिको भोगने, वैक्रिय करने और परिचारणा (विषयोपभोग) करने में समर्थ है ? हां शक्र ! यावत् समर्थ है। देवेन्द्र देवराज शक्र पूर्वोक्त संक्षिप्त

आठ प्रश्न पूछ कर उत्सुकतापूर्वक (शीघ्र ही) भगवान्‌को वन्दना-नमस्कार करके उस दिव्य-यान विमान पर चढ़ कर जिस दिशा से आया था, उसी दिशा में चला गया ॥ ५७२ ॥

भगवन् ! जब कभी देवेन्द्र देवराज शक्र आता है, तब आप देवानुप्रिय को वन्दन-नमस्कार सत्कार यावत् पर्युपासना करता है, परन्तु भगवन् ! आज तो देवेन्द्र देवराज शक्र, आप (देवानुप्रिय) को संक्षेपमें आठ प्रश्न पूछ कर और उत्सुकतापूर्वक वन्दना-नमस्कार करके शीघ्र ही चला गया, इसका क्या कारण है ? गौतम ! उस काल उस समयमें महाशुक्र कल्पके 'महासामान्य' नामक विमान-में महर्द्धिक यावत् महासुख वाले दो देव एक ही विमानमें देवपने उत्पन्न हुए। उनमें से एक मायी-मिथ्यादृष्टि उत्पन्न हुआ और दूसरा अमायी सम्यग्दृष्टि। उस मायी मिथ्यादृष्टि देवने अमायी सम्यग्दृष्टि देवसे इस प्रकार कहा कि–"परिणमते हुए पुद्गल 'परिणत' नहीं कहलाते, अपरिणत कहलाते हैं, क्योंकि वे पुद्गल अभी परिणत हो रहे हैं, इसलिये वे 'परिणत नहीं' अपरिणत हैं।" यह सुन कर अमायी सम्यग्दृष्टि देवने मायी मिथ्यादृष्टि देवसे कहा—"परिणमते हुए पुद्गल 'परिणत' कहलाते हैं, 'अपरिणत' नहीं कहलाते, क्योंकि वे परिणमते हैं।" इस प्रकार कह कर अमायी सम्यग्दृष्टि देवने मायी मिथ्यादृष्टि देव को प्रतिहत (पराजित) किया।

इसके पश्चात् अमायी सम्यग्दृष्टि देवने अवधिज्ञान का उपयोग लगा कर मुझे देखा। उसे विचार उत्पन्न हुआ कि इस जम्बूद्वीपके भरत क्षेत्र में उल्लुकतीर नामक नगर के एकजम्बूक उद्यान में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी यथायोग्य अवग्रह लेकर विचरते हैं, अत: मुझे वहाँ जाकर भगवान्‌को वन्दना-नमस्कार यावत् पर्युपासना करना और उपर्युक्त प्रश्न पूछना श्रेयस्कर है। ऐसा विचार कर चार हजार सामानिक देवोंके परिवार के साथ, सूर्याभ देवके समान यावत् निर्घोष-निनादित ध्वनिपूर्वक, इस जम्बूद्वीपके भरत क्षेत्र में उल्लुकतीर नामक नगर के एकजम्बूक उद्यानमें, मेरे निकट आने के लिए चला। मेरी ओर आते हुए उस देव की तथाविध दिव्य देवर्द्धि, दिव्य देव-द्युति, दिव्य देवप्रभा और दिव्य तेजोराशि को सहन नहीं करता हुआ देवेन्द्र देवराज शक्र यहां आया और संक्षेप में आठ प्रश्न पूछकर और शीघ्रतापूर्वक वन्दना-नमस्कार कर यावत् चला गया ॥५७३॥

जिस समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी, गौतम स्वामी को उपर्युक्त बात कह रहे थे, उसी समय शीघ्र ही वह सम्यग्दृष्टि देव वहां आया और श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को तीन बार प्रदक्षिणा की और वन्दना-नमस्कार करके पूछा-भगवन् ! महाशुक्र कल्पमें महासामान्य नामक विमानमें उत्पन्न हुए एक मायी मिथ्या-दृष्टि देवने मुझे इस प्रकार कहा–"परिणमते हुए पुद्गल 'परिणत' नहीं कहे

जाकर अपरिणत कहे जाते हैं, क्योंकि वे पुद्गल अभी परिणाम रहे हैं। इसलिये वे 'परिणत' नहीं कहे जाते हैं।" उसके उत्तर में मैंने उस मायी मिथ्यादृष्टि देव से कहा—"परिणामते हुए पुद्गल 'परिणत' कहलाते हैं, अपरिणत नहीं, क्योंकि वे पुद्गल परिणत हो रहे हैं, वे अपरिणत नहीं, परिणत कहलाते हैं।" भगवन्! मेरा यह कथन कैसा है? 'हे गंगदत्त! मैं भी इसी प्रकार कहता हूं यावत् प्ररूपणा करता हूं कि परिणमते हुए पुद्गल यावत् 'अपरिणत' नहीं, परिणत हैं। यह अर्थ सत्य है। इसके पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर स्वामी का उत्तर सुन कर एवं अवधारण कर वह गंगदत्त देव हृष्ट-तुष्ट हुआ। उसने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दन-नमस्कार किया और न अति दूर न अति निकट बैठकर भगवान् की पर्युपासना करने लगा।

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने गंगदत्त देव और महती परिषद् को धर्म-कथा कही यावत्—जिसे सुनकर जीव आराधक बनते हैं। गंगदत्त देव भगवान् से धर्म सुनकर और अवधारण करके हृष्ट-तुष्ट हुआ और खड़े होकर भगवान् को वन्दना-नमस्कार कर इस प्रकार पूछा—"भगवन्! मैं गंगदत्त देव भवसिद्धिक हूं या अभवसिद्धिक?" गंगदत्त! राजप्रश्नीय सूत्र के सूर्याभ देववत् यावत् वह गंगदत्त देव बत्तीस प्रकार का नाटक दिखा कर जिस दिशा से आया था, उसी दिशा में चला गया ॥५७४॥

...भगवन्! उस गंगदत्त देवकी वह दिव्य देवर्द्धि, दिव्य देवद्युति यावत् कहां गई...? गौतम! वह दिव्य देवर्द्धि यावत् उस गंगदत्त देवके शरीरमें गई और शरीर में ही अनुप्रविष्ट हुई। यहां कूटाकारशालाका दृष्टांत समझना चाहिये यावत् 'वह शरीर में अनुप्रविष्ट हुई।' अहो! भगवन्! यह गंगदत्त देव महर्द्धिक यावत् महासुख वाला है। भगवन्! गंगदत्त देवको वह दिव्य देवर्द्धि यावत् किस प्रकार प्राप्त हुई यावत् अभिसमन्वागत (सम्मुख) हुई? गौतम! उस काल उस समय में इस जम्बूद्वीपके भरत क्षेत्र में हस्तिनापुर नाम का नगर था (वर्णन)। वहां सहस्राम्रवन नामक उद्यान था। उस हस्तिनापुर नगर में आढ्य यावत् अपरिभूत ऐसा गंगदत्त नामक गाथापति रहता था। उस काल उस समय में धर्मकी आदि करने वाले यावत् सर्वज्ञ सर्वदर्शी, आकाशगत चक्र सहित यावत् देवों द्वारा खींचे जाते हुए धर्मध्वज युक्त शिष्य-समुदाय से सम्परिवृत्त पूर्वानुपूर्वी विचरते हुए और ग्रामानुग्राम जाते हुए यावत् मुनिसुव्रत अरिहन्त यावत् सहस्राम्रवन उद्यानमें पधारे यावत् यथायोग्य अवग्रह ग्रहण कर विचरने लगे। परिषद् वन्दन करने के लिये आई यावत् पर्युपासना करने लगी। गंगदत्त गाथापतिने भगवान् श्री मुनिसुव्रत स्वामी के पधारनेकी बात सुनी। वह अति हृष्ट-तुष्ट हुआ, स्नान करके और

शरीरको अलंकृत कर अपने घरसे पैदल ही निकला और हस्तिनापुर नगरके मध्य में होता हुआ सहस्राम्रवन उद्यान में श्री मुनिसुव्रत स्वामी की सेवामें पहुँचा। तीन वार प्रदक्षिणा कर यावत् तीन प्रकार से पर्युपासना करने लगा।

श्री मुनिसुव्रत स्वामी ने उस गंगदत्त गाथापति को तथा उस महती परिषद् को धर्म-कथा कही यावत् परिषद् चली गई। श्री मुनिसुव्रत स्वामीसे धर्म सुनकर और अवधारण करके गंगदत्त गाथापति हृष्ट तुष्ट होकर खड़ा हुआ और भगवान् को वन्दना-नमस्कार करके इस प्रकार बोला—"भगवन्! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचनों पर श्रद्धा करता हूं यावत् आपके उपदेश पर विश्वास करता हूं। भगवन्! मैं अपने ज्येष्ठ पुत्रको कुटुम्ब का अधिकार देकर आप देवानुप्रियके समीप प्रव्रजित होना चाहता हूं।" श्री मुनिसुव्रत स्वामी ने कहा–हे देवानुप्रिय! जिस प्रकार तुम्हें सुख हो, वैसा करो। धर्म कार्य में विलम्ब मत करो।

श्री मुनिसुव्रत स्वामीका कथन सुनकर गंगदत्त गाथापति हृष्ट-तुष्ट हुआ और भगवान् को वन्दना-नमस्कार कर सहस्राम्रवन उद्यान से निकल कर अपने घर आया। उसने विपुल अशन-पान यावत् तैयार करवा कर अपने मित्र, ज्ञाति, स्वजन आदि को निमन्त्रित किया, फिर स्नान करके तीसरे शतकके दूसरे उद्देशक के पूर्ण सेठ के समान अपने बड़े पुत्र को कुटुम्ब में स्थापित किया।

और अपने मित्र, ज्ञाति, स्वजन आदि तथा ज्येष्ठ पुत्रको पूछकर हजार पुरुषों द्वारा उठाने योग्य शिविकामें बैठकर, अपने मित्र, ज्ञाति, स्वजन यावत् परिवार द्वारा तथा ज्येष्ठ पुत्र द्वारा अनुसरण किया जाता हुआ सर्व ऋद्धि सहित यावत् वादिन्त्रके घोषपूर्वक हस्तिनापुरके मध्यमें होकर सहस्राम्रवन उद्यानकी ओर चला। तीर्थंकर भगवान्के छत्रादि अतिशय देखकर यावत् (तेरहवें शतकके छठे उद्देशकमें कथित) उदायन राजाके समान यावत् स्वयमेव आभूषण उतारे और स्वयमेव पञ्चमुष्टिक लोच किया। इसके वाद श्री मुनिसुव्रत स्वामीके पास जाकर, उदायन राजाके समान दीक्षा ली यावत् गंगदत्त अनगारने ग्यारह अंगों का ज्ञान पढ़ा यावत् एक मासकी संलेखनासे साठ-भक्त अनशनका छेदन किया और आलोचना-प्रतिक्रमण करके समाधिपूर्वक काल करके महाशुक्र कल्पमें महा-सामान्य नामक विमानकी उपपात सभा के देव-शयनीयमें यावत् गंगदत्त देवपने उत्पन्न हुआ। तत्पश्चात् तत्काल उत्पन्न हुआ वह गंगदत्त देव पांच प्रकार की पर्याप्तियोंसे पर्याप्त बना। यथा–आहारपर्याप्ति यावत् भाषा-मन पर्याप्ति। इस प्रकार हे गौतम! उस गंगदत्त देवको वह दिव्य देवर्द्धि पूर्वोक्त प्रकारसे यावत् प्राप्त हुई है।

भगवन्! उस गंगदत्त देवकी स्थिति कितने कालकी कही गई है? गौतम! उसकी स्थिति १७ सागरोपम की कही गई है। भगवन्! वह गंगदत्त देव वहांका

आयुष्य, भव और स्थितिका क्षय होने पर च्यवकर कहां जायगा ? कहां उत्पन्न होगा ? गौतम ! वह महाविदेह क्षेत्रमें जन्म लेकर सिद्ध होगा यावत् सभी दुःखों का अन्त करेगा। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है।···ऐसा कह कर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ।।५७५।।

।। सोलहवें शतक का पांचवां उद्देशक समाप्त ।।

शतक १६ उद्देशक ६—स्वप्नकी अवस्था और प्रकार०

भगवन् ! स्वप्न-दर्शन कितने प्रकार का कहा है ? गौतम ! स्वप्न-दर्शन पांच प्रकारका···है, यथा—१ यथातथ्य स्वप्न-दर्शन २ प्रतान स्वप्न-दर्शन ३ चिन्ता स्वप्न-दर्शन ४ तद्विपरीत स्वप्न-दर्शन और ५ अव्यक्त स्वप्न-दर्शन। भगवन् ! सोता हुआ प्राणी स्वप्न देखता है, जागता हुआ देखता है या सुप्त-जाग्रत (सोता-जागता) प्राणी स्वप्न देखता है ? गौतम ! सोता हुआ प्राणी स्वप्न नहीं देखता, जागता हुआ प्राणी भी स्वप्न नहीं देखता, सुप्त-जाग्रत प्राणी स्वप्न देखता है।

भगवन् ! जीव सोये हुए हैं, जाग्रत हैं या सुप्तजाग्रत हैं ? गौतम ! जीव सुप्त भी हैं, जाग्रत भी हैं और सुप्तजाग्रत भी हैं। भगवन् ! नैरयिक सुप्त हैं इत्यादि प्रश्न। गौतम ! नैरयिक सुप्त हैं, जाग्रत नहीं और सुप्तजाग्रत भी नहीं। इसी प्रकार यावत् चतुरिन्द्रिय तक कहना चाहिये। भगवन् ! पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च-योनिक जीव सुप्त हैं, इत्यादि प्रश्न। गौतम ! वे सुप्त हैं, जाग्रत नहीं हैं, सुप्त-जाग्रत हैं। मनुष्यके सम्बन्धमें सामान्य जीवोंके समान जानना चाहिये। वाण-व्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिकोंका कथन नैरयिक जीवोंके समान जानना चाहिए ।।५७६।।

भगवन् ! संवृत्त जीव स्वप्न देखता है, असंवृत्त जीव स्वप्न देखता है या संवृत्तासंवृत्त जीव स्वप्न देखता है ? गौतम ! संवृत्त भी स्वप्न देखता है, असंवृत्त भी स्वप्न देखता है और संवृत्तासंवृत्त भी स्वप्न देखता है। संवृत्त जीव यथातथ्य (सत्य) स्वप्न देखता है। असंवृत्त जीव जो स्वप्न देखता है, वह सत्य भी होता है और असत्य भी। संवृत्तासंवृत्तके स्वप्न असंवृत्तके समान जानने चाहियें। भगवन् ! जीव संवृत्त हैं, असंवृत्त हैं या संवृत्तासंवृत्त हैं ? गौतम ! जीव संवृत्त भी हैं, असंवृत्त भी हैं और संवृत्तासंवृत्त भी हैं। जिस प्रकार सुप्त जीवोंका दंडक कहा, उसी प्रकार इनका भी कहना चाहिये।

भगवन् ! स्वप्न कितने प्रकार के कहे गये हैं ? गौतम ! स्वप्न बयालीस प्रकार के कहे गये हैं। भगवन् ! महास्वप्न कितने प्रकार के कहे गये हैं ? गौतम !···तीस प्रकार···। भगवन् ! सभी स्वप्न कितने कहे गये हैं ? गौतम ! सभी स्वप्न बहत्तर कहे गये हैं।

भगवन्! जब तीर्थंकर का जीव गर्भ में आता है, तब तीर्थंकर की माता कितने महास्वप्न देख कर जाग्रत होती है? गौतम! जब तीर्थंकर का जीव गर्भ में आता है, तब तीर्थंकर की माता इन तीस महास्वप्नोंमें से १४ महास्वप्न देखकर जाग्रत होती है। यथा–हाथी, वृषभ, सिंह यावत् अग्नि। भगवन्! जब चक्रवर्तीका जीव गर्भ में आता है, तब चक्रवर्ती की माता कितने महास्वप्न देख कर जाग्रत होती है? गौतम! चक्रवर्ती की माता, तीर्थंकर की माता के समान चौदह महास्वप्न देख कर जाग्रत होती है, यथा-हाथी यावत् अग्नि। भगवन्! जब वासुदेव का जीव गर्भ में आता है, तब वासुदेव की माता कितने महास्वप्न देख कर जाग्रत होती है? गौतम! वासुदेव की माता इन चौदह महास्वप्नों में से कोई भी सात महास्वप्न देख कर जाग्रत होती है? भगवन्! जब बलदेवका जीव गर्भ में आता है, तब बल-देव की माता कितने स्वप्न देख कर जाग्रत होती है? गौतम! बलदेव की माता इन चौदह महास्वप्नों में से कोई भी चार महास्वप्न देख कर जाग्रत होती है। भगवन्! माण्डलिक राजा का जीव जब गर्भ में आता है, तब उनकी माता कितने महास्वप्न देख कर जाग्रत होती है। गौतम! चौदह महास्वप्नों में से किसी एक महास्वप्न को देख कर जाग्रत होती है ॥५७७॥

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी अपनी छद्मस्थावस्था की अन्तिम रात्रि में, इन दस महास्वप्नों को देख कर जाग्रत हुए। यथा--(१) एक महान् भयंकर और तेजस्वी रूप वाले, ताड़वृक्ष के समान लम्बे पिशाच को पराजित किया-ऐसा स्वप्न देख कर जाग्रत हुए। (२) एक महान् श्वेत पंखों वाले पुंस्कोकिल (नर जाति के कोयल) को स्वप्न में देख कर जाग्रत हुए। (३) एक महान् चित्र-विचित्र पंखों वाले पुंस्कोकिल को स्वप्न में देख कर जाग्रत हुए। (४) स्वप्न में एक महान् सर्व रत्नमय मालायुगल को देख कर जाग्रत हुए। (५) स्वप्न में श्वेत वर्ण के एक महान् गो-वर्ग को देख कर जाग्रत हुए। (६) चारों ओर से कुसुमित एक महान् पद्म-सरोवर को देखकर जाग्रत हुए। (७) हजारों तरंगों और कल्लोलों से व्याप्त एक महासागर को अपनी भुजाओं से तिरे-ऐसा स्वप्न देख कर जाग्रत हुए। (८) जाज्वल्यमान तेजस्वी महान् सूर्यको स्वप्नमें देखकर जाग्रत हुए। (९) महान् मानुषोत्तर पर्वत को नील वैडूर्य मणि के समान अपने अन्तर भाग (आंतों) से चारों ओर से आवेष्टित-परिवेष्टित देख कर जाग्रत हुए। (१०) महान् मंदर (सुमेरु) पर्वतकी चूलिका पर श्रेष्ठ सिंहासन पर बैठे हुए अपने आप को देख कर जाग्रत हुए।

प्रथम स्वप्न में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने भयंकर और तेजस्वी रूप वाले, ताड़वृक्ष जितने ऊंचे एक पिशाचको पराजित किया हुआ देखा। इसका फल यह है कि श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने मोहनीय कर्म को समूल नष्ट

किया। दूसरे स्वप्न में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी एक महान् श्वेत पंख वाले पुंस्कोकिलको देख कर जाग्रत हुए, इसके फलस्वरूप श्रमण भगवान् महावीर स्वामी शुक्लध्यान प्राप्त कर विचरे। तीसरे स्वप्न में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने एक महान् चित्र-विचित्र पंखों वाले पुंस्कोकिल को देखा। इसका फल यह है कि श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने विचित्र स्वसमय और परसमय के विविध विचार युक्त द्वादशांग गणिपिटकका कथन किया, प्रज्ञप्त किया, दिखलाया, निदर्शन किया और उपदर्शन किया, यथा-आचार, सूत्रकृत यावत् दृष्टिवाद। चौथे स्वप्नमें श्रमण भगवान् महावीर स्वामी, सर्व-रत्नमय एक महान् मालायुग्मको देख कर जाग्रत हुए। इसका फल यह है कि श्रमण भगवान् महावीर स्वामीने दो प्रकार का धर्म कहा। यथा–आगार धर्म और अनगार धर्म। पांचवें स्वप्न में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने महान् और श्वेतवर्ण का एक गोवर्ग देखा। इसका फल यह है कि श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के चार प्रकार का संघ हुआ,यथा-श्रमण, श्रमणी, श्रावक और श्राविका।

छठे स्वप्न में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने कुसुमित एक महान् पद्म-सरोवर को देखा। इसका फल यह है कि श्रमण भगवान् महावीर स्वामीने भवनवासी, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक-इन चार प्रकार के देवों का कथन किया। सातवें स्वप्न में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने हजारों तरंगों और कल्लोलों से व्याप्त एक महा सागर को अपनी भुजाओं से तिरा देखा। इसका फल यह है कि श्रमण भगवान् महावीर स्वामी अनादि अनन्त यावत् संसार कान्तार को तिर गये। आठवें स्वप्न में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी, तेज से जाज्वल्यमान एक महान् सूर्यको देखकर जाग्रत हुए। इसका फल यह है कि श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को अनन्त, अनुत्तर, निरावरण, निर्व्याघात, समग्र और प्रतिपूर्ण केवलज्ञान-केवलदर्शन उत्पन्न हुआ। नौवें स्वप्न में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने एक महान मानुषोत्तर पर्वत को नील वैडूर्य-मणि के समान अपनी आंतों से चारों ओर आवेष्टित-परिवेष्टित किया। इसका फल यह है कि देवलोक, मनुष्यलोक और असुरलोक में-भगवान् महावीर स्वामी केवलज्ञान-केवलदर्शनके धारक हैं-इस प्रकार श्रमण भगवान् महावीर स्वामी उदारकीर्ति, स्तुति, सम्मान और यश को प्राप्त हुए। दसवें स्वप्न में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी एक महान् मेरु पर्वत की मन्दर-चूलिका पर सिंहासन पर बैठे हुए अपने आपको देख कर जाग्रत हुए। इसका फल यह है कि श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने केवलज्ञानी होकर देव, मनुष्य और असुरों से युक्त परिषद् में धर्मोपदेश दिया यावत् उपदर्शित किया ॥५७८॥

कोई स्त्री या पुरुष स्वप्नके अन्तमें एक महान् अश्व पंक्ति, गज

पंक्ति यावत् वृषभ पंक्ति देखे और उस पर चढ़े तथा अपने आपको उस पर चढ़ा हुआ माने—ऐसा स्वप्न देख कर तुरन्त जाग्रत हो, तो वह उसी भव में सिद्ध होता है यावत् सभी दुःखों का अन्त करता है। कोई स्त्री या पुरुष स्वप्न के अन्त में एक बड़ी रस्सी को समुद्र के पूर्व और पश्चिम तक विस्तृत देखे और उसे अपने हाथों से समेटे, फिर अनुभव करे कि 'मैंने रस्सी को समेट लिया है।' इस प्रकार स्वप्न देख कर......। कोई स्त्री या पुरुष स्वप्न के अन्त में दोनों ओर लोकान्त को स्पर्श की हुई तथा पूर्व और पश्चिम लम्बी एक बड़ी रस्सी देखे और उसे काट डाले, एवं 'मैंने उसे काट दिया है'—ऐसा अपने आपको माने और ऐसा स्वप्न...। कोई स्त्री या पुरुष स्वप्न के अन्त में एक महान् काले सूत अथवा श्वेत सूतके उलझे हुए पिण्ड को सुलझावे और—'मैंने इसको सुलझा दिया है'—ऐसा अपने आपको माने...। कोई स्त्री या पुरुष स्वप्न के अन्त में एक महान् लोह राशि, ताम्बे का ढेर कथीर (रांगे) और शीशे का ढेर देखे और उस पर चढ़े तथा अपने आपको उस पर चढ़ा हुआ माने...। कोई स्त्री या पुरुष स्वप्न के अन्त में एक महान् चांदी का ढेर, सोने का ढेर, रत्नों का ढेर और वज्रोंका ढेर देखे...।

कोई स्त्री या पुरुष स्वप्न के अन्त में एक महान् घास का ढेर तथा तेजोनिसर्ग नामक पन्द्रहवें शतक के अनुसार यावत् कचरे का ढेर देखे और उसको बिखेर दे एवं 'मैंने बिखेर दिया है'—ऐसा अपने आपको माने......। कोई स्त्री या पुरुष स्वप्न के अन्त में एक महान् सर-स्तम्भ, वीरण-स्तम्भ, वंशीमूल स्तम्भ और वल्लिमूल स्तम्भ को देखे और उनको जड़से उखाड़कर फेंक दे तथा 'मैंने इन को उखाड़ कर फैंक दिया है'—ऐसा माने......।

कोई स्त्री या पुरुष स्वप्न के अन्त में एक महान् क्षीर कुम्भ, दधि कुम्भ, घृत और मधु कुम्भ देखे और उसे उठावे तथा "मैंने इनको उठा लिया है" ऐसा अपने आपको समझे, ऐसे स्वप्न को देख कर......। कोई स्त्री या पुरुष स्वप्न के अन्त में एक मदिरा का बड़ा कुम्भ, सौवीर का बड़ा कुम्भ, तेल का कुम्भ, चर्बी का कुम्भ देखे और उसे फोड़ डाले, तथा—"मैंने इसे फोड़ डाला है"—ऐसा माने......।

कोई स्त्री या पुरुष स्वप्न के अन्त में कुसुमित महान् पद्मसरोवर देखे और उसमें प्रवेश करे तथा 'मैंने इसमें प्रवेश किया है"—ऐसा माने......। कोई स्त्री या पुरुष स्वप्न के अन्त में तरंगों और कल्लोलों से व्याप्त महासागर को देखे और उसे तिर जाय तथा "मैं इसे तिर गया हूं"—ऐसा माने......।

कोई स्त्री या पुरुष स्वप्न के अंत में सर्व रत्नमय भवन देखे और उसमें प्रवेश करे तथा—'मैंने इसमें प्रवेश किया है"—ऐसा माने......। कोई स्त्री या पुरुष स्वप्न के अंत में सर्वरत्नमय एक महान् विमान देखे और उस पर चढ़े

तथा—"मैं इसके ऊपर चढ़ गया हूं"--ऐसा माने। इस प्रकार का स्वप्न देखकर शीघ्र जाग्रत हो, तो वह उसी भव में मोक्ष जाता है यावत् समस्त दुःखों का अन्त करता है ॥ ५७६ ॥

भगवन् ! कोई पुरुष कोष्ठपुट (गन्ध द्रव्य का पुड़ा) यावत् केतकीपुट को एक स्थान से दूसरे स्थान लेकर जाता हो और अनुकूल हवा चलती हो, तो क्या उसका गन्ध बहता (फैलता) है या यावत् केतकीपुट का गन्ध वायु में बहता है ? गौतम ! कोष्ठपुट यावत् केतकीपुट नहीं बहते, किन्तु गन्धके पुद्गल बहते हैं। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है।···ऐसा कह कर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ॥५८०॥

॥ सोलहवें शतक का छठा उद्देशक समाप्त ॥

—०—

शतक १६ उद्देशक ७—उपयोग के भेद

भगवन् ! उपयोग कितने प्रकार का कहा है ? गौतम ! उपयोग दो प्रकार का कहा है। यहां प्रज्ञापना सूत्र का २९ वां उपयोग-पद और तीसवां 'पासणया' पद सम्पूर्ण कहना चाहिये। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।······ऐसा कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं ॥५८१॥

॥ सोलहवें शतक का सातवां उद्देशक समाप्त ॥

—०—

शतक १६ उद्देशक ८—लोक के अन्त में जीव का अस्तित्व०

भगवन् ! लोक कितना बड़ा कहा है ? गौतम ! लोक अत्यन्त बड़ा कहा है। वक्तव्यता बारहवें शतकके सातवें उद्देशकके अनुसार यावत् उस लोकका परिक्षेप (परिधि) असंख्येय कोटाकोटि योजन है। भगवन् ! लोकके पूर्व चरमान्तमें जीव हैं, जीवके देश हैं, जीवप्रदेश हैं, अजीव हैं, अजीवके देश हैं और अजीवके प्रदेश हैं ? गौतम ! वहां जीव नहीं, परन्तु जीवके देश हैं, जीव के प्रदेश हैं, अजीव हैं, अजीवके देश हैं और अजीवके प्रदेश भी हैं। जो जीवके देश हैं, वे अवश्य एकेन्द्रिय जीवोंके देश हैं, अथवा एकेन्द्रिय जीवोंके देश और एक बेइन्द्रिय जीवका एक देश है, इत्यादि दसवें शतकके पहले उद्देशकमें कथित आग्नेयी दिशाकी वक्तव्यताके अनुसार जानना चाहिए। विशेषता यह है कि–'बहुत देशोंके विषयमें अनिन्द्रियोंके सम्बन्धमें प्रथम भंग नहीं कहना चाहिए, तथा वहां जो अरूपी अजीव हैं, वे छह प्रकारके कहे गये हैं, क्योंकि वहां अद्धासमय (काल) नहीं है। शेष सभी पूर्ववत् जानना चाहिए। भगवन् ! लोकके दक्षिण दिशाके चरमान्त में जीव हैं, इत्यादि प्रश्न ? गौतम ! पूर्वोक्त प्रकारसे सभी कहना

पंक्ति यावत् वृषभ पंक्ति देखे और उस पर चढ़े तथा अपने आपको उस पर चढ़ा हुआ माने—ऐसा स्वप्न देख कर तुरन्त जाग्रत हो, तो वह उसी भव में सिद्ध होता है यावत् सभी दुःखों का अन्त करता है। कोई स्त्री या पुरुष स्वप्न के अन्त में एक बड़ी रस्सी को समुद्र के पूर्व और पश्चिम तक विस्तृत देखे और उसे अपने हाथों से समेटे, फिर अनुभव करे कि 'मैंने रस्सी को समेट लिया है।' इस प्रकार स्वप्न देख कर······। कोई स्त्री या पुरुष स्वप्न के अन्त में दोनों ओर लोकान्त को स्पर्श की हुई तथा पूर्व और पश्चिम लम्बी एक बड़ी रस्सी देखे और उसे काट डाले, एवं 'मैंने उसे काट दिया है'—ऐसा अपने आपको माने और ऐसा स्वप्न···। कोई स्त्री या पुरुष स्वप्न के अन्त में एक महान् काले सूत अथवा श्वेत सूतके उलझे हुए पिण्ड को सुलझावे और—'मैंने इसको सुलझा दिया है'—ऐसा अपने आपको माने···। कोई स्त्री या पुरुष स्वप्न के अन्त में एक महान् लोह राशि, ताम्बे का ढेर कथीर (रांगे) और शीशे का ढेर देखे और उस पर चढ़े तथा अपने आपको उस पर चढ़ा हुआ माने···। कोई स्त्री या पुरुष स्वप्न के अन्त में एक महान् चांदी का ढेर, सोने का ढेर, रत्नों का ढेर और वज्रोंका ढेर देखे···।

कोई स्त्री या पुरुष स्वप्न के अन्त में एक महान् घास का ढेर तथा तेजोनिसर्ग नामक-पन्द्रहवें शतक के अनुसार यावत् कचरे का ढेर देखे और उसको बिखेर दे एवं 'मैंने बिखेर दिया है'—ऐसा अपने आपको माने······। कोई स्त्री या पुरुष स्वप्न के अन्त में एक महान् सर-स्तम्भ, वीरण-स्तम्भ, वंशीमूल स्तम्भ और वल्लिमूल स्तम्भ को देखे और उनको जड़से उखाड़कर फेंक दे तथा 'मैंने इन को उखाड़ कर फेंक दिया है'—ऐसा माने······।

कोई स्त्री या पुरुष स्वप्न के अन्त में एक महान् क्षीर कुम्भ, दधि कुम्भ, घृत और मधु कुम्भ देखे और उसे उठावे तथा "मैंने इनको उठा लिया है" ऐसा अपने आपको समझे, ऐसे स्वप्न को देख कर······। कोई स्त्री या पुरुष स्वप्न के अन्त में एक मदिरा का बड़ा कुम्भ, सौवीर का बड़ा कुम्भ, तेल का कुम्भ, चर्बी का कुम्भ देखे और उसे फोड़ डाले, तथा—"मैंने इसे फोड़ डाला है"—ऐसा माने······।

कोई स्त्री या पुरुष स्वप्न के अन्त में कुसुमित महान् पद्मसरोवर देखे और उसमें प्रवेश करे तथा 'मैंने इसमें प्रवेश किया है"—ऐसा माने······। कोई स्त्री या पुरुष स्वप्न के अन्त में तरंगों और कल्लोलों से व्याप्त महासागर को देखे और उसे तिर जाय तथा "मैं इसे तिर गया हूं"—ऐसा माने······।

कोई स्त्री या पुरुष स्वप्न के अंत में सर्व रत्नमय भवन देखे और उसमें प्रवेश करे तथा—'मैंने इसमें प्रवेश किया है"—ऐसा माने······। कोई स्त्री या पुरुष स्वप्न के अंत में सर्वरत्नमय एक महान् विमान देखे और उस पर चढ़े

तथा—"मैं इसके ऊपर चढ़ गया हूं"--ऐसा माने। इस प्रकार का स्वप्न देखकर शीघ्र जाग्रत हो, तो वह उसी भव में मोक्ष जाता है यावत् समस्त दुःखों का अन्त करता है ॥ ५७९॥

भगवन् ! कोई पुरुष कोष्ठपुट (गन्ध द्रव्य का पुड़ा) यावत् केतकीपुट को एक स्थान से दूसरे स्थान लेकर जाता हो और अनुकूल हवा चलती हो, तो क्या उसका गन्ध वहता (फैलता) है या यावत् केतकीपुट का गन्ध वायु में वहता है ? गौतम ! कोष्ठपुट यावत् केतकीपुट नहीं वहते, किन्तु गन्धके पुद्गल वहते हैं। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है।···ऐसा कह कर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ॥५८०॥

॥ सोलहवें शतक का छठा उद्देशक समाप्त ॥

—o—

शतक १६ उद्देशक ७—उपयोग के भेद

भगवन् ! उपयोग कितने प्रकार का कहा है ? गौतम ! उपयोग दो प्रकार का कहा है। यहां प्रज्ञापना सूत्र का २९ वां उपयोग-पद और तीसवां 'पासणया' पद सम्पूर्ण कहना चाहिये। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।······ऐसा कह कर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं ॥५८१॥

॥ सोलहवें शतक का सातवां उद्देशक समाप्त ॥

—o—

शतक १६ उद्देशक ८—लोक के अन्त में जीव का अस्तित्व०

भगवन् ! लोक कितना वड़ा कहा है ? गौतम ! लोक अत्यन्त वड़ा कहा है। वक्तव्यता वारहवें शतकके सातवें उद्देशकके अनुसार यावत् उस लोकका परिक्षेप (परिधि) असंख्येय कोटाकोटि योजन है। भगवन् ! लोकके पूर्व चरमान्तमें जीव हैं, जीवके देश हैं, जीवप्रदेश हैं, अजीव हैं, अजीवके देश हैं और अजीवके प्रदेश हैं ? गौतम ! वहां जीव नहीं, परन्तु जीवके देश हैं, जीव के प्रदेश हैं, अजीव हैं, अजीवके देश हैं और अजीवके प्रदेश भी हैं। जो जीवके देश हैं, वे अवश्य एकेन्द्रिय जीवोंके देश हैं, अथवा एकेन्द्रिय जीवोंके देश और एक वेइन्द्रिय जीवका एक देश है, इत्यादि दसवें शतकके पहले उद्देशकमें कथित आग्नेयी दिशाकी वक्तव्यताके अनुसार जानना चाहिए। विशेषता यह है कि–'वहुत देशोंके विपयमें अनिन्द्रियोंके सम्वन्धमें प्रथम भंग नहीं कहना चाहिए, तथा वहां जो अरूपी अजीव हैं, वे छह प्रकारके कहे गये हैं, क्योंकि वहां अद्धासमय (काल) नहीं है। शेप सभी पूर्ववत् जानना चाहिए। भगवन् ! लोकके दक्षिण दिशाके चरमान्त में जीव हैं, इत्यादि प्रश्न ? गौतम ! पूर्वोक्त प्रकारसे सभी कहना

चाहिए। इसी प्रकार पश्चिमी चरमान्त और उत्तर चरमान्तके विषयमें भी कहना चाहिए। भगवन्! लोकके उपरिम चरमान्तमें जीव हैं, इत्यादि प्रश्न ? गौतम! वहां जीव नहीं हैं किन्तु जीवके देश हैं, जीवके प्रदेश हैं यावत् अजीवके प्रदेश भी हैं। जो जीवके देश हैं, वे अवश्य एकेन्द्रियों और अनिन्द्रियोंके देश हैं। अथवा एकेन्द्रियोंके और अनिन्द्रियोंके देश और एक बेइन्द्रिय का एक देश है। २ अथवा एकेन्द्रियोंके और अनिन्द्रियोंके देश और बेइन्द्रियोंके देश हैं। इस प्रकार बीचके भांगेको छोड़कर द्विक-संयोगी सभी भंग कहने चाहिएं। इसी प्रकार यावत् पंचेन्द्रिय तक कहना चाहिए। जहां जो जीव प्रदेश हैं, वे अवश्य एकेन्द्रियोंके प्रदेश और अनिन्द्रियोंके प्रदेश हैं। १ अथवा एकेन्द्रियोंके और अनिन्द्रियोंके प्रदेश और एक बेइन्द्रियके प्रदेश हैं। २ अथवा एकेन्द्रियोंके और अनिन्द्रियोंके प्रदेश और बेइन्द्रियों के प्रदेश हैं। इस प्रकार प्रथम भंगके अतिरिक्त शेष सभी भंग कहने चाहियें। इसी प्रकार यावत् पञ्चेन्द्रिय तक कहना चाहिये। दसवें शतकके प्रथम उद्देशकमें कथित तमा दिशाकी वक्तव्यताके अनुसार यहां पर अजीवोंकी वक्तव्यता कहनी चाहिये।

भगवन्! लोकके अधस्तन (नीचेके) चरमान्तमें जीव हैं, इत्यादि प्रश्न? गौतम! वहां जीव नहीं हैं, जीवके देश हैं, जीवके प्रदेश हैं, अजीव हैं, अजीव देश हैं और अजीव प्रदेश हैं। जो जीव देश हैं, वे अवश्य एकेन्द्रियोंके देश हैं। अथवा एकेन्द्रियोंके देश और बेइन्द्रिय का देश है। अथवा एकेन्द्रियोंके देश और बेइन्द्रियों के देश हैं। इस प्रकार बीचके भंगको छोड़ कर शेष भंग कहने चाहियें यावत् अनिन्द्रियों तक कहना चाहिये। सभी प्रदेशोंके विषयमें पूर्व चरमान्तके प्रश्नोत्तरके अनुसार कहना चाहिये। परन्तु उसमें प्रथम भंग नहीं कहना चाहिये। अजीवोंके विषयमें उपरिम चरमान्त के समान कहना चाहिये।

भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वीके पूर्व चरमान्तमें जीव हैं, इत्यादि प्रश्न। गौतम! वहां जीव नहीं हैं। जिस प्रकार लोकके चार चरमान्त कहे गये हैं, उसी प्रकार रत्नप्रभाके चार चरमान्तोंके विषयमें यावत् उत्तरके चरमान्त तक कहना चाहिये। दसवें शतकके प्रथम उद्देशकमें कथित विमला दिशाकी वक्तव्यताके अनुसार इस रत्नप्रभाके उपरिम चरमान्तके विषयमें सम्पूर्ण कहना चाहिये। रत्नप्रभा पृथ्वीके अधस्तन चरमान्तका कथन लोकके अधस्तन चरमान्तके समान कहना चाहिये। विशेषता यह है कि जीव देशोंके विषयमें पञ्चेन्द्रियोंके तीन भंग कहने चाहियें। शेष सभी उसी प्रकार कहना चाहिये। रत्नप्रभा पृथ्वीके चार चरमान्तोंके समान शर्कराप्रभा पृथ्वीके भी चार चरमान्त कहने चाहियें। रत्नप्रभा पृथ्वीके नीचेके चरमान्तके समान शर्कराप्रभाका ऊपर का और नीचेका चरमान्त कहना चाहिये। इसी प्रकार यावत् अधःसप्तम पृथ्वी तक कहना चाहिये। सौधर्म

देवलोक यावत् अच्युत देवलोकके विषयमें भी इसी प्रकार कहना चाहिये। ग्रैवेयक विमानोंके सम्बन्धमें भी इसी प्रकार कहना चाहिये। विशेषता यह है कि उनमें ऊपरके और नीचेके चरमान्तके विषयमें, देशके सम्बन्धमें पञ्चेन्द्रियोंमें भी बीच का भंग नहीं कहना, शेष सभी पूर्ववत् कहना चाहिये। ग्रैवेयक विमानोंके समान अनुत्तर विमान और ईषत्प्राग्भारा पृथ्वीका कथन भी करना चाहिये ॥५८२॥

भगवन् ! परमाणु पुद्गल एक समयमें लोकके पूर्व चरमान्तसे पश्चिम चरमान्तमें, पश्चिम चरमान्तसे पूर्व चरमान्तमें, दक्षिण चरमान्त से उत्तर चरमान्तमें, उत्तर चरमान्तसे दक्षिण चरमान्तमें, ऊपरके चरमान्तसे नीचे के चरमान्त में और नीचे के चरमान्त से ऊपर के चरमान्तमें जाता है ? हां गौतम ! परमाणु पुद्गल एक समयमें लोकके पूर्वके चरमान्तसे पश्चिम चरमान्तमें यावत् नीचे के चरमान्त से ऊपर के चरमान्तमें जाता है ॥५८३॥

भगवन् ! वर्षा वरसती है या नहीं—यह जानने के लिये कोई पुरुष अपने हाथ, पैर, बाहु या उरुको संकुचित करे या फैलावे, तो उस पुरुष को कितनी क्रिया लगती है ? गौतम ! वर्षा वरसती है या नहीं—यह जानने के लिये जो पुरुष अपने हाथ यावत् उरु को संकुचित करता है या पसारता है, उस पुरुष को कायिकी आदि पांच क्रियाएं लगती हैं ॥५८४॥

भगवन् ! महर्द्धिक यावत् महासुख वाला देव लोकान्तमें रहकर अलोकमें अपने हाथ यावत् उरु को संकोचने और पसारने में समर्थ है ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं। भगवन् ! क्या कारण है कि—महर्द्धिक देव लोकान्तमें रहकर अलोक में अपने हाथ यावत् उरु को संकोचने और पसारने में समर्थ नहीं है ? गौतम ! जीवोंके अनुगत आहारोपचित, शरीरोपचित और कलेवरोपचित पुद्गल होते हैं। तथा पुद्गलोंके आश्रित ही जीवों और अजीवोंकी गति पर्याय कही गई है। अलोक में जीव नहीं है और पुद्गल भी नहीं है। इसलिये पूर्वोक्त देव यावत् पसारनेमें समर्थ नहीं। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है।...यों कह कर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ॥५८५॥

॥ सोलहवें शतक का आठवां उद्देशक समाप्त ॥

शतक १६ उद्देशक ६—वैरोचनेन्द्र की सुधर्मासभा कहां है ?

भगवन् ! वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बलि की सुधर्मासभा कहां कही गई है ? गौतम ! जम्बूद्वीप में मन्दर पर्वत के उत्तर में तिरछे असंख्येय द्वीप-समुद्रों को

उल्लंघ कर इत्यादि दूसरे शतकके आठवें उद्देशक में चमर की वक्तव्यता कही है, उसी प्रकार अरुणवर द्वीपकी बाह्य वेदिका से अरुणवर समुद्रमें बयालीस हजार योजन अवगाहन करने के पश्चात् वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बलिका रुचकेन्द्र नामक उत्पात पर्वत है। वह उत्पात पर्वत १७२१ योजन ऊंचा है। शेष उसका सभी परिमाण तिगिच्छकूट पर्वत के समान जानना चाहिये। उसके प्रासादावतंसकका परिमाण भी उसी प्रकार जानना चाहिये। तथा बलिके परिवार सहित सपरिवार सिंहासन तथा रुचकेन्द्र नामका अर्थ भी उसी प्रकार जानना चाहिये। विशेषता यह है कि यहां रुचकेन्द्र (रत्नविशेष) की प्रभा वाले उत्पलादि हैं। शेष सभी उसी प्रकार है यावत् वह बलिचंचा राजधानी तथा अन्योंका आधिपत्य करता हुआ विचरता है। उस रुचकेन्द्र उत्पात पर्वतके उत्तरमें छह सौ पचपन करोड़ पैंतीस लाख पचास हजार योजन अरुणोदय समुद्र में तिरछा जाने पर नीचे रत्नप्रभा पृथ्वी में इत्यादि पूर्ववत् यावत् चालीस हजार योजन जाने के पश्चात् वैरोचनराज बलि की 'बलिचंचा' नामक राजधानी है। उस राजधानी का विष्कम्भ (विस्तार) एक लाख योजन है। शेष सभी प्रमाण पूर्ववत् जानना चाहिये तथा उपपात यावत् आत्म-रक्षक यह सब पूर्ववत् कहना चाहिये। विशेषता यह है कि वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बलि की स्थिति सागरोपमसे कुछ अधिक कही गई है। शेष सब पूर्ववत् जानना चाहिये, यावत् 'वैरोचनेन्द्र बलि है, वैरोचनेन्द्र बलि है'-तक कहना चाहिये। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है।...ऐसा कहकर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ॥५८६॥

॥ सोलहवें शतक का नौवां उद्देशक समाप्त ॥

शतक १६ उद्देशक १०—अवधिज्ञान के प्रकार

भगवन् ! अवधिज्ञान कितने प्रकार का कहा है ? गौतम ! अवधिज्ञान दो प्रकार का कहा है। यहां प्रज्ञापना सूत्र का ३३ वां अवधिपद सम्पूर्ण कहना चाहिये। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है।...ऐसा कह कर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ॥ ५८७॥

॥ सोलहवें शतक का दसवां उद्देशक समाप्त ॥

शतक १६ उद्देशक ११—द्वीपकुमारों की वक्तव्यता

भगवन् ! सभी द्वीपकुमार समान आहार वाले और समान उच्छ्वास-निःश्वास वाले हैं ? गौतम यह अर्थ समर्थ नहीं। यहां प्रथम शतक के द्वितीय उद्देशक में द्वीपकुमारों की जो वक्तव्यता कही, वह सभी कहनी चाहिए यावत्

कितने ही विषम आयुष्य वाले और विषम उत्पत्ति वाले होते हैं—यहां तक कहना चाहिए। भगवन्! द्वीपकुमारों में कितनी लेश्याएं कही हैं? गौतम! उनके चार लेश्याएं कही हैं। यथा—कृष्णलेश्या यावत् तेजोलेश्या।

भगवन्! कृष्णलेश्या वाले यावत् तेजोलेश्या वाले द्वीपकुमारों में कौन किस से यावत् विशेषाधिक हैं? गौतम! सबसे थोड़े द्वीपकुमार तेजोलेश्या वाले हैं, कापोतलेश्या वाले उनसे असंख्यात गुणा हैं, उनसे नीललेश्या वाले विशेषाधिक हैं और उनसे कृष्णलेश्या वाले विशेषाधिक हैं। भगवन्! कृष्णलेश्या वाले यावत् तेजोलेश्या वाले द्वीपकुमारों में कौन किससे अल्पर्द्धिक और महर्द्धिक हैं? गौतम! कृष्णलेश्या वाले द्वीपकुमारों से नीललेश्या वाले द्वीपकुमार महर्द्धिक हैं यावत् तेजोलेश्या वाले द्वीपकुमार सभी से महर्द्धिक हैं। हे भगवन्! यह इसी प्रकार है।...ऐसा कहकर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं।

॥ सोलहवें शतक का ग्यारहवां उद्देशक समाप्त ॥

शतक १६ उद्देशक १२-१३-१४
उदधिकुमार-दिशाकुमार-स्तनितकुमार

भगवन्! सभी उदधिकुमार समान आहार वाले हैं, इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न। गौतम! सभी पूर्ववत् कहना चाहिए। इसी प्रकार दिशाकुमारों के विषय में तेरहवां उद्देशक जानना चाहिए। इसी प्रकार स्तनितकुमारों के विषय में चौदहवां उद्देशक जानना चाहिए। हे भगवन्! यह इसी प्रकार है।...यों कह कर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं॥ ५८८॥

॥ सोलहवें शतक का बारहवां, तेरहवां, चौदहवां उद्देशक समाप्त ॥

॥ सोलहवां शतक समाप्त ॥

शतक १७

१ कुंजर अर्थात् कोणिक राजा के हाथी के विषय में पहला उद्देशक, २ संयतादिके विषय में दूसरा, ३ शैलेशी अवस्था को प्राप्त अनगार विषयक तीसरा, ४ क्रिया विषयक चौथा, ५ ईशानेन्द्र की सुधर्मा सभा के विषय में पांचवां, ६-७ पृथ्वीकाय के विषय में छठा और सातवां, ८-९ अप्काय के विषय में आठवां और नौवां, १०-११ वायुकाय के विषय में दसवां और ग्यारहवां, १२ एकेन्द्रिय जीवों के विषय में बारहवां, १३-१७ नागकुमार, सुवर्णकुमार, विद्युत्कुमार और

अग्निकुमार देवों के विषय में क्रमशः तेरह से लेकर सत्रह तक उद्देशक हैं। इस प्रकार सत्रहवें शतक में सत्रह उद्देशक कहे गये हैं।

उद्देशक १—गजराज की गति-आगति०

राजगृह नगर में गौतम स्वामी ने यावत् इस प्रकार पूछा—"हे भगवन्! उदायी नामक प्रधान गजराज किस गति से मर कर यहां उत्पन्न हुआ?" गौतम! असुरकुमार देवों से मरकर यहां उत्पन्न हुआ। भगवन्! यह उदायी नामक प्रधान हस्ती यहां से काल करके कहां जायगा? कहां उत्पन्न होगा? गौतम! इस रत्नप्रभा पृथ्वी में एक सागरोपम की उत्कृष्ट स्थिति वाले नरकावास में नैरयिक रूप से उत्पन्न होगा। भगवन्! वह रत्नप्रभा पृथ्वी से अन्तर रहित निकल कर कहां जायगा, कहां उत्पन्न होगा? गौतम! महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्ध होगा यावत् सभी दुःखों का अन्त करेगा। भगवन्! भूतानन्द नामक प्रधान हस्ती किस गति में से मर कर यहां उत्पन्न हुआ? गौतम! जिस प्रकार उदायी नामक प्रधान हस्ती की वक्तव्यता कही, उसी प्रकार भूतानन्द हस्तीराज की भी जाननी चाहिए यावत् वह सभी दुःखों का अन्त करेगा॥ ५८६॥

भगवन्! कोई पुरुष ताड़ के वृक्ष पर चढ़े और उसके फलों को हिलावे या नीचे गिरावे, तो उस पुरुष को कितनी क्रियाएं लगती हैं? गौतम! जब तक वह पुरुष ताड़ के वृक्ष पर चढ़कर ताड़ के फल को हिलाता है या नीचे गिराता है, तब तक उस पुरुष को कायिकी आदि पांचों क्रियाएं लगती हैं। जिन जीवों के शरीर द्वारा ताड़-वृक्ष और ताड़फल उत्पन्न हुआ है, उन जीवों को भी कायिकी आदि पांच क्रियाएं लगती हैं।

भगवन्! उस पुरुष के द्वारा हिलाने या तोड़ने पर वह ताड़-फल अपने भार के कारण यावत् नीचे गिरे और उस ताड़-फल द्वारा जो जीव यावत् जीवित से रहित हो जाते हैं, तो उससे उस फल तोड़ने वाले पुरुष को कितनी क्रियाएं लगती हैं? गौतम! जब वह पुरुष उस फल को तोड़ता है और वह फल अपने भार से नीचे गिरता हुआ जीवों को यावत् जीवित से रहित करता है, तब वह पुरुष कायिकी आदि चार क्रियाओं से स्पृष्ट होता है। जिन जीवों के शरीर से ताड़-वृक्ष निष्पन्न हुआ है, उन जीवों को यावत् चार क्रियाएं लगती हैं। जिन जीवों के शरीर से ताड़-फल निष्पन्न हुआ है, उन जीवों को कायिकी आदि पांच क्रियाएं लगती हैं। जो जीव नीचे पड़ते हुए ताड़-फल के लिये स्वाभाविक रूप से उपकारक होते हैं, उन जीवों को भी कायिकी आदि पांच क्रियाएं लगती हैं।

भगवन् ! कोई पुरुष वृक्ष के मूल को हिलावे या नीचे गिरावे, तो उस पुरुष को कितनी क्रियाएं लगती हैं ? गौतम ! वृक्ष के मूल को हिलाने वाले या नीचे गिराने वाले पुरुष को कायिकी आदि पांच क्रियाएं लगती हैं और जिन जीवों के शरीर से मूल यावत् वीज निष्पन्न हुए हैं, उन जीवों को भी कायिकी आदि पांच क्रियाएं लगती हैं।

भगवन् ! वह मूल अपने भारके कारण नीचे गिरे यावत् जीवोंका हनन करे, तो उस मूलको हिलाने वाले यावत् नीचे गिराने वाले पुरुषको कितनी क्रियाएं लगती हैं ? गौतम ! जब वह मूल अपने भारके कारण नीचे गिरता है और दूसरे जीवोंकी घात करता है, तब तक उस पुरुषको कायिकी आदि चार क्रियाएं लगती हैं। जिन जीवोंके शरीरसे वह कन्द निष्पन्न हुआ है यावत् वीज निष्पन्न हुआ है, उन जीवोंको कायिकी आदि चार क्रियाएं लगती हैं। जिन जीवों के शरीरसे मूल निष्पन्न हुआ है, उन जीवोंको कायिकी आदि पांच क्रियाएं लगती हैं। तथा जो जीव नीचे गिरते हुए मूलके स्वाभाविक उपकारक होते हैं, उन जीवों को भी कायिकी आदि पांच क्रियाएं लगती हैं।

भगवन् ! कोई पुरुष वृक्षके कन्दको हिलावे या नीचे गिरावे, तो उसको कितनी क्रियाएं लगती हैं ? गौतम ! कन्दको हिलाने वाले या नीचे गिराने वाले पुरुषको कायिकी आदि पांच क्रियाएं लगती हैं। जिन जीवोंके शरीरसे मूल यावत् वीज निष्पन्न हुआ है, उन जीवोंको भी पांच क्रियाएं लगती हैं। भगवन् ! वह कन्द अपने भारके कारण नीचे गिरे यावत् जीवोंकी घात करे, तो उस पुरुषको कितनी क्रियाएं लगती हैं ? गौतम ! उस पुरुषको कायिकी आदि चार क्रियाएं लगती हैं। जिन जीवोंके शरीरसे मूल, स्कन्ध आदि निष्पन्न हुए हैं, उन जीवोंको कायिकी आदि चार क्रियाएं लगती हैं। जिन जीवोंके शरीरसे कन्द निष्पन्न हुआ है, उन जीवोंको कायिकी आदि पांच क्रियाएं लगती हैं। जो जीव नीचे गिरते हुए उस कन्दके स्वाभाविक रूपसे उपकारक होते हैं, उन जीवोंको भी पांच क्रियाएं लगती हैं। कन्दके समान यावत् वीज तक कहना चाहिये ॥५६०॥

भगवन् ! शरीर कितने कहे गये हैं ? गौतम ! शरीर पांच कहे गये हैं। यथा—औदारिक यावत् कार्मण। भगवन् ! इन्द्रियां कितनी कही गई हैं ? गौतम ! इन्द्रियां पांच कही गई हैं। यथा-श्रोत्रेन्द्रिय यावत् स्पर्शनेन्द्रिय। भगवन् ! योग कितने प्रकारके कहे गये हैं ? गौतम ! योग तीन प्रकारके···हैं। यथा—मन-योग, वचनयोग और काययोग।

भगवन् ! औदारिक शरीर को वनाता हुआ (बांधता हुआ) जीव कितनी क्रिया वाला होता है ? गौतम ! औदारिक शरीरको वनाता हुआ जीव कदाचित् तीन क्रिया वाला, कदाचित् चार और पांच क्रिया वाला होता है। इसी प्रकार

पृथ्वीकायिक यावत् मनुष्य तक कहना चाहिये। भगवन् ! औदारिक शरीर बनाते हुए अनेक जीव कितनी क्रिया वाले होते हैं ? गौतम ! वे कदाचित् तीन, चार और पांच क्रिया वाले भी होते हैं। इसी प्रकार दण्डक क्रमसे पृथ्वीकायिकसे यावत् मनुष्य तक कहना चाहिये। इसी प्रकार वैक्रिय शरीरके विषयमें भी एक वचन और बहुवचनकी अपेक्षासे दो दण्डक कहने चाहियें, किन्तु जिन जीवोंके वैक्रिय शरीर हो, उन्हींके विषयमें कहना चाहिये। इसी प्रकार यावत् कार्मण शरीर तक कहना चाहिये। इसी प्रकार श्रोत्रेन्द्रिय से यावत् स्पर्शनेन्द्रिय तक तथा इसी प्रकार मनोयोग, वचनयोग और काययोगके विषयमें, जिसके जो हो, उसके उस विषयमें कहना चाहिये। ये सब मिलकर एकवचन और बहुवचन सम्बन्धी छब्बीस दण्डक कहने चाहियें ॥५६१॥

भगवन् ! भाव कितने प्रकारके कहे गये हैं ? गौतम ! भाव छह प्रकारके कहे गये हैं। यथा—औदयिक, औपशमिक यावत् सान्निपातिक। भगवन् ! औदयिक भाव कितने प्रकारका कहा गया है ? गौतम ! औदयिक भाव दो प्रकार का कहा गया है, यथा–औदयिक और उदयनिष्पन्न। इस अभिलाप द्वारा अनुयोगद्वार सूत्रानुसार छह नामोंकी वक्तव्यता सान्निपातिक भाव तक कहनी चाहिये। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है।......–यों कह कर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ॥५६२॥

॥ सत्रहवें शतक का प्रथम उद्देशक समाप्त ॥

शतक १७ उद्देशक २—धर्मी, अधर्मी और धर्माधर्मी

भगवन् ! संयत, प्राणातिपातादि से विरत, जिसने पापकर्म का प्रतिघात और प्रत्याख्यान किया है, ऐसा जीव धर्म में स्थित है ? असंयत, अविरत और पापकर्म का प्रतिघात एवं प्रत्याख्यान नहीं करने वाला जीव अधर्म में स्थित है ? और संयतासंयत जीव धर्माधर्म में स्थित होता है ? हां गौतम ! संयत, विरत जीव धर्म में स्थित होता है यावत् संयतासंयत जीव धर्माधर्म में स्थित होता है। भगवन् ! धर्म में, अधर्म में और धर्माधर्म में कोई जीव बैठने यावत् सोने में समर्थ है ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। भगवन् ! क्या कारण है कि यावत् समर्थ नहीं है ? गौतम ! संयत, विरत और पापकर्म का प्रतिघात एवं प्रत्याख्यान करने वाला जीव धर्म में स्थित होता है और धर्म को ही स्वीकार कर विचरता है। इसी प्रकार असंयत, अविरत और पापकर्म का प्रतिघात और प्रत्याख्यान नहीं करने वाला जीव अधर्म में स्थित होता है और अधर्म को ही स्वीकार कर विचरता है। संयतासंयत जीव धर्माधर्म में स्थित होता है और देश-विरति स्वीकार कर विचरता है। इसलिये हे गौतम ! उपर्युक्त रूप से कहा गया है।

भगवन् ! जीव धर्म में स्थित होते हैं, अधर्म में स्थित होते हैं या धर्माधर्म में स्थित होते हैं ? गौतम ! जीव धर्म में, अधर्म में और धर्माधर्म में स्थित होते हैं। भगवन् ! नैरयिक जीव इत्यादि प्रश्न ? गौतम ! नैरयिक न तो धर्म में स्थित हैं और न धर्माधर्म में स्थित हैं, वे अधर्म में स्थित हैं । इसी प्रकार यावत् चतुरिन्द्रिय जीवों तक जानना चाहिये । भगवन् ! पञ्चेन्द्रिय तिर्यंच जीव इत्यादि प्रश्न ? गौतम ! पञ्चेन्द्रिय तिर्यंच जीव धर्म में स्थित नहीं हैं, अधर्म में स्थित हैं और धर्माधर्म में भी स्थित हैं। मनुष्यों के विषय में जीवों के समान जानना चाहिये। वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिकों के विषय में नैरयिकों के समान जानना चाहिये ॥ ५६३ ॥

भगवन् ! अन्यतीर्थिक इस प्रकार कहते हैं यावत् प्ररूपित करते हैं कि— 'श्रमण पण्डित कहलाते हैं और श्रमणोपासक बाल-पण्डित कहलाते हैं, परन्तु जिस मनुष्य के एक भी जीव का वध अनिक्षिप्त (खुला) है, वह 'एकान्त बाल' कहलाता है, तो हे भगवन् ! अन्यतीर्थियों का यह कथन किस प्रकार सत्य हो सकता है ? गौतम ! अन्यतीर्थियों ने जो इस प्रकार कहा है कि यावत् 'एकान्त बाल कहलाता है', उनका यह कथन मिथ्या है । हे गौतम ! मैं इस प्रकार कहता हूं यावत् प्ररूपित करता हूं कि 'श्रमण पण्डित है' और श्रमणोपासक बाल-पण्डित है, परन्तु जिस जीव ने एक भी प्राणी के वध की विरति की है, वह जीव 'एकान्त बाल' नहीं कहलाता, वह बालपण्डित कहलाता है ।

भगवन् ! जीव 'बाल' हैं, पण्डित हैं या बालपण्डित हैं ? गौतम ! जीव बाल भी हैं, पण्डित हैं और बालपण्डित भी हैं। भगवन् ! नैरयिकों के विषय में प्रश्न । गौतम नैरयिक बाल हैं, पण्डित नहीं हैं और बाल-पण्डित भी नहीं हैं। इस प्रकार दण्डक क्रम से यावत् चतुरिन्द्रियों तक कहना चाहिये । भगवन् ! पंचेन्द्रिय तिर्यंचों के विषय में प्रश्न । गौतम ! पञ्चेन्द्रिय तिर्यंच बाल हैं और बालपण्डित भी हैं, पण्डित नहीं हैं। मनुष्य सामान्य जीवों के समान हैं। वाण-व्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिकों को नैरयिकों के समान जानना चाहिए ॥५६४॥

भगवन् ! अन्यतीर्थिक इस प्रकार कहते हैं यावत् प्ररूपित करते हैं कि प्राणातिपात, मृषावाद यावत् मिथ्यादर्शनशल्य में वर्तते हुए प्राणी का जीव अन्य है और उस जीव से जीवात्मा अन्य है। प्राणातिपात विरमण यावत् परिग्रह विरमण में, क्रोधविवेक (क्रोध का त्याग) यावत् मिथ्यादर्शनशल्य के त्याग में वर्तते हुए प्राणी का जीव अन्य है और जीवात्मा उससे भिन्न है। औत्पत्तिकी बुद्धि यावत् परिणामिकी बुद्धिमें, अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा में और उत्थान यावत् पुरुषकारपराक्रम में वर्तमान प्राणी का जीव अन्य है और जीवात्मा अन्य है। नैरयिक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देवपने में, ज्ञानावरणीय यावत् अन्तराय

कर्म में, कृष्णलेश्या यावत् शुक्ललेश्या में, सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि और सम्यग्-मिथ्यादृष्टि में, चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शनमें, आभिनिवोधिकज्ञान,श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन:पर्ययज्ञान और केवलज्ञानमें, मतिअज्ञान, श्रुत-अज्ञान और विभंगज्ञानमें, आहारसंज्ञा, भयसंज्ञा,मैथुनसंज्ञा और परिग्रहसंज्ञामें,इसी प्रकार औदारिक शरीर, वैक्रिय शरीर, आहारकशरीर, तैजस् शरीर और कार्मण शरीरमें, मनयोग, वचन-योग और काययोग में और साकारोपयोग और अनाकारोपयोग में वर्तमान प्राणी का जीव अन्य है और जीवात्मा उससे अन्य है, तो हे भगवन् ! यह किस प्रकार हो सकता है ? गौतम ! अन्यतीर्थिकों का पूर्वोक्त कथन मिथ्या है। हे गौतम! मैं इस प्रकार कहता हूं यावत् प्ररूपित करता हूं कि प्राणातिपात यावत् मिथ्यादर्शन शल्य में वर्तमान प्राणी जीव है और वही जीवात्मा है यावत् अनाकारोपयोग में वर्तमान प्राणी जीव है और वही जीवात्मा है ।।५९५।।

भगवन् ! महर्द्धिक यावत् महासुख वाला देव पहले रूपी होकर (मूर्त स्वरूप को धारण कर) पीछे अरूपीपन (अमूर्त रूप) की विक्रिया करके रहने में समर्थ है ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है । भगवन् ! ऐसा क्यों कहा गया कि महर्द्धिक देव यावत् समर्थ नहीं है? गौतम ! मैं यह जानता हूं,मैं यह देखता हूं,निश्चित जानता हूं, मैं यह सर्वथा जानता हूं । मैंने यह जाना है, मैंने यह देखा है, मैंने यह निश्चित जाना है और मैंने यह सर्वथा जाना है कि तथाप्रकार के रूप वाले, कर्म वाले, राग वाले, वेद वाले, मोह वाले, लेश्या वाले, शरीर वाले और उस शरीर से अविमुक्त जीव के विषय में ऐसा ही ज्ञात होता है । यथा–उस शरीर युक्त जीवमें कालापन यावत् श्वेतपन, सुगंधिपन या दुर्गन्धिपन, कटुपन यावत् मधुरपन तथा कर्कशपन अथवा यावत् रूक्षपन होता है । इस कारण हे गौतम ! वह देव पूर्वोक्त प्रकार से विक्रिया करने में समर्थ नहीं है ।

भगवन् ! क्या वही जीव पहले अरूपी होकर बाद में रूपी आकार की विकुर्वणा करने में समर्थ है ? गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है यावत् विकुर्वणा करनेमें समर्थ नहीं है । गौतम ! मैं यह जानता हूं कि तथाप्रकार के अरूपी, अकर्मी, अरागी, अवेदी, अमोही, अलेश्यी, अशरीरी और उस शरीर से विप्रमुक्त जीव के विषय में ऐसा ज्ञात नहीं होता कि जीव में कालापन यावत् रूक्षपन है । इस कारण हे गौतम ! वह देव पूर्वोक्त रूप से विकुर्वणा करने में समर्थ नहीं है । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।······यों कह कर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ।।५९६।।

।। सत्रहवें शतक का दूसरा उद्देशक समाप्त ।।

शतक १७ उद्देशक ३—शैलेशी अनगार की निष्कम्पता०

भगवन् ! शैलेशी अवस्था प्राप्त अनगार सदा निरन्तर कम्पता है, विशेष कंपता है, यावत् उन २ भावों में परिणमता है ? गौतम यह…नहीं है । परप्रयोग के बिना कम्पन होता ही नहीं ।(शैलेशी अवस्थामें आतमा अत्यन्त स्थिर रहती है, कम्पित नहीं होती । उस अवस्था में पर-प्रयोग नहीं होता और पर-प्रयोगके बिना कम्पन नहीं होता ।)

भगवन् ! एजना कितने प्रकार की कही गई है ? गौतम ! एजना पांच प्रकार की कही गई है । यथा–द्रव्यएजना, क्षेत्र-एजना, काल-एजना, भाव-एजना और भव-एजना । भगवन् ! द्रव्य-एजना कितने प्रकार की कही गई है ? गौतम ! चार प्रकार की कही गई है । यथा–नैरयिक द्रव्य-एजना, तिर्यचयोनिक द्रव्य-एजना, मनुष्य द्रव्य-एजना और देव द्रव्य-एजना । भगवन् ! नैरयिक द्रव्य-एजना कहने का क्या कारण है ? गौतम ! नैरयिक जीव नैरयिक द्रव्यमें वर्तित थे, वर्त्तते हैं और वर्तेंगे । उन नैरयिक जीवोंने नैरयिक द्रव्यमें वर्तते हुए नैरयिक द्रव्यकी एजना पहले भी की थी, अब भी करते हैं और भविष्य में करेंगे, इसीसे 'नैरयिक द्रव्य-एजना' कहलाती है ।

भगवन् ! तिर्यचयोनिक द्रव्य-एजना क्यों कहलाती है ? गौतम ! यह भी पूर्वोक्त प्रकारसे है । यहां नैरयिक द्रव्य-के स्थान पर 'तिर्यच-योनिक द्रव्य' कहना चाहिये, शेष पूर्ववत् । इसी प्रकार मनुष्य द्रव्य-एजना और देव द्रव्य-एजना भी जाननी चाहिये । भगवन् ! क्षेत्र-एजना कितने प्रकार की कही गई है ? गौतम ! चार प्रकार की कही गई है । यथा–नैरयिक क्षेत्र एजना यावत् देव क्षेत्र-एजना । भगवन् ! 'नैरयिक क्षेत्र-एजना' क्यों कहलाती है ? गौतम ! पूर्ववत् । यहां नैरयिक द्रव्य-एजना के स्थान पर 'नैरयिक क्षेत्र एजना' कहनी चाहिये । इसी प्रकार यावत् देव क्षेत्र-एजना और इसी प्रकार काल-एजना, भव-एजना और भाव-एजना यावत् देव भाव एजना तक जानना चाहिये ।।५६७।।

भगवन् ! चलना कितने प्रकार की कही गई है ? गौतम ! चलना तीन प्रकार की कही गई है । यथा–शरीर चलना, इन्द्रिय चलना और योग चलना । भगवन् ! शरीर चलना कितने प्रकार की कही गई है ? गौतम ! शरीर चलना पांच प्रकार की कही गई है । यथा–औदारिक शरीर चलना यावत् कार्मण शरीर चलना । भगवन् ! इन्द्रिय चलना कितने प्रकार की कही गई है ? गौतम ! पांच प्रकार की कही गई है । यथा—श्रोत्रेन्द्रिय चलना यावत् स्पर्शनेन्द्रिय चलना । भगवन् ! योग चलना कितने प्रकार की कही गई है ? गौतम ! योग चलना तीन

प्रकार की कही गई है। यथा-मनोयोग चलना, वचनयोग चलना और काययोग चलना।

भगवन् ! 'औदारिक शरीर चलना'—कहनेका क्या कारण है ? गौतम ! जीव ने औदारिक शरीर में वर्तते हुए, औदारिक शरीरके योग्य द्रव्योंको औदारिक शरीरपने परिणमाते हुए भूतकालमें औदारिक शरीर की चलना की थी, अभी करते हैं और आगे करेंगे, इसीलिये हे गौतम ! 'औदारिक शरीर चलना' कहलाती है। भगवन् ! वैक्रिय शरीर चलना क्यों कहलाती है ? गौतम ! पूर्वोक्त वक्तव्य। यहां औदारिक शरीर के स्थान पर 'वैक्रिय शरीरमें वर्तते हुए'—इत्यादि जानना चाहिये। इसी प्रकार यावत् कार्मण शरीर चलना तक जानना चाहिये।

भगवन् ! श्रोत्रेन्द्रिय चलना क्यों कहलाती है ? गौतम ! श्रोत्रेन्द्रिय को धारण करते हुए जीवोंने श्रोत्रेन्द्रिय योग्य द्रव्यों को श्रोत्रेन्द्रियपने परिणमाते हुए श्रोत्रेन्द्रियकी चलना की थी, करते हैं और करेंगे, इसीसे श्रोत्रेन्द्रिय चलना 'श्रोत्रेन्द्रिय चलना' कहलाती है। इसी प्रकार यावत् स्पर्शनेन्द्रिय चलना तक जानना चाहिये। भगवन् ! मनोयोग चलना क्यों कहलाती है ? गौतम ! मनोयोग को धारण करते हुए जीवोंने मनोयोग्य द्रव्यों को मनोयोगपने परिणमाते हुए मनोयोगकी चलना की थी, करते हैं और करेंगे। इसलिये मनोयोग चलना कहलाती है। इसी प्रकार वचन-योग चलना तथा काय-योग चलना भी जाननी चाहिये ॥५९८॥

भगवन् ! संवेग, निर्वेद, गुरु-साधर्मिक शुश्रूषा, आलोचना, निन्दा, गर्हा, क्षमापना, श्रुत सहायता, व्युपशमना, भाव अप्रतिबद्धता, विनिवर्तना, विविक्त-शयनासन सेवनता, श्रोत्रेन्द्रिय संवर यावत् स्पर्शनेन्द्रिय संवर, योग प्रत्याख्यान, शरीर प्रत्याख्यान, कषाय प्रत्याख्यान, सम्भोग प्रत्याख्यान, उपधि प्रत्याख्यान, भक्त प्रत्याख्यान, क्षमा, विरागता, भाव-सत्य, योग-सत्य, करण-सत्य, मन समन्वाहरण, वचन समन्वाहरण, काय समन्वाहरण, क्रोध विवेक यावत् मिथ्यादर्शन-शल्य विवेक, ज्ञानसम्पन्नता, दर्शनसम्पन्नता, चारित्रसम्पन्नता, वेदना अध्यासनता, मारणान्तिक अध्यासनता, इन सभी पदोंका अन्तिम फल क्या है ? गौतम ! संवेग, निर्वेद यावत् मारणान्तिक अध्यासनता, इन सभी पदों का अन्तिम फल मोक्ष कहा गया है। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है।···यों कहकर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ॥५९९॥

॥ सत्रहवें शतक का तीसरा उद्देशक समाप्त ॥

———

शतक १७ उद्देशक ४—आत्म-स्पृष्ट क्रिया

उस काल समय राजगृह नगर में गौतम स्वामी ने इस प्रकार पूछा—"भगवन् ! जीव प्राणातिपात क्रिया करते हैं ? हां गौतम ! करते हैं। भगवन् ! वह क्रिया स्पृष्ट (आत्मा द्वारा स्पर्श की हुई) की जाती है या अस्पृष्ट ? गौतम ! वह स्पृष्ट की जाती है, अस्पृष्ट नहीं, इत्यादि प्रथम शतकके छठे उद्देशकके अनुसार यावत् वह क्रिया अनुक्रमसे की जाती है, विना अनुक्रम नहीं। इस प्रकार वैमानिकों तक जानना चाहिये। विशेषता यह है कि जीव और एकेन्द्रिय निर्व्याघात की अपेक्षा छह दिशासे आये हुए कर्म करते हैं। यदि व्याघात हो तो कदाचित् तीन दिशा, कदाचित् चार दिशा और कदाचित् पांच दिशासे आये हुए कर्म करते हैं। शेष सभी जीव अवश्य ही छह दिशासे आये हुए कर्म करते हैं। भगवन् ! जीव मृषावाद क्रिया (कर्म) करते हैं ? हां गौतम ! करते हैं। भगवन् ! वह क्रिया स्पृष्ट की जाती है या अस्पृष्ट ? गौतम ! प्राणातिपातके समान मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन और परिग्रहके विषय में भी जानना चाहिये। ये पांच दण्डक हुए।

भगवन् ! जिस समय जीव प्राणातिपातकी क्रिया करते हैं, उस समय वे स्पृष्ट क्रिया करते हैं या अस्पृष्ट क्रिया करते हैं ? गौतम ! पूर्वोक्त प्रकार यावत् वे 'अनानुपूर्वीकृत' नहीं हैं—तक जानना चाहिये और इसी प्रकार यावत् वैमानिकों तक तथा इसी प्रकार यावत् परिग्रह तक जानना चाहिये। ये पूर्ववत् पांच दण्डक होते हैं। भगवन् ! जिस क्षेत्रमें जीव प्राणातिपातिकी क्रिया करते हैं, उसी क्षेत्र में स्पृष्ट क्रिया करते हैं या अस्पृष्ट ? गौतम ! पूर्वोक्त प्रकार यावत् परिग्रह तक जानना चाहिये। ये पाच दण्डक हुए। भगवन् ! जिस प्रदेश में जीव प्राणातिपाति-की क्रिया करते हैं, उस प्रदेशमें स्पृष्ट क्रिया करते हैं या अस्पृष्ट ? गौतम ! पूर्वोक्त प्रकार यावत् परिग्रह तक जानना चाहिये। इस प्रकार ये सब बीस दण्डक हुए ॥६००॥

भगवन् ! जीवोंके जो दुःख है वह आत्मकृत है, परकृत है या उभयकृत है ? गौतम ! जीवोंके जो दुःख है, वह आत्मकृत है, परकृत नहीं और उभयकृत भी नहीं है। इसी प्रकार वैमानिकों तक जानना चाहिये। भगवन् ! जीव आत्मकृत दुःख वेदते हैं, परकृत दुःख वेदते हैं या उभयकृत दुःख वेदते हैं ? गौतम ! जीव आत्मकृत दुःख वेदते हैं, परकृत दुःख नहीं वेदते और न उभयकृत दुःख वेदते हैं। इसी प्रकार वैमानिकों तक जानना चाहिये।

भगवन् ! जीवोंके जो वेदना है, वह आत्मकृत है, परकृत है या उभयकृत है ? गौतम ! जीवोंके वेदना आत्मकृत है, परकृत नहीं और उभयकृत भी नहीं है। इसी प्रकार वैमानिकों तक जानना चाहिये। भगवन् ! जीव आत्मकृत वेदना वेदते हैं, परकृत वेदना वेदते हैं या उभयकृत वेदना वेदते हैं ? गौतम ! जीव

आत्मकृत वेदना वेदते हैं, परकृत और उभयकृत वेदना नहीं वेदते। इसी प्रकार वैमानिकों तक जानना चाहिये। हे भगवन्! यह इसी प्रकार है।...यों कह कर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ॥६०१॥

॥ सत्रहवें शतक का चौथा उद्देशक समाप्त ॥

—o—

शतक १७ उद्देशक ५—ईशानेन्द्र की सुधर्मा सभा

भगवन्! देवेन्द्र देवराज ईशानकी सुधर्मा सभा कहां कही गई है? गौतम! इस जम्बूद्वीप के मन्दर पर्वतके उत्तरमें इस रत्नप्रभा पृथ्वीके अत्यन्त समरमणीय भूमि-भागसे ऊपर चन्द्र और सूर्यको उल्लंघ कर आगे जाने पर यावत् प्रज्ञापना सूत्रके 'स्थान' नामक दूसरे पदके अनुसार यावत् मध्यभागमें ईशानावतंसक विमान है। वह ईशानावतंसक महा विमान साढ़े बारह लाख योजन लम्बा और चौड़ा है, इत्यादि यावत् दसवें शतकके छठे उद्देशकमें शक्रेन्द्रके विमानकी वक्तव्यताके अनुसार ईशानके विषयमें यावत् आत्मरक्षक देवोंकी सम्पूर्ण वक्तव्यता तक जाननी चाहिये। ईशानेन्द्रकी स्थिति दो सागरोपमसे कुछ अधिक है, शेष सब पूर्ववत् यावत् 'यह देवेन्द्र देवराज ईशान है' तक जाननी चाहिए। हे भगवन्! यह इसी प्रकार है।......। यों कह कर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ॥६०२॥

॥ सत्रहवें शतक का पांचवां उद्देशक समाप्त ॥

—o—

शतक १७ उद्देशक ६

नरकस्थ पृथिवीकायिक जीवों का मरण--समुद्घात

भगवन्! जो पृथ्वीकायिक जीव इस रत्नप्रभा पृथ्वीमें मरण-समुद्घात करके सौधर्म-कल्प में पृथ्वीकायिकपने उत्पन्न होने के योग्य हैं, वे पहले उत्पन्न होते हैं और पीछे आहार (पुद्गल) ग्रहण करते हैं या पहले आहार ग्रहण करते हैं और पीछे उत्पन्न होते हैं? गौतम! वे पहले उत्पन्न होते हैं और पीछे पुद्गल ग्रहण करते हैं, अथवा पहले पुद्गल ग्रहण करते हैं और पीछे उत्पन्न होते हैं।

भगवन्! ऐसा क्यों कहा गया कि यावत् पीछे उत्पन्न होते हैं? गौतम! पृथ्वीकायिक जीवों में तीन समुद्घात कही गई हैं। यथा—वेदना-समुद्घात, कषाय-समुद्घात और मारणान्तिक-समुद्घात। जब पृथ्वीकायिक जीव मारणान्तिक-समुद्घात करता है, तब वह 'देश' से भी समुद्घात करता है और 'सर्व' से भी समुद्घात करता है। जब देश-समुद्घात करता है, तब पहले पुद्गल

ग्रहण करता है और पीछे उत्पन्न होता है। जब सर्व से समुद्घात करता है, तब पहले उत्पन्न होता है और पीछे पुद्गल ग्रहण करता है। इस कारण यावत् पीछे उत्पन्न होता है।

भगवन् ! जो पृथ्वीकायिक जीव इस रत्नप्रभा पृथ्वी में मरण-समुद्घात करके ईशान-कल्प में पृथ्वीकायिकपने उत्पन्न होने के योग्य हैं, इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न ? गौतम ! पूर्ववत् (सौधर्म के समान) ईशान-कल्प और इसी प्रकार यावत् अच्युत, ग्रैवेयक विमान, अनुत्तर विमान और ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी के विषय में भी जानना चाहिए।

भगवन् ! जो पृथ्वीकायिक जीव शर्कराप्रभा पृथ्वी में मरण-समुद्घात करके सौधर्म-कल्प में पृथ्वीकायिकपने उत्पन्न होने के योग्य हैं, इत्यादि पूर्ववत् प्रश्न ? जिस प्रकार रत्नप्रभा पृथ्वी के पृथ्वीकायिक जीवों का उत्पाद कहा, उसी प्रकार शर्कराप्रभा के पृथ्वीकायिक जीवोंका भी उत्पाद यावत् ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी तक जानना चाहिए। जिस प्रकार रत्नप्रभा के पृथ्वीकायिक जीवों की वक्तव्यता कही, उसी प्रकार यावत् अधःसप्तम पृथ्वी में मरण-समुद्घात से समवहत जीव का ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी तक उत्पाद जानना चाहिए। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है।······ऐसा कहकर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ॥६०३॥

॥ सत्रहवें शतक का छठा उद्देशक समाप्त ॥

शतक १७ उद्देशक ७

ऊर्ध्वलोकस्थ पृथ्वीकायिक का मरण--समुद्घात

भगवन् ! जो पृथ्वीकायिक जीव सौधर्म-कल्प में मरण-समुद्घात करके इस रत्नप्रभा पृथ्वी में पृथ्वीकायिकपने उत्पन्न होने के योग्य हैं, वे पहले उत्पन्न होते हैं और पीछे आहार करते हैं या पहले आहार करते हैं और पीछे उत्पन्न होते हैं ? गौतम ! जिस प्रकार रत्नप्रभा पृथ्वी के पृथ्वीकायिक जीवों का सभी कल्पों में यावत् ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी में उत्पाद कहा गया, उसी प्रकार सौधर्म-कल्प के पृथ्वीकायिक जीवों का सातों नरक पृथ्वियों में यावत् अधःसप्तम पृथ्वी तक उत्पाद जानना चाहिए। इसी प्रकार सौधर्म-कल्प के पृथ्वीकायिक जीवों के समान सभी कल्पों में यावत् ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी के पृथ्वीकायिक जीवों का सभी पृथ्वियों में यावत् अधःसप्तम पृथ्वी तक उत्पाद जानना चाहिए। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है।······ऐसा कह कर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ॥६०४॥

॥ सत्रहवें शतक का सातवां उद्देशक समाप्त ॥

शतक १७ उद्देशक ८

अधो अप्कायिक का मरण--समुद्घात

भगवन् ! जो अप्कायिक जीव इस रत्नप्रभा पृथ्वी में मरण-समुद्घात करके सौधर्म-कल्प में अप्कायिकपने उत्पन्न होने के योग्य हैं, इत्यादि प्रश्न । गौतम ! जिस प्रकार पृथ्वीकायिक जीवों के विषय में कहा, उसी प्रकार अप्कायिक जीवों के विषय में भी समस्त कल्पों में यावत् ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी तक उत्पाद कहना चाहिये । रत्नप्रभा के अप्कायिक जीवों के उत्पाद के समान यावत् अधःसप्तम पृथ्वी के अप्कायिक जीवों तक का यावत् ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी तक उत्पाद जानना चाहिए । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।······ऐसा कह कर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ॥६०५॥

॥ सत्रहवें शतक का आठवां उद्देशक समाप्त ॥

शतक १७ उद्देशक ९

ऊर्ध्वलोक अप्कायिक का मरण-समुद्घात

भगवन् जो अप्कायिक जीव सौधर्म-कल्प में मरण-समुद्घात करके इस रत्नप्रभा पृथ्वी के घनोदधि-वलयों में अप्कायिकपने उत्पन्न होने के योग्य हैं, इत्यादि प्रश्न । गौतम ! शेष सभी पूर्ववत् यावत् अधःसप्तम पृथ्वी तक जानना चाहिए । जिस प्रकार सौधर्म-कल्प के अप्कायिक जीवों का नरक पृथ्वियों में उत्पाद कहा, उसी प्रकार यावत् ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी तक अप्कायिक जीवों का उत्पाद यावत् अधःसप्तम पृथ्वी तक जानना चाहिये । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।···यों कह कर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ॥६०६॥

॥ सत्रहवें शतक का नौवां उद्देशक समाप्त ॥

शतक १७ उद्देशक १०—अधो वायुकायिक का मरण-समुद्घात

भगवन् ! जो वायुकायिक जीव इस रत्नप्रभा पृथ्वीमें मरण-समुद्घात करके सौधर्म-कल्प में वायुकायिकपने उत्पन्न होने के योग्य हैं, इत्यादि प्रश्न । गौतम ! पृथ्वीकायिक जीवों के समान वायुकायिक जीवों का भी कथन करना चाहिये । विशेष में वायुकायिक जीवों में चार समुद्घात होती हैं । यथा—वेदना-समुद्घात यावत् वैक्रिय-समुद्घात । वे वायुकायिक जीव मारणान्तिक-समुद्घातसे समवहत होकर देशसे समुद्घात करते हैं, इत्यादि पूर्ववत् यावत् अधःसप्तम पृथ्वीमें

समुद्घात कर··· । वायुकायिक जीवों का उत्पाद ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी तक जानना चाहिये । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है । ··· यों कहकर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ।।६०७।।

।। सत्रहवें शतक का दसवां उद्देशक समाप्त ।।

शतक १७ उद्देशक ११—ऊर्ध्व वायुकायिक का मरण-समुद्घात

भगवन् ! जो वायुकायिक जीव सौधर्म-कल्प में समुद्घात करके इस रत्न-प्रभा पृथ्वी के घनवात, तनुवात, घनवातवलय और तनुवातवलयों में वायुकायिक-पने उत्पन्न होनेके योग्य हैं, इत्यादि प्रश्न । गौतम ! पूर्ववत् । जिस प्रकार सौधर्म-कल्प के वायुकायिक जीवों का उत्पाद सातों पृथ्वियों में कहा, उसी प्रकार यावत् ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी के वायुकायिक जीवों का उत्पाद यावत् अधःसप्तम पृथ्वी तक जानना चाहिये । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।···यों कहकर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ।।६०८।।

।। सत्रहवें शतक का ग्यारहवां उद्देशक समाप्त ।।

शतक १७ उद्देशक १२—जीवों के आहारादि की सम-विषमता

भगवन् ! सभी एकेन्द्रिय जीव समान आहार वाले हैं ? समान शरीर वाले हैं, इत्यादि प्रश्न । गौतम ! प्रथम शतक के द्वितीय उद्देशक में पृथ्वीकायिक जीवों की वक्तव्यता के समान यहां एकेन्द्रिय जीवों के विषय में भी जानना चाहिये यावत् वे न तो समान आयुष्य वाले हैं और न एक साथ उत्पन्न हुए हैं ।

भगवन् ! एकेन्द्रिय जीवोंके कितनी लेश्याएं कही गई हैं ? गौतम ! चार लेश्याएं कही गई हैं । यथा—कृष्णलेश्या यावत् तेजोलेश्या ।

भगवन् ! कृष्णलेश्या यावत् तेजोलेश्या वाले एकेन्द्रियों में कौन किससे यावत् विशेषाधिक हैं ? गौतम ! सबसे थोड़े एकेन्द्रिय जीव तेजोलेश्या वाले हैं । उनसे कापोतलेश्या वाले अनन्त गुणा हैं, कापोतलेश्या वालों से नीललेश्या वाले विशेषाधिक हैं और उनसे कृष्णलेश्या वाले विशेषाधिक हैं । भगवन् ! इन कृष्ण-लेश्या वाले यावत् तेजोलेश्या वाले एकेन्द्रियों में अल्प ऋद्धि वाला कौन है ? और महा ऋद्धि वाला कौन है ? गौतम ! सोलहवें शतकके ग्यारहवें उद्देशकमें द्वीपकुमारों में लेश्या की ऋद्धि कही गई है, तदनुसार एकेन्द्रियों में भी जानना चाहिये । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।···यों कहकर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ।।६०९।।

।। सत्रहवें शतक का बारहवां उद्देशक समाप्त ।।

शतक १७ उद्देशक १३ से १७

नागकुमारादि के आहार की सम-विषमता

भगवन् ! सभी नागकुमार समान आहार वाले हैं, इत्यादि प्रश्न ? गौतम ! सोलहवें शतक के ग्यारहवें द्वीपकुमार उद्देशक के अनुसार यावत् ऋद्धि पर्यन्त जानना चाहिये ॥६१०॥ १७-१३॥ भगवन् ! सभी सुवर्णकुमार समान आहार वाले हैं, इत्यादि प्रश्न। गौतम ! पूर्ववत् ॥६११॥ १७-१४॥ भगवन् ! सभी विद्युत्कुमार समान आहार वाले हैं, इत्यादि प्रश्न। गौतम ! पूर्ववत् ॥६१२॥ १७-१५ ॥ भगवन् ! सभी वायुकुमार समान आहार वाले हैं, इत्यादि प्रश्न। गौतम ! पूर्ववत् ॥६१३॥ १७-१६॥ भगवन् ! सभी अग्निकुमार समान आहार वाले हैं, इत्यादि प्रश्न। गौतम ! पूर्ववत्। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है।...यों कह कर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ॥६१४॥

॥ सत्रहवें शतक का सतरहवां उद्देशक समाप्त ॥

॥ सत्रहवां शतक समाप्त ॥

---

*अठारहवां शतक—प्रथम उद्देशक

[वर्णित विषय—प्रथम-अप्रथम, चरम-अचरम,—सर्व दृष्टिसे विचार। प्रश्नोत्तर सं० ३५]

प्रथम-अप्रथम (प्रश्नोत्तर नं० १-१९) जीव जीवभाव—जीवत्वकी अपेक्षा प्रथम नहीं परन्तु अप्रथम हैं। यह बात वैमानिकपर्यन्त सर्व जीवोंके लिये जाननी चाहिये। एकसिद्ध अथवा अनेकसिद्ध सिद्धभावकी अपेक्षा प्रथम हैं परंतु अप्रथम नहीं। एक आहारक जीव अथवा अनेक आहारक जीव आहारक भावकी अपेक्षासे प्रथम नहीं परन्तु अप्रथम हैं। यह बात वैमानिक पर्यन्त सर्व जीवोंके लिये समझनी चाहिए। अनाहारक जीव अथवा अनेक अनाहारक जीव अनाहारक भावकी अपेक्षासे कदाचित् प्रथम और कदाचित् अप्रथम भी होते हैं। नैरयिकसे वैमानिक पर्यन्त जीव अप्रथम और सिद्ध प्रथम हैं।

भवसिद्धिक एक जीव अथवा अनेक जीव, अभवसिद्धिक एक जीव अथवा अनेक जीव आहारकजीवकी तरह प्रथम नहीं परन्तु अप्रथम हैं। नोभवसिद्धिक-

---

*इतः प्रभृति २० वें शतक पर्यन्त पुनरावृत्ति न करते हुए केवल भगवान् महावीर द्वारा प्रदत्त उत्तरोंका शब्दानुवाद दिया गया है। प्रश्नार्थ भी तदनुसार जानें।

नोअभवसिद्धिक (सिद्ध) जीव नोभवसिद्धिक-नोअभवसिद्धिकभावकी अपेक्षा प्रथम हैं, परन्तु अप्रथम नहीं। इसी तरह बहुवचन के लिये भी जानना चाहिये। एक संज्ञी जीव अथवा अनेक संज्ञी जीव संज्ञीभावकी अपेक्षा प्रथम नहीं, परन्तु अप्रथम हैं। यह बात विकलेन्द्रियको छोड़कर वैमानिकपर्यन्त सर्व जीवोंके लिये जाननी चाहिये।

असंज्ञी जीवोंके लिए भी यही बात जाननी चाहिये, परन्तु यह वाणव्यन्तरों तक ही समझनी चाहिये। नोसंज्ञी—नोअसंज्ञी जीव—मनुष्य और सिद्ध नोअसंज्ञी-भावकी अपेक्षासे प्रथम हैं, परन्तु अप्रथम नहीं। सलेश्य एक जीव अथवा अनेक जीव सलेश्यभावकी अपेक्षा अप्रथम हैं। यह बात वैमानिक-पर्यन्त सर्व जीवोंके लिये जाननी चाहिये। कृष्णलेश्यासे शुक्ललेश्यापर्यन्त जीवोंके लिये भी यही समझना चाहिये। लेश्यारहित जीव प्रथम हैं।

एक सम्यग्दृष्टि अथवा अनेक सम्यग्दृष्टि जीव सम्यक्त्वकी अपेक्षासे कदाचित् प्रथम भी होते हैं और कदाचित् अप्रथम भी। इस प्रकार एकेन्द्रियको छोड़कर सर्व विकल्पोंके लिये समझना चाहिये। सिद्ध प्रथम हैं। एक अथवा अनेक मिथ्यादृष्टि मिथ्यादृष्टित्वकी अपेक्षासे अप्रथम हैं। यह बात वैमानिक-पर्यन्त सर्व जीवोंके लिए समझनी चाहिए। मिश्रदृष्टिभावकी अपेक्षासे सम्यग्-दृष्टि जीवके समान हैं।

एक अथवा अनेक संयत जीव तथा मनुष्योंके संबंधमें सम्यग्दृष्टि जीवके समान जानना चाहिये। असंयत आहारक जीवकी तरह, संयतासंयत, पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक तथा मनुष्य; इन तीनोंके एकवचन या बहुवचनके लिये सम्यग्-दृष्टिकी तरह जानना चाहिये। नोसंयत, नोअसंयत, नोसंयतासंयत और सिद्ध प्रथम हैं, परन्तु अप्रथम नहीं। एक सकषायी, क्रोधकषायी यावत् लोभकषायी आहारककी तरह अप्रथम और अकषायी कदाचित् प्रथम और कदाचित् अप्रथम भी हैं। इसी प्रकार अकषायी मनुष्योंके सम्बन्धमें भी जानना चाहिये। सिद्ध प्रथम हैं अप्रथम नहीं। बहुवचनकी अपेक्षासे अकषायी जीव और मनुष्य प्रथम भी होते हैं और अप्रथम भी।

एक या अनेक ज्ञानी जीव सम्यग्दृष्टिकी तरह कदाचित् प्रथम और कदा-चित् अप्रथम हैं। मतिज्ञानीसे मन-पर्यव ज्ञानीके लिये भी यही समझना चाहिये। केवलज्ञानी, मनुष्य और सिद्ध एकवचन या बहुवचनसे प्रथम हैं। अज्ञानी, मतिअ-ज्ञानी, श्रुतअज्ञानी और विभंगज्ञानी आहारक जीवकी तरह हैं। सयोगी, मनयोगी, वचनयोगी और काययोगी एक या अनेक, अप्रथम हैं। अयोगी, मनुष्य और सिद्ध एक या अनेक, प्रथम हैं। एक या अनेक साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी अनाहारककी तरह हैं। एक या अनेक, सवेदक यावत् नपुंसकवेदक आहारकके

सदृश अप्रथम हैं। अवेदक जीव, मनुष्य और सिद्धोंको अकषायीके सदृश जानना चाहिये।

एक या अनेक सशरीरी आहारक जीवके सदृश हैं। यह बात कार्मणशरीर पर्यन्त समझनी चाहिये। एक या अनेक आहारक शरीर वाले सम्यग्दृष्टिकी तरह कदाचित् प्रथम हैं और कदाचित् अप्रथम हैं। एक या अनेक पांच पर्याप्तियोंकी अपेक्षा पर्याप्त और पांच अपर्याप्तियोंकी अपेक्षासे अपर्याप्त आहारक की तरह अप्रथम हैं। यह बात वैमानिक पर्यन्त सर्व जीवोंके लिये समझनी चाहिये। प्रथम और अप्रथमका लक्षण निम्न प्रकार है—जिस जीवने जो भाव—अवस्थाएं, पूर्व प्राप्त कर रक्खे हैं उन भावोंकी अपेक्षा वह जीव अप्रथम१ कहा जाता है। जो अवस्था पूर्व प्राप्त नहीं थी परन्तु प्रथम वार प्राप्त हुई है, इस अपेक्षासे जीव प्रथम २ कहा जाता है।

चरम-अचरम (प्रश्नोत्तर नं० २०-३५) जीव जीवत्व भावकी अपेक्षा अचरम है। नैरयिक नैरयिकभावकी अपेक्षा कदाचित् चरम हैं और कदाचित् अचरम हैं। यह बात वैमानिक-पर्यन्त सर्व जीवोंके लिये जाननी चाहिये। सिद्ध जीवके सदृश अचरम हैं। एक या अनेक आहारक कदाचित् चरम भी होते हैं और कदाचित् अचरम भी। एक या अनेक अनाहारक और सिद्ध अचरम होते हैं। शेष स्थानोंमें आहारककी तरह। भवसिद्धिक एक या अनेक, चरम हैं। शेष स्थानोंमें आहारककी तरह कदाचित् चरम और कदाचित् अचरम होते हैं। अभवसिद्धिक जीव एकवचन अथवा बहुवचनकी अपेक्षा अचरम हैं। नोभवसिद्धिक, नोअभवसिद्धिक तथा सिद्ध एक या अनेक सभी अभवसिद्धिककी तरह अचरम हैं।

संज्ञी और असंज्ञी आहारककी तरह, नोसंज्ञी, नोअसंज्ञी, और सिद्ध अचरम, मनुष्य चरम हैं। सलेश्य—शुक्लेश्या तकके जीव आहारककी तरह और लेश्यारहित जीव नोसंज्ञी नोअसंज्ञीकी तरह जानने चाहियें। सम्यग्दृष्टि अनाहारककी तरह और मिथ्यादृष्टि आहारककी तरह जानने चाहियें। एकेन्द्रिय तथा विकलेन्द्रियके अतिरिक्त मिश्रदृष्टि जीव कदाचित् चरम भी होते हैं और कदाचित् अचरम भी।

संयत जीव तथा मनुष्य आहारककी तरह हैं। असंयत और संयतासंयत भी इसी प्रकार जानने चाहियें। केवलज्ञानी नोसंज्ञी व नोअसंज्ञीकी तरह तथा अज्ञानी—यावत् विभंगज्ञानी आहारककी तरह हैं। सकषायी-यावत् लोभकषायी को सर्व स्थानोंमें आहारककी तरह, अकषायी जीव तथा सिद्ध अचरम हैं। अकषायी मनुष्य कदाचित् चरम होते हैं और कदाचित् अचरम। ज्ञानी सर्वत्र सम्यग्-

---

१. जीवत्व अनादिकाल से जीवको प्राप्त है अतः जीवत्वकी अपेक्षा से जीव अप्रथम है। २. सिद्धत्वकी अपेक्षा से सिद्ध प्रथम हैं।

दृष्टिकी तरह दोनों प्रकारके हैं। मतिज्ञानी यावत् मन:पर्ययज्ञानीको आहारककी तरह समझना चाहिये। केवलज्ञानी अचरम हैं। अज्ञानी-यावत् विभंगज्ञानी आहारक की तरह हैं।

सयोगी यावत् काययोगी आहारककी तरह हैं। अयोगी अचरम हैं। साकारोपयोगी और अनाकारोपयोगी अनाहारककी तरह चरम और अचरम हैं। सवेदक यावत् नपुंसकवेदक आहारकके समान हैं। अवेदक चरम हैं। सशरीरी यावत् कार्मण शरीर वाले आहारकके सदृश हैं। अशरीरी चरम हैं। पांच पर्याप्ति की अपेक्षा पर्याप्त और पांच अपर्याप्तिकी अपेक्षा अपर्याप्त एक या अनेक, आहारककी भांति हैं। चरम और अचरमका स्वरूप इस प्रकार है—जो जीव जिस भावको पुन: प्राप्त करेगा, उस भावकी अपेक्षासे वह अचरम कहा जाता है, और जिस भावका जिस भावसे एकान्त वियोग हो जाता है, वह चरम कहा जाता है ॥६१५॥

॥ १८ वें शतकका पहला उद्देशक समाप्त ॥

———

द्वितीय उद्देशक—कार्तिकश्रेष्ठि-चरित्र

उस काल उस समयमें विशाखा नामकी नगरी थी (वर्णन)।···बहुपुत्रिक नामका उद्यान था (वर्णन)। महावीर स्वामी पधारे यावत् परिषद् पर्युपासना करने लगी। उस काल···में शक्र देवेन्द्र, देवराज, वज्रपाणि, पुरंदर इत्यादि जैसे सोलवें शतकके दूसरे उद्देशकमें कहा गया है, उसी प्रकार यावत् दिव्य विमानमें आया। विशेप यह कि यहां आभियोगिक देव भी जानना, यावत् बत्तीस प्रकारका नाट्य दिखाया यावत् लौट गया।

गौतम स्वामीने श्रमण भगवान् महावीरसे इस प्रकार कहा भगवन्!······ जैसे तृतीय शतकमें ईशानेन्द्रके सम्बन्धमें कूटागारशालाका दृष्टान्त और पूर्वभव संबंधी प्रश्न किया है, उसी प्रकार यावत् ऋद्धि अभिमुख हुई।···भगवान् बोले— गौतम! इस जम्बूद्वीपके भरत क्षेत्रमें हस्तिनापुर नामक नगर था। वर्णन।···सह-स्राम्रवन उद्यान था। वर्णन। उस हस्तिनापुर नगरमें कार्तिक नामका श्रेष्ठि रहता था, धनाढ्य यावत् अपरिभूत, समाजमें प्रमुख आसन प्राप्त करने वाला, १००८ वणिकोंके बहुतसे कार्योंमें, कारणोंमें और कौटुम्बिक···इस प्रकार जैसे राजप्रश्नीय में चित्तका वर्णन किया गया है यावत् चक्षुभूत···आधिपत्य करता हुआ, पालन करता हुआ रहता था। वह श्रमणोपासक तथा जीवाजीव तत्वोंका जानकार था।

उस काल उस समयमें धर्मके आदिकर्ता···जैसे सोलवें शतकमें कहा गया है ···मुनिसुव्रत तीर्थंकर यावत् पधारे, यावत् परिपद् पर्युपासना करने लगी। तब वह कार्तिक श्रेष्ठी भगवान् के पधारनेकी बात सुनकर हर्षित व संतुष्ट हुआ।

जैसे ग्यारहवें शतकमें सुदर्शन······उसी प्रकार वंदना करने निकला, यावत् पर्यु पासना करने लगा। तत्पश्चात् मुनिसुव्रत अर्हतने कार्तिक सेठ···धर्मकथा यावत् परिषद् लौट गई।

तदनन्तर वह कार्तिक सेठ मुनिसुव्रत···यावत् धर्मकथा सुन कर···प्रसन्न और संतुष्ट होकर मुनि० भगवान् को यावत् इस प्रकार कहा—भगवन् ! ऐसा ही है यावत् जैसा आप कहते हैं। परन्तु मैं एक हजार-आठ वणिकों से पूछकर ज्येष्ठ पुत्रको कुटुम्बका भार सौंपकर आपके पास प्रव्रज्या लेना चाहता हूं। मुनि० भगवान् बोले—जैसे सुख हो वैसे करो, यावत् प्रतिवन्ध न करो। तत्पश्चात् कार्तिक सेठ···अपने घर गया। तत्पश्चात् १००८ वणिकों को बुलाकर इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रियो ! मैंने भगवान् मुनिसुव्रतसे धर्मकथा सुनी, वह मुझे इष्ट, विशेष इष्ट और प्रिय है। तथा देवा० वह धर्म सुनकर मैं संसार भयसे उद्विग्न हो गया हूं, यावत् प्रव्रज्या लेना चाहता हूं। अतः देवा० ! आपकी इच्छा, प्रवृत्ति, इष्ट, सामर्थ्य-आज्ञा क्या है ? वे बोले—"······यावत् प्रव्रज्या ग्रहण करना चाहते हैं, तो हमें दूसरा आलंवन-आधार प्रतिवन्ध क्या है ? दे० हम भी संसार भय से उद्विग्न हो गए हैं, जन्म-मरण से भयभीत हैं, हम भी आपके साथ मुनि-सुव्रत स्वामीके पास मुंडित होकर गृह त्याग कर अनगारत्व अंगीकार करेंगे।"

तब उस कार्तिक सेठने उनसे कहा—हे दे० ! यदि तुम सं०······यावत् प्रव्रज्या लेना चाहते हो तो तुम अपने २ घर जाओ, विपुल अशन इत्यादि यावत् तैयार करो। मित्र ज्ञाति० यावत् ज्येष्ठ पुत्रोंको कुटुम्ब भार सौंपकर, मित्र ज्ञाति० ज्येष्ठ पुत्रोंको पूछकर पुरुषसहस्रवाहिनी शिविकाओं पर आरूढ़ होकर अपने पीछे चलते हुए मित्र ज्ञाति यावत् ज्येष्ठ पुत्रोंके साथ, सर्वऋद्धियुक्त यावत् वाद्यघोष-पूर्वक अविलम्ब मेरे पास आओ। तब कार्तिक सेठके इस कथनको विनयपूर्वक स्वीकार करके वे अपने २ घर गए···यावत् कार्तिक सेठके पास उपस्थित हुए।

तत्पश्चात् कार्तिक श्रेष्ठिने गङ्गदत्त की तरह विपुल अशन यावत् तैयार करवाया। यावत् मित्र, ज्ञाति, यावत् परिवार, ज्येष्ठ पुत्र और एक हजार आठ वणिकोंके साथ सर्वऋद्धि से युक्त यावत् वाद्यघोषपूर्वक हस्तिनापुर नगर के मध्यमें से गंगदत्तकी भांति निकला, और भगवान् मुनिसुव्रतके पास जाकर इस प्रकार बोला—"भगवन् ! यह संसार सर्वतः सुलग रहा है, प्रज्वलित अत्यन्त प्र० हो रहा है। अतः आपके पास प्रव्रज्या ग्रहण करना मेरे लिए श्रेयस्कर है। अस्तु, अष्टोत्तर सहस्र वणिकोंके साथ प्रव्रज्या लेना व धर्म सुनना चाहता हूं।" तत्पश्चात् श्री मुनि-सुव्रत अर्हन्तने कार्तिक सेठको १००८ वणिकोंके साथ दीक्षा दी यावत् धर्मोपदेश किया—'हे देवा० ! इस तरह चलना, इस तरह रहना-इत्यादि यावत् इस प्रकार संयम का पालन करना।'

तदनन्तर कार्तिक सेठने १००८ वणिकोंके साथ मुनि० अ० द्वारा कहे गए इस प्रकारके धार्मिक उपदेशको अच्छी तरह स्वीकार किया, उनकी आज्ञानुसार वैसा ही आचरण किया, यावत् संयमका पालन किया।...साथ अनगार हुए—ईर्यासमितियुक्त यावत् गुप्तब्रह्मचारी। तत्पश्चात् कार्तिक अनगारने मुनि० अ० के तथारूप स्थविरोंके पास सामायिक से प्रारम्भ कर १४ पूर्वोका अध्ययन किया, और उपवास, छट्ठ अट्ठमसे यावत् आत्माको भावित करते हुए सम्पूर्ण १२ वर्ष श्रमणपर्याय का पालन किया। एक मास की संलेखना तप द्वारा शरीरको सुखाकर साठ भक्त (तीस दिन)का अनशन करके, आलोचना करके यावत् काल करके सौधर्म कल्पमें सौधर्मावतंसक नामक विमानमें उपपात सभामें देवशयनीय...यावत् शक्र देवेन्द्र रूप से उत्पन्न हुआ। तत्पश्चात् अधुनोत्पन्न शक्र...शेष वर्णन गंगदत्त के समान यावत् अन्त करेगा। केवल-स्थिति दो सागरोपम, शेष उसी प्रकार। हे भगवन्! यह ऐसा ही है...॥६१६॥

॥ अठारहवें शतक का द्वितीय उद्देशक समाप्त ॥

—०—

तृतीय उद्देशक

(वर्णित विषय—पृथ्वीकायिक...जीव और मुक्ति, निर्जरा पुद्गल, बंध और उसके भेद, कर्म। प्रश्नोत्तर संख्या २०)

उस काल उस समय में राजगृह नामक नगर था। वर्णन। गुणशिलक उद्यान। वर्णन। यावत् परिषद् लौट गई। उस काल उस समयमें श्रमण भगवान् महावीर के यावत् अन्तेवासी माकन्दिपुत्र नामक अनगार भद्रप्रकृति...मंडितपुत्र के समान यावत् पर्युपासना करते हुए पूछा—भगवन्! कापोतलेश्या वाला पृथ्वीकायिक जीव मरकर मनुष्य का शरीर प्राप्त करके केवलज्ञान प्राप्त करके सिद्ध हो सकता है यावत् सब दुःखों का अन्त कर सकता है? हां......। इसी प्रकार अप्कायिक एवं कापोतलेश्या वाले वनस्पतिकायिकके संबंध में जानना।

इसके अनन्तर माकंदिपुत्र अनगार भगवान् महावीर को वन्दना नमस्कार करके श्रमण निर्ग्रन्थों के पास गये व पूर्वोक्त वात कही। उनकी वात को श्रमण निर्ग्रन्थों ने नहीं माना। वे भगवान् महावीर के पास गए व वन्दना नमस्कार करके पूछा। भगवान् बोले—(प्रश्नोत्तर नं० ३६-३८) कापोतलेश्यायुक्त पृथ्वीकायिक पृथ्वीकायसे मरकर तत्क्षण मनुष्य जन्म को प्राप्त कर तथा केवलज्ञान प्राप्त कर अपने सर्व दुःखों का अन्त कर सिद्ध हो सकता है। कापोतलेश्यी पृथ्वीकायिक के सदृश ही कृष्णलेश्यी और नीललेश्यी पृथ्वीकायिक भी मनुष्य देह प्राप्त कर सिद्ध बुद्ध हो सकता है। उपर्युक्त लेश्याओं वाले पृथ्वीकायिक जीवों की तरह ही उपर्युक्त लेश्याओं वाले अप्कायिक तथा वनस्पतिकायिक जीवों के संबंध में भी इसी प्रकार जानना चाहिए।

यह बात सत्य है। हे भगवन्! ऐसा ही है...कह कर श्रमण निर्ग्रन्थों ने श्रमण भगवान् महावीर को वन्दना नमस्कार किया व माकन्दिपुत्र अनगार के पास जाकर वं०...विनयपूर्वक क्षमा-याचना की ।।६१७।।

निर्जरा पुद्गल (प्रश्नोत्तर नं० ३६-४३)१सर्व कर्म वेदन करते हुए, सर्व कर्म निर्जीर्ण करते हुए, सर्व मरणसे मरते हुए, सर्व शरीरों का त्याग करते हुए, चरम कर्म वेदन करते हुए, चरम शरीर का त्याग करते हुए, चरम मरण से मरते हुए, मारणान्तिक कर्म वेदन करते हुए, मारणान्तिक कर्म निर्जीर्ण करते हुए, मारणान्तिकमरण से मरते हुए तथा मारणान्तिक शरीर का त्याग करते हुए भावितात्मा अनगारके चरम-निर्जरा पुद्गल समग्रलोकमें व्याप्त होकर रहते हैं तथा ये पुद्गल सूक्ष्म होते हैं।

छद्मस्थ मनुष्य इन निर्जरा-पुद्गलोंका परस्परका पृथक्त्व यावत् लघुत्व देख सकते हैं या नहीं, इस संबंधमें इन्द्रियोद्देशक की तरह जानना चाहिये। छद्मस्थोंमें जो उपयोगयुक्त हैं वे पुद्गलोंको जानते, देखते तथा ग्रहण करते हैं। उपयोग-रहित पुद्गलोंको न जानते हैं और न देखते हैं, परन्तु इनको आहाररूपमें ग्रहण करते हैं। नैरयिक निर्जरा-पुद्गल न जानते हैं और न देखते हैं परन्तु उनका आहार करते हैं। यही बात पंचेन्द्रिय तिर्यचयोनिक तक जाननी चाहिये।

मनुष्योंमें कितने ही जानते हैं, देखते हैं तथा आहार करते हैं। कितने ही नहीं जानते व नहीं देखते, परन्तु आहार करते हैं। मनुष्य दो प्रकारके हैं—संज्ञी—मनवाले, और असंज्ञी—विना मनवाले। असंज्ञी जीव निर्जरा-पुद्गल देखते या जानते नहीं परन्तु आहार करते हैं। संज्ञी जीव दो प्रकार के हैं—उपयुक्त और अनुपयुक्त। जो जीव विशिष्ट ज्ञानके उपयोगरहित हैं, वे इन्हें न जानते हैं और न देखते हैं परन्तु आहार करते हैं। विशिष्ट ज्ञानधारक जानते, देखते तथा आहार करते हैं।

मनुष्यों के सदृश वैमानिकों के लिये भी जानना चाहिये, परन्तु निम्न विशेषान्तर है—वैमानिक दो प्रकार के हैं-मायीमिथ्यादृष्टि और अमायी-सम्यग्-दृष्टि। मायीमिथ्यादृष्टि देव निर्जरा-पुद्गलोंको जानते व देखते नहीं परन्तु उनका आहार करते हैं। अमायीसम्यग्दृष्टि भी दो प्रकारके हैं-अनन्तरोपपन्नक और परम्परोपपन्नक। परम्परोपपन्नक भी दो प्रकारके हैं—पर्याप्त और अपर्याप्त। पर्याप्तके भी दो भेद हैं, उपयुक्त और अनुपयुक्त। इनमें मात्र उपयुक्त पर्याप्त परम्परोपपन्नक देव ही निर्जरा-पुद्गल जानते, देखते तथा आहार करते हैं, अन्य न जानते हैं और न देखते ही हैं परन्तु आहार करते हैं ।।६१८।।

वंध (प्रश्नोत्तर नं० ४४-५१) वंध दो प्रकारका है—द्रव्यवंध और भाववंध।

१ भगवान् द्वारा माकन्दिपुत्र को प्रदत्त उत्तर। प्रश्न पूर्ववत्।

द्रव्यबंध दो प्रकारका है-प्रयोगबंध और विस्रसाबंध। १विस्रसाबंध दो प्रकारका है-सादिविस्रसाबंध और अनादिविस्रसाबंध। प्रयोगबंध दो प्रकारका है—शिथिलबंध और प्रगाढ़बंध। भावबंध दो प्रकारका है-मूलप्रकृतिबंध और उत्तरप्रकृतिबंध। नैरयिकसे वैमानिक-पर्यन्त सर्व जीवोंको दोनों ही प्रकारके भावबंध हैं। कर्मोंकी अपेक्षासे—ज्ञानावरणादि अष्ट कर्मोंके उपयुक्त दोनों ही प्रकारके भावबंध वैमानिक पर्यन्त सर्व जीवोंके होते हैं ॥६१६॥

(प्रश्नोत्तर नं० ५२-५३)—जिस प्रकार कोई पुरुष किसी आकृति विशेषमें खड़ा हो और धनुष को कान तक खींचकर बाण छोड़ दे। आकाशमें ऊपर फेंके गये बाणके प्रकंपनमें अन्तर (तीव्र या मंद) होता जाता है और उसके उन-उन स्वरूप-परिणामोंमें भी अन्तर होता जाता है। उसी प्रकार २ जीवने पाप-कर्म किया, करता है, और करेगा, में भी प्रभेद है और कर्म-परिणामोंमें भी प्रभेद है। यह भेद-व्याख्या वैमानिक-पर्यन्त सर्व जीवोंके लिये जाननी चाहिये ॥६२०॥

(प्रश्नोत्तर नं० ५४)—नैरयिक जो पुद्गल आहार रूपमें ग्रहण करते हैं उन पुद्गलों का भविष्य कालमें असंख्येय भाग आहार रूपमें गृहीत होता है और अनन्तवां भाग निर्जीर्ण होता है। (प्रश्नोत्तर नं० ५५)—निर्जराके पुद्गलों पर कोई भी सोने, बैठने और लोटने में समर्थ नहीं है। क्योंकि ये अनाधार हैं। अनाधार होनेसे कोई भी इन्हें धारण नहीं कर सकता ॥६२१॥

॥ १८ वें शतक का तीसरा उद्देशक समाप्त ॥

चतुर्थ उद्देशक

[वर्णित विषय—प्राणातिपात यावत् मिथ्यादर्शनशल्य आदि परिभोगमें आते भी हैं और नहीं भी, कषायके भेद, युग्म और उसके भेद। प्र० संख्या ८]

(प्रश्नोत्तर नं० ५६)—३प्राणातिपात यावत् मिथ्यादर्शनशल्य, प्राणातिपात-

---

१—विस्रसा—बादल आदिका स्वाभाविक बंध कहा जाता है। यह सादि है। धर्मास्तिकाय आदिका परस्पर बंध अनादिविस्रसा है।

२—जीवके भूतकालमें कृत, वर्तमान कालमें किये जाते और भविष्यकाल में किये जाने वाले कर्मोंमें तीव्र-मंदादि परिणामों की अपेक्षासे अन्तर होता है। इसी भाव को व्यक्त करनेके लिये फेंके हुए बाण का उदाहरण दिया गया है।

३—प्राणातिपातादि सामान्यरूपसे दो प्रकारके हैं। किन्तु इनमें प्रत्येक के दो-दो प्रकार नहीं हैं। इनमें पृथ्वीकायादि जीवद्रव्य हैं और अधर्मास्तिकायादि अजीव द्रव्य हैं। हिंसा आदि आत्माका अशुद्ध स्वभाव है और इनसे विरमण होना आत्माका शुद्ध स्वरूप है। अतः ये जीवस्वरूप कहे जा सकते हैं। जब जीव हिंसादि कार्य करता है तब चारित्रमोहनीयकर्मका उदय होता है। इसके द्वारा प्राणाति-

यह बात सत्य है। हे भगवन्! ऐसा ही है...कह कर श्रमण निर्ग्रन्थों ने श्रमण भगवान् महावीर को वन्दना नमस्कार किया व माकन्दिपुत्र अनगार के पास जाकर वं०...विनयपूर्वक क्षमा-याचना की ॥६१७॥

निर्जरा पुद्गल (प्रश्नोत्तर नं० ३६-४३)१सर्व कर्म वेदन करते हुए, सर्व कर्म निर्जीर्ण करते हुए, सर्व मरणसे मरते हुए, सर्व शरीरों का त्याग करते हुए, चरम कर्म वेदन करते हुए, चरम शरीर का त्याग करते हुए, चरम मरण से मरते हुए, मारणान्तिक कर्म वेदन करते हुए, मारणान्तिक कर्म निर्जीर्ण करते हुए, मारणान्तिकमरण से मरते हुए तथा मारणान्तिक शरीर का त्याग करते हुए भावितात्मा अनगारके चरम-निर्जरा पुद्गल समग्रलोकमें व्याप्त होकर रहते हैं तथा ये पुद्गल सूक्ष्म होते हैं।

छद्मस्थ मनुष्य इन निर्जरा-पुद्गलोंका परस्परका पृथक्त्व यावत् लघुत्व देख सकते हैं या नहीं, इस संबंधमें इन्द्रियोद्देशक की तरह जानना चाहिये। छद्मस्थोंमें जो उपयोगयुक्त हैं वे पुद्गलोंको जानते, देखते तथा ग्रहण करते हैं। उपयोग-रहित पुद्गलोंको न जानते हैं और न देखते हैं, परन्तु इनको आहाररूपमें ग्रहण करते हैं। नैरयिक निर्जरा-पुद्गल न जानते हैं और न देखते हैं परन्तु उनका आहार करते हैं। यही बात पंचेन्द्रिय तिर्यचयोनिक तक जाननी चाहिये।

मनुष्योंमें कितने ही जानते हैं, देखते हैं तथा आहार करते हैं। कितने ही नहीं जानते व नहीं देखते, परन्तु आहार करते हैं। मनुष्य दो प्रकारके हैं—संज्ञी—मनवाले, और असंज्ञी—विना मनवाले। असंज्ञी जीव निर्जरा-पुद्गल देखते या जानते नहीं परन्तु आहार करते हैं। संज्ञी जीव दो प्रकार के हैं—उपयुक्त और अनुपयुक्त। जो जीव विशिष्ट ज्ञानके उपयोगरहित हैं, वे इन्हें न जानते हैं और न देखते हैं परन्तु आहार करते हैं। विशिष्ट ज्ञानधारक जानते, देखते तथा आहार करते हैं।

मनुष्यों के सदृश वैमानिकों के लिये भी जानना चाहिये, परन्तु निम्न विशेषान्तर है—वैमानिक दो प्रकार के हैं–मायीमिथ्यादृष्टि और अमायी-सम्यग्-दृष्टि। मायीमिथ्यादृष्टि देव निर्जरा-पुद्गलोंको जानते व देखते नहीं परन्तु उनका आहार करते हैं। अमायीसम्यग्दृष्टि भी दो प्रकारके हैं–अनन्तरोपपन्नक और परम्परोपपन्नक। परम्परोपपन्नक भी दो प्रकारके हैं—पर्याप्त और अपर्याप्त। पर्याप्तके भी दो भेद हैं, उपयुक्त और अनुपयुक्त। इनमें मात्र उपयुक्त पर्याप्त परम्परोपपन्नक देव ही निर्जरा-पुद्गल जानते, देखते तथा आहार करते हैं, अन्य न जानते हैं और न देखते ही हैं परन्तु आहार करते हैं ॥६१८॥

वंध (प्रश्नोत्तर नं० ४४-५१) वंध दो प्रकारका है—द्रव्यवंध और भाववंध।

---

१ भगवान् द्वारा माकन्दिपुत्र को प्रदत्त उत्तर। प्रश्न पूर्ववत्।

द्रव्यबंध दो प्रकारका है-प्रयोगबंध और विस्रसाबंध। १विस्रसाबंध दो प्रकारका है-सादिविस्रसाबंध और अनादिविस्रसाबंध। प्रयोगबंध दो प्रकारका है—शिथिलबंध और प्रगाढ़बंध। भावबंध दो प्रकारका है-मूलप्रकृतिबंध और उत्तरप्रकृतिबंध। नैरयिकसे वैमानिक-पर्यन्त सर्व जीवोंको दोनों ही प्रकारके भावबंध हैं। कर्मोंकी अपेक्षासे—ज्ञानावरणादि अष्ट कर्मोंके उपयुक्त दोनों ही प्रकारके भावबंध वैमानिक पर्यन्त सर्व जीवोंके होते हैं ॥६१९॥

(प्रश्नोत्तर नं० ५२-५३)—जिस प्रकार कोई पुरुष किसी आकृति विशेषमें खड़ा हो और धनुष को कान तक खींचकर बाण छोड़ दे। आकाशमें ऊपर फेंके गये बाणके प्रकंपनमें अन्तर (तीव्र या मंद) होता जाता है और उसके उन-उन स्वरूप-परिणामोंमें भी अन्तर होता जाता है। उसी प्रकार २ जीवने पाप-कर्म किया, करता है, और करेगा, में भी प्रभेद है और कर्म-परिणामोंमें भी प्रभेद है। यह भेद-व्याख्या वैमानिक-पर्यन्त सर्व जीवोंके लिये जाननी चाहिये ॥६२०॥

(प्रश्नोत्तर नं० ५४)—नैरयिक जो पुद्गल आहार रूपमें ग्रहण करते हैं उन पुद्गलों का भविष्य कालमें असंख्येय भाग आहार रूपमें गृहीत होता है और अनन्तवां भाग निर्जीर्ण होता है। (प्रश्नोत्तर नं० ५५)—निर्जराके पुद्गलों पर कोई भी सोने, बैठने और लोटने में समर्थ नहीं है। क्योंकि ये अनाधार हैं। अनाधार होनेसे कोई भी इन्हें धारण नहीं कर सकता ॥६२१॥

॥ १८ वें शतक का तीसरा उद्देशक समाप्त ॥

चतुर्थ उद्देशक

[वर्णित विषय—प्राणातिपात यावत् मिथ्यादर्शनशल्य आदि परिभोगमें आते भी हैं और नहीं भी, कषायके भेद, युग्म और उसके भेद। प्र० संख्या ८]

(प्रश्नोत्तर नं० ५६)—३प्राणातिपात यावत् मिथ्यादर्शनशल्य, प्राणातिपात-

---

१—विस्रसा—बादल आदिका स्वाभाविक बंध कहा जाता है। यह सादि है। धर्मास्तिकाय आदिका परस्पर बंध अनादिविस्रसा है।

२—जीवके भूतकालमें कृत, वर्तमान कालमें किये जाते और भविष्यकाल में किये जाने वाले कर्मोमें तीव्र-मंदादि परिणामों की अपेक्षासे अन्तर होता है। इसी भाव को व्यक्त करनेके लिये फेंके हुए बाण का उदाहरण दिया गया है।

३—प्राणातिपातादि सामान्यरूपसे दो प्रकारके हैं। किन्तु इनमें प्रत्येक के दो-दो प्रकार नहीं हैं। इनमें पृथ्वीकायादि जीवद्रव्य हैं और अधर्मास्तिकायादि अजीव द्रव्य हैं। हिंसा आदि आत्माका अशुद्ध स्वभाव है और इनसे विरमण होना आत्माका शुद्ध स्वरूप है। अतः ये जीवस्वरूप कहे जा सकते हैं। जब जीव हिंसादि कार्य करता है तब चारित्रमोहनीयकर्मका उदय होता है। इसके द्वारा प्राणाति-

विरमण यावत् मिथ्यादर्शनशल्यविवेक, पृथ्वीकायिक यावत् वनस्पतिकायिक, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, शरीररहित जीव, परमाणु पुद्-गल, शैलेशी अनगार, स्थूलाकार सर्व कलेवर और द्वीन्द्रियादि जीव आदि दो प्रकार के हैं—जीवद्रव्यरूप और अजीवद्रव्यरूप। इनमें कितने ही जीवके परिभोगमें आते हैं और कितने ही नहीं। प्राणातिपातसे मिथ्यादर्शनशल्य पर्यन्त, पृथ्वीकायिक यावत् वनस्पतिकायिक, सर्व स्थूलाकार द्वीन्द्रियादि जीव, सर्व जीवोंके परिभोगमें आते हैं। प्राणातिपातविरमणव्रत यावत् मिथ्यादर्शनशल्यविवेक, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, शरीररहित जीव, परमाणु पुद्गल और शैलेशी अनगार जीवके परिभोगमें नहीं आते ॥६२२॥

(प्रश्नोत्तर नं० ५७)—कषाय चार प्रकार के हैं। यहां प्रज्ञापनासूत्रका सम्पूर्ण कषायपद जानना चाहिये। युग्म (प्रश्नोत्तर नं० ५८-६२)—युग्म राशि चार प्रकारकी हैं—कृतयुग्म, त्र्योज, द्वापर और कल्योज। जिस राशिमें से चार-चार निकालते हुए अन्तमें चार बाकी रहें, वह राशि कृतयुग्म कही जाती है। जिस राशिमें से चार-चार निकालते हुए अन्तमें तीन बाकी रहें उसे त्र्योज कहते हैं। जिस राशिमें से चार २ निकालते हुए दो बाकी रहें उसे द्वापर और जिसमें एक बाकी रहे उसे कल्योज कहते हैं। नैरयिक जघन्य रूपसे कृतयुग्म, उत्कृष्ट रूपसे त्र्योज और जघन्योत्कृष्ट-मध्य रूपमें कदाचित् कृतयुग्म, कदाचित् त्र्योज, कदाचित् द्वापरयुग्म और कदाचित् कल्योज रूप भी हैं। इसी प्रकार स्तनितकुमारों तक जानना चाहिये। वनस्पति-कायिक जघन्य तथा उत्कृष्ट पदकी अपेक्षा से अपद हैं अर्थात् इनमें इन दोनोंकी संभावना नहीं है। मध्यपदकी अपेक्षा कदाचित् कृतयुग्म यावत् कल्योज रूप हैं। अन्य एकेन्द्रिय जीव द्वीन्द्रियके सदृश हैं।

द्वीन्द्रियसे चतुरिन्द्रिय पर्यन्त जीव जघन्य अपेक्षासे कृतयुग्म, उत्कृष्ट अपेक्षा से द्वापरयुग्म और मध्यपदकी अपेक्षासे कदाचित् कृतयुग्म, कदाचित् त्र्योज, कदाचित् द्वापरयुग्म और कदाचित् कल्योज हैं। पंचेन्द्रियतिर्यंचयोनिकसे वैमानिक-पर्यन्त जीव नैरयिकों की तरह हैं। सिद्ध जीव वनस्पतिकायिकोंकी तरह हैं। स्त्रियां जघन्य पदकी अपेक्षा से कृतयुग्म, उत्कृष्ट पदकी अपेक्षा से भी कृतयुग्म और मध्यपदकी अपेक्षासे कदाचित् कृतयुग्म यावत् कदाचित् कल्योज हैं। यह बात वैमानिक-पर्यन्त सर्व स्त्रीयोनिकों अर्थात् असुरकुमार स्त्रियों, यावत् स्तनितकुमार

पातादि जीवके परिभोग में आते हैं। प्राणातिपातविरमण आदि चारित्रमोहनीय कर्म के हेतुभूत नहीं, अतः परिभोगमें नहीं आते। धर्मास्तिकाय आदि चार द्रव्य अमूर्त होनेसे, परमाणु सूक्ष्म होनेसे, शैलेशी अनगार उपदेशादि द्वारा प्रेरणा न करनेसे अनुपयोगी हैं, अतः परिभोगमें नहीं आते हैं।

स्त्रियों, तिर्यंचयोनिकस्त्रियों, मानवियों, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिकस्थ देवांगनाओंके लिये समझनी चाहिये ॥६२३॥ (प्रश्नोत्तर नं० ६३)—जितने अल्पायुषी १अंधक वह्नि जीव हैं उतने ही उत्कृष्टायुषी अंधक वह्नि जीव हैं ॥६२४॥

॥१८ वें शतक का चौथा उद्देशक समाप्त ॥

— — —

पंचम उद्देशक

[वर्णित विषय-विभूषित देव और अविभूषित देव—मनुष्यसे वैमानिक तकके जीवों की अपेक्षासे विचार, महाकर्मयुक्त नैरयिक और अल्पकर्मयुक्त नैरयिक, उदयाभिमुख जीव, देव और इच्छित रूप-विकुर्वण। प्रश्नोत्तर संख्या ८]

(प्रश्नोत्तर नं० ६४-६५) असुरकुमारावासमें समुत्पन्न देव दो प्रकारके हैं—वैक्रिय—विभूषित शरीर वाले और अवैक्रिय—अविभूषित शरीर वाले। विभूषित शरीर वाले असुरकुमार देव दर्शनीय, मनोहर, सुन्दर और आह्लादजनक होते हैं और अविभूषित शरीर वाले देव उस तरहके नहीं होते। उदाहरणार्थ—जिस प्रकार मनुष्य लोकमें होता है। जैसे—कोई दो पुरुष हैं, इनमें एक पुरुष अलंकारों से विभूषित और दूसरा अविभूषित है। दोनों व्यक्तियोंमें अलंकृत पुरुष मनमें आनन्द उत्पन्न करने वाला तथा मनोहर होता है, परन्तु अनलंकृत पुरुष नहीं होता। इसी कारण एक ही असुरकुमारावासमें उत्पन्न होने पर भी एक देव मनोहर एवं दर्शनीय होता है और एक देव नहीं होता। इसी प्रकार सर्व असुरकुमारों, वाणव्यन्तरों, ज्योतिष्कों और वैमानिकोंके लिये भी जानना चाहिये ॥६२५॥

(प्रश्नोत्तर नं० ६६-६७) दो नैरयिकोंमें एक नैरयिक तो महाकर्मयुक्त और यावत् महावेदनायुक्त और एक अल्पकर्मयुक्त और यावत् अल्पवेदनायुक्त भी होता है। इसका भी कारण है। नैरयिक दो प्रकार के हैं। मायीमिथ्यादृष्टि और अमायीसम्यग्दृष्टि। इनमें मायी मिथ्यादृष्टि नैरयिक महाकर्मयुक्त यावत् महावेदनायुक्त होते हैं और अमायी सम्यग्दृष्टि अल्पकर्मयुक्त यावत् अल्पवेदनायुक्त होते हैं। इस प्रकार एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रियोंको छोड़कर वैमानिक-पर्यन्त सर्व जीवोंके लिये जानना चाहिये ॥६२६॥

(प्रश्नोत्तर नं० ६८-६९) जो नैरयिक मरकर तत्क्षण पंचेन्द्रियतिर्यचयोनिक के भवमें उत्पन्न होने योग्य हैं; वे मृत्यु समयमें नैरयिकका आयुष्य अनुभव करते हैं और पंचेन्द्रिय तिर्यचयोनिकका आयुष्य उदयाभिमुख करते हैं। इसी प्रकार

१—अन्धक—सूक्ष्म अग्निकायिक जीव।

मनुष्य व वैमानिक-पर्यन्त सर्व जीवोंके लिये भी जानना चाहिये। जीव जहां उत्पन्न होने वाला है, वहां का वह आयुष्य उदयाभिमुख करता है और जहां है, वहां का आयुष्य अनुभव करता है। जो जीव जहां है और पुनः मरकर वहीं अगले भवमें उत्पन्न होने वाला है तो वह उस भवका आयुष्य उदयाभिमुख करता है और वर्तमान भवका आयुष्य अनुभव करता है। पृथ्वीकायिकसे मनुष्य-पर्यन्त इसी प्रकार जानना चाहिये ॥६२७॥

(प्रश्नोत्तर नं० ७०-७१) असुरकुमारावासमें समुत्पन्न दो असुरकुमारोंमें एक असुरकुमार इच्छित रूप विकुर्वित कर सकता है और एक नहीं। इसका कारण यह है—असुरकुमार दो प्रकारके हैं—मायी-मिथ्यादृष्टिसमुत्पन्न और अमायीसम्यग्दृष्टिसमुत्पन्न। मायीमिथ्यादृष्टिसमुत्पन्न देवको ऋजुरूप विकुर्वित करनेकी इच्छा करने पर वक्ररूप धारण हो जाता है और वक्ररूप धारण करनेकी इच्छा करने पर ऋजुरूप धारण हो जाता है। अमायीसम्यग्दृष्टि-समुत्पन्नको इस प्रकार नहीं होता। वह जैसा चाहता है वैसा ही रूप विकुर्वित होता है। इसी प्रकार सर्व असुरकुमारों, वाणव्यन्तरों, ज्योतिष्कों और वैमानिकोंके लिए समझना चाहिए ॥६२८॥

॥ १८वें शतक का पांचवां उद्देशक समाप्त ॥

—०—

छठा उद्देशक

(वर्णित विषय—व्यावहारिक और नैश्चयिक नयोंकी अपेक्षाओंसे पदार्थ। प्रश्नोत्तर संख्या ८)

(प्रश्नोत्तर नं० ७२-७९) फणित-प्रवाहित गुड़, व्यावहारिक नयकी अपेक्षासे मधुर और सरस हैं। नैश्चयिक नयकी अपेक्षासे वह पांच वर्ण, पांच रस, दो गंध और आठ स्पर्शयुक्त है। व्यावहारिक नयकी अपेक्षासे भ्रमर काला, और तोता हरा है। नैश्चयिक नयकी अपेक्षासे इनमें पांच वर्ण, पांच रस, दो गंध और आठ स्पर्श है। इसी तरह लाल मजीठ, पीली हल्दी, श्वेत शंख, सुगंधित कुष्ठ, दुर्गन्धित मयद, कड़वा नीम, तीखी सोंठ, तूरा कोट, खट्टी इमली, मधुर शक्कर, कर्कश वज्र, मृदुल मक्खन, भारी लोहा, हल्का बेरका पत्ता, शीतल बर्फ, उष्ण अग्नि और स्निग्ध तैलके लिए भी समझना चाहिए। व्यावहारिक नयकी अपेक्षा राख रूक्षस्पर्शयुक्त है परन्तु निश्चयनयकी अपेक्षासे इसमें पांचों वर्ण, पांचों रस, दोनों गंध, व आठों ही स्पर्श हैं ॥६२९॥

परमाणु पुद्गल एक वर्ण, एक गंध, एकरस और दो स्पर्शयुक्त है। द्विप्रेशिक स्कंध कदाचित् एक वर्ण, एक गंध, एक रस और दो स्पर्शयुक्त होता है और कदाचित् दो वर्ण, दो गंध, दो रस और तीन या चार स्पर्शयुक्त होता है। इसी प्रकार तीन प्रदेशिक

स्कंध, चार प्रदेशिक स्कंध और पांच प्रदेशिक स्कंधके लिए जानना चाहिए। विशेषान्तर यह है कि तीन प्रदेशिक स्कंध कदाचित् एक वर्ण, कदाचित् दो वर्ण, कदाचित् तीन वर्णयुक्त होता है। इस सम्बन्धमें भी इसी प्रकार रसके लिए भी जानना चाहिए। चतुष्कप्रदेशिक के लिए कदाचित् चार और पांच प्रदेशिक के लिए कदाचित् पांच वर्णरस कहने चाहिएं। गंध और स्पर्श द्विप्रदेशिककी तरह होते हैं। पंचप्रदेशिक स्कंधकी तरह असंख्येय प्रदेशिक स्कंधके लिए भी जानना चाहिए। सूक्ष्मपरिणाम वाले अनंतप्रदेशिक स्कंधके लिए पंचप्रदेशिक स्कन्ध की तरह जानना चाहिए। बादर—स्थूलपरिणामी अनन्तप्रदेशिक स्कन्ध कदाचित् एक वर्ण यावत् पांच वर्ण, कदाचित् एक गंध, दो गन्ध, कदाचित् एक रस यावत् उष्ण रस, कदाचित् चार, पांच, छः, सात व आठ स्पर्शयुक्त भी होता है ॥६३०॥

॥ १८वें शतकका छठा उद्देशक समाप्त ॥

—०—

सप्तम उद्देशक

(वर्णित विषय—केवली और यक्षावेश—खण्डन, उपधि, परिग्रह, प्रणिधान, दुष्प्रणिधान, सुप्रणिधान, केवलिप्ररूपित धर्मकी आशातना करने वाला व्यक्ति, महर्द्धिक देव और रूप-विकुर्वण, देवासुर संग्राम, देव अनन्त कर्मांशों का क्षय। प्रश्नोत्तर संख्या २६)

(प्रश्नोत्तर नं० ८०) "निश्चय ही केवली यक्षके आवेशसे आवेष्टित होकर दो प्रकारकी भाषायें—मृषाभाषा और सत्यमृषा-मिश्रभाषा, बोलते हैं।" अन्य-तीर्थिकोंका इस प्रकारका प्ररूपण मिथ्या है। निश्चय ही केवलज्ञानी यक्षके आवेशसे आवेष्टित नहीं होते और न इस प्रकारकी दो भाषाएं ही बोलते हैं। केवली पाप-व्यापार रहित और किसीको उपघात नहीं पहुंचाने वाली निम्न दो भाषाएं बोलते हैं—सत्य और असत्यमृषा—सत्य भी नहीं और असत्य भी नहीं ॥६३१॥

उपधि (प्रश्नोत्तर संख्या ८१-८३) [१]उपधि तीन प्रकारकी है—कर्मोपधि, शरीरोपधि, और बाह्यभंडोपकरणोपधि। नैरयिकों को दो प्रकार की उपधियां प्राप्त हैं—कर्मोपधि और शरीरोपधि। एकेन्द्रिय के अतिरिक्त वैमानिक पर्यन्त सर्व जीवों को तीनों ही उपधियां प्राप्त हैं। एकेन्द्रियों को कर्मोपधि और शरीरोपधि, ये दो उपधियां प्राप्त हैं। उपधि तीन प्रकार की है—सचित्त, अचित्त और मिश्र। नैरयिकों से वैमानिक पर्यन्त सर्व जीवों को ही तीनों प्रकार की उपधियां प्राप्त हैं।

१—जीवन-निर्वाहमें उपयोगी शरीर-वस्त्रादिको उपधि कहा जाता है।

परिग्रह (प्रश्नोत्तर नं० ८४-८५) परिग्रह तीन प्रकार का है—कर्मपरिग्रह, शरीरपरिग्रह और वस्त्रपात्रादि उपकरण परिग्रह । नैरयिकों को दो परिग्रह हैं—कर्मपरिग्रह और शरीर परिग्रह। उपधि की तरह ही शेष सर्व वर्णन जानना चाहिए ।

प्रणिधान (प्रश्नोत्तर नं० ८६-९२) प्रणिधान तीन प्रकार का है—मन प्रणिधान, वचन प्रणिधान और कायप्रणिधान । नैरयिकों और असुरकुमारों को तीनों प्रणिधान होते हैं । पृथ्वीकायिकादि एकेन्द्रिय जीवों को एक-काय-प्रणिधान, द्वीन्द्रिय से चतुरिन्द्रिय-पर्यन्त जीवों को दो-वचन प्रणिधान और काय-प्रणिधान होते हैं। अन्य सर्व जीवों को तीनों ही प्रणिधान होते हैं।

दुष्प्रणिधान तीन प्रकार का है–मनदुष्प्रणिधान, वचन दुष्प्रणिधान और कायदुष्प्रणिधान। जिस प्रकार प्रणिधान के विषय में कहा गया है उसी प्रकार सर्व जीवों के दुष्प्रणिधान भी जानने चाहिएं। सुप्रणिधान तीन प्रकार का है–मनसुप्रणिधान, वचनसुप्रणिधान और कायसुप्रणिधान। मनुष्य में तीनों प्रकार के प्रणिधान होते हैं। इसी प्रकार वैमानिक–पर्यन्त जानना चाहिए ।।६३२।।

मद्रुक श्रावक–उस समय की बात है । राजगृह नाम का नगर था। उसके पास ही गुणशील नामक उद्यान था। उससे कुछ दूर कालोदायी, शैलोदायी, सेवालोदायी, उदय, नामोदय, नर्मोदय, अन्यपालक, शैलपालक, शंखपालक और सुहस्ति नामक अन्यतीर्थिक गृहस्थ रहते थे । एक दिन वे सब एक साथ बैठे हुए बातें कर रहे थे। उनकी चर्चा का विषय था ज्ञातपुत्र भगवान् महावीर द्वारा प्ररूपित पंचास्तिकाय। वे कह रहे थे—श्रमण ज्ञातपुत्र पांच अस्तिकाय प्ररूपित करते हैं—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और जीवास्तिकाय। इनमें जीवास्तिकाय जीवरूप व पुद्गल के अतिरिक्त अन्य अस्तिकाय अरूपी व अमूर्त हैं। मात्र एक पुद्गलास्तिकाय रूपी है, ऐसा कैसे माना जा सकता है ? उसी नगरमें मद्रुक नामक एक धनाढ्य श्रावक रहता था। राजगृह में भगवान् महावीर के आगमन के संवाद को सुन कर वह उनके दर्शनार्थ जा रहा था। इतने में अन्यतीर्थिकों ने उसे जाते हुए देखा और उसें बुलाया तथा अपने उपर्युक्त मन्तव्य को प्रकट किया।

मद्रुक बोला—कोई भी वस्तु अपने कार्य द्वारा जानी जा सकती अथवा देखी जा सकती है। यदि वस्तु अपना कार्य न करे तो न हम उसको जान सकते हैं और न देख ही सकते हैं। पवन प्रवाहित होता है परन्तु हम उसका रूप नहीं देख सकते, गन्धगुणयुक्त पुद्गल होते हैं परन्तु हम उन्हें देख नहीं सकते, अरणि में अग्नि होती है परन्तु हम उसमें अग्नि नहीं देख सकते, समुद्र के उस पार अनेक पदार्थ हैं परन्तु हम उन्हें......, देवलोक में भी अनेक पदार्थ हैं परन्तु...,

इसका अर्थ यह तो नहीं कि तुम्हारे-हमारे जैसे अज्ञानी व्यक्ति जिन पदार्थों को देख नहीं सकते अथवा जान नहीं सकते, वे पदार्थ हैं ही नहीं। इस आधार से तो अनेक पदार्थों का अभाव हो जायेगा (प्र० ६६-६६)।

इतना कह कर मद्रुक ने उन्हें निरुत्तर कर दिया। तदनन्तर वह भगवान् महावीर के पास गया, उन्हें वन्दन-नमस्कार किया। भगवान् महावीर ने उसे सर्व घटना बताई तथा कहा—हे मद्रुक! जब कोई अन्य पुरुष अनदेखी, अनसुनी, अस्वीकृत तथा अज्ञात वस्तु, हेतु या प्रश्न के सम्बन्ध में अथवा किसी ज्ञान के सम्बन्धमें अनेक मनुष्यों के मध्य कहता है, बात करता है और प्ररूपित करता है, तो वह अर्हतों तथा अर्हत-प्ररूपित धर्म की, केवलज्ञानी और केवली कथित धर्म की आशातना करता है। अतः अन्य-तीथिकों को तेरा दिया हुआ प्रत्युत्तर ठीक व उचित था। भगवान् के वचन सुन कर मद्रुक बहुत संतुष्ट हुआ। उसने धर्म-कथा सुनी तथा अनेक प्रश्न पूछे। तदनन्तर वह वन्दन नमस्कार कर अपने घर गया।

मद्रुक के जाने के पश्चात् गौतम स्वामी ने भगवान् से पूछा—भगवन्! यह मद्रुक श्रावक क्या आपके पास प्रव्रज्या ग्रहण करेगा? भगवान् बोले-गौतम! ऐसी बात नहीं। यह अनेक शीलव्रत आदि नियमों का पालन कर तथा यथायोग्य स्वीकृत तपकर्म-द्वारा आत्मा को भावित कर साठ दिन तक अनशन द्वारा मृत्यु प्राप्त कर सौधर्म—कल्प में अरुणाभ नामक विमान में देव रूपमें उत्पन्न होगा। वहां उसका आयुष्य चार पल्योपम का होगा। वहां से वह च्युत होकर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्ध बुद्ध तथा मुक्त होगा ॥६३३॥

महर्द्धिक यावत् महासुख—सम्पन्न देव हजार रूप विकुर्वित कर परस्पर संग्राम करने में समर्थ है। ये विकुर्वित देह एक जीव से संबंधित होते हैं, परन्तु अनेक जीवोंसे नहीं। इन देहों के मध्यमें परस्पर का अन्तर भी एक ही जीवसे संबद्ध होता है। इन अन्तरों को कोई पुरुष हाथ द्वारा, पांव-द्वारा अथवा तीक्ष्ण शस्त्र द्वारा छेदन कर पीड़ा उत्पन्न नहीं कर सकता। आठवें शतक के तृतीय उद्देशक के अनुसार यहां सर्व वर्णन जानना चाहिए ॥६३४॥

(प्रश्नोत्तर नं० ६७-६६) देवताओं और असुरोंमें संग्राम होता है। जब इनका संग्राम होता है तब देवताओं को तृण, लकड़ी, पल्लव और कंकड़ आदि कोई भी वस्तु, जिसे वे छूएं, वही शस्त्र बन जाती है। असुरकुमारों के स्पर्श मात्रसे ऐसा नहीं होता। इनके पास सदैव विकुर्वित शस्त्ररत्न रहते हैं ॥६३५॥

(प्रश्नोत्तर नं० १००-१०१) महान् ऋद्धिसम्पन्न यावत् सुखसम्पन्न देव लवणसमुद्र, धातकीखण्ड द्वीप और यावत् रुचकवर द्वीपके चारों ओर शीघ्र

चक्कर मारकर आनेमें समर्थ है। तदनन्तर वह अगले द्वीप-समुद्रों तक जाता है परन्तु उनके चारों ओर परिक्रमा नहीं कर सकता ।।६३६।।

(प्रश्नोत्तर नं० १०१-१०४) ऐसे भी देव हैं जो अनन्त कर्मांशोंको जघन्य एक सौ, दो-सौ, तीन सौ वर्षोंमें और उत्कृष्ट पांचसौ वर्षोंमें क्षय करते हैं। ऐसे भी देव हैं जो अनन्त कर्मांशोंको जघन्य एक हजार, दो हजार और तीन हजार वर्षोंमें और उत्कृष्ट पांच हजार वर्षोंमें क्षय करते हैं।—ऐसे भी देव हैं जो अनन्त कर्मांशों को जघन्य एक लाख, दो लाख और तीन लाख वर्षोंमें और उत्कृष्ट पांच लाख वर्षोंमें क्षय करते हैं।—अनन्त कर्मांशोंको वाणव्यन्तर एक सौ, असुरेन्द्र सिवाय भवनवासी दो सौ, असुरकुमार तीन-सौ, ग्रह नक्षत्र और तारकरूप ज्योतिष्क देव चार सौ, ज्योतिष्क राज चन्द्र और सूर्य पांच सौ, सौधर्म और ईशानकल्पके देव एक हजार, सनत्कुमार और माहेन्द्रके देव दो हजार वर्ष, ब्रह्मलोक और लान्तक के देव तीन हजार वर्ष, महाशुक्र और सहस्रारके देव चार हजार वर्ष, आनत-प्राणत, आरण और अच्युतके देव पांच हजार वर्ष, ग्रैवेयकके एक लाख वर्ष, मध्य ग्रैवेयकके दो लाख वर्ष, ऊपरके ग्रैवेयकके तीन लाख वर्ष, विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजितके देव चार लाख वर्षमें और सर्वार्थसिद्ध के देव पांच लाख वर्षमें क्षय कर सकते हैं ।।६३७।।

।। १८वें शतक का सातवां उ० समाप्त ।।

अष्टम उद्देशक

(वर्णित विषय-भवितात्मा अनगार और ईर्यापथिकी क्रिया, छद्मस्थ मनुष्य और परमाणु पुद्गल, परमावधिज्ञानी और जानना व देखना, केवलज्ञानी और ज्ञान-दर्शन प्रयोग। प्रश्नोत्तर संख्या ७।)

(प्र० नं० १०५) [1]आगे और आस-पास युग—प्रमाण भूमि देख कर गमन करते हुए भावितात्मा अनगार के पांव के नीचे मुर्गी का बच्चा, बतख का बच्चा या कुलिंगच्छाय—चींटी या सूक्ष्म कीट, आकर मर जाय तो उस अनगार को ईर्यापथिकी क्रिया लगती है, साम्परायिकी नहीं। इस सम्बन्ध में सातवें शतक के संवृत उद्देशक के अनुसार जानना चाहिए ।।६३८।।

उस काल उस समय में राजगृह यावत् पृथ्वी शिलापट्टक था। उस गुणशिलक उद्यानके आस-पास बहुतसे अन्यतीर्थिक रहते थे। वहां श्रमण भगवान् महावीर पधारे। यावत् पर्षदा लौट गई। उस समय…इन्द्रभूति…विचरते थे। तब वे अन्य-तीर्थिक भगवान् गौतमके पास आए और इस प्रकार बोले—आर्यो ! तुम तीन करण तीन योगसे असंयत यावत् एकान्त बाल-विरतिरहित हो।

१-भगवान् द्वारा गौतम स्वामी को प्रदत्त उत्तर। प्रश्न पूर्ववत्।

भगवान् गौतम ने पूछा—क्यों ? अन्यतीर्थिक बोले—आर्यो ! तुम गमन करते हुए जीवोंको आक्रान्त करते हो, दवाते हो, मारते हो यावत् उपद्रव करते हो। इस प्रकार तुम···यावत् एकान्त वाल हो।

तव भगवान् गौतमने अन्यतीर्थिकोंको इस प्रकार कहा–हे आर्यो ! हम गमन करते हुए प्राणियोंको कुचलते नहीं, यावत् पीड़ित नहीं करते । पर हम गमन करते हुए काय, संयमयोग और ईर्यासमितिपूर्वक देख २ कर वारीकी से देख··· चलते हैं। अत:···यावत् उपद्रव नहीं करते।···यावत् एकान्त पंडित हैं। आर्यो ! तुम स्वयं यावत् वाल हो। तदनन्तर अन्यतीर्थिकोंने भगवान् गौतम से पूछा—···! किस कारण···यावत् वाल हैं ? तव भगवान् गौतमने उन अन्यतीर्थिकोंसे इस प्रकार कहा—आर्यो !······उपद्रव करते हो यावत् एकान्त वाल हो। इस प्रकार भगवान् गौतमने उन अन्यतीर्थिकों को निरुत्तर किया।···यावत् पर्युपासना करने लगे।

भगवान् बोले—गौतम ! तुमने उन अन्यतीर्थिकोंको ठीक कहा अच्छा कहा। मेरे वहुतसे शिष्य श्रमण निर्ग्रन्थ छद्मस्थ हैं। जो तुम्हारी तरह इस प्रकार उत्तर देने में समर्थ नहीं हैं। अत:···अच्छा कहा······॥६३९॥

(प्र० नं० १०६–१११) छद्मस्थ मनुष्यों में परमाणु पुद्गलको कोई जानता है परन्तु देखता नहीं, कोई जानता भी नहीं और देखता भी नहीं। इस प्रकार द्विप्रदेशिक से लेकर असंख्येय प्रदेशिक स्कंध के लिए जानना चाहिए। अनन्त प्रदेशिक स्कंध को कोई जानता है परन्तु देखता नहीं, कोई जानता नहीं परन्तु देखता है, और कोई जानता भी नहीं और देखता भी नहीं। छद्मस्थ की तरह अधोऽवधिक-अवधिज्ञानीके लिए अनन्तप्रदेशिक पर्यन्त समझना चाहिए।

परमावधिज्ञानी का ज्ञान साकार होता है और दर्शन अनाकार होता है। अत: वह जिस समय परमाणु पुद्गल को जानता है उस समय देखता नहीं और जिस समय देखता है उस समय जानता नहीं। इसी प्रकार अनन्त प्रदेशिक स्कन्ध तक समझना चाहिए। जिस प्रकार परमावधि ज्ञानी के लिए कहा गया है, उसी प्रकार केवलज्ञानीके लिए भी समझना चाहिए ॥६४०॥

॥ १८ वें शतक का आठवां उद्देशक समाप्त ॥

—०—

नवम उद्देशक

[वर्णित विषय—भवद्रव्य जीव—चौवीस दण्डकीय जीवोंकी दृष्टिसे विचार। प्रश्नोत्तर संख्या ५]

भवद्रव्य नैरयिकादि (प्र० नं० ११२-११६) भवद्रव्य नैरयिक हैं। भवद्रव्य[१]

१. भूत अथवा भावी पर्याय के कारण द्रव्य कहा जाता है।

नैरयिक उन्हें कहा जाता है जो पंचेन्द्रिय तिर्यच और मनुष्य नैरयिकों में उत्पन्न होने वाले हैं। इसी प्रकार भवद्रव्य स्तनितकुमार पर्यन्त जानना चाहिए।

भवद्रव्य पृथ्वीकायिक हैं। भवद्रव्य पृथ्वीकायिक उन्हें कहते हैं जो तिर्यच, मनुष्य और देव पृथ्वीकायमें उत्पन्न होने वाले हैं। इसी प्रकार भवद्रव्य अप्कायिक और वनस्पतिकायिक भी जानने चाहियें। अग्निकाय, वायुकाय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रियमें जो कोई तिर्यच या मनुष्य उत्पन्न होने योग्य हैं वे भवद्रव्य अग्निकायिकादि कहे जाते हैं। जो नैरयिक, तिर्यंचयोनिक, मनुष्य, देव और पंचेन्द्रिय तिर्यचयोनिक, पंचेन्द्रियतिर्यचयोनिकोंमें उत्पन्न होने योग्य हैं वे भवद्रव्य पंचेन्द्रिय-तिर्यचयोनिक कहे जाते हैं। इसी प्रकार मनुष्यके सम्बन्धमें जानना चाहिये। वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिकोंको नैरयिकोंकी तरह जानना चाहिये, भवद्रव्य नैरयिककी स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पूर्वकोटि वर्ष है। भवद्रव्य असुरकुमारकी स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट तीन पल्योपम है। इस प्रकार स्तनितकुमार तक जानना चाहिये। भवद्रव्य पृथ्वीकायिक की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट कुछ अधिक दो सागरोपम है। इसी प्रकार भवद्रव्य अप्कायिक और वनस्पतिकायिक की भी स्थिति जाननी चाहिये। भवद्रव्य अग्निकायिक, भवद्रव्य वायुकायिक, भवद्रव्य द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रियकी स्थिति नैरयिककी तरह जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पूर्वकोटि वर्ष है। भवद्रव्य पंचेन्द्रिय तिर्यचयोनिक और भवद्रव्य मनुष्यकी जघन्य स्थिति एकमुहूर्त और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम है। भवद्रव्य वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क तथा वैमानिकोंकी स्थिति भवद्रव्य असुरकुमारोंकी तरह है ॥६४१॥

॥ १८ वें शतक का नौवां उ० समाप्त ॥

—०—

दशम उद्देशक

[वर्णित विषय—भावितात्मा अनगार और वैक्रियलब्धि, परमाणु पुद्गल और वायुकाय, भूमियां और पुद्गल, यात्रा, यापनीय, अव्याबाध, प्रासुक विहार—व्याख्या, सरिसव, मास और कुलत्था आदि भक्ष्य हैं या अभक्ष्य विविध अपेक्षाओं से विचार, आत्मा और उसके प्रकार। प्रश्नोत्तर संख्या १६]

(प्रश्नोत्तर नं० ११७) भावितात्मा अनगार (वैक्रियलब्धिके सामर्थ्यसे) तलवारकी धार अथवा उस्तरेकी धार पर चल सकते हैं। वे वहां न छेदित होते हैं और न भेदित होते हैं। यहां पंचम शतकमें वर्णित परमाणु पुद्गल सम्बन्धी सर्व वर्णन जानना चाहिये ॥६४२॥

(प्रश्नोत्तर नं० ११८-१२०) परमाणु पुद्गल वायुकाय-द्वारा परिव्याप्त है, परन्तु वायुकाय परमाणु पुद्गलसे नहीं। इसी प्रकार द्विप्रदेशिक स्कंधसे लेकर असंख्येय प्रदेशिक स्कंध तक समझना चाहिये। अनन्त प्रदेशिक स्कंध द्वारा वायुकाय कदाचित् स्पृष्ट है और कदाचित् नहीं। (प्रश्नोत्तर नं० १२१) मसक वायुकायके द्वारा स्पृष्ट है. परन्तु वायुकाय मसक द्वारा स्पृष्ट नहीं ॥६४३॥

(प्र० नं० १२२) रत्नप्रभा भूमिके नीचे वर्णसे काले, नीले, पीले, लाल और श्वेत, गंध से-दुर्गन्धित और सुगन्धित, रस से-कड़वे, तीखे, कसैले, खट्टे और मीठे, स्पर्श से-कोमल, भारी, हल्के, ठण्डे, गर्म, चिकने और रूक्ष द्रव्य अन्योन्यबद्ध, अन्योन्य स्पृष्ट और अन्योन्य संवद्ध हैं। इसी प्रकार सातों ही भूमियों, सौधर्मादि विमानों और ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी पर्यन्त समझना चाहिए ॥६४४॥

सोमिल ब्राह्मण

उस समयकी बात है। वाणिज्यग्राम नामक नगर था। (वर्णन)। दूतिपलाश उद्यान था (वर्णन)। वहां सोमिल नामक एक ब्राह्मण था। वह ऋग्वेदादि ब्राह्मण शास्त्रोंका ज्ञाता, समृद्धिशाली तथा प्रभावशाली व्यक्ति था। वह पांच सौ शिष्यों व स्वकुटुम्बका आधिपत्य करता हुआ विचरता था। एक वार वहां श्रमण भगवान् महावीर पधारे। यावत् पर्षदा पर्युपासना करने लगी। भगवान्के पधारनेकी वात सुनकर सोमिलके मनमें विचार आया कि "महावीर यहां पधारे हैं यावत् विचरते हैं। तो मैं श्रमण ज्ञातपुत्रके पास जाऊं और प्रश्न पूछूं। यदि वे मेरे प्रश्नोंका यथोचित उत्तर देंगे तो मैं उन्हें वंदन नमस्कार करूंगा, अन्यथा उन्हें विवादमें निरुत्तर कर दूंगा।" ऐसा विचार कर स्नान करके सजधज कर अपने घरसे निकलकर एक सौ शिष्योंके साथ पैदल वाणिज्य-ग्रामसे जहां दूतिपलाश उद्यान था, जहां श्रमण भगवान् महावीर विराजमान थे वहां गया और भगवान्से विविध प्रश्न पूछे[१]। जिनका उत्तर भगवान्ने इस प्रकार दिया—

(प्रश्नोत्तर नं० १२३) यात्रा-तप, नियम, संयम, स्वाध्याय, ध्यान और आवश्यकादि योगोंमें यतना-प्रवृत्ति ही यात्रा है। (प्र० नं० १२४-१२६) यापनीय दो प्रकार का है—इन्द्रिययापनीय और नोइन्द्रिययापनीय। श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षु-इन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और स्पर्शेन्द्रिय, इन पांच इन्द्रियोंका उपघात-रहित आधीन रहना ही इन्द्रिययापनीय है। क्रोध, मान, माया और लोभ, इन

१. पृच्छा पूर्ववत्।

चारों कषायोंका व्युच्छिन्न हो जाना तथा पुनः उदयमें न आना ही नोइन्द्रिय-यापनीय है।

(प्र० नं० १२७) अव्यावाध—वात, पित्त, कफ और संनिपातजन्य अनेक प्रकारके शरीर-सम्बन्धी दोषोंका उपशान्त होना तथा पुनः उदयमें न आना ही अव्यावाध है। (प्र० नं० १२८) विहार—आरामों, उद्यानों, देवकुलों, सभाओं, परबों तथा स्त्री-पशु और नपुंसकरहित वस्तियोंमें निर्दोष और ऐषणीय पीठ, फलक, शय्या और संस्तारक प्राप्तकर रहना ही प्रासुक विहार है।

सरिसव (सर्सव), मास (माष), कुलत्था (प्रश्नोत्तर नं० १२९-१३१)—सरिसव भक्ष्य भी हैं और अभक्ष्य भी। ब्राह्मण शास्त्रोंमें दो प्रकारके सरिसव कहे गए हैं—मित्रसरिसव और धान्यसरिसव। मित्रसरिसव तीन प्रकारके हैं—सहजात, सहवर्द्धित और सहपांशुक्रीडक—धूलमें साथ खेले हुए। ये तीनों प्रकारके सरिसव श्रमण निर्ग्रन्थोंके लिए अभक्ष्य हैं। धान्य सरिसव दो प्रकारके हैं—शस्त्र-परिणत और अशस्त्रपरिणत। श्रमण निर्ग्रन्थोंको अशस्त्रपरिणत सरिसव अग्राह्य हैं और शस्त्रपरिणतमें भी ऐषणीय, याचित, व लब्ध सरिसव ही ग्राह्य हैं, परन्तु अनेषणीय, अयाचित व अलब्ध ग्राह्य नहीं।

श्रमण-निर्ग्रन्थोंको मास (माष) भक्ष्य भी हैं और अभक्ष्य भी। ब्राह्मण नयसे मास दो प्रकारके हैं—द्रव्यमास और कालमास। कालमास श्रावणसे आषाढ़ तक बारह प्रकारके हैं। वे इस प्रकार—श्रावण, भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष, माघ, फाल्गुन, चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ और आषाढ़। कालमास श्रमण निर्ग्रन्थोंके लिए अभक्ष्य हैं। द्रव्यमास भी दो प्रकारके हैं—अर्थमास और धान्यमास। अर्थमास दो प्रकार के हैं—स्वर्णमास और रौप्यमास। ये भी श्रमण निर्ग्रन्थोंको अभक्ष्य हैं। धान्यमास भी दो प्रकारके हैं—शस्त्रपरिणत और अशस्त्र-परिणत। श्रमण निर्ग्रन्थोंके लिए शस्त्रपरिणत ऐषणीय, याचित और प्राप्त द्रव्यमास ही ग्राह्य हैं।

कुलत्था भक्ष्य भी है और अभक्ष्य भी। ब्राह्मण शास्त्रोंके अनुसार कुलत्था दो प्रकार की है—स्त्रीकुलत्था और धान्यकुलत्था। स्त्रीकुलत्था तीन प्रकार की है—कुलकन्यका, कुलवधू और कुलमाता। ये श्रमण निर्ग्रन्थोंके लिए अभक्ष्य हैं। धान्यसरिसवके वर्णनानुसार धान्यकुलत्था श्रमण निर्ग्रन्थोंको भक्ष्य है॥६४५॥

(प्र० नं० १३२) भगवान् बोले—द्रव्य रूपसे मैं (आत्मा) एक, ज्ञान और दर्शन रूपसे दो प्रकार का हूं। प्रदेशरूपसे मैं अक्षय, अव्यय और अवस्थित हूं। उपयोगकी अपेक्षासे मैं अनेक भूत, वर्तमान और भावी परिणाम योग्य हूं।

यह सुनकर सोमिलको प्रतिबोध प्राप्त हुआ और उसने श्रमण भ० महा-

वीरको वंदन नमस्कार किया…स्कंदककी तरह यावत् 'जैसा आप कहते हैं वैसा ही है'। हे देवानुप्रिय ! जैसे आपके पास बहुतसे राजेश्वर…जैसे राजप्रश्नीयमें चित्तका कहा यावत् द्वादशविध श्रावक धर्म अंगीकार किया, श्र० भ० म० को वं० न० करके अपने घर गया। तब वह सोमिल ब्राह्मण श्रावक जीवाजीवादिक तत्वोंका ज्ञाता यावत्……विचरने लगा।

गौतम स्वामीका प्रश्न–भगवन् ! क्या सोमिल ब्राह्मण……दीक्षा लेनेमें समर्थ है। शेष सर्व वर्णन शंख श्रावककी तरह जानना चाहिए यावत् सर्व दुःखों का अन्त करेगा। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है…यावत् विचरते हैं ॥६४६॥

॥ १८ वें शतकका दसवां उ० समाप्त ॥

॥ अठारहवां शतक समाप्त ॥

उन्नीसवां शतक—प्रथम-द्वितीय उद्देशक

(प्रश्नोत्तर नं० १-२) लेश्याएं छः हैं। जीवोंको कितनी लेश्याएं होती हैं; इस सम्बन्ध में प्रज्ञापना सूत्रसे लेश्या गर्भ-सम्बन्धी वर्णन जानना चाहिए। ॥६४७-६४८॥

तृतीय उद्देशक

[वर्णित विषय–पृथ्वीकायिकादि एकेन्द्रिय जीवोंके सम्बन्धमें आहार, लेश्या, समुद्घात और अवगाहना आदि की अपेक्षाओंसे विचार। पृथ्वीकायिक जीव और उनकी अवगाहना—उदाहरण। प्रश्नोत्तर संख्या ३२]

पृथ्वीकायिकादि (प्रश्नोत्तर नं० ३-३२) दो, तीन या चार पृथ्वीकायिक एकत्रित होकर एक साधारण शरीर बांध कर आहार करते हों या परिणत करते हों; ऐसा नहीं। प्रत्येक पृथ्वीकायिक अलग अलग आहार करता है और अलग-अलग परिणत करता है। वह अलग ही अपना शरीर भी निर्माण करता है।

पृथ्वीकायिक जीवोंमें चार लेश्याएं होती हैं—कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या और तेजोलेश्या। ये जीव मिथ्यादृष्टि हैं, परन्तु सम्यग्दृष्टि या मिश्रदृष्टि नहीं। ये ज्ञानी नहीं परन्तु अज्ञानी हैं। इनमें मति अज्ञान और श्रुत अज्ञान दोनों हैं।

पृथ्वीकायिक मनयोगी या वचनयोगी नहीं होते परन्तु काययोगी होते हैं। इन्हें साकार और निराकार दोनों प्रकार का उपयोग होता है। ये द्रव्यापेक्षासे अनन्त प्रदेशात्मक पुद्गलोंका आहार करते हैं और आत्म-प्रदेशों द्वारा आहार ग्रहण करते हैं। ये जो पदार्थ आहाररूपमें ग्रहण करते हैं वह चय और उपचय होता है। तथा शरीरेन्द्रिय रूपमें परिणत भी होता है। जो पदार्थ आहार

चारों कषायोंका व्युच्छिन्न हो जाना तथा पुनः उदयमें न आना ही नोइन्द्रिय-यापनीय है।

(प्र० नं० १२७) अव्याबाध—वात, पित्त, कफ और संनिपातजन्य अनेक प्रकारके शरीर-सम्बन्धी दोपोंका उपशान्त होना तथा पुनः उदयमें न आना ही अव्याबाध है। (प्र० नं० १२८) विहार–आरामों, उद्यानों, देवकुलों, सभाओं, परवों तथा स्त्री-पशु और नपुंसकरहित वस्तियोंमें निर्दोष और ऐषणीय पीठ, फलक, शय्या और संस्तारक प्राप्तकर रहना ही प्रासुक विहार है।

सरिसव (सर्सव), मास (माष), कुलत्था (प्रश्नोत्तर नं० १२९-१३१)—सरिसव भक्ष्य भी हैं और अभक्ष्य भी। ब्राह्मण शास्त्रोंमें दो प्रकारके सरिसव कहे गए हैं—मित्रसरिसव और धान्यसरिसव। मित्रसरिसव तीन प्रकारके हैं—सहजात, सहवर्द्धित और सहपांशुक्रीडक–धूलमें साथ खेले हुए। ये तीनों प्रकारके सरिसव श्रमण निर्ग्रन्थोंके लिए अभक्ष्य हैं। धान्य सरिसव दो प्रकारके हैं—शस्त्र-परिणत और अशस्त्रपरिणत। श्रमण निर्ग्रन्थोंको अशस्त्रपरिणत सरिसव अग्राह्य हैं और शस्त्रपरिणतमें भी ऐषणीय, याचित, व लब्ध सरिसव ही ग्राह्य हैं, परन्तु अनेषणीय, अयाचित व अलब्ध ग्राह्य नहीं।

श्रमण-निर्ग्रन्थोंको मास (माष) भक्ष्य भी हैं और अभक्ष्य भी। ब्राह्मण नयसे मास दो प्रकारके हैं—द्रव्यमास और कालमास। कालमास श्रावणसे आषाढ़ तक बारह प्रकारके हैं। वे इस प्रकार—श्रावण, भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष, माघ, फाल्गुन, चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ और आषाढ़। कालमास श्रमण निर्ग्रन्थोंके लिए अभक्ष्य हैं। द्रव्यमास भी दो प्रकारके हैं–अर्थमास और धान्यमास। अर्थमास दो प्रकार के हैं—स्वर्णमास और रौप्यमास। ये भी श्रमण निर्ग्रन्थोंको अभक्ष्य हैं। धान्यमास भी दो प्रकारके हैं—शस्त्रपरिणत और अशस्त्र-परिणत। श्रमण निर्ग्रन्थोंके लिए शस्त्रपरिणत ऐषणीय, याचित और प्राप्त द्रव्यमास ही ग्राह्य हैं।

कुलत्था भक्ष्य भी है और अभक्ष्य भी। ब्राह्मण शास्त्रोंके अनुसार कुलत्था दो प्रकार की है—स्त्रीकुलत्था और धान्यकुलत्था। स्त्रीकुलत्था तीन प्रकार की है–कुलकन्यका, कुलवधू और कुलमाता। ये श्रमण निर्ग्रन्थोंके लिए अभक्ष्य हैं। धान्यसरिसवके वर्णनानुसार धान्यकुलत्था श्रमण निर्ग्रन्थोंको भक्ष्य है॥६४५॥

(प्र० नं० १३२) भगवान् बोले—द्रव्य रूपसे मैं (आत्मा) एक, ज्ञान और दर्शन रूपसे दो प्रकार का हूं। प्रदेशरूपसे मैं अक्षय, अव्यय और अवस्थित हूं। उपयोगकी अपेक्षासे मैं अनेक भूत, वर्तमान और भावी परिणाम योग्य हूं।

यह सुनकर सोमिलको प्रतिबोध प्राप्त हुआ और उसने श्रमण भ० महा-

वीरको वंदन नमस्कार किया···स्कंदककी तरह यावत् 'जैसा आप कहते हैं वैसा ही है'। हे देवानुप्रिय ! जैसे आपके पास बहुतसे राजेश्वर···जैसे राजप्रश्नीयमें चित्तका कहा यावत् द्वादशविध श्रावक धर्म अंगीकार किया, श्र० भ० म० को वं० न० करके अपने घर गया। तब वह सोमिल ब्राह्मण श्रावक जीवाजीवादिक तत्वोंका ज्ञाता यावत्······विचरने लगा।

गौतम स्वामीका प्रश्न—भगवन् ! क्या सोमिल ब्राह्मण······दीक्षा लेनेमें समर्थ है। शेष सर्व वर्णन शंख श्रावककी तरह जानना चाहिए यावत् सर्व दुःखों का अन्त करेगा। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है···यावत् विचरते हैं ॥६४६॥

॥ १८ वें शतकका दसवां उ० समाप्त ॥

॥ अठारहवां शतक समाप्त ॥

उन्नीसवां शतक—प्रथम-द्वितीय उद्देशक

(प्रश्नोत्तर नं० १-२) लेश्याएं छः हैं। जीवोंको कितनी लेश्याएं होती हैं; इस सम्बन्ध में प्रज्ञापना सूत्रसे लेश्या गर्भ-सम्बन्धी वर्णन जानना चाहिए। ॥६४७-६४८॥

तृतीय उद्देशक

[वर्णित विषय—पृथ्वीकायिकादि एकेन्द्रिय जीवोंके सम्बन्धमें आहार, लेश्या, समुद्घात और अवगाहना आदि की अपेक्षाओंसे विचार। पृथ्वीकायिक जीव और उनकी अवगाहना—उदाहरण। प्रश्नोत्तर संख्या ३२]

पृथ्वीकायिकादि (प्रश्नोत्तर नं० ३-३२) दो, तीन या चार पृथ्वीकायिक एकत्रित होकर एक साधारण शरीर बांध कर आहार करते हों या परिणत करते हों; ऐसा नहीं। प्रत्येक पृथ्वीकायिक अलग अलग आहार करता है और अलग-अलग परिणत करता है। वह अलग ही अपना शरीर भी निर्माण करता है।

पृथ्वीकायिक जीवोंमें चार लेश्याएं होती हैं—कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या और तेजोलेश्या। ये जीव मिथ्यादृष्टि हैं, परन्तु सम्यग्दृष्टि या मिश्रदृष्टि नहीं। ये ज्ञानी नहीं परन्तु अज्ञानी हैं। इनमें मति अज्ञान और श्रुत अज्ञान दोनों हैं।

पृथ्वीकायिक मनयोगी या वचनयोगी नहीं होते परन्तु काययोगी होते हैं। इन्हें साकार और निराकार दोनों प्रकार का उपयोग होता है। ये द्रव्यापेक्षासे अनन्त प्रदेशात्मक पुद्गलोंका आहार करते हैं और आत्म-प्रदेशों द्वारा आहार ग्रहण करते हैं। ये जो पदार्थ आहाररूपमें ग्रहण करते हैं वह चय और उपचय होता है। तथा शरीरेन्द्रिय रूपमें परिणत भी होता है। जो पदार्थ आहार

रूपमें ग्रहण में नहीं आता वह चय-उपचय नहीं होता। "हम आहार करते हैं" इस प्रकार की पृथ्वीकायिक जीवोंको मन या वचन से संज्ञा या प्रज्ञा नहीं होती परन्तु वे आहार अवश्य करते हैं। इन्हें "हम इष्ट या अनिष्ट स्पर्श अनुभव करते हैं" इस प्रकार की मन-वचनके द्वारा प्रतिपत्ति नहीं होती है परन्तु स्पर्शका अनुभव अवश्य करते हैं। पृथ्वीकायिक जीव भी प्राणातिपातादि अठारह पापस्थानोंमें लिप्त हैं। अन्य जीव जो इनकी हिंसा करते हैं इन्हें उनका ज्ञान नहीं होता। पृथ्वीकायिक जीव नैरयिकोंसे आकर उत्पन्न नहीं होते परन्तु तिर्यंचयोनिकों, मनुष्यों और देवलोकोंसे आकर उत्पन्न होते हैं। प्रज्ञापनासूत्रके व्युत्क्रान्तिपदके अनुसार पृथ्वीकायिकों का उत्पाद जानना चाहिये। पृथ्वीकायिक जीवोंकी जघन्य-स्थिति अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट स्थिति बाईस हजार वर्ष है। इनके तीन समुद्घात हैं—वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और मारणान्तिकसमुद्घात। ये मारणान्तिक समुद्घात द्वारा भी मृत्यु प्राप्त होते हैं और विना समुद्घातके भी। पृथ्वीकायिक मरकर कहां जाते हैं, इस सम्बन्धमें प्रज्ञापनाके व्युत्क्रान्तिपदके अनुसार उद्वर्तन जानना चाहिये।

अप्कायिक, तैजस्कायिक और वायुकायिकके सम्बन्धमें भी उपर्युक्त सर्व वर्णन जानना चाहिये, परन्तु इनमें निम्न विशेषान्तर है—अप्कायिककी उत्कृष्ट स्थिति सात हजार वर्ष है। १अग्निकायिकोंके उपपात, स्थिति एवं उद्वर्तनमें अन्तर है। वायुकायिकोंको भी अग्निकायिकोंकी तरह जानना चाहिये। वायुकायिकोंमें विशेषान्तर यह है कि इन्हें चार समुद्घात होते हैं। चार या पांच वनस्पतिकायिक जीव एकत्रित होकर एक साधारण शरीर नहीं बांधते, परन्तु अनन्त वनस्पतिकायिक जीव एकत्रित होकर एक साधारण शरीर बांधते हैं। तदनन्तर वे आहार करते हैं तथा परिणत करते हैं। शेष सर्व वर्णन अग्निकायिकों की तरह जानना चाहिये। निम्न विशेषान्तर है। वे नियमतः छः दिशाओंसे आहार करते हैं। इनकी जघन्य व उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त है ॥६४९॥

सूक्ष्म, बादर, पर्याप्त और अपर्याप्त पृथ्वीकायिकों, अप्कायिकों, वायुकायिकों और वनस्पतिकायिकोंमें जघन्य एवं उत्कृष्ट अवगाहनाकी विशेषाधिकता निम्न प्रकार है-अपर्याप्त सूक्ष्म-निगोदकी जघन्य अवगाहना सबसे अल्प है। अपर्याप्त सूक्ष्म-वायुकायिककी जघन्य अवगाहना इससे असंख्येय गुणित है; इससे अपर्याप्त

१—तैजस्कायिक जीव तिर्यंच और मनुष्योंसे आकर उत्पन्न होते हैं। इनकी उत्कृष्ट स्थिति तीन अहोरात्रि है। वे यहां से च्युत होकर तिर्यंचयोनिकों में ही उत्पन्न होते हैं। पृथ्वीकायिकोंमें जहां चार लेश्याएं होती हैं वहां इनमें तीन लेश्यायें ही होती हैं।

सूक्ष्म अग्निकायिककी जघन्य अवगाहना असंख्येयगुणित है; इससे अपर्याप्त सूक्ष्म अप्कायिककी असंख्येयगुणित है; इससे अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिककी असंख्येय गुणित है; इससे अपर्याप्त वादर वायुकायिककी जघन्य अवगाहना असंख्येयगुणित है; इससे अपर्याप्त अग्निकायिक, पर्याप्त बादर अप्कायिक तथा अपर्याप्त वादर पृथ्वीकायिककी जघन्य अवगाहना उत्तरोत्तर असंख्येयगुणित है; अपर्याप्त वादर पृथ्वीकायिककी अवगाहनासे पर्याप्त प्रत्येकशरीरी वादर-वनस्पतिकायिक और निगोदकी जघन्य अवगाहना असंख्येयगुणित है तथा दोनोंमें परस्पर समान है। सूक्ष्म पर्याप्त निगोदकी जघन्य अवगाहना असंख्येयगुणित और इससे सूक्ष्म निगोदकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेषाधिक है; इससे पर्याप्त सूक्ष्म वायुकायिककी जघन्य अवगाहना असंख्येय गुणित है; इससे अपर्याप्त सूक्ष्म-वायुकायिककी उत्कृष्ट अवगाहना विशेषाधिक है; इससे पर्याप्त सूक्ष्म वायुकायिककी उत्कृष्ट अवगाहना विशेषाधिक है।

इस प्रकार वायुकायिककी तरह पर्याप्त अग्निकायिककी जघन्य अवगाहना असंख्येय गुणित और इससे अपर्याप्त सूक्ष्म-अग्निकायिककी उत्कृष्ट अवगाहना और पर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहना उत्तरोत्तर विशेषाधिक है। इसी प्रकार सूक्ष्म अप्कायिक, सूक्ष्म पृथ्वीकायिक, वादर वायुकायिक, वादर अग्निकायिक, वादर अप्कायिक और वादर पृथ्वीकायिकके सम्वन्धमें जानना चाहिये। इन सवोंको इसी प्रकार त्रिविध-त्रिविध प्रकार से कहना चाहिये। इससे पर्याप्त वादर निगोद की जघन्य अवगाहना असंख्येय गुणित है; इससे अपर्याप्त निगोदकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेषाधिक है; इससे पर्याप्त वादर निगोदकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेषाधिक है; इससे प्रत्येकशरीरी पर्याप्त बादर वनस्पतिकायिककी जघन्य अवगाहना असंख्येय गुणित है; इससे प्रत्येकशरीरी अपर्याप्त वादर वनस्पति-कायिककी उत्कृष्ट अवगाहना असंख्येय गुणित है। इससे प्रत्येकशरीरी व वादर वनस्पतिकायिककी उत्कृष्ट अवगाहना असंख्येय गुणित है ॥६५०॥

पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक में वनस्पतिकायिक जीव सवसे सूक्ष्म और सूक्ष्मतर हैं। पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, अग्निकायिक और वायुकायिकमें वायुकायिक सवसे सूक्ष्म और सूक्ष्मतर हैं। पृथ्वी-कायिक, अप्कायिक और अग्निकायिकमें अग्निकायिक सवसे सूक्ष्म और सूक्ष्मतर हैं। पृथ्वीकायिक और अप्कायिकमें अप्कायिक सूक्ष्म और सूक्ष्मतर हैं। पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिकमें वनस्पतिकायिक सवसे वादर और वादरतर हैं। वनस्पतिकायको छोड़कर चार में पृथ्वीकाय, पृथ्वीकायको छोड़कर तीनमें अप्काय, अप्कायको छोड़कर दो में तेजस्काय, वादर और वादरतर है।

अनन्त सूक्ष्म वनस्पतिकायिकोंके जितने शरीर होते हैं, उतना एक सूक्ष्म वायुकायिकका शरीर है। असंख्येय सूक्ष्म वायुकायिकोंके जितने शरीर होते हैं उतना एक सूक्ष्म अग्निकायिकका शरीर है। असंख्येय सूक्ष्म अग्निकायिकोंके जितने शरीर होते हैं, उतना एक सूक्ष्म अप्कायिकका शरीर है। असंख्येय सूक्ष्म अप्कायिकोंके जितने शरीर होते हैं उतना एक सूक्ष्म पृथ्वीकायिक का शरीर है। असंख्येय सूक्ष्म पृथ्वीकायिकोंका जितना शरीर होता है उतना एक बादर वायुकायिकका शरीर है। असंख्येय बादर वायुकायिकोंके जितने शरीर होते हैं, उतना एक बादर अग्निकायिकका शरीर है। असंख्येय बादर अग्निकायिकों के जितने शरीर होते हैं, उतना एक बादर अप्कायका शरीर होता है। असंख्येय बादर अप्कायिकोंके जितने शरीर होते हैं, उतना एक बादर पृथ्वीकायिक का शरीर है ॥६५१॥

जिस प्रकार किसी चारों दिशाओंके अधीश्वर–स्वामी, चक्रवर्ती सम्राट्की चन्दन घिसने वाली दासी जो युवा, बलिष्ट, युगवान्—सुषमादि कालमें समुत्पन्न, स्वस्थ तथा योग्यवय है। वह चूर्ण पीसनेकी वज्रशिला पर वज्रमय कठिन पाषाण द्वारा लाखके पिण्ड जैसे एक पृथ्वीकायिक पिण्डको बार-बार इकट्ठा कर-करके तथा थोड़ा-थोड़ा करके इक्कीस बार पीसे। तो भी कितने ही पृथ्वीकायिक जीवोंका तो उस शिला और बांटने के पत्थरसे मात्र स्पर्श होता है और कितनों ही का स्पर्श भी नहीं होता, कितनों का ही संघर्ष होता है और कितनों ही का संघर्ष तक नहीं होता। कितनों ही को पीड़ा होती है, कितनों ही को पीड़ा भी नहीं होती। कितने ही मर जाते हैं और कितने ही मरते तक नहीं। कितने ही पिस जाते हैं और कितने ही पिसते तक नहीं। पृथ्वीकायिक की अवगाहना कितनी होती है, इस उदाहरण द्वारा अनुमान की जा सकती है।

पृथ्वीकायकी पीड़ा (प्रश्नोत्तर नं०३३-३४) जिस प्रकार कोई युवक और बलिष्ट पुरुप जो कलामें अत्यन्त पारंगत है, वह किसी जर्जरित, जीर्ण शरीर दुर्बल और ग्लान व्यक्ति के मस्तक में अपने दोनों हाथोंसे चोट करे तो उस पुरुषको अत्यन्त पीड़ा होती है, उसी प्रकार पृथ्वीकायिक जब दबते हैं, तो उस पुरुप की पीड़ासे भी अधिक असहनीय वेदनाका उन्हें अनुभव होता है। जिस प्रकार पृथ्वीकायिक की पीड़ाके संबंधमें कहा गया है उसी प्रकार शेष अप्कायिकादि एकेन्द्रिय जीवों के लिये भी समझना चाहिये ॥६५२॥

उद्देशक ४—७

(वर्णित विषय–चौवीस दण्डकयी जीव और आस्रव, क्रिया, वेदना और निर्जराकी अपेक्षासे विचार, चरमायुषी और परमायुषी, वेदनाके प्रकार, देवताओं के भवनावास। प्रश्नोत्तर संख्या ३२)

चतुर्थ उद्देशक

नैरयिकादि (प्रश्नोत्तर नं० ३५-५२) १नैरयिक महाआस्रवयुक्त, महाक्रियायुक्त, महावेदनायुक्त, और अल्पनिर्जरायुक्त हैं। असुरकुमार महाआस्रवयुक्त, महाक्रियायुक्त अल्पवेदनायुक्त तथा अल्पनिर्जरायुक्त हैं। इसी प्रकार स्तनितकुमार पर्यन्त समझना चाहिये। पृथ्वीकायिक महाआस्रवयुक्त, महाक्रियायुक्त, महावेदनायुक्त और महानिर्जरायुक्त तथा अल्पआस्रवयुक्त, अल्पक्रियायुक्त, अल्पवेदनायुक्त और अल्पनिर्जरायुक्त भी हैं। पृथ्वीकायिकके सदृश ही मनुष्य पर्यन्त जानना चाहिये। वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क व वैमानिक असुरकुमारोंके सदृश हैं ॥६५३॥ ॥ १९ वें शतक का चौथा उ० समाप्त ॥

पंचम उद्देशक

(प्रश्नोत्तर नं० ५३-५५) नैरयिकोंमें चरम—अल्पायुषी और परम—दीर्घायुषी नैरयिक होते हैं। चरम नैरयिकोंकी अपेक्षा परम नैरयिक महाकर्मयुक्त, महाक्रियायुक्त, महाआस्रवयुक्त, महावेदनायुक्त हैं तथा परम नैरयिकोंकी अपेक्षा चरम नैरयिक अल्पकर्मयुक्त, अल्पआस्रवयुक्त व अल्पवेदनायुक्त हैं। आयुष्यके अनुसार ऐसा कहा गया है। असुरकुमार भी चरमायुषी तथा परमायुषी होते हैं परन्तु यहां परमायुषी असुरकुमार चरमायुषी असुरकुमारोंकी अपेक्षा अल्पकर्मयुक्त होते हैं और चरमायुषी परमायुषीकी अपेक्षा महाकर्मयुक्त होते हैं। इसी प्रकार अन्य सर्व भवनवासियों, वाणव्यन्तरों, ज्योतिष्कों और वैमानिकोंके लिये जानना चाहिये। पृथ्वीकायिक से लेकर मनुष्य-पर्यन्त जीव नैरयिकोंकी तरह ॥६५४॥

वेदना (प्रश्नोत्तर संख्या ५६-५७) वेदना दो प्रकारकी है–निदा–ज्ञानपूर्वक वेदना, और अनिदा—अज्ञानपूर्वक वेदना। २नैरयिकादि जीवोंको कैसी वेदना होती है वह सर्व प्रज्ञापना सूत्रके अनुसार जानना चाहिये ॥६५५॥

॥ १९ वें शतक का पांचवां उ० समाप्त ॥

१—यहां अल्पत्व और बहुत्वकी अपेक्षा १६ भंग होते हैं।

२—नैरयिक दोनों प्रकारकी वेदना अनुभव करते हैं। जो संज्ञीसे आकर उत्पन्न होते हैं उन्हें निदा वेदना होती है, और जो असंज्ञीसे आकर उत्पन्न होते हैं, उन्हें अनिदा वेदना होती है। पृथ्वीकायिकसे चतुरिन्द्रिय पर्यन्त जीवोंको मात्र अनिदा वेदना होती है। तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्यों को दोनों प्रकारकी वेदनायें होती हैं। असुरकुमार आदि भवनवासियों, वाणव्यन्तरों, ज्योतिष्कों और वैमानिकोंको भी दोनों प्रकारकी वेदनायें हैं। कारण भिन्न-भिन्न हैं।

अनन्त सूक्ष्म वनस्पतिकायिकोंके जितने शरीर होते हैं, उतना एक सूक्ष्म वायुकायिकका शरीर है। असंख्येय सूक्ष्म वायुकायिकोंके जितने शरीर होते हैं उतना एक सूक्ष्म अग्निकायिकका शरीर है। असंख्येय सूक्ष्म अग्निकायिकोंके जितने शरीर होते हैं, उतना एक सूक्ष्म अप्कायिकका शरीर है। असंख्येय सूक्ष्म अप्-कायिकोंके जितने शरीर होते हैं उतना एक सूक्ष्म पृथ्वीकायिक का शरीर है। असंख्येय सूक्ष्म पृथ्वीकायिकोंका जितना शरीर होता है उतना एक वादर वायुका-यिकका शरीर है। असंख्येय वादर वायुकायिकोंके जितने शरीर होते हैं, उतना एक वादर अग्निकायिकका शरीर है। असंख्येय वादर अग्निकायिकों के जितने शरीर होते हैं, उतना एक वादर अप्कायका शरीर होता है। असंख्येय वादर अप्कायिकोंके जितने शरीर होते हैं, उतना एक वादर पृथ्वीकायिक का शरीर है ॥६५१॥

जिस प्रकार किसी चारों दिशाओंके अधीश्वर—स्वामी, चक्रवर्ती सम्राट्की चन्दन घिसने वाली दासी जो युवा, वलिष्ट, युगवान्—सुपमादि कालमें समुत्पन्न, स्वस्थ तथा योग्यवय है। वह चूर्ण पीसनेकी वज्रशिला पर वज्रमय कठिन पापाण द्वारा लाखके पिण्ड जैसे एक पृथ्वीकायिक पिण्डको वार-वार इकट्ठा कर-करके तथा थोड़ा-थोड़ा करके इक्कीस वार पीसे। तो भी कितने ही पृथ्वीकायिक जीवोंका तो उस शिला और बांटने के पत्थरसे मात्र स्पर्श होता है और कितनों ही का स्पर्श भी नहीं होता, कितनों का ही संघर्ष होता है और कितनों ही का संघर्ष तक नहीं होता। कितनों ही को पीड़ा होती है, कितनों ही को पीड़ा भी नहीं होती। कितने ही मर जाते हैं और कितने ही मरते तक नहीं। कितने ही पिस जाते हैं और कितने ही पिसते तक नहीं। पृथ्वीकायिक की अवगाहना कितनी होती है, इस उदाहरण द्वारा अनुमान की जा सकती है।

पृथ्वीकायकी पीड़ा (प्रश्नोत्तर नं०३३-३४) जिस प्रकार कोई युवक और वलिष्ट पुरुष जो कलामें अत्यन्त पारंगत है, वह किसी जर्जरित, जीर्ण शरीर दुर्वल और ग्लान व्यक्ति के मस्तक में अपने दोनों हाथोंसे चोट करे तो उस पुरुषको अत्यन्त पीड़ा होती है, उसी प्रकार पृथ्वीकायिक जब दबते हैं, तो उस पुरुष की पीड़ासे भी अधिक असहनीय वेदनाका उन्हें अनुभव होता है। जिस प्रकार पृथ्वीकायिक की पीड़ाके संबंधमें कहा गया है उसी प्रकार शेप अप्कायिकादि एकेन्द्रिय जीवों के लिये भी समझना चाहिये ॥६५२॥

॥ १९वें शतक का तीसरा उ० समाप्त ॥

———

उद्देशक ४—७

(वर्णित विषय–चौबीस दण्डकयी जीव और आस्रव, क्रिया, वेदना और निर्जराकी अपेक्षासे विचार, चरमायुषी और परमायुषी, वेदनाके प्रकार, देवताओं के भवनावास। प्रश्नोत्तर संख्या ३२)

चतुर्थ उद्देशक

नैरयिकादि (प्रश्नोत्तर नं० ३५-५२) १नैरयिक महाआस्रवयुक्त, महाक्रियायुक्त, महावेदनायुक्त, और अल्पनिर्जरायुक्त हैं। असुरकुमार महाआस्रवयुक्त, महाक्रियायुक्त अल्पवेदनायुक्त तथा अल्पनिर्जरायुक्त हैं। इसी प्रकार स्तनितकुमार पर्यन्त समझना चाहिये। पृथ्वीकायिक महाआस्रवयुक्त, महाक्रियायुक्त, महावेदनायुक्त और महानिर्जरायुक्त तथा अल्पआस्रवयुक्त, अल्पक्रियायुक्त, अल्पवेदनायुक्त और अल्पनिर्जरायुक्त भी हैं। पृथ्वीकायिकके सदृश ही मनुष्य पर्यन्त जानना चाहिये। वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क व वैमानिक असुरकुमारोंके सदृश हैं ॥६५३॥ ॥ १९ वें शतक का चौथा उ० समाप्त ॥

पंचम उद्देशक

(प्रश्नोत्तर नं० ५३-५५) नैरयिकोंमें चरम—अल्पायुषी और परम—दीर्घायुषी नैरयिक होते हैं। चरम नैरयिकोंकी अपेक्षा परम नैरयिक महाकर्मयुक्त, महाक्रियायुक्त, महाआस्रवयुक्त, महावेदनायुक्त हैं तथा परम नैरयिकोंकी अपेक्षा चरम नैरयिक अल्पकर्मयुक्त, अल्पआस्रवयुक्त व अल्पवेदनायुक्त हैं। आयुष्यके अनुसार ऐसा कहा गया है। असुरकुमार भी चरमायुषी तथा परमायुषी होते हैं परन्तु यहां परमायुषी असुरकुमार चरमायुषी असुरकुमारोंकी अपेक्षा अल्पकर्मयुक्त होते हैं और चरमायुषी परमायुषीकी अपेक्षा महाकर्मयुक्त होते हैं। इसी प्रकार अन्य सर्व भवनवासियों, वाणव्यन्तरों, ज्योतिष्कों और वैमानिकोंके लिये जानना चाहिये। पृथ्वीकायिक से लेकर मनुष्य-पर्यन्त जीव नैरयिकोंकी तरह ॥६५४॥

वेदना (प्रश्नोत्तर संख्या ५६-५७) वेदना दो प्रकारकी है–निदा–ज्ञानपूर्वक वेदना, और अनिदा—अज्ञानपूर्वक वेदना। २नैरयिकादि जीवोंको कैसी वेदना होती है वह सर्व प्रज्ञापना सूत्रके अनुसार जानना चाहिये ॥६५५॥

॥ १९ वें शतक का पांचवां उ० समाप्त ॥

१—यहां अल्पत्व और बहुत्वकी अपेक्षा १६ भंग होते हैं।

२—नैरयिक दोनों प्रकारकी वेदना अनुभव करते हैं। जो संज्ञीसे आकर उत्पन्न होते हैं उन्हें निदा वेदना होती है, और जो असंज्ञीसे आकर उत्पन्न होते हैं, उन्हें अनिदा वेदना होती है। पृथ्वीकायिकसे चतुरिन्द्रिय पर्यन्त जीवोंको मात्र अनिदा वेदना होती है। तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्यों को दोनों प्रकारकी वेदनायें होती हैं। असुरकुमार आदि भवनवासियों, वाणव्यन्तरों, ज्योतिष्कों और वैमानिकोंको भी दोनों प्रकारकी वेदनायें हैं। कारण भिन्न-भिन्न हैं।

षष्ठम उद्देशक

(प्रश्नोत्तर नं० ५८) द्वीप और समुद्र कहां हैं, कितने हैं, किस आकारके हैं, इस सम्बन्ध में जीवाभिगम सूत्रमें वर्णित ज्योतिष्क मंडित उद्देशक को छोड़कर द्वीप-समुद्रोद्देशक जानना चाहिये ॥ ६५६ ॥

सप्तम उद्देशक

(प्रश्नोत्तर नं० ५६-६६) असुरकुमारोंके चौंसठ लाख भवनावास हैं। ये भवनावास सर्वरत्नमय, स्वच्छ, चिक्कण तथा सुन्दर हैं। वहां अनेक जीव और पुद्गल उत्पन्न होते हैं, विनाश पाते हैं च्युत होते हैं, तथा उत्पन्न होते हैं। ये भवन द्रव्यार्थिक रूपसे शाश्वत और वर्णपर्याय की अपेक्षा अशाश्वत हैं। इसी प्रकार स्तनितकुमारोंके भवनावास जानने चाहियें। वाणव्यन्तरोंके भूमिके अन्तर्गत असंख्येय नगर हैं। शेष उपर्युक्त वर्णन। ज्योतिष्कों और वैमानिकोंके असंख्येय लाख विमानावास हैं। ये सर्व विमानावास स्फटिकमय तथा स्वच्छ हैं। शेष पूर्ववत्। सौधर्मकल्प में बत्तीस लाख विमानावास हैं। ये सर्व विमान रत्नमय तथा स्वच्छ हैं। शेष पूर्ववत्। इसी प्रकार अनुत्तर विमान तक जानना चाहिये। पर यहां जितने विमान हैं उतने कहने चाहिएं ॥ ६५७ ॥

॥ १६वें शतक का सातवां उद्देशक समाप्त ॥

अष्टम उद्देशक

(वर्णित विषय—निर्वृत्ति और उसके भेद—विस्तृत विवेचन। प्रश्नोत्तर संख्या २४) जीवनिर्वृत्ति (प्रश्नोत्तर नं० ६७-६०) जीवनिर्वृत्ति[१] पांच प्रकारकी है—एकेन्द्रिय जीवनिर्वृत्ति यावत् पंचेन्द्रिय जीवनिर्वृत्ति। एकेन्द्रियजीवनिर्वृत्ति पांच प्रकारकी है—पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय जीवनिर्वृत्ति यावत् वनस्पतिकायिक एकेन्द्रिय जीवनिर्वृत्ति। पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय जीवनिर्वृत्ति दो प्रकारकी है—सूक्ष्मपृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय जीवनिर्वृत्ति और बादर पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय जीवनिर्वृत्ति। इस प्रकार प्रज्ञापनासूत्रके महद्वन्धन अधिकारमें जैसे तैजस शरीरके भेद किये गये हैं, उसी प्रकार यहां भेद जानने चाहिएं। सर्वार्थसिद्ध-पर्यन्त सर्व जीवोंके निर्वृत्ति भेद भी जानने चाहिएं।

कर्मनिर्वृत्ति आठ प्रकारकी है—ज्ञानवरणीयकर्मनिर्वृत्ति यावत् अन्तराय-कर्मनिर्वृत्ति। नैरयिकोंको आठ प्रकारकी कर्मनिर्वृत्ति है—ज्ञानावरणीयकर्म-निर्वृत्ति यावत् अन्तरायकर्मनिर्वृत्ति। वैमानिक-पर्यन्त सर्व जीवोंके ये कर्म-

---

१—कार्य-रूपको निर्वृत्ति कहा जाता है।

वैमानिक-पर्यन्त जिसको जितने अज्ञान हैं उसके उतनी अज्ञाननिर्वृ त्तियां जाननी चाहिएं। योगनिर्वृ त्ति तीन प्रकार की है—मनयोगनिर्वृ त्ति, वचनयोगनिर्वृ त्ति और काययोगनिर्वृ त्ति। वैमानिक-पर्यन्त जिसके जितने योग होते हैं उसके उतनी ही योगनिर्वृ त्तियां जाननी चाहियें। उपयोगनिर्वृ त्ति दो प्रकार की है—साकारोपयोगनिर्वृ त्ति, निराकारोपयोगनिर्वृ त्ति। इस प्रकार वैमानिक-पर्यन्त सर्व जीवोंके लिए जानना चाहिये ॥ ६५८ ॥

॥ १९वें शतक का आठवां उद्देशक समाप्त ॥

नवम उद्देशक

(वर्णित विषय—करण और उसके प्रकार। प्रश्नोत्तर संख्या ८)

करण और उसके भेद (प्रश्नोत्तर नं० ९१-९८) १करण पांच प्रकार के हैं—द्रव्यकरण, क्षेत्रकरण, कालकरण, भवकरण और भावकरण। नैरयिक से लेकर वैमानिक पर्यन्त सर्व जीवों को पांचों ही प्रकार के करण होते हैं। शरीरकरण पांच प्रकार का है—औदारिकशरीरकरण यावत् कार्मणशरीरकरण। इस प्रकार वैमानिक पर्यन्त सर्व जीवों के लिए जानने चाहियें। जिसके जितने शरीर हों उसके उतने ही करण होते हैं। इन्द्रिय करण पांच प्रकार का है—श्रोत्रेन्द्रियकरण यावत् स्पर्शेन्द्रियकरण। इस प्रकार वैमानिक-पर्यन्त जानना चाहिये। जिस जीव के जितनी इन्द्रियां हैं उसके उतने ही करण होते हैं।

इसी क्रम से चार प्रकार का भाषाकरण, चार प्रकार का मनकरण, चार प्रकार का कषायकरण, सात प्रकार का समुद्घातकरण, चार प्रकार का संज्ञाकरण, छः प्रकार का लेश्याकरण, तीन प्रकारका दृष्टिकरण, तीन प्रकारका वेदकरण, नैरयिक से लेकर वैमानिक-पर्यन्त सर्व जीवों के, जिसको जितने हैं, उतने जानने चाहिएं। प्राणातिपातकरण पांच प्रकार का है—एकेन्द्रिय प्राणातिपातकरण यावत् पंचेन्द्रिय०। इस प्रकार वैमानिक-पर्यन्त सर्व जीवोंके लिए जानना चाहिए। पुद्गलकरण पांच प्रकार का है--वर्णकरण, गंधकरण, रसकरण, स्पर्शकरण और संस्थानकरण। वर्णकरण—कृष्णवर्णकरण आदि पांच प्रकार का, गन्धकरण दो प्रकार का, रसकरण पांच प्रकार का और स्पर्श करण आठ प्रकार का है। संस्थानकरण पांच प्रकार का है—परिमंडलसंस्थानकरण यावत् आयतसंस्थानकरण ॥ ६५९ ॥

॥ १९वें शतक का नौवां उद्देशक समाप्त ॥

१—क्रिया के साधन को तथा करने को भी करण कहा जाता है।

१०वां उद्देशक

(प्रश्नोत्तर नं० ६६) वाणव्यन्तर समान आहार वाले हैं या नहीं इस संबंध में सोलहवें शतकके द्वीपकुमारोद्देशक के अनुसार जानना चाहिए ॥ ६६० ॥

॥ दसवां उद्देशक समाप्त ॥

॥ १६वां शतक समाप्त ॥

बीसवां शतक—प्रथम उद्देशक

(वर्णित विषय— द्वीन्द्रिय जीव, प्रश्नोत्तर संख्या ८)

द्वीन्द्रियादि (प्रश्नोत्तर नं० १-८) चार या पांच द्वीन्द्रिय जीव एकत्रित होकर एक साधारण शरीर बनाते हों, ऐसा नहीं। ये अलग-अलग शरीर बनाते हैं, भिन्न २ रूप से आहार करते हैं तथा परिणत करते हैं। प्रत्येक जीव भिन्न शरीर बांधकर आहार करता है, परिणत करता है और शरीर का निर्माण करता है।

द्वीन्द्रिय जीवों में तीन लेश्यायें होती हैं—कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्या। ये सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि भी होते हैं परन्तु सम्यग्मिथ्या-(मिश्र) दृष्टि नहीं होते। ये दो ज्ञान अथवा दो अज्ञानयुक्त हैं। मनयोग नहीं होता परन्तु वचनयोग और काययोग होते हैं। ये छः दिशाओं से आहार ग्रहण करते हैं।

"हम इष्ट या अनिष्ट रस या स्पर्श अनुभव करते हैं" ऐसा इन्हें ज्ञान नहीं होता, परन्तु स्पर्श का अनुभव अवश्य करते हैं। इनकी जघन्य स्थिति एक अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट स्थिति बारह वर्ष की है। शेष पूर्ववत्।

इसी प्रकार त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवोंके लिये भी जानना चाहिये। मात्र इन्द्रियों और [1]स्थितिमें अन्तर है।

द्वीन्द्रियकी तरह उपर्युक्त सर्व वर्णन पंचेन्द्रियोंके लिये भी जानना चाहिये। विशेषान्तर यह कि इन्हें पांच लेश्याएं, सम्यग्, मिथ्या और मिश्र तीनों दृष्टियां, चार ज्ञान और तीन अज्ञान विकल्पसे और तीनों योग होते हैं। "हम आहार करते हैं" इस प्रकार की प्रतिपत्ति मन, वचनसे कुछ जीवोंको होती है और कुछ जीवों (असंज्ञी) को नहीं। जिन्हें ऐसी प्रतीति होती है वे भी आहार करते हैं और जिन्हें नहीं होती वे भी आहार करते हैं। इष्ट रूप, इष्ट गंध, इष्ट रस और इष्ट स्पर्शके बारेमें भी इसी प्रकार जानना चाहिये।

१—त्रीन्द्रियकी उत्कृष्ट स्थिति उनचास दिन और चतुरिन्द्रियकी छः मास है। जघन्य स्थिति दोनोंकी अन्तर्मुहूर्त है।

इनमें कितने ही जीव प्राणातिपात आदि १८ पापस्थानोंमें लिप्त हैं और कितने ही नहीं। जिन जीवोंकी हिंसा होती है उनमें बहुतसे जीव यह अनुभव करते हैं "हम हनन हो रहे हैं तथा यह हमारा घातक है" और बहुतोंको ज्ञान भी नहीं होता। इनमें सर्वार्थसिद्ध पर्यन्त सबका उपपात है। जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागरोपम है। केवलिसमुद्घातके अतिरिक्त शेष छः समुद्घात होते हैं। मरकर सर्वार्थसिद्ध पर्यन्त जाते हैं।

इन द्वीन्द्रियादि जीवोंमें सबसे अल्प पंचेन्द्रिय जीव हैं। इनसे चतुरिन्द्रिय जीव विशेषाधिक हैं; इनसे त्रीन्द्रिय जीव विशेषाधिक और इनसे द्वीन्द्रिय जीव विशेषाधिक हैं ॥६६१॥

॥ बीसवें शतक का प्रथम उद्देशक समाप्त ॥

द्वितीय-उद्देशक

[वर्णित विषय–आकाश और उसके प्रकार। प्रश्नोत्तर संख्या ८]

(प्रश्नोत्तर नं० ९-१६) आकाश दो प्रकार का है—लोकाकाश और अलोकाकाश। इस सम्बन्धमें द्वितीय शतकके अस्तिउद्देशकके अनुसार सर्व वर्णन जानना चाहिये। धर्मास्तिकाय लोकरूप, लोकमात्र, लोकप्रमाण और लोकद्वारा स्पर्शित है। यह लोकको अवगाहित कर स्थित है। अधोलोकने धर्मास्तिकायके कुछ अधिक अर्द्ध भागको अवगाहित कर रक्खा है। ईपत्प्राग्भारा पृथ्वीने लोकाकाशके असंख्यातवें भाग को अवगाहित कर रक्खा है ॥६६२॥

धर्मास्तिकायके अनेक अभिधायक शब्द हैं। वे इस प्रकार हैं—धर्म, धर्मास्तिकाय, प्राणातिपातविरमण, मृपावादविरमण यावत् परिग्रहविरमण, क्रोधत्याग यावत् मिथ्यादर्शनशल्यत्याग, ईर्यासमिति, भाषा-समिति, एषणासमिति, आदानभांडमात्रनिक्षेपणसमिति, उच्चारप्रस्रवणखेलजल्लसिंघानकपारिष्ठापनिका-समिति, मनगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति। इस प्रकारके अन्य शब्द भी धर्मास्तिकायके अभिधायक शब्द हैं।

अधर्मास्तिकायके अनेक अभिधायक शब्द हैं। वे इस प्रकार हैं—अधर्म, अधर्मास्तिकाय, प्राणातिपात यावत् मिथ्यादर्शनशल्य, ईर्यासम्बन्धीअसमिति—यावत् उच्चारप्रस्रवणपारिष्ठापनिकाअसमिति, मनअगुप्ति, वचनअगुप्ति और कायअगुप्ति। इस प्रकार अन्य शब्द भी अधर्मास्तिकायके अभिधायक शब्द हैं। आकाशास्तिकायके अनेक अभिधायक शब्द हैं, वे इस प्रकार हैं—आकाश, आकाशास्तिकाय, गगन, नभ, सम, विषम, खह, विहाय, वीचि, विवर, अंबर, अम्बरस, छिद्र, शुपिर, विमुख, (मुख रहित) अर्द, व्यर्द, आधार, व्योम, भाजन,

अन्तरिक्ष, अवकाशान्तर, अगम, स्फटिक। ये सर्व तथा इस प्रकार के अन्य शब्द भी आकाशास्तिकायके अभिधायक शब्द हैं।

जीवास्तिकायके अनेक अभिधायक शब्द हैं। वे इस प्रकार हैं—जीव, जीवास्तिकाय, प्राण, भूत, सत्व, विज्ञ, चेता, जेता, आत्मा, रंगण (रागयुक्त), हिंडुक—गमन करने वाला, पुद्‌गल, मानव (नवीन नहीं), कर्ता, विकर्ता, जगत्, जन्तु, योनि, स्वयंभूति, शरीरी, नायक और अन्तरात्मा। ये सर्व तथा इनके जैसे अन्य शब्द भी जीवास्तिकायके अभिधायक शब्द हैं। पुद्‌गलास्तिकायके निम्न अभिधायक शब्द हैं-पुद्‌गल, पुद्‌गलास्तिकाय, परमाणुपुद्‌गल, द्विप्रदेशिक यावत् असंख्येय व अनन्त प्रदेशिक स्कंध। इस प्रकार के अन्य शब्द भी पुद्‌गलास्तिकायके अभिधायक हैं ।।६६३।।

।। २० वें शतक का दूसरा उद्देशक समाप्त ।।

तृतीय उद्देशक

[वर्णित विषय-प्राणातिपातादि आत्मासे अन्यत्र परिणत नहीं होते। प्रश्नोत्तर सं० २]

(प्रश्नोत्तर नं० १७) प्राणातिपात यावत् मिथ्यादर्शनशल्य, प्राणातिपातविरमण यावत् मिथ्यादर्शनशल्यविवेक, औत्पत्तिकी यावत् पारिणामिकी, अवग्रह यावत् धारणा, उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषकारपराक्रम, नैरयिकत्व, असुरत्व, यावत् वैमानिकत्व, ज्ञानावरणीय यावत् अन्तराय, कृष्णलेश्या यावत् शुक्ललेश्या, सम्यग्दृष्टि यावत् मिश्रदृष्टि, चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, केवलदर्शन, आभिनिबोधिकज्ञान यावत् विभंगज्ञान, आहारसंज्ञा, भयसंज्ञा, परिग्रहसंज्ञा, मैथुनसंज्ञा, औदारिकशरीर यावत् कार्मणशरीर, मनोयोग, वचनयोग, काययोग, साकार उपयोग और निराकार उपयोग ये सब तथा इनके जैसे अन्य धर्म आत्मा के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं परिणत नहीं होते ।।६६४।।

(प्रश्नोत्तर नं० १८) गर्भमें उत्पद्यमान जीव कितने वर्ण, गंध, रस और स्पर्शयुक्त होता है; इस सम्बन्धमें बारहवें शतकके पंचम उद्देशकके अनुसार जानना चाहिये ।।६६५।।

।। २० वें शतक का तीसरा उद्देशक समाप्त ।।

चतुर्थ उद्देशक

(प्रश्नोत्तर सं० १९) इन्द्रियोपचय पांच प्रकार का है—श्रोत्रेन्द्रिययोपचय आदि। विशेष प्रज्ञापनासूत्रके द्वितीय इन्द्रियोद्देशकके अनुसार जानना ।।६६६।।

।। २० वें शतक का चौथा उद्देशक समाप्त ।।

पंचम उद्देशक

[वर्णित विषय—वर्ण-गंधादिकी अपेक्षासे परमाणु पुद्गल और विकल्प। दो-तीन-चार-पांच यावत् अनन्तप्रदेशिक पुद्गल और उनके विकल्प। परमाणु और उसके भेद। प्रश्नोत्तर संख्या १६]

(प्रश्नोत्तर नं० २०-३०) परमाणु पुद्गल एक वर्ण, एक गंध, एक रस और दो स्पर्शयुक्त है। यदि यह एक वर्णयुक्त हो तो कदाचित् काला, नीला, लाल, पीला, या श्वेत हो। एक गंधयुक्त हो तो कदाचित् सुगंधित या दुर्गन्धित हो। एक रसयुक्त हो तो कदाचित् कड़वा, तीखा, तूरा, खट्टा या मीठा हो। दो स्पर्श हो तो कदाचित् शीत और स्निग्ध, शीत और रूक्ष, उष्ण और स्निग्ध, उष्ण और रूक्ष हो। द्विप्रदेशिक स्कंध कदाचित् एक वर्ण, एक गंध, एक रस और दो स्पर्शयुक्त होता है और कदाचित् दो वर्ण, दो गंध, दो रस और तीन या चार स्पर्शयुक्त होता है।

द्विप्रदेशिक स्कंधके एक वर्णकी अपेक्षा पांच और द्विकसंयोगीकी अपेक्षा दस भंग होते हैं। एक गंधकी अपेक्षा एक और द्विकसंयोगी दो भंग होते हैं। रसके वर्णकी तरह एक संयोगी पांच और द्विकसंयोगी दस भंग होते हैं। स्पर्शके द्विक-संयोगी परमाणुकी तरह चार, तीन स्पर्शकी अपेक्षा चार और चार स्पर्शकी अपेक्षा ···इस तरह नव भंग होते हैं।

त्रिप्रदेशिक स्कंधके वर्णके ४५, गंधके ५, रसके ४५, और स्पर्शके २५ भंग होते हैं। चतुष्क प्रदेशिक स्कंधके वर्णके ९०, गंधके ६, रसके ९०, स्पर्श के ३६, भंग होते हैं। पांच प्रदेशिक स्कंधके वर्णके १४१, गंधके ६, रसके १४१ और स्पर्श के ३६ भंग होते हैं। छः प्रदेशिक स्कन्धके वर्णके १८६, गंधके ६, रसके १८६, स्पर्श के ३६ भंग होते हैं। सात प्रदेशिक स्कन्धके वर्णके २१६, गंधके ६, रसके २१६ और स्पर्शके ३६ भंग होते हैं। आठ प्रदेशिक स्कन्धके वर्णके २३१, गंधके ६, रसके २३१ और स्पर्शके ३६ भंग होते हैं। नव प्रदेशिक स्कन्धके वर्णके २३६, गंधके ६, रसके २३६ और स्पर्शके ३६ भंग होते हैं। दश प्रदेशिक स्कन्धके वर्णके २३७, गंधके ६, रसके २३७ और स्पर्शके ३६ भंग होते हैं। दश प्रदेशिक स्कंधकी तरह संख्येयप्रदे-शिक, असंख्येयप्रदेशिक और सूक्ष्म परिणामी अनन्तप्रदेशिक स्कन्ध जानने चाहियें ।।६६७।।

अनन्तप्रदेशिक स्थूलपरिणामी पुद्गल स्कंधके भंग १८ वें शतक के समान दशप्रदेशिक स्कन्धकी तरह ही वर्ण, गन्ध और रसकी अपेक्षासे होते हैं परन्तु स्पर्शके भंग इस प्रकार होते हैं। चार स्पर्शके, चतुष्क संयोगीके १६, पांच स्पर्शके, पंचसंयोगी १२८, छः स्पर्शके छः संयोगी ३८४, सातस्पर्शके, सप्तसंयोगी ५१२, और आठ स्पर्श के अष्टसंयोगी २५६ भंग होते हैं ।।६६८।।

(प्रश्नोत्तर नं० ३१-३५) परमाणु चार प्रकारके हैं—द्रव्यपरमाणु, क्षेत्र-परमाणु, कालपरमाणु और भावपरमाणु। द्रव्यपरमाणु चार प्रकारका है—अछेद्य, अभेद्य, अदाह्य और अग्राह्य। क्षेत्रपरमाणु चार प्रकारका है—अनर्ध, अमध्य, अप्रदेश और अविभाग। कालपरमाणु चार प्रकारका है—अवर्ण, अगन्ध, अरस और अस्पर्श। भावपरमाणु चार प्रकार का है-वर्णयुक्त, गन्धयुक्त, रसयुक्त और स्पर्शयुक्त ॥६६९॥

॥ २० वें शतक का पांचवां उद्देशक समाप्त ॥

—०—

षष्ठम उद्देशक

(प्रश्नोत्तर नं० ३६-४३) पृथ्वीकायिक जीव रत्नप्रभा पृथ्वी और शर्करा-प्रभा भूमिसे मरणसमुद्घात करके सौधर्मकल्पमें पृथ्वीकायिकरूपमें उत्पन्न होते हैं। वे वहां उत्पन्न होकर आहार करते हैं। इस प्रकार ईषत्प्राग्भारापृथ्वी-पर्यन्त पृथ्वीकायिक जीवोंका उपपात समझना चाहिये। इसी क्रमसे तमा और तमतमा पृथ्वीसे पृथ्वीकायिक जीवोंके मरणसमुद्घातके सम्बन्ध में भी जानना चाहिये। इसी प्रकार सौधर्म व ईशान, सनत्कुमार व माहेन्द्रसे पृथ्वीकायिक मरणसमुद्घात करके शर्कराप्रभा पृथ्वीमें पृथ्वीकायरूपमें उत्पन्न हो सकते हैं। इसी प्रकार सप्तम भूमि पर्यन्त क्रमशः उपपात जानना चाहिये ॥६७०॥ पृथ्वीकायिक की तरह अप्कायिक के लिए जानना चाहिए ॥६७१॥ वायुकायिक के लिये सत्रहवें शतक के अनुसार उपपात जानना चाहिये ॥६७२॥

॥ २० वें शतक का छठा उद्देशक समाप्त ॥

—०—

सप्तम उद्देशक

(प्रश्नोत्तर नं० ४४-५१) बंध तीन प्रकारका है-जीवप्रयोगबंध; अनन्तर-बंध और परम्परबंध। वैमानिक-पर्यन्त सर्व जीवों को तीनों बंध होते हैं। ज्ञाना-वरणीय आदि अष्टकर्म, ज्ञानावरणीयोदय स्त्री आदि वेद, दर्शनमोहनीयकर्म, चारित्रमोहनीयकर्म, औदारिक शरीर यावत् कार्मणशरीर, आहारसंज्ञा यावत् परिग्रहसंज्ञा, कृष्णलेश्या यावत् शुक्ललेश्या, सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि, सम्यग्-मिथ्यादृष्टि, मतिज्ञान यावत् केवलज्ञान, मतिअज्ञान यावत् विभंगज्ञान, मतिज्ञान के विषय यावत् केवलज्ञानके विषय, मतिअज्ञानके विषय यावत् विभंगज्ञानके विषय आदि के बंध भी तीन प्रकारके हैं। नैरयिकसे लेकर वैमानिक पर्यन्त चौबीसों ही दण्डकोंके लिये ये भेद समझने चाहियें, परन्तु जिसको जो-जो हैं उसे वे-वे ही कहे जाने चाहियें। वैमानिकोंके विभंगज्ञानके भी उपर्युक्त तीनों ही बंध हैं ॥६७३॥

॥ २० वें शतक का सातवां उ० समाप्त ॥

अष्टम उद्देशक

[वर्णित विषय–कर्मभूमियां और अकर्मभूमियां, कर्मभूमियां और तीर्थंकर, भरत क्षेत्र और वर्तमान चौवीस तीर्थंकर। प्रश्नोत्तर संख्या १६]

(प्र० नं० ५२-६७) पन्द्रह कर्मभूमियां हैं—पांच भरत, पांच ऐरावत और पांच महाविदेह। तीस अकर्मभूमियां हैं–पांच हैमवंत, पांच हैरण्यवत, पांच हरिवर्ष, पांच रम्यक्, पांच देवकुरु और पांच उत्तरकुरु। तीस अकर्मभूमियोंमें उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल नहीं है, परन्तु कर्मभूमियों में पांच भरत और पांच ऐरावतमें उपर्युक्त दोनों प्रकारका काल है। पांच महाविदेहक्षेत्रमें एक ही अवस्थित काल है ॥६७४॥

पांच भरत और पांच ऐरावतमें प्रथम और अन्तिम अरिहंत भगवन्त पांच महाव्रतयुक्त तथा प्रतिक्रमण सहित धर्मका उपदेश देते हैं, और शेष अरिहंत भगवन्त (तीर्थंकर) चार महाव्रत वाले धर्मका प्ररूपण करते हैं। महाविदेहक्षेत्रमें भी अरिहंत भगवन्त चार महाव्रतयुक्त धर्मका उपदेश देते हैं। जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्रमें इस अवसर्पिणी कालमें चौवीस तीर्थंकर हुए हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—ऋषभ, अजित, संभव, अभिनन्दन, सुमति, सुप्रभ, सुपार्श्व, शशि—चन्द्रप्रभ, पुष्पदंत—सुविधि, शीतल, श्रेयांस, वासुपूज्य, विमल, अनन्त, धर्म, शान्ति, कुंथु, अर, मल्लि, मुनिसुव्रत, नमि, नेमि, पार्श्व और वर्द्धमान ॥६७५॥

इन चौवीस तीर्थंकरोंमें २३ अन्तर हैं। इनमें प्रथम और अन्तिम आठ-आठ जिनान्तरों में कालिकश्रुत विच्छेद नहीं है, परन्तु मध्यके सात-सात अन्तरोंमें इसका विच्छेद है। दृष्टिवाद का विच्छेद तो समस्त जिनान्तरोंमें है ॥६७६॥

जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें इस अवसर्पिणीकालमें कितने ही तीर्थंकरोंका पूर्वगत श्रुत संख्येयकाल पर्यन्त और कितने ही तीर्थंकरोंका असंख्येय काल तक रहा है। मेरा (वर्द्धमानका) पूर्वगत श्रुत एक हजार वर्ष तक तथा तीर्थ इक्कीस हजार वर्ष तक अवस्थित रहेगा। भावी तीर्थंकरोंमें अन्तिम तीर्थंकरका तीर्थ कोशल देश के ऋषभदेव अरिहंतके जिनपर्याय जितना (हजार वर्ष न्यून लाख पूर्व) होगा ॥६७७-६७६॥

अरिहन्त

अरिहंत तीर्थ नहीं परन्तु नियमतः तीर्थंकर हैं, चार प्रकारका श्रमणसंघ–साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका, तीर्थरूप हैं ॥६८०॥

अरिहंत नियमतः प्रवचनी हैं और द्वादशांगगणिपिटक प्रवचन हैं। वह इस प्रकार है—आचारांग यावत् दृष्टिवाद। उग्रकुल, भोगकुल, राजन्यकुल, इक्ष्वाकुकुल, ज्ञातकुल और कौरवकुलके सर्व व्यक्ति इस धर्ममें प्रवेश करते हैं,

तथा प्रवेश करके आठ प्रकारके कर्म-रजमलको धोते हैं। इनमें कितने ही सिद्ध होकर सर्व दुःखोंका अन्त करते हैं और कितने ही देवलोकोंमें देवरूपसे उत्पन्न होते हैं। चार प्रकारके देवलोक हैं—भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क एवं वैमानिक ॥६८१॥

॥ २० वें शतक का आठवां उ० समाप्त ॥

—०—

नवम उद्देशक—चारण

(प्रश्नोत्तर नं० ६८-७६) चारण दो प्रकारके हैं—विद्याचारण व जंघाचारण। निरन्तर छट्ठ तपके द्वारा तथा पूर्वगतश्रुतरूपीविद्या-द्वारा तपोलब्धि प्राप्त मुनियोंको विद्याचारण नामक लब्धि प्राप्त होती है। इससे ये मुनि विद्याचारण कहे जाते हैं। जिस प्रकार कोई महर्द्धिक यावत् महासुखसम्पन्न देव सम्पूर्ण जम्बूद्वीपकी तीन ताली वजाने जितने समयमें ही तीन वार परिक्रमा करके चला आता है उसी प्रकार विद्याचारण मुनियोंकी शीघ्र गति होती है।

विद्याचारणकी तिर्यक् और ऊर्ध्व जानेकी शक्ति इस प्रकार है—तिर्यक्में ये प्रथम उत्थान द्वारा मानुषोत्तर पर्वत पर स्थित होते हैं और वहां जाकर समवसरण करते हैं। वहांसे द्वितीय उत्थान द्वारा नंदीश्वरद्वीपमें पहुंचते हैं और समवसरण करते हैं। तदनन्तर वे यहां लौट आते हैं। ऊपरमें एक उत्थान द्वारा नंदनवनमें स्थित होते हैं और वहां जाकर समोसरण करते हैं। पश्चात् द्वितीय उत्थान-द्वारा वे पांडुकवनमें पहुंच जाते हैं। जहां जाकर वे समोसरण करते हैं। पुनः वहांसे लौट आते हैं।

ये विद्याचारण मुनि यदि गमनागमन सम्वन्धी पाप-स्थानकी आलोचना या प्रतिक्रमण किये विना ही कालकर जायं तो आराधक नहीं होते। पाप-स्थानकी आलोचना और प्रतिक्रमण करके काल करते हैं तो आराधक होते हैं ॥६८२॥

निरन्तर अट्ठमतप—तीन उपवास द्वारा अपनी आत्माको विशुद्ध करते हुए मुनिको जंघाचारण नामक लब्धि उत्पन्न होती है। इस लब्धिकी अपेक्षा वह जंघाचारण कहा जाता है। कोई महर्द्धिक देव तीन ताली वजाने जितने समयमें इक्कीस वार सम्पूर्ण जम्बूद्वीपकी जिस तीव्र गतिसे परिक्रमा करके चला आता है उसी तीव्र गतिसे जंघाचारण मुनि भी गमन करते हैं। तिर्यक्में जंघाचारण मुनि एक उत्थान द्वारा रुचकवर द्वीपमें पहुंच जाते हैं। वहां समोसरण कर पुनः दूसरे उत्थान द्वारा नन्दीश्वरद्वीपमें पहुँचते हैं। वहां समोसरण कर वह यहां लौट आते हैं। ऊर्ध्वगतिकी अपेक्षा जंघाचारण एक उत्थान द्वारा पांडुकवनमें पहुँच जाते हैं।

वहां समोसरण कर दूसरे उत्थान द्वारा नन्दनवनमें पहुँच जाते हैं। वहां समोसरण कर लौट आते हैं। इतनी इनकी ऊर्ध्वगति है। जंघाचारण मुनि यदि गति-विषयक पापस्थानकी आलोचना या प्रतिक्रमण किये बिना ही कालकर जायं तो आराधक नहीं होते। उस स्थानकी आलोचना करके काल करें तो आराधक होते हैं ॥६८३॥

॥ २० वें शतक का नौवां उ० समाप्त ॥

—०—

दशम उद्देशक

[वर्णित विषय–सोपक्रमायुषी और निरुपक्रमायुषी—चौवीस दंडकीय जीव, जीव और उसका सामर्थ्य, कतिसंचित और अकतिसंचितादि जीव—विस्तृत विवेचन। प्रश्नोत्तर संख्या २५]

(प्रश्नोत्तर नं० ७७-१०१) जीव सोपक्रमायुषी[१] और निरुपक्रमायुषी दोनों प्रकारके हैं। नैरयिक निरुपक्रम आयुष्य वाले हैं। सोपक्रम आयुष्य वाले नहीं हैं। भवनवासी, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक निरुपक्रमायुषी हैं। पृथ्वीकायिक से मनुष्य पर्यन्त जीव दोनों प्रकारके हैं। नैरयिक आत्मोपक्रम द्वारा, परोपक्रम द्वारा और निरुपक्रम द्वारा उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त जानना चाहिये ॥६८४॥

नैरयिक आत्मोपक्रम द्वारा अथवा परोपक्रम द्वारा उद्वर्तन-मृत्यु प्राप्त नहीं करते परन्तु निरुपक्रम द्वारा उद्वर्तित होते हैं। भवनवासी, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक भी निरुपक्रम द्वारा उद्वर्तित होते हैं। ज्योतिष्कों और वैमानिकोंके लिये च्यवन शब्द प्रयोग करना चाहिये। पृथ्वीकायिकसे लेकर मनुष्य-पर्यन्त सर्व जीव तीनों प्रकारसे उद्वर्तित होते हैं। नैरयिक अपने सामर्थ्य द्वारा ही उत्पन्न होते हैं, मरते हैं परन्तु दूसरोंके सामर्थ्य द्वारा न उत्पन्न होते और न मरते हैं। इसी प्रकार अपने कर्मो-द्वारा तथा आत्मप्रयोग-द्वारा ही उत्पन्न होते तथा मरते हैं परन्तु दूसरोंके कर्मों तथा प्रयोगों द्वारा न मरते हैं और न उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार वैमानिक-पर्यन्त सर्व जीवोंके लिये जानना चाहिये ॥६८५॥

नैरयिक कतिसंचित—एक समय में संख्येय उत्पन्न, अकतिसंचित—एक समयमें असंख्येय उत्पन्न और अवक्तव्य संचित—एक समयमें एक ही समुत्पन्न भी हैं। क्योंकि जो नैरयिक नर्कगति में एक समयमें संख्येय रूप में प्रवेश करते हैं; वे कतिसंचित हैं। जो नैरयिक असंख्येयरूपमें प्रवेश करते हैं वे अकतिसंचित और

१—जो अप्राप्त समयमें आयुष्य क्षय करते हैं वे सोपक्रमायुषी इसके विपरीत निरुपक्रमायुषी हैं।

जो एक-एक करके प्रवेश करते हैं वे अवक्तव्यसंचित कहे जाते हैं। इस प्रकार पृथ्वी-कायिकादि एकेन्द्रियोंको छोड़कर वैमानिक-पर्यन्त जीवोंके लिये जानना चाहिये। पृथ्वीकायिक कतिसंचित तथा अवक्तव्यसंचित नहीं हैं परन्तु अकतिसंचित हैं। क्योंकि वे एक साथ असंख्येयरूपमें उत्पन्न होते हैं।

सिद्ध कतिसंचित और अवक्तव्यसंचित हैं, परन्तु अकतिसंचित नहीं। जो सिद्ध संख्येय रूपसे प्रविष्ट होते हैं, वे कतिसंचित हैं और जो सिद्ध एक-एक करके प्रवेश करते हैं वे अवक्तव्यसंचित हैं। कतिसंचित, अकतिसंचित और अवक्तव्य-संचित नैरयिकोंमें अवक्तव्यसंचित नैरयिक सबसे अल्प हैं। इनसे संख्येयगुणित कतिसंचित और कतिसंचितसे असंख्येय गुणित अकतिसंचित हैं। इसी प्रकार एकेन्द्रियको छोड़कर वैमानिक-पर्यन्त सर्व जीवोंका अल्पत्वबहुत्व समझना चाहिये। एकेन्द्रियोंमें अल्पत्वबहुत्व नहीं है। सिद्धोंमें कतिसंचित सिद्ध सबसे अल्प हैं; इनसे असंख्येयगुणित अवक्तव्यसंचित सिद्ध हैं।

नैरयिक एक षट्कसमर्जित—एक साथ छः उत्पन्न, एक नोषट्कसमर्जित—एक से पांच तक एक साथ समुत्पन्न, एक षट्क या एक नोषट्कसमर्जित, अनेक षट्कसमर्जित, अनेक षट्क और एक नोषट्कसमर्जित भी हैं। जो नैरयिक एक समयमें छः की संख्यामें प्रविष्ट होते हैं वे षट्कसमर्जित कहे जाते हैं। जो नैरयिक जघन्य एक दो या तीन व उत्कृष्ट पांचकी संख्यामें प्रविष्ट होते हैं, उन्हें नोषट्क-समर्जित कहा जाता है। जो नैरयिक एक षट्कसंख्यासे और अन्य एक, दो, तीन या पांचकी संख्यामें प्रविष्ट होते हैं उन्हें एक षट्कसमर्जित और एक नोषट्कसम-र्जित कहा जाता है। शेष भी इसी प्रकार समझने चाहियें।

एकेन्द्रियको छोड़कर वैमानिक-पर्यन्त सर्व जीवों व सिद्धोंके लिये भी इसी प्रकार समझना चाहिये। पृथ्वीकायादि एकेन्द्रिय जीव एक षट्कसमर्जित या एक नोषट्कसमर्जित नहीं हैं, परन्तु अनेक षट्कसमर्जित या अनेक षट्क तथा अनेक नोषट्कसमर्जित हैं।

इसी प्रकार वनस्पतिकायिकोंके लिये जानना चाहिये। (१) षट्कसमर्जित, (२) नोषट्कसमर्जित, (३) एक षट्क और एक नोषट्कसमर्जित, (४) अनेक षट्कसमर्जित, (५) अनेक षट्क तथा नोषट्कसमर्जित नैरयिकोंमें एक षट्कसम-र्जित नैरयिक सबसे अल्प हैं; इनसे नोषट्कसमर्जित नैरयिक संख्येयगुणित हैं; इनसे एक षट्क और नोषट्कसमर्जित नैरयिक संख्येयगुणित हैं; इनसे अनेक षट्कसमर्जित नैरयिक असंख्येयगुणित अधिक हैं; इनसे अनेक षट्क व नोषट्क नैरयिक संख्येयगुणित हैं।

इस प्रकार एकेन्द्रिय को छोड़कर वैमानिक-पर्यन्त सर्व जीवोंके लिये जानना चाहिये। पृथ्वीकायादि एकेन्द्रिय जीवोंमें अनेक षट्कसमर्जित सबसे अल्प हैं। इनसे

अनेक पट्क तथा नोपट्कसमर्जित संख्येयगुणित हैं। सिद्धोंमें अनेक पट्क तथा नोपट्कसमर्जित सिद्ध सबसे अल्प हैं। इनसे एक पट्क तथा नोपट्कसमर्जित सिद्ध संख्येयगुणित हैं; इनसे एक पट्क तथा नोपट्कसमर्जित सिद्ध संख्येयगुणित हैं; इनसे पट्कसमर्जित सिद्ध संख्येयगुणित हैं और इनसे नोपट्कसमर्जित सिद्ध संख्येय-गुणित हैं।

षट्कसमर्जित और नोषट्कसमर्जित के भंगोंके अनुसार ही द्वादशसमर्जित–एक समयमें बारहकी संख्यामें समर्जित, नोद्वादशसमर्जित–एकसे लेकर ग्यारह समुत्पन्न, चौरासी समर्जित–एक साथ चौरासीकी संख्यामें प्रविष्ट और नोचौरासी-समर्जित–एकसे तिरासी तक प्रविष्टके भंग जानने चाहियें। इसी प्रकार ही सिद्ध पर्यन्त सर्व जीवोंकी विशेषाधिकता जाननी चाहिये। मात्र पट्कके स्थान पर द्वादशसमर्जित या चौरासीसमर्जित शब्द प्रयोग करना चाहिये ॥६८६॥

॥ २० वें शतक का १० वां उद्देशक समाप्त ॥

॥ बीसवां शतक समाप्त ॥

इक्कीसवां शतक

(वर्णित विषय—शालि, मटर, अलसी, वांस, इक्षु, दर्भ, अभ्र (वनस्पति), तुलसी ये आठ वर्ग, प्रत्येक वर्ग में दस उद्देशक)

प्रथम वर्ग प्रथम उद्देशक

(प्रश्नोत्तर संख्या ८) (प्र०१-२) राजगृहमें यावत् इस प्रकार पूछा–भगवन् ! शालि, व्रीहि, गेहूं यावत् जवजव इन सब के मूल रूप में जो जीव उत्पन्न होते हैं, वे कहां से आकर उत्पन्न होते हैं ? क्या नैरयिकों···यावत् देवों···हैं ? व्युत्क्रान्ति पद में कहे के समान उपपात जानना। विशेष देवगति से आकर···उत्पन्न नहीं होते।···वे जीव एक समय में कितने उत्पन्न होते हैं ?···जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट संख्यात या असंख्यात उत्पन्न···। उनका अपहार उत्पलोद्देशक में कहे हुए के अनुसार जानना।

(प्र०३-५)···उन जीवों के शरीर की कितनी विशाल अवगाहना कही है ? ···जघन्य अंगुल का असंख्यातवां भाग उत्कृष्ट धनुषपृथक्त्व—दो से नव धनुप तक कही है।···क्या वे ज्ञानावरणीय कर्मके बंधक हैं या अवंधक हैं ?···उत्पलोद्देशक समान। इसी प्रकार वेदक, उदय और उदीरणा भी।···क्या वे जीव कृष्णलेश्या वाले, नी०, कापोत० होते हैं ?···छव्वीस भांगे। दृष्टि यावत् इन्द्रिय उत्पलोद्देशक समान।

(प्र०६-८)···शालि···जवजव इन सब के मूल का जीव काल से कितने समय तक रहता है ?···जघन्य अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट असंख्यात काल।···शालि

यावत् जीव पृथ्वीकायिक में उत्पन्न हो फिर शालि···जवजव के मूल रूप में उत्पन्न हो, इस प्रकार कितने काल तक गमनागमन करे ?···उत्पलोद्देशक समान यावत् मनुष्य तक। आहार भी उसी तरह। स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट वर्षपृथक्त्व (दो वर्ष से नौ वर्ष तक) समझना। समुद्घात, समवहत और उद्वर्तना उत्पलोद्देशक समान।··· सर्व प्राण, यावत् सत्व शालि···रूप में पहले उत्पन्न हुए हैं।···अनेक वार अथवा अनंत वार। हे भगवन् !······हैं ॥६८७॥

॥ २१ वें शतक के प्रथम वर्ग का पहला उद्देशक समाप्त ॥

—o—

प्रथम वर्ग २-१० उद्देशक

भगवन् ! शालि, व्रीहि यावत् जवजव इन सब के कन्द रूप में······मूल उद्देशकवत्। विशेष यह कि मूल के स्थान पर कन्द कहना। हे······(२१-२)। इसी प्रकार स्कंध, त्वचा, शाखा, कोंपल और पत्रसंबंधी एक २ उद्देशक कहना मूलउ० वत् (२१-७)। इसी प्रकार पुष्पोद्देशक भी, विशेष पुष्प में देवता भी उत्पन्न होते हैं। उत्पलोद्देशक समान चार लेश्या, ८० भांगे। अवगाहना जघन्य अंगुल का असंख्यातवां भाग उत्कृष्ट अंगुलपृथक्त्व-दो से नौ अंगुल, शेष उसी तरह···(२१-८)। पुष्पोद्देशक के समान फल और बीज संबंधी १-१ उद्देशक कहना (२१-९-१०)। इस प्रकार ये दस उद्देशक जानना।

॥ २१ वें शतक का प्रथम वर्ग समाप्त ॥

———

द्वितीय वर्ग

भगवन् ! मटर, मसूर, तिल, मूंग, उड़द, वाल, कुलथी, आलिसंदक, सटिन और पलिमंथक-चना इन सब के मूल रूप में···हैं ? पूर्वोक्तरीति से मूलादिक दस उद्देशक जानना। समस्त वर्णन शालि के समान।

॥ २१ वें शतक का द्वितीय वर्ग समाप्त ॥

———

तृतीय वर्ग

···अलसी, कुसुंब, कोद्रव, कांगनी, राल, तुवर, कोदूसा, सण, सरसव और मूलक बीज इनके मूलरूप में···?···शालि उद्देशक समान मूलादिक १० उद्देशक निरवशेष रूपसे कहने।

॥ २१ वें शतक का तृतीय वर्ग समाप्त ॥

———

चतुर्थ वर्ग

······वांस, वेणु, कनक, कर्कावंश, चारुवंश, दंडा, कुडा, विमा, चंडा, वेणुका और कल्याणी······शालि वर्ग समान मूलादिक दस उद्देशक जानना। विशेष यह कि इनमें देव उत्पन्न नहीं होते। तीन लेश्याएं छव्वीस भांगे। शेष पूर्ववत्।

॥ २१ वें शतक का चतुर्थ वर्ग समाप्त ॥

पांचवां वर्ग

······इक्षु, इक्षुवाटिका, वीरण, इक्कड, भमास, सोंठ, सरकंडा, वेंत, तिमिर, सतपोरग और नल(ड)······। वंश वर्ग समान मूलादिक दस उद्देशक। विशेष स्कंधोद्देशकमें 'देव भी उत्पन्न होते हैं, उनके चार लेश्याएं होती हैं' ऐसा कहना। शेष पूर्ववत्।

॥ २१ वें शतक का पंचम वर्ग समाप्त ॥

छठा वर्ग

······सेडिय, भंति(डि)य, दर्भ, कोंतिय, दर्भकुश, पर्वक, पोदेइल (पोइदइल), अर्जुन (अंजन), आषाढ़क, रोहितक, समु, अ(त)वरवीर, भुस, एरंड, कुरुकुंद, करकर, सुंठ, विभंग, मधुरप(व)यण, थुरग, शिल्पिक और सुंकलितृण······वंश वर्ग समान मूलादिक दस उद्देशक।

॥ २१ वें शतक का छठा वर्ग समाप्त ॥

सातवां वर्ग

······अभ्ररुह, वायण, हरितक, तंदुल जौ, तृण, वत्थुल, पोरक, मर्जारक, विल्लि (चिल्लि), पालक्क, दगपिप्पली, दर्वी, स्वस्तिक, शाकमंडुक्कि, मूलक, सरसों, अंबिलशाक, जियंतग······। वंशवर्ग समान मूलादिक १० उ०।

॥ २१ वें शतक का सातवां वर्ग समाप्त ॥

आठवां वर्ग

भगवन्! तुलसी, कृष्ण, दराल, फणेज्जा, अज्जा, चूयणा, चोरा, जीरा, दमणा, मरुया, इंदीवर और शतपुष्प······। वंश वर्ग समान मूलादिक दस उद्देशक। इस प्रकार आठ वर्गोंमें ८० उद्देशक होते हैं ॥६८८॥

॥ २१ वें शतक का आठवां वर्ग समाप्त ॥

॥ इक्कीसवां शतक समाप्त ॥

बाईसवां शतक प्रथम वर्ग

[वर्णित विषय—ताल, एकवीज, वहुवीज, गुच्छ, गुल्म, वल्लि, दस २ उद्देशक के ६ वर्ग कुल साठ उद्देशक]

……भगवन् ! ताड, तमाल, तक्कलि, तेतलि, साल, सरल-देवदार, सारगलल यावत् केतकी (केवड़ा), केला, कंदली, चर्मवृक्ष, गुंदवृक्ष, हिंगुवृक्ष, लवंगवृक्ष, सुपारीका वृक्ष, खजूरी व नालिकेरी, इन सवके मूलरूपमें जो जीव उत्पन्न होते हैं, वे कहां से आकर उत्पन्न होते हैं ? शालिवर्ग–समान मूलादिक दस उद्देशक कहना। परन्तु उसमें विशेषता यह है कि इन वृक्षों के मूल, कंद, स्कंध, छाल और शाखा इन पांच उद्देशकोंमें 'देव उत्पन्न नहीं होते'। तीन लेश्याएं, स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट दस हजार वर्ष, वाकी पांच उद्देशकों में 'देव उत्पन्न होते हैं,' वहां चार लेश्याएं, स्थिति-जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट वर्षपृथक्त्व–दो वर्षसे नौ वर्ष तक। अवगाहना–शरीरप्रमाण, मूल और कन्दकी धनुषपृथक्त्व, तथा शाखाकी गाउपृथक्त्व, प्रवाल और पत्रकी धनुषपृथक्त्व, पुष्पकी हस्तपृथक्त्व और वीजकी अंगुलपृथक्त्व उत्कृष्ट अवगाहना होती है। इन सवकी जघन्य अवगाहना अंगुलका असंख्यातवां भाग जानें। शेष शालिवर्गवत्। इस प्रकार १० उद्देशक कहने।

॥ २२ वें शतक का प्रथम वर्ग समाप्त ॥

———

द्वितीय वर्ग

……नीम, आम, जामुन, कोशंव, ता(सा)ल, अंकोल्ल, पीलु, सेलु, सल्लकी, मोचकी, मालुक, वकुल, पलाश, करंज, पुत्रंजीवक, अरिष्ट-अरोठा, वहेड़ा, हरड़, भिलावा, उंवेभरिका, क्षीरिणी, धातकी, प्रियाल, पूतिनिंव (करंज), सेण्हय, पासिय, सीसम, अतसी (असन), नागकेसर, नागवृक्ष, श्रीपर्णी (सेवन), और अशोक……। ताडवर्गवत् मूलादिक दस उद्देशक।

॥ २२ वें शतक का द्वितीय वर्ग समाप्त ॥

———

तृतीय वर्ग

…अगस्तिक, तिंदुक, वेर, कपित्थ, अंवाडग, विजौरा, विल्व, आंवला, फणस, दाडिम, पीपल, उंवर, वड़, न्यग्रोध, नंदिवृक्ष, पीपर, सतर, प्लक्षवृक्ष, कादुंवरी, कुस्तुंभरि, देवदालि, तिलक, लकुच, छत्रौघ, शिरिष, सप्तपर्ण, दधिपर्ण, लोध्रक, धव, चंदन, अर्जुन, नीप, कुटज और कदम्व……। ताडवर्गवत्, मूल से वीज तक दस उद्देशक जानना।

॥ २२ वें शतक का तृतीय वर्ग समाप्त ॥

चतुर्थ वर्ग

…बैंगन, अल्लइ, पोंडइ…प्रज्ञापना सूत्रकी गाथानुसार यावत् गंज, पाटला, वासी, अंकोल्ल……वंशवर्गवत्, मूलसे बीजपर्यंत दस उद्देशक जानें।

॥ २२ वें शतक का चतुर्थ वर्ग समाप्त ॥

—०—

पंचम वर्ग

…सिरियक, नवमालिका, कोरंटक, बंधुजीवक, मणोज्जा० प्रज्ञापना प्रथम पद गाथानुसार यावत् नलिनी, कुंद, महाजाति……। शालिवर्गवत् मूलादिक दस उद्देशक समग्र।

॥ २२ वें शतक का पांचवां वर्ग समाप्त ॥

—०—

छठा वर्ग

…… पूसफलिका, कालिंगी, तूंबी, त्रपुषी-ककड़ी, एलवालुंकी……प्र० गा० ताडवर्गवत् यावत् दधिफोल्लइ, काकलि, सोकलि अर्क बोंदी……ताडवर्गवत् मूलादिक दस उद्देशक संपूर्ण कहने। विशेष फलोद्देशकमें अवगाहना जघन्य अंगुलका असंख्यातवां भाग उत्कृष्ट धनुष पृथक्त्व-दो से नौ धनुष तक। सब जगह स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त उत्कृष्ट दो से नौ वर्ष तक। शेष पूर्ववत्। इस प्रकार छ वर्गों के साठ उद्देशक होते हैं ॥६८९॥

॥ २२ वें शतक का छठा वर्ग समाप्त ॥

॥ बाईसवां शतक समाप्त ॥

—०—

तेईसवां शतक

(वर्णित विषय—आलुक, लोही, अवक, पाठा, माषपर्णी—वल्ली, पांच वर्गोंके दस २ उद्देशक कुल ५० उ०)

प्रथम वर्ग

…भगवन्! आलू, मूली, अदरख, हल्दी, रुरु, कंडरिक, जीरु, क्षीरविदारी-कन्द, किट्ठि, कुंदु, कृष्ण, कडसु, मधु, पयलइ, मधुसिंगी, निरुहा, सर्पसुगंधा, छिन्न-रुहा, बीजरुहा इनके मूल रूप में जो जीव उत्पन्न होते हैं, वे कहां से आकर उत्पन्न होते हैं?…वंशवर्गवत् मूलादिक दस उद्देशक। विशेष उनका परिमाण जघन्य एक समय में एक, दो या तीन और उत्कृष्ट संख्यात, असंख्यात और अनन्त आकर उत्पन्न होते हैं। अपहार—जो वे अनंत जीव समय २ अपहरित किए जायं तो

अनंत उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी कालमें अपहरित हों। परन्तु ऐसा नहीं होना। उनकी जघन्य व उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्तकी है। शेष उसी प्रकार।

॥ २३ वें शतक का प्रथम वर्ग समाप्त ॥

—o—

द्वितीय वर्ग

···लोही, नीहू, थीहू, थिभगा, अश्वकर्णी, सिंहकर्णी, सीउंढी, मुसुंढी,······। आलुवर्गवत् मूलादिक दस उद्देशक कहना। विशेष अवगाहना ताडवर्गवत्, शेष उसी प्रकार······।

॥ २३ वें शतक का द्वितीय वर्ग समाप्त ॥

—o—

तृतीय वर्ग

···आय, काय, कुहुणा, कुंदुरुक्क, उव्वेहलिय, सफा, सेज्जा,, छत्रा, वंशानिका, कुमारी······। सब आलुवर्गवत् मूलादिक दस उद्देशक। विशेष अवगाहना ताडवर्गवत्।

॥ २३ वें शतक का तृतीय वर्ग समाप्त ॥

—o—

चतुर्थ वर्ग

···पाठा, मृगवालुंकी, मधुररसा, राजवल्ली, पद्मा, मोढरी, दंती, चंडी···। आलुवर्गवत् मूलादिक १० उद्देशक। विशेष शरीरप्रमाण वल्लीवत्। शेष उसी प्रकार······।

॥ २३ वें शतक का चतुर्थ वर्ग समाप्त ॥

—o—

पंचम वर्ग

···मापपर्णी, मुद्गपर्णी, जीवक, सरसव (?), करेणुक, काकोली, क्षीरकाकोली, भंगी, णही, किमिराशि, भद्रमुस्था, लांगली, पयोद, किण्णापउलय, पाठ (हढ), हरेणुका, लोही······। आलुवर्गवत् मूलादिक दस उद्देशक कहना। सर्वत्र देव नहीं उत्पन्न होते। पहली तीन लेश्याएं······॥६६०॥

॥ २३ वें शतक का पांचवां वर्ग समाप्त ॥

॥ तेईसवां शतक समाप्त ॥

—o—

चौबीसवां शतक

(उद्देशकसंग्रह—उपपात, परिमाण, संघयण, ऊंचाई, आकार, लेश्या, दृष्टि, ज्ञान—अज्ञान, योग, उपयोग, संज्ञा, कषाय, इन्द्रिय, समुद्घात, वेदना, वेद, आयुष्य, अध्यवसाय, अनुबंध, कायसंवेध, ये २० द्वार प्रत्येक दण्डक आश्रयी। २४ दण्डकों के २४ उद्देशक)

प्रथम उद्देशक

(प्र०१-३) राजगृह नगर में···यावत् पूछा-भगवन् ! नैरयिक कहां से आकर उत्पन्न होते हैं ? क्या नैरयिकसे आकर···? तिर्यच···मनुष्य···देवोंसे···? गौतम ! नैरयिक से···उत्पन्न नहीं होते। देव···नहीं होते। पर तिर्यचयोनिकों और मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं।···यदि तिर्यचयोनिक···एकेन्द्रिय···बेइंद्रिय···ते०··· चउरिन्द्रिय···पं०ति०·· उत्पन्न होते हैं ? गौतम ! एके०, बे०, ते०, च० से···नहीं होते परन्तु पंचेन्द्रिय तिर्यचयोनिकों से···उत्पन्न होते हैं।······१ संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यचयोनिक और असंज्ञी से···।

(प्र०४-१२)···वे जलचर, स्थलचर, खेचरों से आकर उत्पन्न होते हैं। ···। वे पर्याप्त जलचर, स्थ०, खे०···होते हैं। अपर्याप्त० से नहीं।···पर्याप्त असंज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यचयोनिक जीव जो नैरयिकोंमें उत्पन्न होता है, वह कौन सी नरक में उत्पन्न होता है ?···वह पहली रत्नप्रभा नरक ···है।···वह जघन्य दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवें भाग की स्थिति वाले नैरयिकों में उत्पन्न होता है।······जघन्य एक, दो या तीन उत्कृष्ट संख्यात या असंख्यात उत्पन्न होते हैं।······वे असंज्ञी पं० तिर्यच सेवार्त संघयण वाले होते हैं।···उनकी शरीरावगाहना जघन्य अंगुल का असंख्यातवां भाग और उत्कृष्ट १ हजार योजन की होती है।······उनका शरीर हुंडकसंस्थान संस्थित होता है।····· उनमें तीन लेश्याएं होती हैं···कृष्णलेश्या, नील० और कापोत०।

(प्र०१३-२३)······वे सम्यगदृष्टि या सम्यग्मिथ्यादृष्टि नहीं होते, पर मिथ्यादृष्टि होते हैं।······वे ज्ञानी नहीं पर अज्ञानी होते हैं। उन्हें दो अज्ञान अवश्य होते हैं···मति अज्ञान और श्रुत अज्ञान।······वे मनयोग वाले नहीं होते पर वचन योग और काययोग वाले होते हैं।······वे साकार और अनाकार दोनों उपयोग वाले···हैं।

···वे चार संज्ञा वाले होते हैं···आहारसंज्ञा, भय०, मै० और परिग्रह०। ······वे चार कषायवाले······क्रोधकषाय, मान०, माया० और लोभ०।······ वे पांच इन्द्रिय वाले·········श्रोत्रेन्द्रिय यावत् स्पर्शेन्द्रिय।······वे तीन समुद्घात

---

१ पृच्छा पूर्ववत् सर्वत्र।

वाले······वेदना समुद्घात, कषाय०, मारणान्तिक० ।······वे सुख-दुःख दोनों का अनुभव करते हैं।······वे स्त्रीवेद व पुरुषवेद वाले नहीं होते, परन्तु नपुंसकवेद वाले होते हैं।······उनकी स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त उत्कृष्ट पूर्वकोटि ।······

(प्र०२४-२९)···उनके असंख्यात अध्यवसायस्थान कहे हैं।······वे अध्य० प्रशस्त भी होते हैं, अप्रशस्त भी ।······वे जीव पर्याप्त असंज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यच-योनिक रूप में जघन्य अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट पूर्वकोटि तक रहते हैं।······वे भवादेश-भवकी अपेक्षा दो भव, और कालकी अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक दस हजार वर्ष तथा उत्कृष्ट पूर्वकोटि अधिक पल्योपम का असंख्यातवां भाग, इतना काल सेवन करते हैं—गमनागमन करते हैं।

भगवन् ! प० अ० पं० तिर्यचयोनिक जीव जो रत्नप्रभा पृथिवीमें जघन्य काल की स्थिति वाले नैरयिकों में उत्पन्न होने योग्य है, वह कितने वर्ष की स्थिति वाले नैरयिकों में उत्पन्न हो ?···वह जघन्य दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट भी दस हजार वर्ष की स्थिति वाले नैरयिकों में उत्पन्न होता है। भगवन् ! वे (असंज्ञी पंचेन्द्रियतिर्यच) एक समय में कितने उत्पन्न होते हैं। गौतम !··· अनुबन्ध तक समस्त वक्तव्यता पूर्ववत् ।

(प्र० ३०-३३) भगवन् ! पर्याप्त असंज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यचयोनिक होकर जघन्य स्थिति वाले रत्नप्रभाके नैरयिक रूपमें उत्पन्न हो और पुनः प० अ० पं० ति० हो इस प्रकार कितने समय तक गति आगति करता है ?···भव की अपेक्षा दो भव और काल की अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक दस हजार वर्ष तथा उत्कृष्ट पूर्वकोटि अधिक दस हजार वर्ष इतना काल सेवन करता है···गति आगति ··· । भगवन् ! प० अ० पं० तिर्यचयोनिक जो उत्कृष्ट स्थिति वाले नैरयिकोंमें उत्पन्न होने योग्य है, वह कितने वर्ष की स्थिति वाले नारकोंमें उत्पन्न··· ?··· वह जघन्य तथा उत्कृष्ट पल्योपमके असंख्यातवें भाग की स्थिति वाले नै० में उत्पन्न होता है। भगवन् ! वे जीव एक समय में कितने उत्पन्न···इत्यादि शेष समस्त वक्तव्यता अनुबंध तक पूर्ववत् ।···भवकी अपेक्षा दो भव और कालकी अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक पल्योपम का असंख्यातवां भाग तथा उत्कृष्ट पूर्व-कोटि अधिक पल्योपम का असंख्यातवां भाग, इतने काल यावत् गमनागमन करे।

(प्र० ३४-३६) भगवन् ! जघन्य स्थिति वाला प० अ० तिर्यचयोनिक जीव जो रत्नप्रभा पृथिवीके नैरयिकोंमें उत्पन्न होने योग्य है, वह कितने वर्ष की स्थिति वाले नैरयिकोंमें उत्पन्न हो ? गौतम ! जघन्य दस हजार वर्षकी स्थिति वाले और उत्कृष्ट पल्योपमके असंख्यातवें भाग की स्थिति वाले नैरयिकों में उत्पन्न··· । ···जघन्य आयुष्य वाले अ० पं० तिर्यचयोनिक एक समय में कितने उत्पन्न···

इत्यादि सारी वक्तव्यता पूर्ववत्। परन्तु उसमें आयुष्य, अध्यवसाय और अनुबंध संबंधी विशेषता इस प्रकार है—आयुष्य जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है।··· वे असंख्यात अध्यवसाय वाले होते हैं। वे अध्यवसाय प्रशस्त नहीं होते, अप्रशस्त होते हैं। अनुबन्ध अन्तर्मुहूर्त का है। शेप पूर्ववत्।···भवकी अपेक्षा दो भव और काल की अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक दस हजार वर्ष, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त अधिक पल्योपमका असंख्यातवां भाग, इतने काल यावत् गमनागमन करे।

(प्र० ३७-४२) भगवन्! जघन्य आयुष्य वाला प० अ० पं० तिर्यचयोनिक जीव जो जघन्य आयुष्य वाले रत्नप्रभा पृथिवीके नैरयिकोंमें उत्पन्न होने योग्य है, वह कितनी आयु वाले नैरयिकों में उत्पन्न होता है?···जघन्य तथा उत्कृष्ट दस हजार वर्षकी आयु वाले नैरयिकोंमें उत्पन्न हो। वे एक समय में कितने उत्पन्न होते हैं···इत्यादि समस्त वक्तव्यता पूर्ववत् जानें। यावत् भवादेशसे दो भव और कालादेशसे जघन्य तथा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त अधिक दस हजार वर्ष इतने काल यावत् गमनागमन करे।

भगवन्! जघन्य स्थिति वाला प०···जीव जो उत्कृष्ट स्थिति वाले रत्नप्रभा···योग्य है···वह कितने वर्ष की स्थिति वाले नैरयिकोंमें उत्पन्न हो?··· जघन्य तथा उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवें भागकी स्थिति वाले नैरयिकोंमें उत्पन्न हो। भगवन्! वे एक समयमें कितने उत्पन्न···इत्यादि सारी वक्तव्यता पूर्ववत् जानें। आयुष्य, अध्यवसाय तथा अनुबंध-सम्बन्धी तीन विशेषताएं पूर्ववत्।···भवकी अपेक्षा दो भव, काल की अपेक्षा जघन्य तथा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त अधिक पल्योपम का असंख्यातवां भाग, इतने काल यावत् गमनागमन करे।

(प्र० ४३-४५) भगवन्! उत्कृष्ट आयु वाला प०···जीव जो रत्नप्रभा··· योग्य है···वह···उत्पन्न हो?···जघन्य दस हजार वर्ष, उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवें भाग की स्थिति वाले नैरयिकोंमें उत्पन्न हो।···वे जीव एक समयमें कितने उत्पन्न हों···इत्यादि समस्त वक्तव्यता सामान्यपाठानुसार, विशेष स्थिति जघन्य व उत्कृष्ट पूर्वकोटि वर्ष की, इसी प्रकार अनुबंध भी, शेष पूर्ववत्।··· यावत् दो भव तथा काल की अपेक्षा जघन्य दस हजार वर्ष अधिक पूर्वकोटि, उत्कृष्ट पूर्वकोटि अधिक पल्योपम का असंख्यातवां भाग, यावत् गमनागमन करे।

(प्र०४६-५१)···उत्कृष्ट स्थिति वाला···जो जघन्य स्थिति वाले रत्नप्रभा··· योग्य है···वह···उत्पन्न हो?···जघन्य एवं उत्कृष्ट दस हजार वर्ष की स्थिति वाले नैरयिकोंमें उत्पन्न हो।···कितने उत्पन्न···शेष समस्त यावत् अनुबंध तक सातवें गमकवत्।···भव की अपेक्षा दो भव, काल की अपेक्षा जघन्य तथा उत्कृष्ट पूर्वकोटि अधिक दस हजार वर्ष-इतने काल यावत् गमनागमन करे।···उत्कृष्ट स्थिति वाला···जो उत्कृष्ट स्थिति वाले रत्नप्रभा···उत्पन्न हो?···जघन्य तथा

उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवें भाग की स्थिति वाले नैरयिकों में उत्पन्न हो। ···एक समयमें कितने उत्पन्न हों—इत्यादि सातवें गमकवत्।···भवकी अपेक्षा दो भव तथा काल की अपेक्षा जघन्य एवं उत्कृष्ट पूर्वकोटि अधिक पल्योपम का असंख्यातवां भाग, इतना काल सेवे यावत् गतिआगति करे। इस प्रकार औघिक-सामान्य तीन गम, जघन्यकालस्थितिक सम्बन्धी तीन गम और उत्कृष्ट-काल स्थितिक सम्बन्धी तीन गम–ये सब मिल कर नव गम होते हैं ॥६९१-६९२॥

(प्र० ५२-५४) भगवन्! जो [नैरयिक] संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिकों से आकर उत्पन्न होता है, तो क्या संख्यात वर्षके आयुष्य वाले संज्ञी पं०···होता है या असंख्यात वर्ष···होता है?···वह संख्यात वर्ष···से आकर उत्पन्न होता है, असंख्यात···आकर उत्पन्न नहीं होता।···यावत् गौतम! वह जलचरोंसे आकर उत्पन्न हो इत्यादि समस्त वर्णन असंज्ञीवत्। यावत् पर्याप्त से आकर उत्पन्न हो, पर अपर्याप्तसे आकर उत्पन्न नहीं होता। भगवन्! पर्याप्त संख्यात वर्ष के आयुष्य वाले संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यचयोनिक जो नैरयिकमें उत्पन्न होने योग्य हैं वे कितनी नरकोंमें उत्पन्न होते हैं?···वे सातों नरकोंमें उत्पन्न होते हैं···रत्नप्रभा यावत् अध:सप्तमपृथिवी।

(प्र० ५५-६०) भगवन्! पर्याप्त संख्यात वर्षके आयु वाले संज्ञी-पंचेन्द्रिय-तिर्यंच-योनिक जीव जो रत्नप्रभा पृथिवीके नैरयिकों में उत्पन्न होने योग्य हैं, वे कितने वर्षकी स्थिति वाले नैरयिकोंमें उत्पन्न होते हैं? गौतम! जघन्य दस हजार वर्षकी स्थिति वाले और उत्कृष्ट सागरोपम की स्थिति वाले नैरयिकों में उत्पन्न होते हैं। भगवन्! वे एक समयमें कितने उत्पन्न···इत्यादि सब असंज्ञीकी तरह जानें।······उनके शरीर छहों संघयण वाले होते हैं···–वज्र ऋषभनाराच, ऋषभ० यावत् छेवट्ठ०। शरीर की अवगाहना असंज्ञीवत् जघन्य अंगुलका असंख्यातवां भाग एवं उत्कृष्ट १ हजार योजन।·········उनके शरीर छहों संस्थान वाले होते हैं···–समचतुरस्र० यावत् हुंडक०।···उनके ६ लेश्याएं होती हैं···–कृष्णलेश्या यावत् शुक्ल०। दृष्टियां तीन होती हैं। तथा तीन ज्ञान और तीन अज्ञान विकल्पसे होते हैं। शेष असंज्ञीवत् यावत् अनुबंध तक जानें। विशेष यह कि उनको पहले पांच समुद्घात होते हैं, वेद तीन होते हैं। शेष सारा पूर्ववत् यावत्···भवकी अपेक्षा जघन्य दो भव उत्कृष्ट आठ भव तक, तथा काल की अपेक्षा जघन्य अन्त-र्मुहूर्त अधिक दस हजार वर्ष तथा उत्कृष्ट चार पूर्वकोटी अधिक चार सागरोपम–इतना काल सेवन···यावत् गमनागमन करे।

(प्र० ६१–६३) भगवन्! पर्याप्त संख्यात·····जीव जो जघन्य आयु वाले रत्नप्रभा········योग्य है वह कितने वर्षकी स्थिति वाले नैरयिकमें उत्पन्न हो?···जघन्य तथा उत्कृष्ट दस हजार वर्षकी स्थिति वाले नैरयिकों में यावत् उत्पन्न हो। भगवन्! वे जीव एक समयमें कितने उत्पन्न हों

इत्यादि प्रश्न···पूर्वोक्त प्रथम गमक सम्पूर्ण कहना यावत् कालादेशसे जघन्य अन्त-मुहूर्त अधिक दस हजार वर्ष उत्कृष्ट चालीस हजार वर्ष अधिक चार पूर्वकोटी इतना काल सेवन करे यावत् गमनागमन करे। वह उत्कृष्ट स्थिति वाले रत्नप्रभा नैरयिकोंमें उत्पन्न हो तो जघन्य सागरोपम स्थिति वाले उत्कृष्ट सागरोपम स्थिति वाले नैरयिकोंमें उत्पन्न हो। शेष परिमाण से लगाकर भवादेश तक पूर्वोक्त प्रथम गमकवत् जानना यावत् कालकी अपेक्षा जघन्य अन्तमुहूर्त अधिक सागरोपम उत्कृष्ट चार पूर्वकोटी अधिक चार सागरोपम—इतना काल सेवे यावत् गमनागमन करे।

(प्र० ६४-६५) भगवन्! जघन्य स्थिति वाला पर्याप्त संख्यात वर्षकी आयु वाला संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यचयोनिक जीव जो रत्नप्रभा···योग्य है वह कितने वर्ष···नैरयिकमें उत्पन्न हो?···जघन्य दस हजार वर्ष उत्कृष्ट सागरोपम स्थिति वाले नैरयिकोंमें उत्पन्न हो।···एक समयमें कितने उत्पन्न हों···इत्यादि सारी वक्तव्यता प्रथमगमकवत्। विशेष १. उनके शरीरकी ऊंचाई जघन्य अंगुल का असंख्यातवां भाग, उत्कृष्ट धनुपपृथक्त्व—दो से नौ धनुष तक जानना। २. उनके पहली तीन लेश्याएं होती हैं। ३. वे सम्यग्दृष्टि या मिश्रदृष्टि नहीं होते, मिथ्यादृष्टि होते हैं। ४. वे ज्ञानी नहीं होते, पर दो अज्ञान वाले होते हैं। ५. उनको पहले ३ समुद्घात होते हैं। ६-७-८. आयुष्य अध्यवसाय और अनुबंध असंज्ञीवत्। शेष प्रथम गमक समान यावत्—काल की अपेक्षा अन्तमुहूर्त अधिक दस हजार वर्ष, उत्कृष्ट चार अन्तमुहूर्त अधिक चार सागरोपम—इतने काल यावत्—गमना-गमन करे।

(प्र० ६६-६७) वह जघन्य कालकी स्थिति वाले रत्नप्रभा नैरयिकमें उत्पन्न हो तो जघन्य तथा उत्कृष्ट दस हजार वर्ष की स्थिति वाले नैरयिकों में उत्पन्न हो। भगवन्! वे जीव एक समय में कितने उत्पन्न हों इत्यादिके सम्बन्धमें संपूर्ण चौथा गम कहना यावत्—काल की अपेक्षा जघन्य अन्तमुहूर्त अधिक दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट चार अन्तमुहूर्त अधिक ४० हजार वर्ष—इतना काल सेवे, यावत्—गमनागमन करे। वह उत्कृष्ट काल की···तो जघन्य तथा उत्कृष्ट सागरोपम स्थिति वाले नैरयिकोंमें उत्पन्न हो। भगवन्! वे जीव एक समयमें कितने उत्पन्न हों—इत्यादि चौथा गम सम्पूर्ण कहना। यावत् कालकी अपेक्षा जघन्य अन्तमुहूर्त अधिक सागरोपम, उत्कृष्ट चार अन्तमुहूर्त अधिक चार सागरोपम यावत् गमनागमन करे।

(प्र० ६८-६९) भगवन्! उत्कृष्ट स्थिति वाला···योग्य है, वह कितने वर्ष की स्थिति वाले नैरयिकोमें उत्पन्न हो?···जघन्य दस हजार वर्ष की तथा उत्कृष्ट एक सागरोपमकी स्थिति वाले नैरयिकोंमें उत्पन्न हो। भगवन्! वे जीव एक समयमें कितने उत्पन्न हों—इत्यादि परिमाणसे लेकर भवादेश तक वक्तव्यता

प्रथम गमवत्। विशेष—स्थिति जघन्य एवं उत्कृष्ट पूर्वकोटि वर्ष, इसी प्रकार अनुबंध भी जानना। शेष पूर्ववत्। तथा कालकी अपेक्षा जघन्य दस हजार वर्ष अधिक पूर्वकोटि वर्ष, उत्कृष्ट चार पूर्वकोटी अधिक चार सागरोपम यावत् गमनागमन करे।

(प्र० ७०-७३) जो वह जघन्य स्थिति वाले रत्नप्रभा पृथिवीके नैरयिकोंमें उत्पन्न हो तो वह जघन्य एवं उत्कृष्ट दस हजार वर्ष की स्थिति वाले नैरयिकमें उत्पन्न हो। भगवन्! वे जीव एक समयमें कितने···इत्यादि भवादेश तक सातवां गम कहना, कालकी अपेक्षा जघन्य दस हजार वर्ष अधिक पूर्वकोटी वर्ष एवं उत्कृष्ट ४० हजार अधिक चार पूर्वकोटी वर्ष—इतने काल यावत् गमनागमन करे। भगवन्! उत्कृष्ट स्थिति वाला पर्याप्त यावत् तिर्यंचयोनिक जो उत्कृष्ट स्थिति··· रत्नप्रभा···हो?···जघन्य तथा उत्कृष्ट एक सागरोपमकी स्थिति वाले नैरयिकोंमें उत्पन्न हो। भगवन्! वे जीव एक समय···। ···सातवां गम संपूर्ण कहना यावत् कालकी अपेक्षा जघन्य पूर्वकोटी अधिक सागरोपम, उत्कृष्ट चार पूर्वकोटी अधिक चार सागरोपम-इतने काल तक यावत् गमनागमन करे। इस प्रकार ये नौ गम जानें। और नवों गमों में प्रारंभ व उपसंहार असंज्ञीकी तरह कहना ॥६९३॥

(प्र० ७४-७५) भगवन्! पर्याप्त···जो शर्कराप्रभा पृथिवी में नैरयिक··· योग्य है···उत्पन्न हो?···जघन्य एक सागरोपमकी स्थिति वाले, उत्कृष्ट तीन सा० ···वाले नैरयिकोंमें उत्पन्न हो। भगवन्! वे जीव एक समयमें कितने उत्पन्न हों?···रत्नप्रभा नरकमें उत्पन्न होने वाले पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक की समग्र वक्तव्यता भवादेश तक कहनी। काल की अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त अधिक सागरोपम उत्कृष्ट चार पूर्वकोटी अधिक बारह सागरोपम—इतने काल यावत् गमनागमन करे। इस प्रकार रत्नप्रभा पृथिवीके गमकके समान नवों गमक जानें। विशेष—सभी गमकों में नैरयिक की स्थिति और संवेध में 'सागरोपम' कहें।

इस प्रकार यावत् छठी नरक तक जानें। परन्तु जिस नरकमें जघन्य एवं उत्कृष्ट स्थिति जितने कालकी हो, उस स्थितिको उसी क्रमसे चार गुणा करना। जैसे वालुकाप्रभामें सात सागरोपमकी स्थितिको चार गुणा करें तो २८ सागरोपम होती है, उसी प्रकार पंकप्रभामें ४० सा०, धूम्र० में ६८, और तमःप्रभा में ८८ सागरोपम होती है। संघयणकी अपेक्षा वालुकाप्रभामें वज्रऋषभनाराच यावत् कीलिका ये पांच संघयण वाले नारकी उत्पन्न होते हैं। शेष पूर्ववत्।

(प्र० ७६-७७) भगवन्! पर्याप्त······जो सातवीं नरक के नैरयिकों··· योग्य है वह कितने वर्ष······हो?······जघन्य २२ सागरोपम, उत्कृष्ट ३३ सागरोपम की स्थिति वाले नैरयिकों में उत्पन्न हो। भगवन्! वे जीव एक समय में कितने उत्पन्न हों—इत्यादि रत्नप्रभा के नव गमक तथा समस्त

वक्तव्यता कहनी। विशेष—वहां वज्रऋषभनाराच संघयण वाले (पंचेन्द्रिय तिर्यंच) उत्पन्न होते हैं। स्त्रीवेद वाले जीव वहां उत्पन्न नहीं होते। बाकी सब यावत् अनुबंध तक पूर्ववत् कहना। संवेध--जघन्य भव की अपेक्षा तीन भव उत्कृष्ट सात भव, काल की अपेक्षा जघन्य दो अन्तर्मुहूर्त अधिक २२ सागरोपम, उत्कृष्ट चार पूर्वकोटी अधिक ६६ सागरोपम, इतने काल यावत् गमनागमन करे।

(प्रश्नोत्तर ७८-७९) वह जघन्य स्थिति वाले सप्तम नरक के नैरयिकों में······इत्यादि वक्तव्यता यावत्-भवादेश तक पूर्वोक्त रीति से कहनी, जघन्य कालादेश उसी प्रकार यावत् चार पूर्वकोटी अधिक (६६ सागरोपम)—इतने काल यावत् गमनागमन करे। वह जीव उत्कृष्ट स्थिति वाले नैरयिकों में उत्पन्न हो—इत्यादि वक्तव्यता यावत् अनुबंध तक पूर्ववत्। भव की अपेक्षा जघन्य तीन भव, उत्कृष्ट पांच भव। काल की अपेक्षा जघन्य दो अन्तर्मुहूर्त अधिक ३३ सागरोपम, उत्कृष्ट ३ पूर्वकोटी अधिक ६६ सागरोपम—इतने काल यावत् गमनागमन करे।

(प्रश्नोत्तर ८०-८१) यदि वह जीव स्वयं जघन्य स्थिति वाला हो और वह सातवीं नरक में नैरयिकों में उत्पन्न हो······सारी वक्तव्यता रत्नप्रभा में उत्पन्न होने वाले जघन्य स्थिति वाले संज्ञी पंचेन्द्रिय की वक्तव्यता के समान यावत् भवादेश तक कहनी। विशेष—वह प्रथम संघयण वाला होता है, और स्त्रीवेदी नहीं होता। भव की अपेक्षा जघन्य तीन भव, उत्कृष्ट सात भव, काल की अपेक्षा जघन्य दो अन्तर्मुहूर्त अधिक २२ सागरोपम, उत्कृष्ट चार अन्तर्मुहूर्त अधिक ६६ सागरोपम—इतने काल यावत् गमनागमन करे। वह जघन्य स्थिति वाले सातवीं नरक में नैरयिक रूप से उत्पन्न हो तो उसके संबंध में चौथा गम यावत् कालादेश तक समग्र कहना।

(प्रश्नोत्तर ८२-८४) वह उत्कृष्ट स्थिति वाला सातवीं नरक के नैरयिकों में उत्पन्न हो तो उसके संबंध में यावत् अनुबंध तक पूर्वोक्त वक्तव्यता कहें। भव की अपेक्षा जघन्य तीन भव, उत्कृष्ट पांच भव तथा काल की अपेक्षा जघन्य दो अन्तर्मुहूर्त अधिक ३३ सागरोपम, उत्कृष्ट तीन अन्तर्मुहूर्त अधिक ६६ सागरोपम, इतने काल यावत्-गमनागमन करे। वह उत्कृष्ट स्थिति वाला हो और सातवीं नरक में उत्पन्न हो तो जघन्य २२ सागरोपम, उत्कृष्ट ३३ सागरोपम की स्थिति वाले नैरयिकों में उत्पन्न हो। भगवन्! वे जीव एक समय में कितने उत्पन्न हों—इत्यादि संपूर्ण वक्तव्यता सातवीं नरक के प्रथम गमक के समान यावत् भवादेश तक कहें। विशेष-स्थिति और अनुबन्ध जघन्य तथा उत्कृष्ट पूर्वकोटी जानना। शेष पूर्ववत्। संवेध--काल की अपेक्षा

दो पूर्वकोटी अधिक २२ सागरोपम, उत्कृष्ट चार पूर्वकोटी अधिक ६६ सागरोपम, इतने काल यावत् गमनागमन करे।

(प्रश्नोत्तर ८५-८६) जो वह जघन्य स्थिति वाले सातवीं नरक के नैरयिकों में उत्पन्न हो तो उसके संबंध में वही वक्तव्यता तथा संवेध सातवें गमक के समान कहना। जो वह उत्कृष्ट स्थिति वाला संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यच-योनिक उत्कृष्ट स्थिति वाले सातवीं नरक के नैरयिकों में उत्पन्न हो तो पूर्वोक्त वक्तव्यता यावत् अनुबंध तक कहें। संवेध—भव की अपेक्षा जघन्य तीन भव, एवं उत्कृष्ट पांच भव, तथा काल की अपेक्षा जघन्य दो पूर्वकोटी अधिक ३३ सागरोपम, उत्कृष्ट तीन पूर्वकोटी अधिक ६६ सागरोपम—इतने काल यावत् गमनागमन करे ॥ ६६४ ॥

......जो वह (नारकी) मनुष्यों से आकर उत्पन्न हो तो क्या संज्ञी मनुष्यों से......या असंज्ञी मनुष्यों से......? गौतम ! वह संज्ञी मनुष्यों से आकर उत्पन्न हो, पर असंज्ञी मनुष्यों से आकर उत्पन्न नहीं होता।...... वह संख्यात वर्ष के आयुष्य वाले संज्ञी मनुष्यों से आकर उत्पन्न होता है पर असंख्यात......आकर उत्पन्न नहीं होता।......वह पर्याप्त संख्यात वर्ष ......होता है। पर अपर्याप्त संख्यात......नहीं होता।

(प्रश्नोत्तर ६०-६२) भगवन् ! संख्यात वर्ष की आयु वाला पर्याप्त संज्ञी मनुष्य जो नैरयिकों में उत्पन्न होने योग्य है वह कितनी नरकों में उत्पन्न हो ? गौतम ! वह सातों नरकों में उत्पन्न हो......रत्नप्रभा यावत् अधःसप्तम नरकपृथिवी में।......संख्यात......मनुष्य जो रत्नप्रभा...... योग्य है......उत्पन्न हो ? गौतम ! जघन्य दस हजार वर्ष की आयु वाले, उत्कृष्ट एक सागरोपम की आयु वाले नैरयिकों में उत्पन्न हो। भगवन् ! वे एक समय में कितने उत्पन्न होते हैं ? गौतम ! जघन्य एक, दो या तीन उत्कृष्ट संख्याता उत्पन्न होते हैं। उनके छहों संघयण होते हैं। अवगाहना जघन्य दो से नौ अंगुल प्रमाण उत्कृष्ट पांच सौ धनुष प्रमाण। शेष समस्त संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यचयोनिकों की तरह यावत् भवादेश तक कहना। विशेष— मनुष्यों को चार ज्ञान और तीन अज्ञान विकल्प से होते हैं। केवली समुद्-घात के सिवाय शेष ६ समुद्घात होते हैं। स्थिति और अनुबन्ध जघन्य मास पृथक्त्व—दो मास से नौ मास तक, उत्कृष्ट पूर्वकोटी का होता है। शेष सर्व पूर्ववत्। संवेध—काल की अपेक्षा जघन्य मास पृथक्त्व अधिक दस हजार वर्ष, उत्कृष्ट चार पूर्वकोटी अधिक चार सागरोपम—इतने काल—यावत् गमना-गमन करे।

(प्रश्नोत्तर ९३-९५) जो वह मनुष्य जघन्य काल की स्थिति वाले रत्नप्रभा नैरयिकों में उत्पन्न हो……तो उपरोक्त सर्व वक्तव्यता कहनी। विशेष–काल की अपेक्षा जघन्य मासपृथक्त्व अधिक दस हजार वर्ष, उत्कृष्ट चार पूर्वकोटी अधिक ४० हजार वर्ष—इतने काल यावत् गमनागमन करे। जो वह मनुष्य उत्कृष्ट स्थिति वाले रत्नप्रभा……वक्तव्यता पूर्ववत्। विशेष-कालादेश से मासपृथक्त्व अधिक एक सागरोपम, उत्कृष्ट चार पूर्वकोटी अधिक चार सागरोपम। इतने काल……करे। जो वह मनुष्य स्वयं जघन्यकाल की स्थिति वाला हो और रत्नप्रभा……उत्पन्न हो तो वही वक्तव्यता कहनी। विशेष—१ उसके शरीर की अवगाहना जघन्य एवं उत्कृष्ट अंगुल पृथक्त्व होती है। २—उनको तीन ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से होते हैं। ३—पहले के पांच समुद्घात होते हैं। ४-५–स्थिति तथा अनुवन्ध जघन्य एवं उत्कृष्ट मासपृथक्त्व होता है। शेष सर्व यावत् भवादेश तक पूर्ववत्। काल की अपेक्षा—जघन्य मास पृथक्त्व अधिक दस हजार वर्ष, उत्कृष्ट चार मासपृथक्त्व अधिक चार सागरोपम यावत् गमनागमन करे।

(प्र० ९६-९९) जो वह मनुष्य जघन्य कालकी स्थिति वाले रत्नप्रभा… हो तो वक्तव्यता चतुर्थ गमकवत्। विशेष-कालकी अपेक्षा जघन्य मासपृथक्त्व अधिक दस हजार वर्ष, उत्कृष्ट चार मासपृथक्त्व अधिक ४० हजार वर्ष…गमनागमन करे। वही उत्कृष्ट स्थिति वाले रत्नप्रभा…हो तो यही पूर्वोक्त गमक कहना। विशेष–कालादेशसे जघन्य मासपृथक्त्व अधिक सागरोपम, उत्कृष्ट चार मासपृथक्त्व अधिक चार सागरोपम……गमनागमन करे। जो वह मनुष्य स्वयं उत्कृष्ट स्थिति वाला हो और रत्नप्रभा…हो तो उसके सम्बन्धमें प्रथम गमक कहना। विशेष–अवगाहना जघन्य तथा उत्कृष्ट पांच सौ धनुषकी होती है। स्थिति जघन्य तथा उत्कृष्ट पूर्वकोटी वर्ष की और अनुवन्ध भी उसी प्रकार जानना। कालकी अपेक्षा जघन्य पूर्वकोटी अधिक दस हजार वर्ष, उत्कृष्ट चार पूर्वकोटी अधिक चार सागरोपम…यावत् गमनागमन करे।

(प्र० १००-१०२) जो वही मनुष्य जघन्यकालकी स्थिति वाले रत्नप्रभा… उसके सम्वन्धमें यही सातवें गमककी वक्तव्यता कहनी। विशेष कालकी अपेक्षा जघन्य दस हजार वर्ष अधिक पूर्वकोटी, उत्कृष्ट ४० हजार वर्ष अधिक चार पूर्वकोटी…गमनागमन करे। जो वह उत्कृष्ट स्थिति वाला मनुष्य उत्कृष्ट स्थिति वाले रत्नप्रभा…हो तो सातवें गमकवत्। विशेष–कालकी अपेक्षा जघन्य पूर्वकोटी अधिक सागरोपम, उत्कृष्ट चार पूर्वकोटी अधिक चार सागरोपम यावत् गमनागमन करे ॥६९५॥

भगवन्! संख्यात वर्षकी आयु वाला पर्याप्त संज्ञी मनुष्य जो शर्कराप्रभा… योग्य है…उत्पन्न हो? गौतम! जघन्य एक सागरोपमकी स्थिति वाले उत्कृष्ट

तीन सागरोपमकी स्थिति वाले नैरयिकोंमें उत्पन्न हो। भगवन्! वे जीव एक समय में कितने उत्पन्न हों? यहां रत्नप्रभा नैरयिकका गमक कहना। विशेष— अवगाहना जघन्य रत्निपृथकत्व-दो से नौ हाथ, उत्कृष्ट पांच सौ धनुपकी होती है। स्थिति जघन्य वर्पपृथक्त्व, उत्कृष्ट पूर्वकोटी वर्षकी होती है। इसी प्रकार अनुबंध भी जानना। शेष भवादेश तक पूर्ववत्। कालकी अपेक्षा जघन्य वर्षपृथक्त्व अधिक एक सागरोपम, उत्कृष्ट चार पूर्वकोटी अधिक १२ सागरोपम यावत् गमनागमन करे। इस प्रकार औधिक तीनों गमकोंमें मनुष्योंकी वक्तव्यता कहें। विशेष नैरयिककी स्थिति व कालादेश द्वारा उसका संवेध जानें।

(प्र० १०३-१०४) वह संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त मनुष्य स्वयं जघन्य कालकी स्थिति वाला हो और वह शर्कराप्रभा···हो तो उसके संबंध में तीनों गमोंमें पूर्वोक्त वक्तव्यता कहें। विशेष अवगाहना जघन्य एवं उत्कृष्ट दो से नौ हाथ तक की होती है। आयु जघन्य तथा उत्कृष्ट वर्षपृथक्त्व होती है। अनुबंध भी इसी प्रकार जानें। शेष सामान्य गमकवत्। सर्व संवेध भी···। जो वह मनुष्य स्वयं उत्कृष्ट स्थिति वाला हो और वह शर्कराप्रभामें नैरयिक हो तो तत्संबंधी तीनों गमकोंमें इस प्रकार विशेषता है—१. अवगाहना जघन्य एवं उत्कृष्ट पांच सौ धनुपकी होती है। २. स्थिति जघन्य एवं उत्कृष्ट पूर्वकोटी की······। ३. अनुबंध भी इसी प्रकार जानें। शेष सर्व प्रथम गमकवत्। विशेष नैरयिककी स्थिति और कायसंवेध विचार कर कहें। इस प्रकार यावत् छठी नरक तक जानें। विशेष—तीसरी नरकसे लेकर तिर्यंचयोनिकके समान एक २ संघयण घटाना और कालादेश भी उसी प्रकार कहना। विशेष स्थिति मनुष्योंकी कहें।

(प्र० १०५-१०६) भगवन्! संख्यात······मनुष्य जो सातवीं नरक··· योग्य है······उत्पन्न हो?······जघन्य २२ सागरोपमकी स्थिति वाले, उत्कृष्ट ३३ सागरोपमकी स्थिति वाले नैरयिकोंमें उत्पन्न हो।···भगवन्! वे जीव एक समयमें कितने उत्पन्न हों?···शेष संपूर्ण वक्तव्यता शर्कराप्रभागमकवत्। विशेष—सातवीं नरकमें प्रथम संघयण वाले उत्पन्न होते हैं और स्त्रीवेद वाले उत्पन्न नहीं होते। शेष यावत् अनुबन्ध तक पूर्ववत् जानें। भवादेशसे दो भव, कालादेशसे जघन्य वर्षपृथक्त्व अधिक २२ सागरोपम, उत्कृष्ट पूर्वकोटी अधिक ३३ सागरोपम-इतने काल यावत् गमनागमन करे। जो वही मनुष्य जघन्य कालकी स्थिति वाले सातवीं नरकके नैरयिकोंमें उत्पन्न हो··· वक्तव्यता पूर्ववत्। विशेष—स्थिति व संवेध विचार कर कहें। जो वह मनुष्य उत्कृष्ट···वक्तव्यता पूर्ववत्।···संवेध विचार कर कहें। जो वह संज्ञी मनुष्य स्वयं जघन्य कालकी स्थिति वाला हो और सातवीं···हो तो तीनों गमकोंमें यही वक्तव्यता कहें। विशेष—अवगाहना जघन्य एवं उत्कृष्ट दो से नौ हाथ तक,

स्थिति जघन्य एवं उत्कृष्ट वर्षपृथक्त्व होती है। इसी प्रकार अनुबंध भी जानें। तथा संवेध ध्यान रख कर कहें।

(प्र० ११०) जो वह संज्ञी मनुष्य स्वयं उत्कृष्टकालकी स्थिति वाला हो और सातवीं नरकमें उत्पन्न हो तो उसके तीनों गमकमें पूर्ववत् वक्तव्यता कहें। विशेष—शरीरकी ऊंचाई जघन्य एवं उत्कृष्ट पांच सौ धनुपकी होती है। स्थिति-जघन्य व उत्कृष्ट पूर्वकोटी वर्षकी होती है। इसी प्रकार अनुबंध भी जानें तथा उपरोक्त नवों गमों में नैरयिककी स्थिति व संवेध विचार कर कहें। सर्वत्र दो भव जानना। यावत् नौवें गमकमें कालकी अपेक्षा जघन्य एवं उत्कृष्ट पूर्वकोटी अधिक ३३ सागरोपम--इतने काल सेवे यावत् गमनागमन करे। हे भगवन्···॥६६६॥

॥ चौवीसवें शतक का प्रथम उद्देशक समाप्त ॥

द्वितीय उद्देशक

(प्र० १-३) राजगृह नगरमें यावत् पूछा—भगवन्! असुरकुमार कहांसे आकर उत्पन्न होते हैं? क्या वे नैरयिकोंसे आकर···? तिर्यचों, मनुष्यों या देवोंसे आकर उत्पन्न होते हैं? गौतम! वे नैरयिकों या देवोंसे आकर उत्पन्न नहीं होते। परन्तु तिर्यचों और मनुष्योंसे···होते हैं। इस प्रकार सारा वर्णन नैरयिकोद्देशक के समान जानना। यावत् भगवन्! पर्याप्त असंज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यचयोनिक जीव जो असुर-कुमारोंमें उत्पन्न होने योग्य है, वह कितने काल की स्थिति वाले असुर-कुमारोंमें उत्पन्न हो? गौतम! जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवें भाग की स्थिति वाले असुरकुमारोंमें उत्पन्न हो। भगवन्! वे जीव एक समयमें कितने उत्पन्न हों?···इस प्रकार रत्नप्रभा-गमक की तरह नौ गमक कहने चाहियें। विशेष-जब वह स्वयं जघन्य कालकी स्थिति वाला हो तो उसके (बीच के) तीनों गमकों में अध्यवसाय प्रशस्त होते हैं, अप्रशस्त नहीं होते। शेष उसी प्रकार जानें।

(प्र० ४-६) भगवन्! जो संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यचयोनिकोंसे आकर उत्पन्न हो तो क्या संख्यात वर्षकी आयु वाले संज्ञी···या असंख्यात···आकर उत्पन्न हो? गौतम! संख्यात वर्ष की आयु वाले व असंख्यात वर्षकी आयु वाले दोनों प्रकार के तिर्यचयोनिकोंसे आकर उत्पन्न हो। भगवन्! असंख्यात···तिर्यचयोनिक जो असुरकुमारोंमें उत्पन्न होने योग्य है, वह कितने कालकी स्थिति वाले असुरकुमारोंमें उत्पन्न हो? गौतम! जघन्य दस हजार वर्षकी स्थिति वाले, उत्कृष्ट तीन पल्योपम की स्थिति वाले असुरकुमारोंमें उत्पन्न हो। भगवन्! वे एक समय में कितने उत्पन्न हों? गौतम! जघन्य एक दो या तीन उत्कृष्ट संख्याता उत्पन्न हों। वे वज्रऋषभनाराच संघयण वाले होते हैं। उनके शरीर की ऊंचाई जघन्य धनुपपृथक्त्व

उत्कृष्ट छ गाउ। वे समचतुरस्र संस्थान वाले होते हैं। सम्यग्दृष्टि या मिश्रदृष्टि नहीं होते, पर मिथ्यादृष्टि होते हैं। ज्ञानी नहीं पर अज्ञानी हैं, और उन्हें मति अज्ञान और श्रुत अज्ञान ये दो अवश्य होते हैं। योग तीनों होते हैं। उपयोग साकार और अनाकार दोनों प्रकार के होते हैं। चार संज्ञाएं, चार कषाय और पांच इन्द्रियां होती हैं। समुद्घात पहले के तीनों होते हैं। समुद्घात करके भी मरते हैं, विना किए भी···। वेदना सुखरूप तथा दुःखरूप ये दोनों प्रकार की होती हैं। पुरुषवेद और स्त्रीवेद–ये दो वेद होते हैं, पर नपुंसकवेद नहीं होता। स्थिति जघन्य कुछ अधिक पूर्वकोटी, उत्कृष्ट तीन पल्योपम की होती है। अध्यवसाय प्रशस्त व अप्रशस्त दोनों प्रकार के होते हैं। स्थिति के समान अनुवन्ध भी जानना। कायसंवेध-भव की अपेक्षा दो भव और काल की अपेक्षा जघन्य कुछ अधिक पूर्वकोटि सहित दस हजार वर्ष तथा उत्कृष्ट छः पल्योपम–इतने काल यावत् गमनागमन करे।

(प्र० ७-१०) जो वह जघन्य काल की स्थिति वाले असुरकुमारमें उत्पन्न हो तो वक्तव्यता पूर्ववत्। पर यहां असुरकुमार की स्थिति व संवेध विचार कर कहें। जो वह उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले असुरकुमारोंमें उत्पन्न हो तो वह जघन्य और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की स्थिति वाले असुरकुमारोंमें उत्पन्न हो— इत्यादि पूर्वोक्त वक्तव्यता कहें। विशेष—उसकी स्थिति जघन्य एवं उत्कृष्ट तीन पल्योपम की होती है। इस प्रकार अनुबंध भी जानें। कालकी अपेक्षा जघन्य तथा उत्कृष्ट छः पल्योपम, इतने काल यावत्-गमनागमन करे। शेष पूर्ववत्। जो वह स्वयं जघन्यकाल की स्थिति वाला हो और असुरकुमारमें उत्पन्न हो तो वह जघन्य दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट कुछ अधिक पूर्वकोटि वर्ष के आयुष्य वाले असुरकुमारमें उत्पन्न हो। भगवन्! वे जीव एक समयमें कितने उत्पन्न हों?···शेष भवादेश तक उसी प्रकार जानें। विशेष—अवगाहना जघन्य दो से नव धनुष तक उत्कृष्ट कुछ अधिक एक हजार धनुष होती है। स्थिति जघन्य व उत्कृष्ट कुछ अधिक पूर्वकोटी वर्षकी होती है। इसी प्रकार अनुबंध भी जानना। कालकी अपेक्षा जघन्य कुछ अधिक पूर्वकोटी सहित दस हजार वर्ष, उत्कृष्ट कुछ अधिक दो पूर्वकोटी वर्ष, इतने काल यावत्-गमनागमन करे।

(प्र० ११-१३) जो वह जघन्य काल की स्थिति वाले असुरकुमार में उत्पन्न हो तो उसके सम्बन्धमें यही वक्तव्यता कहें। विशेष—असुरकुमारकी स्थिति व संवेध विचार कर कहें। यदि वही जीव उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले असुरकुमारमें उत्पन्न हो तो जघन्य व उत्कृष्ट कुछ अधिक पूर्वकोटि वर्ष की स्थिति वाले असुरकुमार में उत्पन्न हो। शेष सर्व पूर्ववत् जानें। विशेष—कालादेश से जघन्य व उत्कृष्ट कुछ अधिक दो पूर्वकोटि वर्ष-इतने काल यावत् गमनागमन करे। यदि वह स्वयं उत्कृष्ट काल की स्थिति वाला हो और असुरकुमार में

उत्पन्न हो उसके सम्बन्ध में प्रथम गमक कहें। विशेष— स्थिति-जघन्य व उत्कृष्ट तीन पल्योपम की। अनुबंध भी इसी प्रकार जानें। कालादेश से जघन्य दस हजार वर्ष अधिक तीन पल्योपम, उत्कृष्ट छः पल्योपम—इतने काल यावत्-गमनागमन करे।

(प्र० १४-१७) जो वह जघन्य काल की स्थिति वाले असुरकुमार में उत्पन्न हो···वक्तव्यता वही···। विशेष—असुरकुमार की स्थिति व संवेध विचार कर कहें। जो वह उत्कृष्ट काल···में उत्पन्न हो तो वह जघन्य व उत्कृष्ट तीन पल्योपम की स्थिति वाले असुरकुमार में उत्पन्न हो—इत्यादि पूर्वोक्त वक्तव्यता कहें। विशेष— कालकी अपेक्षा जघन्य व उत्कृष्ट छः पल्योपम यावत् गमनागमन करे। भगवन्! जो वह असुरकुमार संख्यात···तिर्यंचों से आकर उत्पन्न हो तो क्या जलचरों से आकर उत्पन्न हो—इत्यादि यावत् कितने कालकी स्थिति वाले असुरकुमारों में उत्पन्न हो? गौतम! जघन्य दस हजार वर्ष की उत्कृष्ट कुछ अधिक एक सागरोपम की स्थिति वाले असुरकुमारों में उत्पन्न हो। भगवन्! वे जीव एक समय में कितने उत्पन्न हों? पूर्ववत् रत्नप्रभा पृथिवीके समान नव गमक जानें। विशेष—जब स्वयं जघन्यकाल की स्थिति वाला हो तो बीच के तीनों गमोंमें यह भेद जानना- उनके चार लेश्याएं होती हैं। अध्यवसाय प्रशस्त होते हैं, पर अप्रशस्त नहीं। शेष सर्व पूर्ववत् जानना। संवेध कुछ अधिक सागरोपम···।

(प्र० १८-२०) जो वे असुरकुमार मनुष्यों से आकर उत्पन्न हों तो क्या संज्ञी मनुष्यों···असंज्ञी···उत्पन्न हों?···संज्ञी मनुष्यों से आकर उत्पन्न हों, असंज्ञी ···से नहीं। भगवन्! यदि वे संज्ञी मनुष्यों···तो क्या संख्यात वर्ष की आयु वाले संज्ञी··या असंख्यात···उत्पन्न हों? गौतम! वे दोनों प्रकारकी आयु वाले मनुष्यों से आकर उत्पन्न हों। भगवन्! असंख्य वर्ष की आयु वाला संज्ञी मनुष्य जो असुरकुमारों··योग्य है, वह कितने काल की स्थिति वाले असुरकुमारों में उत्पन्न हो? गौतम! वह जघन्य दस हजार वर्ष की उत्कृष्ट तीन पल्योपम की स्थिति वाले असुरकुमारों में उत्पन्न हो। इस प्रकार असंख्यात वर्ष की आयु वाले तिर्यंचयोनिकों की तरह पहले तीन गमक जानें। विशेष—शरीर की ऊंचाई पहले व दूसरे गमकमें कुछ अधिक पांच सौ धनुष उत्कृष्ट तीन गाउ। शेष पूर्ववत्। तीसरे गमक में शरीर की ऊंचाई जघन्य व उत्कृष्ट तीन गाउ की जानें। बाकी सब तिर्यंचयोनिक की तरह समझें।

(प्र०२१-२५) यदि वह स्वयं जघन्य काल की स्थिति वाला हो तो उसके संबंध में जघन्य स्थिति वाले तिर्यंचयोनिकों की तरह तीनों गम कहने। विशेष- तीनों गमों में शरीरकी ऊंचाई जघन्य व उत्कृष्ट कुछ अधिक पांच सौ धनुष जानें। शेष पूर्ववत्। यदि वह स्वयं उत्कृष्ट काल की स्थिति वाला हो तो उसके संबंध

में भी पूर्वोक्त अन्तिम तीन गम कहने। विशेष—तीनों गमों में शरीर का प्रमाण जघन्य व उत्कृष्ट तीन गाउका होता है। शेष सब उसी प्रकार जानना। भगवन्! वे असुरकुमार संख्यात वर्ष की आयु वाले संज्ञी मनुष्यों से आकर उत्पन्न हों तो क्या पर्याप्त···या अपर्याप्त संख्यात···आकर उत्पन्न हों? गौतम! पर्याप्त संख्यात···उत्पन्न हों पर अपर्याप्त···संज्ञी मनुष्यों से आकर उत्पन्न नहीं होते। भगवन्! पर्याप्त···मनुष्य जो असुरकुमारों में उत्पन्न होने योग्य है, वह कितने काल की स्थिति वाले असुरकुमारों में उत्पन्न हो? गौतम! वह जघन्य दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट कुछ अधिक सागरोपम की स्थिति वाले असुरकुमारों में उत्पन्न हो। भगवन्! वे जीव एक समय में कितने उत्पन्न हों?—इस प्रकार जैसे रत्नप्रभा में उत्पन्न होने वाले मनुष्यों के नव गम कहे उसी प्रकार यहां भी नौ गम कहना। विशेष—संवेध पूर्वकोटी सहित सागरोपम का कहना। शेष पूर्ववत्······॥६६७॥

॥ २४ वें शतक का दूसरा उद्देशक समाप्त ॥

—०—

तृतीय उद्देशक

(प्र०१-४) राजगृह में यावत् पूछा—भगवन्! नागकुमार कहां से आकर उत्पन्न होते हैं? क्या नैरयिकों से, तिर्यचों से, मनुष्यों से या देवों से आकर उत्पन्न होते हैं? गौतम! वे नैरयिकों या देवों से आकर उत्पन्न नहीं होते, पर तिर्यचों व मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं। यदि वे तिर्यचों से आकर उत्पन्न होते हैं।···इत्यादि असुरकुमारों की वक्तव्यताके समान यावत् असंज्ञी तक जानना। यदि संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यचयोनिकों से आकर उत्पन्न हों तो क्या संख्यात वर्ष की आयु वाले संज्ञी···अथवा असंख्यात···आकर उत्पन्न हों? गौतम! वे दोनों प्रकार के तिर्यचयोनिकों से आकर उत्पन्न हों। भगवन्! असंख्यात वर्ष की आयु वाला संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यचयोनिक जो नागकुमारों में उत्पन्न होने योग्य है, वह कितने काल की स्थिति वाले नागकुमारों में उत्पन्न हो? गौतम! वह जघन्य दस हजार वर्ष की स्थिति वाले तथा उत्कृष्ट कुछ कम दो पल्योपम की स्थिति-वाले नागकुमारों में उत्पन्न हो।

(प्र०५-७) भगवन्! वे जीव एक समय में कितने उत्पन्न हों—इत्यादि असुरकुमार में उत्पन्न होने वाले असंख्यात वर्ष की आयु वाले तिर्यचों का यावत् भवादेश तक समग्र पाठ कहना। कालकी अपेक्षा जघन्य कुछ अधिक पूर्वकोटी सहित दस हजार वर्ष, उत्कृष्ट कुछ कम पांच पल्योपम—इतने काल यावत् गमनागमन करे। जो वह जीव जघन्य काल की स्थिति वाले नागकुमारों में उत्पन्न हो तो यही वक्तव्यता कहनी। विशेष—नागकुमारों की स्थिति व संवेध जानना।

जो वह जीव उत्कृष्ट काल की···हो तो भी यही वक्तव्यता कहनी। विशेष—जघन्य स्थिति कुछ कम दो पल्योपम की, उत्कृष्ट तीन पल्योपम की होती है। शेष पूर्ववत् यावत् भवादेश तक जानें। कालादेश से जघन्य कुछ कम चार पल्योपम, उत्कृष्ट कुछ कम पांच पल्योपम इतने काल यावत् गमनागमन करे।

(प्र० ८ से ११) यदि वह जीव स्वयं जघन्य काल की स्थिति वाला हो तो उसके तीनों गमकोंमें असुरकुमारों में उत्पन्न होने वाले जघन्य काल की स्थिति वाले···तिर्यच के समान सब कहना। यदि वह स्वयं उत्कृष्ट काल···तीनों गमकों में···तिर्यच···कहना। विशेष—नागकुमारों की स्थिति व संवेध कहना। शेष सब उसी प्रकार कहना। यदि वे नागकुमार संख्यात वर्ष की आयु वाला संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यचयोनिकोंसे आकर उत्पन्न हों तो क्या वे पर्याप्त···या अपर्याप्त···आकर उत्पन्न हों ? गौतम ! वे पर्याप्त···आकर उत्पन्न हों, पर अपर्याप्त से आकर उत्पन्न नहीं होते। भगवन् ! पर्याप्त संख्यात वर्ष की आयु वाले संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यच-योनिक जो नागकुमार में उत्पन्न होने योग्य है वह कितने कालकी स्थिति वाले नागकुमार में उत्पन्न हो ? गौतम ! जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट कुछ कम दो पल्योपम की स्थिति वाले नागकुमारों में उत्पन्न हो—इत्यादि जैसे असुर-कुमारोंमें उत्पन्न होने वाले संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यच की वक्तव्यता कही है, उसी प्रकार यहां नौ गमकोंमें कहनी। विशेष—नागकुमार की स्थिति व संवेध जानना। शेष उसी प्रकार।

(प्र० १२-१३) यदि वे मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं तो क्या संज्ञी मनुष्यों···असंज्ञी···होते हैं ? गौतम ! संज्ञी···आकर उत्पन्न होते हैं पर असंज्ञी··· आकर उत्पन्न नहीं होते, इत्यादि जैसे असुरकुमारों में उत्पन्न होने योग्य मनुष्यों की वक्तव्यता कही है, वैसी कहें यावत् भगवन् ! असंख्यात वर्ष की आयु वाला संज्ञी मनुष्य जो नागकुमारों में उत्पन्न होने योग्य है, वह कितने काल की स्थिति वाले नागकुमारोंमें उत्पन्न हो ? गौतम ! वह जघन्य दस हजार वर्ष की, उत्कृष्ट कुछ कम दो पल्योपम की स्थिति वाले नागकुमारोंमें उत्पन्न हो। इस प्रकार सब असंख्यात वर्ष की आयु वाले तिर्यचयोनिकोंके नागकुमारोंमें उत्पन्न होनेके सम्बन्ध में आदिके तीन गमक कहे हैं वे यहां भी कहने। विशेष—पहले व दूसरे गमकमें शरीर प्रमाण जघन्य कुछ अधिक पांच सौ धनुष, उत्कृष्ट तीन गाउका है। तीसरे गमकमें शरीरकी ऊंचाई जघन्य कुछ कम दो गाउ व उत्कृष्ट तीन गाउ की है। शेष सब उसी प्रकार जानना।

(प्र० १४-१७) यदि वह स्वयं जघन्य काल की स्थिति वाला हो तो उसके तीनों गमकोंमें असुरकुमारमें उत्पन्न होने योग्य असंख्यात वर्ष की आयु वाले संज्ञी मनुष्य के समान सारा वर्णन कहना। यदि वह उत्कृष्ट···असुर···योग्य उत्कृष्ट

कालकी स्थिति वाले संज्ञी असंख्यातवर्षीय मनुष्य के समान जानना। विशेष—नागकुमारों की स्थिति व संवेध जानना। शेष उसी प्रकार। यदि वे संख्यात वर्ष की आयु वाले संज्ञी मनुष्यों से आकर उत्पन्न हों तो क्या पर्याप्त संख्यात…या अपर्याप्त…आकर उत्पन्न हों? गौतम! वे पर्याप्त…से आकर उत्पन्न हों पर अपर्याप्त सं० वर्ष की आयु वाले संज्ञी मनुष्योंसे आकर उत्पन्न नहीं होते। भगवन्! पर्याप्त संख्यात वर्ष की आयु वाला संज्ञी मनुष्य जो नागकुमारोंमें उत्पन्न होने योग्य है वह कितने काल की स्थिति वाले नागकुमारों में उत्पन्न हो? गौतम! वह जघन्य दस हजार वर्ष की स्थिति वाले व उत्कृष्ट कुछ कम दो पल्योपम की स्थिति वाले नागकुमारों में उत्पन्न हो—इत्यादि जैसे असुरकुमारोंमें उत्पन्न होने योग्य मनुष्य की वक्तव्यता कही है उसी प्रकार यहां भी नौ गमकोंमें संपूर्ण कहें। विशेष—नागकुमार की स्थिति व संवेध जानना। हे भगवन्!…विचरते हैं ॥६६८॥

॥ २४ वें शतक का तीसरा उद्देशक समाप्त ॥

उद्देशक ४ से ११

सुवर्णकुमार से लेकर स्तनितकुमार तक के बाकी के आठ उद्देशक नागकुमार के समान कहने। हे भगवन्!……॥६६९॥

॥२४वें शतक के ४ से ११ उद्देशक समाप्त॥

बारहवां उद्देशक

(प्रश्नोत्तर १-४) भगवन्! पृथिवीकायिक कहां से आकर उत्पन्न होते हैं? क्या नैरयिकों से…तिर्यंचों से…मनुष्यों से… अथवा देवों से आकर उत्पन्न होते हैं? गौतम! नैरयिकों से आकर उत्पन्न नहीं होते, पर तिर्यंच, मनुष्य और देवों से आकर उत्पन्न होते हैं। भगवन्! यदि वे तिर्यंचयोनिकों से आकर उत्पन्न होते हैं। तो क्या एकेन्द्रिय ति०……इत्यादि प्रश्न। गौतम!…… जैसे व्युत्क्रान्ति पद में कहा है, उसी प्रकार यहां उपपात कहें। यावत् भगवन्! यदि वे बादर पृथिवीकायिक एकेन्द्रिय तिर्यंचयोनिकों से आकर उत्पन्न हों तो क्या पर्याप्त बादर… या अपर्याप्त बादर पृथिवीकायिक यावत् से आकर उत्पन्न होते हैं। गौतम! वे पर्याप्त व अपर्याप्त दोनों प्रकार के बादर पृथिवीकायिकों से आकर उत्पन्न होते हैं। भगवन्! जो पृथिवीकायिक पृथिवीकायिकों में उत्पन्न होने योग्य है, वह कितने काल की स्थिति वाले पृथिवीकायिकों में उत्पन्न हो?……जघन्य

अन्तर्मुहूर्त की स्थिति वाले और उत्कृष्ट २२ हजार वर्ष की स्थिति वाले पृथिवीकायिक में उत्पन्न हो। भगवन्! वे जीव एक समय में कितने उत्पन्न हों? गौतम! वे समय समय निरन्तर असंख्यात उत्पन्न हों। वे छेवट्ट संघयण वाले होते हैं। उनका शरीर जघन्य व उत्कृष्ट अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण होता है। उनका संस्थान--आकार मसूर की दाल जैसा होता है। उनके चार लेश्याएं होती हैं। वे सम्यग्दृष्टि या मिश्रदृष्टि नहीं होते पर मिथ्यादृष्टि होते हैं। ज्ञानी नहीं होते पर अज्ञानी होते हैं। उनको अवश्य मति अज्ञान व श्रुत अज्ञान ये दो अज्ञान होते हैं। वे मनयोगी व वचनयोगी नहीं होते, पर काययोगी होते हैं। उपयोग साकार व निराकार दोनों प्रकार का है। चार संज्ञाएं व चारों कषाय होते हैं। इन्द्रियों में एक स्पर्शेन्द्रिय होती है। आदि के तीन समुद्घात व वेदना दोनों प्रकार की होती है। उनको स्त्रीवेद या पुरुषवेद नहीं होता, पर नपुंसकवेद होता है। स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट २२ हजार वर्ष की होती है। अध्यवसाय प्रशस्त व अप्रशस्त दोनों प्रकार के होते हैं। अनुबंध स्थिति-प्रमाण जानें।

(प्रश्नोत्तर ५-७) भगवन्! वह पृथिवीकायिक मरकर पृथिवीकायिक रूप में उत्पन्न हो, पुनः पृथिवीकायिक हो इस प्रकार कितने काल तक सेवे—कितने काल तक गमनागमन करे? गौतम! भव की अपेक्षा जघन्य दो भव, उत्कृष्ट संख्याता भव, काल की अपेक्षा जघन्य दो अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट असंख्यात वर्ष—इतने काल यावत् गमनागमन करे। जो वह पृथिवीकायिक जघन्य काल की स्थिति वाले पृथिवीकायिक में उत्पन्न हो तो वह जघन्य व उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की स्थिति वाले पृथिवीकायिक में उत्पन्न हो। इस प्रकार समस्त वक्तव्यता कहें। यदि वह पृथिवीकायिक उत्कृष्ट काल की······हो तो वह जघन्य व उत्कृष्ट २२ हजार वर्ष की स्थिति वाले पृथिवीकायिक में उत्पन्न हो। शेष सर्व अनुवन्ध तक पूर्ववत्। विशेष—जघन्य एक दो या तीन उत्कृष्ट संख्याता असंख्याता उत्पन्न होते हैं। भव की अपेक्षा जघन्य दो भव उत्कृष्ट आठ भव, तथा काल की अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक २२ हजार वर्ष, उत्कृष्ट एक लाख ७६ हजार वर्ष—इतने काल—यावत् गमनागमन करे।

(प्रश्नोत्तर ८-१०) यदि वह पृथ्वीकायिक स्वयं जघन्य काल की स्थिति वाला हो और पृथिवीकायिक में उत्पन्न हो तो उसके संबंध में पूर्वोक्त प्रथम गमक कहें। विशेष—तीन लेश्याएं, स्थिति जघन्य व उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त, अध्यवसाय अप्रशस्त, अनुवन्ध—स्थितिसमान। शेष पूर्ववत्। यदि वह पृथिवीकायिक जघन्य काल की स्थिति वाले पृथिवीकायिक में उत्पन्न हो तो उसके

संबन्ध में पूर्वोक्त चौथे गमक की वक्तव्यता कहनी। यदि वह पृथिवीकायिक उत्कृष्ट……उत्पन्न हो तो उसके सम्बन्ध में यही वक्तव्यता कहें। विशेष—जघन्य एक, दो और तीन, उत्कृष्ट संख्याता अथवा असंख्याता उत्पन्न हों। यावत् भवादेश से जघन्य दो भव, उत्कृष्ट आठ भव, काल की अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक २२ हजार वर्ष, उत्कृष्ट चार अन्तर्मुहूर्त अधिक अठासी हजार वर्ष—इतने काल यावत् गमनागमन करे।

(प्रश्नोत्तर ११-१३) यदि वह स्वयं उत्कृष्ट काल की स्थिति वाला हो तो तीसरे गमक के समान सारा गमक कहना। विशेष—उसकी अपनी स्थिति जघन्य व उत्कृष्ट २२ हजार वर्ष की होती है। यदि वह जीव जघन्य काल की स्थिति वाले पृथिवीकायिक में उत्पन्न हो तो जघन्य व उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की स्थिति वालों में उत्पन्न हो—इस प्रकार यहां सातवें गमक की वक्तव्यता यावत् भवादेश तक कहें। कालादेश से जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक २२ हजार वर्ष, उत्कृष्ट चार अन्तर्मुहूर्त अधिक ८८ हजार वर्ष—इतने काल यावत् गमनागमन करे। यदि वह जीव उत्कृष्ट काल……उत्पन्न हो तो जघन्य व उत्कृष्ट २२ हजार वर्ष की स्थिति वाले पृथिवीकायिक में उत्पन्न हो। यहां सातवें……भवादेश तक कहें। कालादेश से जघन्य ४४ हजार वर्ष व उत्कृष्ट १ लाख ७६ हजार वर्ष—इतने काल यावत्—गमनागमन करे।

(प्रश्नोत्तर १४-१५) यदि वह (पृथिवीकायिक) अप्कायिक एकेन्द्रिय तिर्यचयोनिक से आकर उत्पन्न हो, तो क्या सूक्ष्म अप्कायिक से या बादर अप्कायिक से आकर उत्पन्न हो—इत्यादि पृथ्वीकायिक की तरह सूक्ष्म, बादर, पर्याप्ता व अपर्याप्ता—ये चार भेद कहें। भगवन्! जो अप्कायिक पृथिवीकायिकों में उत्पन्न होने योग्य है वह कितने काल की स्थिति वाले पृथिवीकायिक में उत्पन्न हो? गौतम! वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त व उत्कृष्ट २२ हजार वर्ष की स्थिति वाले पृथिवीकायिक में उत्पन्न हो। इस प्रकार पृथिवीकायकी तरह अप्काय के संबन्ध में भी नव गमक कहें। विशेष–अप्कायिक के शरीर का संस्थान पानीके परपोटे (बुलबुले)के आकार का है। स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट सात हजार वर्ष की होती है। अनुबन्ध भी इसी प्रकार जानें। इस तरह तीनों गमों में जानें। तीसरे, छठे, सातवें, आठवें और नौवें गम में संवेध भवादेश से जघन्य दो भव उत्कृष्ट आठ भव होता है। शेष चारों गमों में जघन्य दो भव उत्कृष्ट असंख्यात भव होते हैं। तीसरे गम में कालादेश से अन्तर्मुहूर्त अधिक २२ हजार वर्ष उत्कृष्ट १ लाख १६ हजार वर्ष—इतने काल यावत्—गमनागमन करे। छठे गम में कालादेश से जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक २२ हजार वर्ष उत्कृष्ट चार अन्तर्मुहूर्त अधिक ८८ हजार वर्ष—इतने यावत् गमनागमन करे। सातवें

गम में कालादेश से जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक ७ हजार वर्ष, उत्कृष्ट १ लाख १६ हजार वर्ष यावत् गमनागमन करे। आठवें गम में कालादेश से जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक ७ हजार वर्ष, उत्कृष्ट ८८ हजार वर्ष……करे। नौवें गम में भवादेश से जघन्य दो भव उत्कृष्ट आठ भव, तथा कालादेशसे जघन्य २९ हजार वर्ष, उत्कृष्ट १ लाख १६ हजार वर्ष, इतने काल यावत् गमनागमन करे। इस प्रकार नवों गमों में अप्कायिक की स्थिति जाननी।

(प्रश्नोत्तर १६-१८) भगवन्! यदि वह तेउकाय से आकर उत्पन्न हो ……तेउकायिक की वक्तव्यता इसी प्रकार। विशेष—नवों गमों में तीन लेश्याएं, संस्थान सुई के समूह के आकार के समान, (स्थिति तीन अहोरात्रि की) जानें। तीसरे गम में कालादेश से जघन्य अंतर्मुहूर्त अधिक २२ हजार वर्ष, उत्कृष्ट १२ अहोरात्र अधिक ८८ हजार वर्ष, इतने काल—यावत्—गमनागमन करे। इस प्रकार संवेध ध्यान रखकर कहें। यदि वे वायुकायिकों से आकर उत्पन्न हों तो तेजस्कायिकों की तरह नवों गमक कहने। विशेष—संस्थान ध्वजा के आकार, संवेध हजारों वर्ष। तीसरे गम में कालादेश से जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक २२ हजार वर्ष, उत्कृष्ट १ लाख वर्ष। इस प्रकार संवेध विचार कर कहें। भगवन्! यदि वे वनस्पतिकायिकों से आकर उत्पन्न हों तो…… वनस्पतिकाय के नवों गमक अप्कायिक की तरह जानने। विशेष—वनस्पति के शरीर अनेक प्रकार की आकृति वाले होते हैं। पहले और अन्तिम तीनों गमकों में शरीर का प्रमाण जघन्य अंगुल का असंख्यातवां भाग, उत्कृष्ट एक हजार योजन से अधिक होता है। बीच के तीनों गमक पृथिवीकायिकों की तरह जानें। संवेध व स्थिति भिन्न जानें। तीसरे गम में काल की अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक २२ हजार वर्ष, उत्कृष्ट १ लाख ८८ हजार— इतने काल—यावत्—गमनागमन करे। इसी प्रकार संवेध उपयोगपूर्वक कहें॥ ७००॥

(प्र०१९-२१)…यदि वे बेइन्द्रिय से आकर उत्पन्न हों तो क्या पर्याप्त बेइन्द्रिय से…या अपर्याप्त…उत्पन्न हों? गौतम! पर्याप्त व अपर्याप्त दोनों प्रकार के बेइन्द्रियों से आकर उत्पन्न हों। भगवन्! जो बेइन्द्रिय पृथिवीकायिकों में उत्पन्न होने योग्य है, वह कितने काल की स्थिति वाले पृथिवीकायिक में उत्पन्न हो? गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की स्थिति वाले व उत्कृष्ट २२ हजार वर्ष की स्थिति वाले पृथिवीकायिक में उत्पन्न हो। भगवन्! वे जीव एक समय में कितने उत्पन्न हों? गौतम! जघन्य एक, दो या तीन उत्कृष्ट संख्याता या असंख्याता उत्पन्न हों। वे छेवट्ट संघयण वाले होते हैं। उनके शरीर का प्रमाण जघन्य अंगुल का असंख्यातवां भाग, उत्कृष्ट १२ योजन होता है। उनके शरीर हुंडक

संस्थान वाले होते हैं। उनके तीन लेश्याएं होती हैं। वे सम्यग्दृष्टि व मिथ्यादृष्टि होते हैं, पर मिश्रदृष्टि नहीं होते। उनको दो ज्ञान व दो अज्ञान अवश्य होते हैं। वे मनोयोगी नहीं, पर वचनयोगी व काययोगी होते हैं। उपयोग दोनों प्रकारका होता है। चार संज्ञाएं, चार कषाय, दो इन्द्रियां-रसेन्द्रिय व स्पर्शेन्द्रिय और तीन समुद्घात होते हैं। शेष सर्व पृथिवीकायिकवत्। विशेष-स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की व उत्कृष्ट १२ वर्ष की होती है। इसी प्रकार अनुबंध भी जानें। शेष पूर्ववत्। भवादेश से जघन्य दो भव उत्कृष्ट संख्यात भव तथा कालादेश से जघन्य दो अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट संख्यात काल इतने काल यावत् गमनागमन करे।

(प्र०२२-२४) यदि वह वेइन्द्रिय जघन्य काल की स्थिति वाले पृथिवीकायिक में उत्पन्न हो···वक्तव्यता पूर्ववत्। यदि वह वेइन्द्रिय उत्कृष्ट···उत्पन्न··· तो भी यही वक्तव्यता कहें। विशेष--भवादेश से जघन्य दो भव उत्कृष्ट आठ भव, तथा कालादेश से जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक २२ हजार वर्ष उत्कृष्ट ४८ वर्ष अधिक ८८ हजार वर्ष इतने काल यावत्—गमनागमन करे। यदि वह वेइन्द्रिय जघन्य काल की स्थिति वाला हो और वह पृथिवीकायिक में उत्पन्न हो तो उसके भी तीनों गमकों में पूर्वोक्त वक्तव्यता कहें। पर यहां सात विशेषताएं हैं–१. शरीर का प्रमाण पृथिवीकायिकों की तरह (अंगुल का असंख्यातवां भाग) जानना। २. सम्यग्दृष्टि और मिश्रदृष्टि नहीं पर मिथ्यादृष्टि हैं। ३. उसे दो अज्ञान अवश्य होते हैं। ४. मनयोग या वचनयोग नहीं, पर काययोग है। ५.स्थिति जघन्य व उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की होती है। ६. अध्यवसाय अप्रशस्त होते हैं। ७. अनुबंध स्थिति के समान जानें। तथा दूसरे त्रिक के पहले के दो गमकों में संवेध भी उसी प्रकार जानें। तीसरे गमक में भवादेश उसी प्रकार आठ भव तक का जानें। कालादेश से जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक २२ हजार वर्ष व उत्कृष्ट चार अन्तर्मुहूर्त अधिक ८८ हजार वर्ष–इतने काल यावत् गमनागमन करे।

(प्र०२५-२६) यदि वह वेइन्द्रिय स्वयं उत्कृष्ट काल की स्थिति वाला हो और पृथिवीकायिक में उत्पन्न हो···तो औधिक गमक समान तीन गमक कहें। विशेष-तीनों गमों में स्थिति जघन्य व उत्कृष्ट १२ वर्ष की होती है। अनुबंध भी इसी प्रकार है। भवादेश से जघन्य दो भव और उत्कृष्ट आठ भव तथा कालादेश से विचार कर संवेध कहें। यावत् नौवें गम में जघन्य १२ वर्ष अधिक २२ हजार वर्ष, उत्कृष्ट ४८ वर्ष अधिक ८८ हजार वर्ष यावत् गमनागमन करे। यदि वे पृथिवीकायिक तेइन्द्रियों से आकर उत्पन्न हों तो इसी प्रकार नौ गमक कहें। विशेष–पहले तीनों गमकों में शरीर का प्रमाण जघन्य अंगुल का असंख्यातवां भाग उत्कृष्ट तीन गाउ। तीन इन्द्रियां होती हैं। स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट ४९ रात दिन की है। तीसरे गमक में काल की अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक

२२ हजार वर्ष, उत्कृष्ट १९६ रात्रि दिन अधिक ८८ हजार वर्ष-इतने काल यावत् गमनागमन करे। बीच के तीनों गमक भी उसी प्रकार जानें। अन्तिम तीन गम भी इसी प्रकार। विशेष—स्थिति जघन्य व उत्कृष्ट ४९ अहोरात्र, संवेध विचार कर कहना।

(प्र० २७-२९) यदि वे पृथिवीकायिक चउरिन्द्रियसे आकर उत्पन्न हों तो इसी प्रकार नवों गम कहने। विशेषता—शरीरकी अवगाहना जघन्य अंगुलका असंख्यातवां भाग, उत्कृष्ट चार गाउ। स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट ६ मास की होती है। अनुबंध भी इसी प्रकार जानें। इन्द्रियां चार होती हैं। शेष उसी प्रकार यावत् नौवें गमकमें कालादेशसे जघन्य ६ मास अधिक २२ हजार वर्ष, उत्कृष्ट २४ मास अधिक ८८ हजार वर्ष—इतने काल सेवे यावत् गमनागमन करे। भगवन्! यदि वह पृथिवीकायिक पंचेन्द्रिय तिर्यचयोनिकोंसे आकर उत्पन्न हो,तो क्या संज्ञी पंचेन्द्रिय···या असंज्ञी···उत्पन्न हो? गौतम! संज्ञी व असंज्ञी दोनों प्रकारके पंचेन्द्रिय तिर्यचयोनिकोंसे आकर उत्पन्न हो। भगवन्! यदि वह असंज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यचयोनिकोंसे आकर उत्पन्न हो तो क्या जलचरोंसे आकर उत्पन्न हो यावत् पर्याप्त या अपर्याप्तसे आकर उत्पन्न हो? गौतम! पर्याप्त यावत् अपर्याप्तसे भी आकर उत्पन्न हो।

(प्र० ३०-३१) भगवन्! असंज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यचयोनिक जो पृथिवीकायिक में उत्पन्न होने योग्य है, वह कितने कालकी स्थिति वाले पृथिवीकायिकोंमें उत्पन्न हो? गौतम! वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त व उत्कृष्ट २२ हजार वर्षकी स्थिति वाले पृथिवीकायिकोंमें उत्पन्न हो। भगवन्! वे असंज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यच एक समयमें कितने उत्पन्न हों—इत्यादि जैसे बेइन्द्रियके औधिक सामान्य गमकमें जो वक्तव्यता कही है, वही वक्तव्यता यहां कहें। विशेष—शरीरकी अवगाहना जघन्य अंगुल का असंख्यातवां भाग, उत्कृष्ट १ हजार योजन। उनके पांच इन्द्रियां होती हैं। स्थिति व अनुबन्ध जघन्य अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट पूर्वकोटी का है। शेष पूर्ववत्। भव की अपेक्षा जघन्य दो भव उत्कृष्ट आठ भव, कालकी अपेक्षा जघन्य दो अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट ८८ हजार वर्ष अधिक चार पूर्वकोटी—इतने काल यावत्—गमनागमन करे। नवों गमकोंमें भवकी अपेक्षा जघन्य दो भव उत्कृष्ट आठ भव होते हैं। कालकी अपेक्षा उपयोगपूर्वक कायसंवेध कहना। विशेष—बीचके तीनों गमकों में बेइन्द्रियके बीचके गमकोंके समान जानें। अन्तिम तीनों गमकोंमें पहले तीन गमकोंके समान···। विशेष—स्थिति व अनुबंध जघन्य तथा उत्कृष्ट पूर्वकोटी होता है। शेष पूर्ववत्। यावत् नौवें गमकमें जघन्य पूर्वकोटी अधिक २२ हजार वर्ष, उत्कृष्ट चार पूर्वकोटी अधिक ८८ हजार वर्ष—इतने काल यावत् गति आगति करे।

(प्र० ३२-३४) यदि वह पृथिवीकायिक संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यचयोनिकोंसे आकर उत्पन्न हो तो क्या संख्यात वर्षकी आयु वाले अथवा असंख्यात···संज्ञी···

उत्पन्न हो ? गौतम ! वह संख्यात···आकर उत्पन्न हो पर असंख्यात वर्षकी आयु वाले तिर्यचयोनिकोंसे आकर उत्पन्न नहीं होता। यदि संख्यात···उत्पन्न हो तो क्या जलचरोंसे आकर उत्पन्न हो···इत्यादि शेष संपूर्ण वक्तव्यता असंज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यचकी तरह जानें। यावत् भगवन् ! वे एक समयमें कितने उत्पन्न हों ? गौतम ! जैसे रत्नप्रभामें उपजने योग्य संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यचकी वक्तव्यता कही है उसी प्रकार यहां भी कहें। विशेष—शरीरकी अवगाहना जघन्य अंगुलका असंख्यातवां भाग, उत्कृष्ट १ हजार योजन होती है। शेष सर्व पूर्ववत्। यावत्—कालकी अपेक्षा जघन्य दो अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट चार पूर्वकोटी अधिक ८८ हजार वर्ष—इतने काल यावत्—गति आगति करे। इस प्रकार नवों गमकोंमें सारा संवेध असंज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यचके समान जानें। पहले व बीचके तीनों गमकोंमें भी यही लब्धि-वक्तव्यता कहनी। पर बीचके तीनों गमकोंमें यह नौ विशेषताएं हैं—१. शरीरकी अवगाहना जघन्य व उत्कृष्ट अंगुल का असंख्यातवां भाग होती है। २. उनके तीन लेश्याएं होती हैं। ३. वे मिथ्या-दृष्टि होते हैं। ४. उन्हें दो अज्ञान होते हैं। ५. वे काययोग वाले हैं। ६. उनको तीन समुद्घात होते हैं। ७. स्थिति जघन्य व उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त होती है। ८. अध्यवसाय अप्रशस्त···। ९ अनुबंध स्थितिके समान जानें। शेष सर्व पूर्ववत्। अन्तिम तीन आलापकोंमें प्रथम गमकके समान वक्तव्यता कहें। विशेष-स्थिति व अनुबंध जघन्य व उत्कृष्ट पूर्वकोटीका होता है। शेष पूर्ववत् ॥७०१॥

(प्र० ३५-३७) भगवन् ! यदि वे पृथिवीकायिक मनुष्योंसे आकर उत्पन्न हों तो क्या संज्ञी मनुष्यों···असंज्ञी मनुष्योंसे आकर उत्पन्न हों ? गौतम ! संज्ञी व असंज्ञी दोनों प्रकारके मनुष्योंसे आकर उत्पन्न हों। भगवन् ! असंज्ञी मनुष्य जो पृथिवीकायिकोंमें उत्पन्न होने योग्य है, वह कितने कालकी स्थिति वाले पृथिवी-कायिकमें उत्पन्न हो ?···जैसे जघन्य कालकी स्थिति वाले असंज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यच-योनिकके संबंधमें तीन गम कहे हैं उसी प्रकार इसके सम्बन्धमें भी सामान्य तीन गमक सम्पूर्ण कहने। शेषके ६ गमक नहीं कहने। यदि वे संज्ञी मनुष्योंसे आकर उत्पन्न होते हैं तो क्या संख्यात वर्षकी आयु वाले···या असंख्यात···उत्पन्न हों ? गौतम ! वे संख्यात···उत्पन्न हों पर असंख्यात वर्षकी आयु वाले संज्ञी मनुष्योंसे आकर उत्पन्न न हों।

(प्र० ३८-४०) यदि वे संख्यात···उत्पन्न हों तो क्या पर्याप्त मनुष्योंसे आकर उत्पन्न हों ? या अपर्याप्त···? गौतम ! पर्याप्त व अपर्याप्त···दोनों प्रकारके संज्ञी मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं। भगवन् ! संख्यात वर्षकी आयु वाला पर्याप्त संज्ञी मनुष्य जो पृथिवीकायिकोंमें उत्पन्न होने योग्य है, वह कितने काल की स्थिति वाले पृथिवीकायिकोंमें उत्पन्न हो ? गौतम ! जघन्य

अन्तर्मुहूर्त की व उत्कृष्ट २२ हजार वर्ष की स्थिति वाले पृथिवीकायिकों में उत्पन्न हो। भगवन्! वे जीव एक समय में कितने उत्पन्न हों ?···रत्नप्रभामें उत्पन्न होने योग्य मनुष्य की जो वक्तव्यता कही है वह यहां तीनों आलापकों में कहनी। विशेष—अवगाहना जघन्य अंगुलका असंख्यातवां भाग उत्कृष्ट पांच सौ धनुष। स्थिति-जघन्य अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट पूर्वकोटी। इसी प्रकार अनुबंध भी जानें। संवेध जैसे संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंचका कहा गया है वैसे नवों गमों में कहें। बीचके तीन गमों में संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंचकी वक्तव्यता कहें। शेष सर्व पूर्ववत्। अन्तिम तीन गमक इस औधिक-सामान्य गमके समान कहें। विशेष—शरीरकी अवगाहना जघन्य व उत्कृष्ट पांच सौ धनुष। स्थिति व अनुबंध जघन्य व उत्कृष्ट पूर्व कोटि का। शेष पूर्ववत्।

(प्र० ४१- ४४) यदि वे पृथिवीकायिक देवोंसे आकर उत्पन्न हों तो क्या भवनपति देवोंसे, वाणव्यन्तर···, ज्योतिष्क···या वैमानिक देवोंसे आकर उत्पन्न हों। गौतम! भवनवासी यावत् वैमानिक देवों से भी आकर उत्पन्न हों। यदि वे भवनपति देवोंसे···उत्पन्न हों तो क्या असुरकुमारों से···यावत्-स्तनितकुमारोंसे आकर उत्पन्न हों? गौतम! वे असुरकुमार यावत् स्तनितकुमारोंसे भी···। भगवन्! असुरकुमार जो पृथिवीकायिकमें उत्पन्न होने योग्य है, वह कितने काल की स्थिति वाले पृथिवीकायिकमें उत्पन्न हो? गौतम! वह जघन्य अन्तर्मुहूर्तकी व उत्कृष्ट २२ हजार वर्ष की स्थिति वाले पृथिवीकायिकोंमें उत्पन्न हो। भगवन्! वे असुरकुमार एक समयमें कितने उत्पन्न हों? गौतम! जघन्य एक, दो या तीन उत्कृष्ट संख्यात या असंख्यात उत्पन्न हों।

(प्र० ४५-४७) भगवन्! उन जीवोंके शरीर कितने संघयण वाले होते हैं? गौतम! उनके शरीर छहों संघयणरहित होते हैं, यावत् परिणमते हैं। भगवन्! उन जीवोंके शरीरोंकी अवगाहना कितनी कही है? गौतम! उनके भवधारणीय व उत्तरवैक्रिय इस प्रकार दो प्रकार की अवगाहना होती है। भवधारणीय अ०—जघन्य अंगुलका असंख्यातवां भाग, उत्कृष्ट सात हाथ। उत्तरवैक्रिय अ०—जघन्य अंगुल का असंख्यातवां भाग, उत्कृष्ट एक लाख योजन। भगवन्! उन जीवोंके शरीर कितने संस्थान वाले कहे हैं? गौतम! उनके शरीर भवधारणीय व उत्तरवैक्रिय, दो प्रकार के कहे हैं। भवधारणीय शरीरका समचतुरस्र व उत्तर-वैक्रियका अनेक प्रकार का संस्थान होता है। लेश्याएं चार होती हैं। दृष्टि तीनों प्रकार की होती हैं। उन्हें तीन ज्ञान अवश्य होते हैं और अज्ञान तीन विकल्प से···। उनको तीन योग, दोनों उपयोग, चार संज्ञाएं, चार कषाय, पांच इन्द्रियां और पांच समुद्घात होते हैं। वेदना दोनों प्रकार की···। स्त्रीवेद व पुरुषवेद होता है पर नपुंसकवेद नहीं होता। स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष उत्कृष्ट कुछ

अधिक सागरोपम की। अध्यवसाय प्रशस्त व अप्रशस्त दोनों··· । अनुवंध स्थितिके समान जानना । संवेध—भव की अपेक्षा दो भव, कालकी अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक दस हजार वर्ष, उत्कृष्ट २२ हजार वर्ष अधिक साधिक सागरोपम–इतने काल यावत्—गति-आगति करे। इस प्रकार नवों गम जानना। विशेष बीच के तीन व अन्तिम तीन गमोंमें असुरकुमारोंकी स्थिति के सम्बन्धमें विशेषता होती है। शेष सारी औधिक वक्तव्यता व कायसंवेध जानना। संवेधमें सभी जगह दो भव जानना। इस प्रकार यावत् नौवें गममें कालादेशसे जघन्य व उत्कृष्ट साधिक सागरोपम सहित २२ हजार वर्ष—इतने काल यावत्—गति आगति करे।

(प्र० ४८-५०) भगवन् ! जो नागकुमार देव पृथिवीकायिक में उत्पन्न होने योग्य है, वह कितने कालकी स्थिति वाले पृथिवीकायिकमें उत्पन्न हो ? यहां पूर्वोक्त सारी असुरकुमारकी वक्तव्यता यावत् भवादेश तक कहें। विशेष—स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष, उत्कृष्ट कुछ कम दो पल्योपमकी होती है। इसी प्रकार अनुवंध भी जानना। काल की अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक दस हजार वर्ष व उत्कृष्ट कुछ कम दो पल्योपम सहित २२ हजार वर्ष—इतने काल यावत्-गमनागमन करे। इस प्रकार नवों आलापक असुरकुमारके आलापककी तरह जानें। विशेष—स्थिति व कालादेश (भिन्न) जानना। इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमारों तक जानना। यदि वे वाणव्यन्तरोंसे आकर उत्पन्न हों तो क्या पिशाच··· यावत् गांधर्ववाणव्यंतरों से आकर उत्पन्न हों ? गौतम ! वे पिशाच यावत् गांधर्व···आकर उत्पन्न हों। भगवन् ! वाणव्यंतर देव जो पृथिवीकायिकों···योग्य है वह कितने काल···उत्पन्न हो ? यहां भी असुरकुमारों की तरह नौ गमक कहने। विशेष–स्थिति व कालादेश भिन्न जानें। स्थिति जघन्य १० हजार वर्ष की, उत्कृष्ट पल्योपम की। शेष उसी प्रकार।

(प्र० ५१-५३)···यदि वे ज्योतिष्क देवोंसे आकर उत्पन्न हों तो क्या चन्द्र विमान ज्योतिष्क···यावत् तारा विमान···उत्पन्न हों ? गौतम ! वे चन्द्र विमान··· यावत् तारा विमान···से आकर उत्पन्न हों। भगवन् ! जो ज्योतिष्क देव पृथिवीकायिक···योग्य है, वह कितने···उत्पन्न हो ? सारी वक्तव्यता असुरकुमार लब्धि वक्तव्यतावत्। विशेष—उनके एक तेजोलेश्या होती है। तीन ज्ञान अथवा तीन अज्ञान अवश्य होते हैं। स्थिति जघन्य पल्योपम का आठवां भाग उत्कृष्ट १ लाख वर्ष अधिक १ पल्योपम। इसी प्रकार अनुवन्ध भी जानना। संवेध-कालकी अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक पल्योपम का आठवां भाग, उत्कृष्ट १ लाख २२ हजार वर्ष अधिक एक पल्योपम—इतने काल यावत्—गमनागमन करे।

अन्तर्मुहूर्त की व उत्कृष्ट २२ हजार वर्ष की स्थिति वाले पृथिवीकायिकों में उत्पन्न हो। भगवन् ! वे जीव एक समय में कितने उत्पन्न हों ?···रत्नप्रभामें उत्पन्न होने योग्य मनुष्य की जो वक्तव्यता कही है वह यहां तीनों आलापकों में कहनी। विशेष—अवगाहना जघन्य अंगुलका असंख्यातवां भाग उत्कृष्ट पांच सौ धनुष। स्थिति-जघन्य अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट पूर्वकोटी। इसी प्रकार अनुबंध भी जानें। संवेध जैसे संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंचका कहा गया है वैसे नवों गमों में कहें। बीचके तीन गमों में संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंचकी वक्तव्यता कहें। शेष सर्व पूर्ववत्। अन्तिम तीन गमक इस औधिक-सामान्य गमके समान कहें। विशेष—शरीरकी अवगाहना जघन्य व उत्कृष्ट पांच सौ धनुष। स्थिति व अनुबंध जघन्य व उत्कृष्ट पूर्व कोटि का। शेष पूर्ववत्।

(प्र० ४१- ४४) यदि वे पृथिवीकायिक देवोंसे आकर उत्पन्न हों तो क्या भवनपति देवोंसे, वाणव्यन्तर···, ज्योतिष्क···या वैमानिक देवोंसे आकर उत्पन्न हों। गौतम ! भवनवासी यावत् वैमानिक देवों से भी आकर उत्पन्न हों। यदि वे भवनपति देवोंसे···उत्पन्न हों तो क्या असुरकुमारों से···यावत्-स्तनितकुमारोंसे आकर उत्पन्न हों ? गौतम ! वे असुरकुमार यावत् स्तनितकुमारोंसे भी···। भगवन् ! असुरकुमार जो पृथिवीकायिकमें उत्पन्न होने योग्य है, वह कितने काल की स्थिति वाले पृथिवीकायिकमें उत्पन्न हो ? गौतम ! वह जघन्य अन्तर्मुहूर्तकी व उत्कृष्ट २२ हजार वर्ष की स्थिति वाले पृथिवीकायिकोंमें उत्पन्न हो। भगवन् ! वे असुरकुमार एक समयमें कितने उत्पन्न हों ? गौतम ! जघन्य एक, दो या तीन उत्कृष्ट संख्यात या असंख्यात उत्पन्न हों।

(प्र० ४५-४७) भगवन् ! उन जीवोंके शरीर कितने संघयण वाले होते हैं ? गौतम ! उनके शरीर छहों संघयणरहित होते हैं, यावत् परिणमते हैं। भगवन् ! उन जीवोंके शरीरोंकी अवगाहना कितनी कही है ? गौतम ! उनके भवधारणीय व उत्तरवैक्रिय इस प्रकार दो प्रकार की अवगाहना होती है। भवधारणीय अ०—जघन्य अंगुलका असंख्यातवां भाग, उत्कृष्ट सात हाथ। उत्तरवैक्रिय अ०—जघन्य अंगुल का असंख्यातवां भाग, उत्कृष्ट एक लाख योजन। भगवन् ! उन जीवोंके शरीर कितने संस्थान वाले कहे हैं ? गौतम ! उनके शरीर भवधारणीय व उत्तरवैक्रिय, दो प्रकार के कहे हैं। भवधारणीय शरीरका समचतुरस्र व उत्तर-वैक्रियका अनेक प्रकार का संस्थान होता है। लेश्याएं चार होती हैं। दृष्टि तीनों प्रकार की होती हैं। उन्हें तीन ज्ञान अवश्य होते हैं और अज्ञान तीन विकल्प से···। उनको तीन योग, दोनों उपयोग, चार संज्ञाएं, चार कषाय, पांच इन्द्रियां और पांच समुद्‌घात होते हैं। वेदना दोनों प्रकार की···। स्त्रीवेद व पुरुषवेद होता है पर नपुंसकवेद नहीं होता। स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष उत्कृष्ट कुछ

अधिक सागरोपम की। अध्यवसाय प्रशस्त व अप्रशस्त दोनों··· । अनुबंध स्थितिके समान जानना। संवेध—भव की अपेक्षा दो भव, कालकी अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक दस हजार वर्ष, उत्कृष्ट २२ हजार वर्ष अधिक साधिक सागरोपम–इतने काल यावत्—गति-आगति करे। इस प्रकार नवों गम जानना। विशेष बीच के तीन व अन्तिम तीन गमोंमें असुरकुमारोंकी स्थिति के सम्बन्धमें विशेषता होती है। शेष सारी औधिक वक्तव्यता व कायसंवेध जानना। संवेधमें सभी जगह दो भव जानना। इस प्रकार यावत् नौवें गममें कालादेशसे जघन्य व उत्कृष्ट साधिक सागरोपम सहित २२ हजार वर्ष—इतने काल यावत्—गति आगति करे।

(प्र० ४८-५०) भगवन् ! जो नागकुमार देव पृथिवीकायिक में उत्पन्न होने योग्य है, वह कितने कालकी स्थिति वाले पृथिवीकायिकमें उत्पन्न हो ? यहां पूर्वोक्त सारी असुरकुमारकी वक्तव्यता यावत् भवादेश तक कहें। विशेष—स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष, उत्कृष्ट कुछ कम दो पल्योपमकी होती है। इसी प्रकार अनुबंध भी जानना। काल की अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक दस हजार वर्ष व उत्कृष्ट कुछ कम दो पल्योपम सहित २२ हजार वर्ष—इतने काल यावत्-गमनागमन करे। इस प्रकार नवों आलापक असुरकुमारके आलापककी तरह जानें। विशेष—स्थिति व कालादेश (भिन्न) जानना। इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमारों तक जानना। यदि वे वाणव्यन्तरोंसे आकर उत्पन्न हों तो क्या पिशाच··· यावत् गांधर्ववाणव्यंतरों से आकर उत्पन्न हों ? गौतम ! वे पिशाच यावत् गांधर्व···आकर उत्पन्न हों। भगवन् ! वाणव्यंतर देव जो पृथिवीकायिकों···योग्य है वह कितने काल···उत्पन्न हो ? यहां भी असुरकुमारों की तरह नौ गमक कहने। विशेष–स्थिति व कालादेश भिन्न जानें। स्थिति जघन्य १० हजार वर्ष की, उत्कृष्ट पल्योपम की। शेष उसी प्रकार।

(प्र० ५१-५३)···यदि वे ज्योतिष्क देवोंसे आकर उत्पन्न हों तो क्या चन्द्र विमान ज्योतिष्क···यावत् तारा विमान···उत्पन्न हों ? गौतम ! वे चन्द्र विमान··· यावत् तारा विमान···से आकर उत्पन्न हों। भगवन् ! जो ज्योतिष्क देव पृथिवीकायिक···योग्य है, वह कितने···उत्पन्न हो ? सारी वक्तव्यता असुरकुमार लब्धि वक्तव्यतावत्। विशेष—उनके एक तेजोलेश्या होती है। तीन ज्ञान अथवा तीन अज्ञान अवश्य होते हैं। स्थिति जघन्य पल्योपम का आठवां भाग उत्कृष्ट १ लाख वर्ष अधिक १ पल्योपम। इसी प्रकार अनुबन्ध भी जानना। संवेध-कालकी अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक पल्योपम का आठवां भाग, उत्कृष्ट १ लाख २२ हजार वर्ष अधिक एक पल्योपम—इतने काल यावत्—गमनागमन करे।

इसी प्रकार वाकीके आठ गम भी जानें। विशेष–स्थिति व कालादेश पहले से भिन्न जानें। यदि वे (पृथिवीकायिक) वैमानिक देवों से आकर उत्पन्न हों तो क्या कल्पोपपन्नक वैमानिक देवोंसे ······कल्पातीत···उत्पन्न हों ? गौतम ! वे कल्पोपपन्नक···कल्पातीत वैमानिक देवोंसे आकर उत्पन्न नहीं होते।

(प्र० ५४-५६) भगवन् ! यदि वे कल्पोपपन्न वैमानिक देवों से आकर उत्पन्न हों तो क्या सौधर्म···यावत् अच्युत···आकर उत्पन्न हों ? गौतम ! सौधर्म व ईशान कल्पोपपन्न देवोंसे आकर उत्पन्न हों, पर सनत्कुमार यावत् अच्युत कल्पोपपन्न वैमानिक देवोंसे आकर उत्पन्न न हों। भगवन् ! जो सौधर्म कल्पोपपन्न वैमानिक देव पृथ्वीकायिक में उत्पन्न होने योग्य है, वह कितने···उत्पन्न हो ? यहां ज्योतिषिकके गमकके समान कहें। विशेप—स्थिति व अनुबंध जघन्य पल्योपम व उत्कृष्ट दो सागरोपम होता है। संवेध—कालकी अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक पल्योपम, उत्कृष्ट २२ हजार वर्ष अधिक २ सागरोपम—इतने काल–यावत्—गमनागमन करे। इसी प्रकार वाकीके आठों गम भी जानें। विशेष—स्थिति व कालादेश भिन्न जानें। भगवन् ! जो ईशानदेव पृथिवीकायिकोंमें उत्पन्न होने योग्य है···इत्यादिके संबंधमें भी नवों गम कहने। विशेप–स्थिति व अनुबंध जघन्य साधिक पल्योपम, उत्कृष्ट साधिक दो सागरोपम। शेप सब उसी प्रकार जानें। हे भगवन् !······विचरते हैं ॥७०२॥

॥ २४ वें शतकका १२ वां उद्देशक समाप्त ॥

—०—

तेरहवां उद्देशक

भगवन् ! अप्कायिक कहांसे आकर उत्पन्न हों–इत्यादि जैसे पृथिवीकायिक के उद्देशकमें कहा है वैसे ही जानें, यावत्। भगवन् ! जो पृथिवीकायिक अप्कायिकों में उत्पन्न होने योग्य है वह कितने कालकी स्थिति वाले अप्कायिकोंमें उत्पन्न हो ? गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट सात हजार वर्ष की स्थिति वाले अप्कायिक में उत्पन्न हो। इस प्रकार पृथिवीकायिक उद्देशक के समान यह उद्देशक कहना। विशेष—स्थिति और संवेध भिन्न जानना। शेप पूर्ववत्।······॥७०३॥

॥ २४ वें शतक का १३ वां उद्देशक समाप्त ॥

—०—

चौदहवां उद्देशक

भगवन् ! तेजस्कायिक कहां से आकर उत्पन्न हों···इत्यादि पृथिवीकायिक उद्देशकके समान यह उद्देशक भी कहें। विशेप—स्थिति और संवेध भिन्न जानें—तथा तेजस्कायिक देवों से आकर उत्पन्न नहीं होते। शेप पूर्ववत्······॥७०४॥

॥ २४ वें शतक का १४ वां उद्देशक समाप्त ॥

पन्द्रहवां उद्देशक

भगवन् ! वायुकायिक कहांसे आकर उत्पन्न होते हैं—इत्यादि जैसे तेजस्कायिक उद्देशकमें कहा है वैसे कहना । विशेष—स्थिति व संवेध भिन्न जानना……॥७०५॥

॥ २४ वें शतक का १५ वां उद्देशक समाप्त ॥

—०—

सोलवां उद्देशक

भगवन् ! वनस्पतिकायिक कहां से आकर उत्पन्न हों—इत्यादि पृथ्वीकायिक उद्देशकवत् । विशेष—जब वनस्पतिकायिक वनस्पतिकायिकोंमें उत्पन्न हों, तो पहले, दूसरे, चौथे व पांचवें आलापकमें 'प्रतिसमय निरन्तर अनन्त जीव उत्पन्न होते हैं' ऐसा कहना । भवकी अपेक्षा जघन्य दो भव उत्कृष्ट अनंत भव तथा कालकी अपेक्षा जघन्य दो अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट अनंत काल इतने काल यावत् गमनागमन करे । शेष आलापकोंमें उसी प्रकार आठ भव जानें । विशेष—स्थिति व संवेध ये भिन्न २ जानें…॥७०६॥

॥ २४ वें शतक का १६ वां उद्देशक समाप्त ॥

सत्रहवां उद्देशक

भगवन् ! बेइंद्रिय जीव कहां से आकर उत्पन्न होते हैं…इत्यादि यावत् भगवन् ! जो पृथ्वीकायिक जीव बेइन्द्रियमें उत्पन्न होने योग्य है वह कितने काल की स्थिति वाले बेइन्द्रियमें उत्पन्न हो ? यहां पूर्वोक्त पृथ्वीकायिक—वक्तव्यता कहें । यावत् काल की अपेक्षा जघन्य दो अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट संख्यात भव । इतने काल यावत् गति-आगति करे । जैसे पृथ्वीकायिकके साथ बेइन्द्रिय का संवेध कहा, वैसे ही पहले, दूसरे, चौथे और पांचवें इन चार आलापकों में संवेध कहें और शेष पांच आलापकों में पूर्वोक्त आठ भव जानना । इस प्रकार अप्कायिक से लेकर यावत् चउरिन्द्रियके साथ चार आलापकों में संख्यात भव, शेष पांच आलापकों में आठ भव जानें । पंचेन्द्रिय तिर्यंच व मनुष्योंके साथ पूर्वोक्त आठ भव जानें । तथा देवोंमें से आकर उत्पन्न नहीं होते । स्थिति और संवेध भिन्न जानना……॥७०७॥

॥ २४ वें शतकका १७ वां उद्देशक समाप्त ॥

---

१८ वां उद्देशक

भगवन् ! तेइन्द्रिय कहां से आकर उत्पन्न होते हैं, इत्यादि बेइन्द्रिय-उद्देशक के समान तेइन्द्रियके संबंधमें भी कहना । विशेष-स्थिति और संवेध भिन्न २ जानें ।

तेजस्कायिकोंके साथ [तेइन्द्रियों का संवेध] तीसरे गम में उत्कृष्ट २०८ रात दिन का होता है और बेइन्द्रियों के साथ तीसरे गममें उत्कृष्ट १९६ रात दिन अधिक अड़तालीस वर्ष होता है। तेइन्द्रियों के साथ तीसरे गम में उत्कृष्ट ३९२ रात दिन जानें। इस प्रकार यावत् संज्ञी मनुष्य तक सर्वत्र जानें ···॥७०८॥

॥ २४ वें शतक का १८ वां उद्देशक समाप्त ॥

—०—

उन्नीसवां उद्देशक

भगवन्! चउरिन्द्रिय जीव कहां से आकर उत्पन्न होते हैं?···जिस प्रकार तेइन्द्रियोंका उद्देशक कहा उसी प्रकार चउरिन्द्रियोंके संबंधमें भी कहना। विशेष–स्थिति व संवेध भिन्न जानें। हे भगवन्!······विचरते हैं॥७०९॥

॥ २४ वें शतक का १९ वां उद्देशक समाप्त ॥

—०—

बीसवां उद्देशक

(प्र०१-४) भगवन्! पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक कहां से आकर उत्पन्न हों? क्या नैरयिकों से, तिर्यंचयोनिकों से, मनुष्यों से या देवों से आकर उत्पन्न हों? गौतम! वे नैरयिकों से···यावत् देवों से भी आकर उत्पन्न होते हैं। यदि वे नैरयिकों से आकर उत्पन्न हों तो क्या रत्नप्रभापृथिवी के नैरयिकों से या यावत् अधःसप्तम पृथ्वी के नैरयिकों से आकर उत्पन्न हों? गौतम! वे रत्नप्रभापृथिवी···यावत् अधःसप्तम पृथिवी के नैरयिकों से भी आकर उत्पन्न हों। भगवन्! रत्नप्रभा पृथिवी का नैरयिक जो पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिकों में उत्पन्न होने योग्य है, वह कितने काल की स्थिति वाले तिर्यंचों में उत्पन्न हो? गौतम! वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट पूर्वकोटी की स्थिति वाले पंचेन्द्रिय तिर्यंचों में उत्पन्न हो। भगवन्! वे जीव एक समय में कितने उत्पन्न हों? जैसे असुरकुमार की वक्तव्यता कही है, वैसे यहां कहें। विशेष–संघयण में अनिष्ट व अमनोज्ञ पुद्गल यावत् परिणमते हैं। अवगाहना भवधारणीय व उत्तरवैक्रिय–दो प्रकार की है। भवधारणीय शरीर की अवगाहना (उत्पत्ति–समय की अपेक्षा) जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग की व उत्कृष्ट सात धनुष, तीन हाथ व ६ अंगुल की है। उत्तरवैक्रिय शरीर की अवगाहना जघन्य अंगुल का संख्यातवां भाग व उत्कृष्ट पंद्रह धनुष व अढ़ाई हाथ की होती है।

(प्र०५-६) भगवन्! उन जीवों के शरीर कितने संस्थान वाले कहे हैं? गौतम! उनके शरीर दो प्रकार के कहे हैं—भवधारणीय व उत्तरवैक्रिय। उसमें जो भवधारणीय शरीर है, वह हुंडक संस्थान वाला होता है। इसी प्रकार उत्तर-वैक्रिय भी। उनके एक·· कापोतलेश्या होती है। समुद्घात चार···हैं। स्त्रीवेद व

पुरुषवेद नहीं, पर एक नपुंसकवेद है। स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष की व उत्कृष्ट सागरोपम प्रमाण। इसी प्रकार अनुबंध भी जानें। शेष पूर्ववत्। भवकी अपेक्षा जघन्य दो भव व उत्कृष्ट आठ भव, कालको अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक दस हजार वर्ष व उत्कृष्ट चार पूर्वकोटी अधिक चार सागरोपम-इतने काल यावत् गति आगति करे। यदि वह जघन्य कालकी स्थिति वाले पंचेन्द्रिय तिर्यंच में उत्पन्न हो तो जघन्य व उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की स्थिति वाले पंचेन्द्रिय तिर्यंच में उत्पन्न हो। शेष पूर्ववत्। विशेष--काल की अपेक्षा जघन्य ऊपर की तरह उत्कृष्ट चार अन्तर्मुहूर्त अधिक चार सागरोपम–इतने काल यावत्–गति आगति करे। इस प्रकार बाकी के सात गम जैसे नैरयिकउद्देशक में संज्ञी पंचेन्द्रिय के साथ कहे वैसे यहां भी जानें। बीच के व अंतिम तीन गमकों में स्थिति की विशेषता है। शेष पूर्ववत्। सब जगह स्थिति व संवेध भिन्न-भिन्न विचार कर कहें।

(प्र०७-८) भगवन्! शर्कराप्रभा का नैरयिक जो पंचेन्द्रिय तिर्यंचों में उत्पन्न होने योग्य है…इत्यादि रत्नप्रभा के समान शर्कराप्रभा के संबंध में भी नौ गमक कहना। विशेष–शरीर की अवगाहना संस्थानपद में कहे अनुसार जानें। उसे तीन ज्ञान व तीन अज्ञान अवश्य होते हैं। स्थिति व अनुबंध पूर्ववत्। इस प्रकार नवों गम विचारपूर्वक कहें। इस प्रकार यावत् छठी नरक तक जानें। विशेष अवगाहना, लेश्या, स्थिति, अनुबंध व संवेध भिन्न-भिन्न जानें। भगवन्! अधःसप्तम नरक पृथिवी का जो नैरयिक पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिकों में उत्पन्न होने योग्य है, वह कितने काल की स्थिति वाले पंचेन्द्रिय तिर्यंच में उत्पन्न हो ? पूर्ववत् नव गमक कहें। विशेष–अवगाहना, लेश्या, स्थिति व अनुबंध भिन्न-भिन्न जानें। संवेध–भवकी अपेक्षा जघन्य दो भव उत्कृष्ट छ भव, काल की अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक २२ सागरोपम, उत्कृष्ट तीन पूर्वकोटी अधिक ६६ सागरोपम इतने काल यावत्–गमनागमन करे। पहले छहों गमकों में जघन्य दो भव उत्कृष्ट छ भव, पिछले तीनों गमकों में जघन्य दो भव व उत्कृष्ट चार भव जानें। नवों गमकों में पहले गमक के समान वक्तव्यता कहनी। पर दूसरे गम में स्थिति की विशेषता है। काल की अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक २२ सागरोपम व उत्कृष्ट तीन अन्तर्मुहूर्त अधिक ६६ सागरोपम–इतने काल यावत्-गमनागमन करे। तीसरे गम में जघन्य पूर्वकोटी अधिक २२ सागरोपम, उत्कृष्ट तीन पूर्व-कोटी अधिक ६६ सागरोपम। चौथे गम में जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक २२ सागरोपम व उत्कृष्ट तीन पूर्वकोटी अधिक ६६ सागरोपम। पांचवें गम में जघन्य अ० अधिक २२ सागरोपम व उत्कृष्ट तीन अन्तर्मुहूर्त अधिक ६६ सागरोपम। छठे गम में जघन्य पूर्वकोटी अधिक २२ सा० व उत्कृष्ट तीन पूर्वकोटी अधिक ६६ सा०। सातवें गममें जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक ३३ सा० व उत्कृष्ट दो पूर्वकोटी

अधिक ६६ सा० । आठवें गम में जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक ३३ सागरोपम, उत्कृष्ट २ अन्तर्मुहूर्त अधिक ६६ सागरोपम, नौवें गममें जघन्य पूर्वकोटी अधिक ३३ सागरोपम, उत्कृष्ट दो पूर्वकोटी अधिक ६६ सागरोपम--इतने काल यावत् गमनागमन करे ।

(प्र० ६-११) भगवन् ! यदि वह तिर्यंचयोनिकों से आकर उत्पन्न हो तो क्या एकेन्द्रिय तिर्यंचयोनिकों से आकर उत्पन्न हो—इत्यादि पृथिवीकायिक उद्देशक में कहे अनुसार यहां उपपात कहना यावत् भगवन् ! जो पृथिवीकायिक पंचेन्द्रियतिर्यंचयोनिकों में उत्पन्न होने योग्य है, वह कितने काल की स्थिति वाले तिर्यंचयोनिकों में उत्पन्न हो ? गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट पूर्वकोटी की स्थिति वालों में उत्पन्न हो । भगवन् ! वे एक समय में कितने उत्पन्न हों—इत्यादि परिमाण से लेकर अनुबंध तक जो अपने स्वस्थान में वक्तव्यता कही है उसी प्रकार यहां भी कहें । विशेष—नवों गमकों में परिमाण जघन्य एक, दो या तीन उत्कृष्ट संख्यात या असंख्यात उत्पन्न होते हैं । संवेध—भव की अपेक्षा नवों गमकों में जघन्य दो भव व उत्कृष्ट आठ भव जानें । शेष पूर्ववत् । काल की अपेक्षा दोनों की स्थिति इकट्ठी करके संवेध करना ।

(प्र० १२ से १५) यदि अप्कायिकों से आकर उत्पन्न हों तो······ इत्यादि पूर्ववत् अप्काय के सम्बन्ध में भी कहना । इसी प्रकार यावत् चउरिन्द्रिय तक का उपपात कहें । परन्तु सब जगह अपनी २ वक्तव्यता कहनी । नवों गमकों में भवादेश जघन्य दो भव उत्कृष्ट आठ भव, कालादेश दोनों की स्थिति जोड़ कर करें । जिस प्रकार पृथिवीकायिकों में उत्पन्न होने वाले की वक्तव्यता कही है, उसी प्रकार सभी गमों में सभी जीवों के सम्बन्ध में कहना । सब जगह स्थिति व संवेध भिन्न जानना । भगवन् ! यदि वे पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिकों से आकर उत्पन्न हों तो क्या संज्ञी पंचेन्द्रिय······ अथवा असंज्ञी······उत्पन्न हों ? गौतम ! वे दोनों प्रकार के तिर्यंचों में से आकर उत्पन्न हों—इत्यादि जैसे पृथिवीकायिकों में उत्पन्न होने वाले तिर्यंचों के भेद कहे हैं वैसे यहां भी कहें । यावत् भगवन् ! असंज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच-योनिक जो पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिकों में उत्पन्न होने योग्य है, वह कितने काल की स्थिति वाले संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच में उत्पन्न हो ? गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त व उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवें भाग की स्थिति वाले पंचेन्द्रिय तिर्यंच में उत्पन्न हो । भगवन् ! वे एक समय में कितने उत्पन्न हों······ इत्यादि के सम्बन्ध में पृथिवीकायिक में उत्पन्न होने वाले असंज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंचों की वक्तव्यतानुसार यावत् भवादेश तक कहें । काल की अपेक्षा

जघन्य दो अंतर्मुहूर्त उत्कृष्ट पूर्वकोटी पृथक्त्व अधिक पल्योपम का असंख्यातवां भाग—इतने काल यावत् गमनागमन करे। दूसरे गम में भी यही वक्तव्यता कहें। विशेष—कालादेशसे जघन्य दो अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट चार अन्तर्मुहूर्त अधिक चार पूर्वकोटी—इतने काल यावत्—गति आगति करे।

(प्र० १६-१७) यदि वह उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले संज्ञी पं० तिर्यचयोनिकों में उत्पन्न हो तो जघन्य व उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवें भाग की स्थिति वाले संज्ञी पं० तिर्यच में उत्पन्न हो। भगवन् ! वे जीव एक समय में कितने उत्पन्न हों—इत्यादि जैसे रत्नप्रभा पृथिवी में उत्पन्न होने वाले असंज्ञी पं० तिर्यच की वक्तव्यता कही है, वैसे यावत् कालादेश तक समस्त वक्तव्यता कहें ; विशेष—परिमाण जघन्य एक, दो, या तीन व उत्कृष्ट संख्यात उत्पन्न होते हैं। शेष उसी प्रकार जानें। यदि वह स्वयं जघन्य काल की स्थिति वाला हो तो जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट पूर्वकोटी वर्ष की स्थिति वाले संज्ञी पं० तिर्यचों में उत्पन्न हो । भगवन् ! वे जीव एक समय में कितने उत्पन्न हों इत्यादि पृथिवीकायिकों में उत्पन्न होने वाले जघन्य आयुष्य वाले असंज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यच के वीच के तीन गमों में जैसे कहा है वैसे यहां भी तीनों गमकों में यावत् अनुवन्ध तक कहना। भवादेश से जघन्य दो भव उत्कृष्ट आठ भव, कालादेश से जघन्य दो अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट चार अन्तर्मुहूर्त अधिक चार पूर्वकोटी वर्ष—इतने काल यावत् गमनागमन करे।

(प्र० १८-२०) यदि वह जघन्य काल की स्थिति वाला संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यचों में उत्पन्न हो तो उसे भी यही वक्तव्यता कहनी। विशेष—कालादेश से जघन्य दो अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट आठ अन्तर्मुहूर्त—इतने काल यावत् गमनागमन करे। यदि वही उत्कृष्ट······उत्पन्न हो तो जघन्य व उत्कृष्ट पूर्वकोटी वर्ष की स्थिति वाले संज्ञी पं० तिर्यच में उत्पन्न हो। वक्तव्यता पूर्ववत्। विशेष—कालादेश भिन्न जानना । यदि वही जीव स्वयं उत्कृष्ट काल की स्थिति वाला हो तो उसे प्रथम गमक की वक्तव्यता कहनी। विशेष—स्थिति जघन्य व उत्कृष्ट पूर्वकोटी की होती है । शेष पूर्ववत्। कालादेश से जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक पूर्वकोटी व उत्कृष्ट पूर्वकोटीपृथक्त्व अधिक पल्योपम का असंख्यातवां भाग—इतने काल यावत्—गमनागमन करे ।

(प्र० २१-२३) यदि वह जघन्य काल की स्थिति वाले तिर्यचमें उत्पन्न हो तो उसके संबंधमें भी यही (सातवें गमक की) वक्तव्यता कहें । विशेष–कालादेश से जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक पूर्वकोटी, उत्कृष्ट चार अन्तर्मुहूर्त अधिक चार पूर्व-कोटि—इतने काल यावत्–गमनागमन करे। यदि वह उत्कृष्ट काल की स्थिति

वाले संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच में उत्पन्न हो तो वह जघन्य व उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवें भाग की स्थिति वाले सं० पं० ति० में उत्पन्न हो-इत्यादि जैसे रत्नप्रभामें उत्पन्न होने वाले असंज्ञी पंचेन्द्रिय की वक्तव्यता कही है, वैसे यावत् कालादेश तक सारी वक्तव्यता कहनी। परन्तु इसके तीसरे गममें कहे अनुसार परिमाण कहें। शेप पूर्ववत्। यदि वे संज्ञी पं० ति० से आकर उत्पन्न हों तो क्या संख्यात वर्ष की आयु वाले···या असंख्यात···आकर उत्पन्न हों ? गौतम ! वे संख्यात···उत्पन्न हों। पर असंख्यात वर्षको आयु वाले तिर्यंचोंमें से आकर उत्पन्न नहीं होते।

(प्र० २४-२६) यदि वे संख्यात वर्ष की आयु···उत्पन्न हों तो क्या पर्याप्त ···या अपर्याप्त···से आकर उत्पन्न हों ?·· वे दोनोंमें से आकर उत्पन्न हों। भगवन् ! संख्यात वर्ष की आयु वाला संज्ञी पं० ति० जो संज्ञी पं० तिर्यंचयोनिकोंमें उत्पन्न होने योग्य है, वह कितने कालकी स्थिति वाले संज्ञी पं० ति० में उत्पन्न हो ? गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट तीन पल्योपम की स्थिति वाले संज्ञी पं० ति० में उत्पन्न हो। भगवन् ! वे संज्ञी पं० ति० एक समय में कितने उत्पन्न हों— इत्यादि सब रत्नप्रभा में उत्पन्न होने वाले इस संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंचके प्रथम गमक के समान जानें। शरीरप्रमाण जघन्य अंगुलका असंख्यातवां भाग उत्कृष्ट एक हजार योजन होता है। शेप सब उसी प्रकार यावत् भवादेश तक जानना। कालादेशसे जघन्य दो अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट पूर्वकोटी पृथक्त्व अधिक तीन पल्योपम-इतने काल यावत्-गमनागमन करे।

(प्र० २७-२८) यदि वही जीव जघन्य काल की स्थिति वाले संज्ञी पं० तिर्यंच में उत्पन्न हो तो यही पूर्वोक्त वक्तव्यता कहें। परन्तु कालादेशसे जघन्य दो अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट चार अन्तर्मुहूर्त अधिक चार पूर्वकोटि—इतने काल यावत् गमनागमन करे। यदि वही उत्कृष्ट काल···उत्पन्न हो तो जघन्य व उत्कृष्ट तीन पल्योपम की स्थिति वाले संज्ञी पं० ति० में उत्पन्न हो-इत्यादि पूर्वोक्त वक्तव्यता कहनी। पर परिमाण-जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट संख्यात जीव उत्पन्न हों। उनका शरीर जघन्य अंगुल का असंख्यातवां भाग उत्कृष्ट १ हजार योजन होता है। शेप पूर्ववत् यावत् अनुबंध तक जानना। भवादेशसे दो भव और कालादेशसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक तीन पल्योपम, उत्कृष्ट पूर्वकोटी अधिक तीन पल्योपम—इतने काल यावत्—गमनागमन करे।

(प्र० २९-३०) यदि वह स्वयं जघन्य स्थिति वाला हो तो वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त आयु वाले व उत्कृष्ट पूर्वकोटी की स्थिति वाले संज्ञी पं० ति० में उत्पन्न हो। उसके संबंध में पृथिवीकायिकमें उत्पन्न होने वाले इसी संज्ञी पंचेन्द्रियकी जो वक्तव्यता कही है वह इस उद्देशकमें मध्यके चौथे, पांचवें और छठे इन तीन

गमकोंमें कहनी और असंज्ञी पंचेन्द्रिय के बीच के तीन गमकोंमें जो संवेध कहा है, उसी प्रकार यहां कहना। यदि वह स्वयं उत्कृष्ट काल की स्थिति वाला हो तो उसके सम्बन्धमें प्रथम गमक के समान कहना। परन्तु स्थिति व अनुबंध जघन्य व उत्कृष्ट पूर्वकोटी का होता है। कालादेशसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक पूर्वकोटी उत्कृष्ट पूर्वकोटी पृथकत्व अधिक तीन पल्योपम-इतने काल यावत्—गमनागमन करे।

(प्र० ३१-३२) यदि वही जीव जघन्य स्थिति वाले······उत्पन्न हो तो पूर्वोक्त वक्तव्यता कहनी। विशेष-कालादेश से जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक पूर्वकोटी उत्कृष्ट चार अन्तर्मुहूर्त अधिक चार पूर्वकोटी—इतने काल यावत् गमनागमन करे। यदि वही उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले···उत्पन्न हो तो जघन्य व उत्कृष्ट तीन पल्योपम की स्थिति वाले सं० पं० ति० में उत्पन्न हो। शेप सर्व पूर्ववत्। विशेप परिमाण व अवगाहना इसके तीसरे गमकमें कहे समान जानें। भवादेशसे दो भव, कालादेशसे जघन्य व उत्कृष्ट पूर्वकोटी अधिक तीन पल्योपम-इतने काल यावत्-गति-आगति करे।

(प्र० ३३-३५) यदि मनुष्यों से आकर उत्पन्न हों तो क्या संज्ञी मनुष्यों··· या असंज्ञी···उत्पन्न हों? गौतम! वे संज्ञी व असंज्ञी दोनों प्रकार के मनुष्योंसे आकर उत्पन्न हों। भगवन्! असंज्ञी मनुष्य जो पं० ति० में उत्पन्न होने योग्य है वह कितने कालकी स्थिति वाले सं० पं० ति० में उत्पन्न हो? गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट पूर्वकोटी की स्थिति वाले सं०···उत्पन्न हो। पृथिवीकायिकोंमें उत्पन्न होने वाले असंज्ञी मनुष्य की पहले तीन गमकों में जो वक्तव्यता कही है वही यहां पहले के तीन गमकोंमें कहें। संवेध असंज्ञी पंचेन्द्रिय के मध्यम तीन गमकों के अनुसार कहना। भगवन्! यदि वे संज्ञी मनुष्योंसे आकर उत्पन्न हों तो क्या संख्यात वर्ष की आयु वाले···या असंख्यात···आकर उत्पन्न हों। गौतम! वे संख्यात···उत्पन्न हों पर असंख्यात वर्षकी आयु वाले संज्ञी मनुष्योंसे आकर उत्पन्न नहीं होते।

(प्र० ३६-३८) यदि वे संख्यात वर्ष···उत्पन्न हों तो क्या पर्याप्त···या अपर्याप्त मनुष्यों से आकर उत्पन्न हों? गौतम! वे पर्याप्त व अपर्याप्त दोनों प्रकारके मनुष्यों से आकर उत्पन्न हों।···संख्यात वर्ष की आयु वाला संज्ञी पं० मनुष्य जो संज्ञी पं० तिर्यचमें उत्पन्न होने योग्य है वह कितने काल की स्थिति वाले संज्ञी पं० ति० में उत्पन्न हो? गौतम! वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट तीन पल्योपमकी स्थिति वाले सं० पं० तिर्यचमें उत्पन्न हो। भगवन्! वे

संज्ञी मनुष्य एक समय में कितने उत्पन्न हों—इत्यादि पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होने वाले संज्ञी मनुष्यके प्रथम गमकमें कही वक्तव्यता यावत्—भवादेश तक यहां कहें। कालादेशसे जघन्य दो अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट पूर्वकोटी पृथक्त्व अधिक तीन पल्योपम–इतने काल यावत्—गति आगति करे।

(प्र० ३९-४०) यदि वह संज्ञी मनुष्य जघन्य काल की स्थिति वाले संज्ञी पं० ति०में उत्पन्न हो तो पूर्वोक्त वक्तव्यता कहनी। परन्तु कालादेशसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त व उत्कृष्ट चार अन्तर्मुहूर्त अधिक चार पूर्वकोटि वर्ष—इतने काल यावत्—गमनागमन करे। यदि वही मनुष्य उत्कृष्ट······उत्पन्न हो तो वह जघन्य व उत्कृष्ट तीन पल्योपम की स्थिति वाले सं० पं० ति० में उत्पन्न हो। वक्तव्यता पूर्ववत्। विशेष—शरीरप्रमाण जघन्य अंगुल पृथक्त्व उत्कृष्ट पांच सौ धनुप। आयुष्य जघन्य मास पृथक्त्व व उत्कृष्ट पूर्वकोटी। इसी प्रकार अनुबंध भी जानें। भवादेशसे दो भव तथा कालादेशसे जघन्य मासपृथक्त्व अधिक तीन पल्योपम, उत्कृष्ट पूर्वकोटी अधिक तीन पल्योपम—इतने काल यावत् गमनागमन करे।

(प्र० ४१-४२) यदि वह संज्ञी मनुष्य स्वयं जघन्य स्थिति वाला हो तो उसके संबंध में जैसे पंचेन्द्रिय तिर्यंच में उत्पन्न होने वाले पं० तिर्यंचके मध्यम तीन गमकोंकी वक्तव्यता कही है। उसी प्रकार उसके भी मध्यम तीन गमकोंकी वक्तव्यता कहें। विशेष—परिमाण 'उत्कृष्ट संख्यात उत्पन्न हों' ऐसा कहना। शेप पूर्ववत्। यदि वह स्वयं उत्कृष्ट स्थिति वाला हो तो प्रथम गमककी वक्तव्यता कहें। विशेष—शरीर की अवगाहना जघन्य व उत्कृष्ट पांच सौ धनुप, स्थिति व अनुबंध जघन्य व उत्कृष्ट पूर्वकोटी। शेष सर्व यावत् भवादेश तक पूर्ववत्। कालादेशसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक पूर्वकोटि व उत्कृष्ट पूर्वकोटी पृथक्त्व अधिक तीन पल्योपम—इतने काल यावत्—गति आगति करे।

(प्र० ४३-४५) यदि वही मनुष्य जघन्य स्थिति वाले तिर्यंचमें उत्पन्न हो तो यही वक्तव्यता कहें। विशेप—कालादेशसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक पूर्वकोटी उत्कृष्ट चार अन्तर्मुहूर्त अधिक चार पूर्वकोटी–इतने काल यावत्–गति आगति करे। यदि वही उत्कृष्ट···उत्पन्न हो तो जघन्य व उत्कृष्ट तीन पल्योपमकी स्थिति वाले सं० पं० ति० में उत्पन्न हो। यहां पूर्वोक्त सातवें गमककी वक्तव्यता कहनी। भवादेशसे दो भव और कालादेशसे जघन्य व उत्कृष्ट पूर्वकोटी अधिक तीन पल्योपम—इतने काल यावत्–गति आगति करे। यदि वे देवों से आकर उत्पन्न हों तो क्या भवनवासी देवों से, वाणव्यन्तर० ज्योतिपिक० या वैमानिक देवोंसे आकर उत्पन्न हों? गौतम! वे भवनवासी यावत् वैमानिक देवों से भी आकर उत्पन्न हों।

(प्र० ४६-४७) यदि वे भवनवासी देवों से आकर उत्पन्न हों तो क्या असुरकुमार भवनवासी···से या यावत् स्तनितकुमार देवों से आकर उत्पन्न हों?

गौतम ! वे असुरकुमार यावत् स्तनितकुमार···आकर उत्पन्न हों। भगवन् ! जो असुरकुमार भवनवासी देव संज्ञी पं० ति० में उत्पन्न होने योग्य है, वह कितने कालकी स्थिति वाले संज्ञी पं० ति० में उत्पन्न हो ? गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट पूर्वकोटी की स्थिति वाले संज्ञी पं० तिर्यचमें उत्पन्न हो। उसके संबंधमें नौवें गमकमें जो वक्तव्यता पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होने वाले असुरकुमारों की कही है वही कहनी। इसी प्रकार यावत् ईशान देवलोक तक। भवादेश सर्वत्र उत्कृष्ट आठ भव, जघन्य दो भव। सब जगह स्थिति व संवेध भिन्न जानना।

(प्र० ४८-५०) भगवन् ! जो नागकुमार पं० ति० में उत्पन्न होने योग्य है वह कितने काल की स्थिति वाले सं० पं० ति० में उत्पन्न हो ?···वक्तव्यता पूर्ववत्। विशेष–स्थिति व संवेध भिन्न जानना। इस प्रकार यावत् स्तनितकुमारों तक जानें। भगवन् ! यदि वह वाणव्यन्तरों से आकर उत्पन्न हो तो क्या पिशाच···हो—इत्यादि पूर्ववत्। यावत् जो वाणव्यन्तर पं० ति० में उत्पन्न होने योग्य है वह कितने काल की स्थिति वाले संज्ञी पं० ति० में उत्पन्न हो ?···पूर्ववत्। विशेष--स्थिति व संवेध भिन्न जानना।

(प्र० ५१-५२) यदि वह ज्योतिषिकों से आकर उत्पन्न हो तो पूर्वोक्त पृथिवीकायिकमें उत्पन्न होने वाले संज्ञी पं० ति० के समान उपपात कहना। यावत् वह कितने काल की स्थिति वाले संज्ञी पं० तिर्यच में उत्पन्न हो ?···वक्तव्यता पूर्ववत् पृथिवीकायिक उद्देशकवत्। नवों गमकोंमें आठ भव जानने। यावत्—कालादेशसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक पल्योपम का आठवां भाग. उत्कृष्ट चार पूर्वकोटी अधिक पल्योपम–इतने काल यावत्—गति आगति करे। इसी प्रकार नवों गमकों में जानना। विशेष-स्थिति व संवेध भिन्न जानना।

(प्र० ५३-५४) यदि वे वैमानिक देवोंसे आकर उत्पन्न हों तो क्या कल्पोपपन्न···कल्पातीत वैमानिक देवोंसे आकर उत्पन्न हों।···वे कल्पोपपन्नक वैमानिक देवोंसे आकर उत्पन्न होते हैं पर कल्पातीत···आकर उत्पन्न नहीं होते। यदि वे कल्पोपपन्न···यावत् सहस्रार क० वै० देवों से आकर उत्पन्न हों पर आनत कल्पोपपन्नक यावत् अच्युत० से आकर उत्पन्न न हों। भगवन् ! जो सौधर्मदेव पं० ति० में उत्पन्न होने योग्य है वह कितने काल की स्थिति वाले पंचेन्द्रिय तिर्यच में उत्पन्न हो ? गौतम ! वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त व उत्कृष्ट पूर्वकोटी आयु वाले पंचेन्द्रिय तिर्यंचमें उत्पन्न हो। शेष सब नवों गमकों में पृथिवीकायिक उद्देशक के समान जानना। विशेष—नवों गमकोंमें संवेध–भवकी अपेक्षा जघन्य दो भव, उत्कृष्ट आठ भव। स्थिति व कालादेश भिन्न भिन्न जानें। इसी प्रकार ईशानदेव के संबंध में भी जानना। इसी क्रमसे बाकी सभी देवोंका यावत्-सहस्रारदेव तक उपपात कहना। अवगाहना संस्थानपदमें कहे समान जानें। लेश्या–सनत्कुमार,

माहेन्द्र और ब्रह्मलोक में एक पद्मलेश्या और बाकीको एक शुक्ललेश्या जानें। वेदमें स्त्रीवेद व नपुंसकवेद वाले नहीं, पर पुरुषवेद वाले होते हैं। आयुष्य व अनुबंध स्थितिपदवत्। शेष ईशानदेवों के समान जानना। कायसंवेध भिन्न कहना।।७१०।।

।। २४ वें शतक का २० वां उद्देशक समाप्त ।।

इक्कीसवां उद्देशक

(प्र० १-२) भगवन्! मनुष्य कहांसे आकर उत्पन्न हों? क्या नैरयिकोंसे या यावत् देवोंसे आकर उत्पन्न हों? गौतम! वे नैरयिकोंसे आकर उत्पन्न हों यावत् देवोंसे भी आकर उत्पन्न हो। इस प्रकार यहां प० तिर्यंचयोनिक उद्देशकमें कहे अनुसार उपपात कहें। यावत् छठी तमा पृथिवीके नैरयिकों से आकर उत्पन्न हों पर सातवीं तमतमा पृथिवीके नैरयिकों से आकर उत्पन्न न हों। भगवन्! रत्नप्रभा पृथिवीका नैरयिक जो मनुष्यों में उत्पन्न होने योग्य है वह कितने···उत्पन्न हो?···जघन्य दो माससे लेकर नव मास तककी उत्कृष्ट पूर्व-कोटीकी स्थिति वाले मनुष्यमें उत्पन्न हो। बाकी सारी वक्तव्यता पं० ति० में उत्पन्न होने वाले रत्नप्रभा नैरयिकके समान कहें। परन्तु परिमाण—जघन्य एक, दो या तीन, उत्कृष्ट संख्यात उत्पन्न होते हैं। जैसे वहां अन्तर्मुहूर्त द्वारा संवेध किया है, वैसे यहां मास पृथक्त्व द्वारा संवेध करें। शेष सर्व पूर्ववत्। रत्नप्रभाकी वक्तव्यताके समान शर्कराप्रभाकी भी वक्तव्यता कहें। विशेष--जघन्य वर्षपृथक्त्व की स्थिति वाले उत्कृष्ट पूर्वकोटीकी स्थिति वाले मनुष्यमें उत्पन्न हो तथा अव-गाहना, लेश्या, ज्ञान, स्थिति, अनुबंध व संवेध व उनकी विशेषता तिर्यंचयोनिक के उद्देशकमें कहे अनुसार जानें। इस प्रकार यावत्-तमा पृथिवीके नैरयिक तक जानना।

(प्र० ३-५) यदि वे तिर्यंचयोनिकों से आकर उत्पन्न हों तो क्या एकेन्द्रिय तिर्यंचयोनिकोंसे यावत् पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिकोंसे आकर उत्पन्न हों? गौतम! एकेन्द्रिय तिर्यंचयोनिकोंसे आकर उत्पन्न हों—इत्यादि वक्तव्यता पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक उद्देशकमें कहे अनुसार जानें। विशेष तेजस्काय व वायुकाय का निषेध करना [इनसे आकर मनुष्यमें उत्पन्न नहीं होता]। शेष पूर्ववत् यावत्··· जो पृथिवीकायिक मनुष्योंमें उत्पन्न होने योग्य है, वह कितने काल की स्थिति वाले मनुष्य में उत्पन्न हो?···जघन्य अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट पूर्वकोटीकी स्थिति वाले मनुष्यमें उत्पन्न हो।'' वे एक समय में कितने उत्पन्न हों—इत्यादि [illegible]न्द्रिय तिर्यंचयोनिकमें उत्पन्न होने वाले पृथिवीकायिकके समान मनुष्यमें उत्प[illegible] पृथिवीकायिक की वक्तव्यता नवों गमकोंमें कहें। विशेष—तीसरे, [illegible]

गमकमें परिमाण जघन्य एक, दो या तीन उत्कृष्ट संख्यात उत्पन्न होते हैं। जब स्वयं जघन्य कालकी स्थिति वाला हो तब (बीच के तीन गमकोंमें) प्रथम गमकमें अध्यवसाय प्रशस्त व अप्रशस्त दोनों प्रकारके होते हैं। दूसरे गमकमें अप्रशस्त और तीसरे गमकमें प्रशस्त होते हैं। शेष सर्व पूर्ववत्।

(प्र० ६-८)···यदि वे अप्कायिकों से आकर उत्पन्न हों तो अप्कायिकों व वनस्पतिकायिकोंके सम्बन्ध में पूर्वोक्त वक्तव्यता कहें। इस प्रकार यावत्–चउरिन्द्रिय तक जानें। असंज्ञी पं० ति०, संज्ञी पं० ति०, असंज्ञी मनुष्य व संज्ञी मनुष्य इन सबके सम्बन्धमें पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक उद्देशकमे कहे अनुसार जानें। विशेष—सबकी परिमाण व अध्यवसायोंकी भिन्नता पृथिवीकायिक के इसी उद्देशकमें कहे अनुसार जानें। शेष पूर्ववत्।···यदि वे देवोंसे आकर उत्पन्न हों तो क्या भवनवासी, वा०, ज्यो० या वैमानिक देवों···उत्पन्न हों?···वे भवनवासी यावत् वैमानिक देवोंसे भी आकर उत्पन्न हों।···यदि वे भवनवासी···या स्तनितकुमारोंसे आकर उत्पन्न हों? ··वे असुरकुमारों यावत् स्तनितकुमारोंसे भी···।

(प्र०६)···असुरकुमार देव जो मनुष्यमें उत्पन्न होने योग्य है वह कितने काल की स्थिति वाले मनुष्य में उत्पन्न हो?···वह जघन्य मासपृथक्त्व व उत्कृष्ट पूर्वकोटी की स्थिति वाले मनुष्य में उत्पन्न हो। इस प्रकार पं० ति० के उद्देशक में जो वक्तव्यता कही है वह यहां भी कहें। विशेष–जैसे वहां जघन्य अन्तर्मुहूर्त की स्थिति वाले तिर्यंच में उत्पन्न होने को कहा है वैसे यहां मासपृथक्त्व की स्थिति वाले में उत्पन्न होने को कहना। परिमाण—जघन्य एक, दो या तीन उत्कृष्ट संख्यात उत्पन्न होते हैं। शेष पूर्ववत्। इस प्रकार यावत् ईशान देवों तक वक्तव्यता कहें। यही ऊपर कहे अनुसार विशेषता भी जानें। जैसे पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक उद्देशक में कहा है वैसे सनत्कुमार से लगाकर यावत् सहस्रार तक के देवों के संबंध में कहें। विशेष–परिमाण जघन्य एक, दो या तीन व उत्कृष्ट संख्यात उत्पन्न होते हैं। वे जघन्य वर्षपृथक्त्व स्थिति वाले उत्कृष्ट पूर्वकोटी की स्थिति वाले मनुष्य में उत्पन्न होता है। शेष पूर्ववत्। संवेध जघन्य वर्षपृथक्त्व व उत्कृष्ट पूर्वकोटी द्वारा करना। सनत्कुमार में अपनी स्थितिसे चार गुना करने पर २८ सागरोपम होता है। माहेन्द्र में कुछ अधिक २८ सागरोपम, ब्रह्मलोक में ४०, लांतक में ५६, महाशुक्र में ६८ व सहस्रार में ७२ सागरोपम होती है। इस प्रकार उत्कृष्ट स्थिति कहें। जघन्य स्थिति को भी चौगुना करें (इस प्रकार काय-संवेध कहना)।

(प्र०१०-११)···जो आनतदेव मनुष्यों में उत्पन्न होने योग्य है वह कितने काल की स्थिति वाले मनुष्यों में उत्पन्न हो?···जघन्य वर्षपृथक्त्व की उत्कृष्ट पूर्वकोटी की स्थिति वाले मनुष्य में उत्पन्न हो।···वे (मनुष्य) एक समय में

कितने उत्पन्न हों—इत्यादि जैसे सहस्रार देवकी वक्तव्यता कही है वैसे कहनी। पर अवगाहना, स्थिति व अनुबंध की विशेषता जाननी। शेष पूर्ववत्। भवादेश से जघन्य दो भव उत्कृष्ट छ भव तथा कालादेश से जघन्य वर्षपृथक्त्व अधिक १८ सागरोपम, उत्कृष्ट ३ पूर्वकोटी अधिक ५७ सागरोपम—इतने काल यावत्-गमनागमन करे। इस प्रकार नवों गमकों में जानें। विशेष—स्थिति, अनुबंध व संवेध भेदपूर्वक जानें। इस प्रकार यावत्—अच्युत देव तक समझें। विशेष-स्थिति, अनुबंध व संवेध भिन्न-भिन्न जानें। प्राणत देव की स्थिति तिगुनी करने पर साठ सागरोपम, आरण की ६३ सागरोपम और अच्युत देव की ६६ सागरोपम स्थिति होती है।

(प्र०१२-१४)···यदि वह कल्पातीत वैमानिक देवोंसे आकर उत्पन्न हो तो क्या ग्रैवेयक कल्पातीत···या अनुत्तरौपपातिक क० देवोंसे आकर उत्पन्न हो ?··· वह ग्रैवेयक व अनुत्तरौपपातिक इन दोनों प्रकारके कल्पातीत देवोंसे आकर उत्पन्न हो। यदि ग्रैवेयक कल्पातीत···तो क्या सब से नीचे के या सबसे ऊपर के ग्रैवेयक कल्पातीत देवों से आकर उत्पन्न हों।···वह सबसे नीचे के यावत् सब से ऊपर के···भी उत्पन्न हो।···ग्रैवेयक देव जो मनुष्य में उत्पन्न होने योग्य है, वह कितने काल की स्थिति वाले मनुष्य में उत्पन्न हो ?···वह जघन्य वर्षपृथक्त्व उत्कृष्ट पूर्वकोटी की स्थिति वाले मनुष्य में उत्पन्न हो। शेष सारी वक्तव्यता आनत देव के समान कहें। परन्तु उसके एक भवधारणीय शरीर होता है, उसकी अवगाहना जघन्य अंगुलका असंख्यातवां भाग उत्कृष्ट दो हाथकी होती है। समचतुरस्रसंस्थान होता है। पांच समुद्घात होते हैं, वे इस प्रकार—वेदना समुद्घात यावत्-तैजस्-समुद्घात। पर उन्होंने वैक्रिय या तैजस् समुद्घात किया नहीं, करते नहीं और करेंगे भी नहीं। स्थिति व अनुबंध जघन्य २२ सागरोपम उत्कृष्ट ३१ सागरोपम शेष-पूर्ववत्। कालादेश से जघन्य वर्षपृथक्त्व अधिक ९३ सागरोपम उत्कृष्ट तीन पूर्वकोटी अधिक ९३ सागरोपम—इतने काल यावत् गमनागमन करे। शेष आठ गमकों में भी इसी प्रकार जानें। विशेष--स्थिति व संवेध भिन्न जानना।

(प्र०१५-१६) यदि वे अनुत्तरौपपातिक कल्पातीत वैमानिक देवों से आकर उत्पन्न हों तो क्या विजय, वैजयंत या यावत् सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरौपपातिक देवों से आकर उत्पन्न हों ?···वे विजय यावत् सर्वार्थसिद्ध···से आकर उत्पन्न होते हैं। ···विजय यावत् अपराजित देव जो मनुष्य में उत्पन्न होने योग्य है, वह कितने काल की स्थिति वाले मनुष्य में उत्पन्न हो ?···इत्यादि जैसे ग्रैवेयक देवों के संबंध में कहा है, वैसे यहां कहें। विशेष—अवगाहना जघन्य अंगुल का असंख्यातवां भाग उत्कृष्ट एक हाथ। वे सम्यग्दृष्टि होते हैं, पर मिथ्यादृष्टि या मिश्रदृष्टि नहीं होते। ज्ञानी होते हैं, अज्ञानी नहीं। उन्हें अवश्य मति, श्रुत व अवधि—ये तीन

ज्ञान होते हैं। उनकी स्थिति जघन्य ३१ सागरोपम की उत्कृष्ट ३३ सागरोपम की है। शेष पूर्ववत्। भवादेश जघन्य दो भव, उत्कृष्ट चार भव, कालादेश से जघन्य वर्षपृथक्त्व अधिक ३१ सागरोपम, उत्कृष्ट दो पूर्वकोटी अधिक ६६ सागरोपम--इतने काल यावत् गति आगति करे। इस प्रकार बाकी के आठों गमक कहने। विशेष स्थिति, अनुबंध व संवेध भिन्न-भिन्न जानना। शेष पूर्ववत्।

(प्र० १७-१९)···सर्वार्थसिद्ध देव जो मनुष्योंमें उत्पन्न होने योग्य है, वह कितने कालकी स्थिति वाले मनुष्यमें उत्पन्न हो?···वक्तव्यता विजयादि देववत्। विशेष स्थिति—अजघन्योत्कृष्ट ३३ सागरोपम। इसी प्रकार अनुबंध भी जानें। शेष पूर्ववत्। भवादेशसे दो भव, तथा कालादेशसे जघन्य वर्षपृथक्त्व अधिक ३३ सागरोपम, उत्कृष्ट पूर्वकोटी अधिक ३३ सागरोपम—इतने काल यावत्—गति-आगति करे। यदि वह जघन्य कालकी स्थिति वाले मनुष्यमें उत्पन्न हो—तो यही वक्तव्यता कहनी। विशेष—कालादेशसे जघन्य व उत्कृष्ट वर्षपृथक्त्व अधिक ३३ सागरोपम—इतने काल यावत् गति आगति करे। यदि वह उत्कृष्ट···कहनी। विशेष-कालादेशसे जघन्य व उत्कृष्ट पूर्वकोटी अधिक ३३ सागरोपम—इतने काल यावत्—गति आगति करे। यहां तीन गमक ही कहने हैं बाकीके नहीं कहने।······॥७११॥

॥ २४ वें शतकका २१ वां उद्देशक समाप्त ॥

बाईसवां उद्देशक

(प्र० १-२) भगवन्! वाणव्यंतर देव कहांसे आकर उत्पन्न होते हैं—क्या नैरयिकोंसे, तिर्यचयोनिकोंसे, या देवोंसे आकर उत्पन्न होते हैं?···इत्यादि जैसे नागकुमारके उद्देशकमें कहा है, उसी प्रकार असंज्ञी तक सारी वक्तव्यता कहनी। यदि वह संज्ञी पं० तिर्यंचयोनिकसे आकर उत्पन्न हो—इत्यादि यावत् पूर्ववत् जानना। भगवन्! असंख्यात वर्षकी आयु वाला संज्ञी पंचेन्द्रिय ति० जो वाणव्यंतरों में उत्पन्न होने योग्य है वह कितने कालकी स्थिति वाले वाणव्यन्तरों में उत्पन्न हो? गौतम! वह जघन्य दस हजार वर्षकी, उत्कृष्ट पल्योपमकी स्थिति वाले वाणव्यन्तरमें उत्पन्न हो। शेष सर्व नागकुमार उद्देशकवत्। यावत्–कालादेश से जघन्य कुछ अधिक पूर्वकोटी सहित दस हजार वर्ष उत्कृष्ट चार पल्योपम–इतने काल यावत्–गमनागमन करे।

(प्र० ३-४) यदि वह जघन्यकालकी स्थिति वाले वाणव्यंतरमें उत्पन्न हो तो उसके सम्बन्धमें नागकुमारके दूसरे गमकमें कथित वक्तव्यता कहें। यदि वह उत्कृष्ट···उत्पन्न हो तो जघन्य व उत्कृष्ट पल्योपमकी स्थिति वाले वाणव्यंतरमें उत्पन्न हो-इत्यादि पूर्वोक्त वक्तव्यता कहें। विशेष—स्थिति जघन्य पल्योपमकी,

उत्कृष्ट तीन पल्योपमकी जानें। संवेध जघन्य दो पल्योपम, उत्कृष्ट चार पल्योपमका—इतने काल यावत् गति आगति करे। बीचके तीन गमक नागकुमारके मध्यम तीन गमकोंके समान कहें। अन्तिम तीन गमक नागकुमार-उद्देशकमें कहे अनुसार जानें। विशेष—स्थिति व संवेध भिन्न २ जानें। संख्यात वर्षकी आयु वाले सं० पं० ति० की वक्तव्यता उसी प्रकार जानें। विशेष—स्थिति व अनुबन्ध भिन्न २ जानें। संवेध दोनोंकी स्थितिको इकट्ठा करके कहें।

(प्र० ५) यदि वे मनुष्योंसे आकर उत्पन्न हों तो नागकुमार-उद्देशकमें कथित असंख्यात वर्षकी आयु वाले मनुष्योंकी वक्तव्यता कहें। विशेष-तीसरे गमकमें स्थिति जघन्य पल्योपमकी व उत्कृष्ट तीन पल्योपमकी जानें। अवगाहना जघन्य एक गाउ, उत्कृष्ट तीन गाउ। शेष पूर्ववत्। संवेध इसी उद्देशकमें कथित असंख्यात वर्षकी आयु वाले सं० पं० तिर्यंचवत्। जैसे नागकुमार—उद्देशकमें कहा उसी प्रकार संख्यात वर्षकी आयु वाले संज्ञी मनुष्योंकी वक्तव्यता कहनी। विशेष-वाणव्यंतरकी स्थिति व संवेध भिन्न जानना······॥७१२॥

॥ २४ वें शतकका २२ वां उद्देशक समाप्त ॥

तेईसवां उद्देशक

(प्र० १-३) भगवन्! ज्योतिषिक कहां से आकर उत्पन्न हों? क्या नैरयिकों से—इत्यादि भेद कहना। यावत् वे संज्ञी पं० ति० से आकर उत्पन्न हों पर असंज्ञी पं० ति० से आकर उत्पन्न नहीं होते। यदि संज्ञी पं० ति० से आकर उत्पन्न हों तो क्या संख्यात वर्षकी आयु वाले···या असंख्यात······उत्पन्न हों? गौतम! संख्यात या असंख्यात वर्षकी आयु वाले संज्ञी पं० ति०से आकर उत्पन्न हों।···असंख्यात वर्षकी आयु वाला संज्ञी पं० ति० जो ज्योतिषिकोंमें उत्पन्न होने योग्य है, वह कितने कालकी स्थिति वाले ज्योतिषिकोंमें उत्पन्न हो?······वह जघन्य पल्योपमके आठवें भागकी उत्कृष्ट एक लाख वर्ष अधिक एक पल्योपमकी स्थिति वाले ज्योतिषिकोंमें उत्पन्न हो। शेष सर्व असुरकुमार उद्देशकवत्। विशेष—जघन्य स्थिति पल्योपमके आठवें भागकी उत्कृष्ट तीन पल्योपम की। अनुबंध भी इसी प्रकार जानना। शेष उसी प्रकार जानना। कालादेशसे जघन्य पल्योपमका दो आठवां भाग उत्कृष्ट लाख वर्ष अधिक चार पल्योपम—इतने काल यावत्—गति आगति करे।

(प्र० ४-५-६) यदि वह जघन्यकाल की स्थिति वाले ज्योतिषिकमें उत्पन्न हो तो जघन्य व उत्कृष्ट पल्योपमके आठवें भागकी स्थिति वाले ज्योतिषिकमें उत्पन्न हो—इत्यादि पूर्वोक्त वक्तव्यता कहें। विशेष—यहां कालादेश भिन्न जानें। यदि वही जीव उत्कृष्ट···उत्पन्न हो तो भी यही वक्तव्यता कहें। परन्तु

स्थिति जघन्य एक लाख वर्ष अधिक पल्योपम, उत्कृष्ट तीन पल्योपम। अनुबंध भी इसी प्रकार जानें। कालादेशसे जघन्य दो लाख वर्ष अधिक दो पल्योपम, उत्कृष्ट एक लाख वर्ष अधिक चार पल्योपम—इतने काल यावत्-गति आगति करे। यदि वह स्वयं जघन्य कालकी स्थिति वाला हो, व ज्योतिषिकमें उत्पन्न हो तो जघन्य व उत्कृष्ट पल्योपमके आठवें भागकी स्थिति वाले ज्योतिषिकमें उत्पन्न हो।

(प्र० ७-८)···वे एक समयमें कितने उत्पन्न हों ?···पूर्वोक्त वक्तव्यता कहें। विशेष—शरीर का प्रमाण जघन्य धनुपपृथक्त्व, उत्कृष्ट अठारह सौ धनुपसे कुछ अधिक होता है। स्थिति जघन्य व उत्कृष्ट पल्योपमके आठवें भागकी, अनुबंध भी इसी प्रकार। शेष पूर्ववत्। कालादेशसे जघन्य व उत्कृष्ट पल्योपम का दो आठवां भाग—इतने काल यावत्—गति आगति करे। जघन्य काल की स्थिति वाले के लिए यह एक ही गम होता है। यदि वह स्वयं उत्कृष्ट स्थिति वाला हो ···तो वक्तव्यता सामान्य गमक के समान कहें। परन्तु स्थिति जघन्य व उत्कृष्ट तीन पल्योपम की जानें। अनुबंध भी इसी प्रकार···। शेष पूर्ववत्। इसी प्रकार अन्तिम तीन गमक जानें। विशेष—स्थिति व संवेध भेदपूर्वक जानें। इस प्रकार ये सात गमक हुए।

(प्र० ९-१२) यदि वे संख्यात वर्ष की आयु वाले संज्ञी पं० तिर्यचों से आकर उत्पन्न हों तो···असुरकुमारों में उत्पन्न होने वाले संख्यात वर्षकी आयु वाले संज्ञी पं० ति० की तरह नौ गमक कहें। विशेष—ज्योतिषिक की स्थिति व संवेध भिन्न जानें। शेष उसी प्रकार। यदि वे मनुष्यों से आकर उत्पन्न हों तो··· समस्त विशेषता पूर्वोक्त संज्ञी पं० तिर्यचके समान कहें। यावत्···कितने कालकी स्थिति वाले ज्योतिषिकों में उत्पन्न हो ?···जैसे ज्योतिषिकोंमें उत्पन्न होने वाले असंख्यात वर्ष की आयु वाले संज्ञी पं० तिर्यचके सात गमक कहे हैं, उसी प्रकार मनुष्यों के भी सात गमक कहें। परन्तु पहलेके तीन गमकोंमें शरीरकी अवगाहना की विशेषता है। अवगाहना जघन्य कुछ अधिक नौ सौ धनुष व उत्कृष्ट तीन गाउ। बीचके गमकमें जघन्य व उत्कृष्ट कुछ अधिक नौ सौ धनुप और अन्तिम तीन गमकों में जघन्य व उत्कृष्ट तीन गाउ की है। शेप सब यावत् संवेध तक उसी प्रकार है। यदि वह संख्यात वर्ष की आयु वाले संज्ञी मनुष्यों से आकर उत्पन्न हो तो··· असुरकुमारों में उत्पन्न होने वाले संख्यात वर्षकी आयु वाले संज्ञी मनुष्यों की तरह नवों गमक कहने। पर ज्योतिषिककी स्थिति व संवेध भिन्न जानें। शेष सर्व पूर्ववत्।······॥७१३॥

॥ २४ वें शतक का २३ वां उद्देशक समाप्त ॥

—०—

उत्कृष्ट तीन पल्योपमकी जानें। संवेध जघन्य दो पल्योपम, उत्कृष्ट चार पल्योपमका—इतने काल यावत् गति आगति करे। बीचके तीन गमक नागकुमारके मध्यम तीन गमकोंके समान कहें। अन्तिम तीन गमक नागकुमार-उद्देशकमें कहे अनुसार जानें। विशेष—स्थिति व संवेध भिन्न २ जानें। संख्यात वर्षकी आयु वाले सं० पं० ति० की वक्तव्यता उसी प्रकार जानें। विशेष—स्थिति व अनुबन्ध भिन्न २ जानें। संवेध दोनोंकी स्थितिको इकट्ठा करके कहें।

(प्र० ५) यदि वे मनुष्योंसे आकर उत्पन्न हों तो नागकुमार-उद्देशकमें कथित असंख्यात वर्षकी आयु वाले मनुष्योंकी वक्तव्यता कहें। विशेष-तीसरे गमकमें स्थिति जघन्य पल्योपमकी व उत्कृष्ट तीन पल्योपमकी जानें। अवगाहना जघन्य एक गाउ, उत्कृष्ट तीन गाउ। शेष पूर्ववत्। संवेध इसी उद्देशकमें कथित असंख्यात वर्षकी आयु वाले सं० पं० तिर्यंचवत्। जैसे नागकुमार—उद्देशकमें कहा उसी प्रकार संख्यात वर्षकी आयु वाले संज्ञी मनुष्योंकी वक्तव्यता कहनी। विशेष—वाणव्यंतरकी स्थिति व संवेध भिन्न जानना······॥७१२॥

॥ २४ वें शतकका २२ वां उद्देशक समाप्त ॥

तेईसवां उद्देशक

(प्र० १-३) भगवन्! ज्योतिषिक कहां से आकर उत्पन्न हों? क्या नैरयिकों से—इत्यादि भेद कहना। यावत् वे संज्ञी पं० ति० से आकर उत्पन्न हों पर असंज्ञी पं० ति० से आकर उत्पन्न नहीं होते। यदि संज्ञी पं० ति० से आकर उत्पन्न हों तो क्या संख्यात वर्षकी आयु वाले···या असंख्यात······उत्पन्न हों? गौतम! संख्यात या असंख्यात वर्षकी आयु वाले संज्ञी पं० ति०से आकर उत्पन्न हों।···असंख्यात वर्षकी आयु वाला संज्ञी पं० ति० जो ज्योतिषिकोंमें उत्पन्न होने योग्य है, वह कितने कालकी स्थिति वाले ज्योतिषिकोंमें उत्पन्न हो?······वह जघन्य पल्योपमके आठवें भागकी उत्कृष्ट एक लाख वर्ष अधिक एक पल्योपमकी स्थिति वाले ज्योतिषिकोंमें उत्पन्न हो। शेष सर्व असुरकुमार उद्देशकवत्। विशेष—जघन्य स्थिति पल्योपमके आठवें भागकी उत्कृष्ट तीन पल्योपम की। अनुबंध भी इसी प्रकार जानना। शेष उसी प्रकार जानना। कालादेशसे जघन्य पल्योपमका दो आठवां भाग उत्कृष्ट लाख वर्ष अधिक चार पल्योपम—इतने काल यावत्—गति आगति करे।

(प्र० ४-५-६) यदि वह जघन्यकाल की स्थिति वाले ज्योतिषिकमें उत्पन्न हो तो जघन्य व उत्कृष्ट पल्योपमके आठवें भागकी स्थिति वाले ज्योतिषिकमें उत्पन्न हो—इत्यादि पूर्वोक्त वक्तव्यता कहें। विशेष—यहां कालादेश भिन्न जानें। यदि वही जीव उत्कृष्ट···उत्पन्न हो तो भी यही वक्तव्यता कहें। परन्तु

स्थिति जघन्य एक लाख वर्ष अधिक पल्योपम, उत्कृष्ट तीन पल्योपम। अनुबंध भी इसी प्रकार जानें। कालादेशसे जघन्य दो लाख वर्ष अधिक दो पल्योपम, उत्कृष्ट एक लाख वर्ष अधिक चार पल्योपम—इतने काल यावत्-गति आगति करे। यदि वह स्वयं जघन्य कालकी स्थिति वाला हो, व ज्योतिषिकमें उत्पन्न हो तो जघन्य व उत्कृष्ट पल्योपमके आठवें भागकी स्थिति वाले ज्योतिषिकमें उत्पन्न हो।

(प्र० ७-८)···वे एक समयमें कितने उत्पन्न हों ?···पूर्वोक्त वक्तव्यता कहें। विशेष—शरीर का प्रमाण जघन्य धनुषपृथक्त्व, उत्कृष्ट अठारह सौ धनुपसे कुछ अधिक होता है। स्थिति जघन्य व उत्कृष्ट पल्योपमके आठवें भागकी, अनुबंध भी इसी प्रकार। शेष पूर्ववत्। कालादेशसे जघन्य व उत्कृष्ट पल्योपम का दो आठवां भाग—इतने काल यावत्—गति आगति करे। जघन्य काल की स्थिति वाले के लिए यह एक ही गम होता है। यदि वह स्वयं उत्कृष्ट स्थिति वाला हो ···तो वक्तव्यता सामान्य गमक के समान कहें। परन्तु स्थिति जघन्य व उत्कृष्ट तीन पल्योपम की जानें। अनुबंध भी इसी प्रकार···। शेष पूर्ववत्। इसी प्रकार अन्तिम तीन गमक जानें। विशेष—स्थिति व संवेध भेदपूर्वक जानें। इस प्रकार ये सात गमक हुए।

(प्र० ९-१२) यदि वे संख्यात वर्ष की आयु वाले संज्ञी पं० तिर्यंचों से आकर उत्पन्न हों तो···असुरकुमारों में उत्पन्न होने वाले संख्यात वर्षकी आयु वाले संज्ञी पं० ति० की तरह नौ गमक कहें। विशेष—ज्योतिषिक की स्थिति व संवेध भिन्न जानें। शेष उसी प्रकार। यदि वे मनुष्यों से आकर उत्पन्न हों तो··· समस्त विशेषता पूर्वोक्त संज्ञी पं० तिर्यंचके समान कहें। यावत्···कितने कालकी स्थिति वाले ज्योतिषिकों में उत्पन्न हो ?···जैसे ज्योतिषिकोंमें उत्पन्न होने वाले असंख्यात वर्ष की आयु वाले संज्ञी पं० तिर्यंचके सात गमक कहे हैं, उसी प्रकार मनुष्यों के भी सात गमक कहें। परन्तु पहलेके तीन गमकोंमें शरीरकी अवगाहना की विशेषता है। अवगाहना जघन्य कुछ अधिक नौ सौ धनुष व उत्कृष्ट तीन गाउ। बीचके गमकमें जघन्य व उत्कृष्ट कुछ अधिक नौ सौ धनुष और अन्तिम तीन गमकों में जघन्य व उत्कृष्ट तीन गाउ की है। शेष सब यावत् संवेध तक उसी प्रकार है। यदि वह संख्यात वर्ष की आयु वाले संज्ञी मनुष्यों से आकर उत्पन्न हो तो··· असुरकुमारों में उत्पन्न होने वाले संख्यात वर्षकी आयु वाले संज्ञी मनुष्यों की तरह नवों गमक कहने। पर ज्योतिषिककी स्थिति व संवेध भिन्न जानें। शेष सर्व पूर्ववत्।······॥७१३॥

॥ २४ वें शतक का २३ वां उद्देशक समाप्त ॥

—०—

चौबीसवां उद्देशक

(प्र० १-३)भगवन् ! सौधर्मदेव कहांसे आकर उत्पन्न हों ? क्या नैरयिकोंसे आकर उत्पन्न हों—इत्यादि २३ वें ज्योतिषिक उद्देशकमें कहे अनुसार भेद कहना।··· असंख्यात वर्षकी आयु वाला संज्ञी पं० ति० जो सौधर्म देवलोकमें उत्पन्न होने योग्य है, वह कितने कालकी स्थिति वाले सौधर्म देवमें उत्पन्न हो ? गौतम ! जघन्य पल्योपम की व उत्कृष्ट तीन पल्योपम की स्थिति वाले सौधर्म देवोंमें उत्पन्न हो।···वे जीव एक समय में कितने उत्पन्न हों—इत्यादि शेष वक्तव्यता ज्योतिषिक में उत्पन्न होने वाले असंख्यात वर्ष की आयु वाले संज्ञी तिर्यंचके समान कहें। विशेष—सम्यग्दृष्टि भी हों, मिथ्यादृष्टि भी हों, पर मिश्रदृष्टि नहीं होते। ज्ञानी भी होते हैं, अज्ञानी भी। उनको दो ज्ञान या दो अज्ञान अवश्य होते हैं। उनकी स्थिति जघन्य पल्योपम की, उत्कृष्ट तीन पल्योपम की। इसी प्रकार अनुबंध भी जानें। शेष उसी प्रकार। कालादेश से जघन्य दो पल्योपम व उत्कृष्ट छः पल्योपम—इतने काल यावत्—गमनागमन करे।

(प्र० ४-६) यदि वह जघन्य काल की स्थिति वाले सौधर्म देव में उत्पन्न हो तो···यही वक्तव्यता कहें। विशेष—कालादेश से जघन्य दो पल्योपम, उत्कृष्ट चार पल्योपम—इतने काल यावत्—गति आगति करे। यदि वही जीव उत्कृष्ट ···उत्पन्न हो तो जघन्य व उत्कृष्ट तीन पल्योपम की स्थिति वाले सौधर्म देव में उत्पन्न हो—इत्यादि पूर्वोक्त वक्तव्यता कहें। विशेष—स्थिति जघन्य व उत्कृष्ट तीन पल्योपम की जानें। शेष पूर्ववत्। कालादेश से जघन्य व उत्कृष्ट ६ पल्योपम—इतने काल यावत्—गमनागमन करे। यदि वह स्वयं जघन्य स्थिति वाला हो तो वह जघन्य व उत्कृष्ट पल्योपम की स्थिति वाले सौधर्म देवलोक में उत्पन्न हो। वक्तव्यता पूर्ववत्। विशेष—शरीर-प्रमाण जघन्य धनुपपृथक्त्व व उत्कृष्ट दो गाउ। स्थिति जघन्य व उत्कृष्ट पल्योपम की होती है। शेष पूर्ववत्। कालादेश से जघन्य व उत्कृष्ट दो पल्योपम—इतने काल यावत् गमनागमन करे।

(प्र० ७-९) यदि वह स्वयं उत्कृष्ट स्थिति वाला हो तो···प्रथम गमकके समान तीन गमक कहें। विशेष—स्थिति व कालादेश भिन्न जानें। यदि वे संख्यात वर्ष की आयु वाले संज्ञी पं० ति० से आकर उत्पन्न हों तो···असुरकुमारों में उत्पन्न होने वाले संख्यात वर्ष की आयु वाले तिर्यंचकी तरह नवों गमक कहें। विशेष—स्थिति व संवेध भिन्न जानें। यदि वह स्वयं जघन्य स्थिति वाला हो तो तीनों गमकोंमें सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि हो, पर मिश्रदृष्टि न हो। दो ज्ञान व दो अज्ञान अवश्य हों। शेष पूर्ववत्।···यदि वे मनुष्यों से आकर उत्पन्न हों तो···इत्यादि ज्योतिषिकमें उत्पन्न होने वाले संज्ञी मनुष्य की तरह भेद कहें यावत्—

(प्र० १०-११) भगवन् ! असंख्य वर्ष की आयु वाला संज्ञी मनुष्य जो सौधर्म कल्पमें देवरूप में उत्पन्न होने योग्य है, वह कितने काल की स्थिति वाले सौधर्म देवों में उत्पन्न हो ? सौधर्म कल्पमें उत्पन्न होने वाले असंख्यात वर्षकी आयु वाले संज्ञी पं० ति० की तरह सातों गमक कहें । विशेष—पहले दो गमकों में शरीरप्रमाण—जघन्य एक गाउ उत्कृष्ट तीन गाउ । तीसरे गमक में जघन्य व उत्कृष्ट तीन गाउ । चौथे गमकमें जघन्य व उत्कृष्ट एक गाउ । अन्तिम तीन गमकों में जघन्य व उत्कृष्ट तीन गाउ । शेष पूर्ववत् ।···यदि वह संख्यात वर्ष की आयु वाले संज्ञी मनुष्योंसे आकर उत्पन्न हो—इत्यादि असुरकुमारोंमें उत्पन्न होने वाले संख्यात वर्षकी आयु वाले संज्ञी मनुष्योंकी तरह नवों गमक कहें । विशेष—सौधर्म देव की स्थिति व संवेध भिन्न जानें । शेष पूर्ववत् ।

(प्र० १२-१४)······ईशान देव कहां से आकर उत्पन्न हो ? ईशान देवों की वक्तव्यता सौधर्मदेव की तरह कहें, परन्तु जिन स्थानों में असंख्यात वर्व की आयु वाले संज्ञी पं० ति० की पल्योपम की स्थिति कही है उन स्थानों में यहां कुछ अधिक पल्योपम की कहें । चौथे गमक में शरीर-प्रमाण जघन्य धनुषपृथक्त्व व उत्कृष्ट कुछ अधिक दो गाउ का होता है । शेप पूर्ववत् । असंख्यात वर्ष की आयु वाले संज्ञी मनुष्य की स्थिति उसी प्रकार जानें । अर्थात् असंख्यात वर्ष की आयु वाले पं० ति० के समान । जिन स्थानों में शरीर—प्रमाण गाउ का कहा है । वहां साधिक गाउ कहना । शेष पूर्ववत् । जैसे सौधर्म में उत्पन्न होनें वाले संख्यात वर्ष की आयु वाले तिर्यंच-योनिकों व मनुष्यों के संवन्ध में नौ गमक कहे हैं वैसे ईशान-देवों के संवन्ध में यहां कहें । विशेष—यहां ईशान देवों की स्थिति व संवेध जानें ।

(प्र० १५-१७)······सनत्कुमार देव कहां से आकर उत्पन्न होते हैं ?··· शर्कराप्रभा नैरयिकों की तरह उनका उपपात कहें यावत् संख्यात······सं० पं० ति० जो सनत्कुमार देवों में उत्पन्न होने योग्य है, वह कितने काल की स्थिति वाले सनत्कुमार देवमें उत्पन्न हो—इत्यादि परिमाण से लेकर भवादेश तक की सारी वक्तव्यता सौधर्म में उत्पन्न होने वाले संख्यात वर्ष की आयु वाले संज्ञी तिर्यंच की तरह कहें । विशेष—यहां सनत्कुमारों की स्थिति व संवेध भिन्न जानें । यदि वह स्वयं जघन्य स्थिति वाला हो तो तीनों गमकों में पहली पांच लेश्यायें जानें । शेप उसी प्रकार कहें । यदि मनुष्यों से आकर उत्पन्न हो तो······शर्करा-प्रभा में उत्पन्न होने वाले मनुष्यों की तरह नवों गमक कहें । विशेष—यहां सनत्कुमार की स्थिति व संवेध जुदा जानना ।

(प्र० १८) भगवन् ! माहेन्द्र देव कहां से आकर उत्पन्न होते हैं ? जैसे सनत्कुमार देव की वक्तव्यता कही है, उसी प्रकार माहेन्द्र देवों की भी जानें ।

विशेष—माहेन्द्र देवों की स्थिति सनत्कुमार देवों से कुछ अधिक कहें। इसी प्रकार ब्रह्मलोक देवों की भी वक्तव्यता कहें। विशेष—ब्रह्मलोक की स्थिति व संवेध भिन्न जानें। इस प्रकार यावत्—सहस्रार देवलोक तक जानें। विशेष—स्थिति व संवेध भिन्न जानें। लांतक आदि देवलोक में उत्पन्न होने वाले जघन्य स्थिति वाले तिर्यंचयोनिक के तीनों गमकों में छहों लेश्याएं जानें। ब्रह्मलोक व लांतक में पहले पांच संघयण होते हैं, अर्थात् इन संघयणों वाले उत्पन्न होते हैं। महाशुक्र व सहस्रार में पहले चार संघयण वाले उत्पन्न होते हैं। यह वक्तव्यता तिर्यंच व मनुष्य आश्रयी जानें। शेष पूर्ववत्।

(प्र० १९-२०)······आनत देव कहां से आकर उत्पन्न हों? सहस्रार देवों की तरह उपपात कहना। विशेष यहां तिर्यंचयोनिकों का निषेध करना अर्थात् यहां उत्पन्न नहीं होते यावत्—संख्यात वर्ष की आयु वाले पर्याप्त संज्ञी मनुष्य जो आनत देवों में उत्पन्न होने योग्य है, वह कितने काल की स्थिति वाले आनत देवों में उत्पन्न हो—इत्यादि प्रश्न? सहस्रारदेवों में उत्पन्न होने वाले मनुष्यों की वक्तव्यता यहां कहें। विशेष-पहले के तीन संघयण वाले इसमें उत्पन्न होते हैं। शेष पूर्ववत् यावत् अनुबन्ध तक जानें। भवादेश से जघन्य तीन भव, उत्कृष्ट सात भव तथा कालादेश से जघन्य दो वर्षपृथक्त्व अधिक १८ सागरोपम, उत्कृष्ट चार पूर्वकोटी अधिक सत्तावन सागरोपम—इतने काल यावत्—गति आगति करे। इसी प्रकार बाकी के आठ गमक कहने। विशेष—स्थिति व संवेध भिन्न जानना। शेष उसी प्रकार कहें। इस प्रकार यावत्—अच्युत देवलोक तक जानें। विशेष—अपनी २ स्थिति व संवेध भिन्न जानें। आनतादि चारों स्वर्गों में पहले तीन संघयण वाले उत्पन्न होते हैं।

(प्र० २१-२२)······ग्रैवेयक देव कहां से आकर उत्पन्न हों—इत्यादि पूर्वोक्त वक्तव्यता कहें। विशेष—इसमें पहले दो संघयण वाले उत्पन्न होते हैं। स्थिति व संवेध भिन्न जानना।···विजय, वैजयंत, जयंत व अपराजित देव कहां से आकर उत्पन्न होते हैं–इत्यादि पूर्वोक्त सारी वक्तव्यता यावत्--अनुबन्ध तक कहें। विशेष–इनमें प्रथम संघयण वाले उत्पन्न होते हैं। शेष पूर्ववत्। भवादेश से जघन्य तीन भव उत्कृष्ट पांच भव तक व कालादेश से जघन्य दो वर्षपृथक्त्व अधिक ३१ सागरोपम व उत्कृष्ट तीन पूर्वकोटी अधिक ६६ सागरोपम—इतने काल यावत्--गमनागमन करे। इसी प्रकार बाकी के आठों गमक कहें। विशेष—स्थिति व संवेध भिन्न २ जानें। मनुष्यके नवों गमकोंमें ग्रैवेयक में उत्पन्न होने वाले मनुष्य की तरह लब्धि उत्पत्ति कहनी। विशेष—इनमें प्रथम संघयण वाला उत्पन्न होता है।

(प्र० २३-२४)······सर्वार्थसिद्ध के देव कहां से आकर उत्पन्न होते हैं?

······उनका उत्पात विजयादिक की तरह कहें यावत् वह कितने काल की स्थिति वाले सर्वार्थसिद्ध देवों में उत्पन्न हो ?······जघन्य व उत्कृष्ट ३३ सागरोपम की स्थिति वाले सर्वार्थसिद्ध देवों में उत्पन्न हो। इस संबन्ध में बाकी सारी वक्तव्यता विजयादिक में उत्पन्न होने वाले मनुष्य की तरह कहें। विशेष—भवादेश से तीन भव और कालादेश से जघन्य दो वर्षपृथक्त्व अधिक ३३ सागरोपम तथा उत्कृष्ट दो पूर्वकोटी अधिक ३३ सागरोपम—इतने काल यावत्—गति आगति करे।

(प्र० २५-२६) यदि वह जघन्य काल की स्थिति वाला हो तो यही पूर्वोक्त वक्तव्यता कहें। विशेष—शरीर प्रमाण दो से नौ हाथ, स्थिति जघन्य दो से नौ वर्ष तक की जानें। शेष पूर्ववत्। स्थिति व संवेध भिन्न जानें। यदि वह स्वयं उत्कृष्ट काल की स्थिति वाला हो···तो यही पूर्वोक्त वक्तव्यता कहें। विशेष-शरीर-प्रमाण जघन्य व उत्कृष्ट पांच सौ धनुष तथा स्थिति जघन्य व उत्कृष्ट पूर्वकोटी की। शेष पूर्ववत् यावत् भवादेश तक जानें। कालादेश से जघन्य व उत्कृष्ट दो पूर्वकोटी अधिक ३३ सागरोपम—इतने काल यावत् गमनागमन करे। सर्वार्थसिद्ध देवों के यह तीन गमक ही होते हैं। हे भगवन्······यावत् विचरते हैं ॥७१४॥

॥ २४वें शतक का २४ वां उद्देशक समाप्त ॥

॥ चौबीसवां शतक समाप्त ॥

—०—

पच्चीसवां शतक

[उद्देशकार्थ संग्रह—लेश्या, द्रव्य, संस्थान, युग्म, पर्यव, निर्ग्रन्थ, श्रमण, ओघ, भव्य, अभव्य, सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि। कुल उद्देशक १२।]

प्रथम उद्देशक

(प्र० १-२) उस काल उस समय में राजगृह नगर में यावत् पूछा—भगवन्! कितनी लेश्याएं कही हैं? गौतम! छः लेश्याएं कही हैं, वह इस प्रकार—कृष्णलेश्या—इत्यादि प्रथम शतक के दूसरे उद्देशक में कहे अनुसार लेश्याओं का विभाग व उनका अल्पबहुत्व यावत् चार प्रकार के देवों व चार प्रकार की देवियोंके मिश्र अल्पबहुत्व तक कहें ॥७१५॥

भगवन्! संसारी जीव कितने प्रकारके कहे हैं? गौतम···१४ प्रकार···—अपर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय, पर्याप्त सू० ए०, अपर्याप्त बादर एकेन्द्रिय, पर्याप्त बा० ए०, अपर्याप्त बेइंद्रिय, पर्याप्त बे०, इसी प्रकार पर्याप्त व अपर्याप्त तेइन्द्रिय, प० व अ० चौरिन्द्रिय, अ० असंज्ञी पंचेन्द्रिय, प० अ० पं०, अ० संज्ञी पं० व पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय।

(प्र० ३) भगवन्! इन १४ प्रकार के संसारी जीवोंके जघन्य व उत्कृष्ट योग के आश्रयी कौन से जीव किनसे यावत् विशेषाधिक हैं? गौतम! सूक्ष्म

अपर्याप्त जीवका जघन्य योग सबसे थोड़ा है १ । उससे बादर अ० जीव का जघन्य योग असंख्यगुणा है २ । उससे बेइन्द्रिय अ० का···असंख्यगुणा है ३ । उससे तेइन्द्रिय अ० का······असंख्यात गुणा है···४ । उससे चउरिन्द्रिय अ०······५ । उससे अपर्याप्त असंज्ञी पंचेन्द्रिय का···६ । उससे अपर्याप्त संज्ञी पं० का···७ । उससे पर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय का···८ । उससे पर्याप्त बादर ए० का···९ । उससे अ० सूक्ष्म ए० का उत्कृष्ट योग···१० । उससे अ० बादर ए० का उ० योग···११ । उससे प० सूक्ष्म ए० का उत्कृष्ट···१२ । उससे प० बादर ए० का उत्कृष्ट योग असंख्यात गुणा है १३ । उनसे प० बेइन्द्रिय का जघन्य योग···१४ । इस प्रकार पर्याप्त तेइन्द्रिय यावत् पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रियका जघन्य योग (उत्तरोत्तर) असंख्यात गुणा है १५-१८ । उससे अपर्याप्त बे० का उत्कृष्ट योग···१९ । इस प्रकार अपर्याप्त तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय, यावत्–संज्ञी पंचेन्द्रियका उत्कृष्ट योग असंख्यात गुणा है २०-२३ । उससे पर्याप्त बे० का उत्कृष्ट योग···२४ । इस प्रकार अ० ते० का उत्कृष्ट योग···२५ । उससे पर्याप्त च० का उ० योग···२६ । उससे प० असंज्ञी पंचेन्द्रियका उत्कृष्ट योग···२७ । उससे पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय का उत्कृष्ट योग असंख्यात गुणा है २८ ॥७१६॥

(प्र० ४) भगवन् ! प्रथम समयमें उत्पन्न हुए दो नैरयिक समान योग वाले हों या विषम योग वाले हों ? गौतम ! वे कदाचित् समान योग वाले हों, कदाचित् विपमयोग वाले हों । भगवन् ! ऐसा क्यों कहा जाता है कि वे कदाचित्··· ? गौतम ! आहारक नारक से अनाहारक नारक व अनाहारक से आहारक नारक कदाचित् हीन योग वाला, क० तुल्य योग वाला और क० अधिक योग वाला हो । अर्थात् आ० नारकसे अनाहारक नारक हीन योग वाला, अनाहारक से आहारक नारक अधिक योग वाला, और दोनों आहारक या दोनों अनाहारक नारक परस्पर तुल्य योग वाले हों । यदि वह हीन योग वाला हो, तो वह असंख्यात भाग हीन, संख्यात गुण हीन या अ० गुण हीन हो । यदि वह अधिक योग वाला हो तो असंख्यात भाग अधिक, संख्यात भाग अधिक, संख्यात गुण अधिक या असंख्यात गुण अधिक होता है । इसलिए यावत् विपम योग वाला हो । इस प्रकार वैमानिकों तक जानें ॥७१७॥

(प्र० ५-६) भगवन् ! कितने प्रकारका योग कहा है ? गौतम ! १५ प्रकार का योग कहा है, वह इस प्रकार—१ सत्य मनोयोग, २ मृपा म०, ३ सत्यमृपा म०, ४ असत्यामृपा म०, ५ सत्य वचन योग, ६ असत्य व०, ७ सत्यमृपा व०, ८ असत्यामृपा व०, ९ औदारिक शरीर काययोग, १० औदारिक मिश्र शरीर०, ११ वैक्रिय शरीर०, १२ वैक्रिय मिश्र शरीर०, १३ आहारक शरीर०, १४ आहारक मिश्र शरीर० और १५ वां कार्मण शरीर काययोग । भगवन् ! जघन्य व

उत्कृष्ट १५ प्रकारके योगमें कौनसा योग किससे यावत् विशेपाधिक है ? गौतम ! कार्मण शरीर का जघन्य योग सबसे अल्प है, उससे औदारिकमिश्रका जघन्य योग असंख्यात गुणा है २, उससे वैक्रियमिश्र का जघन्य···३, उससे औदारिक शरीरका ज०···४, उससे वैक्रिय शरीर का ज०···५, उससे कार्मण शरीर का उत्कृष्ट योग···६, उससे आहारक मिश्रका जघन्य···७, उससे आहारक शरीर का उत्कृष्ट ···८, उससे औदारिक मिश्र व वैक्रियमिश्र का उत्कृष्ट योग असंख्यात गुणा व परस्पर समान है ९-१०, उससे असत्यामृषा मनोयोग का जघन्य योग···११, उससे आहारक शरीरका ज०···१२, उससे तीन प्रकार के मनोयोग व चार प्रकारके वचनयोग–इन सातों का जघन्य योग असंख्यात गुणा व परस्पर तुल्य होता है १३-१९, उससे आहारकशरीरका उत्कृष्ट योग···२०, उससे औदारिक शरीर, वैक्रिय शरीर, चार प्रकारके मनोयोग व चार प्रकारके वचनयोग—इन दसोंका उत्कृष्ट योग असंख्यात गुणा व परस्पर तुल्य होता है २१-३० । हे भगवन् !··· विचरते हैं ।।७१८।।

।। २५ वें शतक का प्रथम उद्देशक समाप्त ।।

द्वितीय उद्देशक

(प्र० १-३) भगवन् ! द्रव्य कितने प्रकार के कहे हैं ? गौतम ! द्रव्य दो प्रकार के कहे हैं···—जीवद्रव्य व अजीवद्रव्य ।···अजीवद्रव्य कितने प्रकार के···? ···दो प्रकारके···—रूपी अजीवद्रव्य व अरूपी अजीवद्रव्य, इस प्रकार जैसे प्रज्ञापना सूत्रके विशेप नाम के पांचवें पदमें अजीवपर्यवों के सम्बन्ध में कहा है, वैसे ही यहां अजीवद्रव्यके सम्बन्ध में यावत् हे गौतम ! इस कारणसे ऐसा कहा है कि वे (अजीवद्रव्य) संख्याता नहीं, असंख्याता नहीं, पर अनंत हैं, यहां तक कहें । भगवन् ! क्या जीवद्रव्य संख्यात हैं, असंख्यात हैं, या अनंत हैं ?···जीव संख्यात नहीं, असंख्यात नहीं, पर अनंत हैं । भगवन् ! किस हेतु से ऐसा कहा जाता है कि जीवद्रव्य···?···नैरयिक असंख्य हैं यावत्—वायुकायिक असंख्य हैं, वनस्पतिकायिक अनंत हैं, बेइंद्रिय और इसी प्रकार यावत् वैमानिक असंख्यात हैं, तथा सिद्ध अनंत हैं । इसलिए ऐसा कहा···।।७१९।।

(प्र० ४-५)···अजीवद्रव्य जीवद्रव्योंके परिभोगमें तुरन्त आते हैं या जीवद्रव्य अजीवद्रव्योंके परिभोगमें··· ? ···अजीवद्रव्य जीवद्रव्योंके परिभोग में तुरन्त आते हैं, परन्तु जीवद्रव्य अजीवद्रव्योंके परिभोग में० नहीं आते ।···किस हेतु से···?··· जीवद्रव्य अजीवद्रव्योंको ग्रहण करते हैं और ग्रहण करके उन्हें औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस् व कार्मण इन पांच शरीरों के रूपमें, श्रोत्रेन्द्रिय यावत् स्पर्शेन्द्रिय इन पांच इन्द्रियोंके रूपमें, मनोयोग, वचनयोग और काययोग तथा श्वासोच्छ्वासके

रूपमें परिणत करते हैं। इसलिए ऐसा······।···अजीवद्रव्य नैरयिकोंके परिभोगमें तुरन्त आते हैं या नैरयिक अजीवद्रव्योंके···?···अजीवद्रव्य नैरयिकोंके परिभोग में शीघ्र आते हैं, पर नैरयिक अजीवद्रव्योंके परिभोगमें शीघ्र नहीं आते।··· किस हेतु से ?···नैरयिक अजीवद्रव्योंको ग्रहण करते हैं और ग्रहण करके वैक्रिय, तैजस् और कार्मण शरीरके रूपमें, श्रोत्रेन्द्रिय यावत् स्पर्शेन्द्रियके रूपमें···तथा श्वासोच्छ्वासके रूपमें परिणत करते हैं। इसलिए ऐसा······। इस प्रकार यावत् वैमानिकों तक जानें। परन्तु जिसके जितने शरीर, इन्द्रिय व योग हों, उसके उतने कहने ॥ ७२०॥

(प्र० ६-९)···असंख्य लोकाकाशमें अनन्त द्रव्य रह सकते हैं?···हां, असंख्य···।···लोकके एक आकाश प्रदेशमें कितनी दिशाओंसे (आकर) पुद्गल एकत्र होते हैं?···व्याघात (प्रतिबंध) न हो तो छहों दिशाओंमें से आकर और जो प्रतिबंध हो तो कदाचित् तीन दिशाओंसे, क० चार दिशाओंसे और क० पांच दिशाओं से आकर पुद्गल एकत्र होते हैं।···लोक के···कितनी दिशाओं···पुद्गल छिन्न हों—अलग हों?···पूर्ववत् जानना। इस प्रकार स्कन्ध रूप में पुद्गल (अन्य पुद्गलोंके मिलने से) उपचित हों और (अलग होने से) अपचित हों ॥७२१॥

जीव जिन पुद्गलद्रव्योंको औदारिक शरीरके रूपमें ग्रहण करता है, तो स्थित द्रव्योंको ग्रहण करता है या अस्थित···?···वह स्थित व अस्थित दोनों द्रव्योंको ग्रहण करता है।

(प्र० १०-१२)···क्या वह द्रव्योंको द्रव्यसे, क्षेत्र से, काल से और भाव से ग्रहण करता है?···वह द्रव्योंको···करता है। द्रव्यसे अनंतप्रदेशिक, क्षेत्रसे असंख्य प्रदेशाश्रित···इस प्रकार प्रज्ञापना सूत्रके पहले आहारोद्देशकमें जैसे कहा गया है, यावत् प्रतिबंध विना छहों दिशाओंसे व प्रतिबंध हो तो कदाचित् तीन दिशाओंसे ···चार दिशाओं से···पांच दिशाओंसे आए हुए पुद्गलोंको ग्रहण करे—यहां तक कहें।···जीव जिन पुद्गल द्रव्योंको वैक्रिय शरीर के रूपमें ग्रहण करते हैं, वे स्थित द्रव्य होते हैं या अस्थित···?···पूर्ववत् जानें। विशेष—वैक्रियशरीरके रूपमें जिन द्रव्योंको ग्रहण करते हैं वे अवश्य 'छहों दिशाओंसे आए हुए होते हैं।' इसी प्रकार आहारक शरीर के सम्बन्धमें भी जानें।···जीव जिन पुद्गल द्रव्यों को तैजस्शरीर ··?···वे द्रव्य स्थित हों तो ग्रहण करता है, पर अस्थित हों तो ग्रहण नहीं करता। शेष औदारिकशरीरवत्। कार्मण शरीर भी इसी प्रकार यावत् भाव से भी ग्रहण करता है–यहां तक कहें।

(प्र० १३-१६)···जीव द्रव्यसे जिन द्रव्योंको ग्रहण करता है, वे द्रव्य एक प्रदेश वाले ग्रहण करता है, दो प्रदेश वाले···?···भाषापदमें कहे अनुसार यावत्– 'क्रमपूर्वक ग्रहण करता है, बिना क्रम ग्रहण नहीं करता' यहां तक जानना।···

कितनी दिशाओं से आए हुए पुद्गलों को ग्रहण करता है ?···प्रतिबंध के विना (छहों दिशाओंसे आए हुए स्कन्धोंको ग्रहण करता है–इत्यादि) औदारिक शरीर के समान जानना।···जीव जिन द्रव्योंको श्रोत्रेन्द्रिय रूपमें ग्रहण करता है··· प्रश्न।···वैक्रिय शरीरके समान यावत् जिह्वेन्द्रिय तक जानें। स्पर्शेन्द्रिय के सम्बन्धमें औदारिक शरीरवत्। मनोयोग के सम्बन्धमें कार्मण शरीर के समान जानें। विशेष—अवश्य छहों दिशाओंसे आए हुए पुद्गलोंको ग्रहण करता है। इसी प्रकार वचनयोगके सम्बन्ध में भी जानें। काययोगके सम्बन्ध में औदारिक शरीरके समान समझना।···जीव जिन द्रव्योंको श्वासोच्छ्वासत्वमें ग्रहण करता है–इत्यादि प्रश्न।···औदारिक शरीरकी तरह जानें। यावत् कभी तीन दिशा, चार दिशा, या पांच दिशाओंसे आए पुद्गलों को ग्रहण करता है। कोई 'जिसके जो हो उसे वह कहें' इन पदोंको २४ दंडकों में कहते हैं। हे भगवन् !···॥७२२॥

॥ २५ वें शतकका दूसरा उद्देशक समाप्त ॥

तृतीय उद्देशक

(प्र०१-३) भगवन् ! संस्थान-पौद्गलिक स्कंध के आकार कितने कहे हैं ? गौतम ! छ संस्थान कहे हैं, वह इस प्रकार-१-परिमंडल-वलयाकार, २ वृत्त-गोल, ३ त्र्यस्र-त्रिकोण, ४ चतुरस्र-चतुष्कोण, ५ आयत–दीर्घ और ६ अनित्थंस्थ-इनसे भिन्न आकार वाला।···परिमंडल संस्थान द्रव्यार्थरूप से क्या संख्यात है, असंख्यात है, या अनंत है ?···वह संख्यात नहीं, अ० नहीं, पर अनन्त है।···वृत्तसंस्थान ···इत्यादि प्रश्न ?···पूर्ववत्। इस प्रकार यावत् अनित्थंस्थ संस्थान तक जानें। इसी प्रकार प्रदेशार्थपने और द्रव्यार्थ प्रदेशार्थपने भी समझें।

(प्र०४)···परिमंडल, वृत्त, त्र्यस्र, चतुरस्र, आयत और अनित्थंस्थ संस्थानों में द्रव्यार्थ रूप से, प्रदेशार्थ० और द्रव्यार्थ–प्रदेशार्थ से कौनसे संस्थान किनसे यावत् विशेषाधिक हैं ?···द्रव्यार्थरूपसे परिमंडल संस्थान सबसे थोड़े हैं, उनसे वृत्त संस्थान द्रव्यार्थ रूपसे संख्यात गुणा हैं, उनसे चतुरस्रसंस्थान प्र०···, उनसे त्र्यस्र···, उनसे आयत···,उनसे अनित्थंस्थ···, प्रदेशार्थरूपसे परिमंडल संस्थान सब से थोड़े हैं, उनसे वृत्त·· प्रदेशार्थरूप ···इत्यादि जैसे द्रव्यार्थ रूप से कहा उसी प्रकार प्रदेशार्थ रूपसे भी यावत्—प्रदेशार्थ रूप से अनित्थंस्थ संस्थान असंख्यातगुणा हैं, यहां तक कहें। द्रव्यार्थ—प्रदेशार्थ रूपसे परिमंडल संस्थान सब से थोड़े हैं, इत्यादि द्रव्यार्थ संबंधी पूर्वोक्त गमक-पाठ कहना, यावत् अनित्थंस्थ संस्थान द्रव्यार्थ रूप से असंख्यात गुणा हैं। द्रव्यार्थ रूप से अनित्थंस्थ संस्थानों से परिमंडल संस्थान

प्रदेशार्थ रूप से असंख्यात गुणा है, उनसे वृत्त···इत्यादि पूर्वोक्त प्रदेशार्थपने का पाठ यावत् अनित्थंस्थ सं० असंख्यात गुणा हैं' यहां तक कहें ॥७२३॥

(प्र०५-९)···कितने संस्थान कहे हैं ?···पांच···-१ परिमंडल यावत् ५ आयत। परिमंडल संस्थान क्या संख्यात हैं, असंख्यात है या अनंत हैं ?···संख्यात नहीं, असंख्यात नहीं, पर अनन्त हैं।···वृत्तसंस्थान क्या संख्यात हैं-इत्यादि प्रश्न ? ···पूर्ववत् समझें। इस प्रकार यावत्-आयत संस्थान तक जानें।···रत्नप्रभा पृथिवी में परिमंडल संस्थान क्या संख्यात···?···संख्यात नहीं, अ० नहीं, पर अनंत हैं। ···वृत्त संस्थान···?···पूर्ववत् यावत् आयत् संस्थान तक समझें।

(प्र०१०-१५)···शर्कराप्रभा पृथिवी में··· इत्यादि प्रश्न।···पूर्ववत् जानें। इस प्रकार यावत् आयत संस्थान तक समझें यावत् अधःसप्तम पृथिवी तक इसी प्रकार जानें।···सौधर्म कल्प में परिमंडल··· इत्यादि प्रश्न।···पूर्ववत् जानें। इस प्रकार यावत्—अच्युतकल्प तक जानें।···ग्रैवेयक विमानों में क्या परिमंडल ···? पूर्ववत्, इस प्रकार यावत् अनुत्तर विमान तथा ईषत्प्राग्भारा के विषय में भी समझें।···जहां एक यवाकार परिमंडल संस्थान समुदाय है वहां उसके सिवाय दूसरे परिमंडल संस्थान संख्यात, असं० या अनन्त हैं ?···संख्यात नहीं, अ० नहीं पर अनंत हैं। ···वृत्त संस्थान···? पूर्ववत्, इस प्रकार यावत् आयत संस्थान तक समझें।···जहां (यवाकृति निष्पादक) एक वृत्त संस्थान है, वहाँ परिमंडल संस्थान कितने हैं ? पूर्ववत्, वृत्त संस्थान भी इसी प्रकार अनन्त समझें। इस प्रकार यावत् आयत संस्थान तक जानें। एक २ संस्थान के साथ पांचों संस्थानों का संबंध विचारें।

(प्र० १६-१८)······इस रत्नप्रभा पृथिवी में जहां यवाकारनिष्पादक एक परिमंडल संस्थान समुदाय है, वहां दूसरे परिमंडल संस्थान क्या संख्यात हैं— इत्यादि प्रश्न।······संख्यात नहीं, पर अनंत हैं।······वृत्तसंस्थान······इत्यादि प्रश्न।······इसी प्रकार······अनन्त हैं, यावत् आयत तक जानें।······इस रत्न-प्रभा······एक वृत्तसंस्थान है वहां परिमंडल······प्रश्न।······सं० नहीं, अ० नहीं, पर अनंत हैं। वृत्त संस्थान भी इसी प्रकार जानें। इसी प्रकार आयत संस्थान तक समझें। इस प्रकार पूर्वोक्त रीति से दुबारा एक २ संस्थान के साथ पांचों संस्थानों का आयत संस्थान तक विचार करना, तथा यावत्—अधःसप्तम पृथिवी, कल्पों और ईषत्प्राग्भारा पृथिवी के संबन्ध में भी समझें ॥७२४॥

······वृत्त संस्थान कितने प्रदेश वाला है और कितने आकाश-प्रदेश में अवगाढ़—रहा हुआ है ? वृत्त संस्थान दो प्रकार का कहा है······घनवृत्त व प्रतर-वृत्त। उसमें जो प्रतरवृत्त है वह दो प्रकार······ओज प्रदेश वाला—एक संख्या

वाला और युग्म संख्या प्रदेश वाला। उनमें जो ओजप्रदेश वाला प्रतरवृत्त है वह जघन्य पांच प्रदेश वाला और पांच आकाशप्रदेशों में अवगाढ़ है, तथा उत्कृष्ट अनंतप्रदेश वाला और असंख्यात आकाशप्रदेश में अवगाढ़ है। उसमें जो युग्म प्रदेश वाला प्रतरवृत्त है वह जघन्य १२ प्रदेश वाला और १२ आकाश प्रदेशों में अवगाढ़ है तथा उत्कृष्ट अनंत प्रदेश वाला व असंख्यात आकाश प्रदेश में अवगाढ़ है। उसमें जो घनवृत्त है वह दो प्रकार···ओजप्रदेशिक व युग्मप्रदेशिक। उसमें जो ओजप्रदेशिक घनवृत्त है वह जघन्य सात प्रदेशों वाला व सात आकाश प्रदेशों में अवगाढ़ है, उत्कृष्ट अनंत प्रदेश वाला व असंख्यात आकाश प्रदेश में अवगाढ़ है। उसमें जो युग्मप्रदेशिक घनवृत्त है, वह जघन्य ३२ प्रदेश वाला व ३२ आकाश प्रदेशों में अवगाढ़ है, उत्कृष्ट अनंत प्रदेश वाला व असंख्यात आकाश प्रदेश में अवगाढ़ है।

(प्र० १९)······त्र्यस्र संस्थान कितने प्रदेश वाला व कितने आकाश प्रदेश में अवगाढ़ है?······त्र्यस्रसंस्थान दो······घनत्र्यस्र और प्रतरत्र्यस्र। उसमें जो प्रतरत्र्यस्र है वह दो······ओजप्रदेशिक व युग्मप्रदेशिक। उसमें जो ओजप्रदेशिक प्रतरत्र्यस्र है, वह जघन्य तीन प्रदेश वाला व तीन आकाश प्रदेशों में अवगाढ़ है, उत्कृष्ट अनंत प्रदेश वाला व असंख्य आकाश प्रदेशों में अवगाढ़ है। उसमें जो युग्मप्रदेशिक प्रतरत्र्यस्र है वह जघन्य छः प्रदेश वाला व छः आकाश प्रदेशों······व उत्कृष्ट अनंत प्रदेश वाला असंख्य आ०······। उसमें जो घनत्र्यस्र है वह दो······ ओजप्रदेशिक व युग्मप्रदेशिक। उसमें जो ओजप्रदेशिक घनत्र्यस्र है, वह जघन्य ३५ प्रदेश वाला व ३५ आ०······, उत्कृष्ट अनंत प्रदेश वाला असंख्य···। उसमें जो युग्मप्रदेशिक घनत्र्यस्र है वह जघन्य चार प्रदेश वाला व चार आ०······, उत्कृष्ट अनंत प्रदेश वाला असंख्य······।

(प्र० २०)······चतुरस्र संस्थान कितने प्रदेश······अवगाढ़ होता है?······ चतुरस्र-चतुष्कोण संस्थान दो प्रकार का है, उसके वृत्त संस्थान की तरह घनचतुरस्र व प्रतरचतुरस्र भेद कहने यावत् उसमें जो ओजप्रदेशिक प्रतरचतुरस्र है वह जघन्य ९ प्रदेश वाला व ९ आ०······, उत्कृष्ट अनन्त प्र० वाला व असंख्य आ० ······। और जो युग्मप्रदेशिक प्रतरचतुरस्र है, वह जघन्य चार प्रदेश वाला व चार आ०····· उत्कृष्ट अनन्त प्र० वाला व असंख्य आ०······। उसमें जो घनचतुरस्र है, वह दो······ओजप्रदेशिक व युग्म०। उसमें जो ओज-प्रदेशिक० है, वह जघन्य २७ प्रदेश वाला व २७ आ०······उत्कृष्ट अनन्त प्र०··· असंख्य आ०······और जो युग्म० वह जघन्य आठ प्रदेश वाला व आठ आ०······ उत्कृष्ट अनन्त प्र० वाला व असंख्य आ०······।

(प्र० २१)······आयत संस्थान कितने प्रदेश वाला है व कितने आकाश

प्रश्न ?···कभी कृ० हो, कभी त्र्योज० हो, कभी द्वा० हो, पर कल्योज प्रदेशावगाढ़ न हो।···चतुरस्र—चौरस संस्थान क्या कृतयुग्म०···प्रश्न। वृत्तसंस्थानकी भांति चतुरस्र संस्थान जानें।

(प्र० ३१-३४)···आयत संस्थानके संबंध में प्रश्न।···वह कदाचित् कृ० हो यावत् क० कल्योजप्रदेशावगाढ़ भी हो।···परिमंडल संस्थान क्या कृ० त्र्योज० इत्यादि प्रश्न।···वे सामान्यत: सब मिलकर तथा विधानादेश–एक २ की अपेक्षासे कृतयुग्म प्रदेशावगाढ़ हैं, पर त्र्योज० नहीं, द्वा० नहीं, उसी प्रकार कल्योज० भी नहीं।···वृत्तसंस्थान क्या कृत०···इत्यादि प्रश्न। सामान्यत: सारे मिल कर कृत-युग्म प्रदेशावगाढ़ हैं, पर त्र्योज० नहीं, द्वा० नहीं व कल्योज० भी नहीं। विधाना-देशसे कृतयुग्म प्रदेशावगाढ़ भी हैं, त्र्योज० भी हैं, द्वा० नहीं, पर कल्योज० हैं। ···त्र्यस्र संस्थान क्या कृतयुग्म प्रदेशावगाढ़ हैं—इत्यादि प्रश्न। ···सामान्य विवक्षा से कृतयुग्म प्र० हैं, पर त्र्योज०, द्वा० या कल्योज० नहीं। विशेष की अपेक्षा कृतयुग्म० भी हैं, त्र्योज० भी हैं, पर द्वा० नहीं, कल्योज० हैं। चतुरस्रसंस्थान वृत्तसंस्थान के समान जानें।

(प्र० ३५-३७)···आयत संस्थान क्या कृ०···प्रश्न।···वे ओघादेशसे कृतयुग्म प्रदेशावगाढ़ हैं, पर त्र्योज०, द्वापर० या कल्योज० नहीं। विधानादेशसे कृत० भी हैं यावत् कल्योज० भी हैं।···परिमंडल संस्थान क्या कृतयुग्म समय की स्थिति वाला है, त्र्योज समय···, द्वा० समय···, या कल्योज समय···?···कदाचित् कृत-युग्म समय की स्थिति वाला है यावत् क० कल्योज समयकी स्थिति वाला भी है। इस प्रकार यावत् आयत संस्थान तक जानना। ···परिमंडल संस्थान क्या कृत० स्थिति वाले हैं–इत्यादि प्रश्न।··· ओघादेशसे कदाचित् कृतयुग्म समयकी स्थिति वाले हैं यावत् क० कल्योज० भी हैं। विधानादेशसे कृत० भी हैं, यावत्—कल्योज० स्थिति वाले भी हैं। इस प्रकार यावत् आयत संस्थानों तक समझें।

(प्र० ३८-४२)···परिमंडल संस्थानके काले वर्णके पर्याय क्या कृतयुग्म हैं, या यावत् कल्योज रूप हैं? कदाचित् कृतयुग्म रूप हों–इत्यादि जैसे स्थितिके संबंधमें कहा है, वैसे कहें। इस प्रकार नीले आदि पांच वर्ण, दो गंध, पांच रस, व आठ स्पर्शों के संबंधमें यावत् रूक्ष स्पर्श पर्यवों तक कहें।···(आकाशप्रदेश की) श्रेणियां संख्यात हैं, असंख्यात हैं या अनंत हैं ?···संख्यात नहीं, अ० नहीं, पर अनंत हैं। ···पूर्व व पश्चिम लंबी श्रेणियां क्या संख्यात हैं, असंख्यात हैं या अनन्त हैं ? पूर्ववत् (अनन्त) जानें। इसी प्रकार दक्षिण व उत्तर लम्बी तथा ऊर्ध्व और अधो लंबी श्रेणियों के संबंधमें भी जानें। ···लोकाकाशकी श्रेणियां द्रव्यरूप से संख्यात हैं, अ० या अनंत हैं ?···वे सं० नहीं, अनंत नहीं, पर अ० हैं। ···पूर्व व पश्चिम लंबी लोकाकाश की श्रेणियां द्रव्यरूप से संख्यात हैं— इत्यादि प्रश्न।

प्रदेश में अवगाढ़ है ?......आयत संस्थान तीन......श्रेणिआयत, प्रतरायत व घनायत। उसमें जो श्रेणिआयत है, वह दो......ओजप्रदेशिक और युग्म०। उसमें जो ओज० है वह जघन्य तीन प्रदेश वाला व तीन आ०....., उत्कृष्ट अनंत प्र० व असंख्य आ० ...। जो युग्म० है वह जघन्य दो प्रदेश० व दो आ०...... उत्कृष्ट अनंत० व असंख्य......। उसमें जो प्रतरायत है वह दो......ओजप्रदेशिक और युग्म०। जो ओज० है वह जघन्य १५ प्र० व १५ आ०......उत्कृष्ट अनंत प्र० व असंख्य आ०...। उसमें जो युग्म० वह जघन्य ६ प्र० व छः आ०......उत्कृष्ट अनंत ......व असंख्यात आ०......। उसमें जो घनायत है वह दो......ओजप्रदेशिक व युग्म०। उसमें जो ओज० है वह जघन्य ४५ प्र० व ४५ आ०......उत्कृष्ट अनंत प्र० व असंख्यात आ०......। उसमें जो युग्म० है वह जघन्य १२ प्र० १२ आ०...... उत्कृष्ट अनंत प्र० व असंख्य आ०...... ।

(प्र० २२–२४)......परिमंडल संस्थान कितने प्रदेश वाला और कितने आकाश प्रदेश में अवगाढ़ हो ?......परिमंडल संस्थान दो......घनपरिमंडल व प्रतर०। उसमें जो प्रतर० है वह जघन्य २० प्रदेश वाला व २० आ०......उत्कृष्ट अनंत प्र० व असंख्यात......। उसमें जो घनपरिमंडल है, वह जघन्य ४० प्र० व ४० आ०......उत्कृष्ट अनन्त......व असंख्य......।। ७२५ ।।

...परिमंडल संस्थान द्रव्यार्थरूप से क्या कृतयुग्म है, त्र्योज है, द्वापरयुग्म है या कल्योज है ?......वह कृतयुग्म नहीं, त्र्योज नहीं, द्वा० नहीं, पर कल्योज रूप है।......वृत्तसंस्थान......प्रश्न। उत्तर पूर्ववत्। इस प्रकार यावत्—आयत संस्थान तक समझें।......परिमंडल संस्थान......कल्योज है ?......ओघादेश—सामान्यतः सर्वसमुदित रूप से कभी कृत०, कभी त्र्योज, कभी द्वा०, कभी क० रूप होता है तथा विधानादेश-प्रत्येक की अपेक्षा से कृ० रूप नहीं, त्र्योज नहीं, द्वा० नहीं, पर क० रूप है। इस प्रकार यावत्—आयत संस्थान तक जानें।

(प्र० २५-३०)...परिमंडल संस्थान प्रदेशार्थ रूप से क्या कृ० प्रश्न।... कभी कृतयुग्म हो, कभी त्र्योज, कभी द्वा० और कभी क० रूप होता है, इस प्रकार यावत्—आयत संस्थान तक जानें।...परिमंडल संस्थान (बहुत से)...प्रश्न।... ओघादेश–सामान्य रूप से कभी कृतयुग्म हों यावत् कभी कल्योज रूप भी हों। विधानादेश—एक २ की अपेक्षा से कृ० हो, त्र्योज भी हों, द्वा० भी हों और कल्योज रूप भी हों, इस प्रकार यावत् आयत संस्थानों तक जानें। ...परिमंडल संस्थान क्या कृतयुग्म प्रदेशावगाढ़ [है] या यावत् क० है ?...कृतयुग्मप्र० है, पर त्र्योज प्र० नहीं, द्वा० प्र० नहीं, क० प्र० भी नहीं।...वृत्तसंस्थान क्या कृ० प्र० इत्यादि प्रश्न।...वह कदाचित् कृत० प्र० हो, क० त्र्योज प्र० हो, क० कल्योज प्र० हो, पर द्वापरयुग्मप्रदेशावगाढ़ न हो।...त्र्यस्र संस्थान क्या कृत०...इत्यादि

प्रश्न ?···कभी कृ० हो, कभी त्र्योज० हो, कभी द्वा० हो, पर कल्योज प्रदेशावगाढ़ न हो।···चतुरस्र—चौरस संस्थान क्या कृतयुग्म०···प्रश्न। वृत्तसंस्थानकी भांति चतुरस्र संस्थान जानें।

(प्र० ३१-३४)···आयत संस्थानके संबंध में प्रश्न।···वह कदाचित् कृ० हो यावत् क० कल्योजप्रदेशावगाढ़ भी हो।···परिमंडल संस्थान क्या कृ० त्र्योज० इत्यादि प्रश्न।···वे सामान्यतः सब मिलकर तथा विधानादेश—एक २ की अपेक्षासे कृतयुग्म प्रदेशावगाढ़ हैं, पर त्र्योज० नहीं, द्वा० नहीं, उसी प्रकार कल्योज० भी नहीं।···वृत्तसंस्थान क्या कृत०···इत्यादि प्रश्न। सामान्यतः सारे मिल कर कृत-युग्म प्रदेशावगाढ़ हैं, पर त्र्योज० नहीं, द्वा० नहीं व कल्योज० भी नहीं। विधाना-देशसे कृतयुग्म प्रदेशावगाढ़ भी हैं, त्र्योज० भी हैं, द्वा० नहीं, पर कल्योज० हैं। ···त्र्यस्र संस्थान क्या कृतयुग्म प्रदेशावगाढ़ हैं—इत्यादि प्रश्न। ···सामान्य विवक्षा से कृतयुग्म प्र० हैं, पर त्र्योज०, द्वा० या कल्योज० नहीं। विशेष की अपेक्षा कृतयुग्म० भी हैं, त्र्योज० भी हैं, पर द्वा० नहीं, कल्योज० हैं। चतुरस्रसंस्थान वृत्तसंस्थान के समान जानें।

(प्र० ३५-३७)···आयत संस्थान क्या कृ०···प्रश्न।···वे ओघादेशसे कृतयुग्म प्रदेशावगाढ़ हैं, पर त्र्योज०, द्वापर० या कल्योज० नहीं। विधानादेशसे कृत० भी हैं यावत् कल्योज० भी हैं।···परिमंडल संस्थान क्या कृतयुग्म समय की स्थिति वाला है, त्र्योज समय···, द्वा० समय···, या कल्योज समय···?···कदाचित् कृत-युग्म समय की स्थिति वाला है यावत् क० कल्योज समयकी स्थिति वाला भी है। इस प्रकार यावत् आयत संस्थान तक जानना। ···परिमंडल संस्थान क्या कृत० स्थिति वाले हैं—इत्यादि प्रश्न।··· ओघादेशसे कदाचित् कृतयुग्म समयकी स्थिति वाले हैं यावत् क० कल्योज० भी हैं। विधानादेशसे कृत० भी हैं, यावत्—कल्योज० स्थिति वाले भी हैं। इस प्रकार यावत् आयत संस्थानों तक समझें।

(प्र० ३८-४२)···परिमंडल संस्थानके काले वर्णके पर्याय क्या कृतयुग्म हैं, या यावत् कल्योज रूप हैं? कदाचित् कृतयुग्म रूप हों—इत्यादि जैसे स्थितिके संबंधमें कहा है, वैसे कहें। इस प्रकार नीले आदि पांच वर्णों, दो गंध, पांच रस, व आठ स्पर्शों के संबंधमें यावत् रूक्ष स्पर्श पर्यवों तक कहें।···(आकाशप्रदेश की) श्रेणियां संख्यात हैं, असंख्यात हैं या अनंत हैं ?···संख्यात नहीं, अ० नहीं, पर अनंत हैं। ···पूर्व व पश्चिम लंबी श्रेणियां क्या संख्यात हैं, असंख्यात हैं या अनन्त हैं? पूर्ववत् (अनन्त) जानें। इसी प्रकार दक्षिण व उत्तर लम्बी तथा ऊर्ध्व और अधो लंबी श्रेणियों के संबंधमें भी जानें। ···लोकाकाशकी श्रेणियां द्रव्यरूप से संख्यात हैं, अ० या अनंत हैं ?···वे सं० नहीं, अनंत नहीं, पर अ० हैं। ···पूर्व व पश्चिम लंबी लोकाकाश की श्रेणियां द्रव्यरूप से संख्यात हैं— इत्यादि प्रश्न।

···पहले की तरह (असंख्यात) जानें। इसी प्रकार दक्षिण व उत्तर लम्बी तथा ऊर्ध्व व अधो लम्बी लोकाकाश की श्रेणियोंके संबंध में भी जानें ॥७२६॥

(प्र० ४३-४५)···अलोकाकाश की श्रेणियां द्रव्यरूपसे क्या संख्यात हैं, असंख्यात हैं या अनंत हैं ?···वे सं० नहीं, अ० नहीं, पर अनंत हैं। इसी प्रकार पूर्व व पश्चिम लम्बी, दक्षिण व उत्तर में लंबी तथा ऊंचे व नीचे लम्बी अलोकाकाश की श्रेणियों के सम्बन्ध में भी जानें। ···आकाश की श्रेणियां प्रदेश रूप से क्या सं० हैं—इत्यादि प्रश्न।···जैसे द्रव्य रूप से कहा है वैसे प्रदेश रूप से भी कहें। इस प्रकार यावत् ऊर्ध्व व अधो लंबी सारी श्रेणियां अनंत जानें।···लोकाकाश की श्रेणियां प्रदेश रूप से···प्रश्न। ···कोई संख्यात प्रदेश रूप है, कोई असंख्यात···, पर अनंत प्रदेश रूप नहीं। इसी प्रकार पूर्व व प०, दक्षिण व उ० लम्बी श्रेणियां जानें। ऊर्ध्व व अधो लंबी लोकाकाश की श्रेणियां संख्यात प्रदेश रूप नहीं, पर असंख्यात प्रदेशात्मक हैं।

(प्र० ४६-५०)···अलोकाकाश की श्रेणियां···प्रश्न।···कोई संख्यात प्रदेश रूप हो, कोई अ० और कोई अनंतप्रदेशात्मक भी हो। ···पूर्व व पश्चिम लंबी अलोकाकाशकी श्रेणियां···प्रश्न।···संख्यात प्रदेशकी नहीं, पर अनंत प्रदेशकी होती हैं। इसी प्रकार दक्षिण व उत्तर लंबी श्रेणियोंके संबंधमें भी जानें।···ऊंचे व नीचे लम्बी अलोकाकाश···प्रश्न। ···कदाचित् वे संख्यात प्रदेश की होती हैं, क० अ० ···और क० अनंत···॥७२७॥

···श्रेणियां क्या १सादि—आदिवाली और सपर्यवसित—सान्त हैं, २ सादि अन्तरहित हैं, ३ अनादि और सान्त हैं या ४ अनादि और अनन्त हैं।···१ सादि व सान्त नहीं, २ सादि व अनंत नहीं, ३ अनादि व सान्त नहीं, पर ४ अनादि व अनन्त हैं। इस प्रकार यावत् ऊर्ध्व व अधो लंबी श्रेणियोंके संबंधमें समझें। ···लोकाकाश की श्रेणियां क्या सादि व सान्त हैं—इत्यादि प्रश्न।···वे सादि और सान्त हैं, पर सादि व अनन्त नहीं, अनादि व सान्त नहीं, वैसे ही अनादि व अनन्त भी नहीं। इस प्रकार—यावत्—ऊर्ध्व व अधो लंबी श्रेणियों के संबंध में भी जानें।

(प्र०५१-५५)···अलोकाकाश की श्रेणियां क्या सादि और सान्त हैं-इत्यादि प्रश्न।···कोई सादि व सान्त हो, कोई सादि और अनन्त हो, कोई अनादि व सान्त हो तथा कोई अनादि और अनन्त हो। इस प्रकार पूर्व पश्चिम लंबी व दक्षिण उत्तर लंबी श्रेणियों के संबंध में जानें। परन्तु वे सादि और सान्त नहीं, पर कोई सादि और अनन्त है—इत्यादि शेष पूर्ववत्। सामान्य श्रेणियों की भांति ऊर्ध्व—

अधो लंवी श्रेणियों के संबंध में भी पूर्ववत् चार भांगे करने ।···आकाश की श्रेणियां द्रव्यार्थपने-द्रव्य रूपसे क्या कृतयुग्म हैं, त्र्योज हैं—इत्यादि प्रश्न।···वे कृतयुग्म रूप हैं, पर त्र्योज, द्वा० या कल्योज रूप नहीं। इस प्रकार यावत्—ऊर्ध्व व अधो लंवी श्रेणियों के संबंध में भी जानें। तथा लोकाकाशकी व अलोकाकाशकी श्रेणियां भी इसी प्रकार कृतयुग्म रूप जानें।···श्रेणियां प्रदेशरूप से क्या कृत-युग्म हैं···प्रश्न। पूर्ववत्, इसी प्रकार यावत् ऊर्ध्व व अधो लम्वी श्रेणियां जानें। ···लोकाकाश की श्रेणियां प्रदेशरूप से क्या कृतयुग्म हैं···प्रश्न। कदाचित् कृतयुग्म हैं, त्र्योज नहीं, कदाचित् द्वा० हैं, पर कल्योज रूप नहीं। ऊर्ध्व व अधो लंवी लोकाकाश की श्रेणियों के संवंध में प्रश्न।···वे कृतयुग्म रूप हैं, पर त्र्योज, द्वा० और कल्योज रूप नहीं।

(प्र०५६-६०)···अलोकाकाशकी श्रेणियां प्रदेशरूप से···प्रश्न।···कोई कृतयुग्म रूप हो यावत् कोई कल्योज रूप भी हो। इस प्रकार पूर्व व पश्चिम लंवी तथा दक्षिण व उत्तर लंवी श्रेणियों के संवंध में जानें। ऊर्ध्व व अधो लंवी श्रेणियों के सम्वन्ध में भी इसी प्रकार समझें, परन्तु वे कल्योजरूप नहीं। शेष सर्व पूर्ववत् ॥७२८॥

···श्रेणियां कितनी कही हैं?···सात श्रेणियां कही हैं, वह इस प्रकार—१ ऋज्वायत--सीधी लंवी श्रेणी, २ एकतः वक्रा—एक तरफ टेढ़ी, ३ उभयतः वक्रा-दोतरफ टेढ़ी, ४ एकतः खा—एक तरफ लोकनाड़ी के अतिरिक्त आकाश वाली ५उभयतः खा, ६ चक्रवाला-मंडलाकार गति वाली, तथा ७ अर्धचक्रवाला--अर्ध-मंडलाकार गति वाली।···परमाणु पुद्गल की गति अनुश्रेणी—आकाशप्र-देश की श्रेणीके अनुसार होती है या विश्रेणी-विना श्रेणी के होती है?···परमाणु पुद्गल की गति अनुश्रेणी होती है, विश्रेणी नहीं होती।···द्विप्रदेशिक स्कंध··· पृच्छा। पूर्ववत्, इस प्रकार यावत् अनंतप्रदेशिक स्कंध के संवंध में भी जानें।··· नैरयिकों की गति···पृच्छा।···पूर्ववत् यावत् वैमानिकों तक समझें···॥७२९॥

(प्र०६१-६७)···इस रत्नप्रभा पृथिवी में कितने लाख नरकावास कहे हैं? ···उस में ३० लाख नरकावास कहे हैं-इत्यादि प्रथम शतक के पांचवें उद्देशक में कहे अनुसार यावत् अनुत्तर विमान तक कहें ॥७३०॥···गणिपिटक आगम कितने प्रकार का कहा है?···वारह अंग वाला गणिपिटक कहा है···आचारांग यावत् दृष्टिवाद।···आचारांग क्या है?···आचारांग में···चरित्रधर्म की प्ररूपणा की जाती है। इस प्रकार नंदीसूत्रमें कहे अनुसार सव अंगों की प्ररूपणा करें यावत् प्रथम सूत्रार्थ मात्र कहें, दूसरे निर्युक्ति मिश्र अर्थ कहें, तीसरे सर्व अर्थका कथन करें, यह अनुयोग संवंधी विधि है···॥७३१॥

…नैरयिक यावत् देव और सिद्ध इन पांच गतिके समुदायमें कौनसे जीव किनसे यावत् विशेपाधिक हैं?…प्रज्ञापनासूत्र के वहुवक्तव्यता पदमें कहे अनुसार अल्पवहुत्व जानें। तथा आठ गतिके समुदायका भी अल्पबहुत्व जानें।…सेन्द्रिय, एकेन्द्रिय यावत् अनिन्द्रिय जीवोंमें कौन जीव किनसे यावत् विशेपाधिक हैं?… इसके संबंधमें भी प्रज्ञापनाके वहुवक्तव्यता पदमें कहा हुआ सामान्य पद कहें। सकायिकोंका भी उसी प्रकार सामान्य अल्प-वहुत्व कहें।…इन जीव और पुद्गल यावत् सर्व पर्यायोंमें कौन किनसे यावत् विशेपाधिक हैं–इत्यादि यावत् वहुवक्तव्यता में कहे अनुसार अल्पवहुत्व कहना।…इन आयुकर्मके वंधक व अवंधक इत्यादि जीवों में कौन जीव किनसे यावत् विशेपाधिक हैं?…बहुवक्तव्यतानुसार जानें यावत् आयुकर्मके अवंधक जीव विशेपाधिक हैं। हे भगवन्… ॥ ७३२॥

॥२५ वें शतकका तीसरा उद्देशक समाप्त॥

चतुर्थ उद्देशक

(प्र० १-३) भगवन्! कितने युग्म[1] कहे हैं? गौतम! चार…–कृतयुग्म यावत् कल्योज।…ऐसा आप किस हेतु से कहते हैं…?…अठारहवें शतक के चौथे उद्देशक में कहे अनुसार यहां जानें। यावत्–'इसलिए हे गौतम! ऐसा कहा है।'…नैरयिकों में कितने युग्म कहे हैं?…चार युग्म…—कृतयुग्म यावत् कल्योज।…ऐसा आप किस कारण से…इत्यादि पूर्वोक्त अर्थ कहें, इस प्रकार यावत् वायुकायिक तक जानना।…वनस्पतिकायिकोंमें कितने युग्म कहे हैं?…वनस्पति० कदाचित् कृत-युग्म हों, क० त्र्योज हों, क० द्वा० हों और क० कल्योज हों।…किस कारण…? …उपपात की अपेक्षा इस प्रकार कहा है, इसलिए यावत्–पूर्वोक्त रूपसे वनस्पति-कायिक कहे हैं। नैरयिकोंके समान वेइंद्रियोंके सम्वन्धमें समझें। इस प्रकार यावत् वैमानिकों तक जानें। सिद्ध वनस्पतिकायिकोंके समान जानें।

(प्र० ४-१०)…सर्वद्रव्य कितने प्रकार के कहे हैं?……सर्व द्रव्य छः प्रकारके कहे हैं…—१ धर्मास्तिकाय यावत्—६ अद्धासमय (काल)।……धर्मास्तिकाय द्रव्यार्थ रूपसे कृतयुग्म है या यावत् कल्योज है?…वह कृतयुग्म नहीं, त्र्योज नहीं, द्वा० नहीं, पर कल्योज है। इस प्रकार अधर्मास्तिकाय तथा आकाशास्तिकायके सम्वन्ध में भी जानें।…जीवास्तिकाय… प्रश्न।…जीवास्तिकाय द्रव्यरूपसे कृतयुग्म रूप है, पर त्र्योज, द्वा० या कल्योज रूप नहीं।…पुद्गलास्तिकाय संवन्धी प्रश्न।…वह कदाचित् कृ० हो यावत् क० कल्योज रूप भी हो। जीवास्तिकायके समान अद्धासमय भी (कृतयुग्मरूप) जानें। …धर्मास्तिकाय प्रदेशार्थ रूपसे क्या कृतयुग्म है–इत्यादि प्रश्न।…(उसके अवस्थित अनन्त प्रदेश होनेसे) वह कृतयुग्म है, पर त्र्योज, द्वा० या कल्योज नहीं। इस

---

१. राशियां।

प्रकार यावत् अद्धासमय तक जानें।···इन धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, यावत् अद्धासमयोंका द्रव्यार्थ रूपसे अल्पवहुत्व किस प्रकार है?···वहुवक्तव्यता में कहे अनुसार इनका समस्त अल्पवहुत्व कहें।···धर्मास्तिकाय क्या अवगाढ़आश्रित है या अनवगाढ़०?···वह अवगाढ़ है, पर अनवगाढ़ नहीं।

(प्र० ११-१५)···यदि वह अवगाढ़ है तो क्या संख्यात प्रदेश में अवगाढ़ है, असं०···या अनंत०···?···वह लोकाकाश के संख्यात प्रदेश या अनंत प्रदेशमें अवगाढ़ नहीं, पर असंख्यात प्रदेश में आश्रित है।···यदि वह असं०···तो क्या कृतयुग्म राशि वाले प्रदेशोंमें आश्रित है···प्रश्न।···वह कृतयुग्म···आश्रित है, पर त्र्योज, द्वापर या कल्योज राशि वाले प्रदेशमें आश्रित नहीं। इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय, आकाशा०, जीवा०, पुद्गला० व अद्धासमयके सम्बन्ध में भी जानें।···रत्नप्रभा पृथिवी किसी के आश्रित है या अनाश्रित है?···धर्मास्तिकायके समान जानें। इस प्रकार यावत् अधःसप्तम पृथिवी तक जानें। तथा सौधर्म यावत्–ईषत्प्राग्भारा पृथिवीके सम्बन्धमें भी इसी प्रकार समझें ।।७३३।।

जीव द्रव्यार्थ रूपसे क्या कृतयुग्म है···प्रश्न।···वह कृ०, त्र्योज या द्वा० रूप नहीं पर कल्योजरूप है। इस प्रकार नैरयिक यावत्···सिद्ध तक जानें।··· जीवद्रव्यार्थपने···प्रश्न।···जीव सामान्यतः—सब मिलकर कृतयुग्म हैं, पर त्र्योज, द्वापर या कल्योज रूप नहीं और विशेष—एक एक की अपेक्षा कृतयुग्म, त्र्योज व द्वा० नहीं, पर कल्योज रूप हैं।

(प्र० १६-२०)···नैरयिकोंके सम्बन्धमें द्रव्यार्थ रूपसे प्रश्न?···नै० सामान्यतः कदाचित् कृतयुग्म और यावत् कदाचित् कल्योज भी हों और विशेष—व्यक्ति की अपेक्षा कृत०, त्र्योज या द्वा० नहीं, पर कल्योज रूप हैं। इस प्रकार यावत् सिद्धों तक जानें।···जीव प्रदेशार्थ रूपसे···प्रश्न।···जीव—प्रदेश की अपेक्षा जीव कृतयुग्म है, पर त्र्योज, द्वा० या कल्योज नहीं, और शरीर–प्रदेश की अपेक्षा कदाचित् कृ० हो यावत् क० कल्योज भी हो। इस प्रकार यावत् वैमानिकों तक जानें।···सिद्ध प्रदेशार्थपने क्या कृतयुग्म है···प्रश्न।···कृतयुग्म है, पर त्र्योज, द्वा० या कल्योज रूप नहीं।·· जीव प्रदेशार्थ रूपसे क्या कृतयुग्म हैं···प्रश्न।···जीव-प्रदेशोंकी अपेक्षा जीव सामान्य व विशेष रूपसे कृतयुग्म हैं, पर त्र्योज, द्वा० या कल्योज नहीं। शरीरप्रदेशों की अपेक्षा सामान्यतः कदाचित् कृतयुग्म हों यावत् क० कल्योज भी हों। विशेष की अपेक्षा कृत० भी हों यावत् कल्योज भी हों। इस प्रकार नैरयिकोंसे लेकर यावत् वैमानिकों तक जानें।···सिद्ध (जीव-प्रदेशकी अपेक्षा) क्या कृतयुग्म हैं···प्रश्न।···सामान्य व विशेष आश्रयी सिद्ध कृतयुग्म हैं, पर त्र्योज, द्वापर या कल्योज रूप नहीं ।।७३४।।

···क्या जीव आकाशके कृतयुग्म संख्या वाले प्रदेशों के आश्रयी रहा हुआ है ···प्रश्न ।···कदाचित् कृत० प्रदेशोंके आश्रयी···यावत् क० कल्योज प्रदेशों··· । इस प्रकार यावत् सिद्ध तक जानें ।

(प्र० २१-२५) क्या जीव आकाश के कृतयुग्म संख्या वाले प्रदेशों के आश्रयी रहे हुए हैं·····प्रश्न ।·····सामान्य रूप से कृत० प्रदेशों के आश्रयी·· पर त्र्योज, द्वा० या कल्योज प्रदेशों के आश्रयी नहीं रहे हुए । विशेष-कृतयुग्म प्रदेशों के आश्रयी रहे हुए हैं, यावत् कल्योज प्रदेशों के आश्रयी···। क्या नैरयिक कृतयुग्म संख्या वाले आकाश प्रदेशों के आश्रयी रहे हुए हैं···प्रश्न ।···सामान्य रूप से कदाचित् कृत० प्रदेशोंके आश्रयी···यावत् कदाचित् कल्योज प्रदेशों···विशेप रूप से कृतयुग्म प्रदेशावगाढ़ भी हों यावत् कल्योज···। एकेन्द्रिय व सिद्ध को छोड़कर शेप सब जीवों के लिए इसी प्रकार जानें । सिद्ध व एकेन्द्रिय सामान्य जीवों की तरह जानें ।···क्या जीव कृतयुग्म समय की स्थिति वाला है···प्रश्न ।···कृतयुग्म समय की स्थिति वाला है, पर त्र्योज, द्वा० या कल्योज समय की स्थिति वाला नहीं ।··· क्या नैरयिक कृतयुग्म·····?·····कदाचित् कृतयुग्म समय की स्थिति वाला और क० कल्योज समय की स्थिति वाला हो । इस प्रकार यावत् वैमानिक तक जानें । सिद्ध को जीव के समान जानें ।···क्या जीव कृतयुग्म समय की स्थिति वाले हैं···प्रश्न ।···वे सामान्यादेश व विशेपादेश की अपेक्षा कृतयुग्म समय की स्थिति वाले होते हैं, पर त्र्योज, द्वा० या कल्योज समय की स्थिति वाले नहीं होते ।

(प्रश्नोत्तर २६-२८)···क्या नैरयिक कृतयुग्म समय की स्थिति वाले हैं··· प्रश्न ।···वे सामान्यादेश की अपेक्षा कदाचित् कृतयुग्म समय की स्थिति वाले हों, यावत् क० कल्योज···। विशेपादेश की अपेक्षा कृतयुग्म समय की यावत् कल्योज समय की स्थिति वाले भी हों । इस प्रकार यावत् वैमानिकों तक जानें । सामान्य जीवों की तरह सिद्धों को भी समझें ॥७३५॥

···क्या जीव के काले वर्ण के पर्याय कृतयुग्म राशिरूप हैं···प्रश्न ।···जीवप्रदेशों की अपेक्षा वे कृत०, त्र्योज, द्वा० या कल्योज रूप नहीं, पर शरीरप्रदेशों की अपेक्षा वे कदाचित् कृतयुग्मरूप हों यावत् कल्योज रूप भी हों । इस प्रकार यावत् वैमानिक तक जानें । सिद्धके सम्बन्ध में इस विपय में प्रश्न नहीं···।···क्या जीवों के काले वर्ण के पर्याय···प्रश्न ।···जीवप्रदेशों के आश्रयी सामान्यादेश व विशेपादेश से कृतयुग्म रूप नहीं, यावत् क० रूप भी नहीं । शरीरप्रदेशों की अपेक्षा सामान्यादेश से कदाचित् कृतयुग्म यावत् क० कल्योज रूप भी हों । विशेपादेश से कृतयुग्म यावत् क० राशिरूप भी हों, इस प्रकार यावत् वैमानिकों तक जानें । तथा इसी

प्रकार एकवचन व बहुवचन से नीले वर्ण के पर्यायों का भी दंडक कहें। इस प्रकार यावत् रूप-स्पर्श पर्यायों तक जानें।

(प्र० २९-३३)······क्या जीव के आभिनिवोधिक ज्ञान पर्याय कृतयुग्म राशि रूप हैं···प्रश्न।···कदाचित् कृतयुग्म रूप हों यावत् क० कल्योज रूप भी हों। इस प्रकार एकेन्द्रिय के सिवाय जीवों को यावत् वैमानिक तक जानें।···क्या जीव आभिनिवोधिक···प्रश्न।···वे सामान्यादेश से कदाचित् कृतयुग्म, कदाचित् कल्योज रूप भी हों तथा विशेषादेश से कृतयुग्म यावत्—कल्योज रूप भी हों। इस प्रकार एकेन्द्रिय के अतिरिक्त···यावत् वैमानिकों तक जानें। श्रुतज्ञान व अवधिज्ञान के पर्यायों के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार समझें। पर विशेष यह कि विकलेन्द्रिय जीवों को अवधिज्ञान नहीं होता। इसी प्रकार मनःपर्यव ज्ञान के पर्यायों के सम्बन्ध में भी जानें। पर विशेष यह कि वह सामान्य जीव व मनुष्यों को होता है, पर वाकी दंडकों में नहीं होता।···जीव के केवलज्ञान के पर्याय···प्रश्न।···वे कृत-युग्म रूप हैं, पर त्र्योज, द्वा० या कल्योज रूप नहीं। इसी प्रकार मनुष्य तथा सिद्ध के सम्बन्ध में जानें।···जीवों के केवलज्ञान के पर्याय···प्रश्न।···वे सामान्य व विशेषादेश से कृतयुग्म रूप हैं पर त्र्योज···नहीं। इसी प्रकार मनुष्यों तथा सिद्धों···।···जीव मति अज्ञान के पर्यायों से···प्रश्न। जैसे आभिनिवोधिक ज्ञान के पर्यायों के सम्बन्ध में दो दंडक कहे हैं वैसे ही यहां भी दो दंडक कहें। श्रुत अज्ञान, विभंगज्ञान, चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन व अवधिदर्शन के पर्यायों के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार कहें। विशेष यह कि श्रुतअज्ञानादि में से जिसके जो हो उसे वह कहें। तथा केवलदर्शन के पर्यायों के सम्बन्ध में केवलज्ञान के पर्यायों की तरह समझें ॥ ७३६ ॥

(प्र० ३४–३६)···कितने शरीर कहे हैं?···पांच शरीर···औदारिक यावत् कार्मण। यहां प्रज्ञापना का सारा शरीरपद कहना ॥७३७॥···क्या जीव सकंप होते हैं या निष्कंप होते हैं?···जीव सकंप भी हैं निष्कंप भी।···किस कारण से···?···जीव दो प्रकार के···संसारसमापन्नक-संसारी और असंसारसमापन्नक–मुक्त। उनमें जो असंसार० जीव हैं वे सिद्ध जीव हैं। वे सिद्ध दो प्रकार के······अनंतरसिद्ध व परंपरसिद्ध। उनमें जो जीव परंपरसिद्ध हैं वे निष्कंप हैं और जो जीव अनन्तर-सिद्ध हैं वे सकंप हैं।···वे क्या अमुक अंश से सकंप हैं या सर्वांश से सकंप हैं? ···वे अमुक अंश से सकंप नहीं पर सर्वांश से सकंप हैं। उनमें जो संसारी जीव हैं वे दो प्रकार के···शैलेशीप्राप्त व शैलेशीअप्राप्त। उनमें जो शैलेशीप्राप्त हैं वे निष्कंप हैं और जो अशैलेशीप्राप्त हैं वे सकंप हैं।···वे अंशतः सकंप हैं या सर्वांश से सकंप हैं? ···वे अशंतः सकंप हैं और सर्वांश से भी सकंप हैं। इसलिए······ यावत् निष्कंप भी हैं।

(प्र० ३७-४१)···नैरयिक क्या अंशतः सकंप हैं या सर्वांश से···?···अंशतः सकंप हैं व सर्वांश से भी सकंप हैं।···किस कारण···?···नैरयिक दो प्रकार के ···—विग्रहगति--प्राप्त व विग्रहगति-अप्राप्त। उनमें जो विग्रहगति-प्राप्त हैं वे सर्वांश से सकंप हैं और जो वि० अप्राप्त हैं वे अमुक अंश से सकंप हैं। इसलिए ···यावत् सकंप भी हैं—इस प्रकार यावत्—वैमानिकों तक जानें ॥७३८॥

···परमाणु पुद्गल संख्यात हैं, अ० हैं या अनंत हैं?···वे संख्यात नहीं, अ० नहीं, पर अनंत हैं। इस प्रकार यावत् अनंत प्रदेश वाले स्कंधों तक जानें।··· आकाशके एक प्रदेश में रहे हुए पुद्गल क्या संख्यात···? पूर्वोक्त रीतिसे जानें यावत् असंख्यात प्रदेशमें रहे हुए पुद्गलों के विषय में भी समझें।···एक समयकी स्थिति वाले पुद्गल प्रश्न। पूर्ववत् यावत् असंख्यात समय की स्थिति वाले पुद्गलों के संबंधमें भी जानें।···एक गुण काले पुद्गल···प्रश्न। पूर्ववत्, इस प्रकार यावत् अनंत गुण काले पुद्गलों के संबंध में भी समझें। इसी प्रकार बाकी के वर्ण, गंध रस व स्पर्शों के संबंधमें यावत् अनंत गुण रूक्ष तक समझें।

(प्र० ४२-४६)···परमाणु पुद्गल व द्विप्रदेशिक स्कंध इनमें द्रव्यार्थ रूपसे कौन किससे अल्प, अधिक, तुल्य व विशेषाधिक हैं?··· द्विप्रदेशिक स्कंधों से परमाणु पुद्गल द्रव्यार्थ रूपसे अधिक हैं।···द्विप्रदेशिक स्कंध व त्रिप्रदेशिक स्कंध इनमें द्रव्यार्थ०···विशेषाधिक हैं।···त्रिप्रदेशिक स्कंधोंसे द्विप्रदेशिक स्कंध द्रव्यार्थपने अधिक हैं। इस प्रकार इस गमक—पाठ से यावत् दस प्रदेश वाले स्कंधों से नौ प्रदेश वाले स्कंध द्रव्यार्थपने अधिक हैं।···दस प्रदेश वाले स्कंधों से संख्यात प्रदेश वाले स्कंध, संख्यात प्रदेशिक स्कंधोंसे असंख्यात प्रदेशिक स्कंध द्रव्यार्थपने अधिक हैं।···द्रव्यार्थ रूप से अनन्तप्रदेशिक स्कंधोंसे असंख्यात प्रदेशिक स्कंध अधिक हैं।

(प्र० ४७-५०)···परमाणु पुद्गल व द्विप्रदेशिक स्कंध में प्रदेशार्थ रूप से कौन किससे यावत् विशेषाधिक हैं।···प्रदेशार्थ रूपसे परमाणु पुद्गलोंसे द्विप्रदेशिक स्कंध अधिक हैं···यावत् नौ प्रदेशिक स्कंधों से दस प्रदेशिक स्कंध प्रदेशार्थ रूप से अधिक हैं। इस प्रकार सर्वत्र प्रश्न करना। दस प्र० स्कंधों से संख्यात प्र० वाले स्कंध प्रदेशार्थ रूप से अधिक हैं। संख्यात प्र० वाले स्कंधों से असं० प्र० स्कंध प्रदेशार्थ रूप से अधिक हैं। असंख्यात प्रदेशिक स्कंधों के संबंध में प्रश्न।···अनंत प्रदेशिक स्कंधोंसे असंख्य प्रदेशिक स्कंध प्रदेशार्थ रूपसे अधिक हैं।···एक प्रदेश में रहे हुए और दो प्रदेश में रहे हुए पुद्गलोंमें द्रव्यार्थ रूपसे कौन किनसे यावत् विशेषाधिक हैं?···दो प्रदेशमें रहे हुए पुद्गलोंसे एक प्रदेशमें रहे हुए पुद्गल द्रव्यार्थ रूप से विशेषाधिक हैं। इस प्रकार तीन प्रदेश···से दो प्रदेश···विशेषाधिक हैं, यावत् दस प्रदेश में रहे हुए पुद्गलोंसे नव प्रदेशमें···द्रव्यार्थ रूप से विशेषाधिक हैं। दस प्रदेश···से संख्यात प्रदेश···द्रव्यार्थ रूप से अधिक हैं। संख्यात प्रदेश···से

असंख्यात···द्रव्यार्थ रूपसे अधिक हैं। सर्वत्र प्रश्न करें।···एक प्रदेशमें रहे हुए और । प्रदेश में रहे हुए पुद्गलोंमें प्रदेशार्थ रूपसे कौन पुद्गल किनसे यावत् विशेषाधिक हैं?···एक प्रदेश···से दो प्रदेश···प्रदेशार्थ रूपसे विशेषाधिक हैं, इस प्रकार यावत् नौ प्रदेश···से दस प्रदेश···प्रदेशार्थ रूप से विशेषाधिक हैं। दस प्रदेश···से संख्यात···, संख्यात प्रदेश में रहे हुए पुद्गलों से असंख्यात प्रदेशमें रहे हुए पुद्गल प्रदेशार्थ रूप से अधिक हैं।

(प्र० ५१-५३)···एक समय की स्थिति वाले और दो समय की स्थिति वाले पुद्गलोंमें द्रव्यार्थ रूपसे कौन पुद्गल किनसे यावत् विशेषाधिक हैं? अवगाहनाकी वक्तव्यता के समान स्थिति—वक्तव्यता भी कहें। ···एक गुण काले और द्विगुण काले पुद्गलोंमें···परमाणु पुद्गलादि की वक्तव्यताके समान सारी वक्तव्यता कहें। इसी प्रकार सर्व वर्ण, गंध और रसके सम्बन्ध में भी···। ···एक गुण कर्कश और द्विगुण कर्कश पुद्गलों में कौन किनसे यावत् विशेषाधिक हैं?···एक गुण कर्कश पुद्गलोंसे द्विगुण···द्रव्यार्थ रूपसे विशेषाधिक हैं। इसी प्रकार यावत् नौ गुण···से दस गुण······। दस गुण···से संख्यात गुण······अधिक हैं। संख्यात गुण······से असंख्यात गुण······। असंख्यात गुण कर्कश पुद्गलोंसे अनंत गुण कर्कश पुद्गल द्रव्यार्थपने अधिक हैं। इसी प्रकार प्रदेशार्थ रूपसे भी सर्वत्र प्रश्न करना। जैसे कर्कश स्पर्श के सम्बन्धमें कहा है वैसे मृदु, गुरु व लघु स्पर्शके सम्बन्ध में भी कहें। तथा शीत, उष्ण, स्निग्ध व रूक्ष स्पर्श के सम्बन्धमें वर्णके समान कहें ॥७३६॥

(प्र० ५४-५५)···इन परमाणु पुद्गलों, संख्यातप्रदेशिक, असंख्यात० और अनंतप्रदेशिक स्कंधों में द्रव्यार्थरूप से, प्रदेशार्थ रूप से और द्रव्यार्थ—प्रदेशार्थरूप से कौन से पुद्गल स्कंध किनसे यावत् विशेषाधिक हैं?···द्रव्यार्थ रूप से सबसे थोड़े अनंतप्रदेशिक स्कंध हैं, उनसे परमाणु पु० द्र० से अनंतगुणा हैं, उनसे संख्यातप्रदेशिक स्कन्ध द्र० से संख्यातगुणा हैं, उनसे असंख्यात प्र० स्कन्ध द्र० से असं०···। प्रदेशार्थ रूपसे—अनन्त प्रदेश वाले स्कन्ध प्रदेशार्थ रूप से सब से थोड़े हैं, उनसे परमाणु पुद्गल अप्रदेशार्थ रूपसे अनंतगुणा हैं, उनसे सं० प्र० स्कंध प्र० रूपसे संख्यात गुणा हैं, उनसे असं० प्र० स्कंध प्र० असंख्यात···। द्रव्यार्थ—प्रदेशार्थ रूप से—अनंतप्रदेशिक स्कंध द्रव्यार्थ रूपसे सब से थोड़े हैं, वे ही प्रदेशार्थ रूप से अनंतगुणा हैं, उनसे परमाणु पुद्गल द्रव्यार्थ—अप्रदेशार्थ रूप से अनंत गुणा हैं, उनसे सं० प्र० स्कंध द्रव्यार्थ रूप से संख्यात गुणा हैं, वे ही उनसे प्रदेशार्थ रूप से संख्यातगुणा हैं, उनसे असंख्यात प्र० स्कंध द्रव्यार्थ रूप से असंख्यात गुणा हैं, उनसे वे ही स्कंध—प्रदेशार्थ रूप से असंख्यातगुणा हैं।···एक प्रदेश में रह सकें

ऐसे, संख्यात···और असं०···ऐसे इन पुद्गलों में द्रव्यार्थपने, प्रदेशार्थपने व द्रव्यार्थ-प्रदेशार्थपने कौनसे पुद्गल किनसे यावत् विशेषाधिक हैं?···एक प्रदेश में रह सकें ऐसे पुद्गल द्रव्यार्थ रूप से सब से थोड़े हैं, उनसे संख्यात···सकें ऐसे···रूप से संख्यातगुणा हैं, उनसे असंख्यात···असंख्यातगुणा हैं। प्रदेशार्थरूप से एक प्रदेश में रह सकें ऐसे पुद्गल अप्रदेशार्थपने सब से थोड़े हैं, उनसे संख्यात···प्रदेशार्थ रूप से संख्यातगुणा हैं, उनसे असंख्यात···असंख्यात गुणा हैं। द्रव्यार्थ—प्रदेशार्थ रूप से—एक प्रदेश में रह सकें ऐसे पुद्गल द्रव्यार्थ—अप्रदेशार्थ रूप से सब से थोड़े हैं, उनसे संख्यात···द्रव्यार्थ रूप से संख्यातगुणा हैं और वे ही पुद्गल प्रदेशार्थ रूप से संख्यातगुणा हैं, उनसे असंख्यात···द्रव्यार्थ रूप से असंख्यात···और उनसे वे ही पुद्गल प्रदेशार्थ रूप से असंख्यात गुणा हैं।

(प्र० ५६-५८)···एक समय की स्थिति वाले, संख्यात···और असंख्यात··· इन पुद्गलों में कौन किनसे यावत् विशेषाधिक हैं? जैसे अवगाहना के सम्बन्ध में अल्पबहुत्व कहा है, वैसे ही स्थिति के सम्बन्ध में भी अल्पबहुत्व कहें।···एक गुण काले, संख्यात···और अनंत···इन पुद्गलों में द्रव्यार्थ रूप से, प्रदेशार्थ रूप से और द्रव्यार्थ—प्रदेशार्थ रूप से कौन पुद्गल किनसे यावत् विशेषाधिक हैं? जैसे परमाणु पुद्गलों का अल्पबहुत्व कहा है, वैसे ही इनका भी अल्पबहुत्व कहें। इसी प्रकार बाकी के वर्णों गंधों और रसों के सम्बन्ध में भी जानें।···एक गुण कर्कश, संख्यात···,असं०···और अनंत गुण कर्कश इन पुद्गलों में द्रव्यार्थ रूप से, प्र० से और द्रव्यार्थ-प्रदेशार्थ रूप से कौन से पुद्गल किन से यावत् विशेषाधिक हैं?···एक गुण कर्कश पुद्गल द्रव्यार्थ रूप से सबसे थोड़े हैं, उनसे संख्यात ···द्र०···—संख्यात गुणा हैं, उनसे असंख्यात···द्र० से असंख्यात······, उनसे अनंत···द्र०···अनंतगुणा हैं। प्रदेशार्थ रूप से भी इसी तरह जानें। विशेष— संख्यात गुण कर्कश पुद्गल प्रदेशार्थ रूप से असंख्यात गुणा हैं। शेष पूर्ववत्। द्रव्यार्थप्रदेशार्थ रूप से—एक गुण कर्कश पुद्गल द्रव्यार्थ प्रदेशार्थपने सब से थोड़े हैं, उनसे संख्यात···द्र० से संख्यात गुणा हैं, उनसे वे ही पुद्गल प्रदेशार्थ रूप से संख्यात गुणा हैं, उनसे असंख्यात···द्र० से असंख्यात···,उनसे वे ही प्रदेशार्थ रूप से असंख्यात···,अनंतगुण···द्र० से उनसे अनंतगुणा हैं, और वे ही पुद्गल प्रदेशार्थ रूप से उनसे अनंतगुणा हैं। इसी प्रकार मृदु, गुरु और लघु स्पर्शों का भी अल्पबहुत्व कहें, शीत, उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष स्पर्शों का अल्पबहुत्व वर्णों की तरह जानें ॥७४०॥

(प्र० ५६-६५)···क्या परमाणु पुद्गल द्रव्यार्थ रूप से कृतयुग्म है, त्र्योज है, द्वापरयुग्म है या कल्योज है?······कृतयुग्म नहीं, त्र्योज नहीं, द्वा० नहीं पर

कल्योज रूप है। इस प्रकार यावत् अनन्तप्रदेशिक स्कंध तक जानें।···क्या परमाणु पुद्गल द्र० से कृतयुग्म हैं···प्रश्न।···कदाचित् सामान्यादेश से कृतयुग्म हों यावत् क० कल्योज रूप हों। विशेषादेश से—कृतयुग्म, त्र्योज या द्वा० नहीं, पर कल्योज रूप होते हैं। इस प्रकार यावत् अनंतप्रदेशिक स्कंधों तक जानें। ···क्या परमाणु पुद्गल प्रदेशार्थ रूप से कृतयुग्म है···प्रश्न।···वह कृतयुग्म नहीं, त्र्योज नहीं, वैसे ही द्वा० नहीं, पर कल्योज रूप है।···द्विप्रदेशिक स्कंध द्रव्यार्थ रूप से कृतयुग्म, त्र्योज या कल्योज रूप नहीं, पर द्वापरयुग्म है।···त्रिप्रदेशिक स्कंध कृत०, द्वा० या कल्योज नहीं, पर त्र्योज है।···चार प्रदेश वाला स्कंध कृतयुग्म है, पर त्र्योज, द्वापर या कल्योज नहीं। परमाणु पुद्गल के सदृश पांच प्रदेश वाला स्कंध, द्विप्रदेशिक की भांति षट्प्रदेशिक स्कंध, त्रिप्रदेशिक स्कंध के समान सप्त०, चतुःप्रदेशिक की तरह आठ प्रदेश वाला स्कंध, परमाणु पुद्गल की तरह नव प्र० स्कंध और द्विप्र० स्कंध की तरह दस प्रदेशिक स्कंध जानें।···क्या संख्यात प्रदेशिक स्कंध कृतयुग्म है···प्रश्न।···वह कदाचित् कृतयुग्म हो यावत् क० कल्योज रूप हो। इस प्रकार असंख्यात प्रदेशिक तथा अनन्त प्रदेशिक स्कंध के सम्बन्ध में भी जानें।

(प्र० ६६-७०)···क्या परमाणु पुद्गल प्रदेशार्थ रूप से कृतयुग्म हैं···?··· सामान्यादेश से कदाचित् कृतयुग्म हैं, यावत् कदाचित् कल्योज हैं, तथा विशेषादेश की अपेक्षा कृतयुग्म, त्र्योज या द्वा० नहीं, पर कल्योज हैं।···द्विप्रदेशिक स्कंध सामान्यादेश की अपेक्षा कदाचित् कृतयुग्म हों, क० द्वा० हों, पर त्र्योज या कल्योज राशि रूप न हों। विशेषापेक्षा कृतयुग्म, त्र्योज या कल्योज रूप न हों, पर द्वापरयुग्म राशिरूप हों।···त्रिप्रदेशिक स्कंध सामान्यादेश से कदाचित् कृतयुग्म, यावत्—कदाचित् कल्योज हों, विशेषादेश से कृतयुग्म, द्वा० या कल्योज न हों, पर त्र्योज हों।···चतुष्प्रदेशिक स्कंध सामान्यादेश व विशेषादेश की अपेक्षा कृतयुग्म रूप हैं, पर त्र्योज, द्वापरयुग्म और कल्योज रूप नहीं। पंचप्रदेशिक स्कंध परमाणु पुद्गल के समान जानें। ६ प्रदेशिक द्विप्रदेशिक के समान, सप्तप्रदेशिक त्रिप्रदेशिकके समान, अष्टप्रदेशिक चतुष्प्रदेशिक के समान, नवप्रदेशिक व दसप्रदेशिक द्विप्रदेशिक स्कंधों के समान जानें।···संख्यात प्रदेशिक स्कंध सामान्यादेश से कदाचित् कृतयुग्म रूप हों यावत् कदाचित् कल्योज रूप भी हों। विशेषादेश से भी कदाचित् कृतयुग्म रूप हों यावत् कल्योज रूप भी हों। इसी प्रकार असंख्यात प्रदेशिक व अनन्त प्रदेशिक स्कंध भी जानें।

(प्र० ७१-७५)···परमाणु पुद्गल कृतयुग्म प्रदेशावगाढ़ हो···प्रश्न।··· कृतयुग्म प्रदेशावगाढ़, त्र्योज० और द्वा० न हो पर कल्योज प्रदेशावगाढ़ हो।···

द्विप्रदेशिक स्कंध कृतयुग्म या त्र्योज प्रदेशाश्रित नहीं, पर कदाचित् द्वा० या क० कल्योज प्रदेशाश्रित है।···त्रिप्रदेशिक स्कंध कृतयुग्म प्रदेशाश्रित नहीं पर कदाचित् त्र्योज, कदाचित् द्वा० या क० कल्योज प्रदेशाश्रित होता है।··चतुःप्रदेशिक स्कंध कदाचित् कृतयुग्म० यावत् क० कल्योज प्रदेशाश्रित होता है। इस प्रकार यावत् अनंतप्रदेशिक स्कंध तक जानें। ··क्या परमाणु पुद्गल कृतयुग्म प्रदेशाश्रित होते हैं···प्रश्न।···सामान्यादेश से कृतयुग्म प्रदेशाश्रित होते हैं, पर त्र्योज, द्वा० या कल्योज प्रदेशाश्रित नहीं, तथा विशेषादेश से कृतयुग्म, त्र्योज या द्वापरयुग्म प्रदेशाश्रित नहीं, पर कल्योज प्रदेशाश्रित होते हैं।

(प्र० ७६-८०) ··द्विप्रदेशिक स्कंध सामान्यादेश से कृतयुग्म प्रदेशावगाढ़ हैं, पर त्र्योज, द्वा० या कल्योज० नहीं। विशेषादेशसे कृतयुग्म० नहीं, त्र्योज० नहीं, पर द्वा० व कल्योज प्रदेशाश्रित हैं।···त्रिप्रदेशिक स्कंध सामान्यादेशसे कृत-युग्म० हैं, पर त्र्योज, द्वा० या कल्योज प्रदेशाश्रित नहीं तथा विशेषादेशसे कृतयुग्म० नहीं, पर त्र्योज, द्वा० या कल्योज प्रदेशाश्रित होते हैं।···चतुःप्रदेशिक स्कंध सामान्यादेशसे कृतयुग्म० होते हैं, पर त्र्योज, द्वा० या कल्योज प्रदेशाश्रित नहीं, तथा विशेषादेशसे कृतयुग्म० होते हैं यावत् कल्योज० भी होते हैं। इस प्रकार यावत्-अनंतप्रदेशिक स्कंधों तक जानें।·· क्या परमाणु पुद्गल कृतयुग्म समय की स्थिति वाला है···प्रश्न।···कदाचित् कृतयुग्म समय की स्थिति वाला है यावत् कल्योज···है। इस प्रकार यावत् अनंतप्रदेशिक स्कंध तक जानें।···परमाणु पुद्गल क्या कृतयुग्म समय की स्थिति वाले हैं···प्रश्न।···सामान्यादेश से कदाचित् कृत-युग्म··यावत् कदाचित् कल्योज समय की स्थिति वाले हों। तथा विशेषादेशसे कृतयुग्म समय···यावत् कल्योज समय की स्थिति वाले भी हों। इस प्रकार यावत् अनंतप्रदेशिक स्कंधों तक जानें।

(प्र० ८१-८५) क्या परमाणु पुद्गलके काले वर्ण पर्याय कृतयुग्म रूप हैं, त्र्योज हैं···प्रश्न। जैसे स्थिति की वक्तव्यता कही उसी प्रकार सर्व वर्ण की कहें। इसी प्रकार सभी गंधों और रसोंके विषय में भी यावत् मधुर रस तक इसी प्रकार जानें।···क्या अनंतप्रदेशिक स्कंध के कर्कशस्पर्शपर्याय कृतयुग्म हैं···प्रश्न।···वे कदाचित् कृतयुग्म हैं यावत् कदाचित् कल्योज रूप हैं।···क्या अनन्त प्रदेश वाले स्कंधों के···प्रश्न।···सामान्यादेशसे कदाचित् कृतयुग्म यावत् कदाचित् कल्योज रूप भी होते हैं। विशेषादेशसे कृतयुग्म भी हैं, यावत् कल्योज रूप भी हैं। इस प्रकार मृदु-कोमल, गुरु-भारी और लघु-हल्का, ये स्पर्श कहें। ठंडा, गर्म, चिकना और सूखा ये स्पर्श वर्णों की तरह कहने ।।७४१।।

···क्या परमाणु पुद्गल सार्ध (जिसका आधा भाग हो सके) है या अनर्ध है? ···वह सार्ध नहीं, पर अनर्ध है।···क्या दो प्रदेश वाला स्कंध सार्ध है, या अनर्ध

है ?···वह सार्ध है,पर अनर्ध नहीं। इस प्रकार परमाणु पुद्गलकी भांति तीन प्रदेश वाला स्कंध, द्विप्रदेशिक की तरह चतुःप्रदेशिक स्कंध, त्रिप्रदेशिक की तरह पंच-प्रदेशिक, द्विप्रदेशिक की तरह छःप्रदेशिक, त्रिप्रदेशिक की तरह सप्तप्रदेशिक, द्विप्रदेशिक की तरह अष्टप्रदेशिक, त्रिप्रदेशिक की भांति नवप्रदेशिक, द्विप्रदेशिक के समान दसप्रदेशिक स्कंध समझें।

(प्र० ८६-९०)···क्या संख्यात प्रदेश वाला स्कंध सार्ध है या अनर्ध है ?··· वह कदाचित् सार्ध है और कदाचित् अनर्ध है। इसी प्रकार असंख्यात-प्रदेशिक व अनंत प्रदेशिक स्कंध के सम्बन्धमें भी समझें।···परमाणु पुद्गल सार्ध हैं या अनर्ध हैं ?···वे सार्ध भी हैं और अनर्ध भी हैं। इसी प्रकार यावत्—अनंत प्रदेशिक स्कंधों तक समझें ॥७४२॥

···क्या परमाणु पुद्गल सकंप है या निष्कंप है ?···वह कदाचित् सकंप है और कदाचित् निष्कंप भी है। इस प्रकार यावत् अनंतप्रदेशिक स्कंध तक जानें।··· क्या परमाणु पुद्गल सकंप हैं या निष्कंप हैं ?···वे सकंप भी हैं और निष्कंप भी हैं। इस प्रकार यावत् अनंतप्रदेशिक स्कंधों तक समझें।···परमाणु पुद्गल कितने काल तक सकंप रहे ?···जघन्य एक समय तक व उत्कृष्ट आवलिका के असंख्यातवें भाग तक सकंप रहे।

(प्र० ९१-९५)···परमाणु पुद्गल कितने काल तक निष्कंप रहे ?···जघन्य एक समय, उत्कृष्ट असंख्यात काल तक निष्कंप रहे। इस प्रकार यावत्-अनंतप्रदेशिक स्कंध तक जानें। परमाणु पुद्गल कितने काल तक कंपायमान रहें ?···सदा-काल निष्कंप रहें। इस प्रकार यावत् अनंतप्रदेशिक स्कंधों तक जानें।···सकंप परमाणु पुद्गल का कितने काल का अंतर हो ? अर्थात् अपनी कंपायमान अवस्था से बंद होकर फिर कितने कालमें कंपे ?···स्वस्थान के आश्रयी जघन्य एक समय उत्कृष्ट असंख्य कालका अंतर हो। परस्थान आश्रयी जघन्य एक समय उत्कृष्ट असंख्यकाल का अंतर हो।···निष्कंप परमाणु पुद्गल का कितने काल का अन्तर हो ?···स्वस्थान आश्रयी जघन्य एक समय, उत्कृष्ट आवलिकाके असंख्य भाग का तथा परस्थान आश्रयी जघन्य एक समय उत्कृष्ट असंख्य काल का अन्तर हो।

(प्र०९६-१००)···सकंप दो प्रदेश वाले स्कंधका कितने काल का अंतर हो ?·· स्वस्थान की अपेक्षा जघन्य एक समय, उत्कृष्ट असंख्यात काल का तथा परस्थान की अपेक्षा जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अनंत कालका अंतर हो।··· निष्कंप दो प्रदेश वाले···प्रश्न।···स्वस्थान की अपेक्षा जघन्य एक समय उत्कृष्ट आवलिका के असंख्य भाग का, तथा परस्थान की अपेक्षा जघन्य एक समय का,

उत्कृष्ट अनंत काल का अंतर हो। इस प्रकार यावत्'''अनंतप्रदेशिक स्कंध तक जानें।'''सकम्प परमाणु पुद्‌गलों का'''?'''उनका अंतर नहीं। निष्कंप परमाणु पुद्‌गलोंका'''?'''अन्तर नहीं। इस प्रकार यावत् अनंतप्रदेशिक स्कंधों तक जानें।''' पूर्वोक्त सकंप व निष्कंप परमाणु पुद्‌गलों में कौन परमाणु पुद्‌गल किनसे यावत् विशेषाधिक हैं ?'''सकम्प परमाणु पुद्‌गल सबसे थोड़े हैं, निष्कंप परमाणु पुद्‌गल असंख्यात गुणा हैं। इस प्रकार यावत् असंख्यात प्रदेश वाले स्कंधों तक जानना। '''सकंप व निष्कम्प अनन्तप्रदेशिक स्कंधों में'''?'''अनन्त प्रदेशिक निष्कंप स्कंध सबसे थोड़े हैं और उनसे अनंत प्र० सकंप स्कंध अनंतगुणा हैं।

'''इन सकंप व निष्कंप परमाणु पुद्‌गल, संख्यात प्रदेश वाले स्कंध, असंख्यात'''व अनंत प्रदेश वाले स्कंधों में द्रव्यार्थपने, प्रदेशार्थपने तथा द्रव्यार्थ--प्रदेशार्थपने कौन पुद्‌गल किनसे यावत् विशेषाधिक हैं ?'''१ अनंतप्रदेशिक निष्कंप स्कंध द्रव्यार्थ रूपसे सब से थोड़े हैं। २ उनसे अनंत प्र० सकंप स्कंध द्रव्यार्थ रूप से अनंतगुणा हैं। ३ उनसे सकंप परमाणु० द्र० अनंतगुणा हैं। ४ उनसे संख्यातप्रदेशिक सकंप स्कंध द्र० असं०। ५. उनसे असंख्यात० सकंप'''असंख्यातगुणा'''। ६ उनसे निष्कंप परमाणु० द्र० असंख्यातगुणा हैं। ७ उनसे संख्यात० निष्कंप० द्र० संख्यात०। ८ उनसे असं० प्र० निष्कंप स्कंध द्र० असंख्यात०। प्रदेशार्थ रूप से भी इसी प्रकार आठ विकल्प जानें। विशेष--परमाणु पुद्‌गल (प्रदेशार्थ के बदले) अप्रदेशार्थ रूपसे कहें। संख्यात प्रदेश वाले निष्कंप स्कंध प्रदेशार्थ रूपसे असंख्यातगुणा हैं। बाकी सब उसी प्रकार समझें। द्रव्यार्थप्रदेशार्थ रूपसे'''१ अनंत प्रदेश वाले निष्कंप स्कंध द्रव्यार्थ रूपसे सब से थोड़े हैं। २ उनसे वे ही स्कंध प्रदेशार्थपने अनंतगुणा हैं। ३ उनसे अनंत प्र० सकंप स्कंध द्रव्यार्थ रूपसे अनंतगुणा हैं। ४ उनसे वे ही स्कंध प्रदेशार्थ रूप से अनंतगुणा हैं। ५ सकंप परमाणु०द्रव्यार्थ अप्रदेशार्थपने अनंतगुणा हैं। ६ संख्यात० सकंप० द्र० रूपसे असंख्यातगुणा हैं। ७ वे ही स्कंध प्रदेशार्थपने असंख्यात'''। ८ असं० सकंप स्कंध द्रव्यार्थपने असंख्यात'''। ९ वे ही स्कंध प्रदेशार्थ रूपसे असंख्यात'''। १० निष्कंप परमाणु० द्रव्यार्थ--अप्रदेशार्थ रूपसे असंख्यात'''। ११ संख्यात० निष्कंप स्कंध प्र० रूपसे असंख्यात'''। १२ वे ही स्कंध प्रदेशार्थपने असंख्यात'''। १३ असंख्यात० निष्कंप स्कंध द्रव्यार्थ रूप से असंख्यात'''। १४ वे ही स्कंध प्रदेशार्थ रूप से असंख्यात गुणा हैं।

(प्र० १०१-१०६)'''परमाणु पुद्‌गल अमुक अंशसे कंपित होता है, सर्वांश से कंपायमान होता है या निष्कंप है ?'''वह अमुकांशसे कंपित नहीं होता, पर कदाचित् सर्वांशसे कंपन करता है, कदाचित् निष्कंप रहता है।'''द्विप्रदेशिक स्कंध कदाचित् अमुक अंशसे कंपित होता है,कदाचित् सर्वांशसे'''। कदाचित् निष्कंप भी रहता है।

इस प्रकार यावत् अनन्त प्रदेश वाले स्कंध तक जानें।…परमाणु पुद्गल अमुक अंश …सर्वांश…या निष्कंप रहते हैं ?…वे अमुक अंशसे कंपित नहीं होते, पर सर्वांश से कंपित होते हैं या निष्कंप भी रहते हैं।…क्या द्विप्रदेशिक स्कंध…प्रश्न।…वे अमुकांशसे कंपित होते हैं। सर्वांशसे भी…और निष्कंप भी रहते हैं। इस प्रकार यावत् अनन्तप्रदेशिक स्कंध तक जानें।…परमाणु कितने काल तक सर्वांशसे कंपन करे ?…जघन्य एक समय, उत्कृष्ट आवलिकाके असंख्यातवें भाग तक सकंप हो।…वह कितने काल तक निष्कंप रहे ?…जघन्य एक समय, उत्कृष्ट असंख्यात काल तक निष्कंप रहे।

(प्र० १०७-११५)…द्विप्रदेशिक स्कंध कितने काल तक देश से कंपे ?…जघन्य एक समय, उत्कृष्ट आवलिकाके असंख्यातवें भाग तक देशसे कंपे।…वह जघन्य एक समय, उत्कृष्ट आवलिका के असंख्यातवें भाग तक सर्वांशसे कंपे।…जघन्य एक समय, उत्कृष्ट असंख्य काल तक निष्कंप रहे। इस प्रकार यावत् अनंतप्रदेशिक स्कंध तक जानें।…परमाणु पुद्गल सर्वांश से सदा काल कंपें।…वे सारे काल निष्कंप रहें।…द्विप्रदेशिक स्कंध सारे काल देशसे कंपें।…सर्व काल सर्वांशसे कंपें।…सर्व काल निष्कंप रहें। इस प्रकार यावत् अनन्तप्रदेशिक स्कंधों तक जानें।…सर्वांशसे सकंप परमाणु पुद्गल का कितने काल का अन्तर हो ?…स्वस्थान आश्रयी जघन्य एक समय का, उत्कृष्ट असंख्यात काल का अन्तर हो। परस्थान की अपेक्षा जघन्य एक समय का, उत्कृष्ट असंख्य काल का अन्तर हो।

(प्र० ११६-११९)…निष्कंप परमाणु पुद्गल का अन्तर स्वस्थान आश्रयी जघन्य एक समय का, उत्कृष्ट आवलिका के असंख्यातवें भाग का अन्तर हो। परस्थान आश्रयी जघन्य एक समय का, उत्कृष्ट असंख्यात काल का अन्तर हो।…अंशतः सकंप द्विप्रदेशिक स्कंध का स्वस्थान की अपेक्षा जघन्य एक समय का, उत्कृष्ट असंख्यात काल का अन्तर हो, तथा परस्थान की अपेक्षा जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अनंत काल का अंतर हो।…सर्वांशसे सकंप द्विप्रदेशिक स्कंध का देशसे सकंप द्विप्रदेशिकस्कंध की तरह अन्तर जानें।…निष्कंप द्विप्रदेशिक स्कंध का स्वस्थान की अपेक्षा जघन्य एक समय का उत्कृष्ट आवलिकाके असंख्यातवें भागका, तथा परस्थान की अपेक्षा जघन्य एक समय का उत्कृष्ट अनंत काल का अन्तर होता है। इस प्रकार यावत् अनंतप्रदेशिक स्कंध तक जानें।

(प्र० १२०-१२६)…सर्वांशसे सकंप परमाणु पुद्गलों का कितने काल का अन्तर हो ?…इनका अन्तर नहीं।…निष्कंप परमाणु पुद्गलों का अन्तर नहीं।…इसी प्रकार अमुकांश सकंप, सर्वांश सकंप, निष्कंप द्विप्रदेशिक स्कंधोंका अन्तर नहीं। इस प्रकार यावत् अनंतप्रदेशिक स्कंधों तक जानना।…सकंप व निष्कंप इन परमाणु पुद्गलों में कौन किनसे यावत् विशेषाधिक हैं ?…

सकंप परमाणु पुद्गल सबसे थोड़े हैं, उनसे निष्कंप परमाणु० असंख्यात गुणा हैं।···—अंशतः सकंप, सर्वांश सकंप और अकंप द्विप्रदेशिक स्कन्धों में कौन किनसे यावत् विशेपाधिक हैं ?···सर्वांश सकंप द्विप्रदेशिक स्कंध सबसे थोड़े हैं, उनसे अंशतः सकंप द्विप्रदेशिक स्कंध असंख्यात गुणा हैं, उनसे अकंप द्विप्रदेशिक स्कंध असंख्यात गुणा हैं। इस प्रकार यावत् असंख्यातप्रदेशिक स्कंधों तक समझें।

(प्र० १२७-१२८)···अंशतः सकंप, सर्वांश सकंप और अकंप अनंतप्रदेशिक स्कन्धोंमें कौन स्कन्ध किनसे यावत् विशेपाधिक हैं ?···सर्वांश सकंप अनंतप्रदेशिक स्कन्ध सबसे थोड़े हैं, उनसे निष्कंप अनंत प्र० स्कन्ध अनंत गुणा हैं, उनसे अंशतः सकंप अनंत प्र० भी अनंत गुणा हैं।···अंशतः सकंप, सर्वांश सकंप और निष्कंप परमाणु पुद्गलोंके संख्यात प्र० स्कंध, असं० प्र० स्कंध, अनंत प्र० स्कन्धोंमें द्रव्यार्थ-पने, प्रदेशार्थपने और द्रव्यार्थ-प्रदेशार्थपने कौन स्कंध किनसे यावत् विशेपाधिक हैं ? ···१ सर्वांशसकंप-अनंतप्रदेशिक स्कन्ध द्रव्यार्थ रूपसे सबसे थोड़े हैं। २ निष्कंप अनंत प्रदेशिक···अनंत गुणा। ३. अंशतः सकंप अनंतप्रदेशिक···अनंतगुणा। ४. सर्वांश सकंप असंख्यात प्रदेशिक स्कन्ध द्रव्यार्थ रूपसे असंख्यात गुणा हैं। ५. सर्वांश सकंप संख्यात प्र०···असंख्यात गुणा। ६. सर्वांश सकंप परमाणु प्र०···असंख्यात···। ७. अंशतः सकंप संख्यात प्रदेशिक स्कन्ध···असंख्यात···। ८. अंशतः सकंप असंख्यात प्र० स्कन्ध···असंख्यात···। ९. निष्कंप परमाणु प्र०···असंख्यात···। १०. निष्कंप संख्यात प्र० स्कन्ध···संख्यात···। ११ निष्कंप असं० प्र० स्कन्ध·· असंख्यात···। प्रदेशार्थ रूपसे--सर्वांश सकंप अनंतप्रदेशिक स्कन्ध प्रदेशार्थ रूपसे सबसे थोड़े हैं। इसी प्रकार प्रदेशार्थ रूपसे भी जानें। विशेप परमाणु पुद्गल अप्रदेशार्थरूप से कहें। संख्यात प्र० निष्कंप स्कन्ध प्रदेशार्थपने असंख्यात गुणा हैं। शेप सब उसी प्रकार जानें। द्रव्यार्थप्रदेशार्थ रूपसे···--१ सर्वांश सकंप अनंत प्रदेशिक स्कन्ध द्रव्यार्थ रूपसे सबसे थोड़े हैं। २. वे ही स्कन्ध प्रदेशार्थ० अनंत गुणा हैं। ३ अनंत प्र० निष्कंप स्कन्ध द्रव्यार्थ से अनंत गुणा हैं। ४ वे ही स्कन्ध प्रदेशार्थसे अनंतगुणा हैं। ५ अंशतः सकंप अनंत प्र० स्कन्ध द्र० से अनंतगुणा हैं। ६ वे ही स्कन्ध प्रदेशार्थपने अनंत०···। ७ सर्वांश सकंप असंख्यात प्र० स्कन्ध द्र० से अनंत···। ८ वे ही प्रदेशार्थसे असंख्यात···। ९ सर्वांश सकंप संख्यात···स्कन्ध द्रव्यार्थपने असंख्यात गुणा हैं। १० वे ही प्रदेशार्थसे संख्यात गुणा हैं। ११ सर्वांश सकंप परमाणु पु० द्रव्यार्थ-अप्रदेशार्थपने असं०···। १२ अंशतः सकंप संख्यात प्र० स्कन्ध द्र० से असंख्यात···। १३ वे ही स्कन्ध प्रदेशार्थ० संख्यात···। १४ अंशतः सकंप असं० प्र० स्कन्ध द्रव्यार्थ० असं०···। १५ वे ही स्कन्ध प्रदेशार्थ० असं०···। १६ निष्कंप परमाणु० द्रव्यार्थ-अप्रदेशार्थ० असंख्यात० हैं। १७ सं० प्र० निष्कंप स्कंध द्र० से संख्यात···। १८ वे ही स्कन्ध प्रदेशार्थ०संख्यात गुणा हैं। १९ असं०

प्र० निष्कंप स्कन्ध द्र० से असंख्यात···। २० वे ही स्कंध प्रदेशार्थपने असंख्यात गुणा हैं ।।७४३।।

(प्र० १२९-१३३)······धर्मास्तिकाय के मध्य प्रदेश कितने कहे हैं ?··· आठ मध्य प्रदेश कहे हैं । इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और जीवास्तिकाय भी जानें ।···जीवास्तिकाय के ये आठ प्रदेश आकाशास्तिकाय के कितने प्रदेशों में समा सकते हैं ?···जघन्य एक, दो, तीन, चार, पांच और ६ प्रदेशों में समाएं, उत्कृष्ट आठ प्रदेशों में, पर सात प्रदेशों में न हों। हे भगवन्··· यावत् विचरते हैं ।।७४४।।

।। २५ वें शतक का चौथा उद्देशक समाप्त ।।

पंचम उद्देशक

(प्र० १-४) भगवन् ! पर्यव कितने प्रकारके कहे हैं ? गौतम ! पर्यव दो प्रकार के कहे हैं, वह इस प्रकार—जीवपर्यव व अजीवपर्यव । यहां प्रज्ञापना का समग्र पर्यवपद कहना ।।७४५।।···आवलिका संख्यात समयरूप है, असंख्यात···या अनंत समय रूप है ?···आवलिका संख्यात समय रूप नहीं, वैसे ही अनन्त समय रूप भी नहीं, परन्तु असंख्यात समय रूप है । इसी प्रकार आनप्राण-श्वासोच्छ्वास, स्तोक, लव, मुहूर्त, अहोरात्र, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, संवत्सर, युग, सौ वर्ष, हजार वर्ष, लाख वर्ष, पूर्वांग, पूर्व, त्रुटितांग, त्रुटित, अटटांग, अटट, अववांग, अवव, हूहूकांग, हूहूक, उत्पलांग, उत्पल, पद्मांग, पद्म, नलिनांग, नलिन, अच्छनिपूरांग, अच्छनिपूर, अयुतांग, अयुत, नयुतांग, नयुत, प्रयुतांग, प्रयुत, चूलिकांग, चूलिका, शीर्षप्रहेलिकांग, शीर्षप्रहेलिका, पल्योपम, सागरोपम, अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी के समयों के सम्बन्ध में भी जानें । अर्थात्—इनमें प्रत्येक के असंख्यात समय हैं ।

(प्र० ५-१०)···पुद्गल परिवर्तन क्या संख्यात समय रूप है, असं०···या अनन्त समय रूप है ?···वह संख्यात समय रूप नहीं, असंख्यात···नहीं, पर अनन्त समय रूप है। इसी प्रकार भूतकाल, भविष्यत् काल तथा सर्व काल के विषय में भी जानें ।······आवलिकाएं क्या संख्यात······प्रश्न ।······संख्यात समय रूप नहीं पर कदाचित् असंख्यात समय रूप हों, क० अनन्त समय रूप हों। इसी प्रकार आनप्राण, स्तोक यावत् अवसर्पिणियों तक समझें ।···पुद्गल परिवर्तन क्या संख्यात समय रूप हैं···प्रश्न ।···संख्यात समय रूप नहीं, असं०···नहीं, पर अनन्त समय रूप हैं ।···आनप्राण क्या संख्यात आवलिकारूप है···प्रश्न ।···वह संख्यात आवलिका रूप है, पर असंख्यात या अनन्त आवलिका रूप नहीं । इसी प्रकार स्तोक यावत् शीर्षप्रहेलिका तक जानें ।

(प्र० ११-१५)···पल्योपम क्या संख्यात आवलिका रूप है···?···वह संख्यात आवलिका रूप नहीं, वैसे ही अनन्त···नहीं, पर असंख्यात आवलिका रूप है। इस प्रकार सागरोपम, अवसर्पिणी व उत्सर्पिणी के सम्बन्ध में भी जानना।···पुद्गल परिवर्त कितनी आवलिका रूप है···? वह संख्याती आवलिका रूप नहीं, असंख्यात ···नहीं, पर अनन्त आवलिका रूप है। इस प्रकार यावत् सर्वाद्धा तक जानें।··· आनप्राण क्या संख्यात आवलिका रूप हैं···?···कदाचित् संख्यात आवलिका रूप हों, क० असंख्यात···और क० अनन्त···आवलिका रूप भी हों। इस प्रकार यावत् शीर्षप्रहेलिका तक जानें।···पल्योपम क्या संख्यात आवलिका रूप हैं···प्रश्न। ···संख्यात आवलिकारूप नहीं, पर कदाचित् असंख्यात व क० अनन्त आवलिका-रूप हैं, इस प्रकार यावत् उत्सर्पिणियों तक जानें।···पुद्गल परिवर्त क्या संख्यात आवलिकारूप हैं···?···संख्यात आवलिकारूप नहीं, असंख्यात···, पर अनन्त आवलिकारूप हैं।

(प्र० १६-२०)···स्तोक क्या संख्यात आनप्राण रूप हैं या असंख्यात···प्रश्न। जैसे आवलिका के सम्बन्ध में वक्तव्यता कही, उसी प्रकार आनप्राण के सम्बन्ध में भी जानें। इसी प्रकार पूर्वोक्त गम से यावत् शीर्षप्रहेलिका तक समझें।··· सागरोपम क्या संख्यात पल्योपम रूप है···?···वह संख्यात पल्योपम रूप है, पर असंख्यात या अनन्त पल्योपम रूप नहीं। इसी प्रकार अवसर्पिणी व उत्सर्पिणी के सम्बन्ध में भी जानें।···पुद्गल परिवर्त क्या संख्यात पल्योपम···?···संख्यात या असंख्यात पल्योपम रूप नहीं, पर अनन्त पल्योपम रूप है। इस प्रकार यावत् सर्वाद्धा तक जानें।······सागरोपम क्या संख्यात पल्योपम रूप हैं······?······वे कदाचित् संख्यात पल्योपम रूप होते हैं, कदाचित् असंख्यात······और क० अनन्त···भी होते हैं। इसी प्रकार यावत् अवसर्पिणी तथा उत्सर्पिणी के सम्बन्ध में भी जानें।···पुद्गल परिवर्त क्या संख्यात पल्योपम रूप हैं···?···वे संख्यात पल्योपम रूप नहीं, असंख्यात···नहीं, पर अनन्त पल्योपम रूप हैं।

(प्र० २१-२५)···अवसर्पिणी क्या संख्यात सागरोपम है···प्रश्न।···जैसे पल्योपम की वक्तव्यता कही उसी प्रकार सागरोपम की भी वक्तव्यता कहें।··· पुद्गल परिवर्त क्या संख्यात उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी रूप है—इत्यादि प्रश्न। ···वह संख्यात या असंख्यात उत्सर्पिणी या अवसर्पिणी रूप नहीं। पर अनन्त उत्सर्पिणी व अवसर्पिणी रूप है। इस प्रकार यावत् सर्वाद्धा तक जानें।······ पुद्गल परिवर्तन क्या······हैं······?······वे संख्यात या असंख्यात उत्सर्पिणी व अवसर्पिणी नहीं, पर अनन्त उत्सर्पिणी व अवसर्पिणियां हैं।···अतीताद्धा-भूत-काल क्या संख्यात पुद्गल परिवर्त है···?···वह संख्यात या असंख्यात पुद्गल परिवर्त नहीं, पर अनंत पुद्गल परिवर्त है। इसी प्रकार अनागतकाल व सर्वाद्धा के विषय में भी जानें।।७४६।।

अनागताद्धा—भविष्यत्काल क्या संख्यात अतीताद्धा रूप है, असंख्यात··· या अनंत अतीताद्धारूप है ?···भविष्यत्काल संख्यात अतीताद्धा, असंख्यात० या अनन्त अतीताद्धा रूप नहीं, पर अतीताद्धा से अनागताद्धा एक समय अधिक है, और भविष्यकाल से भूतकाल एक समय न्यून है।

(प्र० २६-३०)···सर्वाद्धा क्या संख्यात अतीताद्धारूप है···?···संख्यात, असंख्यात या अनन्त अतीताद्धारूप नहीं, किन्तु अतीताद्धा—भूतकाल से सर्वाद्धा कुछ अधिक दुगना है, और अतीताद्धा सर्वाद्धा से कुछ न्यून अर्धभाग रूप है।···सर्वाद्धा क्या संख्यात अनागताद्धा रूप है···प्रश्न।···वह संख्यात, असंख्यात या अनन्त अनागताद्धारूप नहीं, किन्तु भविष्यत् काल से सर्वाद्धा कुछ कम दुगना है, और अनागताद्धा सर्वाद्धा से कुछ अधिक आधा है ।।७४७।।

निगोद कितने प्रकार के कहे हैं ?···दो प्रकार के···--निगोद और निगोद जीव।···निगोद कितने···?···दो प्रकार के···--सूक्ष्म निगोद व बादर निगोद। इस प्रकार जीवाभिगम सूत्रानुसार सारे निगोद कहने ।।७४८।।

···नाम-भाव कितने प्रकार का कहा है ?···६ प्रकार का···--१ औदयिक यावत् ६ सांनिपातिक।···औदयिक० कितने प्रकार का है ।···दो प्रकार का··· उदय व उदयनिष्पन्न। इस प्रकार जैसे १७ वें शतक के पहले उद्देशक में भाव के सम्बन्ध में कहा है उसी प्रकार यहां भी कहें। विशेष—वहां भाव के सम्बन्ध में कहा है यहां नाम के सम्बन्ध में यावत् सांनिपातिक तक कहें। हे भगवन् ! यह ऐसा ही है···। ऐसा कहकर यावत् विचरते हैं ।।७४९।।

।। २५ वें शतक का पांचवां उद्देशक समाप्त ।।

—x—

छठा उद्देशक

इस उद्देशक में निर्ग्रन्थों के विषय में निम्नलिखित ३६ विषय कहने हैं—१ प्रज्ञापन, २ वेद, ३ राग, ४ कल्प, ५ चारित्र, ६ प्रतिसेवना, ७ ज्ञान, ८ तीर्थ, ९ लिंग, १० शरीर, ११ क्षेत्र, १२ काल, १३ गति, १४ संयम, १५ संनिकर्ष, १६ योग, १७ उपयोग, १८ कषाय, १९ लेश्या, २० परिणाम, २१ बन्ध, २२ वेद, २३ उदीरणा, २४ उपसंपद-हान (स्वीकार व त्याग), २५ संज्ञा, २६ आहार, २७ भव, २८ आकर्ष, २९ कालमान, ३० अन्तर, ३१ समुद्घात, ३२ क्षेत्र, ३३ स्पर्शना, ३४ भाव, ३५ परिमाण, और ३६ अल्पबहुत्व।

(प्र० १-५) राजगृह नगर में [गणधर गौतम ने] यावत्—इस प्रकार पूछा—भगवन् ! निर्ग्रन्थ कितने कहे हैं ? गौतम ! निर्ग्रन्थ पांच प्रकार के कहे हैं, वह इस प्रकार—१ पुलाक, २ बकुश, ३ कुशील, ४ निर्ग्रन्थ और ५ स्नातक।···

पुलाक कितने प्रकारके…?…पांच प्रकारके-…१ ज्ञान पुलाक, २ दर्शन०, ३ चारित्र०, ४ लिंग०, ५ यथासूक्ष्म०।…वकुश कितने प्रकार के …?…पांच प्रकार के…--१ आभोगवकुश, २ अनाभोग०, ३ असंवृत०, ४ संवृत और ५ यथासूक्ष्म०।…कुशील कितने प्रकार के…?…कुशील दो प्रकार के…-प्रतिसेवनाकुशील व कपाय०।… प्रतिसेवना-कुशील कितने प्रकार…?…पांच प्रकारके…--१ ज्ञानप्रतिसेवनाकुशील, २ दर्शन०, ३ चारित्र०, ४ लिंग० और ५ यथासूक्ष्म०।

(प्र० ६-१२)…कषायकुशील कितने प्रकारके…?…पांच प्रकारके…—१ ज्ञानकपायकुशील, २ दर्शन०, ३ चारित्र०, ४ लिंग०, ५ यथासूक्ष्म०।…निर्ग्रन्थ कितने प्रकार के…?…पांच प्रकारके…—१ प्रथम समयवर्ती निर्ग्रन्थ, २ अप्रथम०, ३ चरम०, ४ अचरम० और ५ वां यथासूक्ष्म निर्ग्रन्थ।…स्नातक कितने प्रकारके …?…पांच प्रकारके…—१ अच्छवी (शरीररहित), २ असंवल, ३ अकर्मांश, ४ संशुद्ध ज्ञानदर्शनधर अरिहन्त—जिन—केवली और ५ वां अपरिस्रावी (कर्म-बन्धरहित)। भगवन्! क्या पुलाक निर्ग्रन्थ वेदसहित या वेदरहित है? गौतम! पुलाक वेदसहित है, पर वेदरहित नहीं।…यदि पुलाक वेदसहित है, तो क्या स्त्रीवेद वाला है, पुरुपवेद…या पुरुपनपुंसक…?…वह स्त्रीवेद वाला नहीं, पर पुरुपवेद वाला व पुरुपनपुंसकवेद वाला है।…क्या वकुश वेदसहित है या वेद-रहित…?…वेदसहित है, पर वेदरहित नहीं।…यदि वकुश वेदसहित है तो क्या स्त्री०…पुरुप०…या नपुंसक०…?…वह स्त्रीवेद वाला, पुरुप० और पुरुप-नपुंसकवेद वाला होता है। इसी प्रकार प्रतिसेवनाकुशील भी जानें।

(प्र० १३-२१)…क्या कषायकुशील वेदसहित…पृच्छा।…वेदसहित भी हो और वेदरहित भी हो।…यदि वेदरहित हो तो क्या उपशांत वेद वाला हो या क्षीण…? …उपशांत वेद वाला भी हो और क्षीण…भी हो।…यदि वेदसहित हो तो क्या स्त्रीवेद…पृच्छा।…वकुशकी तरह तीनों वेदोंमें हो।…क्या निर्ग्रन्थ वेदसहित…?…वेदसहित नहीं, पर वेदरहित है।…यदि वेदरहित हो तो क्या उपशांत…पृच्छा।…वह उपशान्तवेद भी हो और क्षीणवेद भी हो।…स्नातक निर्ग्रन्थकी तरह वेदरहित हो पर विशेप यह कि वह उपशांतवेद न हो, पर क्षीण-वेद हो ॥७५०॥

…क्या पुलाक रागसहित हो या वीतराग हो ?…रागसहित हो पर वीतराग न हो। इसी प्रकार यावत्—कपायकुशील तक जानना।…निर्ग्रन्थ… पृच्छा।…सराग नहीं, पर वीतराग होता है।…वह उपशांतकपाय वीतराग हो और क्षीण० भी हो। इसी प्रकार स्नातक भी जानें। विशेप—स्नातक उपशांत-कपाय वीतराग न हो, पर क्षीणकपाय वीतराग हो ॥७५१॥

(प्र० २२-२७)···क्या पुलाक स्थित कल्पमें हो या अस्थित कल्प में हो? ···वह स्थित कल्पमें भी हो और अस्थित कल्पमें भी हो। इस प्रकार यावत्—स्नातक तक जानें। ···क्या पुलाक जिनकल्पमें हो, स्थविरकल्प में हो या कल्पातीत हो? ···जिनकल्पमें न हो, कल्पातीत न हो, पर स्थविरकल्पमें हो। ···बकुश जिनकल्पमें हो और स्थविरकल्प में हो, पर कल्पातीत न हो। इसी प्रकार प्रतिसेवनाकुशील के विषयमें भी जानें। ···कषायकुशील जिनकल्पमें हो, स्थविर० में हो और कल्पातीत भी हो। ···निर्ग्रन्थ जिनकल्प व स्थविर० में न हो, पर कल्पातीत हो। इसी प्रकार स्नातकके संबंधमें भी जानें ।।७५२।।

···क्या पुलाक सामायिक संयममें हो, छेदोपस्थापनीय···, परिहारविशुद्ध···, सूक्ष्मसंपराय··· या यथाख्यात···? ···वह सामायिक संयम व छेदोपस्थापनीय संयम में हो, पर परिहारविशुद्ध, सूक्ष्मसंपराय या यथाख्यात संयम में न हो। इसी प्रकार बकुश और प्रतिसेवनाकुशील भी समझें।

(प्र० २८-३१)···कषायकुशील सामायिक संयम यावत् सूक्ष्मसंपराय० में हो, पर यथाख्यात० में न हो। ···निर्ग्रन्थ सामायिक यावत् सूक्ष्मसंपराय संयममें न हो, पर यथाख्यात० में हो, इसी प्रकार स्नातकके विषयमें भी जानें ।।७५३।।

···क्या पुलाक चारित्र—प्रतिसेवक (संयम-विराधक) हो या अप्रतिसेवक (अविराधक) संयमाराधक हो? ···वह प्रतिसेवक हो, पर अप्रतिसेवक न हो। ··· यदि वह प्रतिसेवक हो, तो क्या प्राणातिपात विरमणादि मूलगुण का प्रतिसेवक—विराधक हो या प्रत्याख्यानादि उत्तरगुणका प्रतिसेवक हो? ···वह मूलगुणका प्रतिसेवक हो और उत्तरगुणों का भी प्रतिसेवक हो। मूलगुण की विराधना करते हुए पांच आस्रवों में से किसी एक आस्रव को सेवे तथा उत्तरगुण की विराधना करते हुए दस प्रकारके प्रत्याख्यान में से किसी एक प्रत्याख्यान की विराधना करे।

(प्र० ३२-३७)···बकुश विराधक होता है, पर अविराधक नहीं। ···वह मूलगुण का विराधक नहीं होता, पर उत्तरगुणका विराधक होता है। उत्तरगुण की विराधना करते हुए···किसी एक प्रत्याख्यान की विराधना करे। पुलाकके समान प्रतिसेवनाकुशील भी जानें। ···कषायकुशील विराधक न हो, पर आराधक हो, इसी प्रकार निर्ग्रन्थ व स्नातक के विषयमें भी समझें ।।७५४।।

···पुलाक कितने ज्ञानों में वर्ते? ···दो ज्ञानों में हो या तीन ज्ञानोंमें हो। जब वह दो ज्ञानोंमें हो तो मति व श्रुत ज्ञानमें हो, यदि वह तीन ज्ञानोंमें हो तो मति, श्रुत व अवधिज्ञानमें हो, इसी प्रकार बकुश व प्रतिसेवनाकुशील भी जानें। ···कषायकुशील दो ज्ञानोंमें हो, तीन अथवा चार ज्ञानोंमें भी हो, यदि वह दो

ज्ञानोंमें हो तो मति व श्रुत ज्ञानमें हो, यदि तीन···में हो···मति, श्रुत और अवधि ज्ञानमें हो, अथवा मति, श्रुत और मनःपर्यव ज्ञानमें हो, और जब वह चार ज्ञानमें हो तो मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यव ज्ञानमें हो। इसी प्रकार निर्ग्रन्थके विषय में भी जाने।···स्नातक एक केवलज्ञानमें हो ॥७५५॥

(प्र० ३८-४५)···पुलाक कितना श्रुत पढ़े?···जघन्य नौवें पूर्वकी तीसरी आचार वस्तु तक, उत्कृष्ट संपूर्ण नौ पूर्व पढ़े।···बकुश जघन्य आठ प्रवचन माता तक, उत्कृष्ट दस पूर्व पढ़े। इसी प्रकार प्रतिसेवनाकुशील भी जानें।···कषाय-कुशील जघन्य आठ प्रवचन माता, उत्कृष्ट चौदह पूर्व पढ़े। इसी प्रकार निर्ग्रन्थ के विषय में भी जानें।···स्नातक श्रुतरहित हो ॥७५६॥

···क्या पुलाक तीर्थ में हो या तीर्थके अभावमें हो?...वह तीर्थमें हो, पर तीर्थके अभाव में न हो। इसी प्रकार बकुश व प्रतिसेवनाकुशील भी जानें।···कषायकुशील तीर्थमें हो और अतीर्थ में भी हो।···यदि वह अतीर्थ में हो तो क्या तीर्थकर हो या प्रत्येकबुद्ध हो?···वह तीर्थकर भी हो या प्रत्येकबुद्ध भी हो। इसी प्रकार निर्ग्रन्थ व स्नातकके विषय में भी जानें ॥७५७॥

क्या पुलाक स्वलिंगमें हो, अन्यलिंग···या गृहस्थलिंगमें हो?···द्रव्यलिंग आश्रयी स्वलिंगमें हो, अन्य लिंगमें हो या गृहस्थलिंग में भी हो। भावलिंग आश्रयी अवश्य स्वलिंगमें हो। इसी प्रकार यावत् स्नातक तक जानें ॥७५८॥

(प्र० ४६-५०)···पुलाक कितने शरीरोंमें हो?···औदारिक, तैजस् व कार्मण—इन तीन शरीरोंमें हो।···बकुश तीन या चार शरीरोंमें हो, जब वह तीन श० में हो तो औदारिक, तैजस् और कार्मण शरीर में हो, जब वह चार श० में हो तो औ०, वैक्रिय, तै० और का० शरीर में हो। इसी प्रकार प्रतिसेवना-कुशील भी जानें।···कषायकुशील तीन, चार या पांच शरीरोंमें हो, जब वह तीन ···तो औ०, तै० और कार्मण० में हो, जब वह चार···तो औ०, वै०, तै० और कार्मण शरीरमें हो, जब वह पांच···तो औ०, वै०, आहारक, तै० व कार्मण श० में हो, निर्ग्रन्थ व स्नातक पुलाक के समान समझें ॥७५९॥

···क्या पुलाक कर्मभूमिमें हो या अकर्मभूमिमें हो।···जन्म व सद्भाव की अपेक्षा कर्मभूमिमें हो, पर अकर्मभूमिमें न हो।···बकुश जन्म व सद्भाव-आश्रयी कर्मभूमि में हो, पर अकर्मभूमिमें न हो, संहरण की अपेक्षा कर्मभूमिमें भी हो और अकर्मभूमिमें भी हो। इसी प्रकार यावत् स्नातक तक जानें ॥७६०॥

(प्र० ५१-५६)···क्या पुलाक अवसर्पिणी कालमें हो, उत्सर्पिणी···या नो-अवसर्पिणी-नोउत्सर्पिणी कालमें हो?···अवसर्पिणी काल में हो, उत्सर्पिणी० में हो और नोअ०—नोउ० कालमें भी हो।···यदि वह अवसर्पिणी काल में हो तो १ सुषमसुषमा काल (पहले आरे) में हो, २ सुषमा० (दूसरे आरे)···, ३ सुषम-

दुषमा० (तीसरे आरे)···, ४ दुषमसुषमा० (चौथे आरे)···, ५ दुषमा० (पांचवें आरे)···या ६ दुःषमदुःषमा काल (छठे आरे) में हो ?···जन्मकी अपेक्षा सुषम-सुषमा व सुषमाकाल में न हो, पर सुषमदुःषमा काल में हो, दुःषमसुषमा कालमें हो, दुःषमा काल में न हो और दुःषमदुःषमा कालमें भी न हो। तथा सद्भाव की अपेक्षा सुषमसुषमा कालमें, सुषमा···और दुःषम-दुःषमा कालमें न हो, पर सुषमदुःषमा काल में हो, दुःषमसुषमा काल में हो और दुःषमा काल में हो।···यदि वह उत्सर्पिणी कालमें हो तो क्या १ दुःषमदुःषमा कालमें हो, २ दुःषमा···, ३ दुषमसुषमा···, ४ सुषमदुःषमा···, ५ सुषमा···या ६ सुषमसुषमा कालमें हो ?···जन्माश्रयी दुःषमदुःषमा कालमें न हो, दुषमा कालमें हो, दुषमसुषमा···, सुषमदुःषमा···हो, पर सुषमा व सुषम-सुषमा कालमें न हो। सद्भाव आश्रयी दुःषमदुःषमा कालमें न हो, दुःषमा···न हो, दुःषमसुषमा कालमें हो, सुषमदुःषमा···हो, पर सुषमा तथा सुषम-सुषमा कालमें न हो।···यदि वह नोउत्सर्पिणी-नोअवसर्पिणी कालमें हो तो क्या सुषमसुषमा समान कालमें हो, सुषमा समान···सुषमदुःषमा···या दुःषमसुषमा समान काल में हो ?···जन्म व सद्भाव आश्रयी सुषमसुषमा समान कालमें न हो, सुषमा···न हो, सुषमदुःषमा···न हो, पर दुःषमसुषमा समान काल में हो।···वकुश अवसर्पिणी काल में हो, उत्सर्पिणी···में भी हो, पर नोउत्सर्पिणी-नोअवस-र्पिणी काल में न हो।···यदि वकुश अवसर्पिणी काल में हो तो जन्म व सद्भाव की अपेक्षा सुषमसुषमा काल में न हो, सुषमा···न हो, सुषमदुःषमा काल में हो, दुःषमसुषमा काल में हो या दुःषमा कालमें हो, पर दुःषमदुःषमा काल में न हो, संहरण की अपेक्षा किसी भी कालमें हो।

(प्र० ५७-६१)···यदि वकुश उत्सर्पिणी काल में हो तो जन्म आश्रयी दुःषमदुःषमा कालमें न हो—इत्यादि सब पुलाक के समान जानें। सद्भाव आश्रयी दुःषमदुःषमा कालमें न हो, इस प्रकार सब सद्भाव आश्रयी भी पुलाक के समान जानें। यावत् सुषमसुषमा कालमें न हो, संहरण की अपेक्षा किसी भी काल में हो।···यदि वकुश नोअवसर्पिणी—नोउत्सर्पिणी कालमें हो तो जन्म व सद्भाव आश्रयी सुषमसुषमा समान कालमें न हो···सर्व पुलाकवत् जानें, यावत्—दुःषमसुषमा समान कालमें हो। संहरण की अपेक्षा किसी भी कालमें हो। जैसे वकुश के संबंधमें कहा उसी प्रकार प्रतिसेवनाकुशील के सम्बन्ध में भी कहें। इसी प्रकार कषायकुशील भी जानें। निर्ग्रन्थ व स्नातक भी पुलाकके समान समझें। विशेष—निर्ग्रन्थ व स्नातक को संहरण अधिक कहें। अर्थात् संह-रण आश्रयी सर्व कालमें हों—ऐसा कहें। शेष सर्व पूर्ववत्। ।।७६१।।

···पुलाक मरकर किस गतिमें जाय ?···देवगतिमें जावे।···देवगतिमें जाता

हुआ क्या भवनवासियोंमें, वाणव्यन्तरों में, ज्योतिष्कमें या वैमानिकोंमें उत्पन्न हो ?···भवनवासीमें न उत्पन्न हो, वाणव्यन्तरमें न हो, ज्यो० में न हो, पर वैमानिक में उत्पन्न हो। वैमानिक में उत्पन्न होता हुआ पुलाक जघन्य सौधर्म कल्पमें, उत्कृष्ट सहस्रार कल्प में उत्पन्न हो। वकुशके विषयमें भी इसी प्रकार जानें। विशेष—उत्कृष्ट अच्युत कल्पमें उत्पन्न हो। वकुश के समान प्रतिसेवनाकुशीलके विषयमें भी समझें। और पुलाककी तरह कषायकुशील भी जानें, विशेष—कषाय-कुशील उत्कृष्ट अनुत्तर विमानमें उत्पन्न हो।···निर्ग्रन्थ मरकर यावत् वैमानिकों में उत्पन्न होता हुआ जघन्य व उत्कृष्ट सिवाय एक अनुत्तर विमानमें उत्पन्न हो। ···स्नातक एक सिद्धगतिमें जावे।

(प्र०६२-६६)···देवों में उत्पन्न होता हुआ पुलाक क्या इन्द्रपने उत्पन्न हो, सामानिक···, त्रायस्त्रिंशदेव···, लोकपालपने···, या अहमिन्द्रपने उत्पन्न हो ?··· अविराधना आश्रयी इन्द्रपने उत्पन्न हो, सामानिकपने···हो, त्रायस्त्रिंश···हो और लोकपाल···हो, पर अहमिन्द्रपने उत्पन्न न हो। और विराधना करके भवनपति आदि किसी भी देव में उत्पन्न हो। इसी प्रकार वकुश व प्रतिसेवनाकुशील भी जानना।···कषायकुशील संयम की विराधना न की हो तो वह इन्द्रपने, यावत् अहमिन्द्रपने उत्पन्न हो, और विराधना की हो तो वह भवनपति आदि किसी भी देव में उत्पन्न हो। ··निर्ग्रन्थ अविराधना आश्रयी इन्द्रपने यावत् लोकपालपने न हो, पर अहमिन्द्रपने हो, विराधना आश्रयी भवनवासी आदि किसी भी देव में उत्पन्न हो।···देवलोकों में उत्पन्न होने वाले पुलाककी कितने काल तककी स्थिति कही है ?···जघन्य पल्योपमपृथक्त्व—दो से नौ पल्योपम तककी और उत्कृष्ट १८ सागरोपम की स्थिति कही है।···वकुश की जघन्य दो से नौ पल्योपम तक की, उत्कृष्ट २२ सागरोपम तक की···। इसी प्रकार प्रतिसेवनाकुशील के विषय में भी जानें।

(प्र०६७-७२)···कषायकुशील की जघन्य दो से नौ पल्योपम तक की, उत्कृष्ट ३३ सागरोपम की···।···निर्ग्रन्थकी अजघन्योत्कृष्ट ३३ सागरोपमकी स्थिति कही है ॥७६२॥ पुलाक के कितने संयमस्थान कहे हैं ?···असंख्यात···। इसी प्रकार यावत् कषायकुशील तक जानें।···निर्ग्रन्थ का अजघन्योत्कृष्ट एक संयमस्थान कहा है। इसी प्रकार स्नातक के विषय में भी जानें।···पूर्वोक्त पुलाक, वकुश, प्रतिसेवनाकुशील, कषायकुशील, निर्ग्रन्थ व स्नातक के संयम-स्थानों में कौन किनसे यावत् विशेषाधिक हैं ?···निर्ग्रन्थ व स्नातक का सबसे अल्प जघन्य अनुत्कृष्ट एक ही संयमस्थान है, उससे पुलाक के असंख्यात गुणा संयमस्थान हैं, उनसे वकुशके असंख्यातगुणा···, उनसे प्रतिसेवनाकुशील के असंख्यातगुणा···, उनसे कषायकुशील के असंख्यातगुणा···हैं ॥७६३॥ पुलाक के

कितने चारित्रपर्यव हों ?···अनन्त चारित्रपर्यव हों इसी प्रकार यावत् स्नातक तक जानें।

(प्र०७३-७५)···पुलाक स्वस्थान संनिकर्ष—अपने सजातीय चारित्रपर्यायों की अर्थात् एक पुलाक दूसरे पुलाक के चारित्रपर्याय की अपेक्षा क्या हीन हो, तुल्य हो या अधिक हो ?···कदाचित् हीन हो, क० तुल्य हो और क० अधिक हो। यदि हीन हो तो अनंत भाग हीन हो, असंख्यात भाग···, संख्यात भाग···, संख्यात गुण हीन हो, असंख्यात···और अनंत गुण हीन हो। यदि अधिक हो तो अनंत भाग अधिक हो, असंख्यात···, संख्यात भाग···, संख्यात गुण···, असंख्यात गुण···और अनंत गुण अधिक हो।

···पुलाक (अपने चारित्रपर्यायों से) वकुश के परस्थान-संनिकर्ष-विजातीय चारित्रपर्यायों की अपेक्षा क्या हीन है, तुल्य है, या अधिक है ?···हीन है, पर तुल्य या अधिक नहीं, और वह अनन्त गुण हीन है। इस प्रकार प्रतिसेवनाकुशील के चारित्रपर्याय की अपेक्षा पुलाक अनन्त गुण हीन है। पुलाक जैसे स्वस्थान-सजातीय पर्याय की अपेक्षा छःस्थानपतित कहा है, उसी प्रकार कषायकुशील के साथ भी जानें। वकुशके समान निर्ग्रन्थ के साथ भी जानें। इसी प्रकार स्नातक के साथ भी समझें।···वकुश पुलाक के परस्थान—विजातीय चारित्र० की अपेक्षा हीन नहीं, तुल्य नहीं, पर अधिक है, और वह अनंत गुण अधिक है।

(प्र० ७६-८०)···वकुश वकुश के सजातीय चारित्रपर्याय आश्रयी कदाचित् हीन हो, क० तुल्य हो, और क० अधिक हो, यदि हीन हो छः स्थान पतित हो।··· वकुश प्रतिसेवनाकुशीलके विजातीय चारित्रपर्यवोंसे छः स्थानक पतित हो। इसी प्रकार कषायकुशील की अपेक्षासे भी जानें।···वकुश निर्ग्रन्थ के विजातीय चारित्रपर्यायों की अपेक्षा हीन है, तुल्य नहीं और अधिक भी नहीं, और वह अनन्त गुण हीन है। इसी प्रकार स्नातककी अपेक्षा भी समझें। तथा प्रतिसेवना-कुशील के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार वकुश की वक्तव्यता कहें। कषायकुशील इसी प्रकार जानें। परन्तु पुलाक की अपेक्षा कषायकुशील छः स्थान पतित होता है।···निर्ग्रन्थ पुलाक के विजातीय चारित्रपर्यवों से हीन नहीं, तुल्य नहीं, पर अधिक है, और वह अनन्त गुण अधिक है।-इसी प्रकार यावत् कषायकुशीलके सम्बन्धकी अपेक्षा भी जानना।···निर्ग्रन्थके सजातीय चारित्रपर्यवोंसे हीन नहीं, और अधिक नहीं, पर तुल्य है। इसी प्रकार स्नातक की अपेक्षा भी समझें।

(प्र० ८१-८४)···स्नातक पुलाक के विजातीय चारित्रपर्यवों से···पृच्छा। ···जैसे निर्ग्रन्थ के सम्बन्धमें कहा है, वैसे ही स्नातक के सम्बन्धमें भी कहें यावत्

स्नातक स्नातक के सजातीय चारित्रपर्यवोंसे हीन नहीं, अधिक नहीं, पर तुल्य है। ···इन पुलाक, वकुश, प्रतिसेवनाकुशील, कषायकुशील, निर्ग्रन्थ व स्नातकके जघन्य व उत्कृष्ट चारित्रपर्यव कौन किनसे यावत् विशेषाधिक हैं ?···१ पुलाक व कषाय-कुशीलके जघन्य चारित्रपर्यव परस्पर तुल्य हैं व सबसे थोड़े हैं। २ उनसे पुलाक के उत्कृष्ट पर्यव अनंत गुणा हैं। ३ उनसे वकुश व प्रतिसेवनाकुशील के जघन्य चारित्रपर्यव अनंतगुणा व परस्पर तुल्य हैं। ४ उनसे वकुशके उत्कृष्ट···अनंत गुणा···। ५ उनसे प्रतिसेवनाकुशीलके उत्कृष्ट···अनंत···। ६ उनसे कषाय-कुशील के उत्कृष्ट···अनंत···। ७ उनसे निर्ग्रन्थ व स्नातक इन दोनोंके अजघन्य अनुत्कृष्ट चारित्रपर्यव अनन्तगुणा व परस्पर तुल्य हैं ॥७६४॥

···क्या पुलाक सयोगी हो या अयोगी हो ?···सयोगी हो, पर अयोगी न हो। ···यदि सयोगी हो तो क्या मनोयोगी हो वचन० हो या काय० हो ?···वह मनो-योगी हो, वचन० हो और काय० भी हो। इस प्रकार यावत् निर्ग्रन्थ तक जानें। ···स्नातक सयोगी भी हो और अयोगी भी हो। यदि सयोगी हो तो क्या मनोयोगी ···इत्यादि पुलाक के समान जानें ॥७६५॥

(प्र० ८५-८७)···क्या पुलाक साकार उपयोग वाला है या अनाकार उप-योग वाला है ?···वह साकार व अनाकार उपयोग वाला है। इसी प्रकार यावत् स्नातक तक समझें ॥७६६॥···पुलाक सकषायी हो या कषायरहित हो ?···वह सकषायी हो, पर कषायरहित न हो।···यदि कषाय वाला हो तो उसमें कितने कषाय हो ?···उसके क्रोध, मान, माया और लोभ ये चारों कषाय हों। इसी प्रकार वकुश तथा प्रतिसेवनाकुशील भी जानें।···कषायकुशील कषाय वाला हो, अकषायी न हो।···उसके चार, तीन, दो और एक कषाय हो। यदि उसके चार कषाय हों तो संज्वलन क्रोध, मान, माया और लोभ ये चार···, यदि···तीन···तो संज्वलन मान, माया और लोभ ये तीन, यदि···दो···तो संज्वलन माया और लोभ हों, और यदि एक कषाय हो तो केवल संज्वलन लोभ हो।

(प्र० ८८-९२)···निर्ग्रन्थ कषाय वाला न हो, पर कषायरहित हो,···वह उपशांतकषाय भी हो, क्षीण० भी हो। इसी प्रकार स्नातकके सम्बन्ध में भी समझें। परन्तु स्नातक क्षीणकषाय ही होता है, पर उपशांतकषाय नहीं होता। ॥७६७॥···क्या पुलाक लेश्या वाला हो या लेश्यारहित हो ?···लेश्या वाला हो, पर लेश्यारहित न हो।···यदि वह लेश्या वाला हो तो उसके कितनी लेश्याएं हों ?···उसके तीन विशुद्ध लेश्या हों, वह इस प्रकार—तेजोलेश्या, पद्मलेश्या व शुक्ललेश्या, इसी प्रकार वकुश तथा प्रतिसेवनाकुशीलके सम्बन्धमें भी समझें।··· कषायकुशील लेश्या वाला हो, पर लेश्यारहित न हो,···उसके ६ लेश्या हों···

—१ कृष्णलेश्या यावत् ६ शुक्ललेश्या। निर्ग्रन्थ लेश्या वाला हो पर लेश्यारहित न हो।…उसके एक शुक्ललेश्या हो।…स्नातक लेश्या वाला भी हो, लेश्यारहित भी हो।…उसे एक परमशुक्ल लेश्या हो ॥७६८॥

(प्र० ६३-१०१)…पुलाक बढ़ते परिणाम वाला हो, घटते परिणाम वाला हो या स्थिर परिणाम वाला हो?…बढ़ते…हो, घटते…हो और स्थिर प० वाला भी हो। इस प्रकार यावत् कषायकुशील तक जानें।…निर्ग्रन्थ बढ़ते परिणाम वाला हो, स्थिर-परिणाम वाला हो, पर हीयमान परिणाम वाला न हो, इसी प्रकार स्नातकके सम्बन्धमें भी जानें।…पुलाक कितने काल तक बढ़ते परिणाम वाला हो?…जघन्य एक समय उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त तक…।…पुलाक…हीयमान…?…जघन्य एक समय उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त…। पुलाक …स्थिर परिणाम…? जघन्य एक समय उत्कृष्ट सात समय तक स्थिर…। इसी प्रकार यावत् कषायकुशील के सम्बन्ध में भी समझें।…निर्ग्रन्थ जघन्य अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त तक बढ़ते परिणाम वाला हो।…निर्ग्रन्थ जघन्य एक समय उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त तक स्थिर परिणाम वाला हो।…स्नातक जघन्य अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त तक बढ़ते परिणाम वाला हो, और जघन्य अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट कुछ (आठ वर्ष) न्यून पूर्वक्रोटी वर्ष तक, स्थिर परिणाम वाला हो ॥७६९॥

(प्र० १०२-१०७)…पुलाक कितनी कर्मप्रकृतियां बांधे?…आयु को छोड़ कर सात कर्मप्रकृतियां बांधे।…बकुश सात या आठ कर्म० बांधे। यदि सात कर्म बांधे तो आयु को छोड़ कर सात कर्म बांधे, यदि आठ प्रकृतियां बांधे तो संपूर्ण आठ प्र० बांधे। इसी प्रकार प्रतिसेवनाकुशील भी जानें।……कषायकुशील सात कर्म०, आठ कर्म० या छः कर्म प्र० को बांधे। यदि सात बांधे तो आयु को छोड़कर…, आठ बांधे तो प्रतिपूर्ण आठ प्र० को बांधे, यदि छः बांधे तो आयु व मोहनीय को छोड़कर बाकी छः कर्म प्र० बांधे।…निर्ग्रन्थ मात्र एक वेदनीय कर्म बांधे।…स्नातक एक कर्मप्रकृति को बांधे अथवा न बांधे, यदि बांधे तो एक वेदनीय कर्म बांधे ॥ ७७० ॥…पुलाक कितनी कर्मप्रकृति वेदे-अनुभव करे?…वह अवश्य आठों कर्मप्रकृतियों को वेदे, इसी प्रकार यावत् कषायकुशील के सम्बन्ध में भी जानें।

(प्र० १०८-११४)…निर्ग्रन्थ मोहनीय को छोड़कर सात कर्मप्रकृतियां वेदे।…स्नातक वेदनीय, आयु, नाम व गोत्र इन चार कर्म प्रकृतियों को वेदे ॥७७१॥…पुलाक कितनी कर्म प्रकृतियों को उदीरें?…आयु व वेदनीय छोड़कर शेष छः कर्मप्रकृतियों को उदीरे।……बकुश सात, आठ या छः या पांच कर्मप्र० को उदीरे। यदि सात उदीरे तो आयु को छोड़कर बाकी…। यदि आठ…तो संपूर्ण आठ

प्रकृतियों को…, यदि छः…आयु व वेदनीय को छोड़कर शेष छः प्र० को उदीरे, और पांच की उदीरणा करता हुआ आयु, वेदनीय तथा मोहनीय को छोड़ बाकी पांच कर्मप्रकृतियों को उदीरे।…निर्ग्रन्थ पांच या दो कर्मप्रकृतियों को उदीरे। पांच उदीरे तो आयु, वेदनीय व मोहनीय छोड़ शेष पांच…। दो को उदीरे तो नाम व गोत्र इन दो…।…स्नातक दो कर्मों को उदीरे अथवा न उदीरे। दो को उदीरे तो नाम व गोत्र कर्म को उदीरता है ॥७७२॥

(प्र० ११५-१२०)…पुलाक पुलाकपने का त्याग करता हुआ किसका त्याग करे और क्या प्राप्त करे ?…पुलाकपने का त्याग करे और कषायकुशीलपना या असंयतपना प्राप्त करे।…बकुश बकुशपना छोड़े व प्रतिसेवनाकुशीलपना, कषाय कुशील०, असंयम या संयमासंयम को प्राप्त करे।…प्रतिसेवनाकुशील प्रतिसेवनाकुशीलपना छोड़े, बकुशपना, कषायकुशील०, असंयम या संयमासंयम प्राप्त करे।…कषायकुशील कषाय०पना छोड़ें और पुलाकपना, बकुश०, प्रतिसेवना०, निर्ग्रन्थ०, असंयम या संयमासंयम को प्राप्त करे।…निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थपना छोड़े व कषायकुशीलपना, स्नातक० या असंयम प्राप्त करे।…स्नातक-स्नातकपना छोड़े और सिद्ध गति प्राप्त करे ॥७७३॥

(प्र० १२१-१२७)…पुलाक संज्ञोपयुक्त-आहारादि की आसक्तियुक्त है या नोसंज्ञोपयुक्त है ?…संज्ञोपयुक्त नहीं पर नोसंज्ञोपयुक्त है।…बकुश संज्ञोपयुक्त है, और नोसंज्ञोपयुक्त भी। इसी प्रकार प्रतिसेवनाकुशील व कषायकुशील भी जानें। ……स्नातक व निर्ग्रन्थ…पुलाक के समान (नोसंज्ञोपयुक्त) जाने ॥७७४॥

…क्या पुलाक आहारक हो या अनाहारक हो ?…आहारक हो, पर अनाहारक न हो। इस प्रकार यावत् निर्ग्रन्थ तक जानें।……स्नातक आहारक भी हो और अनाहारक भी हो ॥७७५॥……पुलाक को कितने भवग्रहण हों ?…जघन्य एक व उत्कृष्ट तीन भवग्रहण हों।…बकुश को जघन्य एक उत्कृष्ट आठ भवग्रहण हों। इसी प्रकार प्रतिसेवनाकुशील व कषायकुशील के सम्बन्ध में भी जानें। तथा पुलाक के समान निर्ग्रन्थ भी जानें।……स्नातक का एक भवग्रहण हो ॥ ७७६ ॥

(प्र० १२८-१३५)…पुलाक को एक भव में कितने आकर्ष (चारित्रप्राप्ति) कहे हैं ?……जघन्य एक उत्कृष्ट तीन आकर्ष हों।……बकुश को जघन्य एक उत्कृष्ट शतपृथक्त्व—दो सौ से लेकर नौ सौ तक आकर्ष हों। इसी प्रकार प्रतिसेवनाकुशील व कषाय कुशील के सम्बन्ध में भी जानें।…निर्ग्रन्थ को जघन्य एक व उत्कृष्ट दो आकर्ष हों।……स्नातक को एक आकर्ष हो।……पुलाक को अनेक भव में कितने आकर्ष हों ?……जघन्य दो उत्कृष्ट सात……।……बकुश को जघन्य दो व उत्कृष्ट दो हजार से नौ हजार तक आकर्ष हों। इसी प्रकार यावत् कषाय कुशील के सम्बन्ध में भी जानें।……निर्ग्रन्थ को जघन्य दो व उत्कृष्ट

पांच आकर्ष हों।......स्नातक को एक भी आकर्ष न हो ॥ ७७७ ॥

(प्र० १३६-१४३)......पुलाक काल की अपेक्षा कितने काल तक रहे ?... जघन्य व उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त तक रहे।......बकुश जघन्य एक समय व उत्कृष्ट कुछ कम पूर्वकोटि वर्ष तक रहे। इसी प्रकार प्रतिसेवनाकुशील व कषायकुशील के विषय में भी समझें।......निर्ग्रन्थ जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त तक रहे।......स्नातक जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट कुछ न्यून पूर्वकोटि वर्ष तक रहे। ......पुलाक काल की अपेक्षा कितने काल तक रहें ?......वे जघन्य एक समय व उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त तक रहें।......बकुश सर्वकाल रहें। इसी प्रकार यावत् कषाय-कुशीलों तक जानें। निर्ग्रन्थ पुलाकों की तरह जानें। और स्नातक बकुशों की तरह ॥७७८॥......पुलाक को कितने काल तक का अंतर हो ?......जघन्य अन्त-र्मुहूर्त उत्कृष्ट अनन्तकाल का अंतर हो। काल से अनन्त अवसर्पिणी—उत्सर्पिणी का और क्षेत्र से कुछ न्यून अपार्ध पुद्गल परावर्त का अंतर होता है। इस प्रकार यावत्—निर्ग्रन्थ तक जानें।......स्नातक को अंतर नहीं।......

(प्र० १४४-१५३)...पुलाकों को कितने काल का अन्तर हो ?.. जघन्य एक समय, उत्कृष्ट संख्यात वर्षों का अन्तर हो।...बकुशों का अन्तर नहीं। इस प्रकार यावत् कषाय-कुशीलों तक जानें। निर्ग्रन्थोंका जघन्य एक समय उत्कृष्ट छ मासका अन्तर होता है। स्नातक बकुशोंकी तरह जानें ॥७७९॥...पुलाकके कितने समुद्-घात कहे हैं ?...तीन समुद्घात...—वेदना समुद्घात, कषाय० और मार-णान्तिक०।...बकुशके पांच समुद्घात...—वेदनासमुद्घात यावत् तैजस्०। इसी प्रकार प्रतिसेवनाकुशीलके भी जानना।...कषायकुशीलके छ समुद्घात.. —वेदना० यावत् आहारक।...निर्ग्रन्थके एक भी समुद्घात नहीं।...स्नातक को एक केवली-समुद्घात हो ॥७८०॥

...पुलाक लोकके संख्यातवें भागमें रहे, असंख्यातवें..., संख्यात भागोंमें..., असंख्यात...या सर्व लोकमें रहे ?...संख्यातवें भाग में न रहे, संख्यात भागोंमें न रहे, असंख्यात भागोंमें न रहे और सारे लोकमें भी न रहे, किन्तु लोकके असंख्यातवें भागमें रहे। इस प्रकार यावत् निर्ग्रन्थ तक जानें।...स्नातक लोकके संख्यातवें भागमें न रहे, संख्यात...न रहे, पर असंख्यातवें भागमें रहे, असंख्यात भागोंमें रहे और संपूर्ण लोकमें भी रहे ॥७८१॥

(प्र० १५४-१५८)...क्या पुलाक लोकके संख्यातवें भाग को स्पर्शे या असंख्यातवें भागको स्पर्शे ?...जैसे अवगाहना कही वैसे स्पर्शना भी जानें। इसी प्रकार यावत्—स्नातक तक समझें ॥७८२॥...पुलाक कौनसे भावमें हो ?...

क्षायोपशमिक भावमें हो। इस प्रकार यावत्—कषायकुशील तक जानें।··· निर्ग्रन्थ औपशमिक भावमें हो अथवा क्षायिक भावमें हो।···स्नातक क्षायिकभाव में हो ॥७८३॥···एक समयमें कितने पुलाक हों?···प्रतिपद्यमान (तत्काल पुलाकपने को प्राप्त होते हुए) पुलाक आश्रयी कदाचित् हो और क० न हो। प्रतिपद्यमान पुलाक हों तो जघन्य एक, दो या तीन हों और उत्कृष्ट शतपृथक्त्व-दो सौ से नौ सौ तक पुलाक हों। तथा पूर्वप्रतिपन्न (पहले पुलाकपनेको प्राप्त) पुलाकोंकी अपेक्षा कदाचित् पुलाक हों व न हों। जो हों तो जघन्य एक, दो या तीन हो, उत्कृष्ट सहस्रपृथक्त्व—दो हजार से नौ हजार तक हों।

(प्र० १५९-१६३)···वकुश प्रतिपद्यमान वकुशोंके आश्रयी कदाचित् हों और क० न हों। यदि हों तो जघन्य एक, दो या तीन हों तथा उत्कृष्ट शत-पृथक्त्व हों। पूर्वप्रतिपन्न वकुश जघन्य व उत्कृष्ट दो करोड़ से नौ करोड़ तक हों।···कषायकुशील प्रतिपद्यमान कदाचित् हों और क० न हों। यदि हों तो जघन्य एक, दो या तीन हों, उत्कृष्ट दो हजार से नौ हजार तक हों। पूर्वप्रतिपन्न कषायकुशील आश्रयी जघन्य व उत्कृष्ट दो करोड़ से नौ करोड़ तक हों।··· निर्ग्रन्थ प्रतिपद्यमान कदाचित् हों और क० न हों। यदि हों तो जघन्य एक, दो और तीन हों, उत्कृष्ट १०८ क्षपक श्रेणी वाले व ५४ उपशम श्रेणी वाले मिलकर १६२ हों। पूर्वप्रतिपन्न निर्ग्रन्थ कदाचित् हों व क० न हों। यदि हों तो जघन्य एक, दो या तीन हों, उत्कृष्ट दो सौ से नौ सौ तक हों।···स्नातक प्रतिपद्यमान कदाचित् हों व कदाचित् न हों। यदि हों तो जघन्य एक, दो या तीन हों उत्कृष्ट आठ सौ हों। पूर्वप्रतिपन्न स्नातक जघन्य व उत्कृष्ट दो करोड़ से नव करोड़ तक हों।··· पुलाकवकुश, प्रतिसेवनाकुशील, कषायकुशील, निर्ग्रन्थ व स्नातक, इन सबमें कौन किनसे यावत्—विशेषाधिक हैं?···निर्ग्रन्थ सबसे थोड़े हैं, उनसे पुलाक संख्यात गुणा हैं, उनसे स्नातक संख्यात···, उनसे वकुश संख्यात···, उनसे प्रतिसेवना-कुशील संख्यात···और उनसे कषायकुशील संख्यात गुणा है। हे भगवन्!···विचरते हैं ॥७८४॥

॥ २५ वें शतक का छठा उद्देशक समाप्त ॥

सप्तम उद्देशक

(प्र० १-५) भगवन् कितने संयत कहे हैं?···पांच संयत···—१ सामायिक संयत, २ छेदोपस्थापनीय०, ३ परिहारविशुद्धिक०, ४ सूक्ष्मसंपराय० और ५ यथाख्यात संयत।···सामायिक संयत कितने प्रकारके···?···दो प्रकारके···–१ इत्व-रिक (अल्पकालिक) २ यावत्कथिक (जीवन पर्यंत)।···छेदोपस्थापनीय कितने प्रकारके···?···दो प्रकारके···–सातिचार व निरतिचार।···परिहारविशुद्धिक संयत

कितने···?···दो···-निर्विशमानक (तप करने वाला) और निर्विष्टकायिक (वैया-वृत्य करने वाला)।···सूक्ष्मसंपराय कितने···?···दो प्रकार के···—संक्लिश्यमानक (उपश्रेणीसे गिरता हुआ) और विशुध्यमानक (उपशमश्रेणी या क्षपक-श्रेणी पर चढ़ता हुआ)।

(प्र० ६)···यथाख्यात संयत कितने···?···दो प्रकार के···--छद्मस्थ व केवली। सामायिक स्वीकार करने के अनन्तर चार (पांच) महाव्रत रूप प्रधान धर्मको मन, वचन, कायासे त्रिविधिसे पाले वह 'सामायिक संयत' कहलाता है। पूर्व पर्यायका छेद करके जो अपनी आत्मा को पांच महाव्रतरूप धर्म में स्थापन करे, वह 'छेदोपस्थापनीय संयत' कहलाता है। जो पांच महाव्रतरूप और उत्तमोत्तम धर्मको मन, वचन, कायासे पालता हुआ अमुक प्रकार का तप करे वह 'परिहार विशुद्धिक संयत'·· है। जो लोभके अणुओंको वेदता हुआ चारित्र मोह को उपशमावे या क्षय करे, वह 'सूक्ष्म संपराय'···और वह यथाख्यात संयतसे कुछ न्यून होता है। मोहनीय कर्म उपशान्त या क्षीण होनेके पश्चात् जो छद्मस्थ हो या जिन हो वह यथाख्यात संयत कहलाता है।···॥७८५॥

(प्र० ७-१०)···सामायिक संयत वेद वाला हो या वेदरहित हो?···वह वेद वाला हो और वेद विरहित भी हो, यदि वेद वाला हो तो उसकी सारी वक्तव्यता कषायकुशीलकी भांति जानें। इस प्रकार छेदोपस्थापनीय० भी समझें। परिहारविशुद्धिक० पुलाकवत्। सूक्ष्मसंपराय० व यथाख्यात निर्ग्रन्थके समान (अवेदक) जानें।···क्या सामायिक संयत राग वाला हो या वीतराग हो?···वह राग वाला हो, पर वीतराग न हो। इसी प्रकार यावत् सूक्ष्मसंपराय० तक जानें। यथाख्यात० निर्ग्रन्थवत्।···क्या सामायिक संयत स्थितकल्प में हो या अस्थित-कल्पमें हो?···स्थित० में भी हो, अस्थित०में भी हो।···छेदोपस्थापनीय स्थित कल्प में हो पर अस्थित कल्प में न हो। इसी प्रकार परिहारविशुद्धिक० भी जानें। शेप सामायिक संयतवत्।

(प्र० ११-१५)···क्या सामायिक संयत जिनकल्प में हो, स्थविर···या कल्पातीत हो?···वह जिनकल्प में हो—इत्यादि शेप सब कषायकुशील की तरह जानें। छेदोपस्थापनीय० व परिहारविशुद्धिक वकुशवत्, शेष सर्व निर्ग्रन्थ के समान समझें॥७८६॥

क्या सामायिक संयत पुलाक हो, वकुश हो यावत् स्नातक हो?···वह पुलाक भी हो यावत् कषायकुशील हो, पर निर्ग्रन्थ या स्नातक न हो। इसी प्रकार छेदो० के सम्बन्ध में भी जानें।···परिहारविशुद्धिक० पुलाक न हो, वकुश, प्रतिसेवनाकुशील, निर्ग्रन्थ व स्नातक न हो, पर कषायकुशील हो। इसी प्रकार सूक्ष्मसंपरायसंयत भी जानना।···यथाख्यात० पुलाक न हो यावत् कषायकुशील

न हो, पर निर्ग्रन्थ अथवा स्नातक हो।...क्या सामायिक सं० प्रतिसेवक—चारित्र-विराधक हो, या अप्रतिसेवक—आराधक हो?...प्रतिसेवक भी हो और अप्रति-सेवक भी।...यदि प्रतिसेवक हो तो क्या अहिंसा मूलगुण का प्रतिसेवक हो या प्रत्याख्यान रूप उत्तरगुण का प्रतिसेवक हो?...शेष सर्व पुलाकवत्। सामायिक० की भांति छेदो० संयत भी जानें।

(प्र० १६-२०)...परिहारविशुद्धिक० प्रतिसेवक नहीं, पर अप्रतिसेवक है। इसी प्रकार यावत् यथाख्यात० तक जानें।...सामायिक संयत को कितने ज्ञान हों? ...उसे दो, तीन या चार ज्ञान हों, इस प्रकार कषायकुशील के सदृश चार ज्ञान भजना से होते हैं। इस प्रकार यावत् सूक्ष्मसंपराय० तक जानें। तथा ज्ञानोद्देशक[1] में कहे अनुसार यथाख्यात० को पांच ज्ञान भजना (विकल्प) से होते हैं।... सामायिक संयत कितना श्रुत पढ़े?...जघन्य आठ प्रवचन माता रूप श्रुत का अध्ययन करे...कषाय कुशीलके समान जानें। इसी प्रकार छेदो० संयत भी।... परिहारविशुद्धिक० जघन्य नौवें पूर्व की तीसरी आचार वस्तु तक, उत्कृष्ट अपूर्ण दस पूर्व पढ़े। सूक्ष्मसंपराय० सामायिक० की तरह जानें।...यथाख्यात० जघन्य आठ प्रवचन माता० उत्कृष्ट १४ पूर्व पढ़े अथवा श्रुतरहित (केवली) हो।

(प्र० २१-२५)...क्या सामायिक संयत तीर्थ में हो या तीर्थके अभावमें हो?...तीर्थमें भी हो और तीर्थके अभाव में भी हो—इत्यादि सारी वक्तव्यता कषायकुशील के समान जानें। छेदो० व परिहारविशुद्धिक पुलाक के समान जानें। शेष सब सामायिकवत्।...क्या सामायिक संयत स्वलिंग—साधुलिंगमें हो, अन्य—तापसादिलिंगमें हो या गृहस्थलिंग में हो?...उसके सम्बन्धमें सब वर्णन पुलाक के समान जानें। इसी प्रकार छेदो० भी।...परिहारविशुद्धिक द्रव्यलिंग भावलिंग आश्रयी स्वलिंगमें हो, पर अन्यलिंग व गृहस्थलिंग में न हो। शेष सर्व सामायिक संयतवत्।...सामायिक संयत के कितने शरीर हों?...तीन, चार या पांच शरीर हों—इत्यादि सब कषायकुशीलके समान जानें। इसी प्रकार छेदो० भी। शेष संयत पुलाकके समान समझें।...सामायिक संयत कर्मभूमिमें हो या अकर्मभूमि में हो?...वह जन्म व सद्भाव दोनों की अपेक्षा कर्मभूमिमें हो, पर अकर्मभूमिमें न हो—इत्यादि सब बकुश की तरह जानें। इसी प्रकार छेदो० भी। परिहारविशुद्धिक पुलाकवत्। शेष सामायिक संयत समान।।७८७।।

(प्र० २६-३०)...क्या सामायिक संयत उत्सर्पिणी कालमें हो, अवसर्पिणी... या नोउत्सर्पिणी—नोअवसर्पिणी काल में हो?...वह उत्सर्पिणी कालमें हो इत्यादि सब बकुशके समान जानें। इसी प्रकार छेदो० भी। पर विशेष—जन्म व सद्भाव की अपेक्षा चारों परिभाग में—सुषमसुषमा, सुषमा, सुषमदुःषमा और

---

1. शतक ८ उ० २।

दु:षमसुषमाके समान कालमें न हो। और संहरणकी अपेक्षा चार में से किसी भी एक परिभाग में हो। शेष पूर्ववत्।···परिहारविशुद्धिक अवसर्पिणी कालमें हो और उत्सर्पिणी काल में हो, पर नोअ० नोउ० काल में न हो। यदि वह अवसर्पिणी या उत्सर्पिणी काल में हो तो उसके सम्बन्ध में पुलाक के समान समझें। सूक्ष्मसंपराय निर्ग्रन्थवत्। इसी प्रकार यथाख्यात० भी ॥७८८॥

···सामायिक संयत कालगत होने पर किस गति में जाय ?···देवगतिमें जावे। देवगति में जाता हुआ सामायिक० क्या भवनवासी देवोंमें उत्पन्न हो, वाणव्यन्तरों···, ज्योतिषिकों···या वैमानिकोंमें उत्पन्न हो ?···भवनवासीमें न उत्पन्न हो—इत्यादि सारी वक्तव्यता कषायकुशीलके समान जानें। इसी प्रकार छेदो० भी। परिहारविशुद्धिक पुलाकवत् व सूक्ष्मसंपराय निर्ग्रन्थवत् जानें। ···यथाख्यात० पूर्ववत् यावत् अजघन्योत्कृष्ट अनुत्तर विमानमें उत्पन्न हो और कोई तो सिद्ध हो—यावत्—सर्व दु:खका अन्त करने वाला हो।···सामायिक संयत देवलोकोंमें उत्पन्न होता हुआ क्या इन्द्रपने उपजे—इत्यादि पृच्छा।···संयम की अविराधनाकी अपेक्षा···इत्यादि सब कषायकुशीलके समान जानें। छेदो० भी इसी प्रकार। परिहारविशुद्धिक पुलाकवत्, शेष निर्ग्रन्थ के समान जानें।

(प्र० ३१-३५)···देवलोकमें उत्पन्न होने वाले सामायिक संयतकी कितनी स्थिति कही है ?···जघन्य दो पल्योपमकी व उत्कृष्ट ३३ सागरोपमकी। इसी प्रकार छेदो० की भी।·····परिहारविशुद्धिककी जघन्य दो पल्योपमकी उत्कृष्ट १८ सागरोपम की। शेष सभी संयतों के सम्बन्ध में निर्ग्रन्थ के समान जानें ॥७८९॥

···सामायिक संयतके कितने संयमस्थान कहे हैं ?···असंख्य संयमस्थान कहे हैं। इस प्रकार यावत् परिहारविशुद्धिक तक जानें।······सूक्ष्मसंपराय संयत के असंख्य संयमस्थान हैं व स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है।······यथाख्यात का अजघन्योत्कृष्ट एक संयमस्थान कहा है।

(प्र० ३६-४०)······सामायिक संयत, छेदो०, परिहार०, सूक्ष्मसंपराय० और यथाख्यात संयत इनके संयमस्थानों में किनके संयमस्थान किनसे यावत् विशेषाधिक हैं ?···यथाख्यात० का अजघन्य अनुत्कृष्ट एक संयमस्थान होने से सबसे अल्प है, उससे सूक्ष्मसंपराय० के अन्तर्मुहूर्त तक रहने वाले संयमस्थान असंख्यगुणा हैं, उनसे परिहार० के संयम० असंख्य···, उनसे सामायिक० व छेदो० के संयमस्थान असंख्यगुणा हैं व परस्पर तुल्य हैं ॥७९०॥

···सामायिक संयतके कितने चारित्रपर्यव कहे हैं ?···अनन्त चारित्रपर्यव कहे हैं। इसी प्रकार यावत् यथाख्यात० तक जानें।···सामायिक संयत दूसरे सामायिक संयतके सजातीय चारित्रपर्याय की अपेक्षा क्या हीन हो, तुल्य हो या अधिक हो ?···कदाचित् हीन हो, तुल्य हो और हो अधिक और उसमें—हीनाधिक-

पने में छः स्थानपतित हो।···एक सामायिक संयत छेदो० के विजातीय चारित्र-पर्यायके सम्बंध की अपेक्षा कदाचित् हीन हो···इत्यादि छः स्थानपतित हो। इसी प्रकार परिहारविशुद्धिकके सम्वन्धमें भी समझें।···सामायिक संयत सूक्ष्मसंपराय संयतके विजातीय चारित्रपर्यायकी अपेक्षा हीन हो, तुल्य न हो, अधिक भी न हो। उसमें भी अनंत गुण हीन है। इसी प्रकार यथाख्यात० के सम्वन्धमें भी जानें। इसी प्रकार छेदो० भी नीचेके तीन चारित्र की अपेक्षा छः स्थानपतित है और ऊपरके दो चारित्रसे उसी प्रकार अनन्त गुण हीन है। जैसे छेदो० के विषयमें कहा उसी प्रकार परिहार० के सम्वन्ध में भी जानें।···

(प्र० ४१-४३)···सूक्ष्मसंपरायसंयत सामायिक संयतके विजातीय पर्यायों की अपेक्षा हीन नहीं, समान नहीं, पर अधिक है और वह अनंत गुण अधिक है। इसी प्रकार छेदो० व परिहार० के साथ जानें। अपने सजातीय पर्याय की अपेक्षा कदाचित् हीन हो, क० तुल्य हो व क० अधिक हो। जो हीन हो तो अनंत गुण हीन हो,जो अधिक हो तो अनंत गुण अधिक हो।···सूक्ष्मसंपराय० यथाख्यात० के विजातीय चारित्रपर्यायोंकी अपेक्षा हीन हैं, समान नहीं व तुल्य भी नहीं, न अधिक हैं। और वे अनंत गुण हीन हैं। यथाख्यात संयत नीचेके चारोंकी अपेक्षा हीन नहीं, तुल्य नहीं, पर अधिक हैं और वे अनंत गुण अधिक हैं। अपने स्थानमें हीन व अधिक नहीं पर समान हैं।···सामायिक संयत, छेदो०, परिहार०, सूक्ष्म० और यथाख्यात संयत, इनके जघन्य व उत्कृष्ट चारित्रपर्यवोंमें कौन किनसे यावत् विशेषाधिक हैं?···सामायिक० और छेदो०—इन दोनोंके जघन्य चारित्रपर्यव परस्पर समान और सबसे थोड़े हैं, उनसे परिहार० के जघन्य चारित्रपर्यव अनंतगुणा हैं, उनसे उनके ही उत्कृष्ट···अनंत···, उनसे सामायिक० व छेदो० के उत्कृष्ट···अनंत···व परस्पर समान हैं, उनसे सूक्ष्म० के जघन्य चा०···अनंत···, और उनसे उनके ही उत्कृष्ट···अनंत···, और उनसे यथाख्यात संयतके अजघन्य व अनुत्कृष्ट चारित्रपर्यव अनन्तगुणा हैं।

(प्र० ४४-४८)···क्या सामायिक संयत सयोगी हो या अयोगी हो?··· सयोगी हो इत्यादि सब पुलाकके समान जानें। इस प्रकार यावत् सूक्ष्मसंपराय संयतके सम्वन्धमें समझें। यथाख्यात० स्नातक के समान जानें।···क्या सामायिक संयत साकार-ज्ञान उपयोग वाला हो या अनाकार-दर्शन उपयोग वाला हो? ···साकार उपयोग वाला हो···इत्यादि सर्व पुलाकवत्। इसी प्रकार यावत् यथाख्यात० के सम्वन्धमें समझें। विशेष—सूक्ष्मसंपराय० साकार उपयोग वाला हो, पर अनाकार उपयोग वाला न हो।···क्या सामायिक संयत कषाय वाला हो या कषायरहित हो?···वह कषाय वाला हो, पर कषायरहित न हो···इत्यादि कषायकुशील के समान जानें। इसी प्रकार छेदो० भी जानें। परिहारविशुद्धिक०

पुलाकवत्।···सूक्ष्मसंपराय० कषाय वाला हो, पर कषायरहित न हो।···उसे मात्र एक संज्वलन लोभ हो। यथाख्यात० के सम्बन्धमें निर्ग्रन्थके समान जानें।

(प्र० ४६-५४)···क्या सामायिक संयत लेश्यासहित हो या लेश्यारहित हो?···वह लेश्यासहित हो इत्यादि सब कषायकुशीलके समान जानें। छेदो० भी इसी प्रकार। परिहारविशुद्धिक पुलाकवत्। सूक्ष्मसंपराय० निर्ग्रन्थके समान जानें। यथाख्यात० स्नातकवत्। परन्तु यदि लेश्यासहित हो तो एक शुक्ललेश्या वाला हो ॥७६१॥···क्या सामायिक संयत चढ़ते परिणाम वाला हो, हीयमान—घटते···या स्थिर परिणाम वाला हो?···वह चढ़ते···इत्यादि पुलाकवत्। इसी प्रकार यावत् परिहारविशुद्धिक संयत तक समझें।···सूक्ष्मसंपराय चढ़ते परिणाम वाला हो, घटते···हो, पर स्थिर परिणाम वाला न हो। यथाख्यात० निर्ग्रन्थके समान जानें।···सामायिक संयत कितने काल तक चढ़ते परिणाम वाला हो?···जघन्य एक समय तक चढ़ते···हो—इत्यादि सब पुलाकके समान जानें तथा इसी प्रकार यावत् परिहारविशुद्धिक के सम्बन्धमें भी समझें।···सूक्ष्मसंपराय० जघन्य एक समय तक उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त तक चढ़ते परिणाम वाला हो। घटते परिणाम···पूर्ववत्।···यथाख्यात० जघन्य व उत्कष्ट अन्तर्मुहूर्त तक चढ़ते परिणाम वाला हो।···जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अंशतः न्यून पूर्वकोटी तक स्थिर परिणाम वाला हो ॥७६२॥

(प्र० ५५-६१)···सामायिक० कितनी कर्मप्रकृतियोंको बांधे?···वह सात या आठ कर्मप्रकृतियों को बांधे—इत्यादि सब बकुशके समान जानें। इस प्रकार यावत् परिहारविशुद्धिक संयत तक समझें।···सूक्ष्मसंपराय आयुष्य व मोहनीय सिवाय छ कर्मप्रकृतियों को बांधे। यथाख्यात० के सम्बन्धमें स्नातकके समान जानें।······सामायिकसंयत कितनी कर्मप्रकृतियोंको वेदे—अनुभवे?···वह अवश्य आठ कर्मप्रकृतियोंको वेदे। इसी प्रकार यावत्-सूक्ष्मसंपराय तक जानें।···यथाख्यात० सात या चार कर्मप्रकृतियोंको वेदे। जब सात वेदे तो मोहनीय को छोड़ कर बाकी सात कर्म वेदे। जब चार वेदे तो वेदनीय, आयुष्य, नाम व गोत्र इन चार कर्मप्रकृतियोंको वेदे। ··सामायिक संयत कितनी कर्मप्रकृतियों को उदीरे?···वह सात कर्मप्रकृतियों को उदीरे—इत्यादि। सब बकुशके समान जानें। यावत्-परिहारविशुद्धिक इसी प्रकार जानें।···सूक्ष्मसंपराय छ अथवा पांच कर्मप्रकृतियोंकी उदीरणा करे। छ उदीरे तो आयुष्य व वेदनीय को छोड़कर बाकी छ कर्मों की उदीरणा करे। यदि पांच उदीरे तो आयुष्य, वेदनीय व मोहनीय छोड़कर बाकी पांच···।···यथाख्यात संयत पांच अथवा दो कर्म प्रकृतियोंको उदीरे अथवा किसी भी प्रकार के कर्म की उदीरणा न करे। यदि पांच उदीरे तो आयु०, वे० और मोहनीय को

छोड़कर बाकी पांच—इत्यादि सब निर्ग्रन्थके समान जानें ॥७६३॥

(प्र० ६२-६७)···सामायिक संयत सामायिक संयतपनेको छोड़ता हुआ क्या छोड़े, क्या प्राप्त करे ?···सामायिक०पनेका त्याग करे और छेदो०, सूक्ष्मसंपराय०, असंयम या संयमासंयम-देशविरतिपना प्राप्त करे।···छेदो० छेदो० पने का त्याग करे व सामायिकसंयतपना, परिहार०, सूक्ष्मसंपराय०, असंयम या देशविरतिपना प्राप्त करे।···परिहारविशुद्धिक परिहार० का त्याग करे और छेदो० पना या असंयम प्राप्त करे।···सूक्ष्मसंपराय० सूक्ष्म० का त्याग करे और सामायिक०, छेदो० पना, यथाख्यात० या असंयम प्राप्त करे।···यथाख्यात० यथाख्यात० पने का त्याग करे व सूक्ष्मसंपराय संयम, असंयम या सिद्धिगति को प्राप्त करे ॥७६४॥···क्या सामायिक-संयत संज्ञोपयुक्त-आहारादि में आसक्त हो या नोसंज्ञोपयुक्त हो ?···वह संज्ञोपयुक्त हो इत्यादि बकुशवत्। इसी प्रकार यावत् परिहारविशुद्धिक संयत तक जानें। सूक्ष्मसम्पराय व यथाख्यात पुलाक के समान जानना।

(प्र० ६८-७५)···क्या सामायिकसंयत आहारक हो या अनाहारक हो ?··· पुलाकवत् यावत् सूक्ष्मसंपराय तक समझें। यथाख्यात० स्नातक के समान जानें।···सामायिकसंयत कितने भवग्रहण करे ?···जघन्य एक भव, उत्कृष्ट आठ भवग्रहण करे। इसी प्रकार छेदो० भी।···परिहारविशुद्धिक जघन्य एक भव उत्कृष्ट तीन भवग्रहण करे। इसी प्रकार यावत् यथाख्यात० तक जानें ॥७६५॥

···सामायिक संयतके एक भवग्रहण किए जा सकें ऐसे कितने आकर्ष कहे हैं अर्थात् एक भवमें कितनी बार सामायिक संयम प्राप्त हो ?···जघन्य (एक व उत्कृष्ट शतपृथक्त्व हो) इत्यादि सब बकुशके समान जानें।···छेदो० के जघन्य एक, उत्कृष्ट बीस पृथक्त्व आकर्ष कहे हैं।···परिहार० के जघन्य एक उत्कृष्ट तीन आकर्ष कहे हैं।···सूक्ष्मसंपराय के जघन्य एक उत्कृष्ट चार···।···यथाख्यात के जघन्य एक, उत्कृष्ट दो··· ।

(प्र० ७६-८०)···सामायिक संयत के अनेक भवमें ग्रहण किए जा सकें वैसे कितने आकर्ष कहे हैं ?···इत्यादि बकुशवत्।···छेदो० के जघन्य दो उत्कृष्ट नौ सौ से ऊपर तथा हजार के अन्दर आकर्ष कहे हैं। परिहारविशुद्धिक के जघन्य दो उत्कृष्ट सात, सूक्ष्मसंपराय के जघन्य दो उत्कृष्ट नौ तथा यथाख्यातके जघन्य दो उत्कृष्ट पांच आकर्ष कहे हैं ॥७६६॥

···सामायिक संयत काल से कहां तक हो ?···जघन्य एक समय व उत्कृष्ट कुछ कम-नौ बरस न्यून पूर्वकोटि वर्ष तक हो। इसी प्रकार छेदो० भी। परिहार० जघन्य एक समय उत्कृष्ट कुछ कम—२९ वर्ष कम पूर्वकोटि वर्ष तक हो। सूक्ष्म संपरायके सम्बन्धमें निर्ग्रन्थ के समान जानें। यथाख्यात सामायिक संयतवत्।

…सामायिक संयत काल से कहां तक हों?…सर्व काल हों।…छेदो० जघन्य २५० वर्ष उत्कृष्ट ५० लाख करोड़ सागरोपम तक हों।

(प्र० ८१-८५)…परिहारविशुद्धिक० जघन्य कुछ कम दो सौ वर्ष तक, उत्कृष्ट कुछ कम दो पूर्वकोटि वर्ष तक हों।…सूक्ष्मसंपराय जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त तक हों। यथाख्यात सामायिक० वत्।…सामायिक संयत का कितने काल का अंतर हो?…जघन्य (एक समय) इत्यादि सब पुलाकके समान जानें। इसी प्रकार यावत् यथाख्यात संयत तक समझें।…सामायिक संयतों का कितने काल का अंतर हो?…उनका अन्तर नहीं।…छेदो० का जघन्य ६३ हजार वर्ष उत्कृष्ट १८ कोडाकोडि सागरोपमका अंतर होता है।

(प्र० ८६-९१) परिहार० का जघन्य ८४ हजार वर्ष, उत्कृष्ट १८ कोडाकोडि सागरोपम……। सूक्ष्मसंपराय निर्ग्रन्थों के समान। यथाख्यात सामायिक० के समान समझना।……सामायिक संयत के कितने समुद्‌घात कहे हैं?…छः समुद्‌घात…कषायकुशीलके समान जानें। इसी प्रकार छेदो० भी। परिहार० पुलाकके समान। सूक्ष्म० निर्ग्रन्थवत्। यथाख्यात स्नातकवत्।…क्या सामायिक० लोकके संख्यातवें भाग में हो या असंख्यातवें भागमें हो?…लोक के संख्यातवें भागमें न हो। इत्यादि पुलाकवत्। इसी प्रकार यावत् सूक्ष्मसंपराय तक जानें। स्नातकके समान यथाख्यात संयतके विषयमें समझें।…क्या सामायिक० लोक के संख्यातवें भाग को स्पर्शे?…जितने भागमें हो उतने भागका स्पर्श करे। अर्थात् जितने क्षेत्रकी अवगाहना कही उतने क्षेत्रकी स्पर्शना जानें।…सामायिक संयत किस भाव में हो?…क्षायोपशमिक भाव में हो। इस प्रकार यावत् सूक्ष्मसंपराय तक जानें।…यथाख्यात० औपशमिक या क्षायिक भाव में हो।

(प्र० ९२-९५)…सामायिक संयत एक समयमें कितने हों?…प्रतिपद्यमान सामायिक संयतों की अपेक्षा…इत्यादि सब कषायकुशीलके समान जानना।… छेदो० प्रतिपद्यमान आश्रयी कदाचित् हों और कदाचित् न हों। यदि हों तो जघन्य एक, दो या तीन, उत्कृष्ट दो सौ से नौ सौ तक हों। पूर्वप्रतिपन्न आश्रयी कदाचित् हों और क० न हों। जो हों तो जघन्य व उत्कृष्ट दो सौ से नौ सौ करोड़ तक हों। परिहारविशुद्धिक पुलाकों के समान व सूक्ष्मसंपराय निर्ग्रन्थोके समान जानें। …यथाख्यात प्रतिपद्यमान की अपेक्षा कदाचित् हों और कदाचित् न हों। यदि हों तो जघन्य एक, दो या तीन तथा उत्कृष्ट एक सौ बासठ हों। उनमें एक सौ आठ क्षपक और ५४ उपशमक हों। पूर्वप्रतिपन्नाश्रयी जघन्य व उत्कृष्ट दो क्रोडसे नौ करोड़ तक हों।…इन पूर्वोक्त सामायिक संयत, छेदो०, परिहार०, सूक्ष्म० और यथाख्यात० में कौन किनसे यावत् विशेषाधिक हैं?…सूक्ष्म० सबसे थोड़े हैं, उनसे

परिहार० संख्यात गुणा हैं, उनसे यथाख्यात० संख्यात···, उनसे छेदो० संख्यात···, उनसे सामायिक संयत संख्यातगुणा हैं ॥७९७॥

(प्र० ९९-१००) १ प्रतिसेवना, २ आलोचना के दोष, ३ दोषों की आलोचना, ४ आलोचना देने योग्य गुरु, ५ सामाचारी, ६ प्रायश्चित और ७ तप--इन सात विषयोंके संवन्धमें कहा जायगा।···प्रतिसेवना कितने प्रकार की कही है ?···दस प्रकार की···-१ दर्प प्रतिसेवना, २ प्रमाद०, ३ अनाभोग०, ४ आतुर०, ५ आपदा०, ६ संकीर्णता०, ७ सहसाकार०, ८ भय०, ९ प्रद्वेष० और १० विमर्श०। आलोचना के दस दोष कहे हैं···—१ प्रसन्न हुए गुरु थोड़ा प्रायश्चित देंगे इसलिए उन्हें सेवादि से प्रसन्न करके उनके पास दोष की आलोचना करना। २ विल्कुल छोटा अपराध वतानेसे आचार्य थोड़ा प्रायश्चित देंगे ऐसा अनुमान करके अपने अपराध का स्वतः आलोचन करना। ३ जो अपराध आचार्यादिकने देखा हो उसकी ही आलोचना करना। ४ मात्र वड़े अतिचारों की ही आलोचना करना। ५ जो सूक्ष्म अतिचारों का आलोचना करता है वह स्थूल अतिचारों का आलोचन क्यों न करेगा। इस प्रकार आचार्य को विश्वास उत्पन्न करने के लिए सूक्ष्म अतिचारों का ही आलोचन करना। ६ वड़ी शर्म आने के कारण कोई न सुने इस प्रकार आलोचन करना। ७ दूसरेको सुनाने के लिए खूव जोरसे वोलकर आलोचना करना। ८ एक ही अतिचार की वहुतसे गुरुओं के पास आलोचना करना। ९ अगीतार्थ के पास आलोचना करना और १० जिस दोषका आलोचन करना है, उस दोषको सेवन करने वाले आचार्यके पास उसकी आलोचना करनी। दस गुणोंसे युक्त अनगार अपने दोष की आलोचना करने योग्य है—१ उत्तम जाति वाला, २ उत्तम कुल वाला, ३ विनयवान्, ४ ज्ञानवान्, ५ दर्शनसंपन्न, ६ चारित्रसंपन्न, ७ क्षमा वाला, ८ इन्द्रियोंको वशमें रखने वाला, ९ अमायी और १० अपश्चात्तापी। आठ गुणोंसे युक्त साधु आलोचना देने योग्य है—१ आचारवान्, २ आधारवान्, ३ व्यवहारवान्, ४ अपव्रीडक, ५ प्रकुर्वक, ६ अपरिस्रावी, ७ निर्यापक, ८ अपायदर्शी ॥७९८॥

(प्र० १०१-१०५) सामाचारी दस प्रकारकी कही है-१ इच्छाकार, २ मिथ्याकार, ३ तथाकार, ४ आवश्यकी, ५ नैषेधिकी, ६ आपृच्छना, ७ प्रतिपृच्छना, ८ छंदना, ९ निमंत्रणा और १० उपसंपदा। इस प्रकार समयाचरण योग्य दस प्रकार की सामाचारी है ॥७९९॥ प्रायश्चित दस प्रकार का कहा है—१ आलोचना के योग्य, २ प्रतिक्रमण···, ३ आलोचना और प्रतिक्रमण दोनों के योग्य, ४ विवेकयोग्य ५ कायोत्सर्गयोग्य, ६ तपके योग्य, ७ दीक्षापर्यायके छेदके योग्य, ८ फिरसे महाव्रत लेने योग्य, ९ तप करके फिर महाव्रत लेने योग्य, १० पारांचिक ॥८००॥ तप दो प्रकार का है—वाह्य व अभ्यन्तर। वाह्य तप कितने प्रकार का है ?···छ

प्रकार···—१ अनशन, २ ऊनोदरी, ३ भिक्षाचर्या, ४ रसपरित्याग, ५ कायक्लेश, ६ प्रतिसंलीनता।···अनशन कितने प्रकारका है?···अनशन दो प्रकार···—इत्वरिक और यावत्कथिक।

(प्र० १०६-११०)···इत्वरिक अनशन अनेक प्रकारका कहा है···—चतुर्थ भक्त, षष्ठ०, अष्टम०, दशम०, द्वादश०, चतुर्दश०, अर्धमासिक०, मासिक०, द्विमासिक०, त्रिमासिक०, यावत् षट्मासिक भक्त--छ महीने का उपवास। इस प्रकार इत्वरिक अनशन कहा।···यावत्कथिक अनशन दो प्रकार का है--पादपोपगमन व भक्तप्रत्याख्यान।···पादपोपगमन दो प्रकार का···—निर्हारिम व अनिर्हारिम। उसमें अनिर्हारिम अनशन अवश्य सेवादि प्रतिकर्म रहित है। इस प्रकार पादपोपगमन अनशनके सम्वन्धमें कहा।···भक्तप्रत्याख्यान दो प्रकार का···—निर्हारिम व अनिर्हारिम। वे दोनों अवश्य सेवादि प्रतिकर्म वाले हैं। इस प्रकार भक्तप्रत्याख्यान कहा, यावत्कथिक अनशन कहा, और इस रीतिसे अनशन भी कहा। ऊनोदरिका कितने प्रकार की कही गई है?···ऊनोदरिका दो प्रकार की···--द्रव्यऊनोदरिका और भाव०।

(प्र० १११-११५)···द्रव्यऊनोदरिका दो प्रकार की···--उपकरणद्रव्यऊनोदरिका व भक्तपान०।···उपकरणद्रव्यऊनोदरिका तीन प्रकार की···—एक वस्त्र, एक पात्र, संयतोंके त्यागे हुए वस्त्र पात्र सिवाय के उपकरणोंका उपभोग करना। ···। भक्तपानद्रव्यऊनोदरिका कितने प्रकारकी है? आठ कवल आहार ले वह अल्पाहारी कहलाता है···इत्यादि सब सातवें शतकके प्रथम उद्देशकमें कहे अनुसार यावत् 'वह प्रकामरसभोजी नहीं कहलाता' यहां तक कहें। इस प्रकार भक्त० व द्रव्यऊनोदरिका कही।···भावऊनोदरिका अनेक प्रकार की है···—क्रोध घटाना, यावत् लोभ घटाना, थोड़ा बोलना, धीरे बोलना, क्रोध में निरर्थक वहुप्रलाप न करना। हृदयस्थ कोप कम करना। इस प्रकार भाव०···ऊनोदरिकाके सम्वन्धमें भी कहा। भिक्षाचर्या कितने प्रकार की कही गई है?···भिक्षाचर्या अनेक प्रकार की है···—द्रव्याभिग्रहचर, क्षेत्राभिग्रहचर···इत्यादि जैसे औपपातिक सूत्रमें कहा वैसे जानें यावत् शुद्ध निर्दोष भिक्षा करनी, दत्तिकी संख्या करनी।···

(प्र० ११६-१२०)···रसपरित्याग कितने प्रकार का कहा गया है?···रसपरित्याग अनेक प्रकार का है···—घृतादि विकृतिका त्याग करना, स्निग्ध रस वाला भोजन न करना—इत्यादि जैसे औपपातिक सूत्र में कहा है, वैसे जानें यावत् रूक्ष आहार करना। यह रसपरित्याग है।···कायक्लेश कितने प्रकार का कहा गया है?···अनेक प्रकार का० है···—कायोत्सर्गादि आसन से रहना, उत्कटासनसे रहना इत्यादि औपपातिकवत् यावत् शरीरके सब प्रकारके संस्कार व शोभा का त्याग करना।···कायक्लेश···।···प्रतिसंलीनता कितने प्रकार

परिहार० संख्यात गुणा हैं, उनसे यथाख्यात० संख्यात···, उनसे छेदो० संख्यात···, उनसे सामायिक संयत संख्यातगुणा हैं ॥७६७॥

(प्र० ६६-१००) १ प्रतिसेवना, २ आलोचना के दोष, ३ दोषों की आलोचना, ४ आलोचना देने योग्य गुरु, ५ सामाचारी, ६ प्रायश्चित और ७ तप--इन सात विषयोंके संबन्धमें कहा जायगा।···प्रतिसेवना कितने प्रकार की कही है ?···दस प्रकार की···–१ दर्प प्रतिसेवना, २ प्रमाद०, ३ अनाभोग०, ४ आतुर०, ५ आपदा०, ६ संकीर्णता०, ७ सहसाकार०, ८ भय०, ६ प्रद्वेष० और १० विमर्श०। आलोचना के दस दोष कहे हैं···—१ प्रसन्न हुए गुरु थोड़ा प्रायश्चित देंगे इसलिए उन्हें सेवादि से प्रसन्न करके उनके पास दोष की आलोचना करना। २ बिल्कुल छोटा अपराध बतानेसे आचार्य थोड़ा प्रायश्चित देंगे ऐसा अनुमान करके अपने अपराध का स्वतः आलोचन करना। ३ जो अपराध आचार्यादिकने देखा हो उसकी ही आलोचना करना। ४ मात्र बड़े अतिचारों की ही आलोचना करना। ५ जो सूक्ष्म अतिचारों का आलोचना करता है वह स्थूल अतिचारों का आलोचन क्यों न करेगा। इस प्रकार आचार्य को विश्वास उत्पन्न करने के लिए सूक्ष्म अतिचारों का ही आलोचन करना। ६ बड़ी शर्म आने के कारण कोई न सुने इस प्रकार आलोचन करना। ७ दूसरेको सुनाने के लिए खूब जोरसे बोलकर आलोचना करना। ८ एक ही अतिचार की बहुतसे गुरुओं के पास आलोचना करना। ६ अगीतार्थ के पास आलोचना करना और १० जिस दोषका आलोचन करना है, उस दोषको सेवन करने वाले आचार्यके पास उसकी आलोचना करनी। दस गुणोंसे युक्त अनगार अपने दोष की आलोचना करने योग्य है—१ उत्तम जाति वाला, २ उत्तम कुल वाला, ३ विनयवान्, ४ ज्ञानवान्, ५ दर्शनसंपन्न, ६ चारित्रसंपन्न, ७ क्षमा वाला, ८ इन्द्रियोंको वशमें रखने वाला, ६ अमायी और १० अपश्चात्तापी। आठ गुणोंसे युक्त साधु आलोचना देने योग्य है—१ आचारवान्, २ आधारवान्, ३ व्यवहारवान्, ४ अपव्रीडक, ५ प्रकुर्वक, ६ अपरिस्रावी, ७ निर्यापक, ८ अपायदर्शी ॥७६८॥

(प्र० १०१-१०५) सामाचारी दस प्रकारकी कही है–१ इच्छाकार, २ मिथ्याकार, ३ तथाकार, ४ आवश्यकी, ५ नैषेधिकी, ६ आपृच्छना, ७ प्रतिपृच्छना, ८ छंदना, ६ निमंत्रणा और १० उपसंपदा। इस प्रकार समयाचरण योग्य दस प्रकार की सामाचारी है ॥७६६॥ प्रायश्चित दस प्रकार का कहा है—१ आलोचना के योग्य, २ प्रतिक्रमण···, ३ आलोचना और प्रतिक्रमण दोनों के योग्य, ४ विवेकयोग्य ५ कायोत्सर्गयोग्य, ६ तपके योग्य, ७ दीक्षापर्यायके छेदके योग्य, ८ फिरसे महाव्रत लेने योग्य, ६ तप करके फिर महाव्रत लेने योग्य, १० पारांचिक ॥८००॥ तप दो प्रकार का है—बाह्य व अभ्यन्तर। बाह्य तप कितने प्रकार का है ?···छ

प्रकार···—१ अनशन, २ ऊनोदरी, ३ भिक्षाचर्या, ४ रसपरित्याग, ५ कायक्लेश, ६ प्रतिसंलीनता।···अनशन कितने प्रकारका है?···अनशन दो प्रकार···—इत्वरिक और यावत्कथिक।

(प्र० १०६-११०)···इत्वरिक अनशन अनेक प्रकारका कहा है···—चतुर्थ भक्त, षष्ठ०, अष्टम०, दशम०, द्वादश०, चतुर्दश०, अर्धमासिक०, मासिक०, द्विमासिक०, त्रिमासिक०, यावत् षट्मासिक भक्त--छ महीने का उपवास। इस प्रकार इत्वरिक अनशन कहा।···यावत्कथिक अनशन दो प्रकार का है--पादपोपगमन व भक्तप्रत्याख्यान।···पादपोपगमन दो प्रकार का···—निर्हारिम व अनिर्हारिम। उसमें अनिर्हारिम अनशन अवश्य सेवादि प्रतिकर्म रहित है। इस प्रकार पादपोपगमन अनशनके सम्बन्धमें कहा।···भक्तप्रत्याख्यान दो प्रकार का···—निर्हारिम व अनिर्हारिम। वे दोनों अवश्य सेवादि प्रतिकर्म वाले हैं। इस प्रकार भक्तप्रत्याख्यान कहा, यावत्कथिक अनशन कहा, और इस रीतिसे अनशन भी कहा। ऊनोदरिका कितने प्रकार की कही गई है?···ऊनोदरिका दो प्रकार की···--द्रव्यऊनोदरिका और भाव०।

(प्र० १११-११५)···द्रव्यऊनोदरिका दो प्रकार की···--उपकरणद्रव्यऊनोदरिका व भक्तपान०।···उपकरणद्रव्यऊनोदरिका तीन प्रकार की···—एक वस्त्र, एक पात्र, संयतोंके त्यागे हुए वस्त्र पात्र सिवाय के उपकरणोंका उपभोग करना।···। भक्तपानद्रव्यऊनोदरिका कितने प्रकारकी है? आठ कवल आहार ले वह अल्पाहारी कहलाता है···इत्यादि सब सातवें शतकके प्रथम उद्देशकमें कहे अनुसार यावत् 'वह प्रकामरसभोजी नहीं कहलाता' यहां तक कहें। इस प्रकार भक्त० व द्रव्यऊनोदरिका कही।···भावऊनोदरिका अनेक प्रकार की है···—क्रोध घटाना, यावत् लोभ घटाना, थोड़ा बोलना, धीरे बोलना, क्रोध में निरर्थक बहुप्रलाप न करना। हृदयस्थ कोप कम करना। इस प्रकार भाव०···ऊनोदरिकाके सम्बन्धमें भी कहा। भिक्षाचर्या कितने प्रकार की कही गई है?···भिक्षाचर्या अनेक प्रकार की है···—द्रव्याभिग्रहचर, क्षेत्राभिग्रहचर···इत्यादि जैसे औपपातिक सूत्रमें कहा वैसे जानें यावत् शुद्ध निर्दोष भिक्षा करनी, दत्तिकी संख्या करनी।···

(प्र० ११६-१२०)···रसपरित्याग कितने प्रकार का कहा गया है?···रसपरित्याग अनेक प्रकार का है···–घृतादि विकृतिका त्याग करना, स्निग्ध रस वाला भोजन न करना—इत्यादि जैसे औपपातिक सूत्र में कहा है, वैसे जानें यावत् रूक्ष आहार करना। यह रसपरित्याग है।···कायक्लेश कितने प्रकार का कहा गया है?···अनेक प्रकार का० है···–कायोत्सर्गादि आसन से रहना, उत्कटासनसे रहना इत्यादि औपपातिकवत् यावत् शरीरके सब प्रकारके संस्कार व शोभा का त्याग करना।···कायक्लेश···।···प्रतिसंलीनता कितने प्रकार

की…है ?…चार प्रकार की…—१ इन्द्रियप्रतिसंलीनता, २ कषाय०, ३ योग० और विविक्तशयनासनसेवन।…इन्द्रियप्रतिसंलीनता पांच प्रकार की…—१ श्रोत्रेन्द्रियके विषय प्रचार को रोकना या श्रोत्रेन्द्रिय द्वारा प्राप्त हुए विषय में रागद्वेष का निरोध करना, २ चक्षुइन्द्रिय…इस प्रकार यावत्—स्पर्शनेन्द्रियके द्वारा अनुभवित पदार्थों के विषयमें रागद्वेष का निग्रह करना।…इन्द्रियप्रतिसंलीनता…।…कषायप्रतिसंलीनता चार प्रकार की…—क्रोध के उदय का निरोध करना, अथवा उदयप्राप्त क्रोध को निष्फल करना। इस प्रकार यावत् लोभके उदयका निरोध करना व उदयप्राप्त लोभको निष्फल करना। इस प्रकार कषाय-प्रतिसंलीनता कही।

(प्र० १२१-१२७)…योगसंलीनता तीन प्रकार की…—१ अकुशल मन का निरोध करना २ कुशल मन की प्रवृत्ति करना और ३ मन को एकाग्र-स्थिर करना। १ अकुशल वचन का निरोध करना, २ कुशल वचन बोलना और ३ वचन को स्थिर करना।…कायसंलीनता—अच्छी तरह समाधिपूर्वक प्रशांत होकर हाथ पैर संकोच कर कछुए के समान गुप्तेन्द्रिय होकर आलीन व प्रलीन—स्थिर रहना कायसंलीनता कहलाती है…।…विविक्तशयनासनसेवना कितने प्रकार की है ?…जो आरामोंमें, उद्यानोंमें सोमिल उद्देशक (श० १८ उ० १०) में कहे अनुसार यावत् शय्या संस्तारक लेकर विचरे वह विविक्तशयनासनसेवना है।… विविक्तशयनासनसेवना…प्रतिसंलीनता…बाह्यतप भी कहा गया।…अभ्यंतर तप कितने प्रकार का है ?…छः प्रकारका…—१ प्रायश्चित, २ विनय, ३ वैयावृत्य, ४ स्वाध्याय, ५ ध्यान और ६ व्युत्सर्ग।…प्रायश्चित कितने प्रकार का है ?…दस प्रकार का…—१ आलोचनाके योग्य यावत् १० पारांचितक योग्य। इस प्रकार प्रायश्चित कहा।…विनय कितने प्रकार का कहा गया है ?…सात प्रकार का…–१ ज्ञान विनय, २ दर्शन०, ३ चारित्र०, ४ मनरूप विनय, ५ वचन०, ६ काय० और ७ लोकोपचार विनय।…ज्ञान विनय पांच प्रकार का… —मति-ज्ञानी का विनय यावत् केवलज्ञानी का विनय…।

(प्र० १२८-१३०)…दर्शन विनय दो प्रकार का…—शुश्रूषाविनय व अनाशातनारूप विनय।…शुश्रूषाविनय अनेक प्रकार का है…—सत्कार करना सन्मान करना आदि १४ वें शतकके तीसरे उद्देशकमें कहे अनुसार यावत् प्रति-संसाधनता तक जानें।…अनाशातना विनय ४५ प्रकारका…—१ अरिहंतों की अनाशातना, २ अरिहंत प्ररूपित धर्मकी अनाशातना, ३ आचार्यों की०, ४ उपाध्यायोंकी०, ५ स्थविरोंकी०, ६ कुलकी०, ७ गण की०, ८ संघ की०, ९ क्रिया की०, १० सार्धमिक की०, ११ मतिज्ञान की यावत्–१५ केवलज्ञान की अनाशातना और इसी प्रकार अरिहंतादि १५ की भक्ति व बहुमान ३०, तथा इनके गुणोंके कीर्तन

द्वारा इनकी कीर्ति करना ४५। इस प्रकार अनाशातनारूप विनय व दर्शन विनय कहा।

(प्र० १३१-१३५)…चरित्र विनय पांच प्रकार का है…–सामायिकचारित्र विनय यावत् यथाख्यात०…। …मन विनय दो प्रकार का…–प्रशस्तमनविनय व अप्रशस्त०।…प्रशस्त मनविनय सात प्रकारका…—१ पापरहित, २ क्रोधादि अवद्यरहित, ३ कायिक्यादि क्रियामें आसक्तिरहित, ४ शोकादि उपक्लेशरहित, ५ आस्रवरहित, ६ स्वपर के आयास रहित, ७ जीवोंको भयभीत न करना। यह प्रशस्त मन विनय है।…अप्रशस्त मनविनय सात प्रकार का…—१ पापरूप, २ अवद्यवाला, ३ कायिक्यादि क्रियामें आसक्ति सहित, ४ शोकादि० युक्त, ५ आस्रव सहित, ६ स्वपरको आयास उत्पन्न करने वाला और ७ जीवों को भयभीत करने वाला। यह अप्रशस्त मनविनय…इस प्रकार मनविनय भी कहा।…वचन विनय दो प्रकार का…—प्रशस्त वचनविनय व अप्रशस्त०।

(प्र० १३६-१४०)…प्रशस्त वचनविनय सात प्रकार का…–१ पापरहित, २ असावद्य यावत् ७ जीवोंको भय न उपजाना…।… अप्रशस्त वचनविनय सात प्रकारका…—१ पाप सहित, २ सावद्य यावत् ७ जीवोंको भय उपजाना। इस प्रकार अप्रशस्त वचनविनय कहा व…वचनविनय भी कहा।…कायविनय दो प्रकारका है…--प्रशस्त कायविनय, व अप्रशस्त कायविनय।…प्रशस्त कायविनय सात प्रकारका…—सावधानतापूर्वक जाना, सा० खड़ा होना, सा० बैठना, सा० (बिस्तर पर) लेटना, सा० उल्लंघन करना, सा० अधिक उल्लंघन करना और सावधानतापूर्वक सभी इन्द्रियोंकी प्रवृत्ति करनी। इस प्रकार प्रशस्त कायविनय कहा है।…अप्रशस्त कायविनय सात प्रकार का है…—असावधानतासे जाना यावत् असावधानतासे सारी इन्द्रियोंकी प्रवृत्ति करनी। इस प्रकार अप्रशस्त कायविनय कहा।…कायविनय भी कहा।

(प्र० १४१-१४५)…लोकोपचार विनय सात प्रकार का…—१ गुर्वादि बड़ोंके पास रहना, २ उनकी इच्छानुसार वर्तना, ३ कार्यसिद्धि के लिए कारणोंकी व्यवस्था कर देना, ४ कृत उपकारका बदला (उपकारमें) चुकाना, ५ रोगियोंकी देख-रेख करना, ६ देशकालज्ञता—अवसरोचित प्रवृत्ति करनी और ७ सर्व कार्यों में अनुकूलाचरण करना। इस प्रकार लोकोपचार विनय कहा।…विनयके संबंधमें कहा।…वैयावृत्य कितने प्रकार का कहा है? …दस प्रकार का…—१ आचार्य-वैयावृत्य, २ उपाध्याय०, ३ स्थविर०, ४ तपस्वी०, ५ रुग्ण०, ६ शैक्ष०, ७ कुल०, ८ गण०, ९ संघ० और १० सार्धमिक०। इस प्रकार वैयावृत्य कहा। स्वाध्याय कितने प्रकार का है?…पांच प्रकार का…—१ वाचना, २ पृच्छना, ३ पुनरावर्तन करना, ४ चिंतन व ५ धर्मकथा।…स्वाध्यायके संबंधमें कहा ।।८०१।।

…ध्यान कितने प्रकार का है ?…चार प्रकारका…—१ आर्त्तध्यान, २ रौद्रध्यान, ३ धर्मध्यान और ४ शुक्लध्यान। आर्तध्यान चार प्रकार का है, वह इस प्रकार—१ अनिष्ट वस्तुओं की प्राप्ति होने पर उनके वियोग का चिन्तन करना, २ इष्ट वस्तुओं की प्राप्ति होने पर उनके अवियोग का चिन्तन करना, ३ रोगादि कष्ट प्राप्त होने पर उनके वियोग का…, ४ प्रीतिकारक कामभोगादि की प्राप्ति पर उनके अवियोग का…, आर्तध्यानके चार लक्षण…—१ आक्रंदन, २ दीनता, ३ अश्रुपात करना और ४ बारंबार क्लेशयुक्त बोलना।

(प्र० १४६-१४८) रौद्रध्यान चार प्रकार का…—१ हिंसानुबन्धी—हिंसा संबंधी निरंतर चिन्तन, २ मृषानुबन्धी, ३ स्तेयानुबंधी, ४ संरक्षणानुबन्धी। रौद्रध्यानके चार लक्षण…—१ ओसन्नदोष, २ बहुलदोष, ३ अज्ञानदोष, ४ आमरणान्तदोष। धर्मध्यान चार प्रकार का …—१ आज्ञाविचय, २ अपायविचय, ३ विपाकविचय, ४ संस्थानविचय। धर्मध्यानके चार लक्षण…—१ आज्ञारुचि, २ निसर्गरुचि, ३ सूत्ररुचि, ४ अवगाढ़रुचि। धर्मध्यानके चार आलंवन…—१ वाचना, २ प्रतिपृच्छना, ३ परिवर्तना और ४ धर्मकथा। धर्मध्यान की चार भावनाएं…— १ एकत्व भावना, २ अनित्य०, ३ अशरण० और ४ संसार०। शुक्लध्यान चार प्रकारका…—१ पृथक्त्ववितर्कसविचार, २ एकत्ववितर्क-अविचार, ३ सूक्ष्मक्रिय अनिवृत्ति और ४ समुच्छिन्नक्रिय अप्रतिपाति। शुक्ल-ध्यानके चार लक्षण…—१ क्षमा, २ निःस्पृहता, ३ आर्जव—सरलता और ४ मार्दव—मान का त्याग। शुक्लध्यानके चार आलंवन…—१ अव्यथा, २ असंमोह, ३ विवेक, ४ व्युत्सर्ग। शुक्लध्यानकी चार भावनाएं…—१ अनन्तवर्तितानुप्रेक्षा, २ विपरिणामानुप्रेक्षा, ३ अशुभानुप्रेक्षा, ४ अपायानुप्रेक्षा। इस प्रकार ध्यान के संबंधमें कहा ॥८०२॥

(प्र० १४९-१५४) व्युत्सर्ग कितने प्रकार का है ?…व्युत्सर्ग दो प्रकार का …—द्रव्यव्युत्सर्ग व भाव०। द्रव्यव्युत्सर्ग कितने प्रकार का है ? द्रव्यव्युत्सर्ग चार प्रकार का…—१ गणव्युत्सर्ग, २ शरीर०, ३ उपधि० और ४ आहार-पानी का व्युत्सर्ग (त्याग)। इस प्रकार द्रव्यव्युत्सर्ग कहा। भावव्युत्सर्ग कितने प्रकार का है।…तीन प्रकार का…—१ कषायव्युत्सर्ग, २ संसार०, ३ कर्म-व्युत्सर्ग। कषायव्युत्सर्ग कितने प्रकार का है ?…चार प्रकार का…—१ क्रोध०, २ मान०, ३ माया० और ४ लोभ०।…कषायव्युत्सर्ग कहा। संसार व्युत्सर्ग कितने प्रकार का है ?…चार प्रकार का…—नैरयिकसंसारव्युत्सर्ग यावत् देव०।… संसारव्युत्सर्ग कहा। कर्मव्युत्सर्ग कितने प्रकार का है ?…आठ प्रकार का…—ज्ञानावरणीयकर्मव्युत्सर्ग यावत् अंतराय०। इस प्रकार कर्मव्युत्सर्ग कहा,…भाव

व्युत्सर्ग···,···अभ्यंतर तप···। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है······यावत् विचरते हैं ॥८०३॥

॥ २५ वें शतकका सातवां उद्देशक समाप्त ॥

—o—

आठवां उद्देशक

(प्र० १-४) राजगृह नगरमें यावत् इस प्रकार पूछा—भगवन् ! नैरयिक किस प्रकार उत्पन्न होते हैं ?···जैसे कोई कूदने वाला कूदता २ अध्यवसाय-इच्छा-जन्य करण—क्रियाके साधन द्वारा उस स्थलको छोड़कर भविष्यमें अगले दूसरे स्थान को प्राप्त करके विहरता है। इसी प्रकार ये जीव भी कूदने वालेके समान कूदते २ अध्यवसाय-परिणामजन्य (कर्म रूप) क्रियाके साधनसे उस भवको छोड़ कर भविष्यमें प्राप्त करने योग्य अगले भव को प्राप्त करके विहरते हैं।···उन नारकोंकी गति कैसी शीघ्र होती है और उनका गति विषय कैसा शीघ्र होता है ?···जैसे कोई पुरुष तरुण व बलवान हो—इत्यादि १४ वें शतकके पहले उद्देशकमें कहे अनुसार जानें। यावत् वह तीन समयकी विग्रहगति से उत्पन्न होता है। वैसी उन जीवोंकी शीघ्रगति है व उस प्रकारका उन जीवोंका शीघ्र गति विषय है।···वे जीव किस प्रकार परभवका आयुष्य बांधते हैं ? ···ये जीव अपने परिणामरूप व मन आदि के व्यापार रूप करणोपाय—कर्मबंधके हेतु द्वारा परभव का आयुष्य बांधते हैं।···उन जीवों की गति किससे प्रवर्तित होती है ?······उन जीवोंके आयुष्य का क्षय होनेसे, भव का क्षय होने से व स्थिति-क्षय होनेसे उन जीवों की गति प्रवर्तित होती है।

(प्र० ५-८)······क्या वे जीव अपनी ऋद्धि-शक्ति से उत्पन्न होते हैं या पराई ऋद्धि से······?······वे जीव अपनी ऋद्धि से उत्पन्न होते हैं, पर-ऋद्धि से उत्पन्न नहीं होते।······क्या वे जीव अपने कर्म से उत्पन्न होते हैं या पराए कर्म से······?······वे जीव अपने कर्म से उत्पन्न होते हैं, पर पराए कर्म से उत्पन्न नहीं होते।······क्या वे जीव अपने प्रयोग—व्यापार से उत्पन्न होते हैं या पराये प्रयोग से······?······वे जीव अपने प्रयोग से······पराये प्रयोग से नहीं। ······असुरकुमार कैसे उत्पन्न होते हैं ?······जैसे नैरयिक के विषय में कहा उसी प्रकार सब असुरकुमार के सम्बन्ध में भी जानें। यावत् पराए प्रयोग से नहीं। इसी प्रकार एकेन्द्रिय के अतिरिक्त यावत् वैमानिक तक सभी जीवों के सम्बन्ध में समझें। एकेन्द्रियों के विषय में भी उसी प्रकार जानें। मात्र विशेष यह कि उनकी विग्रहगति चार समय की होती है। शेष उसी प्रकार। हे भगवन्···यावत् विचरते हैं ॥ ८०४ ॥

॥ २५ वें शतक का आठवां उद्देशक समाप्त ॥

———

नौवां उद्देशक

भगवन् ! भवसिद्धिक नैरयिक किस प्रकार उत्पन्न होते हैं ? गौतम ! जैसे कोई कूदने वाला······इत्यादि पूर्ववत् यावत् वैमानिक तक समझें। हे भगवन् ! ······विचरते हैं ॥८०५ ॥

॥ २५ वें शतक का नौवां उद्देशक समाप्त ॥

—०—

दसवां उद्देशक

भगवन् ! अभवसिद्धिक नैरयिक किस प्रकार उत्पन्न होते हैं ? हे गौतम ! जैसे कोई कूदने वाला······यावत् विचरते हैं ॥ ८०६ ॥

॥ २५ वें शतक का दसवां उद्देशक समाप्त ॥

———

ग्यारहवां उद्देशक

भगवन् ! सम्यग्दृष्टि नैरयिक किस प्रकार उत्पन्न होते हैं ? गौतम जैसे कोई कूदने वाला······पूर्ववत्। इसी प्रकार एकेन्द्रिय को छोड़कर यावत् वैमानिक तक जानना। हे भगवन्······॥८०७॥

॥ २५ वें शतक का ११ वां उद्देशक समाप्त ॥

———

बारहवां उद्देशक

······मिथ्यादृष्टि नैरयिक किस प्रकार उत्पन्न होते हैं ?······जैसे कोई कूदने वाला······पूर्ववत् यावत् वैमानिक तक जानना। हे भगवन्··· ॥८०८॥

॥ २५ वें शतक का १२ वां उद्देशक समाप्त ॥

॥ पच्चीसवां शतक समाप्त ॥

—०—

छब्बीसवां शतक

इस शतक में ११ उद्देशक हैं और उनमें प्रत्येक उद्देशक में १ जीव, २ लेश्या, ३ पाक्षिक (शुक्लपाक्षिक व कृष्णपाक्षिक), ४ दृष्टि, ५ अज्ञान, ६ ज्ञान, ७ संज्ञा, ८ वेद, ९ कषाय, १० योग और ११ उपयोग। इस प्रकार ११ स्थानों—विषयों के आश्रयी बन्ध वक्तव्यता कहनी है।

प्रथम उद्देशक

[सामान्य जीव व नैरयिकादि २४ दंडक आश्रयी उपरोक्त ११ द्वारों द्वारा पापकर्म व ज्ञानावरणीयादि आठ कर्म की बन्ध वक्तव्यता] (प्र० १-४) उस

काल उस समय में यावत् पूछा—भगवन् ! १ क्या जीव ने पापकर्म बांधा, बांधता है और बांधेगा ? २ अथवा क्या जीव ने पापकर्म बांधा, बांधता है और नहीं बांधेगा ?३ अथवा क्या जीव ने पापकर्म बांधा, नहीं बांधता और बांधेगा ? अथवा क्या जीव ने पापकर्म बांधा है, नहीं बांधता और नहीं बांधेगा ? गौतम ! किसी जीव ने पापकर्म बांधा है, बांधता है और बांधेगा यावत् किसी जीव ने पापकर्म बांधा है, नहीं बांधता और नहीं बांधेगा।······क्या लेश्या वाले जीव ने पापकर्म बांधा है, बांधता है और बांधेगा······इत्यादि प्रश्न ?······किसी लेश्या वाले जीव ने पापकर्म बांधा, बांधता है, और बांधेगा—इत्यादि चार भांगे जानें।··· क्या कृष्णलेश्या वाला जीव पहले पापकर्म बांधता था, बांधता है और बांधेगा··· इत्यादि प्रश्न।······कोई जीव पापकर्म बांधता था, बांधता है और बांधेगा और कोई जीव पापकर्म बांधता था, बांधता है और बांधेगा नहीं। इसी प्रकार यावत् पद्मलेश्या वाले जीव तक समझें। प्रत्येक जगह पहला व दूसरा ये दो भांगे जानें। शुक्ललेश्या वाले को जैसे लेश्या वालेके सम्बन्ध में कहा है वैसे चारों भांगे कहने। ······क्या लेश्यारहित जीव ने पापकर्म बांधा था······इत्यादि प्रश्न।······वह जीव पहले पापकर्म बांधता था, अब नहीं बांधता व बांधेगा नहीं।

(प्र० ५-१०)···क्या कृष्णपाक्षिक जीव पहले पाप कर्म बांधता था—इत्यादि पृच्छा। ··कृष्णपाक्षिक कोई जीव पहले पापकर्म बांधता था, बांधता है और बांधेगा–इस प्रकार पहला व दूसरा भांगा जानें।···शुक्लपाक्षिक···पृच्छा।··· पूर्वोक्त चारों भांगे कहने ॥८०९॥ सम्यक्दृष्टि जीवोंको चारों भांगे और मिथ्यादृष्टि जीवोंको पहला व दूसरा—इस प्रकार दो भांगे कहने तथा सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके विषयमें भी इसी प्रकार जानें। ज्ञानी के चार भांगे, आभिनिबोधिक-मतिज्ञानी यावत् मनःपर्यवज्ञानी को चार भांगे कहें। केवलज्ञानी को लेश्यारहित जीवके समान एक अंतिम भांगा कहें। अज्ञानी के सम्बन्धमें पहले दो भांगे, और इसी प्रकार मतिअज्ञानी, श्रुतअज्ञानी तथा विभंगज्ञानी के भी दो भांगे जानें। आहारसंज्ञासे लेकर यावत् परिग्रहसंज्ञामें उपयुक्त जीवोंके पहला व दूसरा भांगा समझें। नोसंज्ञामें उपयुक्त जीवोंके चारों भांगे जानें। वेद वाले जीवोंके पहला व दूसरा–ये दो भांगे जानें। और इसी प्रकार स्त्रीवेद वाले, पुरुष० तथा नपुंसकवेद वालों को भी जानना। अवेदी जीवोंके चारों भांगे जानें।

(प्र० ११-१५) कषाय वाले जीवोंके चारों भांगे जानें, क्रोध कषाय वाले जीवोंके पहला व दूसरा भांगा जानें। इसी प्रकार मान कषाय वाले व माया कषाय वालों के भी समझें। लोभ कषाय वालोंके चारों भांगे समझें।···क्या अकषायी

जीवने पहले पापकर्म वांधा था—इत्यादि पृच्छा।···कोई अकपायी जीव पहले पापकर्म-वांधता था, अब नहीं वांधता और वांधेगा। अथवा कोई अ० जीव पाप कर्म बांधता था, वांधता नहीं और वांधेगा भी नहीं। सयोगी जीवके सम्बन्धमें चार भांगे जानें। इसी प्रकार मनयोग वाले, वचन० और काययोग वाले जीवके···भी समझें। अयोगीके अंतिम भांगा कहें। साकार उपयोग व अनाकार उपयोग वालोंके चारों भांगे जानें ॥८१०॥

···भगवन्! क्या नैरयिक जीव पापकर्म बांधता था, बांधता है और बांधेगा?···कोई नैरयिक पापकर्म बांधता था—इत्यादि पहला व दूसरा भांगा जानें।···क्या लेश्या वाला नैरयिक पापकर्म बांधता था—इत्यादि पृच्छा।···इसी प्रकार पूर्वोक्त पहले दो भांगे जानें। इसी प्रकार कृष्णलेश्या वाला, नील०, कापोत०, कृष्णपाक्षिक, शुक्लपाक्षिक, सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि, सम्यग्मिथ्या-दृष्टि, ज्ञानी, आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधि०, अज्ञानी, मतिअज्ञानी, श्रुत०, विभंगज्ञानी, आहारसंज्ञामें उपयोग वाला यावत् परिग्रह संज्ञा···, वेद वाला, नपुंसकवेद वाला, कपाय वाला यावत् लोभ कपाय वाला, सयोगी, मनयोगी, वचन०, काय०, साकार उपयोग वाला और अनाकार उ० वाला इन सब पदोंमें पहला व दूसरा ये दो भांगे कहने। अर्थात् इन सब प्रकारके नैरयिक जीवोंके पहले दो भांगे कहने। असुरकुमारके···इसी प्रकार वक्तव्यता कहें। परन्तु विशेप यह कि उनके तेजोलेश्या, स्त्रीवेद व पुरुषवेद अधिक कहें और नपुंसकवेद न कहें। शेष पूर्ववत्। सर्वत्र पहला व दूसरा भांगा कहें। इस प्रकार यावत् स्तनितकुमार तक जानें। इसी प्रकार पृथिवीकायिक, अप्कायिक यावत् पंचेन्द्रिय तिर्यचयोनिक के भी सर्वत्र पहला व दूसरा ये दो भांगे जानें। परन्तु विशेप यह कि जिस जीव के जो लेश्या, दृष्टि, ज्ञान, अज्ञान, वेद और योग हो वह उसको कहें। शेप सर्व पूर्ववत्। मनुष्य को जीव पदके सम्वन्धमें जो वक्तव्यता कही है वही सारी वक्तव्यता कहें। असुरकुमार के समान वाणव्यंतर को जानें। तथा ज्योतिपिक और वैमानिकके सम्वन्धमें भी इसी प्रकार समझें। परन्तु विशेप यह कि यहां लेश्याएं कहें, शेप सर्व पूर्ववत् ॥८११॥

(प्र० १६-१७)···क्या जीवने ज्ञानावरणीय कर्म बांधा था, बांधता है और बांधेगा?···जैसे पापकर्मके सम्बन्धमें वक्तव्यता कही, उसी प्रकार ज्ञानावरणीय कर्मके सम्बन्धमें भी कहें। परन्तु विशेप यह कि जीवपद व मनुष्यपद में सकपायी यावत् लोभकपायी आश्रयी पहला व दूसरा भांगा कहें। शेप सब उसी प्रकार कहें। इस प्रकार यावत् वैमानिक तक जानें। ज्ञानावरणीय कर्मके समान दर्शना-वरणीय कर्मका भी संपूर्ण दंडक कहें।···क्या जीवने वेदनीय कर्म बांधा था,

वांधता है और वांधेगा–इत्यादि पृच्छा।···१ किसी जीवने वांधा था, वांधता है और वांधेगा, २ किसी···बांधा था, बांधता है और वांधेगा नहीं। ४ किसी··· वांधा था, नहीं वांधता और बांधेगा नहीं। लेश्या वाले जीवके भी इसी प्रकार तीसरे भांगे को छोड़ बाकीके तीनों भांगे जानें। कृष्णलेश्या वाले यावत् पद्मलेश्या वाले जीवोंके···पहला व दूसरा भांगा व शुक्ललेश्या वाले जीवों के तीसरा भांगा छोड़ बाकी के (तीनों) भांगे जानें। लेश्यारहित जीवोंके अंतिम भांगा जानें। कृष्णपाक्षिक जीवोंके पहला व दूसरा और शुक्लपक्ष वाले जीवोंके तीसरा छोड़ बाकीके तीनों भांगे कहें। इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि जीवके विषयमें भी जानें। मिथ्यादृष्टि व सम्यग्मिथ्यादृष्टिके सम्बन्धमें पहले दो भांगे जानें। ज्ञानीके तीसरा छोड़ बाकीके तीन भांगे कहें। आभिनिवोधिकज्ञानी यावत् मनःपर्यवज्ञानीके पहला व दूसरा भांगा कहें और केवलज्ञानीके तीसरा छोड़ बाकीके तीनों भांगे कहें। इसी प्रकार नोसंज्ञामें उपयुक्त, वेदरहित, अकषायी, साकार उपयोग वाले और अनाकार उपयोग वाले–इन सब जीवोंके तीसरा भांगा छोड़ बाकीके (तीनों) भांगे कहें। अयोगी जीवके अन्तिम भांगा और बाकी सब जगह पहला व दूसरा ये दो भांगे जानें।

(प्र० १८-२२)···क्या नैरयिक जीवने वेदनीय कर्म बांधा था, बांधता है—इत्यादि पृच्छा। पूर्ववत् जानना। इसी प्रकार नैरयिकोंसे लेकर यावत् वैमानिक तक जिसके जो हो उसे वह कहें। तथा सर्वत्र पहला व दूसरा भांगा समझें। परन्तु विशेष यह कि जीवके समान मनुष्योंके सम्बन्धमें कहें।···क्या जीवने मोहनीयकर्म वांधा था, बांधता है और वांधेगा ? जैसे पापकर्मके संबंधमें कहा वैसे मोहनीयकर्म के सम्बन्धमें भी जानें। इस प्रकार यावत् वैमानिक तक समझें ॥८१२॥

···क्या जीवने आयुष्यकर्म बांधा था, बांधता है–इत्यादि पृच्छा।··· किसी जीवने बांधा था—इत्यादि चारों भांगे जानें। लेश्या वाले जीव यावत् शुक्ललेश्या वाले जीवों के चारों भांगे जानें और लेश्यारहित जीवके अंतिम भांगा जानें। कृष्णपाक्षिकके संबंधमें पृच्छा।···किसी जीवने आयुष्य बांधा था, वांधता है और वांधेगा। अथवा किसी जीवने आयुष्य बांधा था, नहीं वांधता और वांधेगा। शुक्लपाक्षिक, सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीवोंके चारों भांगे जानें। सम्यग्मिथ्यादृष्टिके संबंध में पृच्छा।···किसी जीवने आयुष्य बांधा था, बांधता नहीं और वांधेगा, किसी जीव ने बांधा था, नहीं बांधता और बांधेगा नहीं। ज्ञानी यावत् अवधिज्ञानीके चारों भांगे कहें।

(प्र० २३-२४) मनःपर्यवज्ञानी संबंधी पृच्छा।···किसी मनःपर्यवज्ञानीने आयुष्यकर्म वांधा था, वांधता है और वांधेगा। किसी ने बांधा था, नहीं बांधता

और बांधेगा नहीं। केवलज्ञानीके अंतिम भांगा जानें। इसी प्रकार इस क्रमसे नोसंज्ञामें उपयुक्त जीवके सम्बन्धमें दूसरे भांगेको छोड़कर बाकीके तीनों भांगे मन:पर्यायज्ञानीके समान जानें। वेदरहित व अकषायी जीवके सम्यग्मिथ्यादृष्टि के समान तीसरा व चौथा भांगा कहें, अयोगीके विषयमें अंतिम भांगा कहना और बाकीके पदोंमें चारों भांगे यावत् अनाकार उपयोग वाले जीव तक जानें।...क्या नैरयिक जीवने आयुष्यकर्म बांधा था—इत्यादि पृच्छा।...किसी नैरयिक जीवने बांधा था—इत्यादि चार भांगे कहें। इसी प्रकार हर जगह नैरयिकोंके सम्बन्धमें चार भांगे जानें। परन्तु विशेष यह कि कृष्णलेश्या वाले और कृष्णपाक्षिकके पहला व तीसरा भांगा जानें, सम्यग्मिथ्यादृष्टिमें तीसरा व चौथा भांगा कहें। असुरकुमारोंमें इसी प्रकार जानें। पर विशेष यह कि कृष्णलेश्या वाले जीवोंके चार भांगे कहने। शेष सब नैरयिकों के समान जानें। इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमारों तक जानें। पृथिवीकायिकोंके सर्वत्र चारों भांगे कहें। पर विशेष यह कि कृष्णपाक्षिकमें पहला व तीसरा भांगा कहें।

(प्र० २५) तेजोलेश्या वालेके संबंधमें प्रश्न।......उसने बांधा था, बांधता नहीं और बांधेगा। बाकी सब जगह चार भांगे कहें। इसी प्रकार अप्कायिक व वनस्पतिकायिकोंके भी सब जानें। तेजस्कायिक व वायुकायिकके विषयमें सर्वत्र पहला व तीसरा भांगा कहें। बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चउरिन्द्रियके सर्वत्र पहला व तीसरा भांगा जानें। विशेष—सम्यक्त्व, ज्ञान, आभिनिबोधिक ज्ञान और श्रुतज्ञानके संबंधमें तीसरा भांगा कहें। पंचेन्द्रिय तिर्यचयोनिकोंके कृष्णपाक्षिकके संबंधमें पहला व तीसरा भांगा कहें। सम्यग्मिथ्यात्व में तीसरा व चौथा भांगा कहना। सम्यक्त्व, ज्ञान, आभिनिबोधिक ज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान—इन पांचों पदोंमें दूसरा भांगा छोड़ बाकीके तीनों भांगे कहें। बाकीके पदोंमें चारों भांगे कहने। जैसे जीवोंके सम्बन्धमें कहा है वैसे ही मनुष्यों के...भी कहना। विशेष—सम्यक्त्व, औघिक-सामान्य ज्ञान, मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान—इन सब पदोंमें दूसरा भांगा छोड़ बाकीके तीनों भांगे कहें। शेष सर्व पूर्ववत्। जैसे असुरकुमारोंके सम्बन्धमें कहा है, वैसे वाणव्यंतर, ज्योतिषिक व वैमानिकके सम्बन्धमें भी कहें। जैसे ज्ञानावरणीय कर्मके सम्बन्धमें कहा है, वैसे नाम, गोत्र व अंतरायके सम्बन्धमें भी कहें। हे भगवन्!......यावत् विचरते हैं॥ ८१३॥

॥ २६ वें बंधिशतक का पहला उद्देशक समाप्त॥

द्वितीय उद्देशक

(प्र० १-४) (अनन्तरोपपन्न नैरयिकादि २४ दंडकाश्रयी उक्त ११ द्वारों से पापकर्मादिकी बन्धवक्तव्यता) भगवन्! क्या अनन्तरोपपन्न नैरयिक ने पापकर्म

बांधा था—इत्यादि पूर्ववत् पृच्छा । गौतम ! किसी ने बांधा था—इत्यादि पहला व दूसरा भांगा कहना ।······क्या लेश्या वाले अनन्तरोपपन्न नैरयिक ने पापकर्म बांधा था—इत्यादि प्रश्न ।······यहां पहला व दूसरा भांगा कहें । इस प्रकार लेश्यादि सभी पदों में पहला व दूसरा भांगा कहना । पर सम्यग्मिथ्यात्व (मिश्रदृष्टि), मनोयोग और वचनयोग के सम्बन्ध में न पूछें । इस प्रकार यावत् स्तनितकुमारों तक जानें । बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चउरिन्द्रिय को वचनयोग न कहें । पंचेन्द्रिय तिर्यचयोनिकों के सम्यग्मिथ्यात्व, अवधिज्ञान, विभंगज्ञान, मनोयोग व वचनयोग—ये पांच पद न कहें । मनुष्यों के अलेश्यपना, सम्यग्मिथ्यात्व, मनःपर्यवज्ञान, केवलज्ञान, विभंगज्ञान, नोसंज्ञोपयोग, अवेदक, अकषायित्व, मनोयोग, वचनयोग और अयोगित्व ये ११ पद न कहें । जैसे नैरयिकों के कहा है उसी प्रकार वाणव्यंतर, ज्योतिषिक और वैमानिक के भी पूर्वोक्त तीन पद नहीं कहने । बाकी के सभी स्थानों पर पहला व दूसरा भांगा जानें । एकेन्द्रिय के सर्वत्र पहला व दूसरा भांगा कहें । जैसे पापकर्मके सम्बन्ध में कहा वैसे ही ज्ञानावरणीय कर्म के सम्बन्ध में भी दंडक कहें । इसी प्रकार आयुष्य को छोड़ यावत् अन्तराय कर्म तक भी दंडक कहें ।······क्या अनन्तरोपपन्न नैरयिक ने आयुष्य कर्म बांधा था—इत्यादि पृच्छा ।······उसने पहले आयुष्य कर्म बांधा था, बांधता नहीं और बांधेगा ।······क्या लेश्या वाले अनन्तरोपपन्न नैरयिक ने आयुष्य कर्म बांधा था—इत्यादि पृच्छा ।······पूर्ववत् तीसरा भांगा जानें । इस प्रकार यावत्—अनाकार उपयोग तक सर्वत्र तीसरा भांगा जानें । इस प्रकार मनुष्यके सिवाय यावत् वैमानिकों तक जानें । मनुष्यों के सर्वत्र तीसरा व चौथा भांगा जानें । परन्तु विशेष यह कि—कृष्णपाक्षिक के तीसरा भांगा कहना । सबमें पूर्ववत् भिन्नता जानें । हे भगवन् ! ······॥ ८१४ ॥

॥ २६ वें बंधिशतक का दूसरा उद्देशक समाप्त ॥

तृतीय उद्देशक

[परंपरोपपन्न नैरयिकादि चौवीस दंडक आश्रयी पापकर्मादि की बन्ध वक्तव्यता] भगवन् ! क्या परंपरोपपन्न नैरयिक ने पापकर्म बांधा था—इत्यादि पृच्छा । ······किसी ने बांधा था—इत्यादि पहला व दूसरा भांगा समझें । जैसे प्रथम उद्देशक कहा है, उसी प्रकार परंपरोपपन्न नैरयिकादिक के सम्बन्ध में पापकर्मादि नौ दंडक सहित यह उद्देशक कहें । आठ कर्मप्रकृतियों में जिसे जिस कर्म की वक्तव्यता कही है उसे उस कर्म की वक्तव्यता सम्यक्तया कहें । इसी प्रकार यावत्—

अनाकार उपयोग वाले वैमानिकों तक जानें। हे भगवन्!······॥ ८१५॥

॥ २६ वें बंधिशतक का तीसरा उद्देशक समाप्त॥

चतुर्थ उद्देशक

भगवन्! क्या अनंतरावगाढ़ नैरयिक ने पापकर्म बांधा था—इत्यादि पृच्छा।······जैसे अनंतरोपपन्न के साथ पापकर्मादि नवदंडकसंगृहीत उद्देशक कहा है वैसे ही अनन्तरावगाढ़ नैरयिकादि के सम्बन्ध में भी वैमानिक तक उद्देशक कहें। हे भगवन्!······।

॥ २६ वें शतक का चौथा उद्देशक समाप्त॥

पंचम उद्देशक

भगवन्! क्या परंपरावगाढ़ नैरयिक ने पापकर्म बांधा था—इत्यादि पृच्छा। ···जैसे परंपरोपपन्नक--के संबंध में उद्देशक कहा वैसे परंपरावगाढ़ के संबंध में भी संपूर्ण उद्देशक कहना। हे भगवन्!······।

॥ २६ वें शतक का पांचवां उद्देशक समाप्त॥

छठा उद्देशक

भगवन्! क्या अनन्तराहारक (आहार के प्रथम समय में वर्तमान) नैरयिक ने पापकर्म बांधा था—इत्यादि पृच्छा।······जैसे अनन्तरोपपन्न के सम्बन्ध में उद्देशक कहा उसी प्रकार अनन्तराहारक के सम्बन्ध में भी संपूर्ण उद्देशक कहना। हे भगवन्!······।

॥ २६ वें शतकका छठा उद्देशक समाप्त॥

सप्तम उद्देशक

भगवन्! क्या परंपराहारक (आहार के द्वितीयादि समयमें वर्तमान) नैरयिकने पापकर्म बांधा था—इत्यादि पृच्छा। गौतम! जैसे परंपरोपपन्नकके सम्बन्धमें उद्देशक कहा है उसी प्रकार परंपराहारक के संबंधमें भी संपूर्ण उद्देशक कहना। हे भगवन्!···।

॥ २६ वें शतक का सातवां उद्देशक समाप्त॥

आठवां उद्देशक

भगवन् ! क्या अनंतरपर्याप्त (पर्याप्तपनेके प्रथम-समयवर्ती) नैरयिकने पापकर्म बांधा था--इत्यादि पृच्छा । गौतम ! जैसे अनन्तरोपपन्नकके सम्बन्धमें उद्देशक कहा वैसे अनन्तर पर्याप्तकके सम्बन्धमें भी संपूर्ण उद्देशक कहें । हे भगवन् !··· ।

॥ २६ वें शतक का आठवां उद्देशक समाप्त ॥

नौवां उद्देशक

भगवन् ! क्या परंपरपर्याप्त (पर्याप्तपनेके द्वितीयादि समयवर्ती) नैरयिकने पापकर्म बांधा था—इत्यादि पृच्छा । गौतम ! जैसे परंपरोपपन्नकके सम्बन्धमें उद्देशक कहा है, वैसे परंपरपर्याप्तके सम्बन्धमें भी संपूर्ण उद्देशक कहें । हे भगवन् !···।

॥ २६ वें शतक का नौवां उद्देशक समाप्त ॥

दसवां उद्देशक

भगवन् ! क्या चरम नैरयिकने पापकर्म बांधा था-इत्यादि पृच्छा । गौतम ! जैसे परंपरोपपन्नकके सम्बन्धमें उद्देशक कहा वैसे चरम नैरयिकादिके सम्बन्धमें भी इसी प्रकार संपूर्ण उद्देशक कहें । हे भगवन् !··· ।

॥ २६ वें शतकका दसवां उद्देशक समाप्त ॥

ग्यारहवां उद्देशक

(प्र० १-४) भगवन् ! क्या अचरम नैरयिक ने पापकर्म बांधा था-इत्यादि पृच्छा । गौतम ! प्रथम उद्देशकमें कहे अनुसार पहला व दूसरा-ये दो भांगे सर्वत्र यावत् पंचेन्द्रिय तिर्यचयोनिक तक कहें ।···क्या अचरम मनुष्यने पापकर्म बांधा था—इत्यादि पृच्छा ।···१ किसीने पापकर्म बांधा था, बांधता है और बांधेगा, २ किसीने बांधा था, बांधता है और बांधेगा नहीं, ३ किसी ने बांधा था, नहीं बांधता और बांधेगा ।···क्या लेश्या वाले अचरम मनुष्यने पापकर्म बांधा था—इत्यादि पृच्छा ।···उपरोक्त रीतिसे अंतिमके सिवाय बाकीके तीन भांगे कहने । शेष सब प्रथम उद्देशकमें कहे अनुसार जानें । परन्तु विशेष यह कि जिन २० पदों में चार भांगे कहे हैं, उनमें से यहां अन्तिम भांगेके सिवाय पहले तीन भांगे कहना । लेश्यारहित, केवलज्ञानी और अयोगी मनुष्य—इन तीनके सम्बन्धमें न पूछना ।

वाणव्यंतर, ज्योतिषिक और वैमानिकों के सम्बन्धमें नैरयिकोंके समान जानें। …क्या अचरम नैरयिकने ज्ञानावरणीय कर्म बांधा था–इत्यादि पृच्छा।…जैसे पापकर्मके सम्बन्धमें कहा है वैसे यहां भी जानें, परन्तु विशेष यह कि कषायी और लोभकषायी मनुष्योंमें पहला व दूसरा भांगा कहें। तथा बाकी के १८ पदों में अन्तिम भांगेके सिवाय बाकीके सारे (तीनों) भांगे कहें। शेष सब इसी प्रकार जानें। इस प्रकार यावत् वैमानिकों तक समझें। दर्शनावरणीय कर्मके सम्बन्धमें भी इसी प्रकार सब जानें। वेदनीय कर्मके सम्बन्धमें सर्वत्र पहला व दूसरा भांगा–ये दो भांगे यावत्-वैमानिकों तक जानें। विशेष यह कि मनुष्यपद में लेश्यारहित, केवली और अयोगी अचरम मनुष्य नहीं।

(प्र० ५-६)…क्या अचरम नैरयिकने मोहनीय कर्म बांधा था—इत्यादि पृच्छा।…जैसे पापकर्मके सम्बन्धमें कहा वैसे सब यावत्—वैमानिकों तक जानें। …क्या अचरम नैरयिकने आयुष्य कर्म बांधा था–इत्यादि पृच्छा।…पहला व दूसरा भांगा जानना। इस प्रकार सभी पदोंमें जानें। नैरयिकोंके विषय में पहला व तीसरा भांगा कहें। विशेष—सम्यक्त्व मिथ्यात्वमें तीसरा भांगा जानें। इस प्रकार यावत्—स्तनितकुमारों तक जानें। पृथिवीकायिक, अप्कायिक और वनस्पतिकायिकोंके तेजोलेश्यामें तीसरा भांगा कहना। बाकी सभी पदोंमें सर्वत्र पहला व तीसरा भांगा जानना। अग्निकायिक व वायुकायिकोंके सर्वत्र पहला व तीसरा भांगा कहें। बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चउरिन्द्रियके विषयमें भी ऐसे ही समझें। विशेष–सम्यक्त्व, औघिकज्ञान, आभिनिबोधिकज्ञान और श्रुतज्ञान—इन चारों स्थानोंमें तीसरा भांगा समझें। पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिकोंके सम्यग्मिथ्यात्वमें तीसरा भांगा व बाकीके स्थानोंमें सर्वत्र प्रथम व तृतीय भांगा जानें। मनुष्योंके सम्यग्मिथ्यात्व, अवेदक और अकषायी–इन तीन पदोंमें तीसरा भांगा जानें। लेश्यारहित, केवलज्ञान और अयोगीके संबंधमें प्रश्न न करें। बाकी सभी पदोंमें सर्वत्र प्रथम व तृतीय भांगा कहें। जैसे नैरयिकोंके संबंधमें कहा उसी प्रकार वाणव्यंतर, ज्योतिषिक और वैमानिकोंके सम्बन्धमें भी जानें। जैसे ज्ञानावरणीय कर्मके सम्बन्धमें बताया वैसे नाम, गोत्र और अन्तराय के सम्बन्धमें भी सब समझें। हे भगवन्!…यावत् विचरते हैं ॥८१६॥

॥ २६ वें शतक का ११ वां उद्देशक समाप्त ॥

॥ छब्बीसवां शतक समाप्त ॥

सत्ताइसवां शतक

भगवन् ! १ जीव ने पापकर्म किया था, करता है और करेगा ? २ किया था, करता है और करेगा नहीं। ३ किया था, करता नहीं और करेगा। ४ किया था, करता नहीं और करेगा नहीं ? गौतम ! १ किसी जीव ने किया था, करता है और करेगा। २ किसी……है करेगा नहीं। ३ किसी……था, करता नहीं और करेगा और ४ किसी……नहीं और करेगा नहीं। भगवन् ! लेश्या वाले जीव ने पापकर्म किया था—इत्यादि पूर्वोक्त पाठ द्वारा बंधिशतक में जो वक्तव्यता कही है, वह सारी यहां कहना। उसी प्रकार नव दंडक सहित ११ उद्देशक भी कहने ॥८१७॥

॥ सत्ताइसवाँ करिंसु शतक समाप्त ॥

अट्ठाइसवां शतक—प्रथम उद्देशक

भगवन् ! जीवों ने किस गति में पापकर्म का समर्जन—ग्रहण किया था और किस गति में पापकर्म का आचरण किया था ? गौतम ! १ सारे जीव तिर्यंच-योनि में थे, २ अथवा……ति० और नैरयिक में थे, ३ अथवा……ति० और मनुष्यों में थे, ४ अथवा……ति० और देवों में थे, ५ अथवा……ति० नै० और म० में थे, ६ अथवा……ति० नै० और देवों में थे, ७ अथवा……ति० म० और देवों में थे, ८ अथवा सारे जीव ति०, नै०, म० और देवों में थे (और उस गति में उन्होंने पापकर्म का समर्जन और समाचरण किया था)। भगवन् ! लेश्या वाले जीवों ने किस गति में पापकर्म का समर्जन और समाचरण किया था ? गौतम ! पूर्ववत् जानें। कृष्णलेश्या वालों यावत् अलेश्या—लेश्यारहित, कृष्णपाक्षिक, शुक्लपाक्षिक, यावत् अनाकार उपयोग वालों के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार समझें। भगवन् ! नैरयिकों ने किस गति……था ? गौतम ! सारे जीव तिर्यंचयोनि…… इत्यादि पूर्ववत् आठ भांगे कहने इस प्रकार यावत् अनाकार उ० वालों के सम्बन्ध में समझें। और (दंडक के क्रम से) यावत् वैमानिक तक इसी प्रकार जानें। इसी प्रकार ज्ञानावरणीय यावत् अंतरायकर्म द्वारा भी दंडक कहें। इस प्रकार जीव से लेकर वैमानिक पर्यन्त नौ दंडक होते हैं। हे भगवन् !…विचरते हैं ॥८१८॥

॥ २८ वें शतक का प्रथम उद्देशक समाप्त ॥

द्वितीय उद्देशक

भगवन् ! अनंतरोपपन्न (तुरन्त उत्पन्न हुए) नैरयिकों ने किस गति में पाप……समाचरण किया ? गौतम ! वे सारे तिर्यंचयोनि……। इस प्रकार यहां

आठ भांगे जानें। अनन्तरोपपन्नक नैरयिकों की अपेक्षा जिसके जो लेश्यादिक अनाकार उपयोग तक हो वह सब विकल्प से यावत् वैमानिकों तक कहें। विशेष इतना कि—अनन्तरोपपन्न जीवों में जो जो (मिश्रदृष्टि, मनोयोग, वचनयोगादि) परिहार करने योग्य हों वह बंधिशतक में कहे हुए के अनुसार छोड़ें। इस प्रकार ज्ञानावरणीय यावत् अंतराय कर्म द्वारा भी नव दंडक सहित यह उद्देशक कहें। हे भगवन् !······हैं ॥ ८१६ ॥

॥ २८ वें शतक का दूसरा उद्देशक समाप्त ॥

उद्देशक ३ से ११

इस प्रकार इसी क्रम से जैसे बंधिशतक में उद्देशकों की परिपाटी कही है, उसी प्रकार यहां भी आठ भांगों में जानें। परन्तु विशेष यह कि जिसके जो हो उसको वह अंतिम उद्देशक तक कहें। इस प्रकार सब मिलकर ग्यारह उद्देशक होते हैं। हे भगवन् !······ ॥८२० ॥

॥ २८ वें शतक के ३ से ११ उद्देशक समाप्त ॥

॥ अट्ठाइसवां कर्मसमर्जन शतक समाप्त ॥

उनतीसवां शतक—प्रथम उद्देशक

(प्र० १-२) भगवन् ! १ क्या जीव पापकर्म को भोगनेकी शुरुआत एक ही समय में करते हैं और उसका अंत भी एक ही काल में करते हैं। २ भोगने की शुरुआत एक काल में करते हैं और उसका अंत भिन्न काल में करते हैं। ३ भोगने की शुरुआत भिन्न काल में करते हैं और अंत एक काल में करते हैं या ४ उसे भोगने की शुरुआत भिन्न काल में करते हैं और उसका अंत भी भिन्न काल में करते हैं ?······गौतम ! कितनेक जीव पापकर्म भोगने की शुरुआत एक काल में करते हैं और उसका अन्त भी एक······। इस प्रकार यावत् कोई जीव पापकर्म भोगने की शुरुआत भिन्न काल में करते हैं और उसका अंत भी भिन्नकाल में करते हैं। भगवन् ! ऐसा आप किस कारण से कहते हैं ?···गौतम ! जीव चार प्रकार के कहे हैं, वे इस प्रकार—१ कितनेक समायु समोपपन्नक, २ कितनेक समायु विषमोपपन्नक, ३ कितनेक विषमायु समोपपन्नक, ४ कितनेक विषमायु विषमोपपन्नक। १ उनमें जो समायु समोपपन्नक हैं, वे एक ही समय में पापकर्म भोगने की शुरुआत करते हैं व उसका अंत भी एक ही काल में करते हैं। २ जो समायु विषमोपपन्नक हैं वे पापकर्म भोगने की शुरुआत एक समय में करते हैं, पर उसका अंत भिन्न २ समय में करते हैं। ३ जो

विषमायु समोपपन्नक हैं, वे पापकर्म भोगने की शुरुआत भिन्न २ काल में करते हैं और उसका अंत एक काल में करते हैं और ४ जो विषमायु विषमोपपन्नक हैं, वे पापकर्म भोगने की शुरुआत भी भिन्न २ काल में करते हैं और उसका अंत भी भिन्न २ समय में करते हैं। इस कारणसे हे गौतम !······इत्यादि पूर्ववत्।

(प्र० ३-४)······क्या लेश्या वाले जीव कर्म भोगने की शुरुआत एक काल में करते हैं—इत्यादि पूर्ववत् पृच्छा।······उत्तर पूर्ववत्। सभी स्थानों में यावत् अनाकार उपयोग वाले तक समझना। ये सारे पद भी इसी वक्तव्यता से कहें।··· क्या नैरयिक पापकर्म भोगने की शुरुआत एक काल में करते हैं और उसका अन्त भी एक काल में करते हैं—इत्यादि पृच्छा।······जैसे जीवों के सम्बन्ध में पहले कहा, वैसे नैरयिकों के सम्बन्ध में भी जानें। इस प्रकार यावत् अनाकार उपयोग वाले नैरयिकों के सम्बन्ध में समझें। उसी प्रकार यावत् वैमानिकों तक जिसके जो हो उसे इसी क्रम से कहें। जैसे पापकर्म के सम्बन्ध में दंडक कहा वैसे इस क्रम से जीव से लेकर वैमानिकों तक आठों कर्मप्रकृतियों के सम्बन्ध में आठ दंडक कहने। इस रीति से नव दंडक सहित यह प्रथम उद्देशक कहना। हे भगवन् !······॥ ८२१ ॥

॥ २९ वें शतक का पहला उद्देशक समाप्त ॥

द्वितीय उद्देशक

(प्र० १-३) भगवन् ! क्या अनंतरोपपन्न (तुरन्त उत्पन्न हुए) नैरयिक एक काल में पापकर्म भोगने की शुरुआत करते हैं और उसका अन्त भी एक काल में करते हैं—इत्यादि पृच्छा। गौतम ! उनमें से कितनेक एक काल में······शुरुआत करते हैं और उसका अन्त भी एक ही काल में करते हैं और कितनेक एक काल में······शुरुआत करते हैं और उसका अन्त भिन्न २ समय में करते हैं।······ ऐसा आप किस कारण कहते हैं······? गौतम ! अनन्तरोपपन्न नैरयिक दो प्रकार के···—१ समायु समोपपन्नक, समायु विषमोपपन्नक उनमें जो समायु समोपपन्नक होते हैं वे एक काल में······शुरुआत करते हैं और उसका अन्त भी एक ही काल में करते हैं। जो समायु विषमोपपन्नक होते हैं वे······शुरुआत तो एक काल में करते हैं पर उसका अन्त भिन्न २ काल में करते हैं। इस कारण से ऐसा कहा है।······क्या लेश्या वाले अनन्तरोपपन्न नैरयिक पापकर्म भोगने की शुरुआत एक काल में करते हैं—इत्यादि पृच्छा।······पूर्ववत् जानें। इस प्रकार यावत् अनाकार उपयोग वाले तक समझें। इसी प्रकार असुरकुमारों यावत् वैमानिकों के सम्बन्ध में भी जानें। पर विशेष यह कि जिसके जो हो उसे वह कहना। इसी प्रकार ज्ञानावरणीय कर्म के सम्बन्ध में भी दंडक कहें और इसी प्रकार

यावत् अन्तराय कर्म तक जानें । हे भगवन् !······यावत् विचरते हैं ।

॥ २९ वें शतक का दूसरा उद्देशक समाप्त ॥

३—११ उद्देशक

इस प्रकार इस पाठ से जैसे बंधिशतक में उद्देशक की परिपाटी कही है वह सारी उद्देशक की परिपाटी यहां भी यावत् अचरम उद्देशक तक कहनी । अनंतर संबंधी चारों उद्देशकों की एक वक्तव्यता कहनी व बाकी के (सात) उद्देशकों की एक वक्तव्यता समझनी ॥८२२॥

॥ २९ वें शतक के ३ से ११ उद्देशक समाप्त ॥

॥ उनत्तीसवां कर्मप्रस्थापन शतक समाप्त ॥

—०—

तीसवां शतक—प्रथम उद्देशक

(प्र० १-५) भगवन् ! कितने समवसरण—मत कहे हैं ? गौतम ! चार समवसरण कहे हैं, वह इस प्रकार—१ क्रियावादी, २ अक्रियावादी, ३ अज्ञानवादी और ४ विनयवादी ।···क्या जीव क्रियावादी हैं, अक्रियावादी हैं, अज्ञानवादी हैं, या विनयवादी हैं ?···जीव क्रियावादी हैं, अक्रिया०, अज्ञान० और विनयवादी भी हैं ।···क्या लेश्या वाले जीव क्रियावादी हैं···पृच्छा ।···वे क्रियावादी हैं, अक्रिया···, अज्ञान···और विनयवादी भी हैं । इस प्रकार यावत् शुक्ललेश्या वाले जीवोंके संबंधमें समझें ।···क्या लेश्यारहित जीव क्रियावादी हैं—इत्यादि पृच्छा ।···वे क्रियावादी हैं, पर अक्रियावादी नहीं, अज्ञानवादी नहीं और वैसे ही विनयवादी भी नहीं ।···क्या कृष्णपाक्षिक जीव क्रियावादी हैं—इत्यादि पृच्छा ।···वे क्रियावादी नहीं, पर अक्रियावादी हैं, अज्ञानवादी हैं और विनयवादी हैं । शुक्लपाक्षिक लेश्या वाले जीवोंके समान जानें और सम्यग्दृष्टि जीव लेश्यारहित जीवोंके समान जानना । मिथ्यादृष्टि कृष्णपाक्षिकवत् ।

(प्र० ६-८)···क्या सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव क्रियावादी हैं–इत्यादि पृच्छा । ···वे क्रियावादी नहीं, अक्रियावादी नहीं, पर अज्ञानवादी और विनयवादी हैं । लेश्यारहित जीवोंके समान ज्ञानी यावत् केवलज्ञानी जीव जानें । तथा अज्ञानी यावत् विभंगज्ञानी जीव कृष्णपाक्षिक जीवोंके समान जानें । आहारसंज्ञामें उपयोग वाले यावत् परिग्रह संज्ञामें उपयोग वाले जीव लेश्या वाले जीवों की तरह जानें । नोसंज्ञामें उपयोग वाले जीव लेश्यारहित जीवोंके समान जानें । वेद वाले यावत् नंपुसकवेद वाले लेश्या वाले जीवोंके समान समझें । वेदरहित जीव लेश्यारहित

जीवोंके समान जानें। सकषायी यावत् लोभकषायी लेश्यासहित जीवोंके समान जानना। अकषायी जीव लेश्यारहित जीवों के समान…। सयोगी यावत् काययोगी लेश्या वाले जीवों के सदृश…। अयोगी जीव लेश्यारहित जीवोंकी भांति…। साकार व अनाकार उपयोग वाले जीव सलेश्य जीवोंकी भांति जानें। …क्या नैरयिक क्रियावादी हैं…पृच्छा।…वे क्रियावादी हैं यावत् विनयवादी भी हैं।…क्या लेश्या वाले नैरयिक क्रियावादी हैं…पृच्छा। …पूर्ववत् जानना। इस प्रकार यावत् कापोतलेश्या वाले नैरयिकों तक जानें। कृष्णपाक्षिक नैरयिक क्रियावादी नहीं। इस क्रम से जीवोंके विषयमें जो वक्तव्यता कही है वही वक्तव्यता नैरयिकोंके संबंधमें भी समझें। तथा इस प्रकार यावत् अनाकार उपयोग वाले नैरयिकों तक समझें। विशेष यह कि जिसके जो हो उसे वह कहें, बाकी नहीं। जैसे नैरयिकोंके संबंधमें बताया वैसे यावत् स्तनितकुमारों तक जानें।

(प्र० ९-१०)…क्या पृथिवीकायिक क्रियावादी हैं…पृच्छा।…वे क्रियावादी नहीं, वैसे ही विनयवादी नहीं, किन्तु अक्रियावादी हैं और अज्ञानवादी हैं। इस प्रकार पृथ्वीकायिकोंके लेश्यादिक जिन २ पदों की संभावना हो उन २ सब पदों में (अक्रियावादित्व और अज्ञानवादित्व) ये दो विचले समवसरण जानें। इस प्रकार यावत् अनाकार उपयोग वाले पृथिवीकायिकों तक जानें। इस प्रकार यावत् चउरिंद्रिय जीवोंके संबंधमें कहें। सर्व स्थानकोंमें ये दो विचले ही समवसरण जानें। इनके सम्यक्त्व और ज्ञान में भी ये दो ही बिचले समवसरण समझें। पंचेन्द्रिय तिर्यचयोनिकों के संबंध में जीवोंके समान जानें। विशेष यह कि जिसके जो हो उसे वह कहना। जीवोंके संबंध में जो वक्तव्यता कही है वह सारी उसी प्रकार मनुष्योंके संबंध में भी समझें। वाणव्यन्तर, ज्योतिषिक और वैमानिकों को असुरकुमारोंके समान जानें।…क्रियावादी जीव क्या नैरयिकका आयुष्य बांधें, तिर्यचयोनिक का आयुष्य बांधें, मनुष्य का आयुष्य बांधें या देव का आयुष्य बांधें ?…वे नैरयिक व तिर्यचयोनिक का आयुष्य न बांधें पर मनुष्य व देवका आयुष्य बांधें।

(प्र० ११-१५)…यदि वे देवका आयुष्य बांधें तो क्या भवनवासी देवका आयुष्य बांधें यावत् या वैमानिक देवका आयुष्य बांधें ?…वे भवनवासी देवका आयुष्य नहीं बांधते, उसी प्रकार वाणव्यंतर देव व ज्योतिषिक देव का भी आयुष्य नहीं बांधते, किन्तु वैमानिक देवका आयुष्य बांधते हैं।…अक्रियावादी जीव क्या नैरयिक का आयुष्य बांधें, तिर्यच का आयुष्य बांधें—इत्यादि पृच्छा।…वे नैरयिक का आयुष्य—यावत् देवका आयुष्य भी बांधें। इसी प्रकार अज्ञानवादी व विनयवादीके सम्बन्धमें भी समझें।…लेश्या वाले क्रियावादी जीव क्या नैरयिक का आयुष्य बांधें—इत्यादि पृच्छा।…वे नैरयिक का आयुष्य नहीं बांधते—इत्यादि

जैसे जीवोंके सम्बन्धमें ऊपर बताया है उसी प्रकार यहां भी (लेश्या वाले जीवों के भी, चारों समवसरणोंके आश्रयी कहें।···कृष्णलेश्या वाले क्रियावादी जीव क्या नैरयिक का आयुष्य बांधें—इत्यादि पृच्छा।···वे नैरयिक, तिर्यंच और देव का आयुष्य नहीं बांधते, पर मनुष्यका आयुष्य बांधते हैं। कृष्ण लेश्या वाले अक्रियावादी, अज्ञानवादी और विनयवादी जीव चारों प्रकारके आयुका बंध करते हैं। इसी प्रकार नीललेश्या वालों व कापोतलेश्या वालोंके सम्बन्धमें भी जानें। ···तेजोलेश्या वाले क्रियावादी जीव क्या नैरयिक का आयुष्य बांधें?—इत्यादि पृच्छा।···वे नैरयिक का व तिर्यंचका आयुष्य नहीं बांधते, पर मनुष्य व देव का आयुष्य बांधते हैं। यदि वे देवोंका आयुष्य बांधें तो वे पूर्ववत् आयुष्य का वन्ध करते हैं।

(प्र० १६-२०)···तेजोलेश्या वाले अक्रियावादी जीव क्या नैरयिकका आयुष्य बांधें—इत्यादि पृच्छा।···वे नैरयिक का आयुष्य नहीं बांधते। पर तिर्यंच, मनुष्य व देवका आयुष्य बांधते हैं। इसी प्रकार अज्ञानवादी व विनयवादी जीवोंके संबंधमें भी समझें। जैसे तेजोलेश्या वालोंके सम्बन्धमें बताया—उसी प्रकार पद्मलेश्या वाले व शुक्ललेश्या वाले जीवोंके संबंधमें भी समझें।···लेश्या-रहित क्रियावादी जीव क्या नैरयिकका आयुष्य बांधें—इत्यादि पृच्छा।···वे नैर-यिक, तिर्यंच, मनुष्य या देवका भी आयुष्य नहीं बांधते।·· कृष्णपाक्षिक अक्रिया-वादी जीव क्या नैरयिक का आयुष्य बांधें···पृच्छा।···वे नैरयिक व तिर्यंच वगैरह चारों प्रकारके आयुष्य बांधते हैं। इसी प्रकार कृष्णपाक्षिक अज्ञानवादी और विनयवादीके विषय में भी जानें। जैसे लेश्या वाले जीवोंके सम्बन्धमें कहा है वैसे शुक्लपाक्षिकके सम्बन्ध में भी जानें।···सम्यग्दृष्टि क्रियावादी जीव क्या नैरयिक का आयुष्य बांधें—इत्यादि पृच्छा।···वे नैरयिक और तिर्यंचका आयुष्य नहीं बांधते, पर मनुष्य व देवका आयुष्य बांधते हैं। मिथ्यादृष्टि कृष्णपाक्षिकों की तरह जानें।···सम्यग्मिथ्यादृष्टि अज्ञानवादी जीव क्या नैरयिक का आयुष्य बांधें··· पृच्छा।···लेश्यारहित जीवोंके समान जानना। इसी प्रकार विनयवादीके संबंधमें भी समझना। ज्ञानी, मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी सम्यग्दृष्टिके समान समझने।

(प्र० २१-२३)···मनःपर्यवज्ञानी (क्रियावादी) जीव क्या नैरयिक का आयुष्य बांधें—इत्यादि पृच्छा।···वे नैरयिक, तिर्यंच या मनुष्य का आयुष्य नहीं बांधते, पर देवका आयुष्य बांधते हैं।···यदि वे देवका आयुष्य बांधें तो क्या भवन-वासी देवका आयुष्य बांधें···पृच्छा।···वे भवनवासी देवका, वाणव्यंतर देवका या ज्योतिषिक देवका आयुष्य नहीं बांधते, पर वैमानिक देवका आयुष्य बांधते हैं। केवलज्ञानी लेश्यारहित जीवोंके समान जानें। अज्ञानी यावत् विभंगज्ञानी

कृष्णपाक्षिकों की भांति समझें। चारों संज्ञामें उपयोग वाले जीव लेश्या वाले जीवों की तरह समझें। नोसंज्ञामें उपयोग वाले जीव मनःपर्यवज्ञानीवत् जानें। वेद वाले यावत् नपुंसकवेद वाले लेश्या वालोंके समान, अवेदी लेश्यारहित जीवोंके समान समझना। कषाय वाले यावत् लोभ कषाय वाले जीव लेश्या वाले जीवोंकी तरह, कषायरहित जीव लेश्यारहित जीवोंके समान जानने। योग वाले व यावत् काययोग वाले जीव लेश्या वाले जीवों के समान जानने। योगरहित जीव लेश्या-रहित जीवोंके समान समझने। साकारोपयोग व अनाकारोपयोग वाले जीव लेश्या-वाले जीवों की तरह जानने ॥८२३॥

क्रियावादी नैरयिक क्या नैरयिक का आयुष्य बांधें इत्यादि पृच्छा।···वे नैरयिक का आयुष्य, तिर्यच का आयुष्य और देवों का आ० नहीं बांधते, पर मनुष्य का आयुष्य बांधते हैं।

(प्र० २४-२६)······अक्रियावादी नैरयिक क्या नैरयिक का आयुष्य बांधें—इत्यादि पृच्छा।······वे नैरयिक व देव का आयुष्य नहीं बांधते। पर तिर्यच व मनुष्य का आयुष्य बांधते हैं। इसी प्रकार अज्ञानवादी व विनयवादी के सम्बन्ध में भी समझें।······लेश्या वाले क्रियावादी नैरयिक क्या नैरयिक का आयुष्य बांधें—इत्यादि पृच्छा।······जो नैरयिक क्रियावादी हैं वे सब एक मनुष्य का ही आयुष्य बांधते हैं, और जो अक्रियावादी, अज्ञानवादी और विनयवादी हैं, वे सब स्थानों में नैरयिक व देव का आयुष्य नहीं बांधते, पर तिर्यच व मनुष्य का आयुष्य बांधते हैं। पर विशेष यह कि सम्यग्मिथ्यादृष्टि ऊपर के अज्ञानवादी और विनयवादी—इन दो समवसरण में जैसे जीवपद में कहा है, वैसे किसी भी आयुष्य का वन्ध नहीं करता। जैसे नैरयिकों का कहा, वैसे यावत् स्तनितकुमारों का भी समझें। अक्रियावादी पृथिवीकायिक क्या नैरयिक का आयुष्य बांधें—इत्यादि पृच्छा।······वे नैरयिक व देव का आयुष्य नहीं बांधते, पर तिर्यच व मनुष्य का आयुष्य बांधते हैं। इसी प्रकार अज्ञानवादी के सम्वन्ध में भी समझें।

(प्र० २७-२८)···लेश्या वाले पृथिवीकायिकों के सम्वन्ध में पृच्छा।······इस प्रकार जो जो पद पृथिवीकायिक के संबंध में हो उस उस पद सम्वन्धी (अक्रिया-वादी व अज्ञानवादी के) दो समवसरणों में पूर्व कहे अनुसार दो प्रकार का मनुष्या-युष्य व तिर्यचायुष्य बांधते हैं। परन्तु तेजोलेश्या में किसी भी आयुष्य का वन्ध नहीं करता। इस प्रकार अप्कायिक व वनस्पतिकायिक के सम्वन्ध में भी समझें। अग्निकाय व वायुकाय सभी स्थानों में विचले दो समवसरण आश्रयी नैरयिक, मनुष्य और देव का आयुष्य नहीं बांधते, पर मात्र तिर्यच का आयुष्य बांधते हैं। बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चउरिन्द्रिय जीवों के सम्वन्ध में पृथिवीकायिकों के समान जानना। पर सम्यक्त्व व ज्ञान में एक भी आयुष्य का वन्ध नहीं करते।······

क्रियावादी पंचेन्द्रिय तिर्यचयोनिक जीव क्या नैरयिक का आयुष्य बांधें—इत्यादि पृच्छा।······मनःपर्यवज्ञानी के समान जानें। अक्रियावादी, अज्ञानवादी और विनयवादी पंचेन्द्रिय तिर्यचयोनिक जीव चारों प्रकार के आयुष्य का वन्ध करते हैं। लेश्या वाले जीव औधिक पंचेन्द्रिय तिर्यचयोनिक के समान कहें।

[प्र० २६]······कृष्णलेश्या वाले क्रियावादी पंचेन्द्रिय तिर्यचयोनिक जीव क्या नैरयिक का आयुष्य बांधें—इत्यादि पृच्छा।······वे नैरयिक, तिर्यच, मनुष्य या देव का आयुष्य नहीं बांधते। अक्रियावादी, अज्ञानवादी और विनयवादी चारों प्रकार के आयुष्य को बांधते हैं। जैसे कृष्णलेश्या वालों के सम्बन्ध में कहा वैसे नीललेश्या वालों तथा कापोतलेश्या वालों के सम्बन्ध में भी समझें। लेश्या वालों की तरह तेजोलेश्या वाले जानें। परन्तु अक्रियावादी, अज्ञानवादी और विनयवादी नैरयिक का आयुष्य नहीं बांधते, पर देव का, तिर्यच का व मनुष्य का आयुष्य बांधते हैं। इसी प्रकार पद्मलेश्या वाले तथा शुक्ललेश्या वाले भी कहें। कृष्णपाक्षिक तीन (क्रियावादी को छोड़कर बाकी के) समवसरणों द्वारा चार प्रकार का आयुष्य बांधते हैं। शुक्लपाक्षिक लेश्या वालोंके समान जानें। सम्यग्दृष्टि, मनःपर्यवज्ञानी की तरह वैमानिक का आयुष्य बांधते हैं। कृष्णपाक्षिकों की भांति मिथ्यादृष्टि जानें। सम्यग्मिथ्यादृष्टि एक भी आयुष्य नहीं बांधते, और उनके नैरयिकों के समान अंतिम दो समवसरण जानें। ज्ञानी और यावत् अवधिज्ञानी सम्यग्दृष्टि के समान जानें। अज्ञानी यावत् विभंगज्ञानी कृष्णपाक्षिकों के समान जानें। बाकी के यावत् अनाकार उपयोग वालों तक सब लेश्या वालों के समान जानें। जैसे पंचेन्द्रिय तिर्यचयोनिकों की वक्तव्यता कही है ऐसी मनुष्यों की भी वक्तव्यता कहें। परन्तु मनःपर्यवज्ञानी और नोसंज्ञा में उपयुक्त जीव सम्यग्दृष्टि तिर्यचयोनिक के समान जानें। लेश्यारहित, केवलज्ञानी, वेदरहित, कषायरहित और योगरहित जीव औधिक जीवों की भांति आयुष्य नहीं बांधते। शेष सर्व पूर्ववत्। वाणव्यंतर, ज्योतिषिक व वैमानिक असुरकुमारों के समान समझें।

(प्र० ३०-३३)······क्या क्रियावादी जीव भवसिद्धिक हैं या अभवसिद्धिक हैं?······वे भवसिद्धिक हैं पर अभवसिद्धिक नहीं।······क्या अक्रियावादी जीव भवसिद्धिक हैं—इत्यादि पृच्छा।······वे भवसिद्धिक भी हैं और अभवसिद्धिक भी हैं। इसी प्रकार अज्ञानवादी व विनयवादी के सम्बन्ध में भी समझें।······लेश्या वाले क्रियावादी जीव क्या भवसिद्धिक हैं या अभवसिद्धिक हैं?······वे भवसिद्धिक हैं, पर अभवसिद्धिक नहीं।···लेश्या वाले अक्रियावादी जीव क्या भवसिद्धिक हैं—इत्यादि पृच्छा।···वे भवसिद्धिक भी हैं और अभवसिद्धिक भी हैं। इसी प्रकार अज्ञानवादी व विनयवादी के सम्बन्ध में भी जानें। जैसे लेश्या वाले कहे वैसे (कृष्णलेश्या वाले) यावत् शुक्ललेश्या वाले भी समझें।

(प्र० ३४)···लेश्यारहित क्रियावादी जीव क्या भवसिद्धिक हैं या अभवसिद्धिक हैं ?···वे भवसिद्धिक हैं, पर अभवसिद्धिक नहीं। इस प्रकार इस अभिलाप से कृष्णपाक्षिक जीव (क्रियावादीके अतिरिक्त) तीन समवसरणोंमें विकल्प से (भवसिद्धिक) जानें। शुक्लपाक्षिक जीव चारों समवसरणोंमें भवसिद्धिक हैं, पर अभवसिद्धिक नहीं, सम्यग्दृष्टि लेश्यारहित जीवोंके समान जानें, मिथ्यादृष्टि कृष्णपाक्षिकोंके समान जानें और सम्यग्मिथ्यादृष्टि (मिश्रदृष्टि), अज्ञानवादी और विनयवादी—इन दोनों समवसरणोंमें लेश्यारहित जीवोंके समान (भवसिद्धिक) जानें। ज्ञानी यावत् केवलज्ञानी जीव भवसिद्धिक जानें, अभवसिद्धिक नहीं। अज्ञानी यावत् विभंगज्ञानी जीव कृष्णपाक्षिक की भांति दोनों प्रकारके समझें। आहारसंज्ञामें यावत् परिग्रहसंज्ञामें उपयोग वाले लेश्या वाले जीवोंके समान जानें। नोसंज्ञा में उपयुक्त जीव सम्यग्दृष्टि के समान जानें। वेद वाले यावत् नपुंसकवेद वाले लेश्या वालोंकी तरह दोनों प्रकारके जानें। वेदरहित जीव सम्यग्दृष्टिके समान समझें। कषाय वाले यावत् लोभकषाय वाले लेश्या वालोंके समान समझें। कषायरहित जीव सम्यग्दृष्टि जीवों के समान जानें। योग वाले यावत् काययोग वाले जीव सम्यग्दृष्टि जीवोंके समान समझें। साकार—ज्ञानोपयोग वाले व अनाकार—दर्शनोपयोग वाले जीव लेश्यायुक्त जीवोंके समान जानें। इसी प्रकार नैरयिक भी कहें। विशेष यह कि जिसके जो हो उसके वह जानें। इस प्रकार असुरकुमारों यावत् स्तनितकुमारोंके सम्बन्धमें भी जानें। पृथिवीकायिक सभी स्थानकोंमें विचले दोनों समवसरणोंमें भवसिद्धिक व अभवसिद्धिक होते हैं। इस प्रकार यावत् वनस्पतिकायिकों तक समझें। वेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चउरिन्द्रिय के संबंधमें भी इसी प्रकार जानें। विशेष यह कि उनके सम्यक्त्व, अवधिज्ञान, मतिज्ञान और श्रुतज्ञानमें दोनों विचले समवसरणोंके आश्रयी भवसिद्धिक कहें, पर अभवसिद्धिक न कहें। शेष सर्व पूर्ववत्। पंचेन्द्रिय तिर्यचयोनिक नैरयिकोंके समान समझें, विशेष यह कि जिसके जो हो उसे वह जानें। मनुष्य औधिक जीवों के समान समझें। वाणव्यंतर, ज्योतिषिक और वैमानिक असुरकुमारोंके समान समझें। हे भगवन् !···।।८२४।।

।। ३० वें शतक का पहला उद्देशक समाप्त ।।

द्वितीय उद्देशक

(प्र० १-३) भगवन् ! अनंतरोपपन्नक नैरयिक क्या क्रियावादी हैं—इत्यादि पृच्छा। गौतम ! वे क्रियावादी भी हैं यावत् विनयवादी भी हैं।···लेश्या वाले

अनंतरोपपन्नक नैरयिक क्या क्रियावादी हैं—इत्यादि पृच्छा।…जैसे प्रथम उद्देशकमें वक्तव्यता कही है, वैसे यहां भी कहें। विशेष यह कि अनंतरोपपन्नक नैरयिकोंमें जिसमें जो संभव हो उसे वह कहना। इसी प्रकार सर्व जीव यावत् वैमानिकोंको भी समझना। विशेष यह कि अनन्तरोपपन्न जीवोंके संबंधमें जो संभव हो वह उन्हें कहना।…क्रियावादी अनन्तरोपपन्नक नैरयिक क्या नैरयिक का आयुष्य बांधें–इत्यादि पृच्छा।…वे नैरयिक, तिर्यंच, मनुष्य या देव का आयुष्य नहीं बांधते। इसी प्रकार अक्रियावादी, अज्ञानवादी और विनयवादीके संबंधमें भी जानें।

(प्र० ४-६)…लेश्या वाले अन्तरोपपन्नक क्रियावादी नैरयिक क्या नैरयिक का आयुष्य बांधें—इत्यादि पृच्छा।…वे नैरयिक का यावत् देव का आयुष्य नहीं बांधते। इसी प्रकार यावत् वैमानिकों तक समझना। इस प्रकार सर्व स्थानोंमें अनन्तरोपपन्नक नैरयिक किसी भी आयुष्य का वन्ध नहीं करते। इसी प्रकार यावत् अनाकार उपयोग वाले जीवों तक जानें। ऐसे ही यावत् वैमानिकों तक जानें। विशेष यह कि जिसके जो हो उसे वह कहें।…क्रियावादी अनन्तरोपपन्न नैरयिक क्या भवसिद्धिक हैं या अभवसिद्धिक हैं?…वे भवसिद्धिक हैं, पर अभवसिद्धिक नहीं। अक्रियावादीके सम्बन्धमें पृच्छा।…वे भवसिद्धिक भी हैं और अभवसिद्धिक भी हैं। इसी प्रकार अज्ञानवादी व विनयवादीके संबंधमें भी समझें।

(प्र० ७)…लेश्या वाले अनन्तरोपपन्न क्रियावादी नैरयिक क्या भवसिद्धिक हैं या अभवसिद्धिक हैं?…वे भवसिद्धिक हैं, पर अभवसिद्धिक नहीं। इस प्रकार इस अभिलापसे जैसे औघिक उद्देशकमें नैरयिकोंकी वक्तव्यता कही वैसे यहां भी कहनी यावत् अनाकारोपयोग वालों तक समझनी। इसी प्रकार यावत् वैमानिकों तक जानें। पर जिसके जो हो उसे वह कहना। यह उसका लक्षण है—जो क्रियावादी, शुक्लपाक्षिक और सम्यग्मिथ्यादृष्टि होते हैं वे सव भवसिद्धिक होते हैं, पर अभवसिद्धिक नहीं होते। और बाकीके भवसिद्धिक भी होते हैं और अभवसिद्धिक भी होते हैं। हे भगवन्!…॥८२५॥

॥ ३० वें शतकका दूसरा उद्देशक समाप्त ॥

तृतीय उद्देशक

भगवन्! परंपरोपपन्नक नैरयिक क्या क्रियावादी हैं—इत्यादि पृच्छा। गौतम! जैसे औघिक उद्देशकमें कहा है वैसे परंपरोपपन्नक नैरयिकोंके सम्वन्धमें भी नैरयिकसे लेकर (वैमानिक पर्यन्त) समग्र उद्देशक (क्रियावादित्वादि, आयुष्य-वन्ध व भव्याभव्यत्वादि प्ररूपक) उसी प्रकार तीन दंडक सहित कहें। हे भगवन्! …यावत् विचरते हैं॥८२६॥

॥ ३० वें शतक का तीसरा उद्देशक समाप्त ॥

४—११ उद्देशक

इस प्रकार इस क्रम से बंधिशतक में उद्देशकों की जो परिपाटी है, वही परिपाटी यहां भी यावत् अचरम उद्देशक तक जानें । विशेष यह कि 'अनंतर' शब्द घटित चारों उद्देशक एक गम वाले हैं और 'परंपर' शब्द घटित चारों उद्देशक एक गम वाले हैं । इसी प्रकार 'चरम' व 'अचरम' शब्द घटित उद्देशकों के सम्बन्ध में भी समझें । विशेष यह कि लेश्यारहित, केवलज्ञानी और अयोगी के संबंध में यहां कुछ भी नहीं कहना । शेष सब पूर्वोक्त रीति के अनुसार जानें । हे भगवन् !······ इस प्रकार ११ उद्देशक कहने ॥ ८२७ ॥

॥ ३० वें शतक का ४ से ११ उद्देशक समाप्त ॥

॥ तीसवां समवसरण शतक समाप्त ॥

इकत्तीसवां शतक—प्रथम उद्देशक

(प्र० १-३) राजगृह नगर में यावत् इस प्रकार बोले—कि भगवन् ! क्षुद्र (छोटे) युग्म कितने कहे हैं ? गौतम ! चार क्षुद्र युग्म कहे हैं, वह इस प्रकार—१ कृतयुग्म, २ त्र्योज, ३ द्वापरयुग्म और ४ कल्योज ।······किस कारण से आप ऐसा कहते हैं······?······जिस संख्या में से चार २ का अपहार करते हुए अंत में चार बाकी रहे उस संख्याको क्षुद्र कृतयुग्म कहा जाता है । जिस संख्यामें से चार २ ······तीन बाकी रहे उस संख्या को क्षुद्र त्र्योज······। जिस संख्या में से······ दो बाकी रहे उस संख्या को द्वापरयुग्म······और जिस संख्या में से······एक बाकी रहे उस संख्या को क्षुद्र कल्योज कहते हैं । इस कारण से यावत् कल्योज कहे जाते हैं । क्षुद्र कृतयुग्म राशिप्रमाण नैरयिक कहां से आकर उत्पन्न होते हैं ? क्या नैरयिकों से आकर······? तिर्यंचयोनिकों से पृच्छा ।······वे नैरयिकों से आकर उत्पन्न नहीं होते (पर पंचेन्द्रिय तिर्यंच व गर्भज मनुष्य से आकर उत्पन्न होते हैं) —इत्यादि नैरयिकों का उपपात जैसे व्युत्क्रान्ति पद में कहा है वैसे यहां जानें ।··· भगवन् ! वे जीव एक समय में कितने उत्पन्न हों ?······चार, आठ, बारह, सोलह अथवा संख्याता या असंख्याता उत्पन्न होते हैं ।

(प्र० ४-६)······वे जीव कैसे उत्पन्न हों ?······जैसे कोई कूदने वाला कूदता हुआ (अपने पहले स्थान को छोड़ कर अगले स्थान को प्राप्त करे उसी प्रकार नारकी भी पूर्ववर्ती भव को छोड़कर अध्यवसाय रूप कारण से अगले भव को प्राप्त करता है) इत्यादि २५ वें शतक के आठवें उद्देशक में नैरयिकों के संबंध में जो वक्तव्यता कही है वह यहां भी कहें यावत्—वे आत्मप्रयोग से उत्पन्न

होते हैं, पर परप्रयोग से उत्पन्न नहीं होते।......क्षुद्र कृतयुग्मराशिप्रमाण रत्न-प्रभा के नैरयिक कहां से आकर उत्पन्न हों—इत्यादि पृच्छा।......जैसे सामान्य नैरयिकों की वक्तव्यता कही है वैसे रत्नप्रभा के नैरयिकों की भी कहें। यावत्—वे परप्रयोग से उत्पन्न नहीं होते। इसी प्रकार शर्कराप्रभा यावत् अधःसप्तम पृथिवी के संबंध में भी जानें। इस प्रकार व्युत्क्रान्ति पद में कहे अनुसार यहां उपपात कहें। शेष सब पूर्वोक्त रीति से कहें। क्षुद्र त्र्योजराशिप्रमाण नैरयिक कहां से आकर उत्पन्न हों? क्या नैरयिकों से आकर उत्पन्न हों—इत्यादि पृच्छा। ......व्युत्क्रान्ति पद में कहे अनुसार उपपात कहें।

(प्र० ७-९)......वे जीव एक समय में कितने उत्पन्न हों?......तीन, सात, ग्यारह, पंद्रह, संख्याता या असंख्याता उत्पन्न होते हैं। बाकी सब कृतयुग्म नैरयिकों के समान जानें। इस प्रकार यावत् सप्तम नरक पृथिवी तक जानें।... क्षुद्र द्वापरयुग्मप्रमाण नैरयिक कहां से आकर उत्पन्न हों—इत्यादि पृच्छा। जैसे क्षुद्र कृतयुग्म के संबंध में कहा है, वैसे इसके संबंध में भी समझें। परन्तु परिमाण दो, छः, दस, चौदह, संख्याता या असंख्याता उत्पन्न होते हैं। शेष सब पूर्व कहे अनुसार जानें। इस प्रकार यावत्—अधःसप्तम नरक पृथिवी तक जानें। ...क्षुद्र कल्योज राशिप्रमाण नैरयिक कहां से आकर उत्पन्न हों—इत्यादि पृच्छा। जैसे क्षुद्र कृतयुग्म के संबंध में कहा है वैसे इसके संबंध में भी समझें। परन्तु परिमाण में एक, पांच, नौ, तेरह, संख्याता या असंख्याता उत्पन्न होते हैं। बाकी सब पूर्ववत् जानें। इसी प्रकार यावत् सातवीं नरकपृथिवी तक समझें। हे भगवन्! ......यावत् विचरते हैं॥ ८२८॥

॥ ३१ वें शतक का पहला उद्देशक समाप्त॥

द्वितीय उद्देशक

(प्र० १-३) भगवन्! क्षुद्र कृतयुग्म राशिप्रमाण कृष्णलेश्या वाले नैरयिक कहां से आकर उत्पन्न होते हैं-इत्यादि पृच्छा। औघिक-सामान्य गम में कहे अनुसार यहां भी जानें। यावत्—परप्रयोग से नहीं उपजते, पर विशेष यह कि व्युत्क्रान्ति पद में कहे अनुसार उपपात कहें और धूमप्रभा पृथिवी के नैरयिकों के संबंध में प्रश्नोत्तर वगैरह बाकी सब पूर्वोक्त रीति से जाने।......क्षुद्र कृतयुग्म राशिप्रमाण कृष्णलेश्या वाले धूमप्रभा पृथिवी के नैरयिक कहां से आकर उत्पन्न हों—इत्यादि पृच्छा।...पूर्ववत् सब जानना। इसी प्रकार तमःप्रभा व अधःसप्तम नरकपृथिवी के संबंध में भी समझें। पर विशेष यह कि सर्वत्र उपपात के संबंध में व्युत्क्रान्ति पद में कहे अनुसार जानें।......क्षुद्र त्र्योजराशिप्रमाण कृष्णलेश्या वाले नैर-यिक कहां से आकर उत्पन्न होते हैं—इत्यादि पृच्छा।......ऊपर कहे अनुसार

जानें। पर विशेष यह कि तीन, सात, ग्यारह, पंद्रह, संख्याता या असंख्याता उत्पन्न होते हैं। शेष सब पूर्ववत्। इसी प्रकार यावत् अधःसप्तम पृथिवी तक जानें।

(प्र० ४-५)…कृष्णलेश्या वाले क्षुद्र द्वापरयुग्म राशिप्रमाण नैरयिक कहां से आकर उत्पन्न हों—इत्यादि पृच्छा।…इसी प्रकार जानें। पर विशेष यह कि दो, छः, दस या चौदह (संख्याता या असंख्याता) आकर उत्पन्न होते हैं। शेष सब पूर्ववत् जानें। इसी प्रकार धूमप्रभा यावत् अधःसप्तम पृथिवी तक भी जानना।…कृष्णलेश्या वाले क्षुद्र कल्योजराशि प्रमाण नैरयिक कहां से आकर उत्पन्न हों? —इत्यादि पृच्छा।…इसी प्रकार जानें, पर विशेष यह कि एक, पांच, नौ, तेरह, संख्याता अथवा असंख्याता उत्पन्न होते हैं। बाकी सब उसी प्रकार जानें। इसी प्रकार धूमप्रभा, तमःप्रभा और अधःसप्तम नरक पृथिवी के संबंधमें भी समझें। हे भगवन्!……॥८२९॥

॥ ३१ वें शतकका दूसरा उद्देशक समाप्त ॥

—०—

तृतीय उद्देशक

भगवन्! नीललेश्या वाले क्षुद्रक कृतयुग्मप्रमित नैरयिक कहां से आकर उत्पन्न हों?…जैसे कृष्णलेश्या वाले क्षुद्र कृतयुग्म नैरयिकोंके संबंधमें कहा है, उसी प्रकार यहां भी जानें। परन्तु विशेष यह कि वालुकाप्रभा में जो उपपात कहा है उसी प्रकार यहां कहना। बाकी सब उसी प्रकार समझें। नीललेश्या वाले क्षुद्रक कृतयुग्मप्रमित नैरयिकों को भी इसी प्रकार जानें। इसी प्रकार पंकप्रभा व धूमप्रभाके संबंधमें भी जानें। ऐसे ही चारों युग्मोंमें समझें। पर विशेष यह कि जैसे कृष्णलेश्याके उद्देशकमें कहा है, वैसे परिमाण जानें। बाकी सब उसी प्रकार जानें। हे भगवन्!………॥८३०॥

॥ ३१ वें शतक का तीसरा उद्देशक समाप्त ॥

—०—

चतुर्थ उद्देशक

भगवन्! कापोतलेश्या वाले क्षुद्रकृतयुग्मराशिप्रमित नैरयिक कहांसे आकर उत्पन्न हों? जैसे कृष्णलेश्या वाले क्षुद्र कृतयुग्म नैरयिकोंके संबंधमें कहा है, वैसे इस संबंधमें भी कहें। पर विशेष यह कि रत्नप्रभामें जो उपपात कहा है, वह यहां भी जानें और बाकी सब उसी प्रकार समझें।…कापोतलेश्या वाले क्षुद्र कृतयुग्म राशिप्रमाण रत्नप्रभा के नैरयिक कहांसे आकर उत्पन्न हों?…पूर्व कहे अनुसार जानें। इसी प्रकार शर्कराप्रभामें, वालुकाप्रभामें भी चारों युग्मोंके विषयमें समझें।

पर, विशेष यह कि कृष्णलेश्या वाले उद्देशकमें जो परिमाण कहा है, वह यहां जानें। हे भगवन्!·········॥८३१॥

॥ ३१ वें शतक का चौथा उद्देशक समाप्त ॥

—o—

पंचम उद्देशक

भगवन्! क्षुद्र कृतयुग्म राशिप्रमाण भवसिद्धिक नैरयिक कहां से आकर उत्पन्न हों? क्या नैरयिकों से आकर उत्पन्न हों—इत्यादि पृच्छा।···जैसे औधिक सामान्य गम कहा, वैसे यहां भी निरवशेष जानें, यावत् वे परप्रयोगसे उत्पन्न नहीं होते।···रत्नप्रभा पृथिवीके क्षुद्रकृतयुग्मराशिप्रमाण भवसिद्धिक नैरयिक कहांसे आकर उत्पन्न होते हैं—इत्यादि पृच्छा।···पूर्व कहे अनुसार सब जानें। इस प्रकार यावत् अधःसप्तम पृथिवी तक समझें। इस प्रकार भवसिद्धिक क्षुद्र त्र्योज राशिप्रमित नैरयिकों को भी जानें। इसी प्रकार यावत् कल्योज तक समझें। पर परिमाण भिन्न जानें, और वह आगे पहले उद्देशक में बताया है। हे भगवन्!······॥८३२॥

॥ ३१ वें शतकका पांचवां उद्देशक समाप्त ॥

—o—

छठा उद्देशक

भगवन्! कृष्णलेश्या वाले भवसिद्धिक क्षुद्र कृतयुग्मप्रमाण नैरयिक कहांसे आकर उत्पन्न हों? क्या नैरयिकोंसे आकर उत्पन्न हों—इत्यादि पृच्छा। औधिक कृष्णलेश्याके उद्देशकमें जिस प्रकार कहा है उसी प्रकार सब चारों युग्मोंमें जानें। यावत्-भगवन्! अधःसप्तम पृथिवीके कृष्णलेश्या वाले क्षुद्र कल्योजराशिप्रमाण नैरयिक कहां से आकर उत्पन्न हों?···पूर्व कहे अनुसार जानना। हे भगवन्······॥८३३॥

॥ ३१ वें शतकका छठा उद्देशक समाप्त ॥

—o—

७—२८ उद्देशक

नीललेश्या वाले भवसिद्धिक नैरयिक चारों युग्मों में औधिक नीललेश्या उद्देशकमें कहे अनुसार जानें। हे भगवन्!···॥८३४॥ ३१-७॥ कापोतलेश्या वाले भवसिद्धिक नैरयिकोंका चारों युग्मोंमें औधिक कापोतलेश्या उद्देशकमें कहे अनुसार उपपात कहना। हे भगवन्!······ ॥८३५॥॥३१-८॥ जैसे भवसिद्धिकके चार उद्देशक कहे, वैसे अभवसिद्धिकके भी चार उद्देशक कापोतलेश्या उद्देशक पर्यन्त कहें। हे भगवन्···॥८३६॥३१-९ से १२॥ इसी प्रकार

सम्यग्दृष्टिके भी लेश्याके साथ चार उद्देशक कहने। परन्तु पहले व दूसरे दोनों उद्देशकोंमें सम्यग्दृष्टिका अधःसप्तम नरकपृथिवीमें उपपात न कहें। शेष सब पूर्ववत् जानना। हे भगवन्!···॥८३७॥ ३१-१३ से १६॥ मिथ्यादृष्टिके भी चारों उद्देशक भवसिद्धिकके समान कहने। हे भगवन्!···॥८३८॥ ३१-१७ से २०॥ इसी प्रकार कृष्णपाक्षिक के लेश्यासंयुक्त चार उद्देशक भवसिद्धिकके समान कहने। हे भगवन्!···॥८३९॥३१-२१ से २४॥ शुक्लपाक्षिकके भी इसी प्रकार चार उद्देशक कहें। यावत् भगवन्! वालुकाप्रभापृथिवी के कापोतलेश्या वाले शुक्लपाक्षिक क्षुद्रकल्योजराशिप्रमित नैरयिक कहां से आकर उत्पन्न हों?···पूर्ववत् उत्तर जानें। यावत् परप्रयोगसे उत्पन्न नहीं होते। हे भगवन्!···। सब मिलकर २८ उद्देशक होते हैं॥८४०॥ ३१-२५ से २८॥

॥ ३१ वें शतक के ७-२८ उद्देशक समाप्त॥

॥ इकत्तीसवां उपपातशतक समाप्त॥

बत्तीसवां शतक—१-२८ उद्देशक

भगवन्! क्षुद्रकृतयुग्म राशिरूप नैरयिक मरण प्राप्त कर तुरन्त कहां जायं और कहां उत्पन्न हों? क्या नैरयिकोंमें उत्पन्न होते हैं? तिर्यचयोनिकों में उत्पन्न होते हैं–इत्यादि पृच्छा।···व्युत्क्रान्तिपदमें कहे अनुसार समझें।···वे जीव एक समयमें कितने उद्वर्तें-मरण प्राप्त करें?···चार, आठ, बारह, सोलह, संख्याता या असंख्याता जीव उद्वर्तते हैं।···वे जीव किस प्रकार उद्वर्तें?···जैसे कोई एक कूदने वाला इत्यादि पूर्वोक्त गमक जानें यावत्—वे अपने प्रयोगसे उद्वर्तते हैं, पर परप्रयोगसे नहीं उद्वर्तते। रत्नप्रभा पृथिवीके क्षुद्रकृतयुग्म राशि रूप नैरयिक निकल कर कहां जायं?···रत्नप्रभापृथिवीके नैरयिकोंकी उद्वर्तना कहें। इस प्रकार यावत्—अधःसप्तम पृथ्वी तक भी उद्वर्तना कहनी। इसी प्रकार क्षुद्रत्र्योजयुग्म, क्षुद्रक द्वापरयुग्म और क्षुद्रक कल्योजके सम्बन्धमें भी समझें। पर विशेष यह कि परिमाण पूर्व कहे अनुसार (तीन, सात, दो, छ, एक, पांच आदि) भिन्न भिन्न जानें और बाकी सब उसी प्रकार कहें। हे भगवन्!···॥८४१॥ ३२-१॥ ···कृष्णलेश्या वाले क्षुद्रकृतयुग्मराशिरूप नैरयिक निकल कर कहां जायं? इसी प्रकार इस क्रमसे जैसे उपपातशतकमें २८ उद्देशक कहे हैं। उसी प्रकार उद्वर्तना शतकमें भी सब मिलाकर २८ उद्देशक कहने। पर 'उत्पन्न होते हैं' के बदले 'उद्वर्तते हैं' ऐसा पाठ कहें, शेष सब उसी प्रकार जानें। हे भगवन्!···यावत् विचरते हैं॥८४२॥

॥ बत्तीसवां उद्वर्तनाशतक समाप्त॥

तेतीसवां शतक-प्रथम एकेन्द्रिय शतक

(प्र० १-६) भगवन् ! एकेन्द्रिय जीव कितने प्रकार के कहे हैं ? गौतम ! पांच प्रकार के कहे हैं, वह इस प्रकार—पृथिवीकायिक यावत् वनस्पतिकायिक। ···पृथिवीकायिक जीव कितने प्रकारके कहे हैं ?···दो प्रकार के···—सूक्ष्म पृथिवी-कायिक व वादर०।···सूक्ष्म पृथिवीकायिक कितने प्रकार के···?···दो प्रकारके···—पर्याप्त सूक्ष्म पृथिवीकायिक और अपर्याप्त०।···वादरपृथिवीकायिक कितने प्रकार के···?···—ऊपर कहे अनुसार जानें। इस प्रकार अप्कायिकों के भी चार भेद कहने। इसी प्रकार यावत् वनस्पतिकायिक तक समझना।···अपर्याप्त सूक्ष्म पृथिवीकायिकोंके कितनी कर्मप्रकृतियां हों ?···उनके आठ कर्मप्रकृतियां···—ज्ञानावरणीय यावत् अन्तराय। इसी प्रकार पर्याप्तके भी।

(प्र० ७-११) इसी प्रकार अपर्याप्त बादर पृथिवीकायिक, पर्याप्त० पूर्ववत् जानें। इस प्रकार इस क्रमसे यावत् पर्याप्त बादर वनस्पतिकायिकों तक समझें। ···अपर्याप्त सूक्ष्म पृथिवीकायिक कितनी कर्मप्रकृतियां बांधें ?···वे सात या आठ कर्मप्रकृतियां बांधते हैं। जब सात बांधें तो आयुष्यके सिवाय बाकीकी सात कर्म-प्रकृतियां बांधें, और जब आठ बांधें तो परिपूर्ण आठ कर्मप्रकृतियां बांधें।··· पर्याप्त सूक्ष्म पृथिवीकायिक कितनी कर्मप्रकृतियां बांधें ?···पूर्ववत् जानें। तथा इस प्रकार सर्व एकेन्द्रियके संबंधमें दंडक कहें। यावत्—···पर्याप्त वादर वनस्पति-कायिक कितनी कर्मप्रकृतियां बांधें ?···इसी प्रकार जानें।

(प्र० १२-१६)···अपर्याप्त सूक्ष्म पृथिवीकायिक कितनी कर्मप्रकृतियां वेदें ? ···वे चौदह कर्मप्रकृतियां वेदें,वह इस प्रकार-१ ज्ञानावरणीय यावत् ८ अंतराय तथा ९ श्रोत्रेन्द्रियवध्य (श्रोत्रेन्द्रियावरण),१० चक्षुरिन्द्रियावरण,११ घ्राणेन्द्रियावरण, १२ जिव्हेन्द्रियावरण, १३ स्त्रीवेदावरण और १४ पुरुषवेदावरण। इसी प्रकार सूक्ष्म, वादर, पर्याप्त और अपर्याप्त के चार भेदपूर्वक यावत् पर्याप्त वादर वनस्पति-कायिक तक समझें यावत्···पर्याप्त वादर वनस्पतिकायिक कितनी कर्मप्रकृतियों को वेदते हैं ?······उपरोक्त १४ कर्मप्रकृतियों को वेदते हैं। हे भगवन् !···॥८४३॥ ॥३३-१-१॥ सो···अनंतरोपपन्न एकेन्द्रिय जीव कितने प्रकार के कहे है ?···अनंत-रोपपन्न एकेन्द्रिय पांच प्रकार के कहे हैं···—१ पृथिवीकायिक यावत्—५ वन-स्पतिकायिक।···अन्तरोपपन्न···कितने प्रकार के···?···दो प्रकार के···—सूक्ष्म-पृथिवीकायिक व वादर०। इस प्रकार दो भेदों द्वारा यावत् वनस्पतिकायिक तक समझें। अनन्तरोपपन्न सूक्ष्मपृथिवीकायिकों की कितनी कर्मप्रकृतियां कही हैं ? ···उनकी आठ कर्मप्रकृतियां कही हैं···—१ ज्ञानावरणीय यावत् ८ अन्तराय।

(प्र० १७-२१)···अनन्तरोपपन्न वादर पृथिवीकायिकों की कितनी कर्म-

प्रकृतियां कही हैं ?······उनकी आठ·····यावत् अन्तराय। इसी प्रकार यावत् अनन्तरोपपन्न बादर वनस्पतिकायिक के संबंध में जानना।···अनन्तरोपपन्न सूक्ष्म पृथिवीकायिक कितनी कर्मप्रकृतियां बांधते हैं ?···वे आयुष्य के सिवाय सात कर्म-प्रकृतियां बांधते हैं। इसी प्रकार यावत् अनन्तरोपपन्न बादर वनस्पतिकायिक तक जानना।··· अनन्तरोपपन्न सूक्ष्म पृथिवीकायिक कितनी कर्मप्रकृतियां वेदते हैं ?···वे १४ कर्मप्रकृतियों को वेदते हैं···—१ ज्ञानावरणीय यावत् १४ पुरुषवेदा-वरण। इस प्रकार यावत् अनन्तरोपपन्न बादर वनस्पतिकायिकों तक समझना। हे भगवन्······॥८४४॥३३-१-२॥···परंपरोपपन्न एकेन्द्रिय कितने प्रकार के··? ···पांच प्रकार के···—पृथिवीकायिक···इस प्रकार औधिक उद्देशक में कहे अनु-सार प्रत्येक के चार २ भेद जानने। परंपरोपपन्न अपर्याप्त सूक्ष्म पृथिवीकायिकों की कितनी कर्मप्रकृतियां होती हैं ?···इस प्रकार—इस अभिलाप से औधिक उद्दे-शक में कहे अनुसार निरवशेष कहना। यावत् १४ कर्मप्रकृतियों को वेदते हैं। हे भगवन् !······॥८४५॥ ३३-१-३॥

(प्र०२२-२९) अनन्तरोपपन्न के समान अनन्तरावगाढ़ के संबंध में समझना ॥३३-१-४॥ परंपरोपपन्न के समान परंपरावगाढ़···॥३३-१-५॥ अनन्तरोपपन्न के समान अनन्तराहारक···॥३३-१-६॥ परंपरोपपन्न के समान परंपराहारक······ ॥३३-१-७॥ अनन्तरोपपन्न के समान अनन्तरपर्याप्त···॥३३-१-८॥ परंपरोपपन्न के समान परंपरपर्याप्त···॥३३-१-९॥ परंपरोपपन्न के समान चरम···॥३३-१-१०॥ इसी प्रकार अचरमों के सम्बन्ध में भी समझना। इस प्रकार ११ उद्देशक कहे। हे भगवन् !······॥३३-१-११॥८४६॥

॥ तेतीसवें शतक का प्रथम एकेन्द्रिय शतक समाप्त ॥

—०—

द्वितीय एकेन्द्रिय शतक

(प्र० १-४) भगवन् ! कृष्णलेश्या वाले एकेन्द्रिय जीव कितने प्रकार के कहे हैं ? गौतम ! कृष्णलेश्या वाले एकेन्द्रिय पांच प्रकार के कहे हैं, वह इस प्रकार—१ पृथिवीकायिक यावत् ५ वनस्पतिकायिक।···कृष्णलेश्या वाले पृथ्वी-कायिक कितने प्रकार के···?······दो प्रकार के···—सूक्ष्म पृ० और बादर०।··· कृष्णलेश्या वाले सूक्ष्म पृथिवीकायिक कितने प्रकार के···?···जैसे औधिक उद्देशक में कहा है वैसे इस अभिलाप से चार भेद यावत् वनस्पतिकायिकों तक जानना।··· कृष्णलेश्या वाले अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिकों की कितनी कर्मप्रकृतियां होती हैं ? ऊपर के समान जैसे औधिक उद्देशक में कहा है वैसे इस अभिलाप से उसी प्रकार

वे कर्मप्रकृतियां कहनी। वे कर्मप्रकृतियां उस प्रकार बांधते हैं और उसी प्रकार उनका वेदन भी करते हैं। हे भगवन्!······।

(प्र० ५-८)···अनन्तरोपपन्न कृष्णलेश्या वाले एकेन्द्रिय कितने प्रकार के हैं? ···पांच प्रकार के···इस रीति से इस अभिलाप द्वारा पूर्ववत् उसके दो भेद यावत् वनस्पतिकाय तक जानना।···अनन्तरोपपन्न कृष्णलेश्या वाले सूक्ष्म पृथिवी-कायिकों की कितनी कर्मप्रकृतियां कही हैं?···इस प्रकार पूर्वोक्त अभिलाप से औधिक अनन्तरोपपन्न उद्देशक में कहे अनुसार--यावत् 'वेदते हैं' यहां तक जानना। हे भगवन्!······।···परंपरोपपन्न कृष्णलेश्या वाले एकेन्द्रिय कितने प्रकार के कहे हैं?···पांच प्रकार के···—पृथिवीकायिक इत्यादि। इस प्रकार इस अभिलाप से उसी प्रकार चार भेद यावत् वनस्पतिकाय तक कहने।···परंपरोपपन्न कृष्णलेश्या वाले अपर्याप्त सूक्ष्म पृथिवीकायिकों की कितनी कर्मप्रकृतियां होती हैं?···इस प्रकार इस अभिलाप से औघिक उद्देशक में कथित परंपरोपपन्न सम्बन्धी सारी हकीकत यहां जाननी। उसी प्रकार यावत् वेदते हैं—इस प्रकार इस अभिलाप से जैसे औधिक एकेन्द्रियशतक में ११ उद्देशक कहे हैं उसी प्रकार कृष्णलेश्या शतक में भी कहने, यावत्—अचरम व चरम कृष्णलेश्या वाले एकेन्द्रियों तक कहना ॥८४७॥ ॥ ३३ वें शतक का दूसरा एकेन्द्रिय शतक समाप्त॥

—०—

तृतीय एकेन्द्रिय शतक

जैसे कृष्णलेश्या वालों के संबंध में कहा उसी प्रकार नीललेश्या वालों के संबंध में भी शतक कहना। हे भगवन्!···।

॥ ३३ वें शतक का तीसरा एकेन्द्रिय शतक समाप्त॥

—०—

चतुर्थ एकेन्द्रिय शतक

इसी प्रकार कापोतलेश्या वालों के संबंध में भी शतक कहना। पर विशेष यह कि 'कापोतलेश्या वाले' ऐसा अभिलाप—पाठ कहना।

॥ ३३ वें शतक का चौथा एकेन्द्रिय शतक समाप्त॥

———

पांचवां एकेन्द्रिय शतक

भगवन्! भवसिद्धिक एकेन्द्रिय कितने प्रकार के कहे हैं?···भवसिद्धिक एकेन्द्रिय पांच प्रकार के···—१ पृथिवीकायिक और यावत् ५ वनस्पतिकायिक। इनके चार भेद आदि हकीकत वनस्पतिकायिक तक जाननी।···भवसिद्धिक अपर्याप्त सूक्ष्म पृथिवीकायिकों के कितनी कर्मप्रकृतियां होती हैं?···इस रीति से इस अभि-

लाप से जैसे पहला एकेन्द्रिय शतक कहा है वैसे ही यह भवसिद्धिक शतक भी कहना। उद्देशकों की परिपाटी भी उसी रीति से यावत्—अचरम उद्देशक तक कहनी। हे भगवन्!……।

॥ ३३ वें शतक का पांचवां एकेन्द्रिय शतक समाप्त ॥

—०—

छठा एकेन्द्रिय शतक

(प्र १-४) भगवन्! कृष्णलेश्या वाले भवसिद्धिक एकेन्द्रिय कितने प्रकार के कहे हैं?…पांच प्रकार के…—१ पृथिवीकायिक यावत् ५ वनस्पतिकायिक।…कृष्णलेश्या वाले भवसिद्धिक पृथ्वीकायिक कितने प्रकार के…?…दो प्रकार के…-सूक्ष्म पृथ्वीकायिक व वादर०।…कृष्णलेश्या वाले भवसिद्धिक सूक्ष्म पृथिवीकायिक कितने प्रकार के…?…दो प्रकारके…—पर्याप्तक व अपर्याप्तक। इसी प्रकार वादर पृथिवीकायिकों के संबंध में भी समझना। इस अभिलाप से उसी प्रकार चार भेद कहना।…कृष्णलेश्या वाले भवसिद्धिक अपर्याप्त सूक्ष्म पृथिवीकायिकों की कितनी कर्मप्रकृतियां होती हैं? इस प्रकार इस अभिलाप से जैसे औधिक उद्देशक में कहा है वैसे इसके संबंध में यावत् वेदते हैं, वहां तक समझना।

(प्र० ५-७)…अनन्तरोपपन्नक कृष्णलेश्या वाले भवसिद्धिक एकेन्द्रिय कितने प्रकार के…?…पांच प्रकार के…—अनन्तरोपपन्न पृथिवीकायिक यावत् अ० वनस्पतिकायिक।…अनन्तरोपपन्न कृष्णलेश्या वाले भवसिद्धिक पृथिवीकायिक कितने प्रकार के……?……दो प्रकार के……—सूक्ष्म पृथिवीकायिक और वादर० इस प्रकार दो भेद कहने।……अनन्तरोपपन्न कृष्णलेश्या वाले भवसिद्धिक सूक्ष्म पृथिवीकायिकों की कितनी कर्मप्रकृतियां होती हैं?… इस प्रकार इस अभिलाप से जैसे अनन्तरोपपन्न के संबंध में औधिक उद्देशक में कहा है उसी प्रकार इस संबंध में भी यावत् 'वेदते हैं' यहां तक जानना। इस प्रकार इस अभिलाप से औधिक शतक में कहे अनुसार ११ उद्देशक यावत् अंतिम 'अचरम' नाम के उद्देशक तक कहने।

॥ ३३ वें शतक का छठा एकेन्द्रिय शतक समाप्त ॥

—०—

सातवां एकेन्द्रिय शतक

जिस प्रकार कृष्णलेश्या वाले भवसिद्धिक एकेन्द्रियों के संबंध में शतक कहा है उसी प्रकार नीललेश्या वाले भवसिद्धिक एकेन्द्रियों के विषय में भी शतक कहना।

॥ ३३ वें शतक का सातवां एकेन्द्रिय शतक समाप्त ॥

—०—

आठवां एकेन्द्रिय शतक

इसी प्रकार कापोतलेश्या वाले भवसिद्धिक एकेन्द्रियों के विषय में भी शतक कहना। ॥ ३३ वें शतक का आठवां एकेन्द्रिय शतक समाप्त ॥

नौवां एकेन्द्रिय शतक

भगवन्! अभवसिद्धिक एकेन्द्रिय कितने प्रकारके कहे हैं?...अभवसिद्धिक एकेन्द्रिय पांच प्रकार के कहे हैं...—पृथिवीकायिक यावत् वनस्पतिकायिक। इस प्रकार जैसे भवसिद्धिकके संबंधमें शतक कहा है उसी प्रकार अभवसिद्धिकोंके संबंध में भी शतक कहना। पर विशेष यह कि 'चरम' व 'अचरम' के सिवाय नौ उद्देशक कहने। शेष सब उसी प्रकार समझना।

॥ ३३ वें शतक का नौवां एकेन्द्रिय शतक समाप्त ॥

दसवां-ग्यारहवां एकेन्द्रिय शतक

इसी प्रकार कृष्णलेश्या वाले अभवसिद्धिक एकेन्द्रियोंके संबंधमें भी शतक समझना। इसी प्रकार नीललेश्या वाले अभवसिद्धिक एकेन्द्रियोंके संबंधमें भी शतक कहना।

॥ ३३ वें शतक का दसवां ११ वां एकेन्द्रिय शतक समाप्त ॥

बारहवां एकेन्द्रिय शतक

इसी प्रकार कापोतलेश्या वाले अभवसिद्धिक एकेन्द्रियके संबंधमें भी शतक कहें। इस प्रकार अभवसिद्धिक संबंधी चार शतक व उनके नौ-नौ उद्देशक हैं। इस प्रकार ये बारह एकेन्द्रियशतक हैं ॥८४८॥

॥ ३३ वें शतक का बारहवां एकेन्द्रिय शतक समाप्त ॥

॥ तेतीसवां शतक समाप्त ॥

चौंतीसवां शतक

प्रथम एकेन्द्रिय शतक—प्रथम उद्देशक

(इस शतक में एकेन्द्रियोंके संबंधमें कहना है। इसके अवान्तर १२ शतक हैं। उनमें प्रथम शतकके प्रथम उद्देशकमें एकेन्द्रियों की गतिसंबंधी कथन है–)

(प्र० १-३) भगवन्! एकेन्द्रिय कितने प्रकार के कहे हैं? गौतम! एकेन्द्रिय पांच प्रकार के कहे हैं...–पृथिवीकायिक यावत् वनस्पतिकायिक। इस प्रकार पूर्वोक्त (बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त व अपर्याप्त) ये चारों भेद यावत्—वनस्पतिकायिक

तक कहें।···अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव जो इस रत्नप्रभा पृथ्वीके पूर्व चरमान्तमें—पूर्व दिशाके अन्तमें मरणसमुद्घात करके इस रत्नप्रभा पृथिवी के पश्चिम चरमान्तमें अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिकपने उत्पन्न होने योग्य है, वह··· कितने समय की विग्रहगति से उत्पन्न हो ?···एक समय, दो समय या तीन समय की विग्रहगतिसे उत्पन्न हो।···ऐसा आप किस कारण कहते हैं···?···मैंने सात श्रेणियां कही हैं···—१ ऋज्वायत, २ एकतःवक्र, ३ द्विधावक्र, ४ एकतःखा, ५ द्विधाखा, ६ चक्रवाल और ७ अर्धचक्रवाल। यदि पृथिवीकायिक ऋज्वायत श्रेणी से उत्पन्न हो तो वह एक समय की विग्रहगतिसे उत्पन्न हो। यदि एकवक्र श्रेणी से उत्पन्न हो तो वह दो समय की विग्रहगतिसे उत्पन्न हो। यदि वह द्विधावक्र··· तो तीन समय की विग्रहगतिसे ···। इस कारण···ऐसा कहा है।

(प्र० ४-५)···अपर्याप्त सूक्ष्म पृथिवीकायिक जीव जो इस रत्नप्रभा··· पश्चिम चरमान्तमें पर्याप्त सूक्ष्म पृथिवीकायिकपने···योग्य है वह···कितने समयकी विग्रह गतिसे उत्पन्न हो ?···एक समय की···इत्यादि सब पूर्ववत् यावत् इस कारणसे···उत्पन्न होता है। यहां तक जानें। इसी प्रकार अपर्याप्त सूक्ष्म पृथिवीकायिकका पूर्व चरमान्तमें मरण समुद्घात करके पश्चिम चरमान्तमें वादर अपर्याप्त पृथिवीकायिकपने उपपात कहें और पुनः वहीं पर्याप्तपने उपपात कहें। इसी प्रकार अप्कायिकके विषयमें पूर्वोक्त चार आलापक कहें। १ सूक्ष्म अपर्याप्त, २ सूक्ष्म पर्याप्त, ३ वादर अपर्याप्त और ४ वादर पर्याप्त अप्कायिक में उपपात कहें। इसी प्रकार सूक्ष्म तेजस्कायिक अपर्याप्त व पर्याप्तमें उपपात कहें।···अपर्याप्त सूक्ष्म पृथिवीकायिक जीव जो इस रत्नप्रभा पृथिवीके पूर्व चरमान्तमें मरणसमुद्घात करके मनुष्य क्षेत्रमें अपर्याप्त वादर तेजस्कायिकपने उत्पन्न होने योग्य है···वह कितने समय की विग्रहगतिसे उत्पन्न हो ?···शेष पूर्ववत् समझना। इसी प्रकार वादर तेजस्कायिकपने भी उपपात कहें ४। जैसे सूक्ष्म व वादर अप्कायिकमें उपपात कहा उसी प्रकार सूक्ष्म व वादर वायुकायिकमें भी उपपात कहें। वनस्पतिकायिकमें भी इसी प्रकार जानें ४।

(प्र० ६-७)···पर्याप्त सूक्ष्म पृथिवीकायिक इस रत्नप्रभा पृथिवीके—इत्यादि पूर्वोक्त प्रश्न। पर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिकको भी रत्नप्रभाके पूर्व चरमान्तमें मरणसमुद्घात करके अनुक्रमसे इन वीसों स्थानोंमें यावत्—वादर पर्याप्त वनस्पतिकायिक तक उपपात कहें (४०)। इसी प्रकार अपर्याप्त वादर पृथिवीकायिक (६०) और पर्याप्त वादर पृथिवीकायिक को भी पूर्ववत् जानें (८०)। इसी प्रकार अप्कायिक का भी चारों गमक आश्रयी पूर्व चरमांतमें समुद्घातपूर्वक इसी पूर्वोक्त वक्तव्यता द्वारा ऊपर के २० स्थानकों में उत्पत्ति कहना (१६०)। अपर्याप्त व पर्याप्त दोनों प्रकारके सूक्ष्म तेजस्कायकी भी इन्हीं २० स्थानकोंमें

उपरोक्त रीतिसे उत्पत्ति कहें (२००) ।···अपर्याप्त बादर तेजस्काय जो मनुष्य क्षेत्र में मरणसमुद्घात करके रत्नप्रभा पृथ्वीके पश्चिम चरमान्तमें अपर्याप्त सूक्ष्म पृथिवीकायिकपने उत्पन्न होने योग्य है, वह हे भगवन् ! कितने समयकी विग्रहगतिसे उत्पन्न हो ?···बाकीका पूर्ववत् यावत् इस कारणसे ऐसा कहा जाता है-यहां तक जानें। इस प्रकार (अपर्याप्त बादर तेजस्कायकी) चारों प्रकार के पृथिवीकायिकोंमें, चारों प्रकार के अप्कायिकोंमें तथा अपर्याप्त व पर्याप्त सूक्ष्म तेजस्कायिकों में भी उत्पत्ति कहें ।

(प्र० ८-६)···जो अपर्याप्त बादर तेजस्कायिक जो मनुष्य क्षेत्र में मरणसमुद्घात करके मनुष्य क्षेत्रमें अपर्याप्त बादर तेजस्कायिकपने उत्पन्न होने योग्य हो तो हे भगवन् ! वह कितने समय की विग्रहगति से उत्पन्न हो ?···शेष पूर्ववत् जानें। और इसी प्रकार उसकी पर्याप्त बादर तेजस्कायपने भी उत्पत्ति कहें। जैसे पृथिवीकायिकोंमें कहा है उसी प्रकार चारों भेद से वायुकायिकपने व वनस्पतिकायिकपने भी उत्पत्ति कहें। इसी प्रकार पर्याप्त बादर तेजस्कायिककी भी समयक्षेत्र में समुद्घात करके इन्हीं बीस स्थानकोंमें उत्पत्ति कहें। जैसे अपर्याप्त का उपपात कहा वैसे सर्वत्र पर्याप्त व अपर्याप्त बादर तेजस्कायिकों की समयक्षेत्र में उत्पत्ति और समुद्घात कहें (२४०)। जैसे पृथिवीकायिकों का उपपात कहा वैसे चार भेदसे वायुकायिक (३२०) व वनस्पतिकायिकों की भी उत्पत्ति कहें (४००) यावत्······जो पर्याप्त बादर वनस्पतिकायिक इस रत्नप्रभा पृथिवी के पूर्व चरमान्त में मरणसमुद्घात करके इस रत्नप्रभा पृथिवी के पश्चिम चरमान्त में बादर वनस्पतिकायिकपने उत्पन्न होने योग्य है, वह हे भगवन् ! कितने समय की विग्रहगति से उत्पन्न हो ? ···शेष पूर्ववत् यावत् इस कारण से ऐसा कहा जाता है—यहां तक समझें।

(प्र० १०-११)···जो अपर्याप्त सूक्ष्म पृथिवीकायिक इस रत्नप्रभा पृथिवी के पश्चिम चरमांत में समुद्घात करके इस रत्नप्रभा पृथिवी के पूर्व चरमांत में अपर्याप्त सूक्ष्म पृथिवीकायिकपने उत्पन्न होने योग्य है वह हे भगवन् ! कितने समय की विग्रहगति से उत्पन्न हो ?···बाकी सब पूर्ववत् जानें। इस प्रकार जैसे पूर्व चरमांत में सर्वपदों में समुद्घात करके पश्चिम चरमान्त में और समयक्षेत्र में उपपात कहा तथा जिसका समयक्षेत्र में समुद्घातपूर्वक पश्चिम चरमान्त में और समयक्षेत्र में उपपात कहा उसी प्रकार इसी क्रम से पश्चिम चरमान्त में और समयक्षेत्र में समुद्घातपूर्वक पूर्वचरमान्त में व समयक्षेत्र में उसी गम से उपपात कहें और सब उसी गम से कहें। इस प्रकार इस गम से दक्षिण के चरमान्त में समुद्घातपूर्वक उत्तर के चरमान्त में और समयक्षेत्र में उपपात कहें, और इसी प्रकार उत्तर चरमान्त में और समयक्षेत्र में समुद्घात करके दक्षिणचरमान्त में और समयक्षेत्र में उसी गम से उपपात कहें।···जो अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक

शर्कराप्रभा पृथिवी के पूर्व चरमान्त में मरणसमुद्घात करके शर्कराप्रभा पृ० के पश्चिम चरमान्त में अपर्याप्त सू० पृ० पने उत्पन्न होने योग्य है, वह कितने समय की विग्रहगति से उत्पन्न हो ?...जैसे रत्नप्रभा पृथिवी के संबंध में कहा उसी प्रकार इसके संबंध में यावत् 'इस कारण से ऐसा कहा जाता है' यहां तक कहें। इस प्रकार अनुक्रम से यावत्—पर्याप्त सूक्ष्म तेजस्कायिक तक जानें।

(प्र० १२-१३)...जो अपर्याप्त सूक्ष्म पृ० शर्कराप्रभा के पूर्व चरमान्त में... पश्चिम चरमान्त में अ० सूक्ष्म पृ० पने उत्पन्न होनें योग्य है, वह कितने समय की विग्रहगति से उत्पन्न हो ?...दो या तीन समय की विग्रहगति से उत्पन्न हो।... ऐसा आप किस कारण मे कहते हें ?...मैंने सात श्रेणियां कही हैं...—१ ऋज्वायत और यावत्—७ अर्धचक्रवाल। यदि एकवक्र श्रेणीरूप गति से उत्पन्न हो तो वह दो समय की विग्रहगति से उत्पन्न हो और यदि द्विधावक्र श्रेणीरूप गति से......तो वह तीन समय की...हो। इस कारण से हे गौतम! ऐसा कहा है। इसी प्रकार पर्याप्त बादर तेजस्कायिक के संबंध में भी समझें। बाकी सब रत्नप्रभा के समान समझें। जो पर्याप्त व अपर्याप्त बादर तेजस्कायिक समयक्षेत्र में समुद्घात करके दूसरी पृथिवी के पश्चिम चरमान्त में चारों प्रकार के पृथिवीकायिकों में, चारों प्रकार के अप्कायिकों में, दो प्रकार के तेजस्कायिकों में, चारों प्रकार के वायुकायिकों में और चारों प्रकार के वनस्पतिकायिकों में उत्पन्न होता है, उनकी भी दो समय या तीन समय की विग्रहगति से उत्पत्ति कहें। जब पर्याप्त व अपर्याप्त बादर तेजस्कायिक उन्हीं में उत्पन्न हों तो उसकी जैसे रत्नप्रभा के संबंधमें कहा, वैसे एक समय की, दो समय की, तीन समय की विग्रहगति समझें। बाकी सब रत्नप्रभा के समान जानें। जैसे शर्कराप्रभा के संबंध में वक्तव्यता कही है वैसे यावत्—अधःसप्तम पृथिवी तक जानें।

(प्र० १४)...जो अपर्याप्त सूक्ष्म पृथिवीकायिक जीव अधोलोक क्षेत्र की त्रसनाड़ी के बाहर के क्षेत्र में मरणसमुद्घात करके उर्ध्वलोक क्षेत्र की त्रसनाड़ी के बाहर के क्षेत्र में अपर्याप्त सूक्ष्म पृथिवीकायिकपने उत्पन्न होने योग्य है, वह हे भगवन्! कितने समय की विग्रहगति से उत्पन्न हो ?...वह तीन या चार समय की विग्रहगति से उत्पन्न हो।...ऐसा आप किस कारण से कहते हैं...?...जो अपर्याप्त सूक्ष्म पृ०.........त्रसनाड़ी के बाहर के क्षेत्र में अपर्याप्त सू० पृ० पने एक प्रतर में अनुश्रेणी—समश्रेणी में उत्पन्न होने योग्य है, वह तीन समय की विग्रहगति से उत्पन्न हो, जो विश्रेणी में उत्पन्न होने योग्य है वह चार समय की विग्रहगति से उत्पन्न हो। इसलिए इस कारण से यावत् (तीन या चार समय की विग्रहगति) से उत्पन्न होता है। इसी प्रकार पर्याप्त सूक्ष्म पृथिवीकायिकपने यावत् पर्याप्त सूक्ष्म तेजस्कायिकपने जो उत्पन्न हो उनके लिए भी ऐसा ही समझें।

(प्र० १५)···जो अपर्याप्त सूक्ष्म पृथिवीकायिक अधोलोक क्षेत्र की त्रसनाड़ी के वाहर के क्षेत्र में मरण समुद्घात करके समयक्षेत्र में अपर्याप्त वादर तेजस्कायिकपने उत्पन्न होने योग्य है, वह हे भगवन् ! कितने समय की विग्रहगति से उत्पन्न हो ?···दो या तीन समय की विग्रहगति से उत्पन्न हो।·· ऐसा आप किस कारण कहते हैं ?···मैंने सात श्रेणियां···यावत् अर्धचक्रवाल। यदि वह जीव एक तरफ वक्र श्रेणी से उत्पन्न हो तो दो समय की विग्रहगति से उत्पन्न हो और जो उभयतःवक्र श्रेणी से···वह तीन समय की···हो, इस कारण से ऐसा कहा है। इस प्रकार पर्याप्त वादर तेजस्कायिकों में भी उपपात कहें। अप्कायिक के समान वायुकायिक व वनस्पतिकायिकपने चारों भेदों से उपपात कहें (२०)। इस प्रकार जैसे अपर्याप्त सूक्ष्म पृथिवीकायिक के संवंध में गमक कहा, वैसे पर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक के संवंध में भी गमक कहें और उसी प्रकार उसकी २० स्थानक में उत्पत्ति कहनी (४०)।

(प्र० १६-१८) अधोलोक क्षेत्रको त्रसनाड़ीके वाहरके क्षेत्रमें मरणसमुद्घात करके–इत्यादि पर्याप्त व अपर्याप्त वादर पृथिवीकायिकके संवंधमें भी यही कहना। इसी प्रकार चारों प्रकारके अप्कायिकों के संवंधमें भी कहें (१६०)। दोनों प्रकार के सूक्ष्म तेजस्कायको भी इसी प्रकार जानें २००।···जो अपर्याप्त वादर तेजस्कायिक समयक्षेत्रमें मरणसमुद्घात करके ऊर्ध्वलोक क्षेत्रकी त्रसनाड़ीके वाहरके क्षेत्र में अपर्याप्त सूक्ष्म पृथिवीकायिकपने उत्पन्न होने योग्य है, वह हे भगवन्! कितने समय की विग्रहगतिसे उत्पन्न हो ?···दो समय, तीन या चार समय की विग्रहगति से उत्पन्न हो।···किस हेतुसे आप ऐसा कहते हैं ?···रत्नप्रभाके संवंधमें पूर्वोक्त सात श्रेणियोंके कथनरूप जो हेतु कहा है यावत्—वह हेतु जानें।···जो पर्याप्त वादर तेजस्कायिक समयक्षेत्रमें मरणसमुद्घात करके ऊर्ध्वलोक क्षेत्र की त्रसनाड़ी के वाहरके क्षेत्र में पर्याप्त सूक्ष्म तेजस्कायिकपने उत्पन्न होने योग्य है, वह हे भगवन् ! कितने समय की विग्रहगतिसे उत्पन्न हो ?···वाकी सव वैसे ही जानें।

(प्र० १६-२०)···जो अपर्याप्त वादर तेजस्कायिक समयक्षेत्र–मनुष्यक्षेत्रमें समुद्घात करके समयक्षेत्र में अपर्याप्त वादर तेजस्कायिकपने उत्पन्न होने योग्य है वह हे भगवन् ! कितने समय की विग्रहगतिसे उत्पन्न हो ?···एक, दो या तीन समय की विग्रहगतिसे उत्पन्न हो। ऐसा किस हेतुसे कहा जाता है ?···रत्नप्रभा के संवंध में जो हेतु कहा था वही सात श्रेणिरूप हेतु जानें। इसी प्रकार वादर तेजस्कायिकपने भी जानें। जैसे पृथिवीकायिक में उपपात कहा वैसे वायुकायिकों में और वनस्पतिकायिकोंमें चारों भेदों से उपपात कहें। इस रीति से पर्याप्त वादर तेजस्कायिकका भी इन्हीं स्थानकोंमें उपपात कहें। जैसे वायुकायिक व वनस्पतिकायिक का पृथिवीकायिकपने उपपात कहा है वैसे इसके विपय में भी उपपात

कहना ।।८४६।।···जो अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक ऊर्ध्वलोक क्षेत्र की त्रसनाड़ी के वाहर के क्षेत्र में मरणसमुद्घात करके अधोलोक की त्रसनाड़ी के वाहरके क्षेत्रमें अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिकपने उत्पन्न होने योग्य है, वह हे भगवन् ! कितने समय की विग्रहगति से उत्पन्न हो ?···पूर्ववत् जानें ।

(प्र० २१-२२) ऊर्ध्वलोक क्षेत्र की त्रसनाड़ीके वाहर के क्षेत्रमें मरणसमुद्घात करके अधोलोक क्षेत्र की त्रसनाड़ीके वाहर के क्षेत्रमें उत्पन्न होने वाले (पृथ्वीकायिकादि) के संबंधमें भी वही संपूर्ण गम कहें, यावत्-पर्याप्त वादर वनस्पतिकायिक का पर्याप्त वादर वनस्पतिकायिकोंमें उपपात कहें ।···जो अपर्याप्त सूक्ष्म पृ० लोकके पूर्व चरमांतमें मरणसमुद्घात करके लोक के पूर्वचरमान्त में अपर्याप्त सूक्ष्म पृथिवीकायिकपने उत्पन्न होने योग्य है, वह हे भगवन् ! कितने समय की विग्रहगतिसे उत्पन्न हो ?···एक समय, दो, तीन, या चार समय की विग्रहगतिसे उत्पन्न हो ।···किस हेतुसे ऐसा कहते हैं···?·· मैंने सात श्रेणियां······अर्ध-चक्रवाल । यदि ऋज्वायत श्रेणीसे उत्पन्न हो तो एक समय की विग्रहगतिसे उत्पन्न हो, एकतःवक्र श्रेणीसे···तो दो समय की···, उभयतःवक्रश्रेणीसे···तो जो एक प्रतरमें अनुश्रेणी-समश्रेणीसे उत्पन्न होता है, वह तीन समय की···और जो विश्रेणीमें उत्पन्न···वह चार समय की··· । इस प्रकारसे···ऐसा कहा है । इस प्रकार अपर्याप्त सूक्ष्म पृथिवीकायिक लोकके पूर्व चरमान्त में समुद्घात करके लोकके पूर्व चरमान्तमें ही अपर्याप्त व पर्याप्त सूक्ष्म पृथिवीकायिकोंमें, अपर्याप्त व पर्याप्त सूक्ष्म अप्कायिकोंमें, अपर्याप्त व पर्याप्त सूक्ष्म तेजस्कायिकोंमें, अ० व प० सूक्ष्म वायुकायिकोंमें, अ० व प० वादर वायुकायिकोंमें, तथा अ० व प० सूक्ष्म वनस्पतिकायिकोंमें, इस प्रकार अपर्याप्त व पर्याप्त मिलकर इन १२ स्थानकोंमें क्रमपूर्वक कहें । सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त का इसी प्रकार १२ स्थानकोंमें समग्र उपपात कहें । इस रीतिसे इस गमसे यावत्-पर्याप्त सूक्ष्म वनस्पतिकायिक का पर्याप्त सूक्ष्म वनस्पतिकायिकोंमें ही उपपात कहें ।

(प्र० २३-२४)···जो अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक लोक के पूर्व चरमांतमें समुद्घात करके लोकके दक्षिण चरमांतमें अपर्याप्त सूक्ष्म पृथिवीकायिकपने उत्पन्न होने योग्य है, वह हे भगवन् ! कितने समयकी विग्रह गतिसे उत्पन्न हो ?···वह दो, तीन या चार समयकी विग्रहगतिसे उत्पन्न हो ।···ऐसा किस हेतुसे कहा जाता है ?···मैंने सात श्रेणियां···—···अर्धचक्रवाला । यदि वह जीव एकतःवक्र श्रेणी से उत्पन्न हो तो वह दो समय की विग्रहगतिसे उत्पन्न हो, उभयतःवक्रश्रेणी··· हो तो यदि एक प्रतरमें अनुश्रेणी—समश्रेणीमें उत्पन्न हो तो तीन समय की

विग्रहगतिसे उत्पन्न हो और यदि विश्रेणीमें उत्पन्न होना है तो चार समयकी विग्रहगतिसे उत्पन्न हो।...इस कारणसे ऐसा कहा है। इस रीतिसे इस गमसे पूर्वचरमान्तमें समुद्घातपूर्वक दक्षिण चरमान्तमें उत्पत्ति कहें। यावत् पर्याप्त सूक्ष्म वनस्पतिकायिकका पर्याप्त सूक्ष्म वनस्पतिकायिकोंमें उपपात कहें और सबकी दो, तीन और चार समयकी विग्रहगति कहें।...जो अपर्याप्त सूक्ष्म पृथिवीकायिक-लोकके पूर्व चरमान्तमें समुद्घात करके लोक के पश्चिम चरमान्तमें अपर्याप्त सूक्ष्म पृथिवीकायिकपने उत्पन्न होने योग्य है, वह हे भगवन्! कितने समयकी विग्रह-गतिसे उत्पन्न हो?...वह एक समयकी, दो, तीन या चार समय की विग्रहगतिसे उत्पन्न हो।...ऐसा आप किस हेतु से कहते हैं?...पूर्ववत् जानें। जैसे पूर्व चर-मान्तमें समुद्घात करके पूर्व चरमान्तमें ही उपपात कहा वैसे ही पूर्वचरमान्तमें समुद्घातपूर्वक पश्चिम चरमान्तमें सबका उपपात कहें।

(प्र० २५-२६)...जो अपर्याप्त सूक्ष्म पृथिवीकायिक लोक के पूर्व चरमान्त में मरण समुद्घात करके लोक के उत्तर चरमान्त में अपर्याप्त सूक्ष्म पृथिवीकायिक पने उत्पन्न होने योग्य है वह कितने समय की विग्रहगति से उत्पन्न हो?...जैसे पूर्व चरमान्त में समुद्घातपूर्वक दक्षिण चरमान्त में उपपात कहा वैसे पूर्व चरमान्त में समुद्घातपूर्वक उत्तर चरमान्त में उपपात कहें।...जो अपर्याप्त सूक्ष्म पृथिवीकायिक लोक के दक्षिण चरमान्त में मरणसमुद्घात करके लोक के दक्षिण चरमान्त में ही अपर्याप्त सूक्ष्म पृथिवीकायिकपने उत्पन्न होने योग्य है, वह कितने समय की विग्रहगति से उत्पन्न हो?...जैसे पूर्व चरमांत में समुद्घात करके पूर्व चरमान्त में ही उपपात कहा वैसे ही दक्षिण चरमान्त में समुद्घात व दक्षिण चरमान्त में ही उपपात कहें—इत्यादि सब पूर्ववत् कहें। यावत् पर्याप्त सूक्ष्म वनस्पतिकायिक का पर्याप्त सूक्ष्म वनस्पतिकायिकों में दक्षिण चरमान्त में उपपात कहा वैसे ही दक्षिण चरमांत में समुद्घात व पश्चिम चरमान्त में उपपात कहें। विशेष यह कि दो समय, तीन या चार समय की विग्रहगति जाननी और बाकी सब उसी तरह जानना। जैसे स्वस्थान में कहा वैसे दक्षिणचरमान्त में समुद्घात व उत्तर चरमान्त में उपपात कहें और एक, दो, तीन या चार समय की विग्रहगति जानें। पश्चिम चरमान्त की भांति पूर्वचरमान्त के विषय में भी जानें। उसी प्रकार दो, तीन या चार समय की विग्रहगति जानें। पश्चिम चरमान्त में समुद्-घात करके और पश्चिम चरमान्त में उत्पन्न होने वाले पृथिवीकायिक के संबंध में जैसे स्वस्थान में कहा वैसे जानें। उत्तर चरमान्त में उत्पन्न होने वाले जीवा-श्रयी एक समय की विग्रहगति नहीं। बाकी सब उसी प्रकार जानें। पूर्व चरमांत के संबंध में स्वस्थान के समान समझें। दक्षिण चरमान्त में एक समय की विग्रह-गति नहीं और बाकी सब वैसे ही समझें। उत्तर में समुद्घात को प्राप्त हुए और

उत्तर में उत्पन्न होने वाले जीवों के सम्वन्ध में स्वस्थानके समान जानें। उत्तर में समुद्घात को प्राप्त हुए और पूर्व में उत्पन्न होने वाले पृथिवीकायिकादि के संवंध में भी इसी प्रकार समझें। विशेष यह कि एक समय की विग्रहगति नहीं। उत्तर में समुद्घात को प्राप्त हुए और दक्षिणमें उत्पन्न होने वाले जीवों के संवंध में स्वस्थान के समान जानें। उत्तर में समुद्घात् को प्राप्त हुए और पश्चिम में उत्पन्न होने वाले जीवों के आश्रयी एक समय की विग्रहगति नहीं, वाकी सव उसी प्रकार जानें। यावत् पर्याप्त सूक्ष्म वनस्पतिकायिक का पर्याप्त सूक्ष्म वनस्पतिकायिकों में उपपात कहें।

(प्र० २७–३०)···पर्याप्त वादर पृथिवीकायिकों के स्थान कहां कहे हैं? ···उनके स्थान स्वस्थान की अपेक्षा आठ पृथ्वियों में हैं—इत्यादि स्थानपद में कहे अनुसार जानें। यावत्—पर्याप्त व अपर्याप्त वे सव सूक्ष्म वनस्पतिकायिक एक प्रकारके हैं, उनमें कोई भी विशेष या भिन्नता नहीं। आयुष्मन् श्रमण! वे सर्वलोक में व्याप्त हैं।···अपर्याप्त सूक्ष्म पृथिवीकायिकों की कितनी कर्मप्रकृतियां कही हैं?···उनकी आठ कर्मप्रकृतियां कही हैं···—ज्ञानावरणीय यावत् अंतराय। इस प्रकार चारों भेदों से जैसे एकेन्द्रिय शतक में कहा है, वैसे यावत् पर्याप्त वादर वनस्पतिकायिक तक जानें।···अपर्याप्त सूक्ष्म पृ० कितनी कर्मप्रकृतियां बांधते हैं?···सात या आठ कर्मप्रकृतियां बांधते हैं—इत्यादि जैसे एकेन्द्रियशतक में कहा है वैसे यावत्—पर्याप्त वादर वनस्पतिकायिक तक जानें।··· अ० सूक्ष्म पृ० कितनी कर्मप्रकृतियों को वेदें?···वे १४ कर्मप्रकृतियों को वेदते हैं···—ज्ञानावरणीय (आदि आठ प्रकृतियां, वेइन्द्रियादि चार आवरण, स्त्रीवेद और पुरुषवेद प्रतिवन्धक कर्म)—इत्यादि जैसे एकेन्द्रिय शतक में कहा है उसी प्रकार यावत्—पुरुषवेद प्रतिबन्धक कर्मप्रकृति तक यावत्--पर्याप्त वादर वनस्पतिकायिक तक जानें।

(प्र० ३१–३३)···एकेन्द्रिय जीव कहांसे आकर उत्पन्न हों? क्या नैरयिकों से आकर उत्पन्न हों इत्यादि जैसे व्युत्क्रान्ति पद में पृथिवीकायिकों का उपपात कहा है, वैसे यहां जानें।··· एकेन्द्रिय जीवों के कितने समुद्घात कहे हैं?···उनके चार समुद्घात कहे हैं···—१ वेदना समुद्घात यावत् ४ वैक्रियसमुद्घात।···क्या तुल्य स्थिति वाले—समान आयुष्य वाले एकेन्द्रिय जीव तुल्य व विशेषाधिक कर्म का वन्ध करते हैं?···परस्पर भिन्न विशेषाधिक कर्मवन्ध करते हैं? भिन्न २ स्थिति वाले परस्पर तुल्य विशेषाधिक कर्मवंध करते हैं, या भिन्न २ स्थिति वाले परंस्पर भिन्न विशेषाधिक कर्मवंव करते हैं?···१ कितनेक तुल्य स्थिति वाले एकेन्द्रिय परस्पर तुल्य विशेषाधिक कर्मवन्ध करते हैं, २ कितनेक तुल्य स्थिति वाले भिन्न २

विग्रहगतिसे उत्पन्न हो और यदि विश्रेणीमें उत्पन्न होना है तो चार समयकी विग्रहगतिसे उत्पन्न हो।···इस कारणसे ऐसा कहा है। इस रीतिसे इस गमसे पूर्वचरमान्तमें समुद्घातपूर्वक दक्षिण चरमान्तमें उत्पत्ति कहें। यावत् पर्याप्त सूक्ष्म वनस्पतिकायिकका पर्याप्त सूक्ष्म वनस्पतिकायिकोंमें उपपात कहें और सबकी दो, तीन और चार समयकी विग्रहगति कहें।··जो अपर्याप्त सूक्ष्म पृथिवीकायिक-लोकके पूर्व चरमान्तमें समुद्घात करके लोक के पश्चिम चरमान्तमें अपर्याप्त सूक्ष्म पृथिवीकायिकपने उत्पन्न होने योग्य है, वह हे भगवन्! कितने समयकी विग्रह-गतिसे उत्पन्न हो?···वह एक समयकी, दो, तीन या चार समय की विग्रहगतिसे उत्पन्न हो।···ऐसा आप किस हेतु से कहते हैं?···पूर्ववत् जानें। जैसे पूर्व चर-मान्तमें समुद्घात करके पूर्व चरमान्तमें ही उपपात कहा वैसे ही पूर्वचरमान्तमें समुद्घातपूर्वक पश्चिम चरमान्तमें सबका उपपात कहें।

(प्र० २५-२६)···जो अपर्याप्त सूक्ष्म पृथिवीकायिक लोक के पूर्व चरमान्त में मरण समुद्घात करके लोक के उत्तर चरमान्त में अपर्याप्त सूक्ष्म पृथिवीकायिक पने उत्पन्न होने योग्य है वह कितने समय की विग्रहगति से उत्पन्न हो?···जैसे पूर्व चरमान्त में समुद्घातपूर्वक दक्षिण चरमान्त में उपपात कहा वैसे पूर्व चरमान्त में समुद्घातपूर्वक उत्तर चरमान्त में उपपात कहें।···जो अपर्याप्त सूक्ष्म पृथिवीकायिक लोक के दक्षिण चरमान्त में मरणसमुद्घात करके लोक के दक्षिण चरमान्त में ही अपर्याप्त सूक्ष्म पृथिवीकायिकपने उत्पन्न होने योग्य है, वह कितने समय की विग्रहगति से उत्पन्न हो?···जैसे पूर्व चरमांत में समुद्घात करके पूर्व चरमान्त में ही उपपात कहा वैसे ही दक्षिण चरमान्त में समुद्घात व दक्षिण चरमान्त में ही उपपात कहें—इत्यादि सब पूर्ववत् कहें। यावत् पर्याप्त सूक्ष्म वनस्पतिकायिक का पर्याप्त सूक्ष्म वनस्पतिकायिकों में दक्षिण चरमान्त में उपपात कहा वैसे ही दक्षिण चरमांत में समुद्घात व पश्चिम चरमान्त में उपपात कहें। विशेष यह कि दो समय, तीन या चार समय की विग्रहगति जाननी और बाकी सब उसी तरह जानना। जैसे स्वस्थान में कहा वैसे दक्षिणचरमान्त में समुद्घात व उत्तर चरमान्त में उपपात कहें और एक, दो, तीन या चार समय की विग्रहगति जानें। पश्चिम चरमान्त की भांति पूर्वचरमान्त के विषय में भी जानें। उसी प्रकार दो, तीन या चार समय की विग्रहगति जानें। पश्चिम चरमान्त में समुद्-घात करके और पश्चिम चरमान्त में उत्पन्न होने वाले पृथिवीकायिक के संबंध में जैसे स्वस्थान में कहा वैसे जानें। उत्तर चरमान्त में उत्पन्न होने वाले जीवा-श्रयी एक समय की विग्रहगति नहीं। बाकी सब उसी प्रकार जानें। पूर्व चरमांत के संबंध में स्वस्थान के समान समझें। दक्षिण चरमान्त में एक समय की विग्रह-गति नहीं और बाकी सब वैसे ही समझें। उत्तर में समुद्घात को प्राप्त हुए और

उत्तर में उत्पन्न होने वाले जीवों के सम्बन्ध में स्वस्थानके समान जानें। उत्तर में समुद्घात को प्राप्त हुए और पूर्व में उत्पन्न होने वाले पृथिवीकायिकादि के संबंध में भी इसी प्रकार समझें। विशेष यह कि एक समय की विग्रहगति नहीं। उत्तर में समुद्घात को प्राप्त हुए और दक्षिणमें उत्पन्न होने वाले जीवों के संबंध में स्वस्थान के समान जानें। उत्तर में समुद्घात् को प्राप्त हुए और पश्चिम में उत्पन्न होने वाले जीवों के आश्रयी एक समय की विग्रहगति नहीं, वाकी सब उसी प्रकार जानें। यावत् पर्याप्त सूक्ष्म वनस्पतिकायिक का पर्याप्त सूक्ष्म वनस्पतिकायिकों में उपपात कहें।

(प्र० २७–३०)···पर्याप्त वादर पृथिवीकायिकों के स्थान कहां कहे हैं? ···उनके स्थान स्वस्थान की अपेक्षा आठ पृथ्वियों में हैं—इत्यादि स्थानपद में कहे अनुसार जानें। यावत्—पर्याप्त व अपर्याप्त वे सव सूक्ष्म वनस्पतिकायिक एक प्रकारके हैं, उनमें कोई भी विशेष या भिन्नता नहीं। आयुष्मन् श्रमण! वे सर्वलोक में व्याप्त हैं।···अपर्याप्त सूक्ष्म पृथिवीकायिकों की कितनी कर्मप्रकृतियां कही हैं?···उनकी आठ कर्मप्रकृतियां कही हैं···—ज्ञानावरणीय यावत् अंतराय। इस प्रकार चारों भेदों से जैसे एकेन्द्रिय शतक में कहा है, वैसे यावत् पर्याप्त बादर वनस्पतिकायिक तक जानें।···अपर्याप्त सूक्ष्म पृ० कितनी कर्म-प्रकृतियां बांधते हैं?···सात या आठ कर्मप्रकृतियां बांधते हैं—इत्यादि जैसे एके-न्द्रियशतक में कहा है वैसे यावत्—पर्याप्त वादर वनस्पतिकायिक तक जानें।··· अ० सूक्ष्म पृ० कितनी कर्मप्रकृतियों को वेदें?···वे १४ कर्मप्रकृतियों को वेदते हैं···—ज्ञानावरणीय (आदि आठ प्रकृतियां, वेइन्द्रियादि चार आवरण, स्त्रीवेद और पुरुषवेद प्रतिवन्धक कर्म)—इत्यादि जैसे एकेन्द्रिय शतक में कहा है उसी प्रकार यावत्—पुरुषवेद प्रतिबन्धक कर्मप्रकृति तक यावत्--पर्याप्त वादर वनस्पति-कायिक तक जानें।

(प्र० ३१–३३)···एकेन्द्रिय जीव कहांसे आकर उत्पन्न हों? क्या नैरयिकों से आकर उत्पन्न हों इत्यादि जैसे व्युत्क्रान्ति पद में पृथिवीकायिकों का उपपात कहा है, वैसे यहां जानें।··· एकेन्द्रिय जीवों के कितने समुद्घात कहे हैं?···उनके चार समुद्घात कहे हैं···—१ वेदना समुद्घात यावत् ४ वैक्रियसमुद्घात।···क्या तुल्य स्थिति वाले—समान आयुष्य वाले एकेन्द्रिय जीव तुल्य व विशेषाधिक कर्म का वन्ध करते हैं?···परस्पर भिन्न विशेषाधिक कर्मवन्ध करते हैं? भिन्न २ स्थिति वाले परस्पर तुल्य विशेषाधिक कर्मबंध करते हैं, या भिन्न २ स्थिति वाले परस्पर भिन्न विशेषाधिक कर्मबंध करते हैं?···१ कितनेक तुल्य स्थिति वाले एकेन्द्रिय परस्पर तुल्य विशेषाधिक कर्मवन्ध करते हैं, २ कितनेक तुल्य स्थिति वाले भिन्न २

विशेषाधिक···, ३ कितनेक भिन्न २ स्थिति वाले तुल्य विशेपाधिक···और ४ कितनेक भिन्न २ स्थिति वाले भिन्न २ विशेपाधिक कर्मवन्ध करते हैं।···किस हेतु से, आप ऐसा कहते हैं···?··· एकेन्द्रिय जीव चार प्रकार के···—१ कितनेक समान आयु वाले व साथ उत्पन्न हुए, २ कितनेक समान आयु वाले व भिन्न २ समय में उत्पन्न हुए, ३ कितनेक भिन्न २ आयुष्य वाले व साथ उत्पन्न हुए और ४ कितनेक भिन्न २ आयुष्य वाले व भिन्न २ समय में उत्पन्न हुए। उनमें जो समायु व समोपपन्नक होते हैं, वे तुल्य स्थिति वाले हैं और वे तुल्य विशेपाधिक कर्मबंध करते हैं। जो समायु विपमोपपन्नक हैं वे तुल्य···और भिन्न विशेपाधिक···। जो विपमायु और समोपपन्नक हैं वे भिन्न २ स्थिति वाले हैं और तुल्य विशेपाधिक···तथा जो विषमायु व विपमोपपन्नक हैं वे भिन्न २ स्थिति वाले हैं, और भिन्न २ विशेपाधिक कर्मवन्ध करते हैं।···इस कारण से यावत् भिन्न २ विशेपाधिक कर्मबंध करते हैं। हे भगवन्!···यावत् विचरते हैं ॥८५०॥

॥ ३४ वें शतक के प्रथम एकेन्द्रिय शतक का पहला उद्देशक समाप्त ॥

—०—

द्वितीय उद्देशक

(प्र० १-३)···अनन्तरोपपन्न एकेन्द्रिय कितने प्रकार के कहे हैं?···पांच प्रकार के···—पृथिवीकायिक इत्यादि। उनके दो भेद जैसे एकेन्द्रिय शतकों में कहे हैं, वैसे यावत्—वादर वनस्पतिकायिक तक कहें। अनन्तरोपपन्न वादर पृथ्वीकायिकों के स्थान कहां कहे हैं?···स्वस्थानकी अपेक्षा आठों पृथिवियों में, वह इस प्रकार—रत्नप्रभामें—इत्यादि जैसे स्थानपदमें कहा है, वैसे यावत्—द्वीपों में और समुद्रोंमें अनन्तरोपपन्न पृथिवीकायिकोंके स्थान कहे हैं। उपपात की अपेक्षा सर्वलोकमें और समुद्घात आश्रयी सर्वलोक में हैं। स्वस्थानकी अपेक्षा वे लोकके असंख्यातवें भागमें रहते हैं। अनन्तरोपपन्न सूक्ष्म पृथिवीकायिक सभी एक प्रकारकी विशेपता या भिन्नता रहित हैं। तथा हे आयुष्मन् श्रमण! वे सर्वलोक में व्याप्त हैं। इस रीतिसे इस क्रम से सभी एकेन्द्रियों के संबंधमें कहें। उन सब के स्वस्थान स्थानपदमें कहे अनुसार जानें। जैसे पर्याप्त वादर एकेन्द्रियोंका उपपात, समुद्घात व स्वस्थान कहे हैं, वैसे सभी सूक्ष्म एकेन्द्रियोंके यावत्—वनस्पतिकायिक तक जानें।···अनन्तरोपपन्न सूक्ष्म पृथिवीकायिकों की कितनी कर्मप्रकृतियां कही हैं?···उनकी आठ कर्मप्रकृतियां हैं—इत्यादि एकेन्द्रिय शतकों में अनन्तरोपपन्न उद्देशकमें कहे अनुसार कर्मप्रकृतियां कहें। यावत्—उसी प्रकार बांधते हैं, उसी रीतिसे वेदते हैं, यावत्—अनन्तरोपपन्न वादर वनस्पतिकायिक तक समझना।

(प्र० ४-६)···अनन्तरोपपन्न एकेन्द्रिय कहांसे आकर उत्पन्न होते हैं ?··· जैसे औधिक-सामान्य उद्देशकमें कहा है वैसे यहां जानें।···अनन्तरोपपन्न एकेन्द्रियों के कितने समुद्घात कहे हैं ?···उनके दो समुद्घात कहे हैं···—वेदना समुद्घात व कषाय०।···तुल्य स्थितिवाले–समान आयुष्य वाले अनन्तरोपपन्न एकेन्द्रिय क्या परस्पर तुल्य विशेषाधिक कर्म वांधते हैं–इत्यादि पूर्ववत् पृच्छा।···कितनेक तुल्य स्थिति वाले एकेन्द्रिय तुल्य विशेषाधिक कर्म वांधते हैं, कितनेक···भिन्न २ विशेषाधिक कर्म बांधते हैं।···ऐसा किस हेतुसे कहते हैं यावत् भिन्न २ विशेषाधिक कर्म वांधते हैं ?···अनन्तरोपपन्नक एकेन्द्रिय दो प्रकार के···—समायु समोपपन्नक और समायु विषमोपपन्नक। उनमें जो समायु समोपपन्नक हैं, वे तुल्य स्थिति वाले तुल्य विशेषाधिक कर्म बांधते हैं, और जो समायु विषमोपपन्नक हैं, वे तुल्य स्थिति वाले और भिन्न २ विशेषाधिक कर्म वांधते हैं। इस कारण से···। हे भगवन् !···॥८५१॥

॥ ३४ वें शतक के प्रथम एकेन्द्रिय शतक का दूसरा उद्देशक समाप्त ॥

—०—

तृतीय उद्देशक

(प्र० १-३) भगवन् ! परंपरोपपन्न एकेन्द्रिय कितने प्रकार के कहे हैं ?··· वे पांच प्रकारके···–पृथिवीकायिक आदि उनके चार भेद यावत् वनस्पतिकायिक तक जानें।···जो परंपरोपपन्न अपर्याप्त सूक्ष्म पृथिवीकायिक इस रत्नप्रभा पृथिवीके पूर्व चरमान्त में मरण समुद्घात करके इस रत्नप्रभा पृथिवी के यावत् पश्चिम चरमान्त में अपर्याप्त सूक्ष्म पृथिवीकायिकपने उत्पन्न होने योग्य है, वह भगवन् ! कितने समयकी विग्रहगति से उत्पन्न हो ?···इस रीतिसे इस अभिलाप से जैसे प्रथम उद्देशक कहा वैसे यावत्—लोक चरमान्त तक जानना।··· परंपरोपपन्न वादर पृथिवीकायिकों के स्थान कहां कहे हैं ?···स्वस्थान की अपेक्षा आठों पृथिवियों में हैं। इस रीति से इस अभिलापसे जैसे प्रथम उद्देशक में कहा है, वैसे यावत् तुल्य स्थिति वालों तक जानें। हे भगवन् !···।

॥ ३४ वें शतक के प्रथम एकेन्द्रिय शतक का तीसरा उद्देशक समाप्त ॥

—०—

४—११ उद्देशक

इसी प्रकार वाकीके भी आठ उद्देशक यावत् 'अचरम' तक कहें। परन्तु विशेष यह कि अनन्तर उद्देशक अनन्तर जैसे व परंपर उद्देशक परंपर समान

जानें। चरम व अचरम के विषयमें भी इसी प्रकार जानें। इस प्रकार ये ११ उद्देशक कहने ॥८५२॥

॥ ३४ वें शतकके प्रथम एकेन्द्रिय शतकके ४ से ११ उद्देशक समाप्त ॥

॥ प्रथम एकेन्द्रिय श्रेणी शतक समाप्त ॥

द्वितीय शतक

(प्र० १-३)···कृष्णलेश्या वाले एकेन्द्रिय कितने प्रकार के कहे हैं?···पांच प्रकार के···—···उनके चार भेद *कृष्णलेश्या वाले एकेन्द्रिय शतकमें कहे* अनुसार यावत् वनस्पतिकायिक तक जानें।···जो कृष्णलेश्या वाला अपर्याप्त सूक्ष्म पृथिवीकायिक इस रत्नप्रभा पृथिवीके पूर्व चरमान्तमें समुद्घात करके पश्चिम चरमान्तमें उत्पन्न होने योग्य है वह कितने समय की विग्रहगतिसे उत्पन्न हो?··· इत्यादि पाठ से जैसे औधिक उद्देशकमें कहा है, वैसे यावत्—लोकके चरमान्त तक समझना। *सर्वत्र कृष्णलेश्या वालोंमें उपपात कहें।···कृष्णलेश्या वाले अपर्याप्त* वादर पृथिवीकायिकोंके स्थान कहां कहे हैं?···इस अभिलाप से औधिक उद्देशकमें कहे अनुसार यावत् 'तुल्य स्थिति वालों' तक समझें। हे भगवन्!···। इस अभिलाप से जैसे प्रथम श्रेणी शतक कहा वैसे दूसरे श्रेणी शतकके ११ उद्देशक कहें।

॥ दूसरा एकेन्द्रिय श्रेणी शतक समाप्त ॥

३—५ शतक

इसी प्रकार नीललेश्या वालों के सम्बन्ध में तीसरा शतक कहें। कापोतलेश्या वालों के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार चौथा शतक कहें और भवसिद्धिक एकेन्द्रियोंके सम्बन्धमें भी इसी प्रकार पांचवां शतक कहें।

॥ ३४ वें शतकके ३-५ शतक समाप्त ॥

छठा शतक

(प्र० १-५) भगवन्! कृष्णलेश्या वाले भवसिद्धिक एकेन्द्रिय कितने प्रकार के कहे हैं?···जैसे औधिक उद्देशक में कहा है वैसे जानें।···अनन्तरोपपन्न कृष्णलेश्या वाले भ० ए० कितने प्रकार के···?···अनन्तरोपपन्नक संबंधी औधिक उद्देशकमें कहे अनुसार जानें।···परंपरोपपन्न कृष्णलेश्या वाले भ० ए० कितने···?···पांच प्रकार के···—···इस प्रकार औधिक चारों भेद यावत् वनस्पतिकायिक तक कहें। ···जो परंपरोपपन्न कृष्णलेश्या वाला भवसिद्धिक अपर्याप्त सूक्ष्म पृथिवीकायिक इस रत्नप्रभा पृथिवी के (पूर्व चरमान्तमें मरणसमुद्घात करके पश्चिम चरमान्त

में उत्पन्न हो तो कितने समय की विग्रहगतिसे उत्पन्न हो ?) इत्यादि पूर्वोक्त पाठ से औघिक उद्देशक लोक चरमान्त तक कहें। सर्वत्र कृष्णलेश्या वाले भवसिद्धिकों में उपपात कहें।…परंपरोपपन्न कृष्णलेश्या वाले भवसिद्धिक पर्याप्त बादर पृथिवीकायिकोंके स्थान कहां कहे हैं ?…ऐसे इस अभिलापसे तुल्य स्थिति वालों तक औघिक उद्देशक कहें। इस रीतिसे इस अभिलापसे कृष्णलेश्या वाले भवसिद्धिक एकेंद्रियोंके संबंधमें भी उसी प्रकार ११ उद्देशक सहित छठा शतक कहना।

॥ ३४ वें शतक का छठा शतक समाप्त ॥

७—१२ शतक

नीललेश्या वाले भवसिद्धिक एकेन्द्रियों के संबंधमें सातवां शतक कहें ॥३४-७॥ इसी रीतिसे कापोतलेश्या वाले भवसिद्धिक एकेन्द्रियोंके संबंधमें आठवां शतक कहना ॥३४-८॥ जैसे भवसिद्धिकों के संबंधमें चार शतक कहे हैं, वैसे अभवसिद्धिकों के संबंधमें भी चार शतक कहें। पर विशेष यह कि चरम और अचरमके अतिरिक्त बाकी के नौ उद्देशक कहें। बाकी सब उसी तरह जानें। इस प्रकार ये १२ एकेन्द्रिय श्रेणी शतक कहे। हे भगवन् !…॥८५३॥

॥ ३४ वें शतकके ७ से १२ एकेन्द्रिय श्रेणी शतक समाप्त ॥

पैंतीसवां शतक—प्रथम० उद्देशक

(प्र० १-२) भगवन् ! कितने महायुग्म (महाराशियां) कहे हैं ? गौतम ! १६ महायुग्म कहे हैं…—१ कृतयुग्म कृतयुग्म, २ कृतयुग्म त्र्योज, ३ कृतयुग्म द्वापरयुग्म, ४ कृतयुग्म कल्योज, ५ त्र्योज कृतयुग्म, ६ त्र्योज त्र्योज, ७ त्र्योज द्वा०, ८ त्र्योज क०, ९ द्वा० कृतयुग्म, १० द्वा० त्र्योज, ११ द्वा० द्वा०, १२ द्वा० कल्योज, १३ कल्योज कृतयुग्म, १४ कल्योज त्र्योज, १५ क० द्वा०, १६ कल्योज कल्योज। …आप किस हेतु से ऐसा कहते हैं…?…जिस राशि को चार संख्या के अपहारसे अपहार करते हुए चार बाकी रहे, व उस राशिके अपहारसमय भी कृतयुग्म हों तो वह (राशि) कृतयुग्म कृतयुग्म कहलाती है १। जिस राशि…तीन बाकी रहे व उस राशि…कृतयुग्म हों तो वह राशि कृतयुग्म त्र्योज…२। जिस राशि…दो बाकी रहे…कृतयुग्म हों तो वह राशि कृतयुग्म द्वापरयुग्म…३। जिस राशि…… एक बाकी रहे…कृतयुग्म हों तो वह राशि कृतयुग्म कल्योज…४। जिस राशि… चार बाकी रहे व उस राशिके अपहारसमय त्र्योज हों तो वह त्र्योज कृतयुग्म…५। जिस राशि…तीन बाकी रहे…त्र्योज हों तो वह त्र्योज त्र्योज…६। जिस राशि…

दो बाकी रहे···त्र्योज हों तो वह राशि त्र्योज द्वापरयुग्म···७। जिस राशि···एक बाकी रहे···त्र्योज हों तो वह राशि त्र्योज कल्योज ··८। जिस राशि···चार बाकी रहे और उस राशिके अपहार-समय द्वापरयुग्म हों तो वह द्वापर कृतयुग्म कहलाती है९। जिस राशि···तीन बाकी रहे···द्वापरयुग्म हों तो वह द्वा० त्र्योज···१०। जिस राशि···दो बाकी रहे···द्वापरयुग्म हों तो वह द्वा० द्वापरयुग्म···११। जिस राशि ···एक बाकी रहे···द्वापरयुग्म हों तो वह द्वा० कल्योज···१२। जिस राशि···चार बाकी रहे और उस राशिके अपहारसमय कल्योज हों तो वह कल्योज कृतयुग्म···१३। जिस राशि···तीन बाकी रहे···कल्योज हों तो वह कल्योज त्र्योज···१४। जिस राशि···दो बाकी रहे···कल्योज हों तो वह कल्योज द्वा०···१५। जिस राशि··· एक बाकी रहे···कल्योज हों, तो वह कल्योज कल्योज कहलाती है १६। इस हेतुसे यावत्—कल्योज कल्योज तक १६ महायुग्म कहे हैं ॥८५४॥

(प्र० ३-७)···कृतयुग्म कृतयुग्म राशिरूप एकेन्द्रिय कहां से आकर उत्पन्न होते हैं ? क्या नैरयिकों से उत्पन्न होते हैं—इत्यादि प्रश्न।···जैसे उत्पलोद्देशकमें उपपात कहा है उसी प्रकार यहां उपपात कहना।···वे जीव एक समय में कितने उत्पन्न हों ?···१६, संख्याता या असंख्याता या अनन्त जीव एक समय में उत्पन्न होते हैं।···वे जीव समय २ में अपहरित हों तो कितने काल में खाली हों ?··· वे जीव समय २ में अनन्त अपहरित हों और अनन्त उत्सर्पिणी और अनंत अवसर्पिणी तक अपहरित हों तो भी वे खाली न हों। उनकी ऊंचाई उत्पलोद्देशक में कहे अनुसार जानें।···क्या वे (एकेन्द्रिय) ज्ञानावरणीय कर्म के बंधक हैं या अबंधक हैं ?···वे बंधक हैं, पर अबंधक नहीं। इस प्रकार आयुष्य के सिवाय शेष कर्मों के विषय में जानना, वे आयुष्य के बंधक भी हैं व अबंधक भी हैं।···वे जीव ज्ञानावरणीय के वेदक हैं—इत्यादि प्रश्न।···वे वेदक हैं, पर अवेदक नहीं। इसी प्रकार सभी कर्मों के संबंधमें समझें।

(प्र० ८-९)···क्या वे जीव साता—सुखके वेदक हैं या असाता—दुःखके वेदक हैं ?···वे सातावेदक हैं व असाता-वेदक भी है। जैसे उत्पल उद्देशकमें कर्म-सम्बन्धी जो परिपाटी कही है, वह यहां जानें। वे सभी कर्मों के उदयी हैं, पर अनुदयी नहीं। छः कर्मों के उदीरक हैं, पर अनुदीरक नहीं। वेदनीय और आयुष्य कर्मके उदीरक भी हैं और अदीरक भी हैं।···क्या वे जीव कृष्णलेश्या वाले हैं— इत्यादि प्रश्न।···वे कृष्णलेश्या वाले, नील०, कापोत० और तेजोलेश्या वाले हैं। वे सम्यग्दृष्टि नहीं, सम्यग्मिथ्यादृष्टि नहीं, पर मिथ्यादृष्टि हैं। ज्ञानी नहीं, अज्ञानी हैं और अवश्य दो अज्ञान वाले हैं···—मतिअज्ञान वाले व श्रुत०। वे मनोयोग वाले नहीं, वचनयोग वाले नहीं, मात्र काययोग वाले हैं। साकार उपयोग वाले हैं व अनाकार उपयोग वाले भी हैं।

(प्र० १०-११)···उन एकेन्द्रिय जीवोंके शरीर कितने वर्ण वाले होते हैं—इत्यादि उत्पलोद्देशकमें कहे अनुसार सर्व अर्थ प्रश्न करें।···इत्यादि उत्पलोद्देशक में कहे अनुसार [उनके शरीर पांच वर्ण, पांच रस, दो गंध और आठ स्पर्श वाले] जानें। वे उच्छ्वास वाले, निःश्वास वाले व उच्छ्वासनिःश्वास विना के भी हैं। आहारक व अनाहारक हैं। सर्वविरति वाले व देशविरति वाले नहीं, पर अविरति वाले हैं। क्रिया वाले हैं, पर अक्रिय नहीं। सात प्रकारके कर्म के बंधक हैं और आठ प्रकारके कर्मके बंधक हैं। आहार संज्ञाके उपयोग वाले हैं यावत् परिग्रह संज्ञाके उपयोग वाले हैं। क्रोधकषाय वाले यावत् लोभकषाय वाले हैं। स्त्रीवेद वाले नहीं, पुरुषवेद वाले नहीं, पर नपुंसकवेद वाले हैं। स्त्रीवेदबंधक हैं, पुरुषवेदबंधक हैं और नपुंसकवेदबंधक हैं। संज्ञी (मन संज्ञा वाले) नहीं, पर असंज्ञी हैं। इन्द्रिय वाले हैं और एकेन्द्रिय हैं।

वे कृतयुग्म कृतयुग्म राशिरूप एकेन्द्रिय काल से कहां तक हों? ···वे जघन्य एक समय उत्कृष्ट अनन्त उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी तक वनस्पतिकायिक के काल पर्यन्त हों। संवेध न कहें। उत्पल उद्देशक में कहे अनुसार आहार कहें। पर विशेष यह कि वे दिशा का प्रतिवन्ध न हो तो छहों दिशाओं में से आया हुआ आहार ग्रहण करते हैं, और यदि प्रतिवन्ध हो तो कदाचित् तीन दिशाओं में से, चार या पांच दिशाओं में से आए आहार को ग्रहण करते हैं। वाकी सव उसी प्रकार जानें। उनकी स्थिति जघन्य एक समय की, उत्कृष्ट २२ हजार वर्ष की है। उनके पहले के चार समुद्घात होते हैं। वे सव मारणान्तिक समुद्घात से मरते हैं और उसके सिवाय भी मरते हैं, उत्पलोद्देशक में कहे अनुसार उद्वर्तना कहें।

(प्र० १२-१६)···क्या सभी प्राण यावत् सभी सत्व कृतयुग्म कृतयुग्म राशिरूप एकेन्द्रियपने पहले उत्पन्न हुए हैं?···हां, अनेक वार अथवा अनन्त वार पहले उत्पन्न हुए हैं।···कृतयुग्म त्र्योज राशिरूप एकेन्द्रिय कहां से आकर उत्पन्न होते हैं?···पूर्ववत् उपपात कहें।···वे जीव एक समय में कितने उत्पन्न होते हैं?··· १६, संख्याता, असंख्याता या अनन्त उत्पन्न होते हैं। वाकी सव कृतयुग्म कृतयुग्म राशिप्रमाण एकेन्द्रियों के संबंध में जैसे कहा वैसे यावत्—'पहले अनन्त वार उत्पन्न हुए हैं' यहां तक जानें।···कृतयुग्मद्वापरयुग्म प्रमाण एकेन्द्रिय कहां से आकर उत्पन्न होते हैं?···उनका उपपात उसी प्रकार जानें।···वे जीव एक समय में कितने उत्पन्न होते हैं?···वे एक समय में १८, संख्याता, असंख्याता या अनन्त उत्पन्न होते हैं। वाकी सव यावत् 'पहले अनन्त वार उत्पन्न हुए हैं' यहां तक उसी प्रकार जानें।

(प्र० १७–२०)···कृतयुग्म कल्योज राशिप्रमाण एकेन्द्रिय कहां से आकर उत्पन्न होते हैं ?···उनका उपपात वैसे ही जानें। उनका परिमाण—१७, संख्याता, असंख्याता या अनन्त उत्पन्न होते हैं। बाकी सब यावत् 'पहले अनन्त बार उत्पन्न हुए हैं, यहां तक वैसे ही जानें।···त्र्योज कृतयुग्म राशिप्रमाण एकेन्द्रिय कहां से आकर उत्पन्न होते हैं ?···उपपात वैसे ही जानें। उनका परिमाण एक समय में १२, संख्याता, असंख्याता या अनन्त उत्पन्न होते हैं। बाकी सब वैसे ही जानें। यावत्—'पहले अनन्त बार उत्पन्न हुए हैं'।··· त्र्योज त्र्योज राशिरूप एकेन्द्रिय कहां से आकर उत्पन्न होते है ?···उपपात पूर्ववत् जानें। परिमाण—प्रतिसमय पंद्रह, संख्याता, असंख्याता या अनन्त उत्पन्न होते हैं। बाकी सब उसी प्रकार जानें। यावत् 'पहले अनन्त बार उत्पन्न हुए हैं'। इस प्रकार इन १६ महायुग्मों में एक ही प्रकार का गम जानना। मात्र परिमाण में विशेपता है—त्र्योज द्वापरयुग्म में परिमाण १४, संख्याता, असंख्याता या अनन्त उत्पन्न होते हैं। त्र्योजकल्योज में १३, सं०, असं०······। द्वापरयुग्म कृत-युग्म में आठ, सं०, असं०······। द्वापरयुग्म त्र्योज में ११,······। द्वापरद्वापर-युग्म में १०,······। द्वा० कल्योज में ६,······। कल्योज कृतयुग्म में चार,······। कल्योज त्र्योज में सात,······। कल्योज द्वापरयुग्म में छः, सं०, असं० या अनंत उत्पन्न होते हैं।······कल्योज कल्योज राशिप्रमाण एकेन्द्रिय कहां से आकर उत्पन्न होते हैं ?···उपपात पूर्ववत् जानना। परिमाण पांच, संख्याता, असंख्याता या अनन्त उत्पन्न होते हैं।······बाकी सब यावत्—'पहले अनन्त बार उत्पन्न हुए हैं' यहां तक वैसे ही जानें। हे भगवन् !······।।८५५।।

।। ३५ वें शतक के प्रथम एकेन्द्रिय शतक का प्रथम उद्देशक समाप्त ।।

—०—

द्वितीय उद्देशक

(प्र० १–२) भगवन् ! प्रथम समय कृतयुग्म कृतयुग्म राशिरूप एकेन्द्रिय कहां से आकर उत्पन्न होते हैं ?···वैसे ही जानें। जैसे प्रथम उद्देशक कहा वैसे (सोलह राशि आश्रयी) १६ बार पाठ के कथनपूर्वक दूसरा उद्देशक कहना। शेष सब उसी प्रकार कहें। परन्तु दस बातों की विशेपता है—(१) उनकी अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग की व उत्कृष्ट अंगुल के असंख्यातवें भाग की होती है। (२) आयुष्य कर्म के बंधक नहीं, पर अबंधक होते हैं। (३) आयुष्य-कर्म के उदीरक नहीं, पर अनुदीरक होते हैं। (४) उच्छ्वास वाले नहीं, निःश्वास वाले नहीं और उच्छ्वासनिःश्वास वाले भी नहीं। (५) सात प्रकार के कर्मबंधक होते हैं, पर आठ प्रकार के बंधक नहीं होते।···प्रथम समय कृतयुग्म कृतयुग्म राशिरूप एकेन्द्रिय काल से कहां तक होते हैं ?···वे एक समय तक

हों। इसी प्रकार स्थिति के संबंध में भी समझें। उनके आदि के दो समुद्घात होते हैं। समुद्घात और उद्वर्तना के संबंध में असंभव होने से पृच्छा नहीं और शेष सब १६ महायुग्मों में उसी प्रकार जानें यावत् 'पहले अनन्त वार उत्पन्न हुए हैं'। हे भगवन्! ······॥८५६॥

॥ ३५ वें शतक के प्रथम एकेन्द्रिय शतक का द्वितीय उद्देशक समाप्त ॥

—०—

३-११ उद्देशक

(प्र० १–५)···अप्रथम समय के कृतयुग्म कृतयुग्म राशिरूप एकेन्द्रिय कहां से आकर उत्पन्न होते हैं?···जैसे प्रथम उद्देशक कहा है वैसे ही यह उद्देशक भी १६ महायुग्मों में समझें। यावत्–कल्योज–कल्योजपने पहले अनन्त वार उत्पन्न हुए हैं। हे भगवन्!···॥३५-१-३॥···चरम समय के कृतयुग्म कृतयुग्मरूप एकेन्द्रिय कहां से आकर उत्पन्न हों?···इस संबंध में जैसे प्रथम समय के संबंध में उद्देशक कहा वैसे यहां कहना। पर देव यहां उत्पन्न नहीं होते। तेजोलेश्या-संबंधी पृच्छा नहीं। शेष सब उसी प्रकार जानें। हे भगवन्!···॥३५-१-४॥···अचरम समय कृतयुग्म कृतयुग्म राशिरूप एकेन्द्रिय कहां से आकर उत्पन्न हों?···जैसे अप्रथम समय के संबंध में उद्देशक कहा है, वैसे ही सब कहना। हे भगवन्!···॥३५-१-५॥···प्रथम समय कृतयुग्म कृतयुग्म प्रमाण एकेन्द्रिय कहां से आकर उत्पन्न होते हैं?···जैसे प्रथम समय संबंधी उद्देशक कहा है वैसे ही सब जानें। हे भगवन्!···॥३५-१-६॥ प्रथम—अप्रथमसमयवर्ती कृतयुग्म कृतयुग्म रूप एकेन्द्रिय कहां से आकर उत्पन्न होते हैं?···जैसे प्रथम समय संबंधी उद्देशक कहा वैसे यहां भी कहें। हे भगवन्! ······॥३५-१-७॥

(प्र०६—६)···प्रथम—चरमसमयवर्ती कृतयुग्म कृतयुग्म राशिरूप एकेन्द्रिय कहां से आकर उत्पन्न होते हैं?···जैसे चरम उद्देशक कहा वैसे ही बाकी का सब जानना। हे भगवन्!···॥३५-१-८॥···प्रथम अचरम समयवर्ती कृतयुग्म कृतयुग्म राशिरूप एकेन्द्रिय कहां से आकर उत्पन्न हों?···जैसे दूसरा उद्देशक कहा वैसे ही सब समझें। हे भगवन्!······॥३५-१-६॥···चरम—चरमसमयवर्ती कृतयुग्म कृतयुग्म रूप एकेन्द्रिय कहां से आकर उत्पन्न होते हैं?···जैसे चौथा उद्देशक कहा वैसे ही सब जानें। हे भगवन्!······॥३५-१-१०॥···चरमअचरमसमयवर्ती कृतयुग्म कृतयुग्म राशिरूप एकेन्द्रिय कहां से आकर उत्पन्न होते हैं?··· जैसे प्रथम समय के संबंध में उद्देशक कहा वैसे ही सब जानें। हे भगवन्!······॥३५-१-११॥ इस रीति से ये ११ उद्देशक कहने। पहला, तीसरा व पांचवां समान पाठ वाले हैं, और बाकी के आठ उद्देशक समान पाठ वाले हैं, परन्तु चौथे, छठे, आठवें और दसवें

उद्देशक में देव उत्पन्न नहीं होते और उनके तेजोलेश्यां नहीं ॥८५७॥

॥ ३५ वें शतक का पहला एकेन्द्रिय महायुग्मशतक समाप्त ॥

—०—

द्वितीय एकेन्द्रिय महायुग्म शतक

(प्र० १-४)…कृष्णलेश्या वाले कृतयुग्म कृतयुग्म राशिरूप एकेन्द्रिय कहां से आकर उत्पन्न होते हैं?…औधिक उद्देशकमें कहे अनुसार उपपात जानें। पर उसमें यह विशेषता है —…क्या वे जीव कृष्णलेश्या वाले हैं? हां,…।… वे कृष्णलेश्या वाले कृतयुग्म कृतयुग्म रूप एकेन्द्रिय कालसे कहां तक हों?…जघन्य एक समय व उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त तक हों। इसी प्रकार स्थिति के संबंधमें भी जानें। बाकी सब यावत्–'पहले अनंतबार उत्पन्न हुए हैं' यहां तक वैसे ही जानें। इसी प्रकार १६ युग्म कहें। हे भगवन्!…॥३५-२-१॥…प्रथम समयके कृष्णलेश्या वाले कृतयुग्म कृतयुग्म एकेन्द्रिय कहांसे आकर उत्पन्न होते हैं?…जैसे प्रथम समय के उद्देशकके संबंधमें कहा वैसे जानें। परन्तु यह विशेषता है—…वे जीव कृष्णलेश्या वाले हैं?…हां,…। बाकी सब उसी प्रकार जानें। हे भगवन्!…॥३५-२-२॥ जैसे औधिक शतकमें ११ उद्देशक कहे वैसे कृष्णलेश्या वाले शतक में भी ११ उद्देशक कहने। पहला, तीसरा व पांचवां समान पाठ वाले हैं और बाकीके आठ समान पाठ वाले हैं। विशेष यह कि चौथे, छठे, आठवें व दसवें उद्देशकमें देवका उपपात नहीं होता। हे भगवन्!…॥३५-२-११॥

॥ ३५ वें शतक का द्वितीय एकेन्द्रिय महायुग्मशतक समाप्त ॥

—————

तृतीय एकेन्द्रिय महायुग्मशतक

इसी प्रकार नीललेश्या वालोंके संबंध में भी कृष्णलेश्या शतकके समान कहें और ११ उद्देशक भी ऐसे ही कहने। हे भगवन्!……।

॥ ३५ वें शतकका तृतीय एकेन्द्रिय महायुग्मशतक समाप्त॥

—————

चतुर्थ एकेन्द्रिय महायुग्मशतक

इसी प्रकार कापोतलेश्या वालोंके संबंधमें भी कृष्णलेश्या शतकके समान कहें। हे भगवन्!…। ॥ ३५ वें शतक का चतुर्थ एकेन्द्रिय महायुग्मशतक समाप्त ॥

—————

पांचवां एकेन्द्रिय महायुग्मशतक

…भवसिद्धिक कृतयुग्म कृतयुग्म रूप एकेन्द्रिय कहांसे आकर उत्पन्न होते हैं?…जैसे औधिक कहा वैसे ही जानना। परन्तु ११ उद्देशकों में…सभी प्राण

यावत् सर्व सत्त्व भवसिद्धिक कृतयुग्म कृतयुग्म रूप एकेन्द्रियपने पहले उत्पन्न हुए हैं?…यह अर्थ यथार्थ नहीं। बाकी सब वैसे ही जानें। हे भगवन्!…।

॥ ३५ वें शतक का पांचवां एकेन्द्रिय महायुग्मशतक समाप्त ॥

छठां एकेन्द्रिय महायुग्मशतक

…कृष्णलेश्या वाले भवसिद्धिक कृतयुग्म कृतयुग्म प्रमाण एकेन्द्रिय कहां से आकर उत्पन्न होते हैं?…कृष्णलेश्या वाले भवसिद्धिक एकेन्द्रियोंके संबंध में भी दूसरे कृष्णलेश्या शतकके समान शतक कहना। हे भगवन्!…।

॥ ३५ वें शतकका छठा एकेन्द्रिय महायुग्मशतक समाप्त ॥

सातवां एकेन्द्रिय महायुग्मशतक

इसी प्रकार नीललेश्या वाले भवसिद्धिक एकेन्द्रियों के संबंधमें भी शतक कहें। हे भगवन्!…॥ ३५ वें शतकका सातवां एकेन्द्रिय महायुग्म शतक समाप्त ॥

आठवां एकेन्द्रिय महायुग्मशतक

इस प्रकार कापोतलेश्या वाले भवसिद्धिक एकेन्द्रियों के संबंधमें भी ११ उद्देशक सहित इसी प्रकार शतक कहें। इस रीतिसे ये चार भवसिद्धिक शतक जानें। इन चारों शतकोंमें 'सर्व प्राण यावत् पहले उत्पन्न हुए हैं'--इस प्रश्न के उत्तरमें यह अर्थ समर्थ नहीं-ऐसा कहना। हे भगवन्!…।

॥ ३५ वें शतक का आठवां एकेन्द्रिय महायुग्मशतक समाप्त ॥

९-१२ एकेन्द्रिय महायुग्मशतक

इस रीति से जैसे भवसिद्धिकोंके संबंधमें चार शतक कहे हैं, वैसे अभवसिद्धिकोंके संबंधमें भी चार शतक लेश्यासहित कहने। 'सभी प्राण यावत् सत्त्व पहले उत्पन्न हुए हैं? इस प्रश्न के उत्तरमें 'यह अर्थ समर्थ नहीं'—ऐसा कहें। इस रीति से ये १२ एकेन्द्रिय महायुग्मशतक हैं। हे भगवन्!…॥ ८५८ ॥

९-१२ एकेन्द्रिय महायुग्मशतक समाप्त ॥

॥ पैंतीसवां शतक समाप्त ॥

छत्तीसवां शतक

प्रथम वेइन्द्रिय महायुग्म शतक—प्रथम उद्देशक

(प्र० १-२) भगवन्! कृतयुग्म कृतयुग्म राशिप्रमाण वेइन्द्रिय कहां से आकर उत्पन्न होते हैं? गौतम! व्युत्क्रांति पदमें कहे अनुसार उनका

उत्पाद जानें। परिमाण-वे (एक समय में) १६, संख्याता याअसंख्याता उत्पन्न होते हैं। उनका उत्पाद जैसे उत्पलोद्देशकमें कहा है वैसे जानें। उनका शरीर जघन्य अंगुलका असंख्यातवां भाग व उत्कृष्ट १२ योजन प्रमाण होता है। इस प्रकार जैसे एकेन्द्रिय महायुग्मराशिके संबंधमें प्रथम उद्देशक कहा वैसे सब समझें। विशेष—यह कि तीन लेश्याएं होती हैं और देवोंसे आकर उत्पन्न नहीं होते। वे सम्यग्दृष्टि व मिथ्यादृष्टि होते हैं, पर सम्यग्मिथ्यादृष्टि-मिश्रदृष्टि नहीं होते। वे ज्ञानी अथवा अज्ञानी होते हैं। मनोयोगी नहीं होते, पर वचनयोगी और काययोगी होते हैं।···कृतयुग्म कृतयुग्मराशिप्रमाण बेइन्द्रिय काल से कहां तक हों?···जघन्य एक समय उत्कृष्ट संख्याता काल तक होते हैं। उनकी जघन्य स्थिति एक समय की व उत्कृष्ट स्थिति बारह वर्ष की होती है। उनका आहार अवश्य छ दिशा का होता है। उनके तीन समुद्घात होते हैं। और बाकी सब यावत् 'अनंत बार पहले उत्पन्न हुए हैं' यहां तक वैसे ही जानें। इस प्रकार १६ युग्मोंमें समझें। हे भगवन्!···।

॥३६वें शतकके प्रथम बेइन्द्रिय महायुग्मशतक का प्रथम उद्देशक समाप्त॥

२-११ उद्देशक

भगवन्! प्रथमसमयोत्पन्न कृतयुग्म कृतयुग्म राशिप्रमाण बेइन्द्रिय कहां से आकर उत्पन्न होते हैं?···जैसे एकेन्द्रिय महायुग्म का प्रथम समय संबंधी उद्देशक कहा है, वैसे यहां जानें। जो दस बातों की विशेषता है वह यहां भी जानें। और ११ वीं विशेषता यह है—वे मन योगी तथा वचन योगी नहीं होते, पर मात्र काययोगी होते हैं। बाकी सब बेइन्द्रिय के प्रथम उद्देशकमें कहा है, वैसे समझें। हे भगवन्!···। जैसे एकेन्द्रिय महायुग्ममें ११ उद्देशक कहे वैसे यहां भी कहना। पर विशेष यह कि चौथे, छठे, आठवें और दसवें उद्देशकमें सम्यक्त्व व ज्ञान नहीं होते। एकेन्द्रियोंके समान पहला, तीसरा व पांचवां उद्देशक समान पाठ वाले हैं और बाकीके आठ उद्देशक समान पाठ वाले हैं।

॥ ३६ वें शतक का प्रथम बेइन्द्रिय महायुग्मशतक समाप्त ॥

द्वितीय बेइन्द्रिय महायुग्म शतक

भगवन्! कृष्णलेश्या वाले कृतयुग्म कृतयुग्म प्रमाण बेइन्द्रिय जीव कहां से आकर उत्पन्न होते हैं? गौतम!···ऐसे ही समझना। कृष्णलेश्या वालों के संबंधमें ११ उद्देशक सहित शतक कहना। पर विशेष यह कि कृष्णलेश्या वा

एकेन्द्रियोंके समान लेश्याएं, स्थिति काल व आयुस्थिति जानें।
॥ ३६ वें शतक का द्वितीय बेइन्द्रिय महायुग्मशतक समाप्त ॥

३-८ बेइन्द्रिय महायुग्म शतक

इसी प्रकार नीललेश्या वालोंके संबंधमें भी शतक कहना ॥३६-३॥ इसी प्रकार कापोतलेश्या वालोंके संबंधमें भी शतक कहें ॥३६-४॥ भवसिद्धिक कृतयुग्म कृतयुग्म राशि रूप बेइन्द्रिय कहां से आकर उत्पन्न हों ?...इस प्रकार भवसिद्धिक संबंधी चार शतक पूर्वके पाठसे जानें। विशेष यह कि सर्व प्राण यहां पहले अनन्त-बार उत्पन्न हुए हैं ? उसके उत्तरमें निषेध करना। बाकी सब उसी तरह जानना। चार औघिक शतक भी वैसे ही जानने। हे भगवन् !...॥ ३६-५-८॥

॥ ३६ वें शतकके ३-८ बेइन्द्रिय महायुग्मशतक समाप्त ॥

९-१२ बेइन्द्रिय महायुग्म शतक

जैसे भवसिद्धिक संबंधी चार शतक कहे वैसे अभवसिद्धिक संबंधी भी चार शतक कहने। विशेष यह कि उनमें सम्यक्त्व व ज्ञान नहीं। बाकी सब उसी प्रकार समझें। इस प्रकार १२ बेइन्द्रिय महायुग्म शतक हैं। हे भगवन् !...॥८५९॥

॥ ९-१२ बेइन्द्रिय महायुग्मशतक समाप्त ॥

छत्तीसवां शतक समाप्त

सैंतीसवां शतक

भगवन् ! कृतयुग्म कृतयुग्म प्रमाण तेइन्द्रिय जीव कहांसे आकर उत्पन्न होते हैं ?...इस प्रकार बेइन्द्रिय शतकोंके समान तेइन्द्रिय संबंधी भी १२ शतक कहें। परन्तु अवगाहना जघन्य अंगुल का असंख्यातवां भाग व उत्कृष्ट तीन गाउ की होती है। स्थिति जघन्य एक समय की व उत्कृष्ट ४९ रात्रि-दिन की जाननी। शेष सब उसी प्रकार जानें। हे भगवन् !... ॥८६०॥

॥ तेइन्द्रिय महायुग्मशतक समाप्त ॥

सैंतीसवाँ शतक समाप्त

—०—

अड़तीसवां शतक

इसी प्रकार चउरिन्द्रियों के संबंध में भी १२ शतक कहें। परन्तु अवगाहना-जघन्य अंगुल का असंख्यातवां भाग व उत्कृष्ट चार गाउ की जानें। स्थिति जघन्य

उत्पाद जानें। परिमाण-वे (एक समय में) १६, संख्याता या असंख्याता उत्पन्न होते हैं। उनका उत्पाद जैसे उत्पलोद्देशकमें कहा है वैसे जानें। उनका शरीर जघन्य अंगुलका असंख्यातवां भाग व उत्कृष्ट १२ योजन प्रमाण होता है। इस प्रकार जैसे एकेन्द्रिय महायुग्मराशिके संबंधमें प्रथम उद्देशक कहा वैसे सब समझें। विशेष—यह कि तीन लेश्याएं होती हैं और देवोंसे आकर उत्पन्न नहीं होते। वे सम्यग्दृष्टि व मिथ्यादृष्टि होते हैं, पर सम्यग्मिथ्यादृष्टि-मिश्रदृष्टि नहीं होते। वे ज्ञानी अथवा अज्ञानी होते हैं। मनोयोगी नहीं होते, पर वचनयोगी और काययोगी होते हैं।...कृतयुग्म कृतयुग्मराशिप्रमाण बेइन्द्रिय काल से कहां तक हों?...जघन्य एक समय उत्कृष्ट संख्याता काल तक होते हैं। उनकी जघन्य स्थिति एक समय की व उत्कृष्ट स्थिति बारह वर्ष की होती है। उनका आहार अवश्य छ दिशा का होता है। उनके तीन समुद्घात होते हैं। और बाकी सब यावत् 'अनंत बार पहले उत्पन्न हुए हैं' यहां तक वैसे ही जानें। इस प्रकार १६ युग्मोंमें समझें। हे भगवन्!...।

॥३६वें शतकके प्रथम बेइन्द्रिय महायुग्मशतक का प्रथम उद्देशक समाप्त॥

———

२-११ उद्देशक

भगवन्! प्रथमसमयोत्पन्न कृतयुग्म कृतयुग्म राशिप्रमाण बेइन्द्रिय कहां से आकर उत्पन्न होते हैं?...जैसे एकेन्द्रिय महायुग्म का प्रथम समय संबंधी उद्देशक कहा है, वैसे यहां जानें। जो दस बातों की विशेषता है वह यहां भी जानें। और ११ वीं विशेषता यह है—वे मन योगी तथा वचन योगी नहीं होते, पर मात्र काययोगी होते हैं। बाकी सब बेइन्द्रिय के प्रथम उद्देशकमें कहा है, वैसे समझें। हे भगवन्!...। जैसे एकेन्द्रिय महायुग्ममें ११ उद्देशक कहे वैसे यहां भी कहना। पर विशेष यह कि चौथे, छठे, आठवें और दसवें उद्देशकमें सम्यक्त्व व ज्ञान नहीं होते। एकेन्द्रियोंके समान पहला, तीसरा व पांचवां उद्देशक समान पाठ वाले हैं और बाकीके आठ उद्देशक समान पाठ वाले हैं।

॥ ३६ वें शतक का प्रथम बेइन्द्रिय महायुग्मशतक समाप्त ॥

———

द्वितीय बेइन्द्रिय महायुग्म शतक

भगवन्! कृष्णलेश्या वाले कृतयुग्म कृतयुग्म प्रमाण बेइन्द्रिय जीव कहां से आकर उत्पन्न होते हैं? गौतम!...ऐसे ही समझना। कृष्णलेश्या वालों के संबंधमें ११ उद्देशक सहित शतक कहना। पर विशेष यह कि कृष्णलेश्या वा

एकेन्द्रियोंके समान लेश्याएं, स्थिति काल व आयुस्थिति जानें।
।। ३६ वें शतक का द्वितीय बेइन्द्रिय महायुग्मशतक समाप्त ।।

३-८ बेइन्द्रिय महायुग्म शतक

इसी प्रकार नीललेश्या वालोंके संबंधमें भी शतक कहना ।।३६-३।। इसी प्रकार कापोतलेश्या वालोंके संबंधमें भी शतक कहें ।।३६-४।। भवसिद्धिक कृतयुग्म कृतयुग्म राशि रूप बेइन्द्रिय कहां से आकर उत्पन्न हों ?... इस प्रकार भवसिद्धिक संबंधी चार शतक पूर्वके पाठसे जानें। विशेष यह कि सर्व प्राण यहां पहले अनन्त-बार उत्पन्न हुए हैं ? उसके उत्तरमें निषेध करना। बाकी सब उसी तरह जानना। चार औघिक शतक भी वैसे ही जानने। हे भगवन् !...।। ३६-५-८।।
।। ३६ वें शतकके ३-८ बेइन्द्रिय महायुग्मशतक समाप्त ।।

९-१२ बेइन्द्रिय महायुग्म शतक

जैसे भवसिद्धिक संबंधी चार शतक कहे वैसे अभवसिद्धिक संबंधी भी चार शतक कहने। विशेष यह कि उनमें सम्यक्त्व व ज्ञान नहीं। बाकी सब उसी प्रकार समझें। इस प्रकार १२ बेइन्द्रिय महायुग्म शतक हैं। हे भगवन् !...।।८५९।।
।। ९-१२ बेइन्द्रिय महायुग्मशतक समाप्त ।।

छत्तीसवां शतक समाप्त

सैंतीसवां शतक

भगवन् ! कृतयुग्म कृतयुग्म प्रमाण तेइन्द्रिय जीव कहांसे आकर उत्पन्न होते हैं ?... इस प्रकार बेइन्द्रिय शतकोंके समान तेइन्द्रिय संबंधी भी १२ शतक कहें। परन्तु अवगाहना जघन्य अंगुल का असंख्यातवां भाग व उत्कृष्ट तीन गाउ की होती है। स्थिति जघन्य एक समय की व उत्कृष्ट ४९ रात्रि-दिन की जाननी। शेष सब उसी प्रकार जानें। हे भगवन् !... ।।८६०।।
।। तेइन्द्रिय महायुग्मशतक समाप्त ।।

सैंतीसवाँ शतक समाप्त

—०—

अड़तीसवां शतक

इसी प्रकार चउरिन्द्रियों के संबंध में भी १२ शतक कहें। परन्तु अवगाहना-जघन्य अंगुल का असंख्यातवां भाग व उत्कृष्ट चार गाउ की जानें। स्थिति जघन्य

उत्पाद जानें। परिमाण-वे (एक समय में) १६, संख्याता याअसंख्याता उत्पन्न होते हैं। उनका उत्पाद जैसे उत्पलोद्देशकमें कहा है वैसे जानें। उनका शरीर जघन्य अंगुलका असंख्यातवां भाग व उत्कृष्ट १२ योजन प्रमाण होता है। इस प्रकार जैसे एकेन्द्रिय महायुग्मराशिके संबंधमें प्रथम उद्देशक कहा वैसे सब समझें। विशेष—यह कि तीन लेश्याएं होती हैं और देवोंसे आकर उत्पन्न नहीं होते। वे सम्यग्दृष्टि व मिथ्यादृष्टि होते हैं, पर सम्यग्मिथ्यादृष्टि-मिश्रदृष्टि नहीं होते। वे ज्ञानी अथवा अज्ञानी होते हैं। मनोयोगी नहीं होते, पर वचनयोगी और काययोगी होते हैं।…कृतयुग्म कृतयुग्मराशिप्रमाण बेइन्द्रिय काल से कहां तक हों?…जघन्य एक समय उत्कृष्ट संख्याता काल तक होते हैं। उनकी जघन्य स्थिति एक समय की व उत्कृष्ट स्थिति बारह वर्ष की होती है। उनका आहार अवश्य छ दिशा का होता है। उनके तीन समुद्घात होते हैं। और बाकी सब यावत् 'अनंत बार पहले उत्पन्न हुए हैं' यहां तक वैसे ही जानें। इस प्रकार १६ युग्मोंमें समझें। हे भगवन्!…।

॥३६वें शतकके प्रथम बेइन्द्रिय महायुग्मशतक का प्रथम उद्देशक समाप्त॥

———

२-११ उद्देशक

भगवन्! प्रथमसमयोत्पन्न कृतयुग्म कृतयुग्म राशिप्रमाण बेइन्द्रिय कहां से आकर उत्पन्न होते हैं?…जैसे एकेन्द्रिय महायुग्म का प्रथम समय संबंधी उद्देशक कहा है, वैसे यहां जानें। जो दस बातों की विशेषता है वह यहां भी जानें। और ११ वीं विशेषता यह है—वे मन योगी तथा वचन योगी नहीं होते, पर मात्र काययोगी होते हैं। बाकी सब बेइन्द्रिय के प्रथम उद्देशकमें कहा है, वैसे समझें। हे भगवन्!…। जैसे एकेन्द्रिय महायुग्ममें ११ उद्देशक कहे वैसे यहां भी कहना। पर विशेष यह कि चौथे, छठे, आठवें और दसवें उद्देशकमें सम्यक्त्व व ज्ञान नहीं होते। एकेन्द्रियोंके समान पहला, तीसरा व पांचवां उद्देशक समान पाठ वाले हैं और बाकीके आठ उद्देशक समान पाठ वाले हैं।

॥ ३६ वें शतक का प्रथम बेइन्द्रिय महायुग्मशतक समाप्त॥

———

द्वितीय बेइन्द्रिय महायुग्म शतक

भगवन्! कृष्णलेश्या वाले कृतयुग्म कृतयुग्म प्रमाण बेइन्द्रिय जीव कहां से आकर उत्पन्न होते हैं? गौतम!…ऐसे ही समझना। कृष्णलेश्या वालों के संबंधमें ११ उद्देशक सहित शतक कहना। पर विशेष यह कि कृष्णलेश्या वा

एक समय व उत्कृष्ट छ मास। बाकी सब बेइन्द्रियों के समान जानें। हे भगवन्! ......॥८६१॥ ॥ चउरिन्द्रिय महायुग्मशतक समाप्त ॥

॥ अड़तीसवाँ शतक समाप्त ॥

—०—

उनतालीसवाँ शतक

भगवन्! कृतयुग्म कृतयुग्म प्रमाण असंज्ञी पंचेन्द्रिय कहां से आकर उत्पन्न होते हैं?...इस प्रकार बेइन्द्रियों के समान असंज्ञी के भी १२ शतक करना। परन्तु विशेष यह कि अवगाहना—शरीरप्रमाण जघन्य अंगुल का असंख्यातवां भाग व उत्कृष्ट १ हजार योजन होती है। स्थितिकाल जघन्य एक समय व उत्कृष्ट दो पूर्व क्रोड से नव पूर्व क्रोड तक की होती है, स्थिति जघन्य एक समय व उत्कृष्ट पूर्वकोटि। बाकी सब बेइन्द्रियों के समान जानें। हे भगवन्! ......॥८६२॥

॥ असंज्ञी पंचेन्द्रिय महायुग्मशतक समाप्त ॥

॥ उनतालीसवाँ शतक समाप्त ॥

—०—

चालीसवाँ शतक

प्रथम संज्ञी पंचेन्द्रिय महायुग्म शतक

(प्र० १–३) भगवन्! कृतयुग्म कृतयुग्म राशिरूप संज्ञी पंचेन्द्रिय कहां से आकर उत्पन्न होते हैं? गौतम! चारों गतिमें से उत्पन्न होते हैं। संख्यात वर्ष की आयुष्य वाले, असंख्यात वर्षकी आयुष्य वाले पर्याप्त तथा अपर्याप्त जीवों से आकर उत्पन्न होते हैं, कहीं से भी निषेध नहीं, यावत्—अनुत्तर विमान तक जानें। परिमाण, अपहार व अवगाहना के संबंध में जैसे—असंज्ञी पंचेन्द्रियों के संबंध में कहा है, वैसे जानें। वेदनीय के अतिरिक्त सात कर्मप्रकृतियों के बंधक हैं और अबंधक भी हैं, और वेदनीय के तो बंधक ही हैं, पर अबंधक नहीं। मोहनीय के वेदक हैं और अवेदक भी हैं और बाकी की सात कर्मप्रकृतियों के वेदक हैं, पर अवेदक नहीं। साता के वेदक हैं, और असाता के...। मोहनीय के उदय वाले और अनुदय वाले भी हैं। और उसके सिवाय बाकी की सातों कर्मप्रकृतियोंके उदय वाले हैं, पर अनुदयी नहीं। नाम व गोत्र के उदीरक हैं, पर अनुदीरक नहीं। बाकी की छहों कर्मप्रकृतियों के उदीरक भी हैं, और अनुदीरक भी हैं। वे कृष्णलेश्या वाले यावत् शुक्ललेश्या वाले होते हैं, सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि भी होते हैं। अज्ञानी अथवा ज्ञानी होते हैं। मनोयोग वाले, वचनयोग वाले और काययोग वाले भी होते हैं। तथा उनका उपयोग, वर्णादि, उच्छ्वासक, निःश्वासक तथा आहारक—इत्यादि एकेन्द्रियों के समान जानें। वे विरति वाले,

द्वितीय संज्ञी महायुग्म शतक

[प्र० १-२] भगवन् ! कृष्णलेश्या वाले कृतयुग्म कृतयुग्म राशिप्रमाण संज्ञी पंचेन्द्रिय कहां से आकर उत्पन्न होते हैं ? गौतम ! जैसे संज्ञी संबंधी प्रथम उद्देशक कहा है, उसी प्रकार यह भी समझें। विशेष यह कि बंध, वेद, उदयी, उदीरणा, लेश्या, बंधक, संज्ञा, कषाय व वेदबंधक—ये सब जैसे बेइन्द्रियों के कहे हैं, वैसे यहां कहें। कृष्णलेश्या वाले संज्ञी के तीनों प्रकार का वेद होता है, अवेदक नहीं होते। उनका भी स्थितिकाल जघन्य एक समय उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त अधिक ३३ सागरोपम होता है। ऐसे ही स्थिति के संबंध में भी जानें। विशेष यह कि स्थिति में अन्तर्मुहूर्त अधिक न कहें। बाकी सब जैसे इनके प्रथम उद्देशक में कहा है, वैसे यावत् 'पहले अनंतबार उत्पन्न हुए हैं' यहां तक जानें। इस प्रकार १६ युग्मों में कहें। हे भगवन्···॥४०-२-१॥···प्रथम समय के कृष्णलेश्या वाले कृतयुग्म कृतयुग्म राशि प्रमाण संज्ञी पंचेन्द्रिय कहां से आकर उत्पन्न होते हैं ?···जैसे प्रथम समय संज्ञी पंचेन्द्रियों के उद्देशक में कहा है वैसे ही सब जानें। विशेष यह कि—···क्या वे जीव कृष्णलेश्या वाले हैं ?···हां······। शेष सब उसी तरह समझें। इसी रीति से १६ युग्मों में कहना। हे भगवन् !······। इस प्रकार कृष्णलेश्या शतक में ये ११ उद्देशक कहें। पहला, तीसरा व पांचवां समान पाठ वाले हैं और बाकी के आठों एक पाठ वाले हैं। हे भगवन् !·········।

॥४० वें शतक का द्वितीय संज्ञी महायुग्मशतक समाप्त॥

तृतीय संज्ञी महायुग्म शतक

इसी प्रकार नीललेश्या वालों के संबंध में भी शतक कहें। विशेष यह कि स्थितिकाल जघन्य एक समय व उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक दस सागरोपम जानें। इसी प्रकार स्थिति के संबंध में भी समझें। तथा इस रीति से पहले, तीसरे और पांचवें इन तीनों उद्देशकों में जानें और शेष सब उसी प्रकार जानें। हे भगवन्······।

॥ ४० वें शतक का तृतीय संज्ञी महायुग्मशतक समाप्त॥

चतुर्थ संज्ञी महायुग्म शतक

इसी प्रकार कापोतलेश्या के संबंध में भी शतक कहें। पर विशेष यह कि स्थितिकाल जघन्य एक समय और उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक तीन सागरोपम। इसी प्रकार स्थिति के संबंध में भी समझना। तथा इसी तरह तीनों उद्देशकों में जानें। और बाकी सब उसी प्रकार जानें। हे भगवन् !······।

॥ ४० वें शतक का चतुर्थ संज्ञी महायुग्मशतक समाप्त॥

—०—

पाँचवाँ संज्ञी महायुग्म शतक

इसी प्रकार तेजोलेश्या के संबंध में भी शतक कहें। विशेष यह कि स्थिति-काल जघन्य एक समय उत्कृष्ट पल्योपमके असंख्यातवें भाग अधिक दो सागरोपम होता है। इसी रीति से स्थिति के संबंध में भी समझें। विशेष यह कि नोसंज्ञा के उपयोग वाले भी होते हैं। ऐसे तीनों उद्देशकों में समझें। बाकी सब उसी तरह जानना। हे भगवन् !……।

॥ ४० वें शतक का पांचवां संज्ञी महायुग्मशतक समाप्त ॥

—०—

छठा संज्ञी महायुग्म शतक

जैसे तेजोलेश्या के संबंध में शतक कहा है, वैसे ही पद्मलेश्या के संबंध में भी यह शतक समझें। विशेष यह कि संस्थितिकाल जघन्य एक समय व उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त अधिक दस सागरोपम है। ऐसे ही स्थिति के संबंध में भी समझें। विशेष यह कि यहां अधिक अन्तर्मुहूर्त न कहें। बाकी सब उसी प्रकार जानें। इस प्रकार पांचों शतकों में जैसे कृष्णलेश्या के शतक में जो पाठ कहा है, वह पाठ कहें। यावत् 'पहले अनंत बार उत्पन्न हुए हैं।' हे भगवन् !…।

॥ ४० वें शतक का छठा संज्ञी महायुग्मशतक समाप्त ॥

—०—

सातवाँ संज्ञी महायुग्म शतक

जैसे औधिक शतक कहा है, वैसे शुक्ललेश्या के संबंध में भी कहें। विशेष यह कि स्थितिकाल व स्थिति के संबंध में कृष्णलेश्या शतक के समान जानें। तथा शेष सब पूर्ववत् जानें। यावत्–पहले अनन्तवार उत्पन्न हुए हैं। हे भगवन् !……।

॥ ४० वें शतक का सातवां संज्ञी महायुग्मशतक समाप्त ॥

—०—

आठवाँ संज्ञी महायुग्म शतक

भगवन् ! कृतयुग्म कृतयुग्म राशिप्रमाण भवसिद्धिक संज्ञी चेन्द्रिय कहां से आकर उत्पन्न होते हैं ? जैसे पहला संज्ञीशतक कहा है, उसी प्रकार भवसिद्धिक के आलाप से कहें। विशेष यह कि सभी जीव यहां पहले उत्पन्न हुए हैं ? इस उपपात वाले प्रश्न का 'यह समर्थ नहीं' यह निषेधात्मक उत्तर कहें। बाकी सब उसी तरह जानें। हे भगवन् !……।

॥ ४० वें शतक का आठवां संज्ञी महायुग्मशतक समाप्त ॥

—०—

नौवां संज्ञी महायुग्म शतक

भगवन् ! कृतयुग्म कृतयुग्म राशि प्रमाण कृष्णलेश्या वाले भवसिद्धिक संज्ञी पंचेन्द्रिय कहां से आकर उत्पन्न होते हैं ?······इस प्रकार इस अभिलाप से जैसे कृष्णलेश्या वालों के संबंध में औधिक शतक कहा है वैसे यहां भी जानें। हे भगवन् !······।

॥ ४० वें शतक का नौवां संज्ञी महायुग्म शतक समाप्त ॥

—०—

१० से १४ संज्ञी महायुग्म शतक

इसी प्रकार नीललेश्या वाले भवसिद्धिकों के संबंध में भी शतक कहना। हे भगवन् !···॥ ४०-१० ॥ जैसे संज्ञी पंचेन्द्रियों के संबंध में सात औधिक शतक कहे हैं, इसी प्रकार भवसिद्धिकों के संबंध में भी सात शतक करें। विशेष यह कि सातों शतकों में 'सर्व प्राणी पहले यहां उत्पन्न हुए हैं'—इस प्रश्न के उत्तर में यावत् 'यह अर्थ समर्थ नहीं' ऐसा कहें। शेष सब उसी प्रकार जानें। हे भगवन् !···।

॥ चालीसवें शतक के १०-१४ संज्ञी महायुग्मशतक समाप्त ॥

—०—

पंद्रहवां संज्ञी महायुग्म शतक

(प्र० १-२) भगवन् ! कृतयुग्म कृतयुग्म राशिप्रमाण अभवसिद्धिक संज्ञी पंचेन्द्रिय कहां से आकर उत्पन्न होते हैं ?···अनुत्तर विमान के सिवाय सब जगह से उपपात जानें। परिमाण, अपहार, ऊंचाई, बंध, वेद, वेदन, उदय और उदीरणा —ये सब कृष्णलेश्या शतक के समान जानें। वे कृष्णलेश्या वाले यावत् शुक्ल-लेश्या वाले होते हैं, वे सम्यग्दृष्टि नहीं और सम्यग्मिथ्यादृष्टि नहीं, पर मिथ्या-दृष्टि है। ज्ञानी नहीं अज्ञानी हैं, इस रीति से जैसे कृष्णलेश्या शतक में कहा है, वैसे समझें। विशेष यह कि वे विरति वाले नहीं, वैसे ही विरताविरत नहीं, पर विरतिरहित हैं। उनके स्थितिकाल व स्थिति के संबंध में जैसे औधिक उद्देशक में कहा है, वैसे समझें। उनके शुरू के पांच समुद्घात होते हैं। उद्वर्तना अनुत्तर विमान को छोड़कर पूर्ववत् जानें। "सर्व प्राणी पहले यहां उत्पन्न हुए है" —इस प्रश्न के उत्तर में 'यह अर्थ समर्थ नहीं' ऐसा कहें। शेष सब कृष्णलेश्या शतक में जैसे कहा है वैसे यावत् "पहले अनन्तवार उत्पन्न हुए हैं"—यहां तक कहें। इसी रीति से १६ युग्मों में जानें। हे भगवन् ! ···। ···प्रथम समय के कृतयुग्म कृतयुग्म राशिप्रमाण अभवसिद्धिक संज्ञी पंचेन्द्रिय कहां से आकर उत्पन्न होते हैं ?···जैसे प्रथम समय के संज्ञी उद्देशक में कहा है वैसे ही समझना। विशेष यह कि सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और ज्ञान सर्वत्र नहीं। शेष सब उसी प्रकार जानना। ऐसे ही

यहां भी ११ उद्देशक कहने। पहला, तीसरा व पांचवां उद्देशक समान पाठ वाले हैं। और वाकी के आठों उद्देशक समान पाठ वाले हैं। हे भगवन् !......।

॥ प्रथम अभवसिद्धिक महायुग्मशतक समाप्त ॥

॥ ४० वें शतक का पंद्रहवां संज्ञी महायुग्मशतक समाप्त ॥

—o—

सोलहवां संज्ञी महायुग्म शतक

भगवन् ! कृतयुग्म कृतयुग्म राशिप्रमाण कृष्णलेश्या वाले अभवसिद्धिक संज्ञी पंचेन्द्रिय कहां से आकर उत्पन्न होते हैं ? गौतम ! जैसे इनका औघिक शतक कहा है उसी प्रकार कृष्णलेश्या शतक भी कहें। विशेष यह कि—भगवन् ! क्या वे जीव कृष्णलेश्या वाले हैं ? हां,...। उनके स्थितिकाल व स्थिति के संवंध में जैसे कृष्णलेश्या शतकमें कहा है,वैसे कहें और वाकी सव उसी तरह जानें। हे भगवन्...।

॥ द्वितीय अभवसिद्धिक महायुग्मशतक समाप्त ॥

॥ ४० वें शतक का १६ वां संज्ञी महायुग्मशतक समाप्त ॥

—o—

१७-२१ संज्ञी महायुग्म शतक

इस प्रकार जैसे कृष्णलेश्या के संवंध में शतक कहा है, वैसे छहों लेश्या संवंधी ६ शतक कहें। विशेष यह कि औघिक शतक में कहे अनुसार स्थितिकाल व स्थिति जानें। उसमें विशेष यह कि शुक्ललेश्या का उत्कृष्ट स्थितिकाल अन्तर्मुहूर्त अधिक ३१ सागरोपम होता है, और स्थिति पूर्वोक्त ही जानें। पर जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक न कहें। सर्वत्र सम्यग्ज्ञान नहीं, विरति, विरताविरति और अनुत्तर विमान से आकर उत्पन्न होना भी नहीं। 'सभी जीव पहले यहां उत्पन्न हुए हैं ?' इस प्रश्न के उत्तर में 'यह अर्थ समर्थ नहीं' ऐसा कहना। हे भगवन् !...। इस प्रकार ये सात अभवसिद्धिक महायुग्मशतक होते हैं। हे भगवन् !...। इस प्रकार इक्कीस संज्ञीपंचेन्द्रिय महायुग्मशतक कहे। कुल मिलाकर ८१ महायुग्मशतक समाप्त हुए॥ ८६४॥

॥ चालीसवाँ शतक समाप्त ॥

—o—

अथ इकतालीसवाँ शतक—प्रथम उद्देशक

(प्र० १-५) भगवन् ! कितने राशियुग्म कहे हैं ? गौतम ! चार राशियुग्म कहे हैं,...—१ कृतयुग्म यावत् ४ कल्योज।...ऐसा आप किस कारण कहते हैं...? ...जिस राशि में से चार २ संख्या का अपहार करते हुए अन्त में चार वाकी रहे—वह राशियुग्म कृतयुग्म कहलाता है, यावत्...एक वाकी रहे वह राशियुग्म

कल्योज कहलाता है। ···इस कारण से···।······कृतयुग्म राशिप्रमाण नैरयिक कहां से आकर उत्पन्न होते हैं?···जैसे व्युत्क्रान्तिपद में उपपात कहा है, वैसे यहां भी कहना।···वे जीव एक समयमें कितने उत्पन्न होते हैं?···चार, आठ, बारह, सोलह, संख्याता या असंख्याता उत्पन्न होते हैं।···क्या वे जीव सान्तर—अंतर सहित उत्पन्न होते हैं या निरंतर उत्पन्न होते हैं?······वे सांतर उत्पन्न होते हैं और निरंतर भी···। सान्तर उत्पन्न होते हुए वे जघन्य एक समय व उत्कृष्ट असंख्य समय का अंतर करके उत्पन्न होते हैं, और निरंतर उत्पन्न होते हुए जघन्य दो समय और उत्कृष्ट संख्याता समय तक निरंतर–प्रति समय अविरहितपने उत्पन्न होते हैं।···वे जीव जिस समय कृतयुग्म राशिरूप हों उसी समय त्र्योज राशिरूप हों और जिस समय त्र्योज······उस समय कृतयुग्म राशिरूप हों?···यह अर्थ समर्थ--यथार्थ नहीं।

(प्र० ६-१०)···जिस समय कृतयुग्म रूप हों, उस समय द्वापरयुग्मरूप हों, और जिस समय द्वापरयुग्म हों उस समय कृतयुग्म रूप हों?···यह अर्थ समर्थ नहीं।···जिस समय कृतयुग्मराशि रूप हों उस समय कल्योजराशि रूप हों और जिस समय कल्योज रूप हों, उस समय कृतयुग्मराशि रूप हों?···यह अर्थ समर्थ नहीं।···वे जीव किस प्रकार उत्पन्न होते हैं?···जैसे कोई प्लवक (कूदने वाला) हो और वह जैसे कूदता कूदता अपने स्थान पर जाता है—इत्यादि जैसे उपपात-शतकमें कहा है, वैसे सब यहां समझें। यावत् स्वयं उत्पन्न होते हैं, पर पर—प्रयोगसे उत्पन्न नहीं होते।···क्या वे जीव आत्माके यशसे—संयमसे उत्पन्न होते हैं या आत्माके अयश-असंयमसे···?···वे आत्माके यशसे उत्पन्न नहीं होते, पर आत्माके अयशसे उत्पन्न होते हैं।···यदि वे आत्माके असंयमसे उत्पन्न होते हैं तो क्या आत्मसंयमका आश्रय करते हैं या आत्माके असंयमका आश्रय करते हैं? ···वे आत्मसंयमका आश्रय नहीं करते, पर आत्माके असंयमका आश्रय करते हैं।

(प्र० ११-१५)यदि वे आत्माके असंयमका आश्रय करते हैं, तो क्या वे लेश्या वाले हैं या लेश्यारहित हैं?···वे लेश्या वाले हैं पर लेश्यारहित नहीं।···यदि वे लेश्या वाले हैं, तो क्या वे क्रिया वाले हैं, या क्रियारहित हैं?···वे क्रिया वाले हैं, पर क्रियारहित नहीं।···यदि वे क्रिया वाले हैं तो क्या वे उसी भवमें सिद्ध होते हैं यावत् कर्मका अन्त करते हैं?···यह अर्थ समर्थ नहीं।···कृतयुग्म राशिप्रमाण असुरकुमार कहांसे आकर उत्पन्न होते हैं?···जैसे नैरयिकोंके संबंधमें कहा वैसे असुरकुमारों के संबंधमें भी सब जानना। इस रीतिसे यावत्–पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिकों तक समझें। पर विशेष यह कि वनस्पति-कायिक असंख्याता या अनंता उत्पन्न होते हैं। वाकी सब उसी प्रकार

समझें। इसी रीतिसे मनुष्योंके संबंधमें भी समझें। यावत्-आत्माके संयमसे उत्पन्न नहीं होते पर आत्मा के असंयमसे उत्पन्न होते हैं।...यदि वे आत्माके असंयमसे उत्पन्न होते हैं, तो क्या वे आत्मसंयमका आश्रय करते हैं या आत्माके असंयमका आश्रय करते हैं ?...वे आत्मसंयमका भी आश्रय करते हैं और आत्मा के असंयमका भी आश्रय करते हैं।

(प्र० १६-१९)...यदि वे आत्मसंयमका आश्रय करते हैं. तो क्या वे लेश्या-सहित हैं या लेश्यारहित हैं ?...वे लेश्यासहित हैं और लेश्यारहित भी हैं।...यदि वे लेश्यारहित हैं, तो क्या वे क्रिया वाले हैं या क्रियारहित हैं ?...वे क्रियासहित नहीं, पर क्रियारहित हैं।...यदि वे क्रियारहित हैं तो क्या वे उसी भव में सिद्ध होते हैं यावत् सर्वदुःखका अन्त करते हैं ?...हां, वे सिद्ध होते हैं...।...यदि वे लेश्या वाले हैं तो क्या वे सक्रिय हैं या अक्रिय हैं ?...वे सक्रिय हैं पर अक्रिय नहीं।

(प्र० २०-२३)...यदि वे सक्रिय हैं तो क्या उसी भवमें सिद्ध होते हैं यावत् सर्व दुःखका अन्त करते हैं ?...कितनेक उसी भवमें सिद्ध होते हैं यावत् सर्व दुःख का अन्त करते हैं और कितनेक उस भवमें सिद्ध नहीं होते यावत् सर्व दुःखका अन्त नहीं करते।...यदि वे आत्माके असंयमका आश्रय करते हैं तो क्या वे लेश्या-सहित हैं, या लेश्यारहित हैं ?...वे लेश्यासहित हैं, पर लेश्यारहित नहीं।...यदि वे लेश्यासहित हैं, तो क्या वे सक्रिय हैं या अक्रिय हैं ?...वे सक्रिय हैं पर अक्रिय नहीं।...यदि वे सक्रिय हैं तो क्या वे उसी भवमें सिद्ध होते हैं यावत्—सर्व दुःख का अन्त करते हैं ?...यह अर्थ समर्थ नहीं। वाणव्यंतर, ज्योतिषिक व वैमानिक —ये सब नैरयिकोंके समान जानें। हे भगवन् !...।

॥ ४१ वें राशियुग्मशतकका प्रथम उद्देशक समाप्त ॥

द्वितीय उद्देशक

(प्र० १-३) भगवन् ! राशियुग्ममें त्र्योजराशिप्रमाण नैरयिक कहांसे आकर उत्पन्न होते हैं ?...पूर्ववत् इसके संबंधमें उद्देशक कहें। विशेष यह कि प्रमाण-तीन, सात, ११, १५, संख्याता या असंख्याता उत्पन्न होते हैं। सांतरके संबंधमें वैसे ही जानें।...वे जीव जिस समयमें त्र्योजराशि प्रमाण हैं उसी समय कृतयुग्म प्रमाण हैं या जिस समय कृतयुग्म हैं उसी समय त्र्योज प्रमाण हैं ?... यह अर्थ समर्थ नहीं।...वे जीव जिस समय त्र्योज राशि प्रमाण हैं उस समय द्वापरयुग्मप्रमाण हैं और जिस समय द्वापरयुग्मराशि प्रमाण हैं उस समय त्र्योजराशि प्रमाण हैं ?...यह अर्थ समर्थ नहीं। इसी प्रकार कल्योज राशिके साथ

कल्योज कहलाता है। ···इस कारण से···।······कृतयुग्म राशिप्रमाण नैरयिक कहां से आकर उत्पन्न होते हैं ?···जैसे व्युत्क्रान्तिपद में उपपात कहा है, वैसे यहां भी कहना।···वे जीव एक समयमें कितने उत्पन्न होते हैं ?···चार, आठ, वारह, सोलह, संख्याता या असंख्याता उत्पन्न होते हैं।···क्या वे जीव सान्तर—अंतर सहित उत्पन्न होते हैं या निरंतर उत्पन्न होते हैं ?······वे सांतर उत्पन्न होते हैं और निरंतर भी···। सान्तर उत्पन्न होते हुए वे जघन्य एक समय व उत्कृष्ट असंख्य समय का अंतर करके उत्पन्न होते हैं, और निरंतर उत्पन्न होते हुए जघन्य दो समय और उत्कृष्ट संख्याता समय तक निरंतर–प्रति समय अविरहितपने उत्पन्न होते हैं।···वे जीव जिस समय कृतयुग्म राशिरूप हों उसी समय त्र्योज राशिरूप हों और जिस समय त्र्योज······उस समय कृतयुग्म राशिरूप हों ?···यह अर्थ समर्थ--यथार्थ नहीं।

(प्र० ६-१०)···जिस समय कृतयुग्म रूप हों, उस समय द्वापरयुग्मरूप हों, और जिस समय द्वापरयुग्म हों उस समय कृतयुग्म रूप हों ?···यह अर्थ समर्थ नहीं।···जिस समय कृतयुग्मराशि रूप हों उस समय कल्योजराशि रूप हों और जिस समय कल्योज रूप हों, उस समय कृतयुग्मराशि रूप हों ?···यह अर्थ समर्थ नहीं।···वे जीव किस प्रकार उत्पन्न होते हैं ?···जैसे कोई प्लवक (कूदने वाला) हो और वह जैसे कूदता कूदता अपने स्थान पर जाता है—इत्यादि जैसे उपपात-शतकमें कहा है, वैसे सब यहां समझें। यावत् स्वयं उत्पन्न होते हैं, पर पर—प्रयोगसे उत्पन्न नहीं होते।···क्या वे जीव आत्माके यशसे—संयमसे उत्पन्न होते हैं या आत्माके अयश-असंयमसे···?···वे आत्माके यशसे उत्पन्न नहीं होते, पर आत्माके अयशसे उत्पन्न होते हैं।···यदि वे आत्माके असंयमसे उत्पन्न होते हैं तो क्या आत्मसंयमका आश्रय करते हैं या आत्माके असंयमका आश्रय करते हैं ? ···वे आत्मसंयमका आश्रय नहीं करते, पर आत्माके असंयमका आश्रय करते हैं।

(प्र० ११-१५)यदि वे आत्माके असंयमका आश्रय करते हैं, तो क्या वे लेश्या वाले हैं या लेश्यारहित हैं ?···वे लेश्या वाले हैं पर लेश्यारहित नहीं।···यदि वे लेश्या वाले हैं, तो क्या वे क्रिया वाले हैं, या क्रियारहित हैं ?···वे क्रिया वाले हैं, पर क्रियारहित नहीं।···यदि वे क्रिया वाले हैं तो क्या वे उसी भवमें सिद्ध होते हैं यावत् कर्मका अन्त करते हैं ?···यह अर्थ समर्थ नहीं।···कृतयुग्म राशिप्रमाण असुरकुमार कहांसे आकर उत्पन्न होते हैं ?···जैसे नैरयिकोंके संबंधमें कहा वैसे असुरकुमारों के संबंधमें भी सब जानना। इस रीतिसे यावत्–पंचेन्द्रिय तिर्यचयोनिकों तक समझें। पर विशेष यह कि वनस्पति-कायिक असंख्याता या अनंता उत्पन्न होते हैं। बाकी सब उसी प्रकार

समझें। इसी रीतिसे मनुष्योंके संबंधमें भी समझें। यावत्-आत्माके संयमसे उत्पन्न नहीं होते पर आत्मा के असंयमसे उत्पन्न होते हैं।···यदि वे आत्माके असंयमसे उत्पन्न होते हैं, तो क्या वे आत्मसंयमका आश्रय करते हैं या आत्माके असंयमका आश्रय करते हैं ?···वे आत्मसंयमका भी आश्रय करते हैं और आत्मा के असंयमका भी आश्रय करते हैं।

(प्र० १६-१९)···यदि वे आत्मसंयमका आश्रय करते हैं, तो क्या वे लेश्या-सहित हैं या लेश्यारहित हैं ?···वे लेश्यासहित हैं और लेश्यारहित भी हैं।···यदि वे लेश्यारहित हैं, तो क्या वे क्रिया वाले हैं या क्रियारहित हैं ?···वे क्रियासहित नहीं, पर क्रियारहित हैं।···यदि वे क्रियारहित हैं तो क्या वे उसी भव में सिद्ध होते हैं यावत् सर्वदुःखका अन्त करते हैं ?···हां, वे सिद्ध होते हैं···।···यदि वे लेश्या वाले हैं तो क्या वे सक्रिय हैं या अक्रिय हैं ?···वे सक्रिय हैं पर अक्रिय नहीं।

(प्र० २०-२३)···यदि वे सक्रिय हैं तो क्या उसी भवमें सिद्ध होते हैं यावत् सर्व दुःखका अन्त करते हैं ?···कितनेक उसी भवमें सिद्ध होते हैं यावत् सर्व दुःख का अन्त करते हैं और कितनेक उस भवमें सिद्ध नहीं होते यावत् सर्व दुःखका अन्त नहीं करते।···यदि वे आत्माके असंयमका आश्रय करते हैं तो क्या वे लेश्या-सहित हैं, या लेश्यारहित हैं ?···वे लेश्यासहित हैं, पर लेश्यारहित नहीं।···यदि वे लेश्यासहित हैं, तो क्या वे सक्रिय हैं या अक्रिय हैं ?···वे सक्रिय हैं पर अक्रिय नहीं।···यदि वे सक्रिय हैं तो क्या वे उसी भवमें सिद्ध होते हैं यावत्—सर्व दुःख का अन्त करते हैं ?···यह अर्थ समर्थ नहीं। वाणव्यंतर, ज्योतिषिक व वैमानिक –ये सब नैरयिकोंके समान जानें। हे भगवन् !···।

॥ ४१ वें राशियुग्मशतकका प्रथम उद्देशक समाप्त ॥

द्वितीय उद्देशक

(प्र० १-३) भगवन् ! राशियुग्ममें त्र्योजराशिप्रमाण नैरयिक कहांसे आकर उत्पन्न होते हैं ?···पूर्ववत् इसके संबंधमें उद्देशक कहें। विशेष यह कि प्रमाण-तीन, सात, ११, १५, संख्याता या असंख्याता उत्पन्न होते हैं। सांतरके संबंधमें वैसे ही जानें।···वे जीव जिस समयमें त्र्योजराशि प्रमाण हैं उसी समय कृतयुग्म प्रमाण हैं या जिस समय कृतयुग्म हैं उसी समय त्र्योज प्रमाण हैं ?···यह अर्थ समर्थ नहीं।···वे जीव जिस समय त्र्योज राशि प्रमाण हैं उस समय द्वापरयुग्मप्रमाण हैं और जिस समय द्वापरयुग्मराशि प्रमाण हैं उस समय त्र्योजराशि प्रमाण हैं ?···यह अर्थ समर्थ नहीं। इसी प्रकार कल्योज राशिके साथ

भी समझें। और बाकी सब वैमानिकों तक वैसे ही जानें। परन्तु सबका उपपात व्युत्क्रान्ति पदमें कहे अनुसार जानें। हे भगवन्!…।

॥ ४१ वें शतकका द्वितीय उद्देशक समाप्त ॥

तृतीय उद्देशक

(प्र० १-२) भगवन्! राशियुग्ममें द्वापरयुग्मराशिप्रमाण नैरयिक कहांसे आकर उत्पन्न होते हैं?…पूर्ववत् उद्देशक कहें। पर परिमाण–दो, छ, दस, संख्याता या असंख्याता उत्पन्न होते हैं, और संवेध भी कहें।…वे जीव जिस समय द्वापरयुग्म हैं उस समय कृतयुग्म हैं, या जिस समय कृतयुग्म हैं उस समय द्वापरयुग्म हैं?…यह अर्थ समर्थ नहीं। इस रीति से त्र्योजराशि व कल्योजराशिके साथ भी समझें। बाकी सब प्रथमोद्देशक के समान यावत् वैमानिकों तक समझें। हे भगवन्!…।

॥ ४१ वें शतकका तृतीय उद्देशक समाप्त ॥

चतुर्थ उद्देशक

भगवन्! राशियुग्म में कल्योजप्रमाण नैरयिक कहां से आकर उत्पन्न होते हैं?…पूर्ववत् जानें। परन्तु परिमाण—एक, पांच, नौ, तेरह, संख्याता या असंख्याता उत्पन्न होते हैं। संवेध पूर्ववत् जानें।…वे जीव जिस समय कल्योजराशिप्रमाण हैं उस समय कृतयुग्मराशिप्रमाण हैं, और जिस समय कृतयुग्मराशिप्रमाण हैं उस समय कल्योजराशिप्रमाण हैं?…यह अर्थ समर्थ नहीं। इसी प्रकार त्र्योज और द्वापरयुग्म के साथ भी कहें। बाकी सब प्रथमोद्देशक के समान यावत् वैमानिकों तक जानें। हे भगवन्!… …।

॥ ४१ वें शतक का चतुर्थ उद्देशक समाप्त ॥

—o—

पंचम उद्देशक

भगवन्! राशियुग्म में कृतयुग्मप्रमाण कृष्णलेश्या वाले नैरयिक कहां से आकर उत्पन्न होते हैं? धूमप्रभा के समान उपपात जानना। बाकी सब जैसे प्रथमोद्देशक में कहा है वैसे कहें। असुरकुमारों के संबंध में भी उसी प्रकार जानें। इस रीति से यावत्—वाणव्यंतरों तक समझें। जैसे नैरयिकों का कहा उसी प्रकार मनुष्यों के संबंध में भी समझना। वे आत्मा के असंयम का आश्रय करते हैं। 'वे लेश्यारहित हैं, क्रियारहित हैं और उसी भव में सिद्ध होते हैं' इतना न

कहें। बाकी सब प्रथमोद्देशक के समान समझना। हे भगवन्!......।

॥ ४१ वें शतक का पांचवां उद्देशक समाप्त ॥

—०—

६ से २० उद्देशक

कृष्णलेश्या वाले राशियुग्म में त्र्योजयुग्मप्रमाण (नैरयिकों) के संबंध में भी पूर्ववत् उद्देशक कहें। हे भगवन्!...॥४१-६॥ द्वापरयुग्मप्रमाण लेश्या वालों—(नैरयिकों) के सम्बन्ध में भी ऐसे ही उद्देशक कहना। हे भगवन्!...॥४१-७॥ कल्योजराशिप्रमाण कृष्णलेश्या वालों (नैरयिकों) के संबंध में भी इसी रीति से उद्देशक कहें। परिमाण व संवेध औघिक उद्देशकमें कहे अनुसार जानें। हे भगवन्!... ॥ ४१-८ ॥ जैसे कृष्णलेश्या वालों के संबंध में कहा है वैसे नीललेश्या वालों के विषय में भी चारों संपूर्ण उद्देशक कहने। परन्तु वालुकाप्रभा के समान नैरयिकों का उपपात कहें। शेष सब वैसे ही है। हे भगवन्!...... ॥ ४१ श० उ० ९-१२ ॥ कापोतलेश्या वालों के संबंध में भी इसी प्रकार चार उद्देशक कहें। परन्तु नैरयिकों का उपपात रत्नप्रभा के समान जानें। बाकी सब उसी प्रकार समझें। हे भगवन्! ......॥ ४१ श० उ० १३-१६ ॥ भगवन्! राशियुग्म में कृतयुग्मराशिप्रमाण तेजोलेश्या वाले असुरकुमार कहां से आकर उत्पन्न होते हैं?...पूर्ववत् जानें। परन्तु विशेष यह कि जिनके तेजोलेश्या हो उन्हीं के संबंध में कहें। इस रीति से ये भी कृष्णलेश्यासमान चार उद्देशक कहें। हे भगवन्!...... ॥ ४१ श० उ० १७-२० ॥

॥ ४१ वें शतक के ६ से २० उद्देशक समाप्त ॥

—०—

२१ से २८ उद्देशक

इस प्रकार पद्मलेश्या के संबंध में भी चार उद्देशक कहें। पंचेन्द्रिय तिर्यंचों, मनुष्यों और वैमानिकों के पद्मलेश्या होती है और शेष के नहीं होती। हे भगवन्! ......॥ ४१ श० उ० २१-२४ ॥ जैसे पद्मलेश्या के संबंध में कहा, वैसे शुक्ललेश्या के विषय में भी चार उद्देशक कहने। परन्तु मनुष्यों के संबंध में जैसे औघिक उद्देशक में कहा है वैसे जानें। और बाकी सब उसी प्रकार जानें। इस प्रकार छः लेश्या संबंधी चार २ उद्देशक व सामान्य चार उद्देशक--ये सब मिलकर २८ उद्देशक होते हैं। हे भगवन्......॥ ४१ श० उ० २५-२८ ॥

॥ ४१ वें शतक के २१-२८ उद्देशक समाप्त ॥

—०—

उत्पन्न होते हैं ?······जैसे प्रथम उद्देशक कहा है वैसे यह उद्देशक कहें। इस प्रकार चारों युग्मों में भवसिद्धिक समान चार उद्देशक कहें। हे भगवन् !···।··· कृतयुग्मराशिप्रमाण कृष्णलेश्या वाले सम्यग्दृष्टि नैरयिक कहां से आकर उत्पन्न होते हैं ? इस संबंधमें भी कृष्णलेश्या वालोंके समान चार उद्देशक कहें। इस प्रकार सम्यग्दृष्टियों के विषय में भी भवसिद्धिक के समान अट्ठाइस उद्देशक करें।

॥ ४१ वें शतक का ८५-११२ उद्देशक समाप्त ॥

—o—

११३ से १४० उद्देशक

भगवन् ! कृतयुग्मराशिप्रमाण मिथ्यादृष्टि नैरयिक कहां से आकर उत्पन्न होते हैं ?······यहाँ भी मिथ्यादृष्टि के अभिलाप–उच्चारण से अभवसिद्धिक के समान २८ उद्देशक कहें। हे भगवन् !······।

॥ ४१ वें शतक का ११३-१४० उद्देशक समाप्त ॥

—o—

१४१-१६८ उद्देशक

भगवन् ! कृतयुग्मप्रमाण कृष्णपाक्षिक नैरयिक कहां से आकर उत्पन्न होते हैं ? यहां भी अभवसिद्धिक के समान २८ उद्देशक कहें। हे भगवन् !······।

॥ ४१ वें शतक का १४१-१६८ उद्देशक समाप्त ॥

—o—

१६९ से १९६ उद्देशक

भगवन् ! कृतयुग्मप्रमाण शुक्लपाक्षिक नैरयिक कहां से आकर उत्पन्न होते हैं ?······यहां भी भवसिद्धिक सदृश २८ उद्देशक होते हैं। इस प्रकार ये सब मिलाकर १९६ उद्देशकों का राशियुग्म शतक होता है। यावत्-शुक्ललेश्या वाले शुक्लपाक्षिक कल्योजराशिप्रमाण वैमानिक यावत् यदि क्रिया वाले हैं तो क्या वे उसी भव में सिद्ध होते हैं, यावत् सर्व दुःखों का अन्त करते हैं ?······यह अर्थ समर्थ नहीं। हे भगवन् !······॥ १६९-१९६ ॥ ८६५ ॥ भगवान् गौतम ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी की तीन बार प्रदक्षिणापूर्वक वंदना की, नमस्कार किया, व वंदना नमस्कार करके बोले—'हे भगवन् ! यह ऐसा ही है,···इसी प्रकार है,···यह सत्य ही है,···यह असंदिग्ध है।···मुझे इच्छित है,···मुझे प्रतीच्छित है,··· यह इच्छित व प्रतीच्छित है। हे भगवन् ! यह सत्य है जो आप कहते हैं। अरिहंत भगवंतों की वाणी पवित्र (अपूर्व) होती है' ऐसा कह कर श्रमण भगवान् महावीर को फिर दुवारा वंदन नमस्कार करते हैं, वंदना नमस्कार करके संयम व तपपूर्वक आत्मा को भावित करते हुए विचरते हैं ॥८६६॥

॥ इकतालीसवां राशियुग्म शतक समाप्त ॥

—o—

सर्व भगवती के कुल मिलाकर १३८ शतक और १९२५ उद्देशक होते हैं। उत्तमोत्तम ज्ञानसे सर्वदर्शी पुरुषोंने इस अंगमें ८४ लाख पद कहे हैं। साथ ही अनन्त—अपरिमित भाव—विधि व निषेध कहे हैं ॥१॥ तप, नियम व विनय रूप वेला वाले, निर्मल ज्ञान रूप विपुल पानी वाले, सैंकड़ों हेतुरूप महान वेग वाले और गुणसे विशाल ऐसे संघ-समुद्र की 'जय' हो ॥२॥

[गौतमादि गणधरों को नमस्कार, भगवती व्याख्याप्रज्ञप्तिको नमस्कार, द्वादशांगगणिपिटकको नमस्कार। कछुएके समान सुन्दर चरण कमल वाली, अम्लान कोरंट वृक्षकी कलिकाके समान भगवती श्रुतदेवी मेरे मतिअज्ञानका नाश करे।]

व्याख्याप्रज्ञप्ति के पहले आठ शतकों के दो दो उद्देशक एक २ दिन में उपदिष्ट होते हैं। परन्तु पहले दिन चौथे शतकके आठ उद्देशक व दूसरे दिन दो उद्देशक उपदिष्ट होते हैं। नौवें शतकसे लगाकर जितना २ जान सके, उतना २ एक २ दिन में उपदेश किया जाता है, उत्कृष्टपने१ शतक का भी एक दिन में···। मध्यम रूप से दो दिन में व जघन्य रूप से तीन दिनमें शतक का उपदेश किया जाता है। ऐसे बीसवें शतक तक जानें। परन्तु पंद्रहवें गोशालक शतक का एक दिन में उपदेश किया जाता है। यदि शेष रहे तो उसका एक आयंबिल करके उपदेश किया जाता है। फिर भी बाकी रहे तो दो आयंबिल······। २१ वें, २२ वें और २३ वें शतक का एक २ दिन में उपदेश किया जाता है। २४ वां शतक एक २ दिन में छः-छः उद्देशक इस प्रकार दो दो दिन में उपदिष्ट होता है। २५ वां शतक छः-छः···दो दिन में···। बन्धिशतकादि आठ शतक एक दिन में, श्रेणिशतकादि १२ शतक एक दिन में, एकेन्द्रियके १२ महायुग्मशतक एक दिन में, इसी प्रकार बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रिय के १२-१२ शतक तथा संज्ञी पंचेन्द्रियके २१ महायुग्मशतक व राशियुग्मशतक एक २ दिनमें कहे जाते हैं।

[जिसके हाथमें विकसित कमल है, जिसने अज्ञान का नाश किया है और बुध-पंडित और विबुध-देव जिसे सदा नमस्कार करते हैं। ऐसी श्रुताधिष्ठित देवी मुझे भी बुद्धि प्रदान करे ॥१॥ हम श्रुतदेवताको प्रणाम करते हैं, जिसकी कृपासे ज्ञानकी शिक्षा प्राप्त हुई है। उसके अतिरिक्त शांति करने वाली प्रवचन देवी को भी नमस्कार करता हूं ॥२॥ श्रुतदेवता, कुंभधर यक्ष, ब्रह्मशान्ति वैरोट्या विद्या व अंतहुंडी लेखक को अविघ्न प्रदान करें] ॥८६७॥

॥ पंचमांग भगवती सूत्र समाप्त ॥